॥ श्रीहरिः ॥

635

कल्याण

शिवाङ्क

आठवें वर्षका विशेषाङ्क

गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ

कल्याण

श्रीशिवाङ्क

(परिशिष्टाङ्कसहित)

हर-हरिरूप शिव

शिवस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः।
एक एव द्विधाभूतो लोके चरति नित्यशः॥
नमश्चर्मनिवासाय नमस्ते पीतवाससे।
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये उमायाः पतये नमः॥

साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकिराम। गौरी-शंकर, सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥

सं० २०५२ से २०५५ तक	१५,०००
सं० २०५९ पाँचवाँ संस्करण	४,०००
	योग १९,०००

मूल्य—एक सौ रुपये

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, संयुक्त सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

visit us at: www.gitapress.org / e-mail:gitapres@ndf.vsnl.net.in

* श्रीहरिः *

श्रीशिवाङ्क और परिशिष्टाङ्ककी विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

परिशिष्टाङ्क

पद्य

संगृहीत लेख और कविताएँ

चित्र-सूची

इकरङ्गे-सादे चित्र

परिशिष्टाङ्क

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

आराध्य यं सुमनसा पुरुषाः स्त्रियो वा कल्याणकल्पतरुमुक्तिफलान्युपेयुः ।
मूलं भजध्वमनिशं परमं तमीशं ब्रह्मस्वरूपमुमया सह विद्ययैव ॥

वर्ष ८ } गोरखपुर, श्रावण १९९० अगस्त १९३३ { संख्या १ पूर्ण संख्या ८५

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

—यजुर्वेद

शिव-महिमा और स्तुति

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥
या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तनुवा शन्तमया
गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥
ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं
यथा निकायं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितार-
मीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥
महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः ।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥
पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥
सर्वतःपाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

अणोरणीयान् महतो महीया-
नात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको
यस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वम् ।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥
घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥
यदातमस्तन्न दिवा न रात्रि-
र्न सन्न चासच्छिव एव केवलः ।
तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥
भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद्

शङ्करकी शङ्कर-स्तुति

(प्रातःस्मरणीय श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यरचित शिवानन्दलहरीसे)

गलन्ती शम्भो ! त्वच्चरितसरितः किल्बिषरजो
दलन्ती धीकुल्यासरणिषु पतन्ती विजयताम् ।
दिशन्ती संसारभ्रमणपरितापोपशमनं
वसन्ती मच्चेतोह्रदभुवि शिवानन्दलहरी ॥ १ ॥

हे शम्भो ! यह 'शिवानन्दलहरी' (शिवस्तुतिरूप आनन्दकी लहर) आपके अगाध चरितरूपी सरितासे निकल कर (अपने भावरूप निर्मल जलसे अवगाहन करनेवालोंके) पापपङ्कका प्रक्षालन करती हुई तथा भवाटवीभ्रमणजनित क्लान्तिको शान्त करती हुई मेरी बुद्धिरूपी कुल्या (नहर) मेंसे होती हुई, मेरे हृदयरूपी ह्रदमें प्रवेशकर सदाके लिये उसीमें स्थिर हो जाय ।

प्रभुस्त्वं दीनानां खलु परमबन्धुः पशुपते !
प्रमुख्योऽहं तेषामपि किमुत बन्धुत्वमनयोः ।
त्वयैव क्षन्तव्याः शिव ! मदपराधाश्च सकलाः
प्रयत्नात् कर्तव्यं मदवनमियं बन्धुसरणिः ॥ २ ॥

हे पशुपति ! आप दीनानाथ एवं दीनबन्धु हैं और मैं दीनोंका सरदार हूँ । क्या ही अच्छा जोड़ बैठा है ! बन्धुका कर्तव्य है कि वह अपने सम्बन्धीको सर्वनाशसे बचावे । फिर क्या आप मेरे सारे अपराधोंको क्षमाकर मुझे इस घोर भवसागरसे नहीं उबारेंगे ? अवश्य उबारेंगे, अन्यथा आप अपने कर्तव्यसे च्युत होंगे और आपके 'दीनबन्धु' नामपर बट्टा लगेगा ।

उपेक्षा नो चेत् किं न हरसि भवद्ध्यानविमुखां
दुराशाभूयिष्ठां विधिलिपिमशक्तो यदि भवान् ।
शिरस्तद्वैधात्रं ननु खलु सुवृत्तं पशुपते !
कथं वा निर्यत्नं करनखमुखेनैव लुलितम् ॥ ३ ॥

आप मेरा शीघ्र उद्धार नहीं करते, इससे तो यही जाहिर होता है कि आप मेरी उपेक्षा करते हैं, मेरी फरियादको सुनकर आपके कानपर जूँ भी नहीं रेंगती; नहीं तो भला अबतक मेरी यह हालत रहती ? यदि आप कहें कि भाई, हम क्या करें, विधाताने तुम्हारे करममें यही लिखा है कि तुम हमारे ध्यानसे विमुख रहकर दुराशाओंसे पूर्ण जीवन व्यतीत करो, तो मैं आपसे यह पूछता हूँ कि क्या आप विधाताके लेखको नहीं मेट सकते, उसके लिखे हुए पर कलम नहीं चला सकते ? आप तो, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हैं, ब्रह्मा-विष्णु सब कठपुतलीकी भाँति आपके इशारे-पर नाचते हैं । फिर क्या आप मेरे लिये इतना भी नहीं कर सकते ? यदि आप कहें कि ब्रह्माजीके सामने मेरी पेश नहीं आती, तो मैं आपसे पूछता हूँ, क्या आप उस दिनको भूल गये जब आपने उनका गोल-गोल पाँचवाँ मुख जो बहुत बढ़-बढ़कर बातें कर रहा था, बात-की-बातमें अपने नखके अग्रभागसे ही कलम कर दिया था और इसप्रकार बेचारे ब्रह्माजी, जो आपकी बराबरी करने चले थे, चतुरानन ही रह गये ? बस, यह सब बहानेबाज़ी रहने दीजिये, मैं इसप्रकार भुलावेमें नहीं आनेका । अब तो जिस तरहसे भी हो आपको मेरा उद्धार करना ही होगा । इस बार तो मैं आपसे बाज़ी लेकर ही मानूँगा, यों सहजहीमें नहीं छोड़नेका ।

करोमि त्वत्पूजां सपदि सुखदो मे भव विभो !
विधित्वं विष्णुत्वं दिशसि खलु तस्याः फलमिति ।
पुनश्च त्वां द्रष्टुं दिवि भुवि वहन् पक्षिमृगता-
मदृष्ट्वा तत्खेदं कथमिह सहे शङ्कर विभो ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! मैं अपनी पूजाका फल आपसे यही चाहता हूँ कि आप मुझे अपने चरणोंसे कभी अलग न करें । आपके चरणोंसे दूर रहकर मैं और तो क्या, ब्रह्मा और विष्णुका पद भी नहीं चाहता । क्योंकि ब्रह्मा और विष्णु-को भी आपको ढूँढ़नेके लिये क्रमशः हंस और वराहका रूप धारण करना पड़ा; किन्तु फिर भी वे आपका पता न पा सके । वह ब्रह्मा और विष्णुका पद किस कामका जिसमें रहकर आपसे बिछोह हो । बाज़ आया ऐसे बड़प्पनसे, मुझे वह नहीं चाहिये । मैं तो छोटे-से-छोटा होकर आपके चरणोंमें पड़ा रहना चाहता हूँ, कृपया मुझे वहीं स्थान दीजिये ।

करस्थे हेमाद्रौ गिरिश ! निकटस्थे धनपतौ
गृहस्थे स्वर्भूजामरसुरभिचिन्तामणिगणे ।
शिरःस्थे शीतांशौ चरणयुगलस्थेऽखिलशुभे
कमर्थं दास्येऽहं भवतु भवदर्थं मम मनः ॥ ५ ॥

हे गिरिश ! स्वर्णगिरि (सुमेरु) आपके समीप ही है, करतलगत ही है । मनमें आयी कि सोना-ही-सोना ।

ऐसी दशामें आपको सोनेकी दरकार तो हो ही नहीं सकती और फिर यदि कोई सोना आपकी नज़र करना ही चाहे तो बेचारा कहाँतक देगा ? जगत्‌भरका सोना यदि इकट्ठा कर लिया जाय तो भी वह सुमेरुगिरिके एक पासंगमें भी नहीं आ सकता । इधर देवताओंके खज़ानची कुबेरजी, जो साक्षात् धनपति हैं, आपके बगलमें ही—अलकापुरीमें रहते हैं, जब चाहा उनसे मँगवा लिया। जब धनपति आपके पड़ोसी हैं तब आपको धनकी भी क्या कमी रह सकती है ? कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिन्तामणियोंका ढेर आपके घरमें ही मौजूद है, क्योंकि ऋद्धि-सिद्धि आपकी पुत्र-वधू हैं। वे जब चाहें एक क्षणमें दुनियाभरका सामान लाकर जुटा सकती हैं, आपके इशारेभरकी देरी है । ऐसी दशामें आपको किसी भी वस्तुका अभाव नहीं हो सकता जिसकी मैं पूर्ति कर सकूँ । चन्द्रमा जो सुधाकर (अमृतका खजाना) है सदा आपके मस्तकपर ही रहता है और आपके चरणयुगल समस्त कल्याणोंके धाम हैं । फिर ऐसी कौन-सी वस्तु हो सकती है जो मैं आपकी भेंट करूँ ? और फिर मेरे पास तो मनके सिवा और कोई वस्तु है भी नहीं । अतः आप कृपाकर इसीको स्वीकार कीजिये। मैं अपनेको इसीसे कृतार्थ समझूँगा ।

सारूप्यं तव पूजने शिव महादेवेति सङ्कीर्तने
सामीप्यं शिवभक्तिधुर्यजनतासाङ्गत्यसम्भाषणे ।
सालोक्यञ्च चराचरात्मकतनुध्याने भवानीपते !
सायुज्यं मम सिद्धमत्र भवति स्वामिन् ! कृतार्थोऽस्म्यहम्॥

हे भवानीपते ! हे स्वामिन् !! मुझे सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य और सायुज्य—इन चार प्रकारकी मुक्तियोंमेंसे एक भी नहीं चाहिये, क्योंकि मुझे ये चारों ही आपकी कृपासे प्राप्त हैं, जब प्रेमपूर्वक मैं आपकी षोडशोपचारसे पूजा करता हूँ, उस समय मेरी वृत्तियाँ स्वाभाविक ही तदाकार हो जाती हैं और मुझे अनायास ही सारूप्य-सुखका अनुभव होने लग जाता है । शास्त्रोंमें भी कहा है—'देवो भूत्वा यजेद्देवम् ।' इसी प्रकार जब मैं मस्त होकर आपका नामसङ्कीर्तन करने लगता हूँ, उस समय मुझे सहजहीमें आपके सामीप्यका सुख मिल जाता है, क्योंकि नाम भी तो आपका ही स्वरूप है । शास्त्रोंने आपमें और आपके नाममें कोई भेद नहीं माना है । भगवान् विष्णुने तो यहाँतक कह दिया—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

शिव-भक्तोंकी मण्डलीमें बैठकर आपकी चर्चा और आपका गुणानुवाद करनेमें मुझे सालोक्यमुक्तिका आनन्द मिलता है, क्योंकि उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो मैं शिवलोकमें ही बैठा हूँ । और जिस समय मैं आपके विराट् रूपका ध्यान करता हूँ उस समय मैं अपनेको आपसे अलग नहीं पाता, आपके ही शरीरमें समाया हुआ देखता हूँ। उस समय मैं साक्षात् सायुज्य-सुखका अनुभव करने लगता हूँ । इस तरह जब मैं चारों प्रकारकी मुक्तियोंका सुख एक ही शरीरसे लूट रहा हूँ तब मैं उनमेंसे किसी एक प्रकारकी मुक्तिको लेकर क्या करूँ ? तात्पर्य यह कि आपकी पूजा-अर्चा, जप-ध्यान, कीर्तन एवं गुणानुवादमें मुझे जो अलौकिक सुख मिलता है उसकी तुलना मुक्ति-सुखसे भी नहीं हो सकती, सांसारिक सुखोंकी तो बात ही क्या है ? आपके सच्चे भक्त आपकी भक्तिको छोड़कर मुक्ति भी नहीं चाहते—

'मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाने ।'

भक्तिकी ऐसी ही महिमा है । बस, ऐसी कृपा कीजिये कि मुझे आपकी भक्तिको छोड़कर मुक्तिका कभी ध्यान ही न हो ।

नालं वा परमोपकारकमिदं त्वेकं पशूनां पते !
पश्यन् कुक्षिगतांश्चराचरगणान् बाह्यस्थितान् रक्षितुम् ।
सर्वामर्त्यपलायनौषधमतिज्वालाकरं भीकरं
निक्षिप्तं गरलं गले न गिलितं नोद्गीर्णमेव त्वया ॥ ६ ॥

हे पशुपते ! आपकी दयालुताका क्या कहना ! समुद्रसे निकले हुए कालकूट महाविषकी प्रलयङ्करी ज्वालाओंसे भयभीत हो देवतालोग जब आपकी शरण आये तो आप दयापरवश हो उस उग्र विषको अपनी हथेलीपर रखकर आचमन कर गये । इसप्रकार उसे आचमन तो कर गये, किन्तु उसे मुँहमें लेते ही आपको अपने उदरस्थ चराचर विश्वका ध्यान आया और आप सोचने लगे कि जिस विषकी भयङ्कर ज्वालाओंको देवतालोग भी नहीं सह सके, उसे मेरे उदरस्थ जीव कैसे सह सकेंगे ? यह ध्यान आते ही आपने उस विषको अपने गलेमें ही रोक लिया, नीचे नहीं उतरने दिया । इसप्रकार आपने उस भयङ्कर विषसे देवताओंकी ही नहीं, अपितु समस्त चराचर जगत्‌की रक्षा

की। धन्य है आपकी परदुःखकातरताको ! इसीसे तो आपको 'भूतभावन' कहते हैं। उसी स्वाभाविक दयासे प्रेरित हो आप इस विषय-विषसे जर्जरित सन्तप्त हृदयकी भी सुध लीजिये और इसे अपने अभय चरणोंकी सुखद सुशीतल छायामें रखकर शाश्वत सुख एवं शान्तिका अधिकारी बनाइये ।

जडता पशुता कलङ्किता कुटिलचरत्वं च नास्ति मयि देव।
अस्ति यदि राजमौले, भवदाभरणस्य नास्मि किं पात्रम्॥७॥

हे राजशिरोमणि! (राजाओंके सिरमौर तथा चन्द्रशेखर—राजा=चन्द्र) मैं न तो जड़ (मूर्ख) हूँ, न पशु हूँ; न कलङ्की हूँ और न वक्रगति हूँ। इन सारे दुर्गुणोंसे मुक्त होनेपर भी आप मुझपर कृपा नहीं करते, इसमें क्या कारण है? यदि आप कहें कि नहीं, तुम्हारे अन्दर ये सभी दुर्गुण मौजूद हैं, तो मैं कहूँगा कि तब तो मैं आपके अङ्गका भूषण बननेका विशेष अधिकारी हूँ, फिर आप मुझे इसप्रकार क्यों दुतकारते हैं? आपने गङ्गाजीको सिर चढ़ा रक्खा है, क्या वे जड (शीतल) नहीं हैं; मृगको हाथमें ले रक्खा है, वह भी तो आखिर पशु ही है। चन्द्रमा भी तो कलङ्की है, उसे तो आपने अपने मस्तकका मुकुट बना रक्खा है और साँपको गलेका हार बना रक्खा है, वह भी तो वक्रगति है। फिर मैंने ही कौन-सा अपराध किया है जिसके कारण आप मुझे अङ्गीकार नहीं करते? इसप्रकारकी विषमता आपको कदापि शोभा नहीं देती। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप इस दीनको अपनाकर इसे सदाके लिये कृतार्थ कर दीजिये। इसे अपने उत्तम अङ्गोंमें नहीं, तो चरणोंमें ही लिपटाये रहिये। इसीमें यह अपना अहोभाग्य समझेगा।

अरहसि रहसि स्वतन्त्रबुद्ध्या वरिवसितुं सुलभः प्रसन्नमूर्तिः।
अगणितफलदायकः प्रभुर्मे जगदधिको हृदि राजशेखरोऽस्ति॥

हमारे स्वामी राजशेखर (राजराजेश्वर चन्द्रमौलि) की अन्य लौकिक नरेशोंके साथ तुलना नहीं हो सकती। उनकी हम अकेले-दुकेले अथवा सब लोगोंके सामने, चाहे जहाँ, बिना किसी रुकावटके पूजा कर सकते हैं। उन्होंने अपनेको हमारे लिये सर्वदा सुलभ बना दिया है। सुबह-शाम, दिनमें, रातमें, दोपहरको, आधी रात—जब हमें फुरसत हो, तभी हम उनकी पूजा बिना किसी सङ्कोचके कर सकते हैं। उनकी पूजाके लिये हमें मौसर लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। उनकी पूजाके लिये देश-कालका कोई नियम नहीं है। चाहे जहाँ और चाहे जिस समय हम उनकी पूजा कर सकते हैं।

अन्य राजाओंके साथ हम इसप्रकारका व्यवहार नहीं कर सकते। उनकी सेवा-शुश्रूषा पहले तो हर एक व्यक्ति कर नहीं सकता, विशेष योग्यता एवं विशेष कुलके लोगोंको यह अवसर प्राप्त होता है। फिर उनके सेवकको उनके नियमोंमें बँधना पड़ता है और निर्दिष्ट स्थान एवं निर्दिष्ट समयमें ही निर्दिष्ट प्रणालीके अनुसार उनकी सेवा हो सकती है। निर्दिष्ट प्रणाली एवं निर्दिष्ट समयमें ज़रा भी चूक पड़नेपर उनके कुपित होनेका डर रहता है। फिर उसे उनकी अनुकूलता-प्रतिकूलता तथा उनके मिजाजका, जो समय-समयपर बदल सकता है, बड़ा ध्यान रखना पड़ता है। राजाओंकी अव्यवस्थितचित्तता तो प्रसिद्ध ही है। भगवान् शङ्करके लिये यह बात नहीं है। वे कभी प्रतिकूल तो होते ही नहीं। भक्तपर सदा अनुकूल, सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। अन्य राजाओंकी भाँति उनकी रुख देखनेकी आवश्यकता नहीं होती। वे तो उलटी हमारी रुचि रखते हैं। 'राम सदा सेवक रुचि राखी' प्रसिद्ध ही है। फिर एक बात और है। किसी राजाको प्रसन्नकर हम परिमित फल ही पा सकते हैं, क्योंकि उसके पास जो कुछ है सब परिमित ही तो है। उससे अधिक वह कहाँसे देगा? इसके विपरीत भगवान् शङ्कर अमित फलके देनेवाले हैं। वे और तो और, भक्तको अपना स्वरूपतक दे डालते हैं। ऐसे भक्तभावन भगवान्को छोड़कर जो दूसरोंका मुँह ताकते हैं वे निश्चय ही मन्दमति हैं, अतिशय दयाके पात्र हैं। अतः सब कुछ छोड़कर आशुतोष भगवान् शङ्करकी ही शरण ग्रहण करनी चाहिये। इसीमें जीवका सब प्रकारसे मङ्गल है।

नित्यं योगिमनःसरोजदलसञ्चारक्षमस्त्वत्क्रमः
शम्भो तेन कथं कठोरयमराड्वक्षःकवाटक्षतिः।
अत्यन्तं मृदुलं त्वदङ्घ्रियुगलं हा! मे मनश्चिन्तय-
त्येतल्लोचनगोचरं कुरु विभो! हस्तेन संवाहये॥९॥

हे भगवन्! कहाँ तो आपके सुकोमल चरणयुगल, जो सदा योगियोंके हृत्पङ्कजोंमें रमण करते रहते हैं और कहाँ यमराजका कठोर वज्रोपम वक्षःस्थल, जिसे आपने अपने उन चरणोंके प्रहारसे भेदन किया। उस कर्कश आघातसे आपके चरणोंको जरूर गहरी चोट आयी होगी। लाइये,

उन्हें मुझे सौंपिये। मैं उन्हें सुहलाकर ठीक कर दूँ। (इसी बहाने आपके पैर पलोटनेको तो मिलें।)

पुष्यत्येष जनिं मनोऽस्य कठिनं तस्मिन्नटानीति मद्-
रक्षायै गिरिसीम्नि कोमलपदन्यासः पुराऽभ्यासितः।
नो चेद्दिव्यगृहान्तरेषु सुमनस्तल्पेषु वेद्यादिषु
प्रायः सत्सु शिलातलेषु नटनं शम्भो ! किमर्थं तव ॥१०॥

नहीं-नहीं, मैं भूलता हूँ। मालूम होता है, आपको कठोर भूमिपर पाद-प्रहार करनेका अभ्यास-सा हो गया है। यमराजके वक्षःस्थलको विदीर्ण करके ही आपने सन्तोष कर लिया हो, सो बात नहीं है। आपने तो जान-बूझकर कैलास-शृङ्गकी कर्कश भूमिपर कोमल पदन्यासका अभ्यास किया है। वह इसलिये कि आपने अपनी सर्वज्ञता-के बलसे इस बातका पता लगा लिया था कि आपका एक भक्त अमुक समयमें जन्म लेगा और उसकी वज्रतुल्य कठोर हृदय-भूमिमें आपको विहार एवं पदसञ्चार करना होगा। कहीं उसके कठोर हृदयसे आपके कोमल चरणोंको चोट न पहुँचे, इस भयसे आपने पथरीली भूमिपर हल्के-हल्के कदम रखकर नृत्य करनेका युगों पहले अभ्यास कर लिया था। नहीं तो भला, दिव्य-मणि-भवनके सुकोमल फर्श, मखमली गद्दों तथा फूलोंकी सेजको छोड़कर पथरीली जमीनपर घूमनेका किसको शौक होगा? धन्य है आपकी भक्त-वत्सलता एवं दूरदर्शिता! ऐसे दयालु स्वामीको छोड़कर हे पापी मन! तू कहाँ भटकता फिरता है?

अशनं गरलं फणी कलापो
वसनं चर्म च वाहनं महोक्षः।
मम दास्यसि किं किमस्ति शम्भो !
तव पादाम्बुजभक्तिमेव देहि ॥११॥

(परन्तु) हे शम्भो! मैं आपसे क्या माँगूँ? आपके पास देनेलायक है ही क्या, जिसे आप मुझे देंगे? खाते तो हैं आप ज़हर, अधिक हुआ तो मुट्ठीभर भाँग भकोस ली अथवा आक-धतूरा चबा लिया, जिसके खानेसे मनुष्य अव्वल तो बचे ही नहीं और यदि किसी तरह बच जाय तो पागल हुए बिना कदापि न रहे। फिर भला आपसे कोई खानेकी चीज तो क्या माँगे? मनुष्यकी ही क्या, प्रत्येक प्राणीको प्रथम आवश्यकता होती है भोजनकी, पेट भर जानेपर और बातोंकी सूझती है। सो वह आवश्यकता तो आपसे किसीकी पूरी होनेकी नहीं।

भोजनके बाद दूसरा नम्बर आता है वस्त्रका। उसके लिये तो आप दिगम्बर प्रसिद्ध ही हैं, कुछ कहने-सुननेकी आवश्यकता ही नहीं है। कभी कोई भूला-भटका, आफ़त-का मारा आपसे मिलने आ गया तो भले ही शर्मके मारे चमड़ेका टुकड़ा लँगोटीकी जगह लपेट लिया, नहीं तो वही नंग-धड़ंग घूमते रहते हैं। इस तरह कपड़ेकी मुराद पूरी हुई।

बदन ढँका हुआ होनेपर गहने आदिसे उसे सजानेकी फ़िक्र होती है। सो गहने आपने साँपोंके धारण कर रक्खे हैं, जिन्हें धारण करनेकी तो बात ही कौन कहे, दर्शन होते ही होश-हवास कूच कर जाते हैं और किसी तरह उनसे प्राण बचानेकी चिन्ता होती है। ऐसी दशामें कोई अभागा ही होगा जो आपसे गहनोंका सवाल करेगा। घरमें खाने-पहननेको भरपूर होता है और पासमें दो पैसेकी इज़्ज़त हो जाती है तब मनुष्यको पाँव-पियादे चलनेमें शर्म आने लगती है और यह ख्याल होने लगता है कि चार आदमी हमें पैदल चलते देखकर क्या कहेंगे। उस समय मनुष्यको सवारीकी जरूरत होती है। सो सवारी आपकी साँड़ है, जिसके पास जानेमें ही भय मालूम होता है कि कहीं वह सींग न भोंक दे। सारांश यह कि आपके पास सांसारिक वस्तु कोई भी ऐसी नहीं है जो आप किसीको दे सकें। इसलिये आपसे मैं केवल एक वस्तु माँगता हूँ, जिसे देनेमें आपको कभी आनाकानी हो ही नहीं सकती और जिसका आपके पास अटूट भण्डार है। वह है आपके चरणारविन्दकी अनन्य एवं अनपायिनी भक्ति। आशा है, मेरे इस छोटे-से सवालको आप अवश्य पूरा करेंगे और अपनी देनसे मुझे वञ्चित नहीं रक्खेंगे।

शिव-शरणागति

(प्रसिद्ध शिवभक्त श्रीअप्पय्य दीक्षितकृत)

त्वं वेदान्तैर्विविधमहिमा गीयसे विश्वनेत-
स्त्वं विप्राद्यैर्वरदनिखिलैरिज्यसे कर्मभिः स्वैः ।
त्वं दृष्टानुश्रविकविषयानन्दमात्राविवृष्णै-
रन्तर्ग्रन्थिप्रविलयकृते चिन्त्यसे योगिवृन्दैः ॥

हे विश्वनायक ! उपनिषदोंमें आपकी ही अनन्त महिमाका बखान है; हे वरदायक ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने वर्णानुकूल आचरण-के द्वारा आपका ही पूजन करते हैं; इहलौकिक एवं पारलौकिक—दोनों प्रकारके सुखोंसे जिन्हें वैराग्य हो गया है, ऐसे योगिजन भी अविद्यारूपी हृदयग्रन्थिके भेदनके लिये सदा आपका ही चिन्तन करते हैं ।

ध्यायन्तस्त्वां कतिचन भवं दुस्तरं निस्तरन्ति
त्वत्पादाब्जं विधिवदितरे नित्यमाराधयन्तः ।
अन्ये वर्णाश्रमविधिरताः पालयन्तस्त्वदाज्ञां
सर्वं हित्वा भवजलनिधावेष मज्जामि घोरे ॥

कुछ लोग आपके विज्ञानानन्दघन परब्रह्मस्वरूपका ध्यान करके इस दुस्तर भवार्णवको पार करते हैं, कुछ लोग आपके सुरदुर्लभ चरणारविन्दका पूजन कर अपने मनोरथ-को सिद्ध करते हैं और कुछ लोग वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करते हुए शास्त्ररूप आपकी आज्ञाका पालन करते हैं; किन्तु मैं सब कुछ छोड़कर इस घोर संसारसागरमें गोते खा रहा हूँ—मुझसे न तो आपका ध्यान होता है, न आपका पूजन बन पड़ता है और न शास्त्र-मर्यादानुकूल आचरण ही करते बनता है । मुझसे अधिक अभागा एवं हरामी संसारमें कौन होगा ?

उत्पद्यापि स्मरहर महत्युत्तमानां कुलेऽस्मि-
न्नास्वाद्य त्वन्महिमजलधेरप्यहं शीकराणू ।
त्वत्पादार्चाविमुखहृदयश्चापलादिन्द्रियाणां
व्यग्रस्तुच्छेष्वहह जननं व्यर्थयाम्येष पापः ॥

हे स्मररिपो ! मैंने उत्तम ब्राह्मण-कुलमें जन्म लिया और आपकी महिमारूपी अपार सागरके कतिपय बिन्दुओं-का आस्वादन भी किया; किन्तु फिर भी मैं पापात्मा आपकी पादसेवासे मुँह मोड़कर इन्द्रियोंकी चपलताके कारण क्षुद्र सांसारिक विषयोंके पीछे पागल हुआ घूमता हूँ और इस दुर्लभ मनुष्य-जन्मको व्यर्थ गवाँ रहा हूँ, हीरेको काचके मोल बेच रहा हूँ । मुझसे अधिक अज्ञानी और कौन होगा ?

अर्कद्रोणप्रभृतिकुसुमैरर्चनं ते विधेयं
प्राप्यं तेन स्मरहर ! फलं मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः ।
एतज्जानन्नपि शिव ! शिव !! व्यर्थयन् कालमात्म-
न्नात्मद्रोही करणविवशो भूयसाधः पतामि ॥

हे स्मरारे ! आपके पूजनके लिये न तो पैसा चाहिये और न विशेष सामग्रीकी ही अपेक्षा है । आककी डोंड़ियों और धतूरेके पुष्पोंसे ही आप प्रसन्न हो जाते हैं, कौड़ियोंमें काम होता है; किन्तु आपका पूजन इतना सस्ता होनेपर भी आप उसके बदलेमें क्या देते हैं ? आक और धतूरेके एवजमें आप देते हैं मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मी, जो देवताओंको भी दुर्लभ है । कितना सस्ता सौदा है ? इसीलिये तो आप 'आशुतोष' एवं 'औढरदानी' की उपाधिसे विभूषित हैं । किन्तु शिव ! शिव ! मैं ऐसा आत्मद्रोही हूँ कि यह सब कुछ जानता हुआ भी अपना जीवन व्यर्थ ही नहीं खो रहा हूँ, अपितु इन्द्रियोंके वशीभूत होकर बार-बार पापों-के गड्ढेमें गिरता हूँ ।

नाहं रोद्धुं करणनिचयं दुर्नयं पारयामि
स्मारं स्मारं जनिपथरुजं नाथ ! सीदामि भीत्या ।
किं वा कुर्वे किमुचितमिह क्वाद्य गच्छामि हन्त !
त्वत्पादाब्जप्रपतनमृते नैव पश्याम्युपायम् ॥

हे नाथ ! मेरी इन्द्रियाँ बड़ी दुर्दमनीय हो गयी हैं, ये मेरे काबूसे बाहर हो चली हैं । इन्हें नियन्त्रणमें रखना मेरे बसका नहीं है । इधर इनको स्वतन्त्र छोड़ देनेसे मेरी जो दुर्दशा होगी उसे सोचकर एकबारगी रूह काँप उठती है । क्योंकि इनकी लगाम ढीली कर देनेसे संसारमें बार-बार जन्म लेना तो निश्चित ही है और गर्भवासमें जो नरक-यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं, उनका ध्यान आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं । ऐसी दशामें मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कुछ समझमें नहीं आता । इस दुविधामें पड़कर मैं किंकर्तव्यविमूढ-सा हो गया हूँ । अब तो आपके भक्त-भय-हारी चरणारविन्दोंका आश्रय लेनेके अतिरिक्त कोई

दूसरा मार्ग नहीं सूझता। अतः कृपया आप मुझे उन्हीं चरणोंकी शरणमें ले लीजिये।

उल्लङ्घ्याज्ञामुडुपतिकलाचूड ! ते विश्ववन्द्य !
त्यक्ताचारः पशुवदधुना त्यक्तलज्जश्चरामि।
एवं नानाविधभवततिप्राप्तदीर्घापराधः
क्लेशाम्भोधिं कथमहमृते त्वत्प्रसादात्तरेयम्॥

हे शशिशेखर ! हे जगद्वन्द्य प्रभो ! मैं आपकी आज्ञाकी अवहेलना करता हुआ सदाचारके मार्गका परित्याग कर पशुकी भाँति निर्लज्ज हुआ घूमता हूँ। जन्मजन्मान्तरोंमें मैंने इतने बड़े पाप किये हैं कि करोड़ जन्मोंमें भी उनसे छुटकारा सम्भव नहीं है। अब तो इस दुःखार्णवके पार जानेका यदि कोई उपाय है तो आपकी कृपाका अवलम्बन ही है। अतः इस दीनकी ओर भी तनिक कृपाकी कोर हो जाय।

क्षाम्यस्येव त्वमिह करुणासागरः कृत्स्नमागः
संसारोत्थं गिरिश ! सभयप्रार्थनादैन्यमात्रात्।
यद्यप्येवं प्रतिकलमहं व्यक्तमागः सहस्रं
कुर्वन्मूकः कथमिव तथा निस्त्रपः प्रार्थयेयम्॥

हे गिरिश ! आप ऐसे दयासागर हैं कि जो मनुष्य संसाररूपी घोर दावानलसे भयभीत होकर दीनतापूर्वक आपसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगता है उसके जन्मजन्मान्तरके पापोंको आप अपनी कृपासे नष्ट कर देते हैं और उसको कल्मषहीन एवं मोक्षपदका अधिकारी बना देते हैं; किन्तु मैं तो ऐसा निर्लज्ज हूँ कि अपने पूर्वकृत अपराधोंके लिये क्षमा माँगना तो दूर रहा, उलटा प्रतिपल नये-नये पाप बटोर रहा हूँ और इसप्रकार मेरे पापोंका बोझ क्रमशः वृद्धिंगत हो रहा है, उसका क्षय होनेकी तो बात ही क्या है ? ऐसी हालतमें मैं अपने पापोंके लिये आपसे क्षमा भी किस मुँहसे माँगूँ ? अब तो आप स्वयं ही अपनी स्वाभाविक दयालुतासे मेरे पापोंको क्षमा कर दें तभी निस्तार हो सकता है, अन्यथा नहीं।

ध्यातो यत्नाद्विजितकरणैर्योगिभिर्यो विमृग्य-
स्तेभ्यः प्राणोत्क्रमणसमये संनिधायात्मनैव।
तद्व्याचष्टे भवभयहरं तारकं ब्रह्म देव-
स्तं सेवेऽहं गिरिश ! सततं ब्रह्मविद्यागुरुं त्वाम्॥

जितेन्द्रिय योगीगण ध्यानमार्गसे आपको प्राप्त करनेका यत्न करते हैं; किन्तु फिर भी वे आपको नहीं देख पाते। अन्त समयमें जब उनके प्राणपखेरू उड़नेको होते हैं, तब आप बिना बुलाये अपने आप ही उनके निकट उपस्थित हो जाते हैं और उनके कानमें मोक्षदायक तारक-मन्त्र फूँककर उन्हें भवबन्धनसे सदाके लिये मुक्त कर देते हैं। ऐसे ब्रह्मविद्याके उपदेशक आपकी मैं शरण लेता हूँ।

भक्ताऽग्र्याणां कथमपि परैर्योऽचिकित्स्याममर्त्यैः
संसाराख्यां शमयति रुजं स्वात्मबोधौषधेन।
तं सर्वाधीश्वर ! भवमहादीर्घतीव्रामयेन
क्लिष्टोऽहं त्वां वरद ! शरणं यामि संसारवैद्यम्॥

हे सर्वेश्वर वरदायक शम्भो ! आप आत्मबोधरूपी औषधके द्वारा अपने भक्तवरोंके भवरोगको हर लेते हैं। अन्य देवताओंकी सामर्थ्य नहीं कि वे इस दुःसाध्य रोगकी चिकित्सा कर सकें। इस भवरूपी महाभयङ्कर एवं जन्म-जन्मान्तरसे पीछे लगे हुए रोगसे पीड़ित होकर मैं आप संसार-वैद्यकी शरण आया हूँ। कृपया ऐसा कीजिये कि जिससे फिर इस संसार-रोगका मुँह न देखना पड़े।

दासोऽस्मीति त्वयि शिव ! मया नित्यसिद्धं निवेद्यं
जानास्येतत् त्वमपि यदहं निर्गतिः सम्भ्रमामि।
नास्त्येवान्यन्मम किमपि ते नाथ ! विज्ञापनीयं
कारुण्यान्मे शरणवरणं दीनवृत्तेर्गृहाण॥

हे शिव ! मैं आपका दास हूँ, यही मुझे आपके चरणोंमें नित्य निवेदन करना है। आप भी इस बातको जानते ही हैं कि मैं असहाय होकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। बस, आपसे और कुछ नहीं माँगता, केवल इतनी ही प्रार्थना है कि आप मुझ दीनको अपनी अकारण करुणाका कणमात्र प्रदानकर सदाके लिये अपनी शरणमें ले लें।

ब्रह्मोपेन्द्रप्रभृतिरपि चेत् स्वेप्सितप्रार्थनाय
स्वामिन्नग्रे चिरमवसरस्तोषयद्भिः प्रतीक्ष्यः।
द्रागेव त्वां यदिह शरणं प्रार्थये कीटकल्प-
स्तद्विश्वाधीश्वर ! तव कृपामेव विश्वस्य दीने॥

हे स्वामिन् ! हे विश्वेश्वर ! ब्रह्मा और विष्णु-प्रभृति देवतातक जब अपनी किसी प्रार्थनाको लेकर आपके समीप उपस्थित होते हैं तब उन्हें चिरकालतक आपके दर्शनके लिये अवसर ढूँढ़ना पड़ता है। किन्तु मैं एक अधम कीड़ेके समान होते हुए भी आपसे अपनी शरणमें ले लेनेके लिये इस तरह तकाजा कर रहा हूँ जैसे कोई ऋणदाता अपने ऋणीसे कर्ज दिया हुआ रुपया लौटानेका तकाज़ा करता

हो। आपकी मुझ-जैसे असहाय दीनोंपर अहैतुकी कृपाको देखकर ही मुझसे ऐसी अनुचित धृष्टता हो रही है। आशा है, आप मेरी दीन अवस्थाको ध्यानमें रखते हुए मेरे इस अपराधको अवश्य क्षमा करेंगे और मुझे अविलम्ब अपनी शरणमें ले लेंगे ताकि मुझे आपको बारम्बार तंग न करना पड़े। जबतक आप मुझे अपना न लेंगे, तबतक मैं आपको हैरान करता ही रहूँगा। आप कहाँतक मौन साधन किये बैठे रहेंगे? एक-न-एक दिन मेरी बाँह अवश्य पकड़नी होगी। इसलिये अच्छा है कि तुरंत ही यह काम कर डालें, जिससे दोनोंको ही तंग न होना पड़े।

क्षन्तव्यं वा निखिलमपि मे भूतभाविव्यलीकं
दुर्व्यापारप्रवणमथवा शिक्षणीयं मनो मे।
न त्वेवार्त्या निरतिशयया त्वत्पदाब्जं प्रपन्नं
त्वद्विन्यस्ताखिलभरममुं युक्तमीश! प्रहातुम्॥

हे स्वामिन्! या तो आप मेरे भूत एवं भविष्यके सभी अपराधोंको क्षमा कर दीजिये या इस कुमार्गगामी दुष्ट मनको ठीक रास्तेपर लाइये। दोनोंमेंसे एक काम तो करना ही होगा, नहीं तो काम कैसे चलेगा? यह तो हो नहीं सकता कि आप इस घोर दुःखमें मेरा हाथ छोड़ दें, क्योंकि यह कार्य आप-जैसे दयालु स्वामीके लिये उचित नहीं होगा। जिसे आपके चरणोंका ही एकमात्र अवलम्ब है और जिसने अपना सारा भार आपके ऊपर डाल दिया है उसे आप कभी धोखा नहीं देंगे, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

सर्वज्ञस्त्वं निरवधिकृपासागरः पूर्णशक्तिः
कस्मादेनं न गणयसि मामापदब्धौ निमग्नम्।
एकं पापात्मकमपि रुजा सर्वतोऽत्यन्तदीनं
जन्तुं यद्युद्धरसि शिव! कस्तावतातिप्रसङ्गः॥

हे शङ्कर! आप सर्वज्ञ हैं, दयाके अपार समुद्र हैं तथा पूर्ण सामर्थ्यवान् हैं; फिर भी न जाने क्यों मुझे आप इस दुःखसागरसे नहीं उबारते? माना कि मैं पापात्मा हूँ, किन्तु साथ ही दुःखसे अत्यन्त कातर भी हूँ। ऐसी दशामें यदि आप मुझे उबार लें तो इससे आपकी न्यायपरायणता-में कौन-सी बाधा आती है? सभी नियमोंमें अपवाद भी होते हैं। इसलिये यदि मुझे आप अपवादरूप मानकर भी अपनी दयाकी भिक्षा दे दें तो इसमें क्या आपत्ति है? जैसे भी हो, इस बार तो दया करनी ही होगी।

कीटा नागास्तरव इति वा किं न सन्ति स्थलेषु
त्वत्पादाम्भोरुहपरिमलोद्वाहिमन्दानिलेषु।
तेष्वेकं वा सृज पुनरिमं नाथ! दीनार्तिहारि-
न्नातोषं ते मृड! भवमहाङ्गारनद्यां लुठन्तम्॥

हे नाथ! जिन-जिन स्थलोंमें आपके चरण-कमल जाते हैं, उन-उन स्थलोंमें कीड़े-मकोड़े, साँप-बिच्छू अथवा झाड़-झंखाड़ भी तो अवश्य होंगे। यदि और कुछ नहीं, तो उन्हींमेंसे कोई शरीर मुझे दे दें, जिससे उन चरण-कमलोंके सुमधुर गन्धसे सम्पृक्त सुशीतल वायुका सुखकर स्पर्श पाकर मैं अपने शरीर और आत्मा—दोनोंकी तपनको बुझा सकूँ और इस सुतप्त अङ्गारोंसे पूर्ण भवनदीसे छुटकारा पाऊँ। उस योनिमें मुझे आप, जबतक आपकी तबीयत चाहे, रख सकते हैं। उसमें मुझे कोई आपत्ति न होगी, बल्कि जितने अधिक समयतक आप मुझे उस शरीरमें रक्खेंगे, उतना ही अधिक आनन्द मुझे होगा और मैं अपना अहो-भाग्य समझूँगा। क्या मेरी इस प्रार्थनाको भी आप स्वीकार नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे।

अन्तर्बाष्पाकुलितनयनानन्तरङ्गानपश्य-
न्नग्रे घोषं रुदितबहुलं कातराणामशृण्वन्।
अप्युत्क्रान्तिश्रममगणयन्नन्तकाले कपर्दि-
न्नङ्घ्रिद्वन्द्वे तव निविशतामन्तरात्मन्ममात्मा॥

हे कपर्दिन्! हे मेरे अन्तरात्मा! अपने अन्तकालका चित्र इस समय मेरी इन आँखोंके सामने आ रहा है। मैं देख रहा हूँ कि मेरे आत्मीय जन डबडबाये हुए कातर नेत्रोंसे मानो मेरी ओर निहार रहे हैं, चारों ओर स्त्रियाँ और बच्चे बिलला रहे हैं और कोई-कोई उनमेंसे डाढ़ मार-कर रो रहे हैं। उस हृदयविदारक दृश्यकी कल्पना करनेपर शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सोचता हूँ, उस समय मेरी खुदकी क्या दशा होगी। बस, उस समय तो ऐसी कृपा हो कि कुटुम्बियोंके बाष्पाकुलित नेत्र तो दिखायी न पड़ें, स्त्रियों और बच्चोंकी क्रन्दन-ध्वनि सुनायी न दे, प्राणोत्सर्गकी व्यथासे विचलित न होऊँ और चित्त आपके चरणयुगलके चिन्तनमें लीन हो जाय। आप यदि चाहें तो ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं, आपके लिये कुछ भी दुःसाध्य नहीं है।

स्वप्ने वापि स्वरसविकसद्दिव्यपङ्केरुहाभं
पश्येयं तत्तव पशुपते! पादयुग्मं कदाचित्।

क्वाहं पापः क्व तव चरणालोकभाग्यं तथापि
पथ्याशां मे घटयति पुनर्विश्रुता तेऽनुकम्पा ॥

हे पशुपते ! क्या आपके खिले हुए पङ्कजके समान चरणयुगलको स्वप्नमें भी देखनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा ? जब अपने आचरणोंकी ओर देखता हूँ तब तो मैं निराशासे घिर जाता हूँ, किन्तु आपकी अपार दयाका स्मरण कर मनमें फिरसे आशाका सञ्चार होने लगता है । उस समय मैं अपने मनको आश्वासन देता हूँ और कहता हूँ, तू नीच है तो क्या हुआ ? तेरा स्वामी तो परमकृपालु है । वह तुझपर अवश्य कृपा करेगा, निश्चिन्त रह ।

भिक्षावृत्तिं चर पितृवने भूतसङ्घैर्भ्रमेदं
विज्ञातं ते चरितमखिलं विप्रलिप्सोः कपालिन् ।
आवैकुण्ठद्रुहिणमखिलप्राणिनामीश्वरस्त्वं
नाथ ! स्वप्नेऽप्यहमिह न ते पादपद्मं त्यजामि ॥

हे कपालिन् ! हे नाथ ! आप चाहे भीख माँगनेका नाट्य करें अथवा भूतोंके दलके साथ श्मशानोंमें गश्त लगावें; कुछ भी करें, आपका ऐश्वर्य मुझसे छिपा नहीं रह सकता । मैं जान गया हूँ कि आप ब्रह्मा, विष्णुपर्यन्त समस्त चराचर जगत्के स्वामी हैं; इसलिये आप मेरी कितनी ही प्रवञ्चना करें, मैं स्वप्नमें भी आपके सुरमुनिदुर्लभ चरण-कमलका परित्याग नहीं कर सकता, अब तो आपका ही होकर रहूँगा ।

न किञ्चिन्मे नेतः ! समभिलषणीयं त्रिभुवने
सुखं वा दुःखं वा मम भवतु यद्भावि भगवन् ।
समुन्मीलत्पाथोरुहकुहरसौभाग्यमुषि ते
पदद्वन्द्वे चेतः परिचयमुपेयान्मम सदा ॥

हे नाथ ! हे भगवन् ! मुझे त्रिभुवनकी किसी भी वस्तुकी अभिलाषा नहीं है और न मुझे सुख-दुःखकी ही परवा है, जो कुछ प्रारब्धमें बदा है सो होता रहेगा । बस, मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि आपके खिले हुए पङ्कजके समान चरणयुगलमें मेरा चित्तरूपी चञ्चरीक सदा चिहुँटा रहे, कभी उससे पृथक् न हो ।

कर्मज्ञानप्रचयमखिलं दुष्करं नाथ पश्यन्
पापासक्तं हृदयमपि चापारयन् सन्निरोद्धुम् ।
संसाराख्ये पुरहर ! महत्यन्धकूपे विषीदन्
हस्तालम्बप्रपतनमिदं प्राप्य ते निर्भयोऽस्मि ॥

धन्य प्रभो ! धन्य भक्तवत्सल ! आखिर आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ही ली और मुझे अपने वरद हस्तका अवलम्ब दे ही दिया । अब क्या है ? अब तो बाजी मार ली । अब मुझे किस बातका डर है ? अबतक मुझे यह डर था कि न तो मैं ज्ञानमार्गका ही अधिकारी हूँ और न कर्ममार्गका ही अनुसरण कर सकता हूँ, मुझे दोनों ही पहाड़-से मालूम होते हैं । इधर मेरा मन पापोंमें गर्क हो रहा है, उसे पापकी ओर जानेसे मैं किसी प्रकार रोक ही नहीं सकता । वह इतना बेकाबू हो गया है । ऐसी दशामें इस संसाररूपी अन्धकूपसे मेरा निस्तार कैसे होगा, यही चिन्ता मुझे बारंबार सताती थी । किन्तु अब आपका सहारा पाकर मैं निश्चिन्त हो गया हूँ । अब मेरा कोई कुछ भी नहीं कर सकता ।

कुछ भी स्थिर नहीं है

मोह छाँड मन-मीत ! प्रीतिसों चन्द्रचूड भज ।
सुरसरिताके तीर धीर धर दृढ़ आसन सज ॥
शम, दम, भोग-विराग त्याग, तपको तू अनुसरि ।
वृथा विषय-बकवाद स्वाद सब ही तू परिहरि ॥
थिर नहिं तरंग बुद्बुद तडित अगिनशिखा पन्नग सरित ।
त्यों ही तन जोबन धन अथिर, चल दलदल-केसे चरित ? ॥

शिवाष्टकम्

(लेखक—आचार्य पं० श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी)

शीतांशुशुभ्रकलया कलितोत्तमाङ्गं
ध्यानस्थितं धरणिभृत्तनयार्चितं तम् ।
कालानलोपमहलाहलकृष्णकण्ठं
श्रीशङ्करं कलिमलापहरं नमामि ॥

चारु चन्द्रमाकी शुभ्रकलासे आपका शिरोभाग शोभित है। पर्वतराज हिमालयकी कन्या पार्वतीजी स्वयं ही आपकी पूजा-अर्चा करती हैं। संसारको दग्ध हो जानेसे बचानेके लिये, कालानलके समान महा भीषण हलाहल पी जानेसे आपका कण्ठ काला हो गया है। इस कलिकालका मल अपहरण करनेमें आप अपना सानी नहीं रखते। ऐसे ध्यानावस्थित आप शङ्करको मेरा प्रणाम।

गायन्ति यस्य चरितानि महाद्भुतानि
पद्मोद्भवोद्भवमुखाः सततं मुनीन्द्राः ।
ध्यायन्ति यं यमिनमिन्दुकलावतंसं
सन्तः समाधिनिरतास्तमहं नमामि ॥

आपके अत्यन्त अद्भुत चरितोंका गान कोई ऐसे-वैसे नहीं, नारदादि बड़े-बड़े महामुनितक किया करते हैं। साधु-शिरोमणि योगीश्वर भी, समाधि लगाकर आपहीका ध्यान करते रहते हैं। ऐसे आप चन्द्रशेखरको मेरा पुनरपि प्रणाम।

त्रैलोक्यमेतदखिलं ससुरासुरञ्च
भस्मीभवेद्यदि न यो दययार्द्रदेहः ।
पीत्वाऽहरद्गरलमाशु भयं तदुत्थं
विश्वावनैकनिरताय नमोऽस्तु तस्मै ॥

आप बड़े ही दयालु हैं। आपकी दया सीमारहित है। उसका प्रमाण लीजिये। समुद्र-मन्थनसे हलाहल निकलनेपर उसकी आग असह्य हो गयी। उस समय और किसीसे कुछ भी करते-धरते न बना। जब आपने देखा कि सुरासुरोंसे पूर्ण त्रैलोक्यका नाश होना ही चाहता है तब उस कालकूटका पान स्वयं ही करके तीनों लोकोंको जल जानेसे बचा लिया। संसारकी रक्षाका इतना खयाल रखनेवाले आपके पादपद्मों-पर मैं अपना सिर रखता हूँ।

पापप्रसाधनरता दितिजा अपीन्द्रं
सद्यो विजित्य सुरधामधराधिपत्यम् ।
यस्य प्रसादलवलेशवशादवापु-
स्तस्मै ममास्तु विनतिः परमेश्वराय ॥

लङ्केश्वरादि राक्षस पुण्यात्मा तो थे नहीं। वे तो महा उत्पातकारी और पापिष्ठ थे। परन्तु आपकी सेवा-शुश्रूषाकी बदौलत वही महेन्द्रतकको जीतकर, देवलोकके अधीश्वर बन बैठे। अतएव आपसे बढ़कर परमैश्वर्यशाली मुझे तो और कोई देवता नहीं दीख पड़ता, मेरी विनीत प्रणति स्वीकार कीजिये।

नो शक्यमुग्रतपसापि युगान्तरेण
प्राप्तुं यदन्यसुरपुङ्गवतस्तदेव ।
भक्त्या सकृत्प्रणमनेन सदा ददाति
यो नौमि नम्रशिरसा च तमाशुतोषम् ॥

युग-युगान्त-पर्यन्त तपस्या करनेपर भी जो फलप्राप्ति भक्तोंको अन्य सुरपुङ्गवोंसे भी नहीं हो सकती, वही आपको भक्तिभावपूर्वक प्रणाममात्र करनेसे आपके सच्चे भक्तोंको सुलभ हो जाती है। बात यह कि आप आशुतोष हैं—थोड़ी ही सेवासे प्रसन्न हो जाते हैं। मैं आपके सामने अपना सिर झुकाता हूँ।

भूतिप्रियोऽपि वितरत्यनिशं विभूतिं
भक्ताय यः फणिगणानपि धारयन् सन् ।
हन्ति प्रचण्डभवभीमभुजङ्गभीतिं
तस्मै नमोऽस्तु सततं मम शङ्कराय ॥

आपकी महिमा अपरंपार है। वह साधारणजनोंकी समझमें आ ही नहीं सकती। देखिये न, इधर तो आप स्वयं ही विभूति-प्रिय (विभूति=भस्म) हैं, उधर वही अपनी प्यारी वस्तु विभूति अपने भक्तोंको रोज ही लुटाया करते हैं। और देखिये, स्वयं तो आप महाभयङ्कर नागोंके कण्ठे और मालाएँ आदि धारण करते हैं; उधर आप ही जन्म-मरणरूपी भीम भुजङ्गके भयसे अपने सेवकोंकी रक्षा करते हैं। परम कारुणिक और कल्याणकर्त्ता आपको मेरा नमस्कार।

येषां भयेन विबुधा रजनीचराणां
नो तस्थुर्हिममहीध्रगुहागृहाणि ।

हत्वा ददौ गिरिश तानपि शैवधाम
त्वत्तः परोऽस्ति परमेश्वर को दयालुः ॥

हे गिरिश ! जरा उन रजनीचरोंका तो स्मरण कीजिये। वे लोग इतने प्रबल पराक्रमी हो गये थे कि अपने विपक्षी देवोंका तरह-तरहसे उत्पीडन करने लगे थे—यहाँतक कि उनके भयसे देवगण हिमालयकी कन्दराओंमें छिपे पड़े रहते थे। ऐसे अत्याचारी और पापी राक्षसोंको भी मारकर आपने पुण्यलोकको भेज दिया। बताइये, क्या कोई आपसे भी अधिक दयालु देवता कहीं है? आप यथार्थ ही परमेश्वर हैं।

अर्चा कृता न तव नाम हर स्मृतञ्च
नो भक्तवत्सल कृतं तव किञ्चिदन्यत्।
वीक्ष्य स्वपादकमलोपनतं तथापि
मां पाहि कारुणिकमौलिमणे महेश ॥

मैं पापी आपसे किस मुँहसे कुछ याचना करूँ। मैंने कभी भूलकर भी आपका अर्चन—शिवार्चन नहीं किया; कभी भूलसे भी आपका नाम नहीं लिया; कभी भूलकर भी आपकी और कोई सेवा नहीं की। फिर भी सिर्फ यह देखकर कि यह अधम आपके चरणोंपर पड़ा हुआ नाक रगड़ रहा है, आप, आशा है, मुझपर भी कृपा करके मेरा उद्धार करेंगे। भरोसा तो मुझे आपसे ऐसा ही है; क्योंकि आप आशुतोष होकर परम भक्तवत्सल भी हैं।

महावीरप्रसादो यो द्विवेदिकुलसम्भवः।
स भक्त्या परया युक्तश्चकारेदं शिवाष्टकम् ॥

महेश

(श्री 'आर्जव'*)

स्वयं निर्विकार रहकर इस विकारमय जगत्की व्यवस्था करनेवाले उस गगनभेदी पर्वतमालाके उत्तुङ्ग शृङ्गोंपर क्षण-क्षणमें रूप बदलनेवाली आलोक-रश्मियाँ विचित्र वर्णविभ्रमको वक्षःस्थलमें वहन करती हुई दिशा-विदिशाओंमें विकीर्ण हो रही हैं। तुम्हारे उस निर्मल ज्योतिःस्वरूप धामके अनन्त विस्तारमें चिन्ता और शोकके पद-चिह्न कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते।

स्वयं अरूप होते हुए भी जगत्के विविध रूपोंको नया रूप देनेवाले! तुम समस्त बन्धनोंसे निर्मुक्त होनेपर भी नाम-रूपात्मक भवबन्धनको तोड़नेवाले हो। तुम जीवोंके अन्तःकरणको कलुषित करनेवाले वासनारूपी मलोंको धोनेवाले हो और काम-क्रोधादि उद्दाम विकारोंके प्रचण्ड झञ्झावातसे उनके हृदयरूप नौकाकी सतत रक्षा करते हो। सारे पार्थिव सुख तुम्हारे चरणोंपर न्यौछावर हैं। तुम्हारे अभयङ्कर चरणोंकी मुक्त पुरुष भी शरण लेते हैं।

तुम सङ्कल्परहित होते हुए भी प्रत्येक सङ्कल्पको जानते हो। तुम अनन्त आकाशकी भाँति अविचल एवं स्थिर हो, निरीह एवं निश्चेष्ट होते हुए भी कण-कणमें व्याप्त हो। तुम्हारे चरणोंपर तुम्हारे भक्तजन प्रेमाश्रुओंसे प्रक्षालित विल्वपत्रोंको चढ़ाते हैं, उस समय तुम्हारे वदनारविन्दपर करुणाकी आभा झलकने लगती है। †

* आप एक अंगरेज साधक हैं। † अंगरेजी कविताका अनुवाद।

शिव

(डा० एच० डब्लू० बी० मॉरेनो)

हिमाच्छादित कैलासके उत्तुङ्ग शृङ्गपर जगदम्बा पार्वतीके साथ आप समाधिमग्न होकर विराजमान हैं। भूमण्डलमें चाहे जितनी उथल-पुथल मच जाय; यही क्यों, अखिल ब्रह्माण्डका कार्यक्रम चाहे अस्तव्यस्त हो जाय; परन्तु आपकी समाधि किसी प्रकार भी नहीं टूटती। बेचारे ब्रह्माजी ब्रह्माण्डोंको रचते-रचते थक जाते हैं और विष्णु उनके पालनमें अथक परिश्रम करते हैं; किन्तु आप उनके इस अविराम परिश्रमका तनिक भी विचार न कर अपने भ्रूभङ्गमात्रसे ही, केवल अपने तीसरे नेत्रको खोल देनेसे ही इस सारे खेलको क्षणभरमें चौपट कर देते हैं। क्योंकि आप इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि प्रकृतिकी अन्धतमिस्राके विलीन हो जानेपर नवनवोन्मेषशालिनी आशारूप उषाका उदय होता है। बीजसे अङ्कुर, अङ्कुरसे पल्लव, पल्लवसे प्रसून और प्रसूनसे फल—इसप्रकार सारी सृष्टिका क्रम फिरसे जारी हो जाता है और आप मस्त होकर चुपचाप यह सारा तमाशा देखते रहते हैं। हे देवाधिदेव महादेव! आपके चरणोंमें मेरी यही प्रार्थना है कि जिसप्रकार जगत्के जीर्ण-शीर्ण हो जानेपर आप उसका संहारकर उसे नवीन रूप दे डालते हैं, उसी प्रकार त्रिविध तापोंसे जर्जरित मेरे अन्तःकरणके त्रिविध मलको जलाकर उसे सुवर्णकी भाँति परिष्कृत, शुद्ध बना दीजिये। *

* अंगरेजी कविताका अनुवाद।

श्रीत्रिमूर्त्युपासनातत्त्व-रहस्य-मीमांसा

(लेखक—श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर श्रीजगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य स्वामी श्री ११०८ श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज)

करधात्रीकृतनतजनकरधात्रीकृतपरात्मपरविद्याम् । धात्रीधात्रीमेकामनाथधात्रीं नमामि जगदम्बाम् ॥
धात्री पात्री हर्त्री वेत्त्री चाम्ब स्वमस्य लोकस्य । दात्री सकलार्थानां पात्रीकुरु मां स्वदीयकरुणायाः ॥
धात्रीधरोज्जन्मधरासपत्नीधात्रीनिजाख्यत्रिविधस्वशक्तिम् । पद्मारिरेखाधरपद्मनेत्रपद्मासनाख्याजुषमीशमीडे ॥

हमने कल्याणके श्रीरामायणाङ्क, श्रीकृष्णाङ्क और श्रीईश्वराङ्कमें प्रकाशित लेखोंमें भगवान् श्रीरामचन्द्र और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमाका वर्णन करते हुए केवल अपने श्रुति-स्मृति-पुराणादि प्रमाणोंसे ही नहीं, बल्कि बाइबल आदि ग्रन्थों तथा बड़े-बड़े पाश्चात्य तत्त्वशास्त्रियों (Philosophers) और विज्ञानशास्त्रियों (Scientists) के ग्रन्थोंके जबरदस्त आधारपर भी हमारे सनातन-धर्मके इस परमसिद्धान्तका विस्तृत निरूपण किया था कि आत्मा यथार्थमें एक ही है; परमात्मा अखण्ड, अपरिच्छिन्न, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त सच्चिदानन्दघन-स्वरूप है; ईश्वरकी उपासना सगुणरूपसे ही हो सकती है, निर्गुणसे नहीं, इत्यादि-इत्यादि ।

अब आगे बढ़ते हुए 'कल्याण' के इस श्रीशिवाङ्कमें हमें निम्नलिखित विषयोंका दिग्दर्शनरूप विचार करना है कि उपासनाकाण्डमें जिन सगुण मूर्तियोंकी उपासना विहित है उनका वास्तविक आध्यात्मिक तत्त्व-रहस्य क्या है, उनका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है और खासकर विष्णूपासक कहलानेवाले तथा शिवोपासक कहलानेवाले लोग जो आपसमें गाली-गलौज करते हुए परस्पर निन्दा-तिरस्कार, द्वेषादिका भाव प्रकट किया करते हैं, वह कहाँतक हमारे शास्त्रोंके आधारपर है, इत्यादि ।

आश्चर्य और खेदकी बात

जिन श्रीहरि और श्रीहरके बारेमें आपसमें इतनी लड़ाई होती है, उनके परस्पर-सम्बन्धके विषयमें शास्त्रोंसे ऐसे प्रमाण खूब मिलते हैं कि उनमें परस्पर अत्यन्त ही नहीं, बल्कि अनुपम तथा अद्वितीय प्रेम और आदरका सम्बन्ध है । बड़े ही आश्चर्य और खेदकी बात है कि इतनेपर भी उनके अनुयायी, भक्त और उपासक कहलानेवालोंमें पारस्परिक द्वेषकी तीव्र प्रगतिका वेग यहाँतक पहुँच गया है कि कोई भगवान् श्रीविष्णुकी भक्ति या स्मरण चाहे न करें, पर भगवान् श्रीशङ्करकी निन्दा करनेसे ही वैष्णव बन जाते हैं । इसी प्रकार भगवान् श्रीशिवकी भक्ति या स्मरणतक न करनेवाले भी भगवान् श्रीनारायणकी निन्दा करनेसे ही शैव बन जाते हैं ।

विचारकी शैली

क्योंकि राग-द्वेष-रहित तथा निष्पक्षपात-बुद्धिके आधारपर शास्त्रके प्रमाणोंपर शान्तिपूर्वक विचार करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है, इसी खयालसे यथार्थ सिद्धान्तके निश्चयके लिये अत्यन्त उपयोगी कुछ खास-खास प्रमाणोंका इस लेखमें उल्लेख किया जाता है ।

परमाद्वैतकी दृष्टिसे विचार

श्रुति, स्मृति, श्रीमद्भागवतादि पुराण, बाइबल तथा पाश्चात्य तत्त्वशास्त्रियों और विज्ञानशास्त्रियोंके विचारोंके अटल आधारपर 'ईश्वराङ्क' में हमने जिस परम अद्वैत-वेदान्त-सिद्धान्तको सिद्ध किया था, उसके अनुसार तो यह स्वतः और निर्विवाद सिद्ध है कि श्रीविष्णु, श्रीशिव आदि-सम्बन्धी कोई भी विवाद शास्त्रीय नहीं हो सकता, क्योंकि हमारे सनातन-धर्मशास्त्रग्रन्थोंका बताया हुआ सिद्धान्त तो यही है कि ये सब मूर्तियाँ उसी एक परमात्माकी हैं । भक्तोंके श्रद्धा, भक्ति और प्रेमके साथ किये हुए एक खण्ड, परिच्छिन्न मूर्तिके ध्यानके परिणामरूप जो अखण्ड अपरिच्छिन्न, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी—

भक्तचित्तानुरोधेन धत्ते नानाकृतीः स्वयम् ॥
अद्वैतानन्दरूपो यः......................

—अर्थात् स्वयं एक और केवल आनन्दस्वरूप होते हुए भी जो भक्तोंकी चित्तवृत्तिके अनुसार अनेक प्रकारकी आकृतियोंको धारण करता है वही परमेश्वर—

धन्यैश्चिरादपि यथारुचि गृह्यमाणः
यः प्रस्फुरत्यविरतं परिपूर्णरूपः ।

—अर्थात् भक्तोंसे अपनी-अपनी रुचिके अनुसार एक-एक परिच्छिन्न मूर्तिके रूपसे एकाग्रताके साथ ध्यान किये

जानेपर अपने अखण्ड और परिपूर्णरूपसे साक्षात् दर्शन देता है । अतः हमारे श्रुति-स्मृति-पुराणादिप्रतिपादित सनातन अद्वैत-वेदान्त-सिद्धान्तकी दृष्टिसे तो शिव, विष्णु आदिका झगड़ा सर्वथा निराधार तथा भयङ्कर अविवेकका स्पष्ट चिह्न है। अब देखना है कि पारमार्थिक अद्वैत-सिद्धान्तकी दृष्टिके अतिरिक्त अन्यान्य दृष्टियोंसे इस सम्बन्धमें यथार्थ तत्त्व क्या है ?

नाम-विचार

श्रीविष्णु और श्रीशिवके सबसे प्रसिद्ध नाम 'हरि' और 'हर' हैं । इन दोनोंका संस्कृत-भाषाकी मूल व्युत्पत्तिसे एक ही अर्थ होता है—'चुरानेवाला' । पाण्डवगीतामें कहा है—

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम् ।
अनेकजन्मार्जितपापपुञ्जं
हरत्यशेषं स्मरणेन पुंसाम् ॥

अर्थात् भूमण्डलभरके मनुष्योंके बीचमें नारायण नामका चोर बहुत प्रसिद्ध है जो मनुष्यके हजारों जन्मोंके कमाये हुए पापसञ्चयको स्मरणमात्रसे एकदम और निःशेषरूपसे चुरा लेता है । श्रीगोपालसहस्रनाममें भगवान् श्रीकृष्णको चोर-शिखामणि बतलाया गया है । इसी प्रकारसे यजुर्वेदके श्रीरुद्राध्यायमें तो भगवान् श्रीशिवको 'स्तेनानां पतिः' तथा 'तस्कराणां पतिः' कहा है । यह तो हुई 'हरि' और 'हर' शब्दोंके अर्थकी एकताकी बात ।

इसी तरह श्रीकाशीजीमें भगवान् श्रीशिवजीका जो प्रसिद्ध नाम श्रीविश्वनाथ है और पुरीधाममें श्रीकृष्णका जो प्रसिद्ध नाम श्रीजगन्नाथ है इन दोनोंका भी 'दुनियाका मालिक'—यही एक अर्थ है ।

शिवसहस्रनाम और विष्णुसहस्रनाम

हमें पाठकोंकी दृष्टिको अब इस ओर आकर्षित करना है कि श्रीशिवसहस्रनाम और श्रीविष्णुसहस्रनाम, जिनका शैव और वैष्णव नित्य पाठ किया करते हैं, दोनों एक ही भगवान् श्रीवेदव्यासके बनाये हुए एक ही महाभारतके, एक ही अनुशासनपर्वके अन्तर्गत हैं और इन दोनों सहस्रनामोंके उपदेशके प्रकरण अति सुन्दर हैं ।

प्रथम तो श्रीशिवसहस्रनामका प्रकरण आता है कि कुरुक्षेत्रके युद्धके बाद शरशय्यामें लेटे हुए पितामह श्रीभीष्मजीसे राजा युधिष्ठिरने पूछा कि 'सब देवताओंमें सर्वथा श्रेष्ठ कौन हैं जिनकी उपासनासे ऐहिक, पारलौकिक तथा पारमार्थिक कल्याण प्राप्त हो सकता है ?' इसपर श्रीभीष्मजीने कहा कि 'मैं इस प्रश्नका उत्तर देनेका अधिकारी नहीं हूँ । भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं यहीं विराजमान हैं । उन्हींसे पूछो ।' तदनन्तर राजा युधिष्ठिरद्वारा पूछे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने यह कहकर कि—'भगवान् श्रीशिवजी ही सब देवताओंमें सर्वथा श्रेष्ठ और पूज्य हैं । मैंने भी उन्हींकी घोर तपस्यापूर्वक उपासना करके अमुक-अमुक महान् वरदान आदि लाभोंको प्राप्त किया था'—भगवान् शङ्करकी खूब महिमा गायी है और अन्तमें पाण्डवोंको श्रीशिवसहस्रनामका उपदेशकर अनुगृहीत किया है ।

इसी महाभारतके इसी अनुशासनपर्वमें कुछ आगे चलकर दूसरा प्रसङ्ग श्रीविष्णुसहस्रनामके बारेमें यह आता है कि भगवती जगन्माता श्रीपार्वतीजीने भगवान् श्रीशिवजीसे पूछा कि 'सब देवताओंमें सर्वथा श्रेष्ठ कौन हैं जिनकी उपासनासे ऐहिक, पारलौकिक तथा पारमार्थिक श्रेय प्राप्त हो सकता है ?' इसके उत्तरमें भगवान् श्रीशङ्करने स्वयं यह कहकर कि 'सब देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णु ही हैं, मैंने भी इन्हींकी उपासनासे अमुक-अमुक महान् वरदान आदि लाभोंको प्राप्त किया है,' और श्रीनारायणकी महिमाका खूब बखान कर अन्तमें श्रीपार्वतीजीको श्रीविष्णुसहस्रनामका उपदेश दिया है ।

इसप्रकारके और भी बहुत-से प्रकरण श्रीमन्महाभारत तथा पुराणोंमें आते हैं, जिनसे यह निःसन्देहरूपसे सिद्ध होता है कि श्रीहरि और श्रीहर आपसमें अपार पूज्यत्व-बुद्धि और प्रेमका सम्बन्ध रखते हैं ।

अन्यान्य प्रकरण

श्रीमद्रामायण तथा श्रीमन्महाभारतरूपी इतिहासों और सब पुराणोंसे सिर्फ इतना ही सिद्ध नहीं होता कि रावण, बाणासुर आदिने ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये; महर्षि अत्रि, गर्गाचार्य आदिने पुत्रकी प्राप्तिके लिये; विश्वामित्र, अश्वत्थामा आदिने अस्त्र-शस्त्रादिकी प्राप्तिके लिये और अन्यान्य असंख्य स्त्री-पुरुषोंने अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न कामनाओंकी प्राप्तिके लिये महेश्वर श्रीशिवजीकी उपासना की थी, बल्कि यह भी

स्पष्ट है कि भगवान् पुण्डरीकाक्ष श्रीमहाविष्णुने भी घोर तपस्यामें रत होकर भगवान् महादेव श्रीशङ्करजीकी कमलोंसे पूजा की और सहस्रनामार्चन करनेके समय एक पद्मके घट जानेपर अपने एक नेत्ररूपी कमलको निकालकर शिवजीके अर्पण कर दिया और श्रीशङ्करको प्रसन्न करके उनसे सर्वशत्रुदमन करनेवाले सुदर्शनचक्रको (जो भगवान् श्रीनारायणका जगत्प्रसिद्ध और खास आयुध है) प्राप्त किया। भगवान् श्रीनारायणके बड़े जबरदस्त अवतार श्रीपरशुरामजीने भी अस्त्र-शस्त्र-प्राप्तिके लिये भगवान् श्रीशङ्करकी आराधना की थी। उन्हीं भगवान् श्रीहरिके और भी पराक्रमी अवतार श्रीरामचन्द्रजीने भी रावणको परास्त करने तथा भगवती जगन्माता श्रीसीतादेवीकी पुनः प्राप्तिके लिये दक्षिण-सागरके तटपर सेतुबन्धमें श्रीरामेश्वर महादेवकी स्थापना तथा उपासना की थी और रावणसंहारके बाद ब्रह्महत्यादोषसे मुक्त होनेके लिये उसी श्रीरामेश्वर महादेवकी आराधना की थी। उन्हीं भगवान् श्रीमहाविष्णुके पूर्णावतार आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र परमात्माने भी तो अपने शरणागत परमभक्त, शिष्यशिरोमणि और खास परम प्रेमपात्र अर्जुनको ही कुरुक्षेत्रके युद्धमें सबसे अत्यन्त उपयोगी पाशुपतास्त्रके लिये श्रीशङ्करकी उपासनामें नहीं लगाया, बल्कि स्वयं भी भगवती श्रीरुक्मिणीजीके उदरसे पुत्र (श्रीप्रद्युम्न) को तथा भगवती श्रीजाम्बवतीके उदरसे पुत्र (श्रीसाम्ब) को प्राप्त करनेके लिये हिमालय आदि भयङ्कर पर्वतोंमें घोर तपस्या कर बिल्वेश्वर महादेव आदिकी स्थापना तथा आराधना करके पूर्वोक्त रीतिसे पाण्डवोंको भगवान् श्रीशिवजीकी महिमा बताकर श्रीशिवसहस्रनामका उपदेश दिया था।

इसी प्रकार ऐसे भी बहुत-से प्रसङ्ग हैं जिनमें भगवान् श्रीशङ्करजी अपनेको श्रीराम-भक्त बताते हुए कहते हैं—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

खास चमत्कारकी बात

इन प्रसङ्गों और प्रकरणोंके बारेमें खास चमत्कारकी बात तो यह है कि श्रीविष्णु-महिमा बतानेवाले खास-खास प्रकरण श्रीशिवप्रधान पुराणोंमें और श्रीशिव-महिमा बतानेवाले खास-खास प्रसङ्ग श्रीविष्णुप्रधान पुराणोंमें आते हैं। उदाहरणतः स्कन्दपुराणान्तर्गत काशी-खण्ड आदि शिवप्रधान ग्रन्थोंसे पता लगता है कि श्रीशिवजी श्रीराम-भक्त हैं और श्रीमद्भागवतादि विष्णुप्रधान ग्रन्थोंसे सिद्ध होता है कि श्रीनारायण श्रीशिव-भक्त हैं, इत्यादि।

अतः यह भी शिकायत की नहीं जा सकती कि वैष्णवों और शैवोंने अपने-अपने घरमें बैठकर अपनी-अपनी पुस्तकोंमें अपने-अपने इष्टदेवकी मनमानी महिमा गायी है। इसलिये हमारी समझमें नहीं आता कि अपनेको श्रीहरि, श्रीपरशुराम, श्रीरामचन्द्र या श्रीकृष्णचन्द्र आदिके भक्त बतानेवाले 'वैष्णव' नामधारी महाशय अपने उसी पूज्य इष्टदेवके—परमपूज्य भगवान् श्रीशङ्करके द्वेषी या निन्दक कैसे बन सकते हैं और अपनेको श्रीशिवजीके भक्त बतानेवाले 'शैव' नामधारी महाशय अपने उन्हीं पूज्य इष्टदेवके—परमपूज्य भगवान् श्रीनारायणके द्वेषी या निन्दक कैसे बन सकते हैं?

श्रीमद्भागवत

अब इस विचित्र दृश्यको देखना है कि जो श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीविष्णुकी महिमा बतानेके लिये ही लिखा हुआ खास पुराण है, अतएव वैष्णवोंके नित्यपाठका खास ग्रन्थ है, उसमें भी भगवान् श्रीशिवजीकी ऐसी अद्भुत स्तुतियाँ आती हैं जिनसे बढ़कर किसीकी कोई स्तुति हो ही नहीं सकती। न केवल भगवती श्रीदाक्षायणीजी, भगवती श्रीपार्वतीजी, श्रीदितिजी, महर्षि श्रीकश्यपजी, श्रीब्रह्माजी, श्रीसूतजी, महर्षि श्रीमैत्रेयजी और ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजीने भगवान् श्रीशङ्करकी श्रीमद्भागवतमें स्तुतियाँ की हैं, बल्कि भगवान् श्रीमहाविष्णुने भी स्वयं अपने श्रीमुखसे श्रीशिवजीकी बड़ी स्तुतियाँ की हैं। इनमेंसे यहाँ कुछ दृष्टान्त दिये जाते हैं, जिनसे रागद्वेषरहित और निष्पक्षपात जिज्ञासुओंको पता लग सकता है कि श्रीविष्णुप्रधान श्रीमद्भागवतमें भी श्रीशङ्करकी कितनी और किस-किस प्रकारकी स्तुतियाँ हैं।

श्रीदाक्षायणीका प्रकरण

श्रीमद्भागवतके चौथे स्कन्धमें भगवती श्रीदाक्षायणी कहती हैं—

'जिसके दो अक्षरवाले (शिव) नामका किसी आकस्मिक प्रकरणसे उच्चारण करनेवाला आदमी समस्त पापोंसे तुरन्त मुक्त होता है, जिसकी कीर्ति पवित्र है और जिसकी आज्ञाका उल्लङ्घन कदापि नहीं हो सकता ऐसे (श्रीशङ्कर) को……।'

'परब्रह्मानन्दरूपी रसके आस्वादनार्थ महात्माओंके मनरूपी भ्रमर जिनके चरणकमलोंकी सेवामें रहा करते हैं और जो अपने आश्रितोंकी सारी इच्छाओंको पूरा किया करते हैं ऐसे (श्रीशङ्कर) को······।'

'ब्रह्मादि देवता भी उन (श्रीशङ्कर) के श्रीचरणोंके प्रसाद (रजकण आदिको) अपने सिरपर धारण करते हैं।'*

श्रीपार्वतीका प्रसङ्ग

—एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं
जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम्।
(श्रीमद्भा० ६। १७। १३)

श्रीपार्वतीजी कहती हैं कि 'भगवान् श्रीशङ्कर जगद्गुरु हैं और मङ्गलशिरोमणि हैं। उनके चरणोंका ब्रह्माजी, भृगु, नारदादि महर्षिगण, सनकादि कुमारमण्डली, महर्षि कपिल, मनुजी आदि भी ध्यान करते हैं।'

दितिदेवीकृत शिवस्तोत्र

नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे।
शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे॥
(श्रीमद्भा० ३। १४। ३४)

'महादेव श्रीरुद्रको नमस्कार, जो उग्र मूर्ति धारण करके (दुष्टोंको) दण्ड देता है और (सज्जनोंके लिये) मङ्गल-मूर्ति धारण करके शान्त हो जाता है और परब्रह्मलिङ्ग-स्वरूपी है।'

परन्तु इन तीनों प्रकरणोंको तो प्रतिपक्षी यह कहकर उड़ा सकते हैं कि श्रीदाक्षायणी तथा श्रीपार्वतीजी श्रीशङ्करकी पत्नियाँ थीं, इसलिये इन दोनोंने पक्षपात किया होगा और दितिदेवी असुरोंकी माता है, अतः उसकी बातें आदरणीय नहीं हो सकतीं, इत्यादि। अतः अब देखना है कि केवल इन्द्रादि देवताओंके ही नहीं, बल्कि श्रीवामन-रूपी भगवान् श्रीनारायणके भी पिता महर्षि श्रीकश्यपजी क्या कहते हैं।

महर्षि कश्यपजीकी गवाही

श्रीमद्भागवतके तृतीयस्कन्धमें महर्षि श्रीकश्यपजी भी तो कहते हैं कि—

'हम (महर्षि) इतनी तपस्या करनेपर भी जिस अनादि मायारूपी उच्छिष्टका त्याग न कर सकनेके कारण उसकी गुलामीमें रहा करते हैं उसे जिन्हों (श्रीशङ्कर) ने लात मारकर निकाल दिया है। जो स्वजन और परजनका भेद नहीं जानते और जिनका न कोई प्रेमपात्र और न घृणापात्र ही है।'

'जो सज्जनोंकी गति हैं, जिसके बिल्कुल निर्दोष चरित्रका अविद्या-ग्रन्थि-भेदनार्थ उद्युक्त महामनस्वीगण अनुसन्धान किया करते हैं और जिन्होंने सम तथा विषम आदि भेदशून्य होते हुए भी स्वयं पिशाचचर्या की है।'

'जिन आत्मनिष्ठ श्रीशङ्करके चरित्रका वही दुर्भाग्य-शालीलोग उपहास करते हैं जो लक्ष्यको नहीं जानते हैं और जो कुत्तोंका भोजन बननेवाले शरीरको ही आत्मा समझकर वस्त्र, माला, भूषण, अनुलेपनादिसे लालन करते हुए उसकी गुलामीमें रहते हैं।'

'जिनकी बनायी हुई मर्यादाको ब्रह्मादि देवता पालते हैं, जो जगत्की सृष्टि करनेवाले हैं, जिनकी आज्ञाके अनुसार मायाशक्ति भी चलती है, उन सर्वस्वरूपी महाप्रभु भगवान् श्रीशङ्करकी पिशाचचर्या भी एक विडम्बनामात्र है।'*

महर्षि कश्यपजीके किये हुए इस वर्णनसे स्पष्ट हो जाता है कि कम-से-कम उक्त महर्षिके खयालमें तो वही लोग भगवान् श्रीशङ्करकी 'श्मशानवासी', 'प्रमथनाथ' आदि शब्दोंसे निन्दा कर सकते हैं जो अपने शरीरको ही आत्मा समझते हुए उसीके गुलाम बने हुए हैं अर्थात् नास्तिक ही शिव-निन्दक हो सकते हैं।

श्रीब्रह्माजीकी गवाही

श्रीमद्भागवतके चतुर्थस्कन्धमें श्रीब्रह्माजीने भी श्रीशङ्कर-की इसप्रकार स्तुति की है—

जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः।
शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम्॥
(६। ४२)

त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः स्वरूपयोः।
विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा॥
(६। ४३)

* श्रीमद्भागवत-चतुर्थस्कन्ध, अध्याय ४, श्लोक १४-१५-१६ देखिये।

* श्रीमद्भागवत-तृतीयस्कन्ध, अध्याय १४, श्लोक २५, २६, २७, २८ देखिये।

'मैं जानता हूँ कि आप ही वह सर्वव्यापी परब्रह्म हैं जो जगत्के योनि-बीजरूपी प्रकृति और पुरुषके भी परे हैं और जो सारी दुनियाँके नाथ हैं।'

'हे भगवन्! आप ही समस्त रूपसहित प्रकृति और पुरुषकी इस दुनियाँकी उसी प्रकारसे सृष्टि, रक्षण और संहार करते हैं जैसे मकड़ी (अपने भीतरसे तन्तुको बाहर निकालती है, रखती है और पुनः भीतर खींच लेती है)।'

अतः ब्रह्माजीके विचारमें भी भगवान् श्रीशङ्कर जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले सर्वान्तर्यामी परमेश्वर हैं।

सूतजीका वर्णन

अब आगे श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्ध, दशम अध्यायके अन्तर्गत श्रीमार्कण्डेयोपाख्यानमें एक खास प्रसङ्ग उदाहरण-रूपसे उद्धृत किया जाता है, जिसमें श्रीमद्भागवतके सुनानेवाले श्रीसूतजी स्वयं श्रीशौनक महर्षिसे कहते हैं कि—

'समस्त विद्याओंके ईशान (अर्थात् अधिष्ठाता), समस्त जीवोंके ईश्वर (अर्थात् शासक) और सज्जनोंके गतिरूप भगवान् (श्रीशङ्कर) उन (मार्कण्डेय महर्षि) के पास आ पहुँचे।'

'मार्कण्डेयमुनिने आँखें खोलकर देखा कि त्रिलोकीके एकमात्र गुरु भगवान् श्रीरुद्र श्रीपार्वतीजी तथा प्रमथ-गणोंके साथ आये हुए हैं और उनका शिरसे वन्दन किया।'

तदनन्तर कहा कि 'हे प्रभो! हे ईश्वर!! आप आत्मानुभावसे नित्य तृप्त हैं और आपसे इस सारी दुनियाँ-को सब प्रकारके आनन्द मिलते हैं। आज्ञा कीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

'जो सत्त्वरूप, मङ्गलमूर्ति, शान्तस्वरूप और रक्षा करने-वाले हैं तथा जो रजोगुण और तमोगुणको धारण करते हुए भी अघोर (शान्त) हैं, उन आपको मेरा नमस्कार स्वीकार हो।'

'इसप्रकारसे स्तुति किये जानेपर आदिदेव और सज्जनोंके गतिरूप भगवान् (श्रीशङ्कर) ने सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर उन (मार्कण्डेय महर्षि) से कहा—'

'चन्द्रकलाधारी (भगवान् श्रीशङ्कर) की इस-प्रकार धर्मके रहस्योंसे भरी हुई वाणीरूपी अमृतरसायनको पीते-पीते (मार्कण्डेय) ऋषि तृप्त नहीं हुए।'

'दीर्घकालसे विष्णु-मायाके द्वारा भ्रमित और अत्यन्त कर्शित (मार्कण्डेयजी) के सब क्लेशोंका शिवजीके वाणीरूपी अमृतसे नाश हो गया और वे बोलने लगे—...'* इत्यादि।

इस उपाख्यानके कहनेवाले भी वे ही श्रीसूतजी थे जिन्होंने सारे श्रीमद्भागवतकी कथा नैमिषारण्यमें श्री-शौनक महर्षि आदि श्रोताओंको सुनायी थी और दुनियाँमें उसका प्रचार किया था। क्या श्रीदाक्षायणी, श्रीपार्वती, श्रीदितिदेवी आदिके वचनोंके साथ श्रीसूतजीका कहना भी अप्रमाण ही समझा जायगा? ऐसा होनेपर, श्रीमद्भागवतके प्रामाण्यकी ही मूलसे हानि हो जायगी, जो किसी भी सनातनीको कदापि अभीष्ट नहीं हो सकती, क्योंकि यह तो श्रीमद्भागवतके लिये कुठाराघात या आत्महत्याकी बात होगी।

श्रीमैत्रेय महर्षिकृत शिव-वर्णन

अब श्रीमैत्रेय महर्षिकी गवाही लीजिये, जिनका भगवद्भक्तशिखामणि और श्रीमद्भागवतके वक्ता ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजीने स्वयं ज्ञानिशिरोमणि होते हुए भी 'अगाध-बोध' (जिनके ज्ञानकी गहराईका माप ही नहीं हो सकता) आदि शब्दोंसे श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें वर्णन किया है और जिनके विषयमें श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके षोडशाध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णकी विभूतियोंके वर्णन-के प्रसङ्गमें—

त्वं च भागवतेष्वहम्

—इसप्रकारसे भगवान्के श्रीमुखसे 'परमभागवत' शब्दसे वर्णित उद्धवजीने स्वयं कहा है कि भगवान्की खास आज्ञासे महर्षि मैत्रेयजी श्रीयमराजके अवतार, धर्ममूर्ति और बड़े ज्ञानी श्रीविदुरजीको श्रीवराहावतार, श्रीकपिलावतार, पुरञ्जनोपाख्यान आदि बड़े-बड़े ज्ञानयज्ञरूपी उपाख्यानोंसे भरे हुए तृतीय और चतुर्थ स्कन्धोंका उपदेश किया था। ऐसे महामान्य महर्षि मैत्रेयजी भी यही कहते हैं कि—

'सनन्दनादि शान्तिमय महासिद्ध पुरुष तथा कुबेरजी जिस अत्यन्त शान्त मूर्तिवाले (भगवान् श्रीशङ्कर) की उपासना करते थे।'

---

* श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध, दशम अध्यायके क्रमशः श्लोक ८, १३, १४, १५, १६, १७, २५, २६ देखिये।

'जो (श्रीमहादेव) सारे जगत्के अधीश्वर होते हुए विश्वबन्धु होनेके कारण विद्या, तपस्या और योगके मार्गपर आरूढ़ होकर जगद्वात्सल्यसे जगत्का कल्याण करते रहते हैं ।'

'जो (भगवान् श्रीशिव) तपस्वियोंके अभीष्ट चिह्न–भस्म, दण्ड, जटा और अजिनको धारण करते हैं और अपने सन्ध्याकालीन मेघकी कान्तिवाले शरीरपर चन्द्रमाकी कला धारण करते हैं ।'

'जो (भगवान् श्रीशङ्कर) दर्भासनपर विराजमान, प्रश्नकर्ता श्रीनारदजी और सुननेके लिये उपस्थित सज्जन-मण्डलीको सनातन-ब्रह्मका तत्त्वोपदेश करते थे ।'

'जो दक्षिण-उत्सङ्गपर वाम चरणको रखकर कोहनीमें रुद्राक्षमालाको धारण करके तर्कमुद्रासे बैठे हुए थे ।'

'परमानन्द-समाधिमें मग्न, योगकक्षामें आरूढ़ और समस्त मनुओंके आदि मनु परब्रह्म श्रीशङ्करको समस्त लोकपालसहित समस्त महर्षिमण्डलीने हाथ जोड़कर नमस्कार किया ।'*

यह प्रसङ्ग तो इतना स्पष्ट है कि इसकी व्याख्या या टीका करनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं । तो भी इस खास बातकी ओर पाठकोंकी दृष्टि आकर्षित की जाती है कि भस्म तथा रुद्राक्षकी, जिनकी आजकल खूब निन्दा की जाती है, महिमा तथा विधि केवल उपनिषदोंमें ही अत्यन्त विस्तारके साथ बतायी गयी हो सो नहीं, बल्कि श्रीमद्भागवतमें भी भगवान् श्रीनारायणके परमभक्त महर्षि श्रीमैत्रेयजीने भी उन दोनोंका ज्ञानकाण्डी, तपस्वी और योगीके अभीष्ट चिह्नरूपसे वर्णन किया है और भगवान् श्रीशङ्करका भगवान् श्रीमहाविष्णुके परमभक्त सनन्दनादि महासिद्ध पुरुषों तथा श्रीहरिभक्तिपरायणशिरोमणि और भक्तिसूत्रकर्ता और 'ब्रह्मर्षीणां च नारदः'—इन शब्दोंसे भगवान् श्रीकृष्णके श्रीमुखसे वर्णित श्रीनारदजीके भी ब्रह्मज्ञानके तत्त्वका उपदेश करनेवाले गुरुके रूपसे वर्णन किया है। अब उन वैष्णवों–वैष्णव कहानेवालोंके रागद्वेषप्रयुक्त दुराग्रहके बारेमें क्या कहें जो केवल भस्मत्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्षकी ही नहीं, अपितु श्रीनारदादिके भी ज्ञानगुरु श्रीशङ्करकी भी निन्दा किया करते हैं ?

श्रीशुकदेवजीका कथन

अब यह देखना है कि श्रीमद्भागवतमें श्रीमद्भागवत-प्रणेता श्रीशुकदेवजी भगवान् श्रीशङ्करके विषयमें स्वयं क्या कहते हैं । श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धके सातवें अध्यायमें ब्रह्मर्षि श्रीशुकदेवजी समुद्रमन्थनके प्रकरणका वर्णन करते हुए कहते हैं—

'भगवान् (श्रीमहाविष्णु) ने वासुकिरूपी मन्थन-रज्जुको अपने करकमलोंमें लेकर मन्दरपर्वतरूपी मन्थन-दण्डसे समुद्रका मन्थन किया ।'

'भीतरके मत्स्य, मकर, सर्प, कच्छप, तिमि, गज, ग्राह और तिमिङ्गिलोंके भ्रमणसे विक्षुब्ध हुए समुद्रसे हालाहल नामका अत्यन्त उग्र विष निकल आया ।'

'सारी दिशाओंमें तथा ऊपर और नीचे फैलनेवाले उस अत्युग्र, असह्य और अनुपम विषसे रक्षा करनेवाले किसीके न मिलनेके कारण भयभीत होकर सारी प्रजा (अर्थात् देवता और असुर) अपने-अपने नेताओंको भी साथमें लेकर भगवान् श्रीसदाशिवकी शरणमें पहुँची ।'

'(कैलास) पर्वतपर श्रीपार्वतीजीके साथ रहते हुए, त्रैलोक्यके कल्याण यानी मुक्तिके लिये तपस्या करनेवाले उस मुनिमण्डलमान्य देवश्रेष्ठको देखकर उन प्रजानाथोंने नमस्कार करते हुए स्तुति की और कहा'—

'हे देवोंके देव श्रीमहादेव ! आप सारे पदार्थोंकी अन्तरात्मा एवं रचयिता हैं; हमें, जो आपके शरणागत हैं, त्रैलोक्यको भी जला देनेवाले इस जहरसे बचाइये ।'

'आप समस्त जगत्के बन्धन तथा मोक्षके एकमात्र ईश्वर हैं, शरणागतोंके सङ्कटोंको दूर करनेवाले तथा गुरु हैं, आपको भी बुद्धिमान् पूजते हैं ।'

'हे आत्मज्ञानप्रकाशस्वरूपी और सर्वस्वरूपी प्रभो ! आप ही जब त्रिगुणात्मक मायाशक्तिसे जगत्की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं तब आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन नामोंको धारण करते हैं ।'

* श्रीमद्भागवत-चतुर्थ स्कन्ध, अध्याय ६, श्लोक ३४ से ३९ देखिये ।

पाशुपतास्त्र-दान (पृष्ठ-संख्या २५५)

सती-शरीरसे योगाग्निका प्राकट्य (पृष्ठ-संख्या २७१)
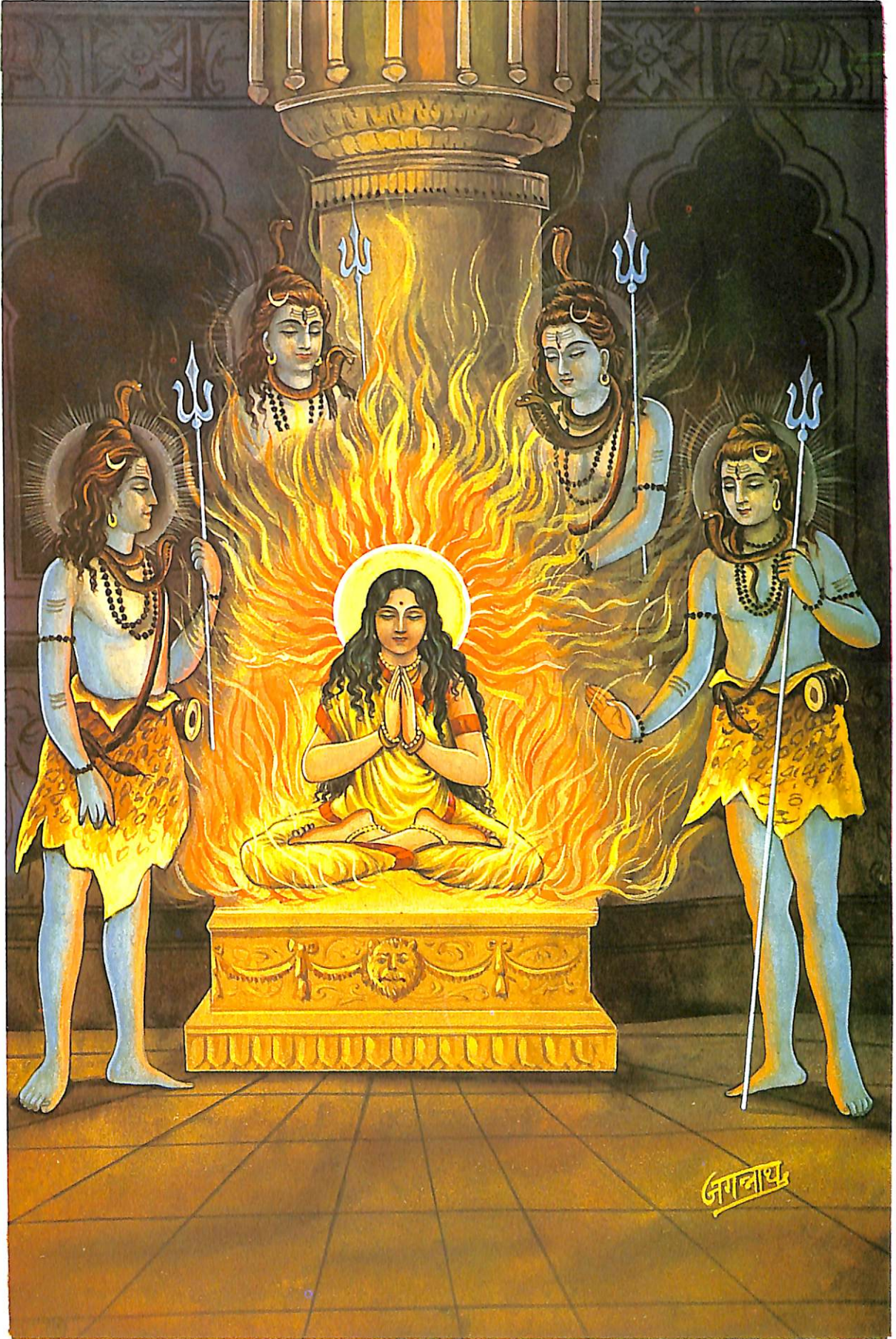
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

जगज्जननी उमा (पृष्ठ-संख्या ३०५)
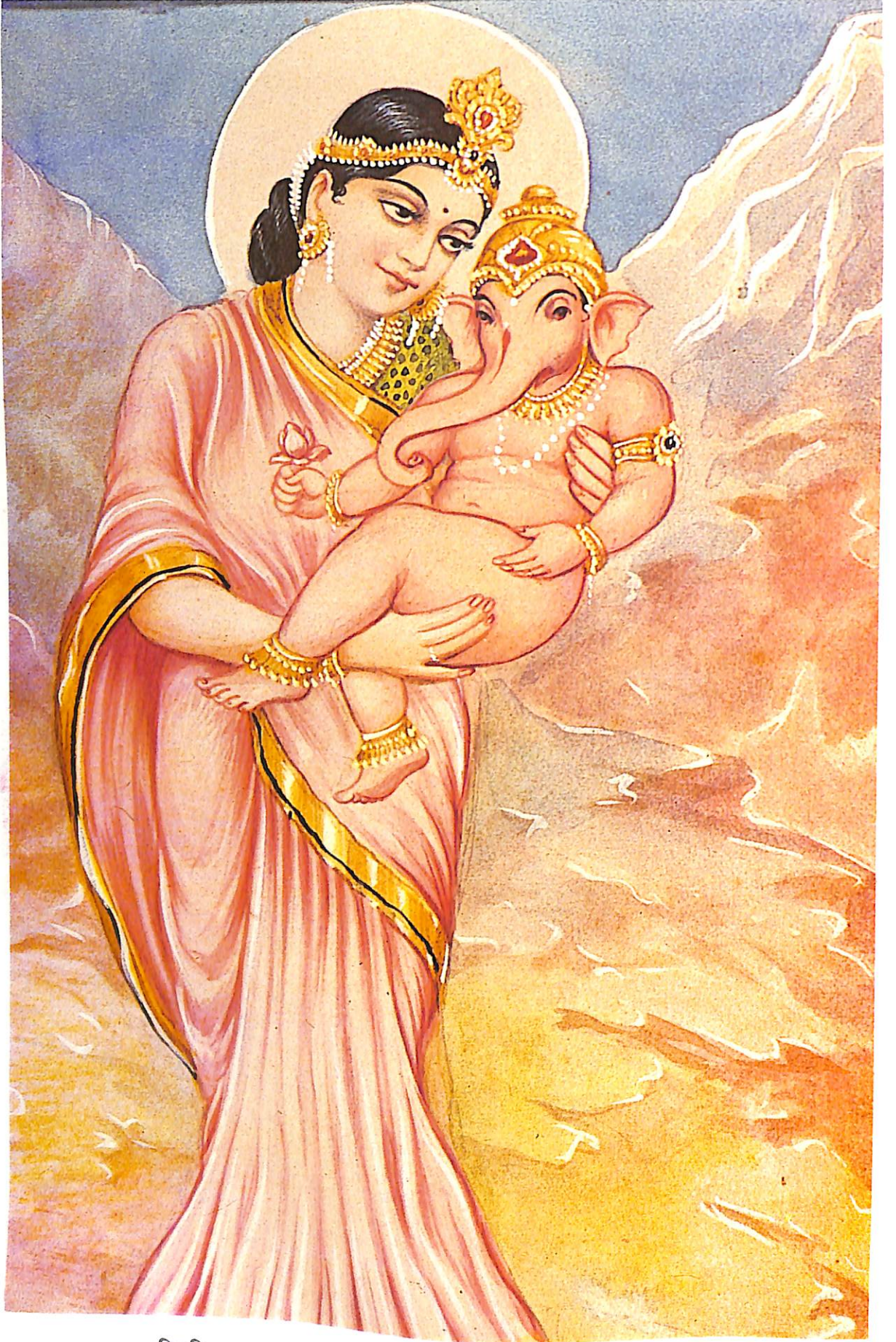
विरञ्चिनारायणवन्दनीयो मानं विनेतुं गिरिशोऽपि यस्याः।
कृपाकटाक्षेण निरीक्षणानि व्यपेक्षते साऽवतु वो भवानी॥

श्रीनारायणरूप और श्रीशिवरूपसे श्रीकृष्णरूपका स्तवन (पृष्ठ संख्या ३५४)

तपस्तत्फलदं शश्वत्तपस्वीशं च तापसम्। वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम्॥
जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम्। प्रवरं जयदानां च वन्दे तमपराजितम्॥ (ब्रह्मवैवर्तपु० ३। ११, २४)

श्रीहरि-हरकी जल-क्रीड़ा (पृष्ठ-संख्या ३६४)

अथोस्थितो हरिस्तोयमादायाञ्जलिना ततः। अवाकिरदथो शम्भुरथ विष्णुरथो हरः॥ (पद्मपुराण पातालखण्ड)

श्रीशिवरूपद्वारा श्रीविष्णुरूपकी स्तुति (पृष्ठ-संख्या ३७०)

ततो जगाम निर्विण्णः शङ्करः कुरुजाङ्गलम्। तत्र गत्वा ददर्शाथ चक्रपाणिं खगस्थितम्॥
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम्। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हरः स्तोत्रमुदीरयेत्॥
(वामनपुराण ३। १२-१३)
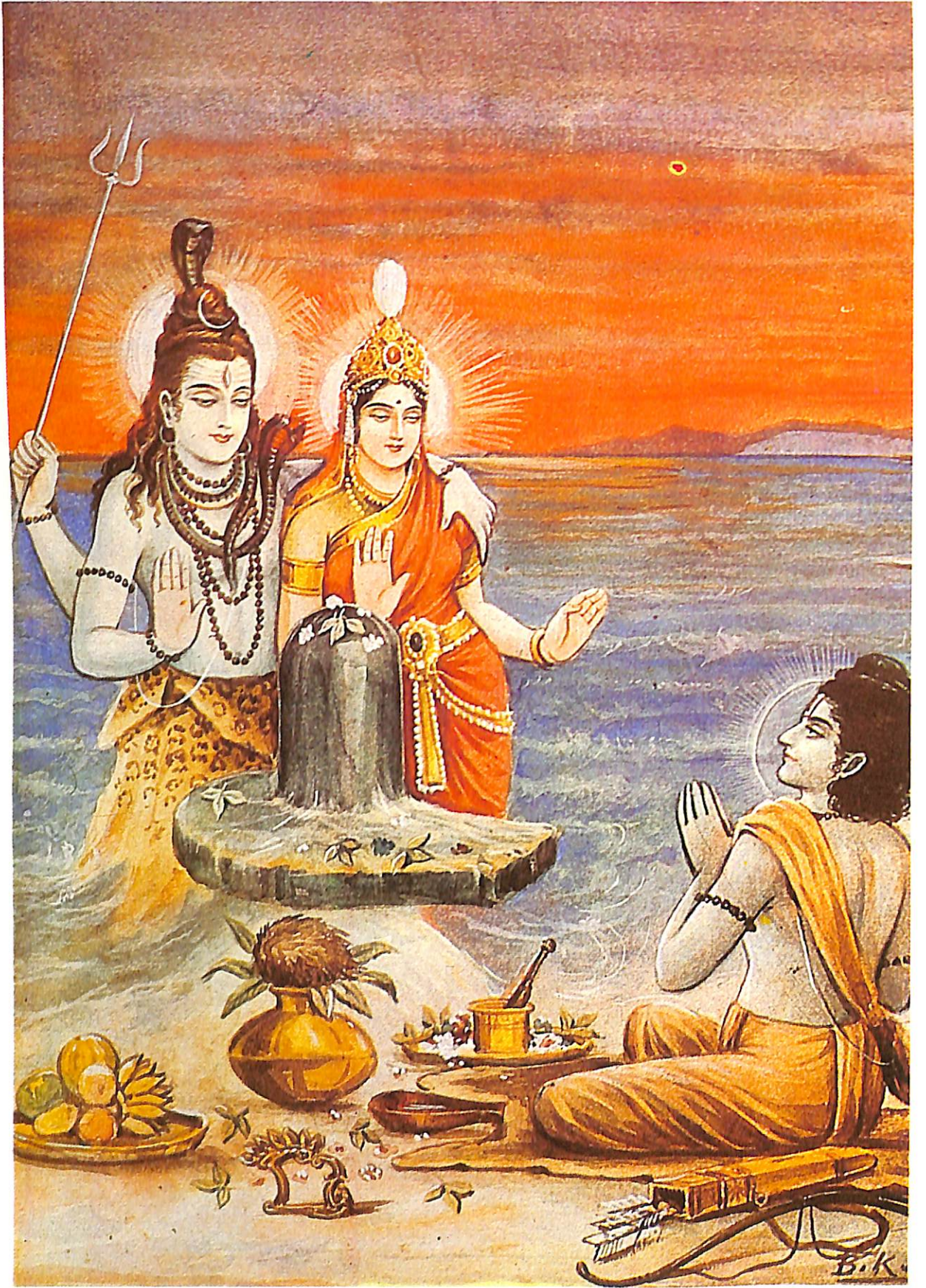
भगवान् श्रीरामका रामेश्वर-पूजन (पृष्ठ-संख्या ५५८)

'आप ही परब्रह्म हैं, सदसत्कारण हैं, गूढ़ तत्त्व हैं, सारी शक्तियोंसे विराजमान हैं, जगत्‌की आत्मा हैं और जगत्‌के ईश्वर हैं।'

'आप ही वेदादि शास्त्रोंके जन्मस्थान हैं, जगत्‌के कारण हैं, जगत्‌की अन्तरात्मा हैं, प्राण-इन्द्रिय-द्रव्य-गुणादि-रूपी सर्वपदार्थस्वरूपी हैं, कालस्वरूपी हैं, यज्ञस्वरूपी हैं, सत्य और ऋतस्वरूपी एवं धर्मस्वरूपी हैं और आपहीमें वह अक्षर वस्तु है जिसका वेद वर्णन करते हैं।'

'अग्नि, भूमि, दिशाएँ, वरुण, आकाश, वायु, सूर्य, जल, चन्द्रमा, समुद्र, पर्वत, ओषधियाँ, वेद, धर्म, उपनिषद्, मन्त्रवर्ग, सत्त्वादि गुण आदि सारे पदार्थ आपके ही मुख, चरण, कर्ण, जिह्वा, नाभि, श्वास, नेत्र, वीर्य, मन, उदर, अस्थि, रोम इत्यादि अवयव हैं। और हे भगवन्! स्वयंज्योतिःस्वरूपी परमार्थतत्त्व ही आपके शिव-नामका स्वरूप है।'

'हे समस्तलोकरक्षक! आपके परमार्थज्योतिको, जो त्रिगुणातीत है, भेदरहित है और परब्रह्मस्वरूपी है, ब्रह्माजी, महाविष्णु, देवेन्द्र आदि भी नहीं समझ सकते।'

'हे भगवन्! जो श्रीपार्वतीजीके साथ भ्रमण करते हुए भी तपस्वीशिरोमणि बने रहते हैं और जिनके चरणारविन्दोंका आत्मनिष्ठ गुरु भी ध्यान करते हैं, ऐसे आपको जो श्मशानमें रहनेवाले तथा उग्र पुरुष इत्यादि समझते हैं वे (निर्लज्ज) हैं। जब ब्रह्मादि देवता भी आपके परापरतत्त्वसे अतीत एवं परमतत्त्वसे भी अतीत स्वरूपको नहीं जान पाते, तब हम आपको कैसे जान सकते हैं?'

'परन्तु इतना तो देखते हैं कि आपसे बढ़कर और कोई नहीं है। जगत्‌के कल्याणके लिये आप अमूर्त होते हुए भी मूर्तिमान् बन जाते हैं।'

'उनके इस सङ्कटको देखकर सर्वजीवदयालु भगवान् (श्रीशङ्कर) ने अत्यन्त कारुण्यभावसे श्रीपार्वतीजीसे कहा—

'देखो, क्षीरसमुद्रके मन्थनसे उत्पन्न हुए कालकूट विषसे प्रजाको कितना कष्ट हो रहा है! इनको अभय-दान देना मेरा कर्तव्य है, क्योंकि दीनोंकी रक्षा ही प्रभुका प्रयोजन है। अविद्याके मोहसे परस्पर द्वेष करनेवालोंके अन्दर सज्जन वे हैं जो अपने प्राण देकर प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। इसलिये मैं इस जहरको पी जाता हूँ। मेरी प्रजाका कल्याण हो।'

'इतना कहकर भगवान् श्रीशङ्कर जीवोंके प्रति कृपा-परवश हो उस जहरको हाथमें लेकर पी गये और उनकी महिमाको जाननेवाली देवीने भी उनके इस कार्यका अनुमोदन किया।'

'इस कार्यको देखकर प्रजाने तथा ब्रह्माजी और श्रीविष्णुने देवदेव श्रीमहालिङ्ग श्रीशङ्करभगवान्‌का स्तवन किया।'* इत्यादि।

श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीके बताये हुए इस प्रसङ्ग-से पता लगता है कि भगवान् श्रीमहाविष्णुके होते हुए भी जगत्‌की रक्षाके लिये श्रीशङ्करकी खास जरूरत होती है। इसके कारण तथा गूढ़ तत्त्वका आगे चलकर विचार किया जायगा। परन्तु अब इस बातपर जोर देना है कि भगवान् श्रीशङ्कर ब्रह्मविष्णुशिवस्वरूपी हैं, परब्रह्मस्वरूपी हैं और वे लोग बेसमझ हैं जो भगवान् श्रीशङ्करको उग्र, तामसिक आदि बताते हुए उनकी निन्दा करते हैं।

श्रीमहाविष्णुकृत श्रीशिवमहिमावर्णन

अब यह देखना है कि भगवान् श्रीमहाविष्णुने भगवान् श्रीशङ्करके बारेमें क्या भाव दिखाया है?

श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीमहाविष्णुने अपने श्रीमुखसे श्रीशङ्करका जहाँ-जहाँ गुणगान किया है उनमेंसे पहला उदाहरण यह है कि जब दक्षप्रजापतिने शिवद्वेषके कारण यज्ञमें शिवजीके लिये हविर्भाग न देते हुए और सब देवताओंको बुलाया। उस समय अन्यान्य सब देवता तो आये, परन्तु—

.......................भगवानब्जसम्भवः।
नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः॥
(४।६।३)

अर्थात्, 'ब्रह्माजी और भगवान् श्रीनारायण वहाँ गये ही नहीं।' इससे स्पष्ट है कि जहाँ श्रीशङ्करका तिरस्कार होता हो वहाँ श्रीनारायण भी नहीं जाते। यह सिर्फ अनुमानकी ही बात नहीं है, अपितु इसे भगवान् श्रीहरिने स्वयं स्पष्ट किया है, क्योंकि जब उस यज्ञका वीरभद्र तथा उसके भटोंसे नाश होनेके बाद भगवान् श्रीरुद्रके प्रसन्न किये जानेपर यज्ञका पुनः सन्धान हुआ तब तो भगवान् श्रीनारायणने स्वयं आकर अति स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि—

* श्रीमद्भागवत-अष्टम स्कन्ध, सप्तम अध्याय, श्लोक १७ से ३१, ३३ से ४२ और ४५ देखिये।

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥
(४।७।५०)
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥
(४।७।५१)
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति॥
(४।७।५२)
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥
(४।७।५४)

'मैं, ब्रह्मा और शिव जगत्के कारण हैं, परे हैं, आत्मा हैं, ईश्वर हैं, उपद्रष्टा हैं, स्वयंप्रकाश हैं और भेदरहित हैं।'

'त्रिगुणात्मक मायाको लेकर जब-जब मैं जगत्को बनाता, पालता और संहार करता हूँ तब-तब मैं उसी कामके अनुरूप नामको धारण करता हूँ।'

'ऐसे केवल, अद्वितीय परमात्मामें अज्ञानी ही ब्रह्मा, रुद्रादिको भेददृष्टिसे देखते हैं।'

'समस्त वस्तुओंके अन्तरात्मस्वरूपी और एकभाववाले हम तीनोंमें जो भेद नहीं देखता, वही शान्तिको प्राप्त करता है।'

श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धके दशवें अध्यायमें भगवान् श्रीशङ्करने भी मार्कण्डेय महर्षिको यही उपदेश दिया है। जब श्रीहरि और श्रीहर दोनों कहते हैं कि हमको भेदबुद्धिसे देखनेवाले अज्ञानी हैं और समानदृष्टिसे माननेवाले ही शान्तिको प्राप्त कर सकते हैं, तो कितने खेद-की बात है कि वैष्णव कहलानेवाले श्रीशङ्करकी और शैव कहलानेवाले श्रीनारायणकी निन्दा करते हुए नहीं सकुचाते?

पाञ्चरात्रकी गवाही

इसी प्रसङ्गके साथ यह भी जानने और हमेशा याद रखनेयोग्य है कि श्रीनारदजीने (जो ब्रह्मर्षियोंके बीचमें भगवान्की खास विभूति हैं) पाञ्चरात्रग्रन्थमें (जो श्री-रामानुजाचार्यके श्रीवैष्णवसम्प्रदायका खास साम्प्रदायिक ग्रन्थ है) स्पष्ट आज्ञा दी है कि जिस ग्राम या शहरके मुहल्लेमें भगवान् श्रीशङ्करका आलय न हो वहाँ कोई वैष्णव आपद्धर्ममें भी और एक रातके लिये भी वास न करें इत्यादि।

त्रिमूर्तियोंका असली तत्त्व और सम्बन्ध उपर्युक्त प्रमाणोंसे बिल्कुल स्पष्ट है। एक ही परमात्मा जगत्की सृष्टि करते हुए 'ब्रह्मा', पालन करते हुए 'महाविष्णु' और संहार करते हुए 'महारुद्र' कहलाते हैं। जिन शक्तियोंको साथमें लेकर वह यह सब काम करता है उनके नाम हैं—महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली। अब अन्तमें यह विचार करना है कि इन त्रिगुणात्मक त्रिशक्तिसमेत त्रिमूर्तियों-का असलमें क्या तत्त्व है और इनका आपसमें क्या सम्बन्ध है?

वैद्यका दृष्टान्त

वैद्यके दृष्टान्तसे इस प्रश्नके यथार्थ उत्तरका पता लगाया जा सकता है, क्योंकि उसे भी तो यही तीन काम करने पड़ते हैं। जब वह व्याधिका संहार करनेवाली औषध देता है तब वह रुद्रका काम करता है। परन्तु जब ज्वरादि-के उतारनेकी प्रक्रियासे व्याधि हटने लगती है उस समय ज्वरादिके साथ-साथ रोगीकी जानके भी चले जानेकी सम्भावना रहती है। उसे रोक रखनेके लिये अर्थात् प्राणोंकी रक्षाके लिये जब वह औषध आदिका प्रबन्ध करता है तब वह महाविष्णुका कार्य करता है और रोगके चले जाने तथा प्राणोंके बच जानेपर जब वह पौष्टिक आहार तथा टॉनिक आदि औषधकी व्यवस्था करता है तब वह शरीरमें नया बल देता है अर्थात् ब्रह्माजीका सृष्टिरूपी काम करता है। इस दृष्टान्तसे स्पष्ट है कि रुद्र, विष्णु और ब्रह्माका परस्पर क्या सम्बन्ध है।

दार्ष्टान्तिक

अतः जो मनुष्य यह कहे कि मैं विष्णुका भक्त हूँ, पर शङ्करको नहीं मानता, वह उसी श्रेणीका बुद्धिमान् है जो यह कहता हो कि मैं अपने प्राणोंकी रक्षा ही चाहता हूँ, पर त्रिदोषरूप विषम सन्निपात-ज्वरको नष्ट करना नहीं चाहता। परन्तु वह इस बातको भूल जाता है कि जबतक यह भयङ्कर रोग मूलसे नहीं मिट जाता, तबतक प्राण बचनेकी आशा ही नहीं हो सकती। सारांश यह कि जबतक रुद्रका काम नहीं होता तबतक विष्णुका कार्य हो ही कैसे सकता है? इसीलिये शास्त्रोंमें कहा है कि दक्ष-प्रजापतिके यज्ञमें रुद्रके भागका प्रबन्ध न होनेपर नारायण भी नहीं आये, ब्रह्माकी बात तो दूर रही। कालकूट-विषसे जंगत्को श्रीशङ्करने ही बचाया (श्रीहरिने नहीं)। श्रीहरिके श्रीरामादि अवतार जगत्की रक्षाके लिये अवश्य हुए, परन्तु उनमें जो संहारका काम किया गया वह तो सब श्रीरुद्रके अंशसे ही किया गया इत्यादि।

दूसरी ओर, जो मनुष्य यह कहता है कि मैं शिवको ही मानता हूँ, हरिको नहीं, वह उस श्रेणीका बुद्धिमान् है जो यह कहे कि मैं इस ज्वरको तो उतरवाना चाहता हूँ, परन्तु प्राण-रक्षा नहीं चाहता !

इन दोनों बातोंपर विचार करनेसे ही निम्नलिखित शास्त्र-वचनोंके औचित्यका पता लग जाता है।

वैष्णवानां यथा शम्भुः

और—

शाम्भवानां यथा विष्णुः

अर्थात् श्रीशिव परमवैष्णव हैं और श्रीहरि परमशैव हैं।

शिवसहस्रनाम, विष्णुसहस्रनाम, काशीखण्ड, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंसे इस लेखमें दिये हुए अनेकानेक प्रमाणोंसे भी यही तात्पर्य स्पष्ट होता है।

ब्रह्माजीकी बात तो यह है कि जैसे सन्निपात-ज्वरके उतर जाने और जान बच जानेपर पौष्टिक पदार्थ खाने या टॉनिक आदिके सेवनकी बात अपने आप ही आ जाती है, उसी प्रकार रुद्र और विष्णुके कार्य पूरे हो जानेपर ब्रह्माका कार्य अपने आप उपस्थित हो जाया करता है, इसीलिये शङ्कर और नारायणकी उपासनाकी खास जरूरत होती है, परन्तु ब्रह्माजीके आराधनकी खास आवश्यकता नहीं होती।

गुरुका दृष्टान्त

हम इस तत्त्वको गुरुके दृष्टान्तसे भी समझ सकते हैं। गुरुका यह वर्णन प्रसिद्ध है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इसका कारण यह है कि जब गुरु अपने शिष्योंकी बुद्धिमें समाये हुए अन्यथाज्ञानरूपी अज्ञानको यानी भ्रमको दूर करता है तब तो संहाररूपी कार्य करनेके कारण वह रुद्र है, जब वह शिष्यकी बुद्धिमें यथार्थ ज्ञानकी रक्षा करता है तब रक्षक होनेके कारण विष्णु है और जब उस ज्ञानको नयी-नयी विद्याएँ देकर बढ़ाता है तब वह नयी सृष्टि करनेवाला होनेके कारण ब्रह्मा है।

इस दृष्टान्तमें भी आपसमें यही क्रम होता है जो वैद्यके दृष्टान्तमें समझाया गया है। अर्थात् रुद्र पहले अज्ञानका संहार करें, इसीके साथ-साथ विष्णु प्राण अर्थात् ज्ञानमूलकी रक्षा करें और इन दोनोंके होनेपर ब्रह्मा ज्ञान बढ़ाते चलें। अतः सन्निपात-ज्वरको हटानेवाले वैद्यकी भाँति अज्ञानरूपी रोगको हटानेवाले गुरुके सदृश श्रीशङ्करको पहले अपना कार्य करना पड़ता है, तत्पश्चात् सब अपने-अपने कार्यका सञ्चालन करते हैं।

गुरु शब्दका अर्थ

अब गुरु-शब्दके अर्थपर विचार करना है। गु=अज्ञान और रु=निवारण करनेवाला। इसलिये वैद्य और गुरुके कर्त्तव्यकी दृष्टिसे भी, जिसमें व्याधि और अज्ञानका निवारण ही प्रथम कार्य है, श्रीशङ्कर ही सबके लिये आदिवैद्य (या वैद्यनाथ) और आदिगुरु (या जगद्गुरु) हैं। अतएव कल्पारम्भमें दक्षिणामूर्तिरूपसे वही प्रथम गुरु होते हैं, श्रीहरिभक्तशिरोमणि श्रीनारदादि ब्रह्मर्षिरत्नोंको भी वही ज्ञानोपदेश देते हैं। (श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें महर्षि श्रीमैत्रेयजीने यही कहा है) और हमारे इस कलियुगके आरम्भमें भी वही श्रीशङ्कराचार्यरूपसे पहले गुरु होते हैं।

इसीलिये भगवान् श्रीनारायणने श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध, अध्याय ८८ में वृकासुरोपाख्यानमें भगवान् श्रीशङ्करका देव, महादेव, ईश, विश्वेश और जगद्गुरु—इन पाँच शब्दोंसे सम्बोधन और वर्णन किया है और उन्हीं श्रीशङ्करके श्रीशङ्कराचार्यरूपी अवतारमें भी श्रीपद्मपादाचार्यरूपसे स्वयं आकर सबसे प्रथम शिष्य बनकर हमलोगोंको सिखाया है कि भगवान् श्रीशङ्कर सबके अज्ञानको हरनेवाले हैं। अर्थात् वही यथार्थमें सर्वजगद्गुरु हैं अतएव सर्वजगत्पूज्य हैं।

यथार्थ सिद्धान्त

उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध हो गया है कि श्रीनारायण और श्रीशङ्करमें कोई विवाद हो ही नहीं सकता। प्रत्युत इनका आपसमें अत्यन्त आदर और प्रेमका ही भाव शास्त्रसिद्ध है। ऐसे जबरदस्त प्रमाणोंके होते हुए भी जो लोग श्रीहरिके भी परम आदरणीय, परम पूज्य, विश्वेश तथा जगद्गुरु शिवजीका द्वेष, तिरस्कार या निन्दा करते हैं वे कभी सच्चे वैष्णव नहीं माने जा सकते। इसी प्रकार जो लोग श्रीमहादेवजीके लिये परम आदरणीय और परम पूज्य इष्टदेव और उपास्यमूर्ति श्रीहरिका द्वेष, तिरस्कार या निन्दा करनेवाले हैं वे कभी सच्चे शैव नहीं माने जा सकते। वास्तवमें ऐसे लोग अपने-अपने इष्टका तिरस्कार करनेवाले होनेके कारण निःसन्देह इष्टद्रोही ही हैं।

साधनका विचार

मूर्ति-सम्बन्धी झगड़ेको इसप्रकार हल करनेके बाद अब शेष रह जाता है साधनोंका विचार। इसमें भी बहुत-से भ्रम फैले हुए हैं। स्मार्त और वैष्णवोंका खूब झगड़ा चलता है। भक्ति मुख्य है या ज्ञान और वैराग्य–इसको लेकर विवाद हुआ करते हैं। कुछ 'वैष्णव' कहानेवाले लोग ऐसे भी होते हैं जो ज्ञान और वैराग्यको शैव-सम्प्रदायके साधन बतलाकर उनकी शुष्क ज्ञान और शुष्क वैराग्य आदि शब्दोंसे निन्दा करते हैं, इसी प्रकार कुछ 'शैव' भी ऐसे होते हैं जो ज्ञान और वैराग्य आदि साधनोंका नाम लेकर भक्तिको मन्दाधिकारियोंके लिये विहित किया हुआ साधन बताते हुए उसकी निंन्दा करते हैं। ये दोनों ही पक्ष दुराग्रही हैं अर्थात् भ्रमपूर्ण हैं। यद्यपि भगवान् श्रीशङ्कराचार्य ज्ञानकाण्डके खास और जबरदस्त आचार्य थे, तथापि उन्होंने भक्तिकी खूब महिमा गायी है और भक्तिरससे भरे हुए अनेकों स्तोत्र रचे हैं। श्रीशङ्कराचार्यके सिद्धान्तके शिरोमणिरूपी 'अद्वैतसिद्धि' के ग्रन्थकर्ता श्रीमधुसूदन सरस्वती महाराज तो भगवान् श्रीकृष्णके परमभक्त तथा उपासक थे और 'भक्तिरसायन' नामक अद्वितीय भक्ति-प्रधान ग्रन्थके रचयिता भी थे।

पद्मपुराणका भक्त्युपाख्यान

इस सम्बन्धमें अब विस्तारमें उतरनेकी आवश्यकता नहीं है। पद्मपुराणके उत्तरखण्डके भक्ति-नारदसंवादरूपी छः अध्यायवाले एक सुन्दर उपाख्यानसे ही इन तीनों साधनोंका सम्बन्ध सहजहीमें स्पष्ट हो जाता है। उस उपाख्यानका सारांश यह है कि ज्ञान और वैराग्य दोनों भक्तिके पुत्र हैं और इन दोनों पुत्रोंकी अस्वस्थताके कारण माता भक्तिदेवी दुखी रहती हैं। इसका तो अर्थ अति स्पष्ट है कि भक्तिसे ही ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होते हैं और इन दोनोंके स्वस्थ न होनेपर भक्ति भी अच्छी नहीं रह सकती–ऐसी दशामें ज्ञान और वैराग्यकी प्रशंसा करनेवाले शैव उनकी माता भक्तिकी निन्दा कैसे कर सकते हैं ? और इसी प्रकार भक्तिकी प्रशंसा करनेवाले वैष्णव उसके इन दोनों प्यारे पुत्रोंकी निन्दा कैसे कर सकते है ? हमारी समझमें तो यह बात उतरती ही नहीं।

इन सब विचारोंसे स्पष्ट है कि साधनोंमें भी वस्तुतः कोई झगड़ा नहीं है, बल्कि समन्वय ही है। भगवान् आनन्दकन्द परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने भी श्रीमद्भगवद्गीताके सातवें अध्यायके पहले श्लोकमें कहा है—

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥

भगवान्‌का भक्त होकर, भगवदेकशरण होकर अपने-अपने अधिकारके अनुसार स्वस्वधर्मानुष्ठानरूपी कर्मयोगमें तत्पर रहकर (अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा) हम निःसन्देह और अखण्ड भगवद्विज्ञानको प्राप्त कर सकते हैं। अतः भक्ति-सहित स्वधर्माचरणका फल चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञान है और उस फलका फल मोक्ष है।

इसलिये हम सबको जिज्ञासु, मुमुक्षु, आरुरुक्षु और साधककी हैसियतसे, इन आपसके रागद्वेष और पक्षपातके झगड़ोंको छोड़कर भगवान्‌के बताये हुए इस दिव्य सुन्दर मार्गको ग्रहणकर अपने परमात्म-साक्षात्काररूपी लक्ष्यमें दत्तचित्त हो और सब बातोंको छोड़कर अपने साधनमें तत्पर रहना चाहिये। क्योंकि भगवती श्रुति स्वयं कहती है—

अन्या वाचो विमुञ्चथ

यही इहलोकमें सुख, परलोकमें सद्गति और अन्तमें मोक्षप्राप्तिरूपी सर्वतोमुख कल्याणका एकमात्र साधन है।

अनन्तभुवनावलीस्थितसमस्तविद्याव्रत-
प्रवीणजनताग्रणीविहितपादपद्मानतम्।
सरोजचरणाभिधाकृतिधरोरगक्ष्मापति-
स्वतल्पमुखशिष्यसत्कृतपदं भजे शङ्करम्॥*

ओं तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु।

---

* पूज्य श्रीजगद्गुरु महाराजने यह लेख बहुत पहले भेज दिया था, किन्तु पोस्ट-आफिसकी भूलसे वह हमें नहीं मिला। दुबारा भेजनेपर भी वह हमारे पास नहीं पहुँचा। इसलिये यह लेख उन्होंने तीसरी बार लिखकर भेजा है। इस कष्टके लिये हम आपके अत्यन्त आभारी हैं। लेख बहुत विलम्बसे तथा चिरकालतक प्रतीक्षा करनेके बाद मिला, इसलिये हम उसे अविकलरूपसे नहीं छाप सके। हमें बाध्य होकर उन श्लोकोंको निकाल देना पड़ा, जिन्हें जगद्गुरु महाराजने प्रमाणरूपमें विभिन्न ग्रन्थोंसे उद्धृत किया था। उनके अर्थके अन्तमें पाठकोंके परिचयके लिये ग्रन्थका नाम, अध्याय तथा श्लोक-संख्या हमने दे दी है। हमारी परिस्थितिको समझकर आशा है, श्रीजगद्गुरु महाराज एवं पाठक हमें क्षमा करेंगे।

—सम्पादक

ब्रह्म ही शिव हैं

(श्रीकाञ्ची-प्रतिवादिभयङ्करमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीभगवद्रामानुजसम्प्रदायाचार्य श्री १००८ श्रीअनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज)

न सन्न चासच्छिव एव केवलः ।

उपर्युक्त वाक्य वेदका है । इसका अर्थ है कि सृष्टिके पूर्व न सत् ही था और न असत्, किन्तु केवल शिव था ।

यह बात सर्वसम्मत है कि जो वस्तु सृष्टिके पूर्व हो वही जगत्का कारण है और जो जगत्का कारण है वही ब्रह्म है ।

ब्रह्मका लक्षण बतलाते हुए वेद कहता है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म ।

अर्थात् ये भूत जिससे पैदा होते हैं, जन्म पाकर जिसके कारण जीवित रहते हैं और नाश होते हुए जिसमें प्रविष्ट हो जाते हैं, वही जिज्ञासाके योग्य है और वही ब्रह्म है। वेदान्तदर्शनकार भगवान् व्यासने भी 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस प्रथम सूत्रमें ब्रह्मजिज्ञासाकी कर्तव्यता बतानेके बाद ही 'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्रमें ब्रह्मका लक्षण जगज्जन्मादि-कारणत्व ही बताया है। अस्य—इस जगत्के, जन्मादि—जन्म-स्थिति-लय आदि, यतः—जिससे हैं, वह ब्रह्म है—यह इस सूत्रका अर्थ है ।

ब्रह्म ही जगत्के जन्मादिका कारण है, इस विषयमें तो किसीका मतभेद है नहीं । वही जगज्जन्मकारणत्व जो ब्रह्मके लक्षणमें अन्तर्गत है, 'न सन्न चासत्' इस श्रुतिमें शिवमें बताया गया है । कार्यकी उत्पत्तिके पूर्व जो नियमेन रहता हो वही कारण है । श्रुति कहती है कि सृष्टिके पूर्वकालमें सत् और असत् दोनों ही नहीं थे, केवल शिव ही था । 'सत्' चेतन वस्तुको कहते हैं और 'असत्' कहते हैं जड वस्तुको । इस संसारमें दो ही तत्त्व हैं, चेतन और अचेतन । ये दोनों जब नहीं थे तब एक शिव ही था, अर्थात् सद-सद्वस्तुओंकी उत्पत्तिके पूर्व शिव था । तब शिव ही उनका कारण होना चाहिये । वेदोंमें जगत्के कारणका निर्देश करनेकी यही प्रक्रिया है । यथा—

'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं तम आसीत्तमसा गूळ्ह-मग्रेऽप्रकेतम् ।' इत्यादि ।

'सत्' उसको कहते हैं जो सदा एकरूप है । 'असत्' उसको कहते हैं जो परिणामके कारण नाना कालोंमें नानारूप है। चेतन अपरिणामी होनेसे सदा एकरूप है । अतएव वह 'सत्' कहलाता है । जड वस्तु परिणामी होनेसे नानारूप है, अतएव वह 'असत्' कहलाती है । जिस समय ये दोनों नहीं होते—वही सृष्टिके पूर्वका काल है, उस समय जो वस्तु रहती है वही सृष्टिका कारण है । 'न सन्न चासत्'—इस श्रुतिके अन्दर उस कालमें केवल शिवकी सत्ता बतायी गयी है, अतएव वही जगत्कारण होना चाहिये । समस्त वेदान्तशास्त्र ब्रह्मको जगत्कारण बता रहे हैं । अतएव यह बात माननी पड़ेगी कि ब्रह्महीका नाम शिव है ।

'शिव' शब्द शुभावह या श्रेयस्कर वस्तुका वाचक है । ब्रह्म सर्वशुभकारी या सर्वश्रेयस्कारी है, अतएव 'शिव' शब्द ब्रह्मवाचक भी हुआ । शुभार्थक 'शीङ्' धातुके साथ 'वन्' प्रत्ययका योग होनेसे 'शिव' शब्द बनता है ।

ब्रह्म ही शिव है, इस तरह शिवको जगत्का कारण बतानेवाली श्रुतिकी सङ्गति हो जाती है ।

यद्यपि त्रिमूर्तिके अन्तर्गत देवता-विशेषके नामोंमें भी 'शिव' शब्दका पाठ कोशोंमें है तथापि परब्रह्मके अर्थमें 'शिव' शब्दका प्रयोग मुख्य और त्रिमूर्तिके अन्तर्गत देवता-विशेषके अर्थमें गौण मानना होगा, जैसा कि इन्द्रादि शब्दोंका स्वर्गाधिप आदिके अर्थमें मुख्य और शचीपति आदिके अर्थमें गौण प्रयोग होता है । यह बात वेदान्त-दर्शनके ज्ञाता विद्वान् पुरुष जानते हैं । वेदान्तदर्शनमें 'आकाशस्तल्लिङ्गात्', 'प्राणस्तथानुगमात्' इत्यादि सूत्रोंसे आकाश, प्राण आदि शब्दोंकी मुख्य वृत्ति ब्रह्ममें सिद्ध करके भौतिक आकाश आदिमें गौणवृत्ति स्थापित की गयी है । इसी प्रकार 'शिव' शब्दका भी परब्रह्ममें मुख्य वृत्ति और त्रिमूर्तिके अन्तर्गत देवता-विशेषमें गौण वृत्ति स्वीकार करना आवश्यक और युक्त है । सर्वोत्कृष्ट शुभावह ब्रह्म हो सकता है । त्रिमूर्तिके अन्तर्गत देवता-विशेष शिव संहारकर्तामात्र माने जाते हैं, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं । यदि उन्हीं शिवको उपर्युक्त वेदवाक्यके अन्तर्गत 'शिव' शब्दका वाच्य मानें तो उनका जगत्कर्तृत्व सिद्ध नहीं होगा, अतएव इस

श्रुतिमें प्रतिपादित शिव त्रिमूर्तिके अन्तर्गत शिव न होकर जगत्के जन्म आदिके कारण ब्रह्म ही हैं—ऐसा मानना होगा।

कुछ लोग ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—इन त्रिमूर्तियोंमें समानता मानते हैं, कुछ लोग इनमेंसे एकको मुख्यत्व देते हैं। समानता माननेवाले तीनोंको एक ही ब्रह्मका अंश मानते हैं, एकको मुख्यत्व देनेवाले उस एकको साक्षात् ईश्वरका अवतार और शेष दोको ईश्वरांशविशिष्ट जीवरूप मानते हैं।

एष खलु वा अस्य राजसोंऽशो योऽयं ब्रह्मा, एष खलु वा अस्य सात्त्विकोंऽशो योऽयं विष्णुः, एष खलु वा अस्य तामसोंऽशो योऽयं रुद्रः।

—इस श्रुतिके अनुसार तीनों ही ब्रह्मांश हैं, इसमें सन्देह नहीं। अतएव ब्रह्मांशभावसे तीनोंमें समानता है—इसमें भी सन्देह नहीं। किन्तु, तीनों मूर्तियोंके कार्योंमें भेद और तन्मूलक गुणभेद तो अवश्य ही वर्तमान है, यह बात उक्त श्रुतिसे स्पष्ट हो जाती है। इन तीनोंका जो मूल है वही ब्रह्म है। एक मूर्तिकी प्रधानता माननेवालोंके मतमें, तीनोंमेंसे एक साक्षात् परमात्माका अवताररूप है, बाकी दो ईश्वराविष्ट जीवरूप हैं। इस पक्षमें भी त्रिमूर्तियोंमें मुख्य एकके अवताररूप होनेसे उसका भी मूलभूत परब्रह्म है। अतएव त्रिमूर्तिके अन्तर्गत शिव मुख्य न होकर तन्मूलभूत ब्रह्म ही मुख्य शिव है। वह तो ब्रह्म ही है। कुछ लोग त्रिमूर्तिके परे तुरीयतत्त्वको शिव मानते हैं। अर्थात् वे तीनों मूर्तियोंको सादि मानकर सबकी मूलभूत जो वस्तु है, वही ब्रह्म है, उसीका नाम शिव है—ऐसा मानते हैं। इन सभी पक्षोंमें ब्रह्म ही शिव है—यह सिद्धान्त अक्षुण्ण ही रहता है।

शिवाद्वैत-सिद्धान्त

(श्री १०८ जगद्गुरु पञ्चाक्षरशिवाचार्य महास्वामी, काशीक्षेत्र)

त्रैलोक्यसम्पदालेख्यसमुल्लेखनभित्तये। सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय ब्रह्मणे नमः॥

इस शिवाद्वैत-मतके शक्ति-विशिष्टाद्वैत, विशेषाद्वैत, भेदाभेद आदि अनेक नाम होनेपर भी इन सबका अर्थ एक ही है। 'शिव' शब्दका अर्थ है चिच्छक्तिविशिष्ट। इसके साथ (मुक्तदशामें) चित्तशक्ति-विशिष्ट जो जीव है उसके अद्वैत (अभेद) का प्रतिपादन करनेवाला मत ही शिवाद्वैत-मत है। इसी प्रकार 'वि' का अर्थ है शिव और 'शेष' कहते हैं जीवको; मुक्ति-दशामें इन दोनोंके अद्वैतको माननेवाला विशेषाद्वैत-मत है। बद्धदशामें शिवके साथ जीवोंके पारमार्थिक भेदको और मुक्तदशामें पारमार्थिक अभेदको जो मत मानता हो, उस मतका ही नाम भेदाभेद है। शास्त्रकारोंने इस शिवाद्वैतको 'लिङ्गाङ्ग-सामरस्य' के नामसे निर्दिष्ट किया है। 'लिङ्ग' का अर्थ है शिव; इसके साथ अङ्ग अर्थात् जीवका सामरस्य (अभेद) ही इसका वाच्यार्थ है। स्वप्रकाशता-शक्ति-(चिच्छक्ति) विशिष्ट ही शिव है। 'वश कान्तौ' धातुके वर्ण-व्यत्ययसे 'शिव' शब्द निष्पन्न हुआ है, जैसे 'दृश' धातुसे 'कश्यप' और 'हिंसि' धातुसे 'सिंह' शब्दकी व्युत्पत्ति हुई है। इसमें यह नीचेकी सूक्ति प्रमाण है—

हिंसिधातोः सिंहशब्दो वशकान्तौ शिवः स्मृतः।
वर्णव्यत्ययतः सिद्धः पश्यतेः कश्यपो यथा॥

शिवके अति परिशुद्ध, आश्रितोंके कल्याणदाता, सबके साथ समता रखनेवाले और भक्तोंके सिद्धिप्रद होनेके कारण इनका 'शिव' नाम सार्थक है। इस विषयमें—

अनादिमलसंश्लेषप्रागभावात् स्वभावतः।
अत्यन्तपरिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते॥
अथवाशेषकल्याणगुणैकघन ईश्वरः।
आश्रितात्यन्तशिवदः शिव इत्युच्यते बुधैः॥

इत्यादि शिवपुराणके वचन और—

समा भवन्ति ते सर्वे दानवा मानवाश्च ये।
शिवोऽस्मि सर्वभूतानां शिवत्वं तेन मे स्मृतम्॥

—यह महाभारत-कर्णपर्वका श्लोक भी प्रमाण है। 'शिव एव केवलः', 'शिवमद्वैतम्', 'शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्' 'तस्मात् सर्वगतः शिवः'—इत्यादि श्रुतियोंमें शिव नाम सुप्रसिद्ध ही है। शिव-नामके मङ्गल-वाचकत्वमें 'शिवा ऋतवः सन्तु' आदि सूक्तियाँ साक्षी हैं। ये परमशिव ही

उत्तरमीमांसाशास्त्रके प्रतिपाद्य हैं । ये निर्विशेष नहीं हैं । 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' नामक सूत्रमें पठित ब्रह्मको भी निर्विशेष मान लेनेसे आगे 'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्रसे कथ्यमान 'जगज्जन्मादिजनकत्व' रूपी जो ब्रह्मका लक्षण है उसकी सङ्गति नहीं होगी । इसलिये 'जगज्जन्मादि-कार्यानुकूलशक्तिविशेष' को परमशिव ब्रह्मके अन्दर मानना ही पड़ेगा । शक्तिहीन जो चैत्र, मैत्रादि (मृत) हैं वे कुछ भी नहीं कर सकते । यह सब लोग जानते ही हैं कि चुम्बकमें सूईको खींचनेकी शक्ति है । बीजमें भी अङ्कुरोन्मुख शक्ति न रहे तो आगे वह पल्लवित होकर फल नहीं सकेगा । विशाल और महत्तरकाय वृक्षमात्रको अपने-में अन्तर्गत करनेकी शक्ति वट-बीजमें माननी ही पड़ेगी । इसी तरह संसारमें दृश्यमान जो कारण-वस्तुएँ हैं उनमें रहनेवाली कार्यानुकूल शक्तिको मानना ज़रूरी है । अग्निमें दाहानुकूल शक्ति न हो तो प्रतिबन्धक मणिके रहनेपर भी उससे दाह-क्रिया हो जानी चाहिये और उत्तेजक मणिकी सन्निधिमें दाह-क्रिया नहीं होनी चाहिये; परन्तु ऐसा होता नहीं । इसलिये प्रतिबन्धकके रहनेपर दाह-शक्तिके सङ्कोचको और उत्तेजकके होनेपर उसके विकासको अग्निके अन्दर स्वीकार करना ही होगा । यह शक्ति अग्निसे न तो अतिरिक्त है, न अनतिरिक्त; किन्तु अविनाभूत (भिन्नाभिन्न) है—इस बातको शिवाद्वैती (वीरशैव) मानते हैं; इसलिये शक्ति-स्वीकारके विषयमें नैयायिकोंद्वारा दिखाये जानेवाले किसी दोषकी गुंजाइश नहीं है । चुम्बकमें शक्ति न हो तो उसके आकर्षणरूपी कार्यकी उत्पत्ति जैसे नहीं होती, उसी तरह परमशिव ब्रह्ममें शक्ति न हो तो संसारको उत्पत्ति आदि कार्य ही न हों; इसी कारण भगवान् बादरायणका सविशेष (शक्तिविशिष्ट) ब्रह्ममें ही तात्पर्य है, यह स्पष्ट है । और 'उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्' इत्यादि श्रुति-वाक्योंसे भी यही प्रतिपादित होता है कि उमारूपी शक्तिसे विशिष्ट ही परमशिव ब्रह्म हैं । रज्जुमें सर्प-की तरह ब्रह्ममें रहनेवाली शक्ति मिथ्या नहीं है, किन्तु सहजसिद्ध है । इस विषयमें—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

यह श्वेताश्वतर-श्रुति प्रमाण है । इसके अतिरिक्त—

एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे आखुस्ते रुद्र पशुस्तं जुषस्वैष ते भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व ।

—यह यजुर्वेद-वाक्य भी प्रमाण है । इस श्रुतिका 'क्रिया-सार' के प्रणेता श्रीमन्नीलकण्ठ शिवाचार्यने जो अर्थ किया है उसका कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

'रुद्र ही शिव हैं, वे संसाररूपी दावानलसे परितप्त जीवरूपी पशुके रोगरूपी पाशको काटनेवाले हैं, इसलिये उनका 'रुद्र' नाम सार्थक और प्रसिद्ध है । जैसे 'शङ्खः श्वेत एव' इस वाक्यका 'शङ्खमें श्वेतातिरिक्त वर्ण नहीं है'—यही अर्थ होता है, उसी तरह 'एव रुद्रः' इस वाक्यसे यही सिद्ध होता है कि संसारके दुःखोंको दूर करनेवाला एकमात्र रुद्र ही है, दूसरा कोई नहीं । ×××××××××××××× धर्मरूपिणी शक्ति और धर्मिरूपी शिव—इन दोनोंमें शिव ही एकमात्र क्रतुपति हैं, शक्ति नहीं—ऐसा आक्षेप होनेपर उसका परिहार 'सह स्वस्राम्बिकया' इस वाक्यसे हो जायगा । 'अम्बिकया=जगज्जननीरूपिणी शक्तिसे ('अम्बा माता'—इस अमरकोशके वचनसे भी 'अम्बिका' शब्दका अर्थ जगज्जननी होता है) सह=युक्त होकर हविर्भागको स्वीकार करो'—यह अर्थ होनेसे क्रत्वधीश्वरत्वरूप लक्षण शक्तिविशिष्ट शिवमें ही घटता है । यहाँ 'अम्बिकया' पदसे शिव-शक्तिको अखिल जगत्की उत्पत्तिका कारण बतलाया गया है । वह इसप्रकार है—पुष्पकी कलीमें रहनेवाली शक्ति जब विकासोन्मुख होगी तब उसका कोरकभाव विलीन होकर उसके अन्दर गन्धका सञ्चार होने लगेगा । उसके बाद वायु-सम्पर्कसे पुष्पके अवयव भी गन्धविशिष्ट हो जायँगे; इसप्रकार विकसित अवयववाले पुष्पसे गन्ध-विशिष्ट पुष्पांश बाहर निकल आवेंगे; इसी प्रकार शिवकी चिच्छक्ति भी जब अङ्कुरोन्मुख बीजकी भाँति सृजनोन्मुख होती है, उस समय उस शक्तिसे सकल चेतनाचेतनरूपी शिवांश शक्तिविशिष्ट होकर ही प्रकट होते हैं, इसीलिये दूसरोंकी भाँति जीवको व्यापक न मानकर शिवाद्वैतीलोग यह कहते हैं कि जीव अणु है । परमात्मामें इसप्रकार जगज्जननीरूपिणी शक्तिको नहीं माननेवाले केवलाद्वैती लोग ऐसे क्षीण हो जाते हैं जैसे बिना माताके बच्चे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । शिशु बन्धनमें फँसकर जब छटपटाता एवं रोता है तब आड़में रहनेवाली माता तुरन्त आकर उसको गोदमें उठा लेती है और उसके सङ्कटको दूरकर उसको सुख पहुँचाती है; वैसे ही जीव भी चित्तरूपी बन्धनमें पड़कर सांसारिक तापत्रयकी अग्निसे जलता हुआ जब छटपटाने लगता है तब वह जगज्जननी चिच्छक्ति

(पराहंतामय विमर्शक शक्ति) प्रकट होकर जीवकी सकल सांसारिक तापाग्निको शमन करती हुई जीव-भावको भी नष्ट कर उस शुद्धांशको शिवमें मिलाकर 'शिव' बना देती है। इसप्रकार 'विश्वात्मकः शिवोऽहम्'—इस आकारकी बुद्धि-शक्तिको भी परमात्मामें नहीं माननेवालोंको कोई भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता, यह निर्विवाद सिद्ध है।

शक्ति और शिव भिन्न-भिन्न दो पदार्थ हैं, वही संसार-के माता-पिता हैं—ऐसा माननेसे 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियोंसे सिद्ध होनेवाले अद्वैतकी हानि होगी। इसलिये यदि कोई कहे कि शिवमें मिथ्याभूत माया-शक्तिको मानना ही अनुचित है, तो इसका उत्तर यह है कि 'अम्बिकया' पदके साथ 'स्वस्रा' यह विशेषण उसके परिहारार्थ ही तो दिया गया है। 'स्वस्रा' का अर्थ है 'सहजसिद्ध'। इस अर्थको श्रीहरदत्ताचार्य और श्रीसुदर्शनाचार्यने भी स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि पुष्पमें गन्ध, चन्द्रमें चन्द्रिका और प्रभाकरमें प्रभा जैसे नित्य एवं स्वभावसिद्ध है, उसी प्रकार शिवमें शक्ति भी नित्य और स्वभावसिद्ध है। इससे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियोंका तात्पर्य केवलाद्वैतमें न होकर शक्तिविशिष्टाद्वैत (शिवाद्वैत) में ही है। जैसे 'इस घरमें देवदत्त एक ही है'—इस वाक्यका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि उसके कर-चरणादि अवयव नहीं हैं, उसी प्रकार 'ब्रह्म एक ही है' इस वाक्यसे भी यह अर्थ नहीं निकल सकता कि उसमें सहजसिद्ध शक्ति भी नहीं है, इसलिये अनेकानेक श्रुतियोंके अनुभवसे शक्तिविशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तकी ही प्रतिष्ठा होती है। 'क्रियासार' के रचयिता श्रीमन्नीलकण्ठ शिवाचार्यका तात्पर्य भी यही है।

हमने पहले सूचित किया था कि शक्तिविशिष्टाद्वैत-का अर्थ लिङ्गाङ्ग-सामरस्य है। वह इसप्रकार है—

शक्तिश्च शक्तिश्च शक्ती; शक्तिभ्यां विशिष्टौ शक्ति-विशिष्टौ; शक्तिविशिष्टयोः अद्वैतं शक्तिविशिष्टाद्वैतम्।

यहाँ 'विशिष्टौ' पदसे शिव और जीवका तात्पर्य है; इनमें रहनेवाली दो शक्तियोंको चिच्छक्ति और चित्तशक्ति जानना चाहिये। इनका सामरस्य अर्थात् अभेद ही है। शिव और जीवको ही 'लिङ्ग' और 'अङ्ग' नामसे निर्दिष्ट किया गया है। 'लिङ्गाङ्ग' में जो चिच्छक्ति है उसने 'मयूराण्डरसगत-पादपक्षवर्णवैचित्र्य' न्यायसे सूक्ष्म चिदचित्प्रपञ्चको अपने अन्तर्गत कर रक्खा है। इसीको 'विमर्श-शक्ति' या 'इच्छा-शक्ति' भी कहते हैं। इसप्रकारकी शक्तिसे विशिष्ट ही लिङ्ग है, इस विषयमें 'चैतन्यमात्मा' यह शिवसूत्र प्रमाण है। यह शक्ति फूले हुए बीजकी भाँति सृष्ट्युन्मुख होकर 'घृत-काठिन्य' न्यायसे अपने अन्दर स्थित समरस ज्ञान-क्रियाओंका परस्पर भेद करती है। वह भेद-बुद्धि ही माया-तत्त्व है। इसमें वह माया स्वयं प्रतिस्फुरण-गतिसे प्रविष्ट होकर सुख-दुःख एवं मोहको पैदा करनेवाली सत्त्वरजस्तमः-स्वभावरूप प्रकृति अथवा चित्तशक्ति कहलाती है। यहाँ 'चितिरेव चेतनपदावरूढा चैत्यसङ्कोचिनी चित्तम्'—यह शक्तिसूत्र ही प्रमाण है। इसप्रकारका चित्तशक्तिविशिष्ट शिवांश (चैतन्य) ही अङ्ग है। इसके 'जीव' और 'पुरुष'—ये दो नाम और भी हैं। 'चित्तमात्मा' नामक शिवसूत्रसे यही सिद्ध होता है और जीवके शिवांश होनेके विषयमें भी जगद्गुरु श्रीरेणुकाचार्य भगवत्पादकी—

अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तदंशो जीवनामकः।

—यह उक्ति, श्रीनीलकण्ठ शिवाचार्यकी—

शिवांशा ब्रह्मविष्ण्वाद्या अंशी देवः शिवः स्मृतः।

—नामक सूक्ति, श्रीमद्भगवद्गीताका 'ममैवांशो जीव-लोके' यह वचन और 'अंशो नाना व्यपदेशात्' यह ब्रह्मसूत्र भी प्रमाण है। इस जीवके स्वतन्त्र, स्वप्रकाश शिवसे विभक्त होनेका कारण यह है कि मायाने जब उसपर आक्रमण किया तब वह आणवमायीय कार्म मलोंसे आवृत होकर संसारी कहलाया और उपासक बना। लिङ्गकी 'स्थल' संज्ञा भी है। अनुभवसूत्रकी—

स्थलं नाम परं तत्त्वं शिवरुद्रादिसंज्ञकम्।
उपास्योपासकत्वेन स्वयमेव द्विधा भवेत्॥

—इस सदुक्तिके अनुसार लिङ्गाङ्ग-भेदसे दो प्रकारका होकर वह लिङ्ग-तत्त्व आगे चलकर पृथिव्यादिके अभिमान-से भक्तादि भिन्न नामवाला ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव और शुद्धात्मा—इस तरह छः प्रकारका हुआ। लिङ्ग भी भक्तादिके अनुग्रहार्थ पृथिव्यादिका अधिष्ठान होनेसे आधारादि छः स्थलोंमें सद्योजातादि भिन्न नामवाला आचारादि लिङ्ग-भेदसे छः प्रकारका हुआ। इस तरहके लिङ्गाङ्गोंका अद्वैत ही 'शक्तिविशिष्टाद्वैत' पदसे व्यक्त किया जाता है। इन लिङ्गाङ्गोंका अग्नि और उसके कणों-की भाँति भेदाभेद होनेके कारण—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परञ्चापरञ्च ।

—इत्यादि भेद-प्रतिपादक श्रुतियोंका और—

'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म,' 'नेह नानास्ति किञ्चन,' 'एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे,' 'यत्र नान्यत् पश्यति, नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति स भूमा ।'

—इत्यादि अभेद-प्रतिपादक श्रुतियोंका परस्पर विरोध नहीं है । जीव और ईश्वरका भेदवादियोंकी भाँति केवल भेद ही कहें तो अग्नि और उसके कणको भी भिन्न कहना पड़ेगा । तब कपासमें लगे हुए कणोंमें दाहकता न रहनी चाहिये, क्योंकि वे कण अग्निसे भिन्न ही तो हैं । अग्निसे भिन्न जलमें जो दाहकत्वका अभाव है वह सभीको विदित है । इसके अतिरिक्त 'यदग्ने रोहितं रूपम्' इस छान्दोग्य-श्रुतिसे सिद्ध अग्निके रोहित (लोहित=लाल) रूपसे कणका भिन्न रूप दिखायी पड़ना चाहिये ! इसीलिये अग्नि और कणोंमें दाहकत्व एवं रोहित रूप होनेसे केवल भेदका ही प्रतिपादन नहीं किया जा सकता, किन्तु अभेद भी मानना पड़ेगा । यदि उनका केवल अभेद ही इष्ट हो तो अग्निके पाक-साधनत्व, शीत-निवर्तकत्वादि समस्त धर्म उसके कणमें भी होने चाहियें ! सभीके अनुभवसे यह सिद्ध है कि ऐसा होता नहीं । इसीलिये 'क्रियासार'के रचयिताने—

अग्निस्फुलिङ्गयोर्नास्ति यथा भेदः स्वरूपतः ।
अग्नित्वेन कणत्वेन भेदोऽपि स्फुरति क्वचित् ॥

—यह कहा है । इसी तरह अंशीरूप शिवमें और अंशरूप जीवमें भी भेद और अभेद दोनों ही मानने उचित हैं, उपनिषदादिमें लिङ्गके निरंश कहे जानेपर भी अघटन-घटना-शक्ति-परिकल्पित जो अंश है उसका भेद सम्भव है । वह इसप्रकार है—अपने चक्रवर्तित्वके अनुसार छत्र, चामर, वाहनादि राजचिह्नोंसे युक्त होनेपर भी सार्वभौम अपने विनोदके लिये जैसे पैदल चलना स्वीकार करता है उसी प्रकार शिव भी अखण्डानन्दरसके आस्वादसे परितृप्त होनेपर भी खण्डरसके आस्वादनकी इच्छासे 'घृत-काठिन्य' न्यायसे अंशतः स्वस्वातन्त्र्यकल्पित आणवादि मलत्रयसे आवृत होकर शरीरी बन जाता है । इस मलावरणके कारण उस शिवांशरूपी जीवको उसी प्रकार अपने शिवत्वका ज्ञान नहीं रहता, जिसप्रकार पैदल चलनेवाले राजाको अपने राजा होनेका । 'एकाकी न रमते स तु द्वितीयमैच्छत्' इत्यादि श्रुतिके अनुसार परमशिव स्वयं अपनी स्वातन्त्र्य-शक्तिसे लिङ्गाङ्गरूपसे तथा उपास्योपासक-भावसे युक्त होकर रमण करता है, हमारे सिद्धान्तका यही अभिप्राय है ।

मुक्त-दशामें जीवका जो (चित्तशक्ति नामक) विशेषण है उसमें रहनेवाले आणवमलरूपी अज्ञान एवं तमोभूत अविद्याके लय होनेपर वह जीव 'तामसनिरसन-स्थलापन्न' हो जाता है, उसकी चित्त-शक्ति चिति-शक्ति-रूपिणी हो जाती है । इस विषयमें शक्ति-सूत्रोंका 'तत्परिज्ञाने चित्तमेवान्तर्भावेन चेतनपदाध्यारोहाश्चितिः' यह सूत्र प्रमाण है । लिङ्गाङ्ग-सामरस्यके दृढ़ ज्ञानसे जीवभावको पैदा करनेवाले मलत्रयका नाश होनेपर शुद्ध 'शिवांश' रूपी आत्मा नदी-सागरोंके सामरस्यकी भाँति महालिङ्गके साथ अभेदको प्राप्तकर शिव ही हो जाता है, उस समय शिव और जीवोंका अभेद ही है । बद्धदशामें लिङ्गाङ्ग-सामरस्यका ज्ञान न होकर चिति-सङ्कोचरूपी मलोंसे आवृत होनेसे जीवको शिवत्वकी प्राप्ति नहीं होती, इसीलिये उनमें भेद है ! इसलिये भेद और अभेदका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियोंका परस्परविरोध इस शक्तिविशिष्टाद्वैतरूपी वीरशैव-सिद्धान्तमें नहीं है ।

केचिद्द्वैतं प्रशंसन्ति केचिदद्वैतवादिनः ।
द्वयोः श्रुत्येकदेशित्वात् सर्वश्रुतिसमन्वयः ॥
भेदाभेदमते श्रौतैः परिग्राह्यो मुमुक्षुभिः ।

—इस कूर्मपुराणके वचनसे यह जान पड़ता है कि द्वैत और अद्वैत-मतोंमें श्रुतियोंकी एकदेशीयता होनेके कारण और भेदाभेद-मतमें सारी श्रुतियोंका समन्वय होनेसे पिछला मत मुमुक्षु वैदिकोंको परिग्राह्य है और यह भेदाभेदरूपी वीरशैव-मत ही परम वैदिक है । इसी बातको सिद्धान्तागममें भी स्पष्ट किया गया है—

द्वैताद्वैतमतं वीरशैवं मोक्षैककल्पकम् ।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥

यहाँपर यह शङ्का नहीं उठानी चाहिये कि शिव और जीवको भिन्न और अभिन्न—दोनों कहना परस्परविरुद्ध-सा है, क्योंकि प्रायः यह शास्त्र और लोकमें प्रसिद्ध ही है कि

जहाँ अभेद है वहाँ भेद भी है और जहाँ भेद है वहाँ अभेद भी है। नृसिंह-विग्रहमें नर और सिंहका भेद भी है और अभेद भी है। अर्धनारीश्वरमें नर (शिव) और नारी (गौरी) का भेद और अभेद दोनों हैं। लक्षणा एकमें ही जहद्भेद और जहदभेद दोनों है, लोकमें भी एक ही वृक्षमें कपिके रहनेपर कपि-संयोगीका अभेद और कपिके न रहनेपर कपि-संयोगी-का भेद देखा गया है। इसके अतिरिक्त जो भेद और अभेदको परस्परविरुद्ध कहता है उसको भेद और अभेदका ज्ञान तो रहना ही चाहिये, अन्यथा उनमें परस्परविरोधकी स्फूर्ति ही नहीं हो सकती। इसलिये उस भेदाभेदके ज्ञानमें जैसे भेद और अभेद दोनों हैं वैसे ही जीवके साथ शिवका भेद और अभेद दोनों ही हैं, क्योंकि शिव और जीवके भेदाभेद-विषयमें कोई विरोध नहीं है। हमारे इस शिवाद्वैत-मतमें भेद और अभेद सहज ही हैं। बद्ध-दशामें जीव-भेदको सहज कहें तो उसके बन्धको भी सहज मानना पड़ेगा! ऐसी दशामें उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती। कोई यह कहे कि नीमके पेड़का कड़वापन किसी उपायसे भी निवृत्त नहीं हो सकता, तो यह ठीक नहीं है। हमारे शक्तिविशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तमें सृष्टि स्वाभाविक होकर जगत् शिवरूप है। कटक-कुण्डलादि सोनेके स्वरूप ही तो हैं? उनमें भी तो सुवर्णका स्वभाव निवृत्त नहीं हुआ है। उसी तरह वह कटक-कुण्डलादि जब गलकर कठोर हो जाते हैं तब कटक-कुण्डलोंके नाम-रूपका नाश न होकर उनका लय अर्थात् सङ्कोच हो जाता है। हमारे मतमें निवृत्तिका अर्थ लय ही है। इसी तरह जगत् और उसके अन्तःपाती बन्धके स्वाभाविक होनेपर भी उनकी निवृत्ति सम्भव है। यह नियम नहीं है कि सभी जगह स्वाभाविक पदार्थकी निवृत्ति हो ही नहीं सकती, क्योंकि मौक्तिकत्व-दशामें शुक्तिगत जलस्वभावकी निवृत्ति दिखायी देती है। और—

कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम्।
मानवः शिवयोगेन शिवो भवति निश्चितम्॥

—इस स्मृति-वाक्यके अनुसार कीटके भ्रमरत्वकालमें पहलेके कीट-स्वभावकी निवृत्ति देखी जाती है। उसी तरह शिवयोगसे जीवभाव (बन्ध) की निवृत्ति भी होती है, मुक्तात्मा शिवयोगाभ्याससे अपनी चित्तशक्तिका विकास करके चिच्छक्तिमें मिलकर शिव ही हो जाता है। उसे शिवकी भाँति 'विश्वात्मकः शिवोऽहम्' 'असि, प्रकाशे, नन्दामि'—इसी प्रकारके अनुभव होते हैं, न कि 'स्थूलोऽहं गच्छामि', 'अहं सुखी दुःखी' इत्यादि अभिमान। इसीलिये मुक्तात्मा सारे संसारको अपना शिवस्वरूप ही देखता है। उसकी दृष्टिमें दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है, होती तो उससे बन्ध होता। कारण, मुक्तात्माके लिये बन्धकी सम्भावना ही नहीं है। घड़ा बाहर हो तो उसको रस्सीसे बाँध सकते हैं; परन्तु जब वह इच्छा-भूमिमें सूक्ष्मरूपसे प्रवेश करता है तब उसके बन्धकी सम्भावना नहीं रहती, इसी प्रकार जीव शिवयोगसे अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण-शरीरोंमें इष्ट, प्राण एवं भावलिङ्गोंको दृढ़तासे धारणकर उन शरीरोंमें 'मैं' और 'मेरा' रूप अहङ्कार और ममकारको छोड़कर 'वह लिङ्ग ही मैं हूँ' इसप्रकारके साक्षात्कारके द्वारा शरीरत्रयकी निवृत्ति करके देहपातके बाद सर्वज्ञत्वादि छः शक्तियोंसे युक्त होकर जब शिवत्वको प्राप्त हो जाता है तब उसका पुनर्बन्ध नहीं होता। इसमें निम्नलिखित श्रुतियाँ प्रमाण हैं—

'न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते।'
'अनावृत्यशब्दात्।'

स्थूल शरीर ही कार्मिक मल है। इसके अन्तर्गत प्रकृतिसे लेकर पृथिवीतक २४ तत्त्व हैं। सूक्ष्म शरीर ही मायीय मल है, इसमें मायासे लेकर अविद्यापर्यन्त तत्त्व अन्तर्भूत हैं। 'मायोपरि महामाया'—इस उक्तिसे शुद्ध विद्याके नीचे और माया-तत्त्वके ऊपर रहनेवाली ही महामाया है। यह आणव-मलस्वरूप है। इस मलत्रयको श्रीगुरुमूर्तिके द्वारा—

देहत्रयगतानादिमलत्रयमसौ गुरुः।
दीक्षात्रयेण निर्दह्य लिङ्गत्रयमुपादिशत्॥

शिवदीक्षासे ही निवारण होकर 'यः शिवत्वसमावेशो वैधी दीक्षेति सा मता' के अनुसार शिष्यमें शिवत्वका भी समावेश हो जानेके बाद फिर शिष्यका क्या कर्तव्य रह जाता है? क्या फिर श्रवण-मननादि व्यर्थ नहीं हो जाते—इत्यादि आशङ्काएँ नहीं करनी चाहियें। क्योंकि गुरुमूर्ति दीक्षात्रयसे शिष्यके मलत्रयको नष्टकर उसे 'शुद्धाध्व' में प्रवेश कराकर जब उसके अन्दर शिवत्वका आपादन कर देती है, तब उस शिष्यको 'मैं शिव ही हूँ'—ऐसा दृढ़तर स्वरूपसाक्षात्कार हो जाता है और वह मुक्त हो जाता है। पर यह मुक्ति सद्योनिर्वाण-दीक्षासे ही हो सकती है। इस दीक्षाके बाद देहपतनके साथ ही शिष्य मुक्त हो जाता है। उसे फिर श्रवण-मननादिकी ज़रूरत नहीं रहती। परन्तु चिरनिर्वाण-दीक्षाके योग्य स्त्री,

बालकादिको सद्योनिर्वाण-दीक्षा नहीं दी जा सकती। इनको चिरदीक्षा देकर गुरुमूर्ति 'तत्त्वमसि' महावाक्यार्थका ही बोध करानेवाले पञ्चाक्षरी महामन्त्रका उपदेश देकर 'इस मन्त्रका जप मत छोड़ो', 'तीनों सन्ध्याओंमें शिवपूजन करो', 'इस इष्टलिङ्गको ही परमशिव ब्रह्म समझो' इत्यादि आज्ञा देकर लिङ्ग और अङ्गके भेदको समझाकर लिङ्गोंके साथ उन अङ्गोंके सामरस्यको बतलाकर इस षडङ्गयोगके अभ्यासके लिये बाध्य करता है। शिष्य यदि दीक्षागुरुकी आज्ञाका पालन करता जायगा तो आगे मुक्तिरूप फलकी सिद्धि होनेमें कोई शङ्का नहीं रह जायगी। इस फलके लिये चिर-निर्वाण-दीक्षा-सम्पन्न लोगोंको दीक्षागुरूपदिष्ट शिवपञ्चाक्षरी-महामन्त्रका श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करते ही रहना चाहिये। साथ ही इस मन्त्रार्थके अनुकूल ब्रह्म-मीमांसाशास्त्र और पुराणादिका पठन-पाठन करना चाहिये। इस मार्गका अनुसरण करनेसे दीक्षाकालमें गुरुका बोया हुआ शिवतत्त्व-समावेशरूप लिङ्गाङ्ग-सामरस्यबीज अङ्कुरित और पल्लवित होकर फलीभूत होता है, अतएव—

> आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया।
> दद्यान्नावसरं किञ्चित् कामादीनां मनागपि॥

—इत्यादि वचनोंकी सार्थकता है। इसप्रकार यह शिवाद्वैतसिद्धान्त समस्त श्रुतियोंका समन्वय करनेवाला और मोक्षका एकमात्र कल्पतरु होनेके कारण मोक्षार्थी शिष्टलोग इसके आचरणको अपनाकर अनादि कालसे मुक्त होते आ रहे हैं।

ध्यातव्यः परमः शिवः।

शुद्धाद्वैत-पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तमें शिव-तत्त्व

(लेखक—अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य श्रीमद्वल्लभाचार्यप्रकटित शुद्धाद्वैत-सम्प्रदायाचार्य गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी महाराज-तनुज श्रीकृष्णजीवनजी 'विशारद,' बड़ामन्दिर, बम्बई)

आजकल जिस तरह हिन्दू-मुसलमान लड़ते हैं, उसी तरह प्राचीन कालमें शैवों और वैष्णवोंमें झगड़े हुआ करते थे। दोनों ओरसे गाली-गलौज और बलप्रयोगमें कोई कसर नहीं रक्खी जाती थी। रक्तपात करनेमें कोई ज़रा भी नहीं हिचकता था। ईश्वरको धन्यवाद देना चाहिये कि अब यह दशा नहीं है। तो भी आज कहीं आग्रही वैष्णव और आग्रही शैव मिल जायँ तो हाथा-पाई हो ही जाती है। क्योंकि दोनों अपने-अपने सिद्धान्तोंका उत्कर्ष बताते-बताते एक-दूसरेके आराध्य देवोंको अवाच्य शब्द कहने लग जाते हैं। शैव श्रीविष्णुके लिये अवाच्य शब्द कहने लगता है और वैष्णव श्रीशिवको गालियाँ देनेमें नहीं सकुचाता। यह व्यवहार सर्वथा अनुचित है। पुष्टिमार्गीय वैष्णवके लिये तो श्रीशिव परमादरणीय हैं।

कई एक वैष्णव-सम्प्रदायोंमें श्रीशिवकी जीवकोटिमें गणना की गयी है, क्योंकि वे अहङ्कारके अधिष्ठाता हैं। अहङ्कारका अध्यास जीवको ही होता है, ईश्वरको नहीं; अतः वे लोग श्रीशिवको ईश्वर नहीं मानते। पर श्रीमद्वल्लभाचार्य-चरणोंके सिद्धान्तसे श्रीशिवको जीव नहीं माना जा सकता; क्योंकि श्रीशिवको अहङ्काराध्यास नहीं है, किन्तु अभिमान-मात्र है। अतएव 'शिवः शक्तियुतः' (श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध ८८। ३)—इत्यादिपर श्रीसुबोधिनीके 'अहङ्काराभिमानेऽपीति' इस वाक्यकी व्याख्या करते हुए, 'लेख' में श्रीवल्लभजी महाराज लिखते हैं—'अहङ्काराध्यासो जीववन्नास्ति, किन्तु अभिमानमात्रमेव।' ऐसी दशामें श्रीशिवकी जीव-कोटिमें गणना करना ठीक नहीं; प्रत्युत श्रीमद्भागवतमें उन्हें तमोगुणावतार कहकर ईश्वर बताया है। अतएव श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज स्वरचित 'उत्सव-प्रतान'में लिखते हैं—

अहङ्काराधिष्ठातुर्जीवत्वेऽपि गुणावतारस्येश्वरकोटित्वात्। तथाहि—श्रीमद्भागवतचतुर्थस्कन्धे (१।२०)—

> शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः।
> प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन्॥

इति मनस्यभिसन्धायात्रिणा प्रजार्थं तपःकरणे—

> तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाऽग्निना।
> निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः॥
> अप्सरोमुनिगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः।
> वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः॥

—इत्यन्तेन

> 'विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानै-
> र्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः।

ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं व-
स्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥
इत्यत्रिस्तुत्यादिना च त्रयाणामीश्वरत्वमवगम्यते ।

अर्थात् मात्र अहङ्काराधिष्ठाताको जीव कह सकते हैं; पर श्रीशिवको जीव नहीं कह सकते, क्योंकि श्रीशिव निर्गुण श्रीकृष्णके तमोगुणावतार हैं। यही बात श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें लिखी है—'मैं उसकी शरण हूँ जो जगत्का ईश्वर है; वह मुझे अपने समान सन्तति दे', यह विचार करके जब अत्रि ऋषि पुत्रके लिये तप करने लगे तब उनके मस्तकसे निकली हुई और उनके प्राणायामसे बढ़ी हुई अग्निसे त्रिभुवनको सन्तप्त देखकर तीन स्वरूप प्रकट हुए। यशोगान करनेवाले अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, विद्याधर और शेषनागके साथ वे अत्रिके आश्रमको गये। वहाँ अत्रिने उन तीनों स्वरूपोंकी स्तुति करते हुए कहा कि 'जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये प्रतियुगमें मायाकी सहायतासे सत्त्व, रज और तमोगुणसे देह ग्रहण करनेवाले विष्णु, ब्रह्मा और शिवको प्रणाम करता हूँ। आप तीनोंमें वे कौन हैं, जिनको मैंने बुलाया है।' इस स्तुतिसे श्रीशिवकी ईश्वरता प्रकट होती है, क्योंकि उनको गुणावतार बताया गया है।

यहाँ 'मायागुणैः' इस शब्दसे यह सन्देह हो सकता है कि श्रीशिव प्राकृत तमोगुणके अवतार हैं, पर वस्तुतः यह बात नहीं है। वे तो भगवदीय तमोगुणके अवतार हैं। क्योंकि श्रीमद्भागवत-द्वितीयस्कन्धके पाँचवें अध्यायके श्लोक १८ में लिखा है—

सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ।
सर्गस्थितिनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥

इसकी व्याख्या करते हुए श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण लिखते हैं—

यथोर्णनाभिः सृष्ट्यर्थमेकासूर्णामुद्गमते, तथा भगवानपि त्रिविधसृष्ट्यर्थं त्रीन् गुणानुद्गमते; गुणरूपत्वाच्च गुणशब्दव्यवहारः। सद्रूपेण निर्गतं सत्त्वमित्युच्यते, केवलचिद्रूपेण निर्गतं क्रियाशक्तिप्रधानत्वात् सदानन्दाभावाच्च रज इत्युच्यते, आनन्दांशाच्च तमः। ते भगवद्रूपा एव भगवता सृष्टाः। न च भगवति ते पूर्वं स्थिताः, तथा सति भगवदात्मकास्ते न भवेयुः। यथा कार्पासे नहि सूत्रं तदेव हि पश्चात् स्वावयवैः पौर्वापर्यमापद्यमानं सूत्रतामापद्यते, अत एव भगवान् निर्गुणः। ते गुणाः पुनः सर्गस्थितिनिरोधेषु उत्पत्तिस्थितिलयार्थं गृहीताः, तेषामपि ग्रहणं मायया।

अर्थात् मकड़ी जिस तरह जाला बनानेके लिये तन्तु निकालती है, उसी तरह भगवान् भी त्रिविध सृष्टिके लिये आरम्भकालमें सदंशसे सत्त्व; सदंश-आनन्दांशसे रहित, क्रियाशक्तिप्रधान, केवल चिद्रूपसे रज; और आनन्दांशसे तमकी सृष्टि करते हैं। ये तीनों भगवद्रूप हैं। इनका और भगवान्का तादात्म्य-सम्बन्ध है, न कि आधाराधेयभाव। क्योंकि आधाराधेयभाव स्वीकार करनेसे इनकी भगवदात्मकताकी व्याहति होती है। जैसे रूईमें सूत नहीं दीखता, तो भी रूईके ही अवयवोंके पौर्वापर्यभावसे सूत बनता है, उसी तरह भगवान् निर्गुण रहते हुए भी इन तीनों गुणोंकी सृष्टि करते हैं और उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये इनका मायासे ग्रहण करते हैं।

इन तीनोंमेंसे जो भगवान्के आनन्दांशसे उत्पन्न शुद्ध भगवदात्मक तम है, वही श्रीसङ्कर्षण कहा जाता है और यह परमशिवकी प्रकृति है। क्योंकि श्रीभागवतके पञ्चम स्कन्धके १७ वें अध्यायके श्लोक १६ में लिखा है—

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ।

जब इसी तमको भगवान् अपनी सर्वसामर्थ्यरूपा और सर्वप्रतिकृतिरूपा मायासे आकृतियुक्त करके प्रवेश करते हैं, तब वह उनका गुणावतार कहलाता है। यही श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणोंके सिद्धान्तमें 'परमशिव' पदार्थ है। पुष्टिमार्गके मर्मज्ञ विद्वान् श्रीबालकृष्ण भट्ट 'प्रमेयरत्नार्णव' नामक ग्रन्थके अन्तर्गत 'मूलस्वरूपनिरूपणम्' नामक प्रकरणमें शिव-तत्त्वका निर्णय करते हुए इसी बातको सुस्पष्टरूपसे लिखते हैं—

अप्राकृते तमसि विग्रहभूते वह्नययोगोलकन्यायेन प्रविष्टः शिवशब्दवाच्यो भवति ।

'अग्नि जिस तरह लोहेके गोलेमें प्रवेश करती है, उसी तरह सृष्टिके आरम्भकालमें निर्गुण श्रीकृष्ण जब साकार, भगवदात्मक, अप्राकृत तमोगुणमें प्रवेश करते हैं, तब वह श्रीशिव कहलाते हैं।' वही श्रीशिव जब प्राकृत तमोगुणके नियामक बनते हैं तब सगुण कहलाते हैं। किन्तु तब भी उनका ईश्वरत्व अव्याहत ही रहता है, अतएव श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणोंने—

स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान् भवः।

(श्रीमद्भागवत ३। १२। ८)

—की श्रीसुबोधिनीमें लिखा है—'स तु भगवान् न जीवांशः'—वह भगवान् हैं, जीव नहीं।

श्रीशिवके इसी स्वरूपको भिन्न-भिन्न स्थलोंपर भिन्न-भिन्न रूपसे कहा गया है। एक जगह श्रीशिवको 'वेदः शिवः शिवो वेदः' कहकर वेदात्मक बताया है। ठीक ही है; क्योंकि श्रीमद्भागवत (६। १६। ५१) के 'शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू'—इस श्लोकमें श्रीसङ्कर्षणको वेदस्वरूप कहा है—और यही श्रीशिवके उपादान-कारण हैं। अतः शुद्धाद्वैत-सिद्धान्तमें कार्य-कारणका अभेद होनेसे श्रीशिवकी वेदात्मकता सिद्धान्तविरुद्ध नहीं है। अतएव 'विद्याकामस्तु गिरिशम्'—इस वाक्यमें ब्रह्मविद्या आदि विद्याओंकी प्राप्ति श्रीशिवसे होती है, यह कहा है। क्योंकि श्रीशिव श्रीसङ्कर्षणके कार्य हैं और ज्ञानप्राप्ति श्रीसङ्कर्षणसे होती है—यह 'ज्ञानशक्तिस्तस्य मुख्या' इस एकादश स्कन्धके 'तत्त्वदीप' निबन्धसे मालूम होता है। इसलिये श्रीशिवको सर्वविद्येश्वर भी कहते हैं।

श्रीशिव वैष्णवाग्रगण्य हैं, क्योंकि श्रीमद्भागवतमें 'वैष्णवानां यथा शम्भुः' कहा है। आप प्रचेता-जैसे भगवदीयोंको भागवत-धर्मका उपदेश करते हैं। क्योंकि तृतीय स्कन्धीय निबन्धमें सृष्टिके आरम्भकालमें श्रीशिवके रोदनका कारण बताते हुए श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणोंने कहा है—'अयमंशः कृपारूपः।' अविद्याग्रस्त जीवोंको उत्पन्न होते हुए देखकर श्रीशिवको रोना आया। इसीलिये आप दैवी जीवोंको भागवत-धर्मका उपदेश देकर उनके अविद्यारूपी अन्धकारको दूर करते हैं और इसप्रकार भगवत्प्राप्तिमें उनकी सहायता करते हैं। परन्तु असुरोंका तो वे मोहन ही करते हैं, क्योंकि—

त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय।

(पद्मपुराण)

—ऐसी भगवदाज्ञा है।

यह श्रीशिवका आधिदैविक स्वरूप है। 'रुद्राणां शङ्करश्चास्मि' (गीता)—इसमें शङ्करशब्दप्रतिपाद्य यही हैं। इनका आध्यात्मिक रूप है एकादश रुद्रगण और आधिभौतिक रूप है 'ससर्जात्मसमाः प्रजाः' (श्रीमद्भागवत ३। १२। १४)—इस पद्यांशमें प्रतिपादित रुद्रसृष्ट रुद्र। अतएव श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज तामस-सृष्टि-प्रकरणीय 'श्रीसुबोधिनी' के 'प्रकाश' में लिखते हैं—

आधिभौतिका रुद्रसृष्टा रुद्राः, आध्यात्मिका गणरुद्राः, आधिदैविको नीलरुद्रो ज्ञातव्यः।

इस तरह विचार करनेसे यह प्रकट होता है कि श्रीशिव निर्गुण श्रीकृष्णके गुणावतार हैं, सर्वविद्येश्वर हैं, वेदस्वरूप हैं, वैष्णवाग्रगण्य हैं, वैष्णव-धर्मोपदेष्टा हैं और सर्वदेहीश्वर हैं; इसलिये श्रीशिव परमादरणीय और प्रणम्य हैं। शिवरात्रि-व्रत और शिव-पूजन वैष्णवोंको करना चाहिये या नहीं, इसका विचार करते हुए श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज 'उत्सवप्रतान' में यही बात लिखते हैं—

व्रतं तु न कार्यम्, 'भवव्रतधराः' इति भागवते चतुर्थस्कन्धे निन्दाश्रवणात्।...... व्रताकरणं तु निषिद्धत्वादेव न तु शिवद्वेषात्।...... अवतारत्वेऽपि देवतान्तरत्वाक्षतेः, तद्व्रतकरणेऽविधिपूर्वकभजनापत्तिः 'येऽप्यन्यदेवता भक्ताः' इत्यादि भगवद्वाक्यात्। तस्माद्भगवान् शिवः अवतारत्वात्, वैष्णवमुख्यत्वात्, वैष्णवधर्मोपदेष्टृत्वात्, वेदरूपत्वात्, सर्वविद्येश्वरत्वात्, सर्वदेहीशानत्वाच्च नमस्य एव मान्य एव, व्रतं तु निन्दितत्वादकरणीयम्।

अर्थात् 'वचनात्प्रवृत्तिर्वचनान्निवृत्तिः' इस सिद्धान्तके अनुसार श्रीमद्भागवत आदि वैष्णव-शास्त्रोंमें 'भवव्रतधराः' आदि श्लोकोंमें निषिद्ध होनेसे शिवरात्रि-व्रत वैष्णवोंके लिये अकर्तव्य है, न कि शिव-द्वेषके कारण। यद्यपि श्रीशिव निर्गुण श्रीकृष्णके गुणावतार हैं, तो भी देवतान्तर तो हैं ही; इसलिये शिवरात्रि-व्रत करनेसे—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

—इस गीतावाक्यके अनुसार श्रीकृष्णका अविधिपूर्वक भजन होगा। तब भी भगवान् श्रीशिव गुणावतार हैं, वैष्णवश्रेष्ठ हैं, वैष्णवाचार्य हैं, वेदरूप हैं, सर्वविद्येश्वर हैं, सर्वदेहीशान हैं; इसलिये परममान्य हैं और नमस्करणीय हैं।

शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य दार्शनिक-सार्वभौम, साहित्य-दर्शनाद्याचार्य, तर्करत्न, न्यायरत्न गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री)

एको हि भगवान् विश्वं प्रकारैर्भेदमावहन् । चरीकर्त्ति वरीभर्त्ति सञ्जरीहर्त्ति लीलया ॥

ल्याणमयस्वरूप परमात्माके अनन्त कल्याणगुणराशिमेंसे यथासम्भव कल्याण-गुणोंका चयन करनेवाले लेखोंसे भूषित कल्याणकारी 'कल्याण' पत्रके वाचक महोदयवृन्दकी सेवामें प्रायः एक वर्षके अनन्तर मैं सुमनःप्रसादक सुमनःप्रवर (देववर) की सुमनःसम्पादित सपर्याका अम्लान प्रसादरूप सुमनः-(कुसुम) स्तवकोपहार लेकर उपस्थित हो रहा हूँ ।

'कल्याण' का यह विशेषाङ्क 'शिवाङ्क'के नामसे निकल रहा है, सुतरां यहाँ 'शिव' शब्दका अर्थ कौन-सा विवक्षित है—इसका निश्चय अवश्यकर्त्तव्य है ।

'शिव' शब्दके चार प्रधान अर्थ प्रसिद्ध हैं—

(१) मायासे तटस्थ तत्त्व अर्थात् निर्विशेष ब्रह्म, (२) श्रीविष्णु-तत्त्व, (३) श्रीशम्भु-तत्त्व और (४) मङ्गल । यहाँ चौथे पक्षमें अर्थजिज्ञासाके हेतु यत्न अनावश्यक है; क्योंकि पूर्व तीनों अर्थोंमेंसे किसी एकके सम्बन्धमें प्रयुक्त शब्द-मात्रसे ही उसका लाभ अवश्य हो जायगा । और प्रथम पक्षवाला अर्थ भी अभिप्रेत नहीं है—इसका वर्णन 'ईश्वराङ्क' में यथाशक्ति हो चुका है । 'श्रीकृष्णाङ्क' में यथाशक्ति भगवान् श्रीकृष्णका गुणकीर्त्तन हो जानेसे दूसरे पक्षमें भी वक्ताका तात्पर्य नहीं झलकता । परिशेष-न्यायसे तृतीय पक्षके अनुसार भव-तत्त्वकी छायाका आश्रय लेकर भवतापोंके पराभवके सम्भवका अनुभव करना ही इस लेखका प्रतिपाद्य है ।

यद्यपि शिव-तत्त्व भी अत्यन्त निगूढ है तथा इसका समझना नितान्त दुरूह है, तथापि हताश होनेकी आवश्यकता नहीं है । क्योंकि एक भक्तप्रवरने—

अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्

—कहकर प्रबल समाश्वासन दे रक्खा है । किन्तु किया भी क्या जाय ? पशुपतिके अमोघ पाशोंमें जकड़े हुए पशु-विशेष नाना कारणोंसे एवं नाना प्रकारसे नानाविध व्यामोहोंसे आक्रान्त होकर, सर्वसमन्वयरूप शान्त राजमार्गसे बहक कर, कण्टकित पगडण्डियोंसे चलकर स्वयं लक्ष्यभ्रष्ट होते हैं । पूछनेपर पथ-प्रदर्शकोंके बतलानेकी दुहाई भी दे देते हैं तथा कोमल श्रद्धाशाली पथिक भी पगडण्डीसे चलकर लक्ष्यलाभकी शीघ्रताके उन स्वप्नोंको देखते हैं जिनसे छुटकारा पाकर जागरणावस्थाका अनुभव अनन्त समयतक दुर्लभ हो जाता है । सारांश यह है कि जो विचारक महाशय शब्दको भी प्रमाण मानते हैं उनकी इस मान्यताका महत्त्व तभी है जब प्रमाणस्वरूप शब्दोंमें अप्रमाणताका कलङ्क स्पर्श न कर सके । यह भय सर्वसमन्वयके मार्गमें ही दूर होता है ।

इस मार्गके प्रधान प्रदर्शकोंमें उत्तरमीमांसादर्शन अर्थात् वेदान्तशास्त्र भी है । इस दर्शनने हर पहलूसे मायाके ऊपर निरङ्कुश एवं नित्य प्रभुताका जीवमात्रके अन्दर निषेध किया है । फलतः ईश्वर ही मायापरिचालक सिद्ध होते हैं । यहाँ भी शास्त्रोंमें जिस तारतम्यादिका वर्णन है वह पादविभूतिमें प्राकट्याप्राकट्यके अभिप्रायोंको लेकर ही है । अनादि संसारप्रवाहमें बहते हुए जीवोंके उद्धारके लिये तथा भक्तवत्सलतावश—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

—इस गीताके वाक्यके अनुसार श्रीशिवरूपसे पाद-विभूतिमें जब लीला-अभिनय आरम्भ होता है, तब स्वात्माराम श्रीसदाशिव सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशानरूपसे क्रमशः जगत्की सृष्टि, स्थिति, प्रलय, निग्रह एवं अनुग्रहरूप कार्य करते हैं । इनमेंसे पहले तीन कृत्य तो समष्टि-दृष्टिसे साधारणतया स्पष्ट ही हैं, व्यष्टि-दृष्टिसे शेष दो कृत्योंके अन्दर त्रिपुरदाह, अन्धकविजय, गजासुरमर्दन, मखविध्वंस एवं मदनदहनादि तथा हरिहरैक्य, अर्धनारीश्वरविग्रह, दारुवनविहार, किरातलीला, शबरलीला, शरभलीला तथा बाण प्रभृतियोंको वरदानादि असंख्यात दिव्य चरित्र आ जाते हैं । अर्चाद्वारा भी भगवान् शिव ज्योतिर्लिङ्ग, सतीपीठेश्वर एवं बाणलिङ्गादिरूपसे जीवोंपर अनुग्रह करते ही हैं । ऐसी स्थितिमें—

स्थित्याद्यो हरिविरञ्चिहरेति संज्ञाः

—इत्यादि शास्त्रप्रमाण विशेष कारण न रहनेपर सामान्य जगत्प्रबन्धको सिद्ध करते हैं; क्योंकि—

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥

तात्पर्य-निर्णयकी इस सर्वसम्मत रीतिके अनुसार इस-प्रकारके वाक्योंका तात्पर्य कैतवशून्य परमधर्मके ही प्रतिपादनमें है, न कि सृष्टि आदि कार्योंके कर्तृत्व आदिकी विशेष व्यवस्थाके दिखलानेमें, यद्यपि सामान्यरूपसे इसका उल्लेख तो महापुराणोंके लक्षणरूप सर्ग-विसर्ग आदि दस घटनाओंके वर्णनमें प्रसङ्गवश आना ही चाहिये ।

दार्शनिक सिद्धान्तके अनुसार विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत एवं द्वैत-प्रस्थानोंमें भी शिवपरताका निदर्शन श्रीकण्ठीय दर्शन, पाशुपत दर्शन, प्रत्यभिज्ञा-दर्शन आदि शैव दर्शनोंमें यथासम्भव मिलता ही है । केवलाद्वैत-प्रस्थानमें तो निर्विशेष ब्रह्मका प्रतिपादन होनेसे सविशेष ब्रह्मकी उपासनाके लिये गुंजाइश ही नहीं है ।

इसप्रकार श्रीशिवके सम्बन्धमें आवश्यक बातें सूत्ररूपसे निवेदनकर पाठकवर्गसे इस समय मैं विदा लेता हूँ ।*

शिव-तत्त्व

(परमपूज्यपाद श्रीउड़ियास्वामीजीके विचार)

प्र०-शिव-तत्त्व क्या है ? लिङ्गोपासनाका क्या रहस्य है ? उसका अधिकारी कौन है और उसका मुख्य फल क्या है ? कुछ ऐसी सत्य घटनाएँ सुनाइये जो आपके अनुभवमें आयी हों ।

उ०-हमारे विचारसे शिव-तत्त्व वही है जिसका वर्णन श्वेताश्वतर उपनिषद्के इस मन्त्रमें किया गया है—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥†
(३ । ११)

लिङ्गका अर्थ प्रतीक (चिह्न) है । शिवलिङ्ग पुरुषका प्रतीक है और शक्ति प्रकृतिका चिह्न है । पुरुष और प्रकृतिका संयोग होनेपर ही सृष्टि होती है, जैसा कि कहा है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम् ।

उन पुरुष और प्रकृतिकी संयुक्त उपासना करनेसे बहुत शीघ्र फल मिलता है, इसीलिये शक्तिस्थित शिवलिङ्गकी उपासना की जाती है ।

भगवान् शिव आशुतोष हैं । वे यों तो जिसकी जैसी इच्छा होती है उसीको तत्काल पूर्ण कर देते हैं; परन्तु मुख्यतया मोक्ष और विद्या-प्राप्तिके इच्छुकोंको शिवोपासना करनी चाहिये । मोक्षदाता देव मुख्यतया भगवान् शङ्कर ही हैं । इसीलिये शिवपुरी काशीके विषयमें 'काशीमरणान्मुक्तिः' ऐसा प्रसिद्ध है । अन्य देवों या अवतारोंकी पुरियोंमें निवास करनेवालोंके लिये उन्हीं लोकोंकी प्राप्ति शास्त्रमें बतलायी है—कैवल्यमोक्षकी नहीं ।

[तदनन्तर, श्रीमहाराजने कुछ सच्ची घटनाएँ सुनायीं, उनमेंसे एक यहाँ लिखी जाती है—]

एक बार एक ब्रह्मचारी और एक बंगाली नवयुवकने श्रीवैद्यनाथके मन्दिरमें धरना देनेका निश्चय किया। ब्रह्मचारी महोदयके पास एक छतरी और दस-ग्यारह रुपये थे । वे कविवर श्रीहर्षके समान कवित्व-शक्ति प्राप्त करना चाहते थे । बंगाली नवयुवकको शूल-रोग था और उसके पास सौ सवा सौ रुपयेकी सम्पत्ति थी । दोनोंने अपना रुपया-पैसा और सामान एक पंडाको सौंप दिया और अपने भोजनादिका प्रबन्ध भी पंडेको ही सौंपकर स्वयं धरना देकर पड़ गये । परन्तु वह पंडा उनका सारा सामान लेकर चला गया और उनके प्रसाद-ग्रहणकी भी कोई व्यवस्था न रही ।

चार दिन बीतनेपर ब्रह्मचारी महोदयके अन्तःकरणमें

* इस लेखके सम्बन्धमें जिन महाशयोंको कुछ कहना-सुनना हो वे कृपया सूचित करेंगे तो लेखक सादर उनका समाधान करनेकी चेष्टा करेगा ।

† समस्त मुख, समस्त शिर और समस्त ग्रीवाएँ भगवान् शिवकी ही हैं, वे सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित हैं और सर्वव्यापी हैं, अतः शिव सर्वगत हैं ।

अकस्मात् वैराग्यका प्रादुर्भाव हुआ। वे सोचने लगे, 'आखिर, श्रीहर्ष भी तो कालके गालमें ही चले गये, फिर उनके कवित्वसे ही मुझे क्या लेना है?' ऐसा सोचकर उन्होंने धरना छोड़ दिया और अपने बंगाली मित्रके लिये प्रसाद आदिकी सुव्यवस्था करा दी। ग्यारह दिन बीतनेपर उस बंगाली युवकको स्वप्नमें भैरवका दर्शन हुआ। उसे भाँति-भाँतिके भय दिखाये गये; परन्तु वह अपने निश्चयसे विचलित न हुआ। तेरहवें दिन उसे फिर भैरवका स्वप्नमें दर्शन हुआ। उस समय उसने अपना दुःख निवेदन किया। तब भैरवजीने कहा—'तुम पूर्वजन्ममें शिवोपासक थे। उस समय तुम्हें भगवान् शङ्करकी उपासनाके लिये जो द्रव्य दिया जाता था उसमेंसे बहुत-सा तुम हरण कर लेते थे। उस पापके कारण ही तुम्हें यह रोग हुआ है, यह तुम्हारे इस जन्ममें दूर नहीं हो सकता। परन्तु तुमने भगवान् शिवकी शरण ली है, इसलिये इस जन्ममें भी यह और अधिक नहीं बढ़ेगा।'

तदनन्तर उस बंगाली युवकने धरना छोड़ दिया और उसका रोग, जो अबतक निरन्तर बढ़ता रहा था, और अधिक नहीं बढ़ा तथा वह भगवान् शिवका अनन्य भक्त हो गया।

(प्रेषक-श्रीमुनिलालजी)
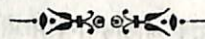
शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज, मण्डलेश्वर, काशी)

वस्तुतः पक्षपातरहित दृष्टिसे विचार किया जाय तो समस्त प्राणियोंके अन्तःकरण शिव-तत्त्वकी ओर स्वभावतः ही खिंचे हुए हैं। अथवा यों कह सकते हैं कि शिव-तत्त्वका ही यह असाधारण स्वभाव है कि वह समग्र जीवोंके अन्तःकरणोंको अपनी ओर खींचे रखता है। कारण, 'श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्' (अमरकोष) एवं 'शिवं च मोक्षे क्षेमे च महादेवे सुखे' इत्यादि (विश्वकोष) के अनुसार शिव, अद्वैत, कल्याण और आनन्द—ये सारे शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं। और यह अनुभवसिद्ध है कि कल्याण या आनन्दके लिये ही सारा संसार प्रवृत्त हो रहा है। अवश्य ही, पामर और विषयी जीवोंकी प्रवृत्तिका विषय अज्ञानवश निरवच्छिन्न कल्याण या आनन्द नहीं है; तथापि पुत्र, धनादि-सम्बन्धी सुखको विषयीजन भी चाहते हैं। परन्तु इससे क्या! वे हैं तो आनन्द या सुखकी ही खोजमें! इसप्रकार सभी प्राणी सुखके ही गीत गाते हैं। 'तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः' (छान्दोग्य)—यह श्रुति भी यह बतलाती है कि वीणाकी झङ्कारमें जो सङ्गीत निकलता है उसका लक्ष्य सर्वान्तर्यामी आनन्द ही है। समस्त वेद भी शिवरूप आनन्दके ही गीत गाते हैं—उनमें अद्वैत शिव-तत्त्वका ही प्रतिपादन है। यह बात 'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति', 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'—इत्यादि श्रुतियोंसे और 'शास्त्रयोनित्वात्', 'तत्तु समन्वयात्', 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' इत्यादि स्मृतियोंसे भी सिद्ध है। मुक्तिकोपनिषद्में श्रीरामचन्द्रजी और श्रीहनुमान्जीका जो संवाद है उससे भी यह निश्चय होता है कि सम्पूर्ण वेदोंका प्रतिपाद्य विषय अद्वैत शिव-तत्त्व ही है। उक्त संवाद इसप्रकार है—

अयोध्यानगरीमें सुरम्य रत्नमण्डपके मध्यमें लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—तीनों भाइयों एवं भगवती सीताके सहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं। पास ही सनकादि, वशिष्ठादि और शुकादि ऋषि-मुनि अवस्थित हैं और इधर-उधर अन्य अनेक भागवत जन भी बैठे स्तुति कर रहे हैं। उसी समय उन सबकी बुद्धिके साक्षी और स्वयं निर्विकार, स्वरूपध्याननिरत भगवान्के समाधिविरत होनेपर भक्ति एवं शुश्रूषाके साथ स्तुति करते हुए हनुमान्जीने कहा—

'हे श्रीरामजी! आप परमात्मा हैं, सच्चिदानन्दविग्रह हैं। हे रघुकुलश्रेष्ठ! मैं आपको वारंवार प्रणाम करता हूँ। भगवन्! मैं इस समय मुक्तिकी कामनासे आपके स्वरूपको तत्त्वतः जानना चाहता हूँ, जिससे मैं अनायास ही भव-बन्धनसे मुक्त हो जाऊँ। अतः कृपाकर मेरी मुक्तिके लिये ब्रह्मज्ञानका उपदेश कीजिये।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी बोले-'हे महाबाहो! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। मैं उसे तत्त्वतः बतलाता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो। देखो, मैं वेदान्तमें सुप्रतिष्ठित हूँ, तुम उसी वेदान्तका आश्रय ग्रहण करो।'

हनुमान्-हे रघुकुलसूर्य! वेदान्त किसे कहते हैं और वह कहाँ है?

श्रीराम-हे हनूमान्! सुनो, मैं तुम्हें वेदान्तकी स्थिति बतलाता हूँ। जिसप्रकार बिना प्रयत्नके ही श्वास-प्रश्वास निकलते हैं उसी प्रकार मुझ विष्णुसे श्वास-प्रश्वासरूप महाविस्तारवाले ये वेद उत्पन्न हुए हैं; और जैसे तिलोंमें तैल रहता है वैसे ही इन वेदोंके अन्तर्गत वेदान्त स्थित है।

हनू०-भगवन्! वेद कितने प्रकारके हैं और उनकी कितनी शाखाएँ हैं, उनके अन्तर्गत उपनिषद् कौन-कौन हैं, कृपया तत्त्वसे बतलाइये?

श्रीराम-ऋक्, यजु, साम, अथर्व---ये चार वेद हैं, जिनकी अनेक शाखाएँ हैं। इसी प्रकार उपनिषद् भी अनेक हैं। ऋग्वेदकी २१ शाखाएँ हैं, यजुर्वेदकी १०९, सामवेदकी १००० और अथर्ववेदकी ५०। एक-एक शाखाका एक-एक उपनिषद् है। उनकी एक ऋचा (मन्त्र) को भी यदि कोई मेरी भक्तिके साथ पाठ करता है तो वह मेरी मुनि-दुर्लभ सायुज्य-पदवीको प्राप्त होता है।

हनू०-हे प्रभो! कोई-कोई मुनिश्रेष्ठ कहते हैं कि मुक्ति एक है। कोई सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य-भेदसे चार प्रकारकी मुक्ति बतलाते हैं। कोई कहते हैं कि आपके नाम-भजनसे मुक्ति मिलती है, कोई कहते हैं-काशीमें मरकर तारक-मन्त्रके उपदेशसे, और इसी प्रकार कोई सांख्ययोगसे, कोई भक्तियोगसे और कोई वेदान्तवाक्योंके अर्थ-विचारसे मुक्तिका होना बतलाते हैं। हे भगवन्! ठीक बात क्या है, कृपया मुझे बतलाइये?

श्रीराम-हे पवनकुमार! पारमार्थिकरूप कैवल्यमुक्ति एक ही है। हे तात! कोई दुराचारीसे भी दुराचारी क्यों न हो, मेरे नाम-स्मरणके प्रतापसे वह सालोक्यमुक्तिको प्राप्त होता है—उसे लोकान्तरकी प्राप्ति नहीं होती। काशीमें ब्रह्मनाल-स्थानमें मरा हुआ पुरुष मेरे तारक-मन्त्रका उपदेश पाकर आवागमनरहित कैवल्य-मुक्तिको प्राप्त करता है। काशीमें कहीं भी मरे, महेश्वर उसके दाहिने कानमें मेरे तारक-मन्त्रका उपदेश दे देते हैं, जिससे वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर मेरी सादृश्य-मुक्तिको पाता है, वही सालोक्य और सारूप्यमुक्ति कहलाती है। जो द्विज सदाचारनिरत होकर नित्य अभेदभावसे मुझ सर्वात्मामें चित्त लगाता है वह मेरे सामीप्यको प्राप्त होता है; यही सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य-मुक्ति कहलाती है। जो गुरुपदिष्ट मार्गसे मेरे अव्यय स्वरूपका सम्यक् ध्यान करता है वह द्विज भ्रमरकीटवत् मेरा सायुज्य लाभ करता है; यही ब्रह्मानन्दकरी कल्याणी सायुज्यमुक्ति है। यह चार प्रकार-की मुक्ति है, जो मेरी उपासनासे प्राप्त होती है।

हनू०-भगवन्! कैवल्यमुक्ति कैसे प्राप्त होती है?

श्रीराम-मुमुक्षुओंकी मुक्तिके लिये एक माण्डूक्योपनिषद् ही पर्याप्त है; यदि इसे पढ़नेसे ज्ञानसिद्धि न हो तो दसों उपनिषदोंको पढ़े, इससे अविलम्ब ज्ञान प्राप्त होकर मेरे धामकी प्राप्ति हो जाती है। और यदि दशोपनिषद्के पढ़नेसे भी विज्ञानकी दृढ़ता न हो तो बत्तीस उपनिषदोंका विशेषरूपसे अभ्यास कर मुक्तिको प्राप्त करे और यदि विदेह-मुक्तिकी आकांक्षा हो तो एक सौ आठ उपनिषदोंको पढ़े।

इस संवादको पढ़नेसे यह निश्चय होता है कि समस्त उपनिषदों या चारों वेदोंमें वही ज्ञान बतलाया गया है जो साररूपसे माण्डूक्योपनिषद्में बतलाया गया है। अच्छा तो उस माण्डूक्यका निर्णय क्या है? माण्डूक्यका 'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्' इसप्रकार उपक्रम और 'अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद' यह उपसंहार है। इसप्रकार इसमें आदिसे लेकर अन्ततक प्रपञ्चोपशम (निर्गुण), अद्वैत (सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेदशून्य) शिवतत्त्व ही निर्णीत है। इसके सिवा इस संवादमें शिव और विष्णुका अभेद भी निश्चित हुआ है। क्योंकि श्रीहनूमानजीने श्रीरामजीसे 'त्वद्रूपं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतो राम मुक्तये' इस प्रश्नके द्वारा उनका वास्तविक रूप पूछा था, जिसके उत्तरमें भगवान्ने समग्र वेदोंकी रहस्यभूता माण्डूक्योपनिषद्में प्रतिपादित अद्वितीय शिवतत्त्वको ही अपना स्वरूप बतलाया है।

इधर कैवल्योपनिषद् भी 'स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्। स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः'—इसप्रकार शिव, विष्णु आदिका अभेद ही

प्रतिपादन करती है। और माण्डूक्योपनिषद्में निर्गुण तुरीय ब्रह्मका प्रतिपादक शिव-पद दो बार आया है—एक बार 'नान्तः-प्रज्ञम्'—इस मन्त्रमें और फिर 'अमात्रश्चतुर्थः'—इस मन्त्रमें। इससे यह निश्चय होता है कि शिव-पद प्रायः अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मका ही बोधक है। और जब माण्डूक्योपनिषद् सब वेदोंका सार है तब अन्य सब उपनिषद् भी उसीका समर्थन करेंगे और करते भी हैं। उदाहरणार्थ—

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ (ईश०)

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव। तद्विदितादथो अविदितादधि। (केन)

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥ (कठ०)

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रम्। (मुण्डक०)

विद्वान्नाम नामरूपाद्विमुक्तः (मुण्डक०)

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति॥ (तैत्तिरीय०)

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत्। (ऐतरेय०)

सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। (छान्दोग्य०)

मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चन।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥ (बृहदारण्यक०)

स एष नेति नेतीत्यात्मा। (बृहदारण्यक०)

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद्योऽऽन्यत्राऽऽत्मनः क्षत्रं वेद सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः सर्वं वेद।

इसी प्रकार—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ (गीता)

आत्मैव देवता सर्वा आत्मनि सर्वमवस्थितम्।
आत्मैव जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम्॥ (मनुस्मृति)

अन्नात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति।
अतः शास्त्राण्यधीयन्ते श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तराः॥ (दक्षस्मृति)

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥
अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो
र्ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा॥
(श्रीमद्भा० ११। २। ३७-३८)

—आदि स्मृतियों और पुराणोंमें भी अद्वैत शिव-तत्त्वका ही प्रतिपादन है। इति शिवम्।

आनन्दवन

(लेखक—स्वामी श्रीविद्यानन्दजी महाराज गीता-मन्दिर, गुजरात)

शङ्कराच्छमहं याचे 'सदाचरणतत्परः'।

सत् आचरणमें तत्पर मैं भगवान् शङ्करसे कल्याणकी कामना करता हूँ, आशुतोषके बिना मेरा कहीं भी ठिकाना नहीं है, मैं आब्रह्मस्तम्ब-पर्यन्त ब्रह्माण्डमें घूम आया, किन्तु कहीं भी मेरे खड़े होनेको जगह न मिली। मैंने द्यावाभूमि (जमीन-आसमान) के कोने-कोनेमें स्थित चराचरसे सहायता माँगी, पर किसीने फूटे मुखसे बाततक नहीं की। विष्णुलोकमें मैं घुसने ही नहीं पाया, ब्रह्मलोकमें मुझे पानी-तक पीनेको नहीं मिला, मातृशक्ति भगवतीने 'मुझे राक्षसोंसे निपटना है, जा, फुरसत नहीं है'—यह कहकर फटकार दिया। क्षीरसागरशायीकी शरण गया तो वहाँका समुद्र ही सूख गया; यही नहीं, मेरे ऊपर बार-बार मार भी पड़ी। इसीसे वह स्थान अबतक मारवाड़के (र और डका अभेद माना है) नामसे प्रसिद्ध है।

अनन्तर घूमते-घूमते मैं दैवात् 'आनन्द-कानन' नामक स्थानमें पहुँच गया। वहाँ जाते ही बहुत कालसे दुःख-दावानलसे-दग्ध शरीरको लोकोत्तर शान्ति प्राप्त हुई। यहाँ-की उत्तरवाहिनी देवनदीके पुण्य-पवनसे मेरा रोम-रोम

विकसित हो गया। यहाँके वेदघोषने मेरे दोषोंको शोष लिया। यहाँके प्राणिमात्रने कुटुम्बीकी तरह मेरा स्वागत किया। मैं भी उनके बीचमें अपनेको पाकर ऐसा अनुभव करने लगा कि मानों मैं यहींका रहनेवाला इनका आत्मीय जन हूँ।

यहाँ मैंने एक बड़ी विलक्षण बात देखी। इस आनन्द-वनके वृक्षोंके प्रत्येक पत्र, पुष्प और फलमें सारी भाषाओंमें 'सदाचरणतत्परः' यह वाक्य स्थूल स्वर्णाक्षरोंमें लिखा देखा, कुटीरोंपर यही 'साइनबोर्ड' था, शरीरोंपर यही बिछा था, पुस्तकोंमें यही श्लोक था, जबानपर यही बात थी, प्रश्नोत्तर और अभिवादन एवं आशीर्वचनोंमें इसी वाक्यका प्रयोग होता था।

यह देख और बाँचकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। अनन्तर इसी काननके एक कोनेके परमप्राचीन कुटीरमें स्थित एक वृद्ध साधुके पास जा अभिवादन कर उनसे उक्त वाक्यका रहस्य पूछा। पहले तो वे मुस्कराये, फिर बैठनेका इशारा किया और बादमें बोले—

'प्रिय! यह शङ्करका साम्राज्य है, यहाँ कोई भी दुखी नहीं रहने पाता। यहाँ मनुष्य-कर्मोंके शुभाशुभका रजिस्टर नहीं खोला जाता। यहाँ किसीके पाप-पुण्य नहीं तोले जाते। यहाँ खरे-खोटेकी परख नहीं की जाती। अन्यान्य लोकोंमें मनुष्यके लिये 'जैसा करता है वैसा भरता है'—यह नियम है, पर यहाँ कोई जो चाहे जैसा करे, वह वही पावेगा जो सबको मिलेगा। कर्म भिन्न-भिन्न होनेपर भी फलांशमें ऐक्य है। यह सिद्धान्त तार्किक नास्तिकके समझमें भले ही न आवे, पर जिज्ञासु विद्वान् इस गूढ़ रहस्यको खूब समझते हैं।

'सदाचरणतत्परः'—इस वाक्यांशका, जिसके कारण तुझे इतना कुतूहल हो रहा है, यह अभिप्राय है कि यहाँके सबलोग वर्णाश्रम-धर्मकी मर्यादा यथावत् पालन करें। ब्राह्मणके लिये 'सति आचरणे तत्परः', अर्थात् ब्राह्मणको सदा उत्तम आचरणवान् होना चाहिये—ऐसी आज्ञा है। ब्राह्मणका परमधर्म आचार है। ब्राह्मण जगद्गुरु है, उसे सबका नियन्त्रण करना है। बड़े-बड़े दुर्दान्त राजसप्रकृति-वालोंको और उग्रातिउग्र तामस-प्रवृत्तिवाले प्राणियोंको सूईकी नोकमेंसे निकालना सत्त्वगुणप्रधान ब्राह्मणका ही काम है। यह बड़ा कठिन काम है। इसे सत् अर्थात् उत्तम आचारवाला ब्राह्मण ही कर सकता है। अतः शङ्कर-भगवान्की अविमुक्त-क्षेत्रवासियोंको यह आज्ञा है कि हे ब्राह्मणो! उत्तमोत्तम आचरणोंका पालन करते हुए लोक-संग्रह करो, जिससे जगत्का कल्याण-साधन कर सको।

इसी तरह 'सदा च रणे तत्परः' इस वाक्यसे क्षत्रियोंको भी अपना धर्म-पालन करनेकी भगवान्की आज्ञा है। इसका अभिप्राय यह है कि हे क्षत्रियो! तुम सदैव रणमें तत्पर रहो। तुम्हारी चमकती हुई तलवार आततायियोंको प्रत्यक्ष काल और धर्मात्माओंको साक्षात् स्वर्गसुख प्रतीत हो। तुम्हारे शस्त्रोंकी दीप्ति तभी बनी रह सकती है जब तुम हमेशा रण (लड़ाई) में लगे रहो। एक योगयुक्त संन्यासी और दूसरा अभिमुख रणमें मरनेवाला क्षत्रिय—यही दोनों सूर्यमण्डलको भेदकर आगेके लोकमें जानेके अधिकारी हैं।

इसी तरह 'सदा चरणे तत्परः' इस वाक्यसे वैश्यको आज्ञा दी गयी है कि हे वैश्यो! तुम हमेशा घूमनेमें लगे रहो। देखो, कहाँ किस पदार्थकी आवश्यकता है? बादमें यहाँकी वस्तु वहाँ और वहाँकी वस्तु यहाँ पहुँचाकर लोगोंके अभावकी पूर्ति करो और स्वयं धनवान् बनो। समयपर तुम्हारा धन ब्राह्मणोंके यज्ञके लिये और नृपतियों-के राज्य-प्रबन्धके लिये काम आ सकता है। तुम्हारे धनसे स्थापित सार्वजनिक संस्थाओंसे भी सर्वसाधारण लाभ उठा सकेंगे।

एवं 'सदा चरणे (पदे) तत्परः'—इससे शूद्रको कहा गया है कि तू सदा तीनों वर्णोंकी पाद-सेवा कर। सबसे कठिन सेवा-धर्म तेरे अधीन है। तेरी सहायताके बिना उक्त तीनों वर्ण और आश्रम पङ्गु हैं।

ब्रह्मचारीको भी इसी वाक्यसे सदाचारका उपदेश दिया गया है। पहली अवस्थाका अभ्यस्त सदाचार जीवनरूपी हर्म्य (महल) की नींव है। गृहस्थाश्रमीको भी उपदेश दिया गया है कि तू 'सदा चरणे (भक्षणे) तत्परः' हो। तेरे पास अधिक परिमाणमें खाद्य-सामग्री होनी चाहिये। जैसे वायुके आधारसे प्राणिमात्र जीवन-धारण करते हैं उसी प्रकार गृहस्थाश्रमपर सारे वर्ण-आश्रमोंका निर्वाह निर्भर है। यहाँ भक्षण उपलक्षण है सभी सामग्रियोंका। इसी तरह वानप्रस्थको भी यह आज्ञा दी गयी है कि तू 'सदा आचरणतत्परः' का अक्षरशः पालन कर। दाराको साथ रखते हुए भी 'नलिनीदल-

मम्बुवत्' के अनुसार निर्लेप रह। सब कुछ सम्पत्ति रहते हुए भी 'आचारवान् पुरुषो वेद'—यह तेरा ध्येय होना चाहिये।

संन्यासी इसी वाक्यकी शिक्षासे 'सदा चरणे (भ्रमणे) तत्परः' रहते हैं। वे 'अनिकेत' कहे गये हैं। वे सदा घूमते रहते हैं, यही उनको आज्ञा है।

यहाँ नमस्कार करनेवाला कहता है कि मैं आपके 'सदाचरणोंमें तत्पर हूँ', अर्थात् मैं आपसे छोटा हूँ। इसका उत्तर भी इसी वाक्यमें यों दिया जाता है कि 'तू 'सदाचरणतत्परः' रह।

यह है इस वाक्यका साधारण अभिप्राय। मैं तो कुछ जानता नहीं हूँ, किन्तु किसी विज्ञ सन्तके पास जाकर यदि तू पूछेगा तो तुझे वे इसके गूढातिगूढ तत्त्वका परिचय करा सकेंगे। स्वस्वधर्म-पालन करनेकी श्रीशङ्करजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर यहाँके सबलोग प्रभुजीसे यह प्रार्थना किया करते हैं कि—

शङ्कराच्छमहं याचे सदाचरणतत्परः।

अर्थात् हम अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुकूल सदाचरणतत्पर रहते हुए, यानी आपकी तत्-तत् आज्ञा मानते हुए आपसे मङ्गल-कामना करते हैं।'

भक्तोंकी यह धारणा है कि आनन्दवन नामक अविमुक्त वाराणसीपुरी एक धनुषकी तरह है। श्रीगङ्गाजी-रूपी उसमें प्रत्यञ्चा (डोरी) बँधी हुई है। आदिकेशवका मन्दिर और लोलार्ककुण्ड उस धनुषके दोनों किनारे हैं। शाला और सत्रादिजन्य धर्म शर हैं। कलियुगके पाप शिकार हैं। शिकारी हैं शङ्करजी। जैसे शिकारसे शिकारीका परिवार क्षुधा शान्त करता है, उसी तरह भगवान्के कुटुम्बी भक्तगण इस मृगयासे कल्याण प्राप्त करते हैं। आनन्दवनके शिकारीकी शरणमें आनेवाला फिर किसीके आश्रयका इच्छुक नहीं रहता, यानी मुक्त हो जाता है। 'महेशान्नापरो देवः' इति।

शिव-योग

(लेखक—पं० श्रीगंगाधरजी शर्मा)

मनुष्यके कल्याणके लिये योग एक मुख्य साधन है। तभी तो हमारे प्राचीन ऋषि-मुनिजन बड़े आदरसे योगशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करते थे। इससे उन्हें कैवल्य-सुखकी प्राप्ति होती थी। विषादका विषय है कि आजकल इस शास्त्रका ह्रास हो रहा है। भगवान्की प्रेरणासे ही इस शास्त्रका उद्धार हो सकता है। अस्तु! योगके सम्बन्धमें श्रीशिवजी कहते हैं—

मदुक्तेनैव मार्गेण मय्यवस्थाप्य चेतसः।
वृत्त्यन्तरनिरोधो यः स योग इति गीयते॥

अर्थात् 'मेरे बतलाये हुए मार्गके अनुसार मुझमें मन लगाकर दूसरी वृत्तियोंका निरोध करना ही योग है।' यद्यपि मायावृत संसारमें इस योगका साधन साधारण बात नहीं है तथापि जैसे एक धान कूटनेवाली स्त्री एक हाथसे ढेंकी चलाती जाती है, दूसरेसे उछलते हुए धानोंको समेटकर ऊखलमें डालती रहती है, बीच-बीचमें उसीसे बच्चेको स्तन्यपान भी करा लेती है और साथ ही ग्राहकोंके साथ धानका मोल-तौल भी करती जाती है; परन्तु यह सब होनेपर भी ऊखलमें पड़कर कहीं हाथमें चोट न आ जाय, इसके लिये पूर्ण सतर्कताके साथ मनको उसी जगह स्थिर रखती है, वैसे ही चञ्चल स्वभाववाले इस मनको बाहरके कामोंसे निवृत्त करके दहराकाशके पर-शिवमें स्थिर करना ही योग है। यह योग मन्त्र, लय, हठ, राज, शिव—पाँच प्रकारका है। इस मोक्षदायी योगशास्त्रका बोध शिवजीने सर्वप्रथम अपने अट्ठाईस शिष्योंको कराया, पीछे इन शिष्योंने भी अपने चार-चार शिष्योंको इसका उपदेश किया। इस विषयका शिवागम, स्कन्दपुराण और लिङ्गपुराणमें सविस्तर वर्णन है।

श्वेतस्तु तारो मदनः सुहोत्रः कङ्क एव च।
लौगाक्षिश्च महामायो जैगीषव्यस्तथैव च॥
दधिवाहश्च ऋषभो मुनिरुग्रोऽत्रिरेव च।
सुबालको गौतमश्च तथा वेदशिरोमुनिः॥
गोकर्णश्च गुहावासी शिखण्डी चापरः स्मृतः।
जटामाली चाट्टहासो दारुको लाङ्गली तथा॥
महाकालश्च शूली च दण्डी मुण्डी तथैव च।
सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलीश्वर एव च॥
अष्टाविंशतिसंख्याका योगाचार्या युगक्रमात्॥

इसी प्रकार शिवमहापुराणकी वायवीयसंहितामें भी श्रीव्यासजीने २८ योगके आचार्योंको और ११२ उपाचार्योंको इस योगशास्त्रकी शिक्षा देनेकी बात कही है। महर्षि पतञ्जलिने इन आगमोंके सारसे योगसूत्रोंकी रचना करके मुमुक्षुजनोंका बड़ा उपकार किया है। योगाभ्याससे शिवैक्यको चाहनेवाले साधकको चाहिये कि गुरुमुखसे शिव-दीक्षाद्वारा

उपदिष्ट होकर प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें शिव-ध्यानपूर्वक उठकर शौच, आचमन, दन्तधावनादिसे निवृत्त होकर जलस्नान और भस्मस्नानसे शुद्ध हो जावे, और फिर एकान्तमें दर्भ, वस्त्र या कम्बलके आसनमें पूर्व या उत्तरकी ओरको मुख करके बैठे। सङ्कल्पके उपरान्त प्राणायामको तीन बार करके गुरूपदिष्ट महामन्त्रके अनुसार ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्तियोंको सिरसे लेकर पैरतकके उन-उन स्थलोंमें स्थापना करके अपने आश्रमोचित अङ्गन्यास-करन्यासादि षडङ्गन्यासों-को करके कल्पोक्त विधानसे मन्त्र-पुरश्चरणपूर्वक रुद्राक्ष-माला या हाथकी अङ्गुलियोंसे ध्यानसहित जप करे। यही मन्त्रयोग है। इसको पर-शिवने अपने मतके वीर, नन्दि, भृङ्गी, वृषभ, स्कन्द नामक पाँच गोत्र पुरुषोंके लिये मूलपञ्चाक्षरी, मायापञ्चाक्षरी, शक्तिपञ्चाक्षरी, स्थूलपञ्चाक्षरी, प्रसादपञ्चाक्षरी—इसप्रकार पाँच भागोंमें विभक्त किया है। इस मतके संस्थापक पाँच आचार्य अपने-अपने शिष्योंको यथागोत्र बीजाक्षरोंके व्यत्याससे उपदेश देकर शिवयोगसम्पन्न बना देते हैं।

लययोगका स्वरूप इसप्रकार बतलाया गया है—

यस्य चित्तं निजध्येये मनसा मरुता सह।
लीनं भवति देवेश लययोगी स एव हि॥

इस सदाशिव ब्रह्मयोगीके कथनानुसार परिशुद्ध चैतन्यसहित होकर अपने ध्येयमें या वैकृत प्राणायामसे प्रकट हुए नादमें मन और प्राणोंके साथ लय हो जाना ही लययोग है। और यही योगी यदि यम-नियमादि अष्टाङ्ग-पूर्वक—

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
उड्डियाणं मूलबन्धस्ततो जालं धराभिधः॥
करणी विपरीता सा वज्रोली शक्तिचालनम्॥

—उपर्युक्त वाक्योंके अनुसार मुद्राबन्धोंके अनुसन्धानसे और षट्कर्मोंके आचरणसे केवल कुम्भकमें वायुको रोककर शिवका ध्यान करता है तो हठयोगी कहलाता है। इस हठयोगमें पारङ्गत होनेपर बाह्य, मध्य और आन्तर्य नामक तीन लक्ष्योंमें षडध्वातीत और षडध्वोपादानकारण जो ब्रह्म है, उसका साक्षात् करनेके बाद बाह्य प्रपञ्च-व्यापार-से डरकर सब विषयोंको त्याग केवल समाधिनिष्ठ हो जाना ही राजयोग है। ये चारों योग अधिकारी-भेदसे 'मृदु, मध्य, अतिमात्र, अतिमात्रतर' इसप्रकारसे चार प्रकारके हैं। जो बलहीन, संसारी, पराधीन, अल्पज्ञ, रोगशील, भोगासक्त और बाह्य-कार्याकुल होकर भी योगाभ्यास करे, वह मृदु-योगी है। यह मन्त्रयोगासक्त है। जो सुख-दुःखोंके भागी, सज्जनसङ्गी, सर्वेन्द्रियोंके उद्रेकसे शून्य, शुद्धान्तःकरणवाला योगाभ्यासका प्रेमी होगा वह मध्य योगी है। यह लययोगासक्त है। जो शम-दमादि सद्गुणोंसे युक्त, धैर्य-सत्त्व-शौचादिनिष्ठ, निश्चल और निष्काम योगानुरागी हो, वह अतिमात्र योगी है। वह हठयोगका अधिकारी है। और जो सकल शास्त्रोंका ज्ञाता, सर्वभोगत्यागी, सर्वबाह्य-व्यापारशून्य, विकाररहित होकर योगाभ्यास करे वह अतिमात्रतर योगी है। वह राजयोगका अधिकारी है। मुक्ति-दायक और उत्तमोत्तम राजयोग अधिकारी-भेदसे सांख्य, तारक, अमनस्क नामसे तीन प्रकारका है। पृथिवीसे लेकर प्रकृतितक जो पचीस तत्त्व हैं इनके ज्ञानसे होनेवाला योग सांख्ययोग है। समाधिस्थ होकर मन, दृष्टि और प्राणोंको बहिर्मुख न होने देते हुए मुद्राबन्धन करना तारक योग है। मनको प्रकृतिमें लीन-सा करके अन्तर्मुद्रा-ज्ञानसे युक्त होना अमनस्कयोग है। ये तीन योग सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य नामक त्रिविध मुक्तिके साधन हैं।

राजत्वात्सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः।

—इस वचनके अनुसार राजयोग ही सब योगोंमें श्रेष्ठ है। इस योगको ही कुछ लोग 'शिवयोग' कहते हैं, परन्तु शिवसिद्धान्त तो इसे शिवयोगका प्रवेशद्वार मानता है। श्रीशिवयोगिपुङ्गव चन्नसदाशिवजीके—

प्रतिपाद्यस्तयोर्भेदस्तथा शिवरतात्मनाम्।
तस्मान्मर्नीषिग्राह्योऽयं शिवयोगोऽस्तु केवलः॥

—इस वचनके अनुसार वह योग शिवयोग नहीं हो सकता जो पातञ्जलादि शास्त्रोंमें वर्णित है। अर्थात् गुणत्रय-साक्षात्कार ही 'तारकत्रय' है, प्रकृतिमें मनका लय ही 'अमनस्क' है, पुरुषका साक्षात्कार ही राजयोग है—

तदात्मवत्त्वं योगित्वं जिताक्षः सोपपद्यते।

—इस श्रुतिके अनुसार जितेन्द्रिय साधकका पर-शिव ब्रह्ममें आत्माको बाँधना ही शिवयोग हो सकता है। यह शिवयोग—

ज्ञानं शिवमयं भक्तिः शैवी ध्यानं शिवात्मकम्।
शैवव्रतं शिवार्चेति शिवयोगो हि पञ्चधा॥

—के अनुसार पाँच प्रकारका है। इनमें 'शिवज्ञान, शिवभक्ति, शिवध्यान, शिवव्रत' नामक ये चार भेद शिव-पूजाके प्रमुख अङ्ग होनेके कारण शिवपूजा ही असली शिवयोग है। जो इस पर-शिवके ब्रह्मअभिमुख होगा उसीको महासुखकी प्राप्ति हो सकती है। कहा भी है—

शिवार्चनविहीनो यः पशुरेव न संशयः ।
शतसंसारचक्रेऽस्मिन्नजस्रं परिवर्तते ॥

इस शिवपूजारूपी शिवयोगका हठयोग तो साधनमात्र है। 'शिवयोगः साधकानां साध्यः स्यात्साधनं हठः'—इस हठ-योगके यम, नियम, आसन एवं प्राणायामरूपी चार बाह्याङ्ग और प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, एवं समाधिरूपी चार आभ्यन्तराङ्ग भी हैं । इन अष्टाङ्गोंसे युक्त और शिवयोगका साधक मुमुक्षु ही शैवपदवाच्य है । कहा है—

स्वात्मनैव सदाष्टाङ्गैः पूजयेच्छिवमन्वहम् ।
शैवः स एव विद्वान् स च योगविदां वरः ॥

वीरशैवोंमे यही अष्टाङ्ग ही 'षट्स्थल' के नामसे प्रसिद्ध हैं। लिङ्गपुराणके उत्तर-भागके २१ वें अध्यायमें श्रीव्यासजीने इसका विस्तार इसप्रकार किया है—

यमेन नियमेनैव मन्ये भक्त इति स्वयम् ।
स्थिरासनसमायुक्तो माहेश्वरपदान्वितः ॥
चराचरलयस्थानलिङ्गमकाशसंज्ञकम् ।
प्राणायामसमायुक्तः प्राणलिङ्गी भवेत् पुमान् ॥
प्रत्याहारेण संयुक्तः प्रसीदति न संशयः ।
ध्यानधारणसम्पन्नः शरणस्थलवान् सुधीः ॥
लिङ्गैक्योऽद्वैतभावात्मा निश्चलैक्यसमाधिना ।
एवमष्टाङ्गयोगेन वीरशैवो भवेन्नरः ॥

इन श्लोकोंको श्रीसदाशिवयोगीने अपनी 'शिवयोग-प्रदीपिका' में उद्धृत किया है । इनका भाव यह है कि जो निष्ठारूपी स्थिर आसनपर आसीन होगा वही माहेश्वर है । जो चराचरके लयस्थान और आकाशसंज्ञारूपी शुद्ध प्रसादलिङ्गमें प्राणवायुके साथ मनको स्थिर करेगा वही प्राणलिङ्गी है । जो उस प्राणलिङ्गमें लीन होनेवाले मनः-प्राणोंका निश्चलतापूर्वक प्रत्याहार करेगा वही प्रसादी है । और जो उस महालिङ्गके ध्यान-धारणादिसे युक्त होकर केवल निश्चल शिवयोगसे शिवाद्वैतभावसम्पन्न होगा वही लिङ्गैक्य-प्राप्त है । इसप्रकारका अष्टाङ्गसम्पन्न शिवयोगी ही षट्स्थल-सिद्धिको पावेगा । इसीलिये आर्यगण यह उपदेश देते हैं कि—

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्मणा ज्ञानतोऽपि वा ।
त्वमप्यष्टाङ्गयोगेन शिवयोगी भवानघ ॥

अर्थात् 'अष्टाङ्गयोग भी शैवसिद्धान्त है, अतएव हे अनघ ! तुम भी कर्मरूपी अष्टाङ्गयोगसे अथवा बाह्य और आभ्यन्तरिक ज्ञानरूपी अष्टाङ्गयोगसे शिवयोगकी सिद्धि प्राप्तकर शिव-सायुज्य-मुक्तिके भागी बनो ।' हमारी इच्छा है कि सारे संसारमें शिवयोगसे पवित्र शान्ति फैल जाय ।

कीटो भ्रमरयोगेन भ्रमरो भवति ध्रुवम् ।
मानवः शिवयोगेन शिवो भवति निश्चयात् ॥

आरती

जयति जयति जग-निवास, शङ्कर सुखकारी ॥

अजर अमर अज अरूप, सत चित आनंदरूप;
व्यापक ब्रह्मस्वरूप, भव ! भव-भय-हारी ॥ जयति०

शोभित विधुबाल भाल, सुरसरिमय जटाजाल;
तीन नयन अति विशाल, मदन-दहन-कारी ॥ जयति०

भक्तहेतु धरत शूल, करत कठिन शूल फूल;
हियकी सब हरत हूल, अचल शान्तिकारी ॥ जयति०

अमल अरुण चरण-कमल, सफल करत काम सकल;
भक्ति मुक्ति देत विमल, माया-भ्रम-टारी ॥ जयति०

कार्तिकेययुत गणेश, हिमतनया सह महेश;
राजत कैलास-देश, अकल-कला-धारी ॥ जयति०

भूषण तन भूति व्याल, मुण्डमाल कर-कपाल;
सिंह-चर्म हस्ति-खाल, डमरू कर-धारी ॥ जयति०

अशरण-जन नित्य शरण, आशुतोष आर्तिहरण;
सब विधि कल्याण-करण, जय जय त्रिपुरारी ॥ जयति०

—नारायणदास पोद्दार

शिव-महिमा

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

शङ्करकी अर्द्धाङ्गभूता भगवती पार्वती जिस समय अद्भुत तपस्यामें निरत थीं और उनके प्रेमकी परीक्षाके लिये स्वयं भगवान् शङ्करने ब्रह्मचारीका वेष बनाकर उनके सामने अपनी ही भरपेट निन्दा की थी, 'शङ्कर इतना दरिद्र है कि उसे वस्त्रतक पहननेको नहीं मिलता, इसीसे 'दिगम्बर' कहलाता है, वह श्मशानवासी है, उसका रूप ही भयङ्कर है,' इत्यादि अनेकानेक दोष जब अपनेआपमें बताये थे, उस समय पार्वतीका उत्तर महाकवि कालिदासके शब्दोंमें यों अङ्कित हुआ है—

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः ।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥

अर्थात् शिव परम दरिद्र होकर भी सब सम्पत्तियोंके उद्गमस्थान हैं, सब सम्पत्तियाँ वहींसे प्रकट होती हैं, वे श्मशानवासी होकर भी तीनों लोकोंके नाथ हैं, भयानक रूपमें रहनेपर भी उनका नाम 'शिव' है, सत्य तो यह है कि पिनाकधारी भोलानाथका यथार्थ तत्त्व कोई जान ही नहीं पाया, वे क्या हैं और कैसे हैं—यह तत्त्व कोई नहीं जानता। यह भगवान् शङ्करकी अत्यन्त अन्तरङ्ग, परमशक्ति भगवती पार्वतीकी राय है। इसी प्रकार बालब्रह्मचारी परमतत्त्वज्ञ भीष्मपितामहसे नीति, धर्म और मोक्षके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रहस्यका विवेचन सुनते हुए महाराज युधिष्ठिरने जब शिव-महिमाके सम्बन्धमें प्रश्न किया तो वृद्ध पितामहने भी यही उत्तर दिया था कि—

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः ।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ॥

(महा० अनु० १४ । ३)

'जो सबमें रहते हुए भी कहीं किसीको दिखायी नहीं देते, उन महादेवके गुणोंका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।' 'मैं असमर्थ हूँ' इतना ही कहकर भीष्मपितामहको सन्तोष नहीं हुआ, किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कह दिया कि मनुष्य-देह-धारी कोई भी महादेवकी महिमा नहीं कह सकता—

को हि शक्तो गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः ।
गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः ॥

आगे भीष्मपितामहने युधिष्ठिरको निराश होते देख यों धैर्य दिलाया कि इस सभामें साक्षात् विष्णुके अवतार भगवान् श्रीकृष्ण उपस्थित हैं, वे शिवकी महिमा कह सकते हैं, साथ ही स्वयं भगवान् कृष्णसे प्रार्थना की कि आप युधिष्ठिरको और सब ऋषि-मुनि आदिको शिव-महिमा सुनावें। भगवान् श्रीकृष्णने भी यहाँसे प्रारम्भ किया कि 'हिरण्यगर्भ, इन्द्र, महर्षि आदि भी शिव-तत्त्व जाननेमें असमर्थ हैं, मैं उनके कुछ गुणोंका ही व्याख्यान करता हूँ' ऐसी स्थितिमें एक क्षुद्रातिक्षुद्र नर-कीटका शिव-महिमाकी व्याख्याके लिये मुँह खोलना वा लेखनी उठाना सर्वथा दुःसाहस वा अनधिकार चेष्टा ही कही जा सकती है, किन्तु इसका उत्तर श्रीपुष्पदन्ताचार्यने अपने सुप्रसिद्ध 'महिम्नःस्तोत्र' के आरम्भमें ही दे दिया है—

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥

'यदि आपकी महिमाको पूर्णरूपसे बिना जाने स्तुति करना अनुचित हो, तो ब्रह्मादिकी भी वाणी रुक जायगी। कोई भी स्तुति नहीं कर सकेगा, क्योंकि आपकी महिमाका अन्त कोई जान ही नहीं सकता। अनन्तका अन्त कैसे जाना जाय। तब अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार जिसने जितना समझ पाया है, उतना कह देनेका उसका अधिकार दूषित न ठहराया जाय, तो मुझ-जैसा तुच्छ पुरुष भी स्तुतिके लिये कमर क्यों न कसे। कुछ तो हम भी जानते ही हैं, जितना जानते हैं, उतना क्यों न कहें ?' आकाश अनन्त है, सृष्टिमें कोई भी पक्षी ऐसा नहीं, जो आकाशका अन्त पा ले, किन्तु इसलिये वे उड़ना नहीं छोड़ते, प्रत्युत जिसके पक्षोंमें जितनी शक्ति है, उतनी उड़ान वह आकाशमें भरता

है। हंस अपनी शक्तिके अनुसार उड़ता है और कौआ अपनी शक्तिके अनुसार। यदि न उड़े, तो उनका पक्षि-जीवन व्यर्थ ही हो जाय, फिर उन्हें पक्षी कहे ही कौन? इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार अनन्त शिव-तत्त्वमें जितना समझ सकें उतना समझना और जितना समझा है उसके मननके लिये परस्पर कहना और सुनना मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये सबका आवश्यक कर्तव्य है। बस, उसी कर्तव्यकी आंशिक पूर्तिके लिये यह छोटा-सा लेख भी पाठकोंकी सेवामें समर्पित है।

ईश्वर-निरूपण

शिव जगन्नियन्ता जगदीश्वर हैं। ईश्वर और महेश्वर शिवके पर्याय शब्द हैं, शिवके ही नाम हैं—यह अमर-कोष पढ़नेवाला भी जानता है। श्रुति भी यही कहती है—

> एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
> र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
> प्रत्यङ्जनाँस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले
> संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥
> (श्वेताश्वतर० ३। २)

'एक ही रुद्र है, जो कि इन सब लोकोंको अपनी शक्तिसे वशमें रखता है; अतएव वह ईश्वर है, उसीकी सब उपासना करते हैं, वह सब लोकोंको उत्पन्न कर अन्तकालमें संहार भी करता है, वही सबके भीतर अन्तर्यामीरूपसे स्थित है,' इत्यादि। अतएव शिव-तत्त्वका विचार वा ईश्वर-तत्त्वका विचार एक ही बात है। ईश्वरका निरूपण वैदिक सिद्धान्तमें दो भावोंसे है—एक वैज्ञानिक भावसे अर्थात् व्यापक रूपसे; दूसरा उपासना-भावसे अर्थात् मनुष्यरूपमें। वैज्ञानिक रूपकी भी मनुष्याकार कल्पना होती है और अवताररूपसे मनुष्याकार-धारी भी ईश्वर होता है। इन दोनों रूपोंमें आश्चर्यजनक समानता होती है। अस्तु, वैज्ञानिक भावमें—ईश्वरका जगत्के साथ छः प्रकारका सम्बन्ध शास्त्रमें बताया जाता है—(१) 'जगति[1] ईश्वरः' (२) 'ईश्वरे[2] जगत्' [3](३) 'जगद् ईश्वर एव' (४) 'जगद् ईश्वरश्च[4] भिन्नौ' (५) '[5]ईश्वरो जगतोऽतिरिच्यते, जगत्तु ईश्वरान्नातिरिच्यते,' (६) 'ईश्वराद्[6] भेदेन अभेदेन वा अनिर्वचनीयं जगत्' [(१) जगत्में ईश्वर है (२) ईश्वरमें जगत् है (३) जगत् ईश्वर ही है (४) जगत् और ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं—ईश्वर जगत्से परे है (५) ईश्वर जगत्से भिन्न है, किन्तु जगत् ईश्वरसे भिन्न नहीं (६) जगत् अनिर्वचनीय है, भिन्न वा अभिन्न कुछ भी नहीं कहा जा सकता] ये सम्बन्ध देखनेमें परस्परविरुद्ध प्रतीत होते हैं, किन्तु विचारदृष्टिसे देखनेपर उपादान-कारणके साथ कार्यके छहों प्रकारके सम्बन्ध व्यवहारमें आते हुए प्रतीत होते हैं। वस्त्रमें तन्तु हैं, तन्तुओंके आधारपर वस्त्र है, तन्तु ही पटरूपताको प्राप्त हो गये हैं, पट एक अतिरिक्त वस्तु (अवयवी) है जो तन्तुओंसे उत्पन्न हुआ है, तन्तुओंकी सत्ता स्वतन्त्र है—तन्तु पटसे पूर्व भी थे; आगे भी रहेंगे और जहाँ पट उत्पन्न नहीं हुआ वहाँ भी हैं, किन्तु पट तन्तुओंसे स्वतन्त्र अपनी सत्ता नहीं रखता; कह नहीं सकते कि तन्तु और पट भिन्न-भिन्न हैं वा एक हैं; यों छहों प्रकारके व्यवहार लोकमें भी उपादान और उपादेयमें प्राप्त होते हैं। ईश्वरने अपनी इच्छासे स्वयं ही जगद्रूप धारण किया है—'एकोऽहं बहु स्याम्, प्रजायेय'—वह जगत्का उपादान-कारण भी है और निमित्त-कारण भी, इसलिये उसके साथ जगत्के छहों प्रकारके सम्बन्धोंका होना युक्तियुक्त ही है। हाँ, तन्तु, पट आदिकी अपेक्षा इतनी विशेषता यहाँ समझने योग्य है कि ईश्वर चेतन है, अतः वह जगत्को अपनी इच्छासे रचकर शासकरूपसे भी उसके प्रत्येक अवयवमें प्रविष्ट हो रहा है—

> तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। (श्रुति)

'ईश्वर जगत्को बनाकर उसीमें अनुप्रविष्ट होता है।' यह श्रुति इस दूसरे रूपका ही वर्णन करती है, क्योंकि सृष्टिके अनन्तर प्रविष्ट होना इसमें बताया गया है—

> एतस्यैवाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः। (बृहदारण्यक उपनिषद्)

१-२ यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। (गीता ६। ३०)

३-मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय। (गीता ७। ७)

४-परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः। (गीता ८। २०)

५-मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥ (गीता ९। ४)

६-नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। (गीता ७। २५)

इत्यादि

'हे गार्गि ! इसी अक्षर पुरुषके शासन—नियन्त्रण-में सूर्य और चन्द्रमा ठहरे हैं।'

भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। (कठोपनिषद्)

'इसीके भयसे पवन चलता है, इसीके भयसे सूर्य उदय होता है।'

—इत्यादि श्रुति भी शासकरूपसे इसी प्रविष्ट रूपका वर्णन करती है। लकड़ी, पत्थर, वृक्ष आदि जितने पार्थिव पदार्थ हम देखते हैं, उनमें वैज्ञानिक दृष्टिसे दो प्रकारकी प्राणरूप अग्नि है, एक वह जो उन पदार्थोंकी उत्पादक (उपादान-कारण) है और दूसरी उनमें उत्पत्तिके अनन्तर प्रविष्ट हुई है। इन दोनोंका नाम वैदिक परिभाषामें क्रमसे 'चित्य' और 'चिते निधेय' है। जिसका चयन हुआ है, तह-पर-तहके क्रमसे जिसकी चुनाई होकर ये सब वस्तुएँ बनी हैं, वह 'चित्य' अग्नि है और वस्तु बन जानेपर समुदायपर जो प्राणशक्ति बैठकर उसे अपने स्वरूपमें रखती है, वह 'चिते निधेय' (चुने हुएपर ठहरनेवाली) कहाती है। इस प्राणशक्तिकी व्याप्ति उस स्थूल वस्तुकी सीमातक ही नहीं रहती, किन्तु यह उसकी परिधिसे बाहर भी बहुत दूरतक व्याप्त रहती है। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके आकारको हमारे नेत्रोंतक लाकर हमें दिखाना, फोटोग्राफीके आईनेमें वस्तुके आकारको ले आना, उत्कट, गरम वा ठण्डे पदार्थकी गर्मी वा सर्दीका दूरतक प्रभाव होना, अत्यन्त प्रकाशमान पदार्थका दूरसे ही आँखों-को चौंधिया देना, इमलीके वृक्षके नीचे जाते ही वायुका प्रभाव हो जाना या नीमके वृक्षके नीचे सोने-बैठनेसे आरोग्य प्राप्त होना आदि शतशः इस दूसरी (चिते निधेय) प्राणशक्तिके ही कार्य हैं। वैदिक विज्ञान बहुत कुछ इसीपर निर्भर है। अस्तु, इसी प्रकार ईश्वर भी उपादानरूपसे और शासकरूपसे—दोनों प्रकारसे सब जगत्में प्रविष्ट माना गया है। यों ईश्वरके तीन रूप हैं—सृष्ट, प्रविष्ट और विविक्त। जो जगत्का उपादान-कारण बना है—वह सृष्टरूप कहा जाता है, जो उसका शासन कर रहा है—वह प्रविष्टरूप है और—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

(पुरुषसूक्त)

'यह सम्पूर्ण भूतग्राम उस परमात्माका एक पाद है, शेष तीन पाद तो उसके अमृतरूपमें प्रकाशमान रहते हैं।'

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(गीता १०। ४२)

'मैं सम्पूर्ण जगत्में एक अंशसे व्याप्त होकर उसका धारण करता हुआ विराजमान हूँ।' इत्यादि श्रुति-स्मृतिद्वारा जो जाना जाता है, वह जगत्से असंसृष्ट शुद्ध रूप ईश्वरका तीसरा 'विविक्त' रूप है, इन्हीं तीनोंको क्रमसे 'विश्व,' 'विश्वचर' और 'विश्वातीत' नामोंसे भी कहा जाता है।

पशुपति वा प्रजापति

विश्वको 'सत्य' वा 'प्रजापति' भी कहते हैं। उसमें तीन भाग हैं, आत्मा, प्राण और प्रजा वा पशु। शैव दर्शनोंमें इन तत्त्वोंको 'पशुपति', 'पाश' और 'पशु' कहा जाता है। निरूपणकी परिभाषा भिन्न-भिन्न होनेके कारण परस्पर थोड़ा-बहुत भेद हो जाता है; किन्तु मूल-तत्त्व सब जगह एक ही रहते हैं, शब्दोंका ही भेद रहता है। कार्य-जगत् वा जगत्का बाह्यरूप 'पशु' नामसे कहा जाता है, इसमें जड-चेतन दोनों नामोंसे कहे जानेवाले सभीका अन्तर्भाव हो जाता है। जीवभावमें रहता हुआ जीव भी 'पशु' श्रेणीमें ही आता है, क्योंकि जीवभाव उसका जगत्सम्बन्धी रूप है। इन सबका नियमन करनेवाला वा उत्पन्न करनेवाला, सबका पिता, सबका स्वामी तथा आत्मा ईश्वर वा पशुपति है, और वह जिन साधनोंसे इन्हें उत्पन्न करता है वा बाँधकर वशमें रखता है, वे 'प्रकृति' वा 'प्राण' पाश कहे जाते हैं। प्रकृति-पाश, प्रजा वा पशु आत्मासे सर्वथा पृथक् नहीं कहे जा सकते—इस कारण तीनोंकी समष्टिका भी प्रजापति वा पशुपति-नामसे निर्देश हुआ है। अस्तु, ये आत्मा और प्राण आदि शब्द सापेक्ष होनेके कारण भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अपेक्षा-कृत व्यवहारमें आते हैं। किसी दृष्टिसे जो 'प्राण' है, दूसरी दृष्टिसे वह 'आत्मा' भी कहा जा सकता है। एक दृष्टिसे जिसे 'पशु' कह सकते हैं, दूसरी दृष्टिसे वह 'आत्मा' भी हो सकता है। जैसे श्रुतिके सिद्धान्तमें इस सब जगत्का

१—यह विषय 'श्रीकृष्णावतारपर वैज्ञानिक दृष्टि' शीर्षक लेखमें कुछ विस्तारसे लिखा गया है, देखिये कल्याण 'श्रीकृष्णाङ्क-

मूल तत्त्व एक है, वह सब नाम-रूपसे परे, सब गुण-धर्मों-का मूल होनेके कारण उनसे रहित—स्वतन्त्र एक निर्विशेष-तत्त्व है, जो मन और बुद्धिकी पहुँचसे बाहर है। यद्यपि गुण-धर्मसे रहित होनेके कारण उसका वाचक कोई शब्द नहीं हो सकता, तथापि व्यवहारके लिये उसे 'रस' नामसे पुकारते हैं—'रसो वै सः' (तैत्तिरीय श्रुति)। वह मुख्य 'आत्मा' है, सबका आत्मा होनेके कारण उसे 'परमात्मा' भी कह सकते हैं। यह निर्विकार होनेके कारण जगत्का कारण नहीं बन सकता, इसलिये जो उसकी आत्मभूत 'शक्ति' सृष्टि, प्रलय और स्थितिके कारणरूपसे मानी जाती है, वह 'बल' वा 'शक्ति' प्राणरूप है और इससे आगे उत्पन्न होनेवाले पुरुष, प्रकृति आदि सब 'पशु' हैं। यह एक दृष्टि हुई। यह निर्विशेष 'क्षर,' 'अक्षर' और 'अव्यय' तीनों पुरुषोंसे भी पर—उनका भी आत्मा है, यही शिवका मुख्य रूप 'परमशिव' है।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म-प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विज्ञेयः। (माण्डूक्योपनिषद् ७)

यह श्रुति निर्विशेष रूपका ही वर्णन करती है और उसे ही 'शिव' कहती है। इस रूपकी उपासना नहीं हो सकती, क्योंकि यह मनमें नहीं आ सकता। 'नेति-नेति' कहकर श्रुति किसी प्रकार उसका परिचय कराती है, कर्म वा उपासनासे उसका साक्षात् सम्बन्ध नहीं बन सकता; किन्तु यह भी सिद्धान्त है कि लक्ष्य हमारा वही है। आगे उत्पन्न होनेवाले प्रतीकोंके द्वारा उसीकी उपासना की जाती है, मुख्य आत्मा वही है, वही प्राप्य मुख्य लक्ष्य है।

अब आगे चलिये। शक्तिसहित आत्मा वा बल-विशिष्ट रस 'परात्पर' कहलाता है। बल वा शक्ति जब मायारूपसे प्रकट होकर अपरिच्छिन्न रसको परिच्छिन्न (सीमाबद्ध) कर लेती है, तब अव्यय पुरुषका प्रादुर्भाव होता है। उसकी पाँच कलाएँ हैं—आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक्। क्रमसे बलोंकी चिति होकर अक्षर पुरुष और आगे उसीसे क्षर पुरुष भी प्रकट हो जाता है। अब इस दशामें अव्यय पुरुष 'आत्मा', अक्षर उसकी 'प्रकृति' वा 'प्राण' और क्षर 'पशु' कहा जाता है। अर्थात् 'क्षर' रूप पशुके लिये 'अव्यय' पशुपति और अक्षर पाश है। वा यों कहो कि अव्यय ईश्वर, अक्षर प्रकृति और क्षर जगत् है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें अव्यय पुरुषको ही 'ईश्वर' कहा है। नारायणोपनिषद्में भी अव्ययकी कलाओंका प्रतिसञ्चार (विपरीत) क्रमसे जन्यजनकभाव कहा गया है—

अन्नात् प्राणा भवन्ति भूतानाम्, प्राणैर्मनो, मनसश्च विज्ञा-नम्, विज्ञानादानन्दो ब्रह्मयोनिः, स वा एष पुरुषः पञ्चधा, पञ्चात्मा, येन सर्वमिदं प्रोतम्..........................
ज्ञात्वा तमेवं मनसा हृदा च
भूयो न मृत्युमुपयाति विद्वान्।
(नारायणोपनिषद् ७९)

इन पाँचों कलाओंके अधिष्ठातारूपसे भगवान् शङ्कर-के पाँच रूप माने जाते हैं, जिनके भिन्न-भिन्न ध्यान तन्त्र-ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध हैं। आनन्दमय रूपकी 'मृत्युञ्जय' नामसे उपासना होती है, क्योंकि 'रस' स्वयं आनन्दरूप है—'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' (श्रुति)। और बल जिसका दूसरा नाम मृत्यु भी है, उस आनन्दका तिरोधान करता है। मृत्यु (बल) का जय करनेसे, मनसे हटा देने-से आनन्द प्रकट होता है, वा यों कहिये कि आनन्द ही मृत्युका जय करके प्रकट हुआ करता है। इसलिये आनन्द 'मृत्युञ्जय' है। दूसरी कला विज्ञानमय शङ्करमूर्तिकी 'दक्षिणा-मूर्ति' नामसे उपासना प्रसिद्ध है। 'विज्ञान' बुद्धिका नाम है, उसका घन 'सूर्यमण्डल' है, सूर्यमण्डलसे ही विज्ञान सौर-जगत्के सब प्राणियोंको प्राप्त होता है। सूर्य सौर-जगत्के केन्द्रमें स्थित है, वृत्त (मण्डल) में केन्द्र सबसे उत्तर माना जाता है। यह वृत्तकी परिभाषा है, अतः विज्ञान उत्तरसे दक्षिणको आनेवाला सिद्ध हुआ। इसी कारण विज्ञानमय मूर्ति 'दक्षिणामूर्ति' कही जाती है। 'वर्णमातृका' पर यह मूर्ति प्रतिष्ठित है। विज्ञानका आधार वर्णमातृका है। इसके स्पष्टीकरणकी सम्भवतः आवश्यकता न होगी। ये दोनों (मृत्युञ्जय और दक्षिणामूर्ति) प्रकाश-प्रधान होनेके कारण श्वेतवर्ण माने जाते हैं। तीसरी मनो-मय (अव्यय पुरुषकी) कलाका अधिष्ठाता 'कामेश्वर' शिव है। मन कामप्रधान है—

कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं तदासीत्। (श्रुति)

का परिशिष्टाङ्क' पृ० ५२२। यहाँ आवश्यकतानुसार उसका सारांश दिया जाता है।

इस कारण इसका 'कामेश्वर' नाम है और मनके धर्म-अनुरागका वर्ण 'रक्त' माना जाता है, इसलिये यह कामेश्वर-मूर्ति तन्त्रोंमें रक्तवर्ण मानी गयी है। पञ्चप्रेतपर्यङ्कपर शक्तिके साथ विराजमान इस कामेश्वरमूर्तिकी उपासना तान्त्रिकोंमें प्रसिद्ध है। चौथी कला 'प्राणमय मूर्ति' 'पशुपति', 'नीललोहित' आदि नामोंसे उपासित होती है। यह पञ्चमुखी मूर्ति है। आत्मा–पशुपति, प्राणरूप पाशके द्वारा विकाररूप पशुओंका नियमन करता है–यह पूर्व कह चुके हैं, अतः प्राणमय मूर्तिको ही 'पशुपति' कहना युक्तियुक्त है। प्राण वैदिक परिभाषामें दो प्रकारका है, एक आग्नेय, दूसरा सौम्य। अग्निका वर्ण लोहित–सुनहरी और सोमका नील वा कृष्ण माना गया है। 'यदग्ने रोहितं रूपम्,' 'तेजसस्तद्रूपम्', 'यच्छुक्ले तदपाम्', 'यत्कृष्णं तदन्नस्य' (छान्दोग्योपनिषद् ६ प्रपा० ४ खं०) (सोम ही अन्न होता है, इस कारण यहाँ अन्न शब्दसे सोमका निर्देश हुआ है), इसीलिये यह मूर्ति 'नीललोहित कुमार' नामसे प्रसिद्ध है। इन दोनों रूपोंके सम्मिश्रणसे पाँच रूप बनते हैं—इसलिये पाँच वर्णके पाँच मुखोंका ध्यान इस मूर्तिका ध्यान कहा गया है—

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे॥

सोम (कृष्णवर्ण) पर जब अग्नि (लोहित) आरूढ हो तो धूमल रक्त होता है और अग्निपर सोम आरूढ हो तो पीतरूप हो जाता है। सोम और अग्निकी मात्राके तारतम्यसे और भी मोतिया, बैंगनी, हरित आदि रूप बनते हैं। अस्तु, यहाँ इस विषयका विस्तार करनेसे प्रकरण-विच्छेदका भय है, इसलिये उक्त शिव-मूर्तिके ध्यानपर विशेष वक्तव्य यथास्थान उपस्थित किया जायगा। इस पञ्चमुख मूर्तिका एक मुख सबके ऊपर है और चार मुख चारों दिशाओंमें। ऊर्ध्वमुख ईशान नामसे, पूर्वमुख तत्पुरुष नामसे, दक्षिण अघोर नामसे, उत्तर वामदेव नामसे और पश्चिम सद्योजात नामसे पूजा जाता है। अवसर हुआ तो इन बातोंका स्पष्टीकरण मूर्तिनिरूपणमें करेंगे। पाँचवीं कला वाङ्मयमूर्ति 'भूतेश' नामसे उपास्य है। वाक्, अन्न और भूत–ये शब्द एक ही अर्थके बोधक हैं, यही 'भूतेश' शिव अष्टमूर्ति माने जाते हैं, इस सम्बन्धमें भी आगे बहुत कुछ वक्तव्य होगा।

यह अव्यय पुरुष सर्वात्मा, सर्वाधार, सबका आयतन है। आगे जो दूसरे प्रकारसे शिवमूर्तियाँ कहीं जायँगी, वे भी इससे पृथक् कभी नहीं हो सकतीं, सब इसीका विस्तार है।

हाँ, तो यह बताया जा चुका है कि तीनों पुरुषोंका प्रादुर्भाव होनेपर अव्यय पुरुष आत्मा वा पशुपति, अक्षर पुरुष प्राण वा पाश और क्षर पुरुष विकार वा पशु समझा जाता है—यह दूसरी दृष्टि हुई। अब क्षर पुरुषके प्रथम विकार—प्राण, अप्, वाक्, अन्नाद और अन्न—ये पाँच जब प्रादुर्भूत होते हैं, तो अव्यय पुरुष आत्मा, अक्षर और क्षर दोनों उसकी परा और अपरा-प्रकृति वा प्राण और प्राण, अप् आदि पाँचों विकार कहे जाते हैं; इन्हींको इस दृष्टिसे पशुपति, पाश और पशु कहा जाता है। आगे जब क्रमसे प्राण आदि पाँचों तत्त्व परस्पर पञ्चीकरणके द्वारा आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक रूपोंमें[1] विस्तृत होते हैं और आधिदैविक रूपमें इनके स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, पृथिवी और चन्द्रमा; आध्यात्मिक रूपमें अव्यक्त, महान्, विज्ञान, प्रज्ञान और शरीर एवं आधिभौतिक रूपमें गुहा (सत्य वा आकाश) अप्, ज्योति, रस और अमृत—ये नाम पड़ते हैं, तब अव्यय, अक्षर और क्षर–ये तीनों 'पुरुष' 'आत्मा' वा 'पशुपति', प्राण आदि पाँचों पूर्वोक्त 'प्रकृति' 'प्राण' वा 'पाश' और ये आधिदैविक आदि सब रूप 'विकार' वा 'पशु' कहे जाते हैं। आधिदैविक आदि रूपोंमें भी पुरुष और प्रकृतिसे अनुगत स्वयम्भू और परमेष्ठीका एक संमुग्धरूप 'पशुपति', सूर्य और चन्द्रमा 'पाश' और पृथिवी 'पशु' कहे[2] जाते हैं। यों ही सौर-जगत्की दृष्टिसे सूर्य पशुपति (आत्मा) सूर्यरश्मि पाश और पृथिवी, चन्द्रमा आदि पशु होते हैं। आगे इन पाँचों मण्डलोंमें जो-जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनकी दृष्टिसे ये मण्डल पशुपति और वे जन्य पदार्थ पशु समझे जाते हैं–जैसे पृथिवीमें उत्पन्न होनेवाले ओषधि, पार्थिव शरीर आदिके लिये पृथिवी ही 'पशुपति' है, पृथिवीका आकर्षण पाश है और वे ओषधि आदि पशु हैं। आगे अग्निके भेदोंमें भी पाँच प्रकारके पशुओंका उल्लेख होगा और नियन्ता ईश्वरके प्रकरणमें 'ऋत' पदार्थोंको 'पशु' कहा

१–ये पाँचों ब्रह्माण्डके अधिष्ठानमण्डल हैं, इन्हें ही 'सप्त-लोक' कहा जाता है। देखो श्रीकृष्णाङ्कका परिशिष्टाङ्क पृ० ५२४-५२५।

२–'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। (ऋग्वेद)

जायगा—वहाँ 'पशुपति' भी भिन्न-भिन्न होंगे। यों ही दृष्टिभेदसे शब्द-व्यवहारमें भेद होता जायगा। नियामकको ईश्वर, आत्मा वा पशुपति, नियम्यको विकार वा पशु और जिसके द्वारा नियमन हो उसे प्राण वा पाश कहा जाता है; किन्तु यह स्मरण रहे कि ये सब पदार्थ वैदिक सिद्धान्तमें एक ही मूलतत्त्वके भिन्न-भिन्न रूप हैं, इसलिये अनेकेश्वरवादका वैदिक दृष्टिमें कोई प्रसङ्ग नहीं आता। अव्यय पुरुषकी भावनासे ही हम भिन्न-भिन्न रूपोंकी उपासना किया करते हैं, अधिकारके अनुसार उपास्यरूपमें भेद होता है; किन्तु लक्ष्य एक है, उसमें किसीका भेद नहीं। आगे इसका कुछ स्पष्टीकरण सुनिये—

अक्षर पुरुष और महेश्वर

पूर्व कह चुके हैं कि अव्यय पुरुष सबका आलम्बन है; किन्तु वह कार्य और कारण दोनोंसे अतीत है। वह न जगत् है, न जगत्कर्ता; हाँ, जगत् और जगत्कर्ता दोनों-का आलम्बन अवश्य है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते। (श्रुति)
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।
न च मत्स्थानि भूतानि। (गीता)

इत्यादि विचित्र भावोंसे श्रुति-स्मृतिमें उसका वर्णन मिलता है। जब बलोंकी ग्रन्थि होकर बलप्रधान अक्षर पुरुषका प्रादुर्भाव होता है, तब जगत्की सृष्टिका उपक्रम होता है। अतः सृष्टिकर्ता ईश्वर 'अक्षर' पुरुषको ही कहते हैं। यह सदा स्मरण रखना आवश्यक है कि अव्यय, अक्षर और क्षर—ये तीनों पुरुष कभी पृथक्-पृथक् नहीं रहते। जहाँ क्षर है, वहाँ अक्षर और अव्यय भी अवश्य है। अक्षर भी बिना अव्ययके निरालम्ब कभी नहीं रहता। विशिष्टरूप एक है और वही उपलब्ध होता है, अपेक्षाकृत दृष्टिभेदसे तीनों पुरुषोंका विभाग है। अस्तु, अक्षर पुरुष जो कि जगत्का निमित्तकारण है, ईश्वर है। वह बलप्रधान है; बलका नाम शक्ति, प्राण वा क्रिया भी है। सोता हुआ बल शक्ति-नामसे, जागकर कार्य करनेको उद्यत होनेपर प्राण-नामसे और कार्यरूपमें परिणत होनेपर क्रिया-नामसे पुकारा जाता है। शक्तिका बल तीन प्रकारसे सब पदार्थोंमें लक्षित होता है—गति, आगति और प्रतिष्ठा। प्रत्येक पदार्थमेंसे प्रतिक्षण प्राणोंकी गति वा उत्क्रान्ति होती रहती है। किन्तु केवल उत्क्रान्ति ही हो तो सब पदार्थोंका प्रतिक्षण समूल नाश हो जाय, इसलिये जैसे गति है वैसे आगति (आमद) भी है। जगत्के सब पदार्थ प्रतिक्षण लेते और देते रहते हैं, इसी व्यवहारको दार्शनिक परिभाषामें 'आदान' और 'विसर्ग' कहते हैं। सूर्यमण्डलमें आदान और विसर्ग स्फुट रूपसे हमें दिखायी देते हैं। सूर्य अपनी किरणोंसे सब पदार्थोंको ताप देता है, ओषधि आदिका परिपाक करनेमें अपनी शक्ति लगाता है और चारों ओरसे जल, रस वा सोमको लेता भी रहता है। न केवल सूर्य, किन्तु पृथिवी भी अपना बल पार्थिव पदार्थोंको देती रहती है और आकर्षणद्वारा उनमेंसे कुछ लेती भी रहती है। किसी भी पदार्थमें आदान-विसर्ग न हों, तो वह कभी परिवर्तित न हो, पुराना न पड़े, सदा एक रूप रहे; किन्तु एक रूपमें कोई भी पदार्थ रहता नहीं, इससे सबमें आदान और विसर्गका होना सिद्ध है। जब आदान अधिक होता है और विसर्ग न्यून, तो सब पदार्थ बढ़ते हैं, बाल्यावस्थासे युवावस्थामें जाते हैं और इसके विपरीत आदानकी अपेक्षा विसर्ग जब अधिक होता है, तब घटनेकी बारी आती है; इससे ही जरा (वृद्धावस्था) आती है। यों आदान और विसर्गके द्वारा परिवर्तन होता रहनेपर भी पदार्थमें जो सत्ता—स्थिरता—एकरूपता प्रतीत होती है उससे तीसरा प्रतिष्ठा-बल भी स्वीकार करना पड़ता है। बौद्ध दर्शनमें केवल आदान-विसर्ग ही माने जाते हैं—इससे वहाँ प्रत्येक पदार्थको क्षणिक कहा गया है, किन्तु इस क्षणिकताको उच्छृङ्खल मान लेनेपर व्यवहारका लोप हो जायगा। 'स एवायम्' (यह वस्तु वही है)—यह प्रत्यभिज्ञा सबको होती है और इसीके आधारपर सारे जगत्का व्यवहार चलता है। एक कुम्हार बड़े परिश्रमसे बड़ा पक्का घड़ा बनाता है और इञ्जीनीयर बड़े कला-कौशलसे मशीन बनाता है। अपना बनाया घड़ा और अपनी बनायी मशीन एक क्षणमें ही नष्ट हो जायगी—ऐसी सम्भावना इन्हें हो तो ये कभी बुद्धि और शरीरका श्रम न करें। हमारे बोये आमके बीजसे एक वृक्ष लगेगा और वह चिरस्थायी होकर फल देता रहेगा, ऐसा विश्वास न हो तो कोई भी चतुर माली सुयोग्य स्थानमें वृक्ष लगाकर उसे सींचनेका प्रयास न करे। यह एक विषयान्तर है, विस्तारकी आवश्यकता नहीं।

ऐसी बहुत-सी युक्तियोंसे क्षणिकवादका निराकरण कर वैदिक दर्शनमें प्रतिष्ठा-बल भी माना जाता है। बलकी इन तीनों अवस्थाओंके अधिष्ठाता अक्षर पुरुषके भी तीन रूप हैं–ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र। प्रतिष्ठा-बलका अधिष्ठाता ब्रह्मा है, आदानका विष्णु और विसर्ग वा उत्क्रान्तिका इन्द्र। ये तीनों ईश्वरके रूप हैं। बारह आदित्योंमें जो विष्णु और इन्द्र हैं वा अन्तरिक्षका देवता जो इन्द्र है, वे देवतारूप इन्द्र वा विष्णु आगे उत्पन्न होनेवाले हैं, उनको और इनको एक न समझ लिया जाय। अस्तु, इन तीनोंकी स्थिति स्वयम्भू, परमेष्ठी, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा वा इन मण्डलोंसे उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थोंके केन्द्र वा हृदयमें रहती है, अथवा यों कहिये कि यही तीनों इन सब मण्डलोंको वा इनके आध्यात्मिक और आधिभौतिक (पूर्वोक्त) रूपोंको बनाकर उनमें विराजमान होते हैं। ऋग्वेद-संहिता म० ६ अ० ६ का ६९ सूक्त इन्द्र और विष्णुका सूक्त है, उसका सूक्ष्मदृष्टिसे मनन करनेपर यह तत्त्व स्फुट होता है। उसका अन्तिम मन्त्र है—

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे
न परा जिग्ये कतरश्च नैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां
त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम्॥

इसका अर्थ है कि इन्द्र और विष्णु दोनों ही विजय करनेवाले हैं, ये कभी नहीं हारते और इन दोनोंमें भी कोई एक नहीं हारता। ये दोनों स्पर्द्धा (युद्ध) करते रहते हैं और इसीसे तीन प्रकारके 'सहस्र' को प्रेरित करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ६–१५ में इस मन्त्रकी व्याख्या करते हुए तीन प्रकारके 'सहस्र' का अर्थ लोकसहस्र, वेदसहस्र और वाक्सहस्र किया है। लोक, वेद और वाक् ही अक्षर पुरुषसे निकलकर सब संसारके उपादान-कारण होते हैं। यह वैदिक विज्ञानका एक जटिल विषय है, इस छोटे-से लेखमें इस विषयपर कुछ कहा नहीं जा सकता। जिन सज्जनोंको इस विषयको जाननेकी अभिरुचि हो, वे इसका स्पष्टीकरण गुरुवर श्री ६ मधुसूदन झा विद्यावाचस्पति महानुभावके 'ब्रह्मविज्ञान' का 'संशयोच्छेदवाद', 'अहोरात्रवाद' या 'सिद्धान्तवाद' पढ़ें[1]। अस्तु, शतपथब्राह्मण, काण्ड ११, अ० १ ब्रा० ६ में भी क्षर और अक्षर पुरुषको कलाओंका निरूपण प्राप्त होता है। अन्यान्य स्थानोंमें भी इनका निरूपण ब्राह्मणोंमें बहुधा हुआ है।

उत्क्रान्ति और आगतिके साथ जब प्रतिष्ठा-बलका सम्बन्ध होता है, तो क्रमसे अग्नि और सोम नामकी दो कलाएँ और प्रकट हो जाती हैं। यहाँ भी यह स्मरण रहे कि जिसे हम 'अग्नि' कहते हैं वह भौतिक अग्नि तथा रसरूप सोम अभी बहुत पीछे उत्पन्न होनेवाले हैं। ये अग्नि और सोम अक्षर पुरुषके केवल शक्तिविशेष हैं, इन्हें 'मैटर' न समझा जाय। बाह्य गतिशील (भीतरसे बाहरको जानेवाली) प्राणशक्तिको अग्नि और अन्तर्गतिशील (बाहरसे भीतरकी ओर जानेवाली) प्राणशक्तिको सोम कहा जाता है। अग्नि विकासशील है और सोम सङ्कोचशील। अग्नि प्रसरणशील (फैलनेवाला) है, तो सोम आकुञ्चनशील (सिकुड़नेवाला)। अग्नि विरलभाव (पतलापन) करनेवाला है, तो सोम घनीभाव (ठोसपन, मोटापन) करनेवाला। किसी भी वस्तुका विकास वा प्रसरण होते-होते जब अन्तिम सीमापर पहुँच जाता है—जहाँसे आगे विकास सम्भव हो न हो, प्रत्येक अवयव विशकलित (पृथक्-पृथक्) हो चुका हो, तब फिर स्वभावतः सङ्कोचन आरम्भ हो जाता है; इसलिये वैज्ञानिक प्रक्रियामें ऐसा समझा गया है कि अग्नि ही सोम बन जाता है और सोम फिर अग्निमें गिरते ही अग्निरूप हो जाता है। इन्हीं विकास और सङ्कोचनके परिणामरूपमें पिण्डों (सूर्य, पृथिवी आदि गोलों) की उत्पत्ति होती है और उन पिण्डोंमें भी ये ही अग्नि और सोम बराबर यज्ञ[2] करते रहते हैं। यों अक्षर पुरुषकी पाँच कलाएँ सिद्ध हुईं—ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि और सोम। इनमें आदिके तीन अन्तश्चर, अन्तर्यामी वा हृद्य (केन्द्रमें रहनेवाले) और आगेके दोनों अग्नि और सोम बहिश्चर (पिण्डमें व्याप्त रहनेवाले) वा सूत्रात्मरूप हैं।

आदिके तीन रूपोंमें प्रतिष्ठा-बल–ब्रह्मा और आदान-बल–विष्णुको बाहर जानेका अवसर नहीं आता, ये केन्द्रमें ही अपना-अपना कार्य करते हैं; किन्तु उत्क्रान्ति-बल–इन्द्र केन्द्रमें रहता हुआ भी केन्द्रस्थ शक्तिको बाहर फेंकनेवाला है, इसलिये वह स्वयं भी उत्क्रान्त होता है

१–ये सब ग्रन्थ संस्कृतभाषामें पद्यबद्ध हैं। आदिके दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं।

२–यज्ञकी व्याख्याके लिये देखो 'कल्याण श्रीकृष्णाङ्कका परिशिष्टाङ्क' पृ० ५२१।

अर्थात् बाहर जाता है। बाहर जानेपर अग्नि और सोमके साथ भी उसका योग होता है। वा सूक्ष्म दृष्टिसे यों कहो कि अग्नि और सोमका प्रादुर्भाव उत्क्रान्तिके कारण ही है, अतः वे दोनों इन्द्रके ही रूपान्तर हैं। बस, इन्द्र, अग्नि और सोम इन तीनों सम्मिलित शक्तियोंका नाम 'महेश्वर' वा 'शिव' है। अक्षर पुरुष ही जगत्कर्ता ईश्वर कहाता है, यह कह चुके हैं। उसकी प्रत्येक कला भी 'ईश्वर' है; किन्तु तीन कलाएँ जहाँ सम्मिलित हों, उस रूपको महत्त्वके कारण 'महेश्वर' कहा जाता है। इसीलिये भगवान् शङ्कर 'त्रिनेत्र' हैं, वे तीन बलोंके 'नेता' हैं। श्रुतिमें भी उनका नाम 'त्र्यम्बक' है और पुराणादिमें तो स्पष्ट ही उनके तीन नेत्रोंके नाम बताये गये हैं—

वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनम्

सूर्यमण्डल 'इन्द्रप्रधान' है—

यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी।

(श्रुति)

'जैसे पृथिवीके गर्भमें अग्नि है, वैसे सूर्यमण्डलके गर्भमें इन्द्र है।'

चन्द्रमाका 'सोम' मण्डल होना प्रसिद्ध ही है और अग्नि तो अग्नि है ही; यों इन्द्र, अग्नि और सोम–तीनोंकी समष्टिका महेश्वर होना स्पष्ट बताया जाता है। यद्यपि हम कह चुके हैं कि अक्षरकी कलाएँ शक्तिरूप हैं—प्रत्यक्ष-दृश्य भौतिक अग्नि, सोम, सूर्य आदिसे वे बहुत परे हैं; किन्तु उन अदृश्य शक्तियोंका परिचय शास्त्र हमें इन सूर्य आदिके द्वारा ही देता है। यदि ऐसा न किया जाय तो उन अदृश्य शक्तियोंका ज्ञान ही मनुष्योंको कैसे हो। ईश्वरकी उपासना प्रकृतिको वा जगत्को आलम्बन वा प्रतीक बनाकर ही की जाती है। इन सूर्य, पृथिवी आदि मण्डलोंकी परिचालिका भी तो वही अक्षरशक्ति है, इन्हींमें कार्य करती हुई उस शक्तिको हम पाते हैं और इनमें ही उसकी दृष्टि रखकर उपासना करते हैं। यही क्यों, वह शक्ति भी तो इन्हीं पाशोंके द्वारा हमारा सबका नियमन करती है। इसलिये भगवान् शिव इन तीनों नेत्रोंसे सब जगत्को देखते हैं, वा सब जगत् इनके द्वारा उन्हें देखता है (नेत्रोंसे ही मनुष्यका भाव पहचाना जाता है)। किसी भी प्रकारसे उलट-पुलटकर समझ लीजिये, वैज्ञानिक भाषामें सब तरह कहा जा सकता है।

तीन बलोंकी समष्टि होनेके कारण तीनोंके धर्म शिवमें व्यवहृत होते हैं। इन्द्र उत्क्रान्ति (विसर्ग) बलका अधिष्ठाता है और उत्क्रान्तिसे ही वस्तुका विनाश होता है। जब आमदसे व्यय अधिक हो, तो शनैः-शनैः जीर्ण होकर प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपको खो देता है, इसी दृष्टिसे महेश्वरको 'संहारक' वा 'प्रलयकर्ता' कहा जाता है। आदानसे (बाहरसे खुराक लेनेसे) वस्तुका पालन होता है और आदान ही यज्ञ है, इसलिये विष्णुको पालकका यज्ञरूप और प्रतिष्ठासे ही वस्तुका स्वरूप बनता है, इसलिये ब्रह्माको 'उत्पादक' कहा जाता है; किन्तु यह सब अपेक्षाकृत है। एक वस्तुकी दृष्टिसे जिसे 'उत्क्रान्ति' कहते हैं, दूसरी वस्तुके लिये वही 'प्रतिष्ठा' वा 'आगति' (आदान) हो जाती है। जैसे दीपशिखा उत्क्रान्त हुई, उससे कज्जलकी प्रतिष्ठा (जन्म) हो गयी। समुद्रसे जलकी उत्क्रान्ति हुई—उससे मेघका जन्म हो गया। सूर्यमण्डलसे किरणोंकी उत्क्रान्ति हुई, इससे पृथिवी वा पार्थिव ओषधि आदिका पालन होता है। सूर्यसे प्रकाश उत्क्रान्त हुआ, उससे चन्द्रमण्डल प्रकाशित वा पालित हो गया। सूर्यने रसका आदान किया, इससे जलका सरोवर सूख गया। यही न्याय सृष्टि और प्रलयमें भी चलता है। स्वयम्भू आदि मण्डलोंसे प्राणोंकी उत्क्रान्ति होकर परमेष्ठी, सूर्य आदि नये-नये मण्डल बनते हैं; सूर्यसे पृथिवी बनती है और वह इसकी शक्तियोंको अपनेमें ले लेता है, तो यह लीन हो जाती है। तात्पर्य यह है कि एकका 'आदान' दूसरेकी दृष्टिसे विसर्ग और एकका विसर्ग दूसरेकी दृष्टिसे आदान कहा जा सकता है। एकका विनाश दूसरेका उत्पादक है। बीज नष्ट हुआ, अङ्कुरने जन्म लिया; इसलिये आदान और विसर्गमें ही प्रतिष्ठा भी अनुगत है। इसी विचारसे स्पष्ट कहा जाता है कि—

एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ही हैं। एक ही अक्षर पुरुषके तो तीन रूप हैं, एक ही शक्तिके तो तीन व्यापार हैं—दृष्टिमात्रका भेद है। एक ही बिन्दुपर तीनों शक्तियाँ रहती हैं; किन्तु कार्यवश कभी भिन्न-भिन्न स्थान भी ग्रहण कर लेती हैं। चेतन प्राणियोंमें विशेषकर शक्तियोंका स्थान-भेद देखा गया है; वहाँ प्रतिष्ठा-बल मध्यमें और गतिबल और आगति-बल इधर-उधर रहते हैं। जैसा कि मनुष्य-शरीरके अन्तर्गत हृदयकमलमें ब्रह्माकी, नाभिमें विष्णुकी और मस्तक-

देवसेनापति कुमार कार्तिकेय
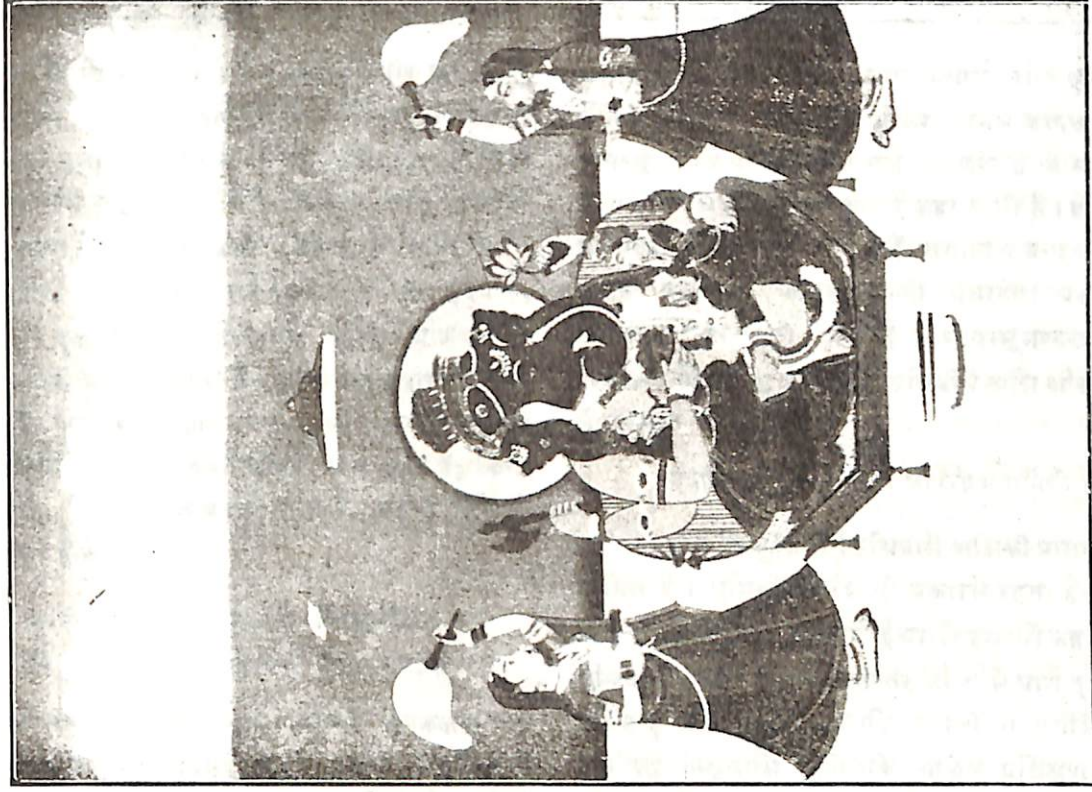
श्रीगणेश-परिवार

श्रीगणेशजी, सिद्धि, बुद्धि (दो पत्नियाँ), लक्ष, लाभ (दो पुत्र)
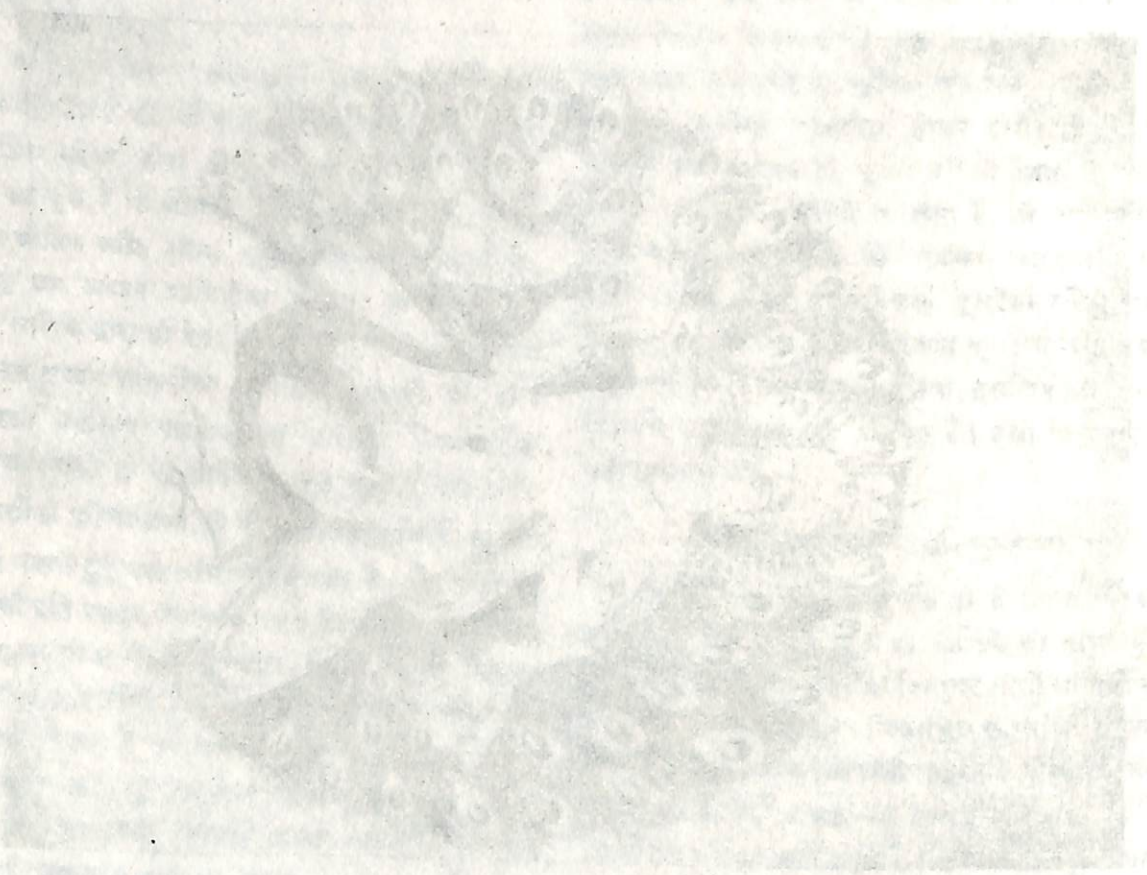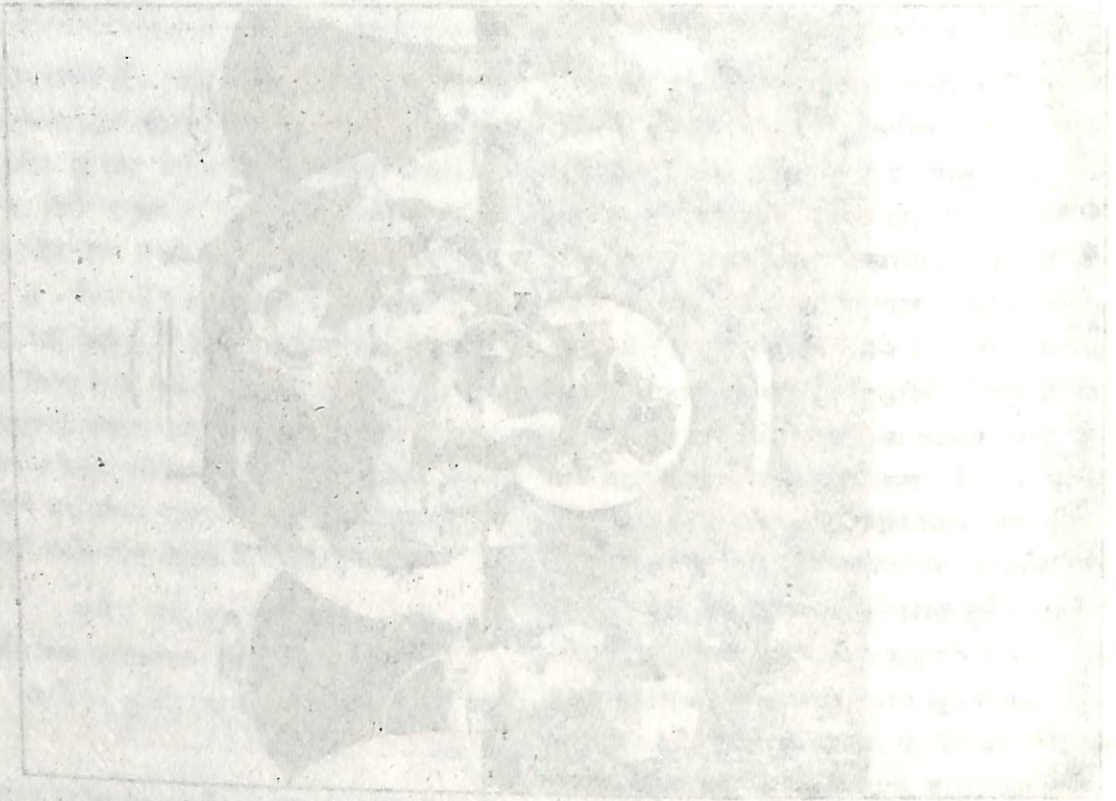
में शिवकी स्थिति मानी गयी है। मनुष्य-शरीर पार्थिव है, पृथिवीसे जो प्राण मानव-शरीरमें आता है, वह नीचेसे ही आता है। इसलिये आदान-शक्तिके अधिष्ठाता विष्णुकी स्थिति नाभिमें कही गयी है और उत्क्रमण उससे विपरीत-दिशामें होना सिद्ध ही है; इससे महेश्वरकी स्थिति शिरोभागमें मानी जाती है। सम्पूर्ण शरीरकी प्रतिष्ठा हृदय है, हृदयमें ही एक प्रकारकी तिलमात्र ज्योति याज्ञवल्क्य-स्मृति आदिमें बतायी जाती है, वहींसे सब शरीरको चेतना मिलती है, अतः वह ब्रह्माका स्थान हुआ। सन्ध्योपासनमें इन्हीं स्थानोंमें इन तीनों देवताओंका ध्यान होता है; किन्तु वृक्षोंमें यह स्थिति कुछ बदल गयी है, वहाँके लिये यों कहा जाता है—

मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे।
अग्रतः शिवरूपाय अश्वत्थाय नमो नमः॥

यहाँ अश्वत्थको प्रधान वृक्ष मानकर उपलक्षणरूपसे अश्वत्थका नाम लिया गया है, सभी वृक्षोंकी स्थिति इसी प्रकार है। उनकी प्रतिष्ठा (जीवन) मूलपर निर्भर है, इसलिये मूलमें ब्रह्मा कहा जाता है। मूलसे जो रस आता है, उसके द्वारा वृक्षका पालन वा पोषण मध्यभागसे होता है। आया हुआ रस यज्ञद्वारा गुदा, त्वचा आदिके रूपमें मध्यभागमें ही परिणत होता है, इससे यज्ञरूप पालक विष्णुकी स्थिति मध्यमें मानी गयी है और यह रस ऊपरके भागसे उत्क्रान्त होता रहता है; इसीसे वृक्षके ऊपरी भागसे शाखा, पत्ते आदि निकलते रहते हैं। अतएव उत्क्रान्तिका अधिपति महेश्वर वहाँ भी अग्रभागमें ही माना गया है। यह सब इन्द्रप्राणरूपसे महेश्वरकी उपासना है।

रुद्र और शिव

अब अग्नि और सोमके सम्बन्धको लेकर भी शिव-तत्त्वका विचार आवश्यक है, क्योंकि तीनों प्राणोंकी समष्टिका नाम 'महेश्वर' वा 'शिव' कहा गया है। अग्निको 'रुद्र' कहते हैं। 'अग्निर्वै रुद्रः' (शतपथब्रा० ५।३।१।१०, ६।१।३।१०), 'अत्रैष सर्वोऽग्निः संस्कृतः स एषोऽत्र रुद्रो देवता' (शतपथब्रा० ९।१।१।१) इत्यादि अनेकानेक श्रुतियोंमें अग्निको 'रुद्र' कहा गया है। यद्यपि इन वाक्योंमें सामान्यरूपसे अग्निको 'रुद्र' कहा है, तथापि देवताओंकी स्वरूपविवेचनाके लिये इस सम्बन्धमें कुछ विशेष समझनेकी आवश्यकता है। अक्षरकी पाँच कलाएँ और क्षर पुरुषसे पाँच प्रकृतियोंका प्रादुर्भाव होकर उनसे उत्पन्न होनेवाले स्वयम्भू आदि पाँच मण्डल कहे जा चुके हैं, ये मण्डल क्षर पुरुषकी आधिदैविक पाँच कलाएँ कही जाती हैं। इनमें यद्यपि सब अक्षर-प्राण सर्वत्र व्यापक हैं, तथापि एक-एक मण्डलमें क्रमसे एक-एक अक्षर-प्राणकी प्रधानता रहनेसे वह मण्डल उसीका कहा जाता है। स्वयम्भूमण्डलमें ब्रह्मा, परमेष्ठीमें विष्णु, सूर्यमें इन्द्र, पृथिवीमें अग्नि और चन्द्रमामें सोमकी प्रधानता है—

यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी।

—इत्यादि श्रुतियोंमें पृथिवीमें अग्निकी प्रधानता सर्वत्र घोषित है। पृथिवीमें अग्नि दो प्रकारसे रहता है—'चित्य' और 'चिते निधेय', यह पूर्व ईश्वर-निरूपणमें कह आये हैं। पृथिवी-पिण्डकी सृष्टिके अनन्तर जो अग्नि-प्राण इस पिण्डमें प्रविष्ट हुआ है, वह 'अमृताग्नि' नामसे ब्राह्मणोंमें व्यवहृत है। वह अमृताग्नि पृथिवीके गोलेसे प्रतिक्षण निकलता हुआ सूर्यमण्डलतक जाता है, इसकी व्याप्तिको कई भागोंमें बाँटकर उनके नाम श्रुतिमें 'स्तोम' वा 'अहर्गण' रक्खे गये हैं और उन भागोंके आधारपर ही त्रिलोकीकी कल्पना है। अमृताग्निकी स्थिति पृथिवी-गोलके हृदय वा केन्द्रमें है। वहाँसे पृथिवी-गोलकी परिधितक तीन 'अहर्गण' मान लिये जाते हैं। इन तीनसे आगे क्रमसे छः-छःका एक-एक विभाग है, जिसे पृथक्-पृथक् स्तोमके नामसे पुकारा जाता है। पहला स्तोम ३+६=९ अहर्गणपर पूरा होता है, जिसे 'त्रिवृत्स्तोम' कहते हैं, (त्रिवृत् नाम ९ का है), दूसरा ९+६=१५ पर पूर्ण होनेवाला पञ्चदश-स्तोम कहलाता है और तीसरा १५+६=२१ एकविंशस्तोम है। नौतक पृथिवीलोक, पन्द्रहतक अन्तरिक्ष और इक्कीस-तक द्युलोक माना गया है, इक्कीसवें भागका सूर्यमण्डलसे सम्बन्ध है—'असौ वा आदित्यो एकविंशः' (श्रुति)। इस त्रिलोकीमें[1] त्रिवृत् (९) स्तोमतक इस अग्निका नाम 'अग्नि' ही रहता है, अन्तरिक्षलोकमें अर्थात् ९ से १५ तक इसे 'वायु' कहते हैं और १५ से २१ तक द्युलोकमें 'आदित्य' नामसे इसका निर्देश होता है। यह सब विषय निरुक्त दैवतकाण्डके प्रथमाध्यायमें वर्णित है। अस्तु, तात्पर्य

१—त्रिलोकी दस प्रकारकी है, उनमें यह त्रिलोकी 'सौम्य त्रिलोकी' कही जाती है।

यह कि एक ही अग्निकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—अग्नि, वायु, आदित्य । अग्निके सहचर 'आठ वसु', वायुके सहचर 'एकादश रुद्र' और आदित्यके सहचर 'द्वादश आदित्य' कहलाते हैं। अर्थात् अग्नि आठ रूपोंमें, वायु ग्यारह रूपोंमें और आदित्य बारह रूपोंमें प्राप्त होता है। इससे आगे (सूर्यमण्डलसे परे) यह अमृताग्नि सोमरूपमें परिणत होकर बारह अहर्गणतक और जाता है, जिसमें २१+६=२७ का त्रिणवस्तोम और २७+६=३३ तक त्रयस्त्रिंशस्तोम कहा जाता है। ये दोनों स्तोम त्रिलोकीसे बाहर हैं, इनमें 'दिक्सोम' और भास्वरसोम —दो 'प्रकारके' सोमकी स्थिति है। यह स्तोम फिर ऊपरसे नीचेको आकर अग्निका अन्न (खाद्य) बनता रहता है, इसी 'अन्न' से 'अन्नाद' अग्निका जीवन है। जिसप्रकार अग्निकी तीन अवस्थाएँ बतायी गयी हैं, वैसे ही सोमकी भी तीन अवस्थाएँ हैं—सूक्ष्म दशामें 'सोम', किञ्चित् घन होनेपर 'वायु' और अधिक घन होनेपर उसे ही 'अप्' कहते हैं। इसलिये सूर्यसे ऊपरका परमेष्ठिमण्डल (महः और जनलोक) 'अप्लोक,' 'वायुलोक' वा सोमलोक कहलाता है। स्मरण रहे कि अग्निकी अवस्थाओंमें भी एक वायुका उल्लेख आया है, वह 'आग्नेय वायु' है और सोमकी अवस्थाओंका यह 'सौम्य वायु' है। ये दोनों प्राणरूप हैं अर्थात् शक्तिविशेष हैं, 'मैटर' वा भूत नहीं। यह भी स्मरण रहे कि बिना अग्निके सोम वा बिना सोमके अग्नि कहीं रह नहीं सकता, इसलिये सौम्य वायुमें भी अग्निका सम्बन्ध है; किन्तु सोमकी प्रधानताके कारण उसे 'सौम्य वायु' कहते हैं और आग्नेय वायुमें भी सोम है, किन्तु अग्निकी प्रधानता है। पृथिवी और सूर्यके मध्यमें जो अन्तरिक्ष है, उसमें आग्नेय वायु रहता है और सूर्य और परमेष्ठीके मध्यमें जो अन्तरिक्ष है, उसमें सौम्य वायु रहता है। यही आग्नेय वायु भौतिक वायु और भौतिक अग्निका उत्पादक है, अतएव श्रुतिमें कहा गया है कि 'मरुतो रुद्रपुत्रासः'—मरुत् रुद्रके पुत्र हैं। 'मरुत्' नाम भौतिक वायुका है। और इस अग्निको भी रुद्रका वीर्य कहा जाता है, जिससे कि रुद्रका नाम 'कृशानुरेताः' है। सूर्यके ताप (धूप) में भी रुद्रप्राणकी ही प्रखरता रहती है, अतः धूपको 'रौद्र' वा 'रौद' कहते हैं। रुद्र-प्राणसे ही भूमिके स्तरमें पारद बनता है, अतः उसे 'रुद्रवीर्य' कहा गया है। यह सब 'ब्रह्मविज्ञान' ग्रन्थका विषय है, यहाँ इसका विशेष विस्तार किया नहीं जा सकता। यहाँ इतना ही कहना है कि सौम्य वायु 'साम्ब सदाशिव' और आग्नेय वायु 'रुद्र' कहा जाता है। आग्नेय वायु उपद्रावक है। वह रूक्षता पैदा करता है, रोग उत्पन्न करता है, हर एक पदार्थका भेदक है, अतः वह 'रुद्र' (रुलानेवाला, भयङ्कर) कहा गया है और सौम्य वायु सबका प्राणप्रद, सब उपद्रवोंका शान्त करनेवाला, संयोजक है। अतः वह 'शिव' है। जैसा कि आगे कहते हैं—रुद्र भी किसी अवस्थामें 'शिव' होता है; किन्तु सौम्य वायु सदा ही शिव है, अतः उसे 'सदाशिव' कहते हैं। अम्बा वैदिक परिभाषामें 'जल' का नाम है। सौम्य वायु जलसे मिश्रित रहता है, अतः वह 'साम्ब सदाशिव' कहलाता है।

रुद्रके सम्बन्धमें ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—

अग्निर्वा रुद्रः, तस्यैते द्वे तन्वौ, घोरान्या च शिवान्या च।

अर्थात् अग्निका नाम रुद्र है। उसके दो रूप हैं—एक घोर, दूसरा शिव। जो अग्निका रूप उपद्रावक, रोगप्रद, नाशक है, उसे 'घोररुद्र' कहते हैं और जो लाभप्रद, रोगनाशक, रक्षक है, उसे 'शिव' कहते हैं। यों रुद्र भी 'शिव' माने गये हैं। घोर रुद्रोंसे 'मा नो वधीः पितरं मोत मातरम्', 'मा नः स्तोके तनये मा न आयुषि' 'नमस्ते अस्त्वायुधायानातताय धृष्णवे' इत्यादि रक्षाकी प्रार्थना वा 'परो मूजवतोऽतीहि' इत्यादि दूर रहनेकी प्रार्थना की जाती है, उनसे बचना आवश्यक है। और शिव-रुद्रकी पूजा-उपासना होती है, उनकी रक्षामें हम सब रहना चाहते हैं। अग्निमें जितना सोम-सम्बन्ध है, वह उतना ही 'शिव' (कल्याणकर) हो जाता है, यह शतपथ—नवमकाण्डमें आरम्भमें ही स्पष्ट किया गया है।

रुद्र ग्यारह प्रसिद्ध हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक वा अधियज्ञ-भेदसे इन ग्यारहके पृथक्-पृथक् नाम श्रुति, पुराण आदिमें प्राप्त होते हैं। शतपथ—चतुर्दशकाण्ड (बृहदारण्यक उपनिषद्)—४ अध्याय, ९ ब्राह्मणमें शाकल्य और याज्ञवल्क्यके प्रश्नोत्तरमें देवतानिरूपणमें (दशेमे पुरुषे प्राणाः, आत्मैकादशः) पुरुषके दस प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा आध्यात्मिक रुद्र बताये गये हैं। दस प्राणोंकी व्याख्या अन्यत्र श्रुतिमें इसप्रकार है—**'सप्त शीर्षण्याः प्राणाः, द्वाववाञ्चौ, नाभिर्दशमी'—मस्तकमें**

१—यह वायु देवतारूप वायु है, भौतिक वायु नहीं। भौतिक वायु इससे उत्पन्न होता है।

रहनेवाले सात प्राण, दो आँख, दो नाक, दो कान और एक मुख, नीचेके दो प्राण, मल-मूत्र त्यागनेके दो द्वार और दशवीं नाभि। अन्तरिक्षस्थ वायुप्राण ही हमारे शरीरोंमें प्राणरूप होकर प्रविष्ट है और वही इन दसों स्थानोंमें कार्य करता है, इसलिये इन्हें रुद्रप्राणके सम्बन्धसे 'रुद्र' कहा गया है। ग्यारहवाँ आत्मा भी यहाँ 'प्राणात्मा' ही विवक्षित है, जो कि इन दसोंका अधिनायक 'मुख्य प्राण' कहाता है। आधिभौतिक रुद्र पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान (विद्युत्), पवमान, पावक और शुचि नामसे कहे गये हैं। इनमें आदिके आठ शिवकी अष्टमूर्ति कहाते हैं, जिनका निरूपण आगे लिखते हैं—और आगेके तीन (पवमान, पावक और शुचि) घोररूप हैं। ये उपद्रावक रुद्र (वायुविशेष) हैं। इनमें शुचि सूर्यमें, पवमान अन्तरिक्षमें और पावक पृथिवीमें कार्य करता है; किन्तु हैं तीनों अन्तरिक्षके वायु। अष्टमूर्तिकी उपासना है और तीनोंसे पृथक् रहनेकी प्रार्थना है। आधिदैविक एकादश रुद्र तारामण्डलोंमें रहते हैं—[१] इनके कई नाम भिन्न-भिन्न रूपसे मिलते हैं—(१) अज एकपाद् (२) अहिर्बुध्न्य (३) विरूपाक्ष (४) त्वष्टा, अयोनिज वा गर्भ (५) रैवत, भैरव, कपर्दी वा वीरभद्र (६) हर, नकुलीश, पिङ्गल वा स्थाणु (७) बहुरूप, सेनानी वा गिरीश (८) त्र्यम्बक, भुवनेश्वर, विश्वेश्वर वा सुरेश्वर (९) सावित्र, भूतेश वा कपाली (१०) जयन्त, वृषाकपि, शम्भु वा सन्ध्य (११) पिनाकी, मृगव्याध, लुब्धक वा शर्व—इनका पुराणोंमें स्थान-स्थानपर विस्तृत वर्णन है। ये सब तारामण्डलमें तारारूपसे दिखायी देते हैं। रुद्र-प्राण इनमें अधिकतासे रहता है और इनकी रश्मियोंसे भूमण्डलमें आया करता है, इसीसे इन्हें 'रुद्र' कहा गया है। इनमें भी 'घोर' और 'शिव' दोनों प्रकारकी रुद्राग्नि है। इनके आधारपर फलाफल हिन्दू-शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं—जैसे कि इलेषा-नक्षत्रपर सूर्यके रहनेपर जो वर्षा होती है, उसे रोगोत्पादक और मघाकी वर्षाको रोगनाशक माना जाता है, इत्यादि। रोम-देशके पुराने तारामण्डलके चित्रोंमें सर्पधारी, कपालधारी, शूलधारी आदि भिन्न-भिन्न आकारोंके इन तारोंके चित्र दिखायी देते हैं, उन तारोंका आकार ध्यानपूर्वक देखनेपर उसी सन्निवेशका प्रतीत होता है, इसीलिये उनके वैसे आकार बनाये गये हैं। ऐसे ही शिवके भी भिन्न-भिन्न रूप उपासनामें प्रसिद्ध हैं। पुराणोंमें कई एक शिवके आख्यान इन तारोंके ही सम्बन्धके हैं, जैसा कि शिवने ब्रह्माका एक मस्तक काट दिया—इस कथाका 'लुब्धकबन्धु' तारेसे सम्बन्ध है। यह कथा ब्राह्मणोंमें भी प्राप्त होती है और वहाँ इसका तारापरक ही विवरण मिलता है। दक्षयज्ञकी कथा भी आधिदैविक और आधिभौतिक-दोनों भावोंसे पूर्ण है। वह मनुष्याकारधारी शिवका चरित्र भी है और 'दक्षका सिर काटकर उसके बकरेका सिर लगाया गया'—इसका यह आशय भी है कि प्राचीन कालमें नक्षत्रोंकी गणना कृत्तिकाको आरम्भमें रखकर होती थी, किन्तु उसे अश्विनी (मेष) से आरम्भ किया गया। यों ही कई एक कथाएँ आधिदैविक भावसे हैं। यज्ञमें ग्यारह अग्नि होते हैं। पहले तीन अग्नि हैं—गार्हपत्य, आहवनीय और धिष्ण्य। इनमें गार्हपत्यके दो भेद हो जाते हैं। इष्टिमें जो गार्हपत्य था, वह सोमयागमें 'पुराणगार्हपत्य' कहाता है और इष्टिके आहवनीयको सोमयागमें गार्हपत्य बना लेते हैं—वह 'नूतनगार्हपत्य' कहाता है। धिष्ण्याग्निके आठ भेद हैं—जिनके नाम श्रुतिमें आग्नीध्रीय, अच्छावाकीय, नेष्ट्रीय, पोत्रीय, ब्राह्मणाच्छंसीय, होत्रीय, प्रशास्त्रीय और मार्जालीय हैं। आहवनीय एक ही प्रकारका है, यों ग्यारह होते हैं। ये सब अन्तरिक्षस्थ अग्नियोंकी अनुकृति हैं—इसलिये ये भी एकादश रुद्र कहे जाते हैं। ये शिवरूप ही यज्ञमें ग्राह्य हैं, घोर रूपोंका यज्ञमें प्रयोजन नहीं।

एक रुद्र और अनन्त रुद्र

'एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः' और 'असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्', यों तन्त्रोंमें एक रुद्र और असंख्यात रुद्र-दोनों प्रकारके वर्णन प्राप्त होते हैं। इसकी व्यवस्था शतपथब्राह्मण-नवमकाण्डके आरम्भमें (प्रथमाध्याय, प्रथम ब्राह्मण) ही इसप्रकार की गयी है कि 'क्षत्र रुद्र' एक है और असंख्यात रुद्र 'विट्' (वैश्य) रुद्र हैं, विट्को ही 'प्रजा' कहते हैं। इसका अभिप्राय यही होता है कि एक रुद्र राजा—अधिनायक मुख्य है और अनन्त रुद्र उसकी प्रजा—अनुगामी है। मुख्य रुद्रको 'शतशीर्षा', 'सहस्राक्ष', 'शतेषुधि' कहा गया है। उसकी उत्पत्ति प्रजापतिके मन्यु (क्रोध) और अश्रुके सम्बन्धसे वहाँ बतायी गयी है। 'नमस्ते रुद्र मन्यवे'

१–यह नामावली श्रीगुरुचरणोंकी 'देवतानिवित्' पुस्तकके आधारपर लिखी गयी है। —लेखक

इत्यादि मन्त्रोंकी व्याख्या भी वहाँ है। अस्तु—इसका तात्पर्य पूर्वोक्त ही है कि अग्नि (प्रजापतिका मन्यु वा क्रोध) और सोम (अश्रुजल) के सम्बन्धसे 'रुद्र' प्राण होता है। जिनमें 'विप्रुट्'–बिन्दुमात्रका सम्बन्ध है, वे वायुके अनन्त भेद असंख्यात रुद्र बताये गये हैं। विकृत वायुके भिन्न-भिन्न अंश जो पृथिवी, अन्तरिक्ष वा सूर्यलोकमें व्याप्त हैं, उनका ही विस्तृत वर्णन रुद्राध्यायके मन्त्रोंमें आया है–उन रुद्रोंके अस्त्र आदि भी बताये हैं। 'येषां वात इषवः' इत्यादि, और किस तरह इनका प्रभाव प्राणियोंपर पड़ता है, इसका भी जिक्र है। 'ये आमे पात्रे विध्यन्ति' इत्यादि स्थानविशेष भी इनके आये हैं—'परो मूजवतोऽतीहि' (आप मूजवान् पर्वतसे परे चले जाइये)। मूजवान् पर्वत हेमकूट (हिन्दूकुश) का प्रत्यन्त पर्वत है—जो कि पश्चिमके सुलेमान पर्वतसे बहुत उत्तर, श्वेतगिरि (सफेद कोह) से भी उत्तर है। इसीसे पूर्वकी ओर क्रौञ्चगिरि (काराकुरम्) है, जिसका विदारण स्वामिकार्तिकेयके द्वारा पुराणोंमें वर्णित है। 'उमावन', 'शरवण' आदि स्थान इसीके आसपास हैं। वहाँसे आगेका वायु बहुत ही विकृत माना जाता है, इसीलिये विकृत वायुसे वहाँसे चले जानेकी प्रार्थना की गयी है। अस्तु, रुद्रका विज्ञान न समझकर आजकलके कई विद्वान् रुद्रपाठवर्णित रुद्रोंको 'जर्म्स' कहने लगे हैं; किन्तु हैं वे विकृतवायुप्रविष्ट 'रुद्रप्राण'। यह सब 'घोर रुद्र' का विस्तार है। रुद्रका वर्णन श्रुति, मन्त्र और ब्राह्मण दोनोंमें ओतप्रोत है। घोर रुद्र दूरसे नमस्कार्य हैं और शिवरुद्र उपास्य।

अष्टमूर्ति शिव

अक्षर पुरुषकी 'इन्द्र', 'अग्नि', 'सोम'–इन तीनों कलाओंके एक अधिष्ठाता 'महेश्वर' वा 'शिव' कहाते हैं—इस पूर्वोक्त तत्त्वका स्मरण रखिये। जितने पिण्ड बने हैं, वे सब अग्नि और सोमसे बने हैं; किन्तु किसी पिण्डमें अग्निकी और किसीमें सोमकी प्रधानता है। स्वयम्भू-मण्डल आग्नेय, परमेष्ठि-मण्डल सौम्य, फिर सूर्यमण्डल आग्नेय, चन्द्रमा सौम्य और फिर पृथिवी आग्नेय है। जो-जो आग्नेय हैं, उन्हें 'महेश्वर', 'रुद्र' वा 'शिव' कहकर पूजते हैं। सोमसम्पृक्त अग्निको ही पूर्वप्रकरणमें 'रुद्र' कहा जा चुका है।

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशः॥

'जो यह लाल (बैंगनी), गुलाबी, खाकी वा मिश्रित रूपका दिखायी देता है और इसके चारों ओर जो हजारों रुद्र हैं' इत्यादि वर्णन सूर्यमण्डलका ही रुद्ररूपसे है, वही सर्ववर्ण है और उसके चारों ओर सब देवता रहते हैं—'चित्रं देवानामुदगादनीकम्।' अस्तु, सूर्यमण्डलसे जो मण्डलाकार आग्नेय प्राण निकलता रहता है, उसे 'संवत्सराग्नि' कहते हैं। इसकी पूर्ति एक वर्षमें होती है, इसलिये वर्षको भी 'संवत्सर' कहा करते हैं। यह सौर अग्नि ही पृथिवीमें 'वैश्वानर' अग्निरूपसे परिणत होता है, यह निरुक्तकारने सिद्ध किया है। भूमण्डलके चारों ओर बारह योजन ऊपरतक एक 'भूवायु' है, जिसमें भूमिका-सा आकर्षण है। पक्षी उसीके आधारपर रहते हैं, इसे ज्योतिषमें 'आवह वायु' और वैदिक परिभाषामें 'एमूष वराह' वा 'उषा' कहते हैं। इस उषारूप पत्नीमें संवत्सराग्निरूप पुरुष जब गर्भाधान करता है (प्रविष्ट होता है) तब दोनोंके योगसे 'कुमार' नामक अग्निकी उत्पत्ति होती है—यह सब विषय शतपथब्राह्मण—काण्ड ६, अध्याय १, ब्राह्मण ३ में स्पष्ट है। यही कुमाराग्नि 'कुमारो नीललोहितः' कहकर रुद्ररूपसे उपास्य माना गया है। इस कुमाराग्निके आठ रूप हैं, जो कि 'चित्राग्नि' नामसे कहे जाते हैं। इन आठों रूपोंका विवरण उनके आठ नाम—रुद्र, सर्व (शर्व), पशुपति, उग्र, अशनि (भीम), भव, महादेव और ईशान और उनके आठ स्थान—अग्नि (भौतिक तेज), अप् (जल), ओषधि (पृथिवी), वायु, विद्युत (वैश्वानराग्नि, यजमानका आत्मा), पर्जन्य (आकाश), चन्द्रमा और सूर्य शतपथके उक्त स्थानमें स्पष्ट रूपसे गिनाये हैं। पौराणिक निरूपणमें जो नामभेद हैं—उन्हें हमने कोष्ठोंमें प्रकट कर दिया है। इसी श्रुतिका इशारा करते हुए महिम्नःस्तोत्रमें कहा गया है—

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते॥

उक्त आठों स्थानोंमें जो आग्नेय प्राण हैं—वे 'रुद्र' वा 'शिव' रूपसे उपास्य हैं, यही शिवकी आठ मूर्तियाँ कही जाती हैं। इसके आगे ही शतपथके काण्ड ६ अ० २ ब्रा० १ में इस कुमाराग्निसे पाँच पशुओं—पुरुष, अश्व, गो, अज और अविकी उत्पत्ति बतायी है। ये पाँचों भी अग्नि

(प्राणविशेष) हैं, जिनकी प्रधानतासे आधिभौतिक पशुओंके भी यही नाम पड़ते हैं। इन पशुओंका पति (अधिनायक) होनेके कारण भी यह कुमाराग्नि—रुद्र 'पशुपति' कहाता है।

शिव और शक्ति

रुद्र-निरूपणमें पूर्व कह आये हैं कि पार्थिव अग्नि इक्कीस अहर्गण (एकविंशस्तोम) तक अर्थात् द्युलोक वा स्वर्लोकतक (सूर्यमण्डलतक) व्याप्त है, उससे आगे सोममण्डल है। अग्निकी गति ऊपरको और सोमकी गति ऊपरसे नीचेकी ओर रहती है। यह भी कह चुके हैं कि विशकलनकी सीमापर पहुँचकर अग्नि ही सोमरूपसे परिणत हो जाता है और फिर ऊपरसे नीचेकी ओर आकर अग्निमें प्रवेश कर सोम अग्नि बन जाता है। इनमें अग्निको 'शिव' और सोमको 'शक्ति' कहते हैं। 'सोम' शब्द उमासे ही बना है—'उमया सहितः सोमः'। शक्तिरूपकी विवक्षा कर उमा भगवती कह लीजिये और शक्तिमान् द्रव्य वा प्राणको शक्तिका आश्रय, शक्तिसे अतिरिक्त मानकर 'उमया सहितः सोमः' कह लीजिये, बात एक ही है। भेद-अभेदकी विवक्षामात्रका भेद है। यह तत्त्व बृहज्जाबालोपनिषद्-ब्राह्मण २ में स्पष्ट है—

अग्नीषोमात्मकं विश्वमित्यग्निराचक्षते। रौद्री घोरा या तैजसी तनूः। सोमः शक्त्यमृतमयः शक्तिकरी तनूः।

अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजोविद्याकला स्वयम्।
स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु स एव रसतेजसि (सी)॥ १॥
द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका।
तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चान (नि) लात्मिका॥ २॥
वैद्युदादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः।
तेजोरसविभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्॥ ३॥
अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते।
अतएव हविः क्लृप्तमग्नीषोमात्मकं जगत्॥ ४॥
ऊर्ध्वशक्तिमयं (यः) सोम अधो (धः) शक्तिमयोऽनलः।
ताभ्यां सम्पुटितस्तस्माच्छश्वद्विश्वमिदं जगत्॥ ५॥
अग्ने (ग्नि) रूर्ध्वं भवत्येषा (ष) यावत्सौम्यं परामृतम्।
यावदग्न्यात्मकं सौम्यममृतं विसृजत्यधः॥ ६॥
अतएव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्ध्वगा।
यावदादहनश्चोर्ध्वमधस्तात्पावनं भवेत्॥ ७॥
आधारशक्त्यावधृतः कालाग्निरयमूर्ध्वगः।
तथैव निम्नगः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः॥ ८॥
शिवश्चोर्ध्वमयः शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः।
तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तमिह किञ्चन॥ ९॥

इसका तात्पर्य है कि 'इस सब जगत्‌के आत्मा अग्नि और सोम हैं वा इसे अग्निरूप भी कहते हैं। घोर तेज (अग्नि) रुद्रका शरीर है; अमृतमय, शक्ति देनेवाला सोम शक्तिरूप है। अमृतरूप सोम सबकी प्रतिष्ठा है, विद्या और कला आदिमें तेज (अग्नि) व्याप्त है। स्थूल वा सूक्ष्म सब भूतोंमें रस (सोम) और तेज (अग्नि) सब जगह व्याप्त हैं। तेज दो प्रकारका है—सूर्य और अग्नि; सोमके भी दो रूप हैं—रस (अप्) और अनिल (वायु)। तेजके विद्युत् आदि अनेक विभाग हैं और रसके मधुर आदि भेद हैं। तेज और रससे ही यह चराचर जगत् बना है। अग्निसे ही अमृत (सोम) उत्पन्न होता है और सोमसे अग्नि बढ़ता है, अतएव अग्नि और सोमके परस्पर हविर्यज्ञसे सब जगत् उत्पन्न है। अग्नि ऊर्ध्वशक्तिमय होकर अर्थात् ऊपरको जाकर सोमरूप हो जाता है और सोम अधःशक्तिमय होकर अर्थात् नीचे आकर अग्नि बन जाता है, इन दोनोंके सम्पुटमें निरन्तर यह विश्व रहता है। जबतक सोमरूपमें परिणत न हो, तबतक अग्नि ऊपर ही जाता रहता है और सोम—अमृत जबतक अग्निरूप न बने तबतक नीचे ही गिरता रहता है। इसलिये कालाग्निरूप रुद्र नीचे हैं और शक्ति इनके ऊपर विराजमान है। दूसरी स्थितिमें फिर (सोमकी आहुति हो जानेपर) अग्नि ऊपर और पावनसोम नीचे हो जाता है। ऊपर जाता हुआ अग्नि अपनी आधारशक्ति सोमसे ही धृत है (बिना सोमके उसका जीवन नहीं) और नीचे आता हुआ सोम शिवकी ही शक्ति कहाता है अर्थात् बिना शिवके आधारके वह भी नहीं रह सकता। दोनों एक दूसरेके आधारपर हैं। शिव शक्तिमय है और शक्ति शिवमय है, शिव और शक्ति जहाँ व्याप्त न हों—ऐसा कोई स्थान नहीं।'

अब इसपर और व्याख्या लिखनेकी आवश्यकता नहीं रही। अग्निसे सोम और सोमसे अग्नि बनते हैं—वे दोनों एक ही तत्त्व हैं। इसलिये शिव और शक्तिका अभेद (एकरूपता) माना जाता है, एकके बिना दूसरा नहीं

रहता। इसलिये शिव और उमा मिलकर एक अङ्ग है, उमा शिवकी अर्द्धाङ्गिनी है। सोम भोज्य है और अग्नि भोक्ता, इसलिये अग्नि पुरुष और सोम स्त्री माना गया है। लोकक्रममें सोम ऊपर रहता है, इससे शिवके वक्षःस्थलपर खड़ी हुई शक्तिकी उपासना होती है। शिव ज्ञानस्वरूप वा रसस्वरूप है और शक्ति क्रिया वा बलरूपा। क्रिया वा बल, ज्ञान वा रसके आधारपर खड़ा रहता है, इसलिये भगवतीको शिवके वक्षःस्थलपर खड़ी हुई मानते हैं—यह भी भाव इसमें अन्तर्निहित है। बिना क्रियाके ज्ञानमें स्फूर्ति नहीं—वह मुर्दा है, इसलिये वहाँ शिवको 'शव' रूप माना जाता है। अथवा यों भी कह सकते हैं कि विश्वरूप (विराट्रूप) शिव है, उसपर चित्कलारूपा (ज्ञानशक्तिरूपा) भगवती खड़ी है। वही इसकी प्रधान शक्ति है, उसके बिना विश्वरूप निश्चेष्ट है। वह 'शव' रूप है। ज्ञान और क्रियाको अर्द्धाङ्ग भी कह सकते हैं। यों कोई भी भाव मान लिया जाय, सभी प्रमाणसिद्ध और अनुभवगम्य हैं।

विश्वचर ईश्वर और शिवमूर्ति

विश्वकी उत्पत्तिसे शिवका सम्बन्ध संक्षेपमें दिखाया गया है, यह शिवका 'विश्व' रूप वा 'ब्रह्मसत्य' कहाता है। हम ईश्वर-निरूपणमें पूर्व कह चुके हैं कि ईश्वर जगत्को रचकर उसमें प्रविष्ट होता है। वह प्रविष्ट होनेवाला रूप ईश्वरका 'विश्वचर' रूप कहा जाता है, इसे वैदिक परिभाषामें 'देवसत्य' कहते हैं। यही सब जगत्का नियन्ता है और व्यवहारमें, न्यायदर्शनमें वा उपासनाशास्त्रोंमें यही नियन्ता 'ईश्वर' कहलाता है। ईश्वरके इस रूपकी व्याप्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें है, समष्टि-ब्रह्माण्डमें और प्रत्येक व्यष्टि-पदार्थमें यह व्यापकरूपसे विराजमान है और ब्रह्माण्डसे बाहर भी व्याप्त रहकर ब्रह्माण्डको अपने उदरमें रक्खे हुए है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥
यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको
यस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वम्।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद्)

—इत्यादि शतशः मन्त्रोंमें ईश्वरके विश्वचर रूपका वर्णन मिलता है और इनमें 'शिव', 'ईशान', 'रुद्र' आदि पद भी स्पष्ट हैं।

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वरका शरीर कहलाता है, इस शरीरका वर्णन इसप्रकार प्राप्त होता है—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥

(मुण्ड० २। १। ४)

'अग्नि जिसका मस्तक है, चन्द्रमा-सूर्य दोनों नेत्र हैं, दिशाएँ श्रोत्र हैं, वेद वाणी है, विश्वव्यापी वायु प्राणरूपसे हृदयमें है, पृथिवी पादरूप है—वह सब भूतोंका अन्तरात्मा है।'

इसी प्रकारका संक्षिप्त वा विस्तृत वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है। इसी वर्णनके अनुसार उपासनामें शिवमूर्तिके ध्यान हैं। हम पूर्व कह चुके हैं कि अग्निकी व्याप्ति इक्कीस स्तोमतक (सूर्यमण्डलतक) है, इसी अग्निको यहाँ मस्तक बताया गया है और उसी मस्तकके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्रमाको नेत्र माना है। यों पृथिवीसे आरम्भकर सूर्यमण्डलसे परे, स्वयम्भूमण्डलतक ईश्वरकी व्याप्ति बतायी जाती है। हमारी आराध्य शिवमूर्तिमें भी तृतीय नेत्ररूपसे अग्नि ललाटमें विराजमान है, जोकि अन्य दोनों नेत्रोंसे किञ्चित् ऊँचेतक है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नेत्र हैं ही—

'वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनम्'

यहाँतक अग्निकी व्याप्ति हुई, इससे आगे सोममण्डल है और सोमकी तीन अवस्थाएँ हैं-अप्, वायु और सोम, यह भी पूर्व कह चुके हैं। इनमेंसे सोम चन्द्रमारूपसे, अप् गङ्गारूपसे और वायु जटारूपसे शङ्करके मस्तकमें (अग्नि आदिसे ऊपर) विराजमान हैं। सूर्यमण्डलसे ऊपर परमेष्ठिमण्डलका सोम मण्डलरूपमें नहीं है—इसलिये शिवके मस्तकपर भी चन्द्रमाका मण्डल नहीं, किन्तु कलामात्र है। सोमके ही तीन भाग हैं, जोकि तीन कला (अंश, अवयव) कही जा सकती हैं। केवल सोम पूर्णरूपमें नहीं रहता; किन्तु भागोंमें विभक्त होकर रहता है—इसलिये भी चन्द्रकी कलाका मस्तकपर विराजित होना युक्तियुक्त है। मण्डलरूप पृथिवीका चन्द्रमा पहले नेत्रोंमें आ चुका है यह स्मरण रहे; परमेष्ठिमण्डलका 'अप्' ही गङ्गाके रूपमें परिणत होता है—यह गङ्गाके विज्ञानमें कहीं अन्यत्र स्पष्ट किया जायगा। वह गङ्गा जटामें है अर्थात् वायुमण्डलमें व्याप्त है। शिवका नाम 'व्योमकेश' है, अर्थात् आकाशको उनकी जटा माना गया है और आकाश वायुसे व्याप्त ही मिलता है—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।

इससे भी जटाओंका वायुरूप होना सिद्ध है। एक-एक केशके समूहको 'जटा' कहते हैं और वायुका भी एक-एक डोरा पृथक्-पृथक् है, जिनकी समष्टि 'वायु' कहलाता है—यह जटा और वायुका सादृश्य है। पृथिवीका अधिकतर सम्बन्ध सूर्यसे ही है, आगेके सोममण्डलका पृथिवीसे साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता—सूर्य, चन्द्रद्वारा होता है; इससे हमारा असली ब्रह्माण्ड सूर्यतक ही है। यही यहाँ भी (शिवमूर्तिमें भी) सूचित किया है, क्योंकि मस्तकतक ही शरीरकी व्याप्ति है-केश मुख्यतः शरीरके अंश नहीं कहे जाते। शरीरका भाग ही अवस्थान्तरित होकर केशरूपमें परिणत होता है, इसी प्रकार अग्नि ही अवस्थान्तरित होकर सोमरूपमें परिणत होता है—यह कह चुके हैं। यह परमेष्ठिमण्डलका वायु जटारूपसे है और जिसे श्रुतिमें प्राणरूपसे हृदयमें विराजमान कहा है, वह इस हमारे अन्तरिक्षका वायु है। पद्मपुराणमें पृथिवीका पद्मरूपसे निरूपण किया है; और शङ्करका ध्यान पद्मासनस्थितरूपमें है-'पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैः', इससे पृथिवीकी पादरूपता भी ध्यानमें आ जाती है।

ईश्वरके शरीर इस ब्रह्माण्डमें विष और अमृत—दोनों हैं। विष भी कहीं बाहर नहीं, ईश्वर-शरीरमें ही है। किन्तु ईश्वर विषको गुप्त—अन्तर्लीन रखता है और अमृतको प्रकट। जो ईश्वरके उपासक ईश्वरके शरीररूपसे जगत्को देखते हैं, उनकी दृष्टिमें अमृत ही आता है, विष विलीन हो रहता है। अतएव शङ्करकी मूर्तिमें विष गलेके भीतर है, वह भी कालिमारूपसे मूर्तिकी शोभा ही बढ़ा रहा है और अमृतमय चन्द्रमा स्पष्टरूपसे सिरपर विराजमान है। वैज्ञानिक समुद्रमन्थनके द्वारा जो विष प्रकट होता है, उसे रुद्र ही धारण करते हैं; किन्तु इस संक्षिप्त लेखमें उस कथाका भाव नहीं बताया जा सकता। ईश्वरको शास्त्रकारोंने 'विरुद्धधर्माश्रय' माना है; जो धर्म हमें परस्पर-विरुद्ध प्रतीत होते हैं, वे सब ईश्वरमें अविरुद्ध होकर रहते हैं। सभी विरुद्ध धर्मोंको ब्रह्माण्डमें ही तो रहना है, बाहर जायँ कहाँ? और ब्रह्माण्ड ठहरा ईश्वर-शरीर, फिर वहाँ विरोध काहेका? यह भाव भी शिवमूर्तिमें स्पष्ट है कि वहाँ अमृत भी है, विष भी; अग्नि भी है, जल भी—किसीका परस्पर विरोध है ही नहीं। इस भावको पार्वतीकी उक्तिमें कविकुलगुरु कालिदासने बड़े सुन्दर शब्दोंमें चित्रित किया है। इस प्रकरणका एक पद्य हम लेखके आरम्भमें दे चुके हैं, दूसरा भी बड़ा मार्मिक है—

विभूषणोद्भासि भुजङ्गभोगि वा
गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथ वेन्दुशेखरं
न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः॥
(कुमारसंभव ५)

वह शरीर भूषणोंसे भूषित भी है और सर्प-शरीरोंसे वेष्टित भी। गजचर्म भी ओढ़े हुए है और सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य वस्त्रधारी भी हो सकता है। वह शरीर कपालपाणि भी है और चन्द्रमुकुट भी। जो विश्वमूर्ति ठहरा, उस शरीरका एक रूपसे निश्चय कौन कर सकता है?

भगवान् शङ्करके हाथमें परशु, मृग, वर और अभय बताये गये हैं—

परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।

ध्यानमें हाथोंके द्वारा देवमूर्तिके कार्य प्रकट किये जाते हैं—यह 'निदान' की परिभाषा है। यहाँ भी शङ्करके (ईश्वरके) चार कर्म इन चिह्नोंद्वारा बताये गये हैं।

परशु (वा त्रिशूल) रूप आयुधसे दुष्टोंका, आत्मविघातक दोषों और उपद्रवोंका और पवमान, पावक, शुचि आदि घोर रुद्रोंका हनन सूचित किया जाता है। काल आनेपर सबका हनन भी इसीसे सूचित हो जाता है। दूसरे हाथमें मृग है। शतपथब्राह्मण—काण्ड १, अध्याय १, ब्राह्मण ४ में कृष्ण मृगको यज्ञका स्वरूप बताया गया है। अन्यत्र शतपथ और तैत्तिरीयमें यह भी आख्यान है कि अग्नि वनस्पतियोंमें प्रविष्ट हो गया, 'वनस्पतीनाविवेश' इस ऋचाको भी वहाँ प्रमाणरूपमें उपस्थित किया गया है। उस अग्निको देवताओंने ढूँढ़ा, इससे 'मृग्यत्वान्मृगः'—ढूँढ़नेयोग्य होनेसे वह अग्नि 'मृग' कहाया। यह अग्नि वेदका रक्षक है। अस्तु, दोनों ही प्रकारसे मृगके धारण-द्वारा यज्ञकी रक्षा वा वेदकी रक्षा—यह ईश्वरका कर्म सूचित किया गया है। वरमुद्राके द्वारा सबको सब कुछ देनेवाला ईश्वर (शङ्कर) ही है, अग्नि, वायु और इन्द्ररूपसे वही सब जगत्‌का पालक है—यह भाव व्यक्त किया है और अभयके द्वारा अनिष्टसे जगत्‌का त्राण विवक्षित है। यम, निर्ऋति, वरुण और रुद्र—ये चार जगत्‌के अनिष्टकारक माने गये हैं; इनमें रुद्र समयपर हनन करता है और अन्य अनिष्टोंका उपमर्दनकर रक्षा भी करता है। इसीसे रुद्रमूर्तिमें अभयमुद्रा आवश्यक है। शङ्कर व्याघ्र-चर्मको नीचेके अङ्गमें पहनते हैं वा आसन बनाकर बिछाते भी हैं और गजचर्मको ऊपर ओढ़ते हैं, इससे भी उपद्रवी दुष्टोंका दबना और सम्पत्ति देना लक्षित होता है। उनके गलेमें जो मुण्डमाला है, उससे यही सूचित होता है कि सब जगत्‌के पदार्थ ईश्वरके रूपमें अन्तर्गत हैं, उनके रूपमें सब पिरोये हुए हैं—

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

ईश्वरसत्तासे पृथक् किये जानेपर सब पदार्थ अचेतन—मृत हैं, यही भाव 'मुण्ड' रूपसे सूचित किया है। प्रलय-कालमें शिव ही शेष रहते हैं, शेष सब पदार्थ चेतनाशून्य होकर मृत-मुण्डरूपसे उनमें प्रोत रहते हैं—यह भी मुण्डमालाका भाव है।

सर्प

शिवको 'सर्पभूषण' कहा जाता है। उनकी मूर्तिमें जगह-जगह साँप लिपटे हुए हैं। इसका स्थूल अभिप्राय कह चुके हैं कि मङ्गल और अमङ्गल सब कुछ ईश्वर-शरीरमें है। दूसरा अभिप्राय यह भी है कि संहारकारक शिवके पास संहारसामग्री भी रहनी ही चाहिये। समयपर उत्पादन और समयपर संहार—दोनों ईश्वरके ही कार्य हैं। सर्पसे बढ़कर संहारक तमोगुणी कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि अपने बालकोंको भी खा जाना—यह व्यापार सर्प-जातिमें ही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं। तीसरा अभिप्राय किञ्चित् निगूढ़ है। चन्द्रमा, मङ्गल, बृहस्पति आदि ग्रह जो सूर्यके चारों ओर घूमते हैं—वे अपने एक परिभ्रमणमें जिस मार्गपर गये थे, ठीक उन्हीं बिन्दुओंपर दूसरी बार नहीं जाते। किञ्चित् हटकर उसी मार्गपर चलते हैं, यों एक-एक बारके भ्रमणका एक-एक कुण्डलाकार वृत्त बनता जाता है। कुछ नियत परिभ्रमणोंके बाद वे फिर अपने उस पूर्व वृत्तपर आ जाते हैं, यह नियम भिन्न-भिन्न ग्रहोंका भिन्न-भिन्न रूपसे है। मङ्गल ७९ वर्षमें फिर अपने पूर्व-वृत्तपर आता है, और-और ग्रहोंका भी समय नियत है। यह भिन्न-भिन्न मण्डलोंका समुदाय रस्सीकी तरह लपेटा हुआ खयालमें लाया जाय तो वह सर्पकुण्डलीके आकारका ही होता है। अतः वेदोंमें इनका व्यवहार नाग वा सर्प कहकर ही किया गया है। आधुनिक ज्योतिष-शास्त्रमें इन्हें 'कक्षावृत्त' कहते हैं। सूर्यको मध्यमें रखकर घूमनेवालोंमें आठ ग्रह मुख्य हैं, अतः आठ ही सर्प प्रधान माने गये हैं। और भी बहुत-से तारे घूमनेवाले हैं, उनके लघु सर्प बनते हैं। ये सब ग्रह और उनके कक्षावृत्त (सर्प) ईश्वरके शरीर—ब्रह्माण्डमें अन्तर्गत हैं—इसलिये शिवके शरीरमें भूषणरूपसे सर्पोंकी स्थिति बतायी गयी है। तारामण्डलमें भी अनेक रुद्र हैं, और उनके आकार सर्प-जैसे दिखायी देते हैं—यह पूर्व रुद्रनिरूपणमें कह चुके हैं। उन सबके धारक मुख्य रुद्र भगवान् शङ्कर हैं—यह चौथा अभिप्राय भी भुलाया न जाय।

श्वेत मूर्ति

भगवान् शङ्करकी मूर्ति उज्ज्वल—श्वेत है—

रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गम्

इसके अभिप्राय निम्नलिखित हैं—

(१) व्यापक ईश्वर चेतन अर्थात् ज्ञानरूप है। ज्ञानको 'प्रकाश' कहते हैं, अतः उसका वर्ण श्वेत ही होना चाहिये।

(२) श्वेत वर्ण कृत्रिम नहीं, स्वाभाविक है। वस्त्र आदिपर दूसरे रंग चढ़ानेके लिये यत्न करना पड़ता है, किन्तु श्वेत रंगके लिये कोई रँगरेज नहीं होता। श्वेतपर और-और रूप चढ़ते हैं और धोकर उतार दिये जाते हैं, श्वेत पहले भी रहता है और पीछे भी। धोबीद्वारा दूसरे रंगके उतार दिये जानेपर श्वेत प्रकट हो जाता है। इससे श्वेत नैसर्गिक ठहरा। बस, यही बताना है कि ईश्वरका कृत्रिम रूप नहीं है, सब रूप उसमें उत्पन्न होते हैं और लीन होते हैं, वह स्वभावतः एकरूप है, वा यों कहो कि कृत्रिम रूपोंसे वर्जित है, नीरूप है।

(३) वैज्ञानिक लोग जानते हैं कि श्वेत कोई भिन्न रूप नहीं। सब रूपोंके समुदायको ही श्वेत कहते हैं। सब रूपोंको जब मिलाया जाय तब वे यदि सब-के-सब मूर्च्छित हो जायँ तो काला रूप बनता है और सब जाग्रत् रहें तो श्वेत प्रतीत होता है। सूर्यकी किरणोंमें सब रूप हैं—यह वैज्ञानिकलोग जानते हैं। तिकोने काँचकी सहायतासे सर्वसाधारण भी देख सकते हैं। किन्तु सबके मिलनेके कारण प्रतीत श्वेत रूप ही होता है। भिन्न-भिन्न सब वर्णोंके पत्ते एक यन्त्रमें रखकर उसे जोरसे घुमाया जाय तो श्वेत ही दिखायी देगा। इससे सिद्ध है कि सब रूप हों, किन्तु उनमें भेद-भाव न हो; वह शुक्ल होता है। यही स्थिति ईश्वरकी है। जगत्के सब रूप उसीमें ओत-प्रोत हैं, किन्तु भेद छोड़कर। भेद अविद्याकृत है। ईश्वरमें अभिन्नरूपसे सबकी स्थिति है। तब उस ईश्वरको श्वेत ही कहना और देखना चाहिये।

(४) सात लोकोंमें जो स्वयम्भूसे पृथिवीतक पाँच मण्डल बताये गये हैं, उनमेंसे सूर्यमण्डलमें सब वर्ण हैं। आगे परमेष्ठिमण्डल कृष्ण है—यह हम कल्याणके कृष्णाङ्क-परिशिष्टाङ्कके पृष्ठ ५३६-५३७ में दिखा चुके हैं। उससे आगे स्वयम्भूमण्डल प्रकाशमय श्वेतवर्ण है और आग्नेय-मण्डल होनेके कारण वह 'शिवमण्डल' वा 'रुद्रमण्डल' भी कहाता है। वही मण्डल सर्वव्यापक होनेके कारण ईश्वरका रूप कहा जा सकता है। उसके प्रकाशमय श्वेतवर्ण होनेके कारण शिवमूर्तिका श्वेतवर्ण युक्तियुक्त है।

विभूति

शङ्करभगवान् सर्वाङ्गमें विभूतिसे अनुलिप्त—आच्छन्न रहते हैं। इसका भी यही कारण है। उक्त पाँचों मण्डलोंके प्राण सारे पार्थिव पदार्थोंमें व्याप्त हैं। उनमेंसे सौर-जगत्में सूर्यप्राण उद्भूत (सबसे ऊपर, प्रकाशित) रहते हैं और आगेके अमृतमण्डलों (परमेष्ठी और स्वयम्भू) के प्राण आच्छन्न (ढके हुए, गुप्त) रहते हैं। सूर्यकिरणोंके कारण ही भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न रूप दीख पड़ते हैं—यह वैज्ञानिकोंका सुप्रसिद्ध सिद्धान्त है। सूर्यकी किरणोंमें सब रूप हैं, हर एक पदार्थ अपनी विशेष शक्तिसे अन्य रूपोंको निगल जाता है और एक रूपको उगल देता है। जिसे उगलता है वही हमें उस पदार्थका रूप प्रतीत होता है, यह आधुनिक वैज्ञानिकोंका कथन है। अस्तु, जब इन पदार्थोंमें अग्नि लगायी जाती है तो अग्निका स्वभाव है कि घनीभूत पदार्थोंका विशकलन करे—उन्हें तोड़े। यों अग्निद्वारा पृथक् किया जाकर सौर-प्राणोंका ऊपरी स्तर जब निकल जाता है, तो भीतरका छिपा हुआ परमेष्ठि-मण्डलके प्राणका समनुगत कृष्णरूप काले कोयलेके रूपमें निकल आता है, किसी भी पदार्थको जलानेपर वह काला ही होगा—यह प्रत्यक्ष है। यह पदार्थोंमें दूसरा स्तर है। जब इसपर भी फिर अग्निका प्रयोग किया जाय और अग्निद्वारा विशकलित होकर दूसरा स्तर भी निकल जाय—उड़ जाय—तब तीसरा अन्तर्निगूढ़ स्वयम्भू प्राणों-का स्तर प्रकट होता है और वह स्वयम्भू प्राणके समनुगत श्वेत रूपका देखा जाता है। किसी भी रंगके पदार्थको जलाइये, अन्तमें प्रकाशमान श्वेत भस्म ही शेष रहता है। यह मौलिक तत्त्व है, इसे अग्नि नहीं उड़ा सकता। भगवान् शङ्कर इसी मौलिक तत्त्व-भस्मसे सदा उद्धूलित रहते हैं। इसी मौलिक तत्त्वसे वे सृष्टिकी रचना करते हैं—यह शिवपुराणकी सृष्टि-प्रक्रियामें स्पष्ट है। स्वयम्भूमण्डल-के अधिष्ठाता श्वेत मूर्ति शिवका जगद्व्याप्त स्वयम्भू-प्राणरूप भस्मसे उद्धूलित रहना सर्वथा स्वारसिक है—इसमें सन्देह नहीं। शिवके अन्य प्रकारके भी ध्यान हैं, यह पूर्व लिखा गया है। उन अन्यान्य शिवमूर्तियोंके सम्बन्धमें भी विवेचना आवश्यक थी। और शिवलिङ्गके सम्बन्धमें भी बहुत कुछ वक्तव्य था; किन्तु लेख विस्तृत हो गया, अब लिखनेके लिये न तो उपयुक्त समय है और न स्थान ही। इसलिये इन विवेचनाओंको समयान्तरके लिये छोड़कर, दो-एक आवश्यक बातें और कहकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं।

शिव और विष्णु

उपासनाके प्रेमियोंमें इस बातपर आधुनिक युगमें बहुत विवाद रहता है कि शिव और विष्णुमें कौन बड़ा? कोई विष्णुको ही परमात्मा कहकर शिवको उनके उपासक मानते हुए जीवकोटिमें माननेका साहस करते हैं और कोई शिवको परतत्त्व कहकर विष्णुको उनके अनुगत, सेवक वा जीवविशेष कहनेतकका पाप करते हैं। कुछ सज्जन दोनोंको ईश्वरके ही रूप कहते हुए भी उनमें तारतम्य रखते हैं। वैज्ञानिक प्रक्रियामें वस्तुतः इन विवादोंका अवसर ही नहीं है। यहाँ न कोई छोटा है, न बड़ा। अपने-अपने कार्यके सब प्रभु हैं। यह उपासककी इच्छा और अधिकारके अनुसार नियत है कि वह किसी रूपको अपनी उपासनाके लिये चुन ले, किन्तु किसीको छोटा कहना या निन्दा करना अपनेको विज्ञानशून्य घोषित करना है। अस्तु, अब क्रमसे देखिये—निर्विशेष, परात्पर वा अव्यय पुरुष, जो उपासना और ज्ञानका मुख्य लक्ष्य है, जो जीवका अन्तिम प्राप्य है, उसमें किसी प्रकारका भेद नहीं। उसे 'वेवेष्टीति विष्णुः'-सर्वत्र व्यापक है, इसलिये 'विष्णु' कह लीजिये, अथवा 'शेरतेऽस्मिन् सर्वे इति शिवः'-सब कुछ उसीके पेटमें है, इसलिये 'शिव' कह लीजिये। उसका कोई नाम-रूप न होते हुए भी—

सर्वधर्मोपपत्तेश्च।

—इस वेदान्तसूत्रके अनुसार सभी गुण, कर्म और नाम उसके हो सकते हैं। अतएव विष्णुसहस्रनाममें शिवके नाम और शिवसहस्रनाममें विष्णुके नाम आते हैं, मूलरूपमें भेद है ही नहीं। यों परमशिव वा महाविष्णु एक ही वस्तु है, उपासकके अधिकार वा रुचिके अनुसार उसकी भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे उपासना होती है। अब आगे अक्षर पुरुषमें आइये—यहाँ विष्णु और महेश्वर शक्ति-भेदसे पृथक्-पृथक् प्रतीत होंगे, जैसा कि कहा गया है कि आदान-क्रियाके अधिष्ठाता विष्णु और उत्क्रान्तिके अधिष्ठाता महेश्वर हैं; किन्तु वस्तुतः विचार करनेपर एक ही अक्षर पुरुषकी दोनों कलाएँ हैं, इसलिये मौलिक भेद इनमें सिद्ध नहीं होता। आदान और उत्क्रान्ति दोनों एक ही गतिके भेद हैं। गति यदि केन्द्राभिमुखी हो तो 'आदान' कहाता है और यदि केन्द्रसे विपरीत दिशामें अर्थात् पराङ्मुखी हो तो 'उत्क्रान्ति' कहाती है, यों एक ही गतिके दिग्भेदसे दो विभेद हैं—तब वास्तविक भेद कहाँ रहा? नाममात्रका ही तो भेद है। एक कविने बड़ी सुन्दरतासे कहा है—

उभयोरेका प्रकृतिः प्रत्ययतो भिन्नवद्भाति।
कलयतु कश्चन मूढो हरिहरभेदं विना शास्त्रम्॥

व्याकरणके अनुसार हरि और हर दोनों शब्द एक ही 'हृ' धातुसे बनते हैं, अतः प्रकृति (मूल धातु) दोनोंमें एक है, केवल प्रत्यय जुदा-जुदा है—तब इनका भेद मानना शास्त्रसे अनभिज्ञोंका ही काम है। दूसरा अर्थ श्लोकका यह है कि दोनोंकी प्रकृति एक है अर्थात् मूलतत्त्व-रूपसे दोनों एक हैं, केवल प्रत्यय-प्रतीति-बाहरी दृष्टिसे भेद हो रहा है; यह भेद शास्त्र-दृष्टिवालोंको कभी प्रतीत नहीं होता। अतएव उत्क्रान्तिका नेता 'इन्द्र' कहाता है तो आदानका 'उपेन्द्र' (दूसरा इन्द्र)। विष्णुका दूसरा नाम 'उपेन्द्र' भी है।

कुछ सज्जन शिवको संहारकर्ता कहकर उपासनाके अयोग्य मानते हैं; किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे यह भी तर्क नहीं ठहरता। हम अक्षर पुरुषके निरूपणमें स्पष्ट कर चुके हैं कि एक दृष्टिसे जो संहार है, दूसरी अपेक्षासे वही उत्पादन वा पालन है। नाममात्रका भेद है, वास्तविक भेद इसमें भी नहीं है। इसके अतिरिक्त संहार भी तो ईश्वरका ही काम है और वह अवश्यम्भावी है। समयपर उत्पादन और पालन जैसे नियत हैं, वैसे ही संहार भी नियत है। तीनों कार्य ईश्वरके द्वारा ही होते हैं। यदि एक ही शक्ति तीनों कार्योंकी करनेवाली न मानी जाय तो बड़ा युक्तिविरोध आ पड़े। संहार करनेवाला कोई और है, तो वह पालकसे जबर्दस्त कहा जायगा—क्योंकि उसके पालितको वह नष्ट कर देता है। फिर संहारक ही ईश्वर कहाएगा, पालक नहीं। इसके अतिरिक्त जिसने सबका संहार किया वही तो अन्तमें शेष रहेगा, फिर सृष्टिके समय सृष्टि भी वही करेगा। दूसरा रूप है ही कहाँ, जो सृष्टि करे? इन सब कुतर्कोंका समाधान तभी होता है जब कि एक ही ईश्वरके कार्यापेक्षासे तीनों रूप माने जायँ—उनमें भेद न माना जाय। जिस समय जिस रूप वा शक्तिकी आवश्यकता होती है, उस समय वह प्रकट हो जाता है, तत्त्व एक ही है। फिर भी कहा जाय कि तत्त्व चाहे एक हो, किन्तु संहारकारक रूपसे हमें ध्यान नहीं करना चाहिये—तो यह युक्ति भी निःसार है। सब रूपोंके उपासक अपने उपास्यमें सभी शक्तियोंका

ध्यान करते हैं। विष्णुके उपासक भी उनको उत्पादक, पालक और संहर्ता तीनों कहते हैं और शिवके उपासक भी ऐसा ही करते हैं। कोई भी शक्ति न माननेसे ईश्वरमें न्यूनता आ जायगी। ईश्वरका काम यथाकाल सब कार्य करना है, कालमें संहार अभीष्ट ही है। क्या संहारका ध्यान न करनेवालोंका संहार न होगा? फिर महेश्वर तो केवल संहारक हैं भी नहीं, तीन अक्षर कलाओंकी समष्टि को 'महेश्वर' बताया गया है; इनमें अग्नि और सोम ही तो सब जगत्के उत्पादक हैं, इसलिये यह उत्कर्षापकर्षकी कल्पना कोरी कल्पना ही है। कुछ सज्जन शिवको तमोगुणी कहकर उपासनाके अयोग्य ठहरानेका साहस करते हैं, किन्तु यह भी साहसमात्र ही है। शिव ईश्वर हैं, वे तमोगुणके वशमें तो हो ही नहीं सकते। ईश्वर और जीवमें यही तो भेद है कि जीव प्रकृतिके वशमें है और ईश्वर प्रकृतिका नियन्ता है। तब शिव तमोगुणी हैं—इसका अभिप्राय यह होगा कि वे तमोगुणके नियन्ता हैं। तो फिर सत्त्वगुणके नियमन करनेकी अपेक्षा तमोगुणके नियमन करनेका कार्य कितना कठिन है और वैसा कार्य करनेवाला रूप और भी उत्कृष्ट है कि नहीं—इसका विचारशील स्वयं निर्णय करें।

वस्तुतः तमोगुण 'आवरक' कहलाता है, भूतोंकी उत्पत्ति तमोगुणसे ही मानी जाती है और वैज्ञानिक प्रक्रियामें भूतोंके उत्पादक अग्नि और सोम हैं। उन अग्नि और सोमके अधिनायक महेश्वर हैं, इसलिये उन्हें तमोगुणका अधिष्ठाता कहा गया है। इससे उपास्यतामें कोई हानि नहीं। उपासक उन्हें तमोगुणके नियन्ता कहकर उपासना करते हैं; अतएव परमवैराग्यवान्, अत्यन्त शान्त, विषयनिर्लिप्त रूपमें वे उनका ध्यान करते हैं, इससे उपासकोंमें तमोगुणकी वृद्धि होगी—इसकी लेशतः भी सम्भावना नहीं। तमोगुणके नियन्ता वे भी हो जायँगे।

अब प्राकृत स्वयम्भू आदि मण्डलोंपर विचार कीजिये। यहाँ भी एक दृष्टिसे एककी व्याप्ति न्यून रहती है, तो दूसरी दृष्टिसे दूसरेकी। विष्णु यज्ञस्वरूप हैं, और यज्ञद्वारा ही रुद्र आदि सब देवता उत्पन्न होते हैं—यज्ञके आधार-पर ही सब देवताओंकी स्थिति है। रुद्र शिवका रूप है, इसलिये कहा जा सकता है कि शिव विष्णुके उदरमें हैं—उनसे उत्पन्न होते हैं। किन्तु दूसरी दृष्टिसे अग्निप्रधान सूर्यमण्डल रुद्रका रूप है, उस मण्डलकी व्याप्तिमें अर्थात् सौर-जगत्के अन्तर्गत यज्ञमय विष्णु हैं। सौर-जगत्में जो यज्ञ हो रहा है उसीसे हमारा जीवन है और 'यज्ञो वै विष्णुः'—यज्ञ ही विष्णुका रूप है, इस दृष्टिसे शिव वा रुद्रके पेटमें विष्णु रहे। अब आगे बढ़िये—सूर्यका उत्पादक यज्ञ परमेष्ठिमण्डलमें होता है, अतएव वह मण्डल विष्णुप्रधान कहा गया है—उस मण्डलके पेटमें सूर्यमण्डल आ जाता है, इससे विष्णुके पेटमें शिवका अन्तर्भाव हुआ। और आगे चलें तो परमेष्ठिमण्डल स्वयम्भूमण्डलके अन्तर्गत रहता है, स्वयम्भूमण्डल आग्नेय होनेके कारण रुद्रका वा अग्निके नियन्ता महेश्वरका मण्डल कहा जा सकता है—यह अभी विस्तारसे निरूपित हो चुका है। स्वयम्भूमण्डलके अन्तर्गत एक वाचस्पति-तारा है, वह श्रुतिमें इन्द्र माना गया है और इन्द्र महेश्वरके रूपमें अन्तर्गत है। उस मण्डलकी व्याप्तिमें परमेष्ठिमण्डलके अन्तर्भूत रहनेके कारण फिर शिवके उदरमें विष्णु आ गये। इसीलिये स्पष्ट कहा गया है—

शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोस्तु हृदयं शिवः।

सब जिसके अन्तर्गत हैं—वह परमाकाश सर्वरूप है, उसे परमशिव कह लीजिये वा महाविष्णु। इसलिये इस दृष्टिसे भी कोई भेद वा छोटा-बड़ापन सिद्ध नहीं होता।

अब आगे जो हमने विश्वचररूप ईश्वरका बताया है, वह विष्णु भी कहा जा सकता है और शिव भी। विष्णुका वर्णन भी पृथिवी पाद, सूर्य-चन्द्रमा नेत्र इत्यादि रूपसे ही मिलता है और शिवका भी वैसा ही वर्णन हम लिख चुके हैं। जिसप्रकार शिवकी उपास्य मूर्तिमें हमने सब ब्रह्माण्ड-का अन्तर्भाव बताया है, वैसा ही विष्णुमूर्तिका रहस्य-विवरण भी विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत आदिमें मिलता है। इसमें केवल इतना विवक्षाभेद है—जगत्के तीन मूल हैं, ज्ञान, क्रिया और अर्थ। वा यों कहो कि इनका समुदाय ही जगत् है। इनमें क्रियाको 'यज्ञ' कहते हैं और यज्ञ विष्णुका रूप बताया गया है। इससे क्रियाप्रधान-रूपसे—कुर्वद्रूपतामें—जिसमें बराबर कार्य हो रहा है—यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी प्रतिकृति बनायी जाय, तो वह विष्णुकी मूर्ति होगी और ज्ञानकी प्रधानता-से—प्रशान्तभावमें यदि ब्रह्माण्डकी प्रतिकृति बनायी जाय तो वह शिवमूर्ति कही जायगी। इसीलिये यह प्रवाद भी चला है कि उपासनाका विष्णुसे और ज्ञान-

काण्डका शिवसे सम्बन्ध है, क्योंकि उपासना क्रियारूप है। महेश्वरकी उपासना भी ज्ञान-प्राप्तिके लिये ही मानी गयी है—'ज्ञानं महेश्वरादिच्छेत्।' ज्ञानप्राप्तिके अनन्तर भी प्रथम भूमिकाओंमें निदिध्यासन आदि क्रियाओंकी मुक्तिके लिये आवश्यकता रहती है—इसलिये फिर 'मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्' मान लिया गया। ज्ञान बिना अर्थके नहीं रहता, वही अर्थका धारक है—इसलिये विद्वानोंकी उक्ति है कि—

शब्दजातमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा।
अर्थजातमशेषं च धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः॥

'सब अर्थोंके धारण करनेवाले बालेन्दु-मुकुट भगवान् शङ्कर हैं।'

इस दृष्टिमें भी अर्थ मुख्य है वा यज्ञ—इसका निर्णय कोई नहीं कर सकता। यज्ञसे अर्थ बनते हैं, अर्थ होनेपर ज्ञान होता है और ज्ञानसे क्रिया वा यज्ञ होता है, बिना अर्थके भी यज्ञ नहीं हो सकता। यों दोनों रूप परस्पर-सापेक्ष रहते हैं, विवक्षाभेदसे कोई किसीको प्रधान मान ले। वस्तुतः यज्ञ और अर्थ एक ही मूलसे निकले हैं—अतः एक ही हैं।

यों वैज्ञानिक भावमें किसी भी दृष्टिसे हरि और हरका मौलिक भेद वा छोटा-बड़ापन सिद्ध नहीं हो सकता। केवल दृष्टिभेद है। उसमें उपासकके अधिकार और रुचिके अनुसार किसी भी रूपमें प्रधान-दृष्टि की जा सकती है। पुराणादिमें जो कहीं किसीकी और कहीं किसीकी प्रधानता लिखी है, वह भी उस अधिकारीका मनोभाव उस रूपमें दृढ करनेके लिये—उसी रूपमें 'ब्रह्मदृष्टि' करानेके उद्देश्यसे है—किसीके वास्तविक उत्कर्ष वा अपकर्षका कहीं भी तात्पर्य नहीं।

न हि निन्दा निन्द्यान् निन्दितुं प्रवर्तते, अपितु स्तुत्यान् स्तोतुम्।

'निन्दा निन्दनीयकी निन्दाके उद्देश्यसे नहीं होती, अपितु स्तुत्यकी स्तुतिके उद्देश्यसे होती है'—यह मीमांसाका न्याय भी इसीके अनुकूल है।

मनुष्याकारधारी शिव

लेखके आरम्भमें हम कह आये हैं कि हमारे शास्त्रोंमें ईश्वरका दो भावोंमें वर्णन है, वैज्ञानिकरूपसे और मनुष्याकारसे। वे मनुष्याकार ईश्वरके सगुणरूप वा अवतार कहे जाते हैं। वैज्ञानिक निरूपणमें और इन मनुष्याकारधारी ईश्वररूपोंके चरित्रोंमें आश्चर्यजनक सादृश्य देखा जाता है। अतएव आर्य-शास्त्रोंका विश्वास है कि उपासकोंपर अनुग्रहके कारण ईश्वर मनुष्यरूप ग्रहण करता है। गुरुवर श्री ६ मधुसूदनजी ओझा विद्यावाचस्पतिके 'देवासुरख्याति', 'अत्रिख्याति' और 'इन्द्र-विजय' आदिमें निरूपण है कि पृथिवीमें भी एक त्रिलोकी है। कारणावतपर्वत—जिससे इरावती नदी निकलती है—के उत्तरका प्रदेश भूस्वर्ग (त्रिविष्टप) कहाता है, उसके 'इन्द्रविष्टप', 'विष्णुविष्टप', 'ब्रह्मविष्टप' आदि विभाग भी पुराणादिमें सुप्रसिद्ध हैं। आर्य सभ्यताके प्राधान्यकालमें इस प्रदेशमें सब वैज्ञानिक देवताओंके समान ही संस्था प्रचलित थी। अस्तु, इस अप्रकृत विषयका हम यहाँ विस्तार न करेंगे; यहाँ हमारा वक्तव्य केवल इतना ही है कि एक भगवान् शङ्करका मनुष्यरूप भी है। वह लक्ष्यालक्ष्यरूप है, कभी कार्यकालमें प्रकट होता है और कभी अलक्षित रहता है। इसी प्रकारके वर्णन इस रूपके पुराणोंमें हैं। इसे शिवावतार कह सकते हैं। समय-समयपर इन शङ्करभगवान्‌की तीन स्थानोंपर स्थिति बतायी गयी है। प्रथम भद्रवट-स्थानमें—जोकि कैलाससे पूर्वकी ओर लौहित्यगिरिके ऊपर है, ब्रह्मपुत्रा नदी उसके नीचे होकर बहती है। दूसरा स्थान कैलास पर्वतपर और तीसरा मूजवान् पर्वतपर। मूजवान्‌का स्थान-निर्देश हम पहले कर चुके हैं। इन शङ्करके गण, भूत आदिका निवास हिमालय और हेमकूटके दर्रोंमें बताया गया है। ये शङ्कर-भगवान् भी पूर्ण वैराग्यरत, आत्मसंयमी हैं। काशीखण्डमें एक कथा है कि इन शङ्कर भगवान्‌ने अपना सारा राज्य मानसरोवरपर विष्णुभगवान्‌को दे दिया और स्वयं विरक्त होकर एकान्तमें रहने लगे। देवताओंके कार्यके लिये—स्वामिकार्तिकेयकी उत्पत्तिके लिये पार्वती-विवाह करनेको वा त्रिपुरासुरका वध करनेको—ऐसे ही अन्यान्य समयोंमें देवताओंकी प्रार्थनापर ये प्रकट होते रहे हैं। पार्वती-विवाह, त्रिपुरवध आदिकी कथाएँ इनकी बड़ी रोचक और आर्यसभ्यताके युगमें पदार्थ-विज्ञानका अद्भुत महत्त्व प्रकट करनेवाली हैं; किन्तु उनका विवरण शङ्कर-भगवान्‌की कृपासे कभी समयान्तरमें सम्भव होगा—यह आशा कर शङ्कर-स्मरण करते हुए इस लेखको पूर्ण किया जाता है। ॐ शान्तिः।

शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षभागे वहन्तम् ।
नागं पाशं च घण्टां प्रलयहुतवहं साङ्कुशं वामभागे नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥

शिव-तत्त्व बहुत ही गहन है । मुझ-सरीखे साधारण व्यक्तिका इस तत्त्वपर कुछ लिखना एक प्रकारसे लड़कपनके समान है । परन्तु इसी बहाने उस विज्ञानानन्दघन महेश्वरकी चर्चा हो जायगी, यह समझकर अपने मनोविनोदके लिये कुछ लिख रहा हूँ । विद्वान् महानुभाव क्षमा करें ।

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन मिलता है । इसपर तो यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न ऋषियोंके पृथक्-पृथक् मत होनेके कारण उनके वर्णनमें भेद होना सम्भव है; परन्तु पुराण तो अठारहों एक ही महर्षि वेदव्यासके रचे हुए माने जाते हैं, उनमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिके वर्णनमें विभिन्नता ही पायी जाती है । शैवपुराणोंमें शिवसे, वैष्णवपुराणोंमें विष्णु, कृष्ण या रामसे और शाक्तपुराणोंमें देवीसे सृष्टिकी उत्पत्ति बतलायी गयी है । इसका क्या कारण है ? एक ही पुरुषद्वारा रचित भिन्न-भिन्न पुराणोंमें एक ही खास विषयमें इतना भेद क्यों ? सृष्टिके विषयमें ही नहीं, इतिहासों और कथाओंमें भी पुराणोंमें कहीं-कहीं अत्यन्त भेद पाया जाता है । इसका क्या हेतु है ?

इस प्रश्नपर मूल-तत्त्वकी ओर लक्ष्य रखकर गम्भीरताके साथ विचार करनेपर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि सृष्टिकी उत्पत्तिके क्रममें भिन्न-भिन्न श्रुति, स्मृति और इतिहास-पुराणोंके वर्णनमें एवं योग, सांख्य, वेदान्तादि शास्त्रोंके रचयिता ऋषियोंके कथनमें भेद रहनेपर भी वस्तुतः मूल-सिद्धान्तमें कोई खास भेद नहीं है । क्योंकि प्रायः सभी कोई नाम-रूप बदलकर आदिमें प्रकृति-पुरुषसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति बतलाते हैं । वर्णनमें भेद होने अथवा भेद प्रतीत होनेके निम्नलिखित कई कारण हैं—

१–मूल-तत्त्व एक होनेपर भी प्रत्येक महासर्गके आदिमें सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता । क्योंकि वेद, शास्त्र और पुराणोंमें भिन्न-भिन्न महासर्गोंका वर्णन है, इससे वर्णनमें भेद होना स्वाभाविक है ।

२–महासर्ग और सर्गके आदिमें भी उत्पत्ति-क्रममें भेद रहता है । ग्रन्थोंमें कहीं महासर्गका वर्णन है तो कहीं सर्गका, इससे भी भेद हो जाता है ।

३–प्रत्येक सर्गके आदिमें भी सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम सदा एक-सा नहीं रहता, यह भी भेद होनेका एक कारण है।

४–सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहारके क्रमका रहस्य बहुत ही सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है, इसे समझानेके लिये नाना प्रकारके रूपकोंसे उदाहरण-वाक्योंद्वारा नाम-रूप बदलकर भिन्न-भिन्न प्रकारसे सृष्टिकी उत्पत्ति आदिका रहस्य बतलानेकी चेष्टा की गयी है । इस तात्पर्यको न समझनेके कारण भी एक-दूसरे ग्रन्थके वर्णनमें विशेष भेद प्रतीत होता है ।

ये तो सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें वेद-शास्त्रोंमें भेद होनेके कारण हैं । अब पुराणोंके सम्बन्धमें विचार करना है । पुराणोंकी रचना महर्षि वेदव्यासजीने की । वेदव्यासजी महाराज बड़े भारी तत्त्वदर्शी विद्वान् और सृष्टिके समस्त रहस्यको जाननेवाले महापुरुष थे । उन्होंने देखा कि वेद-शास्त्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शक्ति आदि ब्रह्मके अनेक नामोंका वर्णन होनेसे वास्तविक रहस्यको न समझकर अपनी-अपनी रुचि और बुद्धिकी विचित्रताके कारण मनुष्य इन भिन्न-भिन्न नाम-रूपवाले एक ही परमात्माको अनेक मानने लगे हैं और नाना मत-मतान्तरोंका विस्तार होनेसे असली तत्त्वका लक्ष्य छूट गया है । इस अवस्थामें उन्होंने सबको एक ही परम लक्ष्यकी ओर मोड़कर सर्वोत्तम मार्गपर लानेके लिये एवं श्रुति, स्मृति आदिका रहस्य स्त्री, शूद्रादि अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको समझानेके लिये उन सबके परमहितके उद्देश्यसे पुराणोंकी रचना की। पुराणोंकी रचनाशैली देखनेसे प्रतीत होता है कि महर्षि वेदव्यासजीने उनमें इसप्रकारके वर्णन और उपदेश किये हैं, जिनके प्रभावसे परमेश्वरके नाना प्रकारके नाम

और रूपोंको देखकर भी मनुष्य प्रमाद, लोभ और मोहके वशीभूत हो सन्मार्गका त्याग करके मार्गान्तरमें नहीं जा सकते। वे किसी भी नाम-रूपसे परमेश्वरकी उपासना करते हुए ही सन्मार्गपर आरूढ रह सकते हैं। बुद्धि और रुचि-वैचित्र्यके कारण संसारमें विभिन्न प्रकारके देवताओंकी उपासना करनेवाले जनसमुदायको एक ही सूत्रमें बाँधकर उन्हें सन्मार्गपर लगा देनेके उद्देश्यसे ही वेदोक्त देवताओंको ईश्वरत्व देकर भिन्न-भिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न देवताओंसे भिन्न-भिन्न भाँतिसे सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका क्रम बतलाया गया है। जीवोंपर महर्षि वेदव्यासजीकी परम कृपा है। उन्होंने सबके लिये परम धाम पहुँचनेका मार्ग सरल कर दिया। पुराणोंमें यह सिद्ध कर दिया है कि जो मनुष्य भगवान्के जिस नाम-रूपका उपासक हो, वह उसीको सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण गुणाधार, विज्ञानानन्दघन परमात्मा माने और उसीको सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशके रूपमें प्रकट होकर क्रिया करनेवाला समझे। उपासकके लिये ऐसा ही समझना परम लाभदायक और सर्वोत्तम है कि मेरे उपास्यदेवसे बढ़कर और कोई है ही नहीं। सब उसीका लीला-विस्तार या विभूति है।

वास्तवमें बात भी यही है। एक निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही हैं। उन्हींके किसी अंशमें प्रकृति है। उस प्रकृतिको ही लोग माया, शक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। वह माया बड़ी विचित्र है। उसे कोई अनादि, अनन्त कहते हैं तो कोई अनादि, सान्त मानते हैं; कोई उस ब्रह्मकी शक्तिको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं; कोई सत् कहते हैं तो कोई असत् प्रतिपादित करते हैं। वस्तुतः मायाके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे विलक्षण है। क्योंकि उसे न असत् ही कहा जा सकता है, न सत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसीका विकृत रूप यह संसार (चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न हो) प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं कह सकते कि जड दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील होनेसे उसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती एवं ज्ञान होनेके उत्तरकालमें उसका या उसके सम्बन्धका अत्यन्त अभाव भी बतलाया गया है और ज्ञानीका भाव ही असली भाव है। इसीलिये उसको अनिर्वचनीय समझना चाहिये।

विज्ञानानन्दघन परमात्माके वेदोंमें दो स्वरूप माने गये हैं। प्रकृतिरहित ब्रह्मको निर्गुण ब्रह्म कहा गया है और जिस अंशमें प्रकृति या त्रिगुणमयी माया है उस प्रकृतिसहित ब्रह्मके अंशको सगुण कहते हैं। सगुण ब्रह्मके भी दो भेद माने गये हैं—एक निराकार, दूसरा साकार। उस निराकार, सगुण ब्रह्मको ही महेश्वर, परमेश्वर आदि नामोंसे पुकारा जाता है। वही सर्वव्यापी, निराकार, सृष्टिकर्ता परमेश्वर स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों रूपोंमें प्रकट होकर सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार किया करते हैं। इसप्रकार पाँच रूपोंमें विभक्त-से हुए परात्पर, परब्रह्म परमात्माको ही शिवके उपासक सदाशिव, विष्णुके उपासक महाविष्णु और शक्तिके उपासक महाशक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण आदि सभीके सम्बन्धमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं। शिवके उपासक नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुण ब्रह्मको सदाशिव, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको महेश्वर; सृष्टिके उत्पन्न करनेवालेको ब्रह्मा, पालनकर्ताको विष्णु और संहारकर्ताको रुद्र कहते हैं और इन पाँचोंको ही शिवका रूप बतलाते हैं। भगवान् विष्णुके प्रति भगवान् महेश्वर कहते हैं—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे॥
यथा च ज्योतिषः सङ्गाज्जलादेः स्पर्शता न वै।
तथा ममागुणस्यापि संयोगाद्बन्धनं न हि॥
यथैकस्या मृदो भेदो नाम्नि पात्रे न वस्तुतः।
यथैकस्य समुद्रस्य विकारो नैव वस्तुतः॥
एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां च न दृश्यं भेदकारणम्।
वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत्॥
तथापीह मदीयं वै शिवरूपं सनातनम्।
मूलभूतं सदा प्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम्॥

(शिव० ज्ञान० ४। ४१-४४, ४८—५१)

'हे विष्णो! हे हरे!! मैं स्वभावसे निर्गुण होता हुआ भी संसारकी रचना, स्थिति एवं प्रलयके लिये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन तीन रूपोंमें विभक्त हो रहा हूँ। जिस-

प्रकार जलादिके संसर्गसे अर्थात् उनमें प्रतिबिम्ब पड़नेसे सूर्य आदि ज्योतियोंमें कोई स्पर्शता नहीं आती उसी प्रकार मुझ निर्गुणका भी गुणोंके संयोगसे बन्धन नहीं होता। मिट्टीके नाना प्रकारके पात्रोंमें केवल नाम और आकारका ही भेद है, वास्तविक भेद नहीं है—एक मिट्टी ही है। समुद्रके भी फेन, बुदबुदे, तरङ्गादि विकार लक्षित होते हैं; वस्तुतः समुद्र एक ही है। यह समझकर आपलोगोंको भेदका कोई कारण न देखना चाहिये। वस्तुतः मात्र दृश्य पदार्थ शिवरूप ही हैं, ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्रमूर्ति उत्पन्न होगी—ये सब एकरूप ही हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धनका कारण है। फिर भी यहाँ मेरा यह शिवरूप नित्य, सनातन एवं सबका मूल-स्वरूप कहा गया है। यही सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप गुणातीत परब्रह्म है।'

साक्षात् महेश्वरके इन वचनोंसे उनका 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'—नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुणरूप, सर्वव्यापी, सगुण निराकाररूप और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप—ये पाँचों सिद्ध होते हैं। यही सदाशिव पञ्चवक्त्र हैं।

इसी प्रकार श्रीविष्णुके उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्मको महाविष्णु, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको वासुदेव तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। महर्षि पराशर भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम्॥

(विष्णु० १। २। १—५)

'निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा एकरूप, सर्वविजयी, हरि, हिरण्यगर्भ, शङ्कर, वासुदेव आदि नामोंसे प्रसिद्ध संसार-तारक, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लयके कारण, एक और अनेक स्वरूपवाले, स्थूल, सूक्ष्म—उभयात्मक व्यक्ताव्यक्तस्वरूप एवं मुक्तिदाता भगवान् विष्णुको मेरा बारंबार नमस्कार है। इस संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशके भी मूलकारण, जगन्मय उस सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव परमात्माको मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सर्वभूतोंके अन्दर रहनेवाले, अच्युत पुरुषोत्तमभगवान्को मेरा प्रणाम है।'

यहाँ अव्यक्तसे निर्विकार, नित्य, शुद्ध परमात्माका निर्गुण स्वरूप समझना चाहिये। व्यक्तसे सगुण स्वरूप समझना चाहिये। उस सगुणके भी स्थूल और सूक्ष्म—दो स्वरूप बतलाये गये हैं। यहाँ सूक्ष्मसे सर्वव्यापी भगवान् वासुदेवको समझना चाहिये, जो कि ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी मूल-कारण हैं एवं सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म पुरुषोत्तम नामसे बतलाये गये हैं। तथा स्थूलस्वरूप यहाँ संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेशके वाचक हैं जो कि हिरण्यगर्भ, हरि और शङ्करके नामसे कहे गये हैं। इन्हीं सब वचनोंसे श्रीविष्णुभगवान्के उपर्युक्त पाँचों रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार भगवती महाशक्तिकी स्तुति करते हुए देवगण कहते हैं—

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमयि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(मार्कण्डेय० ९१। १०)

'ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपसे सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाली हे सनातनी शक्ति! हे गुणाश्रये! हे गुणमयी नारायणीदेवी! तुम्हें नमस्कार हो।'

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
तेजः स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥

(ब्रह्मवै० प्रकृति० २। ६६। ७—११)

'तुम्हीं विश्वजननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टिकी उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विराजमान रहती हो और स्वेच्छासे त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो; परमतेजःस्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके हेतु शरीर धारण करती हो; तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो। तुम सर्वबीजस्वरूप, सर्वपूज्या एवं आश्रय-रहित हो। तुम सर्वज्ञ, सर्वप्रकारसे मङ्गल करनेवाली एवं सर्वमङ्गलोंका भी मङ्गल हो।'

ऊपरके उद्धरणसे महाशक्तिका विज्ञानानन्दघन स्वरूप-के साथ ही सर्वव्यापी सगुण ब्रह्म एवं सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाशके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें होना सिद्ध है।

इसी प्रकार ब्रह्माजीके बारेमें कहा गया है—

जय देवातिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने॥
एतस्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक।
रजोगुणगुणाविष्ट सृजसीदं चराचरम्॥
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्।

× × × ×

(देवीपुराण ८३। १३—१६)

'आपकी जय हो। उत्तम बुद्धिवाले, अव्यक्त-व्यक्तरूप, त्रिगुणमय, सबके कारण, विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहारकारक ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप तीनों भावोंसे भावित होनेवाले महात्मा देवाधिदेव ब्रह्मदेवके लिये नमस्कार है। हे महाभाग! आप रजोगुणसे आविष्ट होकर हिरण्यगर्भरूप-से चराचर संसारको उत्पन्न करते हैं तथा सत्त्वगुणयुक्त होकर विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति धारण करके रुद्ररूपसे सम्पूर्ण संसारका संहार करते हैं।'

उपर्युक्त वचनोंसे ब्रह्माजीके भी परात्पर ब्रह्मसहित पाँचों रूपोंका होना सिद्ध होता है। अव्यक्तसे तो परात्पर पर-ब्रह्मस्वरूप एवं कारणसे सर्वव्यापी, निराकार सगुणरूप तथा उत्पत्ति, पालन और संहारकारक होनेसे ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप होना सिद्ध होता है।

इसी तरह भगवान् श्रीरामके प्रति भगवान् शिवके वाक्य हैं—

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्।
एक एव त्रिधा रूपं गृह्णासि कुहकान्वितः॥
सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः।
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः॥

(पद्म० पाता० २८। ६—८)

'आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकलाके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूपसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुए भी अखिल विश्वके परम कारण हैं। आप एक होते हुए भी माया-संवलित होकर त्रिविध रूप धारण करते हैं। संसारकी सृष्टिके समय आप ब्रह्मारूपसे प्रकट होते हैं, पालनके समय स्वप्रभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं और प्रलयके समय मुझ शर्व (रुद्र) का रूप धारण कर लेते हैं।'

श्रीरामचरितमानसमें भी भगवान् शङ्करने पार्वतीजीसे भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें कहा है—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई॥
जो गुनरहित सगुन सो कैसे। जल हिम-उपल बिलग नहिं जैसे॥
राम सच्चिदानंद दिनेशा। नहिं तहँ मोहनिशा-लवलेशा॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेश पुराना॥

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्म परमात्मा होनेका विविध ग्रन्थोंमें उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कथा है कि एक महासर्गके आदिमें भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य अङ्गोंसे भगवान् नारायण और भगवान् शिव तथा अन्यान्य सब देवी-देवता प्रादुर्भूत हुए। वहाँ श्रीशिवजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्।
विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्।
फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम्॥

(ब्रह्मवै० १। ३। २५-२६)

'आप विश्वरूप हैं, विश्वके स्वामी हैं, नहीं नहीं, विश्वके स्वामियोंके भी स्वामी हैं, विश्वके कारण हैं, कारणके भी कारण हैं, विश्वके आधार हैं, विश्वस्त हैं, विश्वरक्षक हैं, विश्वका संहार करनेवाले हैं और नाना रूपोंसे विश्वमें

आविर्भूत होते हैं। आप फलोंके बीज हैं, फलोंके आधार हैं, फलस्वरूप हैं और फलदाता हैं।'

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने श्रीमुखसे कहा है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥
(१४। २७)

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥
(९। १८)

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥
(९। १९)

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(७। ७)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(१०। ३)

'हे अर्जुन! उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्य-धर्मका एवं अखण्ड एकरस आनन्दका मैं ही आश्रय हूँ; अर्थात् उपर्युक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वत-धर्म तथा ऐकान्तिक सुख—यह सब मैं ही हूँ तथा प्राप्त होने योग्य, भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, शुभाशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेनेयोग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, उत्पत्ति-प्रलयरूप, सबका आधार, निधान *और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ तथा वर्षाको आकर्षण करता हूँ और बरसाता हूँ एवं हे अर्जुन! मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत् और असत्—सब कुछ मैं ही हूँ।

'हे धनंजय! मेरेसे सिवा किञ्चिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मेरेमें गुँथा हुआ है। जो मुझको अजन्मा (वास्तवमें जन्मरहित) अनादि† तथा लोकोंका महान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

ऊपरके इन अवतरणोंसे यह सिद्ध हो गया कि भगवान् श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण, तत्त्वतः एक ही हैं। इस विवेचनपर दृष्टि डालकर विचार करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि सभी उपासक एक सत्य, विज्ञानानन्दघन परमात्माको मानकर सच्चे सिद्धान्तपर ही चल रहे हैं। नाम-रूपका भेद है, परन्तु वस्तु-तत्त्वमें कोई भेद नहीं। सबका लक्ष्यार्थ एक ही है। ईश्वरको इसप्रकार सर्वोपरि, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन समझकर शास्त्र और आचार्योंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार किसी भी नाम-रूपसे उस परमात्माको लक्ष्य करके जो उपासना की जाती है, वह उस एक ही परमात्माकी उपासना है।

विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी परमात्मा शिवके उपर्युक्त तत्त्वको न जाननेके कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णुकी निन्दा करते हैं और कुछ वैष्णव भगवान् शिवकी निन्दा करते हैं। कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्रायः उदासीन-से तो रहते ही हैं। परन्तु इसप्रकारका व्यवहार वस्तुतः ज्ञानरहित समझा जाता है। यदि यह कहा जाय कि ऐसा न करनेसे एकनिष्ठ अनन्य उपासनामें दोष आता है, तो वह ठीक नहीं है। जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पतिको ही इष्ट मानकर उसकी आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई, पतिके माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि-अभ्यागत और पतिके अन्यान्य सम्बन्धी और प्रेमी बन्धुओंकी भी पतिकी आज्ञानुसार पतिकी प्रसन्नताके लिये यथोचित आदरभावसे मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्मसे जरा भी न गिरकर उलटे शोभा और यशको प्राप्त होती है। वास्तवमें दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धिमें है अथवा व्यभिचार और शत्रुतामें है। यथोचित वैध-सेवा तो कर्तव्य है। इसी प्रकार परमात्माके किसी एक नाम-रूपको अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्यभावसे भक्ति करते हुए ही अन्यान्य देवोंकी अपने इष्टदेवकी आज्ञानुसार उसी स्वामीकी प्रीतिके लिये श्रद्धा और आदरके साथ यथायोग्य सेवा करनी चाहिये। उपर्युक्त अवतरणोंके अनुसार जब एक नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही हैं तथा वास्तवमें उनसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है, तब किसी एक नाम-रूपसे द्वेष या उसकी निन्दा, तिरस्कार

* प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं, उसका नाम 'निधान' है।

† अनादि उसको कहते हैं जो आदिरहित होवे और सबका कारण होवे।

और उपेक्षा करना उस परब्रह्मसे ही वैसा करना है। कहीं भी श्रीशिव या श्रीविष्णुने या श्रीब्रह्माने एक दूसरेकी न तो निन्दा आदि की है और न निन्दा आदि करनेके लिये किसी-से कहा ही है; बल्कि निन्दा आदिका निषेध और तीनोंको एक माननेकी प्रशंसा की है। शिवपुराणमें कहा गया है—

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः॥
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यञ्चातिरिच्यते॥
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः॥

(शिवपुराण)

'ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरेको धारण करते हैं, एक दूसरेके द्वारा वृद्धिंगत होते हैं और एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णुकी और कहीं महादेवकी। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरेकी अपेक्षा इसप्रकार अधिक कहा है मानों वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है वे अगले जन्ममें राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।'

स्वयं भगवान् शिव श्रीविष्णुभगवान्से कहते हैं—

मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव तव दर्शने।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्॥
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम।

(शिव० ज्ञान० ४। ६१-६२)

'मेरे दर्शनका जो फल है वही आपके दर्शनका है। आप मेरे हृदयमें निवास करते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। जो हम दोनोंमें भेद नहीं समझता, वही मुझे मान्य है।'

भगवान् श्रीराम भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥
ये त्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः।
मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिङ्कराः॥

(पद्म० पाता० २८। २१—२३)

'आप (शङ्कर) मेरे हृदयमें रहते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अन्दर भेद समझते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, जो मनुष्य हमारे अन्दर भेद-भावना करते हैं वे हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकोंमें यातना सहते हैं। जो आपके भक्त हैं वे धार्मिक पुरुष सदा ही मेरे भक्त रहे हैं और जो मेरे भक्त हैं वे प्रगाढ़ भक्तिसे आपको भी प्रणाम करते हैं।'

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः॥
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि।
प्रजावान् भूमिमान् विद्वान् पुत्रबान्धववांस्तथा॥
ज्ञानवान्मुक्तिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत्।
शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः॥

(ब्रह्मवैवर्त० प्र० ६। ३१, ३२, ४५, ४७)

'मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मासे भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे जबतक चन्द्र और सूर्यका अस्तित्व रहेगा तबतक कालसूत्रमें (नरकमें) पचते रहेंगे। जो शिवलिङ्गका निर्माण कर एक बार भी उसकी पूजा कर लेता है, वह दस हजार कल्पतक स्वर्गमें निवास करता है। शिवलिङ्गके अर्चनसे मनुष्यको प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एवं मुक्ति सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य 'शिव' शब्दका उच्चारण कर शरीर छोड़ता है वह करोड़ों जन्मोंके सञ्चित पापोंसे छूटकर मुक्ति-को प्राप्त हो जाता है।'

भगवान् विष्णु श्रीमद्भागवत (४। ७। ५४) में दक्षप्रजापतिके प्रति कहते हैं—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

'हे विप्र! हम तीनों एकरूप हैं और समस्त भूतोंकी आत्मा हैं, हमारे अन्दर जो भेद-भावना नहीं करता, निःसन्देह वह शान्ति (मोक्ष) को प्राप्त होता है।'

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामने कहा है—

शंकर-प्रिय मम द्रोही, शिव-द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरकमहँ बास॥
औरो एक गुपत मत, सबहि कहौं कर जोरि।
शंकर-भजन बिना नर, भगति न पावहि मोरि॥

ऐसी अवस्थामें जो मनुष्य दूसरेके इष्टदेवकी निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तवमें अपने ही इष्टदेवका अपमान या निन्दा करता है। परमात्माकी प्राप्तिके पूर्व-कालमें परमात्माका यथार्थ रूप न जाननेके कारण भक्त अपनी समझके अनुसार अपने उपास्यदेवका जो स्वरूप कल्पित करता है, वास्तवमें उपास्यदेवका स्वरूप उससे अत्यन्त विलक्षण है; तथापि उसकी अपनी बुद्धि, भावना तथा रुचिके अनुसार की हुई सच्ची और श्रद्धायुक्त उपासना-को परमात्मा सर्वथा सर्वांशमें स्वीकार करते हैं। क्योंकि ईश्वर-प्राप्तिके पूर्व ईश्वरका यथार्थ स्वरूप किसीके भी चिन्तनमें नहीं आ सकता। अतएव परमात्माके किसी भी नाम-रूपकी निष्काम-भावसे उपासना करनेवाला पुरुष शीघ्र ही उस नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। हाँ, सकाम-भावसे उपासना करनेवालेको विलम्ब हो सकता है। तथापि सकाम-भावसे उपासना करनेवाला भी श्रेष्ठ और उदार ही माना गया है (गीता ७।१८), क्योंकि अन्तमें वह भी ईश्वरको ही प्राप्त होता है। 'मद्भक्ता यान्ति मामपि' (गीता ७।२३)।

'शिव' शब्द नित्य, विज्ञानानन्दघन परमात्माका वाचक है। यह उच्चारणमें बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर और स्वाभाविक ही शान्तिप्रद है। 'शिव' शब्दकी उत्पत्ति 'वश कान्तौ' धातुसे हुई है, जिसका तात्पर्य यह है कि जिसको सब चाहते हैं उसका नाम 'शिव' है। सब चाहते हैं अखण्ड आनन्दको। अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ आनन्द हुआ। जहाँ आनन्द है वहीं शान्ति है और परम आनन्दको ही परम मङ्गल और परम कल्याण कहते हैं, अतएव 'शिव' शब्दका अर्थ परम मङ्गल, परम कल्याण समझना चाहिये। इस आनन्ददाता, परम कल्याणरूप शिवको ही शङ्कर कहते हैं। 'शं' आनन्दको कहते हैं और 'कर' से करनेवाला समझा जाता है, अतएव जो आनन्द करता है वही 'शङ्कर' है। ये सब लक्षण उस नित्य विज्ञानानन्दघन परम ब्रह्मके ही हैं।

इसप्रकार रहस्य समझकर शिवकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उपासना करनेसे उनकी कृपासे उनका तत्त्व समझमें आ जाता है। जो पुरुष शिव-तत्त्वको जान लेता है उसके लिये फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता। शिव-तत्त्वको हिमालयतनया भगवती पार्वती यथार्थरूपसे जानती थीं, इसीलिये छद्मवेशी स्वयं शिवके बहकानेसे भी वे अपने सिद्धान्तसे तिलमात्र भी नहीं टलीं। उमा-शिवका यह संवाद बहुत ही उपदेशप्रद और रोचक है।

शिव तत्त्वैकनिष्ठ पार्वती शिवप्राप्तिके लिये घोर तप करने लगीं। माता मेनकाने स्नेहकातरा होकर उ (वत्से!) मा (ऐसा तप न करो) कहा, इससे उनका नाम 'उमा' हो गया। उन्होंने सूखे पत्ते भी खाने छोड़ दिये, तब उनका 'अपर्णा' नाम पड़ा। उनकी कठोर तपस्याको देख-सुनकर परम आश्चर्यान्वित हो ऋषिगण भी कहने लगे कि 'अहो, इसको धन्य है, इसकी तपस्याके सामने दूसरोंकी तपस्या कुछ भी नहीं है।' पार्वतीकी इस तपस्याको देखनेके लिये स्वयं भगवान् शिव जटाधारी वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें तपो-भूमिमें आये और पार्वतीके द्वारा फल-पुष्पादिसे पूजित होकर उसके तपका उद्देश्य शिवसे विवाह करना है, यह जानकर कहने लगे।

'हे देवि! इतनी देर बातचीत करनेसे तुमसे मेरी मित्रता हो गयी है। मित्रताके नाते मैं तुमसे कहता हूँ, तुमने बड़ी भूल की है। तुम्हारा शिवके साथ विवाह करनेका सङ्कल्प सर्वथा अनुचित है। तुम सोनेको छोड़कर काँच चाह रही हो, चन्दन त्यागकर कीचड़ पोतना चाहती हो। हाथी छोड़कर बैलपर मन चलाती हो। गङ्गाजल परित्याग-कर कुएँका जल पीनेकी इच्छा करती हो। सूर्यका प्रकाश छोड़कर खद्योतको और रेशमी वस्त्र त्याग कर चमड़ा पहनना चाहती हो। तुम्हारा यह कार्य तो देवताओंकी सन्निधिका त्याग कर असुरोंका साथ करनेके समान है। उत्तमोत्तम देवोंको छोड़कर शङ्करपर अनुराग करना सर्वथा लोकविरुद्ध है।

जरा सोचो तो सही, कहाँ तुम्हारा कुसुम-सुकुमार शरीर और त्रिभुवनकमनीय सौन्दर्य और कहाँ जटाधारी, चिताभस्मलेपनकारी, श्मशानविहारी, त्रिनेत्र भूतपति

महादेव ! कहाँ तुम्हारे घरके देवतालोग और कहाँ शिवके पार्षद भूत-प्रेत ! कहाँ तुम्हारे पिताके घर बजनेवाले सुन्दर बाजोंकी ध्वनि और कहाँ उस महादेवके डमरू, सिंगी और गाल बजानेकी ध्वनि ! न महादेवके माँ-बापका पता है, न जातिका ! दरिद्रता इतनी कि पहननेको कपड़ातक नहीं है। दिगम्बर रहते हैं, बैलकी सवारी करते हैं और बाघका चमड़ा ओढ़े रहते हैं ! न उनमें विद्या है और न शौचाचार ही है ! सदा अकेले रहनेवाले, उत्कट विरागी, रुण्डमालाधारी महादेवके साथ रहकर तुम क्या सुख पाओगी ?'

पार्वती और अधिक शिव-निन्दा न सह सकीं। वे तमककर बोलीं—'बस, बस, बस, रहने दो, मैं और अधिक सुनना नहीं चाहती। मालूम होता है, तुम शिवके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते। इसीसे यों मिथ्या प्रलाप कर रहे हो। तुम किसी धूर्त ब्रह्मचारीके रूपमें यहाँ आये हो। शिव वस्तुतः निर्गुण हैं, करुणावश ही वे सगुण होते हैं। उन सगुण और निर्गुण—उभयात्मक शिवकी जाति कहाँसे होगी ? जो सबके आदि हैं, उनके माता-पिता कौन होंगे और उनकी उम्रका ही क्या परिमाण बाँधा जा सकता है ? सृष्टि उनसे उत्पन्न होती है, अतएव उनकी शक्तिका पता कौन लगा सकता है ? वही अनादि, अनन्त, नित्य, निर्विकार, अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणाधार, सर्वज्ञ, सर्वोपरि, सनातनदेव हैं। तुम कहते हो, महादेव विद्याहीन हैं। अरे, ये सारी विद्याएँ आयी कहाँसे हैं ? वेद जिनके निःश्वास हैं उन्हें तुम विद्याहीन कहते हो ? छिः छिः !! तुम मुझे शिवको छोड़कर किसी अन्य देवताका वरण करनेको कहते हो। अरे, इन देवताओंको, जिन्हें तुम बड़ा समझते हो, देवत्व प्राप्त ही कहाँसे हुआ ? यह उन भोलेनाथकी ही कृपाका तो फल है। इन्द्रादि देवगण तो उनके दरवाजेपर ही स्तुति-प्रार्थना करते रहते हैं और बिना उनके गणोंकी आज्ञाके अन्दर घुसनेका साहस नहीं कर सकते। तुम उन्हें अमङ्गलवेश कहते हो ? अरे, उनका 'शिव'—यह मङ्गलमय नाम जिनके मुखमें निरन्तर रहता है, उनके दर्शनमात्रसे सारी अपवित्र वस्तुएँ भी पवित्र हो जाती हैं, फिर भला स्वयं उनकी तो बात ही क्या ! जिस चिता-भस्मकी तुम निन्दा करते हो, नृत्यके अन्तमें जब वह उनके श्रीअङ्गोंसे झड़ती है उस समय देवतागण उसे अपने मस्तकोंपर धारण करनेको लालायित होते हैं। बस, मैंने समझ लिया, तुम उनके तत्त्वको बिल्कुल नहीं जानते। जो मनुष्य इसप्रकार उनके दुर्गम तत्त्वको बिना जाने उनकी निन्दा करते हैं, उनके जन्म-जन्मान्तरोंके सञ्चित किये हुए पुण्य विलीन हो जाते हैं। तुम-जैसे शिव-निन्दकका सत्कार करनेसे पाप लगता है। शिव-निन्दकको देखकर भी मनुष्यको सचैल स्नान करना चाहिये, तभी वह शुद्ध होता है। बस, अब मैं यहाँसे जाती हूँ। कहीं ऐसा न हो कि यह दुष्ट फिरसे शिवकी निन्दा प्रारम्भकर मेरे कानोंको अपवित्र करे। शिवकी निन्दा करनेवालेको तो पाप लगता ही है, उसे सुननेवाला भी पापका भागी होता है।' यह कहकर उमा वहाँसे चल दीं। ज्यों ही वे वहाँसे जाने लगीं, बटु-वेश-धारी शङ्करने उन्हें रोक लिया। वे अधिक देरतक पार्वतीसे छिपे न रह सके, पार्वती जिस रूपका ध्यान करती थीं उसी रूपमें उनके सामने प्रकट हो गये और बोले—'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो !'

पार्वतीकी इच्छा पूर्ण हुई, उन्हें साक्षात् शिवके दर्शन हुए। दर्शन ही नहीं, कुछ कालमें शिवने पार्वतीका पाणिग्रहण कर लिया।

जो पुरुष उन त्रिनेत्र, व्याघ्राम्बरधारी, सदाशिव परमात्माको निर्गुण, निराकार एवं सगुण, निराकार समझकर उनकी सगुण, साकार दिव्य मूर्तिकी उपासना करता है उसीकी उपासना सच्ची और सर्वाङ्गपूर्ण है। इस समग्रतामें जितना अंश कम होता है, उतनी ही उपासनाकी सर्वाङ्गपूर्णतामें कमी है और उतना ही वह शिव-तत्त्वसे अनभिज्ञ है।

महेश्वरकी लीलाएँ अपरंपार हैं। वे दया करके जिनको अपनी लीलाएँ और लीलाओंका रहस्य जनाते हैं, वही जान सकते हैं। उनकी कृपाके बिना तो उनकी विचित्र लीलाओंको देख-सुनकर देवी, देवता एवं मुनियोंको भी भ्रम हो जाया करता है, फिर साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या है ? परन्तु वास्तवमें शिवजी महाराज हैं बड़े ही आशुतोष ! उपासना करनेवालोंपर बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। रहस्यको जानकर निष्काम-प्रेमभावसे भजनेवालोंपर प्रसन्न होते हैं, इसमें तो कहना ही क्या है ? सकामभावसे, अपना मतलब गाँठनेके लिये जो अज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं उनपर भी आप रीझ जाते हैं। भोले भण्डारी मुँहमाँगा वरदान देनेमें कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचते।

जरा-सी भक्ति करनेवालेपर ही आपके हृदयका दयासमुद्र उमड़ पड़ता है। इस रहस्यको समझनेवाले आपको व्यङ्गसे 'भोलानाथ' कहा करते हैं। इस विषयमें गोसाईं तुलसीदास-जी महाराजकी कल्पना बहुत ही सुन्दर है। वे कहते हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी !
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद बड़ाई भानी॥टेक॥
निज घरकी बर बात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
शिवकी दई सम्पदा देखत, श्रीशारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकनको नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी॥
प्रेम-प्रशंसा बिनय ब्यंगजुत, सुनि बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेश मनहिं मन, जगतमातु मुसकानी॥

ऐसे भोलेनाथ भगवान् शङ्करको जो प्रेमसे नहीं भजते, वास्तवमें वे शिवके तत्त्वको जानते नहीं हैं, अतएव उनका मनुष्य-जन्म लेना ही व्यर्थ है। इससे अधिक उनके लिये और क्या कहा जाय। अतएव प्रिय पाठकगणो! आपलोगोंसे मेरा नम्र निवेदन है, यदि आपलोग उचित समझें तो नीचे लिखे साधनोंको समझकर यथाशक्ति उन्हें काममें लानेकी चेष्टा करें—

(क) पवित्र और एकान्त स्थानमें गीता अध्याय ६, श्लोक १० से १४ के अनुसार—

(१) भगवान् शङ्करके प्रेम, रहस्य, गुण और प्रभाव-की अमृतमयी कथाओंका, उनके तत्त्वको जानने-वाले भक्तोंद्वारा श्रवण करके, मनन करना एवं स्वयं भी सत्-शास्त्रोंको पढ़कर उनका रहस्य समझनेके लिये मनन करना और उनके अनुसार आचरण करनेके लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करना।

(२) भगवान् शिवकी शान्तमूर्तिका पूजन-वन्दनादि श्रद्धा और प्रेमसे नित्य करना।

(३) भगवान् शङ्करमें अनन्य प्रेम होनेके लिये विनय-भावसे रुदन करते हुए गद्गद वाणीद्वारा स्तुति और प्रार्थना करना।

(४) 'ॐ नमः शिवाय'—इस मन्त्रका मनके द्वारा या श्वासोंके द्वारा प्रेमभावसे गुप्त जप करना।

(५) उपर्युक्त रहस्यको समझकर प्रभावसहित यथा-रुचि भगवान् शिवके स्वरूपका श्रद्धा-भक्तिसहित निष्कामभावसे ध्यान करना।

(ख) व्यवहारकालमें—

(१) स्वार्थको त्यागकर प्रेमपूर्वक सबके साथ सद्व्यवहार करना।

(२) भगवान् शिवमें प्रेम होनेके लिये उनकी आज्ञा-के अनुसार फलासक्तिको त्यागकर शास्त्रानुकूल यथाशक्ति यज्ञ, दान, तप, सेवा एवं वर्णाश्रमके अनुसार जीविकाके कर्मोंको करना।

(३) सुख, दुःख एवं सुख-दुःखकारक पदार्थोंकी प्राप्ति और विनाशको शङ्करकी इच्छासे हुआ समझकर उनमें पद-पदपर भगवान् सदाशिवकी दयाका दर्शन करना।

(४) रहस्य और प्रभावको समझकर श्रद्धा और निष्काम प्रेमभावसे यथारुचि भगवान् शिवके स्वरूपका निरन्तर ध्यान होनेके लिये चलते-फिरते, उठते-बैठते, उस शिवके नाम-जपका अभ्यास सदा-सर्वदा करना।

(५) दुर्गुण और दुराचारको त्यागकर सद्गुण और सदाचारके उपार्जनके लिये हर समय कोशिश करते रहना।

उपर्युक्त साधनोंको मनुष्य कटिबद्ध होकर ज्यों-ज्यों करता जाता है, त्यों-ही-त्यों उसके अन्तःकरणकी पवित्रता, रहस्य और प्रभावका अनुभव तथा अतिशय श्रद्धा एवं विशुद्ध प्रेमकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है। इसलिये कटि-बद्ध होकर उपर्युक्त साधनोंको करनेके लिये प्राणपर्यन्त कोशिश करनी चाहिये। इन सब साधनोंमें भगवान् सदाशिवका प्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना सबसे बढ़कर है। अतएव नाना प्रकारके कर्मोंके बाहुल्यके कारण उसके चिन्तनमें एक क्षणकी भी बाधा न आवे, इसके लिये विशेष सावधान रहना चाहिये। यदि अनन्य प्रेमकी प्रगाढ़ताके कारण शास्त्रानुकूल कर्मोंके करनेमें कहीं कमी आती हो तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु प्रेममें बाधा नहीं पड़नी

चाहिये। क्योंकि जहाँ अनन्य प्रेम है वहाँ भगवान्‌का चिन्तन (ध्यान) तो निरन्तर होता ही है। और उस ध्यानके प्रभावसे पद-पदपर भगवान्‌की दयाका अनुभव करता हुआ मनुष्य भगवान् सदाशिवके तत्त्वको यथार्थरूपसे समझकर कृतकृत्य हो जाता है, अर्थात् परम पदको प्राप्त हो जाता है। अतएव भगवान् शिवके प्रेम और प्रभावको समझकर उनके स्वरूपका निष्काम प्रेमभावसे निरन्तर चिन्तन होनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

परात्पर शिव

(लेखक—श्रीगौरीशंकरजी गोयन्दका)

नोदयति यश्च नश्यति निर्वाति न निर्वृतिं प्रयच्छति च। ज्ञानक्रियास्वभावं तत्तेजः शाम्भवं जयति ॥

क परमतत्त्व है, जो सर्वत्र अनुस्यूत है, सब कारणोंका कारण है। सबका अधिपति, सबका रचयिता, पालयिता एवं संहर्ता है। जिसके भयसे सूर्य प्रतिदिन यथासमय उदित होता है और यथासमय अस्त। वायु अविरत बहता है, चन्द्र प्रतिपक्ष घटता-बढ़ता है, ऋतुएँ यथावसर आविर्भूत होती हैं, अपने वैभवसे प्रकृतिकी छविको नयनाभिराम बनाती हैं। कभी अवनितल, तरु, निकुञ्ज और लताएँ पल्लवों और पुष्पोंसे आच्छन्न होकर मनोज्ञताकी मूर्ति बन जाती हैं, तो कभी उनमें एक पीला पत्ता भी नहीं दिखायी देता। कभी नाना पक्षियोंके कलरवसे कोने-कोनेमें चहल-पहल मच जाती है, तो कभी कहीं एक शब्द भी नहीं सुनायी देता। कभी काले-काले बादलोंकी घटाएँ, विद्युल्लताओंका परिनर्तन, मेघका तर्जन-गर्जन अपना दृश्य उपस्थित करते हैं, तो कभी लूकी लपटें, हेमन्तका शीतजन्य हाहाकार और शिशिरका सीत्कार आदि अपना अभिनय दिखाते हैं। यह सब उसी सुचतुर शिल्पीकी कुशलता ही तो है, उसी मायावीकी मायाका विलास ही तो है। वसन्तके बाद सदा ग्रीष्मका ही आविर्भाव होता है। उसके पश्चात् वर्षा, इसी क्रमसे अन्यान्य ऋतुएँ आती हैं और जाती हैं। इसमें तनिक भी परिवर्तन या विपर्यय नहीं होता। ये सब बातें बिना सञ्चालकके सम्भव नहीं हैं।

जो दिग्वसन होते हुए भी भक्तोंको अतुल ऐश्वर्य देनेवाले हैं, श्मशानवासी होते हुए भी त्रैलोक्याधिपति हैं, योगिराजाधिराज होते हुए भी अर्द्धनारीश्वर हैं, सदा कान्तासे आलिङ्गित रहते हुए भी मदनजित् हैं, अज होते हुए भी अनेक रूपोंसे आविर्भूत हैं, गुणहीन होते हुए भी गुणाध्यक्ष हैं, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त हैं, सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं, अनन्त रत्नराशियोंके अधिपति होते हुए भी भस्मविभूषण हैं। वही इस जगत्‌के सञ्चालक हैं, वही परात्पर शिव हैं। विपत्ति पड़नेपर सब देवता जिनकी शरणमें जाते हैं; ब्रह्मा, विष्णु आदि देव भी घोर तपस्या कर जिनके कृपाभाजन हुए हैं। जिन्होंने अन्धक, शुक्र, दुन्दुभि, महिष, त्रिपुर, रावण, निवातकवच आदि अनेकोंको अतुल ऐश्वर्य देकर फिर उनका संहार किया। जिन्होंने भयभीत देवताओंकी प्रार्थनापर हालाहल गरलको अमृतके समान पी लिया। चन्द्र, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं; स्वर्ग शिर है, आकाश नाभि है, दिशाएँ कान हैं; जिनके मुखसे ब्राह्मण और ब्रह्मा पैदा हुए, इन्द्र, विष्णु और क्षत्रिय जिनके हाथोंसे उत्पन्न हुए, जिनके ऊरुदेशसे वैश्य और पाँवसे शूद्र पैदा हुए। अनेक देव, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, राक्षस आदि जिनकी कृपासे अनन्त ऐश्वर्यके अधिपति हुए हैं; जो ज्ञान, तप, ऐश्वर्य, लीला आदिसे जगत्‌के कल्याणमें रत हैं; जिनके समान न कोई दाता है, न तपस्वी है, न ज्ञानी है, न त्यागी है, न वक्ता है, न उपदेष्टा है, न ऐश्वर्यशाली है। जो सदा सब वस्तुओंसे परिपूर्ण हैं; जिनके आवास कैलासका विशाल वर्णन करते-करते शेष, शारदा आदि भी थकित रह जाते हैं; जो श्रुतियोंमें महादेव, देवदेव, महेश्वर, महेशान, आशुतोष आदि अनेक नामोंसे पुकारे गये हैं, वही परात्पर हैं, परमकारण हैं।

उनके अनन्त नाम हैं और हैं अपरिमित विभूतियाँ। कोई उनकी शिव, महादेव कहकर उपासना करता है तो कोई ब्रह्म, नारायण, पुरुष, कर्ता, कर्म, अर्हन्, बुद्ध आदि विभिन्न नामोंसे उन्हींकी उपासना करते हैं। महाकवि कालिदासने बहुत ठीक कहा है—

बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ॥

निश्चय ही ये विभिन्न मार्ग उसी एक परात्परको विषय करते हैं। नद-नदी-नाले, इनमेंसे भले ही कोई पूर्वकी ओर बहे और कोई पश्चिमकी ओर, अन्तमें वे सब समुद्रमें ही जा गिरते हैं।

महिम्नःस्तोत्रमें पुष्पदन्ताचार्यने भी इसी भावका सङ्केत किया है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

'स्मार्त, सांख्य, योग, पाशुपतमत, पाञ्चरात्रमत आदि विभिन्न शास्त्रोंमें 'यह श्रेष्ठ है, यह हितकर है', इत्यादि अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सीधे-टेढ़े अनेक मार्गोंका अवलम्बन करनेवाले लोगोंके एक आप ही गम्य हैं, जैसे कि नद, नदी, नाले, झरनों, स्रोतोंके जलका एकमात्र आश्रय सागर है।'

कहाँ अतुल महिमावाले परात्पर शिव, कहाँ मैं अत्यल्पज्ञ प्राणी! उनकी परात्परता तथा सर्वकारणताके विषयमें लिखनेकी भला मेरी क्या सामर्थ्य? तथापि अपनी लेखनीको उनके गुणगानसे पवित्र करनेके लिये कुछ निवेदन करनेका साहस करता हूँ। सम्भव है, इससे पाठकोंका यत्किञ्चित् मनोविनोद हो जाय।

जैसे नृपतिके छत्र, चँवर आदि असाधारण अभिज्ञान हैं, उसी प्रकार जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहार करना परात्परका असाधारण अभिज्ञान है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्म। (तैत्ति०)

'जिससे हिरण्यगर्भसे लेकर कीटपर्यन्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न होकर प्राण धारण करते हैं, अन्तमें जिसमें विलीन हो जाते हैं, उसको जाननेकी इच्छा करो, वही ब्रह्म है।'

द्यावाभूमी जनयन् देव एकः। (श्वे० ३।३)

'द्यौ और पृथिवी (ब्रह्माण्डके दो कटाहों) की सृष्टि, स्थिति और लय करनेवाला स्वयंप्रकाश एक है।' इत्यादि अनेक श्रुतियों एवं 'जन्माद्यस्य यतः' (ब्र० १।१।२) 'जिससे इस जगत्‌के जन्म आदि होते हैं, वह ब्रह्म है'—इत्यादि सूत्रोंसे उपर्युक्त कथनकी पुष्टि होती है।

यहाँपर देखना यह है कि उक्त लक्षण शिवजीमें घटता है या नहीं? श्वेताश्वतर-उपनिषद्‌में एक गाथा आयी है। उसका आशय यह है कि कतिपय ब्रह्मवादी ऋषियोंको 'यतो वा' श्रुतिके बलसे जगत्‌के जन्म आदिका कारण, सबका अधिष्ठाता ब्रह्म है—ऐसा निश्चय हुआ; किन्तु वह ब्रह्म अमुक देवतारूप है, इसप्रकार विशेष ज्ञान उन्हें नहीं था। अतः उन्हें संशय हुआ कि समस्त संसारकी रचना, पालन तथा संहार करनेवाला वह ब्रह्म किंरूप है। उक्त संशयको 'किं कारणं ब्रह्म' (श्वे० १।१) इत्यादि प्रकरणसे दिखाकर जगत्‌के हेतु काल, स्वभाव, नियति, महाभूत, पुरुष हैं या इनका संयोग है, अथवा यह बिना किसी कारणके बना है, इसप्रकारकी आशङ्काओंका—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।
संयोग एषां न त्वात्मभावात्

—इत्यादिसे उपर्युक्त संशयकी सिद्धिके लिये निराकरण करते हुए ब्रह्म किंरूप है, इस विषयमें स्वयं निर्णय करनेमें असमर्थ हो ऋषियोंने सोचा कि ब्रह्मविद्या देनेमें अतिनिपुण तथा उदार परमशक्तिस्वरूप अम्बिका देवीके प्रसादसे ही इस विषयका निर्णय हो सकेगा। वे ऐसा निश्चय कर समाधिस्थ हो गये। उन्हें परमात्माकी शक्तिके दर्शन हुए। उसके प्रसादसे उन्हें पूर्वोक्त काल, स्वभाव आदि कारणोंके कारण, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सत्-अभिन्न चित्, चित्-अभिन्न सत्, आनन्दाम्बुनिधि परमात्माका विशेषरूपसे साक्षात्कार हुआ। अनन्तर—

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः। (श्वे० १।१०)

—इत्यादि उपसंहारसे विस्तारपूर्वक यह निर्णय किया है कि 'यतो वा' श्रुतिमें जिसे ब्रह्म-नामसे जगत्‌के जन्म आदिका कारण कहा गया है, वह शिव ही हैं। कूर्मपुराणमें इसी गाथाका विस्तृत वर्णन इस तरह किया गया है—

समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः ।
वितेनिरे बहून् वादानात्मविज्ञानसंश्रयान् ॥
किमस्य जगतो मूलमात्मा वास्माकमेव हि ।
कोऽपि स्यात्सर्वभूतानां हेतुरीश्वर एव च ॥
इत्येवं मन्यमानानां ध्यानकर्मावलम्बिनाम् ।
आविरासीन्महादेवी गौरी गिरिवरात्मजा ॥

—इत्यादिसे लेकर

निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या
तदन्तरे देवमशेषहेतुम् ।
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं
रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥

—एतत्पर्यन्त श्वेताश्वतर-उपनिषद्‌की गाथाका ही विशद रूपसे उल्लेख है । इसका भी सारांश यही है कि शिवजी सबके कारण हैं, परात्पर हैं, पुराणपुरुष हैं, इत्यादि ।

अथर्वशिर-उपनिषद् २ में कहा है—

देवा ह वै स्वर्गं लोकमगमंस्ते देवा रुद्रमपृच्छन् को भवानिति । सोऽब्रवीदहमेकः प्रथममासं वर्तामि भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति ।

'देवतालोग महाकैलासमें गये, उन्होंने रुद्रसे पूछा—'आप कौन हैं?' रुद्रभगवान् बोले—'मैं एक (प्रत्यग्रूप) हूँ । मैं सृष्टिके पूर्वमें था, इस समय हूँ और भविष्यमें रहूँगा—मैं तीनों कालोंसे अपरिच्छिन्न हूँ । मुझ सर्वेश्वरसे अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है ।'

अथर्वशिखा-उपनिषद्‌में भी सनत्कुमार आदिने अथर्वण ऋषिसे प्रश्न किया है—

भगवन् ! किमादौ प्रयुक्तं ध्यानं ध्यायितव्यं किं तद्ध्यानं को वा ध्याता कश्च ध्येयः ।

वे क्रमशः तीन प्रश्नोंका उत्तर देकर कहते हैं—

ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम् । सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते ········· कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः । सर्वेश्वरः शम्भुराकाशमध्ये ।

यहाँपर 'ध्यायीतेशानम्' से शिवजीको ध्यानयोग्य कहा । तदनन्तर शिवसे इतर सम्पूर्ण देवताओंकी उपेक्षा कर शिवजीका ही ध्यान करना चाहिये, यह दिखानेके लिये कहा है । सब देवताओंमें प्रधान देवता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इस जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहारमें नियुक्त हैं; किन्तु वे भी भूत और इन्द्रिय आदिके समान परमेश्वरसे उत्पन्न होते हैं । सब कारणोंके कारण शिवजी कदापि उत्पत्ति, विनाश आदि विकारोंको प्राप्त नहीं होते । इसप्रकार सब देवताओंसे शिवजीकी विशिष्टताका निश्चय कर, उपपत्तिपूर्वक—वे सबके ध्येय हैं, ऐसा उपसंहार किया है ।

श्वेताश्वतर-उपनिषद्‌में—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं
स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु ॥
(श्वे० ४ । १२)

'जो देवताओंकी उत्पत्ति करनेवाला है, ऐश्वर्य देनेवाला है, जगत्‌में सबसे अधिक (श्रेष्ठ) है, उस महर्षि रुद्रने पैदा होते हुए हिरण्यगर्भको देखा, वह हमको अच्छी बुद्धिसे युक्त करे ।'

यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रि-
र्न सन्न चासच्छिव एव केवलः ।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥
(श्वे० ४ । १८)

'सृष्टिके आदिकालमें जब केवल अन्धकार ही अन्धकार था; न दिन था, न रात्रि थी, न सत् (कारण) था, न असत् (कार्य) था, केवल एक निर्विकार शिव ही विद्यमान थे । वही अक्षर हैं, वही सबके जनक परमेश्वरका प्रार्थनीय स्वरूप हैं, उन्हींसे शास्त्रविद्या प्रवृत्त हुई है ।'

इत्यादि अनेक उपनिषद्-खण्डोंसे स्पष्टतया प्रतीत होता है कि भगवान् शङ्कर अनादि हैं, अनन्त हैं, सबके कारण हैं, परम उपास्य हैं, आनन्दमय हैं, सच्चित् हैं, उनके बराबर दूसरा कोई है ही नहीं । उन्होंने सबसे प्रथम उत्पन्न हुए जीव हिरण्यगर्भको पैदा होते देखा । वे देश तथा कालके परिच्छेदसे शून्य हैं ।

श्वेताश्वतर-उपनिषद्‌को देखनेसे ज्ञात होता है कि वह आदिसे लेकर अन्ततक सारा-का-सारा शिवपरक ही है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः ।

(श्वे० ३ । २)

'केवल एक रुद्र ही तो हैं, इसलिये ब्रह्मवादीलोग दूसरेके मुखका अवलोकन नहीं करते थे—

'विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः'

(श्वे० ३ । ४)

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

(श्वे० ६ । ७)

'जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसे भी उत्कृष्ट, इन्द्र आदि देवताओंके भी देवता, जगत्‌के पति हिरण्यगर्भ आदिके भी अधिपति, पर-अक्षरसे भी पर, भुवनोंके परमेश्वर देवको हम जानते हैं ।'

मायिनं तु महेश्वरम् ।

—इत्यादि अनेक वचन उपर्युक्त कथनका समर्थन करते हैं । श्वेताश्वतरकी भाँति अथर्वशिर-उपनिषद् भी पूर्णतया शिवपरक ही है ।

यत्सूक्ष्मं तद्वैद्युतम्, यद्वैद्युतं तत् परं ब्रह्म, यत् परं ब्रह्म स एकः, य एकः स रुद्रः, यो रुद्रः स ईशानः, य ईशानः स भगवान् महेश्वरः । (अथर्वशिर० ३)

—इत्यादिसे शिवजीकी ज्योतिःस्वरूपता, अद्वितीयता, परब्रह्मता, परात्परताका स्पष्ट वर्णन किया गया है ।

इसी प्रकार श्वेताश्वतरके 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' आदि अनेक मन्त्रखण्डोंके अविकलरूपसे मिलने तथा 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्' आदि कितने ही मन्त्रोंका अर्थसाम्य होनेसे पुराणपुरुषके विराट्‌रूपका प्रतिपादन करनेवाला पुरुषसूक्त भी शिवपरक ही है । रुद्रपरक होनेके कारण ही रुद्राभिषेकमें उसे स्थान मिला है । लिङ्गपुराणमें शिवजीकी पूजाकी विधिमें कहा गया है—

ज्येष्ठसाम्नां त्रयेणैव तथा देवव्रतैरपि ।
रथन्तरेण पुण्येन सूक्तेन पुरुषेण च ॥

'तीन ज्येष्ठसाम (सामके भेद), तीन देवव्रत, पुण्य-रथन्तर (सामभेद) तथा पुण्यपुरुषसूक्तसे शिवजीका अभिषेक करे ।' इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पुरुषसूक्त शिवपरक ही है । इसके अतिरिक्त लिङ्गपुराणमें, पुरुषसूक्तमें प्रतिपादित पुराणपुरुषकी महिमा शिवजीकी ही महिमा है, शिवजी ही पुराणपुरुष हैं, यह स्पष्टतया कहा गया है—

द्यौर्मूर्द्धा हि विभोस्तस्य खं नाभिः परमेष्ठिनः ।
सोमसूर्याग्नयो नेत्रं दिशः श्रोत्रे महात्मनः ॥
वक्त्राद्वै ब्राह्मणा जाता ब्रह्मा च भगवान् विभुः ।
इन्द्रविष्णू भुजाभ्यां तु क्षत्रियाश्च महात्मनः ॥
वैश्याश्चोरुप्रदेशात्तु शूद्राः पादात् पिनाकिनः ।

इत्यादि

अन्य पुराणोंमें भी शिवजीकी परात्परता, सर्वकारणताके वचनोंकी जहाँ-तहाँ भरमार है । शिवपुराणमें इसका वर्णन देखिये—

त्रयस्ते कारणात्मानो जाताः साक्षान्महेश्वरात् ।
चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यन्तहेतवः ॥
पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोऽपि त्रिषु कर्मसु ।
ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे पुनः ॥

इत्यादि

यहाँपर महेश्वरपदवाच्य शिवजीको ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रका जनक और शासक साफ ही कहा गया है ।

महाभारतमें देखिये—

यत्र भूतपतिः सृष्ट्वा सर्वलोकान् सनातनः ।
उपास्यते तिग्मतेजा वृतो भूतैः सहस्रशः ॥

(भीष्मपर्व)

—इत्यादि मैनाकके वर्णनके प्रकरणमें भूतपति शिवजीको सब लोकोंका स्रष्टा, सब प्राणियोंका उपास्यदेव तथा पुराण-पुरुष कहा गया है ।

शान्तिपर्वमें—

ईश्वरश्चेतनः कर्ता पुरुषः कारणं शिवः ।
विष्णुर्ब्रह्मा शशी सूर्यः शक्रो देवाश्च सान्वयाः ॥
सृज्यते ग्रस्यते चैव तमोभूतमिदं जगत् ।
अप्रज्ञातं जगत्सर्वं तदा ह्येको महेश्वरः ॥

—इत्यादिसे ईश्वर शिवजीको सर्वकारण एवं सर्वदेवमय बतलाया गया है और सृष्टिके पूर्व केवल उन्हींकी स्थितिका निर्देश किया गया है ।

अनुशासनपर्वमें—

स एष भगवानीशः सर्वतत्त्वादिरव्ययः ।

सर्वतत्त्वविधानज्ञः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥
सोऽसृजद्दक्षिणादङ्गाद् ब्रह्माणं लोकसम्भवम् ।
वामपार्श्वात्तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ॥
युगान्ते चैव सम्प्राप्ते रुद्रं प्रभुरथासृजत् ।

यहाँपर भी ब्रह्मा, विष्णु तथा संहारकर्ता रुद्र आदि-की सृष्टि करनेवाले शिवजी सर्वादि, सर्वप्रधान, सब तत्त्वोंको जाननेवाले हैं—ऐसा स्पष्टतया उल्लेख है।

महाभारतमें शिवजी सर्वप्रधान, देवाधिदेव, परिपूर्ण-तम, परात्पर एवं क्या ज्ञानमें, क्या दानमें, क्या सम्मानमें सबसे अधिक हैं—इस बातकी द्योतक अनेकानेक आख्यायिकाएँ हैं।

जाम्बवतीके अत्यन्त अनुनय-विनय करनेपर भगवान् कृष्ण उसकी पुत्र-प्राप्तिके लिये शिवजीकी आराधना करनेको कैलासपर गये। ऋषिप्रवर उपमन्युके मुखारविन्दसे उनकी अतुल महिमाको सुनकर अति मुग्ध हुए और ऋषिके उपदेशसे विधिपूर्वक भगवान् शिवजीकी आराधनामें संलग्न हुए। एक मासतक फल खाकर, दूसरे मासमें पानी पीकर और तीन मास केवल वायुका भक्षण करके, ऊपरको हाथ उठाये, एक पैरसे खड़े रहे। उनकी इस उग्र तपस्यासे भगवान् प्रसन्न हुए। जगदम्बा पार्वतीसमेत उनको दर्शन देकर मनोवाञ्छित आठ वरदान दिये। उस समय उनके चारों ओर सभी देवगण वेदमन्त्रोंसे उनका जयजयकार मना रहे थे। श्रीकृष्णभगवान्ने—

त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः ।
धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः ॥
त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ॥
(महा० अनु० ४५ । ३९६-९७, ४०७)

—इत्यादि वाक्योंसे उनकी स्तुति की और उनके साक्षात्कारसे अपनेको कृतकृत्य माना। द्रोणपर्वमें अभिमन्युके शोकसे कातर अर्जुनकी प्रतिज्ञाको पूर्ण कराने तथा पाशुपतास्त्रकी प्राप्तिके लिये अर्जुनको लेकर भगवान् कृष्ण कैलासमें देवाधिदेव महादेवके समीप गये और—

नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिद्ध्यतां नो वरः प्रभो ॥
महा० द्रोण० ८० । ६३-६४)

—इत्यादि अनेक प्रकारकी स्तुतिसे उन्हें प्रसन्न कर कृतकृत्य हुए। इसप्रकारकी अनेक गाथाएँ हैं। कहाँतक कहें, कृष्ण-भगवान्का प्रधान अस्त्र सुदर्शन भी शिवजीका प्रसादरूप ही है। यह गाथा शिवपुराण आदिमें विस्तारसे कही गयी है। किसी समय दैत्य बड़े बलवान् हो गये थे। उन्होंने देवताओंको बड़ा कष्ट दिया। देवताओंने विष्णुभगवान्की शरण ली। विष्णुभगवान्ने उन्हें आश्वासन देकर देवदेव शिवजीकी बड़ी आराधना की। अन्तमें नियम किया कि भगवान् शिवजीके सहस्रनामका पाठ किया जाय और प्रत्येक नामपर भगवान्को मानसरोवरमें पैदा हुए सुन्दर कमल चढ़ाये जायँ। इसप्रकार स्तुति करनेसे भगवान् शिव अवश्य प्रसन्न होंगे। विष्णुकी दृढ़भक्तिको जाननेके लिये शिवजीने एक दिन चढ़ानेके लिये प्रस्तुत हजार कमलोंमेंसे एक कमल उठा लिया। जब विष्णुको ज्ञात हुआ कि एक कमल कम है, तो उन्होंने सारी पृथिवी खोज डाली, किन्तु उन्हें कमल नहीं मिला। तब अन्तमें उन्होंने अपनी आँख कमलके बदलेमें चढ़ा दी। भगवान् शिव दृढ़भक्त जानकर विष्णुपर रीझ गये और साक्षात् दर्शन देकर बोले—'हे हरे! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ, तुम मेरे दृढ़भक्त हो; जो इच्छा हो, माँगो। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है।'

प्रसन्नवदन विष्णुने हाथ जोड़कर कहा—'आप अन्तर्यामी हैं, सबके अभिलाषको जानते हैं। यद्यपि आपसे कुछ छिपा नहीं है, तथापि आपकी आज्ञानुसार कहता हूँ, हे देवदेव! दैत्योंने सारे संसारको पीड़ित कर रक्खा है। उनका संहार करनेमें मेरे अस्त्र-शस्त्र समर्थ नहीं हैं। मैं क्या करूँ? आपको छोड़ मेरा कोई दूसरा आसरा नहीं है।' यह सुनकर भगवान् देवाधिदेव शिवने तेजपुञ्जरूप अपना सुदर्शनचक्र विष्णुके अर्पण कर दिया। उसे पाकर उन्होंने अनायास दैत्योंको मार डाला और देवोंकी रक्षा की, इत्यादि।

हरिवंशमें शिवजीकी स्तुति करते हुए श्रीकृष्णभगवान्ने कहा है—

अहं ब्रह्मा कपिलोऽथाप्यनन्तः
पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः ।

त्वत्तः सर्वे देवदेव प्रसूता
एवं सर्वेश कारणात्मा त्वमीड्यः॥

इस वचनसे भी भगवान् शिवकी सर्वदेवमयता, सबका आधिपत्य, देवाधिदेवता, सर्वकारणता और परात्परता साफ झलकती है।

वायुसंहितामें शिवजीका उपक्रम करके कहा है—

सोमं ससर्ज यज्ञार्थं सोमाद् द्यौः समवर्तत।
धरा वह्निश्च सूर्यश्च वज्रपाणिः शचीपतिः॥
विष्णुर्नारायणः श्रीमान् सर्वं सोममयं जगत्।

इससे भी स्पष्टतया प्रतीत होता है कि पुरुषसूक्तमें उक्त महाविराट् पुराणपुरुष शिवजी ही हैं। वही जगत्के मूल हैं। उन्हींसे चराचर जगत्की सृष्टि हुई है।

पराशरपुराणके निम्नलिखित वचनोंसे भलीभाँति विदित होता है कि श्रुतियों, स्मृतियों एवं पुराणोंमें जहाँ कहीं अन्यान्य देवताओंको जगत्का कारण बतलाया गया है—उसका पर्यवसान शङ्करजीमें ही है। उसमें साफ कहा गया है—साम्बशिव ही सबके कारण हैं। सत्य, ज्ञान, अनन्त वही हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि उनके अधीन हैं, उनकी आज्ञा तथा कृपा विना कुछ नहीं कर सकते।

सर्वकारणमीशानः साम्बः सत्यादिलक्षणः।
न विष्णुर्न विरिञ्चिश्च न रुद्रो नापरः पुमान्॥
श्रुतयश्च पुराणानि भारतादीनि सत्तम।
शिवमेव सदा साम्बं हृदि कृत्वा ब्रुवन्ति हि॥
इत्यादि।

परमेश्वर सबसे परे हैं, यह बात स्मृतिमें भी डिण्डिम-घोषसे स्पष्ट कही गयी है—

सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः।
मनसश्चाप्यहङ्कारः अहङ्कारान्महान् परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषाद् भगवान् प्राणः तस्य सर्वमिदं जगत्॥
प्राणात् परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः।
ईश्वरान्न परं किञ्चित्.................॥

'विद्वान्‌लोग कहते हैं कि सारी इन्द्रियोंसे मन पर है, मनसे अहङ्कार पर है, अहङ्कारसे महत्तत्त्व पर है, महत्तत्त्वसे प्रकृति पर है प्रकृतिसे पुरुष पर है, पुरुषसे भगवान् प्राण श्रेष्ठ है, प्राणका ही यह सारा जगत् है। प्राणसे व्योम परतर है ज्योतिःस्वरूप ईश्वर (शिव) व्योमसे भी परे है; ईश्वरसे कुछ भी पर नहीं है,—वह परात्पर है। श्रुति भी कहती है—

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्

अर्थात् 'जिससे परे और कुछ भी नहीं है।'

पूर्व-उद्धृत श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहासके वचनोंपर गौर करते हुए किसीको भी शिवजीके देवाधिदेव, सर्वकारण, परात्पर, परमोपास्य, अनादि, अनन्त, परमैश्वर्य-शाली, सबके शोक-सन्तापको हरनेवाले ज्योतिरूप होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं हो सकता। लेकिन अनेक स्थलोंमें त्र्यक्ष, शूलपाणि, रुद्र, नीललोहित, महेश आदि नामोंका उल्लेख करते हुए उन्हें कहींपर विष्णुभगवान्से उत्पन्न और कहींपर ब्रह्मासे उत्पन्न माना गया है। यहाँपर लोगोंको सन्देह हो जाता है कि बात क्या है, कहींपर उसी नामवाले-व्यक्तिकी ऐसी महिमा गायी गयी है और कहींपर उन्हें जन्म तथा संहारका कर्तामात्र माना गया है? जैसे—

तस्य ललाटात् त्र्यक्षः शूलपाणिः पुरुषोऽजायत।

अर्थात् 'विष्णुके ललाटसे शूलको हाथमें लिये हुए एक त्रिनेत्र पुरुष पैदा हुए।'

एतौ द्वौ पुरुषश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजौ मम।

अर्थात् 'ये दो पुरुषश्रेष्ठ (ब्रह्मा और रुद्र) मेरे (विष्णु-के) प्रसाद और क्रोधसे पैदा हुए हैं।'

प्रादुरासीत्प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः।

अर्थात् 'ब्रह्माकी गोदमें कुमार नीललोहित (शिव) पैदा हुए।'

इत्यादि श्रुति और स्मृतिमें नारायण (विष्णु) तथा ब्रह्मासे जो उनकी उत्पत्तिका वर्णन किया गया है, वह अन्यान्य कल्पोंमें संहाररुद्ररूपसे नारायणसे उनके आविर्भाव मात्रका कथन है। उसका कारण भी भगवान् परात्पर शिवका वरदान ही है। जैसे कूर्मपुराणमें उन्होंने कहा है—

अहं च भवतो वक्त्रात् कल्पान्ते घोररूपधृक्।
शूलपाणिर्भविष्यामि क्रोधजस्तव पुत्रकः॥
इत्यादि

ब्रह्मासे आविर्भूत होनेमें भी कारण भगवान्‌का अनुग्रह ही है। वायुपुराणमें कहा है—

निर्दिष्टः परमेशेन महेशो नीललोहितः।
पुत्रो भूत्वानुगृह्णाति ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽनुजः॥
इत्यादि

महाभारतमें भी कहा है—

अनादिनिधनो देवश्चैतन्यादिसमन्वितः ।
ज्ञानानि च वशे यस्य तारकादीन्यशेषतः ॥
अणिमादिगुणोपेतमैश्वर्यं न च कृत्रिमम् ।
सृष्ट्यर्थं ब्रह्मणः पुत्रो ललाटादुत्थितः प्रभुः ॥

अर्थात् 'अनादि, अनन्त एवं चैतन्य आदिसे युक्त देव (परमशिव), जिनके वशमें तारक आदि समस्त ज्ञान हैं और जिनका अणिमा आदिसे युक्त ऐश्वर्य कृत्रिम नहीं है, वे प्रभु (परमशिव) सृष्टिके लिये ब्रह्माके ललाटसे पुत्ररूपसे उदित हुए ।'

भगवान् परात्पर शिव कितने दयालु हैं कि परम उत्कृष्ट होते हुए भी अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये स्वेच्छासे उनके नियम्य बन जाते हैं । महान् लोगोंका यह स्वभाव ही है, अपनी मान-मर्यादाको कम करके भी अपने आश्रितकी मान-मर्यादाको बढ़ाना ।

परमपुरुषार्थकी इच्छा करनेवाले जनोंको परमशिवकी उपासना अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि उनके समान दूसरा कोई नहीं है—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः ।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे ॥

(महा० अनु० ४६ । ११)

शिव--कल्याणरूप

लोकत्रयस्थितिलयोदयकेलिकारः
कार्येण यो हरिहरद्रुहिणत्वमेति ।
देवः स विश्वजनवाङ्मनसातिवृत्त-
शक्तिः शिवं दिशतु शश्वदनश्वरं वः ॥

परात्पर सच्चिदानन्द परमेश्वर शिव एक हैं; वे विश्वातीत हैं और विश्वमय भी हैं । वे गुणातीत हैं और गुणमय भी हैं । वे एक ही हैं और अनेक रूप बने हुए हैं । वे जब अपने विस्ताररहित अद्वितीय स्वरूपमें स्थित रहते हैं तब मानो यह विविध विलासमयी असंख्य रूपोंवाली विश्वरूप जादूके खेलकी जननी प्रकृतिदेवी उनमें विलीन रहती है । यही शक्तिकी शक्तिमान्में अक्रिय, अव्यक्त स्थिति है—शक्ति है, परन्तु वह दीखती नहीं है और बाह्य क्रियारहित है । पुनः जब वही शिव अपनी शक्तिको व्यक्त और क्रियान्विता करते हैं, तब वही क्रीड़ामयी शक्ति—प्रकृति शिवको ही विविध रूपोंमें प्रकटकर उनके खेलका सामान उत्पन्न करती है । एक ही देव विविध रूप धारणकर अपने-आप ही अपने-आपसे खेलते हैं । यही विश्वका विकास है । यहाँ शिव-शक्ति दोनोंकी लीला चलती है । शक्ति क्रियान्विता होकर शक्तिमान्के साथ तब प्रत्यक्ष–प्रकट विलास करती है । यही परात्पर परमेश्वर शिव, महाशिव, महाविष्णु, महाशक्ति, गोकुल-विहारी श्रीकृष्ण, साकेताधिपति श्रीराम आदि नाम-रूपोंसे प्रसिद्ध हैं । सच्चिदानन्द विज्ञानानन्दघन परमात्मा शिव ही भिन्न-भिन्न सर्ग और महासर्गोंमें भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे अपनी परात्परताको प्रकट करते हैं । जहाँ जटाजूटधारी श्रीशिवरूप सबके आदि-उत्पन्नकर्ता और सर्वपूज्य महेश्वर उपास्य हैं तथा अन्य नाम-रूप-धारी उपासक हैं, वहाँ वे शिव ही परात्पर महाशिव हैं तथा अन्यान्य देव उनसे अभिन्न होनेपर भी उन्हींके स्वरूपसे प्रकट, नाना रूपों और नामोंसे प्रसिद्ध होते हुए सत्त्व-रज-तम गुणोंको लेकर आवश्यकतानुसार कार्य करते हैं । उस महासर्गमें भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डोंमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता भिन्न-भिन्न होनेपर भी सब उन एक ही परात्पर महाशिवके उपासक हैं । इसी प्रकार किसी सर्ग या महासर्गमें महाविष्णुरूप परात्पर होते हैं और अन्य देवता उनसे प्रकट होते हैं; किसीमें ब्रह्मारूप, किसीमें महाशक्तिरूप, किसीमें श्रीकृष्णरूप और किसीमें श्रीरामरूप परात्पर ब्रह्म होते हैं तथा अन्यान्य स्वरूप उन्हींसे प्रकट होकर उनकी उपासनाकी और उनके अधीन सृष्टि, पालन और विनाशकी विविध लीलाएँ करते हैं । इस तरह एक ही प्रभु भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रकट होकर उपास्य-उपासक, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा, शासक-शासितरूपसे लीला करते हैं । हाँ, एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, परात्परसे प्रकट त्रिदेव उनसे अभिन्न और पूर्ण शक्तियुक्त होते हुए भी तीनों भिन्न-भिन्न प्रकारकी क्रिया करते हैं तथा तीनोंकी शक्तियाँ भी अपने-अपने कार्यके अनुसार सीमित ही देखी जाती हैं ।

यह नहीं समझना चाहिये कि परात्पर महाशिव परब्रह्मके ये सब भिन्न-भिन्न रूप काल्पनिक हैं। सभी रूप भगवान्‌के होनेके कारण नित्य, शुद्ध और दिव्य हैं। प्रकृतिके द्वारा रचे जानेवाले विश्वप्रपञ्चके विनाश होनेपर भी इनका विनाश नहीं होता, क्योंकि ये प्रकृतिकी सत्तासे परे स्वयं प्रभु परमात्माके स्वरूप हैं। जैसे परमात्माका निराकार रूप प्रकृतिसे परे नित्य निर्विकार है, इसी प्रकार उनके ये साकार रूप भी प्रकृतिसे परे नित्य निर्विकार हैं। अन्तर इतना ही है कि निराकार रूप कभी शक्तिको अपने अन्दर इस कदर विलीन किये रहता है कि उसके अस्तित्वका ही पता नहीं लगता और कभी निराकार रहते हुए ही शक्तिको विकासोन्मुखी करके गुणसम्पन्न बन जाता है। परन्तु साकार रूपमें शक्ति सदा ही जाग्रत, विकसित और सेवामें नियुक्त रहती है। हाँ, कभी-कभी वह भी अन्तःपुरकी महारानीके सदृश बाहर सर्वथा अप्रकट-सी रहकर प्रभुके साथ क्रीड़ारत रहती है और कभी बाह्य लीलामें प्रकट हो जाती है, यही नित्यधामकी लीला और अवतार-लीलाका तारतम्य है।

नित्यधामके शिव-शक्ति, विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सावित्री, कृष्ण-राधा और राम-सीता ही समय-समयपर अवताररूपसे प्रकट होकर बाह्य लीला करते हैं। ये सब एक ही परम-तत्त्वके अनेक नित्य और दिव्य स्वरूप हैं। अवतारोंमें, कभी तो परात्पर स्वयं अवतार लेते हैं और कभी सीमित शक्तिसे कार्य करनेवाले त्रिदेवोंमेंसे किसीका अवतार होता है। जहाँ दण्ड और मोहकी लीला होती है, वहाँ दण्डित एवं मोहित होनेवाले अवतारोंको त्रिदेवोंमेंसे, तथा दण्डदाता और मोह उत्पन्न करनेवालेको परात्पर प्रभु समझना चाहिये, जैसे नृसिंहरूपको शरभरूपके द्वारा दण्ड दिया जाना और शिवरूपका विष्णुद्वारा मोहिनी-रूपसे मोहित होना आदि। कहीं-कहीं परात्परके साक्षात् अवतारमें भी ऐसी लीला देखी जाती है परन्तु उसका गूढ़ रहस्य कुछ और ही होता है जो उनकी कृपासे ही समझमें आ सकता है!

आज श्रीशिवस्वरूपकी कुछ चर्चा करके लेखनीको पवित्र करना है। कुछ लोगोंकी अनुभवहीन समझ, सूझ या कल्पना है कि भगवान् शिवका साकार स्वरूप कल्पना-मात्र है। उनके एकमुख, पञ्चमुख, सर्पधारण, नीलकण्ठ, मदनदहन, वृषभ, कार्तिकेय, गणेश आदि सभी काल्पनिक रूपक हैं। इसलिये इन्हें वास्तविक न मानकर रूपक ही समझना चाहिये। परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। ये सभी सत्य हैं। जिन भक्तोंने भगवान् श्रीशिवकी कृपासे इन रूपों और लीलाओंको देखा है या जो आज भी भगवत्कृपासे प्राप्त साधन-बलसे देख सकते हैं अथवा देखते हैं तथा साक्षात् अनुभव करते हैं, वे ही इस तत्त्वको समझते हैं और उन्हींकी बातका वस्तुतः कुछ मूल्य है। उल्लूको सूर्य नहीं दीखता—इससे जैसे सूर्यके अस्तित्वमें कोई बाधा नहीं आती, इसी प्रकार किसीके मानने-न-माननेसे भगवत्स्वरूपका कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं। हाँ, माननेवाला लाभ उठाता है और न माननेवाला हानि। एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि भगवान्‌की प्रत्येक लीला वास्तवमें इसी प्रकारकी होती है, जिससे पूरा-पूरा आध्यात्मिक रूपक भी बँध सके। क्योंकि वे जगत्‌की शिक्षाके लिये ही अपने नित्य-स्वरूपको धरातलमें प्रकट करके लीला किया करते हैं। वेद, महाभारत, भागवत, विष्णु-पुराण, शिवपुराण आदि सभी ग्रन्थोंमें वर्णित भगवान्‌की लीलाओंके रूपक बन सकते हैं। परन्तु रूपक ठीक बैठ जानेसे ही असली स्वरूपको काल्पनिक मान लेना वैसी ही भूल है जैसी पिताके छायाचित्र (फोटो) को देखकर उसके अस्तित्वको न मानना!

कुछ लोग कहते हैं कि शिव-पूजा अनार्योंकी चीज है, पीछेसे आर्योंमें प्रचलित हो गयी। इस कथनका आधार है वह मिथ्या कल्पना या अन्धविश्वास, जिसके बलपर यह कहा जाता है कि 'आर्य-जाति भारतवर्षमें पहलेसे नहीं बसती थी। पहले यहाँ अनार्य रहते थे।' आर्य पीछेसे आये। दो-चार विदेशी लोगोंने अटकलपच्चू ऐसा कह दिया; बस, उसीको ब्रह्मवाक्य मानकर लगे सब उन्हींका अनुकरण करने! शिव-पूजाके प्रमाण अब उस समयके भी मिल गये हैं, जिस समय इन लोगोंके मतमें आर्य-जाति यहाँ नहीं आयी थी। इसलिये इन्हें यह कहना पड़ा कि शिव-पूजा अनार्योंकी है! जो भ्रान्तिवश वेदोंके निर्माण-कालको केवल चार हजार वर्ष पूर्वका ही मानते हैं, उनके लिये ऐसा समझना स्वाभाविक है। परन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है। भारतवर्ष आर्योंका ही मूल-निवास है और शिव-पूजा अनादि कालसे ही प्रचलित है। क्योंकि सारा विश्व शिवसे ही उत्पन्न है, शिवमें ही स्थित है और शिवमें ही विलीन होता है। शिव ही इसको उत्पन्न करते हैं, शिव ही इसका पालन करते हैं और शिव ही संहार करते हैं। विभिन्न

तीन कार्योंके लिये ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—ये तीन नाम हैं जब शिव अनादि हैं तब शिवकी पूजाको परवर्ती बतलाना सरासर भूल है। परन्तु क्या किया जाय? वे लोग चार-पाँच हजार वर्षसे पीछे हटना ही नहीं चाहते। उनके चारों युग इसी कालमें पूरे हो जाते हैं। उनके इतिहासकी यही सीमा है। इससे पहलेके कालको तो वे प्रागैतिहासिक युग मानते हैं। मानों उस समय कुछ था ही नहीं और कहीं कुछ था तो उसको समझने, जानने या लिखनेवाला कोई नहीं था। प्राचीनताको—चारों युगोंको चार-पाँच हजार वर्षकी सीमामें बाँधकर वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि समस्त ग्रन्थोंमें वर्णित घटनाओंको तथा उनके ग्रन्थोंको इसी कालके अन्दर सीमित मानकर तरह-तरहकी अद्भुत अटकलोंद्वारा इधर-उधरके कुलावे मिलाकर मनगढ़न्त बातोंका प्रचार करते हैं और इसीका नाम आज नवीन शोध या रिसर्च है। इस विचित्र रिसर्चके युगमें प्राचीनताकी बातें सुनना बेवकूफी समझा जाता है। भला बेवकूफी कौन करे? अतः स्वयं बेवकूफीसे बचनेके लिये पूर्वजोंको बेवकूफ बनाना चाहते हैं। कुछ लोग श्रीशिव आदिके स्वरूप और उनकी लीलाएँ तथा उनकी उपासना-पद्धतिका पूरा रहस्य न समझनेके कारण उनमें दोष देखते हैं, फिर इनके रहस्यसे सर्वथा अनभिज्ञ, विद्वान् माने जानेवाले अन्यदेशीय आधुनिक शिक्षाप्राप्त प्रसिद्ध पुरुष भगवान्‌के इन स्वरूपों, लीलाओं तथा पूजा-पद्धतिका जब उपहास करते हैं तथा इन्हें माननेवालोंको मूर्ख बतलाते हैं, तब तो इन लोगोंको आदर्श विद्वान् समझनेवाले एतद्देशीय उपर्युक्त पुरुषोंकी दोषदृष्टि और भी बढ़ जाती है और प्रत्यक्षदर्शी तत्त्वज्ञ ऋषियोंद्वारा रचित इन ग्रन्थोंसे, इनमें वर्णित घटनाओंसे, इनके सिद्धान्तोंसे लज्जाका अनुभव करते हुए, घरमें, देशमें इन्हें कोसते हैं और बाहर अपने धर्म तथा देशको लज्जा तथा उपहाससे बचानेके लिये उन कथाओंसे नये-नये रूपकोंकी कल्पना कर विदेशी विद्वानोंकी दृष्टिमें अपने धर्म और इतिहासको तथा देवतावादको निर्दोष एवं विज्ञान-सम्मत उच्च दार्शनिक भावोंसे सम्पन्न सिद्ध करनेका प्रयत्न कर उसके असली तत्त्वको ढँक देते हैं, और इस तरह तत्त्वसे सर्वथा वञ्चित रह जाते हैं। शास्त्ररहस्यसे अनभिज्ञ, अतत्त्वविद् आधुनिक विद्वानोंकी बुद्धिको ही सर्वांशमें आदर्श मानकर उनसे उत्तम कहे जानेके लिये भारतीय विद्वानोंने भारतीय धर्म-ग्रन्थोंमें वर्णित तत्त्व तथा इतिहासोंको एवं भगवान्‌की लीलाओंको, अपनी सभ्यताके और ग्रन्थोंके गौरवको बढ़ानेकी अच्छी नीयतसे भी जो सर्वथा उड़ाने तथा उनका बुरी तरह अर्थान्तर करने और उन्हें समझानेकी चेष्टा की है एवं कर रहे हैं, उसे देखकर रहस्यविद् तत्त्वज्ञ लोग हँसते हैं। साथ ही इन लोगोंकी इसप्रकारकी प्रगतिका अशुभ परिणाम सोचकर खिन्न भी होते हैं। रहस्य खुलनेपर ही पता लगता है कि हमारे शास्त्रोंमें वर्णित सभी बातें सत्य हैं और हमें लजानेवाली नहीं, वरं संसारको ऊँची-से-ऊँची शिक्षा देनेवाली हैं। परन्तु इस रहस्यका उद्घाटन भगवत्कृपासे प्राप्त योग्य तत्त्वज्ञ सद्‌गुरुकी कृपासे ही हो सकता है। खेद है कि आजकल गुरुमुखसे ग्रन्थोंका रहस्य जाननेकी प्रणाली प्रायः नष्ट होकर अपने आप ही अध्ययन और मनमाना अर्थ करनेकी प्रथा चल पड़ी है, जिससे रहस्य-मन्दिरके दरवाजे-पर ताले-पर-ताले लगते जा रहे हैं। पता नहीं, इसके परिणामस्वरूप हमारा जीवन कितना बहिर्मुख और जड-भावापन्न हो जायगा।

इनके अतिरिक्त कुछ लोग भगवान् शिवको मानते तो हैं, किन्तु उन्हें तामसी देव मानकर उनकी उपासना करनेमें दोष समझते हैं। वास्तवमें यह उनका भ्रम है, जो बाह्य दृष्टि-वाले साम्प्रदायिक आग्रही मनुष्योंका पैदा किया हुआ है। जिन भगवान् शिवका गुणगान वेदों, उपनिषदों और वैष्णव कहे जानेवाले पुराणोंमें भी गाया गया है, उन्हें तामसी बतलाना अपने तमोगुणी होनेका ही परिचय देना है। परात्पर महाशिव तो सर्वथा गुणातीत हैं, वहाँ तो गुणों-की क्रिया ही नहीं है। जिस गुणातीत, नित्य, दिव्य, साकार चैतन्य रसविग्रह स्वरूपमें क्रिया है, उसमें भी गुणोंका खेल नहीं है। भगवान्‌की दिव्य प्रकृति ही वहाँ क्रिया करती है। और जिन त्रिदेव मूर्तियोंमें सत्त्व, रज और तमकी लीलाएँ होती हैं, उनमें भी उनका स्वरूप गुणोंकी क्रियाके अनुसार नहीं है। भिन्न-भिन्न क्रियाओंके कारण सत्त्व, रज, तमका आरोप है। वस्तुतः ये तीनों दिव्य चेतन-विग्रह भी गुणातीत ही हैं।

कुछ लोग भगवान् शङ्करपर श्रद्धा रखते हैं, उन्हें परमेश्वर मानते हैं, परन्तु मुक्तिदाता न मानकर लौकिक फलदाता ही समझते हैं और प्रायः लौकिक कामनाओंकी सिद्धिके लिये ही उनकी भक्ति या पूजा करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि परम उदार आशुतोष, भगवान् सदा-शिवमें दयाकी लीलाका विशेष प्रकाश होनेके कारण वे भक्तोंको मनमानी वस्तु देनेके लिये सदा ही तैयार रहते हैं,

परन्तु इससे इन्हें मुक्तिदाता न समझना बड़ा भारी प्रमाद है। जब भगवान् शिवके स्वरूपका तत्त्वज्ञान ही मुक्तिका नामान्तर है, तब उन्हें मुक्तिदाता न मानना सिवा भ्रमके और क्या हो सकता है? वास्तवमें लौकिक कामनाओंने हमारे ज्ञानको हर लिया है, इसीलिये हम अपने अज्ञानका परमज्ञानस्वरूप शिवपर आरोप करके उनकी शक्तिको लौकिक कामनाओंकी पूर्तितक ही सीमित मान लेते हैं और शिवकी पूजा करके भी अपनी मूर्खतावश परमलाभसे वञ्चित रह जाते हैं। भगवान् शिव शुद्ध, सनातन, विज्ञानानन्दघन परब्रह्म हैं, उनकी उपासना परम लाभके लिये ही या उनका पुनीत प्रेम प्राप्त करनेके लिये ही करनी चाहिये। सांसारिक हानि-लाभ प्रारब्धवश होते रहते हैं, इनके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। शङ्करकी शरण लेनेसे कर्म शुभ और निष्काम हो जायँगे, जिससे आप ही सांसारिक कष्टोंका नाश हो जायगा। और पूर्वकृत कर्मोंके शेष रहनेतक कष्ट होते भी रहें तो क्या आपत्ति है। उनके लिये न तो चिन्ता करनी चाहिये और न भगवान् शङ्करसे उनके नाशार्थ प्रार्थना ही करनी चाहिये। नाम-रूपसे सम्बन्ध रखनेवाले आने-जानेवाले, सुख-दुःखोंकी भक्त क्यों परवा करने लगा? लौकिक सुखका सर्वथा नाश होकर महान् विपत्ति पड़नेपर भी यदि भगवानका भजन होता रहे तो भक्त उस विपत्तिको परम सम्पत्ति मानता है, परन्तु उस सम्पत्ति और सुखका वह मुँह भी नहीं देखना चाहता जो भगवान्‌के भजनको भुला देते हैं। भजन विना जीवन, धन, परिवार, यश, ऐश्वर्य—सभी उसको विषवत् भासते हैं। भक्तको तो सर्वथा देवी पार्वतीकी भाँति अनन्य प्रेमभावसे भगवान् शिवकी उपासना ही करनी चाहिये। एक बात बहुत ध्यानमें रखनेकी है, भगवान् शिवके उपासकमें जगत्‌के भोगोंके प्रति वैराग्य अवश्य होना चाहिये। यह निश्चित सिद्धान्त है कि विषय-भोगोंमें जिनका चित्त आसक्त है, वे परमपदके अधिकारी नहीं हो सकते और उनका पतन ही होता है। ऐन्द्रिय विषयोंको प्राप्त करके अथवा विषयोंसे भरपूर जीवनमें रहकर उनसे सर्वथा निर्लिप्त रहना जनक-सरीखे इनेगिने पूर्वाभ्यास-सम्पन्न पुरुषोंका ही कार्य है। अनुभव तो यह है कि विषयोंके सङ्ग तो क्या, उनके चिन्तनमात्रसे मनमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं। भगवान् भोलेनाथ विषय माँगनेवालेको विषय और मोक्ष माँगनेवालेको मोक्ष दे देते हैं और प्रेमका भिखारी उनके प्रेमको प्राप्तकर धन्य होता है। वे कल्पवृक्ष हैं। मुँहमाँगा वरदान देनेवाले हैं। यदि उपासकने उनसे विषय माँगा तो वे विषय दे देंगे, परन्तु विषय उसके लिये विषका कार्य करेगा और अन्तमें दुःखदायी होगा। कामनासे घिरे हुए विषयपरायण मूढ़ पुरुष ही असुर हैं। ऐसे असुरोंके अनेकों दृष्टान्त प्राप्त होते हैं जिन्होंने भगवान् शिवजीकी उपासना करके उनसे विषय माँग लिये और जो यथार्थ लाभसे वञ्चित रह गये। अतएव भगवान् शिवके उपासकको जगत्‌के विषयोंकी आसक्ति छोड़कर यथार्थ वैराग्यसम्पन्न होकर परमवस्तुकी चाहना करनी चाहिये, जिससे यथार्थ कल्याण हो। याद रखना चाहिये कि शिव स्वयं कल्याणस्वरूप ही हैं, इससे उनकी उपासनासे उपासकका कल्याण बहुत ही शीघ्र हो जाता है। सिर्फ विश्वास करके लग जाने मात्रकी देर है। भगवान्‌के दूसरे स्वरूप बहुत छान-बीनके अनन्तर फल देते हैं परन्तु औढरदानी शिव तत्काल फल दे देते हैं।

औढरदानी या आशुतोषका यह अर्थ नहीं करना चाहिये कि शिवस्वरूपमें बुद्धि या विवेककी कमी है। ऐसा मानना तो प्रकारान्तरसे उनका अपमान करना है। बुद्धि या विवेकके उद्गम-स्थान ही भगवान् शिव हैं। उन्हींसे बुद्धि प्राप्तकर समस्त देव, ऋषि, मनुष्य अपने-अपने कार्योंमें लगे रहते हैं। अलग-अलग रूपोंमें कुछ अपनी-अपनी विशेषताएँ रहती हैं। शङ्करमें यही विशेषता है कि वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं, और भक्तोंकी मनोकामना-पूर्तिके समय भोले-से बन जाते हैं। परन्तु जब संहारका मौका आता है तब रुद्ररूप बनते भी उन्हें देर नहीं लगती।

भगवान् शङ्करको भोलानाथ मानकर ही लोग उन्हें गँजेड़ी, भँगेड़ी, नशेबाज और बावला समझकर उनका उपहास करते हैं। विनोदसे भक्त सब कुछ कर सकते हैं और भक्तका आरोप भगवान् स्वीकार भी कर ही लेते हैं। परन्तु जो वस्तुतः शिवको पागल, श्मशानवासी औघड़, नशेबाज आदि समझते हैं, वे गहरी भूलमें हैं। शङ्करका श्मशाननिवास, उनकी उन्मत्तता, उनका विष-पान, उनका सर्वाङ्गीपन आदि बहुत गहरे रहस्यको लिये हुए हैं, जिसे श्रीशिवकी कृपासे शिव-भक्त ही समझ सकते हैं। जैसे व्यभिचारप्रिय लोग भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीलाको व्यभिचारका रूप देकर प्रकारान्तरसे अपने व्यभिचार-दोषका समर्थन करते हैं, इसी प्रकार सदाचारहीन, अवैदिक क्रियाओंमें

रत नशेबाज मनुष्य शिवके अनुकरणका ढोंग रचकर अपने दोषोंका समर्थन करना चाहते हैं । वस्तुतः शिवभक्तको सदाचारपरायण रहकर गाँजा, भाँग, मतवालापन, अपवित्र वस्तुओंके सेवन, अपवित्र आचरण आदिसे सदा बचते रहना चाहिये—यही शङ्करका आदेश है ।

भगवान् शिवको परात्पर मानकर सेवन करनेवालेके लिये तो वे परमब्रह्म हैं ही । अन्यान्य भगवत्-स्वरूपोंके उपासकोंके लिये, जो शिवस्वरूपको परमब्रह्म नहीं मानते, भगवान् शिव मार्गदर्शक परमगुरु अवश्य हैं । भगवान् विष्णुके भक्तके लिये भी सद्गुरुरूपसे शिवकी उपासना आवश्यक है । वैष्णवग्रन्थोंमें इसका यथेष्ट उल्लेख है और साधकोंके अनुभव भी प्रमाण हैं । शक्तिके उपासक शक्तिमान् शिवको छोड़ ही कैसे सकते हैं ? शिव बिना शक्ति अकेली क्या करेगी ? गणेश तो शिवके पुत्र ही हैं । पुत्रको पूजे और पिताका अपमान करे, यह शिष्ट मर्यादा कभी नहीं हो सकती । सूर्यदेव तो भगवान् शिवके तेजोलिङ्गके ही नामान्तर हैं । इसके सिवा अन्यान्य मतावलम्बियोंके लिये भी कम-से-कम श्रद्धा-विश्वासरूप शक्ति-शिवकी आवश्यकता रहती ही है । योगियोंके लिये तो परमयोगीश्वर शिवकी आराधनाकी आवश्यकता है ही । ज्ञानके साधक परमकल्याण-रूप शिवकी ही प्राप्ति चाहते हैं, न्याय, वैशेषिक आदि दर्शन भी शिवविद्याके ही प्रचारक हैं । तन्त्र तो शिवोपासनाके लिये ही बना है । ऐसी अवस्थामें जिस किसी भी दृष्टिसे शिवको परम परात्पर परमात्मा, महाज्ञानी, महान् विद्वान्, योगीश्वर, देवदेव, जगद्गुरु, सद्गुरु, महान् उपदेशक, उत्पादक, संहारक—कुछ भी मानकर उनकी उपासना करना सबके लिये कर्तव्य है । और सुख—कल्याणकी इच्छा स्वाभाविक होनेके कारण प्रत्येक जीव कल्याणरूप शिवकी ही उपासना करता है ।

'शिव'

कल्याण-शिवाङ्को विश्वे[1] विजयते

(रचयिता—वेदकाव्यतीर्थसाहित्यविशारदोपाधिक पण्डित श्रीवीरभद्रजी शास्त्री, तैलङ्ग, काशी)

(बहिरालापबन्धः)

(प्रश्नाः)

कः कुम्भिनं समदमप्यपहन्ति नीरे ?
किं पत्रमुख्यसुखदं कथयार्यदेशे ?
को वेदराशिपठनप्रथमप्रयुज्यः ?
कः कौशिकान्वयगुरुः कथितः पुराणे ? ॥
'कल्याण'पत्रपतिभिः कलितोऽत्र कोऽङ्कः ?
＊किं बीजमात्मकुजमेति भुवः सकाशात् ?
का सर्वशास्त्रविदुषोऽपि सुदुर्लभाऽऽस्ते ?
किं रूपमद्रिपतिकूटसमुच्चयस्य ? ॥
गाढान्धकारविलयैकमहापटुः कः ?
वीरः कमिच्छति सदा समरप्रविष्टः ?
आशीः किमित्यभिदधाति गुरुः स्वशिष्यम् ?
कः सर्वभूतनिवहैः खलु नित्यमीड्यः ? ॥

(उत्तराणि)

म	क	रः
क	ल्या	णं
प्र	ण	वः
कु	शि	कः
शि	वा	ङ्कः
अ	ङ्को	लं
क	वि	ता
प्र	श्वे	तं
स	वि	ता
वि	ज	यं
ज	य	तु
भू	ते	शः

एतन्मदीयप्रश्नानां त्रिवर्णान्युत्तराणि च । येषां मध्याक्षरादाने 'कल्याण'स्य जयो भवेत् ॥

＊ अधो निक्षिप्तमङ्कोलबीजम् उद्गत्य पुनः स्ववृक्षशाखां लगतीति प्रसिद्धिः । १ अत्र 'विश्वस्मिन्' इत्युचितम् ।

काश्मीरीय शैव-दर्शनके सम्बन्धमें कुछ बातें

(लेखक—पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए० प्रिंसिपल, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी)

१ सूचना–काश्मीरीय शैव-दर्शन प्रत्यभिज्ञादर्शनके नामसे प्रसिद्ध है। पाठक 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' नाम सुनकर ऐसा न समझें कि मैं किसी नयी दर्शन-प्रणालीका सूत्रपात कर रहा हूँ। प्रत्यभिज्ञादर्शन नयी वस्तु नहीं है। यह भारतीय विचारसाम्राज्यकी एक अति प्राचीन दुर्लभ सम्पदा है। कालकी विचित्र गतिसे आज यह अपरिचितप्राय हो गयी है तथापि यह बात माननी ही पड़ेगी कि एक दिन इसका प्रभाव भारतीय साधनक्षेत्रमें सर्वत्र परिव्याप्त था। जो लोग हमारी सभ्यताकी विशिष्ट धाराकी ऐतिहासिक दृष्टिसे सूक्ष्मभावसे पर्यालोचना करनेकी चेष्टा करते हैं वे प्रत्यभिज्ञादर्शनके महत्त्वको सहज ही समझ सकते हैं। निगम और आगम अर्थात् वेद और तन्त्र क्या हैं और इनका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है, यहाँ इसके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि इस निगम और आगमके अन्दर ही भारतवर्षकी सनातन साधनाका बीज निहित है। श्रीमद्भागवतको 'निगम-कल्पतरुका गलित फल' कहा गया है। मेरे विचारसे इसमें आंशिक ही सत्य है, क्योंकि श्रीमद्भागवत जिसप्रकार निगमका, उसी प्रकार 'आगमकल्पतरु' का भी 'गलित फल' है। पाञ्चरात्र-आगममें जो कुसुमित होता है वही श्रीमद्भागवतमें परिपक्व रससे भरपूर फलके रूपमें परिणत है। इसी प्रकार प्रत्यभिज्ञा-सिद्धान्त भी आगमका—शैवागमका सारभूत रसस्वरूप है। जैसे श्रीमद्भागवतका अवलम्बन कर गौडीय वैष्णवोंने 'अचिन्त्यभेदाभेद' रूप अपूर्व दार्शनिक सिद्धान्तकी अवतारणा की है, इसी प्रकार स्वच्छन्द, मालिनीविजय प्रभृति आगम एवं तैत्तिरीय-संहिता प्रभृति निगम-समुद्रका मन्थन करके काश्मीरीय शैवोंने 'ईश्वराद्वयवाद' रूप जाज्वल्यमान रत्नमालाका आविष्कार किया है। दोनों ही भारतीय साधनाके गौरव-स्तम्भ हैं।

२ नामकरण–'प्रत्यभिज्ञादर्शन' नाम बहुत पुराना है, ऐसा नहीं प्रतीत होता। माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें इस नामका प्रयोग किया है और हमलोगोंने भी उन्हींका अनुसरणकर इसी नामको ग्रहण किया है। अवश्य ही प्रत्यभिज्ञा-हृदय, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी प्रभृति प्राचीन ग्रन्थोंके नामकरणमें प्रत्यभिज्ञा शब्दका व्यवहार किया गया था, किन्तु हमारा विश्वास है कि यह न्याय, वैशेषिक प्रभृतिके समान दार्शनिक सिद्धान्तविशेषका वाचक नहीं है। सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकरने कहा है कि काश्मीरीय शैवागम दो भागोंमें विभक्त है। प्रथम स्पन्दशास्त्र और द्वितीय प्रत्यभिज्ञाशास्त्र। स्पन्दशास्त्रके प्रचारक वसुगुप्त हैं और प्रत्यभिज्ञाशास्त्रके प्रवर्त्तक सोमानन्द हैं। यह विभाग ऐतिहासिक दृष्टिसे कुछ अंशमें सत्य होनेपर भी विचार करनेपर भ्रान्तिमूलक जान पड़ता है। क्योंकि स्पन्द और प्रत्यभिज्ञाप्रतिपादक ग्रन्थोंमें अवान्तर दो-एक विषयोंमें किञ्चित् मतभेदका आभास होनेपर भी दोनों शास्त्रोंके मूल सिद्धान्त और आलोचना-प्रणालीमें कुछ भी भेद नहीं है। सुतरां 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' शब्दसे स्पन्द और प्रत्यभिज्ञा दोनों ही मतोंका निर्देश होता है। प्राचीन साहित्यमें 'त्रिकदर्शन' 'माहेश्वरदर्शन' प्रभृति नाम विशेष प्रचलित थे, किन्तु माधवाचार्यका अनुकरण होनेसे अब प्रत्यभिज्ञा नामका ही अधिकतः प्रचार है।

३ प्रत्यभिज्ञासम्मत अद्वैतवाद–यद्यपि आगम और उपनिषदोंमें द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत प्रभृति सभी प्रकारके दार्शनिक वादोंके मूलसूत्र देखे जाते हैं तथापि अधिकार-भेद एवं रुचि-वैचित्र्यके कारण कोई-कोई प्रस्थान किसी एक विशेष सिद्धान्तकी प्रधानता स्वीकार करके प्रवर्तित होते हैं। शंकर, रामानुज, मध्व प्रभृति आचार्योंके उपनिषद् और गीतापर किये हुए भाष्योंकी तुलनात्मक आलोचना करनेसे यह बात भलीभाँति समझमें आ सकती है। यह अवश्य स्वभावतः ही होता है। सभी देशोंके आध्यात्मिक शास्त्रोंके इतिहासमें इसके दृष्टान्त हैं। इसी प्रकार आगमकी व्याख्याके प्रसङ्गमें काश्मीरीय शैवाचार्योंने अद्वैतवादको ही ग्रहण किया तथा इस वादका माहात्म्य दिखलानेके लिये वे एक अभिनव दर्शन-शास्त्रका निर्माण कर गये। भारतीय दर्शनशास्त्रके इतिहासमें यह अद्वैत-सिद्धान्त ईश्वराद्वयवादके नामसे प्रसिद्ध है। आचार्य अभिनवगुप्त इस सिद्धान्तके सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता हैं।

४ अद्वैतवादके प्रकार-भेद–आचार्य गौडपादने माण्डूक्य-कारिकामें एवं आचार्य शङ्करने शारीरक सूत्र और उपनिषदादिके भाष्यमें ब्रह्माद्वैतवादकी जो व्याख्या की है, आजकल साधारणतः अद्वैतवाद शब्दके एकमात्र अर्थरूपमें उसीको लिया जाता है। कहना न होगा कि यह सिद्धान्त समीचीन नहीं है। अद्वैत-प्रस्थानके अनेक प्रकार हैं। ब्रह्मवाद उन्हींके अन्तर्गत एक मतविशेष मात्र है। श्रीकण्ठ, रामानुज, वल्लभ प्रभृतिके सिद्धान्त शुद्ध अद्वैतमत नहीं हैं, यह बात ठीक है, परन्तु शुद्ध अद्वैतवादकी भारतीय दर्शनशास्त्रके इतिहासमें कभी कमी नहीं थी।

बौद्ध अद्वैतवादी थे। बुद्धदेवका 'अद्वयवादी' भी एक नाम था, इसका उल्लेख अमरकोशमें पाया जाता है। यद्यपि 'कथावत्थु' नामक ग्रन्थमें अनेकों प्रकारके, विशेषतः अष्टादशभागमें विभक्त—बौद्ध-सम्प्रदायके दर्शन और धर्म-सम्बन्धी मतोंका वर्णन है और यह सभी परस्पर विरोधी मत आगे चलकर सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार और माध्यमिक–इन चार प्रधान श्रेणियोंमें अन्तर्निहित हो जाते हैं तथापि इन सभी मतोंका तात्पर्य माध्यमिक-प्रदर्शित शून्यवादमें है इस बातको बोधिचित्त-विवरणकारने स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया है—

'भिन्नापि देशनाऽभिन्ना शून्यताद्वयलक्षणा।'

यह शून्यवाद कठोर अद्वयवाद है। सत्, असत् प्रभृति कोटिचतुष्टयसे विनिर्मुक्त कर तीक्ष्ण युक्तियोंकी सहायतासे नागार्जुनादि आचार्यगण इस शून्य तत्त्वको द्वैत-विकल्पसे सब प्रकार बचानेका प्रयास करते हैं। बहुतोंका विश्वास है कि स्वयं शङ्कराचार्य अपने ब्रह्माद्वैतवादके लिये विज्ञानाद्वैत अथवा शून्याद्वैत सिद्धान्तके सामने ऋणी हैं। बौद्धागमकी 'संवृति' शङ्करके दर्शनमें 'माया' रूपमें स्थान पाती है। दार्शनिक दृष्टिसे शङ्करकी 'माया' प्राचीन आर्ष मायासे कुछ अंशमें विलक्षण है, इसे स्वीकार करना होगा। फ्रांस-देशके सुविख्यात अध्यापक पूसें (Poussin) ने वेदान्त और बौद्धमतकी तुलनात्मक आलोचनाके प्रसङ्गमें गौडपादकारिकामें बौद्धभावका प्रभाव प्रदर्शित किया है। पण्डितप्रवर विधुशेखर शास्त्री महाशयने इसे और भी स्पष्ट करके दिखलाया है। यद्यपि शङ्कर योगाचार और माध्यमिक मतका खण्डन करते हैं तथापि अनेक स्थलोंपर वे स्वयं उनकी उद्भावित युक्ति, यहाँतक कि भाषा भी, ग्रहण करनेमें नहीं हिचकते। बौद्धमत और शङ्करमतके बीचमें केवल एक ही पदका व्यवधान है। परन्तु इस विषयमें एक बात याद रखनी होगी। भारतवर्षमें बौद्धमत भी कोई नवीन मत नहीं है। जो यह समझते हैं कि शून्यवाद नागार्जुनद्वारा प्रवर्तित हुआ है, पहले ऐसा मत नहीं था, वे महासङ्घिकमत और उपनिषदादिकी आलोचना करनेपर एवं आगमकी प्राचीनताके सम्बन्धमें विचार करनेपर यह समझ सकते हैं कि नागार्जुनने किसी नये सिद्धान्तका प्रवर्त्तन नहीं किया है। पहले जो अस्पष्ट एवं आभासरूपमें था, उसीको उन्होंने केवल स्पष्ट और प्रणालीबद्ध कर दिया।

वैयाकरणलोग भी अद्वैतवादी थे। 'वाक्यपदीयकार' ने मुक्तकण्ठसे कहा है कि व्याकरणका सिद्धान्त अद्वैतवाद है। व्याकरणके मतसे अखण्ड चिन्मय शब्द-तत्त्व ही जगत्‌का मूलकारण है, यह एक और अभिन्न है। त्रिपुरा-सम्प्रदाय भी अत्यन्त कट्टर अद्वैतवादी है। इनके मतसे मूलतत्त्व महाशक्ति एक एवं अद्वितीय है। इन सब अद्वैतवादोंकी विशेषता तथा इनके पारस्परिक सम्बन्धकी आलोचना करनेका यहाँ स्थान नहीं है। परन्तु इन सब सिद्धान्तोंसे यह स्पष्ट ही समझा जा सकता है कि प्राचीनकालमें अद्वैतवादके अनेकों प्रकारके प्रस्थान थे। ब्रह्माद्वैतके साथ-साथ शून्याद्वैत, शब्दाद्वैत, शाक्ताद्वैत, ईश्वराद्वैत प्रभृति विभिन्न प्रकारके अद्वैत-सिद्धान्त उस समय प्रचलित थे।

निगम और आगम—वेद और तन्त्र दोनोंमें अद्वैतवाद था, द्वैतवाद भी था, इस विषयमें कोई सन्देहका कारण नहीं है। वैदिक सिद्धान्तका मूलस्थान प्रधानतः उपनिषद् एवं तदवलम्बी दार्शनिक सूत्रग्रन्थ—विशेषतः ब्रह्मसूत्र है। तान्त्रिक सिद्धान्तके आकर ग्रन्थ प्राचीन आगमराशि तथा शिवसूत्र, शक्तिसूत्र, परशुरामकल्पसूत्र प्रभृति सूत्रमाला हैं। शैव, वैष्णव, शाक्तादि भेदसे आगम नाना प्रकारके थे। पाञ्चरात्र और भागवतमत वैष्णवागम-मूलक हैं। प्रत्यभिज्ञा और स्पन्दनशास्त्र अर्थात् काश्मीरीय त्रिकदर्शन, दक्षिणदेशके सिद्धान्तशास्त्र प्रभृति तथा व्याकरण शैवागमसे उद्भूत होते हैं। त्रिपुरादि सिद्धान्त शाक्तागममूलक है। अवश्य ही प्रत्येक सम्प्रदायके आगमोंमें भी अनेक प्रकारके विभाग हैं।

५ ब्रह्मवाद और ईश्वराद्वयवादमें भेद–आचार्य गौडपाद और शङ्करके द्वारा प्रचारित अद्वैतवाद तथा श्रीमदभिनव-

गुप्तादिद्वारा व्याख्यात परमेश्वराद्वयवाद ठीक एक ही प्रकारके नहीं हैं। ब्रह्मवाद मायाको सत् एवं असत् दोनोंसे विलक्षण तथा अनिर्वचनीय मानता है। किन्तु शैवाचार्य कहते हैं कि इससे द्वैत भङ्ग नहीं होता। अवश्य ही परमार्थदृष्टिसे माया जब तुच्छ होती है तब व्यवहार-भूमिकी सत्यता तथा विचारभूमिकी अनिर्वचनीयता वस्तुतः ब्रह्मके अद्वैत-तत्त्वको स्पर्श नहीं करती। यह बात ठीक है; किन्तु इससे अद्वैततत्त्वमें जो संकीर्णता आती है उस संकीर्णताके हेतुका पता ढूँढनेपर भी नहीं लगाया जा सकता। इस जीव-जडात्मक विश्व-वैचित्र्यका हेतु क्या है? मूलमें जब एक ही अद्वय ज्ञानतत्त्व है, तब यह द्वैतकी स्फुरणा क्यों होती है! तथा किसके निकट होती है? अज्ञानका आश्रय कौन है, द्रष्टा कौन है? ईश्वरादि षट्पदार्थोंको अनादि और परम्परासिद्ध बतलानेका व्यवहार भी अनादि है। शुद्ध ब्रह्म विवर्तात्मक अनादि प्रवर्तमान व्यवहारका अधिष्ठान वा अधिकरणमात्र है। उसका कर्तृत्व और स्वातन्त्र्य कल्पित है, वास्तवमें नहीं है। परन्तु कल्पना कौन करता है? जीव अथवा ईश्वर—पर ब्रह्म नहीं करते हैं। स्वरूपदृष्टिसे स्रष्टृत्वादि सभी धर्म उसीमें आरोपित और अध्यस्त होते हैं। परन्तु वस्तुतः ब्रह्मसे जीवभाव या ईश्वरभाव किस प्रकार होता है, यह समझमें नहीं आता। बस, यह प्रवाहरूपसे अनादि है, यह कहकर ही चुप हो जाना पड़ता है। अज्ञानकी प्रवृत्ति कहाँसे और क्यों होती है, इसका कोई उत्तर नहीं है। स्वप्रकाश चिरभास्वर ज्ञान-सूर्यको अकस्मात् अज्ञानान्धकार कहाँसे आकर ढक लेता है। ज्ञान यों ही अवशभावसे उसके अधीन होकर जीव बनता है, अथवा अधीश्वर होकर ईश्वर बनता है। किन्तु अज्ञानका प्रथमाविर्भाव ही जब समझमें नहीं आता तब जीवत्व अथवा ईश्वरत्वके बीज कालके मध्यमें अन्वेषण करके आविष्कार करनेकी चेष्टा तो पागलपन मात्र है।

ईश्वराद्वयवादमें भी अज्ञान है, माया है, किन्तु उसकी प्रवृत्ति आकस्मिक नहीं है। वह आत्माका स्वातन्त्र्यमूलक अर्थात् स्वेच्छा-परिगृहीत रूप है। नट जिसप्रकार जान-बूझकर नाना प्रकारका अभिनय करता है, परमेश्वर भी उसी प्रकार अपनी इच्छामात्रसे नाना प्रकारकी भूमिका ग्रहण करते हैं। वह स्वतन्त्र हैं, अपने स्वरूपको ढाँकनेमें भी समर्थ हैं और प्रकट करनेमें भी समर्थ हैं। पर जब वह अपने स्वरूपको ढँकते हैं तब भी उनका अनावृत रूप च्युत नहीं होता। अज्ञान उनकी स्वातन्त्र्य-शक्तिका विजृम्भण मात्र है। जिसप्रकार सवितृदेव अपने ही द्वारा सृजन किये हुए मेघसे अपनेको आच्छादित करते हैं, यह भी उसी प्रकार होता है। परन्तु सूर्य आच्छादित होकर भी जैसे अनाच्छादित रहते हैं, क्योंकि वैसा न होनेसे मेघको प्रकाशित कौन करता? विश्व-वैचित्र्य भी इसी प्रकार अपने स्वरूपका ही विमर्शमूलक है। क्रीड़ा-परायण महेश्वरकी लीला ही इसप्रकारके अभिनयका कारण है। आत्माराममें स्पृहा ही कैसी? यही स्वभाववाद है। ब्रह्मवादी स्वभावको बिल्कुल ही नहीं मानते हों, सो बात नहीं है। अज्ञान आत्माकी ही शक्ति है इस बातको उन्हें भी स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु ईश्वरवादी कहते हैं कि यह स्वातन्त्र्यमूलक, स्वातन्त्र्यात्मक, कर्तृत्वस्वरूप है, और ब्रह्मवादी कहते हैं कि यह शुद्ध साक्षी अथवा अधिष्ठान-चैतन्यात्मक है, यहीं दोनोंमें प्रधान भेद है। अर्थात् शाङ्करवेदान्तसे आत्मा विश्वोत्तीर्ण, सच्चिदानन्द, एक, सत्य, निर्मल, निरहङ्कार, अनादि, अनन्त, शान्त, सृष्टि-स्थिति और संहारका हेतु, भावाभावविहीन, स्वप्रकाश, नित्यमुक्त है, किन्तु उसमें कर्त्तृत्व नहीं है। परन्तु आगम-सम्मत अद्वैतमतसे विमर्श ही आत्माका स्वभाव है। ज्ञान और क्रिया उसके लिये एक-से हैं। उसकी क्रिया ही ज्ञान है, क्योंकि वह ज्ञाताका धर्म है। तथा उसके कर्त्तृस्वभाव होनेके कारण उसका ज्ञान ही क्रिया है। इस ज्ञान और क्रियाकी उन्मुखताका नाम इच्छा है। इसी कारण वह इच्छामय है अथवा इच्छादि शक्तित्रयसे युक्त, स्वातन्त्र्यमय है। ऐश्वर्य, विमर्श, पूर्णाहन्ता प्रभृति इसी स्वातन्त्र्यके नामान्तर हैं।

आगमसम्मत आत्मा सर्वदा ही पञ्चकृत्यकारी है। यह उसका असाधारण स्वभाव है।* सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह एवं विलयको ही पञ्चकृत्यके नामसे पुकारते हैं। शाङ्करमतसे ब्रह्म इसप्रकारके स्वभाववाला नहीं है। इसीलिये ब्रह्मवादमें आत्माका स्वस्फुरण वैसा न होनेके कारण वह सत्य होते हुए भी असत्कल्प है। महेश्वरानन्द कहते हैं—

'तत्र हि अद्वैतमाग्रहेणोपपाद्यमानमपि द्वैतकक्ष्यामेवाधि-

* महेश्वरानन्द-कृत 'महार्थमञ्जरी-टीका परिमल' पृ० ५२। 'प्रत्यभिज्ञाहृदयसूत्र' १० पृ० २२, २३ देखिये।

रोहति, यदत्र सत्यासत्यव्यवस्थया हेयोपादेयकल्पनायां तेनैवाकारेण द्वैतमर्यादापर्यवसायित्वमनिवार्यम्।'

त्रिकदर्शन अत्यन्त कट्टर अद्वैतवादी है, उस अद्वैतवादके सामने ब्रह्माद्वैत-सिद्धान्त मानो म्लान-सा जान पड़ता है। जान पड़ता है कि मानो शाङ्करमतमें द्वैताभास वस्तुतः वर्जित नहीं है। संविदुल्लासमें लिखा है—

द्वैतादन्यदसत्यकल्पमपरैरद्वैतमाख्यायते
तद् द्वैते बत पर्यवस्यति कृतं वाचाटदुर्विद्यया।
एते ते वयमेवमभ्युदयिनः कस्यापि कस्याश्चिद-
प्याकस्योज्झितमैकरस्यमुभयोरद्वैतमाचक्ष्महे॥

जान पड़ता है मानो शाङ्करवेदान्त द्वैतसे भीत और त्रस्त है, इसी कारण उसके मतमें अद्वैत द्वैतसे विलक्षण है, अतएव यह असत्कल्प है। वह विचारसे द्वैत-कोटिमें आ जाता है। आगमके मतमें अद्वैत शब्दका अर्थ है दोका नित्य सामरस्य। शङ्कर ब्रह्मको सत्य और मायाको अनिर्वचनीय कहते हैं। इसलिये वाक्यद्वारा जितना ही अद्वैतभावका उत्कर्ष दिखानेकी चेष्टा की गयी है उतना ही पूर्णभावके प्रकाशमें बाधा पड़ी है। वे मायाको सत्य नहीं मान सकते, इसीसे उनका अद्वैतभाव व्यावृत्तिमूलक (exclusive), संन्यासमूलक (based on renunciation or elimination) है, अनुवृत्ति किंवा ग्रहणमूलक (all-embracing) नहीं। माया ब्रह्मशक्ति, ब्रह्माश्रित है, पर ब्रह्म सत्य है परन्तु विचार-दृष्टिसे माया सदसद्विलक्षण है। किन्तु मायाको स्वीकार कर उसको ब्रह्ममयी, नित्या और सत्यस्वरूपा माननेसे ब्रह्म और मायाकी एकरसता हो जाती है। यह एकरसता मायाको त्यागकर या तुच्छ समझकर नहीं बल्कि उसको अपनी ही शक्ति समझनेमें है। बादलके द्वारा दृष्टिशक्तिके ढकी जानेपर हम कहते हैं कि मेघने सूर्यको ढक लिया है किन्तु यह मेघ क्या स्वयमेव सूर्यसे ही उत्पन्न नहीं है? क्या मेघ सूर्यकी ही महिमा नहीं है? सुतरां जो सूर्य है वही मेघ है, क्योंकि यह उसीकी शक्ति है। मायामेघ भी इसी प्रकार ब्रह्मसे आविर्भूत होता है, उसीके आश्रयमें आत्म-प्रकाश करता है और उसीमें विश्राम-लाभ करता है। जो माया है वही ब्रह्म है। ब्रह्म स्वयं ही मानो अपनेको अपनेद्वारा अर्थात् अपनी शक्ति—मायाके द्वारा ढक लेता है, परन्तु ढकनेपर भी पूर्णतः ढक नहीं जाता। क्योंकि वह अनावृतरूप है। अतः कहना पड़ता है कि वही अपना आवरक (ढकनेवाला) है और वही अपना उन्मीलक (खोलनेवाला) है। उसके सिवा और है ही क्या? ब्रह्म और माया एक ही वस्तु है। ब्रह्म सत्य, माया मिथ्या है, ऐसा कहनेपर प्रकारान्तरसे द्वैताभास आ ही जाता है। जिस अवस्थामें माया मिथ्या है, उस अवस्थामें ब्रह्म भी मिथ्या है, क्योंकि मायाको मिथ्या अनुभव करते ही मायाकी सत्ताका स्वीकार करना अपरिहार्य हो जाता है, और मायाको स्वीकार करनेसे ही उस अवस्थामें जो ब्रह्मबोध होता है वह मायाकल्पित वस्तु है। यह बात वेदान्तीको भी किसी-न-किसी प्रकार स्वीकार करनी ही पड़ती है। इधर मायाको सत्य समझनेमें ब्रह्म भी सत्य हो जाता है। मायाकी विचित्रताके अनुसार यह ब्रह्मबोध भी विचित्र ही होगा और वह सभी बोध समानरूपसे सत्य होंगे। उस समय जगत्‌के यावत् पदार्थ ब्रह्मरूपमें प्रतिभात होंगे। सब ही सत्य हैं, सभी विस्मय और आनन्दमय है, इस तत्त्वकी उपलब्धि होगी। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह उपनिषद्-वाक्य उस समय सार्थक हो जायगा। माया अथवा तत्प्रसूत जगत्‌का त्याग करके नहीं, वरं उसको साक्षात् ब्रह्मशक्ति और उसके विकासरूपमें अनुभव करनेसे, आलिङ्गन करनेसे ही जीवनकी सार्थकता सम्भव हो सकती है। शक्ति सत्य है, सुतरां जीव और जगत् भी सत्य है—मिथ्या नहीं है, इसलिये सभी वस्तुतः शिवमय है। यह वैचित्र्य एकका ही विलास है, भेद अभेदका ही आत्मप्रकाश है, शक्तिरूप किरणराशि शिवरूप सूर्यका अपना ही स्फुरणमात्र है, अन्य कुछ भी नहीं। भगवान् शङ्कराचार्यके 'तमः प्रकाशवद्विरुद्धयोः' पदकी यथार्थता स्वीकार करके भी यह बात कही जा सकती है कि प्रकाशसे ही घर्षणके द्वारा अन्धकारका आविर्भाव होता है और अन्धकार ही घर्षणके द्वारा प्रकाशमें पर्यवसित होता है। दोनों ही नित्य संयुक्त हैं, स्वरूपमें समरस-भावापन्न हैं। घर्षणसे प्राधान्यका विकास होता है। इस प्राधान्यके अनुसार व्यपदेश होता है। आगमशास्त्रका यही सिद्धान्त है। पुरुषसे प्रकृति किंवा प्रकृतिसे पुरुष एकान्ततः पृथक् नहीं हैं, हो भी नहीं सकते। जो ऐसा करते हैं वह केवल विचार (logical abstraction) के द्वारा तत्त्वविश्लेषण मात्र करते हैं। वस्तुतः सांख्यके प्रकृति-

पुरुष-विवेकका अर्थ भी पृथक्करण नहीं है, इसके प्रमाण सांख्यकारिका और योगभाष्यमें स्पष्ट पाये जाते हैं। इसकी आलोचना किसी दूसरे समय की जा सकती है। स्पन्दशास्त्रकार कहते हैं—

इति वा यस्य संवित्तिः क्रीडात्वेनाखिलं जगत्।
स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः॥

इसका तात्पर्य यही है कि जीवन्मुक्त जगत्भरको ही आत्मक्रीडा अर्थात् आत्मशक्तिके विलासरूपमें देखते हैं, उनकी योगावस्था कभी भग्न नहीं होती। भेद और अभेद, व्युत्थान और निरोध दोनोंके अन्दर साम्यदर्शन होनेपर और कोई आशङ्का नहीं रह जाती। क्योंकि दोनों एकहीके दो प्रकार हैं। इसीको शिवशक्तिका सामरस्य या चिदानन्दकी प्राप्ति कहते हैं। यही ईश्वराद्वयवादकी विशिष्टता है।

६. प्रत्यभिज्ञादर्शनमें ज्ञान और भक्तिका सामञ्जस्य—इस अद्वयवादमें एक और विशेषता यह है कि यह न तो शुष्क ज्ञानमार्ग है और न ज्ञानहीन भक्तिमार्ग ही है— इसमें ज्ञान और भक्ति दोनोंका सामञ्जस्य है। शङ्कर-द्वारा प्रवर्तित अद्वैतवादकी चरमावस्थामें भक्तिका स्थान नहीं है। शङ्करके मतसे भक्ति द्वैतमूलक है, इसी कारण अद्वैतावस्थामें ज्ञानाविर्भावमें इसकी सत्ता नहीं रहती। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह साधनरूपा अज्ञान-मूलक भक्ति है। परन्तु जो अद्वैत-भक्तिरूप पदार्थ है, वह शास्त्र और महात्माओंके अनुभवसे जाना जा सकता है। यह नित्य-पदार्थ है। साधारणतः जिसे हम मोक्ष कहते हैं वह वस्तुतः इस नित्यसिद्ध ज्ञान-भक्तिका ही आवरणभङ्ग-जनित समुन्मेष मात्र है। त्रिकदर्शनमें इसीको चिदानन्दलाभ अथवा पूर्णाहन्ता चमत्काररूपसे अभिहित किया गया है। चिदंश ज्ञानभाव है और आनन्दांश भक्ति है। परम तत्त्व स्वातन्त्र्यमय है; स्वतन्त्रता ही पूर्ण शक्ति है; इसी कारण इस मतमें चरमावस्थामें भी शिवशक्तिका सामरस्य ही माना गया है। शक्तिके अभावकी अथवा उसके अवास्तवत्वकी कल्पना कभी नहीं की गयी। वस्तुतः शिव और शक्ति अभिन्न हैं, दोनोंमें भेद नहीं है और हो भी नहीं सकता। परन्तु विश्वदृष्टिसे सृष्टि और संहारकी, किंवा उन्मेष और निमेषकी ओर लक्ष्य देनेसे शक्ति-प्रधान अथवा शिवप्रधानरूपसे केवल एक ही परम तत्त्वका निर्देश किया जाता है। परन्तु शक्तिप्रधान अवस्थामें भी शिवभाव रहता है, क्योंकि प्रकाशमय शिवभावमें ही विमर्शात्मक शक्तिका विकासस्वरूप विश्व प्रतिबिम्बित होता है, और शिवप्रधान अवस्थामें भी शक्तिभाव रहता है, विश्वबीजशक्ति उस समय प्रकाशमें विलीन रहती है और इन दोनोंकी सामरस्य अवस्थाको, जहाँ शिव और शक्ति दोनों साम्यको प्राप्त हैं, न शिव कहा जाता है और न शक्ति ही कहा जाता है; परन्तु दोनों ही भाव वहाँ एकाकारमें विद्यमान रहते हैं। यही परम भाव है। हमारे दर्शनोंमें इसको सर्वभावकी प्रतिष्ठाके रूपमें वर्णन किया गया है। यहाँ चिदंश शिवभाव और आनन्दांश शक्ति-भाव परस्पर मिले हुए हैं, इसी कारण यह ज्ञान-भक्तिकी सामञ्जस्य-अवस्था है। यह याद रखना चाहिये कि पूर्वोक्त शिव और शक्ति तथा यह सामरस्य दोनों ही नित्य हैं, केवल एक ही पदार्थकी दो दिशाएँ हैं।

कहा जाता है कि षट्पञ्चरिकास्तोत्र श्रीशङ्कराचार्यका रचा हुआ है। उसमें है—

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥

यदि यह श्लोक वस्तुतः शङ्करका ही है तो यह कहना पड़ेगा कि वह अद्वैतभक्तिका प्रचार करते हैं। 'सत्यपि भेदापगमे' इस वाक्यांशकी योजनाके द्वारा समझा जा सकता है कि उनका अभिप्राय, भेद दूर हो जानेपर भी 'मैं तुम्हारा हूँ' यह कहनेका है। सुतरां अभेद-अवस्थामें भी 'मैं तुम्हारा हूँ' यह भाव रह सकता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह दास्यात्मक भक्तिभाव ही है। यद्यपि ज्ञानके द्वारा 'तुम और मैं' का वास्तविक भेद मिट जाता है तथापि पराभक्तिके प्रभावसे उस अद्वैत-समुद्रमें भी कल्पित भाव द्वैतकी लहरी उठती है। यह द्वैत वस्तुतः द्वैत नहीं है इसलिये इस अवस्थाकी भक्तिको अद्वैत-भक्ति कहना असङ्गत नहीं है। यही नित्यभाव है।

बोधसारमें (पृ० २००-२०१) नरहरि कहते हैं—

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राक् प्राप्ते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्॥
जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम्।
मित्रयोरिव दम्पत्योर्जीवात्मपरमात्मनोः॥

अद्वैत-भक्ति क्या है तथा उसके स्वरूपकी प्राप्ति कैसे होती है, यह विवरण यहाँ प्रयोजनीय नहीं है। नारायण-

तीर्थ अपनी भक्तिचन्द्रिका नाम शाण्डिल्यसूत्रके भाष्यमें इस भक्तिकी विस्तारपूर्वक व्याख्या करते हैं तथा अन्य भी अनेक स्थलोंमें इसका प्रसङ्ग मिलता है। त्रिपुरारहस्य ज्ञानखण्ड (२० वाँ अध्याय श्लोक ३३-३४) में है— प्रकाशसार परम तत्त्वको अपरोक्षरूपमें आत्माभिन्न-भावमें साक्षात्कार करनेपर भी कोई-कोई परम भक्त प्रेम-पूर्वक उसकी सेवा किया करते हैं। सेवा करनेके लिये सेव्य-सेवकभाव होना आवश्यक है, अद्वयावस्थामें यह भाव किसप्रकार सम्भव हो सकता है? इसीलिये कहा गया है कि भेदभाव अवलम्बन करके सेवा की जाती है। निश्चय ही यह आहार्य-भेद है, वास्तविक भेद नहीं है। जहाँ परम तत्त्व साम्यस्वरूप है वहाँ तो भेद है ही नहीं, वह तो सब अवस्थाओंका सन्धिस्थल है। परन्तु इस भेदके आहरण करनेका प्रयोजन क्या है? प्रयोजन और कुछ भी नहीं है, है केवल रुचिभेद, 'स्वभावका स्वरस'—

यत् (अर्थात् परं पदं प्रतिमात्मकम्) सुभक्तैरतिशयप्रीत्या कैतववर्जनात् ॥३३॥
स्वभावस्य स्वरसतो ज्ञात्वाऽपि स्वाद्वयं पदम्।
विभेदभावमाहृत्य सेव्यतेऽत्यन्ततत्परैः ॥३४॥

इससे ज्ञात होता है कि ज्ञानके अनन्तर भी भक्ति रह सकती है। यह कैतवहीन होनेके कारण सुभक्ति है। अज्ञानमूलक द्वैत या साधनभक्तिके समान स्वार्थानुसन्धा-नात्मिका नहीं है। अद्वैत-भक्तिके पक्षमें भी एक भेद आवश्यक है, यह कल्पित और ज्ञानपूर्वक होती है। परन्तु एक बात है, ज्ञानके बाद यह अद्वैतभक्ति सभीके होती हो, ऐसी बात नहीं है। जिसका हृदय स्वभावतः भक्ति-प्रवण है उसीके अद्वैतभक्तिका उदय होता है, ज्ञानार्थीको ऐसा नहीं होता।

किन्तु उदित हो या न हो, अन्तमें ज्ञान और भक्ति एकाकार हो ही जाते हैं। जिसे पूर्णाहन्ता या स्वात्म-चमत्कार कहा जाता है वही ज्ञानकी सीमा और वही प्रेमकी भी पराकाष्ठा है। इसीलिये यह समन्वय-भूमि है। यहींसे दोनों स्रोत प्रवाहित होते हैं।

त्रिकदर्शनमें दास्यात्मक भक्ति ही स्वीकार की गयी है। भगवान् प्रभु, पिता अथवा गुरु हैं, भक्त दास, पुत्र अथवा शिष्य है। केवल त्रिकदर्शनमें ही नहीं, शैवागम मात्रमें ही इसी भावकी प्रधानता दीख पड़ती है। वीर शैवादि-मतमें भी यही सिद्धान्त स्वीकृत देखा जाता है।* शाक्तागममें भी मूलतः इस विषयमें कोई भेद नहीं दिखायी देता। हाँ, पितृभावकी जगह उसमें मातृभावकी कल्पना की जाती है, यही विशेषता है। परन्तु इस भावत्रयीमें दास्यभाव ही मूलभूत है, अतः इसीका प्राधान्य बतलाया गया है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, भक्तिका मूलतत्त्व ही दास्यभावाश्रित है, इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। शान्त-भक्ति भक्तिकी एक स्फुरण-अवस्थामात्र है। किञ्चित् विकसित होते ही उसपर दास्य-भावका रंग चढ़ जाता है। अद्वैतसे द्वैतकी तरङ्ग इसी भावमें उठती है। फिर चाहे कितना ही विकास हो, यह रंग नहीं छूटता। यद्यपि गौडीय वैष्णव प्रभृति सम्प्रदायोंमें सख्य, वात्सल्य और माधुर्यभाव भी माने गये हैं तथापि यह सत्य है कि सभी भावोंके मूलमें यह दास्यभाव अनुस्यूत है। भूत-सृष्टिमें जिसप्रकार वेदान्तके अनुसार आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि इत्यादि क्रमसे पृथिवीका आविर्भाव होता है, रसविकासमें भी इसी प्रकार शान्तसे दास्य, दास्यसे सख्य इत्यादि क्रमसे उत्तरोत्तर रसपुष्टि होती है। आकाशका अपना गुण शब्द है; वायुके उत्पन्न होनेपर शब्द-गुणकी तो प्राप्ति होती है, इसके अतिरिक्त उसका अपना गुण स्पर्श भी विकसित हो उठता है। इसप्रकार क्रमशः एक-एक गुण बढ़ते रहते हैं और पूर्वगुण क्रमशः अनुवृत्त होते जाते हैं। इसीलिये पृथिवीमें पाँचों भूतोंके गुण हैं; इनमें शब्दादि चार उसके समागत सामान्य गुण हैं, गन्ध उसका विशेष गुण है। इसी प्रकार भावके क्रमविकासके विषयमें भी समझना चाहिये। शान्त भावका विशेष गुण, निष्ठा दास्यभावमें अनुवृत्त होती है और उसका अपना गुण सेवा भी उस समय विकसित हो उठता है। सख्यमें शान्त और दास्य दोनोंके गुण अनुवृत्त होते हैं तथा अपने गुण असङ्कोचका भी विकास होता है। इसी प्रकार माधुर्यमें सभी रसोंके गुण अर्थात् निष्ठा, सेवा, असङ्कोच, लालन वर्तमान रहते हैं और इनके अतिरिक्त उसका विशेष गुण आत्म-समर्पण भी स्फूर्त हो उठता है।

त्रिकदर्शन दास्यात्मक भक्तिको मानकर भक्तिके मूल-तत्त्वको ही मान लेता है। पर केवल मूलको ही मानता हो सो बात नहीं, भक्तिके चरम फल माधुर्य-प्रेमको भी आभासरूपमें स्वीकार करता है। परन्तु याद रखना चाहिये

* मायिदेवकृत 'अनुभवसूत्र' देखिये।

कि यह भक्ति अज्ञानमूलक द्वैतभावसे उत्पन्न नहीं है। यह परिस्फुटित अद्वैतकी अवस्था है और एक हिसाबसे यह परिस्फुटित द्वैत-अवस्था भी है—परन्तु यह अलौकिक 'द्वैत' है, यही विशेषता है। इसीलिये यहाँ एक ही साथ ज्ञान और भक्तिका, चित् और आनन्दका समावेश दिखलायी पड़ता है। इसीका नाम शिवशक्तिका सामरस्य है। यह रसतत्त्व ही ऐक्य और वैचित्र्यका पूर्ण सामञ्जस्य है। यह रस 'ब्रह्मानन्द' से विलक्षण एवं विशिष्ट है। ब्रह्मानन्दमें आस्वादन नहीं, चर्वण नहीं, अहं-भाव नहीं, त्रिपुटी नहीं, परन्तु रसमें सभी कुछ है पर अलौकिक है। पूर्णाहन्ताका चमत्कार ही रसबोध है—इसमें अभेदमें भी अलौकिक भेद है, नहीं तो आस्वादन ही नहीं हो सकता। परन्तु यह भेद लौकिक भेदके समान नहीं है, यह वैकल्पिकमात्र है। अभिनवगुप्ताचार्यने नाट्यशास्त्रकी अभिनवभारती नामक टीकामें रसतत्त्वकी जो प्रत्यभिज्ञा-दर्शनानुसार आलोचना की है उसमें रसका स्वरूप बहुत कुछ परिष्कृत हो गया है।

प्रश्न हो सकता है कि यह रस केवल शान्तरस है अथवा दास्य भी है? इस प्रश्नका समाधान, पहले जो कुछ कहा जा चुका है, उससे हो जा सकता है। भक्तिके मूलमें दास्यभाव रहेगा ही। शान्तभावको भक्तिका बीज-भाव कहा जा सकता है सही, किन्तु वह परिस्फुट भक्ति नहीं है। दास्यबोध जबतक नहीं हो जाता, अपनेको एक अनन्त वस्तुके साथ अभिन्न जानकर भी जबतक तदाश्रित-रूपसे बोध नहीं हो जाता, तबतक भक्तिराज्यका आरम्भ ही नहीं होता। शान्तभाव इसीका सूत्रपात करता है। किन्तु यह अनन्त वस्तु अपने आत्मासे भिन्न और कुछ नहीं है। इसीसे जिस ब्रह्मभावसे शान्तरस और तदनन्तर दास्यादिका आविर्भाव होता है, शान्त अथवा दास्यादिमें वही ब्रह्मभाव अनुवृत्त रहता है—परन्तु उसीके ऊपर शुद्ध अप्राकृत सत्त्वकी लहर क्रीड़ा करती है।

अन्धकार दबा रहता है, आलोकके वक्षःस्थलपर आलोककी ही तरङ्गें नाचा करती हैं। यह तरङ्ग ही 'उल्लास' या रस है। इसका वैचित्र्य ही लीलाविस्तार है। यह तरङ्ग शुद्धस्वरूपमें सदा वर्तमान रहती है, इसीलिये वैष्णवोंके समान शैव भी नित्यलीला मानते हैं। इसीलिये क्षेमराजने अपनी स्तवचिन्तामणिटीका पृ० ६०-६१ में शिवको—

'कैलासादिषु नित्यप्रवर्तमानप्रमोदनिर्भरक्रीडामयं लोकोत्तर-प्रभावं विस्तारयित्रे'

—कहा है। परन्तु कोई-कोई पुरुष, विशेषतः आलङ्कारिक-गण भक्तिको रसस्वरूप नहीं मानते। काव्यप्रकाशकार मम्मट, रसगंगाधरके कर्त्ता पण्डितराज जगन्नाथ प्रभृति आलङ्कारिक-गणोंने भक्तिको भावकोटिमें ही डाल दिया है। परन्तु इससे कोई विरोध नहीं आता। साहित्यसारकर्त्ता अच्युत-रायने दिखलाया है कि गीताके 'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्' से 'यो मद्भक्तः स मे प्रियः' पर्यन्तके वाक्योंसे जाना जाता है कि मुख्य भक्ति जीवन्मुक्तिका ही नामान्तर है। जीवन्मुक्ति-विवेकमें विद्यारण्य स्वामी भी यही बात कहते हैं—

'जीवन्मुक्तः स्थितप्रज्ञो विष्णुभक्तश्च कथ्यते।'

इस दृष्टिसे भक्ति कुछ-कुछ शान्तरसके अन्तर्गत हो जाती है। इसीलिये आलङ्कारिक लोग भक्तिको स्वतन्त्र रस नहीं मानना चाहते। अर्थात् मुख्य भक्तिको रस माननेमें आलङ्कारिक लोग असम्मत नहीं हैं किन्तु वे उसे शान्त-रससे पृथक् माननेका कोई कारण नहीं देखते। दूसरी ओर भक्तगण जो कुछ कहते हैं वह भी सत्य है। वे कहते हैं कि भक्ति जब अद्वैत-आत्मतत्त्व-विषयक वृत्ति-विशेष है तो उसके रसत्वका अस्वीकार नहीं किया जा सकता। साहित्यसारके टीकाकारने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि भक्ति मुख्य और गौण, अथवा परा और अपरा-भेदसे दो प्रकारकी है। अलङ्कारशास्त्रमें मुख्य भक्ति शान्तरसके अन्तर्गत है और गौणभक्ति भावमात्र है। भक्तिशास्त्रमें शान्तरस स्वयं ही भक्तिविशेष है और मुख्यभक्ति तो रसस्वरूपा है।

शाण्डिल्य और नारदने अपने भक्तिसूत्रोंमें, मधुसूदन सरस्वतीने भक्तिरसायनमें और श्रीरूपगोस्वामीने भक्ति-रसामृतसिन्धुमें भक्तिके रसत्वका उपपादन किया है। यहाँ उन सबकी आलोचना आवश्यक नहीं है। यहाँ केवल इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि प्रत्यभिज्ञादर्शनके आचार्योंने भक्तिको रसके रूपमें स्वीकार कर अध्यात्मराज्यके एक गम्भीर तत्त्वको प्रकट कर दिया है। उत्पलाचार्य अपनी शिवस्तोत्रावलीके प्रथम स्तोत्रमें कहते हैं—

जयन्ति भक्तिपीयूषरसासववरोन्मदाः।
अद्वितीया अपि सदा त्वद्द्वितीया अपि प्रभो॥

पराभक्तिकी यही विशेषता है कि इस अवस्थामें

दूसरेके न होते हुए भी दूसरा रहता है। नदियाके श्री-गौराङ्ग महाप्रभुने इसीलिये अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्वका प्रचार किया। जो समझते हैं कि दो होनेहीसे मिथ्या हो जायगा, उन्होंने पूर्ण सत्यके केवल एक देश मात्रको देखा है। अज्ञानके नष्ट हो जानेपर भी, ऐक्यस्फुरण होनेपर भी उस ऐक्यकी गोदमें दो रह सकते हैं, यद्यपि वे दोनों ही एकका ही शुद्धभावमें आत्मप्रसारण है।

नाथ वेद्यक्षये केन न दृश्योऽस्येकक: स्थितः।
वेद्यवेदकसंक्षोभेऽप्यसि भक्तैः सुदर्शनः॥

अन्तर्मुखावस्थामें कुछ भी जाननेयोग्य न रह जाने-पर भी एकके रूपमें जिसका स्फुरण होता है, ज्ञेय और ज्ञाताके इस संक्षोभमें—इस वैचित्र्यमें भी भक्तगण समावेशकी अधिकताके कारण उसीको देखते हैं। जो विश्वातीत हैं वही तो विश्वात्मक भी हैं और दोनों समकालमें ही हैं। इसीलिये ज्ञान और भक्ति जहाँ समरस हैं, वहाँ विश्वातीत और विश्वात्मक समभावमें ही प्रकाश-मान हैं। यहीं द्वैताद्वैतका सामञ्जस्य होता है। यही ईश्वराद्वयवादकी विशिष्टता है।

७ शङ्कर और आगम-सम्प्रदाय-शङ्करद्वारा प्रचारित ब्रह्म-वादके साथ ईश्वराद्वयवादका जो भेद दिखलाया गया है इससे कोई यह न समझे कि शङ्कराचार्य ईश्वराद्वयवाद-को नहीं मानते थे। वस्तुतः शङ्कराचार्य प्रत्यभिज्ञासिद्धान्त-को मानते थे तथा अनेकों स्थलोंपर उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें इस बातको घोषित किया है। इसकी आलोचना पीछे की जायगी। साधारणतः संन्यासी-सम्प्रदायमें जो मत प्रचलित है तथा जिसका अवलम्बन कर अद्वैत-प्रस्थानके ग्रन्थ आदि रचे गये हैं, आजकल एकमात्र उसीको शङ्कर-का मत समझा जाता है। किन्तु उसके साथ अन्यान्य मतोंका भी सम्बन्ध था, इसे एकबारगी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हमारा खयाल है कि आगम और निगम दोनों मार्गोंके ही सम्प्रदायप्रवर्तक बनकर शङ्कराचार्यने जगद्-गुरु-पदकी सार्थकता सम्पादन की थी। ज्ञान और उपासना—संन्यास और गार्हस्थ्य—दोनों दिशाओंमें ही उनकी प्रचारशक्ति अव्याहत थी। महापुरुषोंके उपदेश देनेकी यही सनातन-पद्धति है। बुद्धदेव, महावीर प्रभृति धर्मप्रचारकगण सभी न्यूनाधिकरूपमें इसी पद्धतिका अनुसरण कर गये हैं।

उपलब्ध ग्रन्थावलीसे कई शङ्कराचार्योंके विषयमें पता लगता है परन्तु इस विषयकी आलोचना यहाँ अप्रासङ्गिक है। तन्त्रशास्त्रमें भी एकाधिक शङ्कराचार्यका परिचय प्राप्त होता है या नहीं, यह एक स्वतन्त्र विषय है। तथापि अनेकों प्रकारकी ऐतिहासिक आलोचनासे यही अनुमान होता है कि ब्रह्मवादी शङ्कर आगमशास्त्रके ज्ञाता थे। केवल यही बात नहीं, बल्कि उन्होंने अनेकों आगम-ग्रन्थोंकी रचना और व्याख्या की थी। इसी प्रकारकी जनश्रुति भी है।

प्रत्यभिज्ञामतके साथ त्रिपुरासिद्धान्तका अथवा श्रीविद्याका अति घनिष्ट सम्बन्ध है। शङ्कर इस श्रीविद्याके एकनिष्ठ साधक थे। शृङ्गेरीमठमें आज भी उनका श्रीचक्र स्थापित है, आज भी वहाँ उसकी उपासना होती है। शङ्कराचार्यके परम गुरु गौडपादाचार्यने श्रीविद्याका प्रतिपादन करनेके लिये सुभगोदय नामक ग्रन्थकी रचना की थी। इसके ऊपर शङ्करकी टीका है।* और सम्भवतः इसीके अनुकरणमें उन्होंने अत्यन्त गम्भीर रहस्यपूर्ण सौन्दर्यलहरी नामक स्तोत्र रचा था।†

* सुभगोदयके ऊपर माधवाचार्यकी भी व्याख्या है। टीका भी दो प्रकारकी पायी जाती है। लक्ष्मीधर सौन्दर्यलहरीकी व्याख्यामें केवल शाङ्करी-टीकाका ही उल्लेख करते हैं, सम्भवतः द्वितीय टीका उनके हस्तगत नहीं हुई थी। पण्डित महादेव शास्त्री लक्ष्मीधरका समय चतुर्दश शताब्दीके प्रथमांशमें निर्णय करते हैं। किन्तु यह सिद्धान्त निर्विवाद नहीं है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि लक्ष्मीधर भास्करराजके बहुत ही पूर्व हो गये हैं। हमारी समझमें उन्हें माधवाचार्यसे परवर्ती मानना चाहिये।

† कोई-कोई सौन्दर्यलहरीके शङ्करकी रचना होनेपर विश्वास नहीं करते। परन्तु हमारी समझमें यह शङ्कराचार्यकी ही अपनी रचना है। पण्डित महादेव शास्त्रीने इस विषयमें जो कुछ कहा है वह ध्यान देनेयोग्य है—

'The fact that Sri Sankaracharya was a reformer in his days of the Shakta Cult as of various others, the very important part still played by Sakti Worship in all the Advait Mutts, the identity of the soul and the Goddess spoken of in verse 22, the reference to Vedanta in verse 84

इस ग्रन्थके ऊपर सुरेश्वराचार्यकृत टीका है, शृङ्गेरी-मठमें इसी टीकाकी एक अति प्राचीन हस्तलिखित प्रति वर्तमान है।* प्रपञ्चसार-ग्रन्थ शङ्करकृत माना जाता है। इसके ऊपर पद्मपादाचार्यकी टीका है। उत्तर और दक्षिण-भारतमें विभिन्न समयमें लिखित इस टीकाकी दो हस्त-लिखित प्रतियाँ हमारे दृष्टिगोचर हुई हैं। सूतसंहिता और पराशरसंहिताकी टीकामें माधवाचार्यने प्रपञ्चसारको जगद्-गुरु शङ्कराचार्यकृत माना है। शारदातिलककी टीकामें राघवभट्ट भी यही कहते हैं। सम्मोहनतन्त्रमें शङ्कर और उनके चार शिष्योंका वर्णन है। यह सब देखकर शङ्करको शाक्तागमके, विशेषतः त्रिपुरागमके एक अति प्रधान आचार्य मानना ही होगा।

उनका दक्षिणामूर्तिस्तोत्र और सुरेश्वराचार्यकृत उस-पर वार्तिक देखकर यह बात और भी स्पष्टरूपेण समझी जा सकती है। यहाँ संक्षेपमें इस बातको दिखलाया जाता है। 'दक्षिणामूर्ति' त्रिपुरा-सम्प्रदायका शब्द है। 'दक्षिणामूर्ति-संहिता,' 'दक्षिणामूर्ति-उपनिषद्' प्रभृति उक्त सम्प्रदायके मतका प्रतिपादन करनेवाले प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। सुतरां, गुरुतत्त्व किंवा स्वात्मदेवताका दक्षिणा-मूर्तिके आकारमें वर्णन करनेसे शङ्करका आगमानुराग प्रमाणित होता है। इस स्तोत्रके प्रथम श्लोकमें कहा गया है कि ज्ञानीकी दृष्टिमें विश्व स्वात्मगत तथा दर्पणमें प्रतिबिम्बित नगरवत् है। अर्थात् वस्तुतः यह विश्व अपने अन्तर्गत है, परन्तु मायासे बहिर्वत् जान पड़ता है। प्रबोधकालमें, मायाके नष्ट होनेपर पुनः यह अपने अद्वय आत्मस्वरूपमें ही साक्षात्कृत होता है। यहाँ विश्व स्वीकृत होता है; परन्तु वह चिन्मय है, अपने स्वातन्त्र्यके विलास एवं आत्मभित्तिस्थ चित्ररूपमें अङ्गीकृत है, जडरूपमें नहीं। द्वितीय श्लोकमें कहा है कि यह विश्व आविर्भावके पूर्व निर्विकल्पावस्थामें वर्तमान रहता है, यह स्वगतादि भेद-कल्पना-विहीन शक्तिमात्र है। जिसप्रकार अङ्कुर उद्गमसे पूर्व बीजरूपमें रहता है, इसकी भी ठीक वही अवस्था है। पीछे मायाके द्वारा देश और कालके कल्पित होनेपर वह नाना प्रकारके विचित्र आकारोंमें प्रतिभात होता है। जो मायावीके समान, महायोगीके समान, केवल स्वेच्छासे इस वैचित्र्यमय विश्वका विजृम्भण करते हैं वही आत्मदेव हैं, गुरुदेव हैं। यहाँ यह जो मायावी और योगीके दृष्टान्त दिये गये हैं, प्रत्यभिज्ञा और त्रिपुरा-दर्शनमें भी ठीक यही दोनों दृष्टान्त हैं तथा जगत्‌की सृष्टि इच्छाशक्तिमूलक—उपादाननिरपेक्ष—है, इसका विचार किया गया है।†

the peculiar style of the hymn, and an impartial reference to, and an attempt to unify the peculiar doctrines of, the mutually opposed sects of Samaya Marga and Koula Marga, and lastly, the unanimous testimony of such writers as Lakshmidhara and Bhaskararaj--all these incline me to believe that the hymn is a genuine work of Sri Sankaracharya.'

--Preface to Soundarya-Lahari
(Mysore Oriental Series) p. vii.

* काशीवासी पण्डित श्रीयुत सीताराम शास्त्री दीर्घकालतक शृङ्गेरीमठमें रहे थे। उन्होंने वहाँ रहनेके समय सुरेश्वरकी टीकाको देखा था। उनके द्वारा इस टीकाके विषयमें हमने सुना था।

प्रत्यभिज्ञाकारिकामें उत्पलदेव कहते हैं—

चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद् बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्॥

अर्थात् सृष्टि-शब्दका अभिप्राय है अन्तःस्थित पदार्थका बहिःप्रकाश। सभी पदार्थ चिदात्माके अन्तःस्थित हैं, केवल इच्छावश कभी-कभी कुछ-कुछ बहिःप्रकाशित होते हैं। यह बहिःप्रकाशन ही सृष्टिशब्दका अर्थ है। सुतरां, कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इसप्रकारकी सृष्टिमें उपादानकी अपेक्षा नहीं है। इच्छाशक्तिके अवलम्बनसे जब वस्तु-निर्माण होता है तब पूर्वसिद्ध परमाणुका प्रयोजन नहीं रहता। जिन्होंने योगीके सृष्टि-व्यापारको प्रत्यक्ष किया है वे इस दृष्टान्तकी सार्थकता सहज ही जान सकते हैं। कोई-कोई यहाँ कह सकते हैं कि योगीकी सृष्टि भी परमाणुसापेक्ष है—योगी जब इच्छाशक्तिका प्रयोग करते हैं तब उनकी प्रेरणासे समस्त परमाणु स्वयमेव आकर एकत्र हो जाते हैं। परन्तु अभिनवगुप्त उक्त कारिकाकी

† प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके सिद्धान्तकी आलोचना करते समय इन विषयोंका विस्तृत विवेचन किया जा सकता है।

व्याख्या करते हुए कहते हैं कि इसप्रकारकी कल्पनाका कोई मूल नहीं—

नहि एवं वक्तुं शक्यम्—परमाणवो योगीच्छया झटिति संघटिताः कार्यमारप्स्यन्ते इति । (ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, पृ० १३८)

इसका कारण यही है कि परमाणुवादी साक्षात्‌रूपसे परमाणुओंद्वारा स्थूल वस्तुकी उत्पत्ति स्वीकार नहीं करते । वे मानते हैं कि बीचमें अवान्तर अवयवोंका व्यवधान होता है । घट-निर्माण करते समय केवल परमाणुसमूहको विशिष्ट संस्थानमें अर्थात् घटाकारमें सन्निवेशित करना साक्षात्‌रूपसे सम्भव नहीं । परमाणुसे द्वयणुक, द्वयणुकके सम्मिलनसे त्रसरेणु—इसप्रकार क्रमशः स्थूलतर कार्यकी उत्पत्ति होती है । फिर कपाल निर्मित होनेके बाद दो कपालोंके परस्पर संयोगसे घटकी सृष्टि होती है। केवल यही बात नहीं । लौकिक सृष्टिमें अथवा उपादान-सापेक्ष सृष्टिमें निर्दिष्ट सहकारीका आश्रय आवश्यक है, शिक्षा और अभ्यासका प्रकर्ष आवश्यक है । नहीं तो वस्तु-निर्माण सम्भव नहीं है। परन्तु योगीकी सृष्टिमें इन सबकी कुछ भी अपेक्षा नहीं होती । सुतरां, यह कल्पना व्यर्थ है कि योगी भी पूर्वसिद्ध परमाणुका अवलम्बन करके सृष्टि करता है ।* योगिज्ञानकी ही ऐसी महिमा है कि आभास-वैचित्र्यमय पदार्थसमूह इच्छामात्रसे ही प्रकाशित होते हैं । असल बात यह है कि संवित् स्वातन्त्र्यमयी (free) है, जब उसमें इच्छाका उदय होता है तब अप्रतिघातरूप इच्छाके कारण अन्तःस्थित अर्थात् ज्ञानरूपमें अथवा आत्माके साथ अभिन्नरूपमें स्थित पदार्थसमूह ज्ञेयरूपमें अवभासित होते हैं । जो 'अहं' रूपमें द्रष्टाके साथ एकाकार था वही 'इदं' रूपमें पृथक्-भावमें परिस्फुट हो उठता है । कल्पित प्रमाता अर्थात् देहादिमें तादात्म्यबोधयुक्त द्रष्टाके समीप—परिच्छिन्न संवित्‌के सामने—यह पदार्थ बाह्य प्रतीत होता है ।

अतएव इस विश्वरूप आभास-वैचित्र्यका मूल चिदात्माकी स्वातन्त्र्य-शक्ति है । सुरेश्वराचार्य उक्त द्वितीय श्लोकके वार्तिकमें भी इसी प्रकार इच्छाशक्तिके उपादान-निरपेक्ष सृष्टि-सामर्थ्यका वर्णन करते हैं । वे दिखलाते हैं कि विश्वामित्र प्रभृति परिपक्वसमाधि ऋषियोंने उपादान, उपकरण और प्रयोजनके बिना भी केवल स्वेच्छामात्रसे सब प्रकारकी भोगसामग्रीसे परिपूर्ण स्वर्गलोककी सृष्टि की थी । यही योगि-सृष्टिका दृष्टान्त है । ईश्वर-सृष्टि भी इसी प्रकारकी है, क्योंकि वे स्वतन्त्र और सर्वशक्तिमान् (वार्तिक ४८) हैं ।† वे और भी कहते हैं कि ईश्वर कारक-व्यापारके बिना कर्ता, तथा प्रमाण-व्यापारके बिना सर्वज्ञ हैं, क्योंकि वे स्वप्रकाश हैं । उनके ज्ञातृत्व, कर्तृत्व प्रभृति उनकी स्वातन्त्र्यशक्तिके ही नामान्तर हैं । उनकी इच्छाशक्ति स्वच्छन्दकारितास्वरूप है, वह अन्यनिरपेक्ष तथा अप्रतिहत है । इसी इच्छाशक्तिके बलसे वे 'कर्तुम्' 'अकर्तुम्' और 'अन्यथा कर्त्तुम्' अर्थात् प्रवर्तन, निवर्तन और परिवर्तन करनेमें समर्थ हैं, यही स्वतन्त्रता है । योगी लोग इस इच्छाशक्तिके स्फुरणको ही 'साम्राज्य' कहते हैं—(दशम श्लोककी २१ वीं कारिका देखिये) । 'साम्राज्य' सर्वत्र आत्मभावका विकास है, जिनकी समाधि परिपक्व हो गयी है वही इसे प्राप्त करते हैं । यही परमैश्वर्य है—अन्यान्य विभूतियाँ इसकी तुलनामें कुछ भी नहीं हैं । आत्मा महेश्वर है, इसलिये वार्तिक (१० । ६) में सुरेश्वर कहते हैं—

> यदीयैश्वर्यविप्रुड्भिर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
> ऐश्वर्यवन्तो भासन्ते स एवात्मा सदाशिवः ॥

आगेकी कारिकामें है कि पूर्णाहंता-लाभ होनेपर यह ऐश्वर्य स्वयं विकसित होता है, इसके लिये स्वतन्त्र चेष्टा नहीं करनी पड़ती । अग्निके साथ-साथ तापकी प्राप्तिके समान पृथक् रूपसे कोई यत्न नहीं करना पड़ता । स्तोत्रके दशम श्लोकमें शङ्कर स्वयं भी इस सर्वात्मता अथवा पूर्णाहंताका 'महाविभूति' के नामसे वर्णन करते हैं । यही अव्याहत ऐश्वर्य है, अणिमादि अष्टसिद्धियाँ इसका परिणाममात्र हैं । यह 'अहं' निर्विकल्प है, सुतरां अपरिच्छिन्न और पूर्ण है । यह न तो शुद्ध है और न मलिन है (४ । ३१) । नवम और दशम उल्लासके वार्तिक

* माधवाचार्य सर्वदर्शनसंग्रहमें 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' शीर्षक प्रस्तावमें (आनन्दाश्रमसंस्करण पृ० ७८) 'ये तु वर्णयन्ति नोपादानं विना' इत्यादि वाक्यद्वारा इस मतका उल्लेख करते हुए खण्डन करते हैं, अर्थात् जो लोग कहते हैं कि योगीकी इच्छासे परमाणुओंके आकृष्ट होनेसे स्थूल वस्तु निर्मित होती है, उनके सिद्धान्तको वे असङ्गत प्रतिपादन करते हैं ।

† ईश्वरोऽनन्तशक्तित्वात् स्वतन्त्रोऽन्यानपेक्ष्यतः ।
स्वेच्छामात्रेण सकलं सृजत्यवति हन्ति च ॥

(६।२, ९।४, १०।१०) में परमेश्वरकी मूर्तिको छत्तीस तत्त्वात्मक अर्थात् विश्वात्मक बतलाया गया है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ये छत्तीस तत्त्व प्रत्यभिज्ञा और त्रिपुरा-दर्शनका सुपरिचित सिद्धान्त है। इन सब-पर विचार करनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि शङ्कर और सुरेश्वर इस ग्रन्थमें साक्षात्‌रूपसे आगमका ही अनुसरण करके चलते हैं*।

पहले जो सृष्टिमें उपादान-निरपेक्षताकी बात कही गयी है, शाङ्करवेदान्तमें यही अभिन्ननिमित्तोपादानवादके नामसे परिचित है। अवश्य ही अद्वैतवाद माननेपर निमित्त और उपादानके भेदको अस्वीकार करना ही पड़ता है। परन्तु बात यह है कि शारीरकभाष्यमें ब्रह्मके मुख्य कर्तृत्वको स्वीकार नहीं किया गया है। शङ्कर स्पष्ट कहते हैं कि ईश्वरत्व, सर्वज्ञत्व और सर्वशक्तित्व वास्तविक नहीं है, वह अविद्यारूप उपाधिका परिच्छेदनिबन्धन है, अतः कल्पित है—

तदेवमविद्यात्मकोपाधिपरिच्छेदापेक्षमेवेश्वरस्येश्वरत्वं सर्वज्ञत्वं सर्वशक्तित्वञ्च न परमार्थतो विद्ययापास्तसर्वोपाधिस्वरूप आत्मनीशित्रीशितव्यसर्वज्ञत्वादिव्यवहार उपपद्यते।

(वेदान्तसूत्र २।१।१४ भाष्य)

इस भाष्यांशसे स्पष्ट समझा जा सकता है कि चिदात्माका ईश्वरत्व अविद्यामूलक है, स्वतःसिद्ध नहीं। सुतरां, मुक्तावस्थामें जब विद्याके आलोकसे अविद्यान्धकार तिरोहित हो जाता है तब ईश्वरत्व नहीं रहता। परन्तु दक्षिणामूर्ति-स्तोत्रके दशम श्लोकमें शङ्कर स्पष्ट लिखते हैं कि ईश्वरत्व रहता है, सर्वात्मतास्वरूप महाविभूति रहती है, पूर्णाहंता रहती है। क्योंकि यह आत्मस्वरूपसे विलक्षण नहीं है, यह आत्मदेवका स्वभावभूत है, अविद्या-निमित्तक नहीं। सुरेश्वराचार्य भी यही बात कहते हैं—

ऐश्वर्यमीश्वरत्वं हि तस्य नास्ति पृथक् स्थितिः।
पुरुषे धावमानेऽपि छाया तमनुधावति॥

ईश्वरभाव और शुद्ध चैतन्यभाव पृथक् नहीं हैं। सुतरां, आत्मज्ञान होनेपर ऐश्वर्य-लाभ अपने आप ही हो जाता है।

* स्वयंप्रकाश, रामतीर्थ प्रभृति टीकाकारोंने प्रत्यभिज्ञा और त्रिपुरा-सिद्धान्तमें अनेक स्थलोंपर श्लोक और वार्तिककी व्याख्यामें भूलें की हैं। मूलमें जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन हुआ है, टीकामें उसका आभास भी नहीं है।

८ त्रिपुरा और प्रत्यभिज्ञा-मतका पारस्परिक सम्बन्ध—प्रसङ्गतः हमने प्रत्यभिज्ञाशास्त्रके साथ त्रिपुरा और स्पन्द-मतके घनिष्ठ सम्बन्धके विषयमें कहा है। जो आगम एकका आकर-ग्रन्थ है, दूसरेका भी वही है। उपासनाकी पृथक्‌ताको बचाये रखनेके लिये अवश्य ही पृथक् प्रस्थान रचे गये हैं, परन्तु वे एक ही मूलके ऊपर प्रतिष्ठित हैं। पद्धतिके भेदको छोड़कर तात्त्विक दृष्टिसे दोनोंके फलमें कोई भेद नहीं दीख पड़ता। इसीलिये हम देखते हैं कि प्राचीन आचार्योंने त्रिपुरा-सिद्धान्तके सम्बन्धमें लिखते समय शिवसूत्र, प्रत्यभिज्ञाहृदय, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, तन्त्रालोक प्रभृति सुप्रसिद्ध शैवग्रन्थोंसे प्रमाण संग्रह किये हैं। इसी प्रकार दूसरी ओर उत्पलदेव, क्षेमराज, अभिनवगुप्त, महेश्वरानन्द प्रभृति शैवाचार्योंने प्रयोजनानुसार योगिनीहृदय, कामकला-विलास, त्रिपुरसुन्दरीमन्दिर प्रभृति ग्रन्थोंका प्रामाण्य स्वीकार किया है। जिसप्रकार सांख्य और योगमें निकट सम्बन्ध है उसी प्रकार त्रिक-मत और त्रिपुरा-मतमें भी है। परशुराम-कल्पसूत्र, बिन्दुसूत्र, तन्त्रराज, त्रिपुरारहस्य, नित्याहृदय, वामकेश्वर-तन्त्र, परमानन्द-तन्त्र सौभाग्यरत्नाकर प्रभृति त्रिपुरा-मतके श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। भास्करराय, कवि रामेश्वर, लक्ष्मीधर, उमानन्दनाथ, अमृतानन्द प्रभृति इस मतके उत्कृष्ट व्याख्याता हैं। इस-प्रकार पर्यालोचना करनेसे अच्छी तरह समझा जा सकता है कि प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके साथ त्रिपुरा-सिद्धान्तके दार्शनिक अंशकी अर्थात् ज्ञानकाण्डकी ऐसी कोई पृथक्‌ता नहीं है।

परन्तु एक बात अवश्य स्मरण रखनी चाहिये। दोनों ही मतोंमें छत्तीस तत्त्व माने गये हैं। इनके परे जो है वह तत्त्वातीत है। संसार इन्हीं छत्तीस तत्त्वोंका समष्टि है। तत्त्वातीतसे ही तत्त्वोंका उद्भव होता है, इसलिये दोनों मूलमें एक ही हैं। इसीलिये वह परम वस्तु साथ-ही-साथ तत्त्वातीत अर्थात् विश्वोत्तीर्ण भी है और सर्वज्ञत्वमय, अतः विश्वात्मक भी है। इस विश्वमें पैंतीस और छत्तीस संख्यक तत्त्व हैं। जिसका पारिभाषिक नाम शक्ति और शिव है, वह नित्य है। यहाँतक कि इसका आविर्भाव और तिरोभाव नहीं है, यह सदा उदित है। इसलिये वास्तवमें पृथिवीसे लेकर सदाशिव-तत्त्वतक ३४ ही तत्त्व विश्वनामसे अभिहित होनेयोग्य हैं। अतः सृष्टि-शब्दसे सदाशिव प्रभृति तत्त्वमालाका क्रमशः आविर्भाव समझना चाहिये।

इस आविर्भावका बीज, जिसका क्रमविकास ही विश्व है, 'शक्ति' कहलाता है। इस शक्तिके साथ शिव सदा मिलित रहते हैं। शक्ति ही अन्तर्मुख होनेपर शिव है और शिव ही बहिर्मुख होनेपर शक्ति हैं। अन्तर्मुख और बहिर्मुख, दोनों भाव सनातन हैं, क्योंकि परमेश्वर नित्य ही 'पञ्चकृत्यकारी' हैं। शिवतत्त्वमें शक्तिभाव गौण और शिवभाव प्रधान है—शक्तितत्त्वमें शिवभाव गौण और शक्तिभाव प्रधान है। परन्तु जहाँ शिव और शक्ति दोनों एकरस हैं वहाँ न शिवका प्राधान्य है और न शक्तिका। वह साम्यावस्था है। यही नित्य अवस्था है। यही तत्त्वातीत है। कोई-कोई इसे सैंतीसवाँ तत्त्व कहते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि इसके सम्बन्धमें न तो कुछ कहा ही जा सकता है और न कुछ सोचा ही जा सकता है। यही सबके चरम लक्ष्य हैं। शैवोंके ये परमशिव, शाक्तोंकी पराशक्ति और वैष्णवोंके श्रीभगवान् हैं। परन्तु यह याद रखना होगा कि ये सब नाम भी केवल नाममात्र हैं। व्यवहारकी सुगमताके लिये इनका कल्पित व्यपदेश है।

९ आगम और सूफीमत—त्रिपुरा-मतके साथ प्रत्यभिज्ञा-मतका मौलिक अभेद स्थापित किया गया। इन दोनों मतोंके साथ गौडीय वैष्णव-सम्प्रदायके सिद्धान्तका ऐतिहासिक सम्बन्ध जान पड़ता है। गौडीय सिद्धान्तका विस्तृत वर्णन करनेके समय कभी इस विषयकी आलोचना की जायगी। किन्तु केवल यही नहीं; हमारे विश्वाससे सूफीमतके साथ भी त्रिपुरादि-सिद्धान्तका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अबतक इस विषयकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं गया है। इसलिये इस सम्बन्धमें दो-चार बातें कहकर अभी इस लेखका उपसंहार किया जायगा।

क्रेमर (Von Kremer), डोज़ी (Dozy), साचि (Sylvestre de Sacy) प्रभृति आचार्योंका मत है कि सूफीलोग अपने सिद्धान्तके लिये वेदान्तदर्शनके अत्यन्त ऋणी हैं। जर्मनीके सुप्रसिद्ध कवि गेटेका भी यही विश्वास था। उसके 'West Ostlicher Divan' नामक ग्रन्थमें इसका प्रमाण पाया जाता है। दूसरे पक्षमें निकल्सन (Nicholson), गिब (Gibbe) प्रभृति विद्वान् समझते हैं कि नव-प्लेटोनिक (Neo-platonic) मतके साथ सूफी-मतका सादृश्य अधिक है। इस विरुद्ध सिद्धान्तका सामञ्जस्य हो सकता है कि नहीं; अथवा इनमें कौन-सा सिद्धान्त समीचीन है, किंवा दोनों समान-रूपसे अग्राह्य हैं, इन बातोंकी आलोचना यहाँ आवश्यक नहीं है। हमें केवल यही कहना है कि सूफी-सम्प्रदायके सिद्धान्त और आचारविशेषके साथ प्रत्यभिज्ञा, त्रिपुरा और गौडीय वैष्णवमतका सादृश्य परिदृष्ट होता है।

सूफीमतके दर्शनोंमें स्थूलतः तीन सिद्धान्तोंका परिचय मिलता है—

१—पहला यह है कि परमार्थ-तत्त्व चिन्मयी इच्छा-शक्ति (Self-conscious will) स्वरूप है, जगत् उसीका परिच्छिन्न विकास है। इस सिद्धान्तके समर्थकों-का कहना है कि भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म ही प्रधान है तथा किसी-किसीके मतसे तो यही एकमात्र उपाय है—ज्ञान नहीं। कर्मसे निष्ठा, सदाचार तथा अशुभके सम्पर्क-से उद्धार पानेके लिये भगवत्संसर्गकी तीव्र आकांक्षा समझनी चाहिये।

२—दूसरा यह है कि परमार्थतत्त्व एक और नित्य सौन्दर्यस्वरूप है। चिरसुन्दरका यह स्वभाव है कि वह अपने भावमें विभोर होकर विश्वदर्पणमें अपने 'मुख' को—आत्मस्वरूपको निरन्तर ही देखता रहता है। अतएव जगत् प्रतिबिम्बमात्र है, परिणाम नहीं है। सौन्दर्यका आत्मप्रकाश ही सृष्टिका कारण है—यह बात मीर सय्यद शरीफने स्पष्ट शब्दोंमें कही है। सूफी कवियोंमें इस-प्रकारका एक हदीश प्रचलित है।*

कहा जाता है कि जब दायदने भगवान्से जीव-सृष्टिके उद्देश्यके सम्बन्धमें प्रश्न किया तो भगवान्ने उसे उत्तर दिया—

I was a Hidden Treasure, therefore was I fain to be known, and so I created creation in order that I should be known.

अर्थात् 'गोपन-स्थितिमें अकेले न रह सकनेके कारण

---

* महम्मदमें प्रकटित देववाणीको इस्लामधर्म-ग्रन्थोंमें 'हदीश' कहा जाता है। इस वाणीके वक्ता साक्षात् भगवान् ही सकते हैं, महम्मद केवल आधारमात्र हैं। अर्थात् महम्मदके कण्ठको अवलम्बित कर, आविष्ट कर भगवान् स्वयं ही इसप्रकारकी वाणीके वक्ता हो सकते हैं। वहाँ इसे 'हदिश-ए-कुद्सि' कहा गया है। यदि इस वाणीके यथार्थ वक्ता और यन्त्र स्वयं महम्मद हों तो इसप्रकारके हदीशको 'हदीश-ए-शरीफ' कहते हैं।

भगवान्‌ने आत्मप्रकाशके लिये सृष्टि की।' परन्तु विरोधके बिना आत्मप्रकाश सम्भव नहीं है। भगवान् अखण्ड सत्य, सौन्दर्य और मंगलस्वरूप हैं, वे भावमय हैं। उन्होंने अपने स्वातन्त्र्य-बलसे एक विराट् अभाव, एक महाशून्य (Not being) का आविर्भाव किया। इस अभावरूप दर्पणमें भावमयका प्रतिबिम्ब पड़ा। वह अभाव-प्रतिबिम्बित भाव ही विश्व है। इसी कारण विश्व उभयात्मक और परिवर्तनशील है। इसमें भाव और अभाव, दोनोंके स्वभाव परिलक्षित होते हैं। मनुष्य इस विश्वात्मक-प्रतिबिम्बका चक्षुस्वरूप है। प्रतिबिम्बस्थ चक्षुकी पुतलीमें जिसप्रकार द्रष्टा (बिम्ब) की पूर्ण प्रतिच्छवि देखी जाती है उसी प्रकार इस अनन्त विश्वमें एकमात्र मनुष्यमें ही भगवान्‌की पूर्ण प्रतिच्छवि वर्तमान है। मनुष्य भी विश्वका ही अंश है, इसीलिये मनुष्यमें भी भाव और अभाव, दोनोंका एक साथ समावेश है। इस अभावांशको दूरकर पूर्णभावस्वरूप भगवत्स्वरूपमें प्रतिष्ठित होना ही मनुष्य-जीवनका उद्देश्य है। परन्तु इस अभावांशको दूर करनेके लिये हमें 'अहं' भावका दमन करना होगा। यह 'अहं' भाव ही समस्त अनर्थोंका मूल है। सूफीलोग कहते हैं कि भगवान् ही जब एकमात्र सत्य वस्तु हैं और जब सभी मिथ्या है तो हमें अभिमान करनेका कोई वास्तविक कारण नहीं है। इस अभिमान-निवृत्तिका एकमात्र उपाय है प्रेम। एक बार हृदयमें भगवत्प्रेमके उदित होनेपर सारा अभिमान गल जाता है, सारे अभाव मिट जाते हैं, मायाका राज्य निमेषमात्रमें कहाँ-का-कहाँ विलीन हो जाता है, चित्त अद्वैत प्रेमस्वरूपमें, पूर्ण सौन्दर्यमें विश्राम पा जाता है। यह सौन्दर्य और प्रेम अनन्त और मुक्त है, इसमें न आदि है और न अन्त, इसमें ऊँच-नीच, दक्षिण-वामका भेद नहीं है। यहाँ शक्ति और शक्तिमान् अभिन्न हैं (नसफी-कृत 'मकसदी अकसा' देखिये)। नसफी कहते हैं कि मनुष्य—जीव पूर्णका ही अंश है, परन्तु भ्रमवश वह अपनी पृथक् सत्ता कल्पित कर कष्ट पाता है। जन्मसे ही वह पूर्णकी ही गोदमें स्थित है, तो भी मिथ्या विरहकी चिन्तामें मर रहा है। विरहबोध, भेदबोध अज्ञानजनित है; वास्तविक भेद आभासमात्र है, यथार्थ नहीं।

उमर ख़ैयाम, इब तैमिया और वाहिद मामूद प्रभृति अद्वैतवादके विरुद्ध खड़े हुए थे। मामूदने एक सम्प्रदाय प्रवर्तित किया था, महाकवि हाफिज उसी सम्प्रदायके थे। ये लोग विश्वको नित्यसिद्ध अणुसमष्टि मानते थे। किन्तु इनके मतसे ये अणु (आफ़ाद) जड नहीं, चैतन्यमय हैं—अवश्य ही चैतन्यके विकासका तारतम्य होता है।

३—तीसरा यह है कि परमार्थवस्तु विज्ञान या ज्योतिःस्वरूप है। वह एक ओर अभिन्न है, परन्तु इसमें वैचित्र्य-सम्पादक भेद-प्रतिनिधिभावकी सत्ता है। यह स्वरूपज्योतिः नित्य स्वप्रकाश है। इसके सिवा जो कुछ है सब इसीके आश्रित है, अधीन है, इसीका शक्तिस्वरूप है। उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। ज्योति भाव है, तम अभाव है—ज्योतिका अभाव या अन्धकार है। इसको प्रकाशित करना ही ज्योतिका स्वभाव है। ज्योति सब क्रियाओंका मूल है। स्थानपरिच्युति स्थूल क्रिया है। प्रकृत क्रिया स्पन्दात्मक है। इसी स्पन्दनके बलसे अनन्त रश्मिमाला केन्द्रसे निकलकर चारों ओर बिखरती है। रश्मिसे पुनः रश्मिका उदय होता है। परन्तु क्रमशः रश्मि क्षीण होती जाती है। तब फिर इस क्षीणावस्थामें पड़ी हुई रश्मिसे नवीन रश्मिकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। ये रश्मियाँ ही देवता हैं। इन देवताओंके मध्यसे ही समग्र जगत् मूलज्योतिसे प्रकाश और अमृत (चिदानन्द) प्राप्त करता है। ऊपर जो तम, अन्धकार—अप्रकाशकी बात कही गयी है वह प्रकाशकी ही एक और दिशा है। सांख्यशास्त्र और अरिष्टदलने जिसप्रकार इसके स्वातन्त्र्यकी कल्पना की है, ये लोग वैसा नहीं करते।

जो हो, अब इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं। संक्षेपमें जो कहा गया है इसीसे हमारा वक्तव्य स्पष्ट हो जाता है। ऊपर जो तीन सिद्धान्त लिखे गये हैं उनका स्वरूप आगम-शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित है। तीन मार्ग ही त्रिविध उपायस्वरूप हैं। क्रमशः आणवोपाय, शाम्भवोपाय, शाक्तोपायके साथ इनका कुछ अंशमें सादृश्य जान पड़ता है। दूसरा सिद्धान्त भारतवर्षमें बहुत दिनोंका परिचित मत है। इस मतसे भगवान् सौन्दर्यस्वरूप और चिर सुन्दर हैं, आनन्दरूप और आनन्दमय हैं। सूफी लोग नररूपमें इसकी पराकाष्ठा देख पाते हैं। जिन लोगोंने सूफी कवियोंकी काव्य-ग्रन्थमालाका ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि सूफी लोग सुन्दर नरमूर्तिकी उपासना, ध्यान

और सेवा करना ही परमानन्द-प्राप्तिका साधन मानते हैं । इतना ही नहीं, वे कहते हैं कि मूर्ति किशोरावस्थाकी हो तो रसस्फूर्तिमें सहायक होती है । किसीके मतसे पुरुषमूर्ति श्रेष्ठ है तो किसीके मतसे रमणीमूर्ति श्रेष्ठ है । परन्तु सूफी लोग कहते हैं कि उस वस्तुमें प्रकृति-पुरुष-भेद नहीं है, वह अभेद-तत्त्व है । यही क्यों, उनके गजल, रुबाइयात, मसनवी आदिमें जो वर्णन मिलता है, उससे किशोरवयस्क पुरुष किंवा किशोरवयस्का स्त्रीके प्रसङ्गका निर्णय नहीं किया जा सकता ।* टीकाकारोंमेंसे रुचिवैचित्र्यके अनुसार कोई पुरुषभावमें व्याख्या करते हैं और कोई रमणीभावमें करते हैं । बाह्य साधनमें भी यह भेद लक्षित होता है । यह केवल संस्कार है; परन्तु मूलवस्तु न पुरुष है न प्रकृति है, बल्कि वह दोनोंका अभेदात्मक सामरस्य है, इसमें किसीको सन्देह नहीं । जगत्‌में जितना सौन्दर्य है, वह सब उस पूर्ण सौन्दर्यके कणमात्र विकासके कारण ही है, वह उसीकी विभूतिमात्र है, उसकी छायामात्र है । वह एक पूर्ण सौन्दर्य ही मानों अकेला न रह सकनेके कारण कालके ऊपर महाकालके ऊर्ध्वदेशमें प्रस्फुटित हो पड़ा है—वही जगत्‌रूपमें खण्ड-सौन्दर्यमय होकर विकसित होता है । अथवा वह मानों अपनेमें ही अपने स्वरूपके प्रतिबिम्बको अपने आप ही देखता है, यह प्रतिबिम्ब ही विश्व है । आगम भी क्या ठीक यही बात नहीं कहते ? नटनानन्दनाथ चिद्वल्ली या कामकलाकी टीकामें कहते हैं कि जिसप्रकार कोई अति सुन्दर राजा अपने सामनेके दर्पणमें अपने ही प्रतिबिम्बको देख उस प्रतिबिम्बको 'मैं' समझता है, परमेश्वर भी उसी प्रकार अपनी ही अधीन आत्मशक्तिको देख 'मैं पूर्ण हूँ' इसप्रकार आत्मस्वरूपको जानते हैं । यही पूर्णाहंता है । इसी प्रकार परम शिवके सङ्गसे पराशक्तिका स्वान्तःस्थ प्रपञ्च उनसे निर्गत होता है । इसीका नाम विश्व है । सचमुच भगवान् अपने रूपको देखकर आप ही मुग्ध हैं—सौन्दर्यका स्वभाव ही यही है । श्रीचैतन्यचरितामृतमें है—

> रूप हेरि आपनार कृष्णेर लागे चमत्कार
> आलिङ्गिते मने उठे काम ।

यह चमत्कार ही पूर्णाहंता-चमत्कार है, काम या प्रेम इसीका प्रकाश है । यही शिव-शक्ति-सम्मिलनका प्रयोजक और कार्यस्वरूप है—आदिरस अथवा शृङ्गाररस है । विश्वसृष्टिके मूलमें ही यह रस-तत्त्व प्रतिष्ठित है । प्रत्यभिज्ञा-दर्शनमें जो ३५ और ३६ तत्त्व अथवा शक्ति और हैं, त्रिपुरा-सिद्धान्तमें वही कामेश्वर और कामेश्वरी हैं, और गौडीय वैष्णवदर्शनमें वही श्रीकृष्ण और राधा हैं । शिव-शक्ति, कामेश्वर-कामेश्वरी, कृष्ण-राधा एक और अभिन्न हैं, यह सुप्रसिद्ध है । सूफीलोग भी यही बात कहते हैं । यही चरम वस्तु त्रिपुरा-मतमें 'सुन्दरी' अथवा 'त्रिपुरसुन्दरी' है । शङ्कराचार्यकी सौन्दर्यलहरीमें इसीके स्वरूपका वर्णन है । सौन्दर्यलहरीके १२ वें श्लोकमें कहा है कि, 'पूर्ण सौन्दर्य अनन्त है, उसकी तुलना नहीं है । कवि उसका वर्णन नहीं कर सकते, अप्सराओंका सौन्दर्य उसके लेशमात्रके बराबर भी नहीं है । देवाङ्गनाएँ ही उसके दर्शनके लिये उत्सुक रहती हैं, सो नहीं; समग्र जगत् उसके लिये आकुल है । इसी सौन्दर्यके कणमात्रको प्राप्तकर विष्णुने मोहिनीमूर्तिसे साक्षात् शङ्करको भी मोहित कर दिया था । इसीकी कृपासे मदन मुनिजनोंके मनको मोहित करते हैं ।' सौन्दर्यलहरीके पञ्चम श्लोक और वामकेश्वर महातन्त्रकी चतुःशतीमें भी यही बात कही गयी है ।

इस सुन्दरीके उपासक इसकी उपासना चन्द्ररूपमें करते हैं । चन्द्रकी सोलह कलाएँ हैं, सभी कलाएँ नित्य हैं । इसलिये सम्मिलित भावसे इनका नित्यषोडशिकाके नामसे वर्णन किया गया है । परन्तु पहली १५ कलाओंका उदय-अस्त होता है, ह्रास-वृद्धि होती है; पर सोलहवींकी नहीं होती । वही अमृता नामकी चन्द्रकला है । वैयाकरणलोग इसीको 'पश्यन्ती' वाणी कहा करते हैं । दर्शनशास्त्रमें इसका पारिभाषिक नाम आत्मा है, मन्त्रशास्त्रमें इसीको मन्त्र या देवताका स्वरूप कहा गया है । हम जिसे पूर्णचन्द्र कहते हैं, वस्तुतः वह पूर्णचन्द्र नहीं है, क्योंकि उसका क्षय और उदय होता है । जो वास्तविक पूर्ण है, उसमें न्यूनाधिकभाव नहीं रह सकता । इसप्रकारकी पूर्णता षोडशी कलामें ही है, वह नित्योदित, अमृतस्वरूप और अखण्ड है । वही महात्रिपुरसुन्दरी ललिता हैं, सौन्दर्य और आनन्दका परमधाम हैं । यही परा कला चिदेकरसा—श्रीविद्या है । पहली १५ कलाओंका

* E. J. W. Gibbe का A History of Ottoman Poetry, Vol, I, p. 65 देखिये ।

कालचक्रके साथ सम्बन्ध है, जो सूर्य और चन्द्रके व्यवधान और संयोगके फलस्वरूप प्रतिपदा आदि तिथिरूप हैं। सुतरां, नित्य होनेपर भी इनका आविर्भाव और तिरोभाव है; किन्तु षोडशी कला नित्य ज्योत्स्नामय, सहस्रदलकमलस्थ, नित्यकलायुक्त, श्रीचक्रात्मक चन्द्रबिम्ब है। इसीलिये सुभगोदयमें कहा है—

षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।

इसी कारण उपासकके निकट सुन्दरी नित्य षोडश-वर्षीया रहती है। गौडीय सम्प्रदायमें भी ठीक यही बात कही गयी है। वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण नित्य षोडशवर्षीय हैं, नित्य किशोर हैं—

नित्यं किशोर एवासौ भगवानन्तकान्तकः।

प्रभुपाद श्रीरूप गोस्वामी अपने भक्तिरसामृत-सिन्धु (दक्षिण, प्रथमलहरी श्लोक १५८) में कहते हैं—

आषोडशाच्च कैशोरम्।

तत्पश्चात् जैसे सुन्दरी या ललिता कभी पुरुष है, कभी रमणी है, वैसे ही श्रीकृष्ण भी हैं। तन्त्रराजमें है—

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
वंशीनादसमारम्भादकरोद् विवशं जगत्॥

यहाँ ललिता पुरुषरूपमें कृष्णभावमें प्रकटित है। एक और भी रहस्यकी बात है। उपासनाकी पद्धतिके अनुसार जप-समर्पणका यही साधारण नियम है कि स्त्री-देवताके वाम करमें और पुं-देवताके दक्षिण करमें जप-फल समर्पण किया जाता है। परन्तु ललिताके दक्षिण करमें ही जप-फल देनेकी व्यवस्था है। दूसरे पक्षमें श्रीकृष्णका रमणी-मूर्ति ग्रहण करना, मोहिनी मूर्तिमें प्रकट होना भी सुप्रसिद्ध है।

त्रिपुरा एवं गौडीय मत और आचारके साथ सूफियों-का सादृश्य अनेकों विषयोंमें देखा जा सकता है। प्रत्यभिज्ञा-मतावलम्बी काश्मीरीय शैवाचार्य भी परम शिवका इसी भावसे ध्यान किया करते हैं।

तत्पश्चात् तीसरा सिद्धान्त अथवा इशाराकी-मत भी आगममें पाया जाता है। यह मूल ज्योति ही चिदात्मा, चन्द्रबिम्ब (अथवा वैदिक मतविशेषमें सूर्यबिम्ब) है। सभी देवता उसीकी रश्मि हैं। इन्हें मातृका, वर्ण, कला, शक्ति प्रभृति नामोंसे पुकारते हैं। इस रश्मिमाला अर्थात् वर्णमाला या मातृका-चक्रका बहिर्विकास ही सृष्टि तथा अन्तःसंकोच ही प्रलय है।

अध्यापक गिब (Gibbe) भारतीय अद्वैत-प्रस्थानमें रस और प्रेमतत्त्वका सन्धान न पाकर (Ottoman Poetry, vol. 1, p. 64) सूफीमतके ऐतिहासिक सम्बन्ध-का आविष्कार करते समय नव-प्लेटानिक (Neo-platonic) मतका आश्रय ग्रहण करते हैं। किन्तु भारतवर्षके आगममूलक सिद्धान्त और आचारकी गवेषणा करनेपर जान पड़ता है कि सूफी-सम्प्रदायके मतामतके साथ भारतवर्षका जितना सम्बन्ध है उतना अलेक्जेण्ड्रियाका नहीं है।

१० उपसंहार—हमने अति संक्षेपमें प्रत्यभिज्ञा-मतका साधारण परिचय दिया। प्रत्यभिज्ञा-शास्त्रकी ग्रन्थावली तथा काश्मीर और दक्षिणापथमें इसके प्रचारका इतिहास यहाँ नहीं दिये गये। आशा है कि पाठकवृन्द भारतीय दर्शनके इस विस्मृत अध्यायका पुनरुद्धार देखकर प्राचीन गौरवकी स्मृतिमें आनन्द लाभ करेंगे।

श्रीशिव-स्तुति

मख-हन, मरदन-मयन, नयन त्रय, बट-तर अयन रजत-परबतपर।
चरम-बसन, तन भसम, प्रमथ-गन, ससधर-धरन, गरल-गर-गरधर॥
हरन-ब्यसन-जन, करन-अमल-मन, भज मन! असरन-सरन अमर-बर।
चढत बरद, बर बरद प्रनत-रत, हरत जगत-भय, जय जय जय हर॥

—अर्जुनदास केडिया

शिव हाथमें !

(लेखक—भिक्षु श्रीगौरीशङ्करजी)

एक समयकी बात है कि पंजाब-प्रान्तान्तर्गत अम्बाला जिलेके भोवा नामक ग्रामका नम्बरदार किसी दूसरे स्थानसे घर लौट रहा था; परन्तु लौटते समय मार्गमें पड़नेवाली बरसाती नदी, जो जाते समय सूखी पड़ी थी, एकाएक उमड़ आयी। उसे पार करनेका कोई उपाय नहीं था, पर घर आना अत्यन्त आवश्यक था। बेचारा बड़े सोच-विचारमें पड़कर भगवान्‌को स्मरण करने लगा। इतनेमें उसने देखा कि एक जटा-जूट-धारी महात्मा, जो साक्षात् शिव प्रतीत होते थे, सामने आ खड़े हुए और अपनी अहैतुकी कृपाके वशीभूत होकर, उसके बिना कुछ कहे ही बोले—'क्यों, बचा ! नदी-पार जाना चाहता है ? पर करीब दो सौ कदम चौड़ी गहरी नदीको, नौका आदि साधनके बिना, कैसे पार करेगा ?'

बेचारा नम्बरदार आर्तभावसे उनके मुँहकी ओर ताकने लगा। उन परम कारुणिक महापुरुषने फिर उससे कहा—'अच्छा, एक काम कर। अपने दोनों हाथ तो मेरे सामने कर।' पथिकने तुरन्त आज्ञाका पालन किया। उसके हाथ पसारनेपर महात्माजीने उसके बायें हाथमें 'शि' और दाहिनेमें 'व' लिख दिया और बोले कि 'जा, अब दोनों हाथोंको देखते-देखते चला जा।' बस, महात्माजीके आदेशानुसार वह ऐसे नदी पार करने लगा मानों साधारण मैदानमें जा रहा हो। परन्तु जब कोई दस कदम नदी बाकी रह गयी तब एकाएक उसके मनमें यह भाव उठा कि अरे ! महात्माने इस 'शिव' को लिखकर कौन-सी करामात दिखलायी ? यह शिव-नाम तो मेरे माता-पिता बराबर लिया करते थे। शिवके सम्बन्धमें कथा-वार्ताएँ भी मैंने खूब सुनी हैं। फिर इस शिवमें और कौन-सी विशेषता है ? बस, यह भाव उसके अन्दर उठा ही था कि वह नदीमें गोते खाने लगा। मालूम हुआ कि गया। विवश होकर उन्हीं अशरण-शरणको पुकारा—'भगवन् ! मेरी रक्षा करो।' यह सुनते ही उस पार खड़े हुए महात्माने जोरसे पुकारकर कहा—'अरे ! तू अपने उस शिवको छोड़कर इसी शिवका ध्यान कर।' बस, महात्माकी वाणी सुनते ही उसका उठा हुआ अविश्वास जहाँ-का-तहाँ दब गया और वह अनायास ही नदी पार कर गया !

पाठक ! जब उस हाथमें लिखे हुए 'शिव' को देखने-मात्रसे वह व्यक्ति नदी पार कर गया तब तो अहर्निश 'शिव-शिव' रटनेसे क्या नहीं हो सकता ? हमें चाहिये कि हम अनवरतभावसे उसमें लग जायँ।

शिवं शान्तं सुन्दरम्

(ले०—श्रीनलिनीकान्तजी गुप्त, श्रीअरविन्द-आश्रम, पाण्डिचेरी)

इस चञ्चल विक्षुब्ध जगत्‌के अन्तरालमें विराजित है समाहित स्थिति।

सृष्टिका, नानात्वका विचित्र वर्ण-विभ्रम विच्छुरित होता है एक निभृत श्वेत-शुभ्र ज्योति-केन्द्रमेंसे।

प्रकृतिकी उद्भ्रान्त प्रवृत्ति विधृत है अटूट, अटल निवृत्तिके मध्यमें।

निखिल ऐश्वर्यमयी राजराजेश्वरी दशभुजाके आश्रय हैं दिगम्बर महादेव।

प्रकृतिकी शक्ति विपुल वेगसे दौड़ी जा रही है बाहरकी ओर, क्रमागत अपनेको प्रकटित करती हुई, बिखेरती हुई। इसी प्रकार विपरीत दिशामें, उसीके साथ ताल-में-ताल मिलाकर एक अमित सङ्कर्षण-शक्ति चल रही है अपनेको अपनेमें ही सम्पुटित करके, सिकोड़ करके।

शिवका और एक नाम है रुद्र—वे इस प्रत्याहारके, प्रलयके आकर्षण हैं।

इसीलिये वे हैं नटराज !

वे रूपको निरन्तर तोड़ रहे हैं, उसे सर्वदा अरूपकी बात याद दिला देनेके लिये, इसलिये कि खण्डित नाम-धाममें बँध-कर सत्य कहीं जीर्ण शुष्क न हो जाय, प्राण न खो बैठे।

सङ्कीर्णताका, माया-मोहका कपाल-कङ्काल उनके ताण्डव-चालित पादविक्षेपसे दलित एवं चूर्ण-विचूर्ण हो रहा है।

शिव हैं सत्यकी ऋजुता—उनकी वही निर्निमेष तापस ऊर्ध्व-दृष्टि, जो कुटिलको सरल बनाती है, अस्पष्टको स्फुट करती है, द्विधाको स्थिर, निश्चित कर देती है।

ताण्डवकी गति है उपरति, निवृत्ति, समाधि, प्रलयकी ओर—अर्थात् अन्तरतमकी, ऊर्ध्वतमकी ओर।

नाम-रूप, देश-काल उसमें टूटते-फूटते चले जा रहे हैं।

फिर उसीमें, उसी कल्याणसे क्रमशः नाम-रूप शुद्धतर होकर संगठित हो चला है, वही सब सृष्टि मूर्त हो चली है, जहाँ अधिकतर गोचर हो चला है अन्तरतम, ऊर्ध्वतम, सत्यतम।

जो रह गया था सबके पीछे घूमकर वही दिखायी दे रहा है बिल्कुल सामने।

जो अन्तरतम है वही फिर हो चला है बाह्यतम। जो ऊर्ध्वतम है वही आ खड़ा हुआ है अधस्तमके द्वारपर।

ध्यानके, समाधिके, प्रलयके ताप-जठरमें जो बीज जन्म ग्रहण कर रहा है व्युत्थानकी, प्रकाशकी ओर वही मञ्जरित विकसित हो चला है—क्रमशः शाखा-प्रशाखा, पत्र-पल्लव और फूल-फलसे रूपवान् होकर।

शान्तम् इसीलिये अन्तमें हो गया है सुन्दरम्।

कैलाश-मणिभवन

शिवस्यार्धप्रदक्षिणा
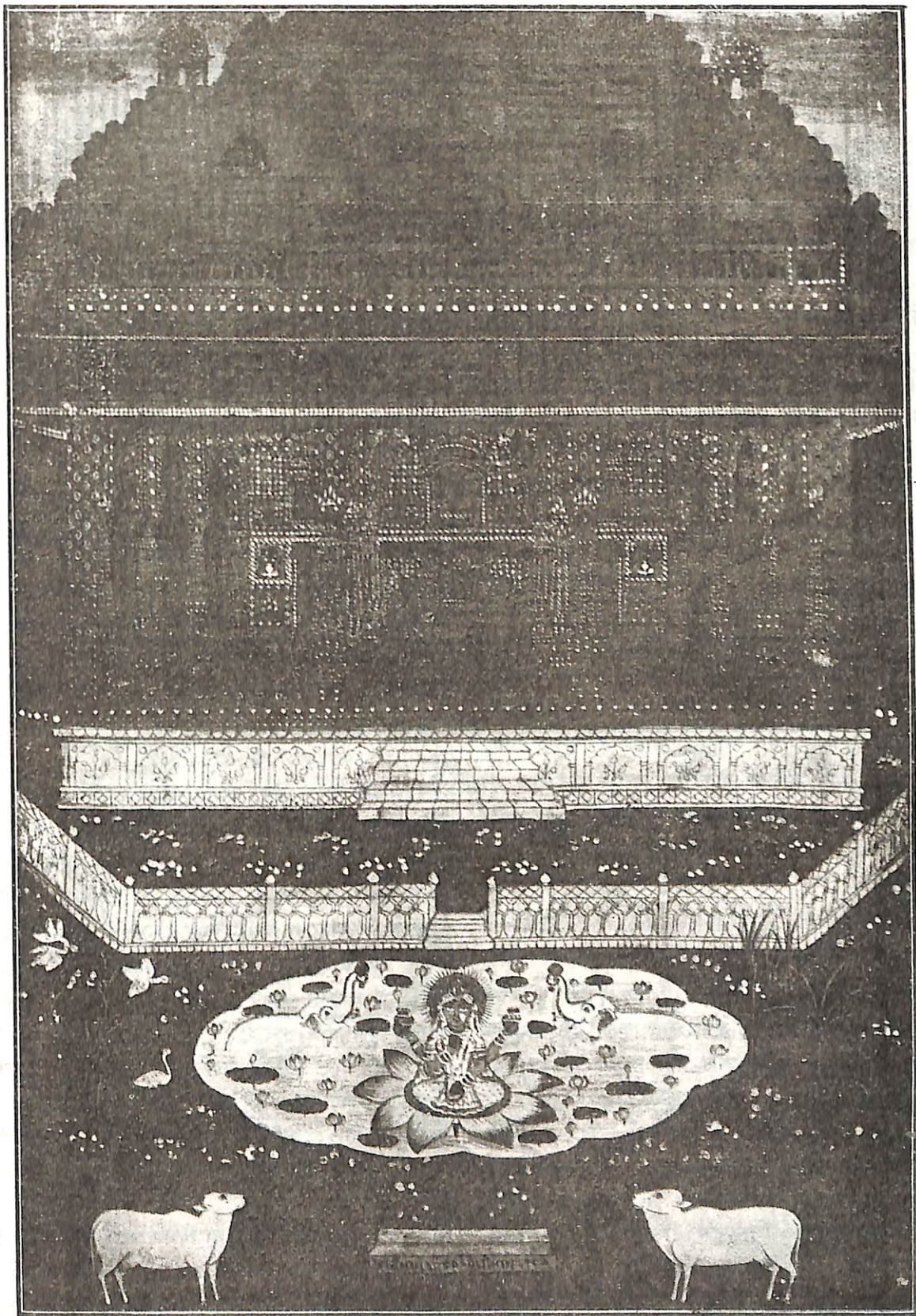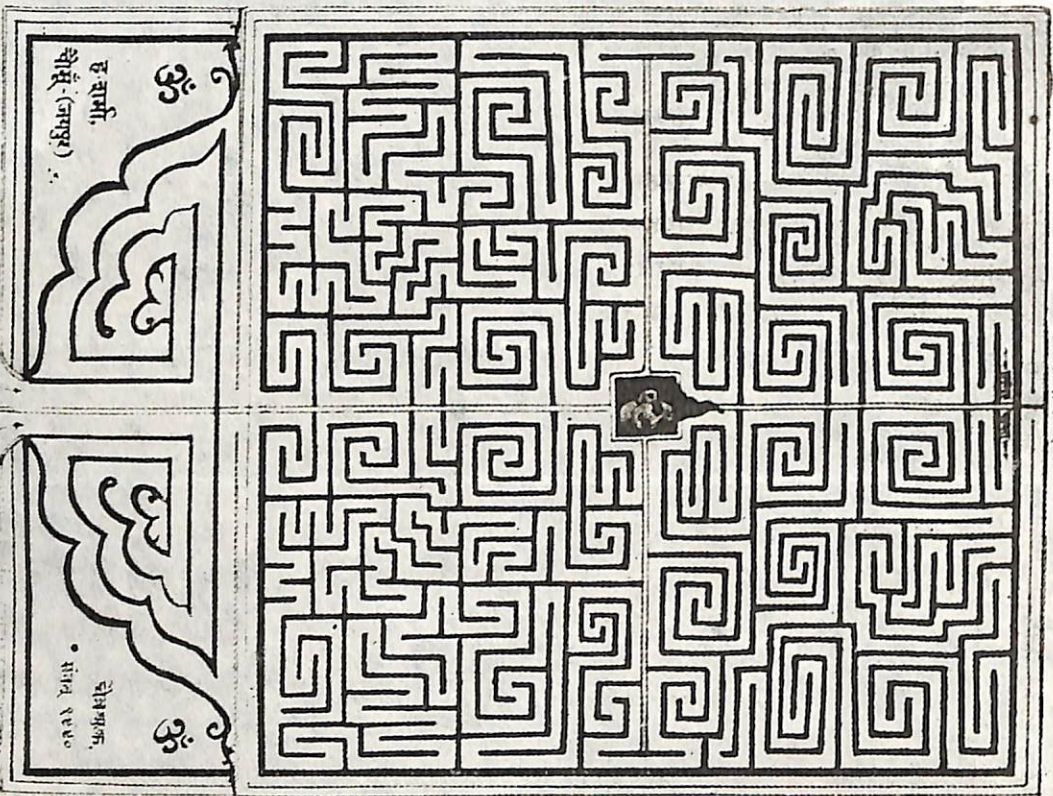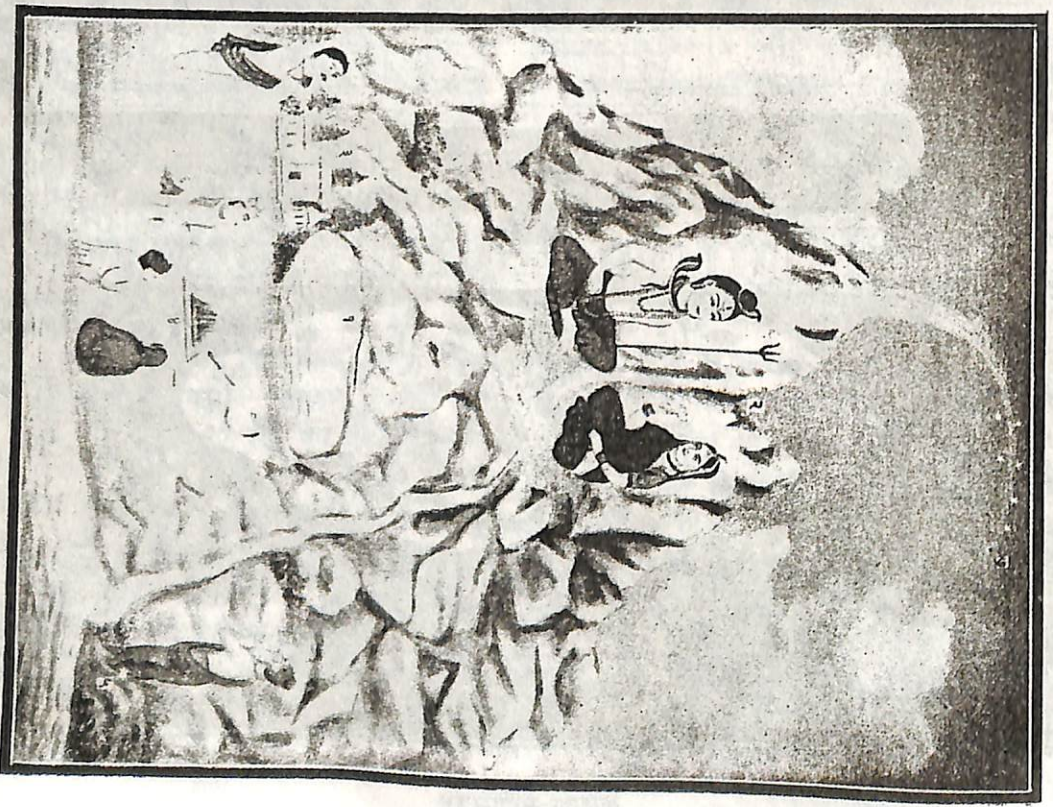
बिन्दुसर

शिव

(लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी)

सर्वगं सर्वकर्तारं सर्वं सर्वावभासकम्।
सर्वावलम्बनं शान्तं शिवं पूर्णं भजाम्यहम्॥
विना यस्य कृपां नैव जीवानां मोक्षसम्भवः।
कथं तं शङ्करं त्यक्त्वा देहं मोहमयं भजे॥

हे मेरी प्यारी वाणी ! क्या अब भी बनी रहेगी अयानी ? अब तो हे सुभगे ! बन जा सयानी ! त्याग दे विषय-भोगोंकी विषमयी कहानी ! गाना आरम्भ कर दे शिवकी सुधामयी कथा सुहानी ! जबतक तू जगत्के गीत गाती रहेगी तबतक तुझे स्वप्नमें भी शान्ति नहीं मिलेगी ! पञ्च-फैसला करना छोड़ दे, वाद-विवाद करना त्याग दे, तर्क-वितर्क करती हुई बालकी खाल कबतक खींचा करेगी ? जितना बकवाद करेगी, उतनी ही दुखी होगी, सुखी कभी नहीं होगी। सुखी तो शिवका गान करनेसे ही होगी। बेकन, स्पेन्सरकी फिलॉसफी पढ़नेसे विक्षेपके सिवा अन्य कुछ हाथ नहीं लगेगा, कल्याण तो शिव-ग्रन्थोंके अध्ययन करनेसे ही होगा। क्या तूने नहीं पढ़ा है कि देवर्षि नारद वेद-वेदाङ्ग, इतिहास-पुराण आदि बहुत-से ग्रन्थ पढ़ चुके थे और समस्त विद्याओंमें कुशल थे, फिर भी उनको लेशमात्र भी शान्ति प्राप्त न हुई ? उलटे अशान्ति बढ़ गयी। जब उन्होंने भगवान् सनत्कुमारसे शिव-तत्त्वका उपदेश लेकर भूमारूप शिवको भजा, तभी उनको शान्ति प्राप्त हुई। इसलिये हे वाणी ! अब अन्य सब कथाएँ छोड़कर शिव-कथा पढ़नेका अभ्यास कर। सब मन्त्रोंका त्याग करके शिव-मन्त्रका निरन्तर प्रेमपूर्वक आदर-सत्कार-सहित जप किया कर। शिव-भक्तोंके पावन चरित्र पढ़ा कर। सब प्रकारके गीतोंको तिलाञ्जलि देकर शिवके ही गीत गाया कर। यही कल्याणका मार्ग है, इसके सिवा अन्य कल्याणका मार्ग नहीं है। जो शिवको भजते हैं, वे निश्चय शिवको ही प्राप्त होते हैं और जो शवरूप संसारको भजते हैं, वे अन्धकूप संसारमें करोड़ों जन्मोंतक पड़े हुए अनेक प्रकारके कष्ट उठाते हैं। इसमें श्रुति, स्मृति, युक्ति और विद्वानोंका अनुभव प्रमाण है। इसलिये हे वाणी ! विषय-भोगोंका नाम लेना तज दे और कल्याणरूप शिवको भज ले ! शिवका नाम लेनेमें खर्च कुछ नहीं है, परिश्रम भी कुछ नहीं है, सहायताकी भी आवश्यकता नहीं है, विशेष बुद्धि भी नहीं चाहिये, जीभ हिलानेका काम है। चिल्लाकर जप, धीरे-धीरे जप। बहुत ही धीरे जप अथवा जीभ भी मत हिला। भीतर-ही-भीतर जप। सब प्रकारसे सुलभ है, लाभ अक्षय है, सब दुःख दूर हो जायँगे, समस्त चिन्ताएँ कपूर हो जायँगी। अद्भुत आनन्द आवेगा, देहतककी भी सुध भूल जायगी, आनन्द-सागरमें मग्न हो जायगी। इसलिये हे वाणी! शिव-शिव-शिव कहती हुई शिवमें ही लीन हो जा !

हे प्यारे हाथ ! अबतक तू लम्बे-चौड़े हाथ मारता रहा, पर कुछ भी तेरे हाथ न आया ! कोयलोंकी दलालीमें हाथ काले ही हुए, अन्य कुछ स्वार्थ सिद्ध न हुआ। अब तू किसीको हाथ मत जोड़, शिवको ही हाथ जोड़; किसीके सामने हाथ मत फैला, शिवके सामने ही फला; किसीका पूजन मत कर, शिवका ही पूजन कर ! बहुत चित्र खींच चुका, मिला कुछ नहीं, हाथ ही मलने पड़े; शिवका चित्र खींचता तो लोक-परलोक दोनों सुधर जाते ! रेखागणित देखकर अबतक रेखाएँ ही खींचता रहा, उस बिन्दुको तूने आजतक नहीं जाना जिस बिन्दुमेंसे श्रद्धा, भक्ति और वैराग्य—ये तीन रेखाएँ निकलती हैं, जिस शिवरूप बिन्दुमेंसे समस्त रेखाएँ प्रकट होती हैं, उन्हीं शाश्वत शिवकी प्रतिमा बनाकर अब तू पूज, तभी तेरा कल्याण होना सम्भव है, नहीं तो संसार-चक्रमें घूमता हुआ बारम्बार यमराजका ग्रास ही होता रहेगा। शान्ति कभी भी नहीं पावेगा, शान्ति तो शिवलिङ्गके पूजनसे ही होगी। शैवतन्त्रोंमें स्थल-स्थलपर मणि, सुवर्णादिका शिवलिङ्ग बनानेका आदेश है, फिर भी मिट्टीके लिङ्गका ही सबसे अधिक माहात्म्य है, इसलिये मृण्मय लिङ्ग ही तुझे बनाना चाहिये। जिस अलौकिक मिट्टीमेंसे ब्रह्मासे लेकर स्थावर-जंगम सभी आकृतियाँ कल्पनामात्रसे बनायी गयी हैं, शैव लोग उसी अद्भुत मिट्टीके बने हुए शिवलिङ्गका पूजन करते हैं। जिस सत्यरूप त्रिकालाबाधित शिवरूप मृत्तिकामेंसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड शरावोंके समान बने हुए हैं, जिस

मृत्तिकाका 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि श्रुतियाँ वर्णन करती हैं, उसी मृत्तिकाका शिवलिङ्ग बनाकर 'शिव-शिव-शिव' करता हुआ, शिवका आलिंगन करता हुआ शिवमें ही लीन हो जा।

हे प्यारे पैर! बहुत पैर फैलाये, अब तो मत फैला! बहुत उछला, कूदा, फाँदा, घूमा; अब उछलना, कूदना, फाँदना और घूमना छोड़ दे! दौड़-धूप करनेमें सिवा हानिके लाभ कुछ नहीं है, चलना-फिरना क्या है? पैर तोड़ना ही है। वे ही अधिकारी धन्य हैं, जो कैलास-मन्दिरमें जा पहुँचे हैं! वे ही सुकृति प्रशंसनीय हैं, जो कैलासपावन मन्दिरमें शिवके साथ निवास करते हैं। उन्हींका जन्म सफल है, जिनका घर कैलास है, जो स्वयंप्रकाश है, स्वयंज्योति है और स्वयंसिद्ध है। जिन्होंने उस धामको नहीं देखा, नहीं सुना और जो वहाँ जानेका यत्न भी नहीं करते, उनका जन्म निष्फल है, भाररूप है, माताको उन्होंने व्यर्थ ही कष्ट दिया है। मनुष्य-जन्मका यही लाभ है कि कैलासकी यात्रा करे, वहाँकी सैर करे, कैलासवासी शिवके दर्शन करे। वेदवेत्ताओंका कथन है कि रुद्र नामक परमात्मा सदा ही कैवल्यमें अर्थात् अखण्ड एकरस आत्मामें विलास करते हैं, उनके भक्त भी सदा ही उसी कैवल्यको प्राप्त होकर स्वयंप्रकाश हो जाते हैं। इसप्रकार सदा ही कैवल्यका विलास बना रहनेसे सकल जगत्को सुख देनेवाले शम्भुका वासस्थान, सदा ही कैलासके समान स्वयंप्रकाशमान बना रहता है और अनन्त-कोटि भक्तोंकी भीड़ हो जानेपर भी वहाँका कैवल्य नष्ट नहीं होता। हे पैर! यदि तू सदाके लिये सुखी और स्वतन्त्र होना चाहता है, तो उसी कैलासकी यात्रा कर, वहाँ ही जा पहुँच और 'शिव-शिव-शिव' कहता हुआ वहीं सर्वदाके लिये ठहर जा। वहाँ ठहरनेसे ही तेरा चलना समाप्त होगा। 'कोसका चलना भी बुरा है'–यह विद्वानोंका वचन है। जबतक चलता रहेगा, पैर थकाता और दबवाता ही रहेगा, इसलिये पैर थकाना और पैर दबवाना अब छोड़ दे और कैलासको ही अपना नित्य-घर बना ले, वहीं पैर फैलाकर सदाके लिये सो जा।

हे भाई कान! अब तो छोड़ दे अज्ञान, बन जा सुजान! सुदुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर भी और सन्त-महात्माओंका संग करके भी यदि तू विषय-भोगोंकी मरकथा ही सुनता रहा और शिव-पार्वतीकी अमरकथा नहीं सुनी, तब तो तू **बहिरा ही अच्छा था, संसारियोंकी दन्तकथा सुनकर संसार-**अन्धकूपमें तो नहीं पड़ता। वृद्ध पुरुषोंका कथन है कि जिस कानने शिवकी अमरकथा नहीं सुनी, वह कान भूत-प्रेतोंका मकान है और जो कान शिवकी अमरकथा सुनता है, वह कान देवताओंके रहनेका दिव्य स्थान है। अमरकथा सुनने-सुनानेके लिये ही अद्वितीय एक ही शिव अपनी मायासे शिव और पार्वती दो रूप धारण करके उत्तराखण्डमें अमरकथा कहते और सुनते रहते हैं, यही उनकी क्रीडा है। वहीं चलकर शिवकी अमरकथा सुन, उसे सुनकर तू भी अमर हो जायगा। यदि तू कहे कि वहाँ तो कोई जा नहीं सकता, जो कोई वहाँ जाता है, उसे शिवजी शाप देकर पुरुषसे स्त्री बना देते हैं, तो यह बात नहीं है। अनधिकारी पुरुष ही शिवजीके शापसे स्त्री हो जाता है, अधिकारी पुरुषको शिवजी शाप नहीं देते। वह तो अमर ही हो जाता है, यह बात शुकदेवजीके दृष्टान्तसे सिद्ध है। अमरकथा सिंहिनीके दूधके समान है। जैसे सिंहिनीका दूध सुवर्णके पात्रमें ही ठहरता है, अन्य पात्रको फोड़कर निकल जाता है, इसी प्रकार अनधिकारी पुरुषके हृदयमें अमर-कथा नहीं ठहरती, फोड़कर निकल जाती है। भाव यह है कि विषयासक्त पुरुष शिव-तत्त्वको समझ नहीं सकता, उसको शिवतत्त्व शून्य और नीरस जँचता है। इसलिये शिव-तत्त्वको न समझनेसे वह भोगोंको ही रसरूप जानकर उनमें ही आसक्त होता है, भोगोंमें आसक्त होनेसे उसे भिन्नता ही रुचती है और भेद-बुद्धि होनेसे वह भयरूप संसारको ही प्राप्त होता है। भोगोंमें आसक्त होना, भेद देखना और जन्म-मरणरूप भयको प्राप्त होना—यही पुरुषसे स्त्री बन जाना है। विषयासक्त भेददर्शी ही स्त्री है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। और विरक्त अभेददर्शी ही पुरुष है, चाहे स्त्री हो और चाहे पुरुष, इसीलिये विषयासक्त पुरुषको अमरकथा सुननेका अधिकार नहीं है। विरक्त बहिन-भाइयोंको ही अमरकथा सुननेका अधिकार है। विरक्त बहिन-भाई तो शिव-पार्वतीके क्रीडास्थानमें शुकदेवजीके समान निःशंक होकर चले ही जाते हैं और अमरकथा सुनकर अमर हो जाते हैं। संसारियोंको वहाँ जानेसे डर लगता है, वे अमरकथाके अधिकारी भी नहीं हैं, इसीलिये पूर्व आचार्योंने कहा है कि अभयमें भय देखनेवालोंको निर्विकल्प-समाधिकी प्राप्ति असम्भव है। हे कान! भय मत मान, भवानी-शंकरके क्रीडास्थानमें जाकर ही अमरकथाका पान कर! यदि ऐसा नहीं कर सकता, तो शुकदेवजीकी

कही हुई अमरकथामें मन लगाकर 'शिव-शिव-शिव' सुनता हुआ ताल, स्वर और सरगमको लाँघकर 'सम' हो जा ! कृष्ण-कथा और शिव-कथामें भेद नहीं है, शिव ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही शिव हैं, इसमें रञ्चक भी सन्देह नहीं है। शिवके ही राम, कृष्ण, विष्णु आदि अनेक नाम हैं।

हे मेरी बहिना खाल ! कोमल तोशक-गद्दोंपर सो-सोकर फूलकर क्यों हुई जाती है पखाल ? स्पर्शके आधार, अधिष्ठान, अवधि शिवकी कर सँभाल ! चाहे जितने कोमल गद्दोंपर शयन कर, चाहे जितने रेशमी वस्त्र धारण कर, चाहे जितने रत्नजटित आभूषणोंसे अलंकृत हो, रहेगी तो तू चमड़ी ही, सुवर्णकी तो हो नहीं जायगी, फिर कोमलसे राग और कठिनसे द्वेष क्यों करती है ? जबतक तू राग-द्वेष करती रहेगी, तबतक शीतोष्ण आदि अनेक प्रकारके कष्ट सहती ही रहेगी। सर्प कोमल है, फिर भी कोई उसका स्पर्श नहीं करता। सर्पका स्पर्श तो एक बार ही मारता है, संसारकी कोमल वस्तुके स्पर्शमें राग करनेवाला तो करोड़ों जन्मतक मरता ही रहता है। भगवान्‌का गीतामें वचन है कि संस्पर्शसे—सम्बन्धसे उत्पन्न हुए जितने भोग हैं, वे सब दुःख देनेवाले और आदि-अन्तवाले हैं, उनमें विद्वान् रमण नहीं करते। इसलिये हे खाल ! यदि तुझे पहनने-ओढ़नेमें प्रेम हो, तो ज्ञानाग्निकी भस्म शरीरमें लपेट ले, श्रद्धा, भक्ति, वैराग्य तीन रेखाओंका तिलक माथेपर लगा ले और समदृष्टिरूप रुद्राक्षमाला गलेमें डाल ले, इनके सिवा समस्त स्पर्शकी इच्छाका त्याग करके, हे बहिन ! अपने कारणरूप शिवकी खोज कर और उन्हींका स्पर्श कर। शिवका स्पर्श करनेसे तू इतनी कोमल और चिकनी हो जायगी कि पुण्य-पापरूप कर्मका जल तेरे ऊपर टहर नहीं सकेगा और इतनी कठिन हो जायगी कि जन्म-मरणरूप संसार तुझमें प्रवेश नहीं कर सकेगा। जैसे पत्थरसे लगकर मिट्टीका ढेला बिखर जाता है, इसी प्रकार जन्म-कर्मरूप ढेला तुझ शिव-रूप ठोस पत्थरसे लगकर चूर-चूर हो जायगा। शिवका स्पर्श करनेसे तुझे ऐसा सुख होगा कि उसका वाणीसे वर्णन नहीं हो सकता। फिर तू दमड़ीकी चमड़ी नहीं रहेगी किन्तु पावनसे भी पावन और अमूल्य रसायन हो जायगी। भगवान्‌का गीतामें वचन है कि जो बाहरके स्पर्शमें मन न लगानेवाला आत्माके सुखको प्राप्त कर लेता है, वह ब्रह्मके योगसे युक्त मनवाला अक्षय सुखको भोगता है। हे प्यारी खाल ! यदि अक्षय सुख भोगना चाहती है, तो कोमल-कठिन, शीतोष्ण आदि द्वन्द्वोंको मायामय जानकर परम सुखरूप शिवका 'शिव-शिव-शिव' कहती हुई स्पर्श करके अस्पर्शरूप शिवमें लीन होकर स्पर्शातीत हो जा !

हे दिव्यदृष्टिवाली आँख ! इस मिथ्या दृश्यको आँख फाड़-फाड़कर कबतक देखती रहेगी ? जहाँ देखेगी, वहीं सृष्टि दिखायी पड़ेगी, अन्त कभी नहीं आवेगा ! जहाँ दृष्टि रोकी कि सृष्टि समाप्त हुई। 'जहाँ दृष्टि वहाँ सृष्टि' यह वेदवेत्ताओंका वचन प्रमाणरूप है। समस्त पदार्थोंमें लाल रंग अग्निका है, श्वेत रंग जलका है और काला रंग पृथिवीका है, इसलिये समस्त पदार्थ अग्नि, जल और पृथिवीरूप हैं, इन तीनोंके सिवा जगत् कहीं नहीं है, क्योंकि वाणीमात्रसे कहनेमें आता है, वस्तुरूप नहीं है। जैसे सब पदार्थ अग्नि आदिमें कल्पित हैं, इसी प्रकार अग्नि आदि सदाशिवरूप परमात्मामें कल्पित हैं, इसलिये अग्नि आदि मिथ्या हैं और एक अद्वितीय शिव ही सत्य हैं। इसीलिये तत्त्ववेत्ता इस जगत्‌की श्मशानसे उपमा देते हैं और शिवको श्मशानवासी कहते हैं। जहाँ मृतक रहते हैं उस स्थानका नाम श्मशान है। इस जगत्‌में सब मृतक ही रहते हैं, इसलिये जगत् श्मशान है। इस श्मशानरूप जगत्‌को शिवने अपनी सत्तासे व्याप्त कर रक्खा है, इसलिये यहाँके मुर्दे चेतन दिखायी देते हैं। जो आँख इस श्मशानरूप जगत्‌में भी जीते-जागते शिवको देखती है, वही सच्ची आँख है और जो आँख श्मशानको चेतन करनेवाले शिवको नहीं देखती किन्तु जगत्‌रूप श्मशानको ही देखती है, वह आँख अन्धी आँख है अथवा मोरके पंखकी आँखके समान निरर्थक है। श्रुति कहती है कि ईश्वरके देखनेसे जगत् बना है और श्रुति यह भी कहती है कि आत्मा आँखमें दिखायी देता है। इन दोनों श्रुतियोंसे सिद्ध है कि जगत् ईश्वरकी आँखमें है और ईश्वर जगत्‌की आँखमें है। युक्ति भी है कि दर्पणमें पड़ा हुआ मुखका प्रतिबिम्ब मुखसे भिन्न नहीं होता किन्तु जल और तरङ्गके समान अभिन्न ही होता है। इसी प्रकार शिवसे भिन्न जगत् नहीं है और जगत्‌से भिन्न शिव नहीं है, फिर भी शिवकी मायासे मोहित पुरुषोंको मायारूप दर्पणमें पड़ा हुआ शिवका प्रतिबिम्ब जगत् तो दिखायी देता है और बिम्बरूप शिव दिखायी नहीं देते, यह आश्चर्य है ! जगत्‌में शिवका दर्शन न होनेसे भेद दिखायी देता है, भेद दीखनेसे राग-द्वेष होता है, राग-द्वेष ही संसाररूप अनर्थके कारण हैं। हे आँख ! गुरु-शास्त्रके उपदेशसे भेद देखना छोड़ दे, अनेकमें भी एक शिवका ही दर्शन कर और पश्चात्

अनेकका देखना छोड़कर एक शिवका ही दर्शन कर, इसीमें कल्याण है। भेददृष्टिवाले होनेसे ही सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि और मृत्यु समर्थ देव अबतक चक्रमें हैं। इसलिये हे आँख! जगत् देखना छोड़कर 'शिव-शिव-शिव' देखती हुई अग्नि, सूर्य, चन्द्ररूप त्रिनेत्रधारी शिवके नेत्रोंमें सदाके लिये प्रवेश कर जा।

हे मेरी प्यारी रसभरी जीभ! तू सब रसोंको जाननेवाली है, इसलिये वेदवेत्ता तुझे रसना और रसज्ञा नामसे पुकारते हैं। प्रत्यक्ष देखनेमें आया है कि रेवतीवल्लभ वैद्य पचास द्रव्योंके बने हुए चूर्णमेंसे एक रत्ती चूर्ण चखकर पचासों चीजोंको बता देते हैं, फिर तेरे रसज्ञा होनेमें क्या सन्देह है? फिर भी हे बहिन! षट्रस पहचान लेनेसे तत्त्वदर्शी पुरुष तुझे रसना या रसज्ञा नहीं कह सकते, वे तो तुझे तभी रसज्ञा कहेंगे, जब तू रसोंके भी रस शिवको पहचान लेगी। श्रुति कहती है कि 'रसो वै सः' अर्थात् रस तो शिव ही हैं, अन्य रस तो रसाभास हैं, रस नहीं हैं किन्तु रसके आभास यानी छाया हैं। भगवान् गीतामें कहते हैं कि 'जलोंमें मैं रस हूँ'—भगवत्के इस वचनके अनुसार सब रसोंमें शिव ही रस हैं। शिवमें और भगवान्‌में भेद नहीं है, भगवान् कहते हैं कि 'रुद्रोंमें मैं शङ्कर हूँ' इसलिये शिव ही रस हैं, शिवके रससे ही सब पदार्थ रसीले प्रतीत होते हैं। शिवविमुख पुरुष रसोंको देखकर या चखकर मोहित हो जाते हैं और शैव यानी शिवभक्त तो शिवके रसका ही अथवा शिवरूप रसका ही सर्वत्र अनुभव करते हैं। हे बहिन जिह्वा! 'यथा नाम तथा गुणः' इस लोकोक्तिके अनुसार अपना नाम सार्थक कर ले। ईश्वरने तुझे दो शक्तियाँ प्रदान की हैं, रसको तू जान सकती है और उसका वर्णन भी कर सकती है, इसलिये हे बहिन! दिल्लीके दालमोठ, आगरेका हलवासोहन, हापड़के पापड़ और मथुराके पेड़े देखकर लार मत टपकाया कर और मुख बना-बनाकर उनकी प्रशंसा मत किया कर, सब पदार्थोंमें शिव-रस ही चक्खा कर और शिव-रसका ही निरूपण किया कर। अन्तमें खानमें, पानमें शिव-रसका स्वाद लेती हुई 'शिव-शिव-शिव' कहती हुई शिव-रसमें मिलकर सर्वदाके लिये रसरूप होकर मौन हो जा!

हे सुहानी नाक! सचमुच तू ही इस शरीरकी नाक है, तुझसे ही इस शरीरकी शोभा है, यदि तू न हो तो इस शरीरकी सुन्दरता ही न रहे। तू शरीरहीकी शोभा नहीं है किन्तु चराचर प्राणियोंकी भी तू ही शोभा है, क्योंकि नाकवाला ही लोकमें शिष्ट समझा जाता है। जो नाकवाला नहीं होता, उसकी लोकमें प्रतिष्ठा ही बिगड़ जाती है। यदि तू नहीं होती तो मनुष्य भक्ष्याभक्ष्य चाहे जो कुछ खाने लगता। जैसे तेरी मा पृथिवी समस्त विश्वको भोजन-बसन देकर पालती है, इसी प्रकार पृथिवीकी बेटी तू भी भक्ष्याभक्ष्यका ज्ञान कराके लोकोंकी रक्षा करती है। प्रथम तू गन्धद्वारा भोजनके गुण-अवगुण बताती है, पीछे जिह्वा भोजनका स्वाद बताती है, इसलिये तू जिह्वासे श्रेष्ठ है, इसी कारण महेश्वरने तुझे ऊपर और प्रत्यक्ष रक्खा है और जिह्वाको नीचे और गुप्त रक्खा है। जिह्वासे एक गुण तुझमें और भी अधिक है कि तू वस्तुका गुण दूरसे ही बता देती है जिह्वा तो वस्तुसे संसर्ग होनेपर उसका गुण बताती है। सारांश यह है कि तू प्राणियोंके बड़े कामकी है और शिष्ट पुरुषोंकी शोभा और प्रतिष्ठा जो कुछ है, तू ही है। जिसके नाक नहीं, वह न शिष्ट है, न प्रतिष्ठित है। शिष्ट और प्रतिष्ठित पुरुष और स्त्रियोंको उत्तम कर्म करते हुए अपनी नाककी रक्षा करनी चाहिये, यही बात दिखानेके लिये सुमित्रानन्दन रामानुज लक्ष्मणजीने शूर्पणखाकी नाक काटकर सबको शिष्ट और प्रतिष्ठित होनेकी शिक्षा दी है। वेदवेत्ता तुझे घ्राण और गन्धवहा नामसे पुकारते हैं और मैंने तो एक विद्वान्‌के मुखसे ऐसा सुना है कि क नाम सुखका है, अक नाम सुखके अभाव यानी दुःखका है और जहाँ अक यानी दुःख न हो, उसका नाम नाक है। यही अर्थ मुझे रुचता है, क्योंकि शिवमें दुःख नहीं है, इसलिये शिव ही नाक हैं। जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है, इसलिये शिवमेंसे प्रकट हुई तू भी नाक ही है, इसीसे सब तुझसे ही अपनी शोभा समझते हैं। हे सुभगे! नाकरूप शिवकी शक्ति होकर तुझे गन्दी न होना चाहिये किन्तु सबमें तुझे शिवरूप पवित्र गन्ध ही सूँघनी चाहिये। इसलिये अब तू मायिक गन्धोंका त्याग करके 'शिव-शिव-शिव' सूँघती हुई शिवमें लीन होकर अक्षय शोभन गन्ध सर्वदाके लिये हो जा।

हे भाई मन! क्या तुझे मालूम नहीं है कि तू शिवहीका अंश है? शिवकी अद्भुत शक्ति है? भगवान्‌का गीतामें वचन है कि इन्द्रियोंमें मैं मन हूँ। शिवका अंश होनेसे ही तू क्षणभरमें पातालसे सत्यलोकमें पहुँच जाता है। वेदवेत्ताओंका कथन है कि मन त्रिगुणमय और सत्त्वगुणकी विशेषतावाला है। वेदवेत्ताओंका यह कथन लोकदृष्टिसे है

नहीं तो तू त्रिगुणमय होते हुए भी तीनों गुणोंसे अतीत है। हे मन ! तू जड-चैतन्य-मिश्रित है, जब तुझमें तमोगुण अधिक हो जाता है, तब जडता अधिक हो जाती है और जब तुझमें सत्त्वगुण अधिक होता है, तब जडता थोड़ी हो जाती है। तेरे जडभागसे मोहमय जगत्–भ्रम दिखायी देता है और उसी भागसे विषयोंका ग्रहण होता है। जिस पदार्थको तू देखता है, उसीके आकारका हो जाता है। तमोगुणी पदार्थोंका ध्यान करनेसे तू तमोगुणी, रजोगुणी पदार्थोंका ध्यान करनेसे रजोगुणी और सत्त्वगुणी पदार्थोंका ध्यान करनेसे सत्त्वगुणी हो जाता है। जब तू वृत्तिहीन, निरालम्ब, शान्त, स्थिर और निर्विषय होता है, तब निर्मलसे भी निर्मल सुप्रशान्त महामौनी शिवस्वरूप ही हो जाता है। जब ऐसा है, तो हे मन ! तू त्रिगुणमय कहाँ है ? जब तू जगत्का ध्यान करता है, तब जगन्मय हो जाता है और जब तू शिवका ध्यान करता है, तब शिवमय हो जाता है। जगत्में अनेक पदार्थ हैं, अनादि कालसे तू जगत्में घूम रहा है, अबतक तुझे शान्ति प्राप्त नहीं हुई। हो भी कहाँसे ? कहीं ओसमें स्नान हो सकता है या मरुजलसे प्यास बुझ सकती है ? न ओसमें स्नान हो सकता है, न मरुजलसे प्यास बुझ सकती है। इसलिये हे मन ! अनर्थकारी नीरस भोगोंका ध्यान करना छोड़ दे ! विषयोंमें सुख नहीं है, सुख और शान्ति तो शिवमें ही है। जिन महाशम्भुमें करोड़ों ब्रह्माण्ड रुण्डमालाके समान लटक रहे हैं, उन्हीं सत्य, निरञ्जन एक महादेवका ध्यान कर ! नाम-रूपको छोड़कर महेश्वरमें ही रति कर, उन्हींमें प्रेम कर, उन्हींमें तृप्ति मान, उन्हींमें सन्तुष्ट हो ! संसार असार है, हरका आराधन ही सार है ! यदि शम्भुको न भजा, तो जन्म, यज्ञसूत्र, विद्या और कमण्डलुसे क्या लाभ है ? स्वप्नमें, जागतेमें शम्भुका ध्यान करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और जीव मायाको तर जाता है, इसलिये हे मन ! 'शिव, शिव' शिव' ऐसा ध्यान करता हुआ शिवमें लीन होकर अमन हो जा !

हे चित्त ! तेरा स्वरूप चित्स्वरूप शिव ही है। जबसे तू कल्याणस्वरूप शिवको भूल गया है, तबसे ही तू चित्त है और चित्त होनेसे तू कभी चित्त और कभी पट्ट होता रहता है। जब तू सुषुप्तिमें चित्स्वरूप शिवमें लीन हो जाता है, तब शवरूप संसार भी लीन हो जाता है, केवल चित्स्वरूप शिव ही शेष रहते हैं। जब तू जाग जाता है, तब फिर संसार देखने लगता है, इससे सिद्ध होता है कि केवल शिव ही सत्य हैं और यह संसार स्वप्नके समान तेरा रचा हुआ होनेसे मिथ्या है, क्योंकि तेरे भावमें ही जगत्का भाव है और तेरे अभावमें जगत्का अभाव है। जबतक तू संसारका ध्यान करता रहेगा, तबतक तू जन्म-मरणरूप संसारसे छूट नहीं सकता, यह बात सम्यक् सत्य है ! गीतामें भगवान्का वचन है कि विषयोंका ध्यान करनेसे पुरुषका विषयोंसे संग होता है, संगसे काम उत्पन्न होता है, कामसे क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे संमोह होता है, संमोहसे स्मृति भ्रष्ट होती है, स्मृति भ्रष्ट होनेसे बुद्धिका नाश होता है और बुद्धिका नाश होनेसे पुरुष नष्ट हो जाता है यानी अन्धकाररूप संसारको प्राप्त होता है। यह भगवान्का वचन नित्यप्रति पढ़ता हुआ भी यदि तू विषयोंका ही ध्यान करता रहा, तो तेरे समान मूर्ख कौन है ? भगवान्का यह भी वचन है कि जब योगाभ्याससे चित्त निरुद्ध हो जाता है और आत्मासे आत्माको देखकर आत्मामें ही सन्तुष्ट हो जाता है, तब योगी उस अत्यन्त सुखको प्राप्त होता है, जो इन्द्रियोंका अविषय है और बुद्धिसे ही ग्राह्य है, उस सुखको पाकर योगी तत्त्वसे चलायमान नहीं होता, इससे अन्य सुखको सुख नहीं मानता और भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता। यदि भगवान्के इस वचनपर तूने विश्वास न करके शिवका ध्यान न किया तो जन्म-जन्म पछताता ही रहेगा। इसलिये हे चित्त ! क्षणभंगुर उत्तम मनुष्य-शरीर पाकर प्रमाद मत कर और 'शिव-शिव-शिव' ऐसा निरन्तर चिन्तन करता हुआ उपाधिरूप तकारको छोड़कर चित्तसे चित् होकर चित्स्वरूप शिवमें ही विलय हो जा।

हे री बुद्धि ! क्या तू 'यहाँ भेद कुछ नहीं है' 'जो भेद देखता है, वह बारम्बार मरता रहता है' 'वासुदेव ही यह सब है' 'सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ' इत्यादि श्रुति-स्मृतियाँ पढ़कर भी अपना स्त्री-स्वभाव नहीं छोड़ेगी ? भेद देखती हुई राग-द्वेष ही करती रहेगी ? तू भिन्नता देखती है, इसीसे वेदवेत्ता वेश्यासे तेरी उपमा देते हैं, जबतक तू भिन्नता देखेगी तबतक क्षणिक होनेसे व्यभिचारिणी ही कहलायगी और जब तू भेद देखना छोड़ देगी, तब तू स्त्रीसे पुरुष बन जायगी और तेरा नाम विज्ञान हो जायगा। शुद्ध बुद्धिको वृद्ध पुरुषोंने विज्ञान ही कहा है। अरी सुबुद्धे ! जैसे शिवरूप बोधमें भेद नहीं है, इसी प्रकार शिवरूप तुझमें भी भेद नहीं है। जहाँ कहीं भेद दिखायी देता है, वहाँ श्रोत्रादि इन्द्रियोंका भेद है। जब तू इन्द्रियोंको अपनी सखी बना

लेती है, तब तुझे भेद न होते हुए भी भेद दिखायी देने लगता है। जब तू श्रोत्रेन्द्रियसे मिल जाती है, तब रोचक, भयानक शब्द सुनने लगती है। जब तू स्पर्शेन्द्रियसे मेल कर लेती है, तब कोमल-कठिन, शीतोष्ण स्पर्श करने लगती है। जब तू नेत्रेन्द्रियसे तादात्म्य कर लेती है, तब नीला-पीला, धोला-काला, रूप-कुरूप देखने लगती है। जब तू रसनेन्द्रियसे सम्बन्ध कर लेती है, तब मीठा-खट्टा, कड़वा-खारी, कसैला-चरपरा चखने लगती है, जब तू नासिकासे संसर्ग कर लेती है, तब सुगन्ध, दुर्गन्ध सूँघने लगती है और जब तू सुषुप्तिमें शिवके साथ एकमेक हो जाती है तो श्रोत्रादि इन्द्रियोंका किया हुआ शब्दादि भेद विला जाता है, तब भेद सच्चा कहाँ है, भ्रम ही है! इसलिये हे बहिन! अब तू सब कामनाएँ छोड़ दे, अपने आत्मा शिवमें सन्तुष्ट होकर स्थिर हो जा! दुःखमें उद्विग्न मत हो, सुखकी स्पृहा मत कर और राग-द्वेषसे रहित हो जा। शुभाशुभ किसीमें स्नेह मत कर। स्नेह ही बन्धन है, मत हर्ष कर, मत शोक कर! अपनी सहेली इन्द्रियोंको वशमें रख, उनकी चेरी—दासी मत बन! इन्द्रियोंके वश हो जाना बन्धन है और इन्द्रियोंको वशमें रखना ही मोक्ष है, इसलिये हे बहिन! अब तू अपनी सहेलियोंको साथ लेकर 'शिव-शिव-शिव' ऐसा अनुसन्धान करती हुई, बोधरूप शिवमें लीन होकर अपना परिच्छिन्न भाव छोड़ दे और अपरिच्छिन्न होकर सर्वत्र फैल जा।

हे भाई अहंकार! तू शिवका प्रथम विकार है, तूने ही चित्त और बुद्धिको धारण कर रक्खा है, इसलिये उन दोनोंमें तू प्रधान है। तेरे देवता रुद्र हैं, चित्तके देवता वासुदेव हैं और बुद्धिके देवता ब्रह्मा हैं। यद्यपि तीनों देव स्वरूपसे एक ही हैं और विशेषरूपसे भी तीनों एक ही हैं, क्योंकि तीनोंके शरीर शुद्ध सत्त्वमय हैं, फिर भी अहंकारके देवता होनेसे तीनों देवोंमें रुद्रको ब्रह्मवेत्ताओंने श्रेष्ठ और ज्येष्ठ माना है। योगियोंका अनुभव है कि प्रथम ब्रह्मग्रन्थिका भेदन होता है, फिर विष्णुग्रन्थिका छेदन होता है और अन्तमें रुद्रग्रन्थि टूटती है। इससे सिद्ध होता है कि शिव तीनों देवोंमें प्रधान हैं फिर भी मुझे इसमें आग्रह नहीं है, मेरे लिये और मेरी दृष्टिमें तो सभी समान हैं, इस मेरे कहनेसे मेरा प्रयोजन इतना ही है कि तू अहंकार शिवका समीपवर्ती होकर शिवको क्यों भूलता है और मिथ्या संसारमें क्यों भटकता है? देहका क्यों अभिमान करता है? शिवका ही क्यों नहीं अभिमान करता? जैसे मिट्टीके कार्य घटादि पदार्थ मिट्टीरूप ही हैं, लोहेके कार्य चाकू आदि लोहारूप ही हैं और सुवर्णके कार्य कटक-कुण्डलादि सुवर्णरूप ही हैं, इसी प्रकार शिवका कार्य तू शिवरूप ही है, शिवसे भिन्न नहीं है, फिर तू अपनेको शिवसे भिन्न देहरूप क्यों समझता है? देहाभिमान करना छोड़ दे, देहाभिमान ही बन्धन है, देहाभिमान ही मोह है, देहाभिमान ही अध्यास है, देहाभिमान ही चिज्जडग्रन्थि है, देहाभिमान ही अविद्या है, सारांश यह कि देहाभिमान ही जन्म-मरण आदि समस्त अनर्थोंका कारण है। जो जिसको भजता है, उसीको प्राप्त होता है, यह सनातन मर्यादा है। यदि तू देहको भजता रहेगा, तो बारम्बार ऊँच-नीच देहोंको ही प्राप्त होता रहेगा और मरता रहेगा, और शिवको भजेगा तो शिवको ही प्राप्त होगा, तथा शिवको प्राप्त होकर सर्वदाके लिये अजर-अमर हो जायगा! भाई! अन्धेके समान अब ठोकरें मत खा, देहको मत प्यार कर, शिवको प्यार कर, शिवको ध्येय बना, शिवका भजन कर और 'शिव-शिव-शिव' भजता हुआ शिवमें अपनी आहुति दे दे!

हे प्यारे प्राण! तुझे वेद सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बताता है और है भी ऐसा ही, क्योंकि तू ही अहंकारादिको संघट्ट करके इस संघातको चला रहा है। हिरण्यगर्भ भगवान्‌की तू एक कला है। जैसे सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ ब्रह्माण्डको धारण कर रहे हैं, इसी प्रकार तू इस शरीरको धारण कर रहा है अथवा यों कहना चाहिये कि तू एक ही अनेक होकर अनेक शरीरोंको धारण कर रहा है। जब सब इन्द्रियाँ थककर सो जाती हैं तब तू अकेला ही जागता रहता है, खाये-पियेको पचाकर सब इन्द्रियोंका पोषण करता है, बिना सोये सौ वर्षतक कालभगवान्‌से युद्ध किया करता है, इसलिये तू इस पिण्डमें और ब्रह्माण्डमें सबसे श्रेष्ठ है और यदि तू इस शरीरका राजा नहीं भी है, तो भी प्रधान या मन्त्री तो है ही, इसमें संशय नहीं है। कोई-कोई विद्वान् तुझे जड बताते हैं, परन्तु तू जड नहीं है, चेतन ही है। विद्वानोंने जो तुझे जड बताया है, वह उनका कथन शिवका स्वरूप बतानेकी अपेक्षासे है। जैसे सूर्यकी छाया धूप सूर्यके समान उष्ण ही है, इसी प्रकार शिवका श्वास तू शिवके समान चेतन ही है। महत्तत्त्व शिवकी ज्ञानशक्ति है और सूत्ररूप तू शिवकी क्रियाशक्ति है, परन्तु ये दोनों शक्तियाँ परस्पर भिन्न नहीं रहतीं, साथ-ही-साथ ही रहती हैं। वेद कहता है

कि 'ब्रह्मके लिये नमस्कार है। हे वायु ! तुझको नमस्कार है। तू प्रत्यक्ष ब्रह्म है। तुझे मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहता हूँ, सत्य कहता हूँ, ऋत कहता हूँ।' इस श्रुतिसे भी तू चेतन है ऐसा सिद्ध होता है, इसलिये हे प्राण ! अब तू संसारकी तरफ वहन करना छोड़ दे और शिवकी ओरको वहन करता हुआ 'शिव-शिव-शिव' श्वास-प्रश्वासमें बोलता हुआ शिवमें जाकर ही स्थिर हो जा !

हे जीवाराम ! छोड़ दे सब काम, हो जा आत्माराम ! 'सब तज हर भज' यही वेदका सिद्धान्त है। जो देहको भजता है, वह देहको प्राप्त होता है और जो शिवको भजता है, वह शिवको प्राप्त होता है। देहको भजनेसे ही तू नौ मासतक कालकोटरीमें बन्द रह चुका है और अब सौ वर्ष-की जेल भुगत रहा है। कालकोठरीमें तुझे शिवके अनुग्रह-से अपने जन्मोंकी स्मृति हो आयी थी और तूने प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं इस कालकोटरीमेंसे निकल जाऊँ तो शिव-का भजन करूँगा कि जिससे फिर इस कालकोठरीमें न आऊँ। क्या तू उस प्रतिज्ञाको भूल गया ? भाई ! अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर, 'देहोऽहम्' 'देहोऽहम्' भजना छोड़कर 'शिवोऽहम्' 'शिवोऽहम्' भजना आरम्भ कर ! तुझमें और शिवमें भेद नहीं है, तुझमें और शिवमें भेद न हो, इतना ही नहीं, जगत्‌में भी भेद नहीं है। समस्त जगत् पञ्चमहाभूतोंका कार्य होनेसे एक ही है। जगत् दृश्य है और जगत्‌का द्रष्टा तू है। दृश्य और द्रष्टा दोनों मिथ्या हैं, क्योंकि परस्पर एक-दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। दृश्य द्रष्टाकी अपेक्षा रखता है यानी द्रष्टा विना सिद्ध नहीं होता और द्रष्टा दृश्यकी अपेक्षा रखता है यानी दृश्य विना द्रष्टा असिद्ध है, इसलिये दृश्य और द्रष्टा दोनों ही कल्पित होनेसे मिथ्या हैं। जिनमें दृश्य और द्रष्टा दोनों भासते हैं, वही स्वयं-ज्योति-निरपेक्ष शिव सत्य हैं, उनके सिवा दृश्य और द्रष्टा असत्य हैं, इसलिये भेद सिद्ध नहीं होता। इसप्रकार युक्तिसे शिवमें भेद असिद्ध है और श्रुतिसे भी भेद सिद्ध नहीं होता। 'वह तू है' 'मैं ब्रह्म हूँ' 'यह आत्मा ब्रह्म है' 'प्रज्ञान ब्रह्म है' 'सत्य ज्ञान, अनन्त ब्रह्म है।' 'सृष्टिसे पूर्व एक अद्वितीय सत् ही था।' 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है' इत्यादि श्रुतियाँ भी भेदका निवारण करती हैं, फिर भेद कैसा ? फिर भी शिवकी मायासे मोहित बहिन-भाइयोंको भेद दिखायी देता है, यह उनका दुर्भाग्य ही है। भेद ही बन्धन है, भेद ही जन्म-मरणरूप संसार है, भेदसे ही कर्तृत्व-भोक्तृत्व है, भेदसे ही जीवत्व है, भेदसे ही राग-द्वेष है; सारांश यह है कि भेद ही सब अनर्थोंका मूल है। हे जीवाराम ! भेद-दृष्टि त्याग दे, यदि भेद-दृष्टि नहीं त्याग सकता, तो भेदमें भी यानी अनेकमें भी एक अपने आत्मा शिवका ही दर्शन कर, ऐसा करनेसे मायाका रचा हुआ भेद विलय हो जायगा। जैसे सूर्यके सामने अँधेरा ठहर नहीं सकता, इसी प्रकार शिवके सामने माया और मायाका रचा हुआ भेद ठहर नहीं सकता ! शिव एक हैं, प्रेमस्वरूप हैं, सबके अपने-आप हैं। देह-गेहादि सबमेंसे प्रेम हटाकर केवल शिवमें ही प्रेम कर। जबतक तू अपना किञ्चित् भी अभिमान करेगा यानी अपनेको कुछ भी मानेगा, तबतक तुझे शिवकी प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि 'प्रेम-गली अति साँकरी तामें दो न समायँ।' ऐसा विद्वानोंका कथन और अनुभव है। इसलिये हे जीवाराम ! ब्रह्माण्डको, पिण्डको, सूक्ष्मको, कारणको भूल जा और अपने जीवत्वको भी शिवकी भेट करके 'शिव-शिव-शिव' ऐसा प्रेमपूर्वक अनुसन्धान करता हुआ प्रेमरूप शिवमें लीन होकर शान्त हो जा।

पाठको ! सुनते हैं कि पूर्वकालमें जीवाराम नामका कोई सच्चा शैव उपर्युक्त प्रकारसे शिवका अनुचिन्तन करता हुआ, जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलकर अपने नाम-रूपका त्याग करके समुद्ररूप ही हो जाती हैं, इसी प्रकार अपनी कलाओंसहित शिवमें मिलकर शिवरूप ही हो गया, फिर उसका उत्थान नहीं हुआ ! आजकल भी 'वसुन्धरा रत्नोंसे रिक्त नहीं है'—इस लोकोक्तिके अनुसार कोई-न-कोई शिवमें लीन होकर शिवरूप होता ही होगा, परन्तु ऐसी गति प्रत्येकके लिये प्राप्त होनी कठिन है, किसी बिरलेको ही अनेक जन्मोंके पुण्य-प्रभावसे और चिरकालतक आत्मा-नुसन्धान करनेसे ऐसा सौभाग्य प्राप्त होता है, फिर भी अपनी योग्यताके अनुसार सभी ईश्वर-भजन कर सकते हैं और सबको करना उचित भी है, क्योंकि संसार निस्सार है, यहाँकी सब वस्तुएँ नाशवान् हैं, नाशवान् वस्तुसे किसी प्रकार भी सुखकी प्राप्ति होना असम्भव है। सुख तो अविनाशी वस्तुसे ही हो सकता है। शिव ही केवल सत्य-स्वरूप और अविनाशी हैं, सबके हृदयमें विराजमान हैं और सबके आत्मा हैं। श्रुति कहती है कि यह जो कुछ देखने, सुनने और जाननेमें आता है और जो कुछ देखने, सुनने और जाननेमें नहीं आता—सब ओंकार ही है। जैसे

ओंकारकी चार मात्राएँ हैं, इसी प्रकार शिवकी शकार, इकार, वकार और अकार—चार मात्राएँ हैं, इसलिये यह सब शिव ही हैं। शकार विराट्रूप है, इकार हिरण्यगर्भरूप है, वकार ईश्वररूप है और अकार परब्रह्मरूप है अथवा शकार विश्व है, इकार तैजस् है, वकार प्राज्ञ है और अकार आत्मा है अथवा शकार उत्पत्तिरूप है, इकार स्थितिरूप है, वकार प्रलयरूप है और अकार मायातीत है अथवा शकार जाग्रत् है, इकार स्वप्न है, वकार सुषुप्ति है और अकार तुर्य है अथवा शकार सत्त्व है, इकार रज है, वकार तम है और अकार गुणातीत है अथवा शकार ज्ञाता है, इकार ज्ञान है, वकार ज्ञेय है और अकार शुद्ध संवित् है अथवा शकार आधिभौतिक है, इकार अध्यात्म है, वकार अधिदैव है और अकार निरुपाधिक तत्त्व है। इसप्रकार शिव ही सर्व और सर्वातीत, सब विश्वके आधार और अधिष्ठान हैं, सबके पूजनीय और सबके आत्मा हैं, इसलिये जैसे बने वैसे, चाहे जिस नाम और रूपसे, सगुण अथवा निर्गुणस्वरूपसे अपनी योग्यतानुसार सबको शिवका भजन करना चाहिये। शिवका भजन करनेवाला जहाँ जन्मता है, वहीं सुखी रहता है और अन्तमें अभेददर्शी यानी समदर्शी होकर शिव-सायुज्यको प्राप्त होता है। सबका सारांश यह है—

कुं०—हर-हर जपिये मन्त्रवर, पढ़िये शिव-सद्ग्रन्थ।
कीजै शंकर चिन्तवन, यह ही सच्चा पन्थ॥
यह ही सच्चा पन्थ, सर्वमें शम्भु निहारे।
अधिष्ठान शिव सत्य, विश्व अध्यस्त विचारे॥
भोला! भूला शम्भु, तभीसे फिरता दर-दर।
दर-दर अब मत घूम, प्रेमसे भज रे हर-हर॥

भगवान् शंकर

(लेखक—वेददर्शनाचार्य मण्डलेश्वर स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज)

भगवान् शंकर चाँदीके पर्वतके समान गौर हैं। मस्तकमें शशिकला शोभायमान है। हस्तीके शुण्डके समान चार भुजाएँ हैं। उनमें परशु, मृग, वर और अभयको धारण किये हुए हैं। कटिमें व्याघ्रचर्म धारण किये हैं। उन मुक्तिके दाता भक्तहितकारी शिवजीके तीन नेत्र और पाँच मुख हैं। भगवान् शिवजीका यह स्वरूप सृष्टि, स्थिति और प्रलयभावका सूचक और जीवकी आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मुक्तिका भी द्योतक है। इतना ही नहीं, भगवान् शिवजीके इसी मङ्गलमय स्वरूपसे तमोमय संहारभावको धारण करनेसे रुद्रमूर्ति भी प्रकट होती है। इससे स्पष्ट प्रकट है कि भगवान् शंकरमें एक शान्तिमय शिवभाव और दूसरा प्रलयकारी रुद्रभाव विराजमान है। वैसे तो शास्त्रोंमें भगवान् शंकरके अनेक प्रकारके रूप निरूपण किये गये हैं परन्तु वे सब इन्हीं दो भावोंके अन्तर्भूत हैं। भगवान् शंकरकी कृपासे उन्हींके शरीरपर ही समस्त प्रकृतिका विलास प्रकाशित होता है इसलिये उनका शरीर गौर है, पञ्चमुख तथा त्रिनेत्र हैं। उनका शरीर गौर होनेका कारण यह भी है कि जिस केन्द्रपर समस्त प्राकृतिक वर्णोंका विकास होता है वहाँ श्वेत ही वर्ण होता है। जैसे सूर्यसे सब रङ्गोंका विकास होता है तो सूर्य भगवान् श्वेत हैं। शंकरजीके पञ्चमुख प्राकृतिक पञ्चतत्त्वोंको सूचित कर रहे हैं। भगवान्के दोनों नेत्र पृथिवी और आकाशके सूचक हैं, तृतीय नेत्र बुद्धिके अधिदैव सूर्य वा ज्ञानाग्निका सूचक है। इसी ज्ञानाग्निरूप तृतीय नेत्रके खुलनेसे काम भस्म हो गया था। मनका अधिदैवरूप चन्द्र भगवान्के मस्तकपर विराज रहा है। इसप्रकार उनके ईश्वरभावके द्वारा संसारका प्रकाश हो रहा है। इसी ईश्वरभावको लिये हुए भगवान् शंकर हाथमें तीनों गुणोंके सूचक त्रिशूलको धारण किये हुए हैं। इस त्रिगुणरूप त्रिशूलपर जगत्रूप काशीपुरी विराजमान है। जबतक त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके अन्दर शिवजीकी सत्ता रहेगी तबतक जगत्रूप काशीपुरीका नाश न होगा। भगवान् शिव एक हाथमें कामका सूचक मृग धारण किये हुए हैं, दूसरेमें धर्मका सूचक वर, तीसरेमें अर्थका सूचक परशु और चौथे हाथमें मोक्ष-सूचक अभय धारण किये हुए हैं। इसप्रकार शिवजीके इस स्वरूपसे उनका ईश्वरभाव प्रकट किया गया है। भगवान् शंकरके प्राकृतिक प्रलयकारी दोनों भाव निम्नलिखित रूपसे प्रकट होते हैं।

शिवभावका रहस्य

जिस समय परमात्मा तामसिक शक्तिको धारणकर समस्त ब्रह्माण्डका नाश कर देते हैं उसे प्राकृतिक प्रलय कहा जाता

है। सृष्टिप्रलयकर्त्ता शिवजीका यह प्रथम भाव है। जिस समय जीव अपने आपको ब्रह्ममें मिला देता है और अपनी भेदात्मिका सत्ताको आत्यन्तिक रूपसे दूर कर देता है तब उस जीवके जीवभावका सर्वथा ही नाश हो जाता है, केवल ईश्वरभाव अर्थात् ब्रह्मभाव अवशिष्ट रह जाता है। उस दशा-का नाम आत्यन्तिक प्रलय है। इस प्रलयके साथ परमात्मा-का खासतौरसे सम्बन्ध रहता है, इसलिये शिवजीका यह द्वितीय भाव है। प्राकृतिक प्रलय-भावके सूचक रुद्रस्वरूप-में शिवजी भूत, भविष्यत् और वर्तमान-कालके भेदसे युक्त प्रलयकारी कालका सूचक त्रिशूल हाथमें धारण किये हुए हैं; दूसरे आत्यन्तिक प्रलयकारी भाव-दशामें वही त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंका सूचक है। क्योंकि त्रिविध दुःखोंसे दुखी हुआ पुरुष ही इस संसार-से मुक्त होनेके लिये भगवान्‌की शरण लेता है। प्राकृतिक प्रलयकारी रुद्रभावमें शिवजी मुण्डमाली, भस्मावलिप्त, श्मशानवासी, भुजङ्गधारी, कभी व्याघ्रचर्मधारी तो कभी कपर्दी, विषपायी और डमरूधारी हैं। जिसप्रकार स्थूल, सूक्ष्म शरीर कार्य संस्कारोंके सहित अविद्यात्मक कारण-शरीरमें अवस्थान करते हैं, उस कारण-शरीरमें स्थूल और लिङ्ग-शरीरोंका केवल बीजरूपसे संस्कारमात्र अवशेष रहता है। यही कारण-शरीर-विशिष्ट चेतनकी समष्टि ही रुद्र हैं। कारण-शरीर-विशिष्ट चेतन, जो शरीरद्वयके नष्ट हो जानेपर अव-शिष्ट रह जाता है, उन्हीं सब प्रलयकालीन जीवोंकी स्थिति-की सूचक भगवान् शंकरके गलेमें मुण्डमाल पड़ी हुई है। स्थूलका अन्तिम परिणाम भस्म है। इस स्थूल ब्रह्माण्डको भस्मरूपमें ले आनेवाले शंकर हैं। इस भावको सूचन करने-के लिये उनके शरीरमें भस्म लगी रहती है। सुषुप्ति-अवस्थारूप महाप्रलय ही श्मशानभूमि है। वही रुद्रजीके निवासका स्थान है। काल भगवान्‌के अधीन है, इस भाव-को बतानेके लिये आप महाविषधर सर्पको धारण किये हुए हैं। अति शौर्यशाली तथा बली जीवोंपर शासन करनेमें समर्थ हैं, इस भावको प्रकट करनेके लिये आपने व्याघ्र-चर्म और हस्ति-चर्मको धारण कर रक्खा है। संसारके अनिष्ट-से-अनिष्ट-कारी पदार्थोंको भी अनुकूल बनानेमें समर्थ हैं, इस भावको प्रकट करनेके लिये विषपान किया करते हैं, इस जगत्‌को विनाश-की ओर अग्रसर करनेवाले रात्रि-दिवसरूप डमरूको धारण किये हुए हैं। जिस समय जीव अपनी सत्ताको शिवभावमें लीन कर देता है उस समय उस जीवसे द्वन्द्वात्मक कर्मोंसे युक्त प्रकृतिके नाना प्रकारके धर्म अपने आप ही निवृत्त हो जाते हैं। सब प्रकारके विरुद्ध धर्म उसके अनुकूल हो जाते हैं, इस बातको प्रकट करनेके लिये शंकरजी सर्पको अपना अलंकार बनाये हुए हैं।

जिनकी श्रीपार्वतीजी गृहिणी हों, कुबेर जिनके भण्डारी हों, ऐसा होनेपर भी आपका श्मशानका निवास, शरीरमें भस्मका धारण करना, हाथमें भिक्षापात्र लेकर भिक्षा माँगना—यह सब आत्यन्तिक प्रलयके साधनभूत त्याग-वैराग्यादिको प्रकट करते हैं। भगवान् शंकर अपने इस-प्रकारके आचारसे जीवोंको बतला रहे हैं कि जो संसारकी सब प्रकारकी विभूतियोंको छोड़कर हाथमें भिक्षापात्र ग्रहण कर साधु हो जाता है और वैराग्यके उद्दीपनके लिये श्मशानोंमें निवास करता है वही मोक्षको प्राप्त कर सकता है। मुमुक्षुके प्राप्य लक्ष्यभावको सूचन करनेके लिये आप दिगम्बर हैं, क्योंकि ब्रह्मभाव सब प्रकारके परिच्छेदोंसे शून्य है, यही मुमुक्षुका प्राप्य लक्ष्य है। प्रथम रूपमें ब्रह्माण्डके साथ कालका सम्बन्ध है। ब्रह्माण्डकी आयुके अनुसार महाकाल रुद्र भी परिच्छिन्न हैं, इसलिये रुद्रको व्याघ्राम्बर-धारी कहा गया है। अपरिच्छिन्न ब्रह्मभाव—शिवभाव किसी-प्रकारके आवरणमें नहीं आ सकता, इसलिये भगवान् शंकर दिगम्बर हैं। शास्त्रोंमें सत्त्वगुण और तमोगुणको परस्पर मिथुनवृत्तिक बतलाया गया है, जगत्‌में अर्थात् प्रकृतिमें जिन दो वस्तुओंका स्वाभाविक सम्बन्ध हो वे वस्तुएँ मिथुन-वृत्तिक कही जाती हैं। जैसे धर्म और अधर्म, दिन और रात्रि, मृत्यु और जन्म इत्यादि—ये सब मिथुनवृत्तिक भाव कहे जाते हैं। इसी प्रकार सत्त्वगुण और तमोगुण—ये दोनों भी मिथुनवृत्तिक हैं। दोनोंमें शक्ति भी तुल्य है। सत्त्वगुण यदि जीवको उन्नत करता है तो तमोगुण उसी प्रकार वैसी शक्तिसे ही अधोगतिकी ओर ले जाता है। इसलिये सत्त्व-गुण और तमोगुणमें अन्योन्य मिथुन-सम्बन्ध है। सत्त्वके अभिमानी विष्णु और तमोगुणके अभिमानी भगवान् शंकर हैं। इसलिये इन दोनों देवोंमें परस्पर तन्मयासक्तिका भाव विद्यमान है। तन्मयासक्तिका भाव होनेसे ही तमोभिमानी शंकरजी गोरे हैं और सत्त्वाभिमानी विष्णुजी काले हैं। यदि ऐसा न होता तो भगवान् विष्णु गौर होते और भगवान् शंकर कृष्ण होते। पृथिवीमें तमोगुणकी प्रधानता है, इसलिये शास्त्रोंमें पृथिवीके अभिमानी देव भगवान् शंकरको लिखा गया है। पृथिवीका सबसे उच्च

प्रदेश हिमालयपर्वत ही उनका शिर है। हिमालयसे जगत्पावनी पुण्यसलिला श्रीगङ्गाजीका आविर्भाव होता है। इस भावको प्रकट करनेके लिये शंकरजी गङ्गाजीको अपने मस्तकपर धारण किये हैं। सत्त्वगुणका पूर्ण विकास होनेपर ही धर्मका विकास होता है। पशु-जातिमें सबसे अधिक सत्त्वगुणका विकास गो-जातिमें है, इसलिये धर्मका सूचक बैल ही शिवजीका वाहन वृषभ है। यही सब प्रकृति-लीला-निबन्धन-भावोंके अनुसार श्रीशिवजीके स्वरूपका संक्षिप्त रहस्य है।

अथर्ववेदके ग्यारहवें काण्डके द्वितीय सूक्तमें भी शंकरजीके स्तवनरूपसे उनके स्वरूपका वर्णन किया गया है। पाठकोंके निश्चयके लिये उस सूक्तके आदि तथा अन्तिम मन्त्रका उल्लेख यहाँपर किया जाता है—

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपतीपशुपती नमो वाम्। प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥१६॥

हे भव! हे शर्व! मुझे सुखी करो। हे भूतोंके पतियो! मेरे पास रक्षाके लिये सब ओरसे आओ। हे पशुओंके पतियो! आप दोनोंको नमस्कार है। आप दोनों धनुषोंमें धरे हुए विस्तृत बाणको मुझपर मत छोड़ो, आप हमारे द्विपद मनुष्योंको और चतुष्पद पशुओंको मत मारो॥१॥ हे रुद्र! आपको सायंकाल, प्रातःकाल रात्रि और दिनमें भी नमस्कार है। मैं भवदेव तथा रुद्रदेव दोनोंको नमस्कार करता हूँ। यहाँपर वेदमें वर्णित भगवान् शंकरके वही दोनों स्वरूप हैं जिनका वर्णन ऊपर शिव और रुद्ररूपसे किया जा चुका है। इसप्रकारसे सिद्ध हो गया कि शिवमूर्ति-पूजा कोई अशास्त्रीय विधि नहीं किन्तु वेदशास्त्रविहित सिद्धान्त है।

शिवलिङ्गपूजा

शिवमूर्तिके अतिरिक्त शास्त्रोंमें शिव-लिङ्ग-पूजाका भी वर्णन पाया जाता है। उसका भी कुछ थोड़ा-सा वर्णन नीचे दिया जाता है।

प्रत्येक पुरुषको अपने अनुभवमें आनेवाली उसकी अपनी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएँ हैं। इन तीन अवस्थाओंमें जागरित अवस्थामें स्थूल शरीर, स्वप्नमें लिङ्ग-शरीर और सुषुप्तिमें कारणका स्पष्टरूपसे अनुभव होता है। स्थूल शरीरोंकी समष्टि विराट् है, लिङ्ग-शरीरोंकी समष्टि हिरण्यगर्भ है और कारण-शरीरोंकी समष्टि ईश्वर है, ऐसा बहुत शास्त्रोंका सिद्धान्त है। जिसप्रकार व्यष्टिभावमें स्थूल और लिङ्ग-शरीर अङ्गसंयुक्त है और कारण-शरीर अङ्गोंसे रहित है अर्थात् निरवयव-भावमें है, उसी प्रकार विराट् और हिरण्यगर्भ भी अवयवोंसे युक्त और ईश्वरभाव अवयवोंसे विहीन है। तमोगुणके अभिमानी भगवान् रुद्र हैं। अविद्यामें तमोगुण प्रधान है इसलिये अविद्याविशिष्ट चेतन ही ईश्वरभाव है।

कारण ब्रह्म है, शिवभाव है। जिसप्रकार व्यष्टिभावमें कारण-शरीररूप अविद्यासे शिवस्वरूप चैतन्य आवृत प्रतीत होता है इसी प्रकारसे कारण-ब्रह्मरूप ईश्वर, अविद्यासे आवृत है। जीवको उसका अपना निरावृत तुरीयावस्थाका स्वरूप अनभूत है, इसलिये उसमें परिच्छिन्नताका भाव आ गया है और इसीलिये वह संसारी है। परन्तु ईश्वरभावमें अविद्यारूप उपाधि होनेपर भी 'अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्' अर्थात् अविद्याको अतिक्रमणकर स्थित रहनेवाले अपने स्वरूपका परमात्माको ज्ञान है, इसलिये परमात्मा असंसारी हैं। व्यष्टिभावमें सोपाधिक चेतनसे अभिन्न तुरीयभाव शुद्ध है। उसी प्रकार सोपाधिक ईश्वरभावसे शिवभाव—ब्रह्मभाव अभिन्न रहता हुआ भी मोक्षका आश्रय है। इससे यह सिद्ध हुआ कि शिवभाव—ब्रह्मभाव निरावृत है और ईश्वरभाव अविद्यारूप उपाधिसे आवृत है। माया—प्रकृति अविद्यासूचक जलहरी है। उस जलहरीके मध्यमें आवृत अंश ईश्वर है। जलहरीसे बाहर निकला हुआ निरावृतभाव शिवका सूचक है। जिस वस्तुके अंग व्यक्त न हों वह वस्तु पिण्डीभावमें ही होती है। सुषुप्ति-अवस्थामें प्रतीयमान विशिष्ट आत्मभाव और ईश्वरभावमें अंग व्यक्त नहीं, इसलिये ईश्वरभावकी प्रतीक होगी तो पिण्डीरूपमें ही होगी। उस अव्यक्त ईश्वरकी प्रतीकको पिण्डीभावमें दिखलाना ही युक्तियुक्त है। केवल शंकरजीकी ही ईश्वरभावकी प्रतिमा पिण्डीरूप नहीं है किन्तु भगवान् विष्णुकी भी ईश्वरभाव अर्थात् अव्यक्त-अवस्थाकी प्रतिमा पिण्डीभावमें होती है। भगवान्के अव्यक्तभावकी प्रतिमा शालिग्राम हैं। शिवरूप सत्ताको पाकर प्रकृति स्वयं ही विकाररूपमें प्रवाहित हो जगत्को पैदा करती है। इस भावको सूचन करनेके लिये पिण्डीका आश्रय जलहरी—अर्घा गोल न होकर एक ओर दीर्घ रहा करती है। लिङ्गपुराणमें लिखा है—

मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ।
रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः ॥
लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः ।
तयोः सम्पूजनान्नित्यं देवी देवश्च पूजितौ ॥

लिङ्गके मूलमें ब्रह्माजी, मध्यमें त्रिलोकीनाथ विष्णुजी और ऊपरी भागमें प्रणव नामवाले भगवान् शंकरजी स्थित हैं। लिङ्गवेदी अर्थात् जलहरी अर्घा महादेवी हैं। लिङ्ग साक्षात् महेश्वर हैं। लिङ्गवेदी और लिङ्ग-पूजनसे सर्व देव और सर्व देवियोंका पूजन हो जाता है । लिङ्गपुराणकी इस उक्तिसे कलुषित अन्तःकरणवालोंकी इस धारणाका निराकरण हो जाता है, जो यह समझते हैं कि लिङ्गपूजा अश्लीलभावको लेकर चलायी गयी है। यदि शिवलिङ्ग-पूजनका भाव अश्लील होता तो वेदसे लेकर सर्व सच्छास्त्रों-में इसका विधान न होता। श्रीमद्वाल्मीकिरामायणके समान प्राचीन ग्रन्थोंमें भी लिङ्गपूजाका विधान मिलता है। उपासना-प्रधान पुराणोंमें तो सबसे अधिक लिङ्गपूजाके ही लेख मिलते हैं। विस्तार-भयसे उन सब प्रमाणोंको यहाँपर नहीं लिखा गया। वाल्मीकि-रामायणके उत्तरकाण्डमें लिखा है कि—

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥
बालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धाढ्यैः पुष्पैश्चागरुगन्धिभिः ॥

राक्षसोंका राजा रावण जहाँ-जहाँ जाता था वहीं-वहीं सुवर्ण-की मूर्ति साथ ले जाया करता था। बालूकी वेदी बनाकर उस मूर्तिको स्थापित करता, फिर उत्तम गन्धवाले पुष्पादिसे उस मूर्तिका पूजन किया करता था। श्रीवाल्मीकिजीके लेखसे यही सिद्ध होता है कि लिङ्गपूजन-प्रथा अति प्राचीन है।

इस लिङ्गपूजामें विशेष भाव क्या है? यह बताकर इस प्रकरणका उपसंहार करेंगे। शास्त्रका यह सिद्धान्त है, जिसे पहले भी अनेक बार लिखा जा चुका है कि जिससे सृष्टि उत्पन्न होती है, उसीका अवलम्बन लेकर जीव लयकी ओर अग्रसर हुआ करता है। चैतन्यरूप लिङ्गसत्ता और जगत्-प्रसविनी प्रकृतिसत्तासे ही इस ब्रह्माण्डका विकास हुआ है। उन्हीं दो सत्ताओंकी प्रतीक लिङ्ग और वेदीके रूपमें अधिकारीके लिये स्थापित की गयी है। जब उपासक इसी व्यापकभावको अपने मनमें स्थापित करके शिव-पूजन करता है तब उसका चित्त स्थूलकी सहायतासे सर्वव्यापक परमात्माकी सत्तामें लीन होनेमें समर्थ हो जाता है। अन्तमें इस भाव-प्रधान उपासनाकी दृढ़तासे वह अनन्त विस्तार-मयी मायाकी लीलासे मुक्त होकर अर्थात् कार्य-ब्रह्मकी सहायतासे ही कार्य-ब्रह्मसे मुक्त होकर कारण-ब्रह्ममें स्थिति लाभकर मोक्षलाभ कर लेता है। यही लिङ्ग-पूजनका प्रधान उद्देश्य है। इसीलिये शास्त्रोंमें लिङ्ग-पूजनका महत्त्व अधिक वर्णन किया गया है।

श्रीशिव-तत्त्व

(लेखक—पण्डितवर श्रीपञ्चाननजी तर्करत्न)

'कल्याण' के विशेषाङ्क 'शिवाङ्क' के विज्ञापन-पत्रके साथ लेख-सूचीमें मैंने सबसे पहले 'शिव-तत्त्व' का नाम देखा। लोभ-संवरण न कर सका। इसप्रकारके अमृतमय तत्त्वके आस्वादनकी स्पृहाका परिहार न कर सका। मैं समझता हूँ कि यह स्पृहा, यह लोभ पङ्गुके गिरिलङ्घनकी कामनासे भी अधिक असम्भव है।

'यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।'

वेद भी जिसके तत्त्वका निरूपण करनेमें चकित है, मैं विषयासक्त मूढ मनुष्य उसीके तत्त्वके निरूपण करनेके लिये लेखनी हाथमें लेता हूँ। यह सत्य ही मेरी धृष्टता है, जानता हूँ यह अमार्जनीय (अक्षन्तव्य) अपराध है। लेखनी आगे चलती नहीं है, हृदय थर-थर काँप रहा है। भय और उद्वेगसे, नहीं-नहीं उल्लास, और आनन्दसे भी।

हे देवाधिदेव करुणानिधान! तुम अपने इस दीन दासके ऊपर एक बार प्रसन्न हो।

भवदुपगमशून्ये मन्मनोदुर्गमध्ये
निवसति भयहीनः कामवैरिन्त्रिपुघ्ने ।
स यदि तव विजेयस्तूर्णमागच्छ शम्भो
नृपतिरधिमृगव्यं किं न कान्तारमेति ॥

शङ्कर आमार मनो दुर्गमाझे तोमार प्रवेश नाई ।
तव रिपु काम हये निर्भय एखाने रयेछे ताई ॥
ताहाके जिनिते यदि थाके साध एस हेथा शीघ्रगति ।
श्वापदसंकुल वने जाय ना कि मृगयाय नरपति ॥

'हे शंकर! मेरे मनके किलेमें तुम्हारा प्रवेश नहीं है, इसीसे तुम्हारा शत्रु काम निर्भय होकर वहाँ बस रहा है।

यदि उसे जीतनेकी इच्छा हो तो यहाँ तुरन्त चले आओ। क्या शिकारके लिये राजा पशुओंसे भरे जंगलमें नहीं जाता?'

हे शिव! तुम्हारे प्रसादसे पवित्र स्पर्शमणिकी प्रभासे मेरी हृदय-गुहा आलोकित हो, जिससे मैं उस आलोकमें तुम्हारे दुर्ज्ञेय तत्त्वको क्षणमात्रके लिये भी अणुमात्र अवलोकनकर कृतार्थ हो जाऊँ। हे महेश्वर! महाकवि कहते हैं—'महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः'। महान् ईश्वर परमेश्वर तुम्हीं हो; परमेश्वरका तत्त्व ही तुम्हारा तत्त्व है।

इतने बड़े विशाल भूमण्डलका मानचित्र कितना छोटा होता है। घर-घरमें भूमण्डलके करोड़वें भागके एक-एक अंशमें वही मानचित्र, लाखोंकी संख्यामें रहते हैं। एक-एक क्षुद्र मानचित्रमें समस्त भूमण्डल होता है। तुम सर्वव्यापी हो, तुम्हारी साकार लीला भी तुम्हारे ही सुगम्भीर असीम परमतत्त्वका मानचित्र है। लाखों भक्तोंके हृदयमें वही मानचित्र अवस्थित रहता है। तुम्हारी स्वच्छ शुभ्र कान्ति निर्गुण परमेश्वरके स्वाभाविक निर्मलत्वकी प्रतिच्छाया है। निराकार परमेश्वर-स्वरूपमें तुम्हीं निरावरण हो, इसीसे साकार-लीलामें तुम दिगम्बर हो। परमेश्वररूपमें तुम्हीं पञ्च-ब्रह्मके प्रवर्तक हो, इसीसे साकार-लीलामें तुम पञ्चानन हो। परमेश्वर त्रिकालदर्शी है, इसीसे साकार-लीलामें तुम त्रिनयन हो। परमेश्वररूपमें तुम भय और अभय दोनोंके हेतु हो, इसीसे साकारलीलामें विषधर और सुधाकर तुम्हारे भूषण हैं। परमेश्वररूपमें सर्वातिशायिनी शक्ति तुमसे अलग नहीं रहती, इसीसे साकार-लीलामें सर्वातिशायिनी भवानी तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी है। जो 'शान्तं शिवमद्वैतम्' दुरवगाह तत्त्व है, उसीको अपने लीलाविग्रहमें चित्रित करके तुम जगत्का कल्याण करते हो। इस विषयके प्रमाण हैं—

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।' (तैत्ति० व० ३)

'सर्वव्यापी स भगवान् शिवः' (श्वेता०)

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'

'आनन्दं ब्रह्म' (तैत्ति०)

'ईशावास्यमिदꣳ सर्वम्' (ईश०)

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।'
'शान्तं शिवमद्वैतम्' (तैत्ति०)

—इत्यादि श्रुतियाँ तथा इनकी व्याख्यास्वरूप पुराणवचन नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

यतः सर्वं समुत्पन्नं येनैव पाल्यते हि तत्।
यस्मिंश्च लीयते सर्वं येन सर्वमिदं ततम्॥
तदेव शिवरूपं हि प्रोच्यते हि मुनीश्वराः॥
सत्यं ज्ञानमनन्तश्च चिदानन्द उदाहृतः।
निर्गुणो निरुपाधिश्च निरञ्जनोऽव्ययस्तथा॥
न रक्तो न च पीतश्च न श्वेतो नील एव च।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
तदेव प्रथमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञितम्॥

(शिवपु० ज्ञान० अ० ७६)

अर्थात् जिससे इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन और संहार होता है, जो इस समस्त विश्वरूपमें व्याप्त हैं, हे मुनिवर! वह (वेदमें) शिवस्वरूपसे कथित हुए हैं। वही सत्य हैं, ज्ञानस्वरूप हैं; वही अनन्त हैं, असीम चिदानन्द हैं। यह निर्गुण, निरुपाधि, निरञ्जन और अव्यय हैं। वह रक्त, पीत, नील, श्वेतवर्ण नहीं हैं। वह तो मन और वाणीकी पहुँचके परे हैं। वही ब्रह्म पहले शिव-नामसे कहे गये हैं।

उभयोर्वादनाशार्थं यद्रूपं दर्शितं पुरा।
महादेवेति विख्यातं शिवाच्च निर्गुणादिह॥
तेन चोक्तं ह्यहं रुद्रो भविष्यामि कपोलतः।
रुद्रो नाम स विख्यातो लोकानुग्रहकारकः॥
ध्यानार्थञ्चैव सर्वेषामरूपो रूपवानभूत्।
स एव च शिवः साक्षात् भक्तवात्सल्यकारकः॥

(शिवपु० ज्ञान० अ० ७७)

निर्गुण निराकार शिवसे एक अद्भुत रूप उत्पन्न होता है। ब्रह्मा और विष्णुके विवादको नष्ट करनेके लिये ही उस रूपका प्रदर्शन होता है। वह महादेव नामसे विख्यात है। उनकी स्वमुख-विनिःसृत वाणी है—'मैं रुद्र हूँगा।' संसारके प्रति अनुग्रहशील शिवने रूपहीन होते हुए भी सबके ध्येय होनेके लिये रूप धारण किया। भक्तवत्सल वह रूपधारी रुद्र भी साक्षात् शिव हैं। उन रूपहीन और रूपवान्में कोई भेद नहीं है। यजुर्वेद-माध्यन्दिनीय शाखाके सोलहवें अध्यायमें सर्वस्वरूप एक जगतपति रुद्रका तत्त्व उपदिष्ट हुआ है। उसका नाम प्रथम मन्त्रमें रुद्र; द्वितीय और तृतीय मन्त्रमें गिरिशन्त, गिरित्र; चालीसवें मन्त्रमें पशुपति, उग्र, भीम; ४१ वें मन्त्रमें शङ्कर, शिव; ४७ वें मन्त्रमें नील, लोहित; ४८ वें मन्त्रमें कपर्दी; ४९ वें मन्त्रमें मृड वर्णित हुआ है। यह सब नाम पुराण-तन्त्रादिमें भी प्रसिद्ध हैं। ५१ वें मन्त्रमें यह प्रार्थना है—

'कृत्तिं वसानः पिनाकं बिभ्रदा गहि ।'

अर्थात् व्याघ्रचर्म पहनकर और पिनाक धारण करके आओ ।

इन एक साकार शिवकी ही जगत्की नाना वस्तुओं, प्राणियों तथा जातियोंके रूपमें वन्दना की गयी है । यही जगत्पतिके नामसे पुकारे जाते हैं । निराकार शिव तथा साकार शिव एक ही हैं, यह बात इस अध्यायमें विशद-रूपसे वर्णित है ।

ऋग्वेदके ७ वें मण्डलके ५१ वें सूक्तमें इनका त्र्यम्बक नाम आया है । विदित होता है कि मृत्युके मोचनार्थ तथा अमृतमें स्थितिके लिये इनका यजन ऋषियोंने किया है ।

यह ऋग्वेदका सुप्रसिद्ध मन्त्र है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

रुद्ररचित बहुतेरे मन्त्र ऋग्वेदादि संहिताओंमें भरे पड़े हैं । श्वेताश्वतर-उपनिषद्के तृतीय अध्यायमें इसी एक शिव-तत्त्वका उपदेश किया गया है—

'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।'

पुनश्च—

'यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् ।'
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥

एक अद्वितीय रुद्र अपने शक्तिसमूहके द्वारा सब लोकोंके ईश्वर हैं । सर्वज्ञ रुद्र देवताओंके स्रष्टा और पालक हैं, उन्होंने पहले ब्रह्माकी सृष्टि की थी । उनके मुख, मस्तक और ग्रीवा असंख्य हैं, वह सब प्राणियोंकी हृदयगुहामें अवस्थित हैं, वही सर्वव्यापी भगवान् शिव हैं । इसी प्रसङ्गमें उपनिषद्ने कहा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
—इत्यादि ।

उनके हाथ नहीं, परन्तु वह ग्रहण करनेमें समर्थ हैं । चरण नहीं हैं किन्तु द्रुतगामी हैं; चक्षु नहीं परन्तु सर्वद्रष्टा हैं । कर्ण नहीं हैं तथापि वह श्रवणशक्तियुक्त हैं । इन समस्त श्रुतिवाक्योंमें शिवके निर्गुण, सगुण एवं विश्वरूपके भाव प्रदर्शित हुए हैं । लीलाविग्रहके अप्राकृत कर, चरण, नयन, कर्णादिको भी भक्तगण देखते हैं । कैवल्योपनिषद्में लिखा है—

तमादिमध्यान्तविहीनमेकं
विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ॥

वह आदि, मध्य और अन्तहीन हैं; वह रूपहीन हैं, वह एक हैं—अद्वितीय हैं, चिदानन्द हैं, वह अद्भुत हैं, देवेश हैं, वही उमासहचर त्रिलोचन नीलकण्ठ परमेश्वर हैं—अर्थात् जो निराकार हैं, वही साकार हैं । वह साकार रूपवान् होकर भुवनमोहन हैं, इसी कारण वह अद्भुत हैं । इसी भुवनमोहन रूपकी कथा शिवपुराणके अनेकों प्रसङ्गोंमें वर्णित हुई है । वही एक अद्वितीय शिव विभूतिरूपमें असंख्य हैं । शुक्ल यजुर्वेद-संहिताके सोलहवें अध्यायमें इसका प्रमाण है—

असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ।
(मन्त्र ५४)

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः ।
(मन्त्र ५५)

शर्वाः—(मन्त्र ५७)

ये भूतानामधिपतयः·····'कपर्दिनः'—(मन्त्र ५९)

रुद्रोंकी गिनती नहीं की जा सकती, यह सभी नीलकण्ठ, भूतोंके अधिपति, कपर्दी, संहार-शक्तिमान्, शर्व, भूतल, आकाश सर्वत्र ही रहते हैं । एकादश रुद्रकी कथा बृहदारण्यक, महाभारत तथा पुराणादिमें वर्णित है । रुद्र-गणोंका उल्लेख ऋग्वेदादिमें भी है ।

संख्याभेदसे जो विरोध या असामञ्जस्य जान पड़ता है, इसकी मीमांसा बृहदारण्यक उपनिषद्में देवता-संख्या-विचारके प्रसङ्गमें हुई है । जनककी सभामें शाकल्य और याज्ञवल्क्यके प्रश्न और उत्तरमें निश्चित हुआ है कि देवता त्रयस्त्रिंशत् सहस्र त्रयस्त्रिंशत् शत (३३३३००) हैं, तत्पश्चात् पुनः प्रश्नोत्तरमें कहा गया है कि देवताओंकी संख्या तैंतीस ही है । इस संख्याविरोधका परिहार इसप्रकार हुआ है—'महिमानमेवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवाः'

अर्थात् प्रथमोक्त ३३३३०० देवता इन्हीं ३३ देवताओं-की विभूतिमात्र हैं; मूलतः ३३ ही देवता हैं। इन्हींमें ११ रुद्र हैं। इन एकादश रुद्रोंकी विभूति १११९०० देवताओंमें है। सबके अन्तमें यह ३३ देवता एक ही प्राणदेवताकी विभूति हैं। वह एक प्राणदेवता ही ब्रह्म हैं। श्वेताश्वतर प्रभृति उपनिषदोंमें वही शिव आदि नामोंसे कहे गये हैं।

महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण सबमें भगवान् शिवका तत्त्व वर्णित है। उन सबमें उनके निराकार और साकार दोनों ही भावोंका निर्देश पाया जाता है। उदाहरणार्थ महाभारत और श्रीमद्भागवतसे यहाँ किञ्चित् प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। महाभारतके अनुशासनपर्वके १४ वें अध्यायमें युधिष्ठिरके प्रश्नका उत्तर देते हुए भीष्म-पितामह कहते हैं—

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते॥

ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवा उपासते॥

प्रकृतीनां परत्वेन पुरुषस्य च यः परः।
चिन्त्यते यो योगविद्भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥

अक्षरं ब्रह्म परमं असच्च सदसच्च यः।
को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम्॥

ऋते नारायणात्पुत्र शङ्खचक्रगदाधरात्।
रुद्रभक्त्या तु कृष्णेन जगद्व्याप्तं महात्मना॥
तं प्रसाद्य महादेवं बदर्यां किल भारत।
अपत् प्रियतरत्वञ्च सुवर्णाक्षान्महेश्वरात्॥
पूर्णं वर्षसहस्रन्तु तप्तवानेष माधवः।
प्रसाद्य वरदं देवं चराचरगुरुं शिवम्॥
युगे युगे तु कृष्णेन तोषितो वै महेश्वरः॥

'उन सर्व बुद्धिके अधिपति श्रीमहादेवके गुण-वर्णनमें मैं असमर्थ हूँ। वह सर्वव्यापी होते हुए भी सर्वत्र अदृश्य हैं—वही ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि देवताओंके स्रष्टा और प्रभु हैं। ब्रह्मादि देवोंसे पिशाचपर्यन्त प्राणी जिनकी उपासना करते हैं, प्रकृति और पुरुषके अतीतरूप योगमें स्थित योग-तत्त्वदर्शी ऋषिगण जिनका ध्यान करते हैं, जो अक्षर परब्रह्म हैं, जो असत् और सदसत् हैं, उन परमेश्वर भवको मेरे समान मनुष्य क्या जान सकता है? केवल एक शंख-चक्रगदाके धारण करनेवाले नारायण श्रीकृष्ण उनको जानते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण रुद्रभक्तिके प्रभावसे ही जगत्-व्यापक हो रहे हैं। उन्होंने बदरिकाश्रममें महादेवको प्रसन्नकर उनसे प्रियवरत्वरूप वर प्राप्त किया है। पूर्ण सहस्र वर्ष अर्थात् सहस्र दिन उन्होंने तपस्या की थी। उद्देश्य केवल चराचर-गुरु शिवकी प्रसन्नताकी प्राप्ति थी। श्रीकृष्णने नाना अवतारोंमें युग-युगमें महेश्वरको तपस्याद्वारा तुष्ट किया है।' इसके पश्चात् भीष्मकी प्रार्थनासे श्रीकृष्ण महेश्वरके गुण-कीर्तनमें सम्मत हो पहले ही कहते हैं—

न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः।
हिरण्यगर्भप्रमुखाः देवाः सेन्द्रा महर्षयः॥
न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण भगवान्ने महादेवजीकी जो आराधना की थी उसका पूरा वर्णन किया। भगवान् महादेव प्रसन्न होकर श्रीकृष्णके सम्मुख आ प्रकट हुए थे, उस अवस्थाका वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—

'ईक्षितुञ्च महादेवं न मे शक्तिरभूत्तदा।
ततो मामब्रवीद्देवः पश्य कृष्ण वदस्व च॥
त्वया ह्याराधितश्चाहं शतशोऽथ सहस्रशः।
त्वत्समो नास्ति मे कश्चित्त्रिषु लोकेषु वै प्रियः॥
ततोऽहमब्रवम् स्थाणुं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः।
नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति।
तपश्च सत्त्वञ्च रजस्तमश्च
त्वामेव सत्यञ्च वदन्ति सन्तः॥
त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
इत्यादि।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'तेजःपुञ्जकलेवर महादेव मेरे सम्मुख प्रकट हुए। मैं उनको देखनेमें समर्थ न हुआ, उनके तेजसे मेरी दृष्टि-शक्ति प्रतिहत हो गयी। मेरी उस अवस्थाको देखकर देवदेव श्रीमहादेव मुझसे बोले—'हे कृष्ण! मेरी ओर देखो, और अपनी मनोकामना प्रकट करो। तुमने मेरी सैकड़ों-सहस्रों बार आराधना की है। तीनों लोकमें तुम्हारे समान प्रिय मेरा कोई नहीं है।' इसके पश्चात् ब्रह्मादि देवताओंके वन्द्य श्रीमहादेवसे मैंने कहा—'हे शाश्वत पुरुष! सर्वकारण! आपको मेरा प्रणाम हो। ऋषिगण आपको ब्रह्माधिपति (ब्रह्माके भी प्रभु या वेदके अधिस्वामी)

कहते हैं। और भी आपको तपःस्वरूप, सत्त्व, रज एवं तमोगुणस्वरूप कहते हैं। आप ही सत्य हैं। (यहाँ सत्य शब्दका परब्रह्म अर्थ श्रुतिसम्मत है)। आप ही इस चराचर समस्त जगत्के सृष्टिकर्त्ता हैं।'

इसप्रकार महाभारतमें अनेक स्थानोंमें शिव-तत्त्वकी आलोचना की गयी है। श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धके सप्तम अध्यायमें है—

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनम्।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः॥

इसी प्रकार इसका पूर्व श्लोक भी है—

गुणमय्या स्वशक्त्यास्या सर्गस्थित्यप्ययान् विभो।
धत्से यथा स्वदृग् भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्॥

'तुम निगूढ़ परब्रह्म हो, सदसत् समस्त वस्तुएँ तुम्हींसे उत्पन्न होती हैं। तुम ईश्वर हो, नाना प्रकारकी शक्तियोंके द्वारा तुम जगत्स्वरूपमें प्रकाशित हो रहे हो। तुम अपनी गुणमयी शक्तिकी सहायतासे ब्रह्मा, विष्णु और शिव-नाम धारणकर सृष्टि, स्थिति और संहार करते हो। तुम स्वप्रकाश भूमास्वरूप हो।'

इसप्रकार साकार, निराकार एवं विश्वरूपकी आलोचना करनेके बाद स्तुतिकर्त्ता प्रजापतिगण कहते हैं—

यत्तच्छिवाख्यं परमात्मतत्त्वं
देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते।

'हे देव! शिव-नामसे अभिहित स्वयंज्योति परमात्म-तत्त्व ही तुम्हारी नैसर्गिक अवस्था है।'

इसके पश्चात् कहते हैं—

न ते गिरित्राखिललोकपाल-
विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम्।
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च
सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम्॥

'हे गिरित्र! तुम्हारी परम ज्योति ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि निखिल लोकपालोंको अप्राप्य है। उसमें रज, तम, और सत्त्वगुणका सम्बन्ध नहीं है एवं वही द्वैतहीन ब्रह्म है।'

अब और अधिक अवतरण देनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं रह गयी है। सभी शास्त्रोंमें शिव-तत्त्व उपदिष्ट हुआ है। न्यायशास्त्रकार महर्षि गौतमने वादयुद्धमें शिवको सन्तुष्ट करके उनकी करुणासे सिद्धि प्राप्त की थी। महर्षि कणाद शिवकी कृपासे ही वैशेषिक दर्शनके प्रणेता बने हैं। तण्डि, उपमन्यु, दधीचि, मार्कण्डेय, ऋभु, दुर्वासा प्रभृति ऋषिगण शिव-तत्त्व-सुधाके आनन्द-सिन्धुमें सदा निमग्न रहते थे। एक ऐसा समय था जब समस्त पृथिवी, यही क्यों समस्त जगत् (अखिल विश्व), ब्रह्मासे लेकर पिशाच-पर्यन्त सभी शिवकी आराधनामें रत थे। आज जगत्में उनकी आराधना ह्रासको प्राप्त हो रही है!

अब जगद्व्यापी शिवाराधनाके भेदोंका उल्लेख किया जाता है। शिवकी आराधना प्रधानतः दो प्रकारकी होती है—वैदिक और अवैदिक। देवता, ऋषि तथा वर्णाश्रम-धर्मानुयायी मानवगण शिवकी वैदिक आराधना करते हैं। इस आराधनाकी तीन पद्धतियां हैं—कर्ममार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग। रुद्र-याग प्रभृति यज्ञ, स्मार्त, पौराणिक एवं वेदानुमत तन्त्र-सम्मत शिव-पूजा कर्ममार्गके अन्तर्गत है। श्वेताश्वतर-उपनिषद्में कथित—

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं
हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिरुध्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत् विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि॥

—योग-साधना योग-मार्गकी है। तथा—

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

—इत्यादि उपनिषदोंमें प्रदर्शित पद्धति ज्ञानमार्गकी है।

पद्धति-भेदसे शिव-तत्त्वका स्मरण पहले विभिन्न हो सकता है, परन्तु चरमावस्थामें सभी एक तत्त्व हैं। अवैदिक उपासनाकी दृष्टिसे भी तीन प्रकारकी पद्धति शिवाराधनाकी है, परन्तु उससे वर्णाश्रम-धर्मका सम्बन्ध नहीं है। ब्राह्मणादि संज्ञा उस सम्प्रदायमें प्रचलित न होनेके कारण वह शैव-नामसे ही प्रसिद्ध हैं। यह शैव लोग नाथ-सम्प्रदाय, जङ्गम-सम्प्रदाय प्रभृति कतिपय सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। वर्णाश्रम-धर्मवर्जित वैष्णव भी होते हैं। इसप्रकारके शैव और वैष्णव प्रायः परस्पर विवाद किया करते हैं। स्मृति-शास्त्र वर्णाश्रम-धर्म-हीन लोगोंका पृथक् स्थान निर्देश करते हैं। मैंने इस निबन्धमें वैदिक उपासनाके अनुकूल ही शिव-तत्त्वकी आलोचना की है। श्रीमद्भागवत प्रभृति कतिपय पुराणोंमें आया है कि रुद्र ब्रह्माके ललाटसे उत्पन्न हुए हैं। कल्पभेदसे परमेश्वरकी लीला विविध प्रकारकी है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें श्रीकृष्णको परब्रह्म कहा गया है। उनके

ही दक्षिणपार्श्वसे वैकुण्ठनाथ नारायणका तथा वामपार्श्वसे कैलासपति शिवका उद्भव होता है। दोनों मतसे परब्रह्मका संज्ञाभेद होनेपर भी साकार शिव-तत्त्व मूलतः एक ही है। वैष्णवपुराणोंमें अनेक स्थानोंमें शिव विष्णुके उपासकके रूपमें कथित हुए हैं तथा शैवपुराणोंमें विष्णु शिवके उपासकरूपमें वर्णित हुए हैं। इसप्रकारके वर्णनका मूल हरिहर-की भेद-लीला है। जान पड़ता है, यही शिव-तत्त्वका चरम सिद्धान्त है।

हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदेन रूपभेदोऽयम्।
एकस्यैव नटस्यानेकविधा भूमिकाभेदात्॥*

'हरि और हरमें मूलतः भेद नहीं है। प्रत्ययमें ही भेद होता है। नाटकमें अभिनेता नाना रूप धारण करता है, परन्तु वस्तुतः वह जो है सो ही रहता है।

हे जगद्गुरु महेश्वर! एकमात्र तुम्हीं सब जीवोंके ज्ञानदाता हो, मैंने उसी ज्ञानके कणमात्रका अनुसरण कर इस दुरूह, दुर्ज्ञेय तत्त्वकी स्वल्पातिस्वल्प आलोचना की है। इसीलिये गन्धर्वराज पुष्पदन्तके पदोंका अनुसरण करता हुआ उन्हींकी भाषामें कहता हूँ—

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥

तोमार महिमा सीमा ना जानिया से विषये
आलोचने यदि हय दोष।
ब्रह्मा आदि देवता ओ ताहा हते अव्याहति
नाहि लभे प्रभु आशुतोष!
तव दत्त ज्ञानमते ये याहा बझिबे ताहे
यदि नाहिं हय अपराध।
हइले ओ क्षुद्र आमि बलिते तोमार कथा
बल केन ना करिब साध॥

नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे।
निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर॥

शिवलिङ्ग और काशी

(लेखक—पण्डित श्रीभवानीशङ्करजी)

श्रीगणेश

परम उपास्य देवोंमें एक देव श्रीआदिगणेशको महेश्वरने सृष्टिके प्रारम्भमें सृष्टि-कार्यमें विघ्न-बाधाके प्रशमनार्थ अपने साक्षात् अंशसे प्रकट किया, इसी कारण प्रत्येक यज्ञादि शुभ कार्यमें प्रथम श्रीगणेशकी पूजा होती है। जब उस महेश्वर परात्पर तत्त्वने व्यक्तरूपमें शिवमूर्ति धारण की तो उसी अनादि शैलीके अनुसार श्रीगणेश भी उनके यहाँ पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए और गणोंके (देवताओंके) अधिपति अर्थात् सञ्चालक बने। इस श्रीशिवांकके निमित्त लेख लिखनेके पूर्व श्रीगणेश-की वन्दना और गुणगान करना आवश्यक है—

ॐ देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः॥

यह गणाधिप गणेश ज्ञानके दाता हैं, इसी कारण बुद्धिद्वारा कार्य करते हैं। इनका विशाल मस्तक इनकी महती बुद्धिका सूचक है। इसी बुद्धिके बलसे इनका क्षुद्र अधोभाग इनके विशाल ऊर्ध्वभागको सहारा देता है और परम लघु जन्तु मूषकसे वाहनका कार्य चलता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि आभ्यन्तरिक ज्ञान और बुद्धि प्रचुर रूपमें प्राप्त हो तो उसके बलसे बहुत स्वल्प बाह्य सामग्रीसे कार्य उत्तमतासे चल सकता है। समाजमें कोई-कोई जो नेता होनेकी योग्यताके साथ जन्म लेते हैं वह इन्हीं श्री-गणेशके कृपापात्र होते हैं। श्रीगणेश अर्थात् बुद्धिमान् थोड़े परिश्रमसे बड़ा कार्य करते हैं।

एक बार श्रीमहादेवको अपने एक यज्ञमें बुलानेके लिये देवताओंको निमन्त्रण भेजना था। कार्तिकेयजीसे यह कार्य अवधिके भीतर न हो सका। तब श्रीगणेशजीपर यह

* हरि और हर दोनों (शब्दों) की प्रकृति (वास्तविक तत्त्व; 'हृ' धातु) एक ही है। परन्तु प्रत्यय (विश्वास; 'इ' एवं 'अ' प्रत्यय) के भेदसे रूपभेद हो जाता है।

भार दिया गया, किन्तु उनका वाहन क्षुद्र मूषक था जो बहुत मन्दगतिसे चलनेवाला था। अतः श्रीगणेशजीने बुद्धिसे कार्य किया। श्रीमहादेवजीमें सब देवताओंका वास है, ऐसा समझकर उन्हींको तीन बार परिक्रमा करके सब देवताओंको वहीं निमन्त्रण दे दिया। परिणाम यह हुआ कि सब देवताओंको यज्ञ और निमन्त्रणकी जानकारी हो गयी और सब-के-सब यज्ञमें सम्मिलित हुए।

परात्पर शिव और आद्या शक्ति

सृष्टिमें जो परम परात्पर हैं वही शिव हैं। माण्डूक्योपनिषद्में शिवका यों वर्णन मिलता है—

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विज्ञेयः।

जिनकी प्रज्ञा बहिर्मुख नहीं है, अन्तर्मुख नहीं है और उभयमुख भी नहीं है, जो प्रज्ञानघन नहीं हैं, प्रज्ञ नहीं हैं, और अप्रज्ञ भी नहीं हैं, जो वर्णनसे अतीत हैं, दर्शनसे अतीत, व्यवहारसे अतीत, ग्रहणसे अतीत, लक्षणसे अतीत, चिन्तासे अतीत, निर्देशसे अतीत, आत्मप्रत्ययमात्र-सिद्ध, प्रपञ्चातीत, शान्त, शिव, अद्वैत और तुरीयपदस्थित हैं वे ही निरुपाधिक जाननेयोग्य हैं। इनका ही नाम 'महेश्वर', 'स्वयम्भू' और 'ईशान' है। श्रुति भी कहती है—

'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥'
'यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्॥'
'तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति॥'

वे ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता, पतियोंके भी परम पति, परात्पर, परम पूज्य और भुवनेश हैं। जिनमें यह विश्व है, जिनसे यह विश्व है, जिनके द्वारा यह विश्व है, जो स्वयं यह विश्व हैं, जो इस विश्वके परसे भी परे हैं, उन स्वयम्भू भगवान्‌की मैं शरण लेता हूँ। उन्हीं ईशान और वरदाता पूज्यदेवको जाननेसे जीव आत्यन्तिकी शान्तिका अधिकारी हो जाता है।

यह सदाशिव अपनी शक्तिसे युक्त होकर सृष्टि रचते हैं। श्वेताश्वतर-उपनिषद्में लिखा है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

माया प्रकृति है और महेश्वर प्रकृति—माया—के अधिष्ठाता, मायी हैं। मायाके द्वारा उन्हींके अवयवभूत जीवोंसे समस्त संसार परिव्याप्त हो रहा है।

इसप्रकार यह अव्यय सदाशिव सृष्टिकी रचनाके निमित्त दो हो जाते हैं। क्योंकि सृष्टि बिना द्वैत (आधार-आधेय) के हो नहीं सकती। आधेय (चैतन्य पुरुष) बिना आधार (प्रकृति, उपाधि) के व्यक्त नहीं हो सकता। इसी कारण इस सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं उनमें अभ्यन्तर-चेतन और बाह्य प्राकृतिक आधार अर्थात् उपाधि (शरीर) देखे जाते हैं। दृश्यादृश्य सब लोकोंमें इन दोनोंकी प्राप्ति होती है। इसी कारण इस अनादि-चैतन्य परम-पुरुष परमात्माकी शिवसंज्ञा सृष्ट्युन्मुख होनेपर अनादि लिङ्ग है और उस परम आधेयको आधार देनेवाली अनादि प्रकृतिका नाम योनि है; क्योंकि ये दोनों इस अखिल चराचर विश्वके परम कारण हैं। शिव लिङ्गरूपमें पिता, और प्रकृति योनिरूपमें माता हैं। गीतामें इसी भावको इस-प्रकार प्रकट किया गया है—

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
(गीता १४। ३)

'महद्ब्रह्म (महान् प्रकृति) मेरी योनि है, जिसमें मैं बीज देकर गर्भका सञ्चार करता हूँ और इसीसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है।'

इसी अनादि सदाशिव-लिङ्ग और अनादि प्रकृति-योनिसे समस्त सृष्टि उत्पन्न होती है। इसमें आधेय बीज-प्रदाता (लिङ्ग) और आधार बीजको धारण करनेवाली (योनि) का संयोग आवश्यक है। इन दोनोंके संयोगके बिना कुछ नहीं उत्पन्न हो सकता। इसी परम भावका मनुजीने इस-प्रकार वर्णन किया है—

द्विधाकृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः॥

सृष्टिके समय परम पुरुष अपने ही अर्द्धाङ्गसे प्रकृतिको

निकालकर उसमें समस्त सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं। इसप्रकार शिवका लिङ्ग-योनिभाव और अर्द्धनारीश्वरभाव एक ही वस्तु है। सृष्टिके बीजको देनेवाले परमलिङ्गरूप श्रीशिव जब अपनी प्रकृतिरूपा नारी (योनि) से आधार-आधेयकी भाँति संयुक्त होते हैं तभी सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं। इसप्रकार श्रीशिव अपनी तेजोमयी प्रकृतिको धारण-कर उससे आच्छादित होकर व्यक्त होते हैं, अन्यथा उनका व्यक्त होना असम्भव है। इसी कारण कहा है—

त्वया हृतं वामवपुः शरीरं त्वं शम्भोः।

अर्थात् 'हे देवि! आपने श्रीशिवके आधे शरीर—वाम भागको हरण कर लिया है, अतएव आप उनके शरीर हैं।'

यह लिङ्ग-योनि जिसका व्यवहार श्रीशिव-पूजामें होता है, प्रकृति और पुरुषके संयोगसे होनेवाली सृष्टिकी उत्पत्ति-की सूचक है। इसप्रकार यह परम परात्पर जगत्पिता और दयामयी जगन्माताके आदिसम्बन्धके भावकी द्योतक है। अतः यह परम पवित्र और मधुर भाव है। इसमें अश्लीलता-का आक्षेप करना ठीक नहीं। यह अनादि प्रकृति-पुरुषका सम्बन्ध परम सृष्टि-यज्ञ है जिसका परिणाम यह सुन्दर सृष्टि है। अतएव शुद्ध मैथुन, जिसका उद्देश्य कामोपभोग नहीं बल्कि पितृऋणसे उद्धार पानेके लिये उत्पत्ति-धर्मका पालन करना है, कामाचार नहीं, परम यज्ञ है और इसप्रकार विचार करनेसे परम कर्तव्य सिद्ध होता है। इस दृष्टिसे प्रत्येक जन्तुका परम पवित्र कर्त्तव्य है कि वह लिङ्ग-योनिका उत्पत्ति-धर्मके पालनके लिये ही उचित व्यवहार करे। और इनका यज्ञार्थ—धर्मार्थ व्यवहार न करके कामोपभोगके निमित्त व्यवहार करना दुरुपयोग है और अवश्य ही पापजनक है।

इसप्रकार शिवलिङ्गका अर्थ ज्ञापक अर्थात् प्रकट करने-वाला है। क्योंकि इसीके व्यक्त होनेसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। दूसरा अर्थ आलय है अर्थात् यह प्राणियोंका परम कारण और निवास-स्थान है। तीसरा अर्थ है 'लीयते यस्मिन्निति लिङ्गम्', अर्थात् सब दृश्य जिसमें लय हो जायँ वह परम कारण लिङ्ग है। लिखा भी है—

लीयमानमिदं सर्वं ब्रह्मण्येव हि लीयते।

लिङ्ग परमानन्दका कारण है जिससे क्रमशः ज्योति और प्रणवकी उत्पत्ति हुई है। लिङ्गपुराण अ० १७ में कहा है कि सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मा और विष्णुके बीच यह विवाद चल रहा था कि दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है। इतनेमें उन्हें एक बृहत् ज्योतिर्लिङ्ग दिखलायी दिया। उसके मूल और परिमाणका पता लगानेके लिये ब्रह्मा ऊपर गये और विष्णु नीचे, परन्तु दोनोंमेंसे किसीको उसका पता न चला। विष्णुके स्मरण करनेपर वेद-नामके ऋषि वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने समझाया कि प्रणवमें 'अ'कार ब्रह्मा हैं, 'उ'कार विष्णु हैं और 'म'कार श्रीशिव हैं।

'म'कार ही बीज है और वही बीज लिङ्गरूपसे सबका परम कारण है। ऊपरकी कथामें विष्णुसे ब्रह्माण्डके विष्णुसे तात्पर्य है न कि महाविष्णुसे, जो अनेक ब्रह्माण्डोंके नायक हैं तथा जिनमें और सदाशिवमें कोई भेद नहीं है।

शिव और मन्त्र

परमपुरुष शिव और उनकी शक्तिके सम्मेलनसे जो स्पन्दन उत्पन्न हुआ, वही सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण बना। इसीको शिवका ताण्डव-नृत्य कहते हैं। रसायन-विज्ञानका सिद्धान्त है कि इलेक्ट्रॉन (electrons) जो पुरुषके समान आधेय (position) हैं उनका प्रोटॉन (protons), जो प्रकृतिके समान आधेय (negation) हैं, के साथ संघर्ष होनेसे जो स्पन्दन (encircling motion) उत्पन्न होता है उसीके द्वारा अणुओंकी उत्पत्ति होती है और उन अणुओं-से आकार बनते हैं।

जब सदाशिव आनन्दोन्मत्त होकर अर्थात् माँ आनन्द-मयीसे युक्त होकर नृत्य करते हैं तो उस महानृत्यके परिणाम-से इस सृष्टिके पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है। इसप्रकार यह विश्व सदाशिवके नृत्य और नादका परिणाम है क्योंकि नृत्यमें वह डमरू बजाते हैं। जहाँ स्पन्दन (Motion) होता है वहाँ शब्द भी होता है। इसप्रकार श्रीशिवके डमरूके शब्दसे (जो प्रकृति और पुरुषके सम्मेलनके द्वारा नादरूपमें प्रकट होता है) व्याकरणके मुख्य शब्द-सूत्रकी उत्पत्ति हुई। यह शब्द चार प्रकारके शब्दोंमें अन्तिम 'बैखरी' वाक्का व्यक्त रूप है। अतएव वर्णमालाके प्रत्येक अक्षरमें शक्ति सन्निहित है। इस शक्तिके कारण आभ्य-न्तरिक षट्चक्रोंमें इन अक्षरोंका निवासस्थान है। इस शिवशक्तिके नादका स्थान स्वर्गके ऊपरी भागमें है जिसकी 'परा' संज्ञा है। उस पराको स्वर्गलोकमें ऋषिगण मन्त्ररूपमें देखते हैं, इसीसे उसे 'पश्यन्ती' कहते हैं। परन्तु ये मन्त्र उस 'परा'के आध्यात्मिक रूप हैं जो स्वर्गमें देखे और सुने जाते हैं। पश्चात् वे मन्त्रमें बैखरीरूपसे प्रकट होते हैं; क्योंकि श्रीशिव उस परावाक्के कारण हैं जिसके द्वारा मन्त्र आदि समस्त वाक्योंकी उत्पत्ति हुई है। अतएव श्रीशिव मन्त्रशास्त्रके प्रवर्तक कहे जाते हैं। शिवपूजाके

अन्तमें जो 'बम् , बम्' शब्दका उच्चारण किया जाता है वह प्रणवका ही सुलभरूप है जो अत्यन्त प्रभावशाली है।

ऊपर सदाशिवका वर्णन हुआ। परन्तु उनका व्यक्तभाव श्रीमहादेव मनुष्यरूप पिण्डाण्डके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। तात्पर्य यह कि मनुष्य आध्यात्मिक जीवनमें ऊँची-से-ऊँची जितनी उन्नति कर सकता है, श्रीमहादेव उसके आदर्शस्वरूप हैं। उन्हींको लक्ष्यमें रखकर साधकको उन्नतिके पथमें अग्रसर होना चाहिये। इसी कारण श्रीशिव जगद्गुरु हैं। तात्पर्य यह कि उनमें यज्ञ, तपस्या, योग, भक्ति, ज्ञान आदिकी पराकाष्ठा पायी जाती है। यह इनके आदर्श और उपदेष्टा हैं। शिवका तीसरा नेत्र दिव्य ज्ञानचक्षु है जो प्रत्येक मनुष्यके भीतर है, परन्तु यह बिना श्री-जगद्गुरु शिवकी सहायताके खुल नहीं सकता। गायत्रीशक्ति शिवके इसी आदर्शको लेती है और अपने सृष्टि-कार्यमें इसको लक्ष्य बनाकर उसी ओर साधकोंको प्रवृत्त करती है।

आध्यात्मिक काशी

जब साधककी चित्तवृत्ति शुद्ध, शान्त और निःस्वार्थ होकर अपने अभ्यन्तरके आध्यात्मिक हृदयमें वहाँ स्थित होती है जहाँ प्रज्ञाका बीज होता है तो उसी अवस्थाको काशीप्राप्ति कहते हैं। यह अवस्था परम सुषुप्तिके समान है। इसमें आनन्दका अनुभव होता है, इसी कारण काशी-को आनन्द-वन कहते हैं। इस काशीमें महाश्मशानकी स्थिति (जहाँ शिवका वास होता है) का कारण यह है कि यहाँ शिवके तेजसे विकारोंके दग्ध होनेपर अनात्मरूप उपाधियोंसे छुटकारा मिलता है और अहंकार भी दग्ध हो जाता है। गौरीमुखका तात्पर्य यह है कि इस काशी-प्राप्तिकी अवस्थामें साधक दैवी ज्योति और बोधशक्तिके सम्मुख पहुँच जाता है और ज्यों ही उसका आध्यात्मिक दिव्य चक्षु श्रीशिवके द्वारा खुलता है त्यों ही वह त्रिलोकीके पार पहुँच गौरी अर्थात् विद्यादेवीको बिना आवरणके देखनेमें समर्थ हो जाता है। मणिकर्णिका प्रणवकर्णिका है और इनकी तीन कर्णिकाएँ चित्तकी तीन अवस्थाओंकी द्योतक हैं, जैसे—

(१) साधारण, जाग्रत्-अवस्था।
(२) दूर-दर्शन और दूर-श्रवणकी अवस्था।
(३) स्वर्गलोककी अवस्था।

काशी इन तीनोंके परे है जिसके लाभसे मुक्ति होती है। श्रीशिवजी तारक-मन्त्र तभी प्रदान करते हैं जब साधक हृदयरूप काशीमें (कारण-शरीरमें) स्थित होता है और तब वह तारक-मन्त्रके प्रभावसे सदाके लिये तुरीयावस्थामें चला जाता है।

त्रिशूलका भाव है त्रितापका नाश करना अर्थात् त्रितापसे मुक्ति पाकर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे भी परे तुरीयामें पहुँचना। ऐसा साधक ही यथार्थ त्रिशूलधारी है।

अन्य भाव

शिवके मस्तकमें चन्द्रमाका संकेत प्रणवकी अर्द्धमात्रा-से है और इसी निमित्त उनके मस्तकको अर्द्धचन्द्र भूषित करता है। योगिगण अपने अभ्यन्तरके चित्-अग्निके द्वारा अहंकारको दग्ध करते हैं और उसके साथ उसके कार्य पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत आदि सबको दग्धकर परम शुद्ध आध्यात्मिक भावमें परिवर्तित कर देते हैं तब वह निर्विकार, शुद्ध और शान्त हो जाता है। उसे ही भस्म कहते हैं। उस शुद्ध भावरूप भस्मको धारण करनेसे शान्ति मिलती है। आध्यात्मिक गङ्गा एक बड़ा तेजपुञ्ज है जो महाविष्णुके चरणसे निकलकर ब्रह्माण्डके नायक श्रीमहादेवके मस्तकपर गिरता है और वहाँसे संसारके कल्याणके निमित्त फैलता है। इस तेजपुञ्जको केवल महादेव धारण कर सकते हैं, क्योंकि शिव और विष्णु एक हैं। श्रीशिवकी कृपासे इस आध्या-त्मिक गङ्गाका लाभ अभ्यन्तरमें—अन्तरस्थ काशी-क्षेत्रमें—होता है।

शिवके पाँच मुख हैं—ईशान, अघोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात। ईशानका अर्थ है स्वामी, अघोरका अर्थ है कि निन्दित कर्म करनेवाले भी श्रीशिवकी कृपासे निन्दित कर्मको शुद्ध बना लेते हैं। तत्पुरुषका अर्थ है अपने आत्मामें स्थिति लाभ करना। वामदेव विकारोंके नाश करनेवाले हैं। सद्योजात बालकके समान परम स्वच्छ, शुद्ध और निर्विकार हैं। त्र्यम्बकका अर्थ है ब्रह्माण्डके त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोंके अम्ब अर्थात् कारण। जीवात्माकी तीव्रभक्ति (सेवा) और मिलनके प्रगाढ़ और अनन्य अनुराग तथा विशुद्ध निर्हेतुक प्रेमसे शिवप्राप्ति होती है। और वह अनुराग मिलन होनेपर श्री-शिवके चरण-कमलके स्पर्शकी परम शान्तिमें पूर्णताको प्राप्त होता है।

महायोगीश्वर भगवान् शङ्कर

(लेखक—स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी)

गत्पति, जगद्गुरु, त्रिपुरारि (अर्थात् काम, क्रोध एवं अहङ्काररूपी तीन नगरोंका ध्वंस करनेवाले), उमाशङ्कर (उमापति), ज्योतिर्मय, चिदानन्दमय, योगेश्वर, ज्ञान-निधान भगवान् शिवको जो महादेव, शङ्कर, हर, शम्भु, सदाशिव, रुद्र, शूलपाणि, भैरव, उमा-महेश्वर, नीलकण्ठ, त्रिलोचन (त्रिनेत्र), त्र्यम्बक, विश्वनाथ, चन्द्रशेखर, अर्द्धनारीश्वर, महेश्वर, नीललोहित, परमशिव, दिगम्बर, दक्षिणामूर्ति इत्यादि नामोंसे पुकारे जाते हैं, मैं साञ्जलि प्रणाम करता हूँ।

अहा ! वे कैसे दयामय हैं ! कैसे प्रेमी एवं कृपासागर हैं !! वे अपने भक्तोंके मुण्डोंकी मालाको गलेमें धारण करते हैं। वे वैराग्य, करुणा, प्रेम एवं ज्ञानकी मूर्ति हैं। उन्हें संहाररूप कहना मूर्खता है। वे तो वास्तवमें नवजीवनके दाता हैं। जब-जब हमारा यह पाञ्चभौतिक देह जरा, व्याधि अथवा अन्य कारणोंसे इसी जन्ममें अधिक विकासके अयोग्य हो जाता है तब वे इस निकम्मे अस्थिपञ्जरको छीनकर हमें दूसरा नया, निरामय एवं बलवान् शरीर देते हैं जिसके द्वारा हम अधिक शीघ्र अपना रास्ता तै कर सकते हैं। वे अपनी सारी सन्ततिको अपने चरणपङ्कजकी ओर शीघ्र ले जाना चाहते हैं। वे उन्हें शीघ्र ही अपना तेजोमय धाम—शिवपद—देना चाहते हैं।

भगवान् हरिकी अपेक्षा शङ्करको सन्तुष्ट करना सहज है। थोड़ा-सा प्रेम एवं भक्ति, उनके पञ्चाक्षर-मन्त्रका थोड़ा-सा जप ही शिवको प्रसन्न करनेके लिये पर्याप्त है। वे अपने भक्तोंको बहुत शीघ्र वरदान देते हैं। अहा ! उनका हृदय कितना विशाल है ! उन्होंने अर्जुनको उसकी थोड़ी-सी तपस्याके बदले सहजहीमें अपना पाशुपतास्त्र दे दिया। उन्होंने भस्मासुरको एक दुर्लभ वर दे डाला। तिरुपतिके समीप कलहस्ती नामक नगरमें उन्होंने अपनी मूर्तिके रोते हुए नेत्रोंकेस्थानमें अपनी निजकी आँखें निकालकर रखनेवाले कणप्प-नयनार नामक व्याधको दर्शन दिये। चिदम्बरम्में उन्होंने अस्पृश्य अन्त्यज-जातिके नन्दन नामक सन्तको दर्शन दिये। वे यमराजके अधिकारमें आये हुए बालक मार्कण्डेयको चिरजीवी बनानेके लिये बड़े वेगसे दौड़े। लङ्काधिपति रावणने उन्हें अपने सामगानसे सन्तुष्ट कर लिया। उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार इन चार कुमारोंको गुरु दक्षिणामूर्तिके रूपमें ज्ञानका रहस्य सिखाया। दक्षिण भारतके मदुरा नामक नगरमें एक बार जिस समय वैगाई (Vaigai) नदीको रोकनेके लिये बाँध बनाया जा रहा था उस समय सुन्दरेश्वर (भगवान् शङ्कर) एक बालकका वेष बनाकर एक भक्त महिलाके बदलेमें अपने सिरपर मिट्टी उठाकर ले गये और इस परिश्रमके लिये उन्होंने थोड़ी-सी पुट्टू नामक मिठाई प्राप्त की। धन्य भक्त-वत्सलता ! जब ब्रह्मा और विष्णुभगवान् शिवके मस्तक और चरणोंकी खोज करनेको निकले उस समय उन्होंने अनन्त, विस्तृत ज्योतिर्मय स्तम्भका स्वरूप धारण किया। परिणाम यह हुआ कि ब्रह्मा और विष्णु दोनों ही हार गये। अहा ! वे कैसे महानुभाव एवं स्वयंप्रकाश हैं !! वे दक्षिण-भारतमें पत्तिनत्तु (Pattinattu) स्वामीके घरमें कई वर्षोंतक उनके दत्तक होकर रहे और अन्तमें एक पुर्जेमें यह लिखकर कि 'तुम्हारे मरनेके बाद टूटी सुई भी तुम्हारे पीछे नहीं चलेगी' अन्तर्धान हो गये। इस पर्चेको पढ़कर पत्तिनत्तुस्वामीके चित्तमें ज्ञानका बीज अङ्कुरित हो गया। इसलिये हे मन ! तू भगवान् शिवका साक्षात्कार करनेके लिये इसी क्षण सच्चे मनसे चेष्टा क्यों नहीं करता ?

हठयोगी आसन, प्राणायाम, कुम्भक, मुद्रा एवं बन्धके द्वारा मूलाधार चक्रमें सुप्त रहनेवाली कुण्डलिनी शक्तिको जागृत करते हैं और स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा—इन भिन्न-भिन्न चक्रोंके मार्गसे उसे ऊपरकी ओर ले जाकर मूर्द्धदेशमें स्थित सहस्रार कमलपर आसीन भगवान् सदाशिवके साथ उसका योग करा देते हैं और फिर शिव-ज्ञानामृतका पान करते हैं—जिसे अमृतस्राव कहते हैं। जब इसप्रकार शक्तिका शिवके साथ संयोग हो जाता है तब योगीको पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

भगवान् शङ्कर ब्रह्मकी संहारमयी मूर्ति हैं। ब्रह्मका वह अंश जो तमोगुणप्रधान मायासे आवृत है, शिवपदका वाच्य है। वही सर्वव्यापी ईश्वर हैं और कैलासशिखरपर निवास करते हैं। वह ज्ञानके भण्डार हैं। पार्वती अथवा काल

अथवा दुर्गासे वियुक्त शंकर शुद्ध निर्गुण ब्रह्म हैं । यह अपने भक्तोंको विशुद्ध भक्तिका सुख देनेके लिये माया-पार्वतीके संयोगसे सगुण ब्रह्म हो जाते हैं । श्रीराम-भक्तोंको भगवान् शिवकी भी उपासना करनी चाहिये । स्वयं श्रीरामने प्रसिद्ध श्रीरामेश्वरधाममें भगवान् शंकरकी उपासना की थी । भगवान् शंकर श्रीरामके गुरु हैं । भगवान् शिव यतियोंके स्वामी हैं, योगियोंके ईश्वर हैं, दिगम्बर हैं । उनका त्रिशूल जिसे वे अपने दाहिने हाथमें धारण करते हैं सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंका चिह्न है । वह उनके ऐश्वर्यका द्योतक है । वे इन तीन गुणोंके द्वारा विश्वका शासन करते हैं । उनके बायें हाथमें डमरू रहता है जो शब्द-ब्रह्मका मूर्तरूप है । वही 'ओम्' का व्यञ्जक है जिससे सारा वाङ्मय निकला है । उन्होंने ही अपने डमरूके शब्दसे संस्कृत-भाषाकी रचना की ।

उनके मस्तकपर रहनेवाली शशिलेखा इस बातकी द्योतक है कि उन्होंने अपने मनको पूर्णतया वशमें कर रक्खा है । भागीरथीकी धारा मुक्तिरूपी सुधाधाराकी द्योतक है । हाथीको अभिमानकी मूर्ति माना गया है । अतः उनका हस्तिचर्मको धारण करना इस बातको सूचित करता है कि उन्होंने अभिमानका दमन कर लिया है । इसी प्रकार व्याघ्रको कामका स्वरूप माना है । अतएव उनका व्याघ्रचर्म-पर बैठना इस बातको बतलाता है कि उन्होंने कामपर विजय प्राप्त कर ली है । उनका एक हाथमें मृगको धारण करना इस बातको व्यक्त करता है कि उन्होंने चित्तकी चञ्चलताको दूर कर दिया है । जिसप्रकार मृग द्रुतगतिसे एक स्थानसे दूसरे स्थानको उछलकर जाता है उसी प्रकार मन भी एक विषयसे दूसरे विषयकी ओर उछल-कूद मचाता रहता है । उनका सर्पोंको धारण करना उनके ज्ञान एवं नित्यताका बोधक है क्योंकि सर्प दीर्घजीवी होते हैं । वे त्रिलोचन हैं, उनके ललाटके मध्यमें उनका तीसरा नेत्र है जो ज्ञानचक्षु कहलाता है । शिवलिङ्गके सामने बैठा हुआ नन्दी प्रणव (ओंकार) का स्वरूप है और लिङ्ग अद्वैतका बोधक है । वह इस बातको सूचित करता है कि 'मैं एक हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है' जिसप्रकार कोई मनुष्य अपने दाहिने हाथको अपने मस्तकके ऊपर उठाकर अपनी तर्जनी अङ्गुलीसे निर्देश करता है ।

तिब्बतमें कैलास-नामकी एक विशाल पर्वतश्रेणी है जिसके मध्यमें एक सुन्दर, प्रकृतिके कुशल करोंसे गढ़ा हुआ एवं सुसज्जित देदीप्यमान शिखर है जो बारहों मास रजत-सदृश हिमराशिसे आवृत रहता है । यह शिखर समुद्रतलसे २२९८०, और कुछ लोगोंके मतमें २२०२८ फीट ऊँचा है । यह शिखर एक प्राकृतिक एवं विशाल शिवलिङ्ग (विराट् रूप) के आकारका है । इसकी दूरसे ही शिवके रूपमें पूजा होती है । वहाँ न तो कोई मन्दिर है, न पुजारी और न दैनिक पूजा ही होती है । २२ जुलाई सन् १९३१ ई० को भगवान् शंकरकी कृपासे मुझे श्रीकैलासके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था । मैं बड़ी कठिनता एवं परिश्रमसे कैलासकी उपत्यकातक चढ़कर गया जहाँ सिन्धु-नदीका उद्गम है । यह स्थान बड़ा ही रमणीक एवं मनको लुभानेवाला है । कैलासकी प्रदक्षिणामें पहला मुकाम दिदिफू गुहा (Didiphu) है । वहाँसे चढ़ाई प्रारम्भ होती है । कैलासशृङ्गके पृष्ठ-भागके पीछेसे हिमकी चट्टानोंके बीचमेंसे होकर सिन्धुनदी एक छोटे-से नालेके रूपमें निकलती है । यद्यपि भगवान् शिवके चित्रोंमें उनके मस्तकपरसे गङ्गाकी धारा बहती हुई दिखायी जाती है, किन्तु वास्तवमें स्थूल जगत्में तो उनके मस्तक (कैलास) से सिन्धुनदी निकलती है । कैलासकी प्रदक्षिणा ३० मीलकी है और तीन दिनमें पूरी होती है । मार्गमें प्रसिद्ध एवं पवित्र गौरीकुण्ड मिलता है जो बारहों मास हिमाच्छन्न रहता है । स्नान करते समय बर्फको तोड़कर हटाना पड़ता है ।

भगवान् शिवके द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं जिनका प्रतिदिन प्रातःकाल एवं सायंकाल स्मरण करनेसे ही सात जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं ।

दक्षिण-भारतके मद्रास-प्रान्तमें पञ्चमहाभूतोंके नामसे पाँच प्रसिद्ध शिवलिङ्ग हैं । तञ्जौर जिलेके श्याली नामक स्थानमें पृथ्वीलिङ्ग है । त्रिचिनापल्ली जिलेके तिरुवनकोइल (Tiruvankoil) नामक स्थानमें अप्पुलिङ्ग है जो सदा जलके भीतर रहता है । इसे कुछ लोग जम्बुकेश्वर भी कहते हैं । उत्तरीय आर्कट जिलेके अन्तर्गत कलहस्ती (Kalahasti) नामक स्थानमें वायुलिङ्ग है । उसी जिले-के तिरुवन्नमलाई (Tiruvannamalai) नामक स्थान-में जहाँ विल्लुपुरम् (Villupuram) जंक्शनसे होकर जाना पड़ता है तेजोलिङ्ग (अरुणाचल) है । चिदम्बरम्-में आकाशलिङ्ग (नटराज) है ।

अभी हालमें जब मैं संयुक्त प्रान्त तथा आन्ध्रदेशकी यात्रा कर रहा था तो वहाँ मुंगेरके अखिल भारतीय कीर्तन-सम्मेलनमें तथा सीतापुर, लखीमपुर, अयोध्या, लखनऊ,

कलकत्ता, कोकोनडा इत्यादि स्थानोंमें मैं उच्च स्वरसे कीर्तन किया करता था। मेरी तीन छोटी सुन्दर शिवनामावलीपर लोग अत्यन्त मुग्ध हुए। उन्हें मैं नीचे उद्धृत करता हूँ—

पञ्चाक्षरनामावली

(१) शिवाय नमः ओं शिवाय नमः। शिवाय नमः ओं नमः शिवाय ॥

(२) शिव साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव
साम्ब सदाशिव बम् बम् बम्।

(३) हर हर शिव शिव शम्भो
हर हर शिव शिव
हर हर शम्भो
शिव शिव शम्भो
हर हर शिव शिव शम्भो।

जो लोग भगवान् शिवका दर्शन करना चाहते हों उन्हें पवित्रता, भाव, एकाग्र-चित्त एवं अनन्य भक्तिके साथ निम्नलिखित मन्त्रोंका पाँच लाख जप करना चाहिये—

पञ्चाक्षर

(१) ओं नमः शिवाय। ओं नमः शिवाय। ओं नमः शिवाय। ओं नमः शिवाय। ओं नमः शिवाय।

रुद्र-गायत्री

(२) तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

अर्थात् हमलोग उन (परात्पर) पुरुषको जानें, महादेवका ध्यान करें। वह रुद्र हमें ज्ञानका आलोक प्रदान करे।

रुद्र शिवकी संहारमयी मूर्ति है। इस विश्वका शासन करनेवालोंमें एकादश रुद्र भी हैं। आध्यात्मिक दृष्टिसे दस प्राण और एक मन यही एकादश रुद्र हैं। श्रीहनुमान् शिवके ही रूप हैं।

संसारकी उत्पत्ति मुझीसे है; मेरे अन्दर ही सबका निवास है; मेरे ही अन्दर सब कुछ लय होता है; कालातीत शिव मैं ही हूँ। शिवोऽहम्! शिवोऽहम्!! शिवोऽहम्!!!

देवदेव श्रीमहादेवका योगिराज-विग्रह और मदन-दहन-लीला

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण)

हिन्दुओंके उपास्य देवोंके नाम, रूप और विग्रह अपार और असंख्य हैं। इस बातको सभी जानते हैं तथा हिन्दुओंके उपासना-मार्गकी विशेषता भी यही है। हिन्दुओंके ईश्वरोपासनकी 'एकमेवाद्वितीयम्' श्रुतिके द्वारा निर्दिष्ट सच्चिदानन्दरसघन-विग्रह एक सर्वेश्वर-की गम्भीर उपासनाके रहस्यको जो नहीं समझते हैं उनके लिये यह विशेषता उपेक्षा तथा अश्रद्धाके योग्य तथा हास्यजनक हो सकती है, परन्तु इससे हिन्दुओंको लज्जा या अपमान माननेका कोई कारण नहीं दीख पड़ता। इसप्रकारके अनभिज्ञ लोगोंकी उपेक्षा, अश्रद्धा तथा उपहासको देखकर एक सच्चे हिन्दूको हँसी आये बिना नहीं रहती, वह मन-ही-मन कहता है—

शैत्यमाधुर्यगाम्भीर्यवैधुर्यमवधार्यताम्।
नावगाह्य न चास्वाद्य तरङ्गिण्यास्तु तेन किम्॥

'यदि तुमने बिना अवगाहन किये तथा बिना आस्वादन किये ही यह निश्चय कर लिया है कि इसमें न शीतलता है, न मधुरता है और न गहराई है, तो इससे नदीकी क्या हानि होगी?'

'ईश्वर केवल एक आकारविशिष्ट है और वही उपासना करनेयोग्य है' इस प्रकार माननेवाले एक व्यक्ति हिन्दुओंके बहुदेवता-विग्रह-वादका खण्डन करनेके लिये दम्भपूर्वक एक बार मेरे ज्येष्ठ तात महामहोपाध्याय श्रीराखालदास न्याय-रत्नके समीप आये। उन्होंने उनकी समस्त युक्तियों और प्रमाणोंको धैर्यपूर्वक सुनकर हँसते-हँसते उपर्युक्त श्लोक सुनाया था। सौभाग्यवश मैं भी उस समय उनके चरणों-के समीप ही बैठा था। उनके उस श्लोकको सुनकर तथा और कोई भी बात कहनेके लिये उन्हें तैयार न देखकर वह विचारार्थी महाशय नाराज़ होकर वहाँसे चल दिये। उनके जानेके बाद मेरे पूज्यपाद ज्येष्ठ तातने जो उपदेश हिन्दुओंके उपासना-रहस्यके सम्बन्धमें दया करके हमलोगोंको दिया था, उसीका संक्षिप्त मर्म आज 'कल्याण' के विशेषाङ्कके प्रिय पाठकोंको सुनाकर देवदेव श्रीमहादेवके स्वरूपके विषयमें किञ्चित् आलोचना करूँगा। आशा है, यह उन्हें अरुचिकर नहीं होगा।

शास्त्रमें लिखा है—

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

इसका भावार्थ यही है कि जो चिन्तनमें नहीं आ सकते, किसी प्रकारके लौकिक प्रमाणके द्वारा जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता, जो स्वरूपतः निर्गुण और अशरीरी हैं वही परब्रह्म उपासकोंकी मनचाही कार्य-सिद्धिके लिये रूप-कल्पना किया करते हैं। अशरीरी और निर्गुण परब्रह्मकी रूप-कल्पना अथवा अनन्त रूपके अभिव्यञ्जनके द्वारा आत्माराम और आप्तकाम श्रीभगवान् अथवा अद्वय-तत्त्व परब्रह्मका कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं। बल्कि इसके द्वारा यथार्थ उपासकोंका ही मनोरथ सिद्ध होता है अर्थात् प्रेमरूपा ऐकान्तिक भक्तिकी परिपूर्णता सिद्ध होती है, यही उपर्युक्त शास्त्रीय वचनका गूढ़ तात्पर्य है।

पूर्व-जन्मोंके संस्कार, देश, काल और परिस्थितिके अनुसार अवश्यम्भावी विषमताके कारण मनुष्योंमें परस्पर विचारकी विभिन्नताका होना स्वाभाविक है। इसी कारण श्रीभगवान्के एक होनेपर भी उनकी ध्येय-मूर्ति सब उपासकोंके लिये एक-सी नहीं हो सकती। इसी ध्रुव सत्यकी दृढ़ आधार-शिलापर हिन्दुओंका उपासनावाद सुप्रतिष्ठित है। इस विचार-वैषम्यकृत अधिकारकी उपेक्षा कर उपासना-प्रणालीके परिवर्तन करने अथवा उसे एकरूपता प्रदान करनेकी चेष्टा भारतवर्षमें अनादिकालसे होती आ रही है। किन्तु इसप्रकारकी चेष्टा सनातन-हिन्दू-समाजमें कभी भी पूर्णरूपसे फलवती नहीं हुई तथा आगे कभी होगी यह भी सम्भव नहीं। अनन्त प्रकारके वैषम्यके रहते हुए ही सब भूतोंमें सम उस परब्रह्मको जानने अथवा जानकर प्राप्त करनेके लिये उपासकोंकी सिद्धिके निमित्त अनन्त विग्रह धारण करनेवाले श्रीभगवान्के प्रत्येक विग्रहका जो उपासक-भेदसे उपास्यत्व है, यही हिन्दुओंके उपासना-तत्त्वका मूल रहस्य है। हिन्दू एकेश्वरवादी हैं, पर उस एकेश्वरके अनन्त-विग्रह माननेवाले भी हैं, यही अन्यान्य उपासनाप्रधान मतोंसे हिन्दू-धर्ममें विलक्षणता है। इसे न जानकर जो हिन्दुओंके उपासना-तत्त्वके प्रति अश्रद्धा रखते हैं अथवा उसकी अवज्ञा निन्दा करते हैं, उनके प्रति क्रोध करनेका कोई कारण ही नहीं है। उनकी तो प्रत्येक हिन्दू सर्वथा उपेक्षा ही करेगा। यही मेरे स्वर्गीय पूज्यपाद ज्येष्ठ तातरचित उपर्युक्त श्लोकका तात्पर्य है।

नदीके समान प्रत्येक देवता-विग्रहकी उपासना शीतलता, मधुरता और गम्भीरतासे पूर्ण है। जिन्होंने हिन्दुओंकी उपासनारूपी इस तरङ्गिणीमें कभी अवगाहन नहीं किया वही इसमें भ्रान्ति, अन्धविश्वास और नीरसता-का दोष आरोपण किया करते हैं। देवदेव श्रीमहादेवकी उपासनामें भी यही तीनों गुण (शीतलता, मधुरता, गम्भीरता) भरे हैं। उनकी जितनी विश्वविस्मयकारिणी लीलाओंका शास्त्रोंमें वर्णन है, उनमेंसे आज मदन-दहन-लीलापर विचार करना है, क्योंकि इस मदन-दहन-लीलाके अनुशीलनसे अनन्यदेव-साधारण ज्ञान, कर्म और भक्तिके एकमात्र आलम्बनस्वरूप देवदेव श्रीमहादेवकी योगीश्वर-मूर्तिका गूढ़ तत्त्व हृदयङ्गम हो सकता है।

हिन्दूके लिये निष्काम—अहैतुकी भक्तिके साथ-साथ शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करना भी नितान्त आवश्यक है, उनमें भगवदुपासनारूप सर्वश्रेष्ठ कर्मके आलम्बनस्वरूप श्रीभगवद्विग्रहका ध्यान करनेपर भी यदि वह उपासकके हृदयमें निष्काम-अहैतुकी भक्तिका बीज अङ्कुरित करनेमें समर्थ नहीं है तो उस विग्रहकी उपासना त्रिवर्ग अर्थात् अर्थ, धर्म, कामरूप त्रिवर्गको प्रदान करती हुई भी परिपूर्ण आनन्दकी अनुभूतिस्वरूप मोक्षको नहीं प्रदान कर सकती है, यही हिन्दुओंके समस्त भक्ति-शास्त्रका रहस्य है। भगवान्की मूर्तियाँ अनन्त हैं, उनकी शक्ति भी अचिन्त्य है, अपने भक्तोंकी सब प्रकारकी मनोकामनाकी सिद्धिके लिये वह उन्हींकी मनचाही मूर्तिमें प्रकट हो जाते हैं, इस विषयमें विश्वासी हिन्दूके मनमें किसी प्रकार भी सन्देहका कोई भी कारण नहीं रहता। इसीसे श्रीमद्भागवतमें महामुनि श्रीवेदव्यासजी कह रहे हैं—

त्वं भक्तियोगपरिभावितहृत्सरोजे
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

हे नाथ! प्रेम-भक्तिके साधनस्वरूप श्रवण, कीर्तन, नाम-स्मरणादि उपायोंद्वारा उपासकोंके हृदयकमल जब प्रफुल्लित होते हैं तब तुम उन भक्तोंके उस प्रफुल्लित हृदयसरोजमें आविर्भूत होते हो। तुम्हें प्राप्त करनेका मार्ग पहले गुरु और शास्त्रके द्वारा प्रकाशित होता है, पश्चात् साधनाके द्वारा वह प्रत्यक्ष हो जाता है। भक्तोंकी ऐसी अवस्था उपस्थित होनेपर उनकी बुद्धिवृत्तिमें जो आरूढ़ होती है उसी भक्ता-

भीष्टप्रद मूर्तिको हे उरुगाय ! तुम्हीं उनके प्रति कृपा करके इस संसारमें व्यक्त करते हो ।

भक्ति-शास्त्रके इस ध्रुव सिद्धान्तके अनुसार देवदेव श्रीमहादेवने अपने प्रति असाधारण भक्तिमती अपनी ही अर्द्धाङ्गिनी भगवती श्रीपार्वतीदेवीके सम्मुख कामविध्वंसकारी जिस अपूर्व योगिराज-विग्रहको प्रकट किया था,उसका माहात्म्य महाशिवपुराणादिमें तथा महाकवि कालिदासके कुमारसम्भव महाकाव्यमें अति सुन्दर और विशदभावसे वर्णन किया गया है। उसीके अनुसार आज इस लेखमें किञ्चित् आलोचना की जाती है । आशा है, देवदेव श्रीमहादेवके योगिराज-श्रीविग्रहके उपासक भक्तोंके लिये यह उपेक्षाका विषय न होगा ।

देवदेव श्रीमहादेवके प्रति प्रेम-भक्तिकी प्रत्यक्ष प्रतिमा-रूपमें जगज्जननी आद्या शक्ति पहले दक्षप्रजापतिके गृहमें दाक्षायणीके रूपमें आविर्भूत हुई थीं । जिस दिन दक्ष-प्रजापतिने दाक्षायणीका विवाह सर्वेश्वर श्रीमहादेवके साथ किया था उस दिन उन्होंने अपनेको धन्य माना था । किन्तु एक दिन दक्षप्रजापति सत्यलोकमें ब्रह्माके सम्मुख सब देवताओंके सभामें अचानक जा पहुँचे, उनके वहाँ उपस्थित होते ही इन्द्रादि समस्त देवता उनके सम्मानार्थ उठ खड़े हुए । परन्तु उसी सभामें बैठे हुए जामाता देवदेव श्रीमहादेव न तो उनकी अभ्यर्थनाके लिये खड़े हुए और न उन्होंने किसी प्रकारका उचित अभिवादन ही किया । अपने जामातासे उन्हें इसप्रकारके व्यवहारकी आशा न थी, इसलिये इस नूतन व्यवहारसे उनके आत्माभिमानको गहरी चोट लगी । मोहवश उन्हें अपने जामाताके सर्वेश्वर होनेकी बात याद न रही और वह उनके इस व्यवहारसे अत्यन्त क्रुद्ध हो गये तथा उन्हीं पैरों वापस घर लौटकर श्रीमहादेवको उपयुक्त शिक्षा देनेका सङ्कल्पकर शिवहीन यज्ञके अनुष्ठानमें लग गये । उसी समय देवर्षि नारदको समस्त देव और देवाङ्गनाओंको निमन्त्रित करनेका भार दिया गया । परन्तु उन्होंने जामाता श्रीमहादेवको निमन्त्रण देनेका निषेध कर दिया, यहाँतककी अपनी परम स्नेहमयी कन्या दाक्षायणीको भी निमन्त्रण न देनेके लिये विशेषरूपसे समझा दिया । धनपति यक्षराज कुबेरको निमन्त्रण देनेके लिये महर्षि नारदको कैलासपर्वतपर जाना पड़ा । कैलास जाकर देवदेव श्रीमहादेवका दर्शन किये बिना ही लौट आना भक्तश्रेष्ठ देवर्षि नारदके लिये असम्भव था । उन्होंने देवाधिदेव श्रीमहादेवको भक्तिपूर्वक प्रणामकर लौटते समय जगज्जननी दाक्षायणीसे प्रणाम करनेके बहाने अकेलेमें भेंट करके उनके पिताके इस शिवहीन विराट् यज्ञका समस्त वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी सूचित कर दिया कि स्वयं आपको भी निमन्त्रण न देनेके लिये प्रजापतिने विशेष-रूपसे मना कर दिया है । देवर्षि नारदके मुखसे त्रिलोकनाथ अपने प्राणनाथके प्रति अपने ही पिताके द्वारा इसप्रकार दुःसह अपमानकी बात सुनकर दाक्षायणी अत्यन्त व्यथित और मर्माहत हो उठीं ।

'निमन्त्रित न हुई तो क्या हुआ ? अपमान सहूँगी, परन्तु पिताके घर जाकर समझाकर इस सर्वनाशकारी दुर्व्यसनसे उन्हें निवृत्त करूँगी ।'—इसप्रकार सङ्कल्प करके देवदेव श्रीमहादेवके मना करनेपर भी दाक्षायणी स्वयं पिताके गृहमें जा पहुँची । वहाँ उसके पिताके आत्माभिमानका विराट् अभिनय हो रहा था; दाक्षायणीके पहुँचते ही उसके प्रति अवज्ञाके साथ-साथ शिवनिन्दाका तीव्र हालाहल प्रलय-पयोधिके समान उद्वेलित हो उठा और उसे सह न सकनेके कारण दाक्षायणीने योगबलसे अपने शरीरका त्याग कर दिया, यह पुराणोक्त घटना ही मदन-दहन-लीलाकी प्रस्तावना है ।

भक्तिकी प्रत्यक्ष प्रतिमास्वरूपा दाक्षायणीने प्रेमभक्तिका आदर्श दिखलाकर अपने प्रियतम उपास्यदेवकी सेवाके अनुकूल विशुद्ध देह प्राप्त करनेके लिये गिरिराज हिमालयकी महिषी मेनकादेवीकी कुक्षिमें प्रवेश किया । उपास्यदेवतासे विद्वेषबुद्धि रखनेवाले दक्षप्रजापतिके साथ सब प्रकारका मायिक सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो गया और देवदेव श्रीमहादेव-के निष्काम सेवारूप साधन-भक्तिके अनुकूल देह स्वीकारकर जगन्माता कात्यायनी यथासमय गिरिराजके घर कन्यारूपमें अवतीर्ण हुई । क्रमशः शुक्लपक्षके शशिकलाके समान पार्वती उत्तरोत्तर बढ़ते-बढ़ते तारुण्यके आविर्भावसे लावण्य और सौन्दर्यकी जीवन्त प्रतिमाके समान हिमालयके निसर्ग सुन्दर प्रदेशोंके भूषणरूपमें सुशोभित होने लगीं । ठीक इसी समय भगवान् महादेव भी उसी प्रान्तमें आकर तपस्यामें लग गये । विश्व-ब्रह्माण्डके समस्त जीवोंकी सब प्रकारकी तपस्याका फल जिसकी इच्छामात्रसे पूर्ण होता है वही देवदेव श्रीमहादेव यह तपस्या क्यों करते हैं ? इसका उत्तर देनेकी इच्छा करते हुए महाकवि कालिदास कहते हैं—

तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं
स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः।
स्वयं विधाता तपसः फलानां
केनापि कामेन तपश्चचार॥

उसी स्थानमें यथाविधि प्रज्वलित अग्निका आधान कर— जो अग्नि उनकी भूमि प्रभृति अष्टमूर्तियोंमें एक प्रधान मूर्ति है उसी अग्निका आधान कर—भगवान् महादेवने स्वयमेव समस्त तपस्याके फलदाता होनेपर भी न जाने किस कामनासिद्धिके लिये स्वयं तपस्या प्रारम्भ की। भक्तवाञ्छाकल्पतरु शंकरने आप्तकाम होते हुए भी भक्तिरूपा प्रेममूर्ति पार्वतीकी ही मनोकामना पूर्ण करनेके लिये इस मनोहारिणी तपोलीलाको प्रारम्भ किया था, इसमें सन्देह नहीं। उस समय गिरिराजने क्या किया—

अनर्घ्यमर्घेण तमद्रिनाथः
स्वर्गौकसामर्चितमर्चयित्वा।
आराधनार्थञ्च सखीसमेतां
समादिदेश प्रयतां तनूजाम्॥

जो सबके पूज्य हैं तथा जिनसे पूजाके योग्य अर्घ्य पानेका किसीको अधिकार नहीं, देवतालोग भी जिनकी पूजा सर्वदा किया करते हैं वह स्वयं आकर हिमालयपर तपस्या कर रहे हैं, यह देखकर गिरिराजने उनकी इस तपस्याके ही अनुकूल सेवा करनेके लिये अपनी संयतेन्द्रिया कन्याको सखियोंके साथ जानेकी आज्ञा दी। उस समय पार्वतीने क्या किया ?—

अवचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः॥

वह सुकेशी पार्वती पिताकी इच्छानुसार देवदेव श्रीमहादेवकी पूजाके लिये स्वयमेव पुष्प-चयन करती, उनके आसन और वेदिकाको साफ-सुथरा रखती, पूजा और अभिषेकादिके लिये जल और कुशादि संग्रह करके लाती। इसप्रकार वह प्रतिदिन श्रीमहादेवकी सेवामें निरत रहने लगी। जब इसप्रकार सेवा करते-करते वह श्रान्त हो उठती तब भगवान् शंकरके ललाटमें स्थित चन्द्रकलाकी स्निग्ध किरणें उसपर पड़तीं, जिससे उसका श्रमजनित खेद सर्वथा दूर हो जाता।

इसप्रकार कुछ काल बीत गया। पार्वती अपनी सखी जया और विजयाके साथ पुष्प, समिधा, कुशा तथा जल प्रभृति पूजाकी सामग्री लेकर उस पुण्य-तपोवनमें आतीं, देवदेव श्रीमहादेवके बैठनेकी वेदीको यथाविधि परिमार्जित करतीं, समिधा-कुश प्रभृतिको यथास्थान जुटा रखतीं, अपने हाथसे चुने हुए अञ्जलिपरिपूर्ण मनोहर सुरभियुक्त कुसुमोंको उनके चरणोंके उपान्तमें बिखेर देतीं, और लौटते समय पृथिवीपर मस्तक टेक वृषभध्वजको साष्टाङ्ग प्रणाम करतीं तथा उनके विशाल ललाटके ऊर्ध्वभागमें विराजमान चन्द्रकलाकी सुधास्रवित शीत किरणोंके प्रवाहमें स्नानकर समस्त परिश्रमजनित क्लान्तिको दूर करके प्रसन्न-चित्तसे यथासमय पिताके भवनमें लौट आया करतीं। पार्वतीकी यह प्रेमभक्तिपूर्ण सेवा थी। इस सेवामें आत्मभोगाभिलाषाकी गन्धमात्र न थी, उसमें थी केवल प्रियतम प्राणपति विश्वेश्वरकी तृप्तिमात्रकी अविश्रान्त कामना। उसमें न आत्माभिमान था, न विषयभोगाभिलाषा थी। इस कपटहीन आत्मसमर्पणका किसी प्रकारका बदला अथवा पुरस्कार प्राप्त करनेकी लेशमात्र भी अभिलाषा उनके मनमें न थी। यदि थी तो केवल यही आशा, यही आकांक्षा तथा यही वासना कि मेरी इस निष्कपट सेवासे सर्वभूतान्तरात्मा सच्चिदानन्दघन-विग्रह देवदेव श्रीमहादेव सुखी हों। यदि क्षणमात्रके लिये भी मेरे-देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और आत्माके द्वारा उनकी तनिक भी तृप्ति हुई तो मेरा जन्म सफल हो जायगा। मैं सुख नहीं चाहती, बल्कि उसके बदले अपार क्लेशसमुद्र उमड़कर मुझे अपनेमें डुबा ले तो इससे मेरी कोई क्षति न होगी, किन्तु उससे यदि त्रिलोकीनाथ मेरे प्राणेश्वरको अणुमात्र भी तृप्ति हुई, तो वही मेरे लिये पर्याप्त सुख होगा और उसीमें मेरे जन्मकी अनन्यसाधारण सफलता है। इसप्रकारकी मनोवृत्तिके साथ गिरिराजकुमारी उमा देवदेव श्रीमहादेवकी सेवा करतीं तथा सेवोपरान्त उनके शिरस्थित चन्द्रमाकी रश्मियोंसे अपनीतश्रम होकर शान्त और प्रसन्न-चित्तसे अपने पिताके भवनमें लौट आतीं। महाकवि कालिदासकी अमृत-निःस्यन्दिनी लेखनीसे प्रसूत उनके अमरकाव्य कुमारसम्भवके प्रथम सर्गके इस अन्तिम श्लोकमें अति संक्षेपसे बड़ी ही निपुणताके साथ देवदेव श्रीमहादेवकी सेवामें लगी हुई पार्वतीका जो भक्तिमय चित्र अङ्कित किया गया है उसपर विचारपूर्वक दृष्टिपात न करनेसे तृतीय सर्गमें वर्णित

मदन-दहन-लीलाका रहस्य हृदयङ्गम नहीं हो सकता, इसी कारण 'अवचितबलिपुष्पाः' इस श्लोककी आवश्यक व्याख्या यहाँ की गयी है; आशा है, सहृदय पाठक इस व्याख्याके विस्तारके लिये क्षमा करेंगे।

हिमालयके गौरीशङ्कर-शृङ्गके ऊपर एकान्त तथा पुण्यतम काननमें प्रेमभक्तिप्रसूत यह अपार्थिव (अलौकिक) सेवा-धर्म इसप्रकार आडम्बरशून्य शान्तभावसे जिस समय अनुष्ठित हो रहा था, उस समय एक दिन उसी पुण्य तपोवनमें अकस्मात् नव-वसन्तका आविर्भाव हुआ, वनश्री मानो समुल्लसित हो उठी, प्रत्येक सहकार-पादपमें नव-मञ्जरी प्रस्फुटित हो उठीं, नवोद्गत पलाशकलिकाकी आरक्त आभामें दिङ्मण्डल मानो सन्ध्याकी लालिमासे सुशोभित हो उठा, सब प्रकारके सुगन्धित सुमनोंके विकाससे और मधु-लोलुप भ्रमरावलिके झङ्कारसे समस्त कानन-भूमि सुरभित और मुखरित हो उठी, स्वार्थसिद्धिके निमित्त अत्यन्त उतावले देवताओंके गूढ़ रहस्यमय षड्यन्त्रके परिणाम-स्वरूप, काम भी ठीक इसी समय, रतिके साथ इस अहैतुक प्रेमभक्तिकी प्रसादमय लीलाभूमिमें आविर्भूत हो गया, शुद्ध प्रेमलक्षणाभक्तिके स्वच्छ प्रवाहने मानो क्षणमात्रके लिये अशुद्ध भाव धारण कर लिया। पार्वतीके दैनिक सेवार्थ उस तपोवनमें प्रवेश करनेके कुछ ही पूर्व प्रमथगणनायक नन्दीकी दृष्टि बचाकर सम्मोहनादि पञ्चकुसुमबाणसे युक्त कुसुमधनुसे कुसुममयी ज्याको आरोपित कर कामदेवने वहाँ प्रवेश किया। सामने देखा कि देवदारु-वृक्षके नीचे वेदिकाके ऊपर देवदेव श्रीमहादेव प्रसंख्यान-समाधिमें मग्न हो रहे हैं। अहा ! कैसी सुन्दरता है ? उनका मुखमण्डल असाधारण तेजसे पूर्ण है। अपूर्व महिमामूर्ति है ! महाकवि कालिदासकी भाषामें उसका कैसा सुन्दर भाव स्फुटित हुआ है—

पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकाय-
मृज्वायतं सन्नमितोभयांसम्।
उत्तानपाणिद्वयसन्निवेशात्
प्रफुल्लराजीवमिवाङ्कमध्ये॥
भुजङ्गमोन्नद्धजटाकलाप-
कर्णावसक्तद्विगुणाक्षसूत्रम्।
कण्ठप्रभासङ्गविशेषनीलां
कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम्॥
किञ्चित्प्रकाशस्तिमितोग्रभासै-
र्भ्रूविक्रियायां विरतप्रसङ्गैः।
नेत्रैरविस्पन्दितपक्ष्ममालै-
र्लक्ष्यीकृतघ्राणमधोमयूखैः॥
अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाह-
मपामिवाधारमनुत्तरङ्गम्।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधा-
न्निवातनिष्कम्पमिव प्रदीपम्॥
कपालनेत्रान्तरलब्धमार्गै-
र्ज्योतिःप्रवाहैरुदितैः शिरस्तः।
मृणालसूत्राधिकसौकुमार्यां
बालस्य लक्ष्मीं क्षपयन्तमिन्दोः॥
मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति-
हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम्।
यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्त-
मात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम्॥

कामदेवने देखा कि वह वीरासनसे बैठे हैं, उनके शरीरका ऊर्ध्वभाग निश्चल, सरल और समुन्नत है तथा दोनों स्कन्ध समानरूपसे अवस्थित हैं, दोनों हाथोंको अपने क्रोड़में रक्खे हुए हैं। जान पड़ता है कि यहाँ एक कमल विकसित हो रहा है। उनके जटाजूट सर्पके द्वारा चूड़ाके समान समुन्नतभावसे बँधे हुए हैं, द्विगुणित रुद्राक्षमाला उनके दोनों कानोंको सुशोभित कर रही है, संलग्न-ग्रन्थियुक्त कृष्णवर्ण मृगचर्मकी श्यामता नीलकण्ठकी प्रभासे और भी घनीभूत हो रही है। उनके तीनों नेत्र नासिकाके अग्रभागको लक्ष्यकर स्थिर हो रहे हैं। उस निस्पन्द और स्थिर नेत्र रोम-राजिसे विभूषित त्रिनेत्रके नासिकाग्रपर स्थिर सन्निवेशित होनेके कारण उनसे नीचेकी ओर एक समुज्ज्वल ज्योति निकलकर इतस्ततः छिटक रही है। उन्होंने उस समाधि-अवस्थामें देहान्तचारी वायुसमूहको निरुद्ध कर रक्खा है, जिससे उन्हें देखकर जान पड़ता है कि मानो वे आडम्बर-शून्य तथा जलपूर्ण बरसनेवाले एक गम्भीर आकृतिके बादल हैं अथवा तरंगहीन प्रशान्त महासागर हैं किंवा निर्वात प्रदेशमें निष्कम्प शिखाधारी समुज्ज्वल प्रदीप हैं।

उसने और भी देखा कि उस समाधिमग्न त्रिलोचनके ललाटस्थित नेत्रसे एक प्रकारकी ज्योतिशिखा आलोकधाराके समान बाहर निकल रही है, योगमग्न चन्द्रशेखरके शिरो-देशसे निकलकर यह ज्योतिशिखा नेत्रपथके द्वारा बाहर निकल रही है एवं उनके शिरस्थित मृणालसूत्रके समान कोमल चन्द्रकलाको मानो झुलस रही है।

योगनिष्ठ त्रिपुरारिने समाधिके बलसे शरीरके नवद्वारोंमें अन्तःकरणको निरुद्धकर उसे हृदय-कमलरूप अधिष्ठानमें अवस्थित कर रक्खा है एवं क्षेत्रज्ञ जिसे अविनाशी ब्रह्म कहा करते हैं उसी आत्मस्वरूप परमात्माका वे आत्मामें ही साक्षात् कर रहे हैं।

इस ध्यानगम्य योगीश्वर-मूर्तिको देखकर क्षणमात्रके लिये मदन किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया, उसके शिथिल हाथोंसे कुसुमशर और शरासन गिर पड़ा, अतर्कित भयसे उसकी अन्तरात्मा काँप उठी, ठीक इसी समय गिरिराजकुमारी भी अपनी सखियोंके साथ उस स्थानमें उपस्थित हुई। मदनके भयभीत आत्मामें नूतन बलका सञ्चार हुआ। हृदयमें नवीन बलके प्राप्त होते ही असाध्य साधन करनेकी नवीन आशासे कामदेवने हाथसे गिरे हुए पुष्पवाण और पुष्पधनुपको उठा लिया। देवदेव श्रीमहादेवके साथ पार्वतीके मिलनके लिये, श्रीभगवान्‌के साथ प्रेमभक्तिकी मूर्त प्रतिमा श्रीपार्वतीके चिरकाङ्क्षित समागमके लिये बीचमें मध्यस्थ बननेके लिये कामदेव आकर वासना-राज्यकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हो गया। पर यह कामका राज्य था, यह प्रेमका अर्थात् निष्काम अनुरागका राज्य नहीं था। इस राज्यमें क्या कभी भक्तके साथ भगवान्‌का मिलन हो सकता है? श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतकार ठीक ही कहते हैं—

आत्मेन्द्रिय-प्रीति वाञ्छा तारे बले काम।
कृष्णेन्द्रिय-प्रीति वाञ्छा तार प्रेम नाम॥

कामके सम्पर्कसे प्रेम कलुषित हो जाता है, हृदय भोगमें आसक्त होता है, प्रेम सूख जाता है, भक्त कामुक हो उठता है। ऐसी अवस्थामें भक्तके साथ भगवान्‌का मिलन कभी भी नहीं हो सकता। इसी कारण श्रीमहादेवका तृतीय-नेत्र प्रज्वलित हो उठा और उससे विवेक और वैराग्यरूप ज्योतिःपुञ्ज निकला और उसने कामको भस्मसात् कर दिया। रतिका कामसम्पर्कजनित कलुषभाव दूर हो गया। प्रेमरूपा भक्ति पूर्णताको प्राप्त हुई। इसीका नाम देवाधिदेव श्रीमहादेवकी मदन-दहन-लीला है। इसके बाद ही पार्वतीके साथ शिवका विवाह, प्रेमभक्तिके साथ सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीभगवान् सदाशिवकी अपूर्व मिलन-लीला होती है। उस लीलाके रहस्यका वर्णन लेख बढ़ जानेके भयसे आज नहीं हो सकता। पाठकगण तथा सम्पादक महाशय क्षमा करेंगे।

भगवान् विष्णुका स्वप्न

एक बार भगवान् नारायण अपने वैकुण्ठलोकमें सोये हुए थे। स्वप्नमें वे क्या देखते हैं कि करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तिवाले, त्रिशूल-डमरू-धारी, स्वर्णाभरण-भूषित, सुरेन्द्रवन्दित, अणिमादिसिद्धिसेवित त्रिलोचन भगवान् शिव प्रेम और आनन्दातिरेकसे उन्मत्त होकर उनके सामने नृत्य कर रहे हैं। उन्हें देखकर भगवान् विष्णु हर्ष-गद्गद् हो सहसा शय्यापर उठकर बैठ गये और कुछ देरतक ध्यानस्थ बैठे रहे। उन्हें इसप्रकार बैठे देखकर श्रीलक्ष्मीजी उनसे पूछने लगीं कि भगवन्! आपके इस-प्रकार उठ बैठनेका क्या कारण है? भगवान्‌ने कुछ देरतक उनके इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया और आनन्दमें निमग्न हुए चुपचाप बैठे रहे। अन्तमें कुछ स्वस्थ होनेपर वे गद्गद् कण्ठसे इसप्रकार बोले—हे देवि, मैंने अभी स्वप्नमें भगवान् श्रीमहेश्वरका दर्शन किया है। उनकी छवि ऐसी अपूर्व आनन्दमय एवं मनोहर थी कि देखते ही बनती थी। मालूम होता है, शङ्करने मुझे स्मरण किया है। अहोभाग्य! चलो, कैलासमें चलकर हमलोग महादेवके दर्शन करें।

यह कहकर दोनों कैलासकी ओर चल दिये। मुश्किलसे आधी दूर गये होंगे कि देखते हैं भगवान् शङ्कर स्वयं गिरिजाके साथ उनकी ओर चले आ रहे हैं। अब भगवान्‌के आनन्दका क्या ठिकाना? मानो घर बैठे निधि मिल गयी। पास आते ही दोनों परस्पर बड़े प्रेमसे मिले। मानो प्रेम और आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा। एक-दूसरेको देखकर दोनोंके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे और शरीर पुलकायमान हो गया। दोनों ही एक दूसरेसे लिपटे हुए कुछ देर मूकवत् खड़े रहे। प्रश्नोत्तर होनेपर मालूम हुआ कि शङ्करजीको भी रात्रिमें इसी प्रकारका स्वप्न हुआ कि मानो विष्णुभगवान्‌को वे उसी रूपमें देख रहे हैं जिस रूपमें वे अब उनके सामने खड़े थे। दोनोंके स्वप्नका वृत्तान्त अवगत होनेपर दोनों ही लगे एक दूसरेसे अपने यहाँ लिवा ले जानेका आग्रह करने। नारायण कहें वैकुण्ठ चलो और शम्भु कहें कैलासकी ओर प्रस्थान कीजिये। दोनोंके आग्रहमें

इतना अलौकिक प्रेम था कि यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कहाँ चला जाय ? इतनेहीमें क्या देखते हैं कि वीणा बजाते हरिगुण गाते नारदजी कहींसे आ निकले। बस, फिर क्या था ? लगे दोनों ही उनसे निर्णय कराने कि कहाँ चला जाय ? बेचारे नारदजी तो स्वयं परेशान थे। उस अलौकिक मिलनको देखकर वे तो स्वयं अपनी सुध-बुध भूल गये और लगे मस्त होकर दोनोंका गुणगान करने। अब निर्णय कौन करे ? अन्तमें यह तै हुआ कि भगवती उमा जो कह दें वही ठीक है। भगवती उमा पहले तो कुछ देर चुप रहीं। अन्तमें वे दोनोंको लक्ष्य करके बोलीं*—हे नाथ ! हे नारायण ! आपलोगोंके निश्चल, अनन्य एवं अलौकिक प्रेमको देखकर तो यही समझमें आता है कि आपके निवासस्थान अलग-अलग नहीं हैं, जो कैलास है वही वैकुण्ठ है और जो वैकुण्ठ है वही कैलास है; केवल नाममें ही भेद है। यही नहीं, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी आत्मा भी एक ही है, केवल शरीर देखनेमें दो हैं। और तो और, मुझे तो अब यह स्पष्ट दीखने लगा कि आपकी भार्याएँ भी एक ही हैं, दो नहीं। जो मैं हूँ वही श्रीलक्ष्मी हैं और जो श्रीलक्ष्मी हैं वही मैं हूँ। केवल इतना ही नहीं, मेरी तो अब यह दृढ़ धारणा हो गयी है कि आप-लोगोंमेंसे एकके प्रति जो द्वेष करता है वह मानो दूसरेके प्रति ही करता है, एककी जो पूजा करता है वह स्वाभाविक ही दूसरेकी भी करता है और जो एकको अपूज्य मानता है वह दूसरेकी भी पूजा नहीं करता। मैं तो यह समझती हूँ कि आप दोनोंमें जो भेद मानता है उसका चिरकालतक घोर पतन होता है। मैं देखती हूँ कि आप मुझे इस प्रसङ्गमें अपना मध्यस्थ बनाकर मानो मेरी प्रवञ्चना कर रहे हैं, मुझे चक्करमें डाल रहे हैं, मुझे भुला रहे हैं। अब मेरी यह प्रार्थना है कि आपलोग दोनों ही अपने-अपने लोकको पधारिये। श्रीविष्णु यह समझें कि हम शिवरूपसे वैकुण्ठ जा रहे हैं और महेश्वर यह मानें कि हम विष्णुरूपसे कैलास-गमन कर रहे हैं।

इस उत्तरको सुनकर दोनों परम प्रसन्न हुए और भगवती उमाकी प्रशंसा करते हुए दोनों प्रणामालिङ्गनके अनन्तर हर्षित हो अपने-अपने लोकको चले गये।

लौटकर जब श्रीविष्णु वैकुण्ठ पहुँचे तो श्रीलक्ष्मीजी उनसे पूछने लगीं कि—प्रभो ! सबसे अधिक प्रिय आपको कौन है ? इसपर भगवान् बोले†—'प्रिये ! मेरे प्रियतम केवल श्रीशङ्कर हैं। देहधारियोंको अपने देहकी भाँति वे मुझे अकारण ही प्रिय हैं। एक बार मैं और शङ्कर दोनों ही पृथिवीपर घूमने निकले। मैं अपने प्रियतमकी खोजमें इस आशयसे निकला कि मेरी ही तरह जो अपने प्रियतमकी खोजमें देश-देशान्तरोंमें भटक रहा होगा, वही मुझे अकारण प्रिय होगा। थोड़ी देरके बाद मेरी श्रीशङ्करजीसे भेंट हो गयी। ज्यों ही हमलोगोंकी चार आँखें हुईं कि हमलोग पूर्वजन्मार्जित विद्याकी भाँति एक दूसरेके प्रति आकृष्ट हो गये‡। वास्तवमें मैं ही जनार्दन हूँ और मैं ही महादेव हूँ। अलग-अलग दो घड़ोंमें रक्खे हुए जलकी भाँति मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है। शङ्करजीके अतिरिक्त शिव-की अर्चा करनेवाला शिवभक्त भी मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसके विपरीत जो शिवकी पूजा नहीं करते वे मुझे कदापि प्रिय नहीं हो सकते।'

शिव-द्रोही वैष्णवोंको और विष्णु-द्वेषी शैवोंको इस प्रसङ्गपर ध्यान देना चाहिये।

---

* यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ ! केशव ! मन्ये तया प्रमाणेन न भिन्नवसती युवाम् ॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ ! केशव ! मन्ये तया प्रमाणेन आत्मैकोऽन्यतनुर्मिथः ॥
या प्रीतिर्दर्शिता देव युवाभ्यां नाथ ! केशव ! मन्ये तया प्रमाणेन भार्ये आवां पृथङ् न वाम् ॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ ! केशव ! मन्ये तया प्रमाणेन द्वेष एकस्य स द्वयोः ॥
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ ! केशव ! मन्ये तया प्रमाणेन अपूजैकस्य च द्वयोः ॥

† न मे प्रियतमाः सन्ति शिव एकः प्रियो मम । अहेतुकः प्रियोऽसौ मे स्वकायः प्राणिनामिव ॥

‡ स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः । उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव ॥
शिवादन्यः प्रियो मेऽस्ति भक्तो यः शिवपूजकः । शिवस्यापूजको लक्ष्मि न कदापि प्रियो मम ॥

(बृहद्धर्मपुराण, पूर्वखण्ड, अध्याय ९ । १०)

शैवागम

(लेखक—श्रीश्रीशम्भुलिंगजी शिवाचार्य महाराज, बृहन्मठ)

नुष्यकी ऐहिक और पारमार्थिक उन्नतिका साधन उसका सद्धर्म है और सद्धर्मके विशेष स्वरूपको जानना ही प्रत्येक व्यक्तिका प्रथम कर्त्तव्य है। और इसे भलीभाँति जाननेके लिये एक परम आप्त पुरुषकी सहायता आवश्यक है। इस विश्वप्रपञ्चमें अनिमित्त बन्धु परमेश्वर ही परम आप्त पुरुष हैं। क्योंकि सबका हित करनेवाला उनके बिना दूसरा नहीं है। उस परमेश्वरका हितोपदेश ही 'वेद', 'आगम', 'श्रुति', 'समाम्नाय' इत्यादि नामोंसे सर्वत्र प्रसिद्ध है। वेद ही सत्यधर्मका मूल होनेके कारण सद्धर्मके स्वरूपके जाननेमें मुख्य साधन है। इसी अभिप्रायको प्रकट करनेके लिये भगवान् गौतम मुनिने 'वेदो धर्ममूलम्' इस सूत्रकी रचना की थी। इससे यह सिद्ध होता है कि सनातन-धर्मके यथार्थ ज्ञानका कारणभूत (साधन) वेद (श्रुति) ही समस्त आस्तिकोंका मुख्य प्रमाण है।

वेद और श्रुति इन दोनों शब्दोंके एकार्थवाचक होनेके कारण श्रुति ही वेद है—ऐसा अर्थ ग्रहण किया जाता है। पर हारीत मुनिने—

'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः। श्रुतिप्रमाणको धर्मः। श्रुतिश्च द्विविधा वैदिकी तान्त्रिकी च।'

—इन सूत्रोंमें श्रुतिके वैदिक और तान्त्रिक दो भेद प्रतिपादन किये हैं। इस प्रमाणसे द्विदल धान्यके समान रहनेवाली श्रुतिके वैदिक और तान्त्रिक दो प्रकारके वाङ्मयमें श्रौतभावका व्यत्यय कभी सम्भव नहीं। इसप्रकारसे श्रुति वैदिकी और तान्त्रिकी दो नामोंसे प्रसिद्ध हुई। श्रुतिकी उत्पत्ति जगत्की उत्पत्तिके साथ ही हुई, यह बात उपर्युक्त श्रुतिवाक्योंसे ही सिद्ध होती है। इससे जिसप्रकार वैदिकी श्रुतिकी उत्पत्ति परमेश्वरसे मानी जाती है वैसे ही तान्त्रिकी श्रुतिकी उत्पत्ति भी परमेश्वरसे ही माननी चाहिये।

परमेश्वर कैसा है ? वह सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्वादि शक्तिविशिष्ट है। यह परमेश्वर ही इन उभय श्रुतियोंमें परब्रह्म, परशिवलिङ्ग, स्थल प्रभृति भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा गया है।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्य-
न्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

—इत्यादि उपनिषद्वाक्योंसे परब्रह्मरूप परशिवस्वरूपमें चन्द्रचन्द्रिकाके समान अभिन्नभावसे रहनेवाली चिच्छक्ति ही परशिवकी स्वात्मीयशक्ति जान पड़ती है। सृष्टिके आरम्भमें परशिवकी स्वात्मीय शक्तिके स्फुरणसे जो ईषत् चलन होता है वही 'नाद' कहलाता है। इस नादको ही शब्दतत्त्वका मूलभूत कहते हैं। इसी अर्थको श्रीरामकण्ठाचार्यने इसप्रकार स्पष्ट किया है—

स महामायाजन्यो नादः परमार्थवाचको भवति।
येन स्थूलं शब्दं मन्त्रं तन्त्रात्मकं भवेद्वापि॥

परन्तु शिवतत्त्वमें तत्स्वरूपभूत जो अवबोधात्मक विमल ज्ञान है वह सबसे पूर्व नादरूपसे सूक्ष्मतः आविर्भूत होकर पीछे स्थूल शब्दसे मन्त्र-तन्त्रात्मकरूपसे प्रसरित हुआ। सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोधान और अनुग्रहस्वरूप पञ्चकृत्योपयोगी तथा पञ्चमन्त्रात्मक परशिव-स्वात्मीय शक्तियाँ ही परशिवके पञ्चवक्त्र हैं। इन सद्योजातादि पञ्चवक्त्रोंसे तान्त्रिकी श्रुतिकी उत्पत्ति किसप्रकार हुई, इसे तान्त्रिकी श्रुति इसप्रकार प्रतिपादन करती है—

कामिकाद्यचितान्ताश्च सद्योजातमुखोद्भवाः।
दीप्तादिसुप्रभेदाख्या वामदेवमुखोद्भवाः॥
विजयाद्यास्तु वीरान्ताः पञ्चैतेऽघोरवक्त्रजाः।
कारवाद्यास्तु बिम्बान्ताः पुरुषाख्याननोद्भवाः॥
प्रोद्गीताद्यष्टतन्त्रास्तु चेशाननसम्भवाः।

अर्थात् सद्योजात मुखसे कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण, अचित—यह पाँच आगम उत्पन्न हुए। वामदेवमुखसे दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमत् , सुप्रभेद—यह पाँच आगम उत्पन्न हुए। अघोरमुखसे विजय, निःश्वास, स्वायम्भुव, अनल, वीर—यह पाँच आगम उत्पन्न हुए। तत्पुरुष-मुखसे कारव, मधुप, विमल, चन्द्र, ज्ञान बिम्ब—यह पाँच आगम उत्पन्न हुए। ईशानमुखसे प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, सर्वोत्तर, पारमेश्वर, किरण, वातुल—यह आठ आगम उत्पन्न

हुए। यह कामिकादि २८ आगम ही तान्त्रिकी श्रुतिकी विभिन्न शाखाएँ हैं, इन्हें संहिता भी कहते हैं। इनके सबसे प्रथम द्रष्टा विश्वेश्वर, प्रणवादि दस शिव तथा अनादि रुद्र आदि अष्टादश रुद्र हैं। इनके पश्चात् इन शैवागमोंके प्रवर्तक महर्षि लोग हो गये। इन २८ शैवागमोंके पूर्व तथा उत्तर दो भाग हैं। पूर्वभागमें कर्मकाण्ड और उत्तरभागमें ज्ञानकाण्ड-का प्रतिपादन हुआ है। पूर्वकाण्डमें सामान्य शैव, मिश्र शैवादि धर्मोंका प्रतिपादन तथा उत्तरकाण्डमें शिवज्ञान, शिवध्यान, शिवव्रत, शिवार्चन, शिवभक्ति इत्यादि ब्रह्मविद्योपयोगी वीर-शैव-मताचारोंका ही मुख्यरूपसे प्रतिपादन हुआ है। उपर्युक्त प्रत्येक आगमके पूर्व और उत्तर दो काण्डोंमें क्रिया, चर्या, योग और ज्ञानरूप चार पाद अन्तर्हित हैं।

'आगम' तन्त्रको कहते हैं और तन्त्र-ग्रन्थोंमें वेदविरुद्ध आचारबोधक वाक्य रहनेके कारण यह ग्रन्थ वैदिक लोगोंको मान्य नहीं है। इस मान्यताके कारण बहुत-से विद्वान् दिव्यागम (श्रौतागम) को भी स्वीकार नहीं करते। परन्तु उनके ऐसा माननेका कारण एकमात्र वस्तुस्थितिके यथार्थ ज्ञानका अभाव है। दूसरा एक और कारण यह भी है कि वेदविरुद्ध आचारोंके प्रतिपादन करनेवाले अनेक वेदबाह्य तन्त्र-ग्रन्थ भी 'आगम' के नामसे खूब प्रसरित हो रहे हैं। इसलिये श्रौतागमोंके यथार्थ स्वरूपका जिन्हें ज्ञान नहीं है उनके मनमें 'आगम' शब्दके श्रवणमात्रसे तिरस्कारका भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। मैं समझता हूँ, इसप्रकारका भ्रम इस लेखके पढ़नेसे दूर हो जायगा।

मीमांसादि विभिन्न शास्त्र भी तन्त्र-नामसे प्रसिद्ध हैं। इससे श्रौतागमरूप शैव-संहिताओंको भी 'शिव-दर्शन' 'शैवशास्त्र' 'शैवागम' 'शैवतन्त्र' 'सिद्धान्तशास्त्र' आदि नामोंसे पुकारते हैं। इन श्रौतागमोंमें ब्राह्मणादि चातुर्वर्ण्य तथा ब्रह्मचर्यादि चतुराश्रमोंके विहित धर्माचार विस्तृत-रूपसे प्रतिपादित हुए हैं। जो वेदविरुद्ध धर्माचरणबोधक कुतन्त्र हैं उन अश्रौतागमोंको ही प्रमाण माननेवाले वेद-विहीन पुरुष चातुर्वर्ण्य तथा चतुराश्रमोंको अङ्गीकार नहीं करते तथा षोडश संस्कारोंको भी वे नहीं मानते। इसी कारणसे वैदिक लोग उनके संसर्गसे दूर रहते हैं। चातुर्वर्ण्य तथा चतुराश्रमोंके माननेवाले एवं षोडश संस्कारोंका अनुष्ठान करनेवाले जो शुद्ध सम्प्रदायी हैं वे वेद, स्मृति, सूत्रादिकोंको जैसे परम प्रमाण मानते हैं वैसे ही दिव्यागमों-को भी अङ्गीकार करते हैं। दिव्यागमोंकी आज्ञा भी ऐसी ही है—

इति वर्णाश्रमाचारान्मनसापि न लङ्घयेत्।
यो यस्मिन्नाश्रमे तिष्ठन्प्राप्तो दीक्षां शिवात्मिकाम्॥
तस्मिन्नेव स संतिष्ठेत् शिवधर्मं च पालयेत्॥

इस वचनके अनुसार सनातन-आर्य-धर्मानुयायी लोगोंको अपने-अपने वर्णाश्रमोंका उल्लङ्घन किये बिना ही शैवागमोक्त-दीक्षा लेकर शिवज्ञान, शिवध्यान, शिव-व्रत, शिवार्चन, शिवभक्तिरूप शैव धर्माचरणके अनुष्ठान तथा आन्तरङ्गिक अभेदानुसन्धानके बलसे कीटभ्रमरन्यायके अनुसार शिवस्वरूप हो जाना परम कर्तव्य है। प्राचीन कालमें द्विज लोगोंने तत्कालीन शैवागम-प्रवर्तक श्रीरेवण-सिद्ध, श्रीउपमन्यु आदि सिद्धगण तथा महर्षियों और महात्माओंसे शिवदीक्षा प्राप्तकर शैवमतका अनुसरण किया था। इस विषयमें सिद्धागम, पद्मपुराण और महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थ प्रमाण हैं। श्रीरेवणसिद्धसे अगस्त्यादि महर्षियोंने शिवज्ञानोपदेशको कैसे प्राप्त किया—यह बात सिद्धागममें है तथा अगस्त्य महर्षिने श्रीरामचन्द्रजीको शिवदीक्षा, शिवव्रतादि शैव धर्माचरणोंका उपदेश कैसे दिया, यह बात पद्मपुराणान्तर्गत शिवगीतामें है एवं श्रीउपमन्यु मुनिसे श्रीकृष्णने शिवदीक्षा, शिवव्रताचरणको कैसे प्राप्त किया— यह बात महाभारतके अनुशासन-पर्वमें स्पष्ट लिखी हुई है। इससे शैवागम तथा उनमें प्रतिपाद्य शैव धर्माचरण सर्व-शिष्ट जनसमादृत है यह निर्विवाद सिद्ध है। इसी कारण शिष्टजन वैदिकी श्रुतिके समान शैवागमरूप तान्त्रिकी श्रुतिको भी परम प्रमाणरूपमें अंगीकार करते हैं।

आद्य श्रीशंकराचार्यने 'गायत्रीपुरश्चरण-पद्धति' नामक अपने ग्रन्थमें पुरस्क्रियके मुख्य पञ्चाङ्गका निरूपण करते हुए लिखा है—

जपार्चापूर्वको होमस्तर्पणं चाभिषेचनम्।
भूदेवभोजनं चैवंप्रकारैषा पुरस्क्रिया॥
इति पञ्चाङ्गतः सिद्धिं मन्त्री शीघ्रमवाप्नुयात्।
तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्वी निग्रहानुग्रहक्षमः॥
भवेद्‍चिरकालेन सत्यं जानीहि पार्वति।

इति स्वरवाक्यम्।

इन शैवागम-वाक्योंका उल्लेख करके तथा ग्रन्थके उपसंहारमें 'वत्सरादर्वाक् सिद्धिर्जायते, तदुक्तं शिवशासने' ऐसा कहकर शैवागम-वाक्योंको ही प्रदर्शित किया है। सारांश यह है कि सन्ध्या, गायत्री, जप, शिवलिङ्ग-

प्रतिष्ठापन, शिवलिङ्गपूजाविधि इत्यादि अनुष्ठानोंका क्रमपूर्वक शैवागममें विस्तारसे प्रतिपादन होनेके कारण यह सब क्रियाएँ शैवागमवाक्योंके ग्रहणसे साङ्गपूर्ण होती हैं, इससे इस दिव्यागमको सर्व शिष्टजनोंके लिये परिग्राह्य होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता। श्रीहरदत्त आचार्यने—

वेदः प्रमाणमिति सङ्गिरमाण एव
दिव्यं तवागममुपैति जनः प्रमाणम्।

—इस वाक्यसे वेदके समान आगमको भी प्रमाण माना है।

सूर्य भट्ट कहते हैं—

नहि वेदागमयोरत्यन्तविरोधः, परकर्तृकत्वाविशेषात्।

वेद और आगम—इन दोनोंके कर्त्ता एक ही परमेश्वरके होनेसे दोनोंकी समानरूपसे प्रमाणता है। सुप्रसिद्ध विद्वान् अप्पय्य दीक्षितने 'शिवतत्त्वविवेक' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि—

वेदार्थसारसंग्रहात्मकानां क्वचिदपि दोषशङ्काकलुषरहितानां शैवागमानामेव सर्वागमेभ्यो बलवत्त्वव्यवस्थितेः।

वेदके ही सारभूत अर्थको क्रमपूर्वक और सुस्पष्ट रीतिसे प्रतिपादन करनेवाले किञ्चिन्मात्र भी दोषसे रहित संशयहीन पवित्र शैवागमोंका अन्य आगमोंकी अपेक्षा अधिक प्रामाण्य निर्विवाद सिद्ध है।

पुराणोंमें भी शैवागमोंका प्राशस्त्य खूब वर्णन किया गया है। स्कन्दपुराणकी सूतसंहिताके प्रथमाध्यायमें लिखा है—

अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः।
कामिकादिप्रभेदानां यथा देवो महेश्वरः॥

इस श्लोककी मध्याचार्य इसप्रकार व्याख्या करते हैं—

कामिकादीनामागमसंहितानां शिवेनैव प्रणयनात् प्रामाण्ये यथा विश्रम्भः, एवं नारायणावतारेण व्यासेन प्रणयनात् पुराणेऽप्यविशेषः।

कामिकादि आगम महेश्वरप्रोक्त हैं, इस कारणसे जैसे इनका प्रमाण अबाधित है वैसे ही नारायणावतार महर्षि व्यासप्रणीत पुराण भी प्रमाण हैं।

इन २८ आगमोंके वाक्य अनन्तरूप हैं—

'वेदा वा एते अनन्ता वै वेदाः'

—इस प्रमाणके अनुसार आगम भी संख्यातीत हैं। उनमेंसे आज जो आगम उपलब्ध हैं उनपर प्राचीन आचार्योंके भाष्य, वृत्ति, व्याख्यानादि भी बहुत हैं। इनके पठन-पाठनका प्रचार कर्णाटक, आन्ध्र आदि प्रान्तोंमें अधिक है तथा मध्य-प्रान्त और बङ्गाल-प्रान्तमें भी आगम-शास्त्रको भलीभाँति जाननेवाले विद्वान् अभी मिलते हैं एवं इङ्गलैण्ड, जर्मन आदि विदेशोंके बड़े-बड़े विश्वविद्यालयोंकी लाइब्रेरियोंमें भी कुछ आगमके ग्रन्थ विद्यमान हैं जिनके अध्ययनसे वहाँके संस्कृतज्ञ कृतार्थ हो रहे हैं। परन्तु हिन्दुस्तानके विद्वान् इन आगम-ग्रन्थोंके जाननेका कुछ भी प्रयत्न नहीं करते, यह देखकर खेद और साथ ही आश्चर्य भी होता है। अब भी भारतवासी विद्वान् पक्षपातहीन दृष्टिसे तथा निरभिमान-वृत्तिसे शैवागम-वाङ्मयके रहस्यको जाननेके लिये यत्नशील होंगे, ऐसी मेरी आशा है।

भगवान् शिव

(१)

सित गंगा-जल-राशि, शीशपर, जटा विरति-आकृति निर्मल,
दिव्य बाल-शशि-लसित भाल, शुचि तेजराशिमय मुखमण्डल।
जगत-दग्धकारी प्रचण्ड विष द्वाराकृत सुकण्ठ श्यामल,
पुञ्जीकृत जग-सुन्दरता-सम अति सुडौल तन गौर सबल।
वश्य काल सम केलि-निरत फणि-शोभित विस्तृत वक्षस्थल,
चरम दयामय दो लोचन हैं, चरम क्रोधमय एक अमल।

(२)

सदन गर्वहर, गिरिजा-सुखकर, योगेश्वर, धृतबाल-स्वभाव,
तव उपासकोंके हित रहता जगमें कोई नहीं अभाव।
स्वयं ब्रह्मके तुम स्वरूप हो याकि ब्रह्मके अंश प्रधान,
अथवा हो आनन्द-सिन्धुकी गुरुतम लहरोंके उत्थान।
हो जाता जिस समय असंभव जगतीमें दुर्भाव-दमन,
करते तब तुम उसमें हितकर नाश-रूप गुरु परिवर्तन।

—आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

शिव-तत्त्व

(लेखक—भारत-धर्म-महामण्डलके एक महात्मा)

ब्रह्मादि पिपीलिकान्त अणु-परमाणु-तक चित्सत्ता सर्वत्र परिव्याप्त होनेके कारण जड एक कल्पनामात्र ही रह जाती है। वास्तवमें जड कोई वस्तु नहीं, चैतन्यका ही सब ओर अस्तित्व है। यही पराभक्तियुक्त सर्वव्यापक ईश्वर-ज्ञानका मौलिक-विज्ञान है। हम सनातनी आस्तिक हैं और सब ओर ईश्वरकी सत्ताको देखा करते हैं, समस्त जगत्को वासुदेव-मय देखते हैं, इसका यही रहस्य है। अब ईश्वर-तत्त्वके सम्बन्धमें विचार करना योग्य होगा।

सनातन वैदिक दर्शनोंके विज्ञानानुसार और नाना उपनिषदोंके ईश्वर-तत्त्व-सम्बन्धी रहस्यके अनुसार ईश्वर-तत्त्व-के विज्ञानके अनुशीलनकी पहले आवश्यकता है। वैदिक विज्ञानके अनुसार ईश्वर-तत्त्व त्रिभावोंके आधारपर तीन प्रकार-से अनुभूत होता है। त्रिभावोंमें पहला ब्रह्मभाव है। जब सृष्टि नहीं रहती अथवा सृष्टिकी गति जहाँ नहीं है, उस सृष्टिसे अतीत अद्वैत-सत्तारूपी निर्गुणभावको ब्रह्मभाव कहते हैं। दूसरा ईश्वरभाव है—जब ब्रह्मप्रकृति ब्रह्मसे पृथक् होकर सृष्टिविलास प्रकट करती है और ब्रह्म अर्थात् परमात्मा स्वतन्त्र रहकर उसका ईक्षण करते हैं उस समय ब्रह्म केवल द्रष्टा होते हैं और ब्रह्मप्रकृति दृश्यकी सृष्टि-स्थिति-लय करनेवाली रहती है। यही सगुणभाव ईश्वरभाव कहलाता है। तीसरा विराट्भाव है—जब ब्रह्मप्रकृतिके विलासरूपी अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डमय सृष्टि-प्रपञ्चके साथ ईश्वरभावका सम्बन्ध बना रहता हो, तब जो स्थूल मूर्तिमान् भाव दृग्गोचर होता है, वही विराट्भाव है। ज्ञानी भक्त अपनी ज्ञानदृष्टिसे इन्हीं तीनों भावोंमें श्रीभगवान्के दर्शन किया करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्ने भगवदवताररूपसे भक्त अर्जुनको इन्हीं तीनों भावोंका उपदेश किया है। आत्माकी निर्लिप्तताके वर्णनके द्वारा ब्रह्मभावका, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-वर्णनके द्वारा ईश्वरभावका और विराट्मूर्तिका दर्शन कराकर विराट्-भावका अनुभव श्रीहरिने पार्थको कराया था। इन्हीं तीनों भावोंमेंसे ईश्वरभावको मुख्य मानकर द्वैत-प्रपञ्चकी ओर अनुभवको अग्रसर करनेसे यही प्रतीति होगी कि ब्रह्मप्रकृति जब स्वतन्त्र होकर दृश्य-प्रपञ्चरूपी कार्य करने लगती है, जिसको परमात्मा देखते हैं, उस समय त्रिगुणमयी ब्रह्म-प्रकृतिका त्रिगुणमय स्वरूप स्वतन्त्ररूपसे ज्ञानी भक्तके अनुभवमें आने लगता है।

इसी अवस्थामें सगुण ब्रह्मके इस मधुर विलासको चाहे युगलरूप, चाहे जगत्पिता, चाहे जगन्माता कह सकते हैं। सगुणब्रह्मकी मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर यही अवस्था किसी शास्त्रमें महाविष्णु, किसी शास्त्रमें सदाशिव, किसी शास्त्रमें गणपति, किसी शास्त्रमें सूर्यदेव और किसी शास्त्रमें महादेवीके रूपसे वर्णित है। पञ्च सगुण-उपासनाका यही रहस्य है। त्रिभावमयी विश्वजननी महामायारूपिणी महादेवी ब्रह्माण्डकी सृष्टि, स्थिति और लयके लिये भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिवको प्रसव करती है, जो त्रिमूर्ति कहलाते हैं और प्रत्येक ब्रह्माण्डमें यथाक्रम त्रिगुणके अधिदैव बनकर सृष्टि, स्थिति और लयकार्य अपनी शक्तियोंके साथ सम्मिलित होकर किया करते हैं। ब्रह्माजीकी शक्ति सावित्री, विष्णुकी शक्ति लक्ष्मी और शिवजीकी शक्ति पार्वती कहाती है। ये ही तीनों सशक्तिक देवता प्रत्येक ब्रह्माण्डके ईश्वर कहलाते हैं। इन तीनोंमेंसे ब्रह्माण्डके स्थिति-कर्ता भगवान् विष्णुके सृष्टिरक्षाके लिये और मुक्तिदाता भगवान् शिवके जीवको ब्रह्मभावमें लीन करनेके लिये अवतार हुआ करते हैं। उनकी शक्तियोंके भी ऐसे ही अवतार होते हैं। अवतारोंका प्राकट्य मनुष्यपिण्ड, सहजपिण्ड और अलौकिक पिण्ड धारण करके होता है। इन त्रिमूर्तियोंके अधीन पुनः अनेक बड़े-बड़े पदधारी देवता अपने पद-गौरवके अनुसार ईश्वरीय शक्तियोंको धारणकर ईश्वर कहलाया करते हैं। इसी नियमके अनुसार भगवान् यम धर्मराजको ही पृथिवीके अनेक धर्मावलम्बी ईश्वर करके मानते हैं और उनकी बुद्धि ईश्वर-तत्त्वमें वहींतक पहुँचती है। सनातन-धर्मके विज्ञानानुसार मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर ईश्वरतत्त्वका यही संक्षिप्त रहस्य है।

त्रिभावमयी विश्वजननी जो सृष्टि करती है उसमें दैवी सृष्टि प्रधान है। ऋषि, देवता और पितर ये सभी देवयोनि हैं। उन सबमें रुद्रकी उत्पत्ति बहुत ही गम्भीर विज्ञानमूलक है। सृष्टिके आरम्भमें यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन

त्रिमूर्तियोंका आविर्भाव एक ब्रह्माण्डमें एक साथ ही होता है तथापि उस समय ब्रह्मा जागते रहते, विष्णु योगनिद्रामें निद्रित रहते और रुद्र दोनोंके शरीरोंमें व्याप्त रहते हैं। ब्रह्माकी सहायताके लिये विष्णुकी योगनिद्रा भङ्ग होती है और अनन्तर रुद्रका प्राकट्य होता है। कोई किसीके पुत्र नहीं हैं। तीनों अपने-अपने अधिकारानुसार सगुण ब्रह्म हैं। आयुमें ब्रह्माकी आयु सबसे कम, विष्णुकी उससे अधिक और रुद्रकी उससे भी अधिक है। दैवसृष्टिमें देवसंघके अधिपति भगवान् विष्णु, पितृसंघके अधिपति भगवान् ब्रह्मा और ऋषिसंघके अधिपति भगवान् रुद्र अथवा शिव हैं। भगवान् ब्रह्मा इसी कारण आधिभौतिक शक्तिप्रदाता, भगवान् विष्णु धर्मप्रदाता और भगवान् शिव ज्ञानप्रदाता हैं। इस कारण प्रत्येक ब्रह्माण्डमें आयुके विचारसे तथा ज्ञानप्रदानत्व-शक्तिके विचारसे भगवान् शिवका ही वृद्धत्व शास्त्रोंमें स्वीकार किया गया है।

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें यह हमारा मृत्युलोक एक चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा है। भूर्भुवः आदि सात ऊर्ध्व-लोक और अतल, वितल आदि सात अधोलोक—इसप्रकार चौदह लोक होते हैं। इन्हीं चौदह लोकोंमेंसे भू-लोकके चार हिस्से हैं। वही पितृलोक, नरकलोक, प्रेतलोक और मृत्यु-लोक कहाते हैं। इन सबमेंसे केवल मृत्युलोक ही स्थूल लोक है, बाकी सब सूक्ष्म दैवी लोक हैं। इन सब दैवलोकोंमें ऋषि, देवता, पितर, गन्धर्व, किन्नर, असुर, राक्षस, भूत, प्रेत आदि नाना श्रेणीकी देवयोनियाँ वास करती हैं। असुरोंकी राजधानी सप्तम असुर-लोक पातालमें है। देवराजकी राज-धानी स्वर्गलोकमें है और यम—धर्मराजकी राजधानी पितृ-लोकमें है। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और शिवलोक—ये सब सप्तम ऊर्ध्व-लोकके अन्तर्गत हैं। यही सब दैवी शृंखलाका रहस्य है। सब बड़े-बड़े पदधारियोंकी आयु अलग-अलग है। प्रत्येक मन्वन्तर अर्थात् एक मनुकी आयुका प्रमाण इस तरहसे कहा गया है कि, एक चौकड़ी युग मनुष्यके ४३२०००० वर्षोंका होता है। ऐसे ७१ चौकड़ी युगका एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें मनुपदधारी देवता बदल जाते हैं और साथ-ही-साथ दैवी शृङ्खला और अनेक देवपदधारी बदल जाते हैं। शास्त्रोंमें प्रमाण है कि मनुष्यके ३११०४०००००००० वर्षोंमें एक ब्रह्मापदधारी देवता बदल जाते हैं। मनुष्योंके ९३३१२०००००००००००००० वर्षोंमें एक विष्णुपदधारी बदल जाते हैं। और मनुष्योंके २२३९४८८०००००००००००००००००० वर्षोंमें एक शिवपदधारी बदल जाते हैं। अर्थात् भगवान् शिवके ब्रह्मीभूत होनेके साथ-ही-साथ एक ब्रह्माण्डका महाप्रलय हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि एक ब्रह्माकी आयुमें अनेक मनु और अनेक इन्द्र बदल जाते हैं। एक विष्णुकी आयुमें अनेक ब्रह्मापदधारी बदल जाते हैं। परन्तु शिवकी आयुके साथ ब्रह्माण्डकी आयु लगी हुई है। शिव-पदधारी अद्वितीय ही हुआ करते हैं। इस विचारसे भी प्रत्येक ब्रह्माण्डके त्रिमूर्तिरूप ईश्वरोंमेंसे शिवका ही वृद्धत्व सर्वशास्त्रसम्मत है।

अतः सगुण ईश्वरत्वके मन-वाणीसे अगोचर ईश्वरपदके विचारसे शिव-तत्त्वका चमत्कार कुछ अलौकिक ही है। वे ही पार्वतीपति होनेसे उनका महादेवी-आलिङ्गित जो महादेव-रूपका अनुभव है, वह सगुण ब्रह्मके अनुभवमें बहुत ही मधु-रता-उत्पादक है। दूसरी ओर उनके लिङ्गका महत्त्व जो लिङ्गपुराणमें वर्णित है, वह महत्त्व भगवान्की विराट् मूर्तिका स्पष्ट द्योतक है। उनके चिन्मय अनादि अनन्त शिव-लिङ्गके चारों ओर जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड भासमान रहते हैं, उस शिव-लिङ्गका पता लगाते हुए ब्रह्माजीकी तो बात ही क्या है, भगवान् विष्णु भी थककर लिङ्गके आदि-अन्तका पता नहीं लगा सके थे। ऐसा रहस्य लिङ्गपुराणमें पाया जाता है। सुतरां दसों दिशाओंकी व्यापकतासे अनन्त और संख्यासे अनन्त ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंसे परिपूर्ण उनका स्थूल देह ही भगवान्का विराट् रूप है और वह विराट् रूप ही शिव-लिङ्गका यथार्थ स्वरूप है और यही शिव-तत्त्व है।

शिव-भक्ति-रहस्य

(लेखक—श्रीयुत तपोवनस्वामीजी महाराज)

वलागिरिके समान उज्ज्वल वर्ण श्रीशिवकी सत्तामें अथवा उनके त्रिनेत्र, नीलकमल, भुजगभूषण आदि विशेषणोंसे विशिष्ट होनेमें तथा उनके स्वरूप-विशेषमें क्या प्रमाण है, यदि ऐसा कोई पूछे तो मैं तुरन्त ही उत्तर दूँगा कि इसमें भावपूर्ण हृदय ही मुख्य प्रमाण है। मधुर भाव तथा श्रद्धापूर्ण हृदयसे संस्कार-सम्पन्न भक्तगण लोकशंकर भगवान् शंकरको सम्यक्‌रूपसे जानकर उनमें सदा रत देखे जाते हैं तथापि उसकी प्रामाणिकताका यह कहनेसे निषेध नहीं हो सकता कि श्रुति और तर्कप्रमाणसे उसकी सत्ता नहीं सिद्ध होती है। क्योंकि शास्त्रादि प्रमाण भी उसकी सत्ताको सिद्ध करते हैं। यजुर्वेदके आठ अध्यायोंमें इनका श्रीरुद्रदेवके रूपमें गुणानुवाद किया गया है—

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।

—इत्यादि वाक्योंके द्वारा उपनिषदोंमें भी श्रीगौरीपतिका स्तवन प्राप्त होता है। शिवपुराणादि पुराण-ग्रन्थ तो पूर्णरूपेण शिव-तत्त्वके वर्णनमें कृतकार्य हो रहे हैं। समुद्रके पार जानेकी इच्छासे श्रीरामने शिवकी पूजा की थी, पुत्रोंकी इच्छासे श्रीकृष्णने तथा श्रीकृष्ण-सखा अर्जुनने महास्त्रकी कामनासे भगवान् शंकरकी आराधना की थी। पुराणोंमें इसप्रकारके शिव-माहात्म्य जहाँ-तहाँ बहुत करके पाये जाते हैं, यह बात पौराणिकोंसे अज्ञात नहीं है। यदि कोई ऐसा मानता है कि अद्वितीय सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी सच्चित्स्वरूप परमात्मा हैं तो उसे यह भी अवश्य मानना पड़ेगा कि गौरीपति श्रीशंकर भी हैं। क्योंकि करुणावरुणालय परमात्मा भक्तोंके ऊपर अनुकम्पा कर उनकी भावनाके अनुसार मनोहर रूप धारण कर उन्हें अनुगृहीत करते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। उसी प्रकार 'एकमेवाद्वितीयम्' करके श्रुतिमें प्रसिद्ध निराकार परमब्रह्मके भी शिव, विष्णु आदि समस्त आकार-भेद हैं, यह निर्विवाद है। निराकार सत्यज्ञान-घन परमात्मा ही साकार शिव हैं। निराकार और साकारके नामभेदसे उनमें वस्तुतः भेद नहीं आता। वस्तुतः निराकार ही साकार है और साकार ही निराकार है। कहा भी है—

यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।

इस वाक्यके प्रमाणसे तथा युक्तिसे इसप्रकारके विभिन्न आकारवाले श्रीशिव, विष्णु आदिमें कोई पारस्परिक भेद नहीं। क्योंकि शिवस्वरूप ही विष्णु हैं, विष्णुस्वरूप ही शिव हैं। इसप्रकार कैलासके रजतके समान शुभ्र शिखरपर वास करते हुए एक ही परम शिव सुसंस्कृत भक्तजनोंके द्वारा विश्वनाथ, केदारनाथ, रामनाथ इत्यादि नामोंसे पुकारे जाते हैं तथा उपासित होते हैं। इसप्रकारके नाम-भेदसे भगवान् शङ्करमें भेद नहीं उत्पन्न होता। जिसप्रकार सहस्र नामोंसे संकीर्तित विष्णुकी सहस्र संख्या नहीं हो जाती है उसी प्रकार विभिन्न नामोंसे अर्चित शम्भु भी अनेक नहीं हो सकते। परमात्माके सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेद-शून्य तथा सत्तामात्र शरीर होनेपर भी मुमुक्षु यदि अपनी इच्छाके अनुसार उनकी साकार या निराकाररूपमें उपासना करते हैं तथा अनुभव करते हैं तो इससे यह निश्चय हो जाता है कि उनमें कोई भेद-भाव नहीं है। वस्तु-तत्त्वके ऐसा होनेपर भी खेदकी बात है कि सुपवित्र सनातन वैदिक धर्ममें ईश्वरके बहुत्वका आरोपण कर उसमें नाना दोष दिखलाते हुए पाश्चात्य और पौर्वात्य शिक्षित लोग हिन्दू-धर्मके तत्त्वके विषयमें अपने अज्ञानको ही प्रकट करते हैं, इससे हमारे धर्मकी वस्तुतः कोई क्षति नहीं हो सकती।

उक्त रीतिसे शिव, विष्णु तथा ब्रह्मादि समस्त देवता अद्वितीय निराकार परमात्माके ही रूप होनेपर भी अन्य देवोंकी अपेक्षा जटा-जूट-धारी परम शिवमें अनेक विशेषताएँ हैं। निष्काम भावसे उपासना करनेवाले भक्तोंके ऊपर शीघ्र ही प्रसन्न होकर वह भक्ति, वैराग्य और ज्ञान प्रदान करते हैं; केवल यही नहीं, परम शिव स्वयं ही तपस्वियों, ज्ञानियों और विरक्तोंके लिये परम आदर्शरूप हैं यह बात विद्वानोंको अज्ञात नहीं। अहा! श्मशानमें वास करनेवाले, मस्तकपर जटा-जूट धारण करनेवाले, समस्त शरीरमें भस्म धारण किये सर्पोंको आभूषण बनाये, हाथमें कपाल लिये हुए, मदनका नाश करनेवाले वह भगवान् शङ्कर तपस्वियोंके भी तपस्वी, विरक्तोंके भी विरक्त,

भिक्षुकोंके भी भिक्षुक, योगियोंके भी योगी हैं; फिर उनकी परमादर्शताका क्या कहना ? यदि मुमुक्षुगण इसप्रकारके गुणोंसे विशिष्ट भगवान् शङ्करको आदर्श बनाकर आत्मसाधनमें लगें तो इसमें सन्देह नहीं कि वे उत्कृष्ट तपोनिष्ठा और अत्युग्र वैराग्यको शीघ्र ही प्राप्त कर लें।

निरतिशय त्यागमूर्ति पशुपतिको आदर्श बनाकर सतत चिन्तन करनेवाले मनुष्यके हृदयमें अपार वैराग्यादिको उत्पन्न करनेवाली एक विशिष्ट शक्ति आविर्भूत होती है। अतएव तप, योग और वैराग्यपथमें जीवन व्यतीत करनेवाले संन्यासियोंके उपास्यरूपसे हस्तिचर्म परिधान किये शम्भुकी महिमाका विशद वर्णन स्वामी श्रीशंकराचार्यने किया है। भगवान् शिवके आदर्शकी महिमा अपरम्पार है!

यह लेखक कुमारावस्थासे ही पतितपावन सब अनर्थोंके नाशक षडक्षरमन्त्रके जप तथा उसके अभिधेयभूत भूतनाथ भगवान् शङ्करके स्मरणमें निरन्तर लगा रहता था। तत्पश्चात् कर्कश तर्कप्रधान पाश्चात्य और प्राच्य दर्शन तथा जीव-ईश्वर-जगत्‌में मरुमरीचिकाके समान मिथ्यात्वका समर्थन करनेवाले वेदान्त-दर्शनका भी विशेष अनुशीलनकर एवं सब कामोंको छोड़कर संन्यासनिष्ठामें विचरते हुए मुझे आजतक कभी यह भान न हुआ कि इसप्रकारके तत्त्वविचार और शिवभक्तिमें परस्पर विरोध है इसलिये शिवभक्तिका त्याग करना चाहिये। वस्तुतः भक्ति और ज्ञाननिष्ठामें कोई पारस्परिक भेद नहीं है।

शिवप्रेमकी प्रेरणासे ही हिमराशिको लाँघते हुए नङ्गे पैरोंसे मैं उनकी पुरी कैलासमें गया। यद्यपि वहाँ उनके निवासस्थानको इन चर्मचक्षुओंसे न देख सका तथापि ज्ञानचक्षुसे भगवान् श्रीगिरीशको एवं समीपहीमें उनके महान् देवदुर्लभ ताण्डवनृत्यको देखकर मेरा आनन्द पराकाष्ठाको पहुँच गया और मैं कृतकार्य हो गया। तत्पश्चात् मेरी शिवभक्ति तनिक भी ह्रासको प्राप्त न हुई, बल्कि पूर्वापेक्षा बढ़ती ही गयी। अहा! भक्ति और श्रद्धाकी एकताका महत्त्व महान् है!

शिवभक्ति अज्ञानात्मिका साधनावस्थामें उपास्य और उपासक-भेदके होते हुए गौणरूपमें रहती है। वही ज्ञानात्मिका सिद्धावस्थामें तन्मयी होकर अभेदभाव तथा स्वयं अद्वैतरूपिणी हुई सुप्रसिद्ध 'पराभक्ति' के रूपमें मुख्य भक्ति कहलाती है। वस्तुतः यह मुख्यभक्ति अद्वैतज्ञान ही है, इसमें सन्देह नहीं। तथापि शुष्क हृदयवाले वेदान्ती न जाने क्यों भक्तिके नाम-श्रवणमात्रसे भयभीत हो उठते हैं। भयकी तो कोई बात नहीं है, उन्हें सावधान चित्तसे विचार करना चाहिये और यह जानना चाहिये कि पराभक्ति ही एक मोक्षका साधन है। यद्यपि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' इस उपनिषद्वाक्यके अनुसार ज्ञानसे ही कैवल्यकी प्राप्ति होती है तथापि अद्वितीया पराभक्तिके ही औपनिषद ज्ञान होनेके कारण ज्ञान और भक्तिमें भेद नहीं है। भेदके भ्रममें पड़कर लोग अद्वैतज्ञानसे भक्तिको अलग बतलाते हैं। भेद-भ्रमके दूर होनेपर पुनः ज्ञानसे भक्ति पृथक् नहीं रह जाती।

यदि प्रसन्नो भवदङ्घ्रिसेवा-
रतिं प्रयच्छान्यदहं न याचे।
निरस्तभेदभ्रममृत्युपाशां
परां परानन्दकरीं परात्मन्॥

अपने रचे हुए श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्र नामक ग्रन्थमें मैंने विश्वनाथसे यही पराभक्ति माँगी है। जिसमें मृत्युपाशात्मक भेद-भ्रमका लेश भी नहीं है, ऐसी पराभक्ति ही मोक्षका एकमात्र साधन है। यही सिद्धान्त मैंने उपर्युक्त श्लोकमें निर्धारित किया है। 'भक्ति भेदबाधिका (भेदको मिटानेवाली) नहीं है, बल्कि भेद उत्पन्न करनेवाली है,' इसप्रकारके भ्रममें पड़कर ही शुष्क दार्शनिक व्यर्थ ही उसका तिरस्कार करते हैं। ऐसे लोगोंसे मेरी प्रार्थना है कि इस भ्रान्तिका त्यागकर नारद-सूत्रोंमें कथित महत्सेवा ईश्वर-कारुण्य आदिके द्वारा हृदयमें भावकी मधुरता प्राप्तकर शुद्ध अद्वैतघन पराभक्ति-पदको प्राप्त करनेकी चेष्टा करें।

प्रसङ्गवश स्मरणमें आये धन्यवादके योग्य श्रीसौम्य-काशीक्षेत्रकी धन्यवादके द्वारा ही सम्यक् आराधनाकर इस लेखको समाप्त करूँगा।

जगत्युत्तरकाशीति सौम्यकाशीति च श्रुतम्।
क्षेत्रं गोत्रकुलोत्तंसहिमवन्मध्यसंस्थितम्॥
पञ्चक्रोशविशंकटं वरुणया चास्या च संवेष्टितं
भूभृद्भूषणवारणावतनितंबालम्बि यद् भ्राजते।
गङ्गा यत्र च गायतीव मधुरं सामोर्मितुङ्गस्वनै-
स्तप्यन्ते च तपो वितृष्णमतयो यत्रोल्बणं साधवः॥

(श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्र)

श्रीविश्वनाथका साक्षात् विहारस्थल गिरिकुलभूषण हिमालयका हृदयदेशवर्ती, शिवभक्तोंके द्वारा अवश्य सेवनीय सुप्रसिद्ध उत्तरकाशी नामक सौम्यकाशीक्षेत्र जयको प्राप्त हो। अत्यन्त पवित्र इस शिवक्षेत्रका माहात्म्य स्कन्दपुराणमें सम्यक् रीतिसे वर्णित है। शिवभजनरसिकों-को इस क्षेत्रकी विशेषता सामान्यतः ज्ञात होती ही है। वरुणा और असी—इन दो नदियोंसे आवेष्टित, पञ्चक्रोशविस्तृत, हिमालयकी शाखा वारणावत-पर्वतके नितम्ब-देशमें स्थित, भागीरथीके जलप्रवाहकी दीर्घध्वनिसे महा सामगानके समान ध्वनित, शिवभजनमें तत्पर रहनेवाले महात्माओंकी शिवविषयक तपस्याकी भूमि तथा द्वितीय कैलासके समान महिमान्वित यह स्थान शिवभक्तों तथा कल्याणपाठकोंके लिये सुश्लाघनीय है।

ॐ शिवम्!

सदाशिव और उनका अमोघ कवच

(लेखक—लाला श्रीकन्नोमलजी एम० ए०)

गवान् शङ्कर नित्यानन्द सुख-सम्पत्ति, ऋद्धि-सिद्धि, बल-वैभव, स्वास्थ्य-नीरोगता एवं लौकिक-पारलौकिक शुभ फलोंके उदार दाता हैं। आप देवोंमें महादेव हैं। अव्यय, अनन्त, अटल, अमर, नित्य आनन्दरूप होनेसे सदाशिव हैं। आप भयङ्कर रुद्ररूप हैं, तो आप भोलानाथ भी हैं। दुष्ट दैत्योंके संहार करनेमें कालरूप हैं, तो आप दीन-दुखियों, अनाथ-दरिद्रियों, भयभीत-सङ्कट-ग्रस्त प्राणियोंकी रक्षा करनेमें भी वैसे ही उत्साहसे प्रयुक्त हैं। निष्पक्ष और दयालु ऐसे हैं कि जिसने आपको प्रसन्न किया उसीको मनमाना वरदान मिला। वहाँ इस बातकी परवा कभी नहीं हुई कि ऐसा वरदान देनेसे अपनी और संसारकी हानि होगी और दुष्ट दुराचारियोंकी विजय होगी। रावणको अटूट बल दे दिया। भस्मासुरको सुर, नर सभीको भस्म करनेकी सामर्थ्य दे दी। यदि भगवान् विष्णु मोहिनीरूप धर सहायता न करते तो स्वयं शङ्कर सङ्कटग्रस्त हो जाते। आपकी दयाका आर-पार नहीं है। मार्कण्डेयको अपनाकर यमराजके दूतोंको भगा दिया। आपकी उदारता असीम है, आपका त्याग अनुपम है, सदाके भोलानाथ हैं। क्या अन्य सब देवता लक्ष्मी, कामधेनु, कल्पवृक्ष, अमृत ले जायँ और आप अपने भागका हालाहल स्वीकृतकर संसारकी रक्षाके लिये पानकर नीलकण्ठ बन जायँ? जिस मनुष्यने आपकी मूर्त्तिके सिरपर पैर रखकर वृक्षमें अपनी जलभरी मशक लटका दी जिसमेंसे आपके ऊपर जलबिन्दु टपकते रहे, उसे अपना पूर्ण भक्त जानकर आपने अटल शुभगति दे दी। आप भोलानाथ नहीं तो कौन हैं! भगवान् शङ्कर एकपत्नीव्रतके अद्वितीय, अनुपम, अद्भुत भव्य एवं देदीप्यमान आदर्श हैं। माता सती ही पार्वतीरूप-से आपकी अनन्या पत्नी हैं। इस पदको प्राप्त करनेके लिये इस देवीने जन्म-जन्मान्तरोंमें घोर तप किया है। भूमण्डलके किसी साहित्यमें पति-पत्नी-सम्बन्धका ऐसा उज्ज्वल उदाहरण नहीं है। सतीके भस्म हो जानेपर आपने अटल, अचल, अटूट समाधि लगा दी। सतीने भी दूसरा जन्म लेकर कठोर प्रतिज्ञा कर ली कि यदि विवाह करूँगी तो महादेवसे ही करूँगी, नहीं तो जन्म-जन्मान्तरोंतक तपस्या करती रहूँगी जबतक कि यह मनोरथ सिद्ध न हो जावे। क्या किसी सुर-असुर, नर-नारीकी सामर्थ्य थी कि महादेवकी अटूट समाधिको तोड़े? कामदेव और उसकी सेना तो अनेक प्रयत्न कर हारे, अन्तमें बेचारा कामदेव भस्म हुआ, महायोगी शङ्करकी विजय हुई।

भगवान् शिवका ब्रह्मचर्य अटल है, आपका चरित्र गङ्गाजलसे कहीं बढ़कर पवित्र है। हिमालयकी हिमसे कहीं बढ़कर स्वच्छ है। चन्द्रमाकी पूर्ण ज्योत्स्नासे कहीं बढ़कर शीतल है। सूर्यके प्रकाशसे कहीं बढ़कर देदीप्यमान है। भगवान् शङ्करके आचरणमें कहीं भी अश्लीलताका लवलेश नहीं है। आप सनातन आर्यजातिके एकमात्र चरित्रशाली देवता हैं।

आर्यजातिकी सभ्यता और संस्कृतिमें योगसाधन एक अमूल्य, अतुलनीय, अद्भुत, अद्वितीय सम्पत्ति है। इसके सामने साम्प्रतिक सायन्स बच्चोंका खेल है। आध्यात्मिक जगत्‌में तो इसके द्वारा ईश्वरप्राप्ति, निर्वाण, मोक्षादि लभ्य

हैं और भौतिक संसारमें कोई ऐसी चमत्कारी वस्तु नहीं है—कोई ऐसी घटना नहीं है जो इसके द्वारा प्राप्त या सम्भव न हो सके। दूरदृष्टि, दूरश्रवणशक्ति, परविचारबोध, भविष्यका ज्ञान, आकाश-भ्रमण, भारी-से-भारी हो जाना, हलके-से-हलका हो जाना आदि आदि इस योग-विद्याके बाह्याङ्गोंकी ऋद्धि-सिद्धियाँ हैं। इस योग-विद्या और ज्ञानके आविष्कर्ता कौन हैं? यही भगवान् शिव!

आप योगियोंके योगी महायोगी हैं। सब योगशास्त्रका चमत्कार आपकी ही कीर्त्ति है। योगियोंकी आयु बढ़ानेके लिये आपने पारद-शास्त्रका आविष्कार किया है। इस शास्त्रके साधनोंद्वारा योगी जब चाहे तब कायाकल्प-कर सहस्रों वर्षोंतक अपनी आयु बढ़ा सकता है। शिवका अर्थ सुख, शान्ति, ऐश्वर्य, सम्पत्ति एवं सौमांगल्य है। भगवान् शंकर इन सबके अटूट, अव्यय, अनन्त भाण्डार हैं। इसलिये सदाशिव कहलाते हैं। कैसा भी शोकग्रस्त, दुःख-पीड़ित, विपत्तिविपन्न, दारिद्रयपूर्ण मनुष्य क्यों न हो, यदि इनके समीप श्रद्धा, शुद्धचित्तता और सरल भक्तिसे पहुँच गया तो उसकी मनस्कामना पूरी हो गयी। यह कहना न होगा कि भगवान् शङ्कर ही संगीत और नृत्यकलाओंके आविष्कर्ता और आद्याचार्य हैं। ताण्डवनृत्य करते समय आपने डमरू बजाया उसीमेंसे सात स्वरोंका प्रादुर्भाव हुआ। आपके ताण्डवनृत्यसे ही नृत्यकलाका प्रारम्भ है। इतना ही नहीं व्याकरणाचार्योंका कथन है कि व्याकरणके मूलतत्त्वोंका विकास भी आपकी डमरूध्वनिसे है। कामशास्त्रकी उत्पत्तिके विषयमें भी कहा जाता है कि इसका आद्याचार्य नन्दी आपका अनुचर और सेवक था। इसप्रकार कितनी विद्याओं और कलाओंके जन्मदाता और प्रवर्तक भगवान् शङ्कर ही हैं।

यह भी अप्रकट न रहे कि संस्कृत-साहित्यमें जितनी गुप्त आध्यात्मिक विद्याएँ—जितना दिव्य ज्ञान और विज्ञान है—उन सबके उपदेष्टा और गुरु महादेवजी ही हैं। मन्त्र, तन्त्र, आगमादि इन्हींके उपदेश हैं। रसायन-शास्त्रके आद्याचार्य भी यही हैं। अस्त्रशस्त्रविद्या भी आपसे ही प्राप्त हुई है। पाशुपत-शस्त्र जिसका प्राचीन भारतमें अनन्त गौरव था, भगवान् शङ्करका ही है। जिस धनुषको श्रीरामचन्द्रजीने तोड़ा था वह भी इन्हींका था। अर्जुनने अपने अमोघ अस्त्र-शस्त्र महादेवजीसे ही प्राप्त किये थे।

संस्कृत-साहित्यमें कोई प्रामाणिक ग्रन्थ ऐसा नहीं जिसमें भगवान् शङ्करके चरित्रका उल्लेख न हो। इनकी कीर्त्ति, विचित्र लीला और ज्ञानइयत्ताका वर्णन सभी पुराणों, इतिहासों और शास्त्रोंमें मिलता है। यह देवोंके देव महादेव आर्य-जातिके आद्य देवता हैं और जहाँ-जहाँ आर्य-संस्कृतिकी पहुँच हुई है वहाँ-वहाँ आपकी स्थापना हुई है। भगवान् शङ्करका निज स्थान तो कैलास-पर्वत है जहाँ आजतक किसी प्राच्य या पाश्चात्य यात्रीकी पहुँच नहीं हुई है; पर इनकी मूर्त्तिकी स्थापना समस्त भारतवर्षमें ही नहीं—अन्य देशोंमें भी हो गयी है। नैपालमें आप पशुपति महादेव हैं, दक्षिणमें आप श्रीरामेश्वर हैं, उत्तरमें केदारनाथ हैं, काशीमें विश्वनाथ हैं, उज्जैनमें महाकालेश्वर हैं, इत्यादि-इत्यादि। शिवालय सभी देशों और स्थानोंमें हैं—पर्वतों, पहाड़ियों, गुफाओं, नदीतटों, नगरों, ग्रामों, वनों आदि-आदिमें। अधिकांश स्थानोंमें आपका लिङ्गस्वरूप स्थापित है जिसका गूढाशय है कि शिव, पुरुष लिङ्गरूपसे इस प्रकृतिरूपी संसारमें स्थित हैं। यही सृष्टिकी उत्पत्तिका रूप है। शिव-लिङ्ग और जलहरी गूढाशयसे पुरुष और प्रकृति हैं। भगवान् शङ्करकी पूजा नितान्त प्राचीन है। ऋग्वेदमें भी महादेवका उल्लेख है। 'त्र्यम्बकं यजामहे' वेद-मन्त्र है। इतिहास-पुराणोंमें शिव-पूजाकी बड़ी महिमा गायी गयी है, ऐतिहासिक दृष्टिसे सबसे पहले महादेवके मन्दिरोंका उल्लेख है। जब भगवान् रामचन्द्रजीने लङ्कापर चढ़ाई की थी तो पहले शिवकी स्थापनाकर पूजा की थी। यह स्थान अब श्रीरामेश्वरम् कहलाता है। काशीमें विश्वनाथजीकी पूजा अत्यन्त प्राचीन है। जो कहते हैं कि, मूर्तिपूजन नवीन पद्धति है उनको शिव-मन्दिरोंकी प्राचीनतापर ध्यान देना चाहिये। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि यह महादेव ही हैं जो प्राचीन आर्य-जातिकी सभ्यता और संस्कृतिके पूरे उदाहरणस्वरूप हैं। आर्यदेश, आर्यजाति और आर्यजातिकी सभ्यता—इन तीनोंहीके मुख्य-मुख्य लक्षण महादेवकी मूर्तिमें मिलते हैं। हिमालय-पर्वतपर निवास, जटाओंसे गङ्गाका निकास भारतके भौगोलिक संकेत हैं। गौर वर्ण होना आर्यजातिका मुख्य लक्षण है। तप, योग करना आर्य-संस्कृतिका प्रधान सिद्धान्त और आध्यात्मिक ज्ञान-उपदेश आर्य-सभ्यताका मुख्य तत्त्व है। एक-पत्नी-व्रत, ब्रह्मचर्य, उदारचित्तता, संन्यास, त्याग, दयालुता, वीरता, सङ्गीत-नृत्यादि कला-सम्पन्नता—ये सभी आर्य-सभ्यताकी बातें हैं और ये सब महादेवजीमें विद्यमान हैं। इनके विषयमें कहा जाता है कि, यह सभी प्रकारकी

मादक वस्तुओंका सेवन करते हैं। आर्यदेशमें ये सब चीजें उत्पन्न होती हैं। जो इस देशका पूरा प्रतिनिधिस्वरूप देवता होगा (जैसे कि महादेवजी हैं तो) उसमें इनका भी किसी-न-किसी रूपमें वर्णन होना चाहिये; अतः महादेवजीके सम्बन्धमें भी उल्लेख किया गया है; परन्तु पूर्ण गवेषणासे ज्ञात हुआ है कि महादेवजीने मदिराका ग्रहण कभी नहीं किया। भङ्ग, धतूरा, गाँजादि नशीली वस्तुओंका उल्लेख तो मिलता है, पर इस निन्द्य वस्तुका कहीं नहीं। (परन्तु भाँग-धतूरे आदिका सेवन सर्वसमर्थ भगवान्‌की देखा-देखी भक्तोंको नहीं करना चाहिये। श्रीशिवने तो लोकरक्षणार्थ विष भी पी लिया था।) इनकी पूजामें निर्मल पवित्र गङ्गाजल, बेलपत्र और पुष्पादिका ही प्रयोग है।

भगवान् शिवकी महिमा अनेक स्तोत्रों और स्तवनोंमें वर्णित है। इनमें महिम्नस्तोत्र बड़ा महत्त्वशाली है और दार्शनिक विचारोंसे परिपूर्ण है, पर सबसे उत्कृष्ट, तत्कालप्रद और भाषा-गौरव-सम्पन्न स्तुति शिव-कवच है। कवच क्या है ? इसको जानना आवश्यक है। संस्कृत-साहित्यमें कवच-रचना एक अद्भुत बात है। इष्टदेवको प्रसन्न करना और उसे अपनी रक्षाके लिये उद्यत करना कवच-स्तोत्रोंका मुख्य उद्देश्य है। मुख्य-मुख्य देवताओंके कवच-स्तोत्र मिलते हैं। जैसे, नारायण-कवच, देवी-कवच, शिव-कवचादि। कवचका अर्थ जिरावख्तर है जिसे अङ्गरेजीमें Armour कहते हैं। जैसे युद्धमें योद्धा जिरावख्तर पहनकर शत्रुके सब प्रकारके प्रहारोंसे सुरक्षित रहता है, वैसे ही मनुष्य इन कवच-स्तोत्रोंके पढ़ने और उनके मन्त्रोंके जप करनेसे अपने लिये सब सङ्कट-प्रहारोंसे इष्टदेवकी कृपाद्वारा सुरक्षित हो जाता है और जिस विपत्तिमें पड़ा हो उससे मुक्त हो जाता है। कवच-स्तोत्रोंकी रचनामें मुख्य बातें ये होती हैं—

१–कवच-स्तोत्र मन्त्रका ऋषि

२–उसका छन्द

३–देवता

४–बीज-शब्द या मन्त्र

५–शक्ति

६–कीलक

७–प्रयोजन अर्थात् जिस देवताकी प्रसन्नताके लिये जप किया जाता है उस देवताका नाम।

८–अङ्गन्यास जो दो प्रकारके हैं—

(१) करन्यास–अङ्गुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका, करतलकरपृष्ठ।

(२) हृदयादिन्यास–हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र।

९–दिग्बन्ध

१०–मन्त्रजप

११–ध्यान जिसमें नियमपूर्वक आसनादिकी विधि और इष्ट देवताके रूपका वर्णन होता है।

१२–प्रधान स्तुतिका मन्त्र।

१३–कवच-महिमा।

१४–सिद्धि अर्थात् जिस उद्देश्यसे कवच-स्तोत्रकी रचना हुई है उसकी प्राप्ति।

कवच-रचनामें ये सब अङ्ग होने चाहिये। इनके द्वारा मनुष्य इष्टदेवके मन्त्रके प्रभावसे भीतर-बाहर पूर्णतया भावित हो जाता है यानी वह मन्त्रमय हो जाता है। ऐसी अवस्थामें वह ऐसा सुरक्षित हो जाता है कि उसपर कोई विपत्ति प्रहार नहीं कर सकती। यही कवच है। शिव-कवचमें ये सब अङ्ग हैं और सर्वथा पूर्ण हैं। कवच-साहित्यमें शिव-कवचका उच्चतम स्थान है, वह सब कवचोंका शिरोमणि है। भाषा ऐसी ओजस्वी, गौरवशाली, भावपूर्ण, उत्कृष्ट एवं चमत्कारी है कि आप पढ़ते-पढ़ते तल्लीन हो जायँगे, उसके प्रवाहमें आप बहे चले जायँगे। उसका जादूका-सा असर होता है।

यह कवच श्रीस्कन्दपुराणमें ब्रह्मोत्तरखण्डका शिव-वर्मनाम द्वादश अध्याय है, इसके उपर्युक्त कवच-अङ्गोंका विवेचन देखिये—

१–ऋषि–इसके ऋषि योगीश्वर ऋषभ हैं।

२–छन्द–अनुष्टुप् है।

३–देवता–सदाशिव रुद्र हैं।

४–बीज–ह्रां बीज है। बीज वह है जिससे स्तोत्रका उदय हो।

५–शक्ति–ह्रीं है। शक्ति वह है जो निर्दिष्ट ध्येयतक पहुँचनेके लिये बल-सञ्चार करे।

६–कीलक–ह्रूं कीलक है। कीलक वह है जो इस शक्तिको निर्दिष्ट ध्येयतक पहुँचनेमें सुदृढ़ रखे।

७–प्रयोजन–साम्ब सदाशिवको प्रसन्न करना।

८–अङ्गन्यास–(१) करन्यास—

१–अंगुष्ठाभ्यां नमः ।

२–तर्जनीभ्यां नमः ।

३–मध्यमाभ्यां नमः ।

४–अनामिकाभ्यां नमः ।

५–कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

६–करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

(२) हृदयादिन्यास—

१–हृदयाय नमः ।

२–शिरसे स्वाहा ।

३–शिखायै वषट् ।

४–कवचाय हुम् ।

५–नेत्रत्रयाय वौषट् ।

६–अस्त्राय फट् ।

९–दिग्बन्ध–'ॐ भूर्भुवः स्वः' है । इन अक्षरोंके उच्चारणसे चारों दिशाओंको बाँधा जाता है । अभिप्राय यह है कि सब मुद्रा-चेष्टाओं-द्वारा तो शरीरको सुरक्षित किया जाता है और इन अक्षरोंके उच्चारणसे सब दिशाओं-में भी अनिष्ट होनेकी रोक कर दी जाती है ।

१०–मन्त्रजप–'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका जप है ।

११–ध्यान–इसके २७ श्लोक अलौकिक चमत्कारी हैं, जिनमेंसे एक श्लोकमें कहा गया है कि ध्यान करनेवाला शुद्ध स्थानमें नियमपूर्वक आसन लगाकर जितेन्द्रिय और प्राणायाम-अभ्यस्त होकर बैठे । ध्यानके श्लोकोंमें महादेवजीके अनेक रूपों और कीर्त्तियोंका वर्णन है । बड़े मनोहर, दिव्य और प्रभाव-शाली श्लोक हैं ।

१२–प्रधान स्तुतिका मन्त्र–यह सहस्राक्षर मन्त्र है जो संसारभरके मन्त्र-साहित्यमें अपनी तुलना नहीं रखता । इस पूरे मन्त्रको हम नीचे उद्धृतकर इसका गौरव दिखावेंगे ।

१३–कवच-महिमा–यह महिमा २, २८, २९, ३०, ३१ और ३२ श्लोकोंमें वर्णित है जिसका सारांश यह है—

यह कवच सब पुराणोंमें परम गुह्य है; सब पापोंको दूर करता है, अत्यन्त पवित्र है, जयप्रद है, सब विपत्तियोंको छुड़ानेवाला है; सब बाधाओंको शान्त करनेवाला है । परम हितकारी है । सब भय दूर करता है । इसके प्रभावसे क्षीणायु मृत्युसमीपस्थ, महारोगग्रस्त मनुष्य शीघ्र ही नीरोगता और सुख प्राप्त करता है । उसकी दीर्घायु हो जाती है, उसका सब दारिद्रय दूर हो जाता है उसके सौमाङ्गल्यकी वृद्धि होती है, वह महापातकसे छूट जाता है और देहान्तमें मुक्ति प्राप्त करता है ।

१४–सिद्धि–कथा है कि इस कवचका उपदेश ऋषभ-योगीने एक संकटग्रस्त राजाको किया था । इस कवचके प्रभावसे उसके सब मनोरथ सिद्ध हो गये और वह अपने राज्यका सुख फिर भोगने लगा । यह उदाहरणके रूपसे प्रयोजनसिद्धि बतायी है, जो सभी कवचोंमें उत्साहित करनेके लिये वर्णित होती है ।

अब सहस्राक्षर मन्त्रकी छटा और महत्ता देखिये—

ॐनमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सर्व-

नोट–इन न्यासोंके पहले इष्टदेवके रूपका मन्त्र बोलते जाते हैं और तब इनकी यथोचित मुद्राएँ करते जाते हैं, जैसे अंगुष्ठाभ्यां नमः कहते समय दोनों हाथोंके अंगूठोंको सिरेकी ओरसे मिलाते हैं, इसी प्रकार अंगूठेकी ओरसे बाकीकी चारों अंगुलियोंको । करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः न्यासमें दोनों हथेलियोंको ऊपर-नीचे धरते हैं । हृदयादिन्यासोंमें हृदयको छूते हैं, शिरपर अंगूठेसहित चारों उँगलियाँ उलटी खड़ी करते हैं, शिखा यानी चुटियापर मुट्ठी बाँधकर पर अंगूठेको सीधाकर अंगूठेके बल रखते हैं । सब शरीरपर ऊपरसे नीचेतक दोनों हाथोंको दूरसे फेरनेकी चेष्टा करते हैं, दोनों नेत्रोंपर और तीसरे माथेके ज्ञान-नेत्रपर अंगूठा और उसके समीपकी दो अंगुलियोंको खड़ी कर उलटी रखते हैं । अस्त्राय फट्में धीमी ताली बजा शरीरके चारों ओर चुटकी बजाते हैं । इन सब मुद्रा-चेष्टाओंका गूढ़ रहस्य और प्रयोजन है शरीरको सब ओरसे मन्त्रमयकर सुरक्षित करना । यह गुप्त विज्ञानका विषय है–कोई निरर्थक कल्पना नहीं है । इस सम्बन्धमें यह स्मरण रहे कि करन्यासोंके अन्तमें तो नमः शब्द आता है और नमः शब्द ही हृदयन्यासके अन्तमें है । पर शिरके सम्बन्धमें स्वाहा आता है, शिखाके सम्बन्धमें वषट्, कवचके सम्बन्धमें हुम्, नेत्रके सम्बन्धमें वौषट् और अस्त्रके सम्बन्धमें फट्–ये सब गुप्त रहस्यपूर्ण शब्द हैं जो इन सम्बन्धोंमें विशेषरूपेण नियुक्त हैं ।

मन्त्रस्वरूपाय सर्वयन्त्राधिष्ठिताय सर्वतन्त्रस्वरूपाय सर्वतत्त्वविदूराय ब्रह्मरुद्रावतारिणे नीलकण्ठाय पार्वतीमनोहरप्रियाय सोमसूर्याग्निलोचनाय भस्मोद्धूलितविग्रहाय महामणिमुकुटधारणाय माणिक्यभूषणाय सृष्टिस्थितिप्रलयकालरौद्रावताराय दक्षाध्वरध्वंसकाय महाकालभेदनाय मूलाधारैकनिलयाय तत्त्वातीताय गङ्गाधराय सर्वदेवाधिदेवाय षडाश्रयाय वेदान्तसाराय त्रिवर्गसाधनायानेककोटिब्रह्माण्डनायकायानन्तवासुकितक्षककर्कोटकशङ्खकुलिकपद्ममहापद्मेत्यष्टनागकुलभूषणाय प्रणवस्वरूपाय चिदाकाशायाकाशदिक्स्वरूपाय ग्रहनक्षत्रमालिने सकलाय कलङ्करहिताय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकसंहर्त्रे सकललोकैकगुरवे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमगुह्याय सकलवेदान्तपारगाय सकललोकैकवरप्रदाय सकललोकैकशङ्कराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजावासाय निराभासाय निरामयाय निर्मलाय निर्लोभाय निर्मोहाय निर्मदाय निश्चिन्ताय निरहङ्काराय निराकुलाय निष्कलङ्काय निर्गुणाय निष्कामाय निरुपप्लवाय निरवद्याय निरन्तराय निष्कारणाय निरातङ्काय निष्प्रपञ्चाय निःसङ्गाय निर्द्वन्द्वाय निराधाराय नीरोगाय निष्क्रोधाय निर्गमाय निष्पापाय निर्भयाय निर्विकल्पाय निर्भेदाय निष्क्रियाय निस्तुलाय निःसंशयाय निरञ्जनाय निरुपमविभवाय नित्यशुद्धबुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तस्वरूपाय तेजोरूपाय तेजोमयाय जय जय रुद्र महारौद्र भद्रावतार महाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वाङ्गखड्गचर्मपाशाङ्कुशडमरुकर त्रिशूलचापबाणगदाशक्तिभिन्दिपालतोमरमुसलमुद्गरप्रासपरिघभुशुण्डीशतघ्नीचक्राद्यायुध भीषणकरसहस्रमुख दंष्ट्राकरालवदन विकटाट्टहासविस्फारितब्रह्माण्डमण्डल नागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहार नागेन्द्रवलय नागेन्द्रचर्मधर मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विश्वरूप विरूपाक्ष विश्वेश्वर वृषभवाहन विश्वतोमुख सर्वतो रक्ष रक्ष मां ज्वल ज्वल महामृत्युमपमृत्युभयं नाशय नाशय चोरभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्पभयं शमय शमय चौरान्मारय मारय मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय त्रिशूलेन विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय बाणैः सन्ताडय सन्ताडय रक्षांसि भीषय भीषयाशेषभूतानि विद्रावय विद्रावय कूष्माण्डवेतालमारीचब्रह्मराक्षसगणान् सन्त्रासय सन्त्रासय मामभयं कुरु कुरु वित्रस्तं मामाश्वासयाश्वासय नरकभयान्मामुद्धरोद्धर सञ्जीवय सञ्जीवय क्षुत्तृड्भ्यां मामाप्याययाप्यायय दुःखातुरं मामानन्दयानन्दय शिवकवचेन मामाच्छादयाच्छादय मृत्युञ्जय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते ।

इस कवचकी प्रशंसा जितनी की जाय थोड़ी है। सङ्कटग्रस्त मनुष्योंके लिये यह अनुभूत योग है। मैंने स्वयं इसके प्रभावका अनुभव किया है और इसी कारण परोपकारके उद्देश्यसे इस लेखमें इसका विवेचन किया है। आशा है इससे सर्वसाधारणजन लाभ उठावेंगे। इसका प्रयोग अमोघ है, इससे कभी निराशा न होगी। 'किमधिकम् !'

फल

दरस किएतें दुख-दारिद दलत, पाँय
परस किएतें पाप-पुंज हरि लेत है।
जलके चढ़ाएँ जम-जातना न पाएँ कहूँ,
चंदन चढ़ाएँ चित चौगुनो सचेत है॥
कहत 'कुमार' कुंद कुसुम कनीर कंज,
कनक चढ़ाएँ देत कनक-निकेत है।
त्रिदल चढ़ाएँतें त्रिलोचन त्रितापनकों,
त्रिगुनी त्रिबेनीकी तरंगैं करि देत है॥

—शिवकुमार केडिया 'कुमार'

लिंग-रहस्य

(लेखक—श्रीरामदासजी गौड़ एम० ए०)

यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः । अर्चयेथाः सदा लिङ्गं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ॥

(महाभारत, अनु० पर्व अ० १४)

१—लिंगार्चनकी व्यापकता

हेश्वरलिंगकी अर्चा अनादिकालसे जगद्व्यापक है। खीष्टीय धर्मके प्रचारके पूर्व पाश्चात्य देशोंकी प्रायः सभी जातियोंमें किसी-न-किसी रूपमें लिंगपूजा सर्वत्र प्रचलित रही है। रोमक और यूनान दोनों देशोंमें क्रमशः प्रियेपस और फल्लुसके नामसे लिंगकी ही अर्चा होती थी। इन दोनों राष्ट्रोंके प्राचीन धर्मका लिंगपूजा प्रधान अंग था। वृषकी मूर्त्ति लिंगके साथ ही पूज्य थी। पूजाकी विधिमें धूप, दीप, पुष्पादि हिन्दुओंकी ही तरह काममें आते थे। मिस्रदेशमें तो हर और ईशिःकी उपासना उनके धर्मका प्रधान अंग था। इन तीनों देशोंमें प्रायः फाल्गुनमासमें ही वसन्तोत्सवके रूपमें लिंगपूजा वार्षिक समारोहसे हुआ करती थी। मिस्रमें ओसिरिः नामके देवता एथिओपियाके चन्द्रशैलसे निकली हुई नीलनदीके अधिष्ठाता माने जाते हैं। यहाँ कैलासके चन्द्रगिरिसे निकली गंगा और पश्चिमगामी सिन्धुनद जिसका दूसरा नाम नील भी है, दोनोंके ही स्वामी भगवान् शंकर हैं। 'फल्लुस' शब्दकी व्युत्पत्ति कर्नल टाडके मतसे अद्भुत है। वह कहते हैं कि यह शब्द संस्कृतके 'फलेश'से निकला है* क्योंकि भगवान् शंकर यजनका तुरन्त ही फल देते हैं और उन्हें वसन्तारम्भके ऋतुफल निवेदन भी किये जाते हैं। प्लुतार्कके लेखोंसे पता चलता है कि उस समय मिस्रमें प्रचलित लिंगपूजा सारे पश्चिममें प्रचलित थी।

प्राचीन चीन और जापानके साहित्यमें भी लिंगपूजाकी गवाही मिलती है और पुरानी मूर्त्तियोंसे यह भी अनुमान होता है कि अमेरिकाके महाद्वीपोंके प्राचीन निवासी भी लिंगपूजा किया करते थे।

ईसाइयोंके वेदके दो विभाग हैं। पुराने सुसमाचार नामक विभागमें राजाओंकी पुस्तकके पन्द्रहवें अध्यायमें यह कथा है कि रैहोबोयमके पुत्र आशाने अपनी माता मामाकाको लिंगके सामने बलि देनेसे रोका था। पीछे उन्होंने क्रोधमें आकर उस लिंगमूर्त्तिको तोड़-फोड़ डाला। यहूदियोंके देवता बेलफेगोकी पूजा लिंगमूर्त्तिकी होती थी। उनका एक गुप्त मन्त्र था जिसकी दीक्षा यहूदी लिया करते थे। मोयाबी और मरिनाबासी यहूदियोंके उपास्य लिंगकी स्थापना फेगोशैलपर हुई थी। इनकी उपासनाविधि मिस्रवासियोंसे मिलती-जुलती थी। पहाड़के ऊपर जंगलमें और बड़े वृक्षके नीचे यहूदियोंने लिंग और बछड़ेकी मूर्त्ति स्थापित की, इसपर यहूदियोंके परम पिता उनसे रुष्ट हो गये थे। वह बालेश्वर-शिवलिंग पत्थरका बनाते और स्थापित करते थे और 'बाल' नामसे ही पूजते भी थे। बालेश्वरकी वेदीके सामने यह धूप जलाते थे और लिंगके सामनेवाले वृष (नन्दी) को हर अमावास्याको पूजा चढ़ाते थे। मिस्रके ओसिरिसके लिंगके सामने भी बैल रहता था।

कर्नल टाडका कहना है कि मुहम्मद साहबके पहले 'लात' नामक अरबके देवताकी उपासना 'लिंग' के रूपमें हुआ करती थी और सोमनाथके शिवलिंगको भी पश्चिमी लोग 'लात' ही कहते थे। 'लात' की मूर्त्तियाँ दोनों जगह बहुत विशाल और रत्नोंसे सुसज्जित थीं। यह एक ही पत्थरका लिंग था जो पचास पुरुष या पोरसा ऊँचा था। जिस मन्दिरमें यह स्थापित था उसमें इस लिंगको सँभालनेके लिये ठोस सोनेके छप्पन खम्भे थे।† महमूद गज़नवी इसे ध्वंस करके सोना ढो ले गया। दोनों देशोंमें नाम एक ही था 'लात' या 'लाट', यह विचित्रता थी। आकार और लम्बाईके हिसाबसे 'लाट' कहना तो ठीक ही था। परन्तु कोषकार रिचर्डसन लिखता है कि 'लात' अल्लाहकी सबसे बड़ी पुत्रीका नाम था और उसका चिह्न वा मूर्ति लिंगकी तरह थी। जो हो, मुसलमानोंने 'लात' का ध्वंसावशेष भी न रक्खा, परन्तु मक्केश्वर तो अबतक लिंगरूपमें काबेमें

* Tod's Rajasthan, Vol I, p. 603.

† Richardson's Dictionary (1829) में देखो 'लात' शब्द।

पधराये हुए हैं। इस मक्केश्वर लिंगकी चर्चा भविष्यपुराण-के ब्राह्मपर्वमें आयी है।

मक्केश्वरलिंग काले पत्थरका है। इसे मुसलमान 'असवद' कहते हैं। पहले इसराएली और यहूदी इसकी पूजा करते थे। मुहम्मद साहबके समयमें इसकी चार कुलोंके पण्डे पूजा-अर्चा किया करते थे। जब काबेमें इसके लिये एक स्थान बनाया गया और इसके प्राचीन स्थानसे वहाँ ले जाकर जब पधरानेका प्रश्न आया तब चारों पण्डोंमें यह झगड़ा उठा कि मूर्त्तिको उठाकर निश्चित स्थानतक पहुँचाने-का गौरव किसे प्राप्त हो? हजरत मुहम्मद साहबका फैसला सर्वमान्य हुआ और एक चादरपर चारोंने उसे थामकर रक्खा और चादरके चारों कोनोंको थामकर उस स्थानपर ले जाकर मूर्त्तिको पधराया। काबेमें इस मूर्त्तिकी पूजा नहीं होती, परन्तु जो मुसलमान हज करने जाता है, इस मूर्त्तिका चरणचुम्बन करके आता है।

यद्यपि अब पहलेकी तरह पूजा नहीं होती तथापि फ्रांसके अनेक प्रसिद्ध स्थानोंमें अबतक लिंग देखनेमें आते हैं। गिरजाघरोंमें, धर्म-मन्दिरोंमें, अजायबखानोंमें, फ्रांस ही नहीं और देशोंमें भी लिंगरूपके पत्थर स्मारकरूपसे रक्खे देखे जाते हैं। लिंगपूजाका पाश्चात्य देशोंमें इतना प्रचार था कि 'लिंगार्चा' अथवा Phallicism एक सम्प्रदाय ही समझा जाता था जिसका अस्तित्व सभी देशोंमें पाया जाता था। इसी तरहका 'लिंगायत' सम्प्रदाय हमारे देशमें भी है। दक्षिणमें इस सम्प्रदायके शैव मिलते हैं जो 'जङ्गम'* कहलाते हैं और सोने या चाँदीके सम्पुटमें शिवलिंग रखकर बाहु या गलेमें पहनते हैं। ऐंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें Phallicism शब्दमें इस सम्प्रदायका वर्णन अधिक विस्तारसे मिलेगा।

पणिःजातिके लोगोंकी चर्चा हमारे वैदिक साहित्यमें आयी है। यह पाश्चात्य वणिक्-समाज था, जिसका आना-जाना भारतसे लेकर भूमध्यसागरतक हुआ करता था। पच्छाहँमें यही लोग फणिश् कहलाते थे और इबरानी-जाति इन्हींके विकासका फल हुई जिनके यहाँ भारतीय बालेश्वर-लिंगकी उपासना विधिवत् होती थी। मन्दिरोंकी बनावट भी भारतीय ढंगकी थी, जैसा कि उनके ध्वंसावशेषोंसे अवगत होता है। इस बालेश्वरलिंगको बैबिलमें 'शिउन' कहा है। इस घने सादृश्यको देखकर अनेक प्राच्यविद्या-विशारद कहलानेवालोंने यहाँतक अटकलका घोड़ा दौड़ानेका साहस किया है कि उनकी दृष्टिमें भारतके लोगोंने लिंगोपासना पच्छाहीं देशोंके लिंगायत-सम्प्रदायवालोंसे सीखी है।

अमेरिका-महाद्वीपमें पेरुविया नामक स्थानमें वहाँके प्राचीन निवासी रहते हैं। उनका पुराना राजवंश सूर्यवंशी कहा जाता है और वह 'रामसीतोया' नामका एक महोत्सव भी करते हैं। वहाँकी मध्यवर्त्ती कुछ जातियोंमें ईश्वरको 'सिव्र' कहते हैं। फ्रीजिया-देशमें जो आसुरिया-देश या छोटी एशियाका एक भूखण्ड है वहाँके निवासी 'सेवा' या 'सेवाजियः' नामके देवताकी उपासना करते हैं। जिस समय मन्त्र लेते हैं कुछ ऐसा अनुष्ठान भी करते हैं जिसमें साँपोंका भी काम लगता है। मिस्रमें भी 'सेवा' देवताके साथ सर्पका सम्बन्ध है। यह व्यालमालधारी भगवान् शिवके सिवा और कोई नहीं।

इन प्रमाणोंपर विचार करनेसे इस बातमें तो तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि लिंगपूजा बहुत प्राचीन है और संसारमें साधारणतया किसी कालमें अवश्य फैली हुई थी और सर्वत्र लिंगोपासनाका प्रचार था।

अब अपने देशकी ओर आइये। हमारे देशमें तो हिमालयमें मानसरोवर और कैलाससे लेकर कन्याकुमारी और रामेश्वरजीतक और अटकसे लेकर कटकतक लिंगों और शिवालयोंकी कोई गणना नहीं है। असंख्य लिंग हैं, असंख्य शिवालय हैं। यह देश शिवमय ही है। यह तो वर्त्तमानकालकी बात हुई जब कि एक सुदीर्घकालसे हमारा देश आसुरी माया और संस्कारसे आवृत है। परन्तु शिव-लिंग और शिवालय भारतीय संस्कारोंमें रग-रगमें भिना चला आया है इस बातकी साक्षी भूगर्भमें गड़ी पड़ी है। छोटी-छोटी खुदाइयोंमें, नवों और कुओंके भीतर तो शिवलिंग अकसर मिलते ही रहते हैं। काशीमें अभी हालमें कपड़ेके चौक बाजारके बीचमें दो-तीन पोरसा नीचे शिवलिंग और मन्दिरका मिलना कोई मूल्य नहीं रखता जब कि मोह-जो-दारो और हरप्पाकी खुदाईमें ऐसी तहोंमें शिवलिंग मिलते हैं जो समयको निकट-से-निकट खींच लानेवाले कट्टर आनुमानिकोंकी अटकलसे आजसे कम-से-कम छः

* काशीमें इन्हीं जङ्गमोंके बसनेसे एक पुराना महल्ला 'जङ्गमबाड़ी' के नामसे प्रसिद्ध है।

हजार और भारतीय महायुद्धसे कम-से-कम एक हजार वर्ष पहलेके ठहरते हैं। सर जान मार्शल अनेक लिंगोंके प्रादुर्भावसे चकराकर कहते हैं कि शैवधर्म कलकालिथिक (Chalcolithic age) युग या इससे भी पहलेका है और इस सम्बन्धके अपने ग्रन्थमें उस समयके इन शैवोंको आर्यजातिके पूर्वगामी कोई अधिक सभ्य राष्ट्रके मनुष्य ठहराते हैं क्योंकि उनके मतसे भारतमें तबतक आर्यलोग आकर बसे ही न थे। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि पुरातत्त्व एवं भूगर्भके खोजी सत्यकी खोजकी उत्सुकतामें समयको सदा सङ्कुचित करके ही देखते रहे हैं। अतः मेरी समझमें तो मोहं-जोदारोके सबसे नीचेके स्तर महाभारतकी लड़ाईके कई हजार बरस पहलेके होंगे। इस तरह शिवलिंगकी उपासनाकी साक्षी महाभारतकी ऐतिहासिक घटनासे कई हजार वर्ष पूर्वकी पत्थरकी लीक है। मार्शल महोदय यह कहकर मोहं-जोदारोकी उस लिङ्गप्रतिको अनार्य ठहराते हैं कि 'शिव' जीका वैदिक विश्व-देवतामें कोई स्थान नहीं है, परन्तु यह मार्शलकी भारी भूल है। रुद्राध्याय तो शिव भगवान्के नामोंसे भरा पड़ा है। रुद्रकी स्तुतियाँ चारों संहिताओंमें हैं। 'शिव' नामपर अनेक मन्त्र हैं। कपर्दिन्, पशुपति, सहस्राक्ष, सद्योजातादि अनेक नाम अनेक स्थलोंमें आये हैं और जहाँ इन्द्रद्वारा शिवलिङ्गोपासकोंके प्रति घृणा प्रकट की गयी है वहाँ तो स्पष्टतया लिङ्गपूजा प्रमाणित होती है।* अतः लिङ्गपूजाकी प्राचीनतम परम्परा प्रमाणित है।

२—लिङ्गार्चन-सम्बन्धी साहित्य

ऋग्वेदमें लिङ्गोपासनाकी चर्चा जब मौजूद है तब रामायणकालमें उसकी चर्चाका होना कोई विशेष महत्त्वकी बात नहीं समझी जा सकती। तो भी कालक्रमसे वैदिक साहित्यके बाद इतिहास, पुराण तथा तन्त्रोंकी गणना की जाती है। वैदिक साहित्यमें, संहिताओंमें, ब्राह्मणोंमें, आरण्यकोंमें और उपनिषदोंमें रुद्रादि अनेक नामोंसे और उमा, विद्या आदि अनेक नामोंसे उमामहेश्वरके प्रसङ्ग आते हैं। पुराणोंमें उन्हीं वैदिक विषयोंकी ही तो व्याख्या है। इतिहासोंमें तो घटना-प्रसङ्गसे चर्चा आती है। वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्डमें रावणके कथाप्रसङ्गमें आया है—

> यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः।
> जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते॥
> बालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः।
> अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः॥
> (३१।४२-४३)

शिवभक्त रावण जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ स्वर्णलिङ्ग भी जाता है और बालूकी वेदीपर पधराकर वह विधिवत् पूजा करता है और लिङ्गके सामने नृत्य करता है।

महाभारत अनुशासनपर्वमें चौदहवें अध्यायसे भगवान् महेश्वरका प्रसङ्ग चलता है, जिसके अन्तर्गत शिवसहस्रनाम कहा गया है और सौप्तिकपर्वमें तो अश्वत्थामाकी स्तुतिपर रीझकर भगवान् शङ्करने उनके शरीरमें ही प्रवेश किया है। भगवान् श्रीकृष्णका उपमन्युसे दीक्षा पाना और भगवान् शङ्करके प्रीत्यर्थ तपस्या करना न केवल अनुशासनपर्वमें ही वर्णित है बल्कि प्रायः सभी वैष्णव और शैवपुराणोंमें यह कथा आयी है। फिर लिङ्गपूजाकी चर्चा प्रायः सभी पुराणोंमें है। पद्मपुराण वैष्णवपुराण है तो भी लिङ्गपूजाका कारण उसमें बड़े विस्तारसे वर्णित है*। शिवपुराण, लिङ्गपुराण, स्कन्दपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण और ब्रह्माण्डपुराण—यह छः तो शैवपुराण ही ठहरे। इनमें तो भगवान् श्रीशङ्करकी कथाका विस्तार है ही, परन्तु हिन्दू-साहित्यमात्रमें जहाँ कहीं शिवोपासनाकी चर्चा है, वहाँ बहुधा लिङ्गकी चर्चा अवश्य ही आयी है।

इतिहासों और पुराणोंके सिवा तन्त्र-ग्रन्थ और स्मृतियाँ भी हैं। तन्त्रोंकी तो रचना ही उमा-महेश्वर-संवादपर है। तन्त्रोंके द्वारा भगवान् शङ्करने अनेक विद्याओं और रहस्योंका वर्णन किया है। स्मृतियोंमें भी कर्मकाण्ड-सम्बन्धी विषयोंमें शिवोपासनाका विषय जहाँ-तहाँ आया है। वीरमित्रोदयमें शिवोपासना और लिङ्गार्चाका विस्तारसे वर्णन है। तन्त्रोंमें लिङ्गार्चनतन्त्र तो वस्तुतः अर्चाकी विधिका

---

* ऋग्वेद १०।९२।९, १।११४।१-४, १०।१३६। सम्पूर्ण। २।३४।१ तथा २।११।२

* पद्मपुराणके अनुसार कल्पके आरम्भमें भगवान् शङ्करको दो बार यह शाप मिला है कि आपकी मूर्त्तिके बदले योनि और लिङ्गकी पूजा लोकमें प्रचलित होगी। एक बार जब त्रिमूर्त्तिमें कौन सबसे अधिक पूज्य और श्रेष्ठ है, इस बातकी परीक्षाके लिये भृगु ऋषि कैलास गये परन्तु द्वारपर नन्दीगणने रोका कि पार्वती-महेश्वर विहारमें हैं। दूसरी बार जब ब्रह्माकी सभामें भगवान् शङ्कर दक्षके सम्मानमें न उठ खड़े हुए, न प्रणाम किया तब भी भृगुजी रुष्ट हुए और ब्राह्मणोंकी ओरसे भृगु और गणोंकी ओरसे नन्दी दोनोंमें शापाशापी हुई।

प्रामाणिक ग्रन्थ है। इन सभी धर्म-शास्त्रोंमें शिव-पूजाको नित्यकर्ममें रक्खा है और सन्ध्याकी तरह जल ग्रहणके पूर्वका इसे आवश्यक कर्म बतलाया है।

संहिताओंमें तो रुद्रकी स्तुतिमात्र है, परन्तु शतपथ ब्राह्मणमें (६ । १ । ३ । ७–१९) और शांखायन ब्राह्मण-में (६ । १ । १–९) भगवान् रुद्रकी उत्पत्तिका वर्णन प्रायः उसी ढङ्गपर है जिस ढङ्गपर कि मार्कण्डेयपुराण और विष्णुपुराणमें दिया हुआ है। साथ ही सारे शैवसाहित्यमें भगवान् महेश्वरके साथ-ही-साथ भगवती उमाका भी वर्णन है। वाजसनेयिसंहितामें 'अम्बिका' (३ । ५७) और 'शिवा' (१६ । १), तलवकार उपनिषद्में (३ । ११-१२ तथा ४ । १-२) 'ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी उमा हैमवती' और तैत्तिरीय आरण्यकके दसवें प्रपाठकमें 'कन्याकुमारी' 'कात्यायनी' 'दुर्गा' इत्यादिकी चर्चा है।

इस तरह प्रायः सारा हिन्दू-साहित्य भवानीशङ्करके यशोकीर्त्तनसे भरा पड़ा है।

प्र०–'इसी तरह क्या सारा हिन्दू-साहित्य भगवान् विष्णुके उत्कर्षसे नहीं भरा पड़ा है ? कट्टर शैव पुराणोंमें भी तो भगवान् विष्णुका प्रतिपादन है ! यह क्या बात है ?'

उ०–'प्रस्तुत प्रसङ्गमें इस प्रश्नपर विस्तारपूर्वक विचार नहीं हो सकता। हम इतना ही कह देना यहाँ पर्याप्त समझते हैं कि सृष्टिसे परे परमात्म-सत्ता एक ही है, जिसे परमब्रह्म, परमेश्वर या परमविष्णु अथवा चाहे जिस नामसे कहें, उसका निराकारत्व एक ही है, परन्तु उसकी सगुण सत्ता त्रिगुणात्मिका होनेसे तीन रूपोंमें तीनों शक्तियोंके साथ व्यक्त होती है। भक्त जिस भावका उपासक होता है वही उसके लिये उत्कृष्ट दीखता है। दूसरे दो रूप उसके अधीन भासते हैं। वस्तुतः सत्ता एक ही है। एकपर दूसरेका उत्कर्ष भक्तोंके हितार्थ भक्तभावनकी लीलामात्र है। यह बात प्रसङ्ग-प्रसङ्गपर अच्छी तरह स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी गयी है कि त्रिमूर्ति एक ही सत्ता है। इनमें भेद माननेवालोंकी अधोगति होती है। इसप्रकार सारे हिन्दू-साहित्यमें भिन्न-भिन्न नामोंसे एक ही परमात्म-सत्ताका प्रतिपादन है।' 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' इति श्रुतिः।

३–लिङ्गका प्रथम प्रादुर्भाव

लिङ्गके प्रथम प्रादुर्भावका प्रकरण शिवपुराण और लिङ्गपुराण दोनोंमें दिया हुआ है। लिङ्गपुराणमें अधिक विस्तारसे है। दोनोंमें पितामह ब्रह्माने स्वयं देवताओंको अपनी बीती सुनायी है। लिङ्गपुराणमें पूर्वार्धके सत्रहवें अध्यायमें यह कथा दी हुई है। शिवपुराणमें द्वितीया रुद्र-संहिताके पहले सृष्टिखण्डमें यही कथा दी हुई है। परन्तु स्कन्दपुराणमें इसी कथाको अत्यधिक विस्तारसे नन्दिकेश्वरने मार्कण्डेय ऋषिको सुनाया है।

वर्त्तमान श्वेतवाराहकल्पके पहले इस ब्रह्माण्डकी सृष्टिके समय जब वैमानिकसर्ग अर्थात् देवताओंकी सृष्टि समाप्त हो गयी और चार हजार युगके अन्तमें वृष्टि न होनेसे स्थावर-जङ्गम सब सूख गये और पशु, पक्षी, मनुष्य, वृक्ष, राक्षस, गन्धर्वादि सब सूर्यके तापसे जल गये, सारी सृष्टि जलमग्न हो गयी और सब दिशाओंमें अन्धकार फैल गया तब भगवान् विराट्को ब्रह्माजीने नारायणरूपसे क्षीर-सागरमें शयन किये देखा, तो उनकी मायासे मोहित हो ब्रह्माने उन्हें जगाया और क्रुद्ध होकर कहा 'तू कौन है ?' वह भी उठे और हँसकर बोले 'पुत्र, स्वागत !' इसपर ब्रह्माजी और चिढ़े कि मैं जो सृष्टिका पितामह हूँ मुझे पुत्र कहता है। विष्णु भगवान्ने समझाया कि सृष्टिके कर्त्ता-हर्त्ता हमी हैं और हमने तुम्हें सृष्टिके लिये ही पैदा किया है। निदान दोनोंमें घोर वाद-विवाद हुआ और उस प्रलयसमुद्रमें बहुत कालतक घोर युद्ध होता रहा। अन्तमें दोनोंका झगड़ा मिटानेके लिये उनके सामने प्रचण्ड अग्निका एक महास्तम्भ प्रकट हुआ जो ऊपर-नीचेसे अनादि और अनन्त था। विष्णुने उसे देखकर कहा कि हमारा-तुम्हारा झगड़ा चुकानेको यह लिङ्ग प्रकट हुआ है। तुम इस ज्योतिर्लिङ्गके ऊपरका और हम नीचेका पता लगावें। विष्णुने वाराहका और ब्रह्माने हंसका रूप धरकर महा भयानक वेगसे दौड़ना और उड़ना आरम्भ किया। दोनोंने एक हजार वर्षतक परिश्रम किया और थक गये। फिर वहीं लौट आये। स्कन्दपुराणमें कथा है कि लौटती बार ब्रह्माजीने ऊपरसे केतकीका एक दल गिरते हुए देखा। उस पत्तेने भगवान् शङ्करकी शक्तिसे पितामहको बतलाया कि हम इस ज्योतिर्लिङ्गके मस्तकपरसे इसके मूल भूतलकी ओर दस कल्प पहलेके चले हुए हैं और अभी इस लिङ्गकी आधी लम्बाईतक भी नहीं पहुँचे। ब्रह्माके कहनेसे केतकीने झूठी गवाही दी कि ब्रह्मा लिङ्गके अग्रभागका पता लगा आये। भगवान् विष्णुने इस मिथ्याको जान लिया और उन्होंने सत्यके प्रतिपादनार्थ शिवस्तुति की। भगवान्

शङ्कर प्रकट हुए। उन्होंने लिङ्गके विषयमें मिथ्या साक्ष्यके अपराधमें केतकीको शाप दिया कि अबसे लिङ्गार्चनमें केतकीका फूल न बरता जायगा। भगवान् शङ्करने ब्रह्मा और विष्णुके विवादको सृष्टिका यह परम रहस्य बतलाकर निपटाया कि त्रिमूर्त्तिकी उत्पत्ति प्रत्येक ब्रह्माण्डके लिये महेश्वरके अंशसे ही होती है। उसीकी शक्तिसे पितामह स्रष्टा, विष्णु पाता और रुद्र संहर्त्ता हैं। तीनोंका अधिकार बराबर है, कभी कोई किसीका पिता होता है और कभी पुत्र। तीनोंमें अभेद है, एकता है, परन्तु तीनों महेश्वरकी ही मायाके वशवर्त्ती होकर सृष्टि, स्थिति, संहारका काम विधिवत् करते रहते हैं।

तभीसे भगवान् ब्रह्माका एक नाम हंस हुआ और भगवान् विष्णुके श्वेतवाराह-रूप धरनेसे वर्तमान कल्पका श्वेतवाराह नाम पड़ा। उसी समय भगवान् महेश्वरकी आज्ञासे कल्पकी नयी सृष्टिका ब्रह्माने आरम्भ किया।

लिङ्गपुराणके तीसरे ही अध्यायमें कहा है कि भगवान् महेश्वर अलिङ्ग हैं। प्रकृति प्रधान ही लिङ्ग है, महेश्वर निर्गुण हैं। प्रकृति सगुण है। प्रकृति या लिङ्गके ही विकास और विस्तारसे विश्वकी सृष्टि होती है। सारा ब्रह्माण्ड लिङ्गके ही अनुरूप बनता है। ब्रह्माण्डरूपी ज्योतिर्लिंग अनन्त-कोटि हैं। सारी सृष्टि लिङ्गके ही अन्तर्गत है, लिङ्गमय है और अन्तमें लिङ्गमें ही सारी सृष्टिका लय भी होता है। इसी तरहका भाव इस स्कन्दपुराणके श्लोकसे व्यक्त होता है—

आकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका।
आलयः सर्वदेवानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते॥

आकाश लिङ्ग है, पृथिवी उसकी पीठिका है, सब देवताओंका आलय है। इसमें सबका लय होता है, इसी-लिये इसे लिङ्ग कहते हैं।

आकाशको लिङ्ग कहा है, यह आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी उक्ति है। सम्प्रति शर्मण्य-देशके प्रसिद्ध विश्वविख्यात गणिताचार्य अलबर्त्त ऐंस्टैनने यह सिद्ध किया है कि अनन्त आकाश वक्र है, पर वलयके-से वक्रके अनुरूप है। देशमात्र वक्र है, जो कि लिङ्गका रूप है। देश, काल और वस्तु—इन्हीं तीन पदार्थोंसे यह सारा विश्व बना है। यह तीनों ही लिङ्गवत् वक्र हैं। उपादान जब वक्र हैं तो जितनी वस्तुएँ इन उपादानोंसे बनी हैं, विद्यु-त्कणों, परमाणुओं और अणुओंसे लेकर ब्रह्माण्डतक सम्पूर्ण सृष्टि वक्र है, लिङ्गरूप है। वस्तुतः जिसे सीधी रेखा कहते हैं वह कोई अस्तित्व नहीं रखती, वह केवल अंश-मात्र है वक्रका।

ऐंस्टैनका सापेक्षवाद आज पाश्चात्य विज्ञानपर शासन कर रहा है, उसके अनुसार धरतीकी आकर्षण-शक्ति कोई वस्तु नहीं है। देशकी वक्रताके कारण ही वस्तुएँ गिरती हैं या लुढकती हैं। वस्तुकी मात्रा जिस पिण्डमें जितनी ही अधिक है उतनी ही वक्रता उस पिण्डमें बढ़ी हुई है इसीलिये उसमें उतना ही अधिक खिचाव देखनेमें आता है। वराह भगवान्का जोरोंसे दौड़ना लिखा है, गिरना नहीं। केतकीका पत्ता गिरता है परन्तु अभी उस पिण्डके आधे-तक भी नहीं पहुँचा है जिसका विस्तार अनन्त है, जिसकी आधीसे भी कम दूरीतक गिरनेमें केतकच्छदको दस कल्प बीत गये हैं। आकाशकी अनन्तता तो इस लिङ्ग या पिण्ड-की अपेक्षा अत्यधिक होगी और वह भी 'लिङ्ग' है। यह महान् ज्योतिर्लिङ्ग तो प्रकृतिका, आग्नेय वस्तुमात्राका एक विशाल समूह है जिसका आकाशकी अपेक्षा आद्यन्त होनेपर भी जो ब्रह्मा और विष्णुसमान ईश्वरोंको भी अनादि-अनन्त है। निदान अनन्तकोटि विश्व लिङ्गमय है और विश्वोंसे परे सगुण परात्पर ब्रह्मका आकार भी लिङ्ग है। अतः सर्व शर्व-मय है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सिद्ध है।

लिङ्गका यह प्रथम प्रादुर्भाव है। तात्पर्य यह कि लिङ्गका प्रादुर्भाव तो अनेक बार अनेक रूपों और बड़ाइयों-छुटाइयोंमें हुआ है। यह प्रथम प्रादुर्भाव अद्भुत है। पहले तो यह सृष्टिके आरम्भमें उसके कर्त्ता और पाताके सम्मुख हुआ है। उन लोगोंको इस घटनाद्वारा सृष्टिके विषयमें कई बातोंका इशारा मिला है। एक तो यह कि सर्ग और उसकी रक्षामें अभिमान व्यर्थ है क्योंकि ये दोनों काम उस परमात्म-सत्ताकी इच्छापर हो रहे हैं और उसी इच्छाके आधारपर कोटि ज्योतिर्लिङ्गरूप कोटि ब्रह्माण्डोंकी रचना हो रही है जिसमें कोटिशः त्रिमूर्ति उसी तरह काम कर रहे हैं। दूसरे यह कि माहेश्वरी मायासे मोहित होकर सृष्टिके कामको छोड़कर पारस्परिक व्यर्थके झगड़ोंमें न लगना चाहिये। तीसरे यह कि समस्त सृष्टिका लिङ्ग ही रूप है। इसी रूपमें सम्पूर्ण रचनाका संविधान करना होगा। चौथे यह कि परमात्म-सत्ता जो निर्गुण, निराकार, निर्विकार है विवृत्त होकर इसी वक्राकारमें विकसित होती है जिसे चिह्न-मात्र कह सकते हैं और इसी चिह्नके मूलरूपसे अनादि और

अनन्त विविधताका बिकास होता है। उस अमूर्त्त और अरूप परमात्माकी मूर्त्ति और रूपका आविर्भाव इसी लिङ्ग-रूपमें हो सकता है।

यह लिङ्ग त्रिदेववाले रुद्रका नहीं है। यह परात्पर परतम ब्रह्मका लिङ्ग है। देखिये स्वयं भगवान् विष्णु अपने श्रीमुखसे क्या कहते हैं—

स्रष्टा त्वं सर्वजगतां रक्षिता सर्वदेहिनाम्।
हर्ता च सर्वभूतानां त्वां विनैवास्ति कोऽपरः॥११॥
अणूनामप्यणीयांस्त्वं महांस्त्वं महतामपि।
अन्तर्बहिस्त्वमेवैतज्जगदाक्रम्य वर्तसे॥१२॥
निगमास्तव निःश्वासा विश्वं ते शिल्पवैभवम्।
सत्त्वं त्वदीय एवासि ज्ञानमात्मा तव प्रभो॥१३॥
अमरा दानवा दैत्याः सिद्धा विद्याधरा नराः।
नगाः
प्राणिनः पक्षिणः शैलाः शिखिनोऽपि त्वमेव हि॥१४॥
स्वर्गस्त्वमपवर्गस्त्वं त्वमोङ्कारस्त्वमध्वरः।
त्वं योगस्त्वं परा संवित्किं त्वं न भवसीश्वर॥१५॥
त्वमादिर्मध्यमन्तश्च तस्थुषां जग्मुषामपि।
कालस्वरूपतां प्राप्य कलयस्यखिलं जगत्॥१६॥
परेशः परतः शास्ता सर्वानुग्राहकः शिवः।
स एष मे कथंकारं साक्षाद्भवति धूर्जटिः॥१७॥
(स्क०पु० १।३।२।१४)

शिवपुराणमें भी वायवीयसंहिताके पूर्व-खण्डके छठे अध्यायमें भगवान् वायु मुनियोंसे कहते हैं—

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्वभुवनं गोप्तान्ते सञ्चुकोच यः॥१४॥
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतःपादसंयुतः॥१५॥
द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः।
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा॥१६॥
हिरण्यगर्भं देवानां प्रथमं जनयेदयम्।
विश्वस्मादधिको रुद्रो महर्षिरिति हि श्रुतिः॥१७॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तममृतं ध्रुवम्।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्संस्थितं प्रभुम्॥१८॥
अस्मान्नास्ति परं किञ्चिदपरं परमात्मनः।
नाणीयोऽस्ति न च ज्यायस्तेन पूर्णमिदं जगत्॥१९॥
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः॥२०॥
सर्वतःपाणिपादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥२१॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासस्सर्वेन्द्रियविवर्जितः।
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत्॥२२॥
अचक्षुरपि यः पश्येदकर्णोऽपि शृणोति यः।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम्॥२३॥
अणोरणीयान् महतो महीयानयमव्ययः।
गुहायां निहितश्चापि जन्तोरस्य महेश्वरः॥२४॥
तमक्रतुं क्रतुप्रायं महिमातिशयान्वितम्।
धातुः प्रसादादीशानं वीतशोकः प्रपश्यति॥२५॥
वेदाहमेनमजरं पुराणं सर्वगं विभुम्।
निरोधं जन्मनो यस्य वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥२६॥
× × × ×
मायी विश्वं सृजत्यस्मिन् निविष्टो मायया परः।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्॥३३॥
तस्यास्त्ववयवैरेव व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।
सूक्ष्मातिसूक्ष्ममीशानं कललस्यापि मध्यतः॥३४॥
स्रष्टारमपि विश्वस्य वेष्टितारं च तस्य तु।
शिवमेवेश्वरं ज्ञात्वा शान्तिमत्यन्तमृच्छति॥३५॥

यहाँ इस अंशमें अधिकांश वेदमन्त्रोंको श्लोकबद्ध कर दिया है। इसी अध्यायमें—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्
विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम्॥२८॥

—इसे महाभारतके विष्णुसहस्रनामके—

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम्॥
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता॥

—और गीताके पाँचवें अध्यायके 'सर्वलोकमहेश्वरम्' से मिलान कर लीजिये। और—

न तत्समोऽधिकश्चापि क्वचिज्जगति दृश्यते ।

—से गीताके—

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥

—सादृश्यको देखिये । दोनोंमें महेश्वर क्या भिन्न हैं ?

यहाँ एक-एक अक्षर परतम ब्रह्मके लिये है । हरि-हरमें ही अभेद नहीं है, हरि-हर और परतम ब्रह्ममें भी अभेद है । शिवसहस्रनाम और विष्णुसहस्रनाममें तो इतनी एकता है कि उसकी तुलना स्वतन्त्र ही लेखका विषय हो सकती है । परन्तु सहस्रनामोंसे भी हरि-हरका परतम ब्रह्मसे अभेद ही प्रतिपादित होता है । बात यह है कि यह सम्पूर्ण विश्व तो लीलाकी रङ्गभूमि है जिसमें त्रिदेवका वह विशिष्ट अभिनय है जो परतम ब्रह्म अपनी त्रिगुणात्मिका मायाके परदेमें विविध रूपोंमें करता रहता है । ब्रह्मा और विष्णुकी लड़ाई भी इसी कोटिकी लीला है । भगवान् शङ्करका बीचमें पड़कर मेल करा देना भी अभिनय है, लीला है । पुराणोंमें कहीं हरका उत्कर्ष है कहीं हरिका और कहीं महाशक्तियोंका ही उत्कर्ष है और कहीं शक्तिमानोंका ही उत्कर्ष प्रतिपादित है । वस्तुतः शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य और विष्णु एक ही परमात्माके पाँच सगुण रूपोंके नाम हैं । एक ही अन्तर है और वह यही है कि चारोंके रूप, चारोंकी मूर्त्तिका शृङ्गार उनके-उनके ध्यानके अनुरूप है परन्तु भगवान् शिवका ध्यान तो और है और मूर्त्तिका रूप लिङ्ग ही है, फिर चाहे वह भगवान् शङ्करके किसी अवतार या लीलाका क्यों न हो । यह क्या बात है, इसमें क्या रहस्य है ?

४—मैथुनी सृष्टिका आरम्भ

जगत्की सृष्टिमें मैथुनी सृष्टिका विकास पीछेका है । पुराणोंके अनुसार ब्रह्माजीने पहले मानसिक सृष्टिसे ही काम लिया । उन्होंने अपने मानसपुत्र इसीलिये उत्पन्न किये कि वे मानसी सृष्टिको ही बढ़ावें। परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली । उनके मानसिक पुत्रोंमें प्रजाकी वृद्धिकी ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती थी । भला, प्रजाकी वृद्धि वह क्यों करें ? इससे उन्हें क्या लाभ ? हानि अवश्य थी कि कर्मका बन्धन बढ़ता था, झंझट बढ़ता था, परमात्मासे वा अध्यात्मसे दूरीकरण होता था । सनकादिको पसन्द न आया । नारदको एक आँख न भाया । उन्होंने देखा कि संसार जितना ही बढ़ता है उतना ही भगवान्से दूर होता है, परन्तु ब्रह्माका उद्देश्य तो संसारको बढ़ाना ही था । यह कैसे रुक सकते थे ? उन्होंने सृष्टि-रचनाकी परीक्षा-परपरीक्षा की और पग-पगपर असफल हुए और प्रत्येक असफलतापर उन्होंने तपस्या की । तपस्या एकमात्र उपाय थी । जब जिस किसीको कोई मनोरथ होता उसकी पूर्तिके लिये वह तपस्या करता । तपस्याकी निर्दिष्ट विधियाँ थीं और अधिकार-निर्धारण भी था । अविहित तपस्या फलवती नहीं होती थी । यह सब सही है, परन्तु विहित तपस्या ही उस समय उपाय था । इस प्रसङ्गमें शिवपुराणकी वायवीय संहिताके पूर्व-खण्डमें पन्द्रहवें अध्यायमें वायु भगवान् कहते हैं—

यदा पुनः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त वेधसः ।
तदा मैथुनजां सृष्टिं ब्रह्मा कर्त्तुममन्यत ॥ १ ॥
न निर्गतं पुरा यस्मान्नारीणां कुलमीश्वरात् ।
तेन मैथुनजां सृष्टिं न शशाक पितामहः ॥ २ ॥
ततस्स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ।
प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं प्रष्टव्यः परमेश्वरः ॥ ३ ॥
प्रसादेन विना तस्य न वर्धेरन्निमाः प्रजाः ।
एवं सञ्चिन्त्य विश्वात्मा तपः कर्त्तु प्रचक्रमे ॥ ४ ॥
तदाद्या परमा शक्तिरनन्ता लोकभाविनी ।
आद्या सूक्ष्मतरा शुद्धा भावगम्या मनोहरा ॥ ५॥

× × ×

तया परमया शक्त्या भगवन्तं त्रियम्बकम् ।
सञ्चिन्त्य हृदये ब्रह्मा तताप परमं तपः ॥ ७ ॥
तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिनः ।
अचिरेणैव कालेन पिता सम्प्रतुतोष ह ॥ ८ ॥
ततः केनचिदंशेन मूर्त्तिमाविश्य कामपि ।
अर्धनारीश्वरो भूत्वा ययौ देवस्स्वयं हरः ॥ ९ ॥
तं दृष्ट्वा परमं देवं तमसः परमव्ययम् ।
अद्वितीयमनिर्देश्यमदृश्यमकृतात्मभिः ॥१०॥
सर्वलोकविधातारं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ।
सर्वलोकविधायिन्या शक्त्या परमया युतम् ॥११॥
अप्रतर्क्यमनाभासममेयमजरं ध्रुवम् ।
अचलं निर्गुणं शान्तमनन्तमहिमास्पदम् ॥१२॥

सर्वगं सर्वदं सर्वं सदसद्व्यक्तिवर्जितम् ।
सर्वोपमाननिर्मुक्तं शरण्यं शाश्वतं शिवम् ॥१३॥
प्रणम्य दण्डवद् ब्रह्मा समुत्थाय कृताञ्जलिः ।

× × ×

तुष्टाव देवं देवीं च सूक्तैः सूक्ष्मार्थगोचरैः ॥१५॥

× × ×

सकलभुवनभूतभावनाभ्यां
जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम् ।
नरवरयुवतीवपुर्धराभ्यां
सततमहं प्रणतोऽस्मि शङ्कराभ्याम् ॥३५॥

जब फिर भी प्रजा न बढ़ी तब ब्रह्माको मैथुनी सृष्टिका ध्यान आया । पहले ईश्वरने स्त्रीकुल नहीं पैदा किया था । यह बात साधारण जीवोंकी समझमें आ ही नहीं सकती कि आरम्भमें सृष्टिके लिये कैसी असाधारण बुद्धिकी आवश्यकता थी। ब्रह्मामें भी वह असाधारण बुद्धि न थी । पूर्वकल्पकी स्मृतिसे उन्होंने पुरुष और स्त्रीकी रचना भी की तो भी उन्हें ठीक विधि न सूझी । इसलिये उन्होंने भगवान् शंकरके साथ-ही-साथ उनकी परमा शक्तिका भी ध्यान किया और महा घोर तप किया । भगवान् सन्तुष्ट हुए और अर्धनारीश्वररूपमें ब्रह्माके सामने प्रकट हुए । ब्रह्माजीने विनीत हो स्तुति की और नर-नारीरूप भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम किया । भगवान्‌ने उन्हें वर दिया और साथ ही अपने शरीरसे देवी-देवकी रचना करने लगे ।

ससर्ज वपुषो भागाद्देवीं देववरो हरः ॥ ६ ॥
यामाहुर्ब्रह्म विद्वांसो देवीं दिव्यगुणान्विताम् ।
परस्य परमां शक्तिं भवस्य परमात्मनः ॥ ७ ॥
यस्यां न खलु विद्यन्ते जन्ममृत्युजरादयः ।
या भवानी भवस्याङ्गात्समाविरभवत्किल ॥ ८ ॥
यस्या वाचो निवर्त्तन्ते मनसा चेन्द्रियैः सह ।
सा भर्त्तुर्वपुषो भागाज्जातेव समदृश्यत ॥ ९ ॥

× × × ×

तां दृष्ट्वा परमेशानीं सर्वलोकमहेश्वरीम् ।

× × × ×

प्रणिपत्य महादेवीं प्रार्थयामास वै विराट् ॥१४॥

× × × ×

न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ।
तेन नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिर्मम न विद्यते ॥१८॥

× × × ×

त्वामेव वरदां मायां प्रार्थयामि सुरेश्वरीम् ।
चराचरविवृद्ध्यर्थमंशेनैकेन सर्वगे ॥२०॥
दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवार्दिनि ।
एवं सा याचिता देवी ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना ॥२१॥
शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम् ।
तामाह प्रहसन्प्रेक्ष्य देवदेववरो हरः ॥२२॥
ब्रह्माणं तपसाराध्य कुरु तस्य यथेप्सितम् ।

× × × ×

ब्रह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताभवत् ।
दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणीम् ॥२४॥
विवेश देहं देवस्य देवश्चान्तरधीयत ।
तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् स्त्रियां भोगः प्रतिष्ठितः ॥२५॥
प्रजासृष्टिश्च विप्रेन्द्रा मैथुनेन प्रवर्तते ।
ब्रह्मापि प्राप सानन्दं सन्तोषं मुनिपुङ्गवाः ॥२६॥

उस देवीको विद्वान् 'ब्रह्म' कहते हैं । (यहाँ 'ब्रह्म' नामसे पुरुष और प्रकृतिकी एकता स्पष्ट है ।) यह परमात्माकी शक्ति है । परमात्माके सभी विशेषण उसके लिये उपयुक्त हैं । वह अर्धाङ्गिनी देवी जब प्रकट हुई तब ब्रह्माजीने स्तुति की और कहा कि इस सृष्टिको बारम्बार बनाता हूँ पर इनकी बढ़न्ती नहीं होती, इसीलिये अब मैं मैथुनी सृष्टि करना चाहता हूँ । आपने पहले नारीकुल नहीं सिरजा इसलिये मुझमें नारीकुल सिरजनेकी शक्ति नहीं है । आप सारी शक्तियोंकी खानि हैं इसलिये मेरी प्रार्थना है कि अपने एक अंशसे चराचरकी वृद्धि करो और मेरे अंशसे उत्पन्न पुत्र दक्षकी कन्या होओ । इसपर उस 'ब्रह्म' ने अपनी भौंहके बीचसे एक शक्ति प्रकट की और आप ईश्वरमें लीन हो गयी । जो शक्ति ब्रह्माके लिये इस तरह प्रकटी, उसे भगवान् शङ्करने आज्ञा दी कि तू तपस्याद्वारा ब्रह्माका आराधन करके उनके मनोरथोंको पूरा कर । यह कह भगवान् अन्तर्धान हो गये । ब्रह्माको मैथुनी सृष्टिकी शक्ति मिली और तभीसे स्त्री-सम्भोगका लोकमें आरम्भ हुआ । तभीसे मैथुनधर्मद्वारा प्रजाकी सृष्टि प्रवृत्त हुई । भगवती दक्षकी कन्या सती हुईं और मैथुनधर्मकी प्रवृत्तिके लिये

पहले-पहल ब्रह्माजी अपने शरीरको ही विभक्त करके दहने आधेसे स्वायम्भुव मनु और बायें आधेसे शतरूपारूपसे स्वयं प्रकट हुए और मानव-सृष्टिका प्रारम्भ किया । मनु और शतरूपाने भी तपस्या की और तब सृष्टि-कर्ममें प्रवृत्त हुए ।

सृष्टिकी कथा बहुत बड़ी है । सभी पुराण सर्ग और प्रतिसर्गकी कथा कहते हैं । यहाँ वह सब प्रयोजनीय नहीं है । हमने ऊपर अत्यावश्यक श्लोक उद्धृत किये हैं । ऊपर उसके भाव भी संक्षेपसे दिये हैं । सभी प्रसङ्गोंपर अवतरण देनेसे लेखका कलेवर बहुत बढ़ जायगा । अर्धनारीश्वररूपका लिङ्ग और पीठिकासे घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा ।

सृष्टिके इस प्रसङ्गका महाभारत अनुशासनपर्वके चौदहवें अध्यायमें इन्द्र और उपमन्युके संवादमें उपमन्युके इन वचनोंसे मिलान करनेपर मैथुनी सृष्टिसे अर्धनारीश्वरका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है ।

सुरासुरगुरोर्वक्त्रे कस्य रेतः पुरा हुतम् ।
कस्य वान्यस्य रेतस्तद्येन हैमो गिरिः कृतः ॥२१६॥
दिग्वासाः कीर्यते कोऽन्यो लोके कश्चोर्ध्वरेतसः ।
कस्य चार्धे स्थिता कान्ता अनङ्गः केन निर्जितः ॥२१७॥

× × × ×

प्रत्यक्षमिह देवेन्द्र पश्य लिङ्गभगाङ्कितम् ।
देवदेवेन रुद्रेण सृष्टिसंहारहेतुना ॥२२७॥

× × × ×

प्रत्यक्षं ननु ते सुरेश विदितं संयोगलिङ्गोद्भवं
त्रैलोक्यं सविकारनिर्गुणगणं ब्रह्मादिरेतोद्भवम् ।
यद्ब्रह्मेन्द्रहुताशविष्णुसहिता देवाश्च दैत्यासुरा
नान्यत्कामसहस्रकल्पितधियः शंसन्ति यस्मात्परम् २२९

× × × ×

हेतुभिर्वा किमन्यैस्तैरीशः कारणकारणम् ।
न शुश्रुम यदन्यस्य लिङ्गमभ्यर्चितं सुरैः ॥२३०॥

× × × ×

यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः ।
अर्चयेथाः सदा लिङ्गं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ॥२३२॥
न पद्माङ्का न चक्राङ्का न वज्राङ्का यतः प्रजाः ।
लिङ्गाङ्का च भगाङ्का च तस्मान्माहेश्वरी प्रजा ॥२३३॥
देव्याः कारणरूपभावजनिताः सर्वा भगाङ्काः स्त्रियो
लिङ्गेनापि हरस्य सर्वपुरुषाः प्रत्यक्षचिह्नीकृताः ।
योऽन्यत्कारणमीश्वरात् प्रवदते देव्या च यन्नाङ्कितं
त्रैलोक्ये सचराचरे स तु पुमान् मूढो भ्रमेत् दुर्मतिः २३४
पुँल्लिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं विद्धि चाप्युमाम् ।
द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत् ॥२३५॥

'देवों और असुरोंके गुरु अग्निके मुखमें आदिकालमें किसके वीर्यकी आहुति दी गयी ? वह क्या किसी औरका वीर्य है जिससे स्वर्ण-सुमेरु बना है ? लोकमें दिगम्बर और ऊर्ध्वरेता और कौन है, किसने अपनी स्त्रीको अर्धाङ्गिनी बनाया है और किसने कामको जीता है ? देवोंके देव भगवान् रुद्र सृष्टि और संहारके कारण हैं, इसीलिये हे इन्द्र ! प्रत्यक्ष देख लो कि जगत् लिंग और योनिसे चिह्नित है । यह भी तुम्हें मालूम है कि सविकार निर्गुण गुणयुक्त तीनों लोक, जो कि ब्रह्मादिके रेतसे उपजा कहा जाता है, वह संयोगद्वारा लिंगसे ही उपजा है, क्योंकि ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि और विष्णुके सहित सब देवता, दैत्य और राक्षस सहस्रों कामनाओंसे छन्दितबुद्धि होकर यह स्वीकार करते हैं कि भगवान् शंकरसे परे कुछ नहीं है । बहुत-सी युक्तियोंसे क्या प्रयोजन है ? ईश ही सब कारणोंका कारण है । देवताओंके द्वारा और किसीके लिंगका पूजा जाना हमने नहीं सुना । ब्रह्मा, विष्णु और सभी देवताओंसमेत तुम भी सदा जिसके लिंगकी पूजा किया करते हो उससे बढ़कर इष्ट दूसरा कौन है ? पद्म, चक्र, वज्र आदि कोई और चिह्न तो प्रजामें पाये नहीं जाते । प्रजा-मात्रमें दो ही चिह्न पाये जाते हैं; या तो लिंग चिह्न है या योनि चिह्न है । इसलिये सारी प्रजा माहेश्वरी प्रजा है । देवीके कारणरूप भावजनित समस्त स्त्रियाँ योनि-चिह्नसे युक्त हैं और सब पुरुष महादेवजीके लिंगके चिह्नसे चिह्नित हैं । जो पुरुष शिव-शिवा छोड़ और किसीको जगत्का कारण बताता है और उनकी उपासनाके चिह्नसे चिह्नित नहीं है वह दुर्मति चेतन और जडमय इस त्रिलोकीसे पतित होता है । चराचरमें पुरुषमात्र हरको और स्त्रीमात्र गौरीको जानो, यह चराचर जगत् इन दोनों शरीरोंसे व्याप रहा है ······।'

शैवपुराण तो साम्प्रदायिक ग्रन्थ समझे जाते हैं, परन्तु महाभारत इतिहास है, उसे किसी साम्प्रदायिक पक्षपातसे कोई प्रयोजन नहीं है । उपमन्युका उपाख्यान जिससे कि ऊपरके अंश अवतरित हैं महाभारतकी विशेषता नहीं है ।

प्रायः सभी पुराणोंमें श्रीकृष्ण भगवान्के चरितमें उपमन्युकी कथा है जिसमें भगवान् श्रीकृष्णने उपमन्युसे दीक्षा ली है, भगवान् शङ्करके प्रीत्यर्थ बड़ी उग्र तपस्या की है और मनोवाञ्छित वर पाया है। इसी अध्यायके ये उद्धृत श्लोक पता देते हैं कि अर्धनारीश्वरने ब्रह्माजीको मैथुनी सृष्टिमें किस तरहकी सहायता दी? ब्रह्माजीने सारी सृष्टि कर डाली परन्तु सृष्टिकी वृद्धिका कोई उपाय न किया। जिनको सिरजा वे बने रहे, परन्तु फिर? उनकी रक्षा भी होती रही। परन्तु अपने आप वह सृष्टि बढ़े ऐसा कोई उपाय न था। ब्रह्माजी अपनी असफलतापर झुँझलाये तो पिशाच, प्रेतादि उत्पन्न हो गये। क्रोध हुआ तो रुद्रोंकी उत्पत्ति हुई। इस तरह विविध भावोंसे विविध प्रकारकी सृष्टि होती गयी। नियमन कैसे हो? जब उन्होंने देखा कि हमारे मानसी पुत्र वैरागी हुए जाते हैं तब काम, लोभ, मोह आदि विकार उपजाये। जिनकी सृष्टि की उनमें मिलनेकी कामना हुई, कलाकी प्रवृत्ति हुई, सुन्दर रचनाओंकी ओर मन लगा, प्रकृतिमें, संसारमें सौन्दर्य देखनेकी इच्छा हुई, सुन्दर मणि हों, सुन्दर पौधे हों, सुन्दर पशु-पक्षी हों, सुन्दर मनुष्य, ऋषि, देवता हों। सौन्दर्यपर मोह हुआ, उन सुन्दर वस्तुओंके संग्रहपर लोभ हुआ, इसी प्रकार मद-मात्सर्य आदि भी उत्पन्न हुए। परन्तु इनसे भी वृद्धि न हुई। तब लाचार हो अर्धनारीश्वर भगवान् शङ्करकी शरण गये। उन्होंने शक्तिमान् और शक्तिमें मेलका मार्ग दिखाया और जननेन्द्रियाँ उत्पन्न कीं। देश,काल, वस्तुका मूल रूप वक्राकार है इसीलिये इन इन्द्रियोंके चिह्न भी वक्राकार हुए। अब ब्रह्माजीने जिस काम देवताकी रचना की थी उससे काम लिया गया। काम अब मैथुनी सृष्टिके लिये प्रवर्त्तक हुआ। शक्तिने नारीको सुन्दर बनाया और कामने दोनोंको मिलनेके लिये प्रवृत्त किया। गर्भाधानका कारण काम बना। यों किसी प्राणीको दूसरे प्राणीसे मिलकर सृष्टिकी वृद्धि करनेके लिये मनमें इच्छा ही क्यों होती? आज भी तो बहुतेरे सन्तान होना बुरा समझते हैं और सन्ताननिरोधपूर्वक विषय-सुख लूटना चाहते हैं, परन्तु पुराण स्पष्ट कहते हैं कि नर-नारीकी उत्पत्ति वृद्धिके लिये हुई, विषयोपभोगके लिये नहीं हुई। परन्तु भोगमें यदि किसी तरहका सुख न होता तो भोगमें प्राणियोंकी प्रवृत्ति क्यों होती और ब्रह्माजीका वृद्धिवाला उद्देश्य कैसे सिद्ध होता? अतः काम-देवताने इसमें ब्रह्माकी सहायता की और कामेच्छासे विषयकी ओर प्राणियोंकी प्रवृत्ति हुई। नर-नारी मिलते हैं सुखके लिये परन्तु फल होता है प्रजावृद्धि। जिन प्राणियोंमें मैथुन नहीं है, उनमें विषय-सुख भी नहीं रक्खा गया है। लिंग और योनिका मेल और वीर्यका आधान प्रकृति भगवती बाहरी साधनोंसे कराती हैं। परन्तु ऐसी दशामें बाहरी साधनोंका भी विषयोपभोग ही प्रवर्त्तक है। पौधोंमें एक ही प्रकारके फूलमें बहुधा लिंगाच्छत्र और योनिच्छत्र दोनों ही होते हैं, परन्तु प्रकृतिने पुष्पोंमें मैथुनका साधन उसके भीतर नहीं रक्खा है और न वह स्वयं सेचन या स्वाधानको प्रोत्साहित करती है। एक फूलका पराग दूसरे फूलके योनिच्छत्रमें पहुँचानेके बाहरी साधन हैं पक्षी, तितली, कीड़े-मकोड़े, मक्खी-भौंरा, हवा-पानी इत्यादि। इन पहुँचाने वा मिलानेवालोंको या तो विषयसुख मिलता है और नहीं तो संयोगसे यह मेल करा देते हैं। वृद्धिके प्रयोजनके लिये साधक काम-वासनाको बनाकर ब्रह्माने छुट्टी पायी। परन्तु जो ज्ञानवान् योगी यह जानता है कि मैथुनका प्रयोजन सुख नहीं है वृद्धि है और साथ ही जो कामपर विजय भी पा सके वह केवल वृद्धिके लिये मैथुन करेगा, परन्तु बड़े-बड़े तपस्वी ऐसा नहीं कर सके। भगवान् शङ्करने अपनी लीलासे इस सम्बन्धमें स्पष्टीकरण कर दिया। तारकासुरने देवताओंको तंग किया। शङ्करपुत्रद्वारा ही उसका बध होना था। वह समाधिस्थ थे। उमासे विवाह करें तब तो पुत्र हो। परन्तु देवताओंकी वेदना उनतक पहुँचे कैसे? कामदेवसे विनती की कि उनके मनमें क्षोभ उपजावे। कामने यह ढिठाई की और जला दिया गया। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि वृद्धिके लिये वस्तुतः कामकी आवश्यकता नहीं है, यदि कर्तव्यपरायण बुद्धि ही मैथुनकी प्रवर्त्तिका हो। ब्रह्माने जिन पुत्रोंको कर्त्तव्यपरायणता सिखाकर वृद्धि कराना चाहा वह तो बागी निकल गये, उन्होंने अपना कर्त्तव्य सृष्टिसे विराग ही समझा। गीताके उपदेशोंका उन्होंने आजकलका-सा ही उलटा अर्थ लगाया। भगवान् शङ्करने कामको जलाकर उमासे विवाह किया और पुत्र उत्पन्न करके देवताओंका काम किया। यह सब कर्त्तव्य-बुद्धिसे किया, कामेच्छाकी प्रवृत्तिसे नहीं। उसके जलाये जानेमें संसारको यही शिक्षा देनी थी। यही मैथुनी सृष्टिका रहस्य है।

नर-नारीको हर-गौरीके चिह्न विषयोपभोगके लिये नहीं मिले हैं। इनका प्रयोजन ब्रह्माका इष्ट प्रजावृद्धिमात्र है। इस पवित्र प्रयोजनको स्मरण दिलानेके लिये ही हम

पीठिकापर भगवान्‌के ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापना करके उपासना करते हैं और इसीलिये भगवान् कामारि हैं। इसीलिये विवाह-संस्कार अत्यन्त पवित्र और प्रयोजनीय है और विषयभोगके लिये नहीं; बल्कि 'वृद्धि' के लिये होता है। और इसीलिये माङ्गलिक संस्कारोंमें नान्दीमुख श्राद्ध होता है और 'वृद्धि' मनायी जाती है। हिन्दुओंके किसी संस्कारमें विषयभोग किसी ध्येयमें सम्मिलित नहीं है। यदि सनकादिक नारदादिने ब्रह्माको खिझाया न होता तो वह शायद कामको उत्पन्न न करते और जितने पुत्र उत्पन्न करते वह सब कर्त्तव्य-बुद्धिसे प्रजा-वृद्धि करते। परन्तु विकासका अत्यन्त सुन्दर क्रम पैदा ही न होता और संसार जैसा है उससे नितान्त भिन्न होता, जिस अवस्थाकी हम कोई कल्पना नहीं कर सकते।

५–वृद्धिकी समस्यापर वैज्ञानिक विचार

जीवित प्राणीका सबसे आवश्यक लक्षण यह है कि अपनी परिस्थितिमें जितने रासायनिक उपादान पावे सबको अपने जटिल सादृश्यमें परिणत करनेको पचा डाले। पचाना और विसर्जन करना यह दोनों क्रियाएँ बराबर चलती रहती हैं, परन्तु विसर्जन या ह्रास जरा देरमें होता है, पाचन या वृद्धि कुछ जल्दी। इसीलिये वृद्धि प्रबल होती है। परन्तु आयतन जिस तरह बढ़ता है उसी तरह ऊपरी तल जो आहार पहुँचानेका साधन है नहीं बढ़ता जाता। एक हद-तक बढ़कर रुक जाता है। इसीलिये व्यक्तिकी वृद्धि अपरि-मित नहीं हो सकती। चींटीसे हाथीतक पहुँचकर व्यक्तित्व-का बढ़ना रुक जाता है। बाहरी तल और आयतनमें, शरीरके अन्दर, एक ऐसा अनिवार्य अनुपात है जिसके भङ्ग होनेसे वृद्धि रुक जाती है और व्यक्तिगत ह्रास और वृद्धिका अनुपात समान हो जाता है। बड़े शरीरोंमें सब तरहके जीवोंको ऐसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म देहधारियोंके सामने, जिन्हें सेल कहते हैं, यह कठिनाई कभी नहीं आयी। जहाँ उनकी इस तरह-की बाढ़ रुकी, वहाँ वह लम्बोत्तरे हुए और बीचसे कटकर दो हो गये। इस तरह आयतन बढ़नेके बदले सेलोंकी संख्या-बढ़ जाती है, व्यक्तियाँ बढ़ जाती हैं। पहले एक व्यक्ति थी, बढ़कर दो हुईं, दोसे चार, चारसे आठ इस तरह अनन्त कोटि संख्या हो जाती है। इस वृद्धिमें ह्रासका नाम नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण है और निरन्तर बढ़ने-बढ़ाने-वाली। अनेक सेलोंवाले अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी इसी तरह बढ़ते रहते हैं और परमात्माके 'एकोऽहं बहु स्याम्' वाले महा-वाक्यको चरितार्थ करते रहते हैं। इसी तरह 'पूर्णमदः पूर्ण-मिदम्' इत्यादिका दृश्य भी देखनेमें आता है। परन्तु शरीर-में ज्यों-ज्यों स्थूलता आती जाती है इस तरहकी 'भेदज' उत्पत्ति कठिन होते-होते समाप्त हो जाती है। षट्पद या अष्टभुज प्राणी इस तरह कट-कटकर बढ़ नहीं सकते। 'भेदज' सृष्टि इस तरह रुक गयी।

अब 'अङ्कुरण' से प्रकृति काम लेती है। इसमें सारा शरीर ज्यों-का-त्यों रहता है परन्तु उसका एक छोटा-सा अंश कटा-सा रहता है और धीरे-धीरे पूरे शरीरका जब छोटा रूप तैयार हो जाता है तब अपने पैदा करनेवाले बड़े शरीरसे बिल्कुल अलग हो जाता है और उसका व्यक्तित्व अलगसे बढ़ने लगता है। मूँगोंमें, कुछ विशेष प्रकारके कीड़ोंमें और कुछ रीढ़वाले अत्यन्त छोटे जन्तुओंमें भी अङ्कुरण होता है। परन्तु अस्थिपञ्जर या कङ्कालकी जटिलता बढ़ते-बढ़ते 'अङ्कुरज' प्राणियोंकी बाढ़ भी रुक जाती है। यह वृद्धि-विधि छोटे पौधोंतक पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो जाती है।

बड़े जन्तुओं और पौधोंकी सन्तान बढ़ानेके लिये भेदन और अङ्कुरण जब काम नहीं देते तब वृद्धि रुक जाती है। सृष्टि पौधोंतक आकर जब रुकती है तब बड़े पौधों और जन्तुओंमें मैथुनका आरम्भ देखा जाता है। मिथुनका अर्थ है 'जोड़ा' अर्थात् दो अकेली सेलें जुड़कर एक सेल बन जाती है। इनमेंसे एक सेल 'लिङ्ग' या शुक्र होती है और दूसरी 'योनि' अथवा 'डिम्ब'। इस क्रियाके लिये दो व्यक्तियोंके शरीरसे एक-एक जनक और जननी सेलें निकल-कर मिल जाती हैं और एक सेल बनाती हैं, यह नयी व्यक्ति-का मूलरूप है। अब नयी सेल 'भेदन'की रीतिसे संख्या-वृद्धि करते-करते असंख्य सजातीय सेलें बनाकर नये स्थूल शरीरका ढाँचा तैयार करती है।

भेदन और अङ्कुरणवाली विधिमें नर-नारीका कोई भेद न था और न इस भेदकी कोई आवश्यकता थी। परन्तु बड़े शरीरोंमें, फिर वह चाहे चर हों चाहे अचर, यह भेद नितान्त आवश्यक हो गया कि नरका वीर्याणु हो और नारीका डिम्बाणु हो। वीर्याणुका रूप भी 'लिङ्ग'की ही तरह होता है और डिम्बकी अनुरूपता–'योनि' पीठिकासे मिलती-जुलती रहती है। चराचर प्राणियोंमें वृद्धिकी विधिमें इस तरह लिङ्ग और योनि व्यापक हो रहे हैं।

बहुत-सी अल्पायु सेलोंवाले छोटे-छोटे शरीरोंमें मैथुनी वृद्धिमें कुछ कठिनाई होती है, क्योंकि एक नन्ही-सी जननी एक बारमें थोड़े-से ही डिम्ब उपजाती है। यदि जनकोंकी आवश्यकता न पड़े तो दूनी व्यक्तियाँ वृद्धिमें लग सकती हैं। इसलिये जहाँ विभाजन या अङ्कुरणके लिये शरीर अधिक जटिल हैं और मैथुनी विधिके सुभीते नहीं हैं वहाँ प्रकृति माता 'पृथा-जनन'की एक चौथी विधिसे काम लेती है। इसमें शुक्र या लिङ्गवाले जीवाणुके बिना ही डिम्बका विकास और वृद्धि होती है। इसमें शुक्राणुद्वारा गर्भाधान हुए बिना ही काम चल जाता है। यह डिम्ब ज्यों ही प्रौढ़ताको पहुँचते हैं त्यों ही इनमें शरीरकी रचना होने लग जाती है। मधु-मक्खीका नर इसी पृथा-जनन-विधिसे उत्पन्न होता है। उसकी माता है पिता नहीं है। परन्तु रानी और काम करनेवाली मक्खियाँ वीर्याहित अण्डोंसे ही पैदा होती हैं। जनन-क्रियाके हिसाबसे इसप्रकार चार तरहके प्राणी हुए— भेदज, अङ्कुरज, मैथुनज और अनाहिताण्डज।

भेदज और अङ्कुरज अयोनिज विधियाँ हैं। इनमें लिङ्ग-भेद अनावश्यक है, परन्तु इन विधियोंसे एक कोयलसे दो कोयलें बन नहीं सकती थीं। फिर यही अयोनिज विधि रहती तो जनकके सारे दोष जनितमें पाये जाते। मैथुनज और अनाहिताण्डज दोनों योनिज विधियाँ हैं। इनमेंसे अनाहिताण्डज विधि अकेली नहीं चलती। दोनों विधियाँ मिली-जुली चलती हैं, परन्तु बिना आधानके भी योनिज-सृष्टि हो सकती है। इस तरह आहित और अनाहित उभय प्रकारकी योनिज सृष्टि सम्भव हो गयी।

प्रकृतिमें मैथुनी सृष्टिके चल जानेसे जीवनका विकास सुलभ हो गया, सतत वृद्धि सम्भव हो गयी और कम-से-कम चार मुख्य लाभ हुए—

(१) प्रजाकी उत्पत्तिमें खर्च कम पड़ने लगा, सन्तानवृद्धि सुभीतेसे होने लगी। भेदन और अङ्कुरणमें शरीरका बहुत बड़ा अंश व्यय होता था। मैथुनमें तो अत्यन्त सूक्ष्म कण ही खर्च होने लगे जो शरीरके भीतर अपरिमित संख्यामें उपस्थित थे।

(२) मैथुनसे एकबारगी बहुत-से नये देहधारियोंकी वृद्धि सम्भव हो गयी। यह जीवनके रगड़े और रक्षाके अभावमें बड़े महत्त्वकी बात थी।

(३) मैथुनसे जननी और जनकके शरीरोंके दोषोंके फैलनेमें बहुत कमी हो गयी और विकास और उन्नतिका मार्ग बाधाहीन हो गया।

(४) मैथुनकी विधिमें जनन-कण भी दो प्रकारके हो गये। प्रकृति या डिम्बाणु अचर हुआ और पुरुष या शुक्राणु चर हुआ। अचर 'अन्नपूर्णा' है, भोजन और बाढ़की सामग्रीसे पूर्ण है। चर 'चिद्रूप' है, रसोंमें शुक्राणु चल-फिरकर डिम्बाणुका दूरसे ही पता लगा लेता है और आधानकी क्रिया कर लेता है।

हमने यहाँ शुद्ध वैज्ञानिक खोजकी बातें कही हैं। विज्ञान यह नहीं कह सकता कि इस विश्व-सृष्टिके नियमनमें मैथुनी क्रिया प्रकृतिमें अपने आप उपजी या किसी चेतना शक्तिवालेने इसका आरम्भ किया। विज्ञानका अनुमान है कि पचासों करोड़ वर्षोंमें धीरे-धीरे विकास पाकर अयोनिजसे योनिज सृष्टि होने लग गयी है। विज्ञान तो ईश्वरको जानता नहीं। ईश्वरवादी वैज्ञानिकके शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि ईश्वरने जीवकी सृष्टिके पचासों करोड़ बरस पीछे मैथुनी सृष्टिकी विधि विकसित की। और यह पचासों करोड़ वर्ष क्यों लगे? क्योंकि ईश्वर प्रयोग-पर-प्रयोग करता था, बनाता और बिगाड़ता था, बराबर सीखता था, यहाँतक कि उसे आते-आते मैथुनी सृष्टि आ गयी और उसने इस विधिमें सुखानुभव इसलिये रक्खा कि जीवमात्र वृद्धिमें प्रवृत्त हों।

अब वैज्ञानिक और पौराणिक ईश्वरमें बहुत बड़ा अन्तर नहीं रहा। पौराणिक ईश्वर ब्रह्माने पचासों करोड़ वर्ष सृष्टिपर हाथ माँजनेमें लगा दिये। बारम्बार तपस्याएँ कीं। अन्तमें अर्धनारीश्वरकी कृपासे मैथुनी सृष्टिकी उद्भावना हुई। कामदेवकी उन्होंने उत्पत्ति की थी। वह लाभकी बात हुई। ब्रह्माने किसप्रकारकी रचना मैथुनी सृष्टिके लिये की, इसका विस्तार पुराणोंमें नहीं है। विस्तारकी कमी विज्ञानने पूरी की।

नास्तिक यह कह सकता है कि यह मनुष्यकी बुद्धिकी कल्पना है कि उसने जगत्‌की प्रवृत्ति काम-वासनाकी ओर देखकर, समस्त प्राणियोंको काममोहित पाकर लिङ्ग और योनिकी उपासनाकी नेव डाली, परन्तु इस शङ्काका यह उत्तर है कि लिङ्गकी उपासनाके साथ वैराग्यका तत्त्व और कामपर विजय भी यदि उन्हीं मनुष्योंकी कल्पना है तो भी उन मनुष्योंने उपासनाकी कोई अनुचित विधि नहीं निकाली। फिर यह भी विचार करना चाहिये कि पुराण उस कालके लिखे हुए ग्रन्थ हैं जब कि आधुनिक वैज्ञानिक

कल्पनाएँ स्वप्नमें भी किसीको सूझी न थीं। फिर भी मैथुन-सृष्टिमें अर्धनारीश्वर और लिङ्ग और योनिका अंश जो महाभारत और पुराणोंमें देखनेमें आता है आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षोंसे इतना मेल क्यों खाता है? पृथा-जननकी विधिमें केवल योनिसे ही उत्पत्ति बतायी है जिसको दूसरे पौराणिक शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि केवल भगवती गौरीकी शक्तिसे जनन-क्रियाका सम्भव होना 'पृथा-जनन' है।

लिङ्गोपासना सृष्टिके परम रहस्यका साक्षी है, प्रवृत्ति-मार्गका ठीक पता देता है और धीरे-धीरे जब इस उपासनाका रहस्य उपासकके अनुभवमें आता है तब वह लिङ्गोपासनासे ही निवृत्ति-मार्गपर आरूढ़ हो जाता है।

६—पशुपति और लिंग-शब्द और लिंगार्चन

भगवान् शङ्करके अनेक नामोंमेंसे पशुपति और लिंग—यह दो समझमें कम आते हैं। पशुपति शब्दपर शिवपुराणकी वायवीय संहिताके पूर्वखण्डमें यों लिखा है—

स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति।
तौ पश्यति परः कश्चित्तावुभौ तं न पश्यतः॥६०॥
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः।
पशूनामेव सर्वेषां प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्॥६१॥
स एष बध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः पशुः।
लीलासाधनभूतो य ईश्वरस्येति सूरयः॥६२॥
अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनस्सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥६३॥

(अध्याय ५)

'यह जीव शरीरको देखता है, शरीर जीवको नहीं देखता। दोनोंको कोई उनसे भी परे देखता है परन्तु ये दोनों उसे नहीं देखते। ब्रह्मासे लेकर स्थावरतक सभी पशु कहलाते हैं। सब पशुओंके लिये ही यह निदर्शन कहा है। यह मायापाशोंमें बँधा रहता है और सुख-दुःखरूपी चारा खाता है और भगवान् (मदारी) की लीलाओंका साधन है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। यह प्राणी अज्ञानी है, ईश नहीं है, सुखात्मक और दुःखात्मक है और ईशकी प्रेरणासे स्वर्ग और नरकमें जाता है।' इसलिये जीव 'पशु' है और उसका 'पति' ईश है, ब्रह्म है, इसलिये 'पशुपति' महेश्वरका एक नाम है।

लिंग-शब्दका साधारण अर्थ चिह्न वा लक्षण है। सांख्यदर्शनमें प्रकृतिको, प्रकृतिसे विकृतिको भी लिंग कहते हैं। देव-चिह्नके अर्थमें लिंग-शब्द शिवजीके ही। लिंगके लिये आता है और प्रतिमाओंको मूर्त्ति कहते हैं, कारण यह है कि औरोंका आकार मूर्त्तिमानके ध्यानके अनुसार होता है, परन्तु लिंगमें आकार या रूपका उल्लेखन नहीं है। यह चिह्नमात्र है और चिह्न भी पुरुषकी जननेन्द्रियका-सा है जिसे लिंग कहते हैं, परन्तु स्कन्दपुराणमें 'लयनाल्लिङ्गमुच्यते' कहा है अर्थात् लय या प्रलय होता है इसीसे उसे लिंग कहते हैं। प्रलयसे लिंगका क्या सम्बन्ध है?

प्रलयकी अग्निमें सभी कुछ भस्म होकर शिवलिंगमें समा जाता है। वेद-शास्त्रादि भी लिंगमें ही लीन हो जाते हैं। फिर सृष्टिके आदिमें लिंगसे ही सब-के-सब प्रकट होते हैं। अतः 'लय' से ही लिंग-शब्दका उद्भव ठीक ही है, उससे लय या प्रलय होता है और उसीमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है। यह एक संयोगकी बात है कि लिंग-शब्दके अनेक अर्थोंमें लोकप्रसिद्ध अर्थ अश्लील है। वैदिक शब्दोंका यौगिक अर्थ लेना ही समीचीन माना जाता है। यौगिक अर्थमें कोई अश्लीलता नहीं रह जाती। इसके सिवा अश्लीलता तो प्रसंगसे आती है। विषयात्मक वर्णनमें जो अश्लील और अनुचित दीखता है वही वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक वर्णनोंमें श्लील और समुचित हो जा सकता है। पशुपति और लिंग-शब्दका भी यही हाल है।

लिंगार्चनमें अश्लीलताके भावकी कल्पना परम मूर्खता, परम नास्तिकता और घोर अनभिज्ञता है।

हमारे देशमें प्रायः सभी जगहोंमें पार्थिव-पूजा प्रचलित है। परन्तु विशेष-विशेष स्थानोंमें पाषाणमय शिवलिंगकी भी स्थापना है। यह स्थावर मूर्त्तियाँ होती हैं। बाणलिंग वा सोने-चाँदीके छोटे लिंग जङ्गम कहलाते हैं। इन्हें प्राचीन-पाशुपत सम्प्रदायवाले एवं आजकलके लिंगायत सम्प्रदायवाले पूजाके व्यवहारमें लानेके लिये अपने साथ लिये फिरते हैं अथवा बाँह या गलेमें बाँधे रहते हैं।

लिंग विविध द्रव्योंके बनाये जाते हैं। गरुडपुराणमें इसका अच्छा विस्तार है। उसमेंसे हम संक्षेपसे वर्णन करते हैं।

(१) गन्धलिंग दो भाग कस्तूरी चार भाग चन्दन और तीन भाग कुंकुमसे बनाते हैं। शिवसायुज्यार्थ इसकी अर्चा की जाती है।

(२) पुष्पलिंग विविध सौरभमय फूलोंसे बनाकर पृथ्वीके आधिपत्य-लाभके लिये पूजते हैं।

(३) गोशकृल्लिंग स्वच्छ कपिलवर्णके गोबरसे बनाकर पूजनेसे ऐश्वर्य मिलता है, परन्तु जिसके लिये बनाया जाता है वह मर जाता है। मिट्टीपर गिरे गोबरका व्यवहार वर्जित है।

(४) रजोमयलिंग रजसे बनाकर पूजनेवाला विद्याधरत्व और फिर शिवसायुज्य पाता है।

(५) यवगोधूमशालिजलिंग जौ, गेहूँ, चावलके आटे-का बनाकर श्रीपुष्टि और पुत्रलाभके लिये पूजते हैं।

(६) सिताखण्डमय लिंगसे आरोग्यलाभ होता है।

(७) लवणजलिंग हरताल, त्रिकटुको लवणमें मिलाकर बनता है। इससे उत्तम प्रकारका वशीकरण होता है।

(८) तिलपिष्टोत्थलिंग अभिलाषा सिद्ध करता है। इसी तरह—

(९-१२) तुषोत्थलिंग मारणशील है, भस्ममयलिंग सर्वफलप्रद है, गुड़ोत्थलिंग प्रीति बढ़ानेवाला है और शर्करामयलिंग सुखप्रद है।

(१३-१४) वंशाङ्कुरमय लिंग वंशकर है, केशास्थिलिंग सर्वशत्रुनाशक है।

(१५-१७) द्रुमोद्भूतलिंग दारिद्र्यकर, पिष्टमय, विद्याप्रद और दधिदुग्धोद्भवलिंग कीर्ति, लक्ष्मी और सुख देता है।

(१८-२१) धान्यज धान्यप्रद, फलोत्थ फलप्रद, धात्रीफलजात मुक्तिप्रद, नवनीतज कीर्ति और सौभाग्य देता है।

(२२-२७) दूर्वाकाण्डज अपमृत्युनाशक, कर्पूरज मुक्तिप्रद, अयस्कान्तमणिज सिद्धिप्रद, मौक्तिक सौभाग्यकर, स्वर्णनिर्मित महामुक्तिप्रद, राजत भूतिवर्धक है।

(२८-३६) पित्तलज तथा कांस्यज मुक्तिद, त्रपुज, आयस और सीसकज शत्रुनाशक होते हैं। अष्टधातुज सर्व-सिद्धिप्रद, अष्टलौहजात कुष्ठनाशक, वैदूर्यज शत्रुदर्पनाशक और स्फटिकलिंग सर्वकामप्रद है।

परन्तु ताम्र, सीसक, रक्तचन्दन, शङ्ख, काँसा, लोहा इन द्रव्योंके लिंगोंकी पूजा कलियुगमें वर्जित है। पारेका शिवलिंग विहित है और महाऐश्वर्य देता है।

लिंग बनाकर उसका संस्कार करना पार्थिव लिंगोंको छोड़ और सब लिंगोंके लिये करना पड़ता है। स्वर्णपात्रमें दूधके अन्दर तीन दिनोंतक रखकर फिर 'त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्रोंसे स्नान कराकर वेदीपर पार्वतीजीकी षोडशो-पचारसे पूजा करनी उचित है। फिर पात्रसे उठाकर लिंगको तीन दिन गङ्गाजलमें रखना होता है। फिर प्राणप्रतिष्ठा करके स्थापना की जाती है।

पार्थिवलिंग एक या दो तोला मिट्टी लेकर बनाते हैं। ब्राह्मण सफेद, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीली और शूद्र काली मिट्टी लेता है। परन्तु यह जहाँ अव्यवहार्य हो, वहाँ कोई हर्ज नहीं, मिट्टी चाहे जैसी मिले।

लिंग साधारणतया अंगुष्ठप्रमाणका बनाते हैं। पाषाणादि-के लिंग मोटे और बड़े बनते हैं। लिंगसे दूनी वेदी और उसका आधा योनिपीठ करना होता है। लिंगकी लम्बाई कम होनेसे शत्रुकी वृद्धि होती है। योनिपीठ बिना या मस्तकादि अंग बिना लिंग बनाना अशुभ है। पार्थिव लिंग अपने अंगूठेके एक पोरवेभर बनाना होता है। लिंग सुलक्षण होना चाहिये। अलक्षण अमङ्गलकारी होता है।

लिंगमात्रकी पूजामें पार्वती-परमेश्वर दोनोंकी पूजा हो जाती है। लिंगके मूलमें ब्रह्मा, मध्यदेशमें त्रिलोकीनाथ विष्णु और ऊपर प्रणवाख्य महादेव स्थित हैं। वेदी महादेवी हैं और लिंग महादेव हैं। अतः एक लिंगकी पूजामें सबकी पूजा हो जाती है-(लिंगपुराण)। पारदके लिंगका सबसे अधिक माहात्म्य है। पारद-शब्दमें प विष्णु, आ कालिका, र शिव, द ब्रह्मा—इस तरह सभी मौजूद हैं। उसके बने लिंगकी पूजासे, जो जीवनमें एक बार भी की जाय, तो धन, ज्ञान, सिद्धि और ऐश्वर्य मिलते हैं।

यहाँतक तो लिंग-निर्माणकी बात हुई। परन्तु नर्मदादि नदियोंमें भी पाषाणलिंग मिलते हैं। नर्मदाका बाणलिंग भुक्ति-मुक्ति दोनों देता है। बाणलिंगकी पूजा इन्द्रादि देवोंने की थी। इसकी वेदिका बनाकर उसपर स्थापना करके पूजा करते हैं। वेदी ताँबा, स्फटिक, सोना, पत्थर, चाँदी या रूपेकी भी बनाते हैं।

परन्तु नदीसे वाणलिंग निकालकर पहले परीक्षा होती है फिर संस्कार। पहले एक बार लिंगके बराबर चावल लेकर तौले। फिर दूसरी बार उसी चावलसे तौलनेपर लिंग हलका ठहरे तो गृहस्थोंके लिये वह लिंग पूजनीय है। तीन, पाँच या सात बार तौलनेपर भी तौल बराबर निकले तो उस लिंगको जलमें फेंक दे। यदि तौलमें भारी निकले तो वह लिंग उदासीनोंके लिये पूजनीय है—(सूतसंहिता)। तौलमें कमी-बेशी ही वाणलिंगकी पहचान है। जब वाणलिंग होना निश्चित हो जाय तब संस्कार करना उचित है। संस्कारके बाद पूजा आरम्भ होती है। पहले सामान्य विधिसे गणेशादिकी पूजा होती है। फिर वाणलिंगको स्नान कराते हैं स्नान कराकर, यह ध्यान-मन्त्र—

ॐप्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं बाणाख्यं च महाप्रभम्।
कामबाणान्वितं देवं संसारदहनक्षमम्।
शृङ्गारादिरसोल्लासं बाणाख्यं परमेश्वरम्॥

—पढ़कर मानसोपचारसे तथा फिरसे ध्यानकर पूजा करनी होती है। भरसक षोडशोपचार पूजा होती है। फिर जप करके स्तवपाठ करनेका दस्तूर है। वाणलिङ्गकी पूजामें आवाहन और विसर्जन नहीं होता।

वाणलिङ्गके प्रकार बहुत हैं। विस्तारभयसे यहाँ हम उनका उल्लेख नहीं करते। हाँ, यह जानना आवश्यक है कि वाणलिङ्ग निन्द्य न हो। कर्कश होनेसे पुत्रदारादि-क्षय, चिपटा होनेसे गृहभंग, एकपार्श्वस्थित होनेसे पुत्रदारादि-धनक्षय, शिरोदेश स्फुटित होनेसे व्याधि, छिद्र होनेसे प्रवास और लिङ्गमें कर्णिका रहनेसे व्याधि होती है। यह निन्द्य लिङ्ग हैं, इनकी पूजा वर्जित है। तीक्ष्णाग्र, वक्रशीर्ष तथा त्रिकोण लिङ्ग भी वर्जित हैं। अति स्थूल, अति कृश, स्वल्प, भूषणयुक्त मोक्षार्थियोंके लिये हैं, गृहस्थोंके लिये वर्जित हैं।

मेघाभ और कपिल वर्णका लिङ्ग शुभ है, परन्तु गृहस्थ लघु वा स्थूल कपिल वर्णवालेकी पूजा न करे। भौंरेकी तरह काला लिङ्ग सपीठ हो या अपीठ, संस्कृत हो या मन्त्रसंस्काररहित भी हो तो गृहस्थ उसकी पूजा कर सकता है। वाणलिङ्ग प्रायः कँवलगट्टेकी शकलका होता है। पकी जामुन या मुरगीके अण्डेके अनुरूप भी होता है। श्वेत, नीला और शहदके रङ्गका भी होता है। यही लिङ्ग प्रशस्त हैं। इन्हें वाणलिङ्ग इसलिये कहते हैं कि वाणासुरने तपस्या करके महादेवजीसे वर पाया था कि वे पर्वतपर सर्वदा लिंगरूपमें प्रकट रहें। एक वाणलिंगकी पूजासे अनेक और लिंगोंकी पूजाका फल मिलता है।

पार्थिव-पूजा

'ॐहराय नमः' मन्त्रसे मिट्टी लेकर 'ॐमहेश्वराय नमः' मन्त्रसे अंगूठेके पोरभरका लिङ्ग बनावे। तीन भागमें बाँटे। ऊपरीको लिङ्ग, मध्यको गौरीपीठ और नीचेके अंशको वेदी कहते हैं। दहने या बायें किसी एक ही हाथसे लिंग बनावे। असमर्थ दोनों लगा सकता है। लिंग बन जाय तो उसके सिरपर नन्ही-सी मिट्टीकी गोली बनाकर रक्खी जाती है। यह वज्र है। पूजनेवाला कोई दूसरा हो तो शिवके गात्र-पर हाथ रखकर 'ॐहराय नमः' और 'ॐमहेश्वराय नमः' कहे। पूजाके समय षोडशोपचारकी सामग्रीमें बिल्वपत्र जरूरी है। माथेपर भस्म वा मिट्टीका त्रिपुण्ड्र और गलेमें रुद्राक्षकी माला जरूर होनी चाहिये। आसनशुद्धि, जलशुद्धि, गणेशादि देवताओंकी पूजा करके इसप्रकार भगवान् शङ्करका ध्यान करे—

ॐध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

यह ध्यान पढ़कर मानसोपचारसे पूजन करे, फिर वही ध्यान-पाठ करके लिङ्गके मस्तकपर फूल रक्खे। तब 'ॐपिनाकधृक्, इहागच्छ, इहागच्छ, इह तिष्ठ, इह तिष्ठ, इह सन्निधेहि, इह सन्निधेहि, इह सन्निरुद्ध्यस्व, इह सन्निरुद्ध्यस्व, अत्राधिष्ठानं कुरु, मम पूजां गृहाण।' इसी प्रकार आवाहनादि करे। आवाहनादि पाँच मुद्रा दिखाकर करते हैं। पीछे 'ॐशूलपाणे, इह सुप्रतिष्ठितो भव' मन्त्रसे लिंग-प्रतिष्ठा करे। फिर 'ॐपशुपतये नमः' मन्त्रसे तीन बार शिवके मस्तकपर जल चढ़ावे। फिर मस्तकपरका वज्र फेंककर चार अरवा चावल चढ़ावे। फिर पाद्यादि दशोपचार 'ॐ एतत् पाद्यम् ॐ नमः शिवाय नमः।' 'इदमर्घ्यम् ॐ नमः शिवाय नमः' इत्यादि क्रमसे मन्त्रके साथ करे। शिवके अर्घ्यमें केला और बेलपत्र देना होता है और स्नानके पहले मधुपर्क। इसके बाद शिवकी अष्टमूर्त्तिकी पूजा करनी होती है। गन्ध-पुष्प लेकर पूर्वसे लेकर उत्तरावर्त्ती मार्गसे आठवीं दिशा अग्निकोणपर आकर

समाप्त करना होगा। 'एते गन्धपुष्पे ॐ सर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः' (पूर्व)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः' (ईशान)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः' (उत्तर)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः' (वायव्य)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः' (पश्चिम)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः' (नैर्ऋत्य)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः' (दक्षिण)। 'एते गन्धपुष्पे ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः (अग्निकोण)। इस तरह अष्टमूर्त्तिपूजाके अनन्तर यथाशक्ति जप करे, फिर जप और पूजाका भी विसर्जन 'गुह्यातिगुह्य' इत्यादि मन्त्रोंसे करे। फिर दहने हाथका अंगूठा और तर्जनी मिलाकर उसके द्वारा बम् बम् शब्द करते हुए दहना गाल बजावे। अब अन्तमें महिम्नस्तोत्र या और कोई शिव-स्तुति पढ़ना आवश्यक है। अब प्रणाम करके दहने हाथसे अर्घ्यजलसे आत्मसमर्पण करके लिंगके मस्तकपर थोड़ा जल चढ़ावे और कृताञ्जलि हो क्षमा-प्रार्थना करे।

आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं न जानामि क्षम्यतां परमेश्वर॥

इसप्रकार क्षमा-प्रार्थना करके विसर्जन करना होता है। ईशानकोणमें जलसे एक त्रिकोणमण्डल बनाकर पीछे संहारमुद्राद्वारा एक निर्माल्यपुष्प सूँघते हुए उस त्रिकोणमण्डलके ऊपर डाल देना होता है। इस घड़ी ऐसा सोचना चाहिये कि भगवान् शङ्करने मेरे हृत्-कमलमें प्रवेश किया है। इसके बाद 'एते गन्धपुष्पे ॐ चण्डेश्वराय नमः' 'ॐ महादेव क्षमस्व' कहकर शिवको ले मण्डलके ऊपर रख देना होता है।

७-ज्योतिर्लिङ्गानि

शैवपुराणोंमें बारह ज्योतिर्लिङ्गोंका उल्लेख है। काशीधामके विश्वेश्वरलिंग इन सबमें प्रधान हैं। इनका नाम सबसे पहले लिया जाता है। औरङ्गजेबके समयमें मुसलमानोंके उपद्रवसे वह ज्योतिर्लिङ्ग ज्ञानवापीके भीतर सुरक्षित रहा। बदरिकाश्रममें केदारेश्वर दूसरे हैं। कृष्णाके तट श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन तीसरे हैं। वहीं भीमशङ्कर चौथे हैं। काश्मीर-प्रदेशके ओंकारमें अमरेश्वर या अमरनाथ पाँचवें हैं। उज्जयिनीमें महाकालेश्वर छठे हैं। महाकालेश्वरकी मूर्त्तिको अलतमश बादशाहने शक ११५८ में तोड़ डाला था। सूरत या सौराष्ट्रदेशमें सोमनाथके मन्दिरको संवत् १०८१ में महमूद गजनवीने नष्ट किया और लूट ले गया। यह सातवें हैं। चिताभूम झारखण्डमें वैद्यनाथजी आठवें हैं। औढ़देशमें नागनाथ नवें हैं। शिवालयमें घूश्मेश (या शैवालमें सुषमेश) दसवें हैं। ब्रह्मगिरिमें त्र्यम्बकनाथ ग्यारहवें हैं। सेतुबन्धमें रामेश्वर बारहवें हैं। शिवपुराण उत्तरखण्डके तीसरे अध्यायमें उपर्युक्त नाम दिये हुए हैं। परन्तु 'द्वादश ज्योतिर्लिङ्गस्तोत्र' प्रसिद्ध है। उसमें कावेरी और नर्मदासङ्गमपर मान्धातापुरमें ओंकारेश्वर नाम लिङ्गको चौथा बताया है। सह्याद्रिकी चोटीपर गोदावरीके किनारे त्र्यम्बकनाथका पता बताया है। भीमशङ्करका ठीक पता वहाँ भी नहीं लिखते। इलापुरीमें घुश्मेश्वरकी जगह घृष्णेश्वरको बारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग बताया है। इन स्थानोंका ठीक पता लगाना स्वतन्त्र विषय है।

लिंगसम्बन्धी साहित्य इतना विशाल है कि उसका सार भी यहाँ इस लेखमें सम्भव नहीं है, परन्तु जिन बातोंके जाननेका शिव-भक्तोंको साधारणतया कुतूहल रहता है संक्षेपमें उन विषयोंकी थोड़ी-सी जानकारी पिछले पृष्ठोंसे यदि पाठकोंको हो जाय तो इन पंक्तियोंका लेखक अपनेको कृतकृत्य समझेगा। यदि यह कृतकृत्यता उसे न भी प्राप्त हुई तो इसमें तो सन्देह नहीं कि जगद्गुरु जगदीश्वर मदीयगुरु महेश्वर भगवान् शङ्करके गुण-कीर्त्तनका उसे अलभ्य लाभ और कल्याणके साथ-ही-साथ सहृदय पाठकोंका और लेखकका परम कल्याण हुआ। एवमस्तु।

शङ्कर

'शङ्कर' नाम सुधासम है भव-भूति भरैं भव-भावन शङ्कर[1]।
शङ्कर-हेतु तजैं यति धामहु शङ्कर पावत मार अशङ्कर[2]॥
शङ्कर ही जन-शङ्कर हैं पुनि काल भयंकर[3] लोकवशङ्कर[4]।
शङ्करको सब देव भजैं 'सरयू' कवि-किङ्करके[5] शिवशङ्कर॥

—सरयूप्रसाद पाण्डेय 'द्विजेन्द्र'

१-कल्याण, २-अमङ्गल, ३-कालके भी काल, ४-संसारको वशमें करनेवाले, ५-सेवक।

शिव-तत्त्व

(लेखक—प्रो० पं० श्रीसकलनारायणजी शर्मा)

जगत्-स्रष्टा परमात्माका नाम शिव है, इसका अर्थ कल्याण करनेवाला है। जब कल्याण करनेवाले दो पदार्थोंका विचार करते हैं तब वही शिवतर हो जाता है। सारे ब्रह्माण्डमें यही सबसे अधिक सुख-शान्तिदेनेवाला है। इस कारणसे ऋषिलोग उसे शिवतम कहते हैं—

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।

'ॐ मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव'

(य० वे०)

ईश्वरका एक नाम रुद्र है क्योंकि दीन-दुखियोंके दुःख-पर आँसू बहाता है तथा पापियोंको रुलाता है। उक्त शब्द-में 'रुद्' धातु है जिसका अर्थ रोना है। वह मुक्तिका स्वामी है।

'अमृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।'

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः
क्षीणे क्लेशे जन्ममृत्युप्रहानिः।

(तै० उ०)

कोई उसकी इच्छामें विघ्न नहीं उपस्थित कर सकता। वही उत्पन्न करता है, पालन करता है तथा संहारमें प्रवृत्त होता है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनाँस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥

(तै० उ०)

कर्म-फल देनेके लिये सृष्टि होती है। उसमें जीव नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं। उससे सबका छुटकारा केवल प्रलयमें होता है। वह माता-पिताके समान सबको सुला देता है। यह परमात्माकी बड़ी कृपा है। कोई-कोई इस भावसे भी उसे शिव—सुलानेवाला कहते हैं। उस समय किसीको तनिक कष्ट नहीं होता। वह सबके दुःखोंको हर लेता है अतएव हर है, दुःखोंका हरण करनेवाला है। जिनको इस करुणाका ज्ञान नहीं है वे इस दुःख-मोचन कार्यको तमोगुण कहते हैं। उनकी बुद्धिके लिये एक कविकी उक्ति है—

'विदन्ति मूढा न सुरूपमव्ययम्।'

वह कर्पूर-गौर है, सभी सत्त्वगुण उसीसे प्रकट होते हैं, सत्त्वगुण स्वच्छ प्रकाशमय है। उसमें जो दोषराहित्य है, वही गौरवर्णता है। कुछ लोग कहते हैं कि दयालु परमात्माके रूप-रङ्ग हिन्दू-धर्म-ग्रन्थोंमें विचित्र क्यों लिखे हुए हैं। विद्वान् लोग उनका यह तात्पर्य बताते हैं।

वह पापियोंको आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक शूल—पीडा देता है इसीसे वह त्रिशूलधारी है। लोहेके त्रिशूलसे कोई प्रयोजन नहीं—

'शूलत्रयं संवितरन् दुरात्मने
त्रिशूलधारिन् नियमेन शोभसे॥'

(शैवसिद्धान्तसार)

प्रलयकालमें उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं रहता। ब्रह्माण्ड श्मशान हो जाता है, उसकी भस्म और रुण्ड-मुण्डमें वही व्यापक होता है, अतएव 'चिताभस्मालेपी' और 'रुण्ड-मुण्डधारी' कहलाता है न कि वह अघोरियोंके समान चिता-निवासी है।

कल्पान्तकाले प्रलुठत्कपाले
समग्रलोके विपुलश्मशाने।
त्वमेकदेवोऽसि तदावशिष्ट-
श्चिताश्रयो भूतिधरः कपाली॥

(शै० सि० सा०)

वह भूत, भविष्यत्, वर्तमान—तीनों कालोंकी बातोंको जानता है इसीसे त्रिनयन कहलाता है। जो लोग समझते हैं कि उसके तीन आँखें हैं वे भूलते हैं।

वृष-शब्दका अर्थ धर्म है। वह धर्मारूढ है तथा धर्मा-त्माओंके हृदयमें निवास करता है इसीसे वृषपर चढ़नेवाला प्रसिद्ध है, बैलसे कोई तात्पर्य नहीं—

वृषग्रहाणां वृषरक्षको विभो
वृषं समास्थाय जगन्ति रक्षसि॥

(स्फुट)

जगत्में जो लूले-लँगड़े, काने-अन्धे अथवा ऊँची नाक-वाले हैं वे भी उसकी भक्ति करते हैं तो वह उन्हें अपना लेता है क्योंकि सब भूतोंका—प्राणियोंका स्वामी है। जो उसे प्रेतपति मानते हैं वे इस तत्त्वको नहीं जानते—

अन्धाश्च काणा अथवाऽवटीटा
भवन्तु खञ्जा उत वा सुरूपाः।
ये प्राणिनः पादपरागलुब्धा
भूतेश्वरस्त्वाच्छरणं त्वमेव॥

साँपको दो जीभें होती हैं। चुगलखोर भी द्विजिह्व हैं। उन्हें भी वह गर्दनका हार बना लेता है। पिता अपने बुरे लड़कोंको भी अपनेमें लिपटाये रखता है। सर्प-मालाका यही भाव शास्त्रसम्मत है। पाप और विषमें भेद नहीं। वह सबके दोषोंको—विषोंको पी जाता है—क्षमा कर देता है। इसीसे गरल-पान करनेवाला समझा जाता है।

परमात्मा अपनेको पुरुष और स्त्री दो रूपोंमें प्रकट करता है जिससे कि सांसारिक जीवोंको माता-पिता दोनोंके सुख प्राप्त हों। उन दोनोंका आपसमें कोई लौकिक सम्बन्ध नहीं होता। वे भाई-बहिनके समान परस्पर पवित्र रहते हैं। जगत्के कल्याणके लिये दो रूपोंमें ध्यात होते हैं—

'स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः'
'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती'
(ऋग्वेद)

शिवजीके लिये वेदोंमें 'त्र्यम्बक' शब्द व्यवहृत होता है। षड्विंशब्राह्मणमें 'त्र्यम्बकं यजामहे' की व्याख्याके अवसरपर कहा है—'स्त्री अम्बा स्वसा यस्य' अर्थात् ईश्वर—शिवजी स्त्री-पुरुष दो रूपोंमें हैं, जैसे बहिन-भाई होते हैं। सायणाचार्यने 'पृषोदरादि'के सहारे 'स्त्री' शब्दके सकारका लोप किया है। वेदमें 'त्र्यम्बक' का अर्थ त्रिलोचन नहीं बल्कि उमासहाय शिव है।

लोग कहते हैं कि पार्वतीजीकी उत्पत्ति पर्वत और मेनकासे हुई है। वैदिक कोषका नाम निघण्टु है। उसमें 'पर्वत'का अर्थ आकाश और 'मेनका'का अर्थ बुद्धि लिखा हुआ है। पार्वतीजी आकाशमें सब स्थलोंमें व्याप्त हैं और बुद्धिसे जानी जाती हैं। यही उनकी उत्पत्तिका मतलब है। श्रीशङ्कराचार्यजीने तलवकार-उपनिषद्की व्याख्यामें 'उमा' शब्दका अर्थ ब्रह्मविद्या किया है। उनके मनमें शिव-पार्वती दोनों ज्ञान-स्वरूप सिद्ध होते हैं। हमारी समझमें वे माता-पिता हैं। लड़कोंके लिये माता-पिताकी गोदसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। हम उसीके प्रार्थी हैं, वही परमपद है—

'तद्धाम परमं मम'

जो 'शिव' ये अक्षर उच्चारण करते हैं उनके घरमें सब मंगल होते हैं—

सुमङ्गलं तस्य गृहे विराजते
शिवेति वर्णैर्भुवि यो हि भाषते।

श्रीशिव

(लेखक—पं० श्रीहनुमान् शर्मा)

(१)

ल्याणकारी कल्याणके कल्याणेच्छु सम्पादकोंने कल्याणजीवी पाठकोंकी कल्याणी कामनासे प्रेरित होकर कल्याणके प्रस्तुत विशेषाङ्कको 'कल्याणाङ्क' न कहकर 'श्रीशिवाङ्क' कहनेमें ही कल्याणकी कल्पना की है। किन्तु स्थूल दृष्टिवालोंको शिवके लोकप्रसिद्ध वेश-भूषादिमें कल्याण नहीं दीखता। ठीक भी है—

नंगा शरीर, सिरपर जटा, गलेमें मुण्डमाल, श्मशानमें वास, राखसे रँगे हुए और संहारमें तत्पर कैसा कल्याण करते हैं! चरित-चर्चामें भी कई घटनाएँ ऐसी हैं जिनमें अमंगल हुआ है। उदाहरणमें दक्षका यज्ञ विध्वंसकर उसका अमंगल किया। इन्द्रादिको हर्षित करनेवाले सृष्टि-बीज कामदेवको भस्मकर रतिको रुलाया और सृष्टिका कई बार संहार करके ब्रह्माको निराश किया।

ऐसी अवस्थामें शिवको 'कल्याण' कहना विलक्षण कल्पना है। किन्तु तत्त्वज्ञ शिव-भक्त शिवको शिव ही नहीं, सदाशिव कहते हैं। और इसीलिये 'शिवाङ्क'में शिव-सायुज्य मिलनेका सफल प्रयत्न किया गया है।

(२)

पुराणादिके पढ़नेसे प्रतीत होता है कि सृष्टिके बनाने, बढ़ाने और विनाश करनेवाले त्रिदेव हैं। उनमें ब्रह्मा उसको बनाते, विष्णु उसको बढ़ाते और शिव उसका

संहार करते हैं। ऐसा कई बार हुआ है और आगे भी होगा। विशेषता यह है कि ब्रह्मा कई बार प्रकट होते, सृष्टि रचते और शास्त्र बनाते हैं और विष्णु यथावकाश सोते हैं। किन्तु शिव और शक्ति सोते नहीं, सदा उपस्थित रहते हैं। उनको कब विश्राम मिलता है, यह उनके प्रणेता (परमेश्वर) की इच्छापर है।

शास्त्रोंमें शिवके अनेकों नाम लिखे हैं। वे सब गुण-कर्मादिके अनुसार निर्दिष्ट किये गये हैं। अत्यन्त प्राचीन कालमें शिवका 'रुद्र' नाम था। प्रलयकारी, भयकारी, महाक्रोधी अथवा संहारक आदि गुणोंको देखकर ही इस नामकी कल्पना की गयी थी। वैदिककालके देव, दानव, महर्षि या मनुष्य मानते थे कि 'प्रलयकालके अवसरमें जो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्निदाह, प्रज्वलन, तड़ित्प्रवाह अथवा वज्रपातादि होते हैं वे सब रुद्रके ही प्रतिरूप या प्रभाव हैं। अथवा स्वयं रुद्र ही वायु, वह्नि या इन्द्रादिके द्वारा प्रलय करते हैं।

ऋग्, यजु और अथर्ववेदमें शिवके ईश, ईश्वर, ईशान, रुद्र, कपर्दी, शितकण्ठ, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वभूतेश आदि नाम निर्दिष्ट किये गये हैं। साथ ही उनको भयकारी, भयहारी, शान्तिवर्द्धक, महौषधिज्ञ, ज्ञानप्रद, स्वर्णसन्निभ और चमकती हुई चाँदीके पहाड़-जैसा माना है। और उनसे सुख-सम्पदा, सन्तान तथा सौभाग्यादि प्राप्त होनेकी प्रार्थना की है।

अकेले ऋग्वेदकी ६०-७० ऋचाओंमें शिवके नाम, काम, प्रभाव और स्वरूपादिका वर्णन है। यजुर्वेदमें क्रोधित शिवको शान्त करनेके लिये शतरुद्रका स्वतन्त्र विधान किया है। अथर्ववेदमें इनको 'सहस्रचक्षु' 'तिग्मायुध' 'वज्रायुध' और 'विद्युच्छक्ति' आदि बतलाया है और सामवेदमें इनका 'अग्नि' स्वरूप स्वीकार किया है।

कैवल्य, अथर्व, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर और नारायण आदि उपनिषदोंमें एवं आश्वलायनादि गृह्यसूत्रोंमें शिवको त्र्यम्बक, त्रिलोचन, त्रिपुरहन्ता, ताण्डवनर्तक, पञ्चवक्त्र, कृत्तिवास, अष्टमूर्त्ति, व्याघ्रकृत्ति, वृषभध्वज, वज्रहस्त, भिषक्तम, संगीतज्ञ, पशुपति, औषधविधिज्ञ, आरोग्यकारक, वंशवर्धक और नीलकण्ठ कहा है और इन सबकी सार्थकता तथा तथ्य आदि भी बतलाये हैं।

शिव, वामन और स्कन्द आदि पुराणोंमें तथा वाल्मीकीय रामायण, महाभारत और कुमारसम्भव आदि अनेकों ग्रन्थोंमें शिवके लोकोत्तर गुणोंका विस्तारके साथ वर्णन है। उनमें उनके अनेकों चरित्र, अनेकों आख्यान या अनेकों कथाएँ लिखी हैं। और उनको परमेश्वर, सर्वेश्वर या अजन्मा माना है। प्रसंग-वश यहाँ शिवके कुछ नाम, काम और चरित्रोंका दिग्दर्शन कराया जाता है।

(३)

विद्युत् (बिजली) शिवका प्रहरण (प्रहार करनेका साधन) है। त्रिपुर और मदनका दहन इसीसे किया था। शिवके तीसरे नेत्रसे विद्युत्प्रवाह निर्गत होता है। अजेय शत्रुओंका संहार करना हो तभी उस नेत्रको खोलते हैं। मानो वर्तमान समयके विज्ञानकी विद्युत्-बैटरी तीसरा नेत्र है। संहारकारी अवसरोंमें उक्त बिजलीको शूलाग्रमें नियुक्त करके भी कई बार प्रहार किया है। शिवास्त्र और रुद्रास्त्र उसीके रूपान्तर हैं।

शिव अपने सेवकोंपर न तो कभी क्रोध करते हैं और न उनकी हिंसा। वह सदैव मङ्गलकर और कृपालु रहते हैं। इसीसे 'शिव' नाम सार्थक हो सकता है। शत्रुनाशके लिये सदैव धनुष चढ़ाये रहनेसे 'पिनाकी' और ब्रह्माके मस्तकको करमें धारण करनेसे आप 'कपाली' कहलाते हैं। ब्रह्माके अनुचित व्यवहारको देखकर तत्काल सिर काट लिया और कई दिनोंतक उसे करमें लिये रहे।

आबालवृद्धको आरोग्य रखने, पशुओंतकको तन्दुरुस्त करने और प्रत्येक प्रकारकी महौषधियोंका ज्ञान होनेसे आप 'वैद्यनाथ' कहाते हैं। धन-पुत्र और सुख-सौभाग्यादि देनेसे ही इनका 'सदाशिव' नाम विख्यात हुआ है। सदैव अचल अटल या स्थिर रहनेसे 'स्थाणु' और शीघ्र प्रसन्न होनेसे 'आशुतोष' कहलाते हैं। और अम्बिका अथवा पार्वतीके पति होनेसे आपने 'अम्बिकेश्वर' नाम पाया है।

एक बार परब्रह्मने स्वयं अलक्षित रहकर देवताओंको विजयी किया था। इससे देवता गर्वित हुए कि हम सबको जीत सकते हैं। परब्रह्मने उनका घमण्ड दूर करनेके लिये हाथमें एक तृण लेकर अग्निसे कहा कि इसे जलाओ, वह न जला सके। वरुण (जल) से कहा इसे बहाओ, वह न बहा सके और वायुसे कहा इसे उड़ाओ, किन्तु वह न उड़ा सके। अन्तमें इन्द्र आये तब परब्रह्म अन्तर्धान हो गये और सुशोभना स्वर्णवर्णा 'अम्बिका'ने इनको दर्शन दिये।

अम्बिका ब्रह्मविद्या हैं। वे ही कात्यायनी, गौरी, पार्वती और भवानी आदि भी कहलाती हैं। भगवान् रुद्र अग्निस्वरूप

हैं, यह पहले कहा जा चुका है। शास्त्रमें अग्निकी सात जिह्वाएँ बतलायी हैं। वे सब शिवाके नामोंमें भी परिणत होती हैं। 'काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी, विश्वरुची'—ये सब नाम अग्निवर्णा दुर्गाके भी हैं। जिस भाँति शिव अग्निवर्ण माने गये हैं उसी भाँति शिवा भी स्वयं अग्निस्वरूपा हैं। अतएव—

अग्निवर्ण रुद्रके अग्निवर्णा अम्बिका, कल्याणकारी शिवके कल्याणिनी पार्वती और देवाधिदेव महादेवके देव्यादि-पूज्या महादेवी दुर्गा पत्नीरूपमें प्रतिष्ठित हैं। इससे विदित होता है कि शिवने जैसा स्वरूप धारण किया है—शक्ति भी तद्रूपमें ही अवतरित हुई हैं। उमा, कात्यायनी, गौरी, काली, हैमवती, ईश्वरी, शिवा, भवानी, रुद्राणी, शर्वाणी, सर्वमङ्गला—ये सब शक्तिके ही रूपान्तर हैं।

(४)

वास्तवमें जिसप्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक हैं उसी प्रकार ब्राह्मी, वैष्णवी और माहेश्वरी भी एक हैं। अपने-अपने प्रसङ्ग या प्रयोजनवश इनको भिन्न-भिन्न मानते हैं अथवा कार्य और अवसरके अनुसार ये सब यथासमय भिन्न-भिन्न रूप धारणकर प्रयोग सिद्ध करती हैं।

इस विषयमें एक बार शिवने विष्णुसे पूछा था कि हम सब एक होते हुए भी अलग-अलग क्यों हैं? इसपर विष्णुने उत्तर दिया कि—'संसारमें जिस समय कुछ भी नहीं रहता उस समय केवल परब्रह्म या उनका काल-नामक नित्यस्वरूप रहता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये उसी परब्रह्मके रूप हैं और ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी उस नित्य-स्वरूपा (प्रकृति) अथवा शक्तिके रूपान्तर हैं।

जब स्रष्टाको सृष्टि रचनेकी इच्छा होती है तब प्रकृतिको विक्षोभित करके अपने त्रिगुणात्म अखण्ड शरीरको तीन भागोंमें बाँटकर ऊपरके भागको चतुर्मुख, चतुर्भुज, रक्तवर्ण और कमलसन्निभ रूपमें परिणत करते हैं। वही 'ब्रह्मा' हैं। मध्य-भागको एकमुख, चतुर्भुज, श्यामवर्ण और शंख, चक्र, गदाधारीके रूपमें परिणत करते हैं। वही 'विष्णु' हैं। और अधोभागको पञ्चमुख-चतुर्भुज और स्फटिकसन्निभ शुक्लरूपमें परिणत करते हैं। वही 'शिव' हैं। इन तीनोंमें उत्पत्ति, प्रवृत्ति और निवृत्तिकी शक्ति भी युक्त कर देते हैं जिससे ये अपने-अपने कर्त्तव्य-पालनमें परायण हो जाते हैं और उससे विकास, वृद्धि, विनाश सदैव होते रहते हैं।

शिवके उपर्युक्त नामोंमें एक नाम 'सर्वभूतेश' भी आया है। और सर्वेश, सर्वशक्तिमान् या सृष्टिसंहारक हैं ही। इन नामोंके तथ्यपर दृष्टि दी जाय तो सर्वभूतेशका अर्थ पञ्चमहाभूत (पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश) के अधिपति या उनसे यथारुचि काम करानेवाला भी हो सकता है। यह स्पष्ट है कि संसारके प्रत्येक प्राणी और पदार्थ पञ्च-महाभूतोंसे ही प्रकट होते हैं और उनका यथायोग्य योग होता रहनेसे ही वे बढ़ते और जीवित रह सकते हैं। कदाचित् कुपित भूत बिगड़ जायँ तो संसारके प्रत्येक प्राणी और पदार्थका सर्वनाश हो सकता है। किन्तु बिगड़ना भूतेशकी इच्छापर है। यही कारण है कि शिव 'सर्वभूतेश' होनेसे ही परमात्मा माने गये हैं, इसी प्रकार शिवाके नामोंमें भी एक नाम 'स्फुलिङ्गिनी' है।

'स्फुलिङ्ग' का असली स्वरूप प्रज्वलित अग्निकी ज्वालामय शिखाओंके साथ चमक-दमकसे उठती या उड़ती हुई चिनगारियोंके देखनेसे प्रतीत होता है अथवा वेगवान् बिजलीके महाप्रवाहमें किसी प्रकारका अवरोध आनेपर जब वह क्रोधित शक्तिकी तरह तड़कती-भड़कती और घोर नाद करती है, उस समय भी स्फुलिंगके स्वरूप-का आभास होता है। इसीलिये शिवके सम्बन्धमें कहा गया है कि—'वह चाहें तो चराचर सृष्टिका क्षणभरमें नाश कर सकते हैं।' अस्तु।

उपर्युक्त विवरणसे विज्ञ पाठकोंको विदित हो सकता है कि—'शिव क्या हैं, उनकी शक्ति कैसी है, संसारका सर्वनाश या अमिट कल्याण करनेमें ये कहाँतक समर्थ हैं, और प्राचीनकालमें इनका किस रूपमें और किस सीमातक प्रभाव फैला हुआ था।'

(५)

यहाँ इस बातके विचारकी विशेष आवश्यकता है कि 'शिव जब अग्निमय, वायुमय या हिममय आदि हैं तो फिर पुराणोक्त कथाओंमें इनके मानवशरीरधारी-जैसे चरित्रोंका वर्णन किसप्रकार किया है? इसके लिये यह ध्यान रहना चाहिये कि प्रथम तो सर्वसमर्थ सभी कुछ कर सकते हैं। जिनमें संसारके बनाने या बिगाड़नेकी सामर्थ्य है वे स्वयं संसारी होकर भी सांसारिक व्यवहार बना सकते हैं और दूसरे किसी अप्रकट रूपवाले देव, देवी या उपास्यकी उपासना की जाय तो सर्वसाधारण उसको किस रूपमें मानकर या उसके किस आधारको लेकर उसकी पूजा, उपासना या भक्ति कर सकते हैं?'

यह स्पष्ट ही है कि 'विश्वास ही फल देता है' और प्रत्येक देवभक्त अपने इष्टदेवसे अभीष्ट-सिद्धिके विश्वासपर

ही उसकी आराधना करते हैं। ऐसी अवस्थामें शिव-भक्तोंके लिये पुराणोंमें उनके मानवशरीरधारियों-जैसे नानाविध स्वरूपोंका वर्णन होना अत्यावश्यक ही है और उनके चारु चरित्रोंको पढ़ने, देखने या सुननेसे ही उसकी सेवा, पूजा या उपासनामें प्रवृत्ति हो सकती है।

पुराणोंमें शिवके अनेक चरित्र वर्णन किये गये हैं और उनके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ हैं, जिनसे शिवतत्त्वका ज्ञान होता है और उनमें भक्ति, प्रीति या अनुराग बढ़ता है। यह उसीका प्रभाव है कि भारतमें छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े असंख्य शिव-मन्दिर हैं और उनमें अगणित मनुष्य पूजा, उपासना या स्तोत्रपाठादि करते हैं। यदि शिव-मन्दिरोंकी गणना की जाय तो उनकी संख्या लाखोंपर और उनके उपासकोंकी संख्या करोड़ोंपर पहुँच सकती है।

अति क्षुद्र बस्ती या छोटी-सी ढानीमें भी गजभरके चबूतरेपर शिव-मूर्त्ति स्थापित देखी जाती है और उनकी उसी भक्ति-भाव या कामनासे पूजा होती है जिससे रामेश्वर, विश्वेश्वर, सोमेश्वर या तारकेश्वर आदिकी होती है। अन्तर यही है कि वहाँ विशाल मन्दिरोंके भव्य आयोजनोंसे हजारों-लाखों उपासक उपस्थित होते हैं और यहाँ संकीर्ण मन्दिरकी मध्यगत मूर्त्तिको एक, दो, दस या सौ-पचास स्त्री-पुरुष पूजते हैं। जो फल सोमेश्वर या विश्वेश्वर देते हैं वही फल हमारे मालेश्वर, जागेश्वर या कामपूर्णेश्वर देते हैं। प्रधानता है भाव, भक्ति और विश्वासकी और आवश्यकता है एकान्त-वास या चित्त-संलग्नताकी। अस्तु।

(६)

पुराणोंके गूढ़ाशयगर्भित स्थलोंको साधारण मनुष्य सहज ही नहीं समझते। साथ ही विज्ञानभित्तिपर आरूढ़ किये हुए वर्णन भी वे नहीं समझ सकते। अधिकांश बातोंको सुनकर वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं। यथा—'हिन्दू शिवलिङ्गका पूजन करते हैं और योनिमें उसकी स्थापना की जाती है।' यह विषय गहन है, वे जान नहीं सकते। लिङ्गोपासकोंके लिये यहाँ इसका किञ्चित् दिग्दर्शन हो जाना अच्छा है।

(१) किसी प्रकारके चिह्न या स्वरूपका नाम भी 'लिङ्ग' होता है। पञ्चभूतात्मक, स्थावरजंगमात्मक या सृष्टिरूपात्मक शिवका क्या स्वरूप होना चाहिये ? इसके समाधानार्थ शिवस्वरूपको 'लिङ्ग' रूपमें परिणत किया है। लिङ्ग कैसा होना चाहिये यह लिङ्गपुराण और लिङ्गार्चन-तन्त्र आदिमें लिखा है। (२) सृष्टिसंहारके बाद सम्पूर्ण जगत्-पिण्ड अण्डाकृतिमें हो जाता है। और उसी अण्डसे सृष्टि विकसित होती है। विनाश और विकासमें शिवका प्राधान्य या रूपयोग है ही। अतः अण्डाकृति 'शिवलिङ्ग' (शिवचिह्न) सबके लिये हितकर एवं पूजनीय है।

(३) शैवलोग सृष्ट्युत्पादनमें लिङ्गको प्रधान मानते हैं। उनका कथन है कि प्रकृति और पुरुषके सहयोगसे ही सृष्टि आरम्भ होती है। ठीक ही है—मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और कीट-पतंगादिमें भी सहवासजनक सृष्टिका विधान देखा जाता है। प्रकृति और पुरुष शिव और शक्ति हैं। (४) स्कन्दपुराणमें आकाशको लिङ्ग और पृथिवीको पीठ माना है। यही सब देवताओंका आलय है और इसीमें सबका लय होता है। इसीलिये इसे लिङ्ग कहते हैं। (५) लिङ्गपुराणमें दो प्रकारका लिङ्ग बतलाया है। अलिङ्ग (बिना चिह्नवाले) शिवसे लिङ्ग (चिह्नवान्) शिवकी उत्पत्ति हुई है। उसमें शिव लिङ्गी और शिवा लिङ्ग माने गये हैं।

(६) पद्मपुराणमें शिव-शक्तिको सहवासमें अवकाश न मिलनेसे शुक्राचार्यने शाप दिया है कि तुम योनिस्थ लिंगके रूपमें पूजित हो सकोगे। (७) शिवपुराणमें लिखा है कि एक बार शिव दिगम्बर होकर मुनि-पत्नियोंके समीप उपस्थित हो गये। ऋषियोंने शाप दिया कि 'तुम्हारा लिङ्ग कट जाय'। ऐसा ही हुआ, किन्तु वह पड़ते ही प्रज्वलित हो गया जिसके आतपसे संसार भयभीत हो गया। अन्तमें शिवाने उसे योनिमें स्थापित कर लिया, तबसे उसी रूपमें पूजित होता है।

(८) अन्यत्र उसी पुराणमें यह भी लिखा है कि एक बार ब्रह्मा और विष्णु दोनों आपसमें अपनेको बड़ा बताने लगे। उनके बड़ेपनको प्रत्यक्ष करनेके लिये वहाँ शिवलिङ्ग उपस्थित हुआ। वे दोनों उसको नीचे-ऊपरसे नापने लगे किन्तु किसीको भी उसका थाह नहीं आया, तब वे स्वतः शान्त हो गये। जो कुछ भी हो, लिङ्गार्चन सबके लिये हितकर और आवश्यक बतलाया गया है और सर्वापेक्षा लिङ्गार्चनका महाफल लिखा है। यही कारण है कि भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी येन केन प्रकारेण शिव-लिङ्ग-पूजनका प्रचार पाया जाता है।

चीनमें 'हुवेङ्-हिफुह', ग्रीकमें 'फालास', रोममें 'प्रियासस' और मक्केमें 'मक्केश्वर' के नामसे शिवलिङ्गका पूजन

होता है। इनके सिवा विसमिसके सर्किसमें, इटालीके मन्दिरोंमें, टैलोसके गिरजामें तथा बुरजोके धर्म-मन्दिरोंमें अब भी शिवलिङ्ग मौजूद हैं। बिड़ला बन्धुओंने विलायतमें लण्डनेश्वरकी स्थापना की ही है। अनेक जगह अति विशाल या प्रलम्ब शिवलिङ्ग भी देखे गये हैं। चीनी परिव्राजक ह्वेनसांगने काशीमें १०० हाथ लम्बा 'ताँबेका शिवलिङ्ग' देखा था। अब वह नहीं मालूम होता। ग्रीकलोग विकसदेवके साथमें १२० हाथ लम्बा शिवलिङ्ग ले जाते थे और सीरिया-प्रदेश तथा बाबिलन-राज्योंमें ३०० हाथ लम्बा शिवलिङ्ग था। अस्तु।

भारतवर्षीय शिवलिङ्गोंमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग सबसे विशेष विख्यात और सुपूजित हैं। शिवपुराणमें लिखा है कि यों तो मैं (शिव) सर्वव्यापी हूँ किन्तु द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें मेरा विशेषांश विद्यमान है।

(७)

शिव-मन्दिरोंमें पाषाण-निर्मित शिवलिंगोंकी अपेक्षा बाणलिंगोंकी विशेषता है। अधिकांश उपासक मृण्मय शिवलिंग अथवा बाणलिंगकी स्वतन्त्र सेवा भी करते हैं। शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके शिवलिंग-निर्माणका विधान, उनकी पूजाविधि और तल्लब्ध विविध फल भी लिखे हैं।

(१) 'कस्तूरी' आदिसे निर्माण किये हुए शिवलिंगका यथाविधि पूजन करनेसे शिव-सायुज्यका लाभ होता है। (२) 'पुष्पमय' लिंगका पूजन करनेसे भूम्याधिपत्य प्राप्त होता है। (३) 'गो-शकृत्' (गोबर) का लिंग पूजनेसे ऐश्वर्यलाभ और जिसके लिये किया जाय उसकी मृत्यु होती है। गोबर अधर लिया जाय, पृथिवीपर न गिरे। (४) 'रजोमय' लिंग पूजनेसे विद्या धारण होती है। (५) 'धान्य'—जौ, गेहूँ और चावल आदिके चूनसे बने हुए लिंगको पूजनेसे स्त्री, पुत्र और धन मिलता है। और (६) 'सिता' (मिश्री) के लिंगका पूजन करनेसे आरोग्य-लाभ होता है। इसी प्रकार (७) 'लवण' लिंगसे सौभाग्य, (८) 'पार्थिव' से कार्यसिद्धि, (९) 'भसमय' से सर्वफल, (१०) 'गुड़लिंग' से प्रीतिवृद्धि, (११) 'वंशांकुरनिर्मित' लिंगसे वंशवृद्धि, (१२) 'केशास्थि' निर्मित लिंगसे शत्रुनाश, (१३) 'द्रुमोद्भूत' से दारिद्र्य, (१४) 'दुग्धोद्भव' से कीर्ति, लक्ष्मी, और सुख, (१५) 'फलोत्थ' से फललाभ, (१६) 'धात्रीफल' से मुक्ति-लाभ, (१७) 'नवनीत' निर्मितसे कीर्ति तथा सौभाग्य, (१८) 'कर्पूर' जनितसे मुक्तिलाभ, (१९) 'स्वर्णमय' से महामुक्ति, (२०) 'रजत' से विभूति, (२१) 'कांस्य' तथा पित्तलमयसे सामान्य मोक्ष, (२२) 'सीसकादि' से शत्रुनाश, (२३) 'अष्टधातुज' से सर्वसिद्धि, (२४) 'मणिजात' से अभिमाननाश और (२५) 'पारद' निर्मितसे महाऐश्वर्य प्राप्त होता है। स्मरण रहे कि लिंग-निर्माण-विधि और उसकी पूजाविधि सम्यक् प्रकारसे जानकर फिर सकाम शिव-पूजन करना चाहिये। उसका संक्षिप्त विधान यह है—

ब्राह्मण सफेद मिट्टीको, क्षत्रिय लाल मिट्टीको, वैश्य पीली मिट्टीको और शूद्र काली मिट्टीको भिगोकर एक या दो तोला लेकर उसका अंगुष्ठप्रमाण शिवलिंग और उससे दूनी बेदी तथा उससे आधी योनिपीठ (जलहरी) बनावे। पाषाणादिका शिवलिंग मोटा और रत्न अथवा धातुओंका यथाशक्ति इच्छानुसार मोटा या छोटा भी हो सकता है। लिंग सुडौल, अव्रण और सुलक्षण होना चाहिये। अलक्षण लिंग अच्छा नहीं। पीठहीन और अंगुष्ठपर्व-प्रमाणसे छोटा-बड़ा भी शुभ नहीं। ऐसे लिंग त्याग देने चाहिये।

लिंगार्चनमें 'बाणलिंग' का विशेष महत्त्व माना गया है। वह सब प्रकारसे शुभ, सौम्य, सुलक्षण और श्रेयस्कर होता है। प्रतिष्ठामें भी पाषाणलिंगकी अपेक्षा बाणलिंगका स्थापन सुगम है। 'नर्मदाके सभी कंकर शङ्कर' माने गये हैं। उनमें मनोरम मूर्त्तिको लेकर चावलोंसे तौलना चाहिये। तीन बार तौलनेपर भी चावल बढ़ते ही रहें तो वह मूर्त्ति वृद्धिकारक होती है। नर्मदानदीमें आध तोला वजनसे लेकर ८० मन वजनतककी मूर्त्तियाँ मिलती हैं। वे सब असंख्य संख्यामें स्वतः प्राप्त और स्वतः संघटित होती हैं। उनमें कई लिंग बड़े ही अद्भुत, मनोहर, विलक्षण और सुन्दर होते हैं। उनके पूजनेसे महाफल मिलता है।

मिट्टीकी, पाषाणकी या नर्मदाकी जिस किसी मूर्त्तिका पूजन करना हो, पूजा करनेसे पहले पवित्र होकर शुद्धासनपर पूर्वाभिमुख बैठे। जल, फल, फूल और गन्धाक्षत आदि यथायोग्य रख ले। पार्थिव-पूजन करना हो तो भीगी हुई मिट्टीका करांगुष्ठके ऊर्ध्व-पर्व-तुल्य शिवलिंग बनावे। उसको जलहरीमें स्थापनकर प्राणप्रतिष्ठा करे और फिर षोडश, दश या पञ्च यथोपलब्ध उपचारोंसे पूजन करे। यदि बाणलिंग मन्दिरोंकी चिरप्रतिष्ठित मूर्त्तिका पूजन करना हो तो उसमें प्राणप्रतिष्ठा न करे। अस्तु, सब प्रकारको शिव-पूजन-विधि अनेक ग्रन्थोंमें लिखी है। उसे देख लेना चाहिये।

(८)

शिवलिंगके दर्शनोंसे उनके आध्यात्मिक स्वरूपका

आभास होता है और तत्त्वज्ञ उसमें भूमण्डलके प्रत्येक पदार्थका अनुभव करते हैं। किन्तु सर्वसाधारणके जाननेके लिये शिव-पार्वतीकी मानुषी मूर्त्ति ही उनके प्रत्येक चरित्रको प्रकट करनेवाली होती है। अतः चित्रादिमें उनका वही स्वरूप अंकित देखा जाता है जो उनके चरित्रोंमें वर्णित हुआ है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अत्यन्त प्राचीन कालमें शिव-भक्त सृष्टिके प्रत्येक पदार्थको शिवस्वरूपमें परिणत मानते थे और इस कारण उनको चित्र-प्रतिमा या लिंग-स्थापनकी आवश्यकता नहीं होती थी। उनकी दृष्टिमें सृष्टिका प्रत्येक पदार्थ ही शिव था। उनको यदि उपासना या पूजा करनी होती तो उसीकी करते थे। संसारमें उस प्रकारके 'रुद्र-वन,' 'शङ्कर-दावानल,' 'शिव-समुद्र' और 'गौरीशङ्कर' आदि दृश्य पदार्थ या प्रतिमाएँ अब भी ऐसी विद्यमान हैं जिनसे शिवस्वरूप नाम-तुल्य आभासित होता है और वे हजारों-लाखों वर्षोंसे शिवस्वरूप धारण किये हुए हैं।

धन्य है उन यूरोपीय सज्जनोंको जिन्होंने भारतीय हिन्दू-शास्त्रोंके वर्णनोंको प्रत्यक्ष देखनेका सफल प्रयत्न या प्रयास किया है और धन, जन तथा समयकी अपरिमित हानि सहकर 'गौरीशङ्कर' जैसे अगम्य और दुर्बोध्य दृश्योंको देखा है। इस लेखका अंगीभूत होनेसे उसका संक्षिप्त विवरण विदित कर लेना आवश्यक प्रतीत हुआ है। हिमालयके दो अति उच्च शिखर ही 'गौरीशङ्कर' नामसे प्रसिद्ध हैं और वास्तवमें उनका स्वरूप भी शास्त्र-लिखितके तुल्य है। पुराणोंमें हिमालयकी विस्तृति चालीस हजार कोस और महोन्नति आठ हजार कोस मानी गयी है। किन्तु आधुनिक अन्वेषक अभीतक इसका आपाद-मस्तक अन्वेषण कर नहीं सके हैं। अभी उनकी नाप-जोखमें चालीस शिखर आये हैं, जिनकी ऊँचाई सत्रहसे उन्तीस हजार फीटतक है। यह समुद्र-तलसे मानी गयी है।

भारतीय यात्रियोंको जिन शिखरोंतक जानेका प्रयोजन पड़ता है या वे जाते हैं उनके नाम और ऊँचाई इस भाँति हैं—(१) कृष्णशैल १७५७२ फीट, (२) यमुनोत्तरी २००३८, (३) श्रीकण्ठ २०१४९, (४) नीलकण्ठ २१६६१, (५) केदारनाथ २२७९०, (६) बदरीनाथ (नर-नारायण) २३२१०, (७) त्रिशूल २३३००, (८) धवलगिरि २६८२६, (९) काञ्चनजङ्घा २८१५३ और (१०) गौरीशङ्कर (एवरेस्ट) २९००२ फीट हैं। भारतके ब्रह्मपुत्र, सतलज, व्यासा, रावी, कोशी, घाघरा, चनाव, झेलम और गंगादि नद-नदी शैलराजसे ही निर्गत हुए हैं।

आकाशके अन्वेषकोंका अनुमान है कि विष्णुपादाब्ज-सम्भूत, सप्तर्षिमण्डलसे गिरी हुई गंगा गौरीशङ्कर (शिखरों) पर पड़ती है और उसके पार्श्ववर्ती अपर पर्वत-शृंगोंके विस्तृत और गहनतम गर्तोंमें घूमती हुई गंगोत्रीमें पहुँचती है और वहाँसे निर्गत होकर भारतके भूभागोंको तृप्त और पवित्र करती हुई सागरमें सम्मिलित हो जाती है। अनुमानतः गौरीशङ्कर और उनके जटाजूट तथा गंगा आदिका अमिट स्वरूप इसी प्रकारका प्रतीत होता है।

(९)

उपासकोंके लिये इस बातकी नितान्त आवश्यकता होती है कि वह अपने अभीष्ट देवके स्वरूपको हृदयङ्गम करके उसका ध्यान करें। शिव-भक्तोंने उनके चरित्रगत अनेकों स्वरूपोंकी कल्पना की है और उन्हींका ध्यान करते हैं। उनमेंसे कुछ ध्यान यहाँ भी प्रकाशित किये जाते हैं—

१—सदाशिव

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत्॥ १॥

२—शिव-पार्वती

वन्दे सिन्दूरवर्णं मणिमुकुटलसच्चारुचन्द्रावतंसं
भालोद्यन्नेत्रमीशं स्मितमुखकमलं दिव्यभूषाङ्गरागम्।
वध्रोरुन्यस्तपाणेररुणकुवलयं सन्दधत्याः प्रियाया
वृत्तोत्तुङ्गस्तनाग्रे निहितकरतलं वेदटङ्केष्टहस्तम्॥२॥

३—मृत्युञ्जय

चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम्।
कोटीरेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत्॥३॥

४—महामृत्युञ्जय

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटाभातं त्रिनेत्रं भजे॥४॥

५—महेश

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥५॥

६—पशुपति

मध्याह्नार्कसमप्रभं शशिधरं भीमाट्टहासोज्ज्वलं
त्र्यक्षं पन्नगभूषणं शिखिशिखाश्मश्रुस्फुरन्मूर्द्धजम्।
हस्ताब्जैस्त्रिशिखं सुसुन्दरमसिं शक्तिं दधानं विभुं
दंष्ट्राभीमचतुर्मुखं पशुपतिं दिव्यस्वरूपं भजे ॥६॥

७—चण्डेश्वर

चण्डेश्वरं रक्ततनुं त्रिनेत्रं रक्तांशुकाढ्यं हृदि भावयामि।
टङ्कं त्रिशूलं स्फटिकाक्षमालां कमण्डलुं बिभ्रतमिन्दुचूडम् ॥७॥

८—अर्द्धनारीश्वर

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं
पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तम्।
अर्द्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं
बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम् ॥८॥

९—पञ्चवक्त्र

घण्टाकपालसृणिमुण्डकृपाणखेट-
खट्वाङ्गशूलडमरूनभयं दधानम्।
रक्ताम्बमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रं
पञ्चाननाब्जमरुणांशुकमीशमीडे ॥९॥

१०—सद्योजात

कर्पूरेन्दुनिभं देवं सद्योजातं त्रिलोचनम्।
हरिणाक्षगुणाभीतिवरहस्तं चतुर्मुखम्।
बालेन्दुशेखरोल्लासिमुकुटं पश्चिमे यजेत् ॥१०॥

११—विश्वरूप

हृदिस्थः सर्वभूतानां विश्वरूपो महेश्वरः।
भक्तानामनुकम्पार्थं दर्शनञ्च यथाश्रुतम् ॥११॥

१२—दिग्वाह

कैलासाचलसन्निभं त्रिनयनं पञ्चास्यमम्बायुतं
नीलग्रीवमहीशभूषणधरं व्याघ्रत्वचा प्रावृतम्।
अक्षस्रग्वरकुण्डिकाभयकरं चान्द्रीं कलां बिभ्रतं
गंगाम्भोविलसज्जटं दशभुजं वन्दे महेशं परम् ॥१२॥

सब भूतों (पृथिवी-अप्-तेजादि) के हृदयमें स्थित रहनेवाले विश्वरूप महेश्वर भक्तोंपर कृपा करके यथाश्रुत दर्शन देते हैं। इसीलिये कल्पनागत स्वरूपका ध्यान किया जाता है।

(१०)

आरम्भमें विचार था कि लेखकी समाप्ति शिवचरित्रके संकलनसे की जाय। किन्तु इसके समाप्त होनेसे पहले यह विचार ही समाप्त हो गया। वेदों, पुराणों, इतिहासों, स्तोत्र-पाठ, पूजा और उपासना आदिके विधानोंमें और अगणित ग्रन्थोंके मंगलाचरणोंमें शिव-चरित्रका संकलन है।

(१) शिव गँजेड़ी, भँगेड़ी, सुलफाबाज, अमलदार, पोस्ती और आक-धतूरे खानेवाले हैं। (२) वह कामी, क्रोधी, त्यागी, वैरागी, योगी, भोगी, दयालु, कृपालु, उदार और भोले भण्डारी हैं। (३) समुद्र-मन्थनके चौदह रत्नोंमें हालाहल इन्हींको मिला था। (४) भस्मासुरको वर देनेमें इनसे बड़ी भूल हुई थी। (५) जालन्धरके न मरनेसे उसकी पतिव्रता स्त्रीको बिगाड़नेका जाल इन्होंने ही रचा था। (६) त्रिपुर और मदन-दहनका दावानलरूप नेत्र इन्हींका है।

(७) सतीके स्वतः चले जानेसे श्वसुरका यज्ञनाश इन्होंने ही करवाया था। (८) सतीको सीतारूपमें देखकर इन्होंने उसे त्याग दिया था (९) उसके मृतदेहको कन्धेपर रखकर यह पागलकी तरह फिरते रहे थे। (१०) पार्वती-परिणयनमें इनके अद्भुत रूपको देखकर खास सासू भी सहम गयी थी। (११) पार्वतीके साथ रहकर इन्होंने मन्त्र-तन्त्र-यामल और औषधशास्त्रोंकी अपूर्व रचना की थी। (१२) शुकदेवने इनसे ही अमर कथा पढ़ी थी।

(१३) हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण, कुम्भकर्ण, वज्रक और बाणासुरादि इन्हींकी दयासे दिग्विजयी बने थे। (१४) अपना अमोघ अस्त्र अर्जुनको इन्होंने ही दिया था। (१५) सीतास्वयंवरका किसीसे भी न हटनेवाला धनुष इन्हींका पिनाक था। (१६) वृत्रासुरादि अजेय असुरोंका इन्होंने ही संहार किया था। (१७) पार्वतीके पास जानेसे रोकनेवाले गणेशका सिर इन्होंने ही उड़ाया था और पत्नीकी प्रसन्नताके लिये पुत्रको गजवदन बना दिया था।

(१८) अस्पृश्य भीलके जूँठे जलबिन्दु और बासी बिल्वपत्रोंको प्राप्तकर इन्होंने ही उसे शिवसायुज्य दिया था। (१९) मेघनाद-जैसे दुधमुँहे बच्चोंको इन्होंने ही इन्द्रजीत बनाया था और (२०) लङ्कासे रामेश्वर आकर प्रतिदिन दर्शन करनेवाला विभीषण इन्हींका भक्त था। कहाँतक लिखें—

शिव-चरित्रका इसप्रकार प्राबल्य और बाहुल्य देखकर ही उसकी सूचीमात्र देनेमें भी संकोच हो गया है और इस लेखको यहीं समाप्त कर दिया है।

लिङ्गपुराण और भगवान् शिव

(लेखक—श्रीवृन्दावनदासजी बी० ए०, एल-एल० बी०)

लिङ्गपुराणके शिव अविनाशी, परब्रह्म, निर्दोष, सर्व सृष्टिके स्वामी, निर्गुण, अलख, ईश्वरोंके ईश्वर, सर्वश्रेष्ठ, विश्वम्भर और संहारकर्त्ता हैं। वे परब्रह्म, परतत्त्व, परमात्मा और परज्योति हैं। विष्णु और ब्रह्मा उनसे उत्पन्न हुए हैं। समस्त सृष्टिके आदि-कारण सदाशिव ही हैं।

शिवजीकी सर्वज्ञता, व्यापकता अथवा ईश्वरत्वको सिद्ध करनेके लिये लिङ्गपुराणके अन्तर्गत बीसियों मनोहर कथाएँ हैं। विष्णु और ब्रह्मापर शिवका आधिपत्य कितनी ही मनोरञ्जक कथाओंमें सिद्ध किया गया है। शिव-महत्त्वका विशद वर्णन करनेके लिये उनमेंसे कुछ ललित कथाओंके आवश्यक अंशोंका सूक्ष्मोल्लेख अनिवार्यतः आवश्यक एवं वाञ्छनीय है।

एक बार ब्रह्माजीका समाधान करते हुए विष्णुने कहा—'हे ब्रह्माजी! आप ऐसा न कहें। महादेवजी जगत्के हेतु हैं और सब बीज इनके हैं। ये बीजवान् हैं। पुराण-पुरुष परमेश्वर इन्हींको कहते हैं। यह जगत् इनका खिलौना है। बीजवान् ये हैं, आप बीज हैं और हम योनि हैं।' विष्णुके उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्ट है कि शिव ही पूर्ण-पुरुष हैं।

लिङ्गकी उत्पत्ति

एक बार विष्णु और ब्रह्मामें इस विषयपर कि परमेश्वर कौन है, विवाद चल पड़ा। दोनों ही अलग-अलग अपनेको ईश्वर सिद्ध कर रहे थे। ब्रह्मा और विष्णुमें परस्पर कलह हो ही रहा था कि एक अति प्रकाशमान ज्योतिर्लिङ्ग उत्पन्न हुआ। उस लिङ्गके प्रादुर्भावको देखकर दोनोंने उसे अपनी कलह-निवृत्तिका साधन समझ यह निश्चय किया कि जो कोई इस लिङ्गके अन्तिम भागको स्पर्श करे वही परमेश्वर है। वह लिङ्ग नीचे और ऊपर दोनों ओर था। ब्रह्माजी तो हंस बनकर लिङ्गका अग्रभाग ढूँढ़नेको ऊपर उड़े और विष्णुजीने अति विशाल एवं सुदृढ़ वराह बनकर लिङ्गके नीचेकी ओर प्रवेश किया। इसी भाँति दोनों हजारों वर्षतक चलते रहे, परन्तु लिङ्गका अन्त न पाया। तब दोनों अति व्याकुल हो लौट आये और बार-बार उस परमेश्वरको प्रणामकर उसकी मायासे मोहित हो विचार करने लगे कि यह क्या है कि जिसका कहीं अन्त न आदि! विचार करते-करते एक ओर प्लुतस्वरसे 'ओ३म्, ओ३म्' यह शब्द सुन पड़ा। शब्दका अनुसन्धान करके लिङ्गकी दक्षिण ओर देखा तो ॐकारस्वरूप स्वयं शिव दीख पड़े। भगवान् विष्णुने शिवकी स्तुति की। स्तुतिको सुनकर महादेवजी प्रसन्न हो कहने लगे, 'हम तुमसे प्रसन्न हैं, तुम भय छोड़कर हमारा दर्शन करो। तुम दोनों ही हमारी देहसे उत्पन्न हुए हो। सब सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा हमारे दक्षिण अङ्गसे और विष्णु वाम अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं। हम तुमसे प्रसन्न हैं, वर माँगो।'

विष्णु और ब्रह्माने शिवजीके चरणोंमें दृढ़ भक्ति माँगी।

पार्वती-स्वयंवर

जिस समय हिमालयने पार्वतीका स्वयंवर किया था उस समय उनके निमन्त्रणसे अनेकों देव, नाग, किन्नर आदि इकट्ठे हुए। शिव भी एक बालकके रूपमें आये और पार्वतीके उत्सङ्गमें जाकर बैठ गये। बालकके इस उद्धत व्यवहारको देख सब देवगण बहुत क्रुद्ध हुए और एक-एक करके उस बालकपर प्रहार करनेको अग्रसर हुए। परन्तु वह बालक कोई साधारण बालक न था। वह तो स्वयं सदाशिव थे। सदाशिवने अपने ओजद्वारा देवताओंके अङ्गोंको स्तम्भित एवं अस्त्रोंको कुण्ठित कर दिया। देवताओं-के इस पराभवको देखकर ब्रह्माने ध्यानपूर्वक विचार किया तो ज्ञात हुआ कि यह बालक स्वयं शिव है। तब तो वे महादेवजीके चरणोंमें लोट गये और इसप्रकार स्तुति की—

स्रष्टा त्वं सर्वलोकानां प्रकृतेश्च प्रवर्तकः।
बुद्धिस्त्वं सर्वलोकानामहङ्कारस्त्वमीश्वरः॥ १॥
भूतानामिन्द्रियाणाञ्च त्वमेवेश प्रवर्तकः।
तवाहं दक्षिणाद्धस्तात्सृष्टः पूर्वं पुरातनः॥ २॥
वामहस्तान्महाबाहो देवो नारायणः प्रभुः।
इयं च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारण॥ ३॥

पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता ।
नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमो नमः ॥ ४ ॥

प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः ।
देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमोहिताः ॥ ५ ॥

कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवन्त्विमे ।*

ब्रह्माजीकी इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर शिवजीने कृपा करके देवताओंको पूर्ववत् पुष्ट कर दिया ।

उपर्युक्त स्तुतिसे ज्ञात होता है कि भगवान् शिवकी ब्रह्माजीने पूर्ण ब्रह्म परमेश्वरके रूपमें ही आराधना की है । उपर्युक्त श्लोकोंमें जिस पुरुषकी वन्दना की गयी है उससे श्रेष्ठतर एवं उच्चतर कोई हो ही नहीं सकता । सर्व लोकोंका स्रष्टा एवं प्रकृतिका प्रवर्तक एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर ही हो सकता है ।

शिव-विवाहके समय विष्णुके प्रति ब्रह्माजीके निम्नलिखित वाक्य उल्लेखनीय हैं ।

'हे विष्णु ! आप और भगवती पार्वती शिवजीके वाम अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं । शिवजीकी मायाहीसे भगवती हिमालयकी कन्या हुईं । सब जगत्की, आपकी और हमारी यह पार्वती माता हैं और शिवजी पिता हैं । शिवजीकी मूर्त्तियोंसे ही जगत् उत्पन्न हुआ है । भूमि, जल, अग्नि, आकाश, पवन, सूर्य, चन्द्र—ये सब शिवजीकी मूर्त्तियाँ हैं । यह पार्वती शुक्ल, कृष्ण, लोहित वर्णोंसे युक्त अजा अर्थात् माया हैं और आप भी प्रकृतिरूप हैं । अब हमारे और हिमालयके वचनसे शिवजीके प्रति पार्वतीजीको देना उचित है ।'

इसपर परम शिव-भक्त विष्णुभगवान्ने उठकर शिवजीको प्रणाम किया और उनके चरणोंको धोकर उस चरणोदकको अपने, ब्रह्माजीके और हिमालयके मस्तकपर छिड़का और पार्वतीको शिवजीके अर्पण किया ।

शरभावतार

लिङ्गपुराणके ९६ वें अध्यायमें शरभरूप शिवका नृसिंहरूप विष्णुको परास्त करनेकी कथा बड़ी विचित्र है ।

हिरण्यकशिपुका वध करके विष्णुरूप नृसिंह भयङ्कर गर्जना करने लगे । उनकी भयङ्कर गर्जनाके घोर शब्दसे ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक काँप उठे । सब सिद्ध, साध्य, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता भी अपने-अपने प्राण बचानेके लिये भयभीत हो भागे । वे लोकालोक पर्वतके शिखरपरसे अति विनम्र भावसे नृसिंहजीकी स्तुति करने लगे । परन्तु नृसिंहजी इसपर भी शान्त न हुए । तब तो सब देवता अपनी रक्षाके लिये मन्दराचलमें शिवजीके समीप गये । देवताओंकी दीन दशा देखकर शिवजीने प्रसन्नवदन होकर कहा कि हम शीघ्र ही नृसिंहरूप अग्निको शान्त करेंगे ।

देवताओंकी स्तुति सुनकर नृसिंहरूप तेजको शान्त करनेके लिये महादेवजीने भैरवरूप अपने अंश वीरभद्रका स्मरण किया । वीरभद्र उसी क्षण उपस्थित हुए । महादेवजीने वीरभद्रसे कहा—'वत्स ! इस समय देवताओंको बड़ा भय हो रहा है । इस कारण नृसिंहरूप अग्निको शीघ्र जाकर शान्त करो । पहले तो मीठे वचनोंसे समझाओ, यदि न समझे तो भैरवरूप दिखलाओ ।'

शिवजीकी यह आज्ञा पाकर शान्तरूपसे वीरभद्र नृसिंहके समीप जा उनको समझाने लगे । इस समयका वीरभद्र-विष्णु-संवाद बड़ा मार्मिक है । इसमें भगवान् विष्णुके ऊपर शिवका महत्त्व भलीभाँति प्रदर्शित होता है ।

वीरभद्रने कहा, 'हे नृसिंहजी ! आपने जगत्के कल्याणके लिये अवतार लिया है और परमेश्वरने भी जगत्की रक्षाका अधिकार आपको दे रक्खा है । मत्स्यरूप धर आपने इस जगत्की रक्षा की । कूर्म और वराहरूपसे पृथिवीको धारण किया । इस नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुका संहार किया, वामनरूप धर राजा बलिको बाँधा । इसप्रकार जब-जब लोकोंमें दुःख उत्पन्न होता है तब-तब आप अवतार लेकर सब दुःख दूर करते हैं । आप सब जीवोंके उत्पन्न करनेवाले और प्रभु हैं । आपसे अधिक कोई शिवभक्त नहीं ।'

वीरभद्रजीके शान्तिमय वचनोंसे नृसिंहजीकी क्रोधाग्नि शान्त न हुई । उन्होंने उत्तर दिया, 'वीरभद्र ! तू जहाँसे आया है वहीं चला जा ।' इसपर नृसिंहजीसे वीरभद्रका बहुत विवाद हुआ । अन्तमें शिवकृपासे वीरभद्रका अति दुर्धर्ष, आकाशतक व्याप्त, बड़ा विस्तृत एवं भयङ्कर रूप हो गया । उस समय शिवजीके उस भयङ्कर तेजस्वी स्वरूपमें सब तेज विलीन हो गये । इस रूपका आधा शरीर मृगका और आधा शरभ पक्षीका था । शरभरूप शिव अपनी पुच्छमें नृसिंहको लपेटकर छातीमें चोंचका प्रहार करते हुए जैसे सर्पको गरुड़ ले उड़े, ऐसे ले उड़े । फिर तो नृसिंहजीने शिवजीसे क्षमा-याचना की और अति विनम्रभावसे स्तुति की ।

* लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध १०२वाँ अध्याय ।

सुदर्शन-चक्रकी कथा

एक बार शिवजीको प्रसन्न करनेके हेतु विष्णुने बड़ा उग्र तप किया। उस समय उन्होंने 'शिवसहस्रनाम-स्तोत्र' के लिये शिवजीको अर्पित करनेके अर्थ एक सहस्र कमल एकत्रित किये। शिवजीने कौतुकवश एक कमल उन कमलोंमेंसे लुप्त कर दिया। जब सहस्रनामका उच्चारण समाप्त करनेको हुए तो विष्णुको ज्ञात हुआ कि एक कमल कम है। बस उन्होंने उसके स्थानपर अपना नेत्र निकालकर शिवजीको समर्पित कर दिया। फिर तो देवादिदेवने प्रसन्न हो विष्णुजीको दर्शन दिया और उनको उनके उन नेत्रोंकी जगह कमल-सरीखे नेत्र प्रदान किये। तभीसे विष्णुका नाम पुण्डरीकाक्ष पड़ा। सुदर्शन-चक्र भी उसी समय शिवजीने विष्णुको दिया।

इसी प्रकार और भी कई कथाएँ लिङ्गपुराणमें ऐसी हैं जिनमें देवताओंमें श्रेष्ठ विष्णु और ब्रह्मासे शिवका उत्कर्ष दिखाया गया है।

वस्तुतः एकेश्वरवादपर हिन्दू-सिद्धान्त बहुत ही स्पष्ट है। लिङ्गपुराणमें जिसप्रकार शिवको परब्रह्म परमात्मास्वरूप माना है उसी प्रकार अन्य पुराणोंने विष्णु, देवी आदिको सर्वशक्तिमान् माना है। परन्तु सर्वशक्तिमान्, परब्रह्म, परमेश्वरस्वरूप है एक ही व्यक्ति। किसी भी पुराणमें परमेश्वरकी शक्तिका भागीदार नहीं मिलता। पूर्ण पुरुषकी ही भिन्न-भिन्न नामोंसे उपासना की गयी है। कहीं उसको विष्णु कहते हैं कहीं ब्रह्मा, कहीं शिव और कहीं गणेश। जैसी जिसकी रुचि हुई उपास्यदेवका नाम रख लिया और लगा उसका गुणगान करके अपना जन्म सफल करने।

हिन्दू-विचारोंका अद्भुत ऐक्य ही हिन्दू-धर्मकी महान् विशेषता है।

नटराज-उपाधिके रहस्य*

(लेखक—श्री 'प्रसन्न')

किसी समय प्रदोषकालमें जब देवगण रजतगिरि कैलासपर 'नटराज' शिवके ताण्डवमें सम्मिलित हुए और जगज्जननी आद्या श्रीगौरीजी रत्नसिंहासनपर बैठकर अपनी अध्यक्षतामें ताण्डव करानेको तैयार हुईं। ठीक उसी समय वहाँ श्रीनारदजी महाराज भी पहुँच गये और अपनी वीणाके साथ ताण्डवमें सम्मिलित हुए। तदनन्तर श्रीशिवजी ताण्डवनृत्य करने लगे, श्रीसरस्वतीजी वीणा बजाने लगीं, इन्द्र महाराज वंशी बजाने लगे, ब्रह्माजी हाथसे ताल देने लगे और लक्ष्मीजी आगे-आगे गाने लगीं, विष्णुभगवान् मृदङ्ग बजाने लगे और बचे हुए देवगण तथा गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, उरग, सिद्ध, विद्याधर, अप्सराएँ सभी चारों ओर स्तुतिमें लीन हो गये। बड़े ही आनन्दके साथ ताण्डव सम्पन्न हुआ। उस समय श्रीआद्या भगवती (महाकाली) पार्वतीजी परम प्रसन्न हुईं और उन्होंने श्रीशिवजी (महाकाल) से पूछा कि आप क्या चाहते हैं? आज बड़ा ही आनन्द हुआ। फिर सब देवोंसे, विशेषकर नारदजीसे प्रेरित होकर उन्होंने यह वर माँगा कि 'हे देवि! इस आनन्दको केवल हमींलोग लेते हैं, किन्तु पृथिवीतलमें एक ही नहीं, हजारों भक्त इस आनन्दसे तथा नृत्य-दर्शनसे वञ्चित रहते हैं, अतएव मृत्युलोकमें भी जिसप्रकार मनुष्य इस आनन्दको प्राप्त करें ऐसा कीजिये, किन्तु मैं अपने ताण्डवको समाप्त करूँगा और 'लास्य' करूँगा।' इस बातको सुनकर श्रीआद्या भुवनेश्वरी महाकालीने 'एवमस्तु' कहा और देवगणोंसे मनुष्य-अवतार लेनेको कहा और स्वयं श्यामा (आद्या महाकाली) श्यामसुन्दरका अवतार लेकर श्रीवृन्दावनधाममें आयीं और श्रीशिवजी (महाकाल) ने राधाजीका अवतार लेकर व्रजमें जन्म लिया और 'देवदुर्लभ रासमण्डल' की आयोजना की और वहीं 'नटराज' की उपाधि यहाँ श्यामसुन्दरको दी गयी। बोलो नटराज भगवानकी जय!

* यह कथा श्रीरामकृष्ण परमहंसजी महाराजको शिष्य-परम्परासे किसी वयोवृद्ध परम भक्त वैष्णवने सुनी थी और मुझे काशीमें 'श्रीशिव-पार्वती' तथा 'कृष्ण-राधा' में ऐक्यभाव है, इसलिये उन्होंने समझायी थी और किसी उपपुराणका नाम भी बताया था, वह मुझे स्मरण नहीं है। भक्तजन लाभ उठावें, इसीलिये इसे लिख दिया। —लेखक

श्रीश्रीमृत्युञ्जय-शिव-तत्त्व

(पूज्यपाद मन्नीभूत भार्गव श्रीशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्द-स्वामीजीके उपदेशसे)

मृत्यु तथा अमृतत्वका स्वरूप

जिज्ञासु—मृत्युञ्जय शिवका स्वरूप क्या है और उनकी उपासना कैसे की जाती है, इस सम्बन्धमें कुछ उपदेश देकर मुझे कृतार्थ कीजिये ।

वक्ता—जिन्होंने मृत्युपर जय प्राप्त की है, जिन्होंने अमृतत्वका लाभ किया है, वे मृत्युञ्जय हैं । अतः मृत्युञ्जयका स्वरूप जाननेके लिये पहले मृत्यु क्या है और अमृतत्व किसे कहते हैं यह जानना होगा । शास्त्रोंमें श्रीमृत्युञ्जय महादेवके ध्यानके जो श्लोक मिलते हैं उनसे तथा वेदोक्त त्र्यम्बक-मन्त्रसे मृत्युञ्जय शिवका स्वरूप जाना जा सकता है । उनके स्वरूपको पूर्णतया जाननेके लिये श्रीत्र्यम्बकदेवके व्यापक रूपका पता लगाना होगा; त्र्यम्बकके साथ प्रणवका, व्याहृतिका तथा गायत्रीका क्या सम्बन्ध है, यह जानना होगा और विशिष्ट साधनाके द्वारा उसकी उपलब्धि करनी होगी ।

जिज्ञासु—तो पहले मृत्यु तथा अमृतत्वके सम्बन्धमें ही कुछ उपदेश दीजिये ।

वक्ता—यदि मैं तुमसे पूछूँ कि मृत्यु क्या चीज है, मृत्युसे तुम क्या समझते हो, तो इसका उत्तर तुम क्या दोगे ?

जिज्ञासु—मनुष्यकी आयु समाप्त हो जानेपर इस शरीरसे उसके प्राण निकल जाते हैं, तब यह शरीर निश्चेष्ट हो जाता है, इसके अन्दर चेतना (Consciousness) का कोई लक्षण नहीं दिखायी देता । उस समय हम कहते हैं कि उसकी मृत्यु हो गयी । स्थूल देहसे लिङ्ग-शरीरका अलग हो जाना ही मृत्यु है । सुना है, मृत्युके उपरान्त जीव नया शरीर धारण करता है ।

वक्ता—तुमने जो कुछ कहा वह बिल्कुल यथार्थ है । किन्तु मृत्युके तत्त्वको तुमने अबतक भलीभाँति नहीं समझा । इसके लिये पहले यह जान लेना होगा कि प्राण किसे कहते हैं और शरीरके साथ उसका संयोग और वियोग किस-प्रकार होता है तथा लिङ्ग-शरीरका स्वरूप क्या है ? इस सम्बन्धमें अभी कुछ न कहकर मृत्यु क्या है, इस विषयमें संक्षेपसे कुछ कहूँगा । पहले हमें यह देखना चाहिये कि मृत्युके समान कौन-सी वस्तु है जिससे हम भलीभाँति परिचित हैं ? क्या निद्रा मृत्युके समान नहीं है ? इन दोनोंकी समानतापर विचार करो । जीवात्मा अपने कर्मानुसार ही एक स्थूल शरीरसे संयुक्त होकर फिर उसीसे वियुक्त होता है । मृत्युके बाद जब जीवात्मा दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है तब साधारणतया उसे अपने पूर्व-जन्मका स्मरण नहीं रहता । हम दिनमें कितने लोगोंसे मिलते हैं, कितने प्रकारके काम करते हैं; किन्तु रात्रिमें सो जानेके बाद हम सब कुछ भूल जाते हैं । सबेरा होनेपर जब हम जागते हैं तब मानों हमारा नया जन्म होता है । तो फिर हमलोग निद्राको मृत्यु क्यों नहीं कहते ? बात यह है कि प्रातःकाल शय्यासे उठनेपर हमें याद आती है कि रात्रिमें हम ही इस शय्यापर सोये थे और हमीं पिछले दिन अमुक-अमुक कार्य किये थे और हमीं अमुक-अमुक लोगोंसे मिले थे । अतः निद्रा और मृत्युमें यह अन्तर है कि निद्राके अन्तमें जागनेपर निद्रासे पहलेकी बातें याद आ जाती हैं, किन्तु मृत्युके बाद दूसरा जन्म होनेपर मृत्युसे पहलेके वृत्तान्त साधारणतः याद नहीं रहते ।

वर्तमान शरीरको त्यागकर शरीरान्तर ग्रहण करनेपर भी जिन्हें पूर्व जन्मकी स्मृति बनी रहती है उनकी मृत्यु मृत्यु नहीं कही जा सकती, क्योंकि उनके ज्ञान (Consciousness) की सन्तति (Continuity) विच्छिन्न नहीं होती । मुक्त योगियोंकी यह अवस्था होती है । इसीलिये उन्हें 'इच्छामृत्यु', 'अमर' इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं । उन्होंने अमृतत्व लाभ कर लिया है । नये-नये शरीरोंमें प्रवेश करनेपर भी उनका ज्ञान तथा पूर्व जन्मकी स्मृति लुप्त नहीं होती । वे 'जातिस्मर' कहलाते हैं । ऐसे पुरुष संसारके बन्धनसे मुक्त हो जानेपर भी जीवोंके कल्याणके हेतु एक या अधिक बार शरीर धारण करते हैं, जगत्में आगमन करते हैं । ये लोग मृत्यु तथा प्राणतत्त्वपर विजय प्राप्त किये रहते हैं, मृत्यु इनकी वशवर्तिनी होकर रहती है । *

---

* इन्हीं लोगोंको लक्ष्य करके वेदने कहा है—

यस्तद्वेद यत आबभूव सन्धाञ्च यां सन्दधे ब्रह्मणेषः ।
रमते तस्मिन्नुत जीर्णे शयाने नैनं जहात्यहस्सु पूर्व्येषु ॥

—तैत्तिरीय आरण्यक

एक प्रकारका अमृतत्व और भी है। इसमें योगी सदा एक ही भावमें रहते हैं (इस भावका कभी परिवर्तन नहीं होता), शरीरसे शरीरान्तरमें सञ्चरण नहीं करते। यह नित्य, सर्वगत, ज्ञानमय, आनन्दमय भाव है। जिनकी जगत्का कल्याण करनेकी वासना भी नष्ट हो जाती है वे सदाके लिये इस आनन्दमय अवस्थामें रहते हैं।

मृत्युञ्जय शिवके ध्यान-वाक्यका अर्थ; अमृतत्व-का स्वरूप

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥

त्र्यम्बकदेव अष्टभुज हैं। उनके एक हाथमें अक्षमाला और दूसरेमें मृगमुद्रा है; दो हाथोंसे दो कलशोंमें अमृतरस लेकर उससे अपने मस्तकको प्लावित कर रहे हैं और दो हाथोंसे उन्हीं कलशोंको थामे हुए हैं। शेष दो हाथ उन्होंने अपने अङ्कपर रख छोड़े हैं और उनमें दो अमृतपूर्ण घट हैं। वे श्वेत पद्मपर विराजमान हैं, मुकुटपर बालचन्द्र सुशोभित है, ललाटपर तीन नेत्र शोभायमान हैं। ऐसे देवाधिदेव कैलासपति श्रीशङ्करकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

अब इस ध्यानके भावको हृदयङ्गम करनेकी चेष्टा करो। शिवजीके अङ्कपर दो हाथ रक्खे हुए हैं जिनपर दो अमृतपूर्ण कलश हैं। इसका भाव यह है कि ऊपर जो दो प्रकारके अमृतत्वकी बात कही गयी है उन दोनोंके ही श्रीशङ्कर परम अधिकारी हैं (इस प्रसंगमें पुरुषसूक्तके 'अमृतत्वस्येशानो' इन पदोंकी ओर लक्ष्य करो)। उक्त दोनों प्रकारके अमृतत्व इनके करतलगत हैं, उपासककी उपासना-से प्रसन्न होकर ये उसे दोनों ही दे सकते हैं। दो हाथोंमें दो अमृतपूर्ण (अमृतसे सदा भरे हुए) कलश धारण किये हुए हैं, जिसका अर्थ यह है कि उन्हें अमृतका कभी टोटा नहीं रहता, और दो कलशोंसे अपने ऊपर अमृत ढाल रहे हैं जिसका अर्थ यह है कि वे सदा अमृतमें सराबोर रहते हैं, स्वयं अमृतरूप ही हैं।

मध्यमें विशुद्ध सत्त्व और दोनों पार्श्वमें रज और तम ('मध्ये विशुद्धसत्त्वमुभयतो रजस्तमसी') यही ब्रह्म अथवा परमात्माका व्यावहारिक या जागतिक रूप है। जो लोग रज और तमसे निवृत्त होकर मध्यस्थित विशुद्ध सत्त्वको पूर्णरूप-से आश्रय कर सकते हैं वे ही जगत्के परिवर्तन अथवा मृत्युके राज्यसे त्राण पा सकते हैं। अज्ञानयुक्त (देहादि प्रकृतिके परिवर्तनके साथ मैं भी परिवर्तित हो रहा हूँ इस-प्रकारका ज्ञान ही अज्ञान है) परिवर्तनका नाम ही मृत्यु है और इससे विपरीत ज्ञान (प्रकृतिके परिवर्तनके साथ मेरा परिवर्तन नहीं होता) ही अमृतत्व है। परिवर्तनशील 'मैं' के अन्दर एक नित्य स्थिर 'मैं' है जिसका परिवर्तन नहीं होता और जो इन सारे परिवर्तनोंका साक्षी है, उन्हें परिवर्तनरूपसे जानता है (स्थिर पदार्थ ही परिवर्तनको जान सकता है, जो स्वयं परिवर्तनशील है वह परिवर्तनको नहीं जान सकता)।

जिज्ञासु—जलकी धाराके द्वारा इस भावको अभिव्यक्त करनेका क्या प्रयोजन है?

वक्ता—जलके प्रवाहके तत्त्वको अच्छी तरह समझनेकी चेष्टा करो। 'प्रवाह' 'नदी' 'नाड़ी' आदि शब्द स्पन्दन अथवा गति किंवा क्रियाके वाचक हैं। जिन दो धाराओंके द्वारा शिवजी अपने मस्तकको सदा आप्लावित करते रहते हैं वे गङ्गा और यमुनाके प्रवाहकी, इड़ा और पिङ्गला-नाड़ियोंकी अथवा तम और रज-शक्तियोंकी वाचक हैं। ये दो शक्तियाँ ही जगत्का, जागतिक क्रियामात्रका कारण हैं। ये शक्तियाँ जब साम्यावस्थामें रहती हैं, जब इनके क्रियाफलका पृथक्-रूपसे अनुभव नहीं होता तभी प्रकृतिज्ञानरूप सरस्वतीका प्रवाह दृष्टिगोचर होता है; यही सुषुम्णा अथवा विशुद्ध सत्त्व है। त्र्यम्बकदेव इन दो धाराओंको शुद्धसत्त्वरूप अपने मस्तकपर साम्यावस्थापन्न कर रहे हैं। इसप्रकार वे जागतिक मृत्युके राज्यका अतिक्रमकर एक भावसे अमर होकर विराजमान हैं।*

---

* श्रुति कहती है—सित (शुभ्र अर्थात् गङ्गा) और असित (कृष्ण अर्थात् यमुना) ये दो नदियाँ जहाँपर मिली हैं वहाँपर स्नान करनेवाले लोग स्वर्गलोकमें जाते हैं; और जो भाग्यवान् ज्ञानीजन वहाँपर शरीर छोड़ते हैं वे अमृतत्वको प्राप्त होते हैं। यही आध्यात्मिक त्रिवेणी अथवा प्रयागतीर्थ है, इसीका आधि-भौतिक रूप बाह्य त्रिवेणी अथवा प्रयाग है—

'सितासिते सरिते यत्र सङ्गते तत्र प्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते॥'

शैव-सम्प्रदाय

(लेखक--श्रीयुत चिन्ताहरण चक्रवर्ती एम० ए०)

शैव-मतके जितने अनुयायी हैं-जो भगवान् शङ्करके विविध स्वरूपों एवं आकारोंकी उपासना करते हैं—उतने अन्य किसी देवताके उपासक नहीं हैं। सुदूर अतीत कालमें व्रात्यों अथवा अन्य किसी आदिम जातिके लोगोंमें इसकी उत्पत्ति होकर इसके दीर्घ जीवनकालमें इसके अन्दर कई परिवर्तन हो चुके हैं। इसके फलस्वरूप बहुत समय पहले ही इसके अन्दर कई सम्प्रदायोंकी सृष्टि हो गयी। इनमेंसे बहुत-से सम्प्रदाय तो लुप्त हो गये और जो कुछ बचे हैं उनके आचारों तथा सिद्धान्तोंका निःशेष एवं सविस्तर वर्णन करनेवाले ग्रन्थ बहुत थोड़े हैं। सच पूछिये तो इनमेंसे अधिकांश सम्प्रदायोंका शृङ्खलाबद्ध परिचय तो कहीं मिलता ही नहीं। अवश्य ही सभी पुराणों, तन्त्रों, 'भरटकद्वात्रिंशिका,' क्षेमेन्द्रकृत 'नर्ममाला,' माधवाचार्यरचित 'सर्वदर्शनसंग्रह,' हरिभद्रसूरिप्रणीत 'षड्दर्शनसमुच्चय' की गुणरत्नविरचित टीका तथा विविध देशी भाषाओंके कई ग्रन्थोंमें भी इनके सम्बन्धमें बहुत कुछ उपयोगी वृत्तान्त इतस्ततः बिखरा हुआ मिलता है।

हमारा काम यह है कि इन सारे वृत्तान्तोंको एकत्रकर उनकी छान-बीन करें और उन-उन सम्प्रदायोंका सुसम्बद्ध इतिहास उनके आचारों तथा साधनोंके विशद वर्णनके सहित 'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंके सामने रक्खें। इससे भारतवर्षके धार्मिक इतिहासके अनुसन्धानमें पूरी सहायता मिलेगी।

इस समय इन सम्प्रदायोंकी यह दशा है कि इनके आचारों तथा सिद्धान्तोंकी तो बात ही अलग रही इनकी निश्चित संख्या, नामों, मूलस्थानों तथा आदि प्रवर्तकोंतकका पता नहीं है। इसीलिये विद्वानोंमें इनके सम्बन्धमें बहुत कुछ मतभेद हो गया है। मैं कतिपय विशिष्ट उदाहरण देकर अपने वक्तव्यका स्पष्टीकरण करूँगा।

महर्षि बादरायणप्रणीत ब्रह्मसूत्रके शाङ्करभाष्यपर वाचस्पति मिश्रने जो 'भामती' नामक टीका लिखी है उसके अन्तर्गत दूसरे अध्यायके दूसरे पादके सैंतीसवें सूत्रकी व्याख्यामें शैव, पाशुपत, कारुणिक-सिद्धान्ती एवं कापालिक—इन चार शैव-सम्प्रदायोंका उल्लेख किया गया है। उसी सूत्रकी टीकामें टीकाकार भास्कराचार्यने कारुणिक-सिद्धान्तियोंके स्थानमें 'काठक-सिद्धान्ती' यह नाम दिया है। निम्बार्क-सम्प्रदायके अनुयायी श्रीनिवासने अपनी 'वेदान्तकौस्तुभ' नामक टीकामें तथा वेदोत्तमने अपनी 'पाञ्चरात्रप्रामाण्य' नामक टीकामें उसी सूत्रकी व्याख्यामें 'काठक' अथवा 'कारुणिक' के स्थानमें एक तीसरे ही नाम—'कालामुख' का निर्देश किया है।

इसी प्रकार 'नकुलीश', 'लकुलीश' इत्यादि कई नामोंसे पुकारे जानेवाले सम्प्रदायका असली नाम क्या है, इसका पता लगाना भी कठिन है। क्योंकि अनुमानतः शैवोंके अन्दर ही एक विरोधी सम्प्रदाय था जिसका 'नाकुल' 'लागुड' अथवा 'लाङ्गल' इस नामसे निर्देश किया गया है। पता नहीं, इस सम्प्रदायके साथ पूर्वोक्त सम्प्रदायका कोई सम्बन्ध था या नहीं।

इसका भी कुछ पता नहीं कि ऊपर लिखे अनुसार इन सम्प्रदायोंकी संख्या चार यह कबसे निर्धारित हुई। कम-से-कम गुणरत्नविरचित षड्दर्शन-समुच्चयकी टीका तथा अन्यान्य अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थोंमें इन चारके अतिरिक्त अनेकों दूसरे संप्रदायोंका उल्लेख मिलता है। इस बातका भी निर्णय करनेका हमारे पास कोई साधन नहीं है कि ये सारे-के-सारे सम्प्रदाय उपर्युक्त चार प्रधान सम्प्रदायोंके ही अवान्तर-भेद अथवा उनसे सम्बद्ध सम्प्रदाय थे अथवा स्वतन्त्र सम्प्रदाय थे। सम्भवतः 'लकुलीश' सम्प्रदाय तो, जिसे मध्वाचार्यने 'पाशुपत' नामसे निर्दिष्ट किया है, पाशुपत-सम्प्रदायका ही एक अवान्तर सम्प्रदाय था।

अप्पय्य दीक्षितने अपनी 'शिवार्कमणिदीपिका' नामक ब्रह्मसूत्रकी टीकामें दूसरे अध्यायके दूसरे पादके अड़तीसवें सूत्रकी व्याख्यामें वायुसंहितानामक एक ग्रन्थका उल्लेख किया है। उसमें तथा वैसे ही कतिपय दूसरे ग्रन्थोंमें शैवों[2] तथा शैव-ग्रन्थोंके वैदिक तथा अवैदिक इसप्रकार दो विभाग

---

१ इस सम्बन्धमें 'Indian Historical Quarterly, Vol. VIII, p. 221, पर दिया हुआ लेखकका निबन्ध देखना चाहिये।

२ शैवागमोऽपि द्विविधः श्रौतोऽश्रौतश्च स स्मृतः।

किये हैं। सारे शैव-सम्प्रदायोंको इसप्रकारके दो विभागोंमें विभक्त करना सहज कार्य नहीं है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि धर्मके नामपर (नरमुण्डों, चिताभस्म तथा सुरा इत्यादि-के उपयोगकी भाँति) विविध प्रकारके वीभत्स आचारोंका उपदेश देनेवाले सम्प्रदाय अवैदिक माने जाने लगे। लक्ष्मी-धरने श्रीशङ्कराचार्य-प्रणीत 'सौन्दर्य-लहरी' की स्वरचित टीकामें इसी बातको लेकर कापालिकोंकी गर्हणा की है।

इन्हीं सम्प्रदायोंमेंसे एक सम्प्रदाय बौद्धोंमें मिल गया अथवा बौद्धोंसे प्रभावित हुआ और उसीसे नाथों तथा जोगियोंका सम्प्रदाय बन गया जिसके अनुयायी सारे भारतवर्षमें पाये जाते हैं। भारतके पूर्वीय प्रान्तोंमें चैतके महीनेमें 'गाजन' अथवा 'चरक' नामसे प्रसिद्ध एक शिवजीका त्यौहार होता है जिसे नीच जातिके लोग बड़ी धूम-धामसे मनाते हैं। उसके अन्दर शैव एवं बौद्ध भावोंका सम्मिश्रण मालूम होता है।

शैवोंका एक सम्प्रदाय वैष्णवोंके भावोंसे भी प्रभावित हुआ, ऐसा प्रतीत होता है। प्राचीन बङ्गभाषाके साहित्यमें भगवान् श्रीकृष्णकी शृङ्गार-लीलाओंकी भाँति शिवके शृङ्गार-का भी खूब वर्णन होने लगा। यहाँतक कि कई ग्रन्थोंके प्रारम्भमें मङ्गलाचरणके रूपमें भी इसका वर्णन मिलता है। संस्कृतमें भी जयदेवरचित गीतगोविन्दका अनुकरणकर लोगोंने शिवजीके शृङ्गार-सम्बन्धी काव्योंकी रचना की।

परन्तु आपाततः बौद्ध तथा वैष्णव-भावोंसे प्रभावित दीखनेवाले इन सम्प्रदायोंके मूल तथा इतिहासके सम्बन्धमें कोई निश्चित मत स्थिर करनेके पूर्व इन सारी बातोंकी पूरे तौरसे तथा सूक्ष्म रीतिसे जाँच करनी होगी।

शैव-मतकी प्राचीनता

(लेखक—श्रीयुत वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार एम० ए०, लेक्चरर, मद्रास-विश्वविद्यालय)

भारतवर्षके विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंके मूल तथा इतिहासके सम्बन्धकी खोजसे बढ़कर दूसरा रोचक अथवा चित्ताकर्षक विषय नहीं है। 'हिन्दू-धर्म' शब्द बहुत अधिक व्यापक है, इसके अन्दर इतने अधिक सम्प्रदायोंके धार्मिक सिद्धान्तों तथा आदर्शोंका समावेश है कि उनका ठीक-ठीक उल्लेख भी नहीं हो सकता। साधारणतया सब लोग इस धर्मके शैव-मत तथा वैष्णव-मत इसप्रकार दो विभाग किया करते हैं। कुछ लोग इनमें शाक्त-मत और जोड़कर तीन विभाग करते हैं, किन्तु जिन लोगोंने भारत-वर्षके धार्मिक इतिहासका परिशीलन किया है वे इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि शाक्तोंका मत शैव-मतके अन्तर्गत ही है। जगद्गुरु श्रीआद्य शंकराचार्यने अपनी 'सौन्दर्य-लहरी' नामक अमर कृतिके निम्नलिखित पद्यांशमें इस भावको भलीभाँति व्यञ्जित किया है—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्'

इसका अभिप्राय यह है कि शिव और शक्ति बल एवं पराक्रमके स्रोत हैं। शिव-शक्तिके इस युगल स्वरूपको 'सदा-शिव' भी कह सकते हैं।

'शिव' शब्द व्यापक, सुख एवं शान्तिका वाचक है। वेदोंमें उन्हें 'रुद्र' कहा गया है। रुद्र और शिव भिन्न हैं अथवा अभिन्न, इस विषयमें विद्वानोंका परस्पर मतभेद है। किन्तु इस समय हम पाठकोंका उसकी ओर लक्ष्य नहीं करायेंगे। प्रारम्भमें ही यह समझ लेनेकी बात है कि आद्य शंकराचार्यसे लेकर (जिनकी गोविन्दभक्तिके सम्बन्धमें किसी-को कोई शंका न तो है और न होनी ही चाहिये) आधुनिक आचार्यों एवं गुरुओंतक एक प्रसिद्ध आचार्य-परम्पराके द्वारा वैष्णव-मतका पृष्ठ-पोषण हुआ, किन्तु शैव-मतके सम्बन्ध-में यह बात नहीं कही जा सकती। सच पूछिये तो प्राचीन शैव-मत मध्यकालीन कतिपय तामिल सन्तोंको छोड़कर बिना किसी आचार्यकी सहायताके ही जगत्में प्रचलित हो गया। शिवोपासनाका सबसे प्राचीन रूप लिङ्गपूजा ही मालूम होती है। इसका प्रमाण यह है कि हमारे सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदसंहिता (७ । २९ । ५ एवं १० । ९९ । ३ तथा निरुक्त ४ । १९) में 'शिश्नदेवाः' इस पदका प्रयोग मिलता है। कुछ विद्वान् इस बातको स्वीकार नहीं करते कि इस पदका यही अर्थ है जो हमने समझा है। खेदका विषय है कि सायणाचार्यने अपने भाष्यमें इस विषयपर यथेष्ट प्रकाश नहीं डाला। किन्तु फिर भी सर्वसाधारणकी मान्यताके अनुसार इस पदसे यही ध्वनि निकलती है कि जिस रूपमें

आज भारतवर्षके सारे प्रान्तोंमें लिङ्गपूजा होती है उसी रूपमें उस समय भी प्रचलित थी। (देखिये पी० टी० श्रीनिवास आयङ्गारकी 'Stone Age in India' नामक पुस्तक पृष्ठ ४९)।

प्राचीन घटनाओं तथा वस्तुओंका, विशेषकर प्राचीन भारतके लेखों तथा स्मृति-चिह्नोंका कालनिर्णय करना आसान नहीं है। पुरातत्त्ववेत्ताओंने अपनी खोजद्वारा एक ऐसी प्रौढ़ सभ्यताका पता लगाया है जो भारतीय इतिहासके ताम्र-युग (Chalcolithic Period) में सिन्धु-नदीके तट-प्रदेशमें प्रचलित थी। लोगोंकी धारणा है कि यह सभ्यता आर्य-सभ्यतासे पुरानी थी और वैदिक युगसे भी बहुत पहले विद्यमान थी। हमारी समझमें सिन्धुनदके तटप्रान्तकी सभ्यता, जिसके चिह्न मोहञ्जोडाड़ो (Mohenjodaro) तथा हरप्पा (Harappa) इन स्थानोंमें मिले हैं, ऋग्वेदके पीछेकी है। क्योंकि ऋग्वेदके परवर्ती कालकी बहुत-सी बातें उसके अन्दर मिलती हैं। हमारी यह मान्यता किन कारणोंसे हुई, इस विषयकी आलोचना हम यहाँ नहीं करेंगे। लिङ्गपूजा ऋग्वेदके समयमें भी प्रचलित थी और पञ्जाबमें जो प्राचीन स्मृति-चिह्न मिले हैं उनसे भी यही बात सूचित होती है। (देखिये Plate XIII in Vol. I of Mohenjodaro and the Indus Civilization, edited by Sir John Marshall)। इनके अन्दर शिव और शक्तिके प्रतीकरूपमें लिङ्ग और योनिके चिह्न मिलते हैं जो शैव-मतके प्रधान अंग हैं। ये जीवनके उत्पादक तत्त्वोंके परिचायक हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओंने जो ये चिह्न खोज निकाले हैं उनसे भी लिङ्गपूजाकी प्राचीनता सिद्ध होती है जो शैव-मतका विशिष्ट स्वरूप है। लिङ्गपूजाकी प्राचीनताके अतिरिक्त सिन्धुनदके तटप्रान्तमें मिले हुए चिह्न प्राचीन शैव-मतकी एक और विशेषताको बतलाते हैं। वह है एक प्रकारका योग जो प्राचीन शैव-मतका दूसरा प्रधान अंग है। वैदिक साहित्यमें शिवका एक नाम 'पशुपति' भी पाया जाता है। योगका आदिम स्वरूप प्राणायाम मालूम होता है जिसे द्विजातिमात्रको सन्ध्योपासनके समय करनेकी आज्ञा दी गयी है। वायुपुराणमें, जो पुराणोंमें सबसे प्राचीन माना जाता है, इस बातका प्रमाण मिलता है कि प्राणायामकी यह सरल विधि 'पाशुपत योग'के नामसे प्रसिद्ध थी। वायुपुराणमें पाशुपत योगका जो वर्णन दिया हुआ है वह योगासनमें स्थित देवताओंकी पाषाण-मूर्तिसे मिलता है (देखिये R. P. Chanda in the Memoir of Ar. Sur. India Vol. 42)। इसप्रकार ताम्रयुगके समयमें शैव-मतके दो प्रधान अंगों—लिङ्गपूजा एवं योगसाधनाका ईसासे ३००० वर्ष पूर्व सारे भारतवर्षमें नहीं तो कम-से-कम पञ्जाबमें अवश्य प्रचार था। इसके परवर्ती साहित्यमें शिव 'योगेश्वर' कहलाने लगे (देखिये नैषध काव्य १२।३८, जिसकी व्याख्या टीकाकार मल्लिनाथ इसप्रकार करते हैं—'स्फाटिकलिङ्गे योगेश्वर इति प्रसिद्धिः')। भारतके दोनों प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थों (रामायण एवं महाभारत) में लिङ्गपूजाका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। महाभारत (७।२००, २०१) में एक ऐसी कथा आती है कि जब द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने देखा कि श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धमें बेदाग निकले जा रहे हैं तब उसने दुखी एवं खिन्न होकर व्यासदेवसे पूछा कि इनका वध कैसे नहीं हुआ? व्यासजीने उत्तर दिया कि श्रीकृष्ण शिवलिङ्गकी पूजा करते हैं और शिवजीके अनन्य भक्त होनेके कारण महादेव उनकी रक्षा करते हैं। महाभारतके इन अध्यायोंकी कुछ लोगोंने दूसरे ही ढंगसे व्याख्या की है। कुछ लोग तो उन्हें प्रक्षिप्त मान बैठे हैं और कुछ लोगोंका मत यह है कि उनपर किसी साम्प्रदायिक मनुष्यका हाथ जरूर लगा है (देखिये J. R. A. S. 1907 PP, 337-339)। इन श्लोकोंमें इसप्रकारकी कोई-सी बात भी नहीं है। प्रस्तुत विषयके साथ उनकी संगति खूब बैठती है। अश्वत्थामा सचमुच हैरान हो जाता है और यह जाननेके लिये आतुर हो उठता है कि श्रीकृष्ण और अर्जुनके इतने बलवान् होनेका क्या कारण है! उसे जो उत्तर मिलता है वह उस युगकी मनोवृत्तिके बिल्कुल अनुकूल था। उसमें साम्प्रदायिकताकी कहीं गन्ध भी मालूम नहीं होती। उलटी उससे शैव-मतकी प्राचीनता तथा एक प्रकारकी अभेदबुद्धिका परिचय मिलता है जो साम्प्रदायिकताके बिल्कुल विपरीत है।

महाभारतके एक दूसरे स्थल (१२।१४, १७) में मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए पितामह भीष्म युधिष्ठिरको उच्चतम सिद्धान्तों एवं आदर्शोंका उपदेश देते हुए यह समझाते हैं कि तुम उदास न हो किन्तु प्रसन्नचित्त रहो। अपने महान् उपदेशमें वे शिवजीकी महिमाका बखान करते हैं तथा उनके विविध स्वरूपोंके वाचक नामोंके चिन्तनका माहात्म्य बतलाते हैं। महाभारतमें साम्प्रदायिकताके न होनेका यह दूसरा प्रमाण है। रामायणके अन्दर भी धार्मिक बातोंमें इसी प्रकारका निष्पक्षभाव दृष्टिगोचर होता है। श्रीराम

राक्षसराज रावणसे युद्ध करनेके लिये लङ्का जाते समय उस स्थानपर पहुँचते हैं जो आजकल रामेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है और वहाँ लिङ्गकी स्थापना करके उसकी पूजा करते हैं और इस बातको प्रमाणित करते हैं कि सारे देवता एक हैं। पुराणोंमें भी यह भाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है और उन्हें साम्प्रदायिक ग्रन्थ कहना सरासर भूल है।

शैवमतकी प्राचीनता एक स्वतन्त्र प्रमाणके द्वारा भी सिद्ध होती है। तामिल-भाषामें कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिन्हें 'शङ्गम्' कहते हैं। उनके अन्दर शिव, सुब्रह्मण्य एवं कृष्ण इन तीन देवताओंका वर्णन मिलता है। तामिल-साहित्यमें शिव तथा उनके पुत्र 'मुरुगन्' का प्रचुर रूपमें वर्णन मिलता है जिसके आधारपर विद्वानोंने यह सिद्धान्तित किया है कि शिव द्रविड़-जातिके देवता हैं अथवा कम-से-कम आर्यजातिके देवता नहीं हैं, तथा आगे चलकर उन्हें आर्योंके देवता रुद्रके साथ एक कर दिया गया। यहाँ हम इस मतकी समालोचना नहीं करेंगे, यहाँ तो केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि प्राचीन ग्रन्थोंसे तथा पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजसे यह सिद्ध होता है कि शैवमतकी उत्पत्ति सुदूर अतीतकालमें हुई थी और प्राचीन भारतके इतिहासनिर्माताके लिये इसके प्रारम्भका पता लगाना अत्यन्त कठिन है।

शिव-सूत्रोंसे व्याकरणकी उत्पत्ति

(लेखक—श्रीयुत डा० प्रभातचन्द्र चक्रवर्ती, काव्यतीर्थ, एम० ए०, पी० आर० एस०, पी-एच० डी०)

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

अर्थात् वेद जिनके निःश्वास हैं, जिन्होंने वेदोंसे सारी सृष्टिकी रचना की और जो विद्याओंके तीर्थ हैं ऐसे शिवकी मैं वन्दना करता हूँ।

पुराणोंमें भगवान् शिवको विद्याका प्रधान देवता कहा गया है। उन्हें 'विद्यातीर्थ' नामसे पुकारा गया है और सर्वज्ञ[1] माना गया है। उन्हें ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया—इन तीन शक्तियोंका समन्वय[2] एवं समस्त ज्ञानका स्रोत माना गया है। ज्ञानपिपासुओंको उन्हींकी पूजा एवं आराधना करनेका विशेषरूपसे आदेश किया गया है और भारतके व्याकरण-रचयिताओंके कुलगुरु महर्षि पाणिनिके—जिनके व्याकरण-सूत्रोंकी हम प्रस्तुत निबन्धमें आलोचना करेंगे—जीवनके महाव्रतकी सिद्धि भी उन्हीं देवाधिदेव महादेवके कृपाकटाक्षसे हुई। यही नहीं, पाणिनीय व्याकरणकी उत्पत्ति भी इन्हीं विद्यानिधान भगवान् महेशानसे मानी जाती है जिन्होंने प्रथम सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माको आविर्भूत किया और तदनन्तर सर्गके आदिमें उन्हें वेद-विद्याका उपदेश[3] दिया।

वेदोंके छः प्रधान अङ्गोंमें व्याकरण भी एक अङ्ग है; यही नहीं, वेदोंके अध्ययनमें सबसे अधिक उपयोगी होनेके कारण वह सबमें प्रधान[4] है। पाणिनीय व्याकरणको 'वेदाङ्गव्याकरण' इस नामसे निर्दिष्ट किया गया है जो सर्वथा उचित ही है। क्योंकि इस व्याकरणमें लौकिक

---

१ सर्वज्ञताको महेश्वरके छः प्रधान गुणोंमें गणना की गयी है। यथा—

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अचिन्त्यशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः
षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥

दुर्गासिंहने भी स्वरचित 'कातन्त्रवृत्ति' के मङ्गलाचरणमें उन्हें सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी कहा है। यथा—

देवदेवं प्रणम्यादौ सर्वज्ञं सर्वदर्शिनम्।
कातन्त्रस्य प्रवक्ष्यामि व्याख्यानं सार्ववर्णिकम्॥

२ तन्त्रोंमें इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। यथा—

ते ज्ञानेच्छाक्रियात्मानो वह्नीन्द्वर्कस्वरूपिणः।
(शारदातिलक)

ज्ञानक्रियास्वभावं शिवतत्त्वं जगदुराचार्याः।
(तत्त्वप्रकाश)

३ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥
(श्वेता० ६। १८)

४ मुखं व्याकरणं स्मृतम्—(पाणिनीय शिक्षा)। प्रधानञ्च षडङ्गेषु व्याकरणम् (महाभाष्य)।

(साधारण बोल-चालके) तथा वैदिक दोनों प्रकारके शब्दों-का विवेचन किया गया है।

पाणिनीय अष्टाध्यायीकी रचना १४ छोटे-छोटे सूत्रों-के आधारपर हुई है जिन्हें माहेश्वर अथवा शिव-सूत्र कहते हैं। इन मूल-सूत्रोंके आधारपर व्याकरण-शास्त्रकी रचना इस बातको सिद्ध करती है कि मनुष्यकी सारी करामातोंकी कुञ्जी किसी अदृष्ट शक्तिके हाथमें रहती है। इन्हीं सूत्रोंकी भाँति दूसरे शिव-सूत्र भी हैं जिनका सम्बन्ध काश्मीरीय शैवागमसे है और जिनकी शैवोंके महान् आचार्य वसुगुप्तने भगवान् शङ्करकी प्रेरणासे रचना की थी।

महर्षि पाणिनिने किसप्रकारकी विचित्र परिस्थितिमें इन माहेश्वर सूत्रोंको प्राप्त किया, इस सम्बन्धका इतिहास 'कथासरित्सागर,' 'हरचरितचिन्तामणि,' 'बृहत्कथामञ्जरी' तथा नन्दिकेश्वरकी 'काशिकावृत्ति' में उपलब्ध होता है। इन ग्रन्थोंमें जो कुछ वृत्तान्त मिलता है वह प्रायः परस्पर मिलता-जुलता-सा ही है। मुख्य घटना अर्थात् शिवसे पाणिनिके रचनाशक्ति प्राप्त करनेके[६] सम्बन्धमें तो बिल्कुल मतभेद नहीं है। पाणिनिकी[७] माताका नाम दाक्षी तथा पिताका नाम पणिन् था। इन्होंने बचपनमें ही आचार्य उपवर्षके यहाँ विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। व्याडि तथा वररुचि (कात्यायन ?) इनके सहाध्यायी थे। एक दिन पाणिनि व्याकरण-सम्बन्धी शास्त्रार्थमें अपने सहाध्यायियोंसे हार गये जिससे उनके हृदयको गहरी चोट पहुँची। भगवान्‌का विधान सदा मङ्गलपूर्ण होता है। उनका शाप भी अनुग्रहरूप हुआ करता है। बादमें अपनी बराबरी-वालोंसे हारनेके कारण पाणिनिको जो असह्य यन्त्रणा हुई उसने उनके जीवनको पलट दिया। व्याकरण-शास्त्रमें पारदर्शी होनेके उद्देश्यसे तथा वैयाकरणोंमें सर्वश्रेष्ठ बननेकी प्रबल आकाङ्क्षासे उन्होंने आशुतोष शङ्करकी आराधनाके हेतु कठोर तप आरम्भ किया। भगवान्‌के अनुग्रहसे उनकी अभिलाषा पूर्ण हुई। पाणिनिने अद्भुत सफलताके साथ एक ऐसे शृङ्खलाबद्ध व्याकरणकी रचना की जिसकी जोड़का दूसरा व्याकरण भारतीय वाङ्मयमें अभीतक कदाचित् बना ही नहीं। इस सम्बन्धमें एक दूसरी आख्यायिका भी प्रचलित है जो इसप्रकार है—

प्रयागमें अक्षयवटके नीचे पाणिनि कठोर तपस्या कर रहे थे। उस समय भगवान् शूलपाणि सिद्धोंका सङ्ग साथ लिये हुए उनके सामने प्रकट हुए और लगे ताण्डव-नृत्य करने। नृत्यके समय भगवान्‌ने आनन्दातिरेकसे चौदह[८] बार डमरू-ध्वनि की।

इस अपूर्व एवं अलौकिक घटनासे पाणिनिको पहली बार व्याकरण-सूत्र रचनेकी शक्ति प्राप्त हुई। और इसी शक्ति-के द्वारा उन्होंने आगे चलकर 'अष्टाध्यायी' का वैज्ञानिक ढंगसे निर्माण किया जिसका आज संस्कृत-व्याकरणमें इतना मान है। डमरूके चौदह नादोंसे ही चौदह मूल-सूत्रोंकी रचना हुई जिनके आधारपर सारी अष्टाध्यायी प्रणीत हुई। इसीलिये इनको शिव-सूत्र अर्थात् शिवके द्वारा आविर्भूत व्याकरण-सूत्र कहते हैं, जो सर्वथा उचित ही है। शिव-सूत्रोंमें वर्णोंका विन्यास—जिसे 'वर्णसमाम्नाय' कहते हैं—इस अद्भुत एवं अपूर्व कौशलसे किया गया है कि उनके जोड़नेसे 'अण्,' 'इण्' इत्यादि प्रत्याहार बन जाते हैं जो सारे व्याकरण-शास्त्रकी मूलभित्ति हैं। इन्हींके कारण शिव-सूत्रोंका इतना अधिक माहात्म्य है। यह बात बिल्कुल सत्य है कि इन संज्ञाओं अथवा प्रत्याहारोंका ज्ञान प्राप्त किये बिना अष्टाध्यायीके तत्त्वको समझना असम्भव है। और ये संज्ञाएँ शिव-सूत्रोंके अन्तर्गत वर्णसमूहोंसे ही बनी हैं।

पाणिनीय व्याकरणकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें यह पिछला इतिहास अधिक मान्य है। पाणिनीय शिक्षामें[९] भी यह आख्यान इसी प्रकार वर्णित है।

---

५ 'सूत्रमाह महेश्वरः'। 'शिवसूत्रमरीरचत्'।
(भास्करानन्द)

६ सर्वविद्यामुखं तेन प्राप्तं व्याकरणं नवम्।
(कथासरित्सागर)

आराध्य तपसा तत्र विद्याकामः स शङ्करम्।
प्राप्य व्याकरणं दिव्यं स च विद्यामुखं शुभम्॥
(हरचरितचिन्तामणि)

७ पाणिनिके सम्बन्धमें यह प्रसिद्धि है कि वे बाल्यकालमें मन्दबुद्धि थे।

८ नृत्तावसाने नटराजराजो
ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धा-
नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥
(नन्दिकेश्वरकाशिका)

९ येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥

नन्दिकेश्वरने अपनी 'काशिकावृत्ति' में इन शिव-सूत्रोंकी इसप्रकारसे व्याख्या की है मानो इनकी रचना शैवागम तथा शाक्तागमके दिव्य रहस्यका उद्घाटन करनेके उद्देश्यसे ही हुई थी। उदाहरणतः उन्होंने प्रथम सूत्र 'अइउण्' की निम्नलिखित प्रकारसे व्याख्या की है[१०]—

'अ' निर्गुण ब्रह्मका वाचक है और 'उ' सगुण ब्रह्मका। जब 'अ' अर्थात् निर्गुण ब्रह्म 'इ' अर्थात् माया (चिच्छक्ति) के साथ सम्पर्कमें आता है तब वह 'उ' अर्थात् सगुण ब्रह्म हो जाता है। तन्त्रोंमें[११] भी इसी प्रकारका सिद्धान्त वर्णित है। तान्त्रिक सिद्धान्तके अनुसार सृष्टिका विकास शिव-शक्तिके[१२] संयोगका परिणाम है। वर्णोंकी दिव्य शक्ति (मात्रिका वर्ण) को पहले-पहल तान्त्रिकोंने ही स्वीकार किया हो, यह बात नहीं है। वैदिक कालमें भी यह बात सिद्धान्त-रूपसे स्वीकार कर ली गयी थी। यही कारण है कि प्रणव (ओंकार) को वेदोंने साक्षात् ब्रह्मका स्वरूप माना है और उपनिषदोंमें[१३] भी परब्रह्मके लिङ्गरूपमें शब्दब्रह्मकी उपासना-का उपदेश दिया गया है।

इस सम्बन्धमें एक इतिहास और है। वह इसप्रकार है कि स्वयं भगवान् शिवने एक व्याकरण-शास्त्रकी रचना की। जो उदधिके समान विस्तीर्ण और जो 'माहेश व्याकरण' के नामसे जगत्में प्रसिद्ध हुआ। कहा जाता है कि महर्षि व्यासदेवको इस व्याकरणका ज्ञान था और उन्होंने उसमेंसे बहुत-से प्रयोग अपने ग्रन्थोंमें व्यवहृत किये हैं। लोगोंका कहना है कि माहेश व्याकरणके सामने पाणिनीय व्याकरण समुद्रके सामने एक जल-सीकरके[१४] समान होगा। कातन्त्र-व्याकरणके सम्बन्धमें भी जिसका बङ्गालमें अधिक प्रचार है, इसी प्रकार-का एक आख्यान प्रसिद्ध है। इसे 'कलाप' अथवा 'कौमार व्याकरण' इसीलिये कहते हैं कि इसका पहला सूत्र 'सिद्धो वर्ण-समाम्नायः' भगवान् शङ्करके मुखारविन्दसे आविर्भूत बताया जाता है और साथ ही यह भी कहा जाता है कि इसे[१५] शङ्कर-सूनु श्रीकार्तिकेयने अपने वाहन मयूरके पंखोंमें लिखा था। कौमार व्याकरणके कार्तिकेयद्वारा प्रचार होनेका सविस्तर वर्णन गरुडपुराण[१६] एवं अग्निपुराणमें मिलता है।

शिव-समाज

'केसौदास' मृगज बछेरू चौंखें बाघिनीन,
चाटत सुरभि बाघ-बालक-बदन है।
सिंहनकी सटा ऐंचैं कलभ-करनि करि,
सिंहनको आसन गयंदको रदन है॥
फनीके फननपर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न बिरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे-डोरे अंध तापसनि,
सिवको समाज कैधौं ऋषिको सदन है॥

—महाकवि केशवदास

---

१० अइउण्—
अकारो ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु।
चित्कलामिं समाश्रित्य जगद्रूप उणीश्वरः॥
(काशिका २)

११ शिवशक्त्यात्मकं विश्वम्।

१२ श्रीमच्छङ्कराचार्यने भगवती त्रिपुरासुन्दरीकी स्तुतिमें पुरुष और प्रकृतिके इस अनादि युगमका (जिसे विज्ञान तथा दर्शन-की भाषामें जड़ तथा चेतनका संयोग कह सकते हैं) बड़े हृदय-ग्राही शब्दोंमें वर्णन किया है। वे कहते हैं—
शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥
(सौन्दर्यलहरी)

१३ महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलिने भी वर्णोंको ब्रह्मका जाज्व-ल्यमान स्फुलिङ्ग माना है। यथा—
सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः
फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः॥

१४ यान्युज्जहार माहेशाद्व्यासो व्याकरणार्णवात्।
तानि किं पदरत्नानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे॥

इस श्लोकको गोपाल चक्रवर्तीने अपनी 'दुर्गा सप्तशती' की टीकामें उद्धृत किया है।

१५ शङ्करस्य मुखाद्वाणीं श्रुत्वा चैव षडाननः।
लिलेख शिखिनः पुच्छे कलाप इति कथ्यते॥

१६ अथ व्याकरणं वक्ष्ये कुमारोक्तञ्च शौनक।
(गरुडपुराण २०८)

शैव और वैष्णवोंका प्रेम

(लेखक—रावबहादुर राजा श्रीदुर्जनसिंहजी)

सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।
सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥
अपां निधिरधिष्ठानं दुर्जयो जयकालवित् ।
प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः ॥
अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटी त्रिदशाधिपः ।
विश्वगोप्ता विश्वकर्ता सुवीरो रुचिराङ्गदः ॥
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा विभुर्विष्णुर्विभूषणः ।
ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्यं जन्ममृत्युजरातिगः ॥

उन ग्रन्थोंसे अपरिचित पुरुष, जहाँकी ये नामावलियाँ हैं, इन श्लोकोंपर दृष्टि डालते ही तत्काल इसके अतिरिक्त दूसरे परिणामपर कदापि नहीं पहुँच सकता कि प्रथम श्लोक श्रीशिवजी महाराजकी नामावलिका है और आगेके तीन श्लोकोंमें श्रीविष्णुभगवान्‌के नाम ग्रहण हुए हैं।

वस्तुतः पहला वचन श्रीविष्णुसहस्रनामका है और पिछले तीन श्लोक श्रीशिवपुराणान्तर्गत श्रीशिवसहस्रनामके हैं (देखो अध्याय ३५)। अपरिचित पुरुषका वैसे निर्णयपर पहुँचना आश्चर्यकारक नहीं है क्योंकि क्रिया-गुणादि अथवा व्यवहारमें प्रचलित नामोंसे जगत्‌में ऐसी विभिन्नता समझी जा रही है, किन्तु ऐसा भेद पूर्ण भ्रमात्मक है। इन दोनों ही ग्रन्थोंके कर्ता, जहाँके ये वचन हैं, एक ही श्रीव्यासभगवान् हैं और ये साक्षात् भगवदवतार, त्रिकालज्ञ महर्षि, पूर्ण तत्त्ववेत्ता हैं। उन्होंने जिस सिद्धान्तके आश्रयपर समस्त पुराणोंकी रचना की है उसका तात्पर्य बुद्धिमें भेदोत्पादनका कदापि नहीं था। उन्होंने उस एक ही भगवत्-तत्त्वको अनेक रूपोंमें वर्णन किया है और ऐसी दशामें किसी विशेष रूपके नाम किसी विशेष रूपमें और किसीके किसीमें आ जायँ तो उसका मुख्य प्रयोजन यही है कि उन रूपोंमें कोई भेद नहीं है और मूल-तत्त्व एक ही है। इस मूल-तत्त्वको ही श्रीभगवान्, परमात्मा, परब्रह्म, पूर्णब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, पुराण पुरुषोत्तम आदि शुभ नामोंसे प्रकट किया जाता है—यही जब 'एकोऽहं बहु स्याम्' इस श्रुतिके अनुसार इच्छा करता है तो अनेक नाम-रूप धारण कर लेता है और यही सृष्टिकी उत्पत्ति है। इस दशामें ये असंख्य नाम और रूप सब इस एक ही तत्त्वके हैं और इनमें वास्तविक भेद-कल्पना करना केवल भ्रान्तिमूलक है। किन्तु श्रीभगवान्‌की यह मन और इन्द्रियागोचर चेष्टा परम रहस्यपूर्ण है। इस इच्छाके द्वारा सृष्टि-रचनाकी क्रिया सामान्यतया तो माया अथवा प्रकृतिके द्वारा ही होती है, किन्तु उस अपरिमेय शक्तिसम्पन्न विभुकी अद्भुतताका यह चमत्कार है कि वह जिसको अमायिक कहा जाता है माया बिना भी जो चाहे रचना रच सकता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरणका दर्शन देवदुर्लभ व्रजरजकी उस बुद्धिविमोहनशीला लीलामें होता है जिसमें ब्रह्माजीके ग्वालबाल और बछड़े चुरानेपर श्रीभगवान्‌ने अमायिक ग्वालबाल तथा बछड़े प्रकट ही नहीं कर दिये किन्तु उन सबको चतुर्भुज-मूर्त्ति बना दिया।

इससे सिद्ध है कि भगवान्‌के असंख्य नाम-रूप मायिक और अमायिक दोनों प्रकारसे ही हो सकते हैं। जो अमायिक नाम-रूप हैं वे सब गुणातीत, देश-काल और वस्तुपरिच्छेद-रहित तथा अभिन्न हैं किन्तु मायिक नाम-रूप त्रिगुणमय प्रकृतिके कार्य होनेसे भेदयुक्त हैं और देश-काल-वस्तु-परिच्छिन्न हैं। नामावलियोंकी जो अनेक रचनाएँ हुई हैं उनमें ऐसे भी अनेक नाम आये हैं जो एक मूल-तत्त्वके द्योतक हैं। शेष विशेषता-परिचायक हैं। यही भारी रहस्य है और इसीमें बुद्धिके चकरानेसे संसारमें भ्रान्तिको पूर्ण अवकाश मिल जाता है।

श्रीभगवान्‌के अनेक नाम-रूपोंमेंसे उपासना-निमित्त किसी एकका ही ग्रहण हो सकता है, क्योंकि जब एकसे अधिक दोमें भी मनकी स्थिरता असम्भव है तो फिर जहाँ अपरिमित नाम-रूपोंका विस्तार है वहाँका तो कहना ही क्या है! यह तो उपासनाके लिये सर्वथा असम्भव दशा है। अतः जो भगवत्-तत्त्वको एक समझकर उसके अनेक नाम-रूपोंमेंसे एकको उपास्य मानकर उसकी उपासना करता है उसके हृदयमें तो अन्य नाम-रूपोंके लिये विपरीत भाव आ ही नहीं सकता। किन्तु यह अभिन्न भावमय उपासना सत्त्वगुणके भी परे समझनी चाहिये और इसका अधिकारी वही हो सकता है जो त्रिगुणातीत हो, जिसके लक्षण श्रीगीताजीके चतुर्दश अध्यायके अन्तमें इसप्रकार बताये गये हैं—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥

यह उपासना सर्वोच्च कक्षाकी है। किन्तु सामान्यरूपसे जगत्‌में गुणमय सृष्टि विभिन्न होनेके कारण जिसकी रुचि जिस गुणप्रधान हो उसे उसी गुणप्रधान नाम-रूपकी उपासना अनुकूल हो सकती है। इसी विशेष हेतुको लेकर जिस गुणप्रधान प्रयोजनके लिये श्रीभगवान्‌के जिस विशेष नाम-रूपके आविर्भूत होनेकी आवश्यकता हुई, उस नाम-रूपको उसी गुणप्रधान मानकर उसीके महत्त्व-वर्णनके लिये पुराणोंकी रचनाका सिद्धान्त स्थिर हुआ है और ऐसी दशामें भेद-भाव होना भी अनिवार्य था। जिस विशेष पुराणमें श्रीभगवान्‌के जिस नाम-रूपकी विशेषता वर्णन की गयी वहाँ अन्य नाम-रूप स्वतः अप्रधानता या सामान्यताको प्राप्त हो गया क्योंकि ऐसा हुए बिना गुणप्रधान उपासकके चित्तस्थिरतानिमित्त कोई सामग्री ही नहीं रहती। यही कारण है कि एक ही तत्त्वके नाम-रूपोंमें भेद भासने लगा। और भेद भी सीमाके इतना बाहर हो गया कि कहीं वैष्णव श्रीशिवजी महाराजकी लघुता सिद्ध करनेमें अपने सम्प्रदायकी विजयका डंका बजाते हैं तो कहीं शैव श्रीविष्णुभगवान्‌की निन्दाको अपने सम्प्रदायका मुख्य कर्तव्य समझते हैं। इसप्रकारके उत्कट विरोधपूर्ण भेद-भावका कारण केवल अनुचित पक्षपात है जिसको तमोगुणसे भी निकृष्टतर कहा जाय तो अनुपयुक्त नहीं होगा। वैष्णव-ग्रन्थ 'तत्त्वत्रयम्' के निम्नलिखित वचनपर विवरणका आशय इसी पक्षपातका द्योतक है—

'चेतनोऽपि न कारणम्—कर्मपरतन्त्रत्वाद् दुःखित्वाच्च।' विवरण —आगमसिद्ध जो रुद्र है वही जगत्‌के प्रति निमित्त-कारण है ऐसा पाशुपत-मतवाले मानते हैं, एवं कोई 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' इस वचनको लेकर प्रजापति ब्रह्माको कारण मानते हैं; परन्तु इनका ऐसा मानना ठीक नहीं, क्योंकि ब्रह्मा, रुद्र आदि कर्म-परतन्त्र एवं दुखी हैं, इसलिये जीवकोटिमें हैं। केवल मायाप्रधान गुणमयी सृष्टिमें ऐसी लघुता या महत्ता हो सकती है; परन्तु वहाँ भी ऐसा कदापि नहीं कि जिसको एक बार महत्ता प्राप्त हो गयी वह नित्य ऐसा ही रहे, क्योंकि ऐसी महत्ता या लघुता प्रयोजन या कारणवश होती है। जो एक बार महत् है वह अन्यके महत् होनेपर अनिवार्यरूपसे स्वतः लघु हो जायगा। यही तो कारण है कि कभी श्रीरघुनाथजी महाराज या श्रीकृष्णभगवान्‌ने श्रीशिवजी महाराजको उपास्य मानकर उनकी उपासना की है और कभी श्रीशंकरभगवान्‌ने यथावसर श्रीभगवान्‌के उक्त दोनों ही स्वरूपोंको स्वामी मानकर उपासना की है।

गुरुता अथवा लघुताको नित्य माननेवालोंको चाहिये कि वे श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धान्तर्गत उस प्रसंगको ध्यानसे देखें जहाँ दक्षप्रजापतिके यज्ञ-विध्वंस होनेपर दक्षने श्रीरुद्रदेवकी प्रार्थना की है और पुनः यज्ञकी रचनाके अवसर-पर श्रीविष्णुभगवान्‌ने पधारकर इन स्पष्ट वचनोंका उच्चारण किया है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥
यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित् ।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥
(श्रीमद्भा० ४ । ७ । ५०—५४)

मैं ही जगत्‌का परमकारणरूप ब्रह्मा और शिव हूँ और मैं ही सबका साक्षी, स्वयंप्रकाश तथा निर्विशेष आत्मा तथा ईश्वर हूँ। हे द्विज ! यही मैं अपनी गुणमयी मायाका आश्रय लेकर संसारकी सृष्टि, रक्षा और संहार करता हुआ कर्मके अनुसार (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) नाम धारण करता हूँ। उस अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप केवल परमात्मामें ब्रह्मा, रुद्र तथा सभी जीव निवास करते हैं। मूर्ख मनुष्य ही भेद-दृष्टि रखता है। जिसप्रकार पुरुष अपने सिर, हाथ, पाँव आदि अंगोंमें कहीं भी परकीय-भावना नहीं करता उसी प्रकार मेरे परायण प्राणी भूतोंमें पृथग्बुद्धि नहीं करता। हे ब्रह्मन् ! सब जीवोंके आत्मारूप इन ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप तीन एकरूप भावोंमें जो भेद-दृष्टि नहीं करता वही शान्ति प्राप्त कर सकता है।

इस गहरे तत्त्वको श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने

जिसप्रकार स्पष्ट किया है वह उनके हृदयकी अगाधताका पूर्ण प्रमाण है।

किसी अवसरपर किसी नाम-रूपमें गुरुता और किसीमें लघुताका उदाहरण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है—

सेवक स्वामि सखा सिय पीके। हित निरुपधि सबबिधि तुलसीके ॥

इसीके साथ मूल-तत्त्वके अनेक नाम-रूपोंमें कोई भेद नहीं, इस सिद्धान्तको निम्नाङ्कित दोहेके द्वारा सिद्ध किया गया है—

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलपभरि घोर नरकमहँ बास ॥
औरौ एक गुपुत मत सबहिं कहौं करजोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावहिं मोरि ॥

यदि इस सिद्धान्तको समझकर भगवान्‌के प्रत्येक नाम और रूपकी उपासनामें प्रवृत्त हुआ जाय तो शैव और वैष्णवोंमें पूर्ण प्रेम बढ़कर ऐहिक और पारलौकिक श्रेय-सम्पादनके साथ-साथ देश और धर्मकी पूर्ण उन्नति हो।
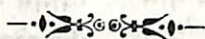
वैष्णव-सिद्धान्त और शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीकृष्णजनकिंकर श्रीबालकृष्णजी)

कुछ वैष्णव-सिद्धान्तसे अनभिज्ञ व्यक्ति प्रायः यह आक्षेप किया करते हैं कि वैष्णव लोग शिव-द्वेषी होते हैं, परन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि इसप्रकारका विद्वेष प्रायः संसारके सभी धार्मिक सम्प्रदायोंके मनुष्योंमें पाया जाता है। शैवादिमें भी विष्णुविरोधी अनेक मनुष्य देखे जाते हैं। इसका एक विशेष कारण है। वह यह कि संसारका मानव-समुदाय प्रकृतिकी विचित्रताके कारण भिन्न-भिन्न रुचिका अवलम्बनकर विविध दलोंमें विभक्त हो गया है। देश, भाषा, वस्त्र, आहार और व्यवहारके भेदके साथ-साथ मनुष्योंके मानसिक विचारके अन्तर्गत उपास्य तत्त्व एवं उपासना-प्रणालीमें भी अनेक अवान्तर-भेद हो गये हैं। इन दलोंमें दो प्रकारके लोगोंका समावेश है—एक सारग्राही, दूसरे भारवाही। सारग्राहियोंकी संख्या स्वल्प होती है, भारवाही ही अधिक होते हैं। सारग्राही पुरुष उदार होते हैं, वे सम्प्रदायभुक्त होकर भी साम्प्रदायिकताके कलङ्कसे मुक्त होते हैं। भारवाही मनुष्य अनुदार एवं साम्प्रदायिक विद्वेषसे युक्त होते हैं। चिह्न-निष्ठा ही साम्प्रदायिकताका मूल है परन्तु सारग्राही अपने साम्प्रदायिक चिह्न-उपस्करोंमें दृढ़ निष्ठावान् होते हुए भी अन्य सम्प्रदायोंके चिह्न-उपस्करोंका उतना ही सम्मान करते हैं जितना अपनोंका किया करते हैं। भारवाहियोंकी चिह्न-निष्ठा अन्धविश्वासमयी होती है, जिसके कारण इनका अन्य सम्प्रदायियोंके प्रति सर्वदा विद्वेषभाव रहता है। सारार्थ यह है कि धर्मजगत्‌में जो कुछ अनर्थ दिखायी देता है वह सब भारवाहियोंके कारण ही है, सिद्धान्ततः नहीं। इन भारवाहियोंकी प्रीति अपने इष्टमें उतनी नहीं होती जितनी कि व्यर्थके विवादमें होती है। सारग्राही पुरुष तत्त्वज्ञानपरायण होते हैं। तत्त्व-ज्ञान ही नरजीवनकी विशेषता है। श्रीश्रीवैष्णवाचार्यचरण सभी सारग्राही एवं तत्त्ववेत्ता थे, अतएव इनके पारमार्थिक विचार पूर्णतया पवित्र थे। वैष्णव-सिद्धान्तमें शिव-तत्त्व किसप्रकारसे प्रतिपादित हुआ है, यही प्रदर्शन कराना इस प्रबन्धके लिखनेका उद्देश्य है। आशा है, इसके पाठसे सभी सज्जनोंको यह ज्ञात हो जायगा कि शिव वैष्णवोंके विद्वेषकी वस्तु नहीं हैं, वरं परमप्रिय हैं।

तत्त्व-विचारकी दृष्टिसे तत्त्व दो प्रकारके हैं—एक स्वतन्त्र तत्त्व, दूसरे परतन्त्र तत्त्व। स्वतन्त्र तत्त्व एक है, परतन्त्र तत्त्व अनेक हैं। स्वतन्त्र तत्त्व अद्वयज्ञान-वस्तु है। न इसके कोई समान है और न इससे कोई अधिक है। अन्य सब तत्त्व इसके अधीन हैं। अतएव यही एकमात्र परमतत्त्व है। यह परमतत्त्व आनन्ददायक आकर्षण-सत्तायुक्त अपने स्वरूपसे निजधाममें सर्वदा वर्तमान रहता है। यह बात यजुर्वेदके इस मन्त्रसे पायी जाती है—

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

अर्थात् जो सवितादेव आनन्ददायक आकर्षणसे युक्त है, वह जीव और जड दोनोंको सुव्यवस्थित रखता हुआ, प्रकाशवती लीलाद्वारा समस्त लोकोंको अवलोकनकर उन्हें स्थिर रखता है।

इस मन्त्रके अर्थको महर्षि कृष्णद्वैपायनने अपने एक श्लोकमें इसप्रकार व्यक्त किया है—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥

अर्थात् 'कृष्' धातुका अर्थ है आकर्षण, इसमें 'भू' धातुका सत्ता अर्थ योग करनेसे यह आकर्षण सत्तावाची हो जाता है; और 'ण' शब्दका अर्थ है निर्वृति अर्थात् आनन्द, इन दोनोंके योगसे परब्रह्मका वाचक 'कृष्ण' शब्द निष्पन्न होता है।

इस कृष्ण-संज्ञक परमतत्त्वको चिद्विज्ञानवेत्ता विद्वान् तीन रूपसे जानते हैं—ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान्। सर्वव्यापक, सर्वप्रकाशक ब्रह्म इस परमतत्त्वकी कान्ति है जो व्यतिरेक चिन्ताशील ज्ञानियोंके चित्तमें प्रतिभासित होती है। सर्वान्तर्यामी प्रादेशमात्र परमात्मा इसका एक अंश है जो योगिपुरुषोंके ध्यानका आधार है और भक्तोंके साक्षात् दर्शनका विषय, सर्वेश्वर, सर्वैश्वर्यसम्पन्न भगवान् ये स्वयं हैं। श्रीकृष्णमें ही भगवत्ताकी चरम सीमा है।

यह परमतत्त्व अनन्त शक्तियोंका आकर है। इन शक्तियोंके निदर्शन-स्वरूप एकहीके अनेक रूप होते हैं। जगत्‌में एक-एक शक्तिका प्रकाशक रूप ही एक-एक अवतार होता है। इन अनन्त शक्तियोंमें तीन शक्तियाँ प्रधान हैं—इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति। इस शक्तित्रयके बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। कर्तामें इनका होना अनिवार्य है। परमतत्त्व स्वतन्त्र कर्ता होनेके कारण स्वयं इच्छामय है। अन्य रूप इच्छा-सम्पन्न होते हुए भी इनकी इच्छाके परतन्त्र हैं। ज्ञानशक्तिका प्रकाश वासुदेवरूप एवं क्रियाशक्तिका प्रकाश संकर्षणरूप है। इच्छामयकी इच्छासे ही ज्ञानशक्तिके सहारे क्रियाशक्ति चित्-अचित् उभय जगत्‌का कार्य सम्पादन करती है। जगत्-कार्यके लिये शक्ति-प्रकाशक जो अवतार होते हैं वे छः प्रकारके होते हैं—पुरुषावतार, लीलावतार, युगावतार, मन्वन्तरावतार, शक्त्यावेशावतार और गुणावतार। इनमें शिव गुणावतार हैं। ये सत्त्वगुणको अङ्गीकारकर सदाशिवरूपसे शिवलोकमें अवस्थान-पूर्वक ज्ञानियोंको ज्ञानदान, योगियोंको योग-शिक्षा एवं भक्तोंको निजाचरणद्वारा भक्ति-उपदेश करते हैं, एवं तमोगुणका आश्रयकर रुद्ररूपसे सृष्टिका संहार-कार्य करते हैं।

परमतत्त्व श्रीकृष्णके साथ शिवका भेदाभेद-सम्बन्ध है। निर्गुण-अवस्थामें ये और श्रीकृष्ण एक ही हैं, अर्थात् निजानन्द-प्रदान द्वारा समस्त चराचरका सर्वदा कल्याण करनेके कारण तत्त्वतः श्रीकृष्ण ही सदाशिवस्वरूप हैं; और सगुण-दशामें भक्तावतार होनेके कारण श्रीकृष्णसे इनकी भिन्न प्रतीति होती है। श्रीश्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीको शिक्षा देते समय यही उपदेश किया था—

निजांश कलासे कृष्ण कर तम स्वीकार।
संहारार्थ मायासह रुद्र रूप धार॥
माया सह विकारी रुद्र भिन्नाभिन्न रूप।
जीवतत्त्व नहीं है सो कृष्णांशस्वरूप॥

महाप्रभुके इन वाक्योंका फलितार्थ यह है कि प्रधानतः अवतार-धारणकी दो रीतियाँ हैं—एक स्वांशरूपसे होते हैं, दूसरे विभिन्नांशरूपसे। भगवान् जब कला या अंश-रूपसे स्वयं अवतीर्ण होते हैं, तब स्वांश-अवतार कहे जाते हैं; और जब किसी अधिकारी जीवको शक्ति-सञ्चारकर भेजते हैं, तब वह विभिन्नांश-अवतार कहाता है। श्रीशिव स्वांश-अवतार हैं अर्थात् इनकी गणना ईश्वर-कोटिमें है; जीव-कोटिमें नहीं है।

अब यहाँ एक यह प्रश्न उठता है कि शिव यदि ईश्वर हैं तो वैष्णव-ग्रन्थोंमें जो इसप्रकारके वचन पाये जाते हैं कि—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेत्सदा॥

अर्थात् नारायणदेवको जो ब्रह्मा, रुद्रादि देवताओंके समान देखता है वह मनुष्य पाषण्डी होता है—इनका क्या तात्पर्य है? इसका उत्तर यह है कि यहाँ समान शब्दसे पृथक् ईश्वर-बुद्धिसे अभिप्राय है, अर्थात् नारायणको एक पृथक् ईश्वर मानना एवं शिवादिको एक-एक पृथक् ईश्वर मानना; यह बहु-ईश्वरवादरूप पाषण्ड-मत है। इसीलिये वैष्णव-स्मृति श्रीहरिभक्तिविलासके नामापराध-प्रकरणमें लिखा है—

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं
धिया भिन्नं पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः॥

अर्थात् जो मनुष्य शिव एवं विष्णुके गुण-नाम आदि-में भेद-बुद्धि रखता है वह हरिनामका अपराधी है।

इसके अतिरिक्त उक्त श्रीग्रन्थके शिवरात्रिव्रतके प्रसङ्ग-में शिव-महिमापरक और भी कुछ वचन श्रीभगवदुक्तिके रूपमें उद्धृत किये गये हैं। यथा—

परात्परतरं यान्ति नारायणपरायणाः।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम्॥
यो मां समर्चयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रितः।
विनिन्दन् देवमीशानं स याति नरकायुतम्॥

मद्भक्तः शङ्करद्वेषी मद्द्वेषी शङ्करप्रियः।
उभौ तौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

अर्थ स्पष्ट है। सबका सारार्थ यह है कि, वैष्णव-सिद्धान्तानुसार, जिसप्रकार मत्स्य-कूर्मादिको परमतत्त्व श्रीकृष्णका लीलावतार मानकर उनका सम्मान किया जाता है, उसी प्रकार श्रीशिवको भी गुणावतार जानकर उनके प्रति सम्मान-भाव रखना चाहिये।

श्रीरामचरितमानसमें शिव-चरित

(लेखक—पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी)

रामं त्रिनेत्रं सोमार्धधारिणं शूलिनं परम्। भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं कपर्दिनमुपास्महे॥

रामचरितमानसमें प्रधानतः भगवत्-चरित तो है ही, परन्तु उसीके अन्तर्गत पाँच भागवतोंके भी चरित हैं। यथा—(१) उमा-चरित, (२) शम्भु-चरित, (३) भरत-चरित, (४) हनुमत्-चरित और (५) भुशुण्डि-चरित। इनमेंसे उमा-शम्भु-चरितके वक्ता योगी याज्ञवल्क्य और श्रोता भरद्वाज, भरत-चरितके वक्ता स्वयं गोस्वामीजी और श्रोता सुसजनवृन्द, हनुमत्-चरितके वक्ता जाम्बवान् और श्रोता श्रीरामचन्द्र और भुशुण्डि-चरितके वक्ता स्वयं भुशुण्डिजी और श्रोता गरुडजी हैं।

उमा-शम्भु-चरित ५६ दोहोंमें कहा गया है। जिस भाँति उमा-शम्भु अभिन्न हैं, उसी भाँति उनके चरित भी अभिन्न हैं; परन्तु ग्रन्थकारने लोकदृष्टिका अनुसरण करते हुए उसे ठीक दो समान भागोंमें विभक्त किया है। अट्ठाईस दोहोंमें उमा-चरित और अट्ठाईस ही दोहोंमें शम्भु-चरित कहा गया है। भेद इतना ही है कि उमा-चरित में केवल एक छन्द है और शिव-चरितमें पन्द्रह छन्द आये हैं; दोनों मिलाकर सोलह छन्द हैं। ऐसा क्यों हुआ, इस बातको तो छन्दके रहस्य जाननेवाले ही कह सकते हैं; और यहाँ उसके लिये उपयुक्त अवसर भी नहीं है। यहाँ तो इतना ही कहना है कि—

उमाचरित सुन्दर मैं गावा। सुनहु सम्भुकर चरित सुहावा॥

कहकर ग्रन्थकारने दोनों चरितोंको पृथक्-पृथक् कर दिया है।

शिवचरित कहते हुए गोस्वामीजीने सतर्षिके मुखसे निन्दाव्याजसे शिवतत्त्वनिरूपण ऐसी सुन्दरतासे कराया है कि जिसका रसास्वादन सरसचेता पाठक ही कर सकते हैं। सतर्षि कहते हैं—

निर्गुन निलज कुबेस कपाली। अकुल अगेह दिगम्बर ब्याली॥
कहहु कवन सुख अस बर पाए। भल भूलिहु ठगके बौराए॥

कहिये, इससे उत्तम शिवतत्त्वनिरूपण और क्या हो सकता है? जो बरका दूषण है, वही शिवतत्त्वनिरूपण है। शिव निर्गुण हैं, क्योंकि निष्कल और निर्विशेष हैं। शिव निलज हैं, क्योंकि 'एकमेवाद्वितीयम्' हैं। शिव अकुल हैं, क्योंकि अनादि और अजन्मा हैं। शिव अगेह हैं, क्योंकि अपरिच्छिन्न हैं। शिव दिगम्बर हैं, क्योंकि निरावरण हैं। शिव कुवेष हैं, क्योंकि वैराग्यकी मूर्ति हैं। शिव कपाली* हैं, क्योंकि सनातन हैं। शिव व्याली हैं, क्योंकि सर्वा-भिभावक हैं।

ऐसा होनेपर भी शिव महाभागवत हैं, यही उनकी अपार लीला है। एक रूपसे शिव निर्गुण, निराकार, निष्कल, निरञ्जन हैं; दूसरे रूपसे वही शिव भगवान्, सगुण, साकार, मृत्युञ्जय, जगद्गुरु, योगीश्वर, विश्वेश्वर, विश्वमूर्त्ति, आशुतोष महादेव हैं और तीसरी मूर्त्तिसे वही शिव महाभागवत, तारकोपदेशक, परमत्यागी, मदनमर्दन और दयाके समुद्र हैं। यथा—

* ब्रह्मदेवका कपाल हाथमें होनेसे शिव कपाली हैं। भाव यह कि जो ब्रह्माकी सृष्टि और संहार कर सकता है वह सनातन-देव है।

जरत सकल सुरवृन्द, विषम-गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मनमंद, को कृपालु शंकर सरिस ॥

जिन शिवका रामसे तादात्म्य है या यों कहिये कि शिव राम हैं और राम शिव हैं, (यदि यह न होता तो 'सेवक स्वामि सखा सियपीके' ऐसा गोस्वामीजी न लिख सकते, तादात्म्य बिना सेवक-स्वामी-सखा—इन तीन अत्यन्त भिन्न सम्बन्धोंका एकत्र सन्निवेश हो नहीं सकता था) वही शिव लोकशिक्षाके लिये श्रीरामचरितमानसमें भागवत हैं। वही शिव आज सतीके विरहसे दुखी हैं, कैलास उन्हें सूना मालूम होता है, वहाँ रहनेसे सतीकी स्मृति मनसे हटती नहीं, अतः—

जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ-तहँ सुनहिं रामगुनग्रामा॥
कतहुँ मुनिन्ह उपदेशहिं ज्ञाना। कतहुँ रामगुन करहिं बखाना॥

चिदानन्द सर्वज्ञ शिव बिगत मोह-मद-काम ।
विचरहिं महि धरि हृदय हरि सकल लोक अभिराम ॥

फिर क्या होता है ? भागवतके नेम, प्रेम और भक्तिसे भगवान् प्रकट होते हैं, सतीके हिमालयके घर जन्म लेनेका सँदेशा देते हैं, उनकी अति पुनीत करनीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और उनके पाणिग्रहणके लिये अनुरोध करते हैं—

अब बिनती मम सुनहु शिव जौं मोपर निज नेह ।
जाइ बिबाहहु सैलजहिं यह मोहि माँगे देहु ॥

भगवान्की यह दशा है कि प्रार्थना करते हैं, अपने स्नेहकी याद दिलाते हैं, याचना करते हैं। भागवत दूसरे संकटमें पड़े हैं, उन्हें विरह-दुःख स्वीकार है, परन्तु सीताका रूप जिस सतीने धारण किया था, उसका पाणिग्रहण करके भक्तिपथसे विचलित होना स्वीकार नहीं है। पर भागवत भगवत्के वचनका भी उलङ्घन नहीं कर सकता। चाहे कुछ भी हो, भगवत्के चाहनेपर भागवतको उसकी चाह रखनी पड़ती है। क्या करें, क्या न करें ? खैर, 'जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी' विवाह स्वीकार करना ही पड़ा।

कह शिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ वचन पुनि मेटि न जाहीं॥
शिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥

अपना काम कर चुकनेपर भगवत् अन्तर्धान होने लगे, पर भागवत ऐसा अवसर हाथसे क्यों जाने देने लगे ? शङ्करने उस मधुमयी मूर्त्तिको हृदयमें रख लिया, उसीके ध्यानमें मग्न हुए समाधि लग गयी।

इधर तारकासुरने देवताओंके नाकों दम कर रक्खा था। उसके लिये 'शम्भुशुक्रसंभूत सुत एहि जीतै रन सोइ' यह व्यवस्था थी। संयोग भी अनुकूल आ पड़ा था। पर शङ्करकी समाधिकी अवधिका ठिकाना क्या ? इसके पहलेवाली समाधि ८७००० वर्ष ठहर गयी थी, इस बार कितने सहस्र वर्ष रहेगी, कौन कह सकता है ? यहाँ मास, पक्ष बीतना कठिन हो पड़ा था। अब समाधिसे इन्हें जगावे कौन ? ब्रह्मदेवकी सम्मतिसे इस कार्यके लिये कामदेव भेजे गये और भगवदिच्छासे जगानेमें कृतकार्य भी हुए, पर शिवजीके क्रोधानलमें पतङ्ग हो गये। जगत्-विजयी कामको भस्म करनेके लिये महाभागवतकी कोपदृष्टि ही यथेष्ट थी। चलिये, सब बना-बनाया काम बिगड़ गया। जब काम ही नहीं तो शुक्रसंभूत सुत कहाँसे होने लगे ? पर आशुतोष रतिकी विनतीपर प्रसन्न हो गये। कामदेव अतन होकर फिर जी गये, देवताओंकी जान-में-जान आयी, अब क्या था ?

सब सुर विष्णु विरंचि समेता। गये जहाँ शिव कृपानिकेता॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा। भये प्रसन्न चन्द्रअवतंसा॥
बोले कृपा-सिन्धु वृषकेतू। कहहु अमर आये केहि हेतू॥
कह बिधि प्रभु तुम अंतरजामी। तदपि भगतिबस बिनवहुँ स्वामी॥

सकल सुरन्हके हृदय अस संकर परम उछाह ।
निज नयनन देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाह ॥

स्वामीकी आज्ञा पहलेसे ही हो चुकी थी, स्वीकार करनेमें उज्र ही क्या था ? फिर तो देवताओंने बड़ी शीघ्रतासे काम लिया। कहीं फिर समाधिमें न बैठ जायँ। तुरन्त सप्तर्षि हिमाचलके यहाँ भेजे गये, लग्न ठीक हुई, गणोंने वरका शृङ्गार आरम्भ कर दिया, देवतालोग बराती बने, विष्णुके चुटकी लेनेपर गणलोग भी बारातमें शामिल हुए।

जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता॥

बारात चल पड़ी।

उधर हिमाचलके यहाँ गहरी तैयारी थी, बारातकी आहट मिलते ही लोग अगवानीके लिये निकल पड़े, देवताओंका दर्शन करके बड़े सुखी हुए, तबतक बारातका मूल-भाग सामने आ पड़ा। फिर क्या था ?

बिडरि चले बाहन सब भागे।
बालक सब लै जीव पराने। धरि धीरज तहँ रहे सयाने॥

ईश्वर-ईश्वर करके बारात दरवाजे लगी। सास परिछन-के लिये आयीं, पर—

बिकट बेष जब रुद्रहिं देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गये महेस जहाँ जनवासा॥

घरमें प्रलय मच गया, मैना पहाड़परसे कूदकर प्राण देनेपर तैयार हुईं। भला, ऐसे वरसे ऐसी रूप-गुणवती कन्याका विवाह कैसे हो?

अब तो वरपक्षके भी छक्के छूट गये। नारदजीको महलमें जाकर शक्ति-तत्त्वका निरूपण करना पड़ा—

मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदम्बा * तव सुता भवानी॥
अजा अनादि शक्ति अविनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि॥
जग संभव पालिनि लयकारिनि। निज इच्छा लीला वपुधारिनि॥
जनमी प्रथम दक्षगृह जाई। नाम सती सुंदर तनु पाई॥

—इत्यादि।

और सरकारको भी समाजके सहित अपना सहज वेष बदलना पड़ा। ब्याह तो ब्याह ही है। चाहे ईश्वरका ही क्यों न हो।

लखि लौकिक गति शम्भु जानि बड़ सोहर।
भये सुन्दर सत कोटि मनोज मनोहर॥
नील निचोल छाल भइ फनिमनि भूषन।
रोम रोमपर उदित रूपमय पूषन॥
गन भये मंगल वेष मदन-मन-मोहन।
सुनत चले हिय हरखि नारि-नर जोहन॥

(पा० मं०)

बात सब ठीक हो गयी, सहज एकाकीका विवाह हुआ, सहज निःसङ्गका नित्यसङ्गिनीसे संयोग हुआ, अब—

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गणन समेत बसैं कैलासा॥
हर-गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥
तब जनमेउ षट बदन कुमारा। तारक असुर समर जेहि मारा॥

भाव यह कि भागवतका भोग-विलास भी जगत्के कल्याणके लिये ही होता है, नहीं तो जिन्होंने कामको भस्म किया उनका भोग-विलास कैसा? इस भोग-विलासका तत्त्व ग्रन्थकर्त्ताने स्वयं भगवतीके मुखसे सप्तर्षिके प्रति कहलाया है—

तुम जो कहेउ हर जारेउ मारा। सो अति बड़ अबिबेक तुम्हारा॥
तात अनलकर सहज सुभाऊ। जिमि तेहि निकट जाहि नहि काऊ॥
गये समीप सो अवसि नसाई। अस मन्मथ महेश कै नाई॥
तुम्हरे जान काम अब जारा। अबलगि सम्भु रहे सविकारा॥
हमरे जान सदा शिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥

संक्षेपतः यही शिव-चरित रामचरितमानसमें वर्णित है; और उसके पाठसे पता चलता है कि शिव ही निराकार, निर्गुण, निष्कल ब्रह्म हैं और उमा ही उनकी माया हैं। मायी होनेसे वही शिव सगुण, साकार और सविशेष हो जाते हैं। यथा—

तुम माया भगवान शिव सकल जगत-पितु-मातु।

और वही शिव अपनी माया उमाके साथ कभी संयोगी होते हैं, कभी वियोगी होते हैं। कभी भगवत् होते हैं, कभी भागवत होते हैं। कभी राम होते हैं, कभी श्याम होते हैं। लोकानुग्रहके लिये अनेक प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं, जिसे देखकर गोस्वामीजी-ऐसे महाकविको भी कहना पड़ता है कि—

चरित-सिन्धु गिरिजा-रवन वेद न पावइ पार।
बरनै तुलसीदास किमि अति मतिमंद गँवार॥

श्रीहरिहरसाम्यवर्णन

उनते कढ़ी है गंग, इनते बढ़ी है गंग, वे हैं जो मुरारी तो पुरारी ए कहावैं हैं,
उनके रमा हैं संग, इनके उमा हैं संग, उतै साँप-सेज, इतै साँप लपटावैं हैं।
नंद-गोद राजैं वह, नंदि-पीठ राजैं यह, सीस चंद छावैं, चंद सीसपैं चढ़ावैं हैं,
पापके हरैया हरि, तापके हरैया हर, एक हैं, कहावैं दोय भक्तनको भावैं हैं॥

—श्रीनन्दलालजी माथुर

* जगत्की प्रसवित्री होते हुए भी तुमसे प्रसूत, भवानी सदाशम्भुअर्धङ्गनिवासिनि होनेपर भी कुमारी, अजा, अनादि शक्ति होते हुए भी तव सुता। भाव यह कि अघटितघटनापटीयसी माया हैं।

श्रीशिवनिर्माल्यादिनिर्णय

(लेखक—श्रीहाराणचन्द्रजी भट्टाचार्य, प्रधानाध्यापक, मारवाड़ी-संस्कृत-कालेज, काशी)

अवतरणिका

शिवनैवेद्यके विषयमें शिवपुराणादि शास्त्र-ग्रन्थोंमें विस्तारसे निरूपण है; इसके पूर्व अनेक विशिष्ट पण्डित भी विचारकर इस विषयमें शास्त्रीय सिद्धान्त प्रकाशित कर चुके हैं, तथापि इस समय कुछ लोग शास्त्रीय सिद्धान्तकी अनभिज्ञताके कारण इस विषयमें भ्रममें पड़े हैं; इसलिये शिवाङ्कमें दो-चार अक्षर लिख देना कर्तव्य समझता हूँ।

शिवनैवेद्य-ग्रहणकी प्रशंसा

शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताके २२वें अध्यायमें शिव-नैवेद्यकी प्रशंसा स्पष्टरूपसे लिखी है—

दृष्ट्वापि शिवनैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः।
भुक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्यायान्ति कोटिशः॥ ४॥

अलं यागसहस्रेण ह्यलं यागार्बुदैरपि।
भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ५॥

आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसा मुदा।
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम्॥ ७॥

न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते।
स पापिष्ठो गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम्॥ ९॥

शिवदीक्षाऽन्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम्॥ ११॥

श्लोकार्थ सहज हैं। इनमें शिवनैवेद्य-भक्षणकी प्रशंसा तथा उसके त्यागकी निन्दा है। शिवनैवेद्य-भक्षण करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं, पुण्यकी प्राप्ति होती है। जिसकी शिवनैवेद्यके ग्रहणमें इच्छा नहीं होती, वह महापापी नरकको प्राप्त होता है—यह इन वाक्योंका संक्षिप्त तात्पर्य है।

जिन पुरुषोंकी शिव-मन्त्रमें दीक्षा हुई है, उन सबके लिये लिङ्गका नैवेद्य भक्षण करनेकी विधि है। जिनकी अन्य देवताकी दीक्षा है, उनके लिये निषेध कहा है। (शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता अध्याय २२)

अन्यदीक्षायुतनृणां शिवभक्तिरताऽऽत्मनाम्।
शृणुध्वं निर्णयं प्रीत्या शिवनैवेद्यभक्षणे॥

शालग्रामोद्भवे लिङ्गे रसलिङ्गे तथा द्विजाः।
पाषाणे राजते स्वर्णे सुरसिद्धप्रतिष्ठिते॥

काश्मीरे स्फाटिके राते ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वशः।
चान्द्रायणसमं प्रोक्तं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥

ब्रह्महाऽपि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति॥

(१२–१५)

जिनकी अन्य देवताकी दीक्षा है और श्रीशिवमें भक्ति है—उनके लिये शिवनैवेद्य-भक्षणका यह निर्णय है—

जिस स्थानमें शालग्रामशिलाकी उत्पत्ति होती है, वहाँके उत्पन्न लिङ्गमें, पारद (पारा) के लिङ्गमें, पाषाण, रजत तथा स्वर्णसे निर्मित लिङ्गमें, देवता तथा सिद्धोंके प्रतिष्ठित लिङ्गमें, केशरसे निर्मित लिङ्गमें, स्फटिक-लिङ्गमें, रत्ननिर्मित लिङ्गमें, समस्त ज्योतिर्लिङ्गोंमें श्रीशिवका नैवेद्य-भक्षण चान्द्रायण-व्रतके समान पुण्यजनक है। ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष भी यदि पवित्र होकर शिवनिर्माल्य भक्षणकर उसे धारण करे तो उसका सारा पाप नष्ट हो जाता है।

इन वाक्योंसे यह स्पष्ट है कि जिनकी शैवी दीक्षा नहीं है वे भी उपर्युक्त लिङ्गोंके नैवेद्यका भक्षण कर सकते हैं, परन्तु पार्थिवलिङ्ग प्रभृतिके, अर्थात् जिनके नाम श्लोकोंमें नहीं आये हैं, नैवेद्यका भक्षण न करें। शैवी-दीक्षावाले तो सभी लिङ्गोंके नैवेद्यका भक्षण करें—यह पहले उद्धृत किये हुए—

शिवदीक्षाऽन्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम्।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम्॥

(शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२। ११)

—इस वचनमें स्पष्ट कहा है।

ज्योतिर्लिङ्गोंके नाम तथा नैवेद्यकी ग्राह्यता

ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोकमें ज्योतिर्लिङ्गोंका नैवेद्य सभीको ग्रहण करना चाहिये यह बताया है। ज्योतिर्लिङ्गोंका निरूपण शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहितामें इसप्रकार किया है और उनके नैवेद्यको ग्राह्य तथा भक्ष्य कहा है—

सौराष्ट्र-देशमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ओङ्कारमें परमेश्वर, हिमालयमें केदार, डाकिनीमें भीमशङ्कर, वाराणसीमें विश्वनाथ, गोमतीतटमें त्र्यम्बक, चिताभूमि (अन्य लिङ्गोंके स्थानकी तरह यह भी देशविशेष है—मृतककी चिता नहीं है) में वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर, शिवालयमें घुश्मेश—ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं; इनके नैवेद्य-का ग्रहण तथा भोजन करना चाहिये। जो इनके नैवेद्यका ग्रहण तथा भोजन करते हैं, उनके सारे पाप क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं।

श्रीविश्वेश्वर प्रभृति लिङ्गोंके नैवेद्यकी ग्राह्यता

काशीमें श्रीविश्वेश्वर-लिङ्गका नैवेद्य-भक्षण उसके ज्योति-लिङ्ग होनेके कारण सभीके लिये पुण्यजनक है, यह शास्त्रप्रमाण-से सिद्ध है। पहले शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताका जो वचन उद्धृत किया गया है, उसमें देवता तथा सिद्धोंके द्वारा प्रतिष्ठित सभी लिङ्गोंके नैवेद्यको भक्ष्य बताया है। काशीमें शुक्रेश्वर, वृद्धकालेश्वर, सोमेश्वर प्रभृति जितने पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं, वे सभी किसी-न-किसी देवता या सिद्धके द्वारा प्रतिष्ठित किये हुए हैं; इसलिये काशीके पुराण-प्रसिद्ध लिङ्गों-का नैवेद्य शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य—सभीको भक्ष्य है।

श्रीविश्वेश्वर प्रभृति लिङ्गोंके स्नानजलकी महिमा

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम्।
त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति॥

(शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२। १८)

जो मनुष्य शिवलिङ्गको विधिपूर्वक स्नान कराकर उस स्नानके जलका तीन बार आचमन करते हैं उनके शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकारके पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। श्रीविश्वेश्वरके स्नानके जलका विशेष माहात्म्य है—

जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः।
एष जालन्धरो बन्धः समस्तसुरदुर्लभः॥

(स्कन्दपुराण—काशीखण्ड ४१। १८०)

श्रीविश्वेश्वरके स्नान-जलको मस्तकमें धारण करना, यह योगशास्त्रमें प्रतिपादित जालन्धर-बन्धके समान पुण्य-जनक है और समस्त देवताओंको दुर्लभ है।

मीमांसक पद्धतिसे वचनोंकी एकवाक्यता

ऊपर उद्धृत किये हुए शास्त्र-वाक्योंसे शिव-नैवेद्यकी भक्ष्यता तथा शिवचरणोदककी ग्राह्यता सिद्ध होती है। इस विषयमें कुछ शास्त्रवाक्य अन्य प्रकारके भी मिलते हैं; पूर्व पण्डितोंकी परम्पराके अनुसार उन वचनोंकी मीमांसा की जाती है। श्रुति-वाक्योंमें परस्पर विरोध प्रतीत होनेपर पूर्व-मीमांसा तथा उत्तर-मीमांसाकी युक्तियोंसे उसका निर्णय किया जाता है। धर्मशास्त्रके निबन्धकार कमलाकर भट्ट, वाचस्पति मिश्र, शूलपाणि, रघुनन्दन भट्टाचार्य प्रभृति महानुभावोंने मीमांसाकी पद्धतिसे परस्पर विरुद्ध-से प्रतीत होनेवाले शास्त्रवाक्योंका अर्थ निर्णय किया है और उसी निर्णयको सभी शिष्टजन आजतक मानते आये हैं। मीमांसा-की पद्धतिको न जाननेसे विरुद्ध वचन देखकर लोगोंको भ्रम हो जाता है। इसलिये मीमांसाकी पद्धतिसे यहाँ निर्णय दिखाया जाता है—

पूर्व-मीमांसा, प्रथम अध्याय, प्रथम पाद, चतुर्थ सूत्रमें मीमांसकधुरन्धर श्रीकुमारिल भट्ट लिखते हैं—

सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदश्च नेष्यते।

(श्लोकवार्तिक १। १। ४। ९)

जिन स्थलोंमें एकवाक्यता सम्भव है वहाँ वाक्यभेद इष्ट नहीं है; (क्योंकि, वाक्यभेद करनेसे अर्थात् भिन्न वाक्य माननेसे वहाँ गौरव होता है।) यही युक्ति प्रकृतमें सारी मीमांसाका मूल है। सामान्य वचनका विशेष वाक्यमें उप-संहार किया जाता है अर्थात् विशेष वाक्यके साथ सामान्य वाक्यकी एकवाक्यतासे विशेष वाक्यके विषयमें सामान्य वचनका सङ्कोच किया जाता है—सामान्य वाक्यको विशेष विषयमें नियमित किया जाता है—यह मीमांसकोंकी युक्ति-युक्त सिद्धान्तपद्धति है। कुमारिल भट्टने यही बात तन्त्र-वार्तिकमें कही है—

सामान्यविधिरस्पष्टः संह्रियेत विशेषतः।

विधि तथा निषेधोंका उपसंहार

यह उपसंहार विधिवाक्य तथा निषेधवाक्य दोनोंका माना गया है। 'पुरोडाशं चतुर्धा करोति' इस सामान्य

विधिका 'आग्नेयं चतुर्धा करोति' इस विशेष वाक्यमें उपसंहार माना गया है। इसी पद्धतिके अनुसार—

सहानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात्।
या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत्।
सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत्॥

न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्षिता।
न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी॥

ब्राह्मणीके लिये सहमरणके निषेधक इन सामान्य निषेध-वाक्योंका—

पृथक् चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति॥

अर्थात् पृथक् चितामें आरूढ़ होकर ब्राह्मणीको सती न होना चाहिये, इस विशेष निषेध-वाक्यके साथ उपसंहार होता है। यह सिद्धान्त प्राचीन प्रामाणिक मीमांसक शङ्कर भट्टने 'मीमांसाबालप्रकाश' में प्रतिपादित किया है। वेद-भाष्यकार माधवाचार्यने 'पराशर-भाष्य' में तथा कमलाकर भट्टने 'निर्णय-सिन्धु' में इन निषेध-वाक्योंकी इसी प्रकार एकवाक्यता मानी है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि सामान्य निषेध-वचनोंका विशेष वचनोंमें उपसंहार प्रामाणिक ग्रन्थकारोंको सम्मत है। इसी पद्धतिसे शिवनिर्माल्यके निषेधक सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एकवाक्यता करनेसे इस विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता।

शिवनिर्माल्यकी अग्राह्यताकी व्यवस्था

शिवनिर्माल्यकी अग्राह्यताके प्रतिपादक वचन ये हैं—

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामशिलासङ्गात् (स्पर्शात्) सर्वं याति पवित्रताम्॥

(शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता २२। १९)

अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
मह्यं निवेद्य सकलं कूप एवं विनिःक्षिपेत्॥

(पाद्मे शिवोक्तिः)

विसर्जितस्य देवस्य गन्धपुष्पनिवेदनम्।
निर्माल्यं तद्विजानीयाद् वर्ज्यं वस्त्रविभूषणम्॥
अर्पयित्वा तु ते भूयश्चण्डेशाय निवेदयेत्।

(स्कान्दे सूतोक्तिः)

धराहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान्।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत्॥

(निर्णयसिन्धुमें उद्धृत)

इन वाक्योंसे यह सिद्ध होता है कि भूमि, वस्त्र, भूषण, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र आदि छोड़कर श्रीशिवके चढ़े हुए पत्र, पुष्प, फल, जल—ये सब निर्माल्य अग्राह्य हैं, इन निर्माल्योंको चण्डेश्वरके निवेदन करना चाहिये। यद्यपि ये निर्माल्य स्वयं अग्राह्य हैं तथापि शालग्राम-शिला-स्पर्शसे पवित्र—ग्रहणके योग्य—हो जाते हैं।

इन वचनोंसे यह स्पष्ट हो गया कि श्रीशिवके जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग हैं, उनका ग्रहण निषिद्ध है; जो निर्माल्य या नैवेद्य चण्डेश्वरके भाग नहीं हैं, उनके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है—उनको ग्रहण करना चाहिये। इसलिये शिवपुराण-विद्येश्वरसंहितामें स्पष्ट कहा है—जिनमें चण्डका अधिकार है, मनुष्य उन निर्माल्यों या नैवेद्योंका भक्षण न करें—

चण्डाधिकारो यत्रास्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः।

(२२। १६)

यह भी उसीमें कहा है कि जिनमें चण्डका अधिकार नहीं है, उनका भक्तिपूर्वक भक्षण करना चाहिये—

चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तच्च भक्तितः।

(शिवपुराण—विद्येश्वरसंहिता २२। १६)

शिवनिर्माल्य-निषेधका परिहार

निम्नप्रकारके लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है, इसलिये इन लिङ्गोंके निर्माल्य ग्राह्य तथा भक्ष्य हैं—

बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥

(शि० पु० वि० सं० २२। १७)

बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर), लौह (स्वर्णादिधातुमय) लिङ्ग, सिद्धलिङ्ग (जिन लिङ्गोंकी उपासनासे किसीने सिद्धि प्राप्त की है, या जो सिद्धोंद्वारा प्रतिष्ठित हैं), स्वयम्भूलिङ्ग (केदारेश्वर प्रभृति)—इन लिङ्गोंमें तथा शिवकी प्रतिमाओं-(मूर्त्तियों) में चण्डका अधिकार नहीं है।

लिङ्गे स्वायम्भुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते।
सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत्॥

(निर्णयसिन्धुमें उद्धृत)

इस वाक्यमें 'रत्ननिर्मित तथा पारदनिर्मित लिङ्गमें भी चण्डका अधिकार नहीं है'—इतना अधिक कहा गया है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि इन शिवलिङ्गोंके निर्माल्य या नैवेद्यका ग्रहण करनेमें दोष नहीं है।

नर्मदेश्वरके निर्माल्यकी ग्राह्यता

वर्तमान श्रीविश्वेश्वर-लिङ्ग बाणलिङ्ग (नर्मदेश्वर) हैं। इसलिये उनके स्नानोदक, निर्माल्य तथा नैवेद्यादिमें अग्रहणकी शङ्का भी ठीक नहीं है। बाणलिङ्गके सम्बन्धमें उपर्युक्त वचनके अतिरिक्त मेरुतन्त्र (चतुर्दश पटल) में भी विशेष वचन है—

बाणलिङ्गे न चाशौचं न च निर्माल्यकल्पना।
सर्वं बाणार्पितं ग्राह्यं भक्त्या भक्तैश्च नान्यथा॥
ग्राह्याग्राह्यविचारोऽयं बाणलिङ्गे न विद्यते।
तदर्पितं जलं पत्रं ग्राह्यं प्रसादसंज्ञया॥

बाणलिङ्गके विषयमें ग्राह्य तथा अग्राह्यका विचार नहीं है। बाणलिङ्गपर चढ़ाया हुआ सभी कुछ (जल, पत्र आदि) भक्तिपूर्वक प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये—यह इस वाक्यमें स्पष्ट बताया गया है।

सिद्धलिङ्ग तथा स्वयम्भूलिङ्ग

शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहिता तथा काशीखण्ड प्रभृति ग्रन्थोंके अवलोकनसे प्रतीत होता है कि काशी प्रभृति तीर्थोंमें पुराणप्रसिद्ध जितने भी लिङ्ग हैं, उनमें कोई स्वयम्भूलिङ्ग हैं, कोई सिद्धलिङ्ग हैं। जो लिङ्ग भक्तोंके अनुग्रहके लिये स्वयं प्रकट हुए हैं वे स्वयम्भूलिङ्ग हैं, जो लिङ्ग सिद्ध महात्मा जनोंद्वारा प्रतिष्ठित या उपासित हैं वे सिद्धलिङ्ग हैं—वे सभी पुराणप्रसिद्ध हैं। ऊपर उद्धृत किये हुए शिवपुराणके वचनके अनुसार पुराणप्रसिद्ध इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार नहीं है और उनके निर्माल्य या नैवेद्यके ग्रहणमें कोई दोष नहीं है; अपितु पूर्वप्रदर्शित शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिताके वाक्योंके अनुसार उन लिङ्गोंके नैवेद्यका ग्रहण पुण्यजनक है।

शिवनिर्माल्य-निषेधकी विशेष व्यवस्था

पूर्वप्रदर्शित जिन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार है उनके विषयमें भी विशेष व्यवस्था है और वह इसप्रकार है—

लिङ्गोपरि च यद् द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः।
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिङ्गस्पर्शबाह्यतः॥

(शि०पु०वि०सं० २२। २०)

जो वस्तु लिङ्गके ऊपर रखी जाती है, वह अग्राह्य है। जो वस्तु लिङ्गस्पर्शसे रहित है अर्थात् जिस वस्तुको अलग रखकर श्रीशिवजीको निवेदित किया जाता है—लिङ्गके ऊपर नहीं चढ़ाया जाता—वह अत्यन्त पवित्र है।

लिङ्गार्चनतन्त्र—द्वादशपटलमें भी शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ायी हुई वस्तुओंको अग्राह्य बताया है—

यत्किञ्चिदुपचारं हि लिङ्गोपरि निवेदयेत्।
तन्निर्माल्यं महेशानि अग्राह्यं परमेश्वरि॥

इन वाक्योंके साथ एकवाक्यता करनेसे पता लगता है कि जितने शिवनिर्माल्यके निषेधक वाक्य हैं, सभी लिङ्गके ऊपर चढ़ायी हुई वस्तुओंका निषेध करते हैं।

शिवनिर्माल्यकी व्यवस्थाका सारांश

समस्त सामान्य वचनोंके साथ विशेष वचनोंकी एकवाक्यता करनेसे यह सिद्ध होता है कि—

नर्मदेश्वर लिङ्ग, धातुमय लिङ्ग, रत्न-लिङ्ग, पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग—इन लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए निर्माल्यका ग्रहण तथा भक्षण करना शास्त्रविधिसम्मत है। अन्य लिङ्गोंके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्योंका ग्रहण करना शास्त्रसम्मत नहीं है। शिवनिर्माल्य-ग्रहण तथा शिव-नैवेद्य-भक्षणके निमित्त जो प्रायश्चित्त शास्त्रमें कहे गये हैं, वे भी इन निषिद्ध नैवेद्य तथा निर्माल्योंके विषयमें ही हैं। जिन शिव-नैवेद्य तथा शिव-निर्माल्यका ग्रहण और भक्षण शास्त्रविधिसम्मत है, उनके ग्रहण तथा भक्षणके निमित्त प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। निषिद्ध कर्मोंके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्त कहे गये हैं, विहित कर्म करनेसे प्रायश्चित्तकी प्राप्ति ही नहीं है। पापोंके हटानेके लिये प्रायश्चित्त किया जाता है। विहित कर्मके अनुष्ठानसे पाप नहीं होता, अपितु विहित कर्मके अननुष्ठान, निषिद्ध कर्मके आचरण और इन्द्रियोंका निग्रह न करनेसे पापोंकी उत्पत्ति होती है; उन्हीं पापोंकी शुद्धिके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्तका उपदेश किया गया है—

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात्।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति॥
तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये।
एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३। २१९-२२०)

निर्णयसिन्धु तृतीय परिच्छेद पूर्वभागमें भी श्रीशिव-

निर्माल्यके विषयमें इसी प्रकार व्यवस्था की है। नर्मदेश्वर-लिङ्ग, धातुमयलिङ्ग, रत्नलिङ्ग तथा स्वयम्भू और सिद्धलिङ्ग (जो पुराणप्रसिद्ध लिङ्ग हैं) इन लिङ्गोंमें चण्डका अधिकार न होनेसे इनके ऊपर चढ़ाये हुए नैवेद्य तथा निर्माल्य सभीके भक्ष्य तथा ग्राह्य हैं, यह पहले कहा जा चुका है। जो वस्तुएँ शिवलिङ्गपर चढ़ायी नहीं गयी हों, किन्तु किसी भी लिङ्गको निवेदित की गयी हों, वे वस्तुएँ शैवी दीक्षा-याले मनुष्योंके लिये ग्राह्य हैं। जिन्हें शैवी दीक्षा नहीं है उनके लिये पार्थिवलिङ्गके निवेदितको छोड़कर और सभी लिङ्गोंको निवेदित की हुई वस्तुएँ तथा शिवप्रतिमाको निवेदित किये हुए प्रसाद ग्राह्य हैं। जिन शिवनिर्माल्योंके लिये निषेध है, वे भी शालग्राम-शिलाके संसर्गसे ग्राह्य हो जाते हैं, यह शास्त्रमर्यादा है।

शिवनिर्माल्य-धारणके प्रायश्चित्तका निर्णय

'प्रायश्चित्तविवेक', 'तिथितत्त्व' तथा 'निर्णयसिन्धु' आदि ग्रन्थोंमें यह वचन उद्धृत है—

स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं सवासा (वाससा) आप्लुतः शुचिः।

अर्थात् रुद्रके निर्माल्यको स्पर्श करनेवाला पुरुष सचैल स्नानसे शुद्ध होता है।

रघुनन्दन भट्टाचार्यने तिथितत्त्व-शिवरात्रिप्रकरणमें इस सामान्य वचनकी अन्य विशेष वचनके साथ एकवाक्यता की है—

निर्माल्यं यो हि मद्भक्त्या शिरसा धारयिष्यति।
अशुचिर्भिन्नमर्यादो नरः पापसमन्वितः॥
नरके पच्यते घोरे तिर्यग्योनौ च जायते॥

(स्कन्दपुराण)

इस वचनमें जो अशुचि अवस्थामें शिवनिर्माल्यको धारण करते हैं, उनके लिये पाप कहा है। इस वाक्यके अनुरोधसे पूर्वप्रदर्शित सामान्य वाक्य भी अशुचिविषयक समझना चाहिये। इन दोनों वाक्योंको मिलाकर यह अभिप्राय निकलता है—

अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको नहीं धारण करना चाहिये। जो अशुचि-अवस्थामें शिवनिर्माल्यको धारण करता है वह पापी होता है; इस पापकी शुद्धिके लिये सचैलस्नान प्रायश्चित्त है।

स्नानादिसे शुद्ध होकर शिवनिर्माल्यको धारण करनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पापतक नष्ट हो जाते हैं—यह शिवपुराण तथा स्कन्दपुराणके वाक्योंमें कहा है—

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति॥

(विद्येश्वरसंहिता २२। १५)

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते॥

(तिथितत्त्वमें उद्धृत स्कन्दपुराण)

शिवनिर्माल्य-धारणकी इस विधिके साथ अविरोध सम्पादन करनेके लिये—इस विधिके अनुरोधसे भी—पूर्वोक्त शिवनिर्माल्य-धारणका प्रायश्चित्त अशुचिके विषयमें ही समझना उचित है।

शिवनिर्माल्य-विषयक अन्य वाक्योंकी व्यवस्था

ऊपर शिव-निर्माल्य-ग्रहणके अनुकूल तथा प्रतिकूल शास्त्र-वाक्योंका तात्पर्य मीमांसक-पद्धतिसे निर्णय करके दिखाया गया है। इस विषयमें इसप्रकारके जितने भी अन्य शास्त्र-वाक्य हैं, उन सभीके तात्पर्यका पूर्वप्रदर्शित मीमांसक-पद्धतिसे निर्णय करना शास्त्रमर्मज्ञ पुरुषोंका कर्तव्य है। युक्तियुक्त मीमांसा-पद्धतिका परित्याग कर शास्त्र-वचनोंके अनर्थको अर्थकर जनतामें उपदेश देना अपने पाण्डित्यपर विज्ञजनोंका संशय उत्पन्न कराना ही है।

भस्मरुद्राक्षधारणकी विधि

इस अवसरपर प्रसङ्गवश और दो बातें कह देना अनुचित न होगा।

कुछ महाशय साम्प्रदायिक आग्रहवश भस्म-त्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्षधारणकी अनर्गल निन्दा करते हैं। उनसे मुझे कुछ कहना नहीं है। जो आग्रही हैं, वे अपना हठ छोड़नेके लिये कभी प्रस्तुत नहीं होंगे—इस बातको मैं निश्चितरूपसे जानता हूँ। इसलिये उन आग्रही महाशयोंके लिये व्यर्थ परिश्रम न उठाकर मैं जिज्ञासु जनताके लिये इस तत्त्वका उद्घाटन करना उचित समझता हूँ।

बृहज्जाबालोपनिषद्—पञ्चम ब्राह्मणमें भस्म-धारणकी विशेष प्रशंसा है—

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम्॥

त्यक्तवर्णाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि यः।
सकृत्तिर्यक्त्रिपुण्ड्राङ्कधारणात् सोऽपि पूज्यते॥
ये भस्मधारणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः।
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः॥
(७-९)

'जिस ब्राह्मणने मस्तकमें भस्म-त्रिपुण्ड्र धारण किया है, उसने समस्त शास्त्रोंका अध्ययन तथा श्रवण किया है—समस्त कर्त्तव्यका अनुष्ठान किया है। जिसने वर्णाश्रमके आचारका परित्याग कर दिया है, जिसकी समस्त क्रिया लुप्त हो गयी है—एक बार त्रिपुण्ड्र धारण कर लेनेपर वह भी पूजित होता है। जो मनुष्य भस्मधारण न कर कर्म करते हैं, कोटि जन्मोंसे भी उनकी संसारसे मुक्ति नहीं होती।'

बृहज्जाबालोपनिषद्में और भी बहुत वाक्य हैं जिनसे चारों वर्णोंके लिये भस्म-धारण कर्त्तव्य सिद्ध होता है। कालाग्निरुद्र तथा भस्मजाबाल-उपनिषदोंमें भी भस्मधारण-की विधि विस्तारपूर्वक लिखी है।

रुद्राक्षजाबालोपनिषद्में रुद्राक्ष-धारणकी विधि है—एक मुखसे लेकर चतुर्दशमुखपर्यन्त रुद्राक्षके धारणका फल विस्ताररूपसे वर्णन किया गया है। शिवपुराण-विद्येश्वरसंहिता तथा स्कन्दपुराण-काशीखण्डमें भी भस्म-रुद्राक्ष-धारणकी विधि है।

उपनिषद् श्रुति हैं; पूर्वोक्त सब उपनिषद् अथर्ववेदके अन्तर्गत हैं। धर्म तथा अधर्मके निर्णयमें श्रुति सबसे प्रबल प्रमाण है। महर्षि जैमिनि पूर्व-मीमांसामें लिखते हैं—

'विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्।'
(१।३।३)

इस सूत्रका अर्थ 'कुतूहलवृत्ति'में इसप्रकार लिखा है—

प्रत्यक्षश्रुतिविरोधे सति अनपेक्षं मूलप्रमाणानपेक्षं श्रुतिवाक्यमेव प्रमाणं स्यान्न तु स्मृतिवाक्यम्।

जिस स्थलमें प्रत्यक्ष श्रुतिसे विरोध हो, उस स्थलमें श्रुतिवाक्य ही प्रमाण है, स्मृतिवाक्य (मन्वादि धर्मशास्त्र तथा पुराण) प्रमाण नहीं हैं।

'व्याससमृति'में इस बातको स्पष्ट किया है—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात्तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥
(१।४)

'जिस विषयमें श्रुति, स्मृति तथा पुराणका परस्पर विरोध हो, उस स्थलमें श्रुतिवाक्य प्रमाण है; स्मृति तथा पुराणके विरोधस्थलमें स्मृति प्रमाण है।'

उपरिलिखित प्रमाणोंसे धर्माधर्मके निर्णयमें श्रुतिकी प्रबलता सिद्ध होती है। रुद्राक्ष-भस्म-धारणकी विधि पूर्वोक्त उपनिषदोंमें होनेसे पुराण-वाक्योंसे उसका निषेध नहीं हो सकता; किन्तु उन पुराण-वाक्योंको सर्वथा अप्रमाण न मानकर उनके विषयमें कुछ व्यवस्था करना उचित है। भस्म-धारणकी पौराणिक निन्दा श्रुतिसे विहित यज्ञादिकके भस्मके लिये नहीं है; यह निन्दा श्मशानभस्म—चिताभस्म—के विषयमें है। शास्त्रमें रुद्राक्षधारणकी पद्धति कही गयी है—उस शास्त्रोक्त पद्धतिका परित्यागकर कोई अपनी मनमानी पद्धतिसे यदि रुद्राक्ष धारण करे तो पुराणवाक्य उसकी निन्दा करता है। शास्त्र-मर्मज्ञ प्राचीन आचार्योंने इसी रीतिसे शास्त्र-वाक्योंके परस्पर विरोधके स्थलोंमें व्यवस्था की है। प्रकृत विषयमें भी प्राचीन आचार्योंकी रीतिका अनुसरण करना युक्तियुक्त तथा आवश्यक है। शास्त्रोंकी मीमांसा-पद्धतिपर ध्यान न देकर सारी बातोंकी उत्तम आलोचना न करते हुए केवल आपातदृष्टिसे शास्त्र-वाक्योंका अर्थ निर्णय करनेका प्रयत्न भ्रमोत्पादनकी ही चेष्टा है।

श्रीशिवजीकी उपास्यता

यजुर्वेदसंहिता-रुद्राध्याय तथा श्वेताश्वतर, अथर्वशिरः, रुद्रहृदय आदि उपनिषदोंमें उपक्रम तथा उपसंहारकी एकवाक्यतासे श्रीशिवके सर्वोत्तमत्व, परमेश्वरत्व, मोक्षदातृत्व, सर्वमयत्व प्रभृतिका निरूपण किया गया है। शिवकी उपासना श्रुतिप्रतिपादित है—यह श्रीअप्पय दीक्षितने 'शिवार्कमणिदीपिका' (२।२।३८) में सिद्ध किया है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने उपमन्यु नामक ब्राह्मणसे शैवी दीक्षा प्राप्तकर श्रीशिवजीके आराधनसे वरदान तथा साम्ब नामक पुत्रको प्राप्त किया था। महाभारत अनुशासनपर्व १४ तथा १५ वें अध्यायमें इसका वर्णन है। स्वयं श्रीकृष्णभगवान्ने अपने श्रीमुखसे उस स्थलमें शिवके माहात्म्य तथा अपने शिवाराधनके वृत्तान्तका वर्णन किया है। लिङ्गपुराण—पूर्वभाग—१०८ वें अध्यायमें भी श्रीकृष्णचन्द्रके शिवाराधन तथा शिवकी कृपासे साम्ब नामक पुत्रके लाभका वृत्तान्त लिखा है।

'शिवार्कमणिदीपिका'में—'फलमत उपपत्तेः'(३।२।३४)

इस अधिकरणमें श्रीशिवजीको समस्त पुरुषार्थका दाता प्रतिपादित किया गया है। 'तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्' (१।१।७) 'नेतरोऽनुपपत्तेः' इन दो सूत्रोंकी टीकामें श्रीशिवजीके मोक्षदातृत्वका निरूपण किया गया है। इसप्रकार श्रीशिवजीकी परम श्रेष्ठता तथा उपास्यता श्रुति तथा महाभारतादि सभी शास्त्रोंसे सिद्ध है।

श्रीशिवजीकी श्रेष्ठतासूचक महाभारतका एक वाक्य पाठक महाशयोंको भेंटकर लेख समाप्त किया जाता है—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे॥

(अनुशासनपर्व १५। ११) *

'शिवके समान देव नहीं है, शिवके समान गति नहीं है, शिवके समान दाता नहीं है, शिवके समान योद्धा (वीर) नहीं है।'

श्रीकृष्णकी शिव-भक्ति

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीहाथीभाई शास्त्री)

कुछ लोग 'श्रीकृष्ण शिव-भक्त थे' इस बातको सुनकर बड़े चकित होते हैं। उन लोगोंकी कदाचित् यह धारणा होगी कि संसारमें श्रीकृष्णावतारसे पहले देवाराधन-जैसी कोई चीज ही न रही हो।

वेदादि अनादि शास्त्रोंमें परमेश्वरके ध्यान, पूजन, आराधन, स्तवन आदिका जो विधान उपलब्ध होता है वह सब जगत्के अन्तर्यामी, शिव-विष्णु आदि अनेक नामोंसे निर्दिष्ट, एक ही ईश्वरतत्त्वका स्पष्ट उल्लेख कर रहा है।

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्॥

यह ऋग्वेदका मन्त्र समस्त विद्याओंके ईशान (स्वामी) और सर्वभूत अर्थात् प्राणिमात्रके नियन्ता, ईश्वरशब्दवाच्य महादेवका निरूपण करता है। इसी मन्त्रका प्रतीक लेकर श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनको परम हितका उपदेश देते हुए कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

इस श्लोकमें 'ईश्वर' शब्द—

ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः।

—इत्यादि अमरकोश-वाक्यके अनुसार साक्षात् महादेवका वाचक है। उन्हींकी शरण जानेका स्वयं श्रीकृष्ण अर्जुनको उपदेश करते हैं। यही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी शिव-भक्तिका प्रकृष्ट प्रमाण है, क्योंकि शरण-प्रपन्न अपने प्रिय सखा अर्जुनको परम श्रेयस्कर उपाय पूछनेपर वे शिव-शरणागतिका उपदेश देते हैं जो उनका स्वयं अनुभूत किया हुआ उपाय है। रही युद्धमात्रमें हिंसाजन्य पापकी आशंका, उसका परिहार अर्जुनके हृदयमें ठीक जँचानेके लिये—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

इस श्लोकका अवतरण किया गया है। कुछ महाशय 'सर्वधर्म' पदका दुनियाँभरके सब धर्म ऐसा अर्थ करते हैं, किन्तु यह भगवदाशय नहीं है। भगवान् यावत् धर्मका त्याग करके अपनी शरण लेनेको कहते हैं तो क्या भगवान्की शरण लेना धर्मसे भिन्न (अधर्म) है? सर्वथा नहीं; किन्तु यहाँ 'सर्वधर्म' पदसे सारे धर्मसम्बन्धी ऊहापोह-विचारका लक्ष्य कराया गया है; अर्थात् 'धर्माधर्मसम्बन्धी सारी शङ्काओंको छोड़कर तू मेरी शरण आ जा, मैं जो कुछ कहूँ उसे करनेको तैयार हो जा, मैं तेरा परम हितैषी हूँ, तेरे हृदयमें पापादिके सम्बन्धमें जो शङ्काएँ होती हैं उन सबको छोड़ दे, मैं सब पापोंसे तुझे छुड़ाऊँगा अर्थात् तुझे सर्व पापसे बचानेकी जिम्मेदारी मैं लेता हूँ'—ऐसा कहकर भगवान्ने अर्जुनको अपनी शरण लेनेकी प्रेरणा की है।

इस वाक्यमें 'माम् एकम्' कहनेका तात्पर्य यह है कि पाप-निवारणके लिये मुझ अकेलेकी शरण लेनेहीसे काम हो जायगा, किन्तु परम श्रेयःप्राप्तिके लिये शिवभक्ति ही

* इस लेखमें 'बङ्गवासी' कार्यालयसे प्रकाशित बङ्गाक्षरमें मुद्रित महाभारतके अनुसार अध्याय तथा श्लोकाङ्कका निर्देश किया गया है।

परम उपाय है। यद्यपि 'मोक्षयिष्यामि' (छुड़ाऊँगा) यह कहनेसे छोड़नेवाला कोई अन्य है, मैं छुड़ानेवाला हूँ, ऐसा तात्पर्य प्रतीत होता है; तथापि 'नैवं पापमवाप्स्यसि' इत्यादि पापनिर्मुक्तिके प्रकार पहले ही कई बार बताये जा चुके हैं—उन्हींका फिर यहाँ लक्ष्य कराकर 'मा शुचः' इन दो पदोंसे शोकनिवृत्ति कराते हैं।

प्रासंगिक वचनोंका अर्थ प्रसंगानुसार करनेसे ही यथार्थ तात्पर्यका ग्रहण हो सकता है; आगे-पीछेका प्रसंग छोड़कर बीचमेंसे किसी वाक्यखण्डके आपाततः प्रतीत होनेवाले अर्थकी कल्पना करनेसे केवल मूल अर्थकी हानि ही नहीं होती, अपितु कभी-कभी अनर्थ होनेकी भी सम्भावना रहती है।

किसी आलिमने शिक्षाके तौरसे अपनी किताबमें लिखा—'नमाज़ मत पढ़ो'। इसके आगेके 'जब कि नापाक हो' इस वाक्य-शेषकी ओर लक्ष्य न देते हुए किसी महाशयने समझ लिया कि फलानी किताबमें नमाज़ पढ़नेकी मुमानियत (निषेध) की गयी है। ऐसे ही 'अणोरणीयान्' इस उपनिषद्-वचनके आगेके 'महतो महीयान्' इस वाक्य-शेषके प्रति लक्ष्य न देते हुए कई महात्माओंने आत्माको परमाणु मान लिया। इसप्रकार किसी वाक्यकी एक टाँग पकड़कर अर्थ करना बड़े साहसका काम है। इसीलिये किसी वाक्यके तात्पर्यका निर्णय करनेके लिये उपक्रम, उपसंहार आदि मीमांसा-शास्त्रमें माने गये हैं।

अर्जुनको हर एक संकटके समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने शिव-भक्तिका ही उपदेश दिया है और इसीसे उसके संकटकी निवृत्ति हुई है। 'जयद्रथको यदि सूर्यास्तके पहले न मार सकूँ तो मैं चिता-प्रवेश करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा जब अर्जुनने की तब सारी रात भगवान्ने अर्जुनको शिव-पूजनमें लगाकर उसे पाशुपतास्त्र पुनः प्राप्त कराया और 'मेरे रथके आगे यह त्रिशूलधर कौन है?' इसप्रकार अर्जुनके प्रश्न करनेपर 'जिसका तू आराधन करता है वही तेरी रक्षाके लिये यहाँ उपस्थित है और उसीके अनुग्रहसे सर्वत्र तेरी विजय होती है' ऐसा उत्तर श्रीकृष्णभगवान् देते हैं। महाभारत द्रोणपर्व अध्याय २०१ में लिखा है कि द्रोणाचार्यकी मृत्युके बाद जब अश्वत्थामाने क्रोधाक्रान्त होकर नारायणास्त्रका प्रयोग किया तब सारी पाण्डवसेना जलने लगी, चारों ओरसे अग्निकी ज्वालाएँ भभकने लगीं और श्रीकृष्णने अर्जुन आदि पाण्डवोंको तथा सात्यकि प्रभृति अपने इष्टजनोंको बचानेके लिये अपने-अपने वाहनोंसे उतारकर उनसे शस्त्रास्त्र छुड़ा दिया। क्योंकि नारायणास्त्रसे बचनेका एकमात्र उपाय अशस्त्र होकर भूमिपर खड़ा हो जाना ही है इस रहस्यको श्रीकृष्ण जानते थे; इस उपायका अनुष्ठान कराकर पाण्डवादि इष्टजनोंको भगवान्ने बचा लिया।

जब नारायणास्त्र बहुत-सी सेनाको दग्ध करके अदृश्य हो गया तब अश्वत्थामा पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण आदिको अक्षत देखकर हृदयमें सोचने लगा कि ये लोग कैसे बेदाग निकल गये। इतनेमें उसने व्यासभगवान्को रणभूमिमेंसे होकर गंगाजीकी ओर जाते देखा।

देखते ही अश्वत्थामा रथसे कूदकर व्यासजीके पास पहुँचा और प्रणाम करके बोला—भगवन्! कृपया मेरे मनोगत इस संशयका आप निवारण कीजिये। मेरे पिताजीने मुझे अस्त्र-विद्या सिखानेमें कुछ भेद रख लिया अथवा कलिकालके आ जानेसे मन्त्रोंका सामर्थ्य ही नष्ट हो गया या मेरे अन्दर कोई आचारवैगुण्य हो गया जिसके कारण मेरेद्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग किये जानेपर भी कृष्ण एवं पाण्डव आदि बच गये?

तब व्यासभगवान् मुसकराते हुए अश्वत्थामासे बोले—तेरे पिताने तुझे विद्या देनेमें किसी प्रकारका भेद नहीं रक्खा। यदि कहो कि कलिकालसे क्या मन्त्रोंका सामर्थ्य नष्ट हो गया तो श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके सिवा और सब क्यों जल गये? और तेरे अन्दर आचारवैगुण्यकी भी कोई सम्भावना नहीं है। किन्तु बात यह है कि श्रीकृष्ण और अर्जुनके स्वरूपका ज्ञान तुझे नहीं है, इसीसे तेरे मनमें अनेक प्रकारकी शंकाएँ हो रही हैं। इतना कहकर व्यासमुनि श्रीकृष्ण और अर्जुनका परिचय देते हुए कहने लगे—

योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः।
अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्वकृत्॥५७॥
स तपस्तीव्रमातस्थे शिशिरं गिरिमाश्रितः।
षष्टिं वर्षसहस्राणि वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः॥५९॥
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम्।
रुद्रमीशानमृषभं हरं शम्भुं कपर्दिनम्।
पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान्॥७१॥

तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकण्ठः पिनाकधृक् ।
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः ॥७९॥

भगवान् श्रीशिव उवाच

मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु ।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि ॥८०॥

स एष देवश्चरति मायया मोहयन् जगत् ।
तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनिम् ।
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीह्यर्जुनं सदा ॥८६॥
जन्मकर्मतपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलाः ।
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयार्चायां द्विजोत्तम ॥९२॥

'ये पूर्वजोंके भी पूर्वज, कमललोचन नारायण भगवान् विश्वका कार्य करनेके लिये धर्मपुत्रके रूपमें प्रकट हुए थे। इन्होंने हिमालय-पर्वतपर केवल वायु भक्षणकर साठ हजार वर्षपर्यन्त तीव्र तप करते हुए भक्तिपूर्वक विरूपाक्ष (त्रिलोचन), कपर्दी (जटाधर), रुद्र, ईशान, ऋषभ एवं हर इत्यादि संज्ञाओंवाले, विश्वेश्वर एवं विश्वके कारण, जगत्पति भगवान् शम्भुकी स्तुति की। उन देवताओंमें मुख्य ऋषिप्रवर नारायणकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर पिनाकधारी, अचिन्त्यस्वरूप भगवान् नीलकण्ठने उन्हें कई वर दिये। श्रीशिवने कहा—हे नारायण! मेरे प्रसादसे देव, गन्धर्व एवं मनुष्यादिकोंमें तुम अप्रमेय बलवाले होगे।'

'ये वही नारायणदेव अपनी मायासे जगत्को मोहित करते हुए विचरते हैं। इन्हींके तपःप्रभावसे इनकी समानताको प्राप्त हुए महामुनि नरको तू अर्जुनरूपमें जान। जन्म, कर्म और तपोयोग इन दोनोंका और तेरा भी पुष्कल है तथापि तुम शिव-मूर्त्तिका पूजन करते हो और ये दोनों शिवलिङ्गमें हरार्चन करते हैं, इतनी बात इनके अन्दर विशेष है।'

इसप्रकार यद्यपि अश्वत्थामा भी शिव-भक्त है तथापि लिङ्गमें शिवार्चन करनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन उसके द्वारा अजेय हैं, यह दिखलाकर भगवान् व्यासमुनिने श्रीकृष्णका परम शिवभक्तत्व स्पष्टरूपसे प्रतिपादन किया है।

लिङ्गपुराण (पूर्वार्द्ध) के अध्याय १०८ में लिखा है—

पुत्रार्थं भगवांस्तत्र तपस्तप्तुं जगाम ह ।
आश्रमं चोपमन्योर्वै दृष्टवांस्तत्र तं मुनिम् ॥ ४ ॥
नमश्चकार तं दृष्ट्वा धौम्याग्रजमहो द्विजाः ।
बहुमानेन वै कृष्णस्त्रिः कृत्वैव प्रदक्षिणम् ॥ ५ ॥
तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः ।
नष्टमेव मलं सर्वं कायजं कर्मजं तथा ॥ ६ ॥
भस्मनोद्धूलनं दत्त्वा उपमन्युर्महामुनिः ।
तमग्निरिति विप्रेन्द्रा वायुरित्यादिभिः क्रमात् ॥ ७ ॥
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं प्रददौ प्रीतमानसः ।
मुनेः प्रसादान्मान्योऽसौ कृष्णः पाशुपते द्विजाः ॥ ८ ॥
तपसा त्वेकवर्षेण दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ।
साम्बं सगणमव्यग्रं लब्धवान् पुत्रमात्मनः ॥ ९ ॥
तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयः शंसितव्रताः ।
दिव्याः पाशुपताः सर्वे तस्थुः संवृत्य सर्वतः ॥१०॥

'भगवान् श्रीकृष्ण पुत्रप्राप्तिके लिये तप करनेको तपोवनमें जाते हैं। वहाँ महामुनि उपमन्युके आश्रममें जब आते हैं तो धौम्यके ज्येष्ठ बन्धु उपमन्युका दर्शन होता है। तब मुनिको प्रणाम करके श्रीकृष्ण तीन प्रदक्षिणा करते हैं। उन मुनिवर्यके दर्शनसे ही श्रीकृष्णके कायज और कर्मज मल नष्ट हो जानेपर मुनि उन्हें भस्मोद्धूलन कराते हैं, फिर उपमन्यु मुनिसे श्रीकृष्ण शिवमन्त्रोपदेश ग्रहणकर एक वर्ष तपश्चर्या करते हैं। इस तपोऽनुष्ठानसे प्रसन्न होकर महेश्वर श्रीकृष्णको वर प्रदान करते हैं—इत्यादि।'

इसी लिङ्गपुराणके उत्तरार्द्धके पञ्चमाध्यायमें भगवान् विष्णु जब अम्बरीषको वर प्रदान करते हैं तब अम्बरीष श्रीविष्णुभगवान्से कहता है—

लोकनाथ परानन्द नित्यं मे वर्तते मतिः ।
वासुदेवपरा देव वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥
यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः ।
तथा भवाम्यहं विष्णो तव देव जनार्दन ॥

'हे लोकनाथ परमानन्दस्वरूप! मेरी वृत्ति वाणी, मन और शरीरके कर्मोंसहित वासुदेवपरायण है। जैसे आप देवाधिदेव परमात्मा शिवके भक्त हैं वैसे ही हे जनार्दन! विष्णो!! मैं आपका भक्त होऊँ, ऐसा अनुग्रह करिये।'

लिङ्गपुराणके उक्त दोनों प्रसङ्ग श्रीविष्णुके शिवभक्त होनेका स्पष्ट समर्थन करते हैं।

श्रीमहाभारत आनुशासनिक पर्वके चतुर्दशाध्यायमें

२२ वें श्लोकसे प्रारम्भकर भीष्मपितामहकी प्रेरणासे स्वयं वासुदेव कहते हैं—

न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः।
हिरण्यगर्भप्रमुखाः सेन्द्रा देवा महर्षयः॥२२॥
न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः।
स कथं नरमात्रेण शक्यो ज्ञातुं सतां गतिः॥२३॥
तस्याहमसुरघ्नस्य कांश्चिद् भगवतो गुणान्।
भवतां कीर्त्तयिष्यामि व्रतेशाय यथातथम्॥२४॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु भगवान् गुणांस्तस्य महात्मनः।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा कथयामास धीमतः॥२५॥

वासुदेव उवाच

यदवाप्तं च मे सर्वं साम्बहेतोः सुदुष्करम्।
इत्याद्युपक्रम्य—
पुत्रार्थिनी मामुपेत्य जाम्बवत्याह दुःखिता॥२९॥
त्वया द्वादशवर्षाणि व्रतीभूतेन शुष्यता।
आराध्य पशुभर्त्तारं रुक्मिण्यां जनिताः सुताः॥३२॥
तथा ममापि तनयं प्रयच्छ मधुसूदन॥३४॥
ततः कृतस्वस्त्ययनोऽहमगच्छं हिमालयम्।
क्षेत्रं च तपसां तत्र पश्याम्यद्भुतमुत्तमम्॥४४॥
दिव्यं वैयाघ्रपद्यस्य उपमन्योर्महात्मनः।
शिरसा वन्दमानं मामुपमन्युरभाषत॥६५॥
लप्स्यसे तनयं कृष्ण आत्मतुल्यं न संशयः।
तपः सुमहदास्थाय तोषयेशानमव्ययम्॥६६॥
द्रक्ष्यसे पुण्डरीकाक्ष महादेवं न संशयः।
अचिरेणैव कालेन यथा दृष्टो मयाऽनघ॥३७१॥
षोडशाष्टौ वरांश्चापि प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात्।
सपत्नीकाद्यदुश्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥३७३॥

'जिन ईशके कर्मोंकी गतिको तत्त्वसे हिरण्यगर्भादि देव और महर्षि भी नहीं जान सकते और जिनके स्थानको सूक्ष्मदर्शी आदित्यादि भी नहीं पा सकते वह सत्पुरुषोंद्वारा प्राप्य भगवान् शिव नरमात्रसे कैसे जाने जा सकते हैं ? उन असुरहन्ता भगवान् महेशके कुछ गुणोंको मैं व्रतनिष्ठावाले आपको यथार्थरूपसे कहकर सुनाऊँगा।' इतना कहकर श्रीकृष्ण स्वयं आचमन-प्राणायामादिद्वारा पवित्र होकर महात्मा शिवके गुणोंका वर्णन करने लगे। स्वयं वासुदेव कहते हैं—

'पहले मैंने अपने पुत्र साम्बके लिये जो तप किया था' इसप्रकार प्रारम्भ करके आगे कहने लगे—'पुत्रार्थिनी जाम्बवती मेरे पास आकर दुःखित होकर कहने लगी कि आपने द्वादशवार्षिकी तपश्चर्यासे शरीर-शोषणके द्वारा पशुपतिका आराधन करके देवी रुक्मिणीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न किये, वैसे ही हे मधुसूदन ! मुझे भी पुत्र प्रदान कीजिये।'

फिर मैं ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर तपश्चरणार्थ हिमालयपर गया। वहाँ मैंने एक अद्भुत तपःक्षेत्र देखा और व्याघ्रपादमुनिके पुत्र उपमन्युके दिव्य आश्रममें जाकर मस्तक नवाकर मुनिका वन्दन किया। तब मुनिने कहा—'हे कृष्ण ! अपने ही समान पुत्रकी प्राप्ति आपको जरूर होगी' महान् तपोऽनुष्ठानसे महादेवको प्रसन्न करो। हे पुण्डरीकाक्ष ! थोड़े ही समयमें जैसे मैंने शिवको प्राप्त किया वैसे ही तुमको भी शिवका साक्षात्कार होगा। अन्तमें महादेवसे १६ और पार्वतीसे ८ ऐसे २४ (पुत्ररूपी) वरदान, हे यदुश्रेष्ठ ! आपको मिलेंगे, मैं सत्य कहता हूँ। यह मुनिवचन सुनते ही मेरे हृदयमें दृढ़ विश्वास हो गया कि मुझे दैत्योंका मर्दन करनेवाले, देवोंके ईश्वर महादेवका अवश्य साक्षात्कार होगा। महादेव-सम्बन्धिनी कथाएँ सुनते हुए मुझे आठ दिन एक मुहूर्त्त-जैसे बीत गये। आठवें दिन उपमन्यु मुनिने मुझे शिव-दीक्षा देकर तपोऽनुष्ठानका आरम्भ कराया; जिसका साम्बादि पुत्रकी प्राप्तिरूप फल हुआ।

नारायणावतार श्रीकृष्ण-जैसे पतिका योग होनेमें रुक्मिणीको भी शिवाराधन ही निमित्त हुआ—यह श्रीमद्भागवत (स्कं० १० उत्तरार्द्ध अ० ५२ श्लोक ४०) में लिखा है—

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-
गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान् परेशः।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं
गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये॥

'वापी (बावली), कूप (कुआँ), तड़ाग (तालाब), आराम (बगीचा) आदि निर्माणरूप पूर्त्त, यज्ञ, देवार्चनादि इष्ट, अहिंसादि नियम, शिवरात्रि आदि व्रत और देव, ब्राह्मण, गुरु प्रभृतिका पूजन-सत्कार—इन सब सत्कर्मानुष्ठानद्वारा यदि मैंने भगवान् परेश महादेवका कुछ भी आराधन

किया हो तो गदाग्रज श्रीकृष्ण आकर मेरा पाणिग्रहण करें, शिशुपालादि अन्य कोई न करें। आगे भी—

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः।
देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती॥
(अ० ५३ श्लोक २५)

तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः।
भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम्॥
(अ० ५३ श्लोक ४५)

'मैं दुर्भगा (अभागी) हूँ। न तो धाता (ब्रह्मा) और न महेश्वर ही मेरे अनुकूल होकर मुझपर कृपा करते हैं, और देवी रुद्राणी गिरिजा सती भी मुझसे विमुख हैं।' इसप्रकार जब रुक्मिणी उद्विग्न होती है (तब) विधि जाननेवाली वृद्ध ब्राह्मण-स्त्रियाँ उस बाला (रुक्मिणी) से शिवयुक्त भवानीका वन्दन कराती हैं और रुक्मिणी स्वयं प्रार्थना करती है—

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम्।
भूयात्पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम्॥४६॥

'हे अम्बिके! तुम्हारी सन्तान गणपति, कार्त्तिकेयादियुक्त तुमको नमस्कार करती हूँ। मेरे पति श्रीकृष्ण ही हों। इस मेरी अभिलाषाको आप पूर्ण करें।'

इन सब निरूपणोंसे श्रीकृष्णचन्द्रके शिवभक्तत्वके साथ श्रीकृष्णमहिषी रुक्मिणीकी भी शिवभक्ति स्पष्ट प्रतीत होती है।

भगवान् श्रीकृष्ण परम शिवभक्त और शिव-महिमाके जाननेवाले हैं—यह कूर्मपुराणमें भी लिखा है—

कृष्णद्वैपायनः साक्षाद्विष्णुरेव न संशयः॥
को ह्यन्यस्तत्त्वतो रुद्रं वेत्ति तं परमेश्वरम्।
नार्जुनेन समः शम्भोर्भक्तो भूतो भविष्यति।
मुक्त्वा सत्यवतीसूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम्॥

'कृष्णद्वैपायन (व्यासमुनि) साक्षात् विष्णुरूप ही हैं, इसमें संशय नहीं। व्यासमुनिको छोड़कर परमेश्वर रुद्रको और कौन तत्त्वसे जान सकता है? सत्यवतीसुत व्यास और देवकीसुत श्रीकृष्ण—इन दोनोंके सिवा अर्जुनके समान कोई शिवभक्त भूतकालमें हुआ नहीं और भविष्यमें होगा भी नहीं।'

इन वाक्योंसे श्रीकृष्णका परम शिवभक्तत्व स्पष्ट सिद्ध होता है।

श्रीमहाभारतके खिलपर्व हरिवंशमें भविष्यान्तर्गत कैलासयात्राके अध्याय ७३ में श्रीरुक्मिणीकी प्रार्थनापर श्रीकृष्ण कहते हैं—

एष गच्छामि पुत्रार्थं कैलासं पर्वतोत्तमम्॥३५॥
तत्रोपास्य महादेवं शङ्करं नीललोहितम्।
ततो लब्धासि पुत्रं ते भवाद् भूतहिते रतात्॥३६॥
तपसा ब्रह्मचर्येण भवं शङ्करमव्ययम्।
तोषयित्वा विरूपाक्षमादिदेवमजं विभुम्॥३७॥
गमिष्याम्यहमद्यैव द्रष्टुं शङ्करमव्ययम्।
स च मे दास्यते पुत्रं तोषितस्तपसा मया॥३८॥

'यह लो, मैं पुत्र-प्राप्तिके लिये पर्वतोत्तम कैलासकी तरफ जाता हूँ और वहाँ महादेवकी उपासना करके (उनको प्रसन्न करूँगा), नीललोहित अव्यय भगवान् शङ्करसे, जो प्राणिमात्रके हितपरायण हैं, तुझे पुत्रलाभ होगा। ब्रह्मचर्यव्रतपालनपूर्वक तपश्चर्यासे मैं उन विरूपाक्ष, आदिदेव, अज, विभु परमात्माको सन्तुष्ट करूँगा! मैं आज ही अव्यय शङ्करका दर्शन करने जाऊँगा और मुझको दृढ़ विश्वास है कि मेरे तपसे प्रसन्न होकर वे मुझे पुत्र अवश्य देंगे' इत्यादि श्रीकृष्णकृत शिवोपासनका वहाँ बहुत विस्तारसे वर्णन किया गया है।

महाभारत-सौतिकपर्वमें स्वयं शिवने भी कहा है—

अहं यथावदाराध्यः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते॥

'अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्ण मेरा यथावत् आराधन करते हैं इसलिये कृष्णसे बढ़कर मुझे और कोई प्रिय नहीं है।'

यह शिवजीका वचन श्रीकृष्णकी शिव-भक्तिके परमोत्कर्षको दिखलाता है।

महाशिवपुराण-ज्ञानसंहिता (अध्याय ६१ से ७१) में इस बातका वर्णन मिलता है कि बटुकाचल (सुदामापुरीके पास बरडा पर्वत) पर सात मासतक श्रीकृष्णने तप किया और वे महादेवको नित्य सहस्रनामसे बिल्वपत्र चढ़ाते थे। उनके तपसे तुष्ट होकर महादेवने उन्हें कई वर दिये जिनमें पुत्र-प्राप्तिका वर मुख्य था। श्रीकृष्ण जिस शिवलिङ्गमें शिवार्चन करते थे वह लिङ्ग बिल्वेश्वर नामसे अद्यापि प्रसिद्ध है और जिस नदीके तीरपर उनका मन्दिर है उस नदीका नाम 'बिल्वगङ्गा' है। वराभ्यर्थनाके समय श्रीकृष्ण महाभारतके आनुशासनिक पर्वमें कहते हैं—

धर्मे दृढत्वं युधि शत्रुघातं
यशस्तथाग्र्यं परमं बलञ्च।

योगप्रियत्वं तव सन्निकर्षं
वृणे सुतानां च शतं शतानि॥
द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसादं
शतं शुभानां परमञ्च भोगम्।
कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं
शमप्राप्तिं प्रवृणे चापि दाक्ष्यम्॥

'धर्ममें मेरी दृढ़ता रहे, युद्धमें शत्रुघात, जगत्‌में उत्तम यश, परम बल, योगप्रियता, आपका (शिवका) सान्निध्य, दस हजार पुत्र, ब्राह्मणोंमें कोपाभाव, पिताकी प्रसन्नता, सैकड़ों शुभकार्य, उत्कृष्ट वैभव-भोग, कुलमें प्रीति, माताका प्रसाद (अनुग्रह), शम-प्राप्ति (शान्ति-लाभ) और दक्षता (कार्यकुशलता)—ये पन्द्रह वर श्रीकृष्णने माँगे और महादेवने प्रसन्न होकर दिये।'

श्रीकृष्णसे सुदामा कैवल्यमुक्तिकी प्रार्थना करता है तब श्रीकृष्ण स्कन्दपुराणान्तर्गत सूतसंहिता यज्ञवैभवखण्डके २५ वें अध्यायमें सत्यसन्धके प्रति स्वयं विष्णुभगवान्‌ने जो वचन कहे हैं, वही कहते हैं—

नाहं संसारमग्नानां साक्षात् संसारमोचकः।
ब्रह्मादिदेवाश्चान्येऽपि नैव संसारमोचकाः॥३९॥
अहं ब्रह्मादिदेवाश्च प्रसादात् तस्य शूलिनः।
प्रणाड्यैव हि संसारमोचका नात्र संशयः॥४४॥
नामतश्चार्थतश्चापि महादेवो महेश्वरः।
तदन्ये केवलं देवा महादेवा न तेऽनघ॥५१॥
महादेवं विना यो मां भजते श्रद्धया सह।
नास्ति तस्य विनिर्मोक्षः संसाराजन्मकोटिभिः॥५२॥

'संसारमग्न जनोंको मैं संसारसे साक्षात् मुक्ति नहीं दे सकता। इसी प्रकार अन्य ब्रह्मादि देव भी साक्षात् संसारमोचक नहीं हैं। मैं और ब्रह्मादि अन्य देव त्रिशूल-धारी महादेवके प्रसादसे प्रणाडी (शिवाज्ञा-सम्पादन) के द्वारा संसारमोचक हो सकते हैं, इसमें संशय नहीं। हे अनघ—निष्पाप! नामसे और अर्थसे महेश्वर ही महादेव हैं, और सब देव कहाते हैं, महादेव नहीं। जो पुरुष महादेवको छोड़कर मेरा भजन श्रद्धासे करता है उसका कोटि जन्म होनेपर भी संसारसे कदापि मोक्ष नहीं होगा; क्योंकि कैवल्य-मुक्ति देनेवाले केवल महादेव ही हैं।'

इसप्रकार श्रीमुखसे स्पष्ट निर्देश करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने सुदामाको कैवल्यमुक्तिकी प्राप्तिके लिये शिवभक्तिरूप उपायका उपदेश दिया और सुदामाने श्रीकेदारेश्वरके आराधनके द्वारा स्वात्मसाक्षात्काररूप कैवल्यमुक्ति प्राप्त की और श्रीकृष्णने शिवमहिमाका स्वमुखसे वर्णन किया। इस विस्तृत निरूपणसे श्रीकृष्णचन्द्र परम शिवभक्त थे—यह सिद्ध होता है। अत्र सूक्ष्म विचारसे देखा जाय तो 'यो यद्भक्तः स एव सः' इस वाक्यसमन्वयसे श्रीकृष्ण स्वयं भी शिवरूप ठहरते हैं, वस्तुतः दोनोंका अभेदभाव परिणत होता है। श्रीमद्भागवत-में भी स्कं० ४ अ० ७ में कहा है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥५०॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥५१॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति॥५२॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥५४॥

'मैं (विष्णु), ब्रह्मा और शर्व, तीनों जगत्‌के (अभिन्न) कारण हैं; स्वरूपमें सर्वविशेषवर्जित दृग्रूप होकर भी हम आत्मा, ईश्वर और उपद्रष्टा सभी कुछ हैं। मैं अपनी गुणमयी (त्रिगुणात्मिका) मायामें समाविष्ट (उपहित) होकर सृजन, रक्षण और संहार करता हुआ कर्मानुसार संज्ञा (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इत्यादि) धारण करता हूँ; उस अद्वितीय केवल परमात्मब्रह्ममें ब्रह्मा, रुद्र और भूतग्रामको अज्ञजन भेदसे देखते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ये तीनों एकभावापन्न एवं सर्व भूतोंके आत्मभूत हैं। इनके अन्दर जो पुरुष भेदभाव नहीं देखता वही शान्तिसम्पादन कर सकता है। इस वाक्यमें अभेद-भावका परम रहस्य बताया गया है। परममाहेश्वर भट्ट माहेश्वरने कहा है—

ये ये भक्तजना निजेष्टशरणाः श्रेष्ठं सदोपासते
ते जल्पन्ति मृषान्यदैवतमिदं मन्यामहे नो वयम् ।
अस्माकं तु शशाङ्कशेखरपदद्वन्द्वैकनिष्ठात्मनां
सर्वं खल्विदमम्बिकेश्वरमयं चित्ते जगद्भासते ॥

'जो-जो भक्तजन अपने-अपने इष्टको श्रेष्ठ मानकर उपासना करते हैं इसमें तो कोई बुराई नहीं है किन्तु अपने इष्टसे अन्य देवको जो मृषा कहते हैं यह हमें मान्य नहीं है। क्योंकि हमें तो सर्वदा श्रीचन्द्रशेखरपादयुग्ममें निष्ठा जम जानेसे सारा जगत् अम्बिकेश्वरमय ही भासता है, सर्वत्र साम्बशिवका ही दर्शन होनेसे इनसे भिन्न कोई पदार्थ ही प्रतीत नहीं होता। शिवसे अन्य वस्तु ही प्रतीत न हो, तब हम मृषा किसको कहें?'

इसप्रकार सर्वत्र स्वेष्ट-भावना हो जानेपर ही शान्ति-लाभ हो सकता है।

शिव-परिवार

(लेखक—श्रीलालताप्रसादजी टण्डन एम० ए०, एल-एल० बी०)

'लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः'—सूत्रानुसार उस मन-वाणीसे अगम परम तत्त्वकी वस्तुसिद्धिमें केवलमात्र वेद-भगवान् ही एक पर्याप्त प्रमाण हैं और 'शास्त्रयोनित्वात्' आदि सूत्र इस कथनकी पुष्टिमें उल्लेखनीय हैं। परम तत्त्वकी सिद्धि शब्द (वेद या आप्तपुरुष) प्रमाणके अतिरिक्त प्रत्यक्ष-अनुमानादि प्रमाणोंद्वारा आजतक कभी हुई नहीं। कारण कि 'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'। शब्द (वेद) प्रमाणद्वारा सिद्ध उस परम तत्त्वके स्वरूप-लक्षण तो 'सच्चिदानन्द' 'अस्ति,भाति, प्रिय', 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' आदि कहे गये हैं और तटस्थ लक्षण 'जन्माद्यस्य यतः' आदि ब्रह्मसूत्रमें और वेदान्तशास्त्रवेद्य 'नेति, नेति' प्रक्रिया-द्वारा प्रकट हैं। इस भाँति लक्षणों और प्रमाणोंद्वारा वस्तुसिद्ध परन्तु मन-वाणीके लिये अगम उस आदि सनातन तत्त्वको दार्शनिक भाषामें 'ब्रह्म' और पौराणिक भाषामें 'सदाशिव' कहते हैं। इस सदाशिव-तत्त्वको ही अपने-अपने साम्प्रदायिक तथा इष्टदेवगत आग्रह तथा प्रेमवश कोई आदिनारायण, कोई महाविष्णु, कोई आदिशक्ति, कोई आदिगणेश और सूर्यादि संज्ञाएँ भी देते हैं। 'भिन्नरुचिर्हि लोकः'के सिद्धान्तानुकूल सदाशिव-तत्त्वके नाम-रूप अनादि-अनन्त होनेपर भी वह तत्त्व सदा सर्वत्र एकरस है और रहेगा, इसमें किञ्चित् भी विचिकित्साको कदापि अवकाश नहीं।

जो त्रिकालमें निर्लेप और निरञ्जन हैं और जिनमें सृष्टिगत प्रपञ्च, दर्पणमें प्रतिबिम्बवत् भासता हुआ भी कदापि होता नहीं, ऐसे भगवान् सदाशिव अपनी अघटित-घटनापटीयसी मायाद्वारा इस त्रिगुणात्मक जगत्का निर्माण कर इसके त्रिकाण्ड-भारको अपनी तीन सगुण मूर्तियोंमें बाँट देते हैं जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहा जाता है। भगवान् महेश्वर सदाशिव वस्तुतः सदा त्रिगुणातीत होते हुए भी सगुणावस्थामें तमोगुणको ही धारण तथा अधिष्ठित करते हैं क्योंकि तमोगुण आदिगुण है और निर्गुण, अव्यक्त अथवा महत् या प्रधानका एक प्रकारसे पर्यायवाची ही है। पूर्व-कल्पकी शेष भावना कालवश परिपक्व हो प्रधान अथवा अव्यक्तमें जब गुणविक्षोभ अथवा गुणवैषम्य उत्पन्न करती है तो उस विक्षोभको रजोगुण कहते हैं और रजोगुणात्मक विक्षोभका किसी परिमाण-विशेषमें किसी कालविशेषतक बँधे रहनेका नाम सत्त्वगुण है। इस भाँति विचार करते हुए गुणशेष ही तमोगुण सिद्ध होता है और शायद इसी कारणवश सृष्टिकी पूर्वावस्था 'आसीत्तमः तमसा गूळ्हमग्रे' आदि श्रुति-वाक्योंसे वर्णित है। ऐसे निर्गुण तमोगुणको धारण करना भी अतीव दुष्कर है, अतएव तमोगुणको त्रिमूर्तिश्रेष्ठ भगवान् शंकर ही धारण करते और कर सकते हैं।

भगवान् सदाशिवकी जगन्निर्माणकर्त्री इच्छा-शक्तिका दार्शनिक नाम 'महामाया' और 'योगमाया' आदि है और पौराणिक नाम 'श्रीदुर्गा' और 'श्रीपार्वती' आदि है। भगवान् शिव और उनकी शक्ति भगवती पार्वतीमें वागर्थकी भाँति भेद-प्रतीतिकी कल्पना होनेपर भी सम्भावना कदापि नहीं है। ऐसे भगवान् शिव और भगवती शिवा इस सम्पूर्ण चराचर विश्वके आदि माता-पिता हैं और यह सम्पूर्ण सृष्टि उनका सनातन परिवार है। इसीसे कहा है—

माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः ।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥

परन्तु जैसे पृथिवीका स्वरूप दरसानेके लिये नारंगीकी उपमा देते हैं वैसे ही इस अपूर्व शिव-परिवारका नक्शा

शिव-पार्वती और श्रीगणेश तथा भगवान् षडाननके स्वरूपमें स्थित है।

भगवान् शिवका स्वरूप विराट् पुरुषका चित्र है। भगवान् शिव सूर्यरूप होनेके कारण अनलात्मक हैं और उनके मस्तकपर विराजमान चन्द्रमा सोमात्मक है अतएव शशिशेखर शिव अग्निसोमात्मक सृष्टि-तत्त्व हैं। भगवान् शिव सूर्य, और उनके मस्तकका चन्द्र सूर्यमण्डलान्तर्गत चन्द्रमा (Solar Moon) है और इसप्रकार भगवान् शिव सम्पूर्ण सूर्यमण्डलके अधिष्ठाता आदि-पुरुष हैं। भगवान् शिवकी जटाएँ सूर्यमण्डलकी वे अग्निज्वालाएँ हैं जो करोड़ों कोसोंतक लपकें मारती हैं, अतएव उनकी जटाएँ तड़ित्प्रभासे उपमित होती हैं। भगवान् शिवकी जटासे बहनेवाली त्रिपथगा गंगा वह प्राणधारा है जिससे चौरासी लक्ष योनियाँ प्राणित होती हैं। भगवान् शिवके अंगोंमें लिपटे हुए नाग वे कर्मबन्ध हैं जिनमें जगत्के जीव अहर्निश फँसा करते हैं या यों कहिये कि जगजीवकृत कर्मप्रताड़ित शक्तिवीचियाँ समुद्रकल्प शिवविग्रहमें सर्पवत् क्रीड़ा कर रही हैं। ये कर्म-बन्धरूपी नाग शिवजीके आभूषण हैं, वे उन्हें कभी डस नहीं सकते। कारण कि ज्ञानामृत पिये हुए भगवान् शंकर कर्मबन्ध या भवचक्रसे सदा परे ही हैं। कर्मबन्धका दूसरा नाम कालचक्र भी है और इस तरह वे नाग युग-मन्वन्तर, कल्प-कल्पान्तर आदि काल-चक्रोंके भी सूचक हैं। पूर्वकल्पकृत कर्मशेष ही शेषनाग हैं जो भगवान् शंकरके सहज यज्ञोपवीत हैं, क्योंकि—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।

भगवान् शिव अनेक कल्पोंमें सृष्टिको बारम्बार सुदग्ध कर चुके हैं, अतएव वे सम्पूर्ण सृष्टिको शवभस्ममात्र मानते हैं और अपनेमें जगत्का आभास यों अध्यारोपित करते हैं जैसे कोई अंगमें विभूति धारण करे। आत्मतत्त्व ही एकमात्र चेतन सत्ता है और सम्पूर्ण अनात्म जगत् जड तथा शववत् है। अतएव भगवान् शिवकी दृष्टिमें जगद्विहरण श्मशानविहार-तुल्य है और इसीलिये भगवान् शिव 'श्मशानचारी' कहे जाते हैं। अपनी तुच्छ दैहिक राग-द्वेषात्मक इच्छाओंकी पूर्त्तिके लिये बारम्बार जन्म-मृत्यु-चक्रमें फँसनेवाले अगणित जीवात्मा ही पिशाच आदि हैं, जो 'शिव-सहचर' कहे जाते हैं। ये जीवात्मा अपने ऐश्वर्यके तारतम्यवश अनेक ऊँच-नीच पदोंको प्राप्तकर गण, गणपति, प्रमथ, प्रमथनाथ आदि अनेक ऐश्वर्य-पदोंको धारे अनेक नामोंसे विख्यात हैं।

भगवान् शिवका चरितामृत प्रत्येक राज्य-शासक, जाति-शासक और कुटुम्ब-नेताके लिये आदर्श और अनुकरणीय है। वास्तवमें जगत्-शिक्षाके हेतु ही भगवान् शिव सगुण व्यवहार करते हैं। भगवान् शिव विषपानद्वारा अपने अनुचरों, भक्तों और जगजीवोंको यह शिक्षा देते हैं कि सच्चे नायक वा नेताके बड़प्पनका चिह्न अथवा पहचान उसकी वह भोग-लिप्सा नहीं है जिसकी पूर्तिके लिये प्रायः ऐसे लोग कर्मफलका सिंह-भाग अपने लिये सुरक्षित रख लेते हैं वरं ऐसे लोग अपने महान् त्यागके कारण बड़े समझे जाते हैं। वे अपने भागधेयमें विष-पान पड़नेपर भी न विचलित होते हैं, न कर्तव्य-विमुख होते हैं। अमृत अर्थात् प्रयत्न या कर्मसे उत्पन्न सुख तो भगवान् शिव-ऐसे सहृदय नेता अपनेसे छोटोंका अर्थात् अन्यान्य देवताओंका भागधेय निर्णीत कर देते हैं। बड़ेमें त्याग, छोटेमें राग, बड़ा विषभक्षी, छोटा अमृतपायी—जहाँ ऐसी विभाग-व्यवस्था है वही कुल, जाति, देश या राष्ट्र परम कल्याणका भाजन होता है। जहाँ बड़े अमृत पीनेकी इच्छाकर विषका घूँट छोटोंके गलेके नीचे उतारनेका प्रयत्न करते हैं वहाँ वह विष छलककर या वमन होकर समुद्र-मथन-रूपी सम्पूर्ण कर्म-सफलताको अन्तमें विनष्ट कर डालता है। पीनेको तो बहुत-से लोग विविध कारणोंसे विष बहुधा पी लेते हैं, परन्तु वे उसके द्वारा केवल अपना विनाश ही करते हैं। क्योंकि विष पीनेकी सच्ची महिमा तो तब है जब न तो वह कण्ठसे नीचे जाय न बाहर आवे; क्योंकि यदि कण्ठसे नीचे गया तो, 'हृदये तु हलाहलम्' वाले विषैले पुरुष और सर्पमें भेद ही क्या रहा और यदि वाणीद्वारा विष-वमन हुआ तो कोई कैसा भी साधु पुरुष क्यों न हो उसके पास ही कोई न जायगा, उससे लाभ उठानेकी कौन कहे ? भगवान् शिवके विष-पानका यही रहस्य है कि वे इस जगत्के सम्पूर्ण भोग्यरूपी अमृतका पान तो अपनेसे छोटे देवताओंको समर्पित कर देते हैं और आप स्वयं समुद्र-मन्थन-तुल्य सृष्टिसञ्चालनोत्पन्न कर्मकष्टरूपी विषको न तो अपने हृदयतक ले जाते हैं न वाणीतक लाते हैं, केवल कण्ठके एक कोनेमें दबाये मानो नीलमणिकी एक कण्ठी-सी पहने रहते हैं। इस जीवन-संघर्षोत्पन्न विष-पानका

नाम ही जगत्-परिपालना है। जैसे रोग नष्ट होते ही रोगी स्वस्थ हो खेलने-कूदने लगता है वैसे ही विष खिंचते ही यह सृष्टि आनन्दपूर्वक कल्लोल करती बढ़ने और फलने-फूलने लगती है। जगदुत्पन्न अमृतकुम्भके लिये—सांसारिक सुख-भोगोंके लिये—तो छोटे-बड़े देवासुरोंकी टोलियाँ सदा ही लड़ी हैं, लड़ती हैं और लड़ेंगी। परन्तु इन अमृतलिप्सुओंमेंसे कभी कोई जगदीश्वर-पदवी प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि जगदीश्वर प्रेमरूप, प्रेम त्यागरूप और त्याग विषपानरूप सिद्ध होगा और ठीक इसके विपरीत अमृतपान रागरूप और राग उस द्वेषका बीज सिद्ध होगा जिसके फलरूप आज भी चन्द्र-सूर्य ग्रसे जाते हैं और देवासुर-संग्रामकी लहरें कभी विश्राम नहीं लेतीं।

भगवान् शिव सम्पूर्ण विद्याओं और कलाओंके प्रभव हैं। विद्यावृद्ध जगन्मान्य होता है न कि वयोवृद्ध। भारतमें कोई ऐसा शास्त्र नहीं, कोई ऐसी कला नहीं, कोई ऐसी विद्या नहीं जिसके आदि-प्रभव भगवान् शङ्कर स्वयं न हों। 'शास्त्रयोनित्वात्' का दूसरा अर्थ यह भी है कि भगवान् शिव ही सर्वशास्त्रोंकी योनि अर्थात् कारण हैं। यही कारण है कि भारतीय शास्त्रों, विद्याओं और कलाओंमें यह सिद्धान्त-समन्वय है जिसकी ओर सङ्केत कर 'तत्तु समन्वयात्' सूत्र रचा गया है। अन्य देशोंमें जहाँ वेदवत् कोई ऐसा नाभिग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसके मूल-सिद्धान्तोंको पीट-पीटकर अरबत् अन्य शास्त्र और कला तथा विद्याएँ निकाली जा सकें, वहाँ भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके मूल-सिद्धान्तोंमें समन्वयके ठीक विपरीत ऐसा घोर अन्योन्यघाती युद्ध वर्त्तमान है और गुरु-परम्परा और शास्त्र-परम्पराके न होनेके कारण एक ही शास्त्रके भिन्न-भिन्न आचार्योंमें इतना मतविरोध है कि विद्यार्थी आजन्म परिश्रम करनेके उपरान्त भी केवलमात्र भिन्न-भिन्न आचार्योंके मतसंग्रहका एक सजीव कोशमात्र हो पाता है परन्तु अधिगत-सिद्धान्त कदापि नहीं होता, क्योंकि सिद्धान्त वहाँ कोई है ही नहीं।

त्यागमें भगवान् शिवकी ठीक प्रतिकृति भगवती शिवा हैं। जैसे भगवान् शिवने जगत्का ऐश्वर्य-भोग भगवान् विष्णुको समर्पित कर दिया है वैसे ही माई अन्नपूर्णाने भी सम्पूर्ण सृष्टि-वैभव भगवती लक्ष्मीपर निछावर कर दिया है। इसी महान् त्याग और प्रेमके कारण भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मी दस-दस बार इस भवसागरमें कूदते हैं परन्तु भगवान् शिवको या माई अन्नपूर्णाको जगद्रक्षाहेतु कभी अपना अटल क्षेत्र त्यागने नहीं देते। भगवान् शिव और विष्णुका अपूर्व प्रेम ध्यानयोग्य है न कि वर्णनयोग्य। ठीक वैसा ही भक्ति और प्रेमका सम्बन्ध भगवती अन्नपूर्णा और श्रीलक्ष्मीजीके बीच है। माई अन्नपूर्णा अपने भोले भण्डारी पतिके आगे जो भिक्षा रख देती हैं त्यागमूर्ति शिव उसीको प्रसाद मान तृप्त हो जाते हैं। अन्नपूर्णाके द्वार भिक्षा माँग भगवान् अन्य पुरुषोंको यह शिक्षा देते हैं कि वे अपने बल-वीर्यद्वारा उपार्जित गृहस्थीकी सम्पत्ति भी अपनी न समझ गृहस्वामिनियोंकी ही समझा करें और गृहस्वामिनी उनके भोजनादिका जैसा प्रबन्ध करें उससे सन्तुष्ट रहा करें। ऐसा भाव रखते हुए त्यागरूप पुरुष कभी रागी नहीं हो सकता। अन्नपूर्णाके द्वार भिक्षा माँगकर शिवजी स्त्री-सम्मानका अपूर्व आदर्श अपने भक्तोंके सामने रखते हैं।

भगवती शिवा नगाधिप हिमालयकी पुत्री हैं। पृथिवीमें सबसे बृहत्, सबसे उच्च, पार्थिव पदार्थ हिमालय है; अतएव हिमालय सम्पूर्ण पार्थिव वैभवका एक अत्युत्तम रूपक है। उसकी पुत्री पार्वती सम्पूर्ण पार्थिव वैभव, शक्ति और ऐश्वर्यका स्वरूप हैं। ऐसी भगवती पार्वती अपने-आपको बिना शिवकी अर्धाङ्गिनी बनाये सफल-जीवन न हो सकीं। शिव धर्मरूप हैं और पार्वती शक्तिरूप हैं। शिव सत्य (Right) और शिवा शक्ति (Might) हैं। शिवसे शक्ति या शक्तिसे शिव—Whether right makes might or might makes right—यह प्रश्न गम्भीर विवेचनापूर्ण होनेपर भी वास्तवमें ठीक नहीं है, क्योंकि शिव-शक्तिमें अभेद सम्बन्ध होनेके कारण उपर्युक्त प्रश्न बन नहीं पड़ता। यह बात और है कि अपनी-अपनी साम्प्रदायिक रुचिवश और इष्टगत रूप और प्रेमके कारण कोई शक्तिरहित शिवको शव कहे और कोई शक्तिको जड़ और जगज्जाल कहे और इस भाँति दोनोंका निरादरकर अपनी तामसी भक्तिका प्रत्यक्ष प्रमाण दे, परन्तु वास्तवमें तो वे दोनों सदा अभिन्न ही हैं। इन दोनोंको भिन्न देखना या कल्पनामें भिन्न-भिन्न कल्पित कर उस भिन्नतापर सिद्धान्तकी भित्ति उठाना तो मानो अपने फँसानेके लिये स्वयं जाल तैयार करना है। हमारे प्राचीन ऋषियोंने अपने मनमें न उपर्युक्त प्रश्न

उठाया, न उसका उत्तर ढूँढ़ा; वरं शिवशक्तिस्वरूपका गम्भीर अध्ययनकर वे इस सिद्धान्तको पहुँचे कि शिव-शक्ति एक अद्वैतके दो अभिन्न फल होनेके कारण तत्त्वमें सदा अभिन्न ही हैं, अतएव उनमें पति-पत्नी-सम्बन्ध घटित होता है। इसीलिये भारतवर्षके ऋषियोंने शक्तिका पाणि शिवके और शिवका पाणि शक्तिके हाथमें देकर उन दोनों अभिन्न हृदयोंको सदाके लिये धर्मसूत्रमें कस दिया। इस तरह भारतीय विचारानुकूल धर्म कभी निर्भयतापूर्वक ठुकराया नहीं जा सकता और दैवी शक्ति धर्मका सहारा लिये विना कभी प्राप्त नहीं हो सकती।

शिव-शक्ति-सम्बन्धका भयङ्कर व्यावहारिक परिणाम आज यूरोपकी वर्तमान सामाजिक और नैतिक हलचलसे स्पष्टतया हृदयङ्गम हो जाता है। यूरोपीय राष्ट्र संसारको जीत और उसे अपने व्यापार-जालमें फँसा और विषय-सुखदायी आधिभौतिक सिद्धियों (Sceintific inventions) को हस्तगतकर इस समय आधिभौतिक सुख-समृद्धिके साक्षात् हिमालय बने बैठे हैं। उनकी सर्व समृद्धियोंका श्रेष्ठ मूल उनकी वह क्षात्र-शक्ति है जो विविध प्रकारके मानवी और दैवी अस्त्र-शस्त्रोंसे परिबृंहित है। उनके अपूर्व बलशाली अस्त्र-शस्त्र इस समय जगत्-संहारमें सर्वथा समर्थ हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी आज उनके सिरपर मृत्यु नाच रही है। वे देख रहे हैं कि या तो इस युवती शक्तिका विवाह धर्मरूपी शिवसे किया जाय, जिसे वे अपनी आधिभौतिक भाषामें 'निःशस्त्रीकरण', 'अन्तर्जातीय-संघ', 'सार्वभौम-भ्रातृत्व' और 'सार्वभौम-अर्थसंघ' आदि नामोंसे पुकारते हैं और नहीं तो यह संहारकाली रणचण्डी बहुत शीघ्र उनकी आधिभौतिक सभ्यताका एक ही ग्रास करनेको मुँह बाये तैयार बैठी है। इधर चार वर्षोंके सतत प्रयत्नपर भी उनके यहाँ शिव-शक्ति-विवाहोत्सवका शुभ प्रभात उदय होता नहीं दीखता और साम्यवादिता आदि कृत्या राक्षसियाँ निरन्तर अपना निशीथनृत्य किये ही चली जा रही हैं। वर्तमान घटनाचक्र और कालगतिके सुदूर परिणामदर्शी यूरोपीय विद्वज्जन दिन-प्रतिदिन अनियन्त्रित शक्ति-भँवरमें अपनी जातीय सभ्यताका बेड़ा सदाके लिये डूबता अनुभव कर रहे हैं परन्तु प्रयत्न करनेपर भी उन्हें कोई वह सुन्दर मार्ग नहीं मिलता जिसका अनुसरणकर वे अपनी सञ्चित शक्तिके चिर प्रेमपात्र बन सकें। उनकी इस बढ़ती हुई निराशाका एक प्रधान कारण यह भी है कि उनकी शक्ति धर्ममूलक न होकर अर्थमूलक है और इसीलिये उनकी सम्पत्ति दैवी न होकर आसुरी है। आसुरी सम्पत्ति तप करना नहीं चाहती, फिर उसे शिव मिलें तो कैसे? भारतीयोंकी दैवी सम्पत्तिने गौरीरूप धर ऐसा घोर तप और त्याग किया कि जगज्जननी गौरीका नाम 'अपर्णा' पड़ गया। इस महान् त्याग और महान् तपद्वारा भारतीय शक्ति, भारत-माता सदाके लिये शिवकी धर्मपत्नी हो चुकी हैं। इसका व्यावहारिक रूप और तात्पर्य यह है कि भारतवर्षकी सभ्यता जो इन शिव-शिवाकी धर्मपरिणय-प्रसूता एक सनातन लता है सदा-सर्वदा हरी-भरी ही बनी रहेगी और शाखा-प्रशाखाओंमें फलती-फूलती ही रहेगी, चाहे जैसी लू-लपट, अग्निवर्षा कालधर्म क्यों न चलाये। यही भारतीय संस्कृतिका, पूर्वीय सभ्यताका, सनातन-धर्मका गूढ़ रहस्य है। यही हमारी अमरता है। शिव-शक्ति-विवाह ही हमारे अमर जीवनका गूढ़ भेद है।

प्रत्येक मनुष्यको अपना व्यक्तिगत जीवन सफल करनेके लिये, प्रत्येक जातिको अपना जातीय जीवन सुखमय बनानेके लिये, शिव-शिवा-विवाह-रहस्यको खूब जानना, सोचना और निदिध्यासनद्वारा हृदयङ्गम करना चाहिये। यदि शक्ति हुई और यह शिवद्वारा पाणिगृहीता न हुई तो उस अनियन्त्रित जगत्संहारिणी प्रलयकारिणी शक्तिका दृश्य वह चित्र है जिसमें भगवती काली अपने घोर रूपसे शिव-वक्षःस्थलपर नृत्यकर शिव-शरीर मर्दन कर रही हैं। यूरोपकी वर्तमान परिस्थितिका गम्भीर अध्ययन आधुनिक यूरोपीय शक्तिका चित्र खींचते समय शवरूप शिव-शरीरपर कालीके दुर्दम नृत्यका बारम्बार स्मरण कराता है।

भगवान् शिव और शिवाके धर्म-परिणयका प्रथम फल भगवान् षडानन हैं। भगवान् षडानन जीवात्मा या वेदान्त-शास्त्रके चिदाभासके सत्स्वरूप हैं। इनकी जन्म-गाथा जीवात्माके दार्शनिक रूपका शुद्ध रूपक है। भगवान् षडानन भगवती शिवाके गर्भमें कभी नहीं रहे और केवलमात्र शिवका वह शुद्ध वीर्य हैं कि जिसके स्खलनमात्रका कारण भगवती शिवाका संगम हुआ। तात्पर्य यह कि चाहे प्रकृति जीवात्मा या चिदाभासको अपने मल-विक्षेप-आवरणरूप सामर्थ्यद्वारा उसके सत्स्वरूपकी विस्मृत करा अपने भगवद्भावसे च्युत कर दे परन्तु जीवात्मा या चिदाभासको अपने गर्भद्वारा अपने अंशसे गृहित कदापि नहीं कर

सकती अर्थात् जीवात्मा प्रकृति-अंशसे निर्लेप और ईश्वरका शुद्धांश सदा बना रहता है। भगवान् षडाननका अग्नि और गंगाके गर्भमें वास आदि उस सम्बन्धकी सूचना देता है जो जीवात्मा और पञ्चतत्त्वके बीच है। प्रकृतिसे सम्बन्धित होनेपर भी जीवात्मा किस भाँति अपने स्वरूपमें निर्लेप ईश्वरांश बना रहता है यही षडानन-जन्म-कथाका गूढ़ रहस्य है।

भगवान् गणपति षडाननसे ठीक विपरीत केवलमात्र प्रकृतिके ही अंशसे उपजे हैं। जिस भाँति षडाननमें पार्वती-रज-संसर्ग नहीं उसी भाँति गणपतिमें शिव-शुक्र-सम्बन्ध नहीं। भगवान् गणपति अन्तःकरणका रूपक है। अन्तःकरण प्रकृतिका शुद्धतम रूप होते हुए भी पार्थिव और जड़ है। बुद्धिके अधिष्ठाता देवता श्रीगणेश पैदा होकर प्रथम कार्य यही करते हैं कि शिवको पार्वतीके पास जानेसे रोकते हैं और जतलानेपर भी केवलमात्र माताकी ही आज्ञा शिरोधार्य मान पितासे युद्ध करते हैं। बुद्धि भी प्रारम्भमें केवलमात्र पार्थिव वैभवानुगता होती है और परमार्थसे विमुख हो उसका विरोध करती है। ऐसी स्थूल पार्थिव बुद्धिका भगवान् शिव शिरश्छेद करते हैं। तदुपरान्त जब वह मरकर पुनर्बार ईश्वरानुग्रहवश जीवित होती है तो ऐसी पारमार्थिक बुद्धि जिसे 'समाहित बुद्धि' भी कहते हैं जगत्पूज्य मानी जाती है। श्रीगणेशजीका शिरश्छेद और पुनर्बार शिवानुग्रहसे जीवित होना शुष्क पार्थिव बुद्धिका विनाशोपरान्त पारमार्थिक बननेका एक सुन्दर रूपक है। स्वामी विवेकानन्दका प्रारम्भिक नास्तिक जीवन और बादको उनमें स्वामी रामकृष्ण परमहंसद्वारा उस पार्थिव बुद्धिका संहार हो परमार्थी बुद्धिका पुनर्जन्म और उसके फल-स्वरूप उनका जगत्पूज्यत्व प्राप्त करना उन अनेकों उदाहरणों-मेंसे एक है जो श्रीगणेश-जन्म-गाथाका रहस्योद्घाटन करते हैं।

प्रकृति, अन्तःकरण, चिदाभास और ब्रह्मकी प्रतिकृति भगवती पार्वती, भगवान् श्रीगणेश, भगवान् षडानन और भगवान् शिव हैं जिनकी अन्तर्बहिर्लीलाकी प्रवृद्ध लता यह सम्पूर्ण जड़-चेतन-जगत् है और यह एक अतीव सत्य शिव-परिवार है।

जिनकी गोद बाल गणेशसे भरपूर है ऐसी सुस्मिता भगवती शिवासे विभूषित अर्धाङ्गवाले श्रीसदाशिव अपने प्रेम-संकेतोंसे कैलासपर षडाननको शस्त्रास्त्र-शिक्षा देते हुए अपने परम प्रिय भारतपरिवारकी सदा रक्षा करें, यही बारम्बार प्रार्थनीय है।*

महेश-महिमा

जय महेश शिव शंकर।
शूलपाणि गिरिजा-पति औढर,
नीलकण्ठ जग-गुरु शशिशेखर,
त्रिपुरारी कर कलु डमरूधर—
महादेव अभयंकर।
जय महेश शिव शंकर॥

पञ्चानन मृत्युञ्जय हर हर,
भूतनाथ वाहन वसहा वर,
अंग मशान-विभूति दिगम्बर—
रुद्ररूप प्रलयंकर।
जय महेश शिव शंकर॥

तेजपुञ्ज अव्यक्त अगोचर,
प्रेत-पिशाच-भूत-दल सहचर,
कटिप्रदेश शोभित बाघम्बर—
आशुतोष संकटहर।
जय महेश शिव शंकर॥

शोभित व्याल कराल वदनपर,
पावन जटाजूट गंगाधर,
तीन लोक ईश्वर विश्वम्भर—
दिव्यमूर्ति मंगलकर।
जय महेश शिव शंकर॥

—जगदीश झा 'विमल'

* इसके लेखक महोदयने पुष्पदन्ताचार्यप्रणीत श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रपर संस्कृत और हिन्दीमें एक बहुत सुन्दर भाष्य लिखा है। ऊपर श्लोक, उसके नीचे अन्वय, संस्कृतार्थ, भाषार्थ और फिर विस्तृत भावार्थ है। विविध प्रमाण और टीका-टिप्पणियोंसे युक्त यह ग्रन्थ बहुत ही उपादेय है। शिव-भक्त और विद्वान् पुरुषोंके लिये बहुत कामकी चीज है। पुस्तकका दाम १।) है और लेखक महोदयको अथवा प्रकाशक श्रीयुत सिद्धगोपालजी रस्तोगी, बी० कॉम०, रोटी-गोदाम, कानपुरको पत्र लिखनेसे मिल सकती है।

—सम्पादक

शिव-परिवार

(लेखक—पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०, एल-एल० बी०)

भगवान् भोलानाथका जैसा अद्भुत परिवार है वैसा शायद ही और किसीका हो। पिता यदि चतुर्मुख थे तो आप स्वयं पञ्चमुख हो गये और पुत्रको छः मुखका बना दिया। बनाते-बनाते दूसरा पुत्र बनाया तो उसका सिर हाथीका रख दिया। सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी स्वामिनी साक्षात् अन्नपूर्णा भवानी आपकी अर्द्धाङ्गिनी हैं और आप ? बस कुछ न पूछिये ! एकदम भस्माङ्गधारी श्मशानविहारी ! बहुत हुआ तो बाघ या हाथीकी छाल पहन ली, नहीं तो वकीले पहाड़ोंपर एकदम नङ्ग-धड़ङ्ग ही घूम रहे हैं। सवारीके लिये रक्खा सीधा-सादा बैल और वह भी शायद एकदम बूढ़ा, परन्तु शृङ्गारके लिये रक्खे साँप, बिच्छू और आदमीकी खोपड़ी ! परिजन भी क्या बढ़िया हैं—

कोउ मुख-हीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद-बाहू॥
बिपुल नयन कोउ नयन-बिहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनु खीना॥

—जिन्होंने बराती बनकर एकदम तहलका ही मचा दिया था ! भला और किसीका ऐसा अद्भुत परिवार हो सकता है ?

इतना होते हुए भी भोलानाथ कोरे भोलानाथ ही नहीं बने रहे। उन्होंने सम्पूर्ण देव-सेनाका आधिपत्य अपने एक पुत्रको दे डाला। सम्पूर्ण देवताओंमें प्रथम पूज्यका पद दूसरे पुत्रको बख्श दिया। सम्पूर्ण ऐश्वर्य और समृद्धिकी अधिष्ठात्री देवीका पद अपनी अर्द्धाङ्गिनीके लिये रिज़र्व कर दिया और स्वयं देवाधिदेव महादेव बन बैठे। अब रह ही क्या गया ? महादेव वे, महादेवी उनकी अर्द्धाङ्गिनी। विघ्नविनाशी प्रथमवन्द्य श्रीगणेशजी उनके एक पुत्र तथा सुरसेनानी उनके दूसरे पुत्र। ऋद्धि-सिद्धि उनकी पुत्रवधू और हिमालयके समान सर्वोच्च शिखर उनका निवासस्थान ! सभी मोर्चे तो सधे हुए हैं। ऐसी स्थितिमें यदि उनके लिये कविकुलगुरु कालिदासने—

कम्पेन मूर्ध्नः शतपत्रयोनिं
वाचा हरिं वृत्रहणं स्मितेन।
अन्यांश्च देवानवलोकनेन
सम्भावयामास त्रिशूलपाणिः॥

—कहा है तो क्या अनुचित कहा है ? उन्हींकी बरातमें सम्मिलित होनेके लिये आनेवाले देवताओंका उन्होंने देखिये कैसा बढ़िया सत्कार किया है ! ब्रह्माजी आये तो सिर्फ सिर हिला दिया। 'आइये तशरीफ़ रखिये' कहनेतककी ज़रूरत न हुई तो फिर उठकर स्वागत करना कैसा ! विष्णुभगवान् आये तो जरा मुँहसे कह दिया 'आइये बैठिये, कुशल तो है?' लेकिन फिर भी तारीफ यह कि खड़े न हुए, चार कदम बढ़कर स्वागत करनेकी बात कौन कहे ! देवराज इन्द्र आये तो सिर्फ उन्हें देखकर मुस्कुरा दिया। बस, इतनेहीमें उनका स्वागत हो गया। न अभ्युत्थानकी आवश्यकता, न बोलनेकी ज़रूरत, न सिर हिलानेहीकी कोशिश। इन्द्रका अहोभाग्य कि उनकी तरफ देखकर थोड़ा मुस्कुरा तो दिया। यह क्या कोई सामान्य बात थी ! दूसरे देवतालोग आये तो उनकी तरफ सिर्फ़ नज़र फेर दी। बस, इतना ही स्वागतके लिये पर्याप्त हो गया। देवगण कृतार्थ हो गये। अपने घरपर आये हुए देवगणोंका—और सामान्य देवगण नहीं, इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णुके समान आमन्त्रित सज्जनोंका—इस शानके साथ स्वागत करनेवाला भला और भी कोई हो सकता है ? इन महामहिम महेश्वरको केवल भोलानाथके नामसे पुकारना कितना भोलापन है ?

विचित्र तो यह है कि इन महाराजका एक ओर तो ऐसा ऐश्वर्य व्यक्त होता है और दूसरी ओर एक ऐसा अद्भुत रूप प्रकट होता है कि जिससे हमें बरबस इन्हें 'भोलानाथ' कहना पड़ता है। देखिये—

कैसे महेश्वर हैं तनमें जब छार लपेटिकै बैल सवार हैं।
भक्तनके अभयंकर साथ भयंकर भूत-परेत अपार हैं॥
संकटमें परि जात हैं आप यों औढ़रदानके हेतु तयार हैं।
भोले सदाशिव क्यों न बनैं घर भूलि जिन्हैं रुचे श्वेत पहार हैं॥

जिन महाशयका ऐसा अद्भुत वेष हो और जिनकी गृह-सामग्री इतनी स्वल्प और तुच्छ हो उनका यह ऐश्वर्य आखिर आया तो कहाँसे आया। इसपर भी कवियोंने

अपनी बड़ी-बड़ी कल्पना चलायी है। पद्माकरजीका तो कहना है कि यह केवल गङ्गा महारानीकी कृपा है! देखिये—

लोचन असम अंग भसम चिताको लाय
तीनों लोक-नायक सो कैसेके ठहरतो।
कहैं पदमाकर बिलोकि इमि ढंग जाके
बेदहू पुरान गान कैसे अनुसरतो॥
बाँधे जटा-जूट बैठे परवतकूट माहिं
महाकालकूट कहो कैसे कै ठहरतो।
पीवे नित भंगै रहै प्रेतनके संगै
ऐसे पूछतो को नंगै जो न गंगै सीस धरतो॥

परन्तु अधिकांश सज्जनोंकी यह राय है कि यह सब अन्नपूर्णा भवानीकी कृपाका फल है—

स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ।
दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद् गृहे॥

सरकारके तो स्वयं पाँच मुँह हैं, बच्चे गजानन और षडानन हैं और पास कपड़ेतक नहीं हैं तब फिर यदि भवानी अन्नपूर्णा न होतीं तो गृहस्थी चलती कैसे? शंकराचार्यजीने भी यही कहा है। देखिये—

वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशानिवसनं
श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणनिधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैव स्मररिपो-
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि! सौभाग्यमहिमा॥

—सवारीके लिये बुड्ढा बैल। खानेके लिये ज़हर। रहनेके लिये सूनी दिशाएँ। खेलनेके लिये श्मशान और आभूषणोंके लिये साँप। भला इस सामग्रीवालेका यह प्रबल ऐश्वर्य क्या भगवती जगदम्बिकाके अतिरिक्त और किसी कारणवश हो सकता है? ऐसी स्थितिमें पार्वतीजीका यह कहना उचित ही है कि—

नहिं अंबर अंग न संग सखा बहु भूतनके डरसों डरतो।
डरतो पुनि साँपनकी सुसकारन भाँग बटोरत ही मरतो॥
मरतो जिहि जानि न जन्म-कथा नर बाहनसों खर ना चरतो।
हँसि पारबती कहैं शंकरसों हम ना बरतीं तुम्हैं को बरतो॥

इतना होते हुए भी बेचारी पार्वतीजी मुश्किलसे ही इस विषम परिवारको सँभालती हैं। क्योंकि यह परिवार कोई सामान्य परिवार नहीं है। परिवारकी व्यक्तियोंकी तो बात छोड़ ही दीजिये। वहाँ तो यह शिकायत लगी ही रहती है कि कभी गणेशजी स्वामिकार्तिकके खिलाफ फरियाद करते हुए कहते हैं कि इन्होंने अपने हाथसे मेरे कान उमेठ दिये, कभी स्वामिकार्तिकेयजी* गणेशजीके खिलाफ यह दावा करते हैं कि इन्होंने अपनी सूँड़से मेरी आँखें गिन डालीं। परन्तु उनका अस्तबल भी, जहाँ उन व्यक्तियोंके वाहन पड़े रहा करते हैं, एक अद्भुत खटपटका क्रीड़ास्थल सदैव बना रहता है। सुनिये—

बार बार बैलको निपट ऊँचो नाद सुनि
हुंकरत बाघ बिरुझानो रसरेलामें।
भूधर भनत ताकी बास पाय शोर करि
कुत्ता कोतवालको बगानो बगमेलामें॥
फुंकरत मूषकको दूषक भुजंग तासों
जंग करिबेको झुक्यो मोर हदहेलामें।
आपसमें पारषद कहत पुकारि कछु
ररि-सी मची है त्रिपुरारिके तबेलामें॥

अर्धनारीश्वर महोदयने आधे अङ्गकी सवारी रक्खी है बैल और आधे अङ्गकी शेर। बैल और बाघ भी कहीं एक नाथसे नाथे जाते हैं? इसी तरह गणेशजीको दिया चूहा, खुद रख लिया साँप और स्वामिकार्तिकेयजीको दे दिया मोर। अब ये तीनों एकके ऊपर एक क्यों न सवारी करें? फिर मज़ा यह कि ज़रा-सी खलबलाहटमें भयङ्कर रूपसे भोंकनेवाला कुत्ता अपने कोतवाल साहब श्रीभैरवजीको इनायत कर दिया है और यह कुत्ता भी उसी तबेलेमें डाल दिया गया है जहाँ बैल, बाघ, चूहा, साँप, मोर आदि रहते हैं। अब पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते होंगे कि उस तबेलेमें शान्तिस्थापनका कार्य कितना दुष्कर रहा करता होगा।

भोलानाथजीको क्या है! जबतक शान्ति रही तबतक रही, जहाँ अशान्ति होने लगी कि झट उन्होंने समाधि ले ली। ये योगी भी तो अपने घरकी इसी गतिको देखकर हुए हैं—

आपुको बाहन बैल बली बनिताहूको बाहन सिंघहि पेखिकै।
मूसेको बाहन है सुत एकके दूजो मयूरके पच्छ बिसेखिकै॥
भूषण है कवि चैन फनिन्दके बैर परे सबते सब लेखिकै।
तीनहुँ लोकके ईस गिरीस सु जोगी भये घरकी गति देखिकै॥

परवाह तो असल पार्वतीजीको है, जिनके भरोसे सारी गृहस्थी चलती है। जिस समय गजानन मोदकोंके लिये

* हे हेरम्ब किमम्ब रोदिषि कथं कर्णौ लुठत्यग्निभूः
किं ते स्कन्द विचेष्टितं मम पुरा संख्या कृता चक्षुषाम्॥

मचलते हैं, उस समय साक्षात् अन्नपूर्णाके सामने भी अर्थ-सङ्कट आ उपस्थित होता है—

आपु बिष चाखैं भैया षटमुख राखैं, देखि
आसनमें राखै बस बास जाको अचलै।
भूतनके छैया आस-पासके रखैया और
कालीके नथैयाहूके ध्यानहूँते न चलै॥
बैल बाघ बाहन बसनको गयन्दखाल
भाँग औ धतूरेको पसार देत अचलै।
घरको हवाल यैह संकरकी बाल कहै
लाज रहै कैसे पूत मोदकको मचलै॥

परन्तु रत्नगर्भा वसुन्धराके सर्वोच्च आधारस्तम्भकी एकमात्र कन्या होनेके कारण पार्वतीजी उन साधनोंको जानती हैं जिनके द्वारा वे इस विचित्र परिवारके प्रत्येक व्यक्तिका पूर्ण सन्तोष कर सकें। साथ ही उन्होंने सुयोग्य गृहस्वामिनीके समान यह चतुरता भी कर रक्खी है कि ऋद्धि और सिद्धिको अपनी पुत्रवधू बना छोड़ा है। बस, अब उनके सहारे इनकी अर्थसमस्या बहुत कुछ सुलझ गयी है। इतना होते हुए भी उन्होंने सबसे बड़े मार्केका काम यह किया है कि अपनी यह अद्भुत गृहस्थी हिमाच्छादित पर्वतमालाके सुदूरतम शिखर कैलास-पर्वतपर जमायी है, जहाँ आस-पास केवल बर्फ-ही-बर्फ दिखायी पड़ता है। माँग तो वहाँ पैदा होती है कि जहाँ माँगनेयोग्य वस्तुएँ दीख सकती हों अथवा जहाँ तबीयतमें किसी अभावकी गरमी हो। यहाँ तो शीतलतादायक हिमराशिके अतिरिक्त और कहीं कुछ है ही नहीं, इसलिये यह निश्चय है कि इतनी ठण्ढकमें दबकर इस कुटुम्बके व्यक्ति तथा वाहनोंके झगड़ालू हौसले भी ठण्ढे पड़ जायँगे और वित्तसे बाहर दान दे देनेवाले इन औढ़रदानीजीके पासतक पहुँचनेका दुस्साहस करनेवाले भक्तोंका उत्साह भी ठण्ढा पड़ जायगा। इस चातुर्यका भी कोई ठिकाना है!

क्यों न हो, आखिर महामाया ही तो ठहरीं। इसीलिये तो जगद्गुरु शङ्कराचार्यजीने कहा है—

सपर्णामाकीर्णां कतिपयगुणैः सादरमिह
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम्॥

अनेकगुणविस्तृत सपर्णा (पत्तोंसहित) लताओंका आश्रय भले ही कोई ले, परन्तु मेरे विचारसे तो केवल उसी एक अपर्णा (पार्वतीजी) की सेवा करनी चाहिये जिससे घिरकर पुराना ठूँठ भी (स्थाणु-शिव) मोक्षके फल देने लगता है।

श्रीउमा-महेश्वर-स्तुति

(लेखक—पं० श्रीलक्ष्मण नारायणजी गर्दे)

श्रीउमादेवी गुरुमाता हैं और श्रीमहेश्वर सद्गुरु-नाथ हैं। इनकी क्या स्तुति करूँ? बिना इनकी कृपाके एक अक्षर भी तो नहीं लिख सकता। वेद, शास्त्र और पुराणोंमें सर्वत्र इन्हींकी महिमा गायी गयी है, पर मैं तो न उसकी भाषा ही ठीक तरहसे समझ सकता हूँ, न भाव ही। कभी इन अलौकिक ग्रन्थोंका अध्ययन भी नहीं किया, अनुभव करना तो बहुत दूरकी बात है। यह तो उनकी कृपा है जो उनका नाम प्यारा लगता है और इसीलिये कुछ न जानते हुए भी कल्याणके इस श्रीशिवाङ्कमें कुछ लिखनेकी इच्छा होती है। ज्ञान या विज्ञानकी कोई बात मैं नहीं बता सकता, क्योंकि ऐसी कोई वस्तु भगवान्से मुझे नहीं मिली है और इसमें भगवान्का क्या दोष? अपना अज्ञान तो अपने ही ज्ञानको कर्मान्वित करनेसे दूर होता है और अज्ञानका दूर होना ही तो ज्ञानका प्रकट होना है। भगवान्की तो असीम कृपा है जो योग्यता कुछ भी न होते हुए भी उसने अपना नाम दे दिया और वह नाम प्यारा हो गया, यह भी तो उसीकी कृपा है। यह सारा ब्रह्माण्ड-कर्म उसी दयामयकी आनन्दमय लीला है, जो कभी-कभी हम अज्ञानियोंको बड़ी ही निर्दय जान पड़ती है!

सुखपूर्वक सब प्राणी संसारमें बने रहना चाहते हैं, पर वह उन्हें मार डालता है; यह क्या है? मरनेके बाद क्या होता है, हमें कुछ मालूम नहीं! यहाँसे तो हमें सब छोड़कर ही जाना पड़ता है! जो कुछ कमाया सब देकर जाना

पड़ता है। जो कुछ अपनाया—धन, सुत, दारा—सब कुछ—त्यागकर जाना पड़ता है! यह शरीर जिसे अन्तिम क्षणतक पाला-पोसा, जिसीका भरोसा किया, जिसके बिना एक क्षण भी रह सकनेकी कल्पनातक नहीं की, स्वप्नमें यदि कभी वह छूटा-सा जान पड़ा तो मारे भयके घबरा गये और जागकर उसे टटोलने लगे, उस शरीरको भी छोड़कर जाना पड़ता है। आँखें लगी हुई हैं अपने शरीर और अपने ही जैसे अन्य शरीरोंकी ओर और वे ही छूटे जा रहे हैं! आँखोंसे प्राणोंकी असहाय व्याकुलता अश्रुधारा बनकर बाहर निकल रही है, उसे देखकर सब रो रहे हैं और प्राणी रोता हुआ इस मोह-पिञ्जरको छोड़कर चला जाता है! यह क्या है? क्या यह निर्दयता नहीं है? हाँ, हाँ, यह उस दयामयकी आनन्द-लीलाका रुद्ररूप है। संसारके सब महायुद्ध उन्हींके रुद्ररूप हैं। घर-घरमें लगी हुई कलहकी आग उन्हींका रुद्ररूप है। पद-पदपर प्राणियोंको जो भय होता है वह उन्हींका रूप है। जो कुछ भयानक है, जिसे देख, सुन या सोचकर मनुष्य या कोई भी प्राणी भयभीत होता है वह रुद्रभगवान्‌का ही रूप है। श्मशान उनका अधिष्ठान है, शव उनका आसन है, माया-ममताकी राख उनके ललाटकी शोभा है, महासर्प उनका आभूषण है, व्याघ्राम्बर उनका परिच्छद है, कालरूप जो कुछ है उस समग्रका समावेश किये हुए वह महाकाल हैं! समग्र संसारका विष उनके कण्ठमें है; पर उनका मस्तक शान्त है! त्रिपथगामिनी भगवती जाह्नवी उन्हींके मस्तकपर आकर गिरती हैं, संसारके उत्तापको शान्त करनेवाले चन्द्रमा उन्हींके मस्तकपर शोभा पाते हैं, क्योंकि उनका हृदय शिव है, कल्याणमय—मङ्गलमय है, यही सुना है।

रुद्रभगवान्‌के शिव-हृदयका यह स्वभाव है कि वह स्नेहमय, प्रेममय, दयामय है। स्नेह, दया और प्रेमके विरुद्ध जो-जो कुछ है उसका वह घोर तिरस्कार करते हैं और उसपर ऐसा प्रहार करते हैं कि एक घावमें दो टुकड़े हो जायँ। लोभ, मद, मात्सर्य, मोह, अज्ञान आदि उन्हें एक क्षण भी सह्य नहीं। इनपर उनकी भ्रुकुटि सदा ही चढ़ी रहती है। तिरस्काररूप धनुकी क्रोधरूप प्रत्यञ्चाको जरा भी विश्रान्ति नहीं है—प्राणघातक सर्वदाहक बाणोंकी वर्षा त्रिगुणात्मक अखिल ब्रह्माण्डमें प्रतिक्षण हो रही है, इसलिये कि अज्ञान नष्ट हो, मोह दूर हो, गर्व चूर हो, लोभ निर्मूल हो, आसुरीभाव और रूप जलकर शुद्ध हों। मर्त्य मरकर अमर हो जाय, असत् जलकर सत् हो जाय। उनकी भीषण निर्दयता उनके दयामय हृदयकी अखण्ड शिव-कर्मधारा है। उनका यह रुद्ररूप सहसा कोई देखना नहीं चाहता, पर कहते हैं कि जो अविचलित प्रेमसे देखता है, स्थिर होकर भक्तिपूर्वक शरण जाता है, उसके लिये यह आशुतोष हैं। क्रोध भी उन्हें जल्दी आता है, दया भी तुरन्त आती है। दयाका अवसर लानेके लिये ही तो सारा क्रोध है। शिव-हृदयके अनन्त आनन्द-समुद्रमें अवगाहन करानेके लिये ही तो यह रुद्ररूप है। यह रुद्ररूप मङ्गलमय शिवका रूप है।

श्रीउमा-महेश्वरके तीन रूप हैं—महेश, विष्णु और ब्रह्मा। ये तीनों अपनी शक्तियोंसहित सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीउमा-महेश्वर हैं। तीनोंमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है। तीनों उसी एककी महाशक्तियाँ हैं। इनमें महेश यदि महादेव हैं तो विष्णु देवाधिदेव हैं और ब्रह्मा सब देवताओंके पूज्य गणपति हैं। कारण, तीनों एक ही हैं।

प्रकृतिकी जो नित्य-साम्यावस्था है वही परात्परा महाशक्ति उमादेवी हैं। यह महेश्वर—परात्पर पुरुषसे भिन्न नहीं। यह उमा-महेश्वर अर्द्धनारीनटेश्वर हैं। दोनों एक साथ हैं, एक हैं। परा-प्रकृतिकी इस नित्य-साम्यावस्थामें सृष्टि-निमित्त जो संकल्प उठता है, वह त्रिगुणका संघर्ष है; संघर्ष सृष्टिका आद्य रूप है और संघर्ष ही युद्धरूप है। उस युद्ध अर्थात् मूल रुद्ररूपकी कल्पना त्रिगुणमें बैठकर नहीं की जा सकती। इतना ही कहा जा सकता है कि इस त्रिगुणात्मक संसारमें ज्ञानमूलक या अज्ञानमूलक जो कुछ संघर्ष, कलह, युद्ध, समर और भयंकरता है वह उसी मूलके फैलावका विकृत रूप है। रुद्ररूप इसप्रकार मूलरूप होनेसे इस रूपमें भगवान्‌को महादेव कहा गया होगा, जैसे महाकाली आद्याशक्ति कही जाती हैं। हिन्दुओंका युद्धघोष भी 'हर हर महादेव' ही है। इस युद्धघोषमें जो भयंकरता है उसका हृदय शान्ति है, यह प्रत्येक हिन्दूको घोषके अनुभवसे ही ज्ञात है। 'हर हर महादेव' घोषकी शान्ति और किसी भी युद्धघोषमें नहीं है। 'हर हर महादेव' युद्धमें रक्ततर्पणकी सूचना है, उसी प्रकार सकल संसारताप-हारिणी गंगाके, भूतभावन भगवान्‌के मस्तकसे, भूतलपर गिरनेके कलरवकी भी शान्त, स्वच्छ, सुशीतल मधुर ध्वनि है। युद्धघोषमें जो रुद्ररूप है वही युद्धके फलरूपमें शिवरूप है। कारण, परात्परा प्रकृतिका सृष्टिसंकल्प संघर्षयुक्त होनेपर भी उसका मूल और उसका फल मंगलमय आनन्द

है । रुद्ररूप शिवस्वरूप महादेवका हृदय, इसीलिये कहते हैं कि विष्णु हैं और विष्णुका हृदय शिव हैं ।

सृष्टि कर्म है, कर्म ज्ञानका रूपात्मक अंश है । नाम-रूपात्मक जगद्रूप जो कर्म हो रहा है उस कर्ममें आद्यन्त-व्याप्त ज्ञान ही गणेश हैं । हमारी-आपकी बुद्धिके द्वारा जो ज्ञान आता है वह उन्हीं गणेशके ज्ञान-समुद्रका अञ्जलिभर जल है इसीलिये गणेश बुद्धिविनायक कहाते हैं । सृष्टि-कर्मके मूलमें जैसे संघर्षरूप शिवहृदय रुद्र हैं, संकल्पधारक और कर्मपालक विष्णु हैं, वैसे ही कर्मसाधक श्रीगणेश हैं । ये त्रिदेव हैं—ये ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश हैं । तीनों ही एक साथ हैं, एक हैं; पर अज्ञानकी भेद-बुद्धिमें भिन्न-भिन्न हैं । अभेद-बुद्धिमें श्रीउमा-महेश्वर हैं ।

श्रीउमा-महेश्वर ही तीनों रूप धारणकर तीनों लोक प्रकट करते हैं । ये त्रिदेव नाम-रूपात्मक जगत्के परे हैं । नाम-रूपात्मक जगत्में हम सत्त्व-रज-तमके चक्रमें घूमते रहते हैं ! ये चक्र मायाचक्र हैं—त्रिगुणात्मक मायाके अधीन सब प्राणी हैं, उन्हें कोई भी स्वतन्त्रता नहीं है । प्रकृतिके गुण धक्का देकर जिधर ले जाते हैं उधर ही प्राणियोंको जाना पड़ता है । सुख, दुःख और सुखकी आशाके चक्करसे उनका छूटना बड़ा ही कठिन होता है। इस चक्करसे छूटनेकी इच्छा भी सबको नहीं होती । सुखमें मनुष्य अपने आपको भूल जाता है, दुःखमें घबरा जाता है और सुखकी आशामें फँसा रहता है । उसे यह ज्ञान नहीं रहता कि यह सुख क्या है, दुःख क्या है और सुखकी आशा क्या है ? वह अज्ञानमें रहता है । अज्ञान तमोगुण है, पर यह तम सहसा दूर नहीं होता है । जब कोई भयंकर आघात होता है तब तमका नशा कुछ उतरता है । यह आघात रुद्रका प्रहार है और इसका हेतु नशा उतारना है । रुद्र महादेव इसलिये भी हैं कि यह वैरियोंका नाश करनेवाले हैं—अपने अन्दरके वैरी और बाहरके भी । आदिमें वही रुद्र हैं, अन्तमें भी वही रुद्र हैं और उनके साथ विष्णु भी हैं और ब्रह्मा भी । कारण, महेशके रुद्ररूपको देखनेके लिये हृद्देश-स्थित विष्णुका प्रेम और आज्ञाचक्रस्थित नेत्रकी स्थिर दृष्टि चाहिये । नाम-रूपात्मक जगत्के परे ये तीन आत्मस्वरूपके नित्य भाव हैं ।

ये भाव श्रीउमा-महेश्वरकी उमा-शक्तिमें हैं । उमाशक्ति ब्रह्मविद्या हैं और महेश्वर परब्रह्म हैं । परब्रह्मकी प्राप्ति ब्रह्मविद्याके बिना नहीं हो सकती । और ब्रह्मविद्या ब्रह्ममें ही रहती है (ब्रह्मणि विद्यते या सा ब्रह्मविद्या), वही माता हैं—परात्परा उमा-महाशक्ति । परात्पर परम धाम परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये मनुष्य जो कुछ मन्त्र-स्तुति करता है, जो कुछ तप करता है, जो कुछ ज्ञान प्राप्त करता है उस स्तुतिमें, उस तपमें, उस ज्ञानमें उन्हींकी सत्ता है । परम धामको प्राप्त करानेवाला ज्ञान-कर्म-भक्तिका जो सोपान है वह माताका ही स्तन-पान है । ब्रह्मविद्या या उमा-महाशक्तिके ही तीनों लोक हैं, तीनों वेद हैं, तीनों भाव हैं और तीनों रूप हैं । पर इन तीनोंके परे निरालम्बस्वरूप परब्रह्म परमेश जो महेश्वर हैं उन्हें प्राप्त करनेके लिये जो साधक साधना करते हैं अर्थात् जो भक्त भजन करते हैं, जो जिज्ञासु ज्ञानार्जन करते हैं, जो मुमुक्षु कर्माचरण करते हैं वे यह बतलाते हैं कि उनका भजन, उनका ज्ञान और उनका कर्माचरण उनका नहीं, उन्हींका है जिनके लिये यह सब किया जाता है । लौकिक जगत्में अलौकिककी यह सत्ता है—यह भी एक विलक्षण और अदृश्य जगत् है जिसे जो लोग देखते हैं उनके लिये फिर यह जगत् बहुत ही क्षुद्र हो जाता है । कहते हैं इस जगत्का वैभव उस हिरण्मयी पुष्करिणीके वैभवके सामने केवल पीतलपर सोनेका मुलम्मा मालूम होता है और इस जगत्के भयानक-से-भयानक दृश्य, प्रलय और महाप्रलय भी उस शिवहृदय महारुद्रके अखण्ड आनन्द-लीला-विलासके शृंगारद्वार प्रतीत होते हैं । लौकिक-में अलौकिककी प्राप्तिकी साधनारूप जो निरहंकार सत्ता है वही कहते हैं कि उमा-महेश्वरके पास ले जानेवाली माता, आद्यन्तव्यापिनी सत्ताका प्रथम परिचय है । हमलोग जिसे ब्रह्मविद्या कहते हैं, वह इसप्रकार अखिल, अनन्त, व्यापिनी, निराकार निर्गुण और साकार गुणमयी उमा-महेश्वरी हैं । वह माता हैं इसलिये रोते हुए बच्चेको तुरन्त उठा लेती हैं; वह स्वयं महेश्वरसे भिन्न नहीं, इसलिये उनका उठा लेना उमा-महेश्वरके चरणोंमें ही पहुँचना है । पर माताको जो माता नहीं मानता उसके कर्मोंका फल कालरूप होकर उसके सामने आता है; आता है जगानेके लिये, स्मरण दिलानेके लिये । साधारण मनुष्य उस भयंकर रूपको देखकर घबरा जाता है; पर धार्मिक और निष्ठावान् पुरुष शिवका ही चिन्तन करते हुए रुद्रभगवान्का पूजनकर उमा-महेश्वरी उमा माताकी गोदमें बैठकर उमा-महेश्वरकी अनन्त, अमर, आनन्दमय सत्ताको प्राप्त होते हैं । परन्तु—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

मैं या मेरे-जैसे लोग जिस दुनियामें रहते हैं वहाँ तो अलौकिक शाश्वत जगत्की ये बातें स्वप्नके समान ही हैं, फिर भी मैंने यह लिखा उन संयमी मुनियों—सिद्ध और साधकोंके चरणोंमें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनेके लिये जो अलौकिक जगत्में ही रहते हैं और काम-क्रोधके इस जगत्को स्वप्नतुल्य देखते हैं, क्योंकि उनके आशीर्वादसे इस अबोधको कुछ बोध कभी हो सकता है।

लेखकके अन्तमें उन नित्य, नवभाव, नवरूप, नवरस, परम पुराण, अनाद्यनन्त, भगवती-भगवान् श्रीनारायणाद्यनन्त-नाम श्रीउमा-महेश्वरके चरणोंमें प्रतिपद प्रतिक्षण प्रणाम है।

शिवपुराणमें शिव-तत्त्व

(लेखक—चौधरी श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी)

परात्पर शिव

प्रलयका अवसान होनेपर पुनः सृष्टिके प्रारम्भके पूर्व जब परब्रह्म सृष्ट्युन्मुख होते हैं, तब वे परात्पर सदाशिव कहलाते हैं, वही सृष्टिके मूल-कारण हैं। मनुस्मृतिमें इन्हें 'स्वयम्भू' कहा गया है। यथा—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥

तब स्वयम्भू भगवान् अव्यक्त होनेपर भी प्रलयके तमको दूर कर प्रकाशित हुए और महाभूत एवं अन्य सब बड़े शक्तिशाली तत्त्व उनसे प्रकट हुए। शिवपुराणमें भी इसी आशयका वचन है—

सिसृक्षया पुराऽव्यक्ताच्छिवः स्थाणुर्महेश्वरः।
सत्कार्यकारणोपेतः स्वयमाविरभूत्प्रभुः॥
(वा० सं० अ० ३०।१।८)

इन्हींको श्रीमद्भगवद्गीतामें महेश्वर-संज्ञा दी गयी है।

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥
(१३।२२)

साक्षी, हितोपदेष्टा, पोषक एवं भोक्तारूप जो महेश्वर परमात्मा है वह इस शरीरमें परम पुरुषकी भाँति है। शिवपुराणका वचन है कि शिव प्रकृति और पुरुष दोनोंसे परे हैं। यथा—

तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः।
तदधीनप्रवृत्तित्वात् प्रकृतेः पुरुषस्य च॥
(वा० सं० पू० अ० २८।३३)

यह महेश्वर अपनी इच्छा-शक्तिद्वारा सृष्टिकी रचना करते हैं। श्रुतिका वचन है—'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।' शिवकी यह शक्ति दो रूपमें कार्य करती है—(१) मूल-प्रकृति और (२) दैवी-प्रकृति। गीतामें मूल-प्रकृतिको अपरा-प्रकृति कहा है जिससे पञ्चभूत और अन्तःकरण आदि दृश्य पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई। परा-प्रकृति चैतन्य-शक्ति है जो इस अपरा-प्रकृतिको नाम-रूपमें परिवर्तित करती है। अपरा-प्रकृतिको 'अविद्या' और पराको 'विद्या' कहते हैं। परा-प्रकृतिको 'पुरुष' भी कहते हैं। इन दोनों प्रकृतियोंके नायक और प्रेरक श्रीशिव—महेश्वर हैं।

क्षरन्त्वविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते।
ते उभे ईशते यस्तु सोऽन्यः खलु महेश्वरः॥
माया प्रकृतिरुद्दिष्टा पुरुषो माययावृतः।
सम्बन्धो मलकर्मभ्यां शिवः प्रेरक ईश्वरः॥

शिव त्रिदेवसे पृथक् हैं

सगुण अर्थात् मायासंवलित ब्रह्म जिनकी पुरुष-संज्ञा है, शिवकी इच्छाके अनुसार गुणोंके क्षोभसे रजोगुणसे ब्रह्मा, सत्त्वसे विष्णु और तमसे रुद्ररूप हुए। ये तीनों ब्रह्माण्डके त्रिदेव हैं और शिव अनेक कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हैं। शिवपुराण वा० सं० अ० २ का वचन है—

पुरुषाधिष्ठितात्पूर्वमव्यक्तादीश्वराज्ञया।
बुद्ध्यादयो विशेषान्ता विकाराश्चाभवन् क्रमात्॥
ततस्तेभ्यो विकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः।
जगतः कारणत्वेन त्रयो देवा विजज्ञिरे॥
सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मसु त्रिषु हेतुताम्।
प्रभुत्वेन सहैतेषां प्रसीदति महेश्वरः॥

प्रथम ईश्वरकी आज्ञासे पुरुषाधिष्ठित अव्यक्तसे क्रमशः बुद्धिसे लेकर विशेषपर्यन्त विकार उत्पन्न हुए। उनमें ब्रह्मा, विष्णु* और रुद्र—ये तीन देव जगत्‌के कारणरूप उत्पन्न हुए। ये तीनों क्रमशः सृष्टि, स्थिति और लयके कार्यमें महेश्वरद्वारा नियुक्त हैं। इन त्रिदेवोंमें परस्पर कोई भेद नहीं है। तीनों एक हैं और तीनोंका कार्य मिलकर होता है। अर्थात् तीनों ही एक दूसरेके कार्यमें सहायता देते हुए एकमत होकर कार्य करते हैं। जो इन तीनोंमें भेद समझता है, एकको बड़ा और दूसरेको छोटा कहता है वह शिवपुराणके निम्नलिखित वचनके अनुसार राक्षस अथवा पिशाचके समान है, इसमें सन्देह नहीं। शिवपुराणमें लिखा है—

> एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
> परस्परेण वर्द्धन्ते परस्परमनुव्रताः॥
> क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
> नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यञ्चातिरिच्यते॥
> अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
> यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः॥

चतुर्व्यूह

गुणत्रयसे अतीत भगवान् शिव चार व्यूहोंमें विभक्त हैं १—ब्रह्मा, २—काल, ३—रुद्र और ४—विष्णु। शिव सबके आधार हैं और शक्तिकी भी उत्पत्तिके स्थान हैं, जैसा कि शिवपुराणके उपर्युक्त प्रकरणमें लिखा है—

> देवो गुणत्रयातीतश्चतुर्व्यूहो महेश्वरः।
> सकलः सकलाधारः शक्तेरुत्पत्तिकारणम्॥
> सोऽयमात्मत्रयस्यास्य प्रकृतेः पुरुषस्य च।
> लीलाकृतजगत्सृष्टिरीश्वरत्वे व्यवस्थितः॥
> यः सर्वस्मात्परो नित्यो निष्कलः परमेश्वरः।
> स एव तत्तदाधारस्तदात्मा तदधिष्ठितः॥
> तस्मान्महेश्वरश्चैव प्रकृतिः पुरुषस्तथा।
> सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वं शिवात्मकम्॥

त्रिदेवान्तर्गत रुद्र गुणातीत शिवसे स्वरूपतः पृथक् हैं

श्रीशिव ब्रह्माण्डके अधिष्ठाता त्रिदेवोंके अन्तर्गत रुद्रसे पृथक् हैं। इसके और भी प्रमाण श्रीशिवपुराणमें हैं। यथा—

> दक्षिणाङ्गान्महेशस्य जातो ब्रह्मात्मसंज्ञकः।
> वामाङ्गादभवद्विष्णुस्ततो विद्येतिसंज्ञितः।
> हृदयान्नीलरुद्रोऽभूच्छिवस्य शिवसंज्ञितः॥

इससे यह भी सिद्ध होता है कि त्रिदेवोंमें भी एक देव रुद्र हैं, अतएव रुद्र एक ही हैं—यद्यपि ग्यारह गुण-कर्मके कारण उनके ग्यारह काम और ग्यारह नाम हैं।

शिव-लिङ्ग केवल चिन्मय है, स्थूल नहीं

सदाशिवसे जो चैतन्य-शक्ति उत्पन्न हुई और उससे जो चिन्मय आदि पुरुष हुए, वही यथार्थमें शिवके लिङ्ग हैं, क्योंकि उन्हींसे चराचर विश्वकी उत्पत्ति हुई, वे ही सबके लिङ्ग अथवा कारण हैं और उन्हींमें विश्वका लय होगा। शिवपुराणमें लिखा है कि समस्त लिङ्ग-पीठ (आधार) अर्थात् प्रकृति पार्वती और लिङ्गको चिन्मय पुरुष समझना चाहिये। इन दोनोंके संयोगसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। यथा—

> पीठमम्बामयं सर्वं शिवलिङ्गञ्च चिन्मयम्।
> (विद्ये० सं० अ० ९)

शिवपुराणमें शिवके वाक्य हैं कि जो लिङ्ग (महाचैतन्य) को संसारका मूल-कारण और इस कारण-जगत्‌को लिङ्गमय (चैतन्यमय) समझकर इस आध्यात्मिक दृष्टिसे लिङ्गकी पूजा करता है वही मेरी यथार्थ पूजा करता है। यथा—

> योऽर्चयाऽर्चयते देवि पुरुषो मां गिरेः सुते।
> लोकं लिङ्गात्मकं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयते हि माम्॥
> न मे तस्मात्प्रियतरः प्रियो वा विद्यते ततः।
> (सनत्कु० सं० अ० ३०)

शिवपुराणके अनेक स्थलोंमें (उदाहरणतः वा० सं० उ० अ० २७) और लिङ्गपुराणमें भी कथा आती है कि सृष्टिके आदिमें अर्थात् किसी ब्रह्माण्डके प्रारम्भमें ब्रह्मा और विष्णुको लिङ्गके दर्शन हुए, जिसका आदि-अन्त दोनोंने नहीं पाया। उसके बाद उस लिङ्गमें प्रणवके अक्षर प्रकट हुए। प्रणवके अक्षरोंके प्रकट होनेका तात्पर्य नाद अर्थात् शब्द-ब्रह्मका प्रकट होना है जो सृष्टिके समस्त पदार्थोंका

---

* महाविष्णु श्रीशिवके समान त्रिदेवान्तर्गत विष्णुसे उच्च हैं और वही वैष्णवोंके इष्ट हैं। उन्हींके अवतार श्रीराम और श्रीकृष्ण हुए।

आदि-कारण है। ये विष्णु और ब्रह्मा उस ब्रह्माण्डके त्रिदेयान्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु थे न कि महाविष्णु, जिनमें और सदाशिवमें भेद नहीं है। लिङ्गसे तात्पर्य यहाँ महाचैतन्यमय आदिपुरुषका है जिसके संकल्प अथवा इच्छा-शक्तिमें सम्पूर्ण विश्व निहित है और उसीसे इस विश्वकी उत्पत्ति हुई।

पञ्च और अष्टमूर्ति

शिवपुराणकी सनत्कुमारसंहिताके छठे अध्यायमें लिखा है कि शिवकी प्रथम मूर्ति क्रीड़ा करती है, दूसरी तपस्या करती है, तीसरी लोकसंहार करती है, चौथी प्रजाकी सृष्टि करती है और पाँचवीं ज्ञान-प्रधान होनेके कारण सद्वस्तुयुक्त सम्पूर्ण संसारको आच्छन्न कर रखती है। वही ईशानमूर्ति सबके प्रभु, सबमें वर्तमान, सृष्टि और प्रलयकर्ता और सबके रक्षक हैं। उनका नाम ईशान है।

उक्त पुराणकी वायवीय संहिताके चौथे अध्यायमें लिखा है कि श्रीशिवकी ईशान नामकी परमोत्तम प्रथम मूर्ति साक्षात् प्रकृति-भोक्ता, क्षेत्रज्ञ पुरुषमें अधिष्ठित रहती है। तत्पुरुष नामकी दूसरी मूर्ति सत्त्वादि गुणाश्रय, भोग्य प्रकृतिमें अधिष्ठित है। तीसरी घोराख्य मूर्ति धर्मादि अष्टाङ्ग-संयुक्त बुद्धिमें अवस्थित रहती है। चौथी मूर्ति जिसे वामदेव कहते हैं अहङ्कारकी अधिष्ठात्री है और पाँचवीं सद्योजात मूर्ति मनकी अधिष्ठात्री है। श्रीशिवकी अष्टमूर्तियाँ—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमें अधिष्ठित रहती हैं।

अर्द्धनारीश्वर

श्रीशिवपुराणकी वायवीय संहिता (पूर्वभाग) के १३ और १४ वें अध्यायमें कथा आती है कि जब ब्रह्माकी मानसिक सृष्टिसे प्रजाकी वृद्धि न हुई तब उन्होंने प्रजावृद्धिका ठीक उपाय जाननेके लिये तपस्या करना प्रारम्भ किया। तपस्याके कारण ब्रह्माके मनमें आद्याशक्ति उदित हुई। उक्त शक्तिके आश्रयसे ब्रह्मा त्र्यम्बकेश्वर शिवके ध्यान करनेमें प्रवृत्त हुए। श्रीशिव ध्यानके प्रभावसे सन्तुष्ट होकर अर्द्धनारीश्वर अर्थात् आधी स्त्री (शक्ति) और आधे पुरुष (शिव) के रूपमें ब्रह्माके समक्ष प्रकट हुए। ब्रह्माने शिव और उनकी शक्ति दोनोंकी स्तुति की। स्तुतिसे प्रसन्न होकर श्रीशिवने अपने शरीरसे एक देवीकी उत्पत्ति की जिनकी संज्ञा परमा शक्ति थी। ब्रह्माने उक्त श्रीदेवीसे कहा कि 'मैंने अबतक मनद्वारा देवतादिकी उत्पत्ति की है किन्तु वे बार-बार उत्पन्न होकर भी वृद्धिंगत नहीं हो रहे हैं। अतएव अब मैं मैथुन-जन्य सृष्टिद्वारा प्रजाकी वृद्धि करना चाहता हूँ। इसके पूर्व आपसे अक्षय नारी-कुलकी उत्पत्ति न हुई जिसके कारण मैं स्त्रीको नहीं बना सकता। अतएव आप कृपाकर मेरे पुत्र दक्षके यहाँ कन्यारूपमें जन्म लीजिये।' ऊपरकी कथासे तीन परमोत्तम सिद्धान्त प्रकट होते हैं। एक तो यह कि शिव-लिङ्गरूपमें संसारके समस्त चराचर प्राणियोंके साँचे हैं और जो साँचेकी भाँति संकल्परूपमें लिङ्गके अन्दर नहीं है उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। दूसरी बात यह है कि परात्पर शिवकी प्राप्ति उनकी शक्तिसे सम्बन्ध होनेपर ही होती है, जैसे ब्रह्माको हुई। तीसरी यह कि संसारकी मानवी प्रजाका कारण अर्द्धनारीश्वर होनेसे सभी पुरुष शिवरूप और सब स्त्रियाँ शक्तिरूपिणी हैं, जैसा कि शिवपुराणमें लिखा है—

शङ्करः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी।

(वा० सं० पू० अ० ४। ५५)

शिव जगद्गुरु

श्रीशिवका एक बृहत् परम कल्याणकारी कार्य इस विश्वमें जगद्गुरुके रूपमें नाना प्रकारकी विद्या, योग, ज्ञान, भक्ति आदिका प्रचार करना है, जो बिना उनकी कृपाके यथार्थ रूपमें प्राप्त नहीं हो सकते। श्रीशिव केवल जगद्गुरु ही नहीं हैं किन्तु अपने कार्य-कलाप, आहार-विहार और संयम-नियम आदिद्वारा जीवन्मुक्तके लिये आदर्श हैं। लिङ्गपुराणके अध्याय ७ और शिवपुराणकी वायवीय संहिता पूर्व-भागके अ० २२ में शिवके योगाचार्य होनेका और उनके शिष्य-प्रशिष्योंका विशद वर्णन है। शिवपुराणका कथन है—

युगावर्तेषु शिष्येषु योगाचार्यस्वरूपिणा।
तत्र तत्रावतीर्णेन शिवेनैव प्रवर्त्तते॥
संक्षिप्यास्य प्रवक्तारश्चत्वारः परमर्षयः।
रुरुर्दधीचोऽगस्त्यश्च उपमन्युर्महायशाः॥
ते च पाशुपता ज्ञेयाः संहितानां प्रवर्त्तकाः।
तत्सन्ततीनां गुरवः शतशोऽथ सहस्रशः॥

प्रति युगके आरम्भमें श्रीशिव योगाचार्यके रूपमें अवतीर्ण होकर शिष्योंको शिक्षा प्रदान करते हैं। चार बड़े ऋषियोंने इस (योग-शास्त्र) को संक्षेपमें वर्णन किया। उनके नाम रुरु, दधीच, अगस्त्य और महायश उपमन्यु हैं। ये पशुपतिके उपासक और पाशुपत-संहिताओंके प्रवर्त्तक हुए। इनके वंशमें सैकड़ों-हजारों गुरु उत्पन्न हुए। शिवपुराणकी वायवीय संहिताके उत्तर-भागके १० वें अध्यायमें इन योगाचार्यों और उनके शिष्य-प्रशिष्योंका सविस्तर वर्णन है और उनके नाम भी वहाँ दिये गये हैं। प्रथम २८ योगाचार्य हुए, ४×७=२८। इन अट्ठाईसके चार-चार शिष्य हुए, जिनकी संख्या २८×४=११२ हुई। इनमें सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, कुथुमि, मित्रक आदिके भी नाम हैं। लिखा है कि संसारकी मङ्गल-कामना ही इनका व्रत है। इस अध्यायके अन्तका निम्न-श्लोक बड़े महत्त्वका है, वह इसप्रकार है—

स्वदेशिकानिमान् मत्वा नित्यं यः शिवमर्चयेत्।
स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा॥२८॥

अर्थात् जो इनको अपना सद्गुरु मानकर शिवकी उपासना-ध्यान करता है, वह अनायास शिवकी साक्षात् प्राप्ति करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। ऊपरके वाक्योंसे यह सिद्ध है कि ये सद्गुरु इस समय भी वर्तमान रहकर योग्य साधकोंकी अदृश्य अथवा दृश्य-भावसे सहायता कर इष्टोन्मुख और शिवोन्मुख करते हैं। और साधक इनमेंसे किसी एकको अपना सद्गुरु वरण करके साधना करनेसे अवश्य इष्टका लाभ करता है। इन सद्गुरुओंमेंसे किसी एकको सद्गुरु वरण किये बिना कोई अपने इष्टकी उपासनामें सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। भाव यह है कि जगद्गुरु श्रीशिवकी इच्छानुसार उनके पुत्रकी भाँति ये योगाचार्य और उनके शिष्य प्रशिष्यगण ज्ञान, योग, भक्ति आदिके प्रचारमें सदा प्रवृत्त रहते हैं और योग्य साधकोंकी अदृश्य-भावसे सहायता करते हैं। हमलोगोंमें जब कभी सद्वृत्ति, सद्विचार, सत्-कामना, उत्तम साधनोंमें प्रवृत्ति, भक्ति-भाव, सत्य-ज्ञानका अनुसन्धान आदि सद्भाव और सद्गुण प्राप्त होते हैं अथवा भविष्यमें क्रमशः होंगे वे सब इन्हीं सद्गुरुओंकी कृपाका फल है। अतएव इनकी असीम कृपापर दृढ़ विश्वास रखकर तथा इनके प्रत्यक्ष न होनेपर भी इनको सद्गुरु मानकर इनमें भक्ति और श्रद्धा करनी चाहिये एवं इनका स्मरण भी करना चाहिये। ऐसा करनेपर ये विशेष सहायता कर सकेंगे और यदि साधकपर शिवकी कृपा हुई तो प्रत्यक्ष भावसे अन्तरमें उपदेश भी करेंगे।

पाशुपत-योग

इसका विस्तारपूर्वक वर्णन शिवपुराणकी सनत्कुमार-संहिताके अ० ५६से ५८ तकमें है, जिसका साधना-सम्बन्धी सूक्ष्म सारांश इसप्रकार है। आत्माकी शिव-तत्त्वके साथ एकता करके इन्द्रियोंका निग्रह करना यथार्थ भस्म धारण करना है, क्योंकि श्रीशिवजीने ज्ञान-चक्षुद्वारा कामको भस्म किया था। ॐकारकी उपासना जपद्वारा करनी चाहिये; यथार्थ ज्ञान, योग, क्रियानुष्ठानकी प्राप्ति करनी चाहिये। हृदय-कर्णिकामें एक सूक्ष्म, सर्वतोमुख, दस नाड़ियोंसे वेष्टित कमल है—उसीमें जीवात्माका वास है। यही जीवात्मा सूक्ष्मरूपसे मनमें रहता है और वही चित्त और पुरुषरूप है। वैराग्य, धर्म, समता आदिके अभ्याससे तमोगुण, रजोगुणके विकारोंको पराभव करके और सद्गुरूपदिष्ट योगाभ्याससे* सूक्ष्म नाड़ीरूपी दृशाग्निको भेद करके भूतोंके आधार सोमका पर्यटन करे। वह अभ्यन्तरस्थ सोम उस नाड़ीद्वारा तर्पित होकर वृद्धिको प्राप्त करता है और तब जीव मध्यगत शिराको आह्वान करता है। प्राज्ञ योगी जब-जब सोम-शिखाद्वारा तर्पित होते हैं, तभी जाग्रत् और सुप्त-अवस्थाको जीतकर अजाग्रत्-अवस्थामें ध्यान-योगद्वारा ध्येयमें लय होते हैं। ५८ वें अध्यायमें श्रीसनत्कुमारने व्याससे जो कुछ कहा उसका संक्षेप यों है—'मुझको गुरुरूपमें जानकर, मेरेद्वारा कथित विद्याका अभ्यास करके, उपाधियोंपर अधिकार करके और पृथक् होकर तत्त्वज्ञानके २६ तत्त्वोंको लाभ करे। श्वास और नाड़ियोंको जीतकर जो सूक्ष्म आत्मा हृत्-पद्मकी कर्णिकामें है उसमें मनको एकाग्र कर स्थित होवे। योगी विद्या-शक्तिके आश्रयसे ही नाड़ियोंका दर्शन करके अभ्यन्तरमें परमात्माका दर्शन पाते हैं।

ऊपरके कथनमें एक बहुत विशेष रहस्य है। वह यह है कि श्रीसनत्कुमारने व्याससे कहा कि मुझको सद्गुरु वरणकर इस योगमें प्रवृत्त होना चाहिये। यह सद्गुरुवरण त्रिकालके लिये सत्य है। यथार्थ उच्च आध्यात्मिक योगके आचार्य श्रीसनत्कुमार आदि अदृश्य सद्गुरुगण हैं। और बिना इनकी कृपा-दृष्टिके साधक उन्नति नहीं कर सकता। ये प्रत्येक

* इस योगाभ्यासकी शैलीका किञ्चित् वर्णन ग्रन्थमें है किन्तु बिना गुरुके बतलाये उसे कोई समझ नहीं सकता।

यथार्थ साधककी ओर अपनी कृपा-दृष्टि रखते हैं जैसा पहले कहा जा चुका है। प्रत्येक साधकको इन्हें सद्‌गुरु मानकर और इनपर श्रद्धा-विश्वास-भक्ति रखकर अपनी साधनामें प्रवृत्त होना चाहिये। ऐसा करनेसे अदृश्य-भावसे किसी-न-किसी सद्‌गुरुसे साधकको सहायता मिलेगी और साधनाकी विघ्न-बाधाएँ दूर हो जायँगी।

पूजा और ध्यान

शिवपुराणमें शिव और पार्वतीके संवादमें पूजाका क्रम विस्तारसे दिया हुआ है। संक्षेपमें मुख्य साधनाका प्रकार यह है कि स्नान करके शिव, शिवा और गुरुका चिन्तन करे। पश्चात् एकाग्रचित्त होकर पूर्व अथवा उत्तर-मुख बैठकर दहन-प्लावनादिसे पञ्चतत्त्वोंको शुद्ध करना चाहिये। अङ्गन्यास, मन्त्रन्यासादि करके देवताङ्गमें षडङ्ग-न्यास करना चाहिये। इसके बाद विद्या-स्थान, स्वकीय रूप, ऋषि, छन्द, अधिदैवत शक्ति और वाच्य आदिका स्मरण करके पञ्चाक्षर-मन्त्र जपना चाहिये। जपके साथ-साथ प्राणायाम करना चाहिये अथवा शिव और शिवा दोनोंकी मूर्तिका ध्यान करना चाहिये। प्राणायामयुक्त जप उत्तम है किन्तु प्राणायामके साथ चार सौ बार मन्त्र-जप करना चाहिये। इसप्रकारके पाँच प्राणायाम यथेष्ट हैं। प्राणायाम-युक्त जपकी अपेक्षा ध्यानयुक्त जप हजारगुना अधिक महत्त्वका है। सदाचारसम्पन्न होकर ध्यान-जपादि करनेसे मङ्गलकी प्राप्ति होती है। आचार परम धर्म, आचार ही परम धन, आचार परम विद्या और आचार परम गति है। आचार-विहीन पुरुष इस लोकमें निन्दित होकर परलोकमें बहुत दुःख भोगते हैं। अतएव अवश्य अवश्य अवश्य सदाचारवान् होना चाहिये।

स्मरण रहे कि साधनामें ध्यान मुख्य है और इसके द्वारा इष्टकी प्रत्यक्ष प्राप्ति होती है। शिवपुराणकी वायवीय संहिता, उत्तर भागके अ० ८ में लिखा है कि पञ्चयज्ञमें ध्यान और ज्ञान-यज्ञ मुख्य हैं। जिनको ध्यान और ज्ञानकी प्राप्ति हुई, वे ही भव-समुद्रसे उत्तीर्ण हुए हैं—ऐसा जानना चाहिये। हिंसादि दोषवर्जित, विशुद्ध, चित्तको प्रशान्त करनेवाला और अपवर्ग-फल-प्रद ध्यान-यज्ञ ही सबसे श्रेष्ठ है। कर्म-यज्ञ-कर्ता तो राजभवनके बाह्य कर्मचारीके समान हैं जिनको अल्प फल मिलता है। ध्यानीको ईश्वर-विग्रह प्रत्यक्ष भासता है और कर्मयोगीके लिये ईश्वर-देह स्थूल मिट्टी, काष्ठादिद्वारा कल्पित होता है। इस कारण ध्यान-परायण पुरुष शिवको यथार्थरूपसे जानते हैं। इसीलिये वे पाषाणमय अथवा मृण्मय मूर्तिपर निर्भर नहीं रहते। हृदयस्थ शिवको छोड़कर जो बाह्यरूपमें ही शिवकी पूजा करते हैं वे मानो हस्त-गत फलको त्यागकर अपनी कोहनीको चाटते हैं। ज्ञानसे ध्यान और ध्यानसे ज्ञान एवं दोनोंसे मुक्ति मिलती है, इसलिये ध्यान-यज्ञका कभी परित्याग नहीं करना चाहिये। शिवपुराणकी सनत्कुमारसंहिताके अ० ३८ में लिखा है—

> पुरुषं शाश्वतं सूक्ष्मं द्रष्टव्यं ध्यानचक्षुषा।
> यतते ध्यानयोगेन यदि पश्येत पश्यति॥

ध्यान हृदयमें ही होना चाहिये। शिवपुराणके अनेक स्थलोंमें उल्लेख है कि शिवका वास हृदयमें है और हृदय-हीमें ध्यान करना चाहिये। यथा—

> परमात्मा हृदिस्थो हि स च सर्वं प्रकाशते।
> नाभिनाडीभिरस्यर्थं क्रीडाभोहविसर्जनम्॥
> स नाडीतोऽथ मन्तव्यो येन विश्वं हृदि व्रजेत्।
> पूर्वास्ते हृदि तिष्ठन्ति तन्मनस्तत्परायणाः॥
> स्वदेहायतनस्यान्तर्विचिन्त्य शिवमम्बया।
> हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयज्ञेन पूजयेत्॥

आरती

हरि कर दीपक, बजावैं संख सुरपति, गनपति झाँझ, भैरों झालर झरत हैं।
नारदके कर बीन, सारदा जपत जस, चारि मुख चारि बेद बिधि उचरत हैं॥
षटमुख रटत सहस्रमुख सिव सिव, सनक सनंदनादि पाँयन परत हैं।
'बालकृष्ण' तीनि लोक तीस और तीनि कोटि एते सिव संकरकी आरती करत हैं॥

—बालकृष्ण

संस्कृत-साहित्यमें शिव

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, भट्ट, कविरत्न)

[१]

स्कृतका साहित्य आध्यात्मिक तत्त्वोंसे पूर्ण और बड़ा विस्तृत है। इसी साहित्यसे अनेक भाषाओं-के साहित्योंका विकास और पोषण हुआ है यह कौन नहीं जानता ? इसमें अन्यान्य विषयोंपर तो गभीरतम गवेषणाएँ हुई ही हैं, परन्तु अध्यात्म-विषयोंपर तो इतना विचार हुआ है जिसकी हद नहीं। इस अध्यात्ममयताके कारण ही बहुत-से पाश्चात्य विद्वान् इस भाषाको 'अध्यात्म-भाषा' तक कह गये हैं। आर्यदर्शन प्रत्येक पदार्थको आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीन रूपोंमें व्याख्या करके समझाया करते हैं।

भगवान् शिवका संस्कृत-साहित्यमें बड़े व्यापकरूपसे वर्णन है। वेदसे लेकर अर्वाचीन लेखकतक शिव-वर्णनपर नाना प्रकारसे लिख गये हैं और बहुत कुछ लिख गये हैं। यजुर्वेदकी रुद्राष्टाध्यायीसे दार्शनिक विद्वान् और भक्त दोनों ही अपना-अपना अभीष्ट अर्थ निकालते हैं। दार्शनिकगण शिवतत्त्वकी बड़ी गभीररूपसे व्याख्या करते हैं तो भक्त-समाज भगवान् शिवके मनोहर चरित्र वर्णन करके उनकी महिमा सर्व-साधारणतक प्रकट करना चाहता है। उपनिषत् 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' कहकर आध्यात्मिक पद्धतिसे हमें शिव-रहस्य समझाना चाहते हैं तो पुराण शिव-माहात्म्य-वर्णन दूसरे ही प्रकारसे आरम्भ करते हैं। पुराणोंमें भगवान् शिवका स्वरूप, उनकी क्रीडा, उनका निवास-स्थान, उनके गण, उनके सेवक, उनका शृङ्गार, उनके चरित्र, उनका स्वभाव—यों कहना चाहिये कि उनके सभी परिकर अद्भुत-अद्भुत बतलाये गये हैं। जबतक उनका असली तत्त्व समझमें नहीं आ जाता तबतक मनुष्य अपनी रुचिके अनुसार इनका अनेक तरहसे आलोचन-विवेचन किया करता है।

जटाओंमें गङ्गाधारण तथा कण्ठमें हलाहलस्थापना इन्हीं दो विषयोंको ले लीजिये। इन्हींपर लोगोंकी अनेक भावनाएँ हैं। कोई कहते हैं कि भगवान् शिव विष्णुके अनन्य भक्त हैं अतएव अपनेको पवित्र करनेके लिये उनके चरणप्रक्षालनोदकस्वरूप भगवती गङ्गाको भक्तिभावसे मस्तकपर धारण करते हैं। इसी तरह कोई वादशील कहता है कि भगवान् शङ्कर तामसस्वरूप हैं—उन्हें विष, धतूरा, आक इत्यादि पदार्थ ही अच्छे लगते हैं; अतएव अपनी रुचिसे ही भगवान् शिवने विष-पान किया है इत्यादि। इन दोनों ही बातोंपर दूसरे पक्षका दूसरा उत्तर है। अप्पय्य दीक्षित कहते हैं—

गङ्गा धृता न भवता शिव पावनीति
नास्वादितो मधुर इत्यपि कालकूटः।
त्रैलोक्यरक्षणकृता भवता दयालो
कर्मद्वयं कलितमेतदनन्यसाध्यम्॥

'हे भगवन्! 'पवित्र करनेवाली है' इस बुद्धिसे आपने गङ्गाको नहीं धारण किया है तथा आपको मधुर लगता है इसलिये विषका भी पान नहीं किया है। किन्तु आप त्रिलोकीका रक्षण करनेवाले हैं, अतएव दयालुतासे लोककी रक्षाके लिये यह दोनों बड़े भारी कार्य जो और बड़े-बड़े देवताओंसे नहीं बन सकते थे आपने किये हैं।'

अस्तु, भगवान् शिवसे सम्बन्ध रखनेवाले ऐसे-ऐसे पौराणिक विषयोंका वर्णन भी यद्यपि उपर्युक्त शीर्षककी छत्रछायामें अच्छी तरह समा रहा है, क्योंकि 'संस्कृत-साहित्य' शब्द व्यापक है; परन्तु वेद, दर्शन, पुराणादिप्रोक्त शिव-वर्णनके निबन्ध 'निबन्ध-सूची' में अलग-अलग गिनाये गये हैं, इसलिये पुराण आदिकी चहारदीवारीको दूर छोड़कर मुझे यहाँ केवल संस्कृत-कवियोंके वर्णनको ही लेना चाहिये। क्योंकि 'संस्कृत-साहित्य' शब्दसे यहाँ केवल अलङ्कारशास्त्र, काव्य इत्यादिसे ही वक्ताका प्रयोजन मालूम पड़ता है, जैसा कि 'साहित्य-दर्पण', 'साहित्यकी परीक्षा' आदिमें साहित्य-शब्दका अर्थ लिया जाता है।

[२]

भगवान् शिव संस्कृत-कवियोंके प्रधानरूपसे वर्णनीय हैं। यों तो संस्कृत-कवियोंके समाजमें भला कौन-से देवता सूक्ति-कुसुमोंसे अभ्यर्चित नहीं हुए हैं ? सभी देवताओंके एक-से-एक बढ़कर स्तुति या वर्णन मिलते हैं परन्तु भूतभावन

भगवान् शङ्करके विषयमें तो कवियोंका भक्तिभाव कुछ बढ़ा-चढ़ा-सा प्रतीत होता है। 'विद्याकामस्तु गिरिशम्' पर कवियोंकी अटल आस्था मालूम होती है। दक्षिण-भारतके वेदान्ताचार्य वेङ्कटाध्वरि, जगन्नाथ प्रभृति तथा पूर्वभारतके कर्णपूरगोस्वामी, जीवगोस्वामी, जयदेव प्रभृति वैष्णव-कवियोंको छोड़कर और-और देशोंके प्रायः सभी संस्कृत कवि अपने-अपने ग्रन्थोंके आदिमें शिव-विषयक मङ्गलाचरण करते हैं, भगवान् शिवके चरित्रोंसे अपनी सूक्ति-सरिताको पावन करते हैं।

काश्मीरकोंका दावा है कि हमारे देशको छोड़कर कविता और केसर हो ही नहीं सकतीं। बिह्लण कहते हैं—

सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां
भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य येषां
मयाऽद्य दृष्टः क्वचन प्ररोहः॥

'मुझे मालूम होता है, कि कविता-विलास और केसर ये दोनों सहोदर भाई-भाई हैं क्योंकि शारदा-देश अर्थात् सरस्वतीके देश—इस कश्मीरको छोड़कर और कहीं भी मैंने इन दोनोंका उत्पन्न होना नहीं देखा।' सोचिये तो सही, कितनी गर्वभरी उक्ति है? जैसे केसरकी खेती कश्मीरको छोड़कर और कहीं हो ही नहीं सकती वैसे ही 'कविता' जिसे कहते हैं वह कश्मीरको छोड़कर दूसरी जगह देखी ही नहीं जाती, यह तो कहा ही है; किन्तु साथमें कवि एक बड़ी भारी बात कह गया है। यह कहता है कि सरस्वतीका देश ही—अगर कोई है तो—यह है। अस्तु, 'टकसाली कविता कश्मीरकी ही होती है' यह काश्मीरदेशवासी बिह्लण कवि चाहे कह गया हो परन्तु इसमें वाद-विवादके लिये बहुत कुछ गुंजाइश है। कवितामें 'वैदर्भी रीति' सर्वप्रधान मानी जाती है। अब आप ही देख लीजिये 'विदर्भ' कश्मीरकी दिशामें है या उसके सामनेकीमें? खैर, इस वाद-विवादकी मीमांसा इस लेखमें नहीं करनी है। यहाँ तो कहनेका तात्पर्य यही है कि जो काश्मीरके कवि अपनेको कवितामें अद्वितीय समझते हैं वह भी सब-के-सब भगवान् शिवकी लीला ही गाते हैं। जगद्धरकी 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' से बढ़कर भला कौन-सा शिवविषयक काव्य होगा, जिसे कविता-दृष्टिसे परखिये चाहे भक्तिकी कसौटीपर जाँचिये, वह अद्वितीय उतरेगा। जगद्धरकी शिवविषयक सूक्तियाँ एक अलग लेखका विषय हैं जिसे यहाँ मैं नहीं छू रहा हूँ, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि काश्मीरके कवि इसमें पूर्णतया सफल हुए हैं।

काश्मीरकोंको छोड़कर और आगे चलिये। महाकवि कालिदास जो कनिष्ठिका अँगुलीपर प्रथम-प्रथम गिने जाकर आगे अपने बराबरका कवि न मिलनेके कारण दूसरी अंगुलीको यथार्थ ही 'अनामिका' बना देते हैं, वह भी अपने प्रत्येक ग्रन्थमें भगवान् शिवका ही मङ्गलाचरण करते हैं। यही क्यों, भगवान् शिवके चरित्रोंका चित्रण जो उन्होंने 'कुमारसम्भव' में किया है उसका मुकाबला आप किसी भी अच्छे-से-अच्छे काव्यमें नहीं पायेंगे। पार्वती और बटुवेषधारी श्रीशिवका संवाद संस्कृत-साहित्यकी एक परिगणनीय चीज़ है। पार्वतीका मनोभाव जाँचनेके लिये श्रीशिवकी निन्दा करता हुआ बटु कहता है—

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता
दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि! मृग्यते
किमस्ति तद्व्यस्तमपि त्रिलोचने॥

शरीरमें सबसे पहले नेत्रोंपर ही नेत्र पहुँचते हैं। रहिमन कहते हैं 'बड़ी बड़ी अँखियाँ निरखि अँखियनको सुख होत।' सो उन्हींकी तरफ देखो कि विकृत रूपवाली तीन उनके आँखें हैं। यह तो सौन्दर्यकी बानगी हुई। अब लीजिये कुल—सो यही किसीको पता नहीं कि किस कुलमें कब जन्म हुआ है? धनकी बात सुनो तो यह हाल है कि पहननेको लँगोटीतक नहीं जुटती, नङ्गा फिरता है। वरमें रूप, कुल, धनादि जो कुछ देखे जाते हैं वे सब तो न सही उस महादेवमें क्या उनमेंसे एक भी है? लोकमें प्रसिद्ध है कि—

कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम्।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः॥

'वरके अन्दर कन्या रूप, माता धन, पिता विद्या तथा बन्धु-बान्धव अच्छा कुल वरमें देखना चाहते हैं किन्तु अन्य आदमी मिठाइयोंपर नजर रखते हैं।' अब तुम ही देखो, उस विरूपाक्षमें इनमेंसे कौन-सी बात है?

श्रीपार्वती उत्तर देती हैं—

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां
त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।

स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते
न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥

'वह स्वयं अकिञ्चन हैं किन्तु ब्रह्माण्डकी सब सम्पत्तियाँ उन्हींसे उत्पन्न हुई हैं। वह श्मशानमें रहते हैं किन्तु तीनों लोकोंके स्वामी हैं। वह भयङ्कररूप हैं तो भी शिव अर्थात् कल्याणकारी सौम्यमूर्ति कहे जाते हैं। शिवके वास्तविक तत्त्वको समझनेवाला कोई है ही नहीं' इत्यादि।

शिव-विवाह पुराणोंमें यद्यपि पूरा मिलता है परन्तु कालिदासकी कलमसे निकला हुआ वह एक अद्भुत वस्तु हो गया है। रत्नपरीक्षक महाकवि तुलसीदासजीने उसे स्थान-स्थानपर लिया है। जहाँ कहीं कालिदासकी सूक्तिका अविकल अनुवाद आ गया है, वहीं कविता चमक उठी है। वास्तवमें कालिदासका शिव-चरित्र-चित्रण उनके योग्य ही हुआ है, परन्तु कवियोंमें जो एक तरहकी लहर हुआ करती है उससे वह भी नहीं बच पाया है। कविका जिस समय सूक्तिप्रवाह चलने लगता है, उसके अन्दर जिस समय कल्पनाकी तरङ्गें उठने लगती हैं उस समय वह सब कुछ भूल जाता है। उसे एक अलौकिक भावावेश-सा हो जाता है जिसका उसे भी पता नहीं रहता। इसीलिये कइयोंने कहा है कि 'प्रतिभा एक तरहका पागलपन है।' बस यही कारण है कि जो कालिदास—

स हि देवः परं ज्योतिस्तमःपारे व्यवस्थितम्।
परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिर्न मया न च विष्णुना॥

'वह महादेव तमोगुणातीत परात्पर ज्योतिःस्वरूप हैं, परमात्मा हैं, उनके महिमातिशयको न विष्णु जानते हैं न मैं जानता हूँ' यों जगत्के विधाताके द्वारा भी जिन शिवका—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह

—के रूपमें वर्णन कराते हैं उन्हींका स्वयं इतना स्फुट शृङ्गार वर्णन कर डालते हैं कि जिसके कारण उनपर 'पित्रोः सम्भोगवर्णनमिवात्यन्तमनुचितम्' की दफा साहित्य-निबन्धकारोंको लगानी पड़ती है।

[३]

अकेले कालिदास ही नहीं, संस्कृत-साहित्यके अनेक अच्छे-अच्छे कवि भगवान् शिवका अनेक प्रकारोंसे वर्णन करते हुए कल्पना-तरङ्गोंमें इतना बह जाते हैं कि जिस विषयको लेकर वह कविता करने बैठते हैं उसतकको भूल जाते हैं। शिव-विषयक भक्ति-भावको लेकर मङ्गलाचरण-की कविता आरम्भ करते हैं और आशा करते हैं कि श्रीशिव सब अमङ्गल—निवृत्ति करेंगे, किन्तु रचनामें औचित्यकी सीमातक आ टकराते हैं। कोई बात नहीं, भगवान्का किसी भी भावसे भजन करो भगवान् उसका भव्य ही करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। फिर भगवान् भवानीपति तो भोलेनाथ हैं। भला वह भक्तोंके अनभलकी भावना भी कर सकते हैं? जो 'बम् बम्' कहने मात्रसे ही खुश हो जाते हैं, भला उनकी दयालुताकी कुछ सीमा है? परन्तु कवि अपनी कल्पनासे बाज नहीं आते, उन्हें जो कुछ उपज जाती है उसे कहकर ही दम लेते हैं। एक कवि मङ्गलाचरण करते हैं—

भस्मान्धोरगफूत्कृतिस्फुटभवद्भालस्थवैश्वानर-
ज्वालास्विन्नसुधांशुमण्डलगलत्पीयूषधारारसैः।
सञ्जीवद्गजचर्मगर्जितभयभ्राम्यद्वृषाकर्षण-
व्यासक्तः सहसाद्रिजोपहसितो नग्नो हरः पातु वः॥

'शिवके शरीरसे झड़ी हुई भस्म आँखोंमें पड़ जानेके कारण गलेमें लिपटा हुआ सर्प, न दिखलायी देनेसे घबड़ाकर बड़े जोरसे फुङ्कार करता है। उन फुङ्कारोंसे ललाट-नेत्रका अग्नि प्रज्वलित हो उठता है। उसकी ज्वालासे पसीजकर मस्तकस्थित चन्द्रमण्डलसे अमृत टपकता है। अमृतकी बूँद पड़ते ही शरीरपर ओढ़ा हुआ गजचर्म इधर जीवित हो उठता है, उधर श्रीशिवका शरीर नग्न हो जाता है। जीवित हुए हाथीकी गर्जनासे सवारीका बैल दौड़ने लगता है। भगवान् शिव इस उपद्रवसे घबराकर बैलको बड़ी मुश्किलसे रोकते हैं, किन्तु नग्न हुए श्रीशिवका यह कौतुक देखकर श्रीपार्वतीकी हँसी नहीं रुकती। पार्वतीसे उपहास किये गये वही शिव आपकी रक्षा करें!'

भगवान् शिवके सर्प, वृषभ, गज-चर्म आदि उपकरण ही ऐसे विचित्र हैं जिनके परस्पर सम्बन्धपर कवि अनेक कल्पनाएँ बाँध लेते हैं। एक कवि कहता है—

विष्णोरागमनं निशम्य सहसा कृत्वा फणीन्द्रं गुणं
कौपीनं परिधाय चर्मकरिणस्तस्यागमस्सम्मुखम्।
दृष्ट्वा विष्णुरथं सकम्पहृदयः सर्पोऽपतद्भूतले
कृत्तिर्विस्खलिता ह्रिया नतमुखो नग्नो हरः पातु वः॥

'भगवान् शिवने जैसे ही अपने मित्र विष्णुका आगमन सुना कि शीघ्रतासे सर्पके कटिसूत्र (करधनी) पर गजचर्म-

की लँगोटी लगाकर वह प्रेमभावसे उनके सामने आ गये। किन्तु जैसे ही विष्णुकी सवारीके गरुडको देखा वैसे ही कमरमें लपेटा हुआ सर्प डरके मारे जमीनमें गिरा कि उसके सहारेपर टिकी हुई लँगोटी भी खिसक गयी, शिव नग्न हो पड़े। वही लज्जावनत-मुख भगवान् शिव आपकी रक्षा करें।'

संस्कृत-कवियोंने भक्तिप्रवण होकर भगवान् शिवका गुणस्तवन न किया हो सो बात नहीं। वह जिस समय शिव-विषयक रतिभावसे अनुप्राणित हो जाते हैं उस समय 'प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः' होनेवाले वही हैं अर्थात् उनको रोमाञ्च हो उठता है। आँखोंसे प्रेमका प्रवाह बह निकलता है, किन्तु जिस समय वह कविताकी तरङ्गोंमें बहने लगते हैं उस समय शिव-विषयक भावना पीछे रह जाती है और कल्पनाकी लहर उन्हें आगे ले जाती है।

संस्कृत-साहित्यमें शिव-विषयक वर्णनपर क्या-क्या नवीन कल्पनाएँ हुई हैं उसकी बहुत संक्षिप्त कुछ बानगी नीचे देना चाहता हूँ, परन्तु फिर भी कहीं लेखमें विस्तार न हो जाय इस भयका भूत बेचारे उत्साहको क्षीण किये डालता है।

[४]

काव्यकी आत्मा 'रस' है। वह रस किसी अर्थगत चमत्कारके बिना नहीं रह सकता। इसीलिये चमत्कार-कारक नवीनता लानेके लिये कविलोग अनेक कल्पनाएँ किया करते हैं। यदि वह 'औचित्य' की सीमाको न लाँघे तो कल्पनामें कविको पूर्ण स्वातन्त्र्य है। 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।' अपार इस काव्य-सृष्टिमें कवि ही विधाता है। सामाजिकोंके अनुरञ्जनके लिये 'यथा देहे तथा देवे' के अनुसार कवि देव-चरित्रोंका भी मानुष-चरित्रकी भाँति चित्रण किया करते हैं। इसी आधारसूत्रको पकड़कर शिववर्णनपर भी कवियोंकी नाना कल्पनाएँ चलती हैं।

जगज्जननी भगवती पार्वतीसे स्वामिकार्तिकेयका जन्म जरूर हुआ है परन्तु उन्हें सामान्य गर्भिणीकी भाँति प्रसववेदनाका कष्ट नहीं भोगना पड़ा। न भगवान् शिवके घरमें प्रसवके समय सबपर एक संकट-सा ही रहा कि देखिये कैसे क्या होता है? न बाहर बैठे घरके लोग और नौकर-चाकर इस तालाबेलीहीमें रहे कि देखें देवीको पुत्र होता है कि कन्या। सामान्य-सी सिद्धि रखनेवालेतक जब यह बता देते हैं कि पुत्र होगा या कन्या, तब क्या शिव-परिवारको यह बात भी विदित न थी? यहाँ तो तारकासुरके विजयके लिये देवताओंने भगवान् शिवकी पुत्रसन्तति पहलेसे ही निश्चित कर रक्खी थी, बल्कि उसीके लिये शिव-विवाहका आयोजन ही किया गया था। किन्तु चमत्कारके लिये कवि गृहस्थके घरका-सा चित्र यहाँ उपस्थित करता है। इसीलिये ऐसे कवि 'अर्थकवि' कहलाते हैं। इसका कुछ परिचय नीचे देखिये।

'कल्याण' के उद्देश्यसे लेखके सभी उदाहरण आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण ही चुने गये हैं।

[५]

श्रीपार्वतीके प्रसवका समय है। सम्पूर्ण शिव-परिवार 'सोहर'के बाहर ही उपस्थित है। किसीका किसी कार्यमें मन नहीं लगता। सबको यह प्रतीक्षा है कि देखें पुत्र होता है या कुमारी। बधाईकी आशा करनेवाले लोग पुत्रोत्सव-की उमंगमें वहीं आ जुटे हैं। जनानेकी ड्योढ़ीपर कड़ा पहरा है किन्तु उसके बाहर ही गणोंकी भीड़ लग रही है। सबकी टकटकी ड्योढ़ीके दरवाजेपर बँध रही है कि देखें कब और क्या खबर आती है? इधर गण और उधर 'मातृगण' बड़ी उत्सुकतासे बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि बधाईका संवाद आते ही दुतरफा मंगलोत्सव शुरू कर दिया जाय, नृत्य-गान आरम्भ हो। ऐसे उत्सुक प्रतीक्षा-कालमें यकायक दरवाजेका परदा हटता है और हर्ष-सम्भ्रमके कारण घबराये हुए-से भृङ्गिरिटि (गणप्रधान) बाहर आकर हाथ ऊँचा करके कहते हैं कि 'देवीके पुत्र जन्म हुआ है। गणो! अब बैठे क्या देखते हो? नाच शुरू होना चाहिये।' वह यह कह ही रहे थे कि 'मातृ-मण्डल' की तरफसे चामुण्डा बाहर आती हैं। 'आहा! देवीके पुत्र जन्म हुआ है' इसी वाक्यको हर्षसे दुहराती हुई प्रसन्नताके कारण भृङ्गिरिटिका आलिङ्गन करती हैं। यह भी बधाईकी खुशीमें उनका आलिङ्गन करते हैं। यों उन दोनोंके परस्पर बारम्बार आलिङ्गनके समय वक्षःस्थलमें धारण किये हुए पुराने बड़े-बड़े अस्थि (हड्डियाँ) जर्जर होते हुए आपसमें खड़खड़ाकर टकराते हैं जिसके घोर शब्दमें देवताओंकी तरफसे बजायी हुई दुन्दुभियोंका नाद भी दब जाता है। वही शब्द आपलोगोंकी रक्षा करे—

देवी पुत्रमसूत नृत्यत गणाः किं तिष्ठतेत्युद्भुजे
हर्षाद्भृङ्गिरिटावुदाहृतगिरा चामुण्डयालिङ्गिते ।
पायाद्वो जितदेवदुन्दुभिघनध्वानप्रवृत्तिस्तयो-
रन्योन्याङ्कनिपातजर्जरजरत्स्थूलास्थिजन्मा रवः ॥

भगवान् शिव अकिञ्चन हैं, किन्तु साथ ही अत्यधिक उदार भी हैं। आपने जैसे ही पुत्रका जन्म सुना वैसे ही बधाई उपस्थित करनेवाले ब्रह्माजीको समुचित पुरस्कार देना चाहा। चारों तरफ नजर फैलाकर देखा। अपरिग्रह भगवान्के यहाँ हो ही क्या सकता था? किन्तु बधाईमें दुशाला, कड़े, मङ्गलके लिये कुङ्कुम-विलेपनादि होना तो आवश्यक ही था। बस, आपने अपने नीचे बिछे हुए सिंहचर्मको दुशाला बना डाला, अपने हाथके कड़े (सर्प) उनके हाथमें डाल दिये। साथ ही सम्मानके लिये समीपमें रक्खा हुआ भस्म सर्वाङ्गमें विलेपन कर दिया। अपने घरकी बधाईकी इस उदारताको सुनकर गिरिराजनन्दिनी एकदम हँस पड़ीं। वही गिरिजाका हास्य हमें पवित्र करे।

श्रुत्वा षडाननजनुर्मुदितान्तरेण
पञ्चाननेन सहसा चतुराननाय।
शार्दूलचर्म भुजगाभरणं सभस्म
दत्तं निशम्य गिरिजाहसितं पुनातु॥

जिस 'विधाता' ने आत्माराम भगवान्को इस गृहस्थाश्रमके पचड़ेमें डालकर तपश्चर्यासे हटाया उसके लिये यही उचित भी था कि 'लो, हमें तुम गृहस्थ बनाते हो तो तुम राख रमाकर भजन किया करो।'

यहाँ क्रमसे षडानन, पञ्चानन, चतुराननकी घटना-चतुराई भी कविकी दर्शनीय है।

× × ×

नटराजराज भगवान् शिव देवीको नाट्यकी शिक्षा दे रहे हैं। नाचते समय किस भावके अभिनयके लिये हाथ कहाँ और कैसे रहना चाहिये, अङ्ग किस तरह रहे, चरणको किस तरह टेढ़ा करके रखना चाहिये, यों एक्टिङ्ग और उसकी पोजीशन सिखला रहे हैं। इस निभृत विनोदके समय किसी भी सेवकको पास नहीं रक्खा गया है। और तो क्या, साथ करनेके लिये मृदङ्गवाला भी पास नहीं रक्खा गया है। उसका काम भी आप ही कर रहे हैं। आप बताते हैं 'देखो इस भावपर हाथको यों ऊँचा उठाओ।' किन्तु जिस समय मनके माफिक काम होता हुआ नहीं देखते हैं, आपसे नहीं रहा जाता। आप उठकर अपने हाथसे देवीके हाथको ऊँचा उठाकर दिखलाते हैं कि—

'देखो! बाहु-लताको यों उठाये रहो और इस तरह अपने अङ्गको रक्खो। हूँ, हूँ देखो बहुत ऊँची नहीं। 'नम', कुछ नीची हो जाओ। हैं, हैं, देखो, पैरके अग्रभागको कुञ्चित कर लो।' नयी सीखतर देवीसे जब यह ठीक-ठीक नहीं बैठता तब आप कहते हैं 'देखो, मेरी तरफ देखो, मैं कैसे खड़ा हूँ' यों स्वयं अभिनय करते हुए सिखा-सिखाकर आप श्रीपार्वतीको नचा रहे हैं और 'पकभम् पकभम्' करके अपने मेघगम्भीर-ध्वनियुक्त मुँहसे पखावज भी बजा रहे हैं। 'सम' पर ठीक-ठीक विश्राम होता जाय, इसके लिये अपने हाथोंसे आप 'ताल' भी देते जाते हैं। किन्तु नवशिक्षिता होनेके कारण देवी जब 'लय' में धीमी पड़ जाती हैं तब आप भी 'लय' को तोड़कर विलम्बित लयसे तालिका देने लगते हैं। वही भगवान्की तालिकाएँ आपकी रक्षा करें—

एवं धारय देवि बाहुलतिकामेवं कुरुष्वाङ्गकं
माऽत्युच्चैर्नम कुञ्चयाग्रचरणं मां पश्य तावत्स्थितम्।
देवीं नर्तयतः स्ववक्त्रमुरजेनाम्भोधरध्वानिना
शम्भोर्वः परिपान्तु लम्बितलयच्छेदाहृतास्तालिकाः॥

× × ×

त्रिलोकवन्दनीय भगवान् शिव अकिञ्चन हैं, किन्तु लोकातिशायिनी सम्पत्तियाँ उनके पैरोंमें लोटती हैं। जिस समय वह बैलपर सवार होकर बाहर निकलते हैं उस समय जो इन्द्र 'इदि परमैश्वर्ये' अर्थात् पराकाष्ठाके ऐश्वर्यका स्वामी है, वही मद झरते हुए ऐरावतपर बैठा हुआ भी बड़े सम्भ्रमके साथ उसे छोड़कर भगवान् शिवके चरणोंपर अपना मस्तक टेकता है और अपने मुकुटके पारिजात-पुष्पोंके परागसे उनकी चरणाङ्गुलियोंको रञ्जित करता है—

असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छतः
प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।
करोति पादावुपगम्य मौलिना
विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाङ्गुली ॥

परन्तु कवि शिवकी इस अकिञ्चनतापर भी कई कल्पनाएँ जमाते हैं। कोई कहता है कि पार्वती शिवजीके घरमें आ तो गयीं परन्तु गृहस्थिति देखकर वे घबरा उठीं।

वे देखती हैं कि 'घरमें हजार मुँहवाला एक साँप है जिसके एक-एक मुखके लिये छटाँक-छटाँक भर भी दूध देना पड़े तो भी डेढ़-पौने-दो मन होता है ! स्वामी भी ईश्वरकी कृपासे पाँच मुँहवाले हैं। पुत्र भी दो हैं, जो दोनों ही भोजनके समय पँसेरियोंसे बात करते हैं। एक छः मुँहवाला है, दूसरा हाथीके मुँहवाला ! घरमें आमदनीका यह हाल है कि रोज भीख माँगनेसे काम चलता है। अब किस तरहसे काम चलेगा।' यों पार्वती जिस समय फ़िक्रके कारण दीर्घ निःश्वास लेती हैं उस समय भगवान् शिव मन-ही-मन हँसते हैं, यद्यपि वह हास्य उनके मुखपर झलके बिना नहीं रहता, वही शिव हमारी रक्षा करें—

सहस्त्रास्यो नागः प्रभुरपि मतः पञ्चवदनः
षडास्यो हन्तैकस्तनय इतरो वारणमुखः।
गृहे भैक्ष्यं शश्वत्प्रभवतु कथं वर्तनमिति
श्वसत्यां पार्वत्यामथ जयति शम्भुः स्मितमुखः॥

एक कवि कहता है कि शिवने देखा कि अपने घरमें दो पेट पालना मुश्किल पड़ेगा, इसलिये पहलेसे अपने ही आधे अङ्गमें पत्नीको रख लिया जिससे एक पेट भरनेसे भी काम चल जाय। यदि यह बात नहीं है तो उनका बेटा अबतक क्यों कुँआरा डोलता है—

उदरद्वयभरणभयादर्द्धाङ्गाहितदारः।
यदि नैवं तस्य सुतः कथमद्यापि कुमारः॥

एक कवि कहता है कि पार्वती इस भिक्षा-व्यवसायसे तङ्ग आकर शिवजीको खेतीका धन्धा चलानेकी सलाह देती हैं। रातको निष्किञ्चन घरके काम-काजसे निबटकर अपने झोंपड़ेमें बैठी हुई शिवजीके साथ मनसूबा बाँध रही हैं—

'सुना है, परशुराम आजकल जमीन दे रहे हैं, उनसे थोड़ी जमीन माँग लो। यदि तुमसे इसके लिये भी मुँह न खोला जाय तो किसी दूसरेके साथ वहाँ चले जाओ और उसीके द्वारा माँग लो ('याचय' णिजन्त है, इसलिये)। 'धनपति' से बीज उधार ले लो। बलरामसे थोड़े दिनके लिये उनका हल माँग लाओ। अब रहे बैल, सो एक तो तुम्हारे पास है ही और दूसरेके लिये और न हो तो धर्मराजसे एक 'भैंसा' ही ले लो, किसी तरह दोनोंसे काम चल जायगा; और उस पुराने हलमें यदि 'फाल' की जरूरत पड़े तो यह तुम्हारा त्रिशूल काम दे देगा। दोपहरको खेतपर तुम्हारी रोटी पहुँचाना मेरे जिम्मे रहा। अब जानवरोंको चरानेकी रही, सो यह इतना बड़ा लड़का (स्कन्द) यों ही मारा-मारा फिरता है; यह ढोरोंकी रखवाली कर लेगा। मैं तो तुम्हारे इस भीख माँगनेसे तङ्ग आ गयी, अब तो खेती कर लो'। यह गौरीका वचन तुम्हारी रक्षा करे—

रामाद्याचय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लाङ्गलं
प्रेतेशान्महिषं तवास्ति वृषभः फालं त्रिशूलं तव।
शक्ताऽहं तव चान्नदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गोरक्षणे
खिन्नाऽहं हर भिक्षया कुरु कृषिं गौरीवचः पातु वः॥

पार्वती देखती हैं कि घरमें चारों तरफ खोटी-ही-खोटी सङ्गति है—

'गङ्गा है तो वह स्वभावसे टेढ़ी और 'सन्ध्यारागवती' है, साँझ होते ही उसपर रङ्गत ही दूसरी चढ़ जाती है। साँप तो 'द्विजिह्व' प्रसिद्ध ही हैं। चन्द्रमा, वह मलिन (कलङ्की) और बड़ा टेढ़ा है। और नन्दी बन्दरमुँहा है। बैल सो बैल ही ठहरे। दुर्जनोंसे भरे इस घरमें अब निर्वाह कैसे होगा' यों चिन्ता करती हुई, नरकपाल हाथमें लिये वही श्रीगौरी आपकी रक्षा करें।'

सन्ध्यारागवती स्वभावकुटिला गङ्गा द्विजिह्वः फणी
वक्रोऽङ्कैर्मलिनः शशी कपिमुखो नन्दी च मूर्खो वृषः।
इत्थं दुर्जनसङ्कटे पतिगृहे वस्तव्यमेतत्कथं
गौरीत्थं नृकपालपाणिकमला चिन्तान्विता पातु वः॥

शिवके घरमें अहर्निश कलह-ही-कलह होता दीखता है—

'गणपतिके वाहनको क्षुधातुर भुजङ्ग लीलना चाहता है, और जैसे ही वह मूषकपर टूटता है वैसे ही स्वामिकार्तिकका मोर सर्पपर झपटता है। इधर पार्वतीका सिंह गजाननपर नज़र बाँधे रहता है। इनसे निबटते हैं तो इधर गौरी और गङ्गाका सौतियाडाह चला ही करता है। और तो क्या, कपालवाला मस्तक समीपके चन्द्रमापर ही दाँत पीसता है। यों रात-दिनके कुटुम्ब-कलहसे तङ्ग आकर भगवान् शिवने भी ज़हर पी लिया।'—

अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी
तं च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजासिंहोऽपि नागाननम्।
गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालाननो
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हालाहलम्॥

'ज़हर पीकर भी वह क्या बच जाते, परन्तु—'पार्वती' पर्वतमें उत्पन्न हुई, 'अपर्णा' जिसमें पत्तेतक नहीं, उसे हम

एक अद्भुत ओषधि समझते हैं, जिसके प्रभावसे जन्मसे 'शूली' शूलरोगी, शिव हलाहल पीकर भी मृत्युञ्जय हो गये !'—

पार्वतीमौषधीमेकामपर्णां मृगयामहे।
शूली हालाहलं पीत्वा यया मृत्युञ्जयोऽभवत् ॥

'अपर्णा', बिना ही पत्तेकी इस अद्भुत लताका समझदारोंको सदा सेवन करना चाहिये जिसके 'वरण' करते ही, (आवरण करते ही) पुराना 'स्थाणु' (शिव, सूखा ठूँठ) भी अमृत-फल पैदा करता है—

अपर्णैव लता सेव्या विद्वद्भिरिति मे मतिः।
ययावृतः पुराणोऽपि स्थाणुः सूतेऽमृतं फलम् ॥

× × ×

बालक कार्तिकेय और गजानन दोनों ही भूखके मारे खानेकी तलाशमें इधर-उधर देख रहे हैं। 'पिताजीके जटाजूटके अन्दर गङ्गामें तैरता हुआ चन्द्रमा दिखायी पड़ता है। स्वामिकार्तिक तो मठेके अन्दर फड़कती हुई मछली समझकर लालच-भरे चञ्चल नेत्र डाल रहे हैं और गणेश जलमेंसे निकला हुआ सफेद कमलकन्द समझकर सूँड बढ़ाना चाहते हैं। वही शिवका केशबन्ध आपके कल्मषको दूर करे'—

उत्क्लेशं केशबन्धः कुसुमशररिपोः कल्मषं वः स मुष्या-
द्यत्रेन्दुं वीक्ष्य गङ्गाजलभरलुलितं बालभावादभूताम्।
क्रौञ्चारातिश्च फाण्टस्फुरितशफरिकामोहलोलेक्षणश्रीः
सद्यः प्रोद्यन्मृणालीग्रहणरसलसत्पुष्करश्च द्विपास्यः ॥

× × ×

अस्तु—

पिनाकफणिबालेन्दुभस्ममन्दाकिनीयुता।
पवर्गरचिता मूर्तिरपवर्गप्रदास्तु नः ॥

'पिनाक (धनुष), फणी, बालचन्द्रमा, भस्म और मन्दाकिनी (गङ्गा) इनसे संयुक्त अतएव क्रमसे 'प-फ-ब-भ-म' इस पवर्गसे संघटित भी श्रीशिवकी मूर्ति हम लोगोंके लिये अपवर्ग (मोक्ष) प्रद हो।'

विद्या और सम्प्रदायके आचार्य श्रीसदाशिव

(लेखक—गोस्वामी श्रीलक्ष्मणाचार्यजी)

विद्याकामस्तु गिरिशम्। (श्रीमद्भागवत)

अर्थात् जिसको विद्या-प्राप्तिकी इच्छा हो वह श्रीशिवकी उपासना करे, क्योंकि श्रीशिवजी विद्याओंके आचार्य हैं, उत्पादक हैं। 'अइउण्' आदि चतुर्दश सूत्र जो पाणिनीय व्याकरणके मूल हैं वे भी श्रीशिवजीके डमरूसे प्रकट हुए हैं, यह बात सभी जानते हैं। इसके अतिरिक्त 'सङ्गीतरत्नाकर'में लिखा है—

सदाशिवः शिवो ब्रह्मा भरतः कश्यपो मुनिः।

× × ×

भट्टाभिनवगुप्तश्च श्रीमत्कीर्तिधरोऽपरः।
अन्ये च बहवः पूर्वे ये सङ्गीतविशारदाः ॥

उपर्युक्त पद्योंमें संगीताचार्योंमें सर्वप्रथम श्रीसदाशिवकी गणना की गयी है। इसी प्रकार समस्त विद्या और कलाओंके भण्डार—तन्त्र-शास्त्रके आचार्य भी सदाशिव ही हैं। 'रुद्रयामल'में लिखा है—

आगमं निगमञ्चैव तन्त्रशास्त्रं द्विधा मतम्।
महेश्वरेण यत्प्रोक्तमागमं तन्निगद्यते ॥

यही क्यों, साक्षात् श्रुति कहती है—

ईशानः सर्वविद्यानाम् ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्।

यहाँ स्पष्ट ही श्रीसदाशिवको सब विद्याओंका ईशान (स्वामी) बताया गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रीशिवजी सब विद्याओंके आचार्य हैं।

इसी प्रकार श्रीशिवजी सारे सम्प्रदायोंके भी आचार्य हैं। वैष्णवोंमें प्रधान सम्प्रदाय चार हैं। उनके प्रचारक माने जाते हैं श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बार्क, श्रीरामानुज और श्रीमध्व। इन्हीं चार आचार्योंके नामसे चारों वैष्णव-सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं, परन्तु इन सम्प्रदायोंके प्रवर्तक यही आचार्यचरण हैं यह बात नहीं है। इन्होंने तो प्राचीन सम्प्रदायोंको जो काल-महिमासे लुप्त हो रहे थे, कलियुगमें पुनः प्रचलित किया है। इन सम्प्रदायोंके प्राचीन आचार्य

तो क्रमशः श्रीशिव, श्रीसनक, श्रीलक्ष्मी और श्रीब्रह्मा हैं। जैसा पद्मपुराणमें लिखा है—

श्रीरुद्रब्रह्मसनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।

तथा—

रामानुजानां सरणी रमातो
गौरीपतेर्विष्णुमतानुगानाम्।
निम्बार्कगानां सनकादितश्च
मध्वादिगानां परमेष्ठितः सा॥

इससे यह स्पष्ट हो गया कि श्रीविष्णुस्वामीका सम्प्रदाय श्रीशिवजीके द्वारा ही प्रवर्तित हुआ है। 'भक्तमाल' में स्पष्ट लिखा है—

रमापद्धतौ भाति रामानुजाख्यः
शिवे विष्णुपूर्वः पुनः स्वामिनामा।
स निम्बार्कनामा सनानां चतुष्के
स मध्वार्यनामा चतुर्वक्त्रमार्गे॥

वेदमें भी लिखा है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।

इस मन्त्रमें शिवजीको 'पुष्टिवर्द्धन' कहा है। इसका अर्थ है—'पोषणं पुष्टिः, पोषणं तदनुग्रहः', अर्थात् पुष्टिका अर्थ है पोषण और पोषण भगवान्‌के अनुग्रहको कहते हैं। जिस मार्गमें केवल भगवान्‌के अनुग्रहका ही अवलम्ब हो उसे पुष्टिमार्ग कहते हैं, उस पुष्टिके बढ़ानेवाले शिवजी हैं। अर्थात् श्रीशिवजीके द्वारा जीवोंपर भगवान्‌का अनुग्रह होता है। श्रीविष्णुस्वामिसम्प्रदायके अन्तर्गत श्रीवल्लभाचार्यका सम्प्रदाय पुष्टिमार्ग ही है। वेदके अनुसार उस पुष्टिमार्गके प्रधान आचार्य भगवान् शिवजी ही हैं।

शाण्डिल्यसंहितामें श्रीशिवजीके भगवान्‌से दीक्षित होनेसे लेकर श्रीविष्णुस्वामी, श्रीवल्लभाचार्यपर्यन्त गुरुपरम्पराको लिखते हुए अन्तमें लिखा है—'इत्येवं हि समाख्यातः सम्प्रदायः पुरद्विषः।' इत्यादि। इसी कारण परमवैष्णवतन्त्र 'गौतमतन्त्र'में प्रातःकाल गुरुभावनासे शिवजीके ध्यान करनेकी आज्ञा है।

शिवेनैक्यं समुच्चीय ध्यायेत्परगुरुं धिया।
मानसैरुपचारैश्च सन्तर्प्य मनसा सुधीः॥

इसी कारण श्रीविष्णुस्वामि-सम्प्रदायको 'श्रीरुद्रसम्प्रदाय' भी कहते हैं।

शिवके प्रति भक्तकी भावनाएँ

(लेखक—पं० श्रीजयदेवजी शर्मा विद्यालङ्कार)

पुराणोंमें स्पष्ट कहा है—

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवो मृच्छिलामयः॥

जलवाले 'तीर्थ' नहीं और शिलामय 'देव' नहीं होते। तब फिर देव कैसे होते हैं, यह प्रश्न स्वाभाविक है। निस्सन्देह कहना पड़ेगा—

भावे हि विद्यते देवः।

भाव अर्थात् भक्ति—मानस-संकल्पमें ही 'देव' विद्यमान होता है। जब 'उपास्य' एक है और भक्तकी भावनाएँ मनके संकल्प और क्रियाके साथ-साथ बदलती हैं तो आवश्यक परिणाम यही होगा कि उसी एक उपास्यके ही नाना देव बन जायँगे, जिसको संक्षेपमें शिवमहिम्नकारने अपने शब्दोंमें कहा है—

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

हे देव! सरल और कुटिल नाना मार्गोंका सेवन करनेवाले मनुष्योंकी रुचियाँ विभिन्न—नाना प्रकारकी होनेसे ये नाना पन्थ चले हैं; वस्तुतः समुद्रके समान तू ही सबका एकमात्र गम्य, ध्येय, उपास्य, अन्तिम लक्ष्य है।

इसी एकताके भावको दूरदर्शी विद्वानोंने अपने हृदयमें सृष्टिके आदिमें भी इसी प्रकार अनुभव किया था। वेदमें भी कहा है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-
रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वद-
न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋ० १। १६४। ४६)

इन्द्रको ही मित्र, वरुण, अग्नि कहते हैं; वही दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान् है। एक सत् पदार्थको ही विद्वान् पुरुष

बहुत प्रकारोंसे कहते हैं,—उसीको अग्नि, यम और मातरिश्वा कहते हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥
(यजुर्वेद ३२।१)

'वही अग्नि, वही आदित्य, वही वायु, वही चन्द्रमा, वही शुक्र, वही ब्रह्म, वही अप् और वही प्रजापति है।'

तब उस प्रभु परमेश्वरकी उपासना करते हुए रुचियोंका वैचित्र्य किस ढङ्गसे हो सकता है, यह बात बड़े ही कौतुककी है। पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ हम यहाँ शिवको लक्ष्य करके एक कविकी नाना भावनाओंके कुछ नमूने दिखलानेकी चेष्टा करेंगे।

महामहोपाध्याय श्रीगोकुलनाथ आजसे एक-दो सदी पूर्व मिथिलाके एक अच्छे विद्वान् हो गये हैं, उन्होंने शिवशतक नामकी एक लघु पुस्तिका बनायी है। उसमें अपने भक्ति-प्रवाहमें बहकर शिवके प्रति जिन मनोरञ्जक और हृदयग्राही भावनाओंको प्रस्तुत किया है वे बड़ी ही उपादेय हैं। आपने भक्तिकी अलौकिक भावनामयी चित्र-तूलिकासे शिवके अनेक प्रकारके चित्र खींचकर दिखाये हैं। यदि उनको वास्तविक स्थूल चित्रोंमें चित्रित करें तो उनका चित्रण करना भी कठिन हो। वाणीसे ही उनका चित्रण केवल मानसी भित्तिपर हो सकता है और उसका सम्यग् दर्शन भी मानसी दृष्टिसे ही हो सकता है। अब उन भावनामय चित्रोंके नमूने भी देखिये—

१—शिव कुलाल

अविरतपरिवृत्तदण्डकाष्ठा-
कुलमतुलव्यतिवर्त्तमानवेगम्।
भ्रमयसि जगदण्डगोलमाला-
कलशकलाप! कुलाल! कालचक्रम्॥

'ब्रह्माण्डोंके बहुत-से गोलोंकी मालारूप घड़ोंके बनानेवाले हे कुम्हार! तू निरन्तर घूमते दण्डकाष्ठसे घूमनेवाले और बड़े भारी वेगवाले कालचक्रको घुमा रहा है।'

एक ही ब्रह्माण्डमें नाना सूर्य, पृथिवी आदि गोलोंको घटवत् मानकर शिवको कुलाल कहनेवाली दृष्टिसे भी कहीं अधिक व्यापक दृष्टि नाना ब्रह्माण्डरूप घटोंकी कल्पनामें है। उन सबके व्यवस्थापक एकमात्र दण्डसे महान् कालचक्रको चलानेवाला यह परमेश्वर है—यह भावना बड़ी ही सहृदयगम्य है।

२—शिव जुलाहा

भुवनपटकुटीरहट्टयन्त्र-
भ्रमणसहध्रुवतर्कुतः क्रमेण।
सृजसि समयसूत्रमत्रमाया-
मयपटवानविधानतन्तुवायः॥

'यह विशाल जगत् एक बड़ा भारी तम्बू है, उसमें एक चर्खा भगवान् शिव चला रहे हैं। ध्रुव ही उसमें तकुआ लगा है, भगवान् शिव मायामय पटके बनानेके लिये सूत्र बनानेमें अति चतुर जुलाहेके समान हैं। वे उस महान् चर्खेसे इस लोकमें समयरूप सूत्र कात रहे हैं।'

३—शिव वृक्ष

निगमवनवनस्पते! प्रसूषे
कति जगदण्डमयान्युदुम्बराणि।
दधति बहलजन्तुजालमन्तः
पुनरपि तानि लयं त्वयि प्रयान्ति॥

'हे वेदशास्त्ररूप वनके महावृक्ष! प्रभो! तुम कितने ही ब्रह्माण्डरूप ऐसी गूलरियाँ पैदा करते हो, जिनमें सैकड़ों जन्तु भरे हैं और वे सब भी पैदा होकर फिर तुममें ही समा जाती हैं।'

४—शिव बूढ़ा परबाबा

प्रविशति मम चित्तवेश्म सर्वे-
न्द्रियविकलः श्रुतिशिष्यमाणवर्त्मा।
विधिगृहतिलबिन्दुजालवर्ही
गलितवपुः प्रपितामहः प्रजानाम्॥

'समस्त प्रजाओंके प्रपितामह—परबाबा मेरे चित्तरूप गृहमें प्रवेश करते हैं। वे सब इन्द्रियोंसे विकल हैं, श्रुतिरूप कन्या उनका रास्ता बतलानेवाली है, शरीर उनका ढल चुका है, ब्रह्माण्डरूप तिलबिन्दु उनके शरीरपर व्याप रहे हैं।' बूढ़े आदमीकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, उसे रास्ता नहीं सूझता, उसे कोई कन्या हाथ पकड़कर गृहमें ले जाती है। उसके शरीरपर नाना तिल और मस्से हो जाते हैं। 'सर्वेन्द्रियविकल' हैं अर्थात् उनके कोई इन्द्रिय नहीं है; और उनतक कोई इन्द्रिय नहीं पहुँच पाती इसलिये भी वे 'सर्वेन्द्रियविकल' हैं। श्रुति (वेदवाक्य) ही

उन भगवान्तक पहुँचनेका मार्ग बतलाती है, इसलिये वे 'श्रुतिशिष्यमाणवर्त्मा' हैं। भगवान्के देह नहीं है इसलिये 'गलितवपु' हैं। श्लेषवृत्तिसे ये सब विशेषण बूढ़े पराबाबा तथा शिव दोनोंका वर्णन करते हैं। प्रजाओंके पितामह तो 'ब्रह्मा' कहाते हैं; परन्तु 'शिव' उनके भी पिता हैं, इसलिये 'प्रपितामह' कहा।

५–शिव वानर

विषमनिगमकाननान्तशाखा-
ततिषु निलीय पराभिरीक्षमाणः।
परिणतिविदलज्जगत्कपित्थ-
ग्रसनकपे! सुचिरान्निरूपितोऽसि॥

'पक जानेपर फूटे हुए जगत्रूप कैथके फलोंको खानेवाले हे वानर! बड़े गहरे शास्त्रवनकी सिद्धान्त-शाखाओंकी झुर्मुटोंमें छिपकर दूसरोंको देखते हुए तुझे मैंने बहुत देरमें भाँपा है।'

वानर प्रायः वृक्षकी डालियोंमें छिपकर दूसरोंको ताकता है, कैथके फल जो पक-पककर आप-से-आप चटक जाते हैं उन्हें खाता है, पत्तोंमें छिपा हुआ वानर सहजमें नहीं दीखता। इसी प्रकार कालाग्निसे परिपक्व ब्रह्माण्डोंका संहार करता है, उनको खा जाता है। जैसे वेदान्तसूत्रमें लिखा है—

अत्ता चराचरग्रहणात्।

परमेश्वर 'अत्ता' अर्थात् खानेवाला है, क्योंकि वह चराचर संसारको अपने भीतर ले लेता है। उस भगवान्का दर्शन भी सहजमें नहीं होता। उसका स्वरूप नाना शास्त्र-शाखाओंके सिद्धान्त-जालोंमें छिपा रहता है।

इसी प्रकार उक्त विद्वान्ने शिवका वर्णन शास्त्र-प्रतिपादित सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे नाना प्रकारसे किया है। उदाहरणके तौरपर शिव मूर्ख किसान, शिव सूत्रधार, शिव स्वामी, शिव थानेदार, शिव बेटीका बाप, शिव अनाथ, शिव दरिद्र, शिव पहरेदार, शिव भिक्षु, शिव कवि, शिव अमृत, शिव भूतनाथ, शिव कलश, इत्यादि नाना प्रकारसे उपास्यदेवपर विचार प्रकट किये गये हैं, जिनको कभी अवसरानुसार 'कल्याण'के पाठकोंकी सेवामें रक्खा जा सकेगा।

महारुद्रोपासना

(लेखक—ज्योतिर्विद् पं० श्रीशिवलालजी शास्त्री मेहता)

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमञ्च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

(श्वेता० ६।७)

भगवान् शङ्कर निर्गुण, निर्विकार, गुणातीत और परब्रह्मस्वरूप मङ्गलमूर्ति हैं।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा, स विज्ञेयः।

(माण्डूक्य० ७)

परमात्मा शिव अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अकथनीय, एकात्म, प्रपञ्चरहित, शान्त, अद्वितीय तुरीयावस्थारूप हैं। उन्हींकी उपासनासे चतुर्विध पुरुषार्थकी सिद्धि होती है। भगवान् शङ्करकी रुद्र-संज्ञा है अर्थात् रुद्र, महादेव, शङ्कर ये सभी नाम शिवके वाचक हैं। यजुर्वेदसंहिताका सोलहवाँ अध्याय 'रुद्राध्याय' कहलाता है। इस अध्यायमें 'महारुद्ररूप' शिवकी उपासनाका प्रतिपादन किया गया है। रुद्राध्यायके प्रत्येक मन्त्रका अनुष्ठान श्रीशङ्कराचार्यने अपने 'रुद्रभाष्य' नामक ग्रन्थमें लिखा है। उसमें 'रुद्र' शब्दका महत्त्व तथा उसकी रहस्यात्मक व्याख्या विस्तृतरूपसे लिखी गयी है।

१–'रुद्र' शब्दका अर्थ महान् और प्रशस्य है।

२–इसका दूसरा अर्थ भयङ्कर है। जैसे—

नम उग्राय च भीमाय च।

(रुद्राध्याय मन्त्र ४०)

यहाँ 'उग्र' का अर्थ श्रेष्ठ है, क्योंकि रुद्रभाष्यमें लिखा है—

उग्रः श्रेष्ठः, उत्पूर्वाद् गमेरुद्गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे 'ऋज्रेन्द्राग्र०' इति उणादिसूत्रेण 'रन्' प्रत्ययः। अत एव

'उग्रोऽस्युग्रोऽहं सजातेषु भूयासम्' इति मन्त्रे ज्ञातिश्रैष्ठ्यप्रशंसाविषये स्वस्मिन् 'उग्र'शब्दः प्रयुक्तः। सर्वश्रेष्ठत्वरूपं विश्वाधिकत्वं सिद्ध्यति।

भीमो भयङ्करः 'भीषाऽस्माद्वातः पवते' इति श्रुतेः। तथा च महानुभावानिन्द्राग्न्यादीन् प्रत्यपि भयङ्करत्वेन तन्नियन्तुर्भगवतः सर्वोत्तमत्वमिति भाव इत्यादिः।

रुद्र भयङ्कर हैं परन्तु अत्यन्त कृपालु और भोले हैं। नाभानेदिष्ठके यज्ञमें रुद्र कृष्ण-वसन परिधान करके आये। उनके हाथमें खड्ग् था, और यज्ञवेदीपर आकर घोर गर्जन किया। परन्तु रुद्रका वह रूप संहारक न था। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक नाभानेदिष्ठको अखिल ऐश्वर्य प्रदान कर दिया। यह रुद्रकी परम कृपालुता और भोलापन है। (ऋग्वेद मण्डल १०।१०)

३–पाश्चात्य पण्डित रुद्र-शब्दका निम्नलिखित अर्थ करते हैं—रुद्र=विद्युत्का देवता (मॅकडॉनल)

नमो विद्युत्याय। (रुद्राध्याय मं० ३९)

नमस्ते अस्तु विद्युते। (यजु० ३६।२१)

४–श्राडर (Shraeder) साहब 'रुद्र' शब्दका अर्थ प्रेतगणका नेता मानते हैं, परन्तु यह अर्थ समीचीन नहीं। इसमें निम्नलिखित प्रमाण है—

प्रेत प्रकर्षेण गच्छत। सेनानायक इन्द्ररूप रुद्रः।

(यजु० १७।४६)

'प्र' उपसर्गपूर्वक गत्यर्थ 'इण्' धातुके भूतकृदन्तरूप 'इत' शब्दसे 'प्रेत' शब्द निष्पन्न होता है। इसप्रकार इहलोकसे गया हुआ प्राणी 'प्रेत' कहलाता है। इस प्राणीका नियमनकर्ता यम है और यमदेवका अधिपति रुद्र है।

नमो याम्याय पापिनां नरकार्तिदाता रुद्रः।

(यजु० १६।३३)

'रुद्र' शब्द 'द्रापि' अर्थमें भी आता है। (यजु० १६।४७)

'द्रा' शब्दः कुत्सितवाची, कुत्सितां गतिमापयतीति द्रापिः। 'द्रा कुत्सायां गतौ च', द्रापयतीति द्रापिः, पापकारिणः कुत्सितां गतिं नयतीत्यर्थः। (शां० भाष्य)।

अर्थात् पापियोंकी दुर्गति करनेवाले और नरक देनेवाले रुद्र हैं।

श्रीभगवान् गीतामें अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

(१६।१९)

'संसारमें अशुभ आचरणवाले क्रूर एवं द्वेषी नराधमोंको मैं बार-बार आसुरी योनियोंमें डालता हूँ।'

५–हिलब्राँ साहब 'रुद्र' शब्दका अभिप्राय उष्ण कटिबन्धकी गर्मी बतलाते हैं। यथा—

आतप्याय च नमः। (यजु० १६।३८)

'आतप, धूपस्वरूप रुद्रको नमस्कार।'

सूर्व्याय नमः। (यजु० १६।४५)

'महाप्रलयकी अग्निमें विराजमान रुद्रको नमस्कार।'

नमस्ताम्राय चारुणाय च नमः। (यजु० १६।३९)

यह स्तुति सूर्यरूप रुद्रकी है। गीताके—

तपाम्यहम् (९।१९)

अर्थात् आदित्यरूपसे मैं तपता हूँ, इस वाक्यके अनुसार भी यही अभिप्राय झलकता है।

६–विण्टरनीज (Winternitz) साहब कहते हैं कि रुद्र डाकिनी शास्त्रके देवता हैं। परन्तु भूत-प्रेत-पिशाचादिके मलिन मन्त्रोंके देवता रुद्र नहीं हैं। 'मूलाधार' चक्रमें 'कुण्डलिनी' 'सुषुम्णा'को वेष्टित किये हुए है और मूलाधारकी अधिष्ठात्री शक्तिका नाम 'डाकिनी' शक्ति है, इस शक्तिका स्वामी महेश्वर है। इस चक्रमें ध्यान करनेसे योगिजन संसारसे मुक्त हो जाते हैं, अतएव योगशास्त्रके अधिष्ठाता भगवान् शङ्कर हैं।

७–पिशल और ग्रासमैन साहब 'रुद्र' शब्दका अर्थ प्रकाश बतलाते हैं। 'असावादित्यो ब्रह्म' अर्थात् यह आदित्य, सूर्य ब्रह्म है; सूर्यरूप रुद्रकी उपासनासे उपासकका कल्याण होता है तथा पुरुषार्थकी सिद्धि होती है।

उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते। अतोऽनायासेनैवाखिलपुरुषार्थप्रदः परमेश्वर एव उपास्यः। (शां० भाष्य)

सर्वेभ्योऽन्तःस्थानेभ्यो ध्येयः प्रदीपवत्प्रकाशयतीति प्रकाशः। (अथर्वशिखोपनिषद्)

अर्थात् सबके हृदयमें ध्यान करनेयोग्य होनेसे रुद्र प्रकाश (ज्योतिः) स्वरूप हैं। यथा—

ज्योतिषां रविरंशुमान् ।

(गी० १० । २१)

८–निरुक्तकार यास्काचार्य 'रुद्र' शब्दसे वर्षा और पवनका देवता, यह अर्थ लेते हैं।

नमो वर्षाय (यजु० १३ । ३९)

वर्षारूप रुद्रको नमस्कार ।

…अहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च (गीता ९ । १९)

मैं ही वृष्टिको रोकता हूँ और मैं ही मेघरूपसे वृष्टि करता हूँ ।

नमो वात्याय रेष्म्याय च ।

प्रलयकालके पवन और वर्षाके देवता रुद्र हैं ।

मरीचिर्मरुतामस्मि, पवनः पवतामस्मि—

(गीता १० । २१, ३१)

९–सायणाचार्य कहते हैं कि 'रुद्र' शङ्करका नाम है और इसका अर्थ है रुलानेवाला । यथा—

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि (गीता १० । २३)

१०–कतमे रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदस्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति । (बृ० उ० ३ । ९ । ४)

विदग्ध शाकल्यका उत्तर देते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि पुरुषमें रहनेवाले दस प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा है, मृत्युके समय इस शरीरका त्याग करते हुए वे दूसरोंको रुलाते हैं इसीसे इन्हें 'रुद्र' देवता कहते हैं ।

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ।

(बृ० उ० ४-४-६)

११–'रुदिर् अश्रुविमोचने' धातुसे 'णिच्' प्रत्यय करनेके बाद 'रोदेर्णिलुक्च' इस उणादि सूत्रके अनुसार रक् प्रत्ययका आगम और णिच्का लोप हो जानेसे 'रुद्र' शब्द सिद्ध होता है । 'यः रोदयति अन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः' । अर्थात् अन्याय (पापकर्म) करनेवालोंको रुलानेवाला रुद्र है । यथा—

आखिदते प्रखिदते च नमः (यजु० १६ । ४६)

आ समन्तात् खिद्यते दैन्यं करोति अभक्तानाम् । प्रकर्षेण खेदयति पापिनः ।

निन्दकों और नास्तिकोंको सदा दुःख देनेवाला (त्रिविध तापोंका प्रेरक) एवं पापियोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला (ताड़ना करनेवाला) रुद्र है ।

यथा—

दण्डो दमयतामस्मि (गीता १० । ३८)

दमन करनेवालोंमें मैं दण्ड हूँ ।

योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।

(अथर्ववेद ११ । २ । १३)

वेदकी आज्ञा भङ्ग करनेवालोंको रुद्र (भगवान् शङ्कर) दण्ड देते हैं ।

१२–सायणाचार्य रुद्रके दो स्वरूपोंका वर्णन करते हैं–एक शान्त और दूसरा घोर । यथा—

द्वे हि रुद्रस्य तनू तथा चोपरिष्टादाम्नायते । रुद्रो वा एष यदग्निस्तस्यैते तनुवौ घोराऽन्या शिवाऽन्येति ।

उनमें घोररूप अग्नि है और शान्तरूप शिवजी हैं ।

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

'सत्त्वगुणयुक्त होनेसे अघोर (शान्त), राजस होनेसे घोर और तामस होनेसे घोरतर स्वरूप धारण करनेवाले तथा प्रलयमें जगत्का संहार करनेवाले रुद्रको नमस्कार है ।'

१३–भट्टभास्कर इस शान्तरूपके भी दो भेद बतलाते हैं—

शान्ता तनूर्द्विविधा–सायुधा निरायुधा च । तत्र प्रथमानन्तरेण मन्त्रेण प्रतिपादिता, इतरा तनुरनेन प्रतिपाद्यते ।

अर्थात् शान्तरूप दो प्रकारका है—सायुध और निरायुध। रुद्राध्यायमें इन दोनों प्रकारके स्वरूपोंकी स्तुति की गयी है। इन्हें 'निर्गुण' और 'सगुण' नामसे भी पुकारते हैं । यह स्वरूप त्र्यम्बकरूप है । त्र्यम्बक-शब्दका विस्तृत विवेचन विस्तार-भयसे यहाँ नहीं किया जाता ।

१४–तापत्रयात्मकं संसारदुःखं रुत्, दुःखहेतुर्वा रुत् । रुदं द्रावयतीति रुद्रः ।

'आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीन प्रकारके सांसारिक दुःखोंका जो नाश करता है वह रुद्र है ।' तीनों दुःखोंके निवारणके लिये भगवान् शङ्करने त्रिशूल धारण किया है—

त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिम्

'भगवान् शङ्कर तीनों शूलोंके निर्मूल करनेवाले हैं ।'

१५–रुद् दुःखं दुःखहेतुर्वा द्रावयत्येष नः प्रभुः।
रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम्॥

'दुःख अथवा दुःखके कारणको 'रुद्' कहते हैं। उस रुद्को भगवान् शिव दूर करते हैं इसीलिये (संसारके) आदिकारण भगवान् शङ्करको 'रुद्र' कहते हैं।'

…अग्र्याय च प्रथमाय च नमः (यजु० १६।३०)

तेन पापापहानिः स्याज्ज्ञात्वा देवं सदाशिवम्।
(जाबाल्युपनिषद्)

सदाशिवको जाननेसे पापका नाश होता है तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है।

१६–अशुभं द्रावयन् रुद्रो यज्जहार पुनर्भवम्।
ततः स्मृताभिधो रुद्रशब्देनात्राभिधीयते॥

'(जीवन-कालमें प्राणीके) सब अशुभों (अनिष्टों) को दूर करते हैं और (शरीर-परित्याग करनेपर उसे) मुक्ति प्रदान करते हैं, इसी कारण भगवान् शिवका नाम 'रुद्र' है।'

ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति। (श्वेता० ४।१४)

कल्याणरूप शङ्करको जाननेवाले अत्यन्त शान्ति अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं। गीतामें श्रीभगवान्ने कहा है—

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः।
(१५।४)

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(१८।६६)

'मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त करूँगा, सोच न करो।'

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥
(यजु० १६।४१)

कल्याणस्वरूप, संसारके लिये सुखस्वरूप, लौकिक सुख देनेवाले, मोक्ष प्रदान करनेवाले, परम कल्याणरूप और भक्तोंके अत्यन्त कल्याणकारक तथा उन्हें निष्पाप बनानेवाले रुद्रको नमस्कार हो, नमस्कार हो! इस मन्त्रमें भगवान् शङ्करका परम कल्याणमय मङ्गलस्वरूप प्रतिपादन किया गया है, इस मन्त्रकी उपासनासे अखिल प्रेमकी प्राप्ति होती है।

१७–रुत्या वेदरूपया धर्मादीन् बोधयति वा रुद्रः।
'वेदकी ध्वनिद्वारा धर्मादिकोंका बोध करानेवाले रुद्र हैं।'

श्लोक्याय नमः (यजु० १६।३३)

श्लोका वैदिकमन्त्रा यशो वा तत्र भवः।

अर्थात् वैदिक मन्त्ररूपी यशमें होनेवाले (यशके विषय) रुद्र हैं।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥
(गीता १५।१५)

सब वेदोंद्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ। धर्मादिका बोध करानेके कारण रुद्र आचार्यस्वरूप हैं। यथा—

ईशानः सर्वविद्यानाम् (अथर्ववेद नारायणोपनिषद्)

वे वेद-शास्त्रादि सब विद्याओंके नियामक हैं।

वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च। (गीता ९।१७)

१८–रुत्या प्रणवरूपया स्वात्मानं प्रापयतीति वा रुद्रः।

प्रणव अर्थात् ॐकारके कीर्तनके द्वारा जीवको अपने समीप पहुँचानेवाले रुद्र हैं।

ओमिति ब्रह्म (तै० ९।८)

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥
(गी० ८।१३)

ॐकारका उच्चारण करता हुआ तथा मुझ परमात्माका स्मरण करता हुआ जो पुरुष देहको त्यागकर जाता है वह परम गतिको प्राप्त होता है।

श्रीरुद्र' प्रणवञ्चैव नित्यमावर्तयेद्यतिः।
(विश्वेश्वरस्मृति)

तस्योङ्कारः स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदति।
(याज्ञवल्क्यसंहिता)

ॐकार नामसे स्मरण करनेपर भगवान् प्रसन्न होते हैं। महर्षि पतञ्जलि भगवान् भी कहते हैं—

तस्य वाचकः प्रणवः (योगदर्शन १।२७)

प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः।
शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवो हि परः स्मृतः॥
(शिवपुराण वा० सं० अ० ३।७)

परमकल्याणरूप परमात्माका वाचक ॐकार है। यह ॐकार 'शिव', 'रुद्र' इत्यादि सारे नामोंसे श्रेष्ठ है। शिव-लिङ्ग

ॐकारस्वरूप है, और ॐकार-सदृश आकारमें ही लिङ्गार्चन होता है ।

नमस्ताराय (यजु० १६ । ४०)

तारयति संसारमिति तारः । तारः प्रणवः तद्रूपाय नमः । संसारसागरादुत्तारकं ब्रह्म । (शां०भाष्य)

'संसारसे तारनेवाले ॐकाररूप रुद्रको नमस्कार हो ।' यथा—

तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।

(गीता १२ । ७)

हे पार्थ ! मैं उनका शीघ्र ही मृत्युरूप संसारसागरसे उद्धार करता हूँ ।

स ॐकारस्तार इति प्रस्तुत्य स एको रुद्रः स ईशानः ।

(अथर्वशिरउपनिषद्)

१९–रोधिका च बन्धिका शक्ती रुत् । तस्या द्रावयिता भक्तेभ्य इति वा विग्रहः ।

'रोधिका' और 'बन्धिका' दो प्रकारकी शक्तियाँ हैं । रोधिका मोक्ष-मार्गमें आवरण डालती है जिसके कारण मोक्ष-मार्ग नहीं दीख पड़ता । दूसरी बन्धिका-शक्ति मोक्षमें विक्षेप डालती है जिसके कारण मोक्ष-प्राप्ति दुष्कर हो जाती है । भक्तोंसे इन दोनों प्रकारकी शक्तियोंको दूर हटानेवाले शङ्कर 'रुद्र' हैं । इन शक्तियोंके निरोध करनेके लिये 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' (योगदर्शन १ । २३) इस सूत्रका मनन तथा ईश्वरकी शरण ग्रहण करनी चाहिये । 'क्लेशोऽधिकतरः' यह गीता (१२ । ५) का वाक्य है और अविद्यादि क्लेश मोक्ष-प्राप्तिमें बाधक हैं । इन अविद्यादि क्लेशोंका नाश ईश्वर करते हैं, क्योंकि वे क्लेश-कर्मादिसे रहित और जीवोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं । (देखिये योगदर्शन १ । २४) इसीलिये ईश्वर-प्रणिधान करना चाहिये ।

२०–रुत् (शब्दं वेदात्मानं) कल्पादौ ब्रह्मणे ददातीति रुद्रः ।

सृष्टिके आदिमें ब्रह्माको वेदरूपी शब्द(का उपदेश) देनेवाले भगवान् शङ्कर रुद्र हैं । यथा—

श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमः । (रुद्रा० मं० ३४)

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

(श्वे० उ० ६ । १८)

जो पहले (सृष्टिके प्रारम्भमें) ब्रह्माको उत्पन्न कर उन्हें वेदोंको प्रदान करते हैं, उन रुद्रभगवान्‌की मैं मोक्ष-प्राप्तिके लिये शरण ग्रहण करता हूँ ।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

(यजु० ३१ । ७)

सर्वात्मस्वरूप पुरुषके मानसिक यज्ञसे वेद उत्पन्न हुए ।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।

(यजु० २६ । २)

संसारमें मुक्तिसुखको देनेवाली ऋग्वेदादि वाणीका उपदेश करूँ ।

२१–रुत्या वाग्रूपया वाच्यं प्रापयतीति रुद्रः ।

वाग् (वाणी)के द्वारा (ॐकारके जपसे) प्राप्त होनेवाला रुद्र है । यथा—'शम्भोः प्रणववाच्यस्य' । ॐकार वाचक है और शङ्कर वाच्य हैं । (लिङ्गपुराण)

तज्जपस्तदर्थभावनम् । (योगदर्शन १ । २८)

वह प्रणवके यथावत् उच्चारण और ध्यानसे प्राप्त होता है । इसीलिये प्रणवके जपसे पुरुष-तत्त्वका साक्षात्कार होता है और अन्तरायोंका नाश होता है । (योगदर्शन १ । २९)

नमः शङ्गवे च (रुद्रा० मं० ४०)

शं सुखं गमयतीति शङ्गुः, सुखरूपा गावो वाचो वेदरूपा यस्येति । (रुद्रभाष्य)

कल्याणरूप वेद ही जिनकी वाणी है ऐसे रुद्रदेवको नमस्कार हो ।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छावदामसि । (मन्त्र ४)

हे वेदवचन अथवा कैलासमें शयन करनेवाले ! मंगलमय स्तुतिरूप वाणीसे तुम्हें प्राप्त करनेकी हम प्रार्थना करते हैं ।

गिरिरूपा वेदा उच्यन्ते । गिरि प्रतिज्ञारूपायां वाचि स्थित्वा लोकानां शं मोक्षसुखं तनोतीति । (रुद्रभाष्य)

वेदरूपी वाणीमें स्थित होकर भगवान् शङ्कर मोक्ष-सुख प्रदान करते हैं ।

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।

(ऋग्वेद १० । ७१ । ३)

परमात्माकी वाणीरूप वेदको अधिकारी प्राज्ञ पुरुष सम्पादन करते हैं।

२२–रुद्रो रौतीति रोरूयमाणो द्रवति प्रविशति मर्त्यानिति रुद्रः।

'जो घोर शब्द करता हुआ मनुष्योंमें प्रवेश करता है उसीका नाम 'रुद्र' है।' यथा–

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानः

(यजुः ३१। १९, प्रश्नोपनि० २। ७)

सर्वात्मरूप प्रजापति अन्तर्हृदयमें स्थित हुआ प्रत्येक गर्भमें प्रविष्ट होता है।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।

(गीता १५। १४)

मैं वैश्वानर अग्नि होकर प्राणियोंके देहमें प्रविष्ट हूँ।

२३–रुक् तेजः वर्णव्याप्त्या रुद्रस्तेजस्वीति। तेजस्वी रुद्रः।

रुद्र देदीप्यमान तेजस्वी हैं, यथा—

मार्तण्डकोटिप्रभमीश्वरं हरम्।

'शङ्कर कोटि सूर्यके समान तेजस्वी हैं।'

सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः।

(श्वेता० ३। १२)

'(वह परमात्मा) अतिशय निर्मल, आनन्दका नियामक और ज्योतिःस्वरूप अविनाशी है।'

तेजस्तेजस्विनामहम् (गीता १०। ३६)

'मैं ही तेजस्वियोंमें तेज हूँ।'

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते

(गीता १३। १७)

वह स्वयंप्रकाश और अज्ञानसे परे है।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(गीता १५। १२)

जो तेज आदित्यमें, चन्द्रमामें और अग्निमें है उसे मेरा ही समझो।

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।

(रुद्रा० मं० ६)

इस मन्त्रमें प्रत्यक्ष सूर्यरूपमें रुद्रकी स्तुति की गयी है। सूर्यसदृश ज्योतिःस्वरूप होनेके कारण ही द्वादश आदित्यके समान द्वादश ज्योतिर्लिङ्गकी अर्चना प्रसिद्ध है।

२४–रुत् संसारदुःखं द्रावयतीति रुद्रः।

भगवान् रुद्र संसारके दुःखका नाश करनेवाले हैं।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे०

यह मन्त्र संसार-बन्धनसे मुक्त होने तथा मोक्ष-प्राप्तिके लिये चिन्तामणिरूप है। यथा–

महादेवं विजानाति मुच्यते भवबन्धनात्।

(सूतसंहिता)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

'सब प्रकारसे उसीके शरणमें जाओ, उसीके अनुग्रहसे शाश्वत परम शान्तिके स्थानको प्राप्त होगे।'

ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।

'शिवको जानकर परम शान्ति प्राप्त करता है।'

शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारमोचकः।

(शरभोपनिषद्)

'संसारसे मुक्त करनेवाले भगवान् शंकर ही सदा ध्यान करनेयोग्य हैं।'

तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति।

(श्वे० ४। १५)

नमः प्रतारणाय चोत्तरणाय च नमः।

(रुद्रा० मं० ४२)

संसार-सागरके परम पार जीवन्मुक्तिस्वरूपमें वर्तमान और अति मन्त्र जपादिके द्वारा पापसे तारनेवाले अथवा उत्कृष्ट तत्त्वज्ञानके द्वारा संसार-सागरसे पार करनेवाले भगवान् शंकरको नमस्कार हो।

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः (श्वेता० उ० ४। १६)

२५–रुतिं शब्दं राति ददातीति प्राणो रुद्रः।

प्राणदाता भगवान् शंकर रुद्र हैं। यथा—

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणेन जातानि जीवन्ति।

(तै० उ० ३। ३। १)

यो ह वै ज्येष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च॥ (छा० ५।१।१)

'रुद्ररूप प्राण ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है, उसको जाननेवाला ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बनता है।'

इन्द्रस्त्वं प्राणतेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
(प्रश्नो० २।९)

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाञ्च विधेहि न इति॥
(प्रश्नो० २।१३)

'समस्त त्रिलोकी प्राणमें स्थित है और सब प्राणके वशमें हैं। हे प्राण! माताके समान पुत्ररूपमें हमारी रक्षा करो और हमें सम्पत्ति तथा बुद्धि प्रदान करो।'

'य एवं विद्वान् प्राणं वेद' (प्रश्नो० ३।११)। इस-प्रकारसे प्राणको जाननेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

प्राणा ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति। (बृह० ४।४।६)

२६–'रुत् द्रवति'—भक्तोंके दुःखका नाश करनेवाले रुद्र हैं।

सत्त्वानां पतये नमः (रुद्रा० मं० २०)

शरणमें आये हुए प्राणियोंके पालक तथा भक्तवत्सल भगवान् रुद्रको नमस्कार हो।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(गीता ९।२२)

दृढ धारणासे उपासना करनेवाले भक्तजनका मैं योगक्षेम वहन करता हूँ।

क्षेम्याय नमः। (रुद्रा० मं० ३३)

'भक्तका क्षेम करनेवाले रुद्रको नमस्कार हो।'

२७–सृष्टिके प्रारम्भमें प्रजापति ब्रह्माजीने जन्म-मरण-वाली प्रजा उत्पन्न की। इस प्रजाकी अवस्था देखकर भगवान् रुद्र रुदन करने लगे और बोले कि हम ऐसी प्रजा नहीं उत्पन्न करेंगे बल्कि सृष्टिसे लेकर प्रलयकालपर्यन्त जीने-वाले गणोंको उत्पन्न कर तथा गुरुरूपसे स्थित रहकर हम प्रजाका उद्धार करेंगे (सूतसंहिता)। इसलिये भगवान् रुद्र सबके गुरु हैं।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्
(योगदर्शन १।२६)

कालसे परिच्छेद न होनेके कारण वह ब्रह्मादिक देवोंके भी उपदेष्टा और गुरु हैं।

शिव एव ह्याचार्यरूपेणानुगृह्णाति (श्रुति)

'परमात्मा शिवजी आचार्य और गुरुरूपेण अनुग्रहीत करते हैं।'

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्त्तये।
(निरालम्बोपनिषद्)

'सच्चिदानन्दमूर्ति, सद्गुरु शिवजीको नमस्कार हो।'

जगदादिगुरुः शिवः।

'शंकर जगद्गुरु हैं।'

२८–आर्द्राके मेघको 'रुद्र' कहते हैं। यथा—

सोऽरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम्। तस्माद् बर्हिषि रजतं न देयम्। (श्रुति)

निरुक्तकार यास्काचार्यका मत है कि आर्द्रा-नक्षत्रके मेघ-का नाम 'रुद्र' है। यह मेघ चातुर्मासके प्रारम्भमें 'रुदन् द्रवति' गर्ज करके बरसता है। यही रुद्रके अश्रु हैं, जिनसे रजत (चाँदी) उत्पन्न होता है। इसलिये यज्ञमें ऋत्विजोंको दक्षिणामें रजत नहीं देना चाहिये बल्कि सुवर्ण दान करना उचित है।

नमो वर्षाय। नमो मेघ्याय। (रुद्रा० मं० ३८)

नमस्ते स्तनयित्नवे। (यजु० ३६।२१)

गर्जनरूप रुद्रको नमस्कार हो।

२९–**'रु गतौ'–ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः। रवणं रुत्—ज्ञानम्; भावे क्विप्, तुगागमः। रुत् ज्ञानं राति ददातीति रुद्रः। ज्ञानप्रदो मोहनिवारकः परमेश्वरः।**

भगवान् शङ्कर अधिकारी मुमुक्षुको ज्ञान प्रदान करके अविद्यारूप अन्धकारसे मुक्त करते हैं। अर्थात् शिवकी विद्या-शक्तिके प्रकाशसे अविद्यान्धकारका नाश होता है। भगवान् गीतामें ज्ञानका वर्णन करते हुए अर्जुनसे कहते हैं कि तू उस ज्ञानको प्राप्तकर, तुझे फिर इसप्रकार मोह न होगा और उस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण प्राणियोंका अपनी अन्तरात्मामें और उसके पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें साक्षात्कार करेगा। (गी० ४।३५)

पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः (गीता १५।१०)

ददामि बुद्धियोगम् (गीता १०।१०)

'मैं उन्हें ज्ञान प्रदान करता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। मैं उनके अज्ञानजन्य अन्धकारको ज्ञानरूपी प्रकाशयुक्त दीपकसे नष्ट करता हूँ।' (गीता १०।११)

मोहं मार्जय तामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडामणौ
(वैराग्यशतक ५८)

मोहका त्याग करके चन्द्रचूड शङ्करकी उपासना करनी चाहिये जिससे मोह और शोकका नाश होता है।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः (ईशावा० ७)

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥
(मु० २ । २ । ८)

'परमात्माका साक्षात्कार होनेसे देहादिक बन्धन, सर्व संशय तथा समस्त कर्मसमूह नष्ट हो जाते हैं।'

३०–**पापिनो जनान् दुःखभोगेन रोदयतीति रुद्रः। जगच्छासकः।**

'रुद्रदेव पापीजनोंको उनके कर्मोंका फल देकर रुलानेवाले हैं तथा जगत्‌के शासक हैं।' यथा—

अन्तःप्रविष्टः शास्ता जनानाम्

'वे सबके हृदयमें स्थित होकर शासन करते हैं।'

गोप्ता चैव जगच्छास्ता शक्तः सर्वो महेश्वरः।
(कूर्मपुराण)

'सर्वशक्तिमान् महेश्वर जगत्‌के पालन करनेवाले तथा शासन करनेवाले हैं।'

३१–**रोदनं रुद्—दुःखं द्रावयतीति रुद्रः।**

'भक्तके दुःखोंका नाश करनेवाले देव रुद्र हैं।' यथा—

क्व स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः
(ऋग्वेद २ । ७)

हे रुद्र ! आपका वरद सुखदायी हाथ कहाँ है, जो सबको सुखी करनेवाला है ? उससे मेरी रक्षा करो। हे पापोंके विनाशक ! मुझ अपराधीके अपराध क्षमा करो।

'विक्षिणत्केभ्यः'—विविधं क्षिण्वन्ति हिंसन्ति पापम्
(रुद्रा० मन्त्र ४६)

'रुद्र भक्तोंके विविध पापोंके दूर करनेवाले हैं।'

३२–**एको हि रुद्रो न द्वितीयाय** (अथर्वशि० उप० ५)

वह एक ही देव है जो रुद्र कहलाता है। ब्रह्मवेत्ताजन इस देवको मानते हैं। रुद्रदेव अपनी नियामक शक्तिसे इस लोकको नियममें रखता है। वह देव सब लोकोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करता है। (श्वेता० ३ । २)

शिव एको ध्येयः शिवङ्करः। (अथर्वशिरउ०)

कल्याणकारी शिव सदा ध्यान करनेयोग्य हैं।

एको देवः (श्वे० ६ । ११) **एक एव महेश्वरः।**

एकमेवाद्वितीयम् (छान्दो० ६ । २ । १)

यो वै रुद्रः स भगवान्—(जैमिनीय ब्राह्मण)

जो रुद्र हैं वही भगवान् हैं। उपनिषदोंमें ऋषियोंने द्विविध ब्रह्मका परिचय दिया है। वह निर्गुण और सगुण, निरुपाधि और सोपाधि, निर्विशेष और सविशेष तथा निर्विकल्प और सविकल्प हैं। जो ईश्वरोंका ईश्वर है वह महेश्वर, महादेव, महारुद्र, ब्रह्मण्यदेव, एक और अद्वितीय है।

यस्मात् महत ईशः शब्दध्वन्या चात्मशक्त्या च महत ईशते तस्मादुच्यते महेश्वरः। (शाण्डिल्योपनिषद्)

योगवाशिष्ठके निर्वाण-प्रकरणमें महर्षि वशिष्ठजीने श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कहा है—

शिवं सर्वगतं शान्तं बोधात्मकमजं शुभम्।
तदेकभावनं राम।.........

'हे राम ! सर्वगत, शान्त, अज, आनन्द और कल्याणस्वरूप शिवको जानो। क्योंकि वही एक तत्त्व है जिसकी भावना करनी चाहिये।'

३३–**रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम्**
(कौषीतकिब्राह्मण २५ । १३)

सर्व देवोंमें अग्र, ज्येष्ठ, पुराणपुरुष और श्रेष्ठ एक रुद्र ही हैं। यथा—

अग्र्यं पुरुषं महान्तम् (श्वेता० ३ । १९)

नमो वृद्धाय च वर्षायसे च नमः (रुद्रा० मं० ३०)

नमोऽग्र्याय च (मन्त्र ३०)

नमो ज्येष्ठाय। (मं० ३२)

वयोविद्याश्रमादिभिरधिको ज्येष्ठः। वयसा वृद्धः। जगतामग्रे भवः। (शां० भाष्य)

वय और विद्या, आश्रम आदिमें बड़ा होनेसे ज्येष्ठ, प्रथम (आदिकारण) होनेसे वृद्ध है। यथा—

स एकः श्रेष्ठश्च सर्वशास्ता स एव वरिष्ठः।
(शरभोपनिषद्)

रुद्र ही एक सर्वश्रेष्ठ और वरिष्ठ है।

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम् (श्वे० ३ । ४)

३४–अग्निर्वै रुद्रः। (शतपथ ब्रा०)

अग्नि रुद्र है।

योऽग्नौ रुद्रः (अथर्वशिरउपनिषद्)

सर्व एतान्यष्टौ अग्निरूपाणि (शतपथ ६-१-३-१८)

३५–भवशर्वाविमं ब्रूमो रुद्रः पशुपतिश्च यः।

(अथर्ववेद ११ । ३ । ६ । ९)

पापका प्रणाश करनेके कारण शर्व 'रुद्र' कहलाता है।

भवाय च शर्वाय च नमः। (यजु० १६ । २८)

संसारपाशबद्धत्वेन प्राणिनां पशुत्वम्।
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः॥
तेषां पतित्वाद् देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् पशून् बद्ध्वा महेश्वरः॥
पाशैरेतैः पतिर्देवः कार्यं कारयति स्वयम्।
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः॥

(कूर्मपुराण)

संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः। (श्वे० उ० ६ । १६)

संसार-बन्धनमें बँधे होनेके कारण समस्त मनुष्यादि प्राणी पशु कहलाते हैं। ब्रह्मादि देवोंसे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त सृष्टि पाशसे बद्ध है, इसलिये पशुरूप है। उसका नियामक, स्वामी महेश्वर है। यह महेश्वर सब देवताओं तथा सब मनुष्योंको उपासनाके द्वारा उपासित होकर मुक्त करता है, कैवल्य (मोक्ष) देता है।

यह (रुद्र) संसारके मोक्ष, स्थिति एवं बन्धका स्वरूप है, उसे जाननेसे समस्त बन्धनोंसे मुक्ति होती है—

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।

(श्वे० उ० ५ । १३, ६ । १३)

और कैवल्यको प्राप्त होकर पुरुष ब्रह्मरूप हो जाता है। (श्वे० उ० ६ । ६)

३६–रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्ट इति श्रुतिः। तारयतीति तारः। संसारसागरात् उत्तारकम्। तारकं च तद्ब्रह्म इति तारकं ब्रह्म रुद्रः। (शां० भाष्य)

भगवान् रुद्र अपार संसारसागरसे तारनेवाले हैं।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

३७–रुद्रो ह्येवैतत्सर्वम् (बौधायनसूत्र)

'रुद्र सर्वस्वरूप हैं।'

रुद्रो वै सर्वा देवताः (अथर्वशिखोपनिषद्)

'रुद्र सर्वदेवमय हैं।'

शिव एव हरिः साक्षाद्धरिरेव शिवः स्मृतः।

(बृ० ना० पु० १४ । २)

शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।
सर्वदेवात्मको रुद्रः सर्वदेवाः शिवात्मकाः।

(रुद्रहृदयोपनिषद्)

सर्वे देवाः संविशन्ति इति विष्णुः। सर्वाणि बृंहयतीति ब्रह्म। सर्वांल्लोकान् व्याप्नोति व्यापनाद् व्यापी महादेवः। (अथर्वशिखोपनिषद्)

सर्व देवोंका निवास-स्थान होनेसे अथवा सब देवोंमें स्थित होनेसे वह विष्णु है। सबसे बृहत् होनेसे वह ब्रह्म है और सब लोकोंमें व्यापक होनेसे महादेव कहा जाता है। भगवान् श्रीकृष्णने भी स्पष्ट कहा है—'रुद्राणां शङ्करश्चास्मि'। इस स्पष्टीकरणसे यह भी निश्चय हो जाता है कि शिव और विष्णु एक ही हैं।

३८–यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥

(श्वेता० ३ । ४)

विश्वके अधिपति महर्षि रुद्रने सब देवोंको उत्पन्न करके उन्हें धारण किया है, उन्होंने हिरण्यगर्भको पहले उत्पन्न किया है—वह हमें शुभ बुद्धिसे युक्त करें।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

(यजु० १३ । ४)

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।

(गीता ९ । १७)

समग्रदेवानामसुरत्वमेकम् (ऋग्वेद म० ३)

समस्त देवोंका उद्भवस्थान वही एक है।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते। (श्वेता० ६ । ८)

न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः। (श्वेता० ६ । ९)

वे सबके कारण तथा कारणके भी कारण हैं, रुद्रदेवका

उत्पादक या पालक कोई दूसरा नहीं है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमञ्च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताव्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

(श्वेता० ६ । ७)

इस श्रुतिमें एक बहुत ही उत्तम तत्त्व प्रतिपादित है। सब नियन्ताओंके महान् नियन्ता, सब देवताओंके परम दैवत, प्रजापति ब्रह्मा आदिके स्वामी, स्वयंप्रकाश-स्वरूप, सब लोकोंके नियन्ता एवं पूज्य, सबसे महान्, महेश्वर, महारुद्र भगवान् शङ्करको मैं जानता हूँ ।

इसप्रकार 'रुद्र' शब्दके अनेक अर्थ होते हैं। महारुद्रोपासना यजुर्वेदके रुद्राध्यायमें है। इसमें 'रुद्र' शब्दके सौ नामोंका उल्लेख है, इसीलिये इसे 'शतरुद्री' भी कहते हैं। इसमें समस्त वेदादि शास्त्रोंका निचोड़ आ जाता है। शतरुद्रीका माहात्म्य और इसकी उपासनाका उपदेश महर्षि याज्ञवल्क्यने राजा जनकको दिया है। इसकी उपासना सिद्धि प्रदान करनेवाली है। श्रीमहारुद्र शिवकी उपासना करते हुए पाठकगण आत्म-चिन्तनमें आनन्द लाभ करें—यह शुभ कामना करते हुए विश्राम किया जाता है। ॐ तत्सत् शिवो३म् ।

शिव

(लेखक—श्रीटेकनारायणजी तर्कवागीश)

निर्विकार, निराकार, सच्चिदानन्द, परब्रह्म परमात्माका वैदिक नाम शिव है। वेदमें शिवका वर्णन है, शिवकी उपासना वैदिक है, इसलिये अनादि है। वेद ईश्वरप्रोक्त है, इसलिये शिवकी उपासना साम्प्रदायिक नहीं है और न कोई मनुष्य इसका आचार्य है। वेद और विद्या दोनों शब्द 'विद्' धातुसे बने हैं जिसका अर्थ जानना या ज्ञान है। वेद सत् विद्याओंका भण्डार है, वेदके नहीं माननेवालेको महाराज मनु नास्तिक कहते हैं—'नास्तिको वेदनिन्दकः'। विद्या और वेद दोनों ईश्वरकी महिमा प्रकट करते हैं, वेदके बिना शिवका ज्ञान नहीं होता, शिव ज्ञान-स्वरूप या ज्ञानेश्वर हैं और ज्ञानियोंके एकमात्र उपास्य देव हैं। श्रुति कहती है—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अर्थात् बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं होती ।

शुकदेवजी कहते हैं—

तीर्थे तीर्थे निर्मलं ब्रह्मवृन्दं
वृन्दे वृन्दे तत्त्वचिन्ताऽनुवादः ।
वादे वादे जायते तत्त्वबोधो
बोधे बोधे भासते चन्द्रचूडः ॥

अर्थात् तीर्थोंमें निर्मल ज्ञानियोंके झुण्ड रहते हैं, और झुण्डोंमें तत्त्व-विषयक वाद हुआ करता है; उन वादोंसे तत्त्वज्ञान होता है और तत्त्वज्ञानसे 'चन्द्रचूड' अर्थात् चन्द्रशेखर शिव भासते हैं। इससे सिद्ध होता है कि मोक्षार्थियोंके उपास्य शिव हैं। श्रुति भी कहती है—'ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति' अर्थात् शिवके ज्ञानसे अत्यन्त शान्ति—मोक्षकी प्राप्ति होती है।

शिव प्रणवस्वरूप हैं, प्रणवके सिरपर चन्द्रबिन्दु होनेके कारण प्रणव चन्द्रशेखर है, इसीसे शिवको 'चन्द्रशेखर' कहते हैं। प्रणव वेदका बीज-मन्त्र है। मनु कहते हैं कि ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदसे 'अ' 'उ' 'म' ये तीन अक्षर लेकर प्रणव बना है; इसीसे वैदिक धर्मावलम्बियोंके लिये प्रणवस्वरूप चन्द्रशेखर शिव महामान्य, परम पवित्र और परमाराध्य हैं। श्रुति-स्मृतिके अनुसार यह (प्रणव) परमात्माका अनुपम नाम है। मनु इसके विषयमें कहते हैं—'एकाक्षरं परं ब्रह्म', अर्थात् एक अक्षर यानी प्रणव (ॐ) परम ब्रह्म है।

वेद शैवोंका सर्वोपरि प्रधान ग्रन्थ है जिससे शिवकी उपासना चली है। यजुर्वेदसंहिताके सोलहवें अध्यायमें शिवकी उपासनाके ६६ मन्त्र हैं; छासठों मन्त्रोंके देवता रुद्र हैं, उन सब मन्त्रोंको पूरी व्याख्यासहित लिखनेसे लेख बहुत बड़ा हो जायगा, इसलिये उनमेंसे कुछ मन्त्र अन्वयसहित और कुछ संक्षिप्त व्याख्यासहित लिखे जाते हैं।

नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥

अन्वयः–(हे) रुद्र ते मन्यवे नमः, ते इषवे नमः, ते बाहुभ्यां नमः ॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वांश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ॥ ५ ॥

'हे रुद्र ! धर्मोपदेश करनेवाले श्रेष्ठ वक्ता ! (अर्थात् वेदवक्ता !) और आदि दिव्यचिकित्सक ! (वेदमें आयुर्वेदके प्रकट करनेवाले वैद्यनाथ) समस्त रोगोंको नाश करके और नीच गति प्राप्त करानेवाले राक्षसों अर्थात् अधार्मिक वासनाओंको नष्टकर हमलोगोंकी रक्षा करो।'

शरीर और आत्मा दोनोंके संयोगसे मनुष्यकी स्थिति है, इसलिये दोनोंके कल्याणार्थ अर्थात् आत्मिक उन्नतिके लिये 'धर्मोपदेशक' कहकर और शारीरिक उन्नतिके लिये 'दिव्य चिकित्सक' कहकर शिवसे प्रार्थना करते हैं।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहन्तेभ्योऽकरन्नमः ॥ ८ ॥

'नीलकण्ठको नमस्कार, असंख्य आँखवालेको नमस्कार, बड़े पराक्रमीको नमस्कार, सद्गुण और बलके अधीश्वरको नमस्कार और कर-रहितको नमस्कार।'

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशाञ्च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः। शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥१७॥

अन्वयः–हिरण्यबाहवे नमः, सेनान्ये नमः, दिशां पतये नमः, वृक्षेभ्यो नमः हरिकेशेभ्यो नमः पशूनां पतये नमः, शष्पिञ्जराय नम, त्विषीमते नमः, पथीनां पतये नमः, हरिकेशाय नमः उपवीतिने (सूत्रधारीको) नमः, पुष्टानां पतये नमः ॥

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधिनीभ्यो विविद्ध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृ हतीभ्यश्च वो नमः ॥२४॥

अन्वयः–सभाभ्यो नमः सभापतिभ्यो नमः अश्वेभ्यो नमः अश्वपतिभ्यो नमः आव्याधिनीभ्यो नमः विविद्ध्यन्तीभ्यो नमः उगणाभ्यो नमः तृंहतीभ्यो नमः ॥

१–यह विश्व-जगत् (ब्रह्माण्ड) सभामण्डप है, जिसका शामियाना आकाश, बिछावन धरती और नक्षत्र रोशनी है। इसमें विराट् सभा लगी है।

२–इस विराट् सभाके सभापति परब्रह्म परमात्मा शिव हैं जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वहितकारी, अलख, अगोचर, अज, अविनाशी, अचिन्त्य, समस्त विद्याओंके भण्डार, सच्चिदानन्द और अनन्त विश्वोंके नियन्ता हैं। यह सारी विराट् सभा उनके अधीन है।

३–वेद सभापतिका भाषण है (जिसमें समस्त विद्याओंका बीज है), जिसमें मानव-जीवनके लिये विद्यानुकूल परमोपकारक कर्तव्य-कार्योंका वर्णन है और जो पक्षपातहीन तथा सारे जगत्के लिये परमोपयोगी है।

४–वैदिक ऋषियोंने सभापतिके भाषणको नोट (हृदयपटपर) किया था अर्थात् भाषणके पृथक्-पृथक् अंशों (वेदकी ऋचाओं) को समाधिस्थ होकर धारण किया था जिनका वेदव्यासने उन लोगोंसे संग्रह करके समस्त भाषणका संकलन किया।

५–सभाका मन्त्रिपद प्रकृतिको प्राप्त है; सभाका सारा कार्य उसके अधीन है, कोई काम उसकी आज्ञा बिना नहीं होता। मन्त्रीकी योग्यता और कार्य-दक्षता अनुपम है और उसकी कार्य-कारिणी-शक्ति वर्णनातीत है। सभापतिने सभाका पूर्ण अधिकार मन्त्रीको दे रक्खा है, इसीसे वह सर्वगुणसम्पन्ना और अदम्य शक्तिशालिनी है। सूर्य और धूपमें जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध सभापति और मन्त्रीमें है।

६–शास्त्रकार ऋषिलोग उपदेशक हैं और शास्त्र सब उनके उपदेश (व्याख्यान) हैं।

७–पञ्चमहाभूत (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) विराट् सभाकी कार्य-कारिणी समितिके सदस्य हैं और प्रकृति सभापति है। प्रकृतिकी आज्ञासे ये पाँचों महाभूत विराट् सभाका सारा कार्य सदा किया करते हैं।

८–सभाकी नियमावलीका नाम मानव-धर्म-शास्त्र है, यह नियमावली मन्त्रीके अनुकूल और सभापतिके भाषणके आशयके अनुसार महाराज मनुने बनायी है। इसमें सब श्रेणीके मनुष्योंको जन्मसे मरणपर्यन्त क्या-क्या कार्य कब और कैसे करने चाहिये इसका वर्णन है, जिससे सभाका सदा शान्तिमय अधिवेशन होता रहे।

९–ऋतु सब (वसन्त, ग्रीष्म, पावस, शरद्, हिम और शिशिर) स्वयंसेवक हैं। समयानुकूल आवश्यक कार्योंको करना तथा खाद्य और पेय पदार्थोंका आयोजन करना इनके अधीन है। कार्य-कारिणी समितिकी

सम्मतिसे अपने अधिनायक (Captain) के आज्ञानुकूल सब स्वयंसेवक सदा सभाका काम किया करते हैं ।

१०–सूर्य स्वयंसेवकोंके अधिनायक (Captain of the volunteers) हैं । यह स्वयंसेवकोंके साथ सभाकी शान्तिरक्षा और स्वास्थ्यरक्षाका काम करते हैं और सब स्वयंसेवक सदा सूर्यके अधीन काम करते हैं ।

११–पृथिवी भण्डारी है, खाद्य द्रव्यादि सभाकी सारी आवश्यक सामग्री इसके अधिकारमें रहती है; यह समयानुकूल सभामें समागत प्राणियोंके खान-पान आदि आवश्यक वस्तुओंका आयोजन किया करती है ।

१२–मेघ पनभरा है–समस्त जलपात्रोंको पानीसे भरना इसका काम है ।

१३–जलाशय सब जलपात्र हैं, जिनमें सभाके लिये जल रहता है ।

१४–अण्डज, पिण्डज, स्थावर और जङ्गम—ये सारे सभागत, विराट् सभाके सभासद हैं—इन्हींके कल्याणार्थ सभाकी सारी तैयारी है ।

१५–सद्विद्वान्लोग सभाके मुख्य सदस्य हैं—ये लोग समय-समयपर सभापति, मन्त्री, सभाके उद्देश्य और नियमके विषयमें लोगोंको ज्ञान कराया करते हैं ।

१६–नियमके विरुद्ध काम करनेसे सभासदोंको दण्ड होता है । सभापति त्रिशूलधारी हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीन प्रकारके शूल (दुःख) उनके हाथमें हैं अर्थात् उनके अधीन हैं; त्रिशूल (इन तीनों दुःखों) के द्वारा दण्ड होता है ।

१७–विराट् सभाके मुख्य कारण सभापति हैं और इस सभाका मुख्योद्देश्य भी केवल वही जानते हैं । इसका आभास उनके भाषणमें पाया जाता है, और यह आभास अध्यात्मविद्याद्वारा मनुष्य कुछ समझ सकता है ।

१८–सभाका अधिवेशन सदा ब्राह्मदिवसमें होता है और ब्राह्मरात्रिमें सभा विसर्जित रहती है ।

सभा-स्थापन करनेकी प्रथा पहले-पहल वेदसे चली; ऐसी अनुपम सभा और ऐसे अद्वितीय सभापतिको कौन नहीं प्रणाम करेगा ? सभाके सदस्यको सभ्य कहते हैं, और सभ्यके गुणको सभ्यता कहते हैं; संसारमें पहले-पहल वेदसे ही सभ्यताका प्रचार हुआ है ।

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमः ॥२५॥

अन्वयः–गणेभ्यो नमः, गणपतिभ्यो नमः, व्रातेभ्यो नमः व्रातपतिभ्यो नमः, गृत्सेभ्यो नमः, गृत्सपतिभ्यो नमः, विरूपेभ्यो नमः, विश्वरूपेभ्यो नमः ॥

इस मन्त्रमें शिवका नाम 'गणपति' भी है, विश्वरूप शिवको कोई पुत्र-कलत्र नहीं ।

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥२८॥

अन्वयः–श्वभ्यो नमः, श्वपतिभ्यो नमः, भवाय नमः, रुद्राय नमः, शर्वाय नमः, पशुपतये नमः, नीलग्रीवाय नमः, शितिकण्ठाय नमः ॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥३०॥

अन्वयः–ह्रस्वाय नमः, वामनाय नमः, बृहते नमः, वर्षीयसे नमः, वृद्धाय नमः, सवृधे नमः, अग्र्याय नमः प्रथमाय नमः ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४१॥

अन्वयः–शम्भवाय नमः, मयोभवाय नमः, शङ्कराय नमः, मयस्कराय नमः, शिवाय नमः, शिवतराय नमः ॥

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी । शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥४९॥

'हे रुद्र ! तुम्हारी शक्ति सदा कल्याणकारिणी, रोगहारिणी और पीड़ा दूर करनेवाली है; अतएव हे कल्याणकारिणी शक्तिसे युक्त रोगहर्ता ! हमलोगोंपर कृपा करो जिससे हमलोग सुखसे जियें । ('शिवा' का अर्थ शिवकी शक्ति है ।)

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः । तेषाᳯ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥२६॥

नोट–गीतामें लिखा है–'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' अर्थात् सब भूतों (पदार्थों) के हृदयमें ईश्वर स्थित है । ब्रह्माण्डके सारे पदार्थ महाभूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण 'भूत' कहाते हैं । इसलिये समस्त भूतोंका स्वामी होनेके कारण, वेद शिवको 'भूतानामधिपति' अर्थात् भूतनाथ कहता है । इसके सिवा और कोई भूत-प्रेत नहीं हैं ।

'हे रुद्र ! आप भूतनाथ अर्थात् ब्रह्माण्डके समस्त पदार्थ (भूत) यानी प्राणी और अप्राणी (अण्डज, पिण्डज, स्थावर और जंगम ये सब भूत हैं) सबके स्वामी हैं, शिखा-सूत्र-रहित संन्यासी (परम त्यागी) और जटाधारी ब्रह्मचारी (व्योमकेश अर्थात् आकाश ही जिसकी जटा है) हैं; इसलिये प्रार्थना है कि हमलोगोंसे सहस्र योजन दूरपर उन रुद्रोंके धनुष खुल जायँ अर्थात् दुःख देनेवाले रुद्रांशयुक्त पदार्थ सब हमलोगोंसे दूर रहें !'

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६४॥

'उन रुद्रोंको, जिनका निवास आकाशमें है और मेघकी झड़ीके समान जिनका बाण है, कर जोड़कर पूर्वकी ओर दस बार, पश्चिमकी ओर दस बार, उत्तरकी ओर दस बार, दक्षिणकी ओर दस बार और ऊपरकी ओर दस बार प्रणाम ! वे हमलोगोंकी रक्षा करें और घृणित तथा दुःखदायी दुष्टोंका संहार करें ।'

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६५॥

'उन रुद्रोंको प्रणाम, जिनका निवास अन्तरिक्ष अर्थात् वायुमण्डलमें है और वायुप्रवाहके समान जिनका बाण है, पूर्वोक्त रीतिसे उनको प्रणाम ! वे हमलोगोंकी रक्षा करें और घृणित तथा दुःखदायी दुष्टोंका संहार करें ।'

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६६॥

'उन रुद्रोंको प्रणाम, जिनका निवास पृथिवीमें है और अन्न अर्थात् खाद्य द्रव्य जिनका बाण है—पूर्वोक्त रीतिसे उनको प्रणाम ! वे हमलोगोंकी रक्षा करें और घृणित तथा दुःखदायी दुष्टोंका संहार करें ।'

वेद शैवोंका परम मान्य ग्रन्थ है क्योंकि वेद शैव अर्थात् ज्ञान-ग्रन्थ है, और गायत्री शैवोंका परमोपास्य मन्त्र है क्योंकि इसका पहला अक्षर चन्द्रशेखर (प्रणव) है, जो वेदका बीजमन्त्र है । त्रिकालसन्ध्याकी उपासना त्र्यम्बककी पूजा है ।

जगन्मान्य आर्योंका परम पूज्य पचमन्दिरा

पञ्चदेवताके पाँच सम्मिलित मन्दिरोंको 'पचमन्दिरा' कहते हैं । चार बाहरके मन्दिरोंमें चार देवता और पाँचवें भीतरके मन्दिरमें उन चारोंके अधीश्वर महादेव रहते हैं ।

प्रत्येक मनुष्यको पञ्चदेवताकी उपासनाके लिये परमात्माने जो पचमन्दिरा दिया है, वह मनुष्यके सिरमें है । वह अकृत्रिम पचमन्दिरा सदा मनुष्यके साथ रहता है । सिरमें पाँच देवताओंके पाँच मन्दिर या स्थान हैं—एक देवता (अग्नि) का मन्दिर आँख है, दूसरे देवता (वायु) का मन्दिर कान है, तीसरे देवता (वाग्देवता) का मन्दिर मुख है, चौथे देवता (पृथिवी) का मन्दिर नाक है और पाँचवें देवता जो इन चारोंके अधीश्वर होनेके कारण महान देवता (महादेव) कहलाते हैं, उनका मन्दिर कपाल (Brain) है । कपालस्थ देवताको 'कपाली' कहते हैं और महादेव और कपाली शिवके नाम हैं । शिव ज्ञानेश्वर हैं और कपाल ज्ञानका स्थान है (Brain is the seat of wisdom) अर्थात् दिमागमें अक्ल रहती है ।

परमात्माने समस्त प्राणियोंमें मनुष्यको श्रेष्ठ बनाया है और मनुष्यकी श्रेष्ठता केवल ज्ञानपर निर्भर है जो कपालका विशेष गुण है ।

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च
समानमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥

'आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार बातें मनुष्य और पशुमें बराबर होती हैं; मनुष्यमें ज्ञान विशेष है और ज्ञान न होनेसे मनुष्य और पशु दोनों समान हैं ।'

आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ कपालके अधीन हैं, कपालमें किसी प्रकारका विकार होनेसे सारी ज्ञानेन्द्रियाँ शक्तिहीन और निष्फल हो जाती हैं; इसलिये कपालकी सेवा-पूजा परम कर्तव्य है ।

कपाल असली (प्राकृतिक) शिवालय है, जिसमें कपाली या कपालेश्वर शिवका आभास होता है जिससे

ज्ञानका विकास होता है। शिव ज्ञानस्वरूप हैं और कपाल ज्ञानका स्थान है, इसलिये शिव कपाली हैं। जैसे नेपालके रहनेवालेको नेपाली और बङ्गालके रहनेवालेको बङ्गाली कहते हैं वैसे ही कपाल अर्थात् जगत्-कपालमें रहनेवालेको कपाली कहते हैं, जो जगत्के समस्त कपालोंका कपालेश्वर है। इसप्रकार शिव कपाली हैं।

असली पचमन्दिरा शिर है। लोग जो पचमन्दिरा बनाते हैं वह शिरःस्थ पचमन्दिराकी नकल है और कपाल असली शिवालय है। शिवकी असली पूजा (मानसिक पूजा) और शिवका ध्यान इसीमें होता है। सन्ध्या-पूजामें गायत्रीका सर्वोत्तम जप (मानसिक जप) इसी शिवालयमें होता है। कृत्रिम शिवालय सब इसीके अनुकरण हैं। इसका महत्त्व अकथनीय है।

प्राचीनकालमें आर्यलोग असली पचमन्दिराकी सेवा-पूजाका महत्त्व और उसकी विधि पूर्णरूपसे जानते थे और इसी पचमन्दिराकी सेवाकी बदौलत वे लोग जगत्-पूज्य थे और सर्वत्र राज करते थे। इसकी सेवा-पूजा उठ जानेसे सारा देश विपन्न हो गया और आज हिन्दुओंकी घोर दुर्दशा उपस्थित है। ज्ञानहीन होनेके कारण पिता-पुत्रमें, भाई-भाईमें, माँ-बेटेमें और पति-पत्नीमें सर्वनाशक विरोध फैल रहा है। वेद (विद्या) विरोधी नाना प्रकारके सम्प्रदाय चल रहे हैं, देश रसातलको जा रहा है और घोर अनर्थ हो रहा है।

जिस पचमन्दिराके प्रसादसे भारत अनुपम विद्या-बुद्धि प्राप्तकर एक दिन सारे जगत्का परम पूज्य गुरु था, आज ज्ञान (वेद) विरोधी कार्योंके पचड़ेमें पड़कर दूसरोंका गुलाम हो रहा है। कपालकी यथार्थ सेवा नहीं होनेके कारण आँख, कान, मुख आदिका रोग फैल रहा है और मस्तिष्ककी निर्बलता और धारणशक्तिका ह्रास हो रहा है; भारतके अदृष्टाकाशमें घोर अन्धकार छा रहा है।

कपालके विशेष गुणका नाम बुद्धि (ज्ञान) है। वैदिक उपासनाका मुख्य उद्देश्य निर्मल बुद्धि (ज्ञान) का प्राप्त करना है। आर्योंके महामन्त्र या द्विजातियोंके परमोपास्य गायत्रीका निचोड़—'धियो यो नः प्रचोदयात्'—प्रत्यक्षरूपसे सिद्ध करता है कि बुद्धिसे बढ़कर संसारमें कुछ नहीं है।

योगकी समाधि कपालके द्वारा होती है, कपालके बलसे सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है, कपालहीके बलसे वैदिक ऋषियोंको वेदका ज्ञान हुआ था, सारी विद्या (परा और अपरा) कपालहीके प्रतापसे प्राप्त होती है। कपिल, कणाद, जैमिनि, पतञ्जलि, गौतम और व्यास ये सब कपालहीके प्रभावसे दर्शनाचार्य हुए। कपाल बड़े आदरकी वस्तु है। परमात्माने इसका स्थान सर्वोपरि बनाया है। मन कपालमें रहता है जिसके द्वारा मनुष्य गम्भीर विचार करता है। कपालमें मस्तिष्क रहता है और मस्तिष्कमें बुद्धि रहती है। जगतीतलपर जिस किसीने कठिन-से-कठिन विद्या या परमात्माकी अगाध महिमाका जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया वह सब कपालहीके प्रतापसे; इसलिये कपाल परम सेव्य है।

प्राचीन कालमें शैवोंका बड़ा प्रभुत्व था—केवल भारतवर्षहीमें नहीं वर भारतवर्षके बाहर भी, जिसके प्रमाण अभीतक वर्तमान हैं। आर्ष ऋषि पूर्वकालमें प्रायः एशियामें घूमा करते थे, इसलिये इसका नाम आर्ष-देश हुआ और कालक्रमसे आर्षसे 'आर्षिया' और 'एशिया' हो गया जो आजतक प्रसिद्ध है। पुराने इतिहासवेत्ताओंने एशियाको Country of the Prophets लिखा है, जो आर्षदेश (ऋषियोंका देश) का अर्थ है। एशियाके सबसे बड़े देशका जिसको आजकल 'साइबेरिया' (Siberia) कहते हैं, प्राचीन नाम 'शिवबेरिया' है; शैव ऋषियोंके कारण उसका नाम शिवबेरिया पड़ा। 'बेरिया' शब्द स्थानवाचक है, जैसे पटनेके पास फूल-बेरिया और कर्णबेरिया और बङ्गालमें ब्राह्मणबेरिया आदि; उसीके पास कश्यपीय समुद्र कश्यपऋषिके नामसे आजतक 'कश्यपियन समुद्र' (Caspian Sea) कहलाता है। कश्यपीय समुद्रके पास 'वाक्' एक स्थान है, 'राजा शिवप्रसाद' सी० आई० ई० अपने ग्रन्थ 'भूगोल हस्तामलक'में लिखते हैं कि 'वाक्' महाज्वालामुखी, हिन्दुओंका तीर्थस्थान है। वहाँ सफेद पत्थरका बहुत बड़ा अहाता है जिसके भीतर छोटी-छोटी बहुत-सी कोठरियाँ बनी हैं जिनमें योगी-यती अभीतक रहते हैं और जब उनमेंसे कोई मरता है तो उसको घीसे नहलाकर अग्निकी लाटसे जो दिन-रात सदा निकलती रहती है, जला देते हैं। अग्निकी जो लाट निकलती है उसकी रोशनी एक मीलतक पहुँचती है।

मङ्गोलिया शैवोंका बसाया हुआ है जिसका प्राचीन नाम मङ्गल-देश है। (यजुर्वेदके १६ वें अध्यायके छठे मन्त्रमें शिवका नाम 'सुमङ्गल' है और 'शिव'का अर्थ भी मङ्गल है।)

प्राचीनकालमें आर्यलोग नौकापर पारस और अरबके दक्षिण समुद्रके किनारे-किनारे लोहितसागर (Red Sea) होकर पश्चिमके देशोंमें व्यापार करने जाते थे। उस समय एक शैव ब्राह्मणने उन लोगोंके साथ जाकर अरबमें शैव-उपासनाका प्रचार किया था। देश-कालके अनुसार उसने एक छोटा-सा शिवालय भी वहाँ स्थापन किया था, जिसको आजकल वहाँवाले 'काबाशरीफ़' कहते हैं। उसके भीतर एक अण्डाकार प्रतिमा है जिसकी लम्बाई नौ इञ्च है। जो लोग हज करने जाते हैं वे लोग उस मन्दिरकी सात प्रदक्षिणा करते हैं। अरबी भाषामें शब्दोंके पहले 'अलिफ लाम' लगाकर बोलनेका कायदा है, जिससे ब्राह्मण शब्दका अरबी रूप अलब्राह्मण हुआ और प्रायः 'लाम'का उच्चारण नहीं होता जिससे उसका रूप 'अब्राह्मण' हो गया; बाइबिलमें उसका नाम 'अब्राहम' (Abraham) लिखा है। कुरानमें लिखा है कि हज़रत अब्राहीमने काबाशरीफ़ बनाया था।

चन्द्रबिन्दु चन्द्रशेखरकी निशानी है, काबाके माननेवाले अभीतक सिरपर (टोपीमें) चन्द्रबिन्दु धारण करते हैं। लोहितसागरमें दो द्वीप हैं, एकका नाम रुद्रके नामसे 'रुद्रस' था जो आजकल 'रोड्स' (Rhodes) और दूसरेका नाम शिवके नामसे शिवपर्श था जो आजकल 'साइप्रस' (Cyprus) कहलाता है। शैव-आर्योंने वीरभद्रकी एक बहुत बड़ी प्रतिमा अष्टधातुकी इन द्वीपोंपर स्थापन की थी जिसका एक पाँव रोड्सपर और दूसरा पाँव साइप्रसपर था और उसके हाथमें त्रिशूल था। उसके दोनों पाँवोंके बीचसे जहाज जाता-आता था। वह आँधीमें समुद्रमें गिर गया, अब उसका उठानेवाला कोई नहीं है। त्रिशूल और अष्टधातुका उत्पत्ति-स्थान विचार करनेसे शैवोंका भारत है। पूर्वोक्त विषयोंका पूर्णरूपसे प्रभुत्व और महत्त्व प्रकट होता है।

शिव और शैवका विषय ऐसा गम्भीर है कि हजारों पृष्ठोंमें दृढ़ प्रमाणोंके साथ लिखा जा सकता है।

श्रीकण्ठीय शिवदर्शन

(लेखक—श्रीयुत एस० एस० सूर्यनारायणजी शास्त्री, रीडर, मद्रास-विश्वविद्यालय)

कण्ठ कहाँके निवासी और किस कालमें विद्यमान थे एवं कहाँ और किस कालमें उन्होंने ग्रन्थ-रचना की, इस सम्बन्धमें कोई बात निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं है। तथापि इतनी बात तो प्रायः निश्चित-सी ही है कि उनके जीवन-कालमें दक्षिण भारतमें शैवों और वैष्णवोंके बीच झगड़ेका सूत्रपात हो चुका था। एक ओर तो यह कहा जाता है कि हरदत्तने श्रीकण्ठके 'शैवभाष्य' पर टीका लिखी और दूसरी ओर अप्पय्य दीक्षितका यह कहना है कि श्रीकण्ठ हरदत्तके परवर्ती थे। हरदत्त एक ब्राह्मण-बालक थे। तंजोर जिलेके कंसपुर नामक ग्राममें एक वैष्णव-घरानेमें उनका जन्म हुआ था। किन्तु वे बचपनसे ही शिवजीके अनन्य भक्त हो गये और एक जलते हुए लोहेकी तिपाईपर बैठकर शिवकी अन्य सारे देवताओंमें प्रधानता सिद्ध करने लगे। उन्होंने 'पञ्चरत्नमालिका' नामक अपने एक पाँच पद्योंके ग्रन्थमें इसी बातको सिद्ध किया है। उन्होंने चोलराज कुलोत्तुङ्गकी सभामें इन्हीं युक्तियोंका आश्रय लेकर अपने सारे प्रतिपक्षियोंको यह स्वीकार करनेके लिये बाध्य किया कि शिवसे परे कोई देवता नहीं है और जब श्रीरामानुजके शिष्य कूरेशने इस बातको स्वीकार करनेसे इन्कार किया और इस अपराधमें राजाने उनकी आँखें निकलवा लीं उस समय इन्होंने 'कूरेश-विजय' नामक अपने ग्रन्थमें उन्हीं युक्तियोंका स्वयं क्रमशः खण्डन किया। हरदत्त श्रीकण्ठसे पहले हुए अथवा पीछे, इस सम्बन्धमें जो कथाएँ प्रचलित हैं उनके अतिरिक्त इन दोनों विद्वानोंके सिद्धान्तोंमें भी पर्याप्त समानता है। लेखकने श्रीकण्ठके विषयमें जो स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा है उसके परिशिष्ट भागमें हरदत्तरचित 'श्रुतिसूक्तिमाला' तथा श्रीकण्ठीय शैवभाष्यकी परस्पर विस्तृत तुलना की गयी है। वेदोंके टीकाकार भट्टभास्करके—जिनका काल दसवीं शताब्दी माना जाता है—सिद्धान्त भी श्रीकण्ठके सिद्धान्तोंसे मिलते हैं। इसलिये यह धारणा युक्तिसङ्गत प्रतीत होती है कि श्रीकण्ठ उसी वातावरणमें रहते थे। उनके लिये यह एक विशेष गौरवकी बात है कि उन्होंने औचित्यका ही पक्ष लेकर अपनी सारग्राहिताका परिचय दिया। साम्प्रदायिक दुराग्रहके प्रवाहमें उन्होंने अपनेको नहीं बहने दिया। श्रीकण्ठ सर्वोपरि समन्वयवादी

थे; उन्होंने वैदिक सिद्धान्तोंकी आगमिक सिद्धान्तोंके साथ, शैव सिद्धान्तोंकी वैष्णव सिद्धान्तोंके साथ, यहाँतक कि दार्शनिकोंके कट्टर एकेश्वरवादकी ब्रह्मवादके साथ एकवाक्यता की है।

आस्तिक हिन्दूमात्र विवादग्रस्त विषयोंमें शब्द अथवा श्रुतिको ही एकमात्र प्रमाण मानते हैं। शब्दके सहायकरूपमें अनुमान भले ही कुछ कामका हो, किन्तु स्वतन्त्ररूपसे वह हमारे किसी प्रयोजनका नहीं हो सकता। मानव-जगत्‌के कार्य-कारण-भावको दृष्टान्तरूपसे सामने रखकर हम भले ही विश्वके कारणका अनुमान कर लें, किन्तु उक्त दृष्टान्तके आधार-पर हमारे लिये किसी एक एवं सर्वज्ञ हेतुका अनुमान करना कदापि युक्तियुक्त नहीं हो सकता; केवल शब्द-प्रमाणकी सहायतासे हम इस निश्चयपर पहुँच सकते हैं। और शब्दके भी हम आगम और निगम ये दो स्थूल विभाग कर सकते हैं। हमारे लिये दोनों ही इसलिये प्रामाणिक हैं कि दोनोंके ही प्रवर्तक भगवान् शिव हैं जो सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् हैं, जो नित्य आप्तकाम हैं और जिनका संकल्प सर्वदा सत्य है। शब्द अथवा आप्तवचन तभी अप्रमाण हो सकता है जब वक्तामें किसी प्रकारका दोष हो। किन्तु शिवमें तो किसी प्रकारके दोषकी कल्पना हो ही नहीं सकती। वैदिक तथा आगमिक सिद्धान्तोंमें केवल इतना ही अन्तर है कि वेदोंके अध्ययनका अधिकार केवल द्विजाति-वर्णोंको है, किन्तु आगमका अध्ययन चारों ही वर्णोंके लोग कर सकते हैं। सारे ही शैवागम, जिनकी संख्या अट्ठाईस है, स्पष्टरूपसे इस बातका प्रतिपादन करते हैं कि शिव ही परमेश्वर हैं। वे ही इस ब्रह्माण्डके रचयिता, पालनकर्ता एवं संहर्ता हैं, वे ही जगत्‌के अभिन्न-निमित्तोपादान-कारण हैं, वे ही निज शक्ति मायाके द्वारा त्रिगुणात्मक जगत्‌के अन्दर ओत-प्रोत होते हुए भी स्वरूपसे त्रिगुणातीत हैं, वे ही समस्त जीवोंके नियन्ता, प्रेरक एवं परम गति हैं। वेदों तथा उपनिषदोंके वाक्य भी, जिनमें अनिर्देश्य ब्रह्मकी सत्ता प्रतिपादित की गयी है, शिवपरक ही माने जाने चाहिये। कैवल्य, श्वेताश्वतर, अथर्वशिख इत्यादि कतिपय उपनिषदोंमें स्पष्टरूपसे शिवकी महिमाका वर्णन किया गया है। अतएव उनके और आगमोंके प्रतिपाद्य विषयमें कोई भेद नहीं है। सुबाल आदि जिन थोड़े-से उपनिषदोंमें विष्णुकी महिमा गायी गयी है उन्हें आद्योपान्त पढ़ने तथा उनके अर्थपर विचार करनेसे यह पता लगेगा कि वे या तो अप्रामाणिक हैं अथवा लाक्षणिक अर्थका बोध कराते हैं। उदाहरणतः महानारायणोपनिषद्‌का एक पूरा-का-पूरा खण्ड जो नारा-यणानुवाकके नामसे प्रसिद्ध है, देखनेमें विष्णुकी महिमासे भरा हुआ है। किन्तु उक्त उपनिषद्‌के आदि, मध्य तथा अन्तके मन्त्रोंको देखनेसे यह पता लगता है कि सारा उपनिषद् शिवकी ही प्रधानताका प्रतिपादन करता है। इससे यह समझमें आता है कि नारायणानुवाकका प्रतिपाद्य विषय भी यही होना चाहिये। 'नारायणपर ब्रह्म' का अर्थ यही होना चाहिये कि ब्रह्म (अर्थात् शिव) नारायणसे भी परे (अर्थात् श्रेष्ठ) हैं।

यही ब्रह्म जो इसप्रकार आगमप्रतिपादित शिवसे अभिन्न सिद्ध होता है, जगत्‌का अभिन्न निमित्तोपादान-कारण है। उपादान (कारण) होनेपर भी वह परिणामी नहीं है; जिसका परिणाम होता है वह उसकी चिच्छक्ति है। किन्तु शक्ति और शक्तिमान्‌में परस्पर अभेद होनेके कारण ब्रह्मको ही उपादान-कारण कहते हैं। जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती, वे नित्य हैं। उन्हें नित्य न माननेसे यह दोष आवेगा कि उनकी उत्पत्ति और नाशके साथ ही कृत-कर्मोंका नाश एवं अकृत कर्मोंकी प्राप्ति माननी पड़ेगी। भौतिक सृष्टिका उद्देश्य जीवोंको कर्ममें प्रवृत्त करना है, जिसके द्वारा वे अपने अन्तःकरणके मलको धो सकें। जगत् वास्तवमें बिल्कुल असार होनेपर भी जबतक लुभावना और सारवान् प्रतीत नहीं होता तबतक जीवोंकी कर्ममें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसीलिये भगवान् उसके असली स्वरूपको छिपाये रखते हैं। यही उनका तिरोभावरूप व्यापार है। जब समय पाकर जीव पूर्णताको प्राप्त हो जाता है तब वे उसपर दया करके उसे भव-बन्धन-से मुक्त कर देते हैं। यही उनका अनुग्रहरूप कार्य है। रुद्ररूप होते हुए भी वे हमारे परम सुहृद् एवं करुणामय हैं। उनकी संहार (प्रलय) लीला भी दयासे पूर्ण होती है, क्योंकि उसका उद्देश्य भवाटवीमें भ्रमण करनेसे परिश्रान्त हुए जीवोंको विश्राम देना है। वे रुद्र इसीलिये कहलाते हैं कि वे दुःखको दूर भगा देते हैं। (रुद् दुःखं द्राव-यतीति)

शक्तिके बिना शिव अकिञ्चित्कर हैं। शक्तिके अभावमें उनके साथ सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, कारुणिक इत्यादि किसी भी विशेषणका प्रयोग नहीं हो सकता। शक्तिमान्‌के बिना शक्ति नहीं रह सकती और शक्तिसे वियुक्त शक्तिमान् नहीं

ठहर सकता। असीम और ससीमके बीचमें शक्ति मानो एक मध्यस्थ है। इसप्रकारकी चित्शक्तिके माननेसे ही, जो भगवान्से अभिन्न होनेपर भी भिन्न है, एक और अनेक तथा ब्रह्मकी सोपाधिक तथा निरुपाधिकताके प्रश्न सुगमताके साथ हल हो जाते हैं। जीव शिवसे न तो सर्वथा अभिन्न है और न नितान्त भिन्न ही है और न उनके सम्बन्धको हम भेदाभेद-शब्दसे ही व्यक्त कर सकते हैं। किन्तु चित्शक्तिसे अभिन्न होनेके कारण वे परम्परासे शिवसे भिन्न और अभिन्न दोनों ही हैं। अधिकारी जीव वेदों एवं आगमोंका अनुशीलन करते हैं; उनके तत्त्वोंका मनन करते हैं, उनमें बतायी हुई ध्यानकी प्रक्रियाओंमेंसे किसी एक विधिका अनुसरण कर अन्तमें ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेते हैं। परम तत्त्व अर्थात् शिवका साक्षात्कार हो जानेपर वे चाहे स्थूल जगत्को देखते रहें किन्तु वह उन्हें फिर जगत्रूपमें नहीं भासता। वे आनन्दार्णवमें निमग्न हो जाते हैं और उनकी दृष्टिमें सारा दृश्य प्रपञ्च आनन्दरूप, शिवरूप हो जाता है। जीव स्वरूपसे अणु होनेपर भी (यहाँ यह आश्चर्यकी-सी बात है कि श्रीकण्ठने पाञ्चरात्र तथा विशिष्टाद्वैत सम्प्रदायके वैष्णवोंका सिद्धान्त ग्रहण किया है) मुक्त हो जानेके पश्चात् विभु हो जाता है, स्वयं आनन्दाम्बुधि बन जाता है। वह फिर बद्ध जीव नहीं रहता, वह दोषसे सर्वथा निर्मुक्त हो जाता है। वह अपने ही पूर्ण स्वरूपमें प्रकट हो जाता है। वह स्वयंज्योति एवं सकल शुभ गुणोंका आकर बन जाता है। वह सर्वज्ञता, तृप्ति, स्वतन्त्रता, अनादि-बोध, अलुप्त शक्ति इत्यादि शिवजीके आठ गुणोंको प्राप्त कर लेता है। उसके लिये तो भगवान् भी नियन्ता नहीं रह जाते, क्योंकि वह विधि-निषेधकी सीमाको लाँघ जाता है। किन्तु उसकी शिवके साथ समानता केवल आनन्दोपभोगको तथा उसके लिये जिन-जिन वस्तुओंकी आवश्यकता है उनको उत्पन्न करनेकी शक्तिको, लेकर है। विश्व-ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, रक्षा इत्यादि कार्य तो स्वयं शिवके ही हैं।

यद्यपि अन्तिम अवस्थामें भी शिव और मुक्त जीवमें इतना अन्तर रह ही जाता है, फिर भी मुक्तिका साधन तो शिवके साथ पूर्ण अभेदकी भावना ही मानी गयी है। साधक यही कहता है कि 'मैं तू ही हूँ', 'तू मैं ही है।' वह यह नहीं कहता कि मैं तेरा स्वरूप अथवा अंश अथवा अङ्ग या किङ्कर हूँ। यद्यपि श्रीकण्ठने कहीं-कहीं अद्वैतका स्पष्टरूपसे खण्डन किया है फिर भी उन्होंने इतने अंशमें तो पूर्ण अभेदको स्वीकार किया ही है, जिसका आगे चलकर बिना किसी बाधाके अद्वैत-वेदान्तमें पर्यवसान हो सकता है। एक स्थानपर निरवयव अर्थात् निरुपाधि ब्रह्मके उपासकोंका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि निम्नश्रेणीके साधकोंकी भाँति ये लोग अर्चिमार्गसे गमन नहीं करते। अप्पय्य दीक्षितने अपने शिवाद्वैतनिर्णय नामक ग्रन्थमें उपर्युक्त तथा इसप्रकारके अन्य वचनोंको लेकर यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि श्रीकण्ठ हृदयसे अद्वैतको माननेवाले थे। और जहाँ उन्होंने परम तत्त्वका सगुणरूपसे वर्णन किया है और चराचर जगत्को उनका शरीर बतलाया है वहाँ उन्होंने केवल मन्द अधिकारियोंके हितको दृष्टिमें रखकर ऐसा किया है।

श्रीकण्ठके ग्रन्थमें जो साम्प्रदायिक कट्टरताका अभाव दृष्टिगोचर होता है उसपर भी अप्पय्यने विशेष ध्यान दिलाया है और उससे अपने सिद्धान्तकी पुष्टि की है। जबतक मनुष्य किसी एक देवताकी उपासना करता है और उसका एक विशिष्ट स्वरूप मानता है तबतक उसकी एक स्वरूपके प्रति अन्य स्वरूपोंकी अपेक्षा अधिक श्रद्धा होना अनिवार्य है। यहाँतक कि जब वह आगे बढ़कर सात्त्विक, राजस एवं तामस इन तीनों रूपोंसे अतीत ईश्वरकी कल्पना करता है तब भी वह उन्हें उसी नामसे पुकारता है जिस नामसे वह गुणात्मक स्वरूपको पुकारता है। उदाहरणतः भगवान् विष्णुका स्वरूप शुद्ध सात्त्विक माना जाता है, ब्रह्माका स्वरूप शुद्ध राजस और रुद्रका स्वरूप शुद्ध तामस माना जाता है। ईश्वरको त्रिगुणातीत एवं त्रिमूर्त्तिसे परे माननेवाला उन्हें विष्णुरूप ही मानता है। यही बात शिव-भक्तोंके सम्बन्धमें पायी जाती है। त्रिमूर्त्तिसे परे जो सगुण ब्रह्म है उसे भी वे रुद्र ही कहते हैं। त्रिदेवोंमेंसे तमःप्रधान देवताको वे उससे भिन्न मानते हैं और संहाररुद्र कहते हैं। किसी भी आस्तिक सिद्धान्तमें साम्प्रदायिकताकी इतनी मात्रा अनिवार्यरूपसे रहती है। किन्तु साम्प्रदायिक कट्टरताकी यहीं समाप्ति नहीं हो जाती। उसकी मात्रा आगे चलकर इतनी बढ़ जाती है कि फिर इतर सम्प्रदायोंके सिद्धान्तोंकी निन्दा होने लगती है और हँसी उड़ायी जाती है। वैष्णवलोग शिवको भिखमंगा तथा साँपोंको उनका भूषण और श्मशानको उनका लीला-निकेतन कहकर उनकी दिल्लगी करते हैं। इधर शिवोपासक विष्णुके सम्बन्धमें यह कहकर उनका उपहास करते हैं कि उन्हें विवश होकर

संसारमें बार-बार जन्म लेना पड़ता है और उनमें एवं जीवमें कोई अन्तर नहीं है। शैव वैष्णव-आगमोंकी और वैष्णव शैव-आगमोंकी अवज्ञा करते हैं। श्रीकण्ठके ग्रन्थोंमें इस-प्रकारके दूषित भाव नहीं मिलते। उनकी दृष्टिमें विष्णु शिवसे नीचे अवश्य हैं, क्योंकि शिव तो सर्वोपरि ठहरे परन्तु वे शिवसे ही नीचे हैं और किसीसे नहीं। वे चित्-शक्तिकी मूल अभिव्यक्ति हैं। वासुदेव पुरुष हैं और पुरुष एवं परमेश्वरमें कोई भेद नहीं है। 'पुरुषो वै रुद्रः।' पाञ्चरात्र आगमको श्रीकण्ठने भ्रमपूर्ण बताया है, उनकी इस मान्यताके कारण वेदान्तसूत्रमें दिये हुए हैं। किन्तु उन्होंने विष्णुकी उपासनाका निषेध नहीं किया है, क्योंकि उनकी उपासनासे मनुष्य समय पाकर ब्रह्मका साक्षात्कार कर सकता है। अप्पय्य दीक्षितने भी अन्य देवताओं तथा अन्य मतोंके प्रति सम्मानका भाव प्रदर्शित किया है। जो लोग विष्णुको जीव सिद्ध करते हैं उनकी युक्तियोंका विस्तृत-रूपसे उल्लेख करते हुए श्रीकण्ठ लिखते हैं कि हमलोग यदि इधर-उधरसे चुनी हुई युक्तियोंका आश्रय लेकर इन नास्तिकतापूर्ण सिद्धान्तोंको अङ्गीकार करें तो हमारा सिर फूट जायगा। उनके मनमें शिव, शक्ति और विष्णु ये तीन रत्न (रत्नत्रय) हैं। परमेश्वर ही एकमात्र सत् हैं और वे मायाके कारण देखनेमें दो—धर्म और धर्मी—हो जाते हैं। धर्मी निरपेक्ष निमित्त-कारण है। उनकी इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्तिका नाम धर्म है। यही शक्ति आगे चलकर स्त्री और पुरुषके रूपमें द्विविधा हो जाती है। पुरुषरूपमें वह अखिल विश्वका उपादान-कारण है और नारायण कहलाती है एवं स्त्रीरूपमें वह उस मूल कारणकी सहधर्मिणी है और अम्बिका अथवा उमा कहलाती है। केवल धर्मी ही नहीं अपितु धर्म भी ईश्वरका ही स्वरूप है। अतः विष्णुका ईश्वरत्व अक्षत है। उन (विष्णु) को प्राप्त कर लेनेपर ही उन अव्यय, आद्य, आनन्दमय पुरुषके पदकी प्राप्ति हो सकती है जो ज्योतिःस्वरूप हैं और जो देवपुत्रों एवं देव-देवों तथा पुराण पुरुषोंके द्वारा उपास्य हैं।

प्राप्यं कृत्वैव तस्य प्रपदनममृतस्याद्यमानन्दमूर्ति-
स्थानं भर्गस्य जुष्टं तदमृततनयैर्देवदेवैः पुराणैः ॥

(रत्नत्रयपरीक्षा)

भारतीय दर्शनके समन्वय-सिद्धान्तका असली स्वरूप इन शब्दोंमें वर्णित है और श्रीकण्ठीय शिवदर्शनका वास्तविक स्वरूप भी यही है।

श्रीशिव और श्रीराम-नाम

(लेखक—महामहोपाध्याय डा० श्रीगंगानाथजी झा, एम० ए०, डि० लिट्०, एल-एल० डी०)

पद्मपुराण (उत्तर खण्ड, अध्याय ७२, श्लोक ३३५) में यह कथा है—

एक दिन पार्वतीजीने महादेवजीसे पूछा—'आप हरदम क्या जपते रहते हैं?'

उत्तरमें महादेवजी विष्णुसहस्रनाम कह गये।

अन्तमें पार्वतीजीने कहा—'ये तो एक हजार नाम आपने कहे। इतना जपना तो सामान्य मनुष्यके लिये असम्भव है। कोई एक नाम कहिये जो सहस्रों नामोंके बराबर हो और उनके स्थानमें जपा जाय।'

इसपर महादेवजीने कहा—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

राम राम शुभ नाम रटि, सबखन अनँद-धाम।
सहस नामके तुल्य है, राम-नाम शुभ नाम॥

फिर इसी पुराणके उत्तर खण्ड, अध्याय २७० श्लोक ४०में शिवजी श्रीरामजीसे कहते हैं—

मुमूर्षोर्मणिकर्ण्यां तु अर्धोदकनिवासिनः।
अहं ददामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मदायकम्॥

अर्थात् मरनेके समय मणिकर्णिका-घाटपर गङ्गाजीमें जिस मनुष्यका शरीर गङ्गाजलमें पड़ा रहता है उसको मैं आपका तारक-मन्त्र देता हूँ जिससे वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

शङ्कर और शङ्करकी उपासना

(लेखक—पं० श्रीमधुसूदनजी कौल शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०)

समस्त विश्वमें क्या कोई हिन्दू-नाम-लेवा है जिसकी हृदय-वीणा अहोरात्र बजती हुई हो और वह आधुनिक हिन्दू-समाजकी दुरवस्था देखकर आठ-आठ आँसू न रोवे ? हिन्दू-समाजकी दशा दिनोंदिन एक जरद्गवकी-सी हो रही है । आज एक अङ्ग टूटता है तो कल दूसरा । सिरको पैर काटनेकी सूझती है तो पैर सिरको चकनाचूर किया चाहता है । इसका एकमात्र कारण यह है कि हिन्दू-संसारमें सच्चे आराध्य देवकी भूल-सी हो गयी है । इसे तो प्राचीन कालसे इस बातका सर्वप्रशंसनीय गर्व था कि इसके पास परमात्माके अक्षय ज्ञान-भण्डारकी कुञ्जी है । परन्तु अनेक कारणोंसे यह उस अनमोल रत्नको खो बैठा है ।

पिपीलिकासे लेकर ब्रह्मातककी यह सहज मनोभिलाषा है कि सर्वोच्च गति मुझको ही प्राप्त हो । परन्तु ज्ञानके तारतम्यसे सर्वोच्च कोटिके आदर्शका स्वरूप भिन्न-भिन्न है । इसी तत्त्वका दर्शन यत्र-तत्र वेदके मन्त्रोंद्वारा हमें मिलता है ।

नमः स्तेनेभ्यः स्तेनानां पतये च नमः ।

'जय हो चोरोंकी और जय हो चोरोंके सरदारकी ।' जहाँ चोरों और चोरोंके सरदारकी जय पुकारी है वहीं यह मन्त्र पाया जाता है—

उतैनं गोपा अदृश्रन्नुतैनमुदहार्यः । उतैनं विश्वा भूतानि ।

'इसे गुवालोंने देखा है । इसे जीवरनियोंने भाला है । इसे सम्पूर्ण चराचर जगत्ने दृष्टिगोचर किया है ।'

यह दृष्टिकी क्षुद्रता है कि जीव यत्न करता है कि भगवद्रूप रत्नकी जो झलक उसके हृदयके नेत्रके पाससे गुज़री है वह उसीके निकट डिबियामें बन्द होकर सदैव रहे । परन्तु इस चिद्रविकी छवि ऐसी है कि छिपाये छिपती नहीं । ऋषियों और महर्षियोंने, युक्तों और अभियुक्तोंने मितदृष्टिकी जवनिका फाड़ डाली है । और उच्चस्वरसे एकतान होकर इस मन्त्रका गान किया है—

यैव चिद्गगनाभोगभूषणे भाति भास्करे ।
धराविवरकोशस्थे सैव चित्कीटकोदरे ॥

जिस चिदर्कका प्रकाश अति विस्तृत नभस्तलमें जाज्वल्यमान है उसीकी चमक पृथ्वीके रन्ध्रके कोनेमें बसनेवाले कीड़ेके उदरमें है । इसी ज़र्रे-ज़र्रेमें विद्यमान पुरज़े-पुरज़ेमें चमकते हुए चिदर्कको द्रष्टाओंने शिवार्कके नामसे, 'हरि-हर्यश्व' से और 'ब्रह्मभानु' से अभिधेय और बोध्य किया है । स्थूल आकाशमें इसके रहनेकी गुंजाइश नहीं । यह तो उस अनन्त आकाशका प्रतिबिम्ब है जिस आकाशमें हमारे चिदर्क परमात्मा अथवा परम शिव अथवा नारायण अथवा परब्रह्म शयन करते हैं ।

ॐ नमः परमाकाशशायिने परमात्मने ।

जिस विश्वशरीरकी जीवनाड़ीके पास, जिस त्रैलोक्य-नगरके मूलस्तम्भके समीप पहुँचनेमें मन और बुद्धिके घोड़ोंकी दौड़ नहीं है उसका शब्दोंसे चित्रण करना समुद्रको कुम्भमें भर देना है । परन्तु यह जानते हुए भी हम अपरिमितकी ओर पहुँचनेके निमित्त परिमितकी ही शरण लेते हैं । क्योंकि हम स्वयं परिमित हैं । परिमित होनेका मूलकारण केवल अन्तस्तत्त्वकी ओरसे मुख मोड़ना और बाह्यकी ओर ही सर्वथा झुकना है । बाह्य जगत् नामरूपके वृत्तमें बँधा हुआ है । अतएव हमने उस निःसीम ज्ञानराशिका भी नामकरण 'परम शिव', 'परम विष्णु' या 'परब्रह्म' के नामसे कर लिया है । नामोंके साथ ही रूप-रूपान्तर भी जोड़े हैं । एक शूलपाणि हैं तो दूसरे गदाधर हैं । एक उमा-रमण हैं तो दूसरे रमा-रमण । एक वृषवाहन हैं तो दूसरे गरुडयान और तीसरे हंसारूढ । परन्तु इस-प्रकारके असंख्य नाम और रूपोंद्वारा सर्वोपेय एक ही भगवान्का परामर्श किया जाता है और एक ही भगवान्की उपासना की जाती है । यह पथ प्राणिमात्रके तल्लीन होनेका पथ है । इस पथपर स्टेशन बहुत-से हैं । उन्हींमेंसे हर एकको गमन करना है । परन्तु गम्य स्थान सब यात्रियोंका एक ही है ।

इस अमरनाथ-यात्रामें वर्ण और आश्रम, जाति और पाँतिका कुछ विचार नहीं है । राजासे रङ्कतकको इस

यात्राका अधिकार है। इस अमरनाथकी गुफाका द्वार नहीं है। तालोंपर ताले नहीं लगे हैं। हाँ, एक वस्तुकी आवश्यकता है। वह क्या है? वह लगन है। लगन हो तो तुम्हारे भगवान् अमरनाथ तुम्हारे ही पास हैं, नेत्रोंके निकट हैं। अटूट लगन होनेपर अमरनाथकी गुफा हृद्गुहा ही दीखेगी, जिसमें भगवान् शङ्कर प्रतिक्षण दीपककी नाईं चमकते रहते हैं। जगद्धर भट्टने इस जगद्भासक दीपकका क्या ही मनोहर सजीव चित्र अपनी 'स्तुतिकुसुमाञ्जलि' में खींचा है।

हृद्गुहागहनगेहगूहितं भासिताखिलजगत्त्रयोदरम्।
कन्दकन्दरदरीमुखोद्गतप्राणमारुतकृतस्थिरस्थितिम्॥
व्यक्तसर्वदशमक्षयोदयं रूपवर्जितमभित्तिसंश्रयम्।
यं निरञ्जनमनक्षगोचरं दीपमद्भुतमुशन्ति तं स्तुमः॥

'हम उस अद्भुत दीपको प्रणाम करते हैं जो हृदय-गुफाके तंग कमरेमें आच्छादित रहता है, जिससे तीनों लोक प्रकाशित हैं, कन्द-स्थानके रन्ध्ररूप रन्ध्रके मुखसे निकलते हुए प्राण-वायुसे जिसकी स्थिति स्थिर है, जिसकी कोई दशा या बत्ती नहीं, जिसका बुझना-जलना नहीं, जो रूपरहित है, जो किसी स्थानका सहारा नहीं लिये है, जो मायारहित अथवा जिसका काजल नहीं, और जिसका ज्ञान इन्द्रियोंसे नहीं होता।'

इस दीपकरूपमें होनेके कारण भगवान् शङ्कर हर एक-के मूलधन हैं। वैष्णव हरि-पूजनसे, बौद्ध बुद्ध-पूजनसे, जैन जिन-पूजनसे, यहूदी जिहोवाके पूजनसे, किरिस्तानी जगत्-पिता लार्डके पूजनसे और मुसल्मान अल्लाहके पूजनसे इसीको पाते हैं। प्रत्येक मतानुयायी अपने ही शरीरके मन्दिर, चैत्य, पगोडा, चर्च अथवा मसजिदमें अपने इष्टतम भगवानको पाता है। शैवसर्वशिरोमणि पवित्र ग्रन्थोंमें इसी मानसिक पूजाके गीत गाये गये हैं।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्

'मेरी आत्मा तू है, मेरी बुद्धि पार्वती है, मेरे प्राण तेरे साथी हैं, मेरा शरीर तेरी कुटिया है।'

इस इष्टतमको पुं-रूपसे मानो तो परम शिवका ध्यान होता है, स्त्रीरूपसे मानो तो पराशक्तिका भास होता है। शक्ति और शक्तिमान्का अभिन्नभाव त्रिकाल-सिद्ध है। शक्तिकी सत्ता शक्तिमान्के बिना हो नहीं सकती, इसी प्रकार शक्तिमान्का अस्तित्व शक्तिसे रहित नहीं हो सकता। उपनिषदोंमें इस अविनाभावको यों दरसाया है—

रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रः सोम उमा तारा तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रः पुष्पमुमा गन्धस्तस्मै तस्यै नमो नमः॥
रुद्रोऽर्थः अक्षरा सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः।
रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः॥

शैवोंने इसीके आधारपर प्रत्येक पदार्थको शिव और शक्तिके समष्टिरूपसे देखा है।

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदीरिता।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः॥

'जिस-जिस पदार्थकी जो-जो वस्तु-शक्ति है वह-वह वस्तु-शक्ति देवी है और वह-वह पदार्थ शिव है।' वृक्ष शिव है तो वृक्षता शक्ति। मनुष्य शिव है तो मनुष्यता शक्ति। शिवकी अनुत्तर अवस्थाको समझानेके लिये शिवका स्वरूप यों बताया है कि वह प्रकाश-विमर्शस्वरूप है। प्रकाश शिवके शक्तिमद्-भागको स्थूल प्रक्रियामें प्रकट करता है और विमर्श शक्ति-भागको। बारम्बार इस बातको दुहराया गया है कि शक्ति और शक्तिमान्के विषयमें भाग-कल्पना केवल जिज्ञासुके जाननेके निमित्त ही है। इस प्रकाश-विमर्शके बहुत-से नामान्तर हैं जिनमें मुख्य पर्याय 'चित्' और 'आनन्द' हैं। 'अस्ति' रूपमें प्रकाश है और 'भाति' रूपमें विमर्श। अतएव आन्तरीय जगत् अथवा बाह्य जगत् अस्ति-भातिमय होनेके कारण शिव-शक्तिमय है। जिस तत्त्वकी भाग-कल्पना यों की जाती है वह तो ऐसा है—

यस्य रूपं शरीरं वा नास्ति वर्णः क्रिया तथा।
नैव वर्णो न वा शब्दो न चैवायं कलात्मकः।
केवलः परमानन्दो वीरो नित्योदितो रविः॥
नास्तमेति न चोदेति न शान्तो न विकारवान्।
सर्वभूतान्तरचरो भानुर्भर्ग इति स्मृतः॥

'जिसकी आकृति नहीं, जिसकी काया नहीं, जिसका रङ्ग नहीं और जिसकी क्रिया नहीं। न यह अक्षररूप है, न शब्दरूप है, न कलारूप। केवल परमानन्दरूप है और सदैव उदयमें ही रहता हुआ सूरज है। न इसका कभी अस्त है और न कभी उदय। न यह शान्त है और न यह विकृतिको पाता है। सभी जीवोंके अन्दर यह भर्गरूप सूर्य विद्यमान है।' स्थूल-जगत्‌के दीपक—सूर्य अथवा आन्तरीय-जगत्‌के दीपक—क्षेत्रज्ञके प्रकाशके केन्द्र भी भर्ग-नामसे अङ्कित भगवान् शङ्कर ही हैं।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

'उस सूर्यभगवान्‌के तेजका हम ध्यान करते हैं।'

भगवान् शङ्करकी क्रीड़ा प्रतिक्षण होती रहती है। यही क्रीड़ा पाँच कृत्यों अथवा क्रियाओंमें विभाजित की गयी है—सृष्टि, स्थिति, संहार, लय और अनुग्रह। चिद्रूपका सम्बन्ध अनुग्रहसे है, आनन्दरूपका लयसे और इच्छारूप, ज्ञानरूप और क्रियारूपका सम्बन्ध सृष्टि, स्थिति और संहारसे है। इन्हीं पाँच रूपोंके कारण भगवान् शङ्करके पाँच नाम हैं—ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात। तुर्यातीत और तुर्य-दशाकी व्याप्ति ईशान और तत्पुरुषसे है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिकी 'सद्योजात', 'वामदेव' और 'अघोर' से है। इसी क्रमसे पाँच महाभूतोंकी व्याप्ति इनसे कही गयी है। सद्योजात ब्रह्मदेव हैं, वामदेव विष्णुदेव हैं और अघोर रुद्रदेव हैं।

एकरूपताके कारण इन पाँचों कारणोंको 'पञ्चब्रह्म' कहते हैं। इन्हें पाँच प्रेतोंके नामसे भी पुकारते हैं, इन पाँच प्रेतोंके आसनपर पराशक्ति सदैव स्थित रहती है। प्रेतताका रहस्य यह है कि शक्तिके बिना शक्तिमान्‌की अवस्था मृतकी-सी होती है, इसका सूचन 'शिव' और 'शव' दो शब्दोंके रूपसे स्पष्ट पाया जाता है। इ-स्वरके होनेसे शिव शिव हैं और इसके न होनेसे शव। इ-स्वर इच्छा-शक्ति अथवा सामान्य शक्तिका बोधन करता है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

'शिव यदि शक्तिके सहित हो तो करने न करने अथवा अन्यथा करनेको समर्थ हो सकता है। अन्यथा वह चेष्टातक नहीं कर सकेगा।'

कवियोंके शिखामणि महाकवि बाणभट्टने त्रिगुणरूप त्रिमूर्तिमें सर्वानुस्यूत भगवान् शंकरकी ही स्तुति की है।

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये
स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः॥

'उन्हीं जन्मरहित, सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले, त्रिमूर्तिरूप, त्रिगुणात्मा भगवान् शङ्करको नमस्कार हो जिनमें जगत्‌की सृष्टिके समय रजोगुणकी मात्रा अधिक होती है, पालनके समय सत्त्वगुणकी और संहारके समय तमोगुणकी।' भगवान् प्रमथनाथके एक गण पुष्पदन्तने इसी तानको अलापा है—

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः॥
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः॥

'जगत्‌की उत्पत्तिमें रजोगुणप्रधान भगवान् भवदेवको प्रणाम हो। जगत्‌के सुखके निमित्त सत्त्वगुणप्रधान भगवान् मृडको प्रणाम हो, उसके संहारमें तमोगुणप्रधान भगवान् हरको प्रणाम हो। इन तीन गुणोंसे अतीत महाप्रकाश-स्थान-पर स्थित भगवान् शिवको प्रणाम हो।'

भगवान् शङ्करकी प्राप्तिके दो ही द्वार हैं—एकका नाम मूर्तोपासना है, दूसरेका नाम अमूर्तोपासना। अमूर्तोपासना मूर्तिमान् मनुष्यके लिये अत्यन्त कठिन है। अतएव भगवान् शङ्करके मूर्ति-अष्टककी पूजा यत्र तत्र वर्णित है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा और यजमान—यह आठ मूर्त्तियाँ हैं। भूमिरूप परमेश्वरका आवाहन शर्व-नामसे होता है, जलरूपका भव-नामसे, अग्निरूपका रुद्र-नामसे, वायुरूपका उग्र-नामसे, आकाशरूपका भीम-नामसे, सूर्यरूपका ईशान-नामसे, सोमरूपका महादेव-नामसे और यजमानरूपका पशुपति-नामसे होता है। परम शिवके तीन व्यूह हैं और इकतीस प्रकार हैं। तीन व्यूहोंके नाम शिव, सदाशिव और महेश्वर हैं। शिवको एकरूप माना है, सदाशिवको पञ्चरूप माना है और महेश्वर पञ्चविंशतिरूप हैं।

शिवमेकं विजानीयात्सादाख्यं पञ्चधा भवेत्।
महेशस्तु समासेन पञ्चविंशतिभेदकः॥

ज्ञानी पुरुष चिद्‌देवकी पूजा अपने हृदयमें ही करता है,

अग्नौ तिष्ठति विप्राणां हृदि देवो मनीषिणाम् ।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनाम् ॥

'ब्राह्मणलोगोंका देवता अग्निमें रहता है । बुद्धिमानोंका हृदयमें, अल्पबुद्धियोंका प्रतिमाओंमें और आत्मज्ञानियोंका हर जगह ।'

शिवके पानेके मार्गपर पहले-पहल पग रखनेवालेको साकार शङ्करकी पूजाका अवलम्बन करनेमें ही श्रेय और प्रेय है । क्योंकि साकार मूर्ति भी भगवान् शङ्करका एक लिङ्ग है, एक चिह्न है, एक Symbol है । शङ्करकी मूर्तिकी जटाएँ सागर और समुद्रमय भगवान्का बोधन कराती हैं । इनके सिरपर एक गङ्गा क्या तीन गङ्गाएँ हैं । यहीं त्रिवेणी-सङ्गम है, क्योंकि यही स्थान तीन नाड़ियोंका बिन्दुस्थान है । इडा यमुना है, पिङ्गला गङ्गा है और सुषुम्णा सरस्वती है—

गङ्गा तु पिङ्गला नाडी यमुनेडा प्रकीर्तिता ।
सरस्वती सुषुम्णोक्ता···························॥

षोडशी कला जो भगवान्के किरीटपर विराजती है परमामृतरूप है, उसीसे जगत्का आप्यायन होता है । भगवान्के तीन नेत्र हैं जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि तथा मान-मेय-मातृरूप हैं । निरावरण होनेके कारण भगवान्को दिगम्बर कहते हैं । इनके करकमलका त्रिशूल तीन शक्तियाँ हैं—इच्छा, ज्ञान और क्रिया । शुद्ध सत्त्वगुणको प्रवृत्तिमें लानेवाली यही तीन शक्तियाँ भगवान्का 'खट्वाङ्ग' है ।

इच्छाज्ञानक्रियारूपास्त्रिशूलं शक्तयो मताः ।
उक्तास्ता एव खट्वाङ्गं शुद्धसत्त्वप्रवर्तिकाः ॥

जिस वृषभपर भगवान् सवार होते हैं वह स्फटिकके समान निर्मल धर्म है—

शुद्धस्फटिकसङ्काशो धर्मरूपो वृषः स्मृतः ।

भगवान्का भिक्षाटन करण-ईश्वरियोंद्वारा भोग्य जगत्के अमृतका अन्वेषण करना है । इनके सहचर—वेताल संकल्प-विकल्परूप हैं । श्मशान अथवा परेतभूमि इनका निवासस्थान है । श्मशान 'शमशयन' का संक्षिप्त रूप है । इसका अर्थ शान्ति-लय-स्थान है । परेतभूमिसे उस धामका अभिप्राय है, जिसमें भगवान् परेत हैं अर्थात् पराशक्तिसे जुड़े हुए हैं । इनके हाथका कपाल 'वेद्य जगत् है' जिसमेंसे भगवान् अमृतका पान करते हैं ।

तत्तदिन्द्रियमुखेन सन्ततं युष्मदर्चनरसायनासवम् ।
सर्वभावचषकेषु पूरितेष्वापिबन्नपि भवेयमुन्मदः ॥

'तुम्हारे पूजनरूप, अजर और अमर करनेवाले अमृतको सदैव उस-उस इन्द्रियके द्वारा भरे हुए समग्र पदार्थरूप पियालोंमेंसे पीता हुआ मैं उन्मत्त हो जाऊँ ।' भगवान्ने अपने नाट्यका मर्म यों बताया है—

नित्यमात्तकरणक्रमोन्मिषच्चित्रभावशतसन्निवेशिनीः ।
निष्क्रियो निजमरीचिनर्तकीर्नर्तयामि परनृत्तदेशिकः ॥

'मैं सबसे उत्तम नाट्यका आचार्य निष्क्रिय होकर अपनी करणेश्वरीरूपी नटियोंको नचाता हूँ, जो इन्द्रिय-देवियाँ सदैव अपने वृत्तिक्रमके प्रत्याहरणसे उदय होनेवाले अद्भुत और भिन्न-भिन्न प्रकारके भावोंके सन्निवेशवाली हैं । जिस चिताभूतिसे भगवान्की काया नित्यप्रति लिप्त रहती है वह भस्म नहीं है, वह सर्व-संक्षयरूप परचैतन्य है । पर-संवित्की दृष्टिसे पाँचों ही महाभूत भस्म हैं । इसका प्रतिपादन निम्नलिखित मन्त्रसे स्पष्ट होता है—

अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म ।

भगवान्का जप जिस मालासे किया जाता है उसके सौ दाने हैं । वर्णमातृकाके एक-एक अक्षरके दो-दो दाने प्रतिनिधि हैं । वर्णोंकी संख्या पचास है और एक-एक अक्षर शक्ति और शक्तिमत्‌रूपसे दो प्रकारका है । जपमालाको अक्षमालाके नामसे पुकारनेका कारण यह है कि वर्णमालाका प्रथम वर्ण अकार है और अन्त्य वर्ण क्षकार । भगवान्के भूषण नाग हैं—यह विषयरूप हैं । इनका इसप्रकार उपयोग करना इस बातका सूचक है कि संसारी पुरुष जिन विषयोंसे डरता है उन्हींसे भगवान्का विश्व-शरीर भूषित है ।

भगवान् शङ्करके प्रेमियोंकी दृष्टिमें छूत-अछूतका प्रश्न सर्वथा मिथ्या है ।

वह प्रति प्रातःकाल यह प्रार्थना करते हैं—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

यह महर्षि भगवान् रुद्र हमारे अन्दर शुभ मतिको उत्पन्न करें जो देवताओंकी महिमा और उत्पत्तिके स्थान हैं, जो जगत्से उत्तीर्ण हैं और जिन्होंने सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्माको उत्पन्न किया । क्योंकि उन प्रेमियोंके जीवनसर्वस्व भगवान् शङ्कर इस रूपके हैं—

यस्मिन् सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वतश्च यः ।
यश्च सर्वमयो नित्यं··························॥

शिव-पार्वतीकी पूजाकी लोकप्रियता

(लेखक—रायबहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए० 'भूप')

यों तो ब्राह्मण अपनेको 'स्वभावतः' शैव बतलाते हैं परन्तु हिन्दुओंमें अनेक देवताओंकी उपासना होते हुए भी शिव-गौरीकी उपासना अत्यन्त लोकप्रिय है और एक अङ्गरेज विद्वान्के इस वाक्यको चरितार्थ करती है कि 'हमको वैकुण्ठके ईश्वरकी आवश्यकता नहीं है, हमको ऐसा ईश्वर चाहिये जो हमारे बीचमें पृथिवीपर रहे।'* कालिदासने कुमारसम्भव काव्यमें लिखा है—

> प्रयुक्तपाणिग्रहणं यदन्यद्
> वधूवरं पुष्यति कान्तिमग्र्याम् ।
> सान्निध्ययोगादनयोस्तदानीं
> किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य ॥

> पानिग्रहन छिन यहि संसारा। बर-दुलहिनि-छबि रुहत अपारा ॥
> धरे निकट जो जोरि अनूपा। केहि मुख कहै तासु छबि भूपा ॥
> (कु० स० भा० ला० सीतारामकृत)

अर्थात् 'जिस शिव-पार्वतीकी जोड़ीके पास रहनेसे संसारके वधूवरोंकी शोभा बढ़ जाती है उस जोड़ीकी शोभाका क्या कहना ?' कालिदासके समय विवाहमें शिव-पार्वतीका आह्वान होता था, अब गौरी-गणेशकी पूजा होती है।

गौरी विवाहकी देवी है और सोहागकी रक्षा करती है। हरितालिकाव्रत गौरीका व्रत है और उस व्रतका रखना प्रत्येक हिन्दू-स्त्रीका धर्म है। जिनको सुहागकी परवा नहीं है उनकी कहावत है कि 'गौरा रिसैहैं तो आपन सुहागै लेहैं कि और कुछ'। यह कहावत पुरुषोंमें भी प्रयुक्त होती है जिन्हें किसी अधिकारीसे लाभकी उपेक्षा है।

सौभाग्य ही स्त्रीका भूषण है। हमारी स्वर्गवासिनी धर्मपत्नी कहा करती थी कि विधवा स्त्रीका जीवन अकारथ है। अङ्गरेज बहुत कहा करते हैं कि हमारे यहाँ स्त्री-पुरुषके अधिकार बराबर हैं परन्तु सम्राट् एडवर्डके मरनेपर उनकी विधवा रानी महलमें भी रहने न पायी, यद्यपि उसी पेटका लड़का जार्ज सम्राट् हो गया था।

गौरीकी उपासनाकी लोकप्रियताका इससे बढ़कर और क्या कारण हो सकता है ? यह कोई न कहे कि शिव-पूजा बड़ी सुगम है। स्नान करके एक लोटा पानी शिवलिङ्गपर चढ़ा दिया, चन्दन-फूल मिला तो थोड़ी-सी और पूजा हो गयी—मुँह बजा दिया या बम्-बम् कह दिया और भोलानाथजी प्रसन्न हो गये। शिवजी बैलपर चढ़ते हैं, डमरू बजाते हैं, सिंहकी खाल और कभी-कभी नाग (हाथी) की खाल ओढ़ते और नाचते हैं, भाँग-धतूरा खाते और मस्त रहते हैं। शिवभक्तके लिये किसी बातका निषेध नहीं है। एक साल पानी न बरसा तो गाँववालोंने शिवलिङ्गको उठाकर तालमें फेंक दिया। इस रीतिसे महादेवजीको दण्ड भी दिया जाता है।

ऐसा विरला ही कुआँ या जलाशय होगा जिसके पास एक चौतरिया बनाकर दो-चार गोल पत्थर न रख दिये, और शिवजीकी स्थापना हो गयी। जो नहाता है वह एक लोटा पानी डालकर पूजासे निवृत्त हो जाता है।

गौरी शिवजीसे भी बढ़कर हमलोगोंके बीचमें आ गयीं, नीचे लिखे प्रसिद्ध पद्यमें वह साधारण स्त्रीकी भाँति अपना दुखड़ा रो रही हैं—

> **बालः कुमारः स छ मुण्डधारी**
> **उपा अहीणा हमु एक नारी ।**
> **अहर्निशं खाइ विषं भिखारी**
> **गतिर्भवित्री किल का हमारी ॥**

'लड़का है, उसके छः मुँह हैं। एक 'मुँह' को खिलाना कठिन है, छः मुँह कैसे खिलाये जायँ ? स्वामी भिखारी है सो भी दिन-रात विष खाया करता है। न जाने हमारी क्या गति होगी !'

यह जगदम्बा अन्नपूर्णा कह रही हैं, कैसा विचित्र है !

एक और गीत हमने अपने लड़कपनमें सुना था, वह भी कल्याणके पाठकोंके विचारार्थ अथवा विनोदार्थ लिखा जाता है—

> मचिया बइठि गौरा बटिया निहारैं
> कब अइहैं तपसी हमार रे ।
> बरहें बरिस जब लौटे महादेव
> कै लाये दुसरा बियाह रे ।

* We want God on earth, we do not want God in heaven.

की रे महादेव सेवामें चूकी
की घोंटनमें भाँग रे।
ना तुम गौरादेई सेवामें चूकी
ना तुम घोंटनमें भाँग रे।
होउ न उदास गौरा मनमें नाहीं
हम तो करि लाये दुसरा बियाह रे।
सोचो न गौरादेई, सवति न लाये हम
ई होइहै चेरिया तुहार रे।

इसमें शिवजी दूसरा ब्याह कर लाये हैं और गौरीको समझा रहे हैं कि हमारी दूसरी स्त्री तुम्हारी टहलनी होकर रहेगी। शिवजीने दूसरा विवाह गौरीके होते हुए कब किया, इसे डुकरियापुराणके शास्त्री ही बता सकेंगे।

शिव नीलकण्ठ

(लेखक—रूसी ऋषि श्रीनिकोलस रॉयरिक)

तपोनिष्ठ ऋषियोंकी प्यारी आवासभूमि हिमालयके एक गगनचुम्बी शिखरपर गन्धो-लाका प्राचीन मन्दिर है। उसके नीचे उपत्यकामें चन्द्र और भागा नामकी दो नदियोंका सङ्गम है। पुराणोंमें कलियुगके अन्तके प्रसङ्गमें जिन नदियोंका अभिप्राययुक्त वर्णन मिलता है, क्या ये वे ही नदियाँ तो नहीं हैं? निज मन्दिरके मध्यभागमें अवलोकितेश्वर महादेवकी एक प्राचीन कोरी हुई सुन्दर मूर्तिका शिरोभाग विराजमान है। इस प्राचीन मूर्तिके विषयमें एक बड़ा अपूर्व इतिहास है। वहाँके पुजारी बतलाते हैं कि कई बार कुछ लफङ्गोंने इस निधिको वहाँसे उड़ानेकी चेष्टा की, किन्तु प्रत्येक बार वह अलौकिक ढंगसे मन्दिरमें वापस लौट आयी। अवलोकितेश्वर भगवान् शङ्करके अत्यन्त चमत्कारी विग्रहोंमेंसे एक हैं। इस महान् क्षेत्रपालके चन्द्र-भागा-नदीके तटको छोड़कर अन्यत्र कहीं न जानेमें कोई हेतु अवश्य होगा।

इसी नदीके किनारे-किनारे यात्री लोग त्रिलोकनाथके प्रसिद्ध मन्दिरको जाते हैं। अनेकों योगी तथा साधु ब्राह्मण अपने-अपने मस्तकोंको विविध प्रकारसे तिलकोंसे मण्डितकर इस सिद्धपीठकी ओर अग्रसर होते हैं। उनमेंसे कई कूलूके प्राचीन नगरसे, कई आर्यावर्तसे, कई चम्बाके पर्वतीय प्रान्तसे, इसप्रकार भारतके दूर-दूर स्थानोंसे आते हैं। केवल भारतवर्षसे ही नहीं, अपितु लाहुल (Lahul), स्पीती (Spiti), लदाख (Ladakh) और तिब्बतसे लामा लोग त्रिशूल, घण्टा और डमरू लिये हुए इस शान्ति-निकेतनमें आते हैं। ये सारे-के-सारे यात्री भगवान् शङ्कर—अवलोकितेश्वर महादेवके मन्दिरकी ओर ही जाते हैं। उनमेंसे जो अधिक साहसी एवं उत्साही होते हैं वे उसी पर्वतके दूसरे शिखरपर स्थित भगवान् शङ्करके दूसरे प्रभावशाली विग्रह—महाकालकी ओर अपनी चित्तवृत्तिको लगाते हैं। भगवान् शङ्करके अतिरिक्त और किसके इतने विविध स्वरूपोंका वर्णन मिलता है?

उपनिषदोंमें शिवके रुद्ररूपको ईश्वर कहकर उसकी महिमा गायी गयी है और उसके सम्बन्धमें यह लिखा गया है कि वैदिक परम्परासे अभिज्ञ प्रत्येक आर्यको उनकी पूजा करनी चाहिये। ऋग्वेद तथा अथर्वणमें शिवके रुद्ररूपको मङ्गलमय कहा गया है, सारे वैदिकसाहित्यमें उन्हें अग्निका रूप माना गया है। पृश्निके संयोगसे उन्हींसे उनचास मरुद्गणोंकी उत्पत्ति कही गयी है। अथर्वणमें लिखा है—भव (शङ्कर) ही गगन-मण्डलके अधिपति हैं। वही भू-मण्डलके स्वामी हैं। वही विस्तृत वायु-मण्डलमें व्याप्त हैं। शिवसे ही नादका सम्बन्ध है—जिससे संसारमें उत्पन्न होनेवाले सारे पदार्थोंके नामोंकी कल्पना होती है। काम-कलाका भी—जिससे सृष्टिका प्रादुर्भाव होता है—शिवके साथ सम्बन्ध है। कार्य-कारण, योगविधि, दुःखान्त इन सबका मूल शिव ही हैं। शिव योग-प्रवर्त्तक, ज्ञान, भक्ति, मुक्तिके दाता, सत्य एवं सुन्दर तथा मृत्युञ्जय हैं। यदि हम सारे सद्गुणोंकी परिभाषा करें तो उनके द्वारा इस महान् शक्तिके विविध स्वरूपोंका ही वर्णन होगा।

त्रिमूर्तिके सिद्धान्तको माननेवाले भगवान् शङ्करको प्रायः संहारकारी कहते हैं, अग्नि भी कुछ लोगोंके लिये संहारकारिणी है, किन्तु अभिज्ञ पुरुषोंके लिये वही सर्गशक्ति है।

अग्नि और शिवके नामोंमें परस्पर इतना घनिष्ठ सम्बन्ध

है। अग्निसे हमें इसीलिये भय लगता है कि उसकी ध्वंसक शक्ति हमारे दृष्टिगोचर है, किन्तु उसकी रचनाशक्ति स्थूलरूपसे बुद्धिगम्य नहीं है। लोगोंको यह बात विशेषरूपसे युक्तिपूर्वक समझानेकी आवश्यकता है कि उनकी प्रकृतिके अनुसार अग्नि ही उनकी एकमात्र गति है। क्या कोई सद्वैद्य रोगीसे घृणा कर सकता है? अथवा जिस सिपाहीका दिल मारे भयके काँपता हो क्या वह संग्राममें विजय प्राप्त कर सकता है? इसप्रकार हम अपने सामने सबसे ऊँचा कर्त्तव्य रक्खेंगे और इस नीतिसे हमें अनित्य-पद्धतिका पता लगेगा। पहले तो जितने भी तत्त्व हैं, वे सब भयसे शून्य हैं। एक क्षणके लिये भयको दबा लेनेका अर्थ उसको निर्मूल कर देना नहीं है। हमें उन छोटे बालकोंका-सा व्यवहार नहीं करना चाहिये, जो आज तो साहससे भरे हुए हैं किन्तु दूसरे ही दिन एक कल्पित पदार्थके भयसे काँप उठते हैं।

हमें उन रँगरूटोंका-सा काम नहीं करना है जो आज किसी दुर्गपर विजय प्राप्त करनेको इसीलिये प्रस्तुत हैं कि कल वे सुखपूर्वक कोमल-कोमल गद्दोंपर जाकर पड़ रहेंगे। हमें भविष्यसे भयभीत नहीं होना चाहिये, क्योंकि सारे महाभूतोंमें अग्नि ही एक ऐसा तत्त्व है जो भयको सहन नहीं करता। अग्निका गुण संहार न समझकर रचना मानना चाहिये। अग्निके इन दोनों स्वरूपोंसे मानव-प्रकृतिकी असली परीक्षा हो सकेगी।

यह सत्य है कि पार्थिव नेत्रोंसे इस महान् तत्त्वकी निर्माण-शक्तिका पता लगाना कठिन है। सृष्टिके निमित्तको लेकर जो संहार होता है उसके विकास-क्रममें भी संहारसे लोगोंको भय लगता है और सृष्टिका वे लोग अनुभव ही नहीं कर सकते।

किन्तु जो अपने मनमें सृष्टिके सुन्दर भावको समझ लेता है वह इस बातको जान लेता है कि अग्निका सम्बन्ध गायत्रीसे है और इस महामन्त्रमें सारी शुभ शक्तियाँ पुञ्जीभूत हैं। मानव-हृदय, यदि वह भाव-शून्य नहीं हो गया है, केवल सौन्दर्यकी ही नहीं, अपितु उन सारे पदार्थोंकी अभिलाषा करता रहता है जो रचनात्मक विधानके अन्तर्गत हैं।

भगवान् शङ्करके सारे शक्तिशाली स्वरूपोंमेंसे हमें त्रिनेत्रके गूढ़ अर्थको—तीसरे नेत्रकी उत्पत्तिके रहस्यको—स्मरण रखना चाहिये। इसके सम्बन्धमें इतिहास यह कहता है कि वह घटना हिमालयमें हुई थी जो सारी महान्, उदात्त एवं महिमान्वित वस्तुओंकी खान है। वहाँकी निधियाँ दिव्य हैं। वह प्रदेश मनुष्यजातिका प्रारम्भिक क्रीड़ास्थल है, समुद्रमन्थन यहीं हुआ था। इसी जगह सूर्योदयसे पूर्व एक वायु सञ्चरित होकर क्षीरसागरको आन्दोलित करने लगी। तेजस्वी देवताओंने वासुकि नागकी पूँछ पकड़ ली और मन्थन प्रारम्भ हुआ। कारागारकी भग्न दीवारोंकी भाँति मेघमण्डल विशीर्ण होकर गिरने लगे। सचमुच ही तेजोमय देव आ पहुँचे। किन्तु बात क्या है? हिमराशि शोणित-वर्ण हो रही है। मेघमाला भयावना रूप धारणकर एकत्र हो रही है और अभी एक क्षण पहले जो देदीप्यमान एवं सुन्दर था वही एकदम काला हो जाता है और युद्धका रुधिर-स्राव अन्धकारसे आच्छादित हो जाता है। देवासुरोंमें संग्राम छिड़ जाता है, चारों ओर विषकी ज्वालाएँ फैल जाती हैं और ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो प्रलय होनेको है। किन्तु शिव—नीलकण्ठ—अपनी कुछ भी परवा न करके और हमारे सामने त्यागका महान् आदर्श उपस्थित-कर उस विषको चढ़ा जाते हैं जो संसारका नाश करनेको प्रस्तुत हो रहा था। यह सृष्टि हमें भगवान् शङ्करके इस महान् त्यागपूर्ण कार्यका सदा स्मरण दिलाती रहेगी कि उन्होंने किसप्रकार संसारकी रक्षाके लिये स्वयं विष-पान कर लिया और जब कभी हम उनके 'नीलकण्ठ' इस नामको सुनते हैं हमें अवश्य ही उस महान् वीरोचित कार्य-का स्मरण हो आता है जो सृष्टिके आदिमें हुआ था और जिसे सुनकर मनुष्यका हृदय अदम्य उत्साहसे भर जाता है। इस सुन्दर घटनाका सुन्दर हिमालयके साथ कोई-न-कोई सम्बन्ध अवश्य होना चाहिये, क्योंकि सबसे ऊँची एवं सर्वोत्कृष्ट वस्तुओंका परस्पर चुम्बक और लोहेका-सा आकर्षण होता है। तिब्बतमें कुछ ऊँची श्रेणीके लामा-लोग इन बातोंको जानते हैं कि सारे भेदोंके ऊपर एक महती एकता है जो कुछ इने-गिने लोगोंको ही उपलब्ध होती है। लामालोग समष्टि-शरीरको धर्मकायके रूपमें मानते हैं। महान् आत्माओंके सबसे ऊँचे सम्बन्धको पहाड़ी भाषामें 'दोर्जेपुण्डक' (Dorjepundak) कहते हैं। वास्तवमें प्रत्येक महान् सत्य सिद्धान्त अन्तःकरणको एकता-की ओर, वीरतापूर्ण कार्योंके प्रति, सौजन्यके प्रति एवं आध्यात्मिकताकी ओर उन्मुख कर देता है। यदि किसी विवादके कारण मतभेद अथवा संघर्ष हो जाता है, तो उससे

यही समझना चाहिये कि उस सिद्धान्तपर उचित रीतिसे तथा मौलिक दृष्टिसे विचार नहीं किया गया। महानाद—सबका समन्वय करनेवाली ओंकार-ध्वनि—प्रकृतिकी उस अमोघ शक्तिशालिनी तन्त्रीको हिला देती है, जो वेदों, 'वाव' को तथा अन्य सभी उपकारी ग्रन्थोंको ज्ञात थी। कलियुगके अन्तके अन्धकारपूर्ण कालमें भी मनुष्य यदि किसी महान् आदर्शका अवलम्बनकर सौन्दर्य, आनन्द एवं एकताको प्राप्त हो सके तो यह एक महान् गौरवकी बात है। वह सचमुच धन्य है जो इस स्वार्थपरायणताके युगमें ऊँची-ऊँची भावनाओंकी ओर अग्रसर होकर आत्मोत्सर्गके सुन्दर कार्योंसे शक्तिका अर्जन करता है। वह भी धन्य है, जो आत्माके इसप्रकारके विकासको उत्तेजना देता है। इस बातका पता लगानेके लिये कि कहाँपर माया है, और कहाँ आत्माके नित्य दिव्य मुक्ताफल हैं, राष्ट्रोंको अपनी निधियोंका ज्ञान होना आवश्यक है। संसारकी रक्षाके लिये ही भगवान् शङ्करने विषका पान किया था। शिवके तेजोमय निकेतनमें अमरनाथकी कन्दरामें स्वामी विवेकानन्दको एक महान् ज्योति प्राप्त हुई थी। शैव महात्मा शिवके प्रति अपनी श्रद्धा एवं उनकी आदर्श कृपा, प्रेम एवं आनन्दके गीत मस्त होकर गाते थे। उपमति नामक एक शैव महात्माने अपने 'तिरुल-अरुल-पायान' (अर्थात् ईश-कृपाका फल) ग्रन्थके निम्नलिखित ओजस्वी वाक्यमें भगवान् शङ्करकी दयासे मुक्ति मिलनेका तथा अनन्तताके दिव्य प्रकाशका वर्णन किया है—'भगवानका धाम वहाँ है जहाँ खोज समाप्त होती है।'

शिवके अठारह नाम

(लेखक—श्रीप्रेमी महाशय)

गवान् शंकरके बहुत नाम हैं। उनमें एक भी निरर्थक नहीं, सब सार्थक हैं। प्रत्येक नाममें नामके गुण, प्रयोजन और तथ्य भरे हैं। यदि उसका अर्थ सोचा जाय, या उसके प्रचार होनेका मूल देखा जाय तो अधिकांश नामोंसे भ्रम-निवृत्ति, मोह-नाश और सौभाग्य-लाभादि हो सकते हैं। भक्तोंके हित-साधनार्थ यहाँ शिवके अठारह नामोंका उल्लेख किया जाता है।

(१) 'शिव'—जो समस्त कल्याणोंके निधान हैं और भक्तोंके समस्त पाप और त्रितापके नाश करनेमें सदैव समर्थ हैं, उनको 'शिव' कहते हैं।

(२) 'पशुपति'—ज्ञानशून्य-अवस्थामें सभी पशु माने गये हैं (ज्ञानेन हीनाः पशुभिस्समानाः)। दूसरे जो सबको अविशेषरूपमें देखते हों, वे भी पशु कहाते हैं। अतः ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी पशु माने जा सकते हैं और शिव सबको ज्ञान देनेवाले तथा उनको अज्ञानसे बचानेवाले हैं, इसलिये वह 'पशुपति' कहाते हैं।*

(३) 'मृत्युञ्जय'—यह सुप्रसिद्ध बात है कि मृत्युको कोई जीत नहीं सकता। स्वयं ब्रह्मा भी युगान्तमें मृत्युकन्याके द्वारा ब्रह्ममें लीन होते हैं। परन्तु उनके अनेक बार लीन होनेपर शिवका एक बार निर्गुणमें लय होता है, अन्यथा अनेक बार मृत्युका ही पराजय होता है। इसीलिये वह 'मृत्युञ्जय' कहलाते हैं।

(४) 'त्रिनेत्र'—एक बार भगवान् शिव शान्तरूपसे बैठे हुए थे। उसी अवसरमें हिमाद्रितनया भगवती पार्वतीने विनोदवश होकर पीछेसे दोनों नेत्र मूँद लिये। नेत्र क्या थे, शिवरूप त्रैलोक्यके चन्द्र और सूर्य थे। ऐसे नेत्रोंके बन्द होते ही विश्वभरमें अन्धकार छा गया और संसार अकुलाने लगा। तब शिवजीके ललाटसे युगान्तकालीन अग्निस्वरूप तीसरा नेत्र प्रकट हुआ। उसके प्रकट होते ही दशों दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं, अन्धकार हट गया और हिमालय-जैसे पर्वत भी जलने लग गये। यह देखकर पार्वती घबड़ा गयी और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगी। तब शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने संसारकी परिस्थिति यथापूर्व बना दी। तभीसे वे 'चन्द्रार्काग्निविलोचन' अर्थात् 'त्रिनेत्र' कहलाने लगे।

(५) 'कृत्तिवासा'—वह होते हैं जिनके गजचर्मका वस्त्र हो। ऐसे वस्त्रवाले शिव हैं। उनको इसप्रकारका वस्त्र

* ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः।
तेषाम्पतिर्महादेवः स्मृतः पशुपतिः श्रुतौ॥
(चिन्तामणि धृत०)

रखनेकी क्या आवश्यकता हुई थी, इसकी स्कन्दपुराणमें एक कथा है। उसमें लिखा है कि जिस समय महादेव पार्वतीको रत्नेश्वरका माहात्म्य सुना रहे थे उस समय महिषासुरका पुत्र गजासुर अपने बलके मदसे उन्मत्त होकर शिवके गणोंको दुःख देता हुआ शिवके समीप चला गया। ब्रह्माके वरसे वह इस बातसे निडर था कि 'कन्दर्पके वश होनेवाले किसीसे भी मेरी मृत्यु नहीं हो सकती।' किन्तु जब वह कन्दर्पके दर्पका नाश करनेवाले भगवान् शिवके सामने गया तो उन्होंने उसके शरीरको त्रिशूलमें टाँगकर आकाशमें लटका दिया। तब उसने वहींसे शिवकी बड़ी भक्तिसे स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने वर देना चाहा। इसपर गजासुरने अति नम्र होकर प्रार्थना की, कि 'हे दिगम्बर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपाकर मेरे चर्मको धारण कीजिये और अपना 'कृत्तिवासा' नाम रखिये, जिसपर शिवजीने 'एवमस्तु' कहा और वैसा ही किया।

(६) 'पञ्चवक्त्र'—एक बार भगवान् विष्णुने किशोर-अवस्थाका अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया। उसको देखनेके लिये ब्रह्मा-जैसे चतुर्मुख तथा अनन्त-जैसे बहुमुख अनेकों देवता आये और उन्होंने एक मुखवालोंकी अपेक्षा अधिक आनन्द लाभ किया। यह देखकर एक मुखवाले शिवजीको बहुत क्षोभ हुआ। यह सोचने लगे कि यदि मेरे भी अनेक मुख और अनेक नेत्र होते तो भगवान्के इस किशोर रूपका सबसे अधिक दर्शन करता। बस, फिर क्या था; इस वासनाके उदय होते ही वह पञ्चमुख हो गये और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र बन गये। तभीसे इनको 'पञ्चवक्त्र' कहते हैं।

(७) 'शितिकण्ठ'—किसी समय बदरिकाश्रममें नर और नारायण तप कर रहे थे। उसी समय दक्षयज्ञका ध्वंस करनेके लिये शिवने त्रिशूल छोड़ा था। दैवयोगसे वह त्रिशूल यज्ञ विध्वंसकर नारायणकी छातीको भी भेद गया और शिवके पास आ गया। इससे शिव क्रोधित हुए और आकाश-मार्गसे नारायणके समीप गये, तब उन्होंने शिवका गला घोंट दिया। तभीसे यह 'शिति (नील) कण्ठ' कहलाने लगे।

(८) 'खण्डपरशु'—उसी अवसरमें नरने परशुके आकारके एक तृणखण्डको ईषिकास्त्रसे अभिमन्त्रितकर शिवपर छोड़ा था और शिवने उसका अपने महत्प्रभावसे खण्ड कर दिया था। तबसे यह 'खण्डपरशु' भी कहाते हैं।

(९) 'प्रमथाधिप'—कालिकापुराणमें लिखा है कि ३६ कोटि प्रमथगण शिवकी सदा सेवा किया करते हैं। उनमें १३ हजार तो भोगविमुख, योगी और ईर्ष्यादिसे रहित हैं। शेष कामुक तथा क्रीड़ा-विषयमें शिवकी सहायता करते हैं। उनके द्वारा प्रकटमें किसीका कुछ अनिष्ट न होनेपर भी उनकी विकटतासे लोग भयकम्पित रहते हैं।

(१०) 'गङ्गाधर'—संसारके हित और सगर-पुत्रोंके उपकारके लिये भगीरथने त्रिभुवनव्यापिनी गङ्गाका आवाहन किया, तब यह सन्देह हुआ कि आकाशसे अकस्मात् पृथिवीपर प्रपात होनेसे अनेक अनिष्ट हो सकते हैं। अतः भगीरथकी प्रार्थनासे गौरीशङ्करने उसे अपने जटामण्डलमें धारण कर लिया। इसीसे इनको 'गङ्गाधर' कहते हैं।

(११) 'महेश्वर'—जो वेदोंके आदिमें ओंकाररूपसे माने गये हैं और वेदान्तमें निर्गुणरूपसे स्थित रहते हैं वे महेश्वर कहाते हैं। अथवा सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधान होनेसे भी 'महेश्वर' नामसे विख्यात हैं।

(१२) 'रुद्र'—दुःख और उसके समस्त कारणोंके नाश करनेसे तथा संहारादिमें क्रूर रूप धारण करनेसे शिवको 'रुद्र' कहते हैं।

(१३) 'विष्णु'—पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश इन पाँच महाभूतोंमें तथा जड-चैतन्यादि सम्पूर्ण सृष्टिमें जो सदैव व्याप्त रहते हैं उन्हींको विष्णु कहते हैं। यह गुण भगवान् शिवमें सर्वदा विद्यमान रहता है। अतः शिवको 'विष्णु' कहते हैं।

(१४) 'पितामह'—अर्यमा आदि पितरोंके तथा इन्द्रादि देवोंके पिता होने और ब्रह्माके भी पूज्य होनेसे शिवजी 'पितामह' नामसे विख्यात हैं।

(१५) 'संसारवैद्य'—जिसप्रकार निदान और चिकित्साके जाननेवाले सद्वैद्य उत्तम प्रकारकी महौषधियों और अनुभूत प्रयोगोंसे संसारियोंके समस्त शारीरिक रोगोंको दूर करते हैं उसी प्रकार शिव अपनी स्वाभाविक दयालुतासे संसारियोंको भवरोगसे छुड़ाते हैं। अन्य वेदादि शास्त्रोंमें यह भी सिद्ध किया गया है कि भगवान् शिव अनेकों प्रकारकी अद्भुत, अलौकिक और चमत्कृत ओषधियोंके ज्ञाता हैं। उनके पाससे अनेकों प्रकारकी महौषधियाँ

प्राप्त हो सकती हैं। और वे मनुष्योंके सिवा पशु, पक्षी और कीट-पतङ्गादि ही नहीं, स्थावरजङ्गमात्मक सम्पूर्ण सृष्टिके प्राणिमात्रकी प्रत्येक व्याधिके ज्ञाता और उसके दूर करनेवाले भी हैं। इसीलिये वे 'संसारवैद्य' सिद्ध हुए हैं।

(१६) 'सर्वज्ञ'—तीनों लोक और तीनों कालकी सम्पूर्ण बातों (जिनको अन्य लोग नहीं जान सकते) सदाशिव अनायास ही जान लेते हैं। इसीसे उनको 'सर्वज्ञ' कहते हैं।

(१७) 'परमात्मा'—उपर्युक्त सम्पूर्ण गुणोंसे संयुक्त होने और समस्त जीवोंके आत्मा होनेसे श्रीशिव 'परमात्मा' कहाते हैं।

(१८) 'कपाली'—ब्रह्माके मस्तकको काटकर उसके कपालको कई दिनोंतक करमें धारण करनेसे आप 'कपाली' कहे जाते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिसे ऐसे नामोंका तथा उनके तथ्य और कथाओंका कुछ और ही प्रयोजन है। सम्भवतः यह अन्य किसी लेखमें विदित हो। इसप्रकारके विश्वव्यापी, विश्व-रक्षक और विश्वेश्वर महादेवका प्राणिमात्रको स्मरण करना चाहिये।

श्रीवल्लभाचार्यके हृदयमें श्रीशिवका स्थान

(लेखक—देवर्षि पं० श्रीरमानाथजी शास्त्री)

ष्टि-सम्प्रदायको प्रकाशमें लानेवाले, अतएव पुष्टिमार्गके आचार्य श्रीवल्लभाचार्य हैं। लोकाज्ञातहितकर वैदिक कार्यको प्रकाशमें लानेवाले महापुरुष आचार्य कहलाते हैं। श्रीवल्लभाचार्यजीके ग्रन्थ दो तरहके हैं, परोक्षपरतन्त्र और प्रत्यक्षपरतन्त्र। सुबोधिनी, अणुभाष्य, पुरुषोत्तमसहस्रनामादि ग्रन्थ प्रत्यक्षपरतन्त्र ग्रन्थ हैं और तत्त्वदीप, षोडश-ग्रन्थ प्रभृति परोक्षपरतन्त्र ग्रन्थ हैं। दोनोंमें उन्होंने कहीं भी श्रीशंकरकी निन्दा नहीं की है। प्रत्युत अपने परोक्षपरतन्त्र ग्रन्थोंमें श्रीशिवको सर्वोत्तम मान दिया है।

षोडश ग्रन्थोंमें सर्वप्रथम 'तत्त्वग्रन्थ' में श्रीवल्लभाचार्य कहते हैं—

> वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ।
> ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ॥
> निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता।
> भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि॥
> भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः।
> अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि।
> ... ... द्वितीयार्थे महान्श्रमः॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन देवता निर्गुण हैं; क्योंकि निर्गुण श्रीपुरुषोत्तम परब्रह्म ही प्रकृतिके तीन गुणोंको अधिष्ठेयत्वेन (नियममें रखनेकी इच्छासे) ग्रहणकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप हो गये हैं। अथर्वशिखा, श्वेताश्वतरीय एवं कैवल्य आदि उपनिषदोंमें शिवका और महानारायणादि उपनिषदोंमें विष्णुका परब्रह्मरूपसे वर्णन भी है ही। इसीलिये शिवशास्त्रोंमें श्रीशङ्करको और विष्णुशास्त्रोंमें श्रीविष्णुको निर्दोष और पूर्णकल्याणगुण कहा गया है। श्रीशिव और विष्णु दोनों भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। तथापि दोनोंने दो कार्य पृथक्-पृथक् ले रक्खे हैं। इसलिये दोनों ही दोनों पुरुषार्थोंका दान नियतरूपसे नहीं करते। श्रीशिव सर्वदा मोक्षका भोग करते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

> हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः
> स्वात्मारतस्याविदुषः समीहितम्।
> यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः
> श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम्॥
> आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य जीवलोकस्य राधसे।
> शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान् भवः॥

लोकमें यह बात सिद्ध है कि स्वामी स्वयं जिस पदार्थका उपभोग करता है उसे अन्य किसीको नहीं देता। शिवजी मय एवं बाणसदृश अतिप्रिय पुरुषोंको मोक्ष देते भी हैं पर नियतरूपसे नहीं देते। विष्णु निर्गुण ब्रह्म रहते हुए भी सात्त्विक जगत्के नियामक हैं। इसी प्रकार श्रीशिवजी भी

निर्गुण ब्रह्म होते हुए तामस जगत्के नियामक हैं। यही बात श्रीवल्लभाचार्यने अपने सिद्धान्तमुक्तावली ग्रन्थमें कही है—

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः।
देवतारूपवत् प्रोक्ताः ....॥

जगत् राजस, सात्त्विक और तामस तीन प्रकारका है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उक्त तीनों प्रकारके जगत्को नियममें रखनेके लिये निर्गुण ब्रह्म होते हुए भी उस-उस जगत्के उपास्यदेव कहे गये हैं।

ऐसी अवस्थामें श्रीशिवजी सर्वसाधारणरूपसे मोक्षका दान नहीं करते। इस बालबोधमें श्रीवल्लभाचार्यका श्रीशिवजीके विषयमें आशय देखा जाय तो यही निकलता है कि श्रीशिवजी निर्गुण परब्रह्मके अवतार हैं, स्वयं ब्रह्म हैं, निर्दोष हैं, तामस जगत्के अधिष्ठाता हैं, सृष्टिसंहारकर्ता हैं, उपास्यदेव हैं, जगत्के हितकर्ता हैं, मोक्षशास्त्रके प्रवर्त्तक हैं, मोक्ष देनेकी सामर्थ्य रखते हैं और मोक्षदाता भी हैं।

श्रीवल्लभाचार्यजीका एक पत्रावलम्बन-नामक ग्रन्थ भी है। यह ग्रन्थ आचार्यपादने उत्तरावस्थामें बनाया था, यह बात प्रसिद्ध है। इसमें भी श्रीशिवजीके विषयमें श्रीवल्लभाचार्य लिखते हैं—

स्थापितो ब्रह्मवादो हि सर्ववेदान्तगोचरः।
काशीपतिस्त्रिलोकेशो महादेवस्तु तुष्यतु॥

'यह सर्वश्रुत्युक्त ब्रह्मवाद मैंने स्थापित किया है, इससे काशीश(विश्वनाथ)त्रिभुवननाथ श्रीमहादेव मेरे ऊपर प्रसन्न हों'

यह तो बात परोक्षपरतन्त्र-ग्रन्थोंकी हुई। प्रत्यक्षपरतन्त्र-ग्रन्थोंमें सुबोधिनी श्रीभागवतकी टीका (भाष्य) है। उसमें तो शिवनिन्दाका अवसर ही कहाँ है? वहाँ तो शिवजीकी स्तुति ही मिलेगी, निन्दा नहीं। अणुभाष्यमें भी यह अवसर नहीं। पुरुषोत्तमसहस्रनाम भी श्रीमद्भागवतका ही अति संक्षेप ग्रन्थ है। उसमें शिवकी निन्दा कहाँ?

इस तरह पुष्टि-सम्प्रदायको प्रकाशमें लानेवाले मूलाचार्य श्रीवल्लभाचार्यके किसी ग्रन्थमें भी शिवनिन्दा नहीं है। जब मूलमें वस्तु ही नहीं तो वह की जाती है, यह कैसे कहा जाय? प्रत्युत पुष्टि-सम्प्रदायके मूलाचार्य श्रीवल्लभाचार्यके ग्रन्थोंसे तो यह सिद्ध होता है कि उनके हृदयमें श्रीशिवके लिये सर्वोत्तम स्थान है।

ठीक है, श्रीवल्लभाचार्यजीके ग्रन्थोंमें तो शिवनिन्दा नहीं मिलती पर कितने ही पुष्टिमार्गीय श्रीशिवका सम्मान यथावत् नहीं करते, उनकी सेवा नहीं करते, यह क्यों?

यह क्यों? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि अपनी-अपनी प्रकृति ही इसमें कारण है। और प्रकृति सत्त्वादि गुणयुक्त होती है। सत्त्व आत्माका यथार्थ प्रकाश करानेवाला है। अतएव जिसके हृदयमें सत्त्वगुणका भाग अधिक रहता है वह प्रकृति और आत्माके स्वरूपको पहचानने लगता है और आत्माकी तरफ अपने-आप खिँचता है। किसीकी भी निन्दा करना उसे नहीं सुहाता, तब शिवजीकी निन्दा तो वह करेगा ही कैसे? वस्तुके स्वरूपको अयथार्थरूपसे प्रकाशित करना ही निन्दा कहलाता है। यह धर्म तमोगुणका है—'गुरु वरणकमेव तमः।' अतएव जिनकी प्रकृतिमें तमोगुण होता है वे ही किसीकी निन्दा करना पसन्द करते हैं और वे ही शिवजीकी निन्दा भी करते होंगे। प्रकृतिका ठेका सम्प्रदाय किंवा आचार्यने नहीं लिया है।

अच्छा, आपने जो शिवजीकी सेवा नहीं करनेके विषयमें कहा सो ठीक है। इसका उत्तर देना उचित प्रतीत होता है। प्रथम तो प्रकृतिके त्रिगुणात्मक होनेसे मनुष्यमात्रकी रुचि भिन्न-भिन्न होती है। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार ही मनुष्य वस्तुपरिग्रह करता है। अपनी प्रकृतिके अनुसार यदि कोई शिवजीकी सेवा न करता हो तो वह शिवद्वेष करता है या उनकी निन्दा करता है यह कहना या समझ लेना सर्वथा बेसमझी है। यदि एक वस्तुके परिग्रहमात्रसे अन्यका निन्दक किंवा द्वेष्टा गिना जाय तो फिर सारा जगत् ही द्वेष्टा और निन्दक ठहरेगा। क्योंकि सारा जगत् सारे जगत्का परिग्रह या सेवन नहीं कर सकता। इसीलिये तो परब्रह्मने अनेक अवतार धारण किये हैं जिससे कि अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सब लोग उनका भजन कर सकें।

परब्रह्मने जगत्‌रूपी कार्यके लिये प्रकृतिके सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंका करणरूपसे ही ग्रहण किया है। निरन्तर[1] तथा सर्वदाके लिये ग्रहण किया है, इसलिये वे उनकी उपाधि हो गये। अब जब कोई चारमुख, हंसवाहन

१—तथा चैते गुणाः कार्यार्थं करणत्वेन गृहीता अपि निरन्तरग्रहणादुपाधिरूपा जाताः ......। तत्रैवं निर्णयः। सेव्यः सेवकं यादृशरूपं पश्यति स्वस्यापि तादृशं रूपं सम्पादयति। साधनानि च तानि यद्यपि अपहतपाप्मानं भगवन्तमन्यथाकर्तुं न शक्नुवन्ति तथापि जीवमन्यथा कुर्वन्त्यपि। ततश्च यादृशेन रूपेण साधनेन वा नान्यथाभावस्तादृशरूपवानेवेश्वरः सेव्यः, नाशशङ्काऽभावात्। यदि पुनः सेवकस्य बुद्धिर्नोपाधिपर्यवसायिनी, तत्र यत्र क्वचित् सेवायामपि न काचिच्चिन्ता। यथा ब्रह्मविदः...।

आदिका वर्णन करता है तो अब्रह्मवेत्ता (अनात्मग्राही) लोग ब्रह्माको ही समझ लेते हैं। जब कोई साँप, बिच्छूके गहनों, भस्म-धारण, गङ्गाधर आदि वर्णन करता है तो लोग शिवको ही समझते हैं। इस तरह सब-का-सब भजन उपाधि-पर ही आकर ठहरता है, परब्रह्मपर नहीं। यदि सेवककी बुद्धि उपाधियोंका ग्रहण न कर केवल परब्रह्मका ही ग्रहण करती तब तो कोई हानिकी सम्भावना ही नहीं थी, किन्तु सो तो है नहीं। यथा-तथा प्रकृतिवाले सेवकलोग अनात्मदृष्टि होनेसे अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उपाधिमें ही आसक्त होते हैं। इसलिये जिस रूपके और जिन साधनोंद्वारा सेवन करना अच्छा लगे, उन्हींसे करना ही उचित है। उन्हींसे उसे उच्चगतिकी प्राप्ति होती है और नाशकी शङ्का भी नहीं रहती। इसलिये कोई शिवजीका और कोई विष्णुका ही भजन करता हो तो कोई दोष नहीं है।

एक दूसरी बात और है। भजन दो प्रकारसे होता है—धर्मरूपसे और भजनरूपसे। अपने पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये (स्वार्थके लिये) विधिके परवश होकर जो भजन किया जाता है वह धर्मरूपसे भजन कहा जाता है और जो सेव्यके सुखके लिये, पुरुषार्थवश नहीं, किन्तु प्रेमपरवश होकर सेवन किया जाता है वह भजनरूपसे सेवा कही जाती है। यथार्थ स्वरूपका यथार्थ ज्ञान न होनेसे और प्रेमके भी न होनेसे आजकलका भजन केवल धर्मरूपसे ही होता है इसलिये वह उपाधि-पर्यवसायी होता है। ऐसी अवस्थामें अपने प्रकृतिगुणके अनुसार स्वरूपमें उन-उन साधनोंद्वारा भजन करना ही श्रेयस्कर होता है। और भक्तिमार्गमें तो, विशेषकर पुष्टिमार्गमें, सेवाका विषय सेव्यरूप ही प्रधान रहता है, साधन और प्रयोजन दुर्बल रहते हैं। अतएव हर किसी रूपका भी सेवन करना भयावह नहीं हो सकता।

इसलिये तत्तन्मार्गमें अधिकारानुसार परब्रह्मके उन-उन स्वरूपोंकी सेवा करनेका नियम कर दिया गया है। उनके लिये उन नियमोंपर चलना ही उचित है। अतः श्रीकृष्णमार्गीय जीव यदि श्रीशिवकी सेवा न करे तो उस-पर श्रीशिवद्वेषकी आशङ्का करना बेसमझी है और श्रीशिवभक्त यदि श्रीकृष्णकी सेवा न करता हो तो उसपर श्रीकृष्ण-द्वेषका कलंक भी नहीं लग सकता।

नेदं भक्तिमार्गभजनं, किन्तु स्वपुरुषार्थसिद्धये धर्ममार्गेण। भक्तिमार्गे तु विषयस्य प्राधान्यात् प्रयोजनस्य दुर्बलत्वात् सर्वाण्येव रूपाणि भजनीयानि। (सुबोधिनी)

यह तो नित्यसेवन-पूजनकी बात हुई। नैमित्तिक सेवनकी बात दूसरी है। जो पूजन किसी निमित्तसे होता है वह नैमित्तिक पूजन कहा जाता है—जैसे तीर्थयात्राके समय महाकालका पूजन किंवा श्रीविट्ठलनाथजीका पूजन और विवाहमें गणपतिका किंवा विष्णुका पूजन। यह पूजन तो धर्म (कर्त्तव्य) रूप है, इसलिये करना ही चाहिये। जो शिव-मार्गी है उसे विष्णु-पूजन और जो विष्णुमार्गी है उसे शिवका पूजन करना ही उचित है, क्योंकि शास्त्र अनुल्लंघनीय है। तीर्थादि शास्त्र सामान्य हैं अतएव सर्वाधिकारियों-को मान्य हैं, और कर्तव्याकर्तव्यमें शास्त्र ही प्रमाण है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

कितने ही मनुष्य भाव-चोर होते हैं। ये भाव-चोर पुरुष सभी मार्गोंमें होते हैं। उनके विषयमें मेरा कोई वक्तव्य नहीं है क्योंकि 'परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्।'

एक सज्जन धनिक गणपतिका पूजन कर रहे थे। जब पूज्यदेवको वस्त्र पहनानेका समय आया तो अक्षत चढ़ाकर बोले कि 'वस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि।' तो हमने कहा कि 'महाशय! अगर आप स्नान करके गीले कपड़ेसे खड़े हों और आपका नौकर यदि एक मुट्ठी चावल आपके सिरपर डालकर कह दे कि 'वस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि' तो कहिये कैसी बने?' इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि अजी साहब, ये तो देवता हैं, इन्हें वस्त्रकी क्या अपेक्षा है? ये तो हमें देते हैं, इनके यहाँ वस्त्रकी क्या कमी है?' इसी प्रकार बहुत-से लोग कह बैठते हैं कि अजी क्या शिव और क्या विष्णु, भगवान् तो सब एक हैं। बात ठीक है, यदि उन लोगोंकी बुद्धि इस तरह सहजमें ही निर्गुण और निरुपाधिक हो चुकी है तो उत्तम है, अन्यथा उनके विषयमें हम कुछ कहना नहीं चाहते। पाठक स्वयं अपना-अपना मत निश्चय कर सकते हैं।

हम तो इतना ही जानते हैं कि सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्यगण भगवान्के अवतार होते हैं, सर्व शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ होते हैं और सात्त्विक-प्रकृति किंवा निर्गुण-प्रकृति होते हैं; इसलिये उनके हृदयमें राग-द्वेषका होना असम्भव है। वे तो सबको ब्रह्मरूप और भगवद्रूप ही देखते हैं। श्रीवल्लभाचार्यजीके हृदयमें श्रीशिवजीके लिये कितना उत्तम स्थान है यह हम उन्हींके वचनोंसे स्पष्ट दिखा चुके हैं। ईश्वरके लिये जो स्थान होना चाहिये वही स्थान शिवजी-के लिये उनके हृदयमें है।

ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एकता

(लेखक—पं० श्रीनित्यानन्दजी जोशी, साहित्यशास्त्राचार्य)

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे । त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥

तत्त्वज्ञानियोंने अपनी अगाध श्रद्धा और अन्तर्मुखी शुद्ध बुद्धिके द्वारा पिण्ड-ब्रह्माण्डमें ओतप्रोत तथा उससे भी परे स्वतन्त्र, स्वयम्भू, स्वसंवेद्य तत्त्वका अनुभव करके डंकेकी चोट कह दिया है कि वह निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापी, अनाद्यनन्त, सच्चिदानन्द, सकलैश्वर्यसम्पन्न परम तत्त्व अपनी महिमामें प्रतिष्ठित 'एकमेवाद्वितीयम्' है ।

शास्त्रोंमें उस परमात्मा भगवान्का वर्णन महर्षियोंने तीन प्रकार–सगुण-साकार, सगुण-निराकार और निर्गुण-निराकाररूपसे किया है । उनके मतसे परमात्मा सत्यसङ्कल्प, सकलकलानिधान, दयासागर, भक्तवत्सल, परम पवित्र, परम उदार, परम पूज्य है ।

वह सगुण होकर भी निर्गुण है, साकार होकर भी निराकार है, अपाणिपाद होकर भी ग्रहण और गमन करनेवाला है, 'सर्वेन्द्रियगुणाभासम्' होनेपर भी 'सर्वेन्द्रियविवर्जितम्' है, दूर है और समीप है, निर्विकल्प होकर भी सविकल्प है, 'अवाङ्मनसगोचरम्' होकर भी बुद्धिगम्य है। वह 'अणोरणीयान्महतो महीयान्' सब कुछ है । इसप्रकार परस्पर-विरोधी वर्णन करनेपर यद्यपि परमेश्वरमें अलौकिकत्व सिद्ध हो जाता है तथापि यह उसका सर्वाङ्गीण वर्णन नहीं है, क्योंकि अनित्य शब्द उस नित्यका निर्वचन नहीं कर सकता । इसीसे अन्तमें शास्त्रोंने यह कह दिया कि परमात्मा अनाद्यनन्त, निर्गुण, निरवयव, निर्विकार, 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' अनिर्वचनीय और 'नेति' 'नेति' है ।

इसप्रकार परमेश्वरका अनिर्वचनीयत्व दिखलाकर उपनिषदोंमें स्पष्ट कह दिया है कि परमात्मा मन-बुद्धिका विषय नहीं है । क्योंकि वह तो 'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा' है। मन-वचनके द्वारा उस परब्रह्मका निर्वचन नहीं हो सकता । वह पञ्चमहाभूतोंके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध— इन पाँच गुणोंसे रहित, अनादि, अनन्त और अव्यय है । वह किसी भाँति जाना नहीं जा सकता, क्योंकि 'विज्ञातारमरे केन विजानीयात् ।' केवल ज्ञानी और भक्तजन शुद्ध अन्तर्मुखी चित्तवृत्तिके द्वारा अन्तर्ज्ञान प्राप्त करके उसका 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' रूपमें अनुभव करते हैं । वह बतलानेकी वस्तु नहीं है, वह तो गूँगेका गुड़ है ।

उसी अचिन्त्य परमेश्वरकी अतर्क्य लीलासे साम्यावस्थामें स्थित त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें गुण-क्षोभ होकर सूक्ष्म-स्थूल, निरिन्द्रिय-सेन्द्रिय, तैजस-तामस, दृश्य-अदृश्य, चर-अचर, देव-दानव, पशु-पक्षी और मनुष्यादि विविधरूपसे विभिन्न सृष्टिप्रवाह उसके रजोगुणप्रधान रूपसे होता है । उस समय नानाविध शक्ति-सम्पन्न वही परब्रह्म सगुण होकर हिरण्यगर्भ या ब्रह्मदेवके नामसे प्रसिद्ध होता है । श्रुतिमें कहा है—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

इस भाँति जब सृष्टिका नानाविध प्रसार होनेपर उसका पालन या रक्षण अत्यावश्यक हो जाता है तब वही भगवान् सत्त्वगुणप्रधान विष्णुरूपसे इसका पालन करते हैं । अन्तमें प्राणिमात्रकी मङ्गलमय कामनासे परमेश्वर तमोगुणप्रधान शिवरूपमें प्रकट होकर इसका संहार करने लगते हैं । इसी अभिप्रायसे कविकुलगुरु कालिदासने भगवान्की इसप्रकार स्तुति की है—

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनुबिभ्रते ।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने ॥

अर्थात् सृष्टि, स्थिति, संहाररूप कार्य करनेसे ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपसे स्थित हे परमात्मन् ! तुझे नमस्कार है । जिसप्रकार जलती हुई लालटैनमें हम क्रमशः तीन तरहकी लाल, सफेद और काली-चिमनीको लगाकर देखें तो मालूम पड़ेगा कि चिमनीकी विभिन्नतासे प्रकाशमें कुछ भेद अवश्य प्रतीत होता है किन्तु ज्योतिकी स्वरूपावस्थितिमें कुछ भेद नहीं है । ठीक यही दृष्टान्त त्रिगुणसम्पन्न दीखनेवाले त्रिदेवोंमें है ।

एक ही परमेश्वर इस विश्वमें विविध गुणसम्पन्न होकर कहीं किसीका आविर्भाव और तिरोभाव अथवा उत्कर्षापकर्ष करके अनेक लीला करता हुआ अनेक नाम, रूपसे पुकारा जाता है, किन्तु इससे उसकी स्वरूपावस्थितिमें

तनिक भी भेद नहीं पड़ता। अर्जुनको 'रुद्राणां शङ्करश्चास्मि' या 'धाताहं विश्वतोमुखः' या 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' ऐसा केवल मौखिक उपदेश ही भगवान् श्रीकृष्णने नहीं दिया; बल्कि उसकी 'द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम' इस प्रार्थनापर विश्वरूपदर्शन कराके उसीके मुखसे—

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥

—कहलाकर उसे सन्देहमुक्त कर दिया।

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रकी भगवन्नामावलीमें भी 'सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुः' 'हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवः' या 'ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा' इत्यादि देखकर यही निर्णय किया गया है कि त्रिदेवोंमें गुणानुसार दृष्टिभेद होनेपर भी वस्तुतः एकत्व है।

किन्तु, कुछ लोग अभाग्यवश इस विषयको अच्छी तरह न समझकर ब्रह्मा, विष्णु, शिवमें भेद-भावना करके बड़ी भारी भूल करते हैं। इसी कारण भिन्न-भिन्न सम्प्रदायके लोगोंमें मनोमालिन्य एवं द्वेष दिखायी देता है। ऐसे लोगोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे साम्प्रदायिक दुराग्रहमें न पड़कर ज्ञान और उपासनाकी दृष्टिसे समन्वय करके शास्त्रावलोकन करें।

इस विवेचनसे यह स्पष्ट है कि ब्रह्मात्मैक्य आनन्दमय स्थितिका अनिर्वचनीय अनुभव होनेपर मनुष्यको 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' या 'नेह नानास्ति किञ्चन' इस अद्वैत-सिद्धान्तमें सन्देह नहीं रहता, किन्तु द्वैतीप्रदेशमें प्रवेशकर जब वह विचार करता है तो उसे प्रतीत होता है कि वही परम कारुणिक परमेश्वर असंख्य विचित्र शक्तिसम्पन्न होकर प्राणियोंके उद्धारके लिये गुणात्मक और लीलात्मक अनेक अवतारोंको धारण करता है। तब उस विचित्र नटकी 'अघटनघटनापटीयसी' मायाके चक्करमें फँसकर यदि मनुष्य भ्रमवश उसमें अनेकत्व देखे तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि बड़े-बड़े लोग भी इस चक्करसे न बच सके। दक्ष-प्रजापति-जैसे प्रजापतियोंको भी विष्णु और शिवमें भेद-भावना हो गयी थी, किन्तु भगवत्कृपासे उनका वह अज्ञानान्धकार थोड़ी ही देरमें दूर हो गया। भगवान्ने श्रीमद्भागवतमें स्वयं श्रीमुखसे उन्हें उपदेश दिया है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्॥
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति॥
यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित्।
पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः॥
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

अर्थात् मैं, ब्रह्मा और शिव त्रिगुणात्मिका मायाके सृष्टि-स्थिति-संहाररूपी कार्य करनेके कारण पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं। यथार्थमें हम एक हैं। हमारी मायाको न जानकर ही अज्ञजन भ्रमवश हममें भेददृष्टि रखते हैं। किन्तु ज्ञानी पुरुष जिस भाँति अपने शरीरावयवोंमें भेद नहीं देखते उसी तरह वे प्राणिमात्रमें आत्मभेद नहीं देखते। जिनका यह भेद-भाव छूट जाता है वे ही परम शान्तिको प्राप्त करते हैं। यही बात अक्षरशः शिवपुराणमें भी अङ्कित है। यथा—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैः निष्कलोऽयं सदा हरे॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत्॥

बहुत लोगोंकी यह भी धारणा है कि यह साम्प्रदायिक मनोमालिन्य एवं द्वेष तत्तत् पुराणोंमें तत्तत् देवकी महिमा और अन्य देवोंकी न्यूनता वर्णन करनेके कारण हो गया है। इसका उत्तर यही है कि जिसप्रकार पूर्व-मीमांसामें महर्षि जैमिनिने ब्राह्मणग्रन्थोंमें कर्मकाण्ड-विषयक विभिन्न वचनोंकी एकवाक्यता करके भेद मिटा दिया और आत्मविषयक उपनिषदोंके असामञ्जस्यकारक वचनोंका समन्वय महर्षि वेदव्यासने अपने ब्रह्मसूत्रोंमें कर दिया है, उसी प्रकार यदि कोई सब पुराणोंकी एकवाक्यता करके देखे तो अन्तमें यही निष्पन्न होगा कि उपासनाकी दृष्टिसे मनुष्यको अपने स्वभावानुसार किसी एक देवतामें अनन्यभावसे भक्ति करके ज्ञान प्राप्तकर आत्मोद्धार करना चाहिये। इसीलिये तत्तत्पुराणमें तत्तत्-देवकी महिमा विशेषरूपसे गायी गयी है क्योंकि अल्पज्ञ जन एकबारगी भगवान्की विराट्रूपसे या सर्वतोभावेन उपासना नहीं कर सकता। यदि भेद-भाव ही पुराणोंका

प्रतिपाद्य विषय होता तो महाभारतमें महर्षि व्यासदेव 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' ऐसा न कहते। और, जब तर्क, युक्ति और आत्मानुभवके द्वारा महर्षियोंने उपनिषदादि ग्रन्थोंमें भलीभाँति छानबीन करके अन्तमें एक ही तत्त्वके अस्तित्वकी सिद्धि की है तो फिर यदि व्यासदेव प्रत्येक पुराणके प्रत्येक देवको ही स्वयम्भू, अज, अनादि और स्वतन्त्र और विभिन्न मानते तो वह युक्ति, तर्क, भगवद्भक्त और योगियोंके अनुभवके प्रतिकूल होकर कल्याणजनक नहीं होता और उपनिषदादि ग्रन्थोंकी महत्ता और व्यासजीके प्रति संसारमें इतना आदरभाव भी न पाया जाता। और तो क्या, व्यासकृत ब्रह्मसूत्रका भी कभीका तिरोभाव हो गया होता। किन्तु व्यासजीने प्राणिमात्रके उपकारके लिये ही पुराणोंका निर्माण किया है, जिनमें बाहरी भेद दीखनेपर भी भीतरी उपासना और ज्ञानकी दृष्टिसे समन्वय करनेपर अपने आप एक ही तत्त्व अवशिष्ट रह जाता है। चाहे आप उसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि कुछ ही नाम दे डालिये।

उपर्युक्त श्रीमद्भागवत तथा शिवपुराणसे भी यह स्पष्ट है कि त्रिदेवोंमें गुणजन्य भेद होनेपर भी वास्तविक अभेद है। यही बात विष्णुपुराणसे भी पुष्ट होती है—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥

अर्थात् एक ही भगवान् सृजन, रक्षण और हरणरूप कार्य करनेसे ब्रह्मा-विष्णु-महेश नामको प्राप्त होते हैं। यही बात नारायणाथर्वशिर उपनिषत्में भी लिखी है—

अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत, प्रजाः सृजेयेति। नारायणाद्ब्रह्मा जायते, नारायणाद्रुद्रो जायते, नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्। निष्कलङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्।

अर्थात् नारायणकी अनिर्वचनीय लीलासे ही सब कुछ हुआ है और नारायणातिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। यही कथन स्पष्टरूपेण बृहन्नारदीय पुराणका भी है—

नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरञ्जनः।
तेनेदमखिलं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम्॥
तमादिदेवमजरं केचिदाहुः शिवाभिधम्।
केचिद्विष्णुं सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदूचिरे॥

अर्थात् घटघटवासी और समस्त विश्वमें ओतप्रोत एक ही अलौकिक शक्तिका भिन्न-भिन्न नामसे व्यपदेश किया जाता है। मार्कण्डेय पुराणका भी वचन इसी बातको प्रकारान्तरसे प्रकट करता है।

'लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता।'
'एकैव सा महाशक्तिस्तया सर्वमिदं जगत्।'
'एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे।
चक्षुष्मन्तोऽनुपश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः॥'

अर्थात् एक ही महाशक्ति आधार-भेदसे भिन्न-भिन्न शक्तिरूपमें प्रकाशित हो भिन्न-भिन्न कार्य करती है। वह अचिन्त्या होनेपर भी पुरुष और स्त्री दोनों रूपोंको धारण कर लेती है। इस तत्त्वको विरले ज्ञानचक्षुवाले भाग्यवान् ही समझ पाते हैं। भगवती श्रुतिमें तो कहीं पुरुषरूपसे 'पुरुष एवेद꣡ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्' तो कहीं 'विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्। सर्वो ह्येष रुद्रः' शिवरूपसे एक ही परमात्माका विवेचन है।

इस संक्षिप्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो गया कि ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें त्रिगुणात्मिका मायासे ही केवल माया-मोहित जीवोंको वैचित्र्य और विभिन्नता प्रतीत होती है, यथार्थमें कुछ भी भेद नहीं है। इसलिये इस विषयमें जो साम्प्रदायिक मनोमालिन्य और असहिष्णुता देखी जाती है वह कदापि शास्त्रानुमोदित नहीं कही जा सकती।

इस विषाक्त महान् अनर्थकारी साम्प्रदायिक द्वेषको समूल नष्ट करनेके लिये ही गोस्वामी तुलसीदासजीने बालकाण्डमें भगवान् शङ्करके मुखसे श्रीरामजीकी महिमा 'मुनि धीर जोगी सिद्ध सन्तत विमल मन जेहि ध्यावहीं' इत्यादिका गान कर लङ्काकाण्डमें रामेश्वरकी स्थापना करनेपर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीसे कहलवा दिया—

संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलपभरि, घोर नरकमहँ बास॥

त्रिदेवोंकी एकतापर इसी प्रकार बहुत-से प्रमाण दिये जा सकते हैं। परन्तु लेखके बढ़ जानेके भयसे यहाँ ही विश्राम किया जाता है।

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये॥

वेदोंमें रुद्रस्वरूप

(लेखक—स्वामी श्रीशङ्करानन्दजी गिरि)

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥
(ऋग्संहिता १०। १२९-१)

'उस महाप्रलयमें मायारूप कारण (असत्) न था और न सूत्रात्मारूप कार्य (सत्) था, यह अधोभागवर्ती रजतकपाल न था और न मध्यभागवर्ती अन्तरिक्ष था। उस आकाशसे परे वह प्रकाशयुक्त ऊर्ध्वकपाल जो दुर्गम और अगाध है क्या था? यह जगत् किससे ढका हुआ था, किस अवस्थामें था और किसके आधारपर था?'

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न राज्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास॥
(ऋग्संहिता १०। १२९। २)

उस समय मृत्यु और जीवन नहीं था, रात्रि-दिवसका विभाग करनेवाला सूर्य भी नहीं था। तब उस प्रलयमें क्या था? उस समय समष्टिस्वरूप सूत्रात्मा, श्वास-प्रश्वासरूप कल्प-सृष्टि और प्रलय आदि व्यवहारसे रहित, शान्त समुद्रके समान, रुत्-शब्दवाच्य ऋत्—स्वयंप्रकाशी चेतन और 'द्र' शब्दवाच्य अनन्ताकाशरूपिणी नित्यज्ञानशक्ति उमाके साथ एक अखण्ड, परिपूर्ण रुद्र अस्तित्वरूप क्रियावाला था। उस रुद्रकी अनन्त शक्तिके किसी एक भागमें माया बीज-रूपसे थी। जैसे वटवृक्षकी शक्ति अपनी उत्पत्तिके पहले वटबीजमें रहती है वैसे ही अव्यक्तशक्ति उमामें रहती है। बीजशक्ति नित्य उमासे भिन्न नहीं है, क्योंकि उमा आगन्तुक अवस्थारूप मायासे पृथक् है।

उमा नित्य ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानका रूप नहीं तो चेतन-का रूप कहाँसे होगा? इसीलिये रुद्र ज्ञानस्वरूप निराकार है और अपरिणामिनी उमाके परिचयको देनेवाली परिणामिनी बीजशक्ति है। यदि इस बीजकी सत्ता अनादि-सान्त प्रवाहसे न होती तो जगत्रूप वृक्षकी उत्पत्ति और प्रलय कैसे होता? तथा अनन्त शक्तिरूप रुद्रकी महिमाका गुणगान कौन करता? ज्ञानस्वरूपका परिचय करानेवाली यही लिङ्गरूप बीजशक्ति है। जैसे अग्निसे उसकी दाहक शक्ति पृथक् नहीं होती, वैसे ही बीजसत्तासे अपरिणामिनी शक्ति पृथक् नहीं होती।

महाप्रलयरूप समाधिमें उस रुद्रसे उत्तम और कुछ न था—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनाँस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥
(श्वेता० ३। २)

'इन ब्रह्माण्डवर्ती भुवनोंपर ब्रह्मारूपसे शासन करता हुआ और उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक शरीरके मध्यमें चेतन-रूपसे विराजमान तथा प्रलयके समय कोपमें भरकर संहार करता हुआ एक अद्वितीय रुद्र ही अपनी अनन्तशक्ति उमाके साथ स्थित है, उससे पृथक् दूसरा कुछ भी नहीं है।'

यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रि-
र्न सन्न चासच्छिव एव केवलः।
(श्वेता० ४। १८)

'जब प्रलयरूप समाधिमें दिन-रात्रि नहीं थी, कार्य-कारण नहीं था, तब सब प्रकारके आवरणसे रहित तुरीय स्वरूप एक रुद्र ही था।' जब सब प्रपञ्च अव्यक्तमें लय हो जाता है और प्राणशक्ति निर्विशेषरूपसे उमामें ओतप्रोत होती है—कार्य-कारणसे रहित शवकी तरह अनन्त शक्तिमय श्मशानमें शयन करती है, तब अनन्ताकाशात्मक श्मशान-व्यापी एक रुद्र ही अवशिष्ट रहता है; उसके समान न कोई दूसरा हुआ, न होगा।

स्वधया शम्भुः। (ऋग्वेद ३। १७। ४)
'अपनी शक्तिके सहित एक रुद्र ही है।'

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
(कैवल्य० ७)

'उमायुक्त परमेश्वर समर्थ है—अग्नि, विद्युत् और

सूर्यरूप तीन नेत्रोंवाला, नीलकण्ठ और तुरीयस्वरूप है।' विश्वरचनाके पूर्व बीजशक्ति चेतनके जितने स्वरूपमें स्फुरित होती है उसका (चेतनका) उतना ही भाग नीलकण्ठ होता है, क्योंकि अधिष्ठित मायाजलको मायिकने अधिष्ठानरूपसे पान किया था।

विषं जलम्। (ऋक्संहिता १०। ८७। १८)

जलका नाम विष है और माया, अव्यक्त शक्तिका नाम सलिल है।

नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च।
(यजु० संहिता १६। २८)

'नीलकण्ठ और श्वेत कण्ठवाले रुद्रके प्रति मेरा बारम्बार प्रणाम है।' सृष्टिके समय चेतनके एकभागरूप कण्ठमें बीजशक्ति मायाके रूपमें भासती है और प्रलयके समय यह माया बीजशक्तिके रूपमें रहती है। इसी अभिप्रायसे रुद्र नीलकण्ठ और श्वेतकण्ठ हैं।

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्।
ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमः॥
(तैत्तिरीयारण्यक० १०। १२)

उत्तमस्वरूप ऋतम् (रुद्र) ही सत्यम् (ब्रह्मा) है। रुद्रने कण्ठमें मायारूप तमको धारण किया है और वाम भागमें उमाको धारण किया है। उस परिणामरहित, त्रिपादस्वरूप, कूटस्थ, निराकार, समस्त जगत्‌के आकारमें विवर्तरूपसे व्यापक, प्रसिद्ध रुद्र पुरुषको नमस्कार है।

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो
विश्वस्य क्षयति भेषजस्य।
यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं
नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य॥
(ऋक्संहिता ५। ४२। ११)

जो रुद्र अग्निसोमात्मक सुन्दर धनुष बाणको धारण करता है, (यहाँ 'अग्नि' भोक्ता और प्रकाशरूप अमृत है और 'सोम' भोग्य तथा अप्रकाशरूप मृत्यु है। प्राणशक्तिकी ही बाह्यावस्थाका नाम मृत्यु-शक्ति और क्षर है।) इस कार्यात्मक सुन्दर बाणको अक्षररूप उत्तम धनुषमें धारण करनेवाला वह तीसरा पुरुष रुद्र है, समस्त ब्रह्माण्डके परम सुखका आधार है, उसके अतिरिक्त सब प्रपञ्च दुःखस्वरूप हैं। हे मेरे चञ्चल मन! यदि इहलोक और स्वर्गके फलके भोगकी इच्छा है तो यज्ञोंके द्वारा उसकी पूजा कर तथा गायत्री आदि मन्त्रोंसे उसकी प्रार्थना कर अथवा परम मुक्तिरूप उत्तम शान्तिके लिये अभेदभावसे निरन्तर उसका ध्यान कर। यही प्राणादि-व्यापारसे रहित तथा प्राणशक्तिका प्रेरक स्वयंप्रकाश और शुद्ध ज्ञानस्वरूप है।

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावा-
द्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः॥
(श्वेता० १। १०)

आवरणात्मक आधार—मृत्युशक्ति क्षर और प्रकाशात्मक आधेय—आभ्यन्तर प्राण ही अक्षर है। घोर और अघोरमय शरीरोंको धारण करके ब्रह्मा और जीवरूपसे समष्टि और व्यष्टि—ब्रह्माण्ड और पिण्डका शासन करनेवाला एक अद्वितीय रुद्र ही देव है। उस रुद्रका अभेद चिन्तन करनेसे स्वस्वरूप-साक्षात्कारके साथ समष्टि-व्यष्टिमायारूप उपाधि विलीन हो जाती है। जिसप्रकार स्वप्नके पदार्थ जाग्रत् अवस्थामें विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार अपरोक्ष ज्ञानमें माया अदृश्य हो जाती है।

प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम
(ऋक्सं० ७। ४१। १)

रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे (जाबालो०)

रुद्र तारनेवाले ब्रह्म हैं, ज्ञानीको देहत्याग करते समय रुद्र भगवान् ॐकार-मन्त्रका उपदेश करते हैं।

य ॐकारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म, स एको रुद्रः, स ईशानः, स भगवान् महेश्वरः, स महादेवः।
(अथर्वशिरोप० २। ४)

'जो ॐकार है वह प्रणव है, जो प्रणव है वह सर्वव्यापी है, जो सर्वव्यापी है वह अनन्त-शक्तिस्वरूप उमा है। जो उमा है वही तारकमन्त्र ब्रह्मविद्या है, जो तारक है वही सूक्ष्म ज्ञानशक्ति है, जो सूक्ष्म है वही शुद्ध है, जो शुद्ध है वही विद्युत्-अभिमानी उमा है, जो उमा है वही परमब्रह्म है, वही एक अद्वितीय रुद्र है, वही ईशान है, वही भगवान् महेश्वर है, वही महादेव है।'

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥
(श्वेता० ३ । ११)

'वह रुद्र भगवान् समस्त प्राणियोंके सिर, ग्रीवा आदि अङ्गवाले हैं और सबके हृदयमें क्षेत्रज्ञरूपसे शयन करनेवाले हैं। वह सर्वव्यापी, सब ब्रह्माण्डमें स्थित हैं,—इसी कारण वह सुखस्वरूप शिव हैं।'

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

अनन्त प्राणियोंके सिर, नेत्र, मुख, पैर आदि सब अङ्ग रुद्रके ही हैं, अर्थात् सब उसकी सत्तामें ही कल्पित हैं,—उसे सब प्राणियोंके भीतर शयन करनेसे पुरुष कहा जाता है। वह रुद्र समष्टि-व्यष्टि—ब्रह्माण्ड-पिण्डको अपनी सत्तासे घेरकर सर्वत्र सामान्यरूपसे व्यापक होता हुआ भी दशदिशाव्यापी ब्रह्माण्डके शिरोभाग—सत्यलोकमें विशेष ब्रह्मरूपसे स्थित है। यही ब्रह्म सूर्यमण्डलमें भर्गरूपसे विराजमान है और सूर्यमण्डल-अभिमानी, चेतन रुद्र—पुरुष ही दश-प्राणयुक्त व्यष्टि-शरीरमें ग्यारहवें जीवरूपसे प्रविष्ट हुआ है।

सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु । पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः । विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् । सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु !
(तैत्तिरीयारण्यक० १० । १६)

जो रुद्र उमापति हैं वही सब शरीरोंमें जीवरूपसे प्रविष्ट हैं, उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो। प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष है; वह ब्रह्मलोकमें ब्रह्मारूपसे, प्रजापतिलोकमें प्रजापतिरूपसे, सूर्यमण्डलमें वैराटरूपसे तथा देहमें जीवरूपसे स्थित हुआ है–उस महान् सच्चिदानन्दस्वरूप रुद्रको बारम्बार प्रणाम हो। समस्त चराचरात्मक जगत् जो विद्यमान है, हो गया है तथा होगा वह सब प्रपञ्च रुद्रकी सत्तासे भिन्न नहीं हो सकता, यह सब कुछ रुद्र ही है, इस रुद्रके प्रति प्रणाम हो।

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः । अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥
(सामवेदीय कौथुमीय संहिता १ । ७ । ७)

'अपने पत्नी-रूप अव्याकृतके मध्यमें पूज्य ब्रह्माको प्रकट करनेवाले, यज्ञके प्रतिपालक, ज्योतिःस्वरूप (अग्नि), व्यापक, स्वामी रुद्रकी, वज्रके समान भयङ्कर मृत्युके पूर्व अपनी रक्षाके लिये सब मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञानके द्वारा अर्चा करें।'

रोदसी रुद्रपत्नी— (ऋक्सं० १० । ९२ । ११)

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥
(श्वेता० ३ । ४)

सब प्राणियोंके पहले नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ रुद्रने ब्रह्माको प्रकट किया।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि-
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥
(ऋग्० १० । १२९ । ४)

प्रलयके पूर्व सृष्टिके जीवोंके भोगनेसे जो अवशिष्ट रहते हैं उन्हीं कर्मोंके संस्कार अपरिपक्व-दशामें प्रलयरूप और परिपक्व-दशामें उत्तर सृष्टिरूप हैं। यही कर्मसंस्कार बीजशक्ति हैं। जब अधिष्ठानमें बीजशक्तिका सृष्टि-संकल्परूपसे स्फुरण होता है तब उस संकल्पमें ज्ञानस्वरूप चेतन उस जड़ संकल्परूप क्रियाका प्रेरक, बीजी होता है। मायिक बीजीसे प्रेरित हुई क्रियारूप माया अव्याकृतके रूपमें प्रकट होती है। सब जगत्की उत्पत्तिके पहले जिस चिदाभासको महेश्वरने अव्याकृतरूप प्राणशक्तिमें स्थापन किया, वही प्रथम शरीरधारी स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा हुए। यही ब्रह्मा अव्याकृत पुरमें शयन करनेके कारण स्थूल विराट्के कारण हैं। ब्रह्माके परमकारण रुद्रको अन्तर्मुखी वृत्तिके द्वारा विचारकर ऋषियोंने अपनी बुद्धिरूप गुहामें स्वस्वरूपसे जाना।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व-
न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥
(अथर्ववेद ७ । ९२ । १)

अग्नि, वायु, विद्युत्, सूर्य आदि प्रकाशवाले समूहमें जो रुद्र पुरुषरूपसे प्रविष्ट हुआ है तथा जो जल, चन्द्रमा,

नक्षत्रादिकोंमें व्यापक है वही प्राणियोंके हृदय, कण्ठ और चक्षुमें तथा वनस्पतियोंके अन्तर्गत अन्न, घास आदिमें स्थित है। इन नामरूपात्मक समस्त चराचरको उत्पन्न करके पालन करने तथा अन्तकालमें इनका संहार करनेमें जो समर्थ है उस अद्वितीय व्यापक रुद्रके लिये नमस्कार है।

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियामाजगाम बहुशोभमाना-मुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद्यक्षमिति ।

(केन० ९ । ३ । १२)

उस इन्द्रने पूज्यस्वरूप रुद्रके अन्तर्धान होते ही उस निर्मल आकाशमें प्रकट हुई, प्राणशक्तिकी अधिष्ठातृ-देवी, असंख्य रूपोंको प्राणशक्तिरूप मायाके द्वारा धारण करनेवाली, अपरिमित शोभासे शोभायमान, हिमालयकी पुत्री और रुद्रकी अर्द्धाङ्गिनी, प्रसिद्ध जगन्माता उमासे पूछा कि वह पूज्यदेव जो अदृश्य हो गया, कौन था ?

अम्बिकापतय उमापतये नमो नमः

(तैत्तिरीयारण्यक० १० । १८)

जगन्माताके स्वामी, ज्ञानरूपिणी उमाको अर्द्धाङ्गमें धारण करनेवाले रुद्रके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार हो।

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥

(अ० वे० १० । ८ । ४३)

नवद्वारवाले स्थूलदेहके मध्य हृदय-कमल है। उसमें देहके धर्मको अभेदरूपसे अपने व्यापक स्वरूपमें माननेवाला क्षेत्रज्ञ स्थित है, यही जीव मायाके त्रिवृतरूपसे ढका हुआ है। विराट्, सूत्रात्मा, अव्याकृत यह तीन आवरण ब्रह्मके हैं और स्थूल, सूक्ष्म, कारण देह यह तीन आवरण जीवके हैं। आवरणरहित तुरीयस्वरूप जीव और प्रसिद्ध पूज्यस्वरूप रुद्रको अभेदरूपसे वेदके जाननेवाले ही जानते हैं।

ज्योतिर्हरः (निरुक्त ४ । १९)

सविता हरः (ऋग्० १० । १५८ । २)

ज्योतिःस्वरूप हर हैं। जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले रुद्र हैं।

सविता पश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् । सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥

(ऋग्० १ । ३६ । १४)

'रुद्र पीछे है, हर आगे है, सविता दक्षिण ओर है, ईशान उत्तर ओर है। सविता हमारे लिये सब सुखकी प्रेरणा करे, रुद्रदेव हमारे लिये दीर्घ आयु प्रदान करे।'

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-
रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वद-
न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋग्० १ । १६४ । ४६)

इस मन्त्रमें अग्नि-शब्द दो बार आया है, एक बार देवताके लिये और दूसरी बार रुद्रके लिये। जो एक रुद्र है उसे ही बहुत प्रकारसे मन्त्रद्रष्टा ऋषि वर्णन करते हुए इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, वायु, यम और उत्तम प्रकाशयुक्त, उदय-अस्तरूपसे गमन करनेवाले, सूर्यरूप पक्षी इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं।

अग्निं वै देवानां प्रथमं यजेत्

(तैत्ति० ब्रा० ३ । ७ । १ । ८)

सब देवताओंसे पहले अग्निकी पूजा (अर्थात् अग्निहोत्र) करनी चाहिये।

अग्निर्वै देवानां प्रथमः (ऐत० ब्रा० २० । १ । १)

अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानाम्

(ऐत० ब्रा० १ । ९ । २)

सब देवताओंका मुख प्रथम अग्नि है। अग्निमें हवन किये हुए हविको अग्निमुखसे ग्रहणकर देवता तृप्त होते हैं। जिसप्रकार हमारे मुखद्वारा खाया हुआ अन्न सब शरीरको पुष्ट करता है उसी प्रकार अग्निमें हवन किया हुआ हवि भी सब ब्रह्माण्डवर्ती देवताओंको तृप्त करता है।

मुखं देवानामग्निः । मुखत एव प्राणं दधाति ।

(कपिष्ठल कठसं० ३१ । २०)

'देवताओंका मुख अग्नि है, अग्निरूप मुखसे ही सब कोई प्राण-धारण करते हैं।'

प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि । शिवो माविशाप्रदाहाय ।

(तैत्तिरीयारण्यक० १० । ३४)

'हे हुत द्रव्य ! मैं तुझे पाँच प्राणोंमें आहुतिरूपसे हवन करता हूँ। तू शिवरूप होकर मेरी भूख-प्यासके शमनके लिये मेरे शरीरमें प्रवेश कर।'

अर्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ।

(ऋग्० १० । ११७ । ६)

'जो द्विज रुद्रस्वरूप सविताको और पापके हरनेवाले अतिथिको हवनके सहित प्राणाहुतिसे तथा भोजनसे तृप्त नहीं करता वह केवल पापी है और पापरूप भोजनका खानेवाला है।'

इसप्रकार अग्निरूपमें रुद्रकी उपासना सनातनसे द्विजातियोंमें चली आती है, वैदिक रुद्रकी उपासनाका यही एक सर्वव्यापक स्वरूप है ।

उपनिषदोंमें शिव-तत्त्व

(लेखक—पं० श्रीजौहरीलालजी शर्मा सांख्याचार्य)

आनन्दाभिलाषी जीवको संसार-सागरसे पार उतारनेके लिये शिव-तत्त्वावगमन ही सुदृढ़ पोत है । उपनिषदोंमें विशदरूपसे इस तत्त्वका विवेचन है, उसीका सारांश यहाँ दिया जाता है ।

कैवल्योपनिषद्में—

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं
शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ।
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं
विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ॥
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥
स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥

(१ । ६-९)

इसप्रकार सभी चराचर जगत् एवं अपने आपेको श्रीसदाशिवमें विराजमान जानकर विद्वान् शिवरूप हो जाता है । आत्मा (आपे)को अरणि और ॐ शिवको उत्तरारणि बनाकर इस ज्ञाननिर्मन्थन करनेके अभ्याससे बुद्धिमान्‌के सब पाप नष्ट हो जाते हैं और शिव-तत्त्वकी प्राप्ति होती है । भगवान् शिव ही निज मायाके कार्य—अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित जीवरूपसे प्रकट हैं । वही तदंश जीव शरीर धारणकर जाग्रदवस्थामें कलत्र-अन्नपान आदि नाना भोग-विलास-पदार्थोंसे तृप्त होता है, स्वप्नके कल्पित सुख-दुःखोंको भोगता एवं सुषुप्तिकालमें तमोगुणसे अभिभूत हो आनन्दका अनुभव करता है और जन्मान्तरके कर्मयोगसे बार-बार जन्मादि ग्रहणकर तीनों अवस्थाओंमें सुख-दुःख-भोगरूप क्रीडा करता है । शिव-तत्त्ववेत्ता जीव जब यह अनुभव कर लेता है कि जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति आदि प्रपञ्चको जो भगवान् प्रकाशित कर रहे हैं वह सदाशिव मैं ही हूँ, तब वह संसारके सब बन्धनोंसे छूट जाता है । अवस्थात्रयमें जो-जो भोक्ता, भोग्य, भोगपदार्थ हैं, उनसे भिन्न साक्षी चेतन मैं सदाशिव हूँ । जिसमें यह सकल प्रपञ्च उत्पन्न होता है, जिसमें प्रतिष्ठित है एवं जिसमें लय हो जाता है, वह अद्वितीय सत्-चित्-आनन्दस्वरूप शिव मैं ही हूँ । सब गुण मुझीमें विद्यमान हैं—

अणोरणीयानहमेव तद्व-
न्महानहं विश्वमहं विचित्रम् ।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो
हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ॥

इन्द्रियरहित होकर भी उनके विषयोंको भोगता हूँ, मेरी शक्ति अचिन्त्य है—

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः
पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः ।
अहं विजानामि विविक्तरूपो
न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम् ॥
वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो
न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥

न भूमिरापो न च वह्निरस्ति
न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरञ्च ।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं
गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ॥
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं
प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् ।

इसप्रकार जो पुरुष 'शतरुद्रिय' का अध्ययन करता हुआ अपनेको मायासे परे, अद्वय, शिवस्वरूप समझता है वह अग्निपूत, वायुपूत होता है और ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्ण-स्तेय, कृत्याकृत्य आदि पापोंसे छूटकर पवित्र हो जाता एवं संसारके जन्म-मरण-चक्रसे परे होकर शिव-सायुज्यको प्राप्त होता है।

भगवान् शिवके महादेव, भव, दिव्य, शङ्कर, शम्भु, उमाकान्त, हर, मृड, नीलकण्ठ, ईश, ईशान, महेश, महेश्वर, परमेश्वर, भर्ग, शर्व, रुद्र, महारुद्र, कालरुद्र, त्रिलोचन, विरूपाक्ष, विश्वरूप, वामदेव, काल, महाकाल, कलविकरण, पशुपति आदि अनेक नाम हैं।

नारायणोपनिषद्में आपको अनेक नामोंसे नमस्कार किया गया है—

'शिवाय नमः, शिवलिङ्गाय नमः, भवाय नमः, भवलिङ्गाय नमः, शर्वाय नमः, शर्वलिङ्गाय नमः, बलाय नमः, बलप्रमथनाय नमः' इत्यादि, एवं 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यस्सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।'

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम् ।

नमो हिरण्यबाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय हिरण्यपतयेऽम्बिकापतये उमापतये पशुपतये नमो नमः ।

श्वेताश्वतरोपनिषद्में भगवान् शिवकी सर्वव्यापकता और विराट्रूपताका वर्णन है, यथा—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ॥
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
....
..........................॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ ...
सर्वतःपाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

भक्तकी भगवान् रुद्रसे अपने आरोग्य, आयुर्वृद्धि, माता-पिता, पुत्र-कलत्र, मित्र-सेवक, सैनिक तथा पशु आदिकी रक्षाके निमित्त प्रार्थना—

याते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि। यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे शिवां गिरित्र तां कुरु माहि ँसीः पुरुषं जगत् । प्रजां मा मे रीरिषः । आयुरुग्र नृचक्षसं त्वा हविषा विधेम। रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् । मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकम्मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नोऽवधीः पितरम्मोत मातरम्मा नः प्रिया स्तन्वो रुद्र रीरिषः । मा न स्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः मानो वीरान् रुद्र भामिनोऽवधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ।

शिवजी सर्वोत्तम देव हैं—संसारमें शिवजी ही सब कुछ हैं—

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् ।

इन्हीं देवके ज्ञानसे मुक्ति होती है—

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ।

नारायण और जाबाल उपनिषदोंमें रुद्र-गायत्री—

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

नारायणोपनिषद्में मृत्युका जीतनेवाला शिवजीका प्रसिद्ध मृत्युञ्जय मन्त्र—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।

जाबाल और रामोत्तरतापिनी-उपनिषदोंमें—भगवान् रुद्र कुरुक्षेत्रमें प्राणियोंको अन्तसमय तारक-मन्त्रका उपदेश देते हैं जिसके द्वारा जीव अमर होते—मुक्ति पाते हैं—

अत्र (कुरुक्षेत्रे) हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति ।

बृहज्जाबाल और रुद्राक्ष-जाबाल उपनिषदोंमें—शिव-माहात्म्य एवं शिव-स्मरणपूर्वक भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेसे शिव-सायुज्य-प्राप्ति वर्णित है ।

यज्ज्ञानाग्निः स्वातिरिक्तभ्रमं भस्म करोति तत् ।
बृहज्जाबालनिगमशिरोवेद्यमहं महः ॥
रुद्राक्षोपनिषद्वेद्यं महारुद्रतयोज्ज्वलम् ।
प्रतियोगिविनिर्मुक्तं शिवमात्रपदं भजे ॥
···शिव शक्तिभ्यां नान्यासमिह किञ्चन ।
···शिवसायुज्यमाप्नोति ।

गर्भोपनिषद्में—गर्भस्थ जीवकी दुःख-निवृत्त्यर्थ भगवान् महेश्वरसे प्रार्थना—

जब जीव माताके गर्भमें आता है और नवम मासमें इसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पूर्ण हो जाते हैं, ज्ञान-सामग्री (इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि) के उदय होनेसे इसको पूर्वजन्मोंमें किये शुभाशुभ कर्मोंका स्मरण आता है, तब यह पश्चात्ताप करता है कि—अफसोस ! मैंने सहस्रों जन्म लिये, विविध प्रकारके भोजन-पान किये, अनेक माताओंके स्तनोंका दूध पिया, अनेक बार जन्मा और मरा । जिन कुटुम्बियोंके पालन-पोषणके लिये मैंने अगणित पुण्य-पाप कर्म किये, वे प्यारे कुटुम्बी तो खा-पीकर सुख भोगकर चल दिये; किन्तु पापोंका फल—दुःख मैं अकेला ही भोग रहा हूँ । हाय ! इस दुःखके समुद्रमें पड़ा हुआ मैं नरक-वडवाग्निमें जल रहा हूँ । इससे छुटकारेका मुझे कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता ! क्या करूँ ! कहाँ जाऊँ ? हे महेश्वर ! इस घोर सङ्कटमें रक्षा करो । यदि इस योनिसे मैं छूट जाऊँ तो हे सब पापोंके नाश करनेवाले, दीनबन्धो, मुक्तिके दाता ! मैं आपका भजन करूँगा, आपका ध्यान करूँगा ।

पूर्वं योनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया ।
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ॥
जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुनः पुनः ।
यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥
एकाकी तेन दह्येऽहं गतास्ते फलभोगिनः ।
अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम् ।
अशुभक्षयकर्त्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥

भक्त-वत्सल भगवान् सदाशिव जीवकी पुकार सुनते और इसको गर्भके सङ्कटसे मुक्त करते हैं । जय शिव !

शिव-भक्तिका फल

कोऊ शत्रु सामने न आवै न सतावै कोऊ,
जतन बिना बिपत्ति सारी भारी भागि जाय ।
जाँचे बिना ऋद्धि-सिद्धि द्वारपर ठाढ़ी रहैं,
आपै आप आइकै रमाहू प्रेम पगि जाय ।
हाथी-रथ-घोड़ाकी सवारी अधिकारी रहैं,
नाती और पोतनते पूरो भाग जागि जाय ।
काहू बातकी कमी रहै कहूँ न 'विष्णु' कवि,
जोपै साँची लगन दिगम्बर ते लागि जाय ॥

बाहर औ भीतर कलंकको रहै न नावँ,
भारी तेहू भारी पापराशि आपै जरि जाय ।
धर्मराज दूरहीते ठाढ़े ह्वै करैं प्रनाम,
देखत ही कालहूँकी हुलिया बिगरि जाय ।
दान अरु धर्मके बिना ही जप तप ध्यान—
धारणाके 'विष्णु' निज जनम सुधरि जाय ।
तीनौ ताप पासमैं न आवैं कहूँ शंकरकी—
जोपै साँची प्रीति हिय माँहि घर करि जाय ।

गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु'

शिव और धनुर्वेद

(लेखक—श्रीमहेन्द्रकुमारजी वेदशिरोमणि)

ह बात निर्विवाद है कि धनुर्वेद यजुर्वेदका उपवेद है। परन्तु इस विषयमें मतैक्य नहीं है कि इसका आदि-उपदेष्टा किसको माना जाय ? कुछ लोग ब्रह्मको इसका आदि-प्रकाशक मानते हैं। इस मतके प्रमुख परिपोषक कोदण्डमण्डन-कारका कहना है कि–'अनादि ब्रह्मसे सम्भूत और त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) के फलके साधक यजुर्वेदका उपवेद धनुर्वेद कहलाता है।*

नीतिप्रकाशिकाकार वैशम्पायनका इससे भिन्न मत है। इनकी सम्मतिमें धनुर्वेदके शस्त्रास्त्र-विभागका सर्वोत्तम आयुध खड्ग है और इसके आदि उपदेशक ब्रह्मा हैं। शिव तो इस सम्प्रदायके चेले हैं। इस बारेमें इस पुस्तकमें लिखा है कि खड्गका उपदेश सबसे पहले ब्रह्माने शिवको दिया, शिवने विष्णुको, विष्णुने मरीचिको, मरीचिके बाद ऋषभके हाथ उपदेश लगा। ऋषभने इन्द्रको, इन्द्रने लोकपाल और दिक्पालोंको और इन लोगोंने सूर्यपुत्र मनुको उपदेश किया। तभीसे अत्याचारियोंसे न्यायकी रक्षाके लिये मनुकी सन्तान मानव-जाति या मनुष्य-समाजमें इसका प्रचार हुआ।†

कुछ लोगोंकी सम्मतिमें धनुर्वेदके प्रारम्भिक उपदेशक शिव हैं। इस मतके परिपोषक अन्य मतोंसे अधिक हैं। 'वासिष्ठ धनुर्वेद'के प्रारम्भमें ही आया है कि परशुरामको, जो द्वापर और त्रेताके प्रसिद्ध धनुर्वेदज्ञ थे, धनुर्वेदका उपदेश शिवजीने ही दिया था।‡

वाल्मीकि-रामायणमें लिखा है कि वशिष्ठसे बदला लेनेके लिये धनुर्वेद-प्राप्तिकी कामना करते हुए विश्वामित्रने उग्र तपस्या की। इस घोर तपश्चर्यासे प्रसन्न हो शिवजी प्रकट हुए और वर-याचनाको कहा। विश्वामित्रने साङ्गोपाङ्ग, सरहस्य और सोपनिषद् धनुर्वेदकी माँग पेश की तथा यह भी कहा कि देव, दानव, महर्षि, यक्ष, गन्धर्व और राक्षसोंके पास जो-जो शस्त्रास्त्र हैं, वे सब मुझे प्राप्त हों। इसपर वर-दाता शिव 'एवमस्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये।*

महाभारतमें एक जगह शिवजीद्वारा अर्जुनको महास्त्र प्राप्त होनेकी कथा इस बातको पूर्णतया प्रमाणित करती है कि शिव धनुर्वेदके अद्वितीय पारगामी थे, क्योंकि जब अर्जुन जयद्रथ-वधके लिये कोई उपाय न पा सके, तब हारकर वहाँ गये थे। किरातार्जुनीयका भिल्ल-वेशमें अर्जुनके साथ घोर युद्ध भी शिवकी उत्कृष्ट धनुर्वेदज्ञताका सूचक है।†

शिवका मुख्य आयुध पिनाक है, जिसके कारण इनका नाम 'पिनाकपाणि' पड़ गया है। इस पिनाक-शस्त्रकी रूप-रेखाका उल्लेख हमें नीतिप्रकाशिकामें देखनेको मिल सकता है।‡ वहाँ लिखा है कि इसके तीन सिरे होते हैं। यह

---

* अनादिब्रह्मसम्भूतस्त्रिवर्गफलसाधनः।
यजुर्वेदोपवेदोऽयं धनुर्वेदो निगद्यते॥
(कोदण्डमण्डन १। ३)

† नीतिप्रकाशिका अध्याय २

‡ अथैकदा विजिगीषुर्विश्वामित्रो राजर्षिर्गुरुं वसिष्ठमभ्युपेत्य प्रणम्योवाच,ब्रूहि भगवन्! धनुर्विद्यां दृढचेतसे शिष्याय दुष्टशत्रुविनाशाय च। तमुवाच महर्षि ब्रह्मर्षिप्रवरो वसिष्ठः, शृणु भो राजन्विश्वामित्र ! यां सरहस्यां धनुर्विद्यां भगवान् सदाशिवः परशुरामायोवाच तामेव वच्मि ते हिताय, गोब्राह्मणसाधुवेदरक्षणाय च यजुर्वेदाथर्वसम्मितां संहिताम्।
(वा० धनुर्वेद १)

* यदि तुष्टो महादेव ! धनुर्वेदो ममानघ।
साङ्गोपाङ्गोपनिषदः सरहस्यः प्रदीयताम्॥
यानि देवेषु चास्त्राणि दानवेषु महर्षिषु।
गन्धर्वयक्षरक्षःसु प्रति मां तु ममानघ॥
तव प्रसादाद् भवतु देवदेव ममेप्सितम्।
एवमस्त्विति देवेशो वाक्यमुक्त्वा गतस्तदा॥
(वा० रा० १। ५७। १६। १८)

† किरातार्जुनीय (सर्ग १६)

‡ पिनाकस्तु त्रिशीर्षः स्यात् सिताग्रः क्रूरलोचनः।
कांस्यकायो लोहशीर्षश्चतुर्हस्तप्रमाणवान्॥
ऋक्षरोमस्तवको झल्लीवलयग्रीववान्।
धूननं त्रोटनश्चेति त्रिशूलं द्वे गती श्रिते॥
(नी० प्र० ५। २७-२८)

अग्रभागमें श्वेत और भयङ्कर, आँखवाला काँसेका बना हुआ, लोहेके सिरवाला, चार हाथ लम्बा होता है। इसके एक तरफ रीछके बालोंका गुच्छा और पीतलके छल्ले लटकते रहते हैं। इसके चलानेकी दो गतियाँ हैं—धूनन और त्रोटन। इस आयुधको त्रिशूल भी कहते हैं। इसकी गणना शस्त्रोंमें है। शिव-धनुषका नाम भी पिनाक है।*

वीरमित्रोदय और नीतिप्रकाशिकाके अध्ययनसे विदित होता है कि शिवने धनुर्वेद-शास्त्रकी रचना की थी। वीरमित्रोदयके अनेक स्थलोंपर त्र्यम्बक-धनुर्वेदके उद्धरण उपलब्ध होते हैं। यह ग्रन्थ प्रश्नोत्तरकी रीतिपर कहा गया है। इसमें प्रश्नकर्त्ता शिव-पार्वतीके पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय हैं और उत्तर देनेवाले महादेव हैं।†

नीतिप्रकाशिकाके पहले अध्यायमें धनुर्वेदके निर्माता कुछ प्राचीन आचार्योंके नाम तथा उनकी पुस्तकोंकी अध्याय-संख्या भी दी गयी है; जिससे विदित होता है कि शिवने पचास सहस्र अध्यायोंके धनुर्वेदकी रचना की थी।‡

यजुर्वेदके तीसरे अध्यायके इकसठवें श्लोकमें सेनापति-रूपमें शिवका स्मरण किया गया है। वहाँ कहा गया है कि 'हे रुद्ररूप सेनापति! अपनी रक्षाओंसे युक्त होकर मूजवान् पर्वतको पार करके गमन कीजिये। धनुषको ताने हुए पिनाकसे रक्षणीय हमारी हिंसा न करते हुए, चर्म धारण किये हुए और शिवगुणको धारण करके जाइये।'§

उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट विदित है कि शिवजीका धनुर्वेदसे गहरा सम्बन्ध है।

भगवान् भूतनाथ और भारत

(लेखक—पं० श्रीअयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध')

यह कैसे कहा जा सकता है कि भारतके आधारसे ही भगवान् भूतनाथकी कल्पना हुई है? वे असंख्य ब्रह्माण्डाधिपति और समस्त सृष्टिके अधीश्वर हैं, उनके रोम-रोममें भारत-जैसे करोड़ों प्रदेश विद्यमान हैं। इसलिये यदि कहा जा सकता है तो यही कहा जा सकता है कि उस विश्व-मूर्त्तिकी एक लघुतम मूर्त्ति भारतवर्ष भी है। वह हमारा पवित्र और पूज्यतम देश है। जब उसमें हम भगवान् भूतनाथका साम्य अधिकतर पाते हैं, तो हृदय परमानन्दसे उत्फुल्ल हो जाता है। उस आनन्दका भागी आज हम आपलोगोंको भी बनाना चाहते हैं।

भूत शब्दका अर्थ है पञ्चभूत अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। उसका दूसरा अर्थ है प्राणि-समूह अथवा समस्त सजीव-सृष्टि, जैसा कि निम्नलिखित वाक्योंसे प्रकट होता है—

सर्वभूतहिते रतः।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।

भूत शब्दका तीसरा अर्थ है—योनिविशेष, जिसकी सत्ता मनुष्य-जातिसे भिन्न है और जिसकी गणना प्रेत एवं वेतालादि जीवोंके कोटिमें होती है। जब भगवान् शिवको हम भूतनाथ कहते हैं तो उसका अर्थ यह होता है कि वे पञ्चभूतसे लेकर चींटीपर्यन्त समस्त जीवोंके स्वामी हैं। भारत भी इसी अर्थमें भूतनाथ है। चाहे उसकी स्वामित्वकी व्यापकता उतनी न हो, बहुत ही थोड़ी समुद्रके बिन्दु

* पिनाकोऽजगवं धनुः॥ (अमरकोष)
पिनाकोऽस्त्री शूलशङ्करधन्वनोः॥ (अमर०)
पिनाको रुद्राङ्कुशः (उव्वटभाष्य यजु० ३। ६१)
पिनाकाख्यं त्वदीयं धनुः (महीधरभाष्य यजु० ३। ६१)

† नीतिप्रकाशिका अ० १ श्लोक २३।
पञ्चाशच्च सहस्राणि रुद्रः संक्षिप्य चाब्रवीत्॥

‡ एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अव ततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि॥ (यजुर्वेद अ० ३ श्लोक ६१)

§ इस पुस्तकको पृथक् प्रो० राजारामजीने लाहौरमें छपवाया है।

बराबर हो, तो भी वह भूतनाथ है। क्योंकि पञ्चभूतके अनेक अंशों और प्राणिसमूहके एक बहुत बड़े विभागपर उसका भी अधिकार है। यदि वे शशिशेखर हैं, तो भारत भी शशिशेखर है। उनके ललाट-देशमें मयङ्क विराजमान है, तो उसके ऊर्ध्वभागमें। यदि वे सूर्यशशाङ्कवह्निनयन हैं, तो भारत भी ऐसा ही है। क्योंकि उसके जीवमात्रके नयनोंका साधन दिनमें सूर्य और रात्रिमें शशाङ्क एवं अग्नि (अर्थात् अग्निप्रसूत समस्त आलोक) हैं। यदि भगवान् शिवके सिरपर पुण्यसलिला भगवती भागीरथी विराजमान हैं, तो भारतका शिरोदेश भी उन्हींकी पवित्र धारासे प्लावित है। यदि वे विभूति-भूषण हैं—उनके कुन्देन्दु गौर शरीरपर विभूति अर्थात् भभूत विलसित है, जो सांसारिक सर्वविभूतियोंकी जननी है, तो भारत भी विभूति-भूषण है—उसके अङ्कमें नाना प्रकारके रत्न ही नहीं विराजमान हैं, वह उन समस्त विभूतियोंका भी जनक है जिससे उसकी भूमि स्वर्ण-प्रसविनी कही जाती है। यदि वे मुकुन्द-प्रिय हैं, तो भारत भी मुकुन्दप्रिय है। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे बार-बार अवतार धारण करके उसका भार निवारण न करते और न उसके भक्ति-भाजन बनते। उनके अंगोंमें निवास-कर यदि सर्प-जैसा वक्रगति भयङ्कर जन्तु भी सरल गति बनता और विष वमन करना भूल जाता है, तो उसके अङ्कमें निवास करके अनेक वक्रगति-प्राणियोंकी भी यही अवस्था हुई और होती है। भारतकी अङ्गभूत आर्यधर्मा-वलम्बिनी अनेक विदेशी जातियाँ इसका प्रमाण हैं। यदि भगवान् शिव भुजङ्गभूषण हैं, तो भारत भी ऐसा ही है। अष्टकुलसम्भूत समस्त नाग इसके उदाहरण हैं। यदि वे वृषभवाहन हैं, तो भारतको भी ऐसा होनेका गौरव प्राप्त है। क्योंकि वह कृषिप्रधान देश है और उसका समस्त कृषि-कर्म वृषभपर ही अवलम्बित है।

भगवान् भूतनाथकी सहकारिणी अथवा सहधर्मिणी शक्तिका नाम उमा है। उमा क्या है—'ह्रीः श्रीः कीर्तिः द्युतिः पुष्टिरुमा लक्ष्मीः सरस्वती।' उमा श्री है, कीर्ति है, द्युति है, पुष्टि है और सरस्वती एवं लक्ष्मीस्वरूपा है। उमा वह दिव्य ज्योति है जिसकी कामना प्रत्येक तम-निपतित जिज्ञासु करता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' वेद-वाक्य है। भारत भी ऐसी ही शक्तिसे शक्तिमान् है। जिस समय सभ्यताका विकास भी नहीं हुआ था, अज्ञानका अन्धकार चारों ओर छाया हुआ था, उस समय भारतकी शक्तिसे ही धरातल शक्तिमान् हुआ। उसीकी श्रीसे श्रीमान् एवं उसीके प्रकाशसे प्रकाशमान बना। उसीने उसको पुष्टि दी, उसीकी लक्ष्मीसे वह धन-धान्य-सम्पन्न हुआ और उसीकी सरस्वती उसके अन्ध नेत्रोंके लिये ज्ञानाञ्जन-शलाका हुई। चारों वेद भारतवर्षकी ही विभूति हैं। सबसे पहले उन्होंने ही यह महामन्त्र उच्चारण किया—

'सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।' 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।' 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' इत्यादि।

प्रयोजन यह कि जितने सार्वभौम सिद्धान्त (Universal Principles) हैं, उन सबकी जननी वेदप्रसव-कारिणी शक्ति ही है। यह सच है कि ईश्वरीय ज्ञान वृक्षोंके एक-एक पत्तेपर लिखा हुआ है। दृष्टिमान् प्राणीके लिये उसकी विभूति संसारके प्रत्येक पदार्थमें उपलब्ध होती है। किन्तु ईश्वरीय ज्ञानके आविष्कारकोंका भी कोई स्थान है। वेद-मन्त्रोंके द्रष्टा उसी स्थानके अधिकारी हैं। धरातलमें सर्वप्रथम सब प्रकारके ज्ञान और विज्ञानके प्रवर्त्तकका पद उन्हींको प्राप्त है, उन्हींके वंशजोंमें बुद्धदेव-जैसे भारतीय धर्म-प्रचारक हैं कि जिनका धर्म आज भी धरातलके बहुत बड़े भागपर फैला हुआ है। वर्तमानकालमें कवीन्द्र-रवीन्द्र उन्हींके मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित होनेके कारण धरातलके सर्व-प्रधान प्रदेशोंमें पूज्य-दृष्टिसे देखे जाते और सम्मानित होते हैं। यह मेरा ही कथन नहीं है, मनु भगवान् भी यही कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अनेक अंग्रेज़ विद्वानोंने भी भारत-शक्तिके इस उत्कर्षको स्वीकार किया है और पक्षपातहीन होकर उसकी गुरुताका गुण गाया है। इस विषयके पर्याप्त प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं, किन्तु व्यर्थ विस्तार अपेक्षित नहीं। सारांश यह कि भारतीय शक्ति वास्तवमें उमा-स्वरूपिणी है। उन्हींके समान वह ज्योतिर्मय और अलौकिक कीर्तिशालिनी है। उन्हींके समान सिंह-वाहना भी। यदि धरातलमें पाशव-शक्तिमें सिंहको प्रधानता है, यदि उसपर अधिकार प्राप्त करके ही उमा सिंह-वाहना है, तो अपनी ज्ञान-गरिमासे धराकी समस्त पाशवशक्तियोंपर विजयिनी होकर भारतीय मेधामयी शक्ति भी सिंह-वाहना है। यदि उमा ज्ञान-गरिष्ठ

गणेशजी और दुष्ट-दलन-क्षम, परम पराक्रमी स्वामिकार्तिक-जैसे पुत्र उत्पन्न कर सकती हैं, तो भारतकी शक्तिने भी ऐसी अनेक सन्तानें उत्पन्न की हैं जिन्होंने ज्ञान-गरिमा और दुष्ट-दलन-शक्ति दोनों बातोंमें अलौकिक कीर्ति प्राप्त की है। प्रमाणमें वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, व्यास-जैसे महर्षि और भगवान् श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र-जैसे लोकोत्तर पुरुष उपस्थित किये जा सकते हैं।

भगवान् शङ्कर और भारतवर्षमें इतना साम्य पाकर कौन ऐसी भारत-सन्तान है कि जो गौरवित और परमानन्दित न हो ? वास्तवमें बात यह है कि भारतीयोंका उपास्य भारतवर्ष वैसा ही है जैसे भगवान् शिव। क्या यह तत्त्व समझकर हमलोग भारतकी यथार्थ सेवा कर अपना उभय लोक बनानेके लिये सचेष्ट न होंगे ? विश्वास है कि अवश्य सचेष्ट होंगे। क्योंकि भारतवर्ष एक पवित्र देश ही नहीं है, वह उन ईश्वरीय सर्वविभूतियोंसे भी विभूषित है जो धरातलके किसी अन्य देशको प्राप्त नहीं।

शिव और अर्थशास्त्र

(लेखक—श्रीभगवानदासजी केला)

शिव एक प्राचीन, अलौकिक और भारतीय विभूति हैं तथा अर्थशास्त्र अपने आधुनिक रूपमें एक नवीन, लौकिक तथा पाश्चात्य विद्या है। परन्तु यह विरोधाभास होते हुए भी इन दोनोंमें एक समानता है। शिव-का अर्थ कल्याणकारी है और अर्थ-शास्त्र भी मानव-समाजको कम-से-कम भौतिक सुख प्रदान करनेका दावा रखता है। इस लेखमें हमें यह विचार करना है कि शिवजीके जीवन तथा विचारोंमें ऐसी कौन-सी बातें हैं जिनसे जनताका ऐसा हित हुआ हो या होता है जैसा कि अर्थशास्त्रसे होता है या होना चाहिये। विषय महान् है, हमें कुछ नमूनेके उदाहरणोंसे ही सन्तोष कर लेना होगा।

हमारी आवश्यकताएँ या धनोपभोग

(Wants or Consumption of wealth)

मानव-समाजमें धन या अर्थसम्बन्धी विविध प्रकारकी क्रियाएँ इसीलिये होती हैं कि मनुष्योंको बहुत-सी चीजोंकी जीवन-निर्वाह या भोग-विलासके लिये या अपनी क्षमता-की वृद्धिके लिये जरूरत होती है। अतः अर्थशास्त्रका मुख्य विषय 'मानवी आवश्यकताएँ' हैं। आधुनिक अर्थ-शास्त्रियोंका विचार है कि नित्य नयी आवश्यकताओंकी वृद्धि करते रहने और फिर उनकी पूर्तिके प्रयत्न करनेमें आर्थिक उन्नति है। परन्तु इस 'उन्नति' से मानव-समाजको अर्थशास्त्रका अभीष्ट सुख कहाँतक प्राप्त होता है, यह एक प्रश्न ही है। सर्वत्र असन्तोष बढ़ता जा रहा है। सभ्यताका स्वरूप बहिर्मुख है। धन-वैभवकी जिस परिमाणमें वृद्धि होती है, उससे कहीं अधिक हमारी आवश्यकताएँ बढ़ जानेके कारण अभाव-जनित दुःखकी मात्रा निरन्तर अधिकाधिक होती जा रही है। इसके विपरीत भगवान् शिवका आदर्श है अपनी आवश्यकताएँ न्यून-से-न्यून रखना; वन्य पदार्थ, जड़ी-बूटियोंका भोजन; मृगछाला आदि पहनना; अपनी धन-सम्पत्ति इतर बन्धुओंके उपभोगार्थ वितरण कर देना; थोड़ेमें ही सन्तोष करना; ऐश्वर्य और वैभवका त्याग। ऐसे आदर्शयुक्त व्यक्तिका जीवन आजकलकी अर्थशास्त्र-भाषामें असभ्य, अवनत और जंगली कहा जायगा; परन्तु क्या हम उस सभ्यता और उन्नतिसे बाज़ न आवें जिससे औरोंकी दृष्टिमें हमारा जीवन ऊँचे स्टैण्डर्डका होते हुए भी वह प्रतिक्षण हमें भार-स्वरूप हो रहा है ? क्या हम आशुतोषका पूजनकर कुछ अंशमें 'आशुतोष' बननेका यत्न करेंगे ? क्या हम केवल जिह्वाको अच्छा लगनेवाले नाना प्रकारके चटपटे, मसालेदार भोजनोंका परित्याग करेंगे ? क्या हम साधारण मोटे-झोटे, परन्तु शुद्ध स्वदेशी वस्त्रके उपयोगमें गौरव मानेंगे और रंग-बिरंगे, मुलायम और शौकीनीके वस्त्रोंका प्रदर्शन बन्द करेंगे ? क्या सादगीसे रहना हमारा आदर्श होगा ? भगवान् शिवने लोक-कल्याणकारी गंगा-माताका भार अपने मस्तकपर धारण करके बतला दिया कि सादगी और तपका जीवन बितानेवाले ही कठिनाइयोंको पार कर सकते हैं, भोग-विलासमें फँसे हुए कुछ नहीं कर पाते।

धनोत्पत्ति (Production of wealth)

जबतक हमारी आवश्यकताएँ परिमित न होंगी और वे निरन्तर बढ़ती रहेंगी, हमें दिन-रात उनकी पूर्तिके लिये विविध प्रयत्नोंमें लगा रहना होगा; हमें हर रोज नयी-नयी वस्तुएँ बनानी होंगी; हम कभी भी सुखकी नींद न सोयेंगे; हमारा जीवन हर घड़ी हाय-हाय करते बीतेगा। परन्तु इसके विपरीत यदि हम भगवान् शिवके रहन-सहनसे थोड़ी-सी शिक्षा लेकर अपने भोजन-वस्त्रादिकी आवश्यकताओंको परिमित रखनेकी चेष्टा करेंगे, तो उनकी पूर्ति बहुत कुछ तो प्रकृति-रत पदार्थोंसे ही हो सकती है और जो थोड़ी-सी कमी रहेगी, वह सहज ही थोड़े-से समयमें हमारे श्रमसे पूरी हो सकती है। इसप्रकार हमारे जीवनका शेष समय विविध प्रकारके ज्ञान-विज्ञानके उपार्जन और नैतिक तथा आध्यात्मिक विषयोंके चिन्तन और मननमें लग सकता है। आजकल धनी और उन्नत देशोंमें भी पाँच-दस फी सदी व्यक्तियोंको छोड़कर शेष सब जीवन-निर्वाह-सम्बन्धी संघर्षमें ग्रस्त हैं। इस रोगका निवारण करनेमें आधुनिक सभ्यता नितान्त असमर्थ प्रमाणित हो रही है; इस सम्बन्धमें शिवजी अपने उदाहरणसे अनुपम शिक्षा दे रहे हैं। ऊँचे और शान्तिमय विचारोंके लिये सादगीका जीवन आवश्यक है। भौतिकवादके नशेमें उन्मत्त तथा धन, वैभव और ऐश्वर्यके मोहजालमें फँसे हुए सज्जनोंसे सहज ही यह आशा नहीं कि वह इस उपदेशपर अभी सम्यक् ध्यान देंगे, परन्तु समयकी ठोकरें उन्हें सावचेत होनेपर विवश करेंगी। धनोत्पत्ति-सम्बन्धी विचारोंमें आमूल क्रान्ति होगी। इस समय शराब और आतिशबाजीका सामान आदि प्रत्येक ऐसी वस्तुका बनाना 'धनोत्पत्ति' का काम कहा जाता है, जिसका विनिमय होता हो, जिसे मनुष्य सेवन करते हों, चाहे उसके 'उपभोग' से उनको कुछ भी लाभ न होकर उन्हें कुछ शारीरिक, मानसिक या नैतिक हानि ही क्यों न हो। क्या कभी वह समय न आयेगा जब केवल शिव या कल्याण करनेवाली वस्तुओंका निर्माण ही 'धनोत्पत्ति' कहा जायगा ?

विनिमय और व्यापार (Exchange)

आज दिन हम दूसरोंसे छल-कपट, मिथ्या व्यवहार करनेमें गौरव अनुभव करते हैं। दूसरोंका धन अपहरण करनेमें अपनी आर्थिक कुशलता समझते हैं। हम चाहते हैं कि सबका धन हमारे कब्जेमें आ जाय। अपरिमित संग्रह करते रहनेपर भी हमारी तृप्ति नहीं होती। भगवान् शिवकी भाँति हम त्यागके सुखकी प्राप्ति कब करेंगे ? अपना सर्वस्व औरोंको देकर, औरको धनी देखकर उनके आनन्दसे हम कब आनन्दित होंगे ? जबतक ऐसा न होगा कोई देश आन्तरिक शान्ति नहीं पायगा और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सदैव कलहका कारण होगा, चाहे व्यापारिक सन्धियाँ और समझौते कितने ही क्यों न हो जायँ। हमें दूसरोंके हितमें अपना हित समझना चाहिये। इसप्रकार शराब, अफीम, शौकीनीके सामान बेचना तथा दूसरोंके व्यवसाय-धन्धे नष्ट करके जबरदस्ती अपना कोई भी माल बाहर भेजना और वहाँ उसकी माँग बढ़ाना सब अनीतिपूर्ण व्यापार हैं। शिवके अनुयायियोंको चाहिये कि जहाँ स्वयं स्वावलम्बी हों, वहाँ दूसरोंको भी व्यापारिक दासतामें फँसानेवाले न बनें।

उपसंहार

इसी प्रकार अर्थशास्त्रके अन्य विषयोंपर विचार किया जा सकता है। भगवान् शिवकी पूजाका अभिप्राय इस तत्त्वको ग्रहण करना होना चाहिये कि जिस अर्थशास्त्रके सिद्धान्त यास्तवमें हमारे एवं दूसरोंके लिये कल्याणकारी न हों, उसे अर्थशास्त्र ही न समझा जाय। इसके लिये आवश्यक है कि हम इन्द्रियोंके दास न होकर भगवान् शिवकी भाँति संयमी जीवन व्यतीत करनेवाले हों और हाँ, हम समाज-शास्त्रके इस अङ्गपर केवल बाहरी दृष्टिसे न देखकर तीसरे नेत्र (विवेक-बुद्धि) से देखनेवाले हों। उसीसे हम 'काम' पर विजय पा सकते हैं और अपने आपको एवं दूसरोंको सच्चा सुख प्रदान कर सकते हैं। ओ३म् शिवम्।

शिवत्व

(लेखक—पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस' साहित्यरत्न)

विकास-प्राप्त सृष्टिसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्रह्मा और विष्णु देवता हैं। शिवजी तो रुद्ररूप हो उसका संहार ही करते हैं। उनसे सृष्टिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रश्न होता है कि क्या त्रिदेव व्यक्तिरूपसे भिन्न हैं ? निवेदन है कि वे भिन्न नहीं हैं। जैसे समुद्र एक है पर उसके नाम भिन्न-भिन्न हैं—अरबका समुद्र, प्रशान्त महासागर, भारत-सागर इत्यादि। उसका इन नामोंसे पुकारा जाना विशेष गुण तथा देशके कारण है, और ऐसा होते हुए भी वह ज्यों-का-त्यों समुद्र ही है। इसी प्रकार त्रिदेवोंमें भिन्नता होते हुए भी ऐक्य है। यदि कोई भारत-सागरको समुद्र माने पर अरब-समुद्रको एक झील समझे, तो क्या उसके समझनेसे सागरके गुणोंमें न्यूनता आ सकती है ? यदि नहीं, तो यदि कोई विष्णु-उपासक महादेवजीसे द्वेष रक्खे, तो उसके ऐसे विचारकी पहुँच श्रीशिवजीतक नहीं हो सकती। नदीका सम्बन्ध समुद्रसे अवश्य है; पर जिस नदीमें नितान्त जल धारण करनेकी क्षमता नहीं है, समुद्र अपनेको उसके समान शुष्क नहीं कर लेता ; वरं उसको उस नदीकी किञ्चित् चिन्ता भी नहीं होती कि वह सूख गयी है और वह उसको जलकी सहायता करे अथवा वह स्वयं शुष्क हो जाय। वह ज्यों-का-त्यों सजल एकरस रहता है। उसी भाँति विष्णु अथवा महेश अपने किसी भक्तकी विद्वेष-बुद्धिके कारण अपनेमें भेद नहीं लाते। इसको हृदयमें अंकित कर लेना चाहिये कि द्वेषबुद्धि जबतक हृदयमें बनी है तबतक किसी देवताकी भक्तिमें सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

लोग पूछते आये हैं कि इन त्रिदेवोंमें कौन बड़ा है ? कोई विष्णुको और कोई शिवको बड़ा मानते हैं। पर छोटा-बड़ा मानना भेद-बुद्धिके कारण है। इनमें कोई न छोटा है और न कोई बड़ा। यदि कोई मनुष्य विभिन्न भावोंके साथ विभिन्न कार्योंको करता है तो क्या उसके व्यक्तित्वमें भिन्नता आ जाती है ? यदि नहीं आती तो इन त्रिदेवोंमें भिन्नता क्यों आने लगी ? ब्रह्मा उसी समयतक ब्रह्मा हैं जबतक सृष्टि-रचना करते हैं। विष्णु सृष्टिके पालन ही तक विष्णु कहे जायँगे और महादेवजी वही सृष्टि नाश करनेतक रुद्र नामसे पुकारे जायँगे। इसके पश्चात् वे तीनों एकरूप हो जाते हैं, अतएव उनमें भिन्नता नहीं है। फिर भी, भिन्न रूपोंके अनुसार प्रत्येकमें भिन्न गुण सहज-सुलभ हैं—जैसे ब्रह्मामें ब्रह्म-विवेचन, विष्णुमें जड़ तथा चेतनका पालन और शिवमें सृष्टि-उपरामता तथा जीवके कर्मोंका नाश-गुण विद्यमान हैं। शिवजी विकास-प्राप्त सृष्टिसे सम्बन्ध नहीं रखते, क्योंकि इसके प्रादुर्भूत होनेमें जीवोंको आदिसे अन्ततक कष्ट ही मिलता है। अतः उनके एकान्त-निवासका प्रधान कारण यही है कि वह प्रादुर्भूत सृष्टिके किसी कार्यसे सम्बन्ध नहीं रखते। और सृष्टि-सौन्दर्यसे बचनेहीके लिये दिगम्बर हो श्मशान-स्थानमें निवास करते हैं। ब्रह्मलोक तथा वैकुण्ठका वर्णन सौधशिखरसंयुक्त है, पर शिवजीके तो एक झोंपड़ी भी नहीं है और न उनके यहाँ अप्सराएँ और वृन्दारकवृन्द सेवार्थ खड़े हैं। सारांश यह कि जैसे करील वसन्त-ऋतुमें नवदलको नहीं धारण करता उसी भाँति सृष्टिके विकासकालमें शिवजी सर्प-कुण्डलवत् घनत्व दशाको प्राप्त रहते हैं। उनकी दशा ऐसी क्यों रहती है ? उत्तर है कि वह मणिप्रकाशवत् एक-रस, नित्य रहते हैं। वह सृष्टिके स्थूल तथा सूक्ष्मरूपसे कुछ भी मतलब नहीं रखते। क्योंकि दीपशिखाकी भाँति सृष्टिमें सदा आकुञ्चन और प्रसारणरूप आन्दोलन होता रहता है। अतः उसकी रचना और पालनसे उनका सम्बन्ध नहीं है प्रत्युत वे उससे सदैव विरत रहते हैं।

सृष्टिसे सम्बन्ध न रखनेपर भी वे दुखी जीवोंका कर्म-नाश करनेमें सदैव उद्यत रहते हैं। शंका होती है कि यदि शिवजी अकारण कर्म-नाश करते हैं तो कर्म-सिद्धान्तका विरोध हुआ जाता है। बिना कर्मोंके भोगके जीवको छुटकारा कैसे मिल जायगा ? उत्तरमें निवेदन है कि यदि

कोई बालक मार्गमें थक जाता है तो उसके माता-पिता उसे कन्धेपर चढ़ा लेते हैं। फिर बालकको मार्ग-कष्ट नहीं होता, उसके स्थानमें पिताको कष्ट होता है। मार्ग और मार्ग-गमन-कष्टमें ऐसा करनेसे भेद नहीं पड़ता, पर बालक कष्टसे बच जाता है। उसी भाँति सर्वसामर्थ्यवान् प्रभु जीयके कष्टोंका स्वयं वहन करके सृष्टिकी विधि-क्रियाको ज्यों-की-त्यों रख उसे सुखी कर देते हैं। ऐसा करनेका कारण यह है कि वह माया-विस्तारकी व्यवस्थामें कोई भाग नहीं लेते प्रत्युत उसे कष्टप्रद समझते हैं। यदि रबर खींचकर पतली न की जाय तो वह अपनी प्राकृतिक मोटाईरूपमें रहे। यदि चाकू सानपर न रक्खा जाय तो क्यों उसमें चिनगारियाँ उठने लगें और यदि वायु अपने आघातोंसे जलमें लहरें न उठावे तो जल प्रशान्त रहे। इससे इन पदार्थोंमें विकार उत्पन्न होता है और सम्बन्ध रखनेवालेको उसका अनुभव करना पड़ता है। अतः शिवजी सृष्टि-विकाससे सम्बन्ध नहीं रखते, क्योंकि उसके विकासमें जीवोंको आदिसे अन्ततक कष्ट ही मिलता है। इससे वह विकास-दशासे विरत रहते हैं वरं समय आनेपर उसका संहार करते हैं। उसीके साथ विकास-दशामें जो जीव उनके सम्मुख आता है वे उसे कर्मभोगसे मुक्त भी कर देते हैं, उसके स्थानमें स्वयं कष्ट सहन करते हैं। और यही कारण है कि वह एकान्तमें उदासीन, समाधिमग्न, संसारसे अलग रहते हैं। अब यह शंका उत्पन्न होती है कि यदि जीवके स्थानमें वह स्वयं कष्ट भोगते हैं तो क्या वह जीवकोटिमें नहीं आ जाते? समाधान है कि समुद्रमें समुद्र नहीं डूब सकता, अन्य जीव डूबते हैं। दूसरे, यदि कोई डूब रहा हो और समुद्र अपनी प्रबल लहरोंद्वारा उसे किनारे पहुँचा दे तो ऐसा करनेसे समुद्रको क्या विकार उत्पन्न हो सकता है? यह तो उसका प्रतिक्षणका कार्य है। जब शिवजी सारी सृष्टिको एक पलमात्रमें नाश कर सकते हैं तब किसी जीवके किसी विशेष कर्मका नाश क्यों नहीं कर सकते? यदि सरसोंका एक दाना सरसों नहीं है तो उसकी राशि सरसों कैसे मानी जा सकती है? यदि विशेष जीवके कर्मोंका नाश शिवजीद्वारा नहीं हो सकता तो सारी सृष्टिका भी नाश उनके द्वारा नहीं माना जा सकता। अतः वह कर्मोंका नाश कर सकते हैं और सबके दुःखोंको सहन करते हुए विकट वेषमें रहते हैं।

क्या शिवजी जीवोंके कष्टोंको स्वयं सहन न करके ऐसे ही उनका नाश नहीं कर सकते? कर सकते हैं, पर वैसा करनेपर उसीके साथ सृष्टिका नाश हो जाय। जैसे सूतके बण्डलका एक भाग अरुझ गया है तो उसे सुलझाना पड़ेगा और उस सुलझानेमें सुलझानेवालेको कष्ट सहन करना अनिवार्य होगा। यदि वह ऐसा नहीं करता वरं उसे तोड़ता है तो सूतके बण्डलमें कमी आनेसे उसके द्वारा निश्चित कार्यका सम्पादन न होगा। अतः दो बुराइयोंमेंसे कम बुराईको चुनना अच्छा है। जीव-विशेषके कष्टोंके लिये सृष्टिका नाश नहीं किया जा सकता।

यदि एक और उदाहरण देनेकी अनुमति दी जाय तो निवेदन किया जाता है कि मोटर अपनी गतिके पूर्ण वेगके साथ चल रही है। इतनेमें देखा गया कि उसका मडगार्ड पहियेकी ओर झुका जा रहा है। यदि चतुर ड्राइवर अपनी हस्तलाघवतापूर्वक रस्सीसे उसे गमन-दशाहीमें बाँध देता है तब तो ठीक है, अन्यथा उसे मोटर रोक देनी पड़ेगी, और उसके रोकनेसे निश्चित समयमें वह अभीष्ट स्थानपर नहीं पहुँच सकता।

इसीके साथ एक और शङ्का है कि यदि सृष्टि-विकाससे शिवजी सम्बन्ध ही नहीं रखते तो उसके जड़ और चेतन पदार्थोंसे उनका सम्बन्ध कैसे रह सकता है? उत्तर है कि वायु-वेगसे जलमें लहरें उठती हैं और समुद्र-प्राप्त जलको उत्तुङ्ग लहरावली क्षुब्ध रखती हैं, किन्तु जब पर्वतकी चट्टानके पास पहुँचती हैं तब वह उन्हें रोक देता है, आगे अधिक बढ़ने नहीं देता। उसी भाँति यदि कोई जीव शिवजी-के सम्मुख जाता है तो वह उसके दुःखोंको दूर कर देते हैं। शङ्का होती है कि जीवमें इतनी सामर्थ्य कहाँ कि वह शिवजीके निकट पहुँच सके। उत्तर है कि नीरव आकाश तथा महाकाशमें प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती है, वायु-लहरोंद्वारा समाचार और चित्र सहस्रों कोस भेजे जाते हैं, तब दूरस्थ जीवकी आर्त्त पुकार महादेवजीतक क्यों नहीं पहुँच सकती? प्रश्न होता है कि जब वह संसारसे सम्बन्ध ही नहीं रखते, तब वह संसारमें मग्न जीवके ऊपर कृपा-दृष्टि ही क्यों करने लगे? और यदि करते हैं तो सृष्टिसे

सम्बन्ध हुआ जाता है। उस दशामें महादेवजीका असम्बन्ध सम्बन्धमें परिणत हुआ जाता है। निवेदन है कि जैसे गेंद पृथिवीसे पृथक् होकर विरुद्ध क्रियाके साथ ऊपरको फेंका जाता है उस समय पृथिवी शान्त रहती है। पर जैसे ही उपाधिरूप विरुद्ध क्रियाकी शक्तिका अन्त होता है त्यों ही पृथिवी अपनी आकर्षण-शक्ति-द्वारा उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। अस्तु, जबतक जीवमें अहंभाव रहता है तबतक वह भटकता फिरता है और अपने अज्ञानके कारण क्लेश पाता व्याकुल होता है। व्याकुलतामें अहंता दब जाती है तब उसमें दीनता प्रकट होती है। यदि भाग्यवशात् उसने एक बार भी श्रीशिवजीका स्मरण कर लिया तो वह तत्काल उनकी अकारण कृपासे घिर जाता है। जैसे दीवालके गिर जानेसे अन्धकारपूर्ण कोठरीमें सूर्यप्रकाश चारों ओरसे पहुँच जाता है, उसी प्रकार शिवजीकी कृपा दीन बनते ही उसे शान्ति प्रदान करती है। दूसरे, जैसे चन्द्र-चाँदनी पृथिवीको श्वेत चादरसे ढक देती है पर उससे सम्बन्ध नहीं रखती, अर्थात् उसके गुणागुण ग्रहण नहीं करती, उसी भाँति शिवजी, दीन-दुखी जीवोंका कल्याण करते हुए सृष्टि-से सम्बन्ध नहीं रखते।

श्रीशिवजी आशुतोष नामसे महादयालु होनेके लिये प्रसिद्ध हैं। देखिये, जिनसे सब घृणा करते हैं उन्हींको वह अपनाते हैं—जैसे सर्प, भूत, पिशाच। वह अपमानितको मान देते हैं, जिनको कहीं ठिकाना नहीं, उनको अपनी कृपा-कोरसे अनेक ठिकानोंका स्वामी बना देते हैं।

बहुधा लोग कहते हैं कि शिवजीके उपासकोंको धनकी कमी नहीं रहती। ऐसा होनेका क्या कारण है? जो शिवोपासक इस वासनासे शिवकी उपासना करता है कि वह धनी होकर विषयादि सुखोंको भोगे, तो उसको शिवजीकी ओरसे धन प्रदान नहीं किया जाता। हाँ, उस भक्तको अवश्य धनी बनानेमें उदारता दिखायी जाती है जो शुद्धान्तःकरणसे सात्त्विक जीवन-निर्वाह और दीन-दुखियोंकी सहायताके लिये धन चाहता है। शिवजी उसे धन अवश्य देते हैं, क्योंकि जिस धनसे बुराइयोंके होनेकी सम्भावना अधिकतर रहती है उसी-से उनके भक्तका सङ्कल्प भलाई करनेका है, तो वह प्रसन्नता-पूर्वक उसके मनोरथको पूर्ण करते हैं। शङ्का की जा सकती है कि क्या शिवजीके पास कोई धनका कोष है जिससे वह निकालकर याचकोंको देते हैं? उत्तर है कि धनका सञ्चय कोषरूपमें वहाँ किया जाता है जहाँ धनकी कमी होती है। जैसे कुण्ड अथवा तड़ागमें जल अन्य स्थानसे बहकर एकत्र होता है, क्योंकि उनके पास स्वतः जलागम-शक्ति नहीं है। पर प्रपातको क्या आवश्यकता है कि वह जल सञ्चय करे? उसके यहाँ तो सदैव रात-दिन कल-कल निनाद करता जल वेगपूर्वक बहता रहता है। उसी भाँति धनरूप शिवजीको कोष रखनेकी आवश्यकता नहीं है। जिसके यहाँ सुमेरुपर्वत ही स्वर्णका है उसके लिये धन सञ्चय रखना प्रयोजनातिरेक है। दूसरे, जिस पाषाणको नदीके तट बननेका सौभाग्य प्राप्त है उसका पादप्रक्षालन धाराका प्रत्येक जल-समूह करता आगे बढ़ता है। जहाँ एक आगे बढ़ा नहीं कि दूसरा आ पहुँचता है, इसी प्रकार उसकी सेवामें वे सब आते ही रहते हैं। अतः जो मनुष्य शिवजीकी उपासना तन-मन-धन-पूर्वक सात्त्विकी भावके साथ करता है उसके लिये उसके कर्मानुसार धन-प्राप्तिकी सीमा नहीं रहती वरं वह विपुल सम्पत्तिका स्वामी बन जाता है। यदि जलबाँधको हटा दिया जाय तो जलका बहाव स्वतः होने लगता है, उसमें नाली आदि खोदनेकी आवश्यकता नहीं होती। जिस परम भक्तके भाग्यमें दरिद्र अथवा न्यून धनका बाँध बँधा है वह यदि न चाहे तो दूसरी बात है, पर इच्छा होते ही शिवकी कृपा-बाढ़ उस दरिद्र-बाँधको तत्काल तोड़ देगी।

इन सब बातोंको सुनकर मनमें स्वतः शंका उठती है कि शिवजीकी भाँति अकारण कृपा विष्णु करते हैं कि नहीं? करते अवश्य हैं, पर जीवके कर्मोंका ध्यान रखते हुए करते हैं। जैसे किसी मनुष्यके फोड़ा हुआ है, उससे उसको असह्य वेदना हो रही है। वह चिकित्सकके पास गया। उसने उसको चीर डालना निश्चय किया और रोगीको क्लोरोफार्म दिया। फोड़ेको चीरकर पट्टी बाँध दी। किन्तु चीरनेका दुःख रोगीको नहीं हुआ क्योंकि वह क्लोरोफार्मके नशेमें था। अतः श्रीविष्णु कर्मभोग कराते हुए कृपा करते हैं। हाँ, यह बात अवश्य होती है कि जिसके ऊपर उनकी कृपा होती है उसको कर्मभोगमें कष्ट नहीं मिलता। ऐसा करनेका कारण उनका सृष्टिसे सम्बन्ध रखना है। यदि ऐसा न किया जाय तो संसार-चक्रकी गतिमें विघ्न आ जाय। किन्तु शिवजी सृष्टिके नियमोंके पालन करनेकी चिन्ता किसी जीवके ऊपर कृपा करनेमें नहीं रखते, क्योंकि वह सृष्टि-

के सम्बन्धसे परे हैं। कल्पना कीजिये कि एक स्त्री चक्कीमें गेहूँ पीस रही है। इतनेमें एक दूसरी स्त्री आयी, उसने चक्कीके बीचमें एक मोटी और ऊँची लोहेकी कील घुसेड़ दी जिससे ऊपर और नीचेके तलेमें अन्तर पड़ गया, पर चक्की ज्यों-की-त्यों गमनशील है। इतना अवश्य है कि उस कील-पर रगड़ लगती है पर वह पूर्वकी भाँति चल रही है। इतनेमें जो गेहूँका घान चक्कीके भीतर है, किसी पदार्थद्वारा बाहर खींच लिया और कीलको भी हटा लिया। इसी प्रकार शिवजीकी कृपा विशेषरूपसे होती है और संसारचक्रमें भी बाधा नहीं पड़ती।

अन्तमें इस शंकाका समाधान किया जाता है कि क्या शिवजी मुक्ति दे सकते हैं? उत्तर है कि दे सकते हैं और देते हैं। पर मुक्ति देना विष्णुका कार्य है। जबतक जीव विष्णुका भजन नहीं करता तबतक वह मुक्त नहीं हो सकता। अतः शिवजी अहर्निश विष्णुका भजन करते रहते हैं। और ऐसा करनेका कारण यही है कि वह उन जीवोंको जिन्होंने विष्णु-भक्ति नहीं की और जो मुक्तिके अधिकारी नहीं हैं, उनको अपने विष्णु-भजनका फल देकर मुक्ति-लाभ कराते हैं।

लेख बढ़नेके भयसे अधिक नहीं लिखा जा सका।

संहारमें कल्याण

(लेखक—पं० श्रीनरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ)

यद्यपि नाम 'शिव' है तथापि उनमें संहारक-शक्ति ही विशेष है और उसी शक्तिके कारण वह संसारमें सबसे अधिक प्रसिद्ध देवता है।

तनपर वस्त्र नहीं, लँगोटीके लिये कपड़ा नहीं। जब कोई मिलने जाता है तो नीचे साँपको लपेटने लगते हैं। शरीरपर विभूति, गलेमें अस्थिपञ्जर अथवा कंकाल, निवासके लिये श्मशान, ऐसा तो रुद्र रूप किन्तु नाम देखो तो 'शिव'! यह विरोधाभास भी बड़ा रहस्यपूर्ण है। इनका दूसरा प्रसिद्ध नाम 'रुद्र' है। 'रुद्र' इसलिये कि ये दुष्टोंको रुलानेवाले हैं। वैसे वैदिक शब्दोंमें 'त्र्यम्बक' कहलाते हैं। भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों कालोंकी बातको आप जाननेवाले हैं—

'त्र्यम्बकं यजामहे'

—यह वेदमन्त्र प्रसिद्ध ही है।

शिवजीका, रुद्रजीका यह भयङ्कर रूप भी है सही, किन्तु इनका शिवस्वरूप नहीं है, यह बात नहीं। यदि रुद्ररूपके अतिरिक्त इनका शिवरूप न होता तो वेदमन्त्र—

या ते रुद्र शिवा तनूः

'हे रुद्र! तेरे जो शिव—कल्याणकारी शरीर हैं, रूप हैं उनसे हमारा शिव कर—कल्याण कर, ऐसी प्रार्थना क्यों करते?'

वस्तुतः बात यह है कि जब 'शिव' अपने स्वरूपमें लीन होते हैं तब वह सौम्य रहते हैं, जब संसारके अनर्थोंपर दृष्टि डालते हैं तब भयङ्कर हो जाते हैं, और उस दशामें कवि शङ्करके शब्दोंमें कहना पड़ता है कि—

शंकर तू यदि शंकर है, फिर क्यों विपरीत भयंकर है।

संसारमें ईश्वरका सर्वश्रेष्ठ नाम है ॐ। उसमें हैं तीन अक्षर 'अ, उ, म्'। वे हैं तीन शक्तिके द्योतक। अ=उत्पत्ति-शक्तिका द्योतक (प्रजापति=ब्रह्मा), उ=धारक अर्थात् स्थिति-शक्तिका द्योतक (विष्णु), म्=प्रलय अर्थात् संहारक-शक्तिका द्योतक (रुद्र)। तीनों शक्तियोंका पुञ्ज ही परमेश्वर है। वैदिक रुद्रीमें रुद्रकी समस्त संहारक शक्तियोंका विस्तृत वर्णन है। उसकी संहारक शक्तिमें ही संसारका कल्याण है। यदि रुद्रमें संहारक शक्ति न हो तो असंख्य जीवात्माओंके अदृष्ट अर्थात् धर्माधर्मके अनुरूप समयपर और तत्त्वोंके क्रमपूर्वक सृष्टिका संहार कौन करे? सृष्टिका संहार न हो तो फिर अदृष्ट चक्रके अनुसार प्रजापति भी बैठा-बैठा क्या करे, विष्णु भी क्या करे? संहारक शक्तिके कारण ही शिवजीकी अन्य देवताओंकी अपेक्षा अधिक पूजा होती है। पौराणिक गाथा भी, चाहे किसी रूपमें प्रथित हो, इसी तत्त्वका बोध कराती है। शिवजीके संहारमें ही संसारका कल्याण है।

वैसे शिवजी योगविद्याके आद्य प्रवर्तक माने गये हैं।

कैलासमें, हिमालयकी गोदमें रहें और योगके निगूढ़ तत्त्वोंको भी न जानें तो वहाँ क्या करें ? शिवजीने स्वयं कहा है—

विविच्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम् ॥

'मैंने समस्त शास्त्रोंकी विवेचना की, उन शास्त्रोंको बार-बार विचारा और मैं इसी निश्चयपर पहुँचा हूँ कि योग-शास्त्रसे बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है।'

वैसे शिवजी नृत्यविद्याके आद्य प्रवर्तक थे और उनके डमरूसे ही—अ-इ-उ-ण्, ऋ-लृ-क्, ए-ओ-ङ्, ऐ-औ-च्, ह-य-व-र-ट्, ल-ण्, ञ-म-ङ-ण-न-म्, झ-भ-ञ्, घ-ढ-ध-ष्, ज-ब-ग-ड-द-श्, ख-फ-छ-ठ-थ-च-ट-त-व्, क-प-य्, श-ष-स-र्, ह-ल्—यह व्याकरण-शास्त्रके मूल १४ सूत्र निकले।

योग-विद्याके प्रवर्तक, नृत्यविद्याके उत्पादक, व्याकरण-शास्त्रके सञ्चालक शिवजीका बाहरीरूप भले ही भयङ्कर हो, किन्तु उनकी सब कृतियाँ शिवकारक ही हैं। इसीलिये परिणामवादको लेकर रुद्रजी शिव ही हैं—चाहे पौराणिक शिव हों, चाहे वैदिक शिव हों, चाहे परमपदको प्राप्त योगाचार्य शिव, नर्त्तकाचार्य शिव अथवा व्याकरण-शास्त्रके प्रवर्तक शिव हों।

उस परमपिता प्रभुसे हम प्रतिदिन सन्ध्यामें प्रार्थना करते हैं —

नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च, नमः शङ्कराय च, मयस्कराय च, नमः शिवाय च, शिवतराय च ॥

क्यों ?

इसलिये कि सांसारिक दृष्टिसे रुद्र हैं एकादश—प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय—ये दश और मुख्य प्राण ग्यारहवाँ जिसके कि ये उपर्युक्त दश भेद हैं। शरीर-यन्त्रको यही चलाते रहते हैं। ये ठीक-ठीक चलें तो मनुष्यका सब शिव—कल्याण समझिये, नहीं तो यही रुद्र रुलानेवाले बन जाते हैं। इनमेंसे एककी गति भी बिगड़ी तो शरीर निकम्मा बना समझिये। जो इन एकादश प्राणोंको वशमें रखता है, मिताहार-विहारद्वारा, योगाभ्यासद्वारा, वही सुख पाता है। इसीलिये एकादश रुद्रोंको प्रसन्न करो।

शिव और शक्ति

(लेखक—पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार एम० ए०)

१—उपक्रम

शिव और शक्ति क्या हैं ? पहले इनका परिचय देना आवश्यक है। क्योंकि 'देवे परिचयो नास्ति वद पूजा कथं भवेत्'—अर्थात्, यदि देवताके साथ परिचय ही नहीं हुआ तो फिर पूजा कैसे होगी ? परन्तु उनकी कृपाके बिना उनका परिचय किसको मिल सकता है ? यदि उनकी कृपासे किसीको उनका परिचय मिल जाता है तो फिर 'पूजामपि न काङ्क्षति', अर्थात् वह पूजा भी नहीं चाहते। दोनों प्रकारसे पूजा कठिन हो जाती है। तथापि उनके समझनेकी जो चेष्टा है वह उन्हींकी करुणा-प्राप्तिकी चेष्टा-मात्र है। यह आज्ञा भी उन्हींकी है।

शिव-शब्दका धातुगत अर्थ क्या है ? 'शीङ्' धातुका अर्थ है शयन करना। जिसमें सब शयन करते हैं वही शिव हैं। अनन्तकोटि जीवोंसे पूर्ण यह अनन्तकोटि विश्व कहाँ शयन करता है ? निःसीम चैतन्य-सागरके वक्षःस्थलपर अनन्तकोटि विश्व-तरङ्ग निरन्तर लहरा रहे हैं, प्रवाहित हो रहे हैं। जो कुछ देखा जाता है, सुना जाता है, स्मरण किया जाता है सब उसी शिव-चैतन्यमें शयन किये हुए हैं। तब वह शिव हैं कौन ?

यत्परं ब्रह्म स एकः, य एकः स रुद्रः, यो रुद्रः स ईशानः, य ईशानः स भगवान् महेश्वरः ।
(अथर्वशिरउपनिषद्)

स्कन्दपुराण भी इसी ध्वनिमें ध्वनि मिलाकर कहता है—

ॐ एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं
सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किञ्चित् ।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे
तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥

शिव ही परमात्मा हैं। यह एक, अद्वितीय, परम पुरुष हैं। वही एकमात्र सत्य वस्तु हैं। नानारूपमें जो देखा जाता है वह कल्पित है, वह मिथ्या है—वह है ही नहीं। आचार्य गौडपाद अपनी माण्डूक्यकारिकामें देहके सम्बन्धमें कहते हैं—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।

अर्थात् जो वस्तु न आदिमें है न अन्तमें, वह वर्तमानमें भी नहीं हो सकती। गीतामें भी यही बात कही गयी है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

अर्थात् जो असत् है उसकी विद्यमानता ही नहीं होती और जो सत् है उसकी अविद्यमानता भी किसी कालमें नहीं हो सकती।

शिव ही सत्य हैं एवं यह नाम-रूप-विशिष्ट जगत् शिव-चैतन्यमें प्रवाहित होता हुआ वैसे ही सत्य-सा प्रतीत हो रहा है, जैसे रज्जुमें कल्पित सर्प। पूर्ण सत्यकी अनुभूति मनुष्यको हो नहीं सकती, इसीलिये मिथ्याकी किञ्चित् सहायतासे वह सत्य वस्तुकी धारणा कर सकता है। आश्वलायन ऋषिने नाम-रूपके किञ्चित् अवलम्बनके द्वारा सरस्वतीकी उपासना कर ज्ञान प्राप्त किया था, यह सरस्वती-रहस्योपनिषद्में पाया जाता है। अद्वय ज्ञान ही एकमात्र तत्त्व है। वही सत्य है—और सब मिथ्या है। जिसप्रकार सूर्यकी किरणें जब आकाशमें प्रसरित रहती हैं तब उन्हें कोई देखता नहीं किन्तु दीवालपर प्रतिबिम्बित होनेपर वे देखी जाती हैं, इसी प्रकार सत्य वस्तुका प्रतिबिम्ब मिथ्या-दृष्टिसे प्रतिबिम्बित होनेपर विश्वके रूपमें प्राप्त होता है। सृष्टिके न रहनेपर सृष्टिकर्त्ताके प्रकाशके लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता, इसीलिये मिथ्या सृष्टिकी आवश्यकता है। अद्वैत-भाव ही स्थिति या सिद्धि है, द्वैत-उपासना उसी अद्वैत-स्थितिकी प्राप्तिका साधन है। श्रुतिने इसी प्रकारसे द्वैत और अद्वैतकी आवश्यकता दिखलायी है। श्रीमद्भागवतमें भी कहा है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

तत्त्ववेत्तालोग उस अद्वय ज्ञानको ही तत्त्व कहते हैं। वही ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् इत्यादि शब्दोंद्वारा लक्षित होता है। साक्षात् श्रुति द्वैत-अद्वैतके सम्बन्धमें कहती है—

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं पश्यति, तदितर इतरं शृणोति, तदितर इतरमभिवदति, तदितर इतरं मनुते, तदितर इतरं विजानाति। यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत्केन कं जिघ्रेत्, तत्केन कं पश्येत्, तत्केन कं शृणुयात्, तत्केन कं अभिवदेत्, तत्केन कं मन्वीत, तत्केन कं विजानीयात्।

येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्, विज्ञातारमरे केन विजानीयात्।

जिनमें सब वस्तुएँ शयन करती हैं वही शिव हैं। वही अद्वय ज्ञान हैं, वही निर्गुण ब्रह्म हैं। शिव जब अपने स्वरूपमें रहते हैं, जब वह अपनी शक्तिको क्रोड़ीभूत करके (गोदमें लेकर) एक होकर रहते हैं, तब सृष्टि नहीं होती। वह जब अपनी मायाको, अपनी शक्तिको अङ्गीकार करते हैं उस समय अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही सगुण-भाव धारण करते हैं। सगुण-अवस्थामें वही विश्वरूप हो जाते हैं। इस विश्वरूप-अवस्थामें, जगत्में ऐसी कोई वस्तु ही नहीं जो भीतर चैतन्यसे विधृत न हो और बाहर शक्ति क्रीड़ा न करती हो। समस्त देवता यही शिव-शक्ति हैं, स्थावर-जङ्गम समस्त वस्तुएँ इन्हीं शिव-शक्तिकी मिलित अवस्था है। जिनको समस्त देवताओंमें अभेद-विचार रखनेकी शिक्षा नहीं मिली, उनकी शिक्षा कुशिक्षामात्र है। सभी देवता वही एक परमात्मा हैं, तथापि गुरुने जिनको निर्दिष्ट किया है वही विश्वरूप होते हुए ही शिष्यके लिये सर्वस्व हैं। श्रीमहावीरजीका यह कथन एकमात्र सत्य है—

श्रीनाथे जानकीनाथे अभेदः परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वं रामः कमललोचनः॥

लक्ष्मीपति, परमात्मा श्रीविष्णुमें और सीतापति श्रीराममें कोई भेद नहीं है तथापि मेरे सर्वस्व तो कमल-लोचन श्रीराम ही हैं। स्वयं श्रुति कहती है—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥
(ऋग्० सं० २। ३। ३१)

'ऋग् आदि वेदप्रतिपाद्य शब्द-रूप जिस परम व्योममें वेदस्तुत निखिल देवता निवास करते हैं, उस

परम व्योमको जो नहीं जानता, ऋगादि मन्त्र उसका क्या करेंगे? जो उसको जानते हैं वही मोक्ष लाभ करते हैं।'

शिव, दुर्गा, काली, राम, कृष्ण, गणपति, सूर्य, विष्णु—इनमें जो किसीको छोटा, किसीको बड़ा समझते हैं उनकी कहाँ गति है? शास्त्र भी ऐसा ही निर्देश करते हैं। मुण्डमाला-तन्त्रमें लिखा है—

रुद्रस्य चिन्तनाद्रुद्रो विष्णुः स्याद्विष्णुचिन्तनात्।
दुर्गायाश्चिन्तनाद्दुर्गा भवत्येव न संशयः॥
यथा शिवस्तथा दुर्गा या दुर्गा विष्णुरेव सः।
अत्र यः कुरुते भेदं स नरो मूढदुर्मतिः॥
देवीविष्णुशिवादीनामेकत्वं परिचिन्तयेत्।
भेदकृन्नरकं याति रौरवं नात्र संशयः॥

मुण्डमाला-तन्त्रके ये शब्द श्रुतिकी ही प्रतिध्वनि हैं। रुद्रहृदयोपनिषद्में शिव-शक्तिके सम्बन्धमें जो कहा गया है; सीताराम, राधाकृष्ण—सभी शक्तिजड़ित शक्तिमान्के सम्बन्धमें भी वही बात पायी जाती है। श्रुति कहती है—

सर्वदेवात्मको रुद्रः सर्वे देवाः शिवात्मकाः।
रुद्रस्य दक्षिणे पार्श्वे रविर्ब्रह्मा त्रयोऽग्नयः॥

वामपार्श्वे उमा देवी विष्णुः सोमोऽपि ते त्रयः।
या उमा सा स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स हि चन्द्रमाः॥

ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शङ्करम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्॥

ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम्॥

रुद्रात् प्रवर्तते बीजं बीजयोनिर्जनार्दनः।
यो रुद्रः स स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मा स हुताशनः॥

ब्रह्मविष्णुमयो रुद्र अग्नीषोमात्मकं जगत्।
पुँल्लिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं भगवत्युमा॥
उमारुद्रात्मिकाः सर्वाः प्रजाः स्थावरजङ्गमाः।
व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं तु महेश्वरः॥
उमाशङ्करयोर्योगः स योगो विष्णुरुच्यते।
यस्तु तस्मै नमस्कारं कुर्याच्छक्तिसमन्वितः॥

आत्मानं परमात्मानमन्तरात्मानमेव च।
ज्ञात्वा त्रिविधमात्मानं परमात्मानमाश्रयेत्॥

इसके अतिरिक्त श्रुति भी कहती है कि संसारमें जो कुछ देखा जाता है, सुना जाता है, स्मरण किया जाता है, सभी शिव-शक्ति है। रुद्र नर हैं, उमा नारी हैं; रुद्र ब्रह्मा हैं, उमा वाणी हैं; रुद्र विष्णु हैं, उमा लक्ष्मी हैं; रुद्र सूर्य हैं, उमा छाया हैं; रुद्र सोम हैं, उमा तारा हैं; रुद्र दिन हैं, उमा रात्रि हैं; रुद्र यज्ञ हैं, उमा वेदी हैं; रुद्र वह्नि हैं, उमा स्वाहा हैं; रुद्र वेद हैं, उमा शास्त्र हैं; रुद्र वृक्ष हैं, उमा वल्ली हैं; रुद्र गन्ध हैं, उमा पुष्प हैं; रुद्र अर्थ हैं, उमा अक्षर हैं; रुद्र लिङ्ग हैं, उमा पीठ हैं। श्रुति सर्वत्र कह रही है—'तस्मै तस्यै नमो नमः।' जो पुरुष हृदयमें ऐसी भावना रखते हुए सर्वत्र 'नमो नमः' कर सकते हैं वही धन्य हैं! नमः—का अर्थ श्रुति करती है—न मम। मनुष्य 'मेरा-मेरा' कहकर घोर नरकमें पड़ता है; जो 'मेरा कुछ नहीं है, सब तुम्हारा है, सब तुम्हारा है' कहते रहते हैं वही अनायास इस भीष्म भवार्णवसे पार हो जाते हैं। शिवके सम्बन्धमें श्रुति कहती है—

कुत्रचिद्गमनं नास्ति तस्य पूर्णस्वरूपिणः।
आकाशमेकं सम्पूर्णं कुत्रचिन्नैव गच्छति॥

शिव पूर्ण चैतन्य हैं, वह कहीं भी गमन नहीं करते। आकाशके समान वह पूर्ण हैं, वह सर्वत्र ही हैं। पुरुषोत्तम श्रीरामके सम्बन्धमें भी यही बात है—

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोच-
त्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित्।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो
मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति॥

जो शिव निर्गुण ब्रह्म और तुरीय हैं वही उसी कालमें सगुण और विश्वरूप हैं—यह शास्त्रोंका निर्देश है। शिव ही आत्मा हैं। अब अधिक न लिखकर आचार्य शङ्करके एक श्लोकका अवतरण देकर आगे बढ़ जाना है। मानस-पूजाका वर्णन करते हुए भगवान् शङ्कराचार्य शिवको लक्ष्यकर कहते हैं—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

शिव जिसप्रकार आत्मा हैं, उसी प्रकार शक्तिके सम्बन्धमें भी गुप्तार्णव-तन्त्र हर-पार्वती-संवादके अपराध-भञ्जनस्तोत्रमें कहता है—

त्वं भूमिस्त्वं जलौघस्त्वमसि हुतवहस्त्वं जगद्वातरूपा
त्वञ्चाकाशो मनश्च प्रकृतिरपि महत्पूर्विकाऽहङ्कृतिश्च ।
आत्मा एवासि मातः परमिह भवती त्वत्परं नैव किञ्चित्
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ॥

जो एक ही कालमें निर्गुण, सगुण, आत्मा हैं, वही उसी समय अवतार भी हैं । अवतार न होनेसे मनुष्यकी चित्तशुद्धि किसी प्रकार भी नहीं होती । चित्तशुद्धिके बिना ज्ञान होना सम्भव नहीं है ।

२–प्रार्थना

प्रलयाह्लादमें निमग्न भैरव और प्रलयाह्लाद-निमग्ना कालरात्रिके निकट जगत्के आदि ज्ञानगुरु श्रीवशिष्ठदेवकी प्रार्थना यहाँ जीवके कल्याणके लिये संक्षेपमें कुछ कही जाती है । प्रलयमें शिव-शक्ति कौन-सी मूर्ति धारण करते हैं इसका उल्लेख भी यहाँ आवश्यक है । परन्तु अपने ही पुत्र-कन्याओंका मस्तक चर्वण करना, उनके उष्ण शोणितसे अपने देहको आप्लावितकर नृत्य करना, अपने ही बनाये हुए अपने अत्यन्त प्रिय जीवोंसे पूर्ण अनन्तानन्त ब्रह्माण्डको ध्वंसकर प्रलयाह्लादमें मग्न होना क्या है, कैसा है ? इसका कारण ढूँढ़ने न जाकर मन-ही-मन इसकी भावनामें चित्तको डुबाये रखनेकी चेष्टा करना ही अच्छा है । वशिष्ठदेव प्रार्थना करते हैं—

डिम्बं डिम्बं सुडिम्बं पच पच सहसा झम्य झम्यं प्रझम्यं
नृत्यन्ती शब्दवाद्यैः स्रजमुरसि शिरःशेखरं तार्क्ष्यपक्षैः ।
पूर्णं वक्त्रासवानां यममहिषमहाशृङ्गमादाय पाणौ
पायाद् वो वन्द्यमानः प्रलयमुदितया भैरवः कालरात्र्या ॥
(योगवाशिष्ठ० महा० नि० उ० ८१ । १०२)

बद्ध्वा खट्वाङ्गशृङ्गे कपिलमुरुजटामण्डलं पद्मयोनेः
कृत्वा दैत्योत्तमाङ्गैः स्रजमुरसि शिरः शेखरं तार्क्ष्यपक्षैः ।
या देवी भुक्तविश्वा पिबति जगदिदं साद्रिभूपीठमाद्यं
सा देवी निष्कलङ्का कलिततनुलता पातु नः पालनीयान् ॥
(योगवाशिष्ठ० नि० उत्तर १३३ । ३०)

कुछ परिचयके साथ-साथ इन श्लोकोंका अर्थ समझनेकी चेष्टा की जाती है । अविद्यावृता चित्स्वरूपा, निखिल संसाररूपी चित्रमें देदीप्यमाना, विद्याके बलसे अविद्याकी मलिनता दूर होनेपर निर्मल, प्रशान्त आकाशरूपवाली, विशालशरीरा भैरवी देवी अनन्त आकाशको परिव्याप्तकर अत्यन्त भयङ्कर रूपवाले कल्पान्तरुद्रके सामने नृत्य कर रही हैं और कल्पान्तरुद्रके ललाटस्थित अग्निसे निखिल विश्वरूपी वनभूमि दग्ध होकर स्थाणुमात्र अवशिष्ट रह गयी है । वह अत्यन्त वेगशील नृत्यके आवेशमें प्रलय-पवनसे प्रकम्पित वनराजिके समान नाच रही हैं और नृत्य करते हुए आकाशवत् भयङ्कर शरीरधारी कल्पान्त रुद्रकी अर्चना करती हैं । साथ-ही-साथ कल्पान्त रुद्र भी देवीके समान विशाल शरीर धारणकर नृत्य कर रहे हैं । यह दृश्य साधकके आभ्यन्तरमें जययुक्त होवे ।

हे श्रोतागण ! जो देवी रक्त और मादक द्रव्योंसे पूर्ण यममहिषके महाशृङ्गको हाथमें धारणकर डिम्ब-डिम्ब-सुडिम्ब, पच-पच, झम्य-झम्य-प्रझम्य इत्यादि तालव्यञ्जक शब्द करती हुई नाच रही हैं, जो देवी गलेमें मुण्डोंकी माला पहने हुए शोभायमान हो रही हैं, जो देवी गरुडके पक्षद्वारा अपने मस्तकको विभूषित कर रही हैं, प्रलयमें जगत्को भक्षणकर जो देवी कालरात्रिस्वरूपिणी होकर प्रलयानन्दमें विह्वल हो रही हैं, वही देवी नृत्य करती हुई जिन महाभैरवकी अर्चना कर रही हैं, कालरात्रिके द्वारा वन्दित वह कालरुद्र, तुम्हारे ज्ञानप्रतिबन्धक दोषको दूर कर तुम्हारी रक्षा करें ।

हे भैरव ! हे कालरुद्र !! तुम सब प्राणियोंके डिम्ब, अर्थात् अनर्थकारी भोगोंके उपाधिस्वरूप इस स्थूल शरीरादि प्रपञ्चको भक्षण किया करते हो । पश्चात् दूसरे डिम्ब अर्थात् सूक्ष्म शरीरादि प्रपञ्चको भक्षण करते हो । पुनः सुडिम्ब अर्थात् कारण-शरीरको भी चरम साक्षात्कारमें तत्त्वतः आविर्भूत करके प्रझम्य अर्थात् सम्यक् रूपसे भक्षण कर जाते हो । सबको खा-पीकर पञ्चमादि (मकारादि) योग-भूमिकाका आरोहणकर सहसा अति शीघ्र 'पच-पच' सप्तम भूमिकापर्यन्त अच्छी तरह पचा जाते हो । कालरात्रि भुवनेश्वरी-कर्तृक विदेह कैवल्यके द्वारा तुम स्तूयमान हो । महानृत्यपरायणा कालरात्रिके सहित हम तुमको नमस्कार करते हैं । तुम हमारे ज्ञान-प्रतिबन्धक सब दोषोंको दूरकर हमारी रक्षा करो ।

सर्वशरण्या कालरात्रिरूपी मयूरी महाप्रलयमें कोटि ब्रह्माण्डरूपी विषधरोंके समूहको भक्षण करती हुई जब नृत्य करती है तब उसका रूप कैसा भयङ्कर होता है ? जो देवी महाकल्पान्तमें संहृत ब्रह्माके पिङ्गलवर्ण उस जटामण्डलको खट्वाङ्ग शृङ्गमें बाँधती हैं, जो देवी दैत्योंके मस्तकोंकी मुण्ड-

माला गूँथकर गलेमें लटकाये रखती हैं, जो देवी संहृत गरुडके पक्षद्वारा सिरका शृङ्गार करती हैं, जो देवी विश्वके प्राणिमात्रको भक्षणकर पर्वत और भूपृष्ठके साथ समस्त जगत्को चट कर जाती हैं, इसप्रकारकी सर्वनाशकारिणी होते हुए भी जो निष्कलङ्का हैं, दोषलेशसे शून्य हैं, शुद्ध चिन्मात्र स्वभाववाली हैं; जो देवी हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये सुन्दर तनुलता–कल्पित सञ्चारिणी लताके समान अति मनोरम शरीर धारण करती हैं–अहा ! हरि-हर-ब्रह्मादिद्वारा वन्दित वह देवी समस्त देवीरूपमें अवश्य ही पालनीय–हमारी रक्षा करें।

३–शक्ति क्या है ?

शिव 'इ' कारशून्य होनेपर शव हो जाते हैं और शक्तिका अस्तित्व भी शिव अथवा चैतन्यके बिना नहीं रह जाता। शक्ति जब शिवके साथ मिल जाती हैं तब वही ब्रह्म और वही ब्रह्ममयी हैं। ऐसी अवस्थामें शक्ति शक्तिमान्से अभिन्न हैं। शक्ति आत्माकी अस्पन्दस्वरूपिणी हैं। शक्ति जब स्पन्दस्वरूपिणी होती हैं तब वही जगत्का आकार धारण करनेवाली विश्वरूपिणी बनती हैं। इसप्रकार शक्ति स्पन्दस्वरूपिणी हैं और अस्पन्दस्वरूपिणी हैं। स्पन्द-स्वरूपिणी महामाया ही जगत्को मोहग्रस्त करती हैं और 'सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये–' वही महामाया प्रसन्न होनेपर वरदा होकर मुक्ति प्रदान करती हैं। 'श्रीश्री-चण्डी' में शक्तिके सम्बन्धमें छः प्रश्न किये गये हैं—

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज॥
यत्स्वभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर॥

'श्रीचण्डी' में इन छः प्रश्नोंका उत्तर दिया गया है। विस्तारभयसे सब बातें नहीं कही जा सकीं। ब्रह्माकी स्तुतिमें कहा गया है—

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥

'हे अखिलाम्बिके सर्वस्वरूपे ! जगत्में नित्य या अनित्य जो वस्तु जिस किसी स्थानमें हैं उनके समुदायकी जो शक्ति है वही तुम हो, अब तुम्हारी अधिक स्तुति क्या करें ? अर्थात् तुम्हारे बिना जब और कुछ है ही नहीं, तब तुम्हारा स्तवन कौन कर सकता है ?'

शक्तिको 'माया' कहा जाता है। जब शक्ति सर्व-शक्तिमान् परमेश्वरमें मिलकर एक हो जाती हैं तब इनके लिये 'हैं' ऐसा भी नहीं कहा जाता, क्योंकि ब्रह्ममें शक्तिके प्रवेश कर जानेपर वह अलग दिखायी नहीं देतीं। और 'नहीं हैं' यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि फिर शक्तिकी अभिव्यक्ति किसप्रकारसे होगी ? जो 'नहीं' है उसे 'है' कहकर मान लेना ही मायाका कार्य है। इसलिये अद्वैत-ज्ञानके साथ यहाँ कोई विरोध नहीं होता।

'देवीभागवत'में शक्तिकी उपासनाके सम्बन्धमें जो शङ्का और मीमांसा की गयी है वह भी यहाँ उल्लेख करनेयोग्य है। शक्ति प्रश्न करती हैं—

भगवन् देव देवेश मिथ्या मायेति विश्रुता।
तस्याः कथमुपास्यत्वं भवेन्मुक्तावनन्वयात्॥
श्रद्धा न जायते क्वापि मिथ्यावस्तुनि कुत्रचित्।
देव्या उपासना चेयं श्रुता मायाश्रिता प्रभो॥

भगवान् महेश्वर इसके उत्तरमें कहते हैं—

नाहं सुमुखि मायाया उपास्यत्वं ब्रुवे क्वचित्।
मायाधिष्ठानचैतन्यं उपास्यत्वेन कीर्तितम्॥

शैवागममें जो शिव हैं, चण्डीमें जो शक्ति हैं, वही भागवतमें राधा-कृष्ण और रामायणमें सीता-राम हैं। वाल्मीकीयरामायण—सुन्दरकाण्डके ५१ वें अध्यायके ३४ वें श्लोकमें श्रीहनूमान्जी रावणको उपदेश देते हैं—

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम्॥

अध्यात्मरामायणमें एकाधिक स्थानमें इन्हीं सीतादेवी-को 'महामाया', 'काली' इत्यादि नामोंसे भी सम्बोधित किया गया है और श्रीरामको 'महारुद्र' कहा गया है। कहा गया है—'रामो ज्ञानमयः शिवः' इत्यादि।

विस्तारभयसे अवतारके सम्बन्धमें यहाँ और कुछ कहनेकी इच्छा नहीं होती। केवल इतना ही कहता हूँ कि जिन मधुसूदन सरस्वतीने अद्वैत-सिद्धिका प्रतिपादन किया है, वही ऋषियोंका पदानुसरण करते हुए कह रहे हैं—

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महो धावति॥

'योगाभ्यासमें चित्तको वशीभूतकर निर्गुण, निष्क्रिय, ज्योतिःस्वरूपको जो सब योगी मनमें धारण करते हैं, अर्थात् जो निर्गुणको इसप्रकारसे देखते हैं, वे वहीं देखें; पर हमारा मन तो कालिन्दीपुलिनविहारी, लोचन-चमत्कार श्यामसुन्दर-मूर्तिके पीछे ही दौड़ता है।

शिव और सती

(लेखक—श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

शिव-सम को रघुपति-व्रत-धारी। बिनु अघ तजी सती-असि नारी॥

श्रीरामचरितमानसकी इस चौपाईमें ग्रन्थकार श्रीगोस्वामीजीने महर्षि याज्ञवल्क्यके प्रवचनके द्वारा भगवान् शिव और माता सतीदेवीकी असीम महिमा बड़े ही सुन्दर ढङ्गसे प्रतिपादित की है। प्रथम चरणमें 'शिव-सम को' और द्वितीय चरणमें 'सती-असि नारी' पदके द्वारा दम्पतीकी महिमाकी गम्भीरता पराकाष्ठाको पहुँचा दी गयी है। भगवान् शिवके लिये 'रघुपति-व्रत-धारी' विशेषण ही उनके व्रतकी महत्ताको प्रकट कर रहा है, क्योंकि संसारमें सब धर्मोंका सार, सब तत्त्वोंका निचोड़ भगवत्प्रेम ही निश्चय किया गया है। भगवान् परब्रह्ममें दृढ़ निष्ठाका हो जाना ही परम विशिष्ट धर्म है और भगवान् शिवने तो अपने अनुभवसे इसीको सार समझकर जगत्‌को निःसार निश्चित कर लिया था। जैसे—

उमा कहौं मैं अनुभव अपना। सत हरिभजन जगत सब सपना॥

इसी प्रेम-प्रभावकी महिमासे सती-ऐसी नारीमें भी उनकी आसक्ति न थी। जिस समय त्रेतायुगमें कुम्भज ऋषिके आश्रमसे वह सतीके साथ कैलासको लौट रहे थे, उसी समय दण्डकारण्यमें सीताहरणके कारण पत्नीवियोगमें दुःखित मानव-लीला करते हुए श्रीरघुनाथजीका उन्हें दर्शन हुआ और उन्होंने 'जय सच्चिदानन्द परधामा' कहकर उनको प्रणाम किया। इसपर सतीको यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि नृपसुतको 'सच्चिदानन्द परधामा' कहकर सर्वज्ञ शिवने क्यों प्रणाम किया? भगवान् शिवने सतीको भगवत्-अवतारकी बात अनेक प्रकारसे समझायी, परन्तु उन्हें बोध न हुआ—

लाग न उर उपदेश, यदपि कहेउ शिव बार बहु।
बोले बिहँसि महेश, हरिमायाबल जानि जिय॥

शिवजीने अपने हृदयमें ध्यान धरकर देखा कि 'इसमें हरिमायाकी प्रेरणा हो रही है, क्योंकि जब 'मोरेउ कहे न संशय जाहीं' तब प्रभुकी जो इच्छा है उसीमें सतीको प्रेरित कर देना हमारा भी धर्म है।' इसलिये उन्होंने कहा—

जो तुमरे मन अति सन्देहू। तौ किन जाय परीक्षा लेहू॥
तबलगि बैठ अहौं बट छाँहीं। जबलगि तुम ऐहो मोहिं पाँहीं॥

यद्यपि भगवान् शिवके विषयमें यह प्रमाण है कि 'भाविउ मेटि सकैं त्रिपुरारी' तथापि जिस भावीमें हरिकी इच्छा शामिल है उसे हृदयमें विचारकर भगवान् शिव कदापि उसके मेटनेकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वैसा ही होनेमें आप भी सहायक हो जाते हैं—

हृदय बिचारत शम्भु सुजाना। हरि इच्छा भावी बलवाना॥

—सच है, सुजान भक्तोंकी भक्तिका इसीसे परिचय मिलता है।

यही मर्म श्रीगुरु वशिष्ठजीके इस वाक्यमें भरा हुआ है—

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।

क्योंकि जब अगाध-हृदय श्रीभरतजीने कहा कि—

सो गोसाइँ बिधि गति जहि छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥
बूझत मोहि उपाय अब, सो सब मोर अभाग॥

तब वशिष्ठजीने स्पष्ट कह दिया—

तात बात फुरि रामकृपाहीं। रामबिमुख सिधि सपनेहु नाहीं॥

वस्तुतः बात भी यही है, भगवान् शिव तथा श्रीवशिष्ठजीको भावीके मेटनेकी सामर्थ्य भी तो रामभक्तिके प्रतापसे ही मिली थी। नहीं तो—

कह मुनीश हिमवन्त सुनु, जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनहार॥

श्रीमहादेव अथवा मुनि वशिष्ठजी अपने देवपन या मुनिपनके बलसे विधि-अंकके मिटानेकी सामर्थ्य तो रखते नहीं थे। यह अघटित सामर्थ्य भगवान्‌की दयासे और भगवत्-भक्तिके प्रतापसे भक्तोंको ही हो सकती है। अतः उन भक्तोंका यह सिद्धान्त रहता है कि 'हम तो तुम्हारी खुशी-में खुश हैं और कुछ नहीं चाहते'—

राज़ी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रज़ा है!

सतीको परीक्षा लेनेका आदेश करते समय भगवान् शिवने इतना चेता दिया था—'कीन्हेउ यतन विवेक विचारी' परन्तु सतीने परीक्षा लेनेके लिये श्रीसीताजीका ही वेष धारण किया, जिसमें शिवजीने अपनी स्वामिनी और माता-की दृढ़ निष्ठा कर रक्खी थी। अतः—

सिय वेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शङ्कर परिहरी।

क्योंकि उनकी यह निश्चित भावना थी कि—

जो अब करौं सतीसन प्रीती। मिटै भगतिपथ होइ अनीती॥

बल्कि शिवजी सतीको सदाके लिये त्याग देनेका चिन्तन कर रहे थे, इससे उनके हृदयमें अत्यन्त सन्ताप हो उठा—

परम प्रेम नहिं जाइ तजि, किये प्रेम बड़ पाप।
प्रगट न कहेउ महेश कछु, हृदय अधिक सन्ताप॥

परन्तु भगवद्भक्तोंको भगवान्‌की शरण ही प्रत्येक सुख-दुःखकी अवस्थामें आधार रहती है और उन्हीं 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' रूप विरदके पालनेवाले प्रभुसे प्रदान की हुई बुद्धिके द्वारा सदैव शरणागतोंकी रक्षा हुआ करती है, क्योंकि 'ददामि बुद्धियोगं तम्' भी प्रभुकी ही प्रतिज्ञा है। अतएव जब भगवान् शंकरने ऐसे समयमें प्रतिपत्ति ली, जैसे—

तब शंकर प्रभुपद शिर नावा। सुमिरत राम हृदय अस आवा॥
यहि तनु सती भेंट मोंहि नाहीं।

—तब भगवान् भक्तवत्सलने उनकी बुद्धिमें प्रेरणा की कि सदाके लिये त्यागकी ज़रूरत नहीं है। केवल इसी जन्ममें सतीको त्याग करना ठीक है, जिसमें उन्होंने सीताका वेष धारण किया है। अतएव ऐसा ही सङ्कल्प भगवान् शिवने किया। जिससे दोनों काम हो गये; न तो सदाके लिये सतीका त्याग करना पड़ा और न उस शरीरसे प्रीति ही रक्खी गयी।

समस्त भक्तजनोंको (वैष्णवानां यथा शम्भुः) भक्त-शिरोमणि भगवान् शिवके इस रहस्यसे यह उपदेश मिलता है कि जब कोई धर्मसंकट आ पड़े तो सच्चे हृदयसे हरिस्मरण करनेसे ही उसके निर्वाहकी राह निकल आवेगी।

अतएव जब केवल एक जन्मके लिये सतीका त्याग हो गया तब सतीको अपनी करनीपर अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने भी उन्हीं परमप्रभु श्रीरघुनाथजीकी हृदयसे प्रतिपत्ति ली और कहा कि 'हे आरतिहरण! हे दीनदयाल!! मेरा यह शरीर शीघ्र छूट जावे जिससे मैं दुःख-सागरको पार-कर पुनः भगवान् शिवजीको प्राप्त कर सकूँ'—

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मनमहँ रामहिं सुमिर सयानी॥
जो प्रभु दीनदयालु कहावा। आरतहरण वेद यश गावा॥
तौ मैं विनय करौं कर जोरी। छूटै बेगि देह यह मोरी॥
जो मोरे शिव चरण सनेहू। मन क्रम वचन सत्य व्रत एहू॥
तौ सबदरशी सुनिय प्रभु, करौ सो बेगि उपाय।
होइ मरण जेहि बिनहिं श्रम, दुसह बिपत्ति बिहाय॥

भगवत्कृपासे योग लग गया और अपने पिता दक्षके यज्ञमें जाकर योगानलसे शरीरको त्यागकर सतीने हिमाचल-के घर पार्वतीके रूपमें पुनर्जन्म धारणकर भगवान् शिवको पुनः पतिरूपमें प्राप्त कर लिया।

प्रणकरि रघुपति भगति देखाई। शिवसम को रामहिं प्रिय भाई॥
अस प्रण तुम बिन करै को आना। राम-भगत समरथ भगवाना॥

—इसप्रकार भगवान् शिवने जो बिना अघके ही केवल सीताका वेष धारण करनेके अपराधपर सतीका त्याग कर दिया था यह उनकी भक्तिकी पराकाष्ठा थी।

'बिनु अघ तजी सती असि नारी।' इस पदमें 'अघ' शब्द आया है। अघ और अपराधमें महान् अन्तर है। अघ उस दुष्कर्मको कहते हैं जो वेदादिद्वारा निषिद्ध होनेपर भी जान-बूझकर अपनी वासनानुसार किये जाते हैं। अतः वह क्षम्य कभी नहीं हो सकते, उनका फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है। परन्तु 'अपराध' चूकको कहते हैं, जो सदा क्षम्य होती है, क्योंकि वह किसी पापबुद्धि या कुवासनाके कारण न होकर भूलसे की जाती है।

सतीजीने जो सीताका वेष धारण किया था उसमें कदापि कोई कुवासना न थी। उसका उद्देश्य तो केवल यही जाँच करनेका था कि श्रीरघुनाथजी सचमुच ही सच्चिदानन्द ब्रह्मके अवतार हैं अथवा राजपुत्र हैं। केवल भगवत्स्वरूपके बोधार्थ सीताका वेष धारण करना 'अघ' नहीं कहा जा सकता। और नारीका त्याग केवल अघके ही कारण हो सकता है। परन्तु केवल अपराध हो जानेपर, जो क्षम्य भी हो सकता है, भगवान् शिवने उसे क्षमा न कर उपासनामें विरोध पड़नेके भयसे त्याग दिया। भगवान् शिवकी इस रघुपतिव्रतनिष्ठाको धन्य है!

उपर्युक्त चौपाईमें कोई-कोई अर्थ करनेवाले 'बिनु अघ' पदको विशेषण मानकर 'अनघ शिवजी' ऐसा अर्थ करते हैं, परन्तु सतीको यदि अघयुक्त माना जाय तो उसके त्यागसे श्रीशङ्करजीमें रघुपतिव्रतनिष्ठाका महत्त्व ही नहीं रह जाता। फिर जिस मुख्य विषयके उद्घाटनके लिये इस चौपाईकी रचना की गयी है उसका महत्त्व ही नष्ट हो जायगा। यदि कोई शंका करे कि सतीने शिवसे मिथ्या भाषण किया था, वह तो अघ था। इसका उत्तर यह है कि उसे तो शिवजीने भगवत्-मायाकी प्रेरणा समझकर उसपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया था—

बहुरि राम-मायहि शिर नावा। प्रेरि सतिहिं जेहि झूठ कहावा॥

ग्रन्थमें भी सतीत्यागका कारण झूठ बोलना नहीं बल्कि सीताका वेष धारण करना ही लिखा गया है और उसे अघ न कहकर अपराध ही बतलाया गया है—

'सियबेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध शंकर परिहरी।'

इसप्रकार सर्वश्रेष्ठ और परम पुरुषार्थ जो भगवद्भक्ति है उसमें श्रीशिवजीके समान कौन व्रतधारी हो सकता है? 'शिवसम को' इस पदका अभिप्राय तो स्पष्ट हो गया। अब 'सती-असि नारी' पदके अभिप्रायकी आलोचना करनी है। सतीजी कैसी आदर्श नारी थीं, इसका प्रमाण उनके इसी एक कर्त्तव्यसे दिया जा सकता है कि जब शिवजीने अपनी क्षमाशीला, अनन्या सतीको, अपराध क्षम्य होनेपर भी, इतना कठिन दण्ड दिया कि उसे त्याग ही डाला तब सतीका जीवन महान् विपत्तिमें पड़ गया—

'पति परित्याग हृदय दुख भारी।'

तथा—

नित नव शोच सती उर भारा। कब जैहौं दुखसागर पारा॥

सती बसहिं कैलास तब, अधिक शोच मनमाँहिं।
मर्म न कोई जान कछु, युगसम दिवस सिराहिं॥

तथापि उन्होंने अपने पतिव्रतधर्मकी पराकाष्ठाको प्रमाणितकर—

आपतकाल परखिये चारी। धीरज धर्म मित्र अरु नारी॥

—को चरितार्थ कर दिया। इसी कारण आपको ऐसा पद प्राप्त हुआ कि—

पतिदेवता सुतीयमहँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिं, सहस शारदा शेष॥

सांसारिक स्त्रियाँ स्वार्थपरायणा होती हैं, यदि पतिने किसी उचित बातपर भी उन्हें रोका तो वह तत्काल मैकेकी राह लेती हैं और वहाँकी सहायतासे लड़ाई ठान देती हैं। बेचारे पतिको नाकों चने चबाने पड़ते हैं और अन्तमें अनुनय-विनय करनेपर मैकेसे वह लौटनेके लिये राज़ी होती हैं तथा पतिको सदा हुकूमतमें रखती हैं। परन्तु पूजनीया माता सतीकी पतिनिष्ठाको तो देखिये कि अकारण त्यागे जानेपर भी—

जो मोरे शिवचरण सनेहू। मन क्रम वचन सत्य व्रत एहू॥

—अन्तर्यामी भगवान्‌की प्रपत्तिमें इसप्रकारकी शर्त्त लगा रही हैं। तथा पतिदेवकी आज्ञा प्राप्तकर जब दक्षयज्ञमें जाती हैं तो वहाँ अपने पतिदेवके अपमानको श्रवणकर पैत्रिक-सम्बन्धको तृणवत् समझ इसप्रकार त्याग कर देती हैं कि माता-पिताको ममता तो क्या, पतिके प्रतिकूल होनेवाले पिताके शुक्रसे उत्पन्न अपने शरीरसे भी अपनी आत्माको अलग कर देती हैं। अनुकूल पतिमें भी ऐसा प्रेम बिरली ही नारियोंमें पाया जाता है और इधर तो पतिदेवने रुष्ट होकर सतीसे सम्बन्ध ही विच्छेद कर डाला था। तथापि—

शिवअपमान न जाइ सहि, हृदय न होइ प्रबोध।
सकल सभहिं हठि हटकि तब, बोली बचन सक्रोध॥

जगदातमा महेश पुरारी। जगत-जनक सबके हितकारी॥
पिता मंदमति निन्दत तेही। दक्ष शुक्र सम्भव यह देही॥
तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उरधरि चन्द्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि योगअगिन तन जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥

धन्य है सतीकी सत्यनिष्ठाको! इसी कारण 'सती-असि नारी' पद दिया गया है।

इस संसारमें स्त्रियोंके उद्धारका सर्वश्रेष्ठ और सुलभ

मार्ग केवल पातिव्रत्य-धर्म ही शास्त्रसम्मत है। 'नारिधर्म पतिदेव न दूजा।' इसकी शिक्षा संसारभरकी स्त्रियोंको सतीसे लेनी चाहिये तथा मनुष्योंके उद्धारका सर्वश्रेष्ठ और परम सुलभ मार्ग केवल भगवद्भक्ति ही है, यह बात भी सर्वशास्त्रसम्मत तथा निर्विवाद है और पुरुषमात्रको ऐसे परम पुरुषार्थकी प्राप्तिके हेतु भगवान् शिवजीका अनुसरण करना चाहिये। प्रेमपथके अद्वितीय आचार्य भगवान् शङ्करका अनुसरणकर अनायास मनुष्य संसार-सागरको पार कर सकता है।

इसप्रकार भगवान् शिव और माता सती अपनी निष्ठा और सदाचारके द्वारा समस्त जीवोंके उद्धारका मार्ग निश्चय करा रहे हैं तथा उसे अपने चरित्रद्वारा स्वयं दिखला रहे हैं। दम्पतीका युगल विग्रह जगत्मात्रके कल्याण और उपकारका हेतु है। भगवान् शिवका चरित्र जीवोंके उपदेशके लिये ही है, आप साक्षात् भगवद्गुणावतार हैं। आपकी गिनती जगत्के जीवोंमें कभी नहीं की जा सकती, आप ईश्वरकोटिमें हैं और जीवोंके कल्याणार्थ आविर्भूत होते हैं। श्रीरामचरितमानसमें भी श्रीयुगल विग्रहका ऐश्वर्य—

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम्।

तथा—

भवभव-विभव पराभव-कारिणि। विश्वविमोहिनि स्ववशविहारिणि॥

—इत्यादि पदोंमें परिलक्षित है।

मानसग्रन्थकारको लीलाप्रकरणमें माता सती और कैकेयीके सम्बन्धमें श्रीरघुनाथजीके विपरीत आचरण करनेके कारण बहुत कुछ बुरा-भला कह देना पड़ा है। जैसे—

सती कीन्ह चह तहँ दुराऊ। देखहु नारि-सुभाव-प्रभाऊ॥

तथा कैकेयीके निमित्त—

बर माँगत मन भई न पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥

परन्तु इन सत्पात्रोंके गोप्य ऐश्वर्यके जाननेवाले श्रीगोसाईंजी अवसर पाकर महर्षि याज्ञवल्क्यके मुखसे 'बिनु अघ' सतीके लिये तथा उन्हींके शिष्य महर्षि भरद्वाजके मुखसे—

'तात कैकई दोष नहिं, गई गिरा मति फेरि।'

कैकेयीकी निर्दोषताको सूचित कर दिया है।

शिव और सतीकी महिमाको इदमित्थम् कौन कह सकता है? इनका नाम ही 'कल्याण' और 'सत्स्वरूपा' है। ऐसे भगवान् शिव और सती माताकी जय हो!

एक और अनेक रुद्र

(लेखक—श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

वेदों और पुराणोंमें रुद्र देवताका वर्णन बहुत है। उस सारे वर्णनका संग्रह और यथोचित वर्गीकरण करके रुद्र देवताके स्वरूपका निश्चय करना बहुत ही बोधप्रद है। परन्तु उक्त कार्य बहुत विस्तृत होनेके कारण इस छोटे-से लेखमें होना असम्भव है, अतः उसके छोटे-से विभागका संक्षेपसे विचार करनेका संकल्प इस लेखमें किया गया है। वेदमें 'रुद्र एक है' ऐसा भी वर्णन है और 'अनेक रुद्र हैं,' ऐसा भी है। जो एक होगा उसका अनेक होना सम्भव नहीं और जो अनेक होगा उसका एक होना सम्भव नहीं, सामान्यतः ऐसा समझा जाता है। रुद्रके विषयमें यह सामान्य नियम लागू हो सकता है अथवा इसमें कोई विशेष गूढ़ रहस्य है, यहाँपर इसका विचार करना आवश्यक है। यह विवेचन प्रारम्भ करनेके पूर्व जिन वचनोंमें रुद्रके एकत्व और अनेकत्वका निर्देश है उन वचनोंपर हम एक दृष्टि डालेंगे—

एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः।
असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्॥

(निरुक्त १। १५। ७)

'रुद्र एक ही है दूसरा कोई नहीं है। असंख्य-सहस्रों रुद्र इस भूमिपर हैं।' ये दोनों वचन निरुक्तमें हैं। इनमें, रुद्र एक है और सहस्रों हैं—ये दोनों कथन स्पष्ट शब्दोंमें हैं। यही भाव निम्नाङ्कित वचनोंसे भी प्रकट होता है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः

(श्वेता० ३। २)

एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः
(तै० सं० १।८।६।१)

एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्मै०। (अथर्वशिरस् ५)

रुद्रमेकत्वमाहुः शाश्वतं वै पुराणम्। (अथर्वशिरस् ५)

इन वचनोंमें 'रुद्र एक है, दूसरा रुद्र नहीं है' ऐसा स्पष्ट कहा है। इन वचनोंके पश्चात् पाठक निम्नलिखित वचन देखें—

असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्॥
(यजु० १६।५४)

'असंख्य और हजारों रुद्र भूमिके ऊपर हैं।'

ये दोनों प्रकारके वचन एक रुद्रके वाचक हैं अथवा इनसे विभिन्न रुद्रोंका बोध होता है, यह प्रश्न यहाँ विचारणीय है। इस विषयकी आलोचना करते समय निम्नलिखित वचनोंपर भी ध्यान देना चाहिये।

रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे॥ (ऋ० १०।६४।८)
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः॥ (ऋ० ७।३५।६)
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नः॥ (ऋ० १०।६६।३)
रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम्॥ (ऋ० ७।१०।४)

इन वचनोंमें कहा है कि एक रुद्र अनेक रुद्रोंके साथ रहता है। यदि ये ऋग्वेदके वचन सत्य मानते हैं तो इनके आधारपर यह मानना पड़ेगा कि एक रुद्र भिन्न है और अनेक रुद्र उससे भिन्न हैं। यदि ऐसा न माना जाय तो 'एक रुद्र अनेक रुद्रोंके साथ रहता है' इस कथनका कोई अर्थ नहीं हो सकता। इसलिये इतनी खोजसे यह बात निश्चित हुई कि एक रुद्र और अनेक रुद्र—ये परस्पर भिन्न हैं। अब हमें देखना चाहिये कि इनका स्वरूप क्या है? इस विषयमें नीचे दिये हुए मन्त्र मननपूर्वक देखने चाहियें—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥
(श्वे० ३।४)

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य
ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे
तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये॥
(अथर्व० ७।९२।१)

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी
रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्न-
मृधग्घुवेम कविनेषितासः॥
(ऋ० ६।४९।१०)

'(यः रुद्रः) जो रुद्र (देवानां प्रभवः) अग्नि आदि अन्य देवोंको उत्पन्न करनेवाला, (विश्व-अधिपः) विश्वका एकमात्र स्वामी, (महर्षिः) महाज्ञानी, अतीन्द्रियार्थदर्शी, हिरण्यगर्भको उत्पन्न करनेवाला है, वह हमें शुभ बुद्धि दे। जो रुद्र अग्निमें, जलमें, ओषधि-वनस्पतियोंमें है और जो सब भुवनोंको निर्माण करता है, उस तेजस्वी रुद्रको हमारा नमस्कार हो। (भुवनस्य पितरं रुद्रम्) सब भुवनोंका रक्षक रुद्र है, वह (बृहन्तम्) बड़ा, (ऋष्वम्) ज्ञानी, प्रेरक, (अजरम्) जरारहित है, उसकी हम दिनमें और रात्रिमें प्रशंसा करते हैं।'

एक रुद्रके स्वरूपका निश्चय करनेके लिये इतने मन्त्र पर्याप्त हैं। जो एक रुद्र है उसका यह स्वरूप है। वह सब जगत्‌का उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता, उस जगत्‌में व्यापक और महाज्ञानी है। पाठक विचार करेंगे तो उनको स्पष्ट बोध होगा कि यह तो परमात्माका वर्णन है। परमात्मा एक और अद्वितीय है, उसके समान दूसरा कोई भी नहीं है। इसी परमात्माको रुद्र, इन्द्र आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋग्० १।१६४।४३)

अतः यहाँ उसी परमात्माका वर्णन 'रुद्र' शब्दद्वारा किया गया है और जहाँ-जहाँ (एक एव रुद्रः) एक ही रुद्र है—ऐसा वर्णन होगा, वहाँ-वहाँ रुद्र-शब्दसे परमात्मा अर्थ लेना उचित है। यह अर्थ लेकर मन्त्रोंका अर्थ किस प्रकार होता है इसपर विचार कीजिये—

ईशानादस्य भुवनस्य भूरे-
र्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम्।
(ऋग्० २।३३।९)

'इस भुवनके महान् स्वामी रुद्रदेवसे अर्थात् परमात्मासे उसकी महाशक्ति कोई छीन नहीं सकता।' उसकी शक्ति उससे पृथक् नहीं हो सकती। इस रुद्रकी खोज भक्तजन अन्तःकरणमें करते हैं—इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया।
(ऋग्० ९।७३।३)

'मुमुक्षुजन (तं रुद्रम्) उस रुद्रको अर्थात् परमात्माको (जने परः अन्तः मनीषया इच्छन्ति) मनुष्यके अन्तःकरण-में बुद्धिद्वारा जानना चाहते हैं।' अर्थात् इसकी खोज अन्तःकरणमें की जाती है और मुमुक्षुजनोंको वह अपने हृदयमें प्राप्त होता है। इसप्रकार यह रुद्रका वर्णन परमात्म-परक है—इन मन्त्रोंका मनन करनेसे यह निश्चय हो जाता है। इस निश्चयको मनमें स्थिर करके अर्थात् एक रुद्रको परमात्मा मानकर जब हम 'अनेक रुद्र' कौन हैं इस विषयपर विचार करते हैं, तब हमारे सम्मुख निम्नाङ्कित कोष्ठक आता है—

एकः रुद्रः	अनन्ताः रुद्राः
अद्वितीयः रुद्रः	सहस्राणि सहस्रशो रुद्राः
जनकः, पिता, रुद्रः	पुत्राः रुद्राः
व्यापकः रुद्रः	अव्यापकाः रुद्राः
ईशः रुद्रः	अनीशाः रुद्राः
उपास्यः रुद्रः	उपासकाः रुद्राः
एकः परमात्मा	अनन्ताः जीवात्मानः

इनमेंसे कई शब्द पूर्वोक्त मन्त्रोंमें आ चुके हैं और कई शब्द अर्थके अनुसन्धानसे लिये गये हैं। यदि यह कोष्ठक पूर्वोक्त वचनोंसे सिद्ध हो गया, तो फिर 'एक रुद्र' परमात्मा है और 'अनन्त रुद्र' अनन्त जीवात्मा हैं इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रह जायगा। अब इसके लिये कुछ प्रमाण देखने हैं—

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्राः। (ऋ० ६।६६।३)

'दाता रुद्रके ये अनन्त रुद्र पुत्र हैं।' रुद्रके पुत्र रुद्र ही हो सकते हैं, इसमें किसीको सन्देह नहीं होना चाहिये। जैसे परम-आत्माके पुत्र अणु-आत्मा (जीवात्मा) हैं, वैसे ही व्यापक रुद्रके पुत्र अनन्त रुद्र किंवा अव्यापक जीवात्मा हैं। इन पिता-पुत्रोंका वर्णन वेदमें इस तरह मिलता है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषाम्०॥
(ऋ० ५।६०।५)

'इनका पिता रुद्र तरुण है और ये अनन्त रुद्र आपसमें भाई हैं। इनमें न तो कोई श्रेष्ठ है और न कनिष्ठ ही है, अर्थात् ये सब आपसमें समान अधिकारवाले हैं। सब जीवात्मा आपसमें ऐसे ही भाई हैं, जिनमें कोई बड़ा नहीं और कोई छोटा नहीं है।'

इसप्रकार 'एक रुद्र' कौन है और 'अनेक रुद्र' कौन हैं—इस बातका स्पष्टीकरण किया गया। इस स्पष्टीकरणसे पाठकों-को ज्ञात होगा कि 'जीव और शिव' की कल्पना ही इन रुद्रों-द्वारा वेदमन्त्रोंमें बतायी गयी है। जीव अनेक हैं और शिव एक है। जीव कभी-न कभी शिव बननेवाला है, इसलिये तत्त्वदृष्टिसे जीव और शिव एक हैं—यह बतानेके उद्देश्यसे ही दोनोंका नाम एक रक्खा गया है। देखिये—

जीवाः	शिवः
रुद्रासः	रुद्रः
आत्मानः	आत्मा
अजाः	अजः
अग्नयः	अग्निः

इस तरह दोनोंके एक प्रकारके नाम बताते हैं कि ये दोनों तत्त्वतः एक हैं। इसीलिये जीव शिव बनता है। जीवसे शिव बननेकी कल्पना निम्नलिखित शब्दोंद्वारा वेद-शास्त्रमें बतायी गयी है—

जीव	शिव
पुरुष	पुरुषोत्तम
आत्मा	परमात्मा
ब्रह्म	परब्रह्म
नर	नारायण
पिण्डव्यापी	ब्रह्माण्डव्यापी
रुद्र	महारुद्र
इन्द्र	महेन्द्र
देव	महादेव

नर ही नारायण बनता है। यही अर्थ रुद्रके 'महारुद्र' बननेका है। शब्दभेद होनेपर भी अर्थभेद नहीं होता। अनेक शब्दोंद्वारा एक ही आशय व्यक्त होता है। अस्तु। इस रीतिसे एकवचनात्मक रुद्र-शब्दसे परमात्माकी कल्पना और बहुवचनात्मक रुद्र-शब्दसे जीव-आत्माओंकी कल्पना वैदिक वाङ्मयमें प्रकट होती है, यह बात यहाँ इन सब प्रमाणोंसे विशद हो चुकी है।

जो कहते हैं कि वेदमन्त्रोंमें अध्यात्मविषय नहीं है, वे इस दृष्टिसे 'रुद्रसूक्त' देखें और उनका मनन करें। इस मननसे, रुद्रसूक्तोंमें अध्यात्म-विषय ही भरा है—यह बात

उनके मनमें निःसन्देह प्रकट होगी। इसीलिये कहा है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति (क० उ० १।२।१५)
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः (गीता १५।१५)

'सब वेदोंके द्वारा आत्माका ही ज्ञान होता है।' वास्तवमें सम्पूर्ण वेदमन्त्र एक अद्वितीय आत्माका बोध कराते हैं, उनमें अनेक नामोंसे एक ही सत्य वस्तुका वर्णन किया गया है। परन्तु दुःखकी बात है कि आजकल यह रहस्य बहुत कम मनुष्योंको विदित है। इसलिये विद्वान् लोग भी यही समझते हैं कि वेदमें अध्यात्म-विषय नहीं है, वह केवल वेदोंके परवर्ती उपनिषदों और गीता आदि ग्रन्थोंमें है। परन्तु सारे वेद जिस एक आत्मतत्त्वका वर्णन करते हैं वही सत्य वेद-विद्या है। वह जिस रीतिसे जानी जाती थी उसका थोड़ा-सा विवरण इस लेखमें किया गया है और यह बतानेका भी यत्न किया गया है कि रुद्रसूक्तोंमें आत्माका ही बहुत अंशोंमें वर्णन है।

यहाँ पाठक शंका करेंगे कि क्या 'रुद्र' शब्द आत्मा-परक है और है तो वैसा अर्थ इससे पूर्व किसने माना है? इस विषयमें हम भाष्यकारोंका ही प्रमाण देते हैं, जिससे पाठक जान सकेंगे कि भाष्यकारोंकी सम्मतिमें भी रुद्र-शब्द आत्मावाचक है—

श्रीसायणाचार्यका अर्थ

१—रुद्रस्य परमेश्वरस्य। (ऋ० ६।२८।७)

२—रुद्रः संहर्ता देवः। (अथर्व० १।१९।३)

३—जगत्स्रष्टा सर्वं जगदनुप्रविष्टः रुद्रः। (अथर्व० ७।९२।१)

४—रुद्रः परमेश्वरः। (अथर्व० ११।२।३)

इस तरह रुद्र-शब्दका अर्थ श्रीसायणाचार्यजीने भी परमेश्वर ही किया है। अन्यान्य भाष्यकारोंको भी यह अर्थ मान्य है। अथर्ववेदके सूक्तमें भी यही अर्थ स्पष्ट बताया गया है—

स धाता स विधर्ता ······॥ सोऽर्यमा स रुद्रः स महादेवः ॥४॥ स एव मृत्युः···स रक्षः···स रुद्रः ॥२६॥ तस्य···वशे चन्द्रमाः ॥२८॥ (अथर्व० १३।६)

'वह धाता, विधाता, रुद्र, महादेव, मृत्यु, रक्षस् है, उसके वशमें चन्द्र है।' इन मन्त्रोंमें महादेववाचक अनेक शब्द हैं। महादेवके सहचारी रक्षस् और चन्द्रका भी इस सूक्तमें निर्देश है। इससे स्पष्ट है कि 'रुद्र', 'महादेव' आदि शब्द यहाँ विशिष्ट अर्थमें प्रयुक्त हुए हैं और वह अर्थ मुख्यतया परमात्मा है। क्योंकि वही धाता-विधाता है। इस रीतिसे वेदने भी अपना अर्थ स्वयं प्रकट किया है।

जैसे श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्के 'विश्वरूप'के दर्शनका वर्णन है वैसे ही रुद्रसूक्तोंमें रुद्रस्वरूपी परमेश्वरका विश्वरूप कहा गया है। विश्वरूपदर्शनके प्रसङ्गको लेकर श्रीमद्भगवद्गीता और रुद्रसूक्तकी समानता है। रुद्रके विश्वरूपके प्रसङ्गमें विद्युत्, अग्नि, वात, वायु, सोम, गृत्स, पुलस्ति, भिषक्, सभा, सभापति, वनपति, अरण्यपति, पत्तीनां पति, स्थपति, क्षेत्रपति, गणपति, व्रातपति, शूर, रथी, अरथ, आशुसेन, सेनानी, असिमान्, इषुमान्, धन्वी, सु-आयुध, कवची, अग्रेवध, दूरेवध, अश्वपति, वाणिज, अन्नपति, वृक्षपति, पशुपति, शिल्पी, रथकार, तक्षा, क्षत्ता, सूत, कुलाल, निषाद, परिचर, स्तेन—ये सब रुद्रके रूप हैं, ऐसा रुद्रसूक्तमें कहा है। श्रीमद्भगवद्गीतामें केवल थोड़ी-सी विभूतियाँ कही हैं, रुद्रसूक्तमें उससे कई गुना अधिक वर्णन है और अधिक व्यापक भी है। इन दोनों वर्णनोंकी तुलना करनेसे पाठकोंको पता लगेगा कि श्रीमद्भगवद्गीतामें आत्मा, ब्रह्म, भगवान्, अहम् आदि शब्दोंद्वारा जिस आत्माका वर्णन है, उसीका वर्णन वेदके 'रुद्र' सूक्तोंमें रुद्र-शब्दसे किया गया है।

इसप्रकार तुलना करके देखनेसे रुद्र-देवताका आध्यात्मिक स्वरूप ध्यानमें आ जाता है। वेदमें देवताओंका जो वर्णन है, वह आध्यात्मिक ज्ञान बतानेके उद्देश्यसे ही है। यदि उस वर्णनका आध्यात्मिक भाग न देखा जाय तो वेद पढ़नेसे कोई लाभ नहीं होगा। वेदमें भी यही बात कही है—

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति (ऋग्वेद)

'जो आत्माको नहीं जानता वह वेदमन्त्र लेकर क्या करेगा?' अर्थात् जिसको वेदमन्त्रोंमें आत्माका ज्ञान नहीं दीखता उसको वेदमन्त्रोंसे कोई लाभ नहीं होगा। हमारे धर्मका मुख्य धर्मग्रन्थ वेद है। उस वेदके अध्ययनके विषयमें इतनी अनास्था है कि आध्यात्मिक दृष्टिसे कोई उसका अध्ययन नहीं करता। यह दोष दूर होना चाहिये। आशा है कि विद्वान् लोगोंका चित्त इस ओर आकर्षित होकर इस विषयमें अनास्था शीघ्र दूर होगी और वैदिक धर्मका समुपबृंहण उपनिषद्, इतिहास और स्मृतिशास्त्रोंके द्वारा होगा।

पञ्चाक्षर-स्तोत्र

(अनुवादक—श्रीचन्दूलाल बहेचरलाल पटेल बी० ए०)

ॐ नमः शिवाय

जिन रुद्रभगवान्ने नागोंके इन्द्रका हार धारण किया है, जिनके दो नहीं बल्कि तीन-तीन नेत्र हैं, जिनके शरीरमें हीरा, माणिक और जवाहरके बदले भस्मरूपी विभूति सुशोभित हो रही है, जो ईश्वर ही नहीं, बल्कि महा ईश्वर—महेश्वर माने जाते हैं तथा जो देवोंके भी अधिदेव हैं उन 'न' काररूपी रुद्रभगवान्को नमस्कार है ।

जिन रुद्रपदके गजचर्मका वस्त्रालङ्कार है, जिनकी समस्त वाणी तथा गणलोग पूजा-अर्चा कर रहे हैं, जो तीनों लोकोंके नाथ हैं तथा जिन्होंने त्रिपुर-जैसे असुरका संहार किया है, उन 'म' काररूपी रुद्रपदको नमस्कार है ।

जो शिव पार्वती-जैसी सतीके मुखकमलको विकसित करते हैं, जो शिव सतीके मान-रक्षार्थ दक्ष-जैसे शक्तिशालीके यज्ञको भङ्ग करनेवाले माने जाते हैं, जिनके चन्द्र, सूर्य, वैश्वानर नामक अग्निरूपी तीन नेत्र हैं उन 'शि' काररूपी सौम्य शिवको नमस्कार है ।

जो शिवपद वशिष्ठ, अगस्त्य, गौतम आदि ऋषि-मुनियोंके द्वारा वन्दनीय हैं, जो पर्वतोंके पर्यत गिरिराज हिमालयका अधिष्ठाता हैं, जो समुद्र-मन्थनसे निकले हुए हलाहल विषको पीकर पचा जानेवाले नीलकण्ठ हैं और जिनकी ध्वजामें वृषभका चिह्न है उन 'व' काररूपी शिवपदको नमस्कार है ।

जो यक्षका स्वरूप माने जाते हैं, जिन्होंने जटा धारण किया है, पिनाकरूपी धनुष जिनके हाथमें है, जो सनातन हैं, नित्य हैं, शुद्ध हैं—उन 'य' काररूपी शिवको नमस्कार है ।

श्रीशिव-गीता

(लेखक—श्रीमोतीलाल रविशंकर घोड़ा बी० ए०, एल-एल० बी०)

जिसप्रकार महाभारतमें भगवद्गीता है वैसे ही पद्म-पुराणमें यह श्रीशिव-गीता है । इसमें सोलह अध्याय हैं । भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्ने अर्जुनको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया है, उसी प्रकार इसमें श्रीशिवजीने श्रीरामचन्द्र-जीको तत्त्वज्ञान बतलाया है ।

इस ग्रन्थमें विशेषता यह है कि वेदान्तकी कितनी ही शङ्काओंका इसमें बहुत ही अच्छी तरहसे समाधान किया गया है । यह ग्रन्थ अध्यात्मप्रधान जान पड़ता है । परमात्म-प्रकाशी अविनाशी शिव ही विश्वविलासी हैं । नाम-रूप धारण करके वही सृष्टिरूप होकर अनेकरूप हुए भासित हो रहे हैं । वही अन्तर्यामी प्रभु अनेक नामवाले हैं । वह सर्वेश्वर, सर्वेश हैं । गुरुरूपसे सिद्धान्त ग्रहणकर उपदेशके द्वारा मुमुक्षुके संशयोंको दूरकर, पापोंसे छुड़ाकर, मूल अज्ञानका नाश करते हैं ।

इस ग्रन्थके सोलहों अध्यायोंमें प्रत्येक श्लोकमें शिव दिखलायी देते हैं । प्रथम अध्यायमें सूत और शौनकका संवाद है और उसमें भक्तिकी चर्चा की गयी है । द्वितीय अध्यायमें श्रीअगस्त्य मुनि श्रीरामचन्द्रजीको समस्त पदार्थों-का ज्ञान देते हैं । तीसरेमें श्रीरामचन्द्रजी दीक्षा लेकर शिवजीकी शरण ग्रहण करते हैं । चौथेमें श्रीशिवजीका प्रादुर्भाव होता है और यही उपासनाका प्रभाव है । पाँचवेंमें श्रीरामचन्द्रजी सर्वदेवोंके आयुध तथा अस्त्रादिको प्राप्त करते हैं । छठेमें श्रीशिवजी अपनी विभूतिका निरूपण करते हैं और इसे सूतजी शौनकजीसे कहते हैं । सातवेंमें श्रीशिवजी श्रीरामचन्द्रजीको विश्वरूपका दर्शन कराते हैं । आठवेंमें देहोत्पत्ति-विभागके साथ वैराग्यका निरूपण करते हैं । नवेंमें देहके स्वरूपका बोध कराते हैं । दसवेंमें जीवके स्वरूपका वर्णन करते हैं । ग्यारहवेंमें देहान्तर-गतिका निरूपण करके उपासनाकी मतिका वर्णन करते हैं । बारहवें-में उपासना तथा ज्ञानकी विधिका वर्णन करते हैं । तेरहवेंमें अपरोक्ष-ज्ञानका उपदेश करते हैं, जिससे तत्काल मोक्ष-सिद्धि होती है । चौदहवेंमें किसप्रकार एक आत्मा ग्राह्य होता है यह बतलानेके लिये 'कोशविवेक' का वर्णन किया गया है । पन्द्रहवेंमें मुमुक्षुको स्वस्थ बनानेवाले भक्तियोगका उपदेश दिया गया है । और सोलहवेंमें आसन और जपका सब प्रकारसे विचारकर पूजाके प्रकार प्रदर्शित हुए हैं ।

इसप्रकार यह ग्रन्थ अनुपम ज्ञानप्रद है ।

शिवतत्त्व और शक्तितत्त्व अर्थात् साम्ब सदाशिव

(लेखक—श्रीसुन्दरलाल नाथालाल जोशी)

शिवतत्त्व अर्थात् विश्वमात्रका मूलतत्त्व परम प्रकाश। जिसप्रकार अग्नितत्त्व विभुरूपसे शमी, अरणि आदि पदार्थोंमें गुप्त है उसी प्रकार शिवतत्त्व भी चित्स्वरूपमें प्रकाशमय होते हुए भी विश्वमात्रमें निगूढ़ है। यह निगूढ़ चिति-शक्ति अर्थात् एक दिव्य अप्रकट बल (Divine Potential Energy) है। जिसप्रकार उत्तर और अधर अरणिके मन्थनके द्वारा गुप्त अग्नि प्रकट होती है उसी प्रकार शिवतत्त्वके 'तपस्' के प्रभावसे उसमें मन्थन शुरू होता है और आद्याशक्ति महाविस्फुलिङ्गके रूपमें प्रकट होती है।

शिवतत्त्वकी तपःकला—आत्मपरामर्शकी वृत्ति—स्वरूपोन्मुखी वृत्तिके उद्भवको विमर्श अथवा शक्ति-प्राकट्य कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें कहिये तो निगूढ़ अप्रकट बल (Potential Energy) क्रियारूपमें—प्रकट बलरूपमें—शक्तितत्त्वके रूपमें प्रकट (Kinetic) होता है। शिवतत्त्व प्रकाश-ज्ञानस्वरूप है।

उसमें स्वरूप जाननेकी इच्छा होती है, आत्मपरामर्शका संकल्प उद्भूत होता है। इस संकल्पके उद्भवके साथ 'तपस्' तीव्र बनता है (स ऐक्षत) और विमर्श-रूपमें शक्ति स्फुरित होती है।

शक्ति अर्थात् इस सविता—जगत्प्रसविताका वरेण्य भर्ग। सविता ही शिवतत्त्व है, वरेण्य भर्ग ही सावित्री—शक्तितत्त्व है। शिवतत्त्व परिपूर्ण अग्नि है, शक्ति उस अग्निकी प्रज्वलितावस्थाका एक महाविस्फुलिङ्ग है अर्थात् शिव चित् है, शक्ति चैतन्य है। शिव और शक्ति अविभक्तरूपसे भजनीय हैं।

शिव-शक्ति एक ही तत्त्वके दो महास्वरूप हैं। चित्के बिना चैतन्य नहीं। चैतन्यके बिना चिति अनुभवमें नहीं आती। चितिप्रकाश—परमज्ञान-प्रकाशके बिना जगत्के किसी पदार्थकी प्रतीति नहीं होती। चितिप्रकाशके बिना चैतन्य भी क्रियाशील-अवस्थामें आ नहीं सकता। जैसे चितिके बिना चैतन्य नहीं, वैसे ही शिवके बिना शक्ति भी नहीं। ऐसा होनेसे चैतन्यके बिना, तपस्—ईक्षणा—आत्मपरामर्श अथवा विमर्श-शक्तिके बिना, परम प्रकाश शिव, स्वयम्भू-ज्योति जिसका लिङ्ग अर्थात् चिह्न है वह ज्योतिर्लिङ्गरूप चिति, प्रकाशरूप शिव, अनुभवगम्य नहीं होता।

शिवके स्वरूपको समझनेके लिये 'शक्ति' की उपासना अनिवार्य है और 'शिव' के सान्निध्यके बिना 'शक्ति' की उपासना भी नहीं फलती, साध्य नहीं बनती। इसीलिये मन्त्रशास्त्रमें भी साधकोंने 'शक्ति' की साधनाके लिये 'शिवालय' में—'ज्ञाननिष्ठा'में साधन सिद्ध करनेका आदेश किया है। तान्त्रिक भी इस परम रहस्यका ही अनुसरण करते हैं! शिव और शक्ति अविभक्तरूपमें ही भजनीय हैं, साम्ब सदाशिवके रूपमें ही चिन्तनीय हैं, अर्द्धनारी-नटेश्वर-रूपमें ही व्यवहरणीय हैं। साम्ब सदाशिव ही विश्वरूपमें विराजते हैं, प्रकाश और विमर्शरूपमें विलसित होते हैं।

विश्वमात्र चिन्मय है, चितिमय है।

चितिका प्रकट स्वरूप चैतन्य है।

चिति निष्कलस्वरूपमें शिवतत्त्व है, स-कल स्वरूपमें शक्तिरूप है। निष्कलरूपमें निरुपाधिक चितितत्त्व स-कलरूपमें सोपाधिक चैतन्यरूपमें भासित होता है। चिति चैतन्य बनता है। शिवरूप—अध्यात्मशक्तिरूप अधिदैव बनकर विलास करता है। जगत्मात्र साम्ब सदाशिवकी लीला है, अर्द्धनारी-नटेश्वरकी नृत्यकला है।

वस्तुतः चिति-चैतन्यमें अभेद है। शिव ही जीव है, जीव और शिवमें अभेद है।

शिव-शक्तिकी जय हो! साम्ब सदाशिवको नमस्कार हो!!

ॐ नमः शिवाय शक्तिरूपाय!

ब्रह्मका विश्वनृत्य

(लेखक—पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र एम० ए०, साहित्याचार्य)

शङ्करका नाम 'नटराज' या 'महानट' है। यह विश्व ही उनकी नृत्यशाला है। अपनेको नाना रूपमें प्रकट करनेवाली शक्ति अर्थात् मायाको साथ लेकर वे नृत्य करते हैं। इसका मनोहर वर्णन प्रदोषस्तोत्रमें पाया जाता है, उस स्तोत्रके कुछ श्लोक इसप्रकार हैं—

कैलासशैलभुवने त्रिजगज्जनित्रीं
गौरीं निवेश्य कनकार्चितरत्नपीठे।
नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ
देवाः प्रदोषसमये नु भजन्ति सर्वे॥

वाग्देवी धृतवल्लकी शतमखो वेणुं दधत्पद्मजं
तालोन्निद्रकरी रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता।
विष्णुः सान्द्रमृदङ्गवादनपटुर्देवाः समन्तात्स्थिताः
सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम्॥

गन्धर्वयक्षपतगोरगसिद्धसाध्य-
विद्याधरामरवराप्सरसां गणाश्च।
येऽन्ये त्रिलोकनिलयाः सहभूतवर्गाः
प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्वसंस्थाः॥

नटराजकी मूर्ति अनेक स्थानोंमें पायी जाती है। पर मद्रासके अजायबघरमें एक बड़ी सुन्दर मूर्ति है। इसमें प्रभामण्डलके भीतर नटराजका नृत्य दिखलाया गया है। प्रभामण्डल मायाका संकेत है। ब्रह्म इसे अपने हाथों और पैरोंसे स्पर्शकर शक्तिसञ्चार कर रहा है। एक हाथमें सृष्टि-सूचक डमरू और दूसरेमें प्रलयसूचक अग्नि है। ये दोनों क्रमशः रजोगुण और तमोगुणके द्योतक हैं। उठा हुआ पैर जीवको मुक्ति देता है। वरद हस्त उसी पैरकी ओर संकेत कर रहा है कि इसके शरणमें जा, रक्षा होगी। अभय हस्त 'मा भैषीः' द्वारा अभयदान दे रहा है। ये तीनों, स्थिति अर्थात् सत्त्वगुणके द्योतक हैं। कटिवस्त्र दिक् और कमरमें लगा हुआ सर्प काल है। प्रभामण्डलके चक्रके साथ 'अर' वर्तमान हैं, ये महत् या प्रकृतिसे बुद्धि, मन, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा आदि सृष्टिकी सूक्ष्मावस्थाके द्योतक हैं। चक्रसे लगे हुए पाँच-पाँच स्फुलिङ्गके गुच्छक सृष्टिकी स्थूलावस्था अर्थात् पञ्चतत्त्वके संकेत हैं। सारांश यह कि संसारमें अणु-परमाणुसे लेकर बड़ी-से-बड़ी शक्तिमें जो स्पन्दन दिखलायी पड़ता है वह महानटका नृत्य है। प्रसिद्ध कलावित् श्रीयुत डाक्टर आनन्दकुमार स्वामीने इस नृत्यकी बड़ी अच्छी व्याख्या की है। उसका कुछ अंश इसप्रकार है—

'ईश्वर नर्तक है जो लकड़ीमें छिपी हुई आगकी तरह चेतन और अचेतनमें अपनी शक्तिका सञ्चार करता है और उन्हें नचाता है।'

'नृत्य यथार्थमें ईशकी पञ्चक्रियाओंका अर्थात् सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रहका द्योतक है। अलग-अलग ये ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर और सदाशिवकी क्रियाएँ हैं।'

'उनका स्वरूप सर्वत्र है, उनकी शिव-शक्ति सर्वव्यापिनी है। शिव ही सब कुछ हैं, सर्वव्यापी हैं, इसलिये उनका मङ्गलमय नृत्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उनके पाँच प्रकारके नृत्य सकल और निष्कलरूपमें होते हैं। उनके पञ्चनृत्य उनकी पञ्चक्रियाएँ हैं। अपनी मङ्गलमयी कामना-से वे पञ्चकर्म करते हैं। यही उमासहायका दिव्य नृत्य है। वे जल, अग्नि, वायु और आकाशके साथ नाचते हैं। इस-प्रकार हमारे प्रभु अपने प्राङ्गणमें सर्वदा नृत्य किया करते हैं। प्रभुका यह अनादि और अनन्त नृत्य उन्हें ही दिखलायी पड़ता है जो मायासे ही नहीं, महामायासे भी ऊपर उठ चुके हैं।'

'शक्तिका स्वरूप आनन्द है—(ब्रह्म और मायाका) सम्मिलित आनन्द ही उमाका शरीर है; शक्तिके सकल (सगुण) स्वरूपका विकास—दोनोंका सम्मिलन—ही नृत्य है।'

'उनका शरीर आकाश है। उसमें काला बादल 'अपस्मार' पुरुष है। आठों दिशाएँ उनकी आठ भुजाएँ हैं। तीनों ज्योति उनके तीन नेत्र हैं। इसप्रकार वह आत्म-विकास कर हमारे शरीरको ही सभा बनाकर उसमें नृत्य करते रहते हैं।'

'यह शङ्करका नृत्य है। इसके गम्भीर उद्देश्यका अनुभव तब होता है जब यह हृदय और आत्माके भीतर होने लगता है।'

'इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये ईश्वरके सिवा और सभी विचारोंको हृदयसे निकाल डालना ही पड़ेगा, जिसमें केवल वही निवासकर नृत्य कर सके।'

'शिव संहारकर्ता हैं और श्मशान उन्हें प्रिय है। किन्तु वे संहार किसका करते हैं? कल्पान्तमें वे केवल 'द्यावा-पृथिवी'का ही संहार नहीं करते वरं उन बन्धनोंका भी संहार करते हैं जो प्रत्येक आत्माको बाँधे रहते हैं। श्मशान क्या है और कहाँ है? यह वह स्थान नहीं है जहाँ हमलोगोंका पार्थिव शरीर जलाया जाता है, वरं यह भक्तोंका हृदय है जो वीरान और उजाड़ हो गया है। इस स्थानसे उस स्थान वा दशाका बोध होता है जहाँ उनका अहंकार अथवा माया और कर्म जलाकर भस्म कर दिये जाते हैं। यही श्मशान है जहाँ नटराज नृत्य करते हैं। इसीलिये इनका नाम श्मशानवासी नटराज है।'

नटराजकी मूर्तिके साथ पञ्चाक्षर-मन्त्रकी तादात्म्यता इसप्रकार दिखलायी गयी है—

'उनके चरणोंमें 'न', नाभिमें 'म', स्कन्ध-देशमें 'शि', मुखमण्डलमें 'व' और मस्तकमें 'य' है।'*

पञ्चाक्षरके ध्यानकी दूसरी रीति यों है—

'डमरूवाला हाथ 'श', फैला हुआ हाथ 'व', अभय-हस्त 'य', अग्निवाला हाथ 'न' और अपस्मार पुरुषको दबाकर रखनेवाला पैर 'म' है, पाँचों अक्षरोंके अर्थ क्रमशः ईश्वर, शक्ति, आत्मा, तिरोभाव और मल हैं...। यदि इन पाँचों सुन्दर अक्षरोंका ध्यान किया जाय तो आत्मा उस जगत्‌में पहुँच जायगा जहाँ न प्रकाश है और न अन्धकार। वहाँ शक्तिका शिवमें लय हो जायगा।'

ब्रह्मकी उपासना जब मातृरूपमें की जाती है तब महा-कालके बदले महाकालीका श्मशान नृत्य होता है।† त्याग-की आगसे संस्कृत, विषय-वासनारहित, शून्य हृदय ही श्मशान है। एक बँगला स्तोत्रमें कालीकी स्तुति की गयी है—

'श्मशाननिवासिनी कालिके! तुम्हें श्मशान प्यारा है, इसलिये अपने हृदयको मैंने श्मशान बना लिया है। वहाँ तू अनादि और अनन्त नृत्य कर।'

'माँ! मेरे हृदयमें और कुछ नहीं है। दिन और रात चिता प्रज्वलित रहती है। तेरे शुभागमनके लिये चिता-भस्म मैंने चारों ओर बखेर रक्खा है। मृत्युञ्जय महाकालके ऊपर नृत्य करती हुई तू मेरे हृदयमें प्रवेश कर, जिसमें आँखें बन्दकर मैं तेरा दर्शन कर सकूँ।'

ब्रह्मके नाम और रूपकी जो कुछ अनुभूति हमारे हृदय-में होती है उसके दो रूप हैं—सौम्य और घोर।‡ अबतक केवल घोररूपका वर्णन हुआ है। जब सौम्यरूपमें हम उसकी कल्पना करते हैं तब वह महानट नटवर, मुरलीमनोहर रूप धारणकर अपनी वंशीकी तानसे हमें पागल बना देता है। शब्दब्रह्म अर्थात् सृष्टिका संकेत, महानटका डमरू, नटवरके हाथमें मधुर मुरलीका रूप धारण कर लेता है। महानटके माया-चक्रमें पञ्चमहाभूतोंके जितने स्फुलिङ्ग हैं वे गोपियोंका रूप धारणकर वंशीकी तानपर थिरकने लगते हैं। यहाँ पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ मैं अपने 'विद्यापति'का कुछ अंश उद्धृत कर देता हूँ।

'जो शङ्करके नृत्यका सिद्धान्त है, वही रासनृत्यका भी सिद्धान्त है। शङ्करके रूपमें ब्रह्मके डमरूकी आवाजसे योग-माया आकृष्ट होती है और कृष्णके रूपमें वंशीकी ध्वनिसे आकृष्ट होकर असंख्य जीवात्मा गोपियोंके रूपमें उसके साथ नाचने लगते हैं। शङ्करमूर्तिके नृत्यमें ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, लक्ष्मी, गन्धर्वादि सभी साथ देते हैं। कृष्णरूपमें उन लोगोंके कार्य गोपियाँ ही करती हैं। शङ्करके मङ्गलमय नृत्यमें महानकी विशालता और हृदयको दहलानेवाले ब्रह्माण्डका आडम्बर है, और मदनमोहनकी मूर्तिके साथ कोमलता, सुन्दरता और हृदयको विह्वल कर देनेवाली व्याकुलता है। रासके विषयमें श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥
(१०।२९।१)

---

* उणमाइ विलक्कम् (तामिल ग्रन्थ पद ३३—३५।)

† सिद्धान्तदीपिका, पुस्तक ३, पृ० १३ में 'काली क्या है?' शीर्षक लेख देखिये।

‡ cf. Nature, alma mater; nature red in tooth and claw.

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तैः रक्षास्मांस्तथा भुवम्॥
(दुर्गासप्तशती)

शरद्-ऋतुकी रात भगवान्‌को बहुत अच्छी लगी। देखा, मल्लिकाके फूल चारों ओर खिले हुए हैं। उनके मनमें इच्छा हुई कि योगमायाके साथ विलास किया जाय। 'योग-माया' शब्दके प्रयोगसे ही स्पष्ट है कि विश्वनृत्यका अर्थ अपेक्षित है। यही शङ्करके नृत्यका भी रहस्य है। उस नृत्य-में भी ब्रह्मका ही विलास है, जिसमें माया साथ देती है। रासके सम्बन्धमें ही आगे चलकर शुकदेव मुनि कहते हैं—

'अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंकी स्थितिके भी कारण, भगवान् मनुष्योंके कल्याणके लिये कोई रूप धारण (व्यक्ति) करते हैं। काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य, मित्रता आदि जिस किसी भी हृदयके भावके द्वारा उसपर ध्यान जमाया जाय उसी रूपमें उसमें तन्मयता प्राप्त हो जाती है।' * रासके लिये आयी हुई गोपियोंको भगवान्‌ने कहा कि आपका धर्म पति-पुत्रादिकी सेवा है, आप घर जायँ। उन लोगोंने विकल होकर उत्तर दिया—

'विभो! आप ऐसी कठोर वाणीका प्रयोग न करें। सभी विषयोंका परित्याग कर (अर्थात् हृदयको श्मशान बनाकर) हम आपकी भक्ति कर रही हैं। इसलिये हमलोगोंके प्रति आप अपना हठ परित्याग कर दें। हमलोगोंपर आप वैसी ही कृपा करें जैसी † **मुमुक्षु-ओंपर आदिब्रह्म** किया करते हैं। आप धर्मज्ञ हैं। आपने कहा कि पति, अपत्य और सुहृदोंकी अनुवृत्ति करना तुम्हारा धर्म है। हे धर्मज्ञ! आपसे हमारा यह प्रश्न है कि आप ही बताइये, आप शरीरधारियोंके आत्मा और प्रियतम बन्धु हैं ‡ अथवा नहीं? § यह काव्यकी अलङ्कारयुक्त भाषा है। यदि अलङ्कारको छोड़ दिया जाय तो जीवात्माओं और परमात्माका—माया और ब्रह्मका—रासमण्डल आँखोंके सामने घूमने लगता है। ताण्डव और रास एक ही वस्तुके दो नाम और रूप हैं। अपनी मनोवृत्तिके अनुसार जो जिसे अच्छा लगता है वह उसीको ग्रहण करता है। इस विषयमें महात्मा दादूदयाल कहते हैं—

काया माहइँ खेलइ फाग। काया माहइँ सब बन-बाग॥
काया माहइँ खेलइ रास। काया माहइँ बिबिध बिलास॥

दादूदयालका यह सिद्धान्त नटराज और नटवरके नृत्य-सिद्धान्तके अनुकूल ही है।

महामहोपाध्याय महाकवि विद्यापतिने रासका दिव्य वर्णन किया है। कविका एक पद इसप्रकार है—

बाजत द्रिगि धोद्रिम द्रिमिया।
नटति कलावति माति श्याम सँग
कर करताल प्रबन्धक ध्वनिया।
डग मग डम्फ डिमिकि डिमि मादल
रुनु झुनु मञ्जीर बोल।
किङ्किनि रण रणि वलया कनकनि
निधुवने रास तुमुल उतरोल॥
वीण रवाव मुरज स्वर-मण्डल
सा रि ग म प ध नि सा बहुबिध भाव।
घेटिता घेटिता धुनि मृदङ्ग गरजनि
चञ्चल स्वर-मण्डल करु राव॥
श्रम भर गलित लुलित कवरी युत
मालति माल बिथारल मोति।
समय बसन्त रास रस वर्णन
विद्यापति मति छोमित होति॥

यह मस्त रासका वर्णन है। इस पदमें 'कलावति' शब्द ध्यान देनेयोग्य है। यह आद्याशक्ति–मायाका द्योतक है। इस पदमें राधा और गोपियोंके नामका भी प्रयोग नहीं किया

---

* नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥
कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥
(श्रीमद्भा० १०। २९। १४-१५)

† नटराजके नृत्यके सिद्धान्तसे मिलाइये।

‡ सुहृदं सर्वभूतानाम्। (गीता)

§ मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह! मा त्यजास्मान्
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून्॥
यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा॥
(श्रीमद्भा० १०। २९। ३१-३२)

गया है। किन्तु निम्नलिखित पदमें रासका मधुर और कोमल वर्णन हृदयको अभिभूत कर देता है। पद इसप्रकार है—

मधु-ऋतु मधुकर-पाँति । मधुरकुसुम-मधु-माति ॥
मधुर बृन्दाबन-माँझ । मधुर-मधुर रस-राज ॥
मधुर युवति-गन-संग । मधुर-मधुर रस-रंग ॥
सुमधुर यन्त्र रसाल । मधुर-मधुर करताल ॥
मधुर नटन गति-भंग । मधुर नटिनि-नट संग ॥
मधुर मधुर-रस-पान । मधुर विद्यापति-गान ॥

अणु या परमाणुसे लेकर महान्से महान्में भी जो स्पन्दन और गति है वही नटराज या नटवरका नृत्य है। इसे जानने और समझनेके लिये साधनाकी आवश्यकता है।

नटराज और नटवर, डमरूधर और वंशीधर, हरि और हर, जगत्पिता और जगन्मातामें कोई अन्तर नहीं है। केवल—

'प्रत्ययभेदाद्भिभिन्नवद्भाति' है

तो भी—

उमा राम-गुन गूढ़ पण्डित-मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि-बिमुख न धर्म-रति ॥

योगके प्रवर्तक शिव

(लेखक—स्वामीजी श्रीएकरसानन्दजी सरस्वती)

मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग—इन चारोंके आदिप्रवर्तक भगवान् शिवजी ही हैं। शिवजीके उपदेशामृतसे मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, शावरनाथ, तारानाथ और गैनीनाथ आदि अनेक महात्मा योगबलसे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। चित्तकी वृत्तियोंके निरोधको योग कहते हैं। श्रुति कहती है 'मनोनाशः परमं पदम्,' मनका नाश ही परमपद है। कठोपनिषद्में भी है—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥

मनो जानीहि संसारं तस्मिन् सति जगत्त्रयम् ।
तस्मिन् क्षीणे जगत् क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयत्नतः ॥

'जिस कालमें योगबलसे पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, छठा मन और सातवीं बुद्धि सब शिवपदमें लय हो जाती हैं, उसीको परम गति, मोक्ष, मुक्ति, कैवल्य, अमनस्क और ब्राह्मी स्थिति कहते हैं। मनके उदयसे जगत्का उदय और मनके लयसे जगत्का लय होता है।'

योगी जिसको अनहद शब्द कहते हैं, वेदान्ती उसीको सूक्ष्म नाद कहते हैं, हम उसीको शुद्ध वेद कहते हैं, यह ईश्वरके नामकी महिमा और अनुवाद है। नाममें अनन्त शक्तियाँ हैं। गुरुके बतलाये मार्गसे जो पुरुष नाम-जप करता है, वह परमानन्दरूपी मुक्तिको पाता है। शिवजीने मनके लय होनेके सवा लाख साधन बतलाये हैं, उनमें नामसहित नादानुसन्धान श्रेष्ठ है। साक्षात् श्रीशिवरूप शङ्कराचार्यजीके योगतारावली ग्रन्थमें स्पष्ट लिखा है कि—

सदाशिवोक्तानि सपादलक्ष-
लयावधानानि वसन्ति लोके ।
नादानुसन्धानसमाधिमेकं
मन्यामहे मान्यतमं लयानाम् ॥

नादानुसन्धान ! नमोऽस्तु तुभ्यं
त्वां मन्महे तत्त्वपदं लयानाम् ।
भवत्प्रसादात् पवनेन साकं
विलीयते विष्णुपदे मनो मे ॥

नासनं सिद्धसदृशं न कुम्भकसमं बलम् ।
न खेचरीसमा मुद्रा न नादसदृशो लयः ॥
सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा ।
नाद एवानुसन्धेयो योगसाम्राज्यमिच्छता ॥

सदाशिवजीने मन लय होनेके जो सवा लाख साधन बतलाये हैं उन सबमें नामसहित नादानुसन्धान ही परमोत्तम है। हे नादानुसन्धान ! तुम्हें नमस्कार है। तुम परमपदमें स्थिति कराते हो। तुम्हारे ही प्रसादसे मेरे प्राणवायु और मन विष्णुपदमें लय हो जायँगे। सिद्धासनसे श्रेष्ठ कोई आसन नहीं है। कुम्भकके समान बल नहीं है, खेचरी मुद्राके तुल्य मुद्रा नहीं है। मन और प्राणको लय करनेमें नादके तुल्य कोई सुगम साधन नहीं है। योग-साम्राज्यमें स्थित होनेकी इच्छा हो तो सावधान होकर एकाग्र मनसे नादको सुनो।

हे प्रभो ! मेरा चित्त आपके चेतनस्वरूपमें लय हो जाय, यही वरदान चाहता हूँ। शिवजीकृत ज्ञानसङ्कलिनी ग्रन्थमें लिखा है कि—

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यात्
वायुः स्थिरो यस्य विना निरोधात्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बात्
स एव योगी स गुरु स सेव्यः॥
अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता।
एषा सा शाम्भवी मुद्रा वेदशास्त्रेषु गोपिता॥

जिस महापुरुषके नेत्र और पलकें दृश्यका आश्रय न लेकर भी स्थिर हैं, निरोधके बिना वायु स्थिर है, चित्त बिना अवलम्बनके स्थिर है, इन लक्षणोंवाला पुरुष ही योगी है। वही गुरु होनेयोग्य है तथा सेवा करनेयोग्य है। जब मन हृदयमें ईश्वरके ध्यानमें संलग्न होता है, तथा ध्यानके बलसे नेत्र निमेष-उन्मेषसे रहित हो स्थिर हो जाते हैं तो उसको शाम्भवी मुद्रा कहते हैं। शिवजीने इस मुद्राका चिरकालतक अभ्यास किया है, इसी कारण यह उन्हींके नामसे प्रसिद्ध है।

कुण्डलिन्यां समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित्॥
अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति॥
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
अस्याः स्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥

कुण्डलिनी शक्तिसे गायत्री उत्पन्न होकर प्राणको धारण कर रही है, जो इस गायत्रीरूपी प्राणविद्या महाविद्याको जानता है, वही वेदका ज्ञाता है। इसके सदृश विद्या नहीं, इसके तुल्य जप नहीं, इसके समान अपरोक्ष ब्रह्मका अद्वैत ज्ञान करानेवाला सुगम साधन कोई न हुआ है, न है और न होगा। यह अजपा गायत्रीरूपी ईश्वरका नाम, साधकको जीवन्मुक्त कर देता है।

जब साधक सवा कोटि ईश्वरका नाम-जप लेता है, तब पहले अनहद नाद खुलता है, पीछे शनैः-शनैः अभ्यासके बलसे दसों नाद खुल जाते हैं। नौ नादोंको त्यागकर, दसवें नादमें जो बादलकी गर्जनाके तुल्य गम्भीर है, साधकका मन पूर्ण लय हो जाता है और उसे ब्रह्मका अपरोक्ष-ज्ञान हो जाता है।

श्रीकृष्णभगवान‍्ने भागवतमें स्पष्ट कहा है कि—

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥

'जो चित्त विषयोंका चिन्तन करता है वह विषयोंमें—चौरासी लक्ष योनियोंमें जन्म लेता है और जो चित्त मेरा स्मरण करेगा वह मुझमें लय हो जायगा।' यही मुक्ति है। योगसिद्ध महापुरुषोंने नामकी महिमा अपने अनुभवसे इसप्रकार कही है—

सुरति माहीं जप करे तनसूँ न्यारा जौन।
मिले सच्चिदानंदमें गहे रहे जो मौन॥

योगकी कलाएँ अनन्त हैं। उन सबके पूर्ण ज्ञाता, दयाके समुद्र शिवजी हैं। उनमेंसे कुछ ही योगाधिकारियोंके लाभार्थ लिखी जाती हैं। जिससे शरीर नीरोग रहे, वीर्यकी गति ऊर्ध्व हो, अग्नि दीप्त हो, नाद प्रकट हो, प्राण-अपानकी एकता हो और नामका निर्विघ्न जप हो।

श्रीकृष्ण भगवान‍्के आज्ञानुसार—'सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते', इन लक्षणोंवाला शम-दमादिसम्पन्न पुरुष योगका अधिकारी है। योगके ८४ आसन हैं। उनमें सिद्धासन और पद्मासन—ये दो योगसाधक हैं, शेष ८२ रोग-नाशक हैं। हठयोगके सिद्धासन, प्राणायाम, मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, उड्डियानबन्ध, महामुद्रा, विपरीतकरणी आदि मुद्राओंका गुरुदेवके समीप रहकर अभ्यास करना चाहिये। लेख बढ़नेके भयसे विधि यहाँ नहीं लिखी जाती।

शिवजीने योगाभ्यासियोंके हितार्थ दया करके जो प्राण-विद्यारूपी महाविद्या प्रकट की है, उसके लाभ नीचे लिखे जाते हैं—

काकचञ्च्वा पिबेद्वायुं शीतलं यो विचक्षणः।
प्राणापानविधानज्ञः स भवेन्मुक्तिभाजनः॥
रसनातालुमूलेन यः प्राणमनिलं पिबेत्।
अब्दार्द्धेन भवेत्तस्य सर्वरोगस्य संक्षयः॥
बद्धं मूलबिलं येन तेन विघ्नो विदारितः।
अजरामरमाप्नोति यथा पञ्चमुखो हरः॥
प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगस्य सम्भवः॥
अतः कालभयाद्ब्रह्मा प्राणायामपरायणः।
योगिनो मुनयश्चैव ततो वायुं निरोधयेत्॥

यावद्बद्धो मरुद्देहे यावच्चित्तं निरामयम्।
यावद्दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्ये तावत् कालभयं कुतः॥

रसस्य मनसश्चैव चञ्चलत्वं स्वभावतः।
रसो बद्धो मनो बद्धं किं न सिध्यति भूतले॥

मूर्च्छितो हरते व्याधीन्मृतो जीवयति स्वयम्।
बद्धः खेचरतां धत्ते रसो वायुश्च पार्वति॥

जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वासात्मनो मुनेः।
मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा॥

'जो साधक कौएकी चोंचके तुल्य मुख लम्बा करके शीतल वायु पीता है और जिसने मूलबन्ध खेचरीके अभ्याससे अपानको प्राणमें मिला दिया है, वह मुक्तिका भागी है। जीभको उलटकर तालूमें लगाकर जो साधक जीभसे पूरक करता है और नासिकासे रेचक करता है, उसके सारे रोग आधे वर्षमें नष्ट हो जाते हैं। जिसने मूलबन्ध सिद्ध कर लिया, उसने सारे विघ्नोंका नाश कर डाला। वह महादेवजीके तुल्य अजरामर हो जाता है। विधिपूर्वक प्राणायाम करनेसे सर्व रोग नष्ट होते हैं। प्राणायाममें गलती होनेसे सर्व रोग हो जाते हैं। ब्रह्माजी भी मृत्युके भयसे प्राणायाममें तत्पर हैं। अतएव आजकलके योगी और मुनियोंको भी प्राणका निरोध करना चाहिये। देहमें जबतक कुम्भक है, मन संकल्पसे रहित है, दृष्टि भृकुटीमें स्थिर है, ऐसी अवस्थामें मृत्युका भय नहीं है। पारा और मन स्वभावसे ही चञ्चल हैं। यदि कोई साधक पारेकी गुटिकाको आकाशगामिनी बना ले और मनको संकल्परहित कर दे, तो उस साधकको इस पृथिवीमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। हे पार्वति! प्राणवायु और पारेका एक ही स्वभाव है। जैसे अष्टसंस्कारयुक्त पारा चन्द्रोदयादिके रूपमें मूर्च्छित हुआ सब रोगोंका नाश करता है वैसे प्राणवायु भी कुम्भक-अवस्थामें मूर्च्छित हुआ सब रोगोंका नाश करनेवाला है। गुटिकाके रूपमें पारा और बँधा हुआ प्राणवायु आकाशगमन करता है। जिस साधकने पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ और छठे मनको जीत लिया है, जिसने श्वासको जीत लिया है और जो मेरी अखण्ड धारणा रखता है, उसको कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है। ऐसा भागवतमें श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा है।

योगवासिष्ठमें वशिष्ठजीने नीचे लिखा हुआ रोगनाशक साधन बतलाया है—

सर्वथात्मनि तिष्ठेच्चेत् युक्त्वोर्ध्वाधोगमागमौ।
तज्जन्तोर्हीयते व्याधिरन्तर्मारुतरोधतः॥

'जिसका प्राणवायु पूरक-रेचकको त्यागकर कुम्भकमें स्थित है, ऐसा आत्मारामी महापुरुष, वायुको अन्दर रोकनेसे सर्व रोगोंके नाश करनेमें समर्थ है।

पाठकोंसे प्रार्थना है कि इस लेखको पढ़कर या कोई योगग्रन्थ देखकर योगाभ्यासकी कोई भी क्रिया न करें, क्योंकि इससे हानि होनेकी सम्भावना है। योगाभ्यासी महात्मा या योगाभ्यासी विद्वान्की शरण योगाधिकारियोंको लेनी चाहिये।

आशुतोष

चिदाकास रूप आसमानमैं प्रकासमान,
सुखको निधान सावधान ध्यान धर रे!।
एक है अचिंत जो बिचिंतनीय बिस्व-बीच,
ताकी चिंत करके निर्चिंत चित कर रे!॥
बिपति-बिनास हैहै, संपति-सुपास हैहै,
पारबति-पतिको सुदास ह्वै बिचर रे!।
रहै दुख-दोषहू न, पातक-परोसहू न,
भोरे आसुतोसको भरोस हिय भर रे!॥

अमृतलाल माथुर

तान्त्रिक दीक्षा

(लेखक—एक प्रेमी सज्जन)

पूर्वकालमें उपासना और यज्ञ वैदिक मन्त्रोंद्वारा किये जाते थे, जिससे उनका फल बहुत कालमें मिलता था। कलियुगको छोड़कर और युगोंमें मनुष्यकी आयु अधिक होती थी, इस कारण फल-प्राप्तिमें विलम्ब होनेपर भी विशेष असुविधा नहीं प्रतीत होती थी। परन्तु कलियुगमें मनुष्यकी आयु अल्प होनेके कारण शीघ्र फल प्रदान करनेवाली उपासना-पद्धतिको ढूँढ़ निकालनेकी आवश्यकता हुई, जिससे शरीर-त्यागके पहले-पहले ही फलकी प्राप्ति हो जाय। वैदिक पद्धतिमें एक दूसरा झंझट यह भी था कि मन्त्रोच्चारण यथाविधि और यथास्वर न होनेसे लाभके बदले हानिकी आशङ्का रहती थी। लिखा है—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

अर्थात् मन्त्रोच्चारणमें स्वर या वर्णके प्रयोगका दोष आ जानेपर अथवा मिथ्या प्रयोग होनेपर वह ठीक अर्थका बोध नहीं करता। तब वह वज्रके समान वाक्य यजमानका ही नाश करता है जैसा कि स्वरदोष हो जानेपर वृत्रासुरके शत्रु इन्द्रका नाश न होकर स्वयं प्रयोगकर्ता वृत्रासुर (इन्द्रके शत्रु) का नाश हो गया। फिर वैदिक मन्त्रका यथारीत्या उच्चारण भी बड़ा कठिन है, जिसको सीखनेके लिये एक-एक वेदको बारह-बारह वर्षतक पढ़ना पड़ता था। वैदिक यज्ञका प्रयोग भी अत्यन्त कष्टसाध्य है। उसके अनुष्ठानके लिये बहुत धन-जन तथा सामग्रीकी आवश्यकता होती है जो सर्वसाधारणके लिये सुलभ नहीं है। इधर वैदिक शिक्षाकी प्रवृत्ति भी लोगोंमें कम होने लगी थी। किसी प्रयोगविशेषमें दीर्घ कालतक लगे रहनेका धैर्य भी उनमेंसे जा रहा था। ऐसी अवस्थामें जब कि सुगम सर्वोपयोगी मार्गकी अत्यन्त अपेक्षा थी, भगवान् शिवने तन्त्र अर्थात् आगमशास्त्रकी रचना की और तान्त्रिक दीक्षाका प्रचार किया। गायत्री ब्रह्मका प्रकाश और विद्याशक्ति हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु गायत्रीके द्वारा जिस सगुण उपास्यदेवके साथ ऐक्य-लाभ करना जीवविशेषको अभीष्ट है उसकी दीक्षाका क्रम इस तन्त्रमें दिखलाया गया है। कारण, केवल निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्ति अत्यन्त दुस्साध्य है। लाखोंमें कोई बिरला ही इसका अधिकारी होता है। विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, शक्ति, गणपति और सूर्य आदिकी जो दीक्षा प्रचलित है उसके मन्त्र और विधियाँ सब तन्त्रके अन्तर्गत हैं। तान्त्रिक मन्त्र बहुत छोटे होते हैं, उनके यथाविधि उच्चारणमें भी कोई अड़चन नहीं होती। होमियोपैथिक ओषधिकी मात्राकी भाँति तान्त्रिक मन्त्र जितना ही छोटा होता है उतना ही शक्ति-युक्त होता है। एकाक्षर-बीजमन्त्र और भी अधिक फलप्रद है। तन्त्रके द्वारा एक बहुत बड़ा लाभ यह हुआ कि गायत्री अर्थात् विद्याशक्तिके दस स्वरूपोंका प्रकटीकरण हो गया जिससे विभिन्न रुचिके साधकोंको अपनी उपास्यदेवीके चुननेका अवसर मिल गया। इस तन्त्रदीक्षासे संसारका बड़ा कल्याण हुआ। इसमें स्त्रियों और शूद्रोंको भी समान अधिकार प्राप्त है। इस तान्त्रिक मन्त्र और दीक्षाके अभ्याससे अति शीघ्र इष्टसिद्धि प्राप्त होती है, इसमें कोई अनिष्ट होनेकी आशङ्का नहीं है और इस कलियुगमें तो यह विशेष उपयोगी है। महानिर्वाणतन्त्रमें श्रीआद्याशक्ति श्रीशिवजीसे कहती हैं—

त्वया कृतानि तन्त्राणि जीवोद्धारणहेतवे।
निगमागमजातानि भुक्तिमुक्तिकराणि च॥

अर्थात् इसी कारण जीवोंके उद्धारके निमित्त आपने वेद और शास्त्रके अनुकूल तन्त्रशास्त्रकी रचना की जिससे इस संसारको भुक्ति (भोग) और मुक्ति दोनों मिलें।

तन्त्रशास्त्र श्रुति और स्मृतिके पूर्ण अनुकूल है, किन्तु आजकल जो तन्त्रके नामसे धर्मके प्रतिकूल आचरण किया जाता है वह यथार्थ शिवोक्त तन्त्रकी शिक्षा नहीं है। वह तो आधुनिक लोगोंका कल्पित किया हुआ है; और शिवका नाम उसमें उन्होंने अपनी ओरसे जोड़ दिया है।

नारदपाञ्चरात्र, जिसमें वैष्णवी दीक्षाकी पद्धति और क्रम है, तन्त्रके अन्तर्गत है। पञ्चोपासनाकी दीक्षाके सब मन्त्र अर्थात् श्रीविष्णु, श्रीराम और श्रीकृष्ण आदिके मन्त्र जो दीक्षामें प्रयुक्त होते हैं, तन्त्रसे ही निकले हैं और उनके ऋषियोंके नाम तथा न्यास आदिकी विधि भी तन्त्रमें मौजूद है।

शिवका यथार्थ स्वरूप क्या है ?

(लेखक—पं० श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं
शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ।
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं
विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ॥
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥
पुरत्रये क्रीडति यश्च जीव-
स्ततः सुजातं सकलं विचित्रम् ।
आधारमानन्दमखण्डबोधं
यस्मिँल्लयं याति पुरत्रयञ्च ॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥

उपर्युक्त श्लोकोंसे शिवसम्बन्धी समस्त जाननेयोग्य विषयोंका स्पष्टीकरण हो जाता है । 'शिव' शब्दसे शास्त्रोंने परब्रह्मका ही निर्देश किया है । यह शिव ही परम कल्याण-रूप तथा जीवकी परमा गति हैं । यह शिवतम रस ही 'ब्रह्मानन्दरूपममृतं यद्विभाति' है जिसके अत्यन्त सामान्य-तम अंशको पाकर देवता, मनुष्य तथा समस्त जीव परमानन्दका उपभोग करते हैं । यह आनन्द ही समस्त जीवोंका जीवन है । यह आनन्द ही शिवका स्वरूप है और इसी कारण शिवका एक नाम 'सदानन्द' है । इन शिवस्वरूप परब्रह्मके दो रूप हैं—एक सगुण, दूसरा निर्गुण । जब वह मायोपहित होते हैं तभी सगुण ब्रह्म या ईश्वर कहलाते हैं, तथा जब वह मायोपाधिसे शून्य होते हैं तब निर्गुण कहलाते हैं । यही सच्चिदानन्द शिव जब प्रकृतिको स्वीकार करते हैं तब उनसे अनूपरूप अनिर्वचनीय एक महाशक्तिका प्रादुर्भाव होता है । यही महाशक्ति सृष्टिका मूल उपादान है । इस शक्ति-संयुक्त शिवसे ही महत्तत्त्व या नाद उत्पन्न होता है और उससे अहङ्कार या बिन्दुकी उत्पत्ति होती है । यह प्रकृति और ब्रह्म अभिन्न-भावसे मिलकर अखिल संसारको बारम्बार उत्पन्न और ध्वंस करते हैं । इनमें चैतन्य और अहङ्कार अङ्गाङ्गी-भावसे प्रकाशित रहते हैं । इसी कारण इनके युगलभावकी शास्त्रोंमें 'अर्द्धनारीश्वर' नामसे व्याख्या की गयी है । चैतन्ययुक्त अहङ्कार एवं अहङ्कारयुक्त चैतन्य, इन्हीं दो भावोंमें इनकी पूजाकी व्यवस्था भी शास्त्रोंमें वर्णित है । जो चैतन्ययुक्त अहङ्कारकी उपासना करते हैं वे इनको पुम् देवता शिवादिके रूपमें, तथा जो अहङ्कारयुक्त चैतन्यकी उपासना करते हैं वे स्त्री देवता गौरी आदिके रूपमें इनकी कल्पना करते हैं । वस्तुतः ये स्त्री या पुरुष नहीं हैं; ये तो उभयात्मक होते हुए भी इन उभय अवस्थाओंसे अतीत रूपमें नित्य विराजमान रहते हैं । शारदातिलकमें लिखा है—

निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः ।
निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः ॥

सच्चिदानन्द ब्रह्मयुक्त आद्याशक्तिसे नाद या महत्तत्त्व उत्पन्न होता है और उस नादसे अहङ्कार-तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, यह पहले ही कहा जा चुका है । यह बिन्दु अथवा अहङ्कार सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे तीन प्रकारका है । इसीलिये शिवकी भी तीन अवस्थाएँ कही जाती हैं । पुनः यह तीनों मिलकर जब एक हो जाते हैं तब वही परम बिन्दु या परम शिव कहलाता है । सुतरां वह परम शिव कभी सत्त्वगुणयुक्त अथवा चिन्मय पुरुषरूपमें, कभी तमोगुणयुक्त अर्थात् प्रकृतिमय, एवं कभी रजोगुणयुक्त अर्थात् उभयात्मक शिवशक्तिमयरूपमें प्रतीत होते हैं । इन्हींको ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति और क्रियाशक्तिके नामसे पुकारते हैं । इन्हीं तीन भावोंसे भावित हो यह शक्तित्रय गौरी, ब्राह्मी और वैष्णवी नामसे पुकारी जाती हैं ।

इन्हीं तीन शक्तियोंसे त्रिगुण और गुणत्रयके अधीश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शिव उत्पन्न होते हैं । गुणत्रयके साथ ब्रह्मा, विष्णु और शिव जब अभेदरूपसे मिल जाते हैं तभी वह 'महेश्वर' कहलाते हैं । यह महेश्वर ही महाप्रणव हैं । प्रणवमें जैसे अकार, उकार, मकार, नाद, बिन्दु, कला और कलातीत यह सात अङ्ग हैं उसी प्रकार शिवके प्रकाशित (व्यक्त) पञ्चमुख तथा अन्य दो अप्रकाशित (अव्यक्त) मुख हैं, यह सतमुख ही प्रणवके रूप हैं ।

शिवका प्रथम मुख अकार है, इसे 'तत्पुरुष' कहते हैं, द्वितीय मुख उकार या 'अघोर' है, तृतीय मुख मकार या 'सद्योजात' है, चतुर्थ मुख नाद या 'वामदेव' है, पञ्चम मुख बिन्दु या 'ईश्वर' है, षष्ठ मुख कला या 'नीलकण्ठ' है, सप्तम मुख कलातीत या चैतन्य है। यह सप्तम मुख ही कलातीत अव्यक्त अथवा अनिर्देश्यस्वरूप है। ब्रह्मा ही महाप्रणवके रूपमें शिवके प्रथम रूप हैं। इन्हीं ब्रह्मासे चतुर्वेद प्रकाशित होते हैं। विष्णु द्वितीय मुख हैं। रुद्र तृतीय मुख हैं, ईश्वर चतुर्थ मुख हैं, महेश्वर पञ्चम मुख हैं, परशिव षष्ठ मुख हैं तथा सप्तम मुख शिवशक्तिसम्मिलित महा महेश्वर अथवा कलातीता माहेश्वरीरूप है।

यही सर्वप्रथम ब्रह्माके रूपमें वेदका प्रकाशकर जगत्‌को ज्ञानदान करते हुए उसके लिये मुक्तिके मार्गका निर्देश करते हैं। यही जगद्गुरु शिवके रूपमें स्वयं साधक बन जगत्‌के जीवोंको साधनाकी शिक्षा देकर उनके लिये मुक्ति-पथका द्वार खोल देते हैं। परमब्रह्मके साथ जीव जितने प्रकारोंसे योगयुक्त हो सकता है उन समस्त योग-मार्गोंका निर्देशकर वह सब योगोंके आचार्यके रूपमें अपनेको प्रकट करते हैं।

शिवके सप्तमुख ही सप्त आम्नायके गुरु हैं। प्रथम आम्नायका ज्ञेय कुण्डलिनी या प्रकृति है। उसकी साधना है मन्त्रयोग और हठयोग। द्वितीय आम्नायके ज्ञेय परमात्मा है, उसकी साधना भक्तियोग और लययोग है। तृतीय आम्नायका ज्ञेय काल है, उसकी साधना है क्रियायोग और लक्ष्ययोग। चतुर्थ आम्नायका ज्ञेय विज्ञान है, उसकी साधना ज्ञानयोग है। पञ्चम आम्नायका गम्य शून्य है, उसकी साधना परायोग और संन्यास है। षष्ठ आम्नायका गम्य ब्रह्म है, उसकी साधना शाम्भवी और अमनस्कयोग है। सप्तम आम्नायका गम्य परम ब्रह्म है, उसकी साधना सहज या मोक्षयोग है।

ये शिव जगत्‌के ज्ञानदाता गुरुके रूपमें जीवोंके लिये सहज ही प्राप्त हैं। अन्य देवताओंकी आराधनामें बहुत प्रयासकी जरूरत है, परन्तु इनकी पूजामें बहुत-से आयासका प्रयोजन नहीं होता। ये क्षिति, अप्, तेज, मरुत्, व्योम, मन, बुद्धि, अहङ्कार—इन अष्टमूर्तियोंको धारणकर जीवोंका नानाप्रकारसे प्रतिपालन करते हैं। हम जिधर देखते हैं, जो कुछ करते हैं, जो कुछ सोचते हैं अथवा उपभोग करते हैं, यह समस्त द्रव्य या भाव इन्हींके प्रकटित (व्यक्त) चैतन्यसे पूर्ण हैं अथवा इनके चैतन्यके ही परिणाम हैं। यही दयानिधि जगत्‌के पिता-माता सदाशिव जीवके कल्याण-के लिये भिखारीका वेष धारणकर प्राणियोंके लिये भुक्ति और मुक्तिकी भिक्षा माँगते हैं। किससे भिक्षा माँगते हैं? वे माँगते हैं अन्नपूर्णासे, जिनमें शरीर, प्राण, मन, बुद्धिके सर्व प्रकारके अन्न वर्तमान रहते हैं। परन्तु जो शिवगणोंसे आत्म-मन्त्रको प्राप्तकर शिवस्वरूप हो गये हैं वे ही इस सर्वशक्तिके केन्द्र महामाया जगदम्बाके निकट जगत्‌के जीवोंके लिये हाथ पसार सकते हैं। इसमें उनके अपने प्रयोजनकी सिद्धिका कोई उद्देश्य नहीं होता। वे 'बहुजनहिताय', उन जीवोंके सब प्रकारके दारिद्र्य और भयको हरनेवाली जगदम्बासे अञ्चल पसारकर भिक्षा माँगते हैं—

> जाया सुतः परिजनोऽतिथयोऽन्नकामा
> भिक्षां प्रदेहि गिरिजे क्षुधिताय मह्यम्।

भक्तकी यह भूख केवल अपने प्रयोजनकी सिद्धिसे ही नहीं मिटती। उनकी दृष्टि महान् होती है, अतः वह केवल स्त्री-पुत्रके लिये ही प्रार्थना करके निश्चिन्त नहीं होते; परिजन, अतिथि एवं पृथिवीमें जहाँ जो कोई भी अतृप्त जीव व्याकुल होकर प्राणोंकी भूख मिटानेके लिये छटपटा रहे हैं, उन सबके लिये अन्नकी व्यवस्था किये बिना भक्त स्थिर नहीं हो सकते। इसी कारण शिवको शास्त्रोंमें जगद्गुरु कहा है। वह साधकोंकी साधनाका धन होते हुए भी, किसप्रकार इष्ट-साधनमें प्राणपणसे प्रयत्न किया जाता है, किसप्रकार मनुष्य संसारमें ही असंसारी हो सकता है, किसप्रकार अभावकी दारुण दावाग्निमें पड़कर भी ध्यानमग्न हो सकता है, इसका दृष्टान्त भी अपने ही अन्दर हमें देते हैं। इसी कारण शिव जगद्गुरु कहलाते हैं। वह देवोंके देव होते हुए भी, जीव जिससे उनका अनुकरण करके कृतार्थ हो सके, ऐसा विचार-कर गृही, भिखारी और योगी बनकर हमारे समक्ष दृष्टान्त-रूपसे उपस्थित हैं। जीवोंका ऐसा उपकार करनेवाला दूसरा कोई देवता नहीं है। पाठक जानते हैं कि शिव परमदेव होते हुए भी श्मशानमें अस्थिमाला पहनकर क्यों बैठे हैं? जो श्मशानमें रहेगा उसे अस्थियोंकी माला पहननी ही पड़ेगी। देहकी अस्थियोंमें, विशेषतः मेरुदण्डके बीच अजस्र प्राण-प्रवाहिका नाड़ियोंमें प्राणरूपसे शिव ही विराजमान हैं। पुनः यह प्राण जब शोधित होकर स्थिर, अचञ्चल हो जाते हैं तब देहाभिमानके संयोगसे नाना वासनाएँ जीवको व्याकुल

नहीं कर सकती, तब उसका मन अमन हो जाता है, अन्तः-करण शुद्ध हो जाता है, सांसारिक वासनाएँ प्रज्वलित ब्रह्माग्निमें भस्म हो जाती हैं, तब उसी भस्मका लेपकर जीव शिव बन जाता है, तब यह महाशून्य ही उसका आवासस्थान हो जाता है। यह महाशून्य ही श्मशान है। वहाँ नाम नहीं है, रूप नहीं है, अहङ्कार नहीं है, देहाभिमान नहीं है, सुख-दुःख-भोग नहीं है। अनन्त महाशून्यमें सर्वशून्यरूपमें आत्मा प्रतिष्ठित है। वही परमव्योम अथवा शिवरूप सच्चिदानन्द-ब्रह्मकी मूर्ति है।

वह अलिङ्ग होते हुए ही लिङ्गस्वरूप हैं, नहीं तो मोहान्ध जीव उनको प्राप्त ही कैसे कर सकता ? इस लिङ्ग शब्दसे केवल जननेन्द्रियका ही बोध नहीं होता—

आकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका।
आलयं सर्वदेवानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते॥

अणिमादि अष्टगुण तथा समस्त देवता जिसमें शयन अथवा अवस्थान करते हैं वही 'शिव' है। यह आकाश ही उसका लिङ्ग है और पृथिवी उसकी पीठिका है। मन इस आकाशमें विलीन होनेपर ही परमा सिद्धिको प्राप्त हो सकता है। पीठस्थान पृथिवी अथवा मूलाधार है। इस मूलाधार या पृथिवी-तत्त्वसे आकाशतत्त्व पर्यन्त जीवभाव और देवभाव है, उसके बाद जब 'शून्ये विशति मानसे'—अर्थात् मन महाशून्यमें मिलकर सर्वशून्य हो जाता है, तो उस अवस्था-को ही श्मशान कहते हैं। इस श्मशानमें जानेपर जीव फिर जीव नहीं रह जाता, उस समय उसका कोई चिह्न, या लिङ्ग नहीं रहता, वह अलिङ्ग हो जाता है। यह अलिङ्ग ही ब्रह्मपद है।

इसके बाद यह कहना है कि शिव त्र्यम्बक और त्रिपुरारि क्यों कहलाते हैं ? सूर्य, चन्द्र और अग्नि यही उनके तीन नेत्र हैं। सूर्य प्राणस्वरूप है, चन्द्र मनस्वरूप है और अग्नि बुद्धिस्वरूप है, इन तीनोंके एकत्वकी ही जीवसंज्ञा है। जब साधनाके द्वारा प्राण शुद्ध हो जाता है तथा प्राणकी शुद्धिसे मनःशुद्धि होती है एवं मनकी शुद्धिसे बुद्धि विशुद्ध होती है, तभी अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरणके शुद्ध होनेसे प्रज्ञानेत्र खुल जाते हैं। यह प्रज्ञानेत्र जिनके स्वतः ही स्फुरित हैं वे ही त्र्यम्बक या शिव हैं।

जीवमात्रके स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीररूप त्रिपुर विद्यमान हैं। स्थूल देहकी अवस्था जाग्रत् है, सूक्ष्मकी स्वप्न है और कारण-शरीरकी अवस्था सुषुप्ति है। इसी त्रिपुर-से अभिमानयुक्त होकर जीव त्रिपुरासुर बन बैठा है। शिवशक्तिके सहयोगसे जो समरस उत्पन्न होता है उसी समरसमें समस्त दैवशक्ति निहित रहती है। इस समरस-भावापन्न साधकको फिर स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरमें अहंबोध नहीं रहता। साधनके बलसे इस अवस्थाके प्रकटित होते ही यह शिवस्वरूप हो जाता है और साथ-साथ उसके अनादि जन्म-मरणका बीज कारण देह एवं तत्सम्भूत सूक्ष्म, स्थूल देहोंके पुनः-पुनः आगमनका निरोध हो जाता है। जो साधक अपने कारणादि त्रिपुरमें आगमनका निरोध कर सकते हैं वही त्रिपुरारि हैं। यह त्रिपुरारि सर्वदेव-पूज्य हैं। अखिलात्माके साथ तब वह एकात्मता प्राप्तकर महेश्वर-रूपमें पूजित होते हैं।

धन्य-धन्य !

सत्य सनातन साधनसे, जन जो अति पातकहीन हुआ।
और महागुण-सागरका, जिसका मन मंजुल मीन हुआ॥
पा करके वरदान अहो, जगमें नहिं दुर्बल-दीन हुआ !
है 'कविपुष्कर' धन्य वही, पगमें शिवके लवलीन हुआ॥

जगन्नारायणदेव शर्मा, 'विशारद' साहित्यशास्त्री
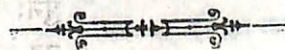
शिव और शक्ति

(लेखक—श्रीयुत स्वामी रामदासजी)

शिव और शक्ति—ये परम शिव अर्थात् परम तत्त्वके दो रूप हैं। शिव कूटस्थ तत्त्व है और शक्ति परिणामिनी है। विविध वैचित्र्यपूर्ण संसारके रूपमें अभिव्यक्त शक्तिका आधार एवं अधिष्ठान शिव है। शिव अव्यक्त, अदृश्य, सर्वगत एवं अचल आत्मा है। शक्ति दृश्य, चल एवं नामरूपके द्वारा व्यक्त सत्ता है। शक्ति-नटी शिवके अनन्त, शान्त एवं गम्भीर वक्षःस्थलपर अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका रूप धारण-कर तथा उनके अन्दर सर्ग, स्थिति एवं संहारकी त्रिविध लीला करती हुई नृत्य करती रहती है।

अब प्रश्न यह होता है कि परमात्माके इन दोनों स्वरूपोंके सर्वोच्च एवं व्यापक ज्ञानके द्वारा मुमुक्षुको मोक्ष एवं अक्षय सुखकी प्राप्ति किसप्रकार होती है?

शिवका साक्षात्कार करना व्यष्टि-भावको लाँघकर ऊँचा उठना है। इस व्यष्टि-भावके अन्दर उपाधियुक्त एवं व्यावहारिक जीवनका ज्ञान रहता है, जो अज्ञान एवं दुःख-का कारण है। शक्तिके चरणोंमें आत्मसमर्पण करना ही शिवके साक्षात्कारका साधन माना गया है। यहाँ आत्म-समर्पणका अर्थ है देहाभिमान अथवा अहंबुद्धिसे सर्वथा ऊपर उठ जाना। जीवनके सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों ही रूपोंमें जो कुछ भी क्रियाएँ, परिवर्तन एवं चेष्टाएँ होती हैं, सब शक्तिके ही कार्य हैं। और यह शक्ति वह ईश्वरीय तत्त्व है जो समस्त चराचर जगत्में व्याप्त है तथा जो स्वयं जगत्-के रूपमें अभिव्यक्त है। इस तत्त्वके समझनेसे यह अवस्था प्राप्त होती है।

आत्मसमर्पण अर्थात् व्यष्टि-बुद्धिको शिवके समष्टि-तत्त्वमें विलीन कर देनेसे जब आत्माको परमात्माके शिव-तत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है तब उसे उस परम शिवके पूर्ण स्वरूपकी समग्ररूपेण उपलब्धि होती है जो शिव और शक्ति दोनों है और दोनोंसे परे भी है। तब जीव व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकारके तत्त्वोंके ज्ञान तथा उनके संयोगमें निरतिशय स्वतन्त्रताका अनुभव करता है और अमृतत्वके आनन्दका उपभोग करता है।

इस परम तत्त्व—परम शिवके दुरारोह पदको प्राप्त करनेके लिये साधक पूजा, आराधना, यज्ञ, तप एवं उनके परिणामस्वरूप दिव्य मूर्तियोंके दर्शन यह सब कुछ करता है। मनुष्यकी आकांक्षा एवं पुरुषार्थका यह चरम फल है। इस दुरारोह एवं अनिर्वचनीय पदपर आरूढ़ होकर भगवत्-प्राप्त पुरुष अपने आत्माके अन्दर सबके आत्माको और सबके शरीरको अपने शरीरमें देखता है। वह उस परम तत्त्वके अन्दर अव्यक्त शिव एवं व्यक्त शक्ति दोनोंको सर्वथा अभिन्नरूपमें देखता है।

यह स्पष्ट है कि जीवके लिये पहली सीढ़ी शान्त, स्थिर, शिवतत्त्वके अगाध समुद्रमें गहरा गोता लगाना तथा उसके अन्दर अपनेको विलीन कर देना है। क्योंकि उस निर्लेप, निर्विकार सत्ता—शिवकी वास्तविक एकताका अनुभव किये बिना प्रत्यक्षमें भिन्न एवं विरोधी प्रतीत होनेवाले सारे पदार्थों-की एकता एवं अभेदका बोध सम्भव नहीं है।

शिव और शक्ति एक दूसरेसे उसी प्रकार अभिन्न हैं, जिसप्रकार सूर्य और उसका प्रकाश, अग्नि और उसका ताप तथा दूध और उसकी सफेदी। शिवकी आराधना शक्तिकी आराधना है और शक्तिकी उपासना शिवकी उपासना है। इन दो परस्परविरोधी एवं प्रतिद्वन्द्वी प्रतीत होनेवाले तत्त्वों, शिव और शक्तिकी विषमता एवं विरोधका सामञ्जस्य ही परमात्मतत्त्वका रहस्य है। इस पहेलीको समझना अथवा सुलझाना ऊँची-से-ऊँची बुद्धिवाले मनुष्यकी भी शक्तिके बाहर है। इस रहस्यको समझना स्वयं रहस्यमय बन जाना है।

'जानत तुमहिं, तुमहिं है जाई'

मृत्युञ्जय

(लेखक—श्रीयुत श्रीधर मजूमदार एम० ए०)

नश्वर शरीरका परिवर्तन मृत्यु है। परिवर्तनसे छुटकारा पाना मृत्युको जय करना है। किसी अक्षर पदार्थमें परिणत हो जाना इसका साधन है। इसी अक्षर पदार्थको उपनिषद् 'अनन्त आत्मा', 'परमाकाश', 'प्रत्यक् चैतन्य' या 'सदाशिव' कहकर पुकारते हैं और यही ब्रह्मका सत्-स्वरूप है। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

> यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
> विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
> यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
> तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥
> (८।११)

'वेदके जाननेवाले जिसको 'अक्षर' कहते हैं, ईश्वरप्राप्तिका यत्न करनेवाले वीतराग पुरुष जिसके अन्दर प्रवेश करते हैं, जिसको चाहनेवाले ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस पदको तुम्हें संक्षेपसे कहूँगा।' उपनिषद्में इस प्रत्यक् चेतनको 'ॐ' नामसे अभिहित किया गया है। यथा—

> सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति
> तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
> यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
> तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि। ओमित्येतत्॥
> (कठ० उ० १। २। १५)

'सम्पूर्ण वेद जिसका प्रतिपादन करते हैं, जो समस्त धर्मोंका लक्ष्य है और जिसको चाहनेवाले ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं उस पदको संक्षेपसे कहूँगा। उसीको 'ॐ' कहते हैं।'

यद्यपि वह आंशिकरूपसे अनुभवगम्य है तथापि ससीम जीव उस असीम, अक्षर पदार्थका पूर्णतया ग्रहण नहीं कर सकता। पाश्चात्य दार्शनिक पण्डित, हर्बर्ट स्पेंसर तथा उन लोगोंने जो अति-प्राकृतिक विषयको अज्ञेय सिद्ध करते हैं (Agnostics), जिस वस्तुको 'अविज्ञात' कहा है, उसका और इस उपनिषद्वेद्य वस्तुका स्वरूप बिल्कुल एक-सा ही प्रतीत होता है। कहा है—

> अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं
> शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्॥
> तमादिमध्यान्तविहीनमेकं
> विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।
> (कैवल्य० उ० १। ६-७)

अर्थात् वह ब्रह्म अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्तरूप, सदाशिव, प्रशान्त, अविनश्वर, विश्वपिता, अनादिमध्यान्त, निर्द्वन्द्व, अरूप, चिन्मय, आनन्द-स्वरूप और आश्चर्यमय है। और भी कहा है—

> यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
> अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥
> (केन० उ० २। ३)

अर्थात् जिन लोगोंकी यह धारणा है कि ब्रह्म बोधगम्य नहीं है वही उसको जानते हैं और जो उसे बोधगम्य समझते हैं वे भ्रममें हैं अर्थात् उसे नहीं जानते। ज्ञानवान् पुरुष उसे 'अविज्ञात' कहते हैं और अज्ञानी 'विज्ञात' कहते हैं। इसी बातकी निम्नलिखित श्लोकसे पुष्टि होती है—

> नैव चिन्त्यं न चाचिन्त्यं न चिन्त्याचिन्त्यमेव तत्।
> पक्षपातविनिर्मुक्तं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥

अर्थात् वह चिन्त्य भी नहीं है और अचिन्त्य भी नहीं है और न चिन्त्य एवं अचिन्त्य दोनों ही है। ऐसी धारणा होनेपर ही पक्षपातरहित परमब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

यह प्रत्यक्-चेतन, सर्वान्तर्यामी आत्मा बाह्य प्रपञ्चके अन्दर और उसकी आड़में विद्यमान है; जैसे तिलमें तेल, काष्ठमें अग्नि और दूधमें मक्खन रहता है। तिलके प्रत्येक भागमें तेल है, परन्तु उसका इन्द्रियद्वारा ग्रहण नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रत्यक्-चेतन बाह्य प्रपञ्चमें सर्वत्र है, परन्तु इन्द्रियद्वारा उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। वही विश्वकी बाह्य और आभ्यन्तर दिशा है और उसीके आधारपर बाह्य प्रपञ्च स्थित है। वह वाणीसे व्यक्त नहीं हो सकता, उसका व्यापित्व कल्पनातीत है। वह स्वयं परमानन्दमय है; बस, उस आनन्दकी प्राप्ति हो जानेपर जीवात्मा परम सुखी हो जाता है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दमेतज्जीवस्य यज्ज्ञात्वा मुच्यते बुधः॥
सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्।

(ब्रह्म० उ० ३५)

अर्थात् जहाँसे वाणी और मन असफल होकर लौट आते हैं वही प्राणियोंका परमानन्दस्थल है। मनीषिगण जिसे जानकर मुक्त होते हैं वह सर्वव्यापी आत्मा दूधमें मक्खनके सदृश प्रत्येक वस्तुमें वर्तमान है।

जाग्रत्-अवस्थामें हमलोगोंके देहमें क्षुद्र अहंभावका उदय होता है। यही भाव हमलोगोंको ससीम बना देता है, इसका नाश कर देनेसे सर्वव्यापी असीम अहंभावका उदय होता है। उपनिषद् कहते हैं कि ससीम अहंभावके पर्देके अन्दर सर्वव्यापी असीम अहंभाव विराजित है। जैसे अगाध समुद्रका जल ऊपरकी तरङ्गोंसे आच्छादित रहता है उसी प्रकार सर्वव्यापी, असीम अहंभाव ससीम अहंभावसे आवृत है। कहा भी है—

ब्रह्मादिकीटपर्यन्ताः प्राणिनो मयि कल्पिताः।
बुद्बुदादिविकारान्तस्तरङ्गः सागरे यथा॥

(आत्मबोध० उ० १४)

अर्थात् जीवधारी क्षुद्रातिक्षुद्र कीटसे लेकर ब्रह्मातक मेरे (परम अहंके) अन्दर कल्पित हैं, जैसे समुद्रके विकार—बुद्बुद् और लहर इत्यादि समुद्रमें ही रहते हैं।

क्षुद्र अहंभावको दमन करनेसे हमारे अन्दर असीम अहंभावका ज्ञान उत्पन्न होता है, अर्थात् सब प्रकारकी चिन्ताओंसे रहित होनेपर ही हमारा चित्त स्थिर होता है; जैसे प्रशान्त सागरका जल बाहरी तरङ्गोंके तिरोधान होनेपर ही ज्ञात होता है—

मनसा मन आलोक्य वृत्तिशून्यं यदा भवेत्।
ततः परं परब्रह्म दृश्यते च सुदुर्लभम्॥

(योगशिखा० उ० ६। ६२)

अर्थात् स्थिर चित्तसे चञ्चल चित्तकी ओर दृष्टि रखनेसे जब वृत्ति शून्य अवस्थाको प्राप्त होती है तब सुदुर्लभ परब्रह्मका दर्शन होता है।

हम ज्ञानेन्द्रियोंसे बाह्य जगत्का अवलोकन करते हैं। परन्तु ये सब इन्द्रियाँ अर्थात् नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक् इत्यादि तबतक कर्म नहीं कर सकतीं जबतक कि चित्त उनका अनुवर्ती न हो। उदाहरणार्थ, हमलोगोंके नेत्र अच्छी तरह खुले हों और किसी वस्तुपर एकटक भी लगे हुए हों, परन्तु चित्त यदि किसी अन्य वस्तुकी चिन्तामें निमग्न है तो हमलोग उस वस्तुको कदापि नहीं देख सकेंगे। अन्यान्य इन्द्रियोंकी भी यही रीति है। इसलिये चित्तकी वृत्ति रुक जानेसे जिसे चित्तकी एकाग्रावस्था कहते हैं, सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियाँ कर्मसे (बाह्य-प्रपञ्चके ग्रहणसे) अनायास ही विरत हो जाती हैं। साथ ही बाह्य-प्रपञ्चके दृश्योंका अनुभव भी नहीं होता है। परिवर्तनशील बाह्य-प्रपञ्चके तिरोधानसे अपरिवर्तनीय प्रत्यक्-चैतन्यका प्रकाश होता है और उसमें स्थित होना ही मृत्युञ्जयकी अवस्था है। उपनिषद्में कहा है—

नित्यः शुद्धो बुद्धमुक्तस्वभावः
सत्यःसूक्ष्मः सन् विभुश्चाद्वितीयः।
आनन्दाब्धिर्यः परः सोऽहमस्मि
प्रत्यग्धातुर्नात्र संशीतिरस्ति॥

(मैत्रेय० उ० १। ११)

अर्थात् मैं निःसन्देह वही परब्रह्म हूँ जो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, प्रकृत, अदृश्य, सर्वान्तर्वर्ती, अद्वितीय, आनन्दसागर और इन्द्रियग्राह्य विषयसमूहके अन्तरालमें स्थित है।

सीमाबद्ध अहंभाव शरीरके परिवर्तनका कारण है, क्योंकि यह चिन्तास्रोतका परिचालक है और चित्तकी गति शरीररचनाकी अनुगामिनी है। एक कहावत भी है कि 'जैसा रूप वैसा मन'। उपनिषदोंके अवलोकनसे पता लगता है कि मृत्यु-समयके चिन्तनके कारण उसी चिन्ताके सदृश पुनर्जन्म होता है। कहा भी है—

देहावसानसमये चित्ते यद्यद्विभावयेत्।
तत्तदेव भवेज्जीव इत्येवं जन्मकारणम्॥

(योगशिखा० उ० १। ३१)

'देहावसानके समय चित्तमें जिस भावनाका उदय होता है उसीके अनुसार प्राणी इस संसारमें जन्म लेता है और यही पुनर्जन्मका कारण है।' इसलिये पुनर्जन्मसे छूटनेका उपाय बाह्य चिन्ताके अभ्याससे विरत होना ही है।

प्रत्यक्-चैतन्यको उपलब्ध करनेकी भी यही रीति है। यदि हम चाहें तो निश्चय ही ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं

कि जिससे मृत्युके समय हमारे चित्तमें किसी प्रकारकी चिन्ताका उदय न हो।

अवासनं स्थिरं प्रोक्तं मनो ध्यानं तदेव च।
तदेव केवलीभानं शान्ततैव च तत् सदा॥
(अन्नपूर्णा० उ० १। २९)

अर्थात् चित्तकी शान्त अवस्था वासनाशून्यताका ही नाम है। भगवद्ध्यान, आत्माकी निःसीम अवस्था और अविराम शान्ति भी यही है।

हमलोगोंकी जीवनभरकी विज्ञता केवल पार्थिव वस्तु-विषयक ही होती है। मृत्युके समय इसप्रकारकी चिन्ता संसारमें पुनर्जन्मका कारण होती है। अतः मुक्ति प्राप्त करनेके लिये हमें बाह्यसंसारके चित्रको हृदय-पटलसे सर्वथा हटा देना उचित है।

नैवाहमिति निश्चित्य निदाघ! कृतकृत्यवान्।
न भूतं न भविष्यच्च चिन्तयामि कदाचन॥

हे निदाघ! मेरे अहंभावका अस्तित्व ही नहीं है, यह विचारकर मैं कृतकृत्य हो गया हूँ और भूत-भविष्यकी चिन्ता कभी नहीं करता। (रिभ-मुनि और उनके शिष्य निदाघके बीच—अन्नपूर्णोपनिषद्—अध्याय ५, ६७ में इसप्रकारके वार्तालापका उल्लेख है।) प्रत्यक्-चेतनमें स्थिति-को स्थायी रखनेके उद्देश्यसे हमें उस सर्वान्तःप्रवेशी आधारपर जो परमाकाश और प्रत्यक्-चैतन्यके नामसे प्रसिद्ध है, पूर्ण निर्भरता और विश्रामका अभ्यास करना चाहिये। कहा भी है—

सर्वाधिष्ठानसन्मात्रे निर्विकल्पे चिदात्मनि।
यो जीवति गतस्नेहः स जीवन्मुक्त उच्यते॥
(अन्नपूर्णा० उ० २। २७)

'जो समस्त पदार्थोंके आश्रयस्थल, निर्विकल्प, चिन्मय, सत्स्वरूप आत्माके अन्दर जीवन धारण करते हैं वही जीवन्मुक्त हैं।' बाह्य जगत्‌के त्यागके अभ्याससे चित्त शान्त होता है और इसीको चित्तका नाश कहते हैं। प्रत्यक्-चेतनमें स्थित होना भी इसीका नाम है। वही परमानन्दस्थल है, जहाँ पहुँच जानेपर फिर पुनर्जन्मकी आशङ्का नहीं रहती और जिसे अमरत्वकी प्राप्ति भी कहते हैं। उपनिषदोंकी घोषणा है कि सर्वव्यापी प्रत्यक्-चेतनरूप आत्माकी दृढ़ धारणासे मृत्युपर विजय प्राप्त होती है।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते॥
(कठ० उ० १। ३। १५)

अर्थात् अशब्द, अस्पृश्य, अरूप, अव्यय, रसरहित, नित्य, अगन्धवत्, अनादि, अनन्त और बाह्य प्रपञ्चके अन्दर अवस्थित, नित्य वस्तुको जानकर मनुष्य मृत्युके मुखसे मुक्त होता है। इसी भावमें स्थित होनेको मृत्युञ्जय शिव-रूपमें अवस्थान होना कहते हैं और इसी भावमें स्थित होना ही हमलोगोंका चरम उद्देश्य है। कहा भी है—

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
न वा बन्धनं नैव मुक्तिर्न भीतिः
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
(श्रीशङ्कराचार्यप्रणीत निर्वाणषट्क ६)

'मैं (परम अहं) निराकार और निर्विकल्पस्वरूप हूँ, मैं सारी इन्द्रियोंका प्रभु और सर्वव्यापी हूँ, मुझे न तो बन्धन है, न उससे मुक्ति अपेक्षित है और न किसी प्रकारका भय है। मैं चिन्मय, आनन्दस्वरूप शिव हूँ।'

भोलानाथ

रसनामें महामधु घोल कहीं तृणसे लघुको भी सराहते हैं।
रच नाटक भावुकताका कहीं हम प्रीतिकी रीति निबाहते हैं॥
जिसमें कुछ भी न गभीरता है उसको गुणसे अवगाहते हैं।
जगको ठगके अब भोला! सुनो तुमको ठगना हम चाहते हैं॥

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

ब्रह्मा-विष्णु-कृत शिव-स्तवन

किसी एक सर्गके आदिमें महासमुद्रके अन्दर भगवान् शेषशायी नारायणके नाभिकमलमेंसे ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन्होंने आते ही भगवान् विष्णुसे पूछा कि आप कौन हैं? इसपर शेषशायी बोले कि यह जो कुछ दृश्य प्रपञ्च है वह सब मेरा ही रूप है और मैं ही इन सबका प्रभु हूँ। यह कहकर उन्होंने ब्रह्माजीसे उनका परिचय पूछा। ब्रह्माजीने कहा कि मैं भी आपहीकी तरह विश्वका आदिकर्ता, प्रजापति हूँ और मेरा नाम भी नारायण है। तब दोनोंने ही एक दूसरेके शरीरमें प्रवेशकर एक दूसरेकी थाह लेनी चाही, किन्तु दोनों ही इस कार्यमें असफल रहे और एक दूसरेकी अनन्ततापर आश्चर्य करने लगे। इतनेमें ही दोनों क्या देखते हैं कि बालसूर्यके समान कान्तिवाले, अपरिमेयात्मा, भूतपति महादेव त्रिशूल हाथमें लिये और स्वर्णके समान जगमगाते हुए वस्त्र धारण किये उधर आ रहे हैं। उन्हें देखकर ब्रह्माजी सम्भ्रमपूर्वक भगवान् विष्णुसे पूछने लगे कि ये अलौकिक तेजस्वी पुरुष कौन हैं जो इधर आ रहे हैं। इनका तेज पृथिवी और अन्तरिक्षमें व्याप्त हो रहा है और इनके भयङ्कर पादप्रहारसे समुद्रका जल उद्वेलित हो रहा है। भगवान् विष्णु बोले—जिनके पादाघातसे उछले हुए जलराशिसे स्वयं पद्मयोनि भीग रहे हैं और जिनके प्रबल निःश्वासवायुसे मेरी नाभिसे उत्पन्न हुआ कमल आपके सहित कम्पित हो रहा है ये संहारकर्ता, अनादिनिधन ईश्वर-भगवान् शङ्कर हैं। आओ, हमलोग मिलकर इनकी पूजा करें और स्तुतिके द्वारा इन्हें सन्तुष्ट करें।

ब्रह्माजीने इस बातको माननेमें जरा आनाकानी की। भगवान् विष्णु उनसे कहने लगे—'भाई! ऐसा मत कहो। ये मायायोगेश्वर, वरप्रद एवं दुराधर्ष हैं; ये ही जगत्के एकमात्र हेतु, अव्यय पुराणपुरुष हैं; ये जीवसमूहोंके जीवन एवं एकमात्र ज्योतिरूपसे प्रकाशमान हैं; प्रधान, अव्यय, ज्योति, अव्यक्त, प्रकृति, तमोगुण—ये सब इन्हींके नाम हैं; योगिजन दुःखार्त होकर इन्हीं परब्रह्ममूर्ति शिवका ध्यान करते हैं। ये बीजी (बीज स्थापन करनेवाले) हैं, आप बीज हैं और मैं सनातन योनि हूँ। इनसे महत्तर कोई वस्तु है ही नहीं; ये महत्तरोंके भी परम आश्रय एवं अध्यात्मज्ञानियोंकी भी गति हैं। ये क्रुद्ध होनेपर हम दोनोंको बात-की-बातमें, निःश्वासमात्रसे दग्ध कर सकते हैं। आओ, हमलोग इन्हें इस रूपमें जानकर इनकी स्तुति करें।' यह कहकर दोनों बड़ी देरतक शङ्करकी स्तुति करते रहे।

इनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर श्रीविष्णुको लक्ष्य करके बोले—"हे विष्णो! हे शाश्वत देव!! व्यक्त, अव्यक्त, स्थावर, जङ्गम, यह जो कुछ भी परिदृश्यमान जगत् है वह सारा-का-सारा रुद्रनारायणात्मक है। मैं अग्नि हूँ तो आप सोम हैं, मैं दिन हूँ तो आप रात्रि हैं, मैं सत्य हूँ तो आप ऋत (सत्य सङ्कल्प) हैं, आप यज्ञ हैं तो मैं उसका फल हूँ, आप ज्ञान हैं तो मैं ज्ञेय हूँ, आपको सन्तुष्टकर भक्तजन मेरे अन्दर प्रवेश करते हैं। आप प्रकृति हैं तो मैं पुरुष हूँ; आप मेरे आधे शरीर हैं, तो मैं आपका आधा शरीर हूँ; आपका श्रीवत्सलाञ्छन वामपार्श्व मैं हूँ और मेरे श्यामल दक्षिणपार्श्व आप हैं, इसीसे मुझे लोग 'नीललोहित' कहते हैं। आप मेरे हृदय हैं और मैं आपके हृदयमें स्थित हूँ।* आप समस्त कार्योंके कर्ता हैं और मैं उनका अधिष्ठातृदेव हूँ।" यह कहकर देवाधिदेव वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

इस इतिहाससे श्रीशिवका परमेश्वर होना और शिव-विष्णुमें अभेद सिद्ध है।

---

* प्रकाशश्चाप्रकाशश्च जङ्गमं स्थावरञ्च यत्। विश्वरूपमिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम् ॥२०॥
मां विशन्ति त्वयि प्रीते जनाः सुकृतकारिणः। आवाभ्यां सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये ॥२२॥
वामपार्श्वमहं मह्यं श्यामं श्रीवत्सलक्षणम्। त्वं च वामेतरं पार्श्वं त्वहं वै नीललोहितः ॥२४॥
त्वं च मे हृदयं विष्णो! तव चाहं हृदि स्थितः ॥२५॥ (वायुपु० अ० २५)

शिव-तत्त्व-विचार

(लेखक—श्रीविनायक नारायण जोशी, साखरे महाराज)

किसी भी देवताका नाम सुनते ही उसका शास्त्रप्रतिपादित आकार याद आ जाता है। 'विष्णु' शब्दके श्रवणसे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण की हुई श्याम-सुन्दर-आकृति मनमें उतर आती है। 'गणपति' शब्दके श्रवणसे गज-वदन और विशाल उदरकी आकृति ध्यानमें आ जाती है। उसी प्रकार राम, शङ्कर, कृष्ण आदि शब्दोंके श्रवणसे उनके आकार मनमें आ जाते हैं। मनुष्यके विषयमें भी यही बात है; परन्तु थोड़ा-सा विचार करनेपर यह बात ध्यानमें आ जायगी कि केवल मनमें आ जानेवाला अथवा दृष्टिगोचर होनेवाला आकार ही वाच्य-पदार्थ नहीं होता। उदाहरणार्थ, किसी पुरुषका पिता मरणोन्मुख-दशामें है, उसका पुत्र—वह पुरुष परदेशमेंसे पिताके दर्शनके लिये आ रहा है; परन्तु दुर्दैवसे उसके दरवाजे-पर आते-आते पिताकी मृत्यु हो गयी। पुत्रने यथाविधि पिताका देह-संस्कार किया तथापि वह शोक प्रकट करते हुए अपने मित्रसे कहता है कि 'मैं इतनी शीघ्रतासे यहाँपर आया, परन्तु अभाग्यवश पिताजीसे भेंट न हो सकी।' इन सब बातोंसे यही बात निश्चित होती है कि पिताके केवल स्थूल शरीरको ही वह पिता नहीं समझता था बल्कि पितृशरीरमें जो चैतन्य जीव था उसे ही वह पिता मानता था।

अब यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि 'जीव' क्या चीज है? इसका निर्णय जीवकी ही बुद्धिसे होना प्रायः असम्भव है। हाथ-पैर आदि आँखोंसे दिखलायी पड़ते हैं, इसलिये उनका प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रियोंके द्वारा हो सकता है; परन्तु 'जीव' पदका वाच्यार्थ इन्द्रियोंके अगोचर होनेके कारण उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होना सम्भव नहीं है। अदृश्य पदार्थोंके ज्ञानके लिये श्रुतिकी ही शरण लेनी पड़ती है। कहा भी है—'अदृष्टार्थे श्रुतिरेव बलीयसी।' मृत पुरुषकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी कौन है, इसका निर्णय सामान्य बुद्धिके मनुष्यसे नहीं हो सकता; इसके लिये कायदा-कानूनके जानकार न्यायाधीशकी ही आवश्यकता होती है। और न्यायाधीश भी मनमाना निर्णय नहीं कर सकता, उसे कानूनके अनुसार चलना पड़ेगा; क्योंकि उत्तराधिकार अदृश्य होनेसे उसकी गतिको केवल कानून (शास्त्र) ही जान सकता है। इसी प्रकार जीव और जीवाधिपति शिवका यथार्थ स्वरूप बतलानेका एकमात्र अधिकार भी श्रुति-माताको ही है।

जीवके स्वरूपके सम्बन्धमें श्रुतिका अभिप्राय केवल श्रुति-वाक्योंसे ही जान लेना सामान्य जीवोंकी बुद्धिके परेकी बात है। उस अभिप्रायको जाननेके लिये, उपनिषद्-वाक्योंके तात्पर्यका निर्णय करनेवाले भगवान् बादरायणाचार्य और उनके सूत्रोंके भाष्यकारोंके ग्रन्थोंके आधारपर ही हमें विचार करना चाहिये। इन महापुरुषोंका यही कहना है कि स्थूल शरीरके भीतर सर्व स्थूल शरीरव्यापी अन्तःकरण—बुद्धि-तत्त्व है, यह अपञ्ची-कृत पञ्चमहाभूतोंके सत्त्वगुणके अर्ध भागका कार्य है। वैसे ही प्रत्येक भूतके सत्त्व गुणके अर्ध भागसे श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ सत्त्वगुणके ही कार्य हैं। पञ्च महाभूतोंके रजोगुणके अर्ध भागसे पञ्चप्राण और पञ्च-कर्मेन्द्रियाँ हुई हैं। पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, पञ्च-प्राण और अन्तःकरण इन सोलह पदार्थोंके समुदायको सूक्ष्म-लिङ्गशरीर कहते हैं। इनमें पञ्चप्राण और पञ्चकर्मेन्द्रियाँ ज्ञानशून्य हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य पदार्थोंका ज्ञान करा देती हैं, ऐसा प्रतीत होता है; तथापि उनमें अन्तःकरणके ज्ञान-स्रोतसे ही ज्ञान-शक्ति आती है। सूक्ष्म विचारसे यही निश्चित होता है कि अन्तःकरणकी ज्ञान-रूप वृत्ति ही ज्ञानेन्द्रियों-द्वारा बाहर जाकर शब्दादि बाह्य स्थूल पदार्थोंको विषय करती है अर्थात् उन पदार्थोंका ज्ञान करा देती है। यहाँ-पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पञ्चमहाभूत जड हैं, उनके सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुआ अन्तःकरण भी जड होना चाहिये; ऐसे जड अन्तःकरणमें ज्ञान कैसे हो सकता है? इसका समाधान यह है कि श्रुति-वचनोंसे यह सिद्ध है कि जगत्का कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म ज्ञानरूप ही है। ब्रह्म-शब्दकी व्युत्पत्तिसे उसकी निरतिशय व्यापकता सिद्ध होती है, अर्थात् ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें वह व्याप्त न हो। उपर्युक्त स्थूल-सूक्ष्म संघातोंमें भी ब्रह्म व्याप्त है। जिसप्रकार बिजलीके तारोंमें प्रकाश सर्वत्र व्याप्त रहनेपर भी वह चाहे जहाँसे प्रकट नहीं हो पड़ता, प्रत्युत जहाँ उसमें 'बल्ब' जोड़ा जाता है वहीं प्रकट होता है; उसी प्रकार जितने अंशमें ज्ञानरूप ब्रह्मके साथ अन्तःकरणका सम्बन्ध होता

है उतने ही अंशमें उसके सामान्य ज्ञानकी अभिव्यक्ति होती है। इसीको शास्त्रीय परिभाषामें 'आभास' कहते हैं। और अन्तःकरणरूप उपाधिमें जो ब्रह्मांश होता है उसे उसकी प्रकाशकताके कारण 'साक्षी' निर्विकारताके कारण 'कूटस्थ' व्यापकताके कारण 'आत्मा' और 'पारमार्थिक जीव' संज्ञाएँ प्राप्त हुई हैं। अर्थात् अन्तःकरणव्याप्त ब्रह्मांश कूटस्थ+अन्तःकरण+आभास=जीव है। यह जीव 'जीव' पदका वाच्य है और केवल कूटस्थ जीव-पदका लक्ष्य है। वास्तवमें कूटस्थ अपरिच्छिन्न, निर्विकार ब्रह्म ही है, परन्तु अन्तःकरण-उपाधिके कारण उसे जीवत्व-धर्म प्राप्त हो जानेसे अन्तःकरणके सर्व धर्म भ्रमसे कूटस्थमें भासने लगते हैं। अर्थात् अन्तःकरणकी परिच्छिन्नता, काम, संकल्प, सुख-दुःख, धर्माधर्म, श्रद्धा-अश्रद्धा आदि धर्म अन्तःकरणमें अभिव्यक्त हुए आत्मप्रकाशमें--जिसे ऊपर 'आभास' कहा गया है—भासते हैं; और आभासके अज्ञानसे ये ही गुण ब्रह्मरूप आत्मामें भासने लगते हैं। दर्पणके दाग या मलके दोष प्रतिबिम्बमें दिखायी देते हैं तथापि वे दोष होते हैं दर्पणमें ही, न कि प्रतिबिम्बमें। वैसे ही स्थूल-सूक्ष्म संघातों-के धर्म वास्तवमें 'आभास' में न होते हुए भी 'आभास' उन धर्मोंको अपने ही मानता है, यही जीवका जीवत्व है और इसीका नाम संसार है!!

जैसा कि लेखके प्रारम्भमें कह आये हैं, 'देवदत्त' कहते ही देवदत्तके शरीरका स्थूल आकार दृष्टिके सामने आ जाता है। वैसे ही विष्णु, शङ्कर, गणपति आदि देवताओंके नामोच्चारणके साथ ही उनके आकार दृष्टिके सामने आ जाते हैं। विचार करनेपर जिसप्रकार यह निश्चित होता है कि देवदत्तका स्थूल शरीर ही देवदत्त नहीं है उसका चैतन्य-विशिष्ट स्थूल-सूक्ष्म शरीर-संघात ही देवदत्त है, उसी प्रकार देवताओंके नाम सुननेसे उनके जो-जो आकार मनमें आ जाते हैं केवल वे ही देवता नहीं हैं; बल्कि यह समझना चाहिये कि उनके आकारविशिष्ट चैतन्यके ही 'शङ्कर' 'विष्णु' आदि नाम हैं। ऐसे ईश्वरके अनुग्रहसे ही जीवको गुरुद्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। अब ईश्वरके स्वरूपके विषयमें शास्त्र क्या कहते हैं, इसका विचार करेंगे।

संसारका अर्थ है जन्म-मरणका प्रवाह। जीव इस प्रवाहमें बहा जा रहा है, इस संसारके दुःखसे मुक्त होनेके उद्देश्यसे ही वह जीवनभर कष्ट सहन करता है; परन्तु जब-तक ईश्वरके अनुग्रहसे वैराग्य उत्पन्न होकर श्रोत्रिय गुरुके उपदेशसे जीव-ब्रह्मके ऐक्यका ज्ञान निस्सन्दिग्धभावसे हृदयमें उदित नहीं होता तबतक अन्य किसी भी उपायसे सांसारिक दुःखकी सर्वथा निवृत्ति नहीं हो सकती, इस बातकी घोषणा यह 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' श्रुति कर रही है।

जिस ईश्वरके प्रसादसे वैराग्य आदिकी प्राप्ति होकर जीव जन्म-मरणरूप संसार-दुःखसे निवृत्त हो जाता है और निरतिशय आनन्दरूप मोक्षको प्राप्त करता है उस ईश्वरके स्वरूपको अवश्य जान लेना चाहिये। जैसे ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि कूटस्थ, अन्तःकरण, आभास, इन तीनोंको मिलाकर जीव कहते हैं, वैसे ही शास्त्रकारोंने, शुद्धब्रह्म+माया+आभास=ईश्वर—इसप्रकार ईश्वरका स्वरूप स्थिर किया है। जिसप्रकार जीवके अन्तःकरण-उपाधिमें काम-क्रोध, सुख-दुःख, धर्माधर्म आदि रहते हैं, परन्तु भासते हैं कूटस्थमें; उसी प्रकार शास्त्र यह भी प्रतिपादन करता है कि ईश्वरस्वरूपकी माया-उपाधिमें अचिन्त्य ऐश्वर्य, दयालुत्व, भक्तपर अनुग्रह करना आदि जो अनन्त गुण हैं वे सब अधिष्ठान--शुद्ध ब्रह्ममें भासमान होते हैं।

जीव और ईश्वरके स्वरूपमें तीन-तीन ही पदार्थ हैं तथापि जीव अन्तःकरणोपलक्षित अविद्या-उपाधिके अधीन रहता है और ईश्वरानुग्रहसे मुक्त होनेतक वह अपनेको दीन-दुखी मानता है। परन्तु ईश्वरके सम्बन्धमें इसके विपरीत स्थिति है, अर्थात् ईश्वरस्वरूपकी माया-उपाधि ईश्वरके अधीन होनेसे ईश्वर नित्य-मुक्त है।* यद्यपि जेलमें जेलर और कैदी दोनों ही रहते हैं तथापि जेल जेलरके अधीन रहता है और कैदी जेलके अधीन रहता है। जेलरूप उपाधि दोनोंकी समान है तथापि कैदीका उपास्य जेलर है, वैसे ही जीव और ईश्वरकी उपाधि अकेली माया होनेपर भी माया ईश्वरके अधीन होनेसे मायाविशिष्ट परमात्मा अर्थात् कल्याणकारक शिव ही सर्व जीवोंके उपास्य हैं। यही मायाविशिष्ट परमात्मा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये शिव, विष्णु, गणपति, राम, कृष्ण आदि रूप धारण करते हैं। मायाविशिष्ट ईश्वर

* जीवेशावाभासेन करोति माया। माया चाविद्या च स्वयमेव भवति।

'माया अपने स्वरूपमें आभासको लेकर जीव और ईश्वर (भेद) करती है। जीव-भेद करते समय उसी मायाकी 'अविद्या' संज्ञा होती है।'

शिवपदका वाच्य है और शुद्ध ब्रह्म शिव-पदका लक्ष्य है ऐसा—

आनन्दरूपः सर्वार्थसाधकत्वेन हेतुना।
सर्वसम्बन्धवत्त्वेन सम्पूर्णः शिवसंज्ञितः॥
(शिवपुराण)

—भगवान् व्यासजीने वर्णन किया है। जिसे ईश्वरानुग्रहसे आचार्य—गुरुके द्वारा असन्दिग्धभावसे ऐसा बोध होता है कि शिवपदका लक्ष्य जो शुद्ध ब्रह्म—परमात्मा है वही मेरा आत्मा है, वह शरीरपात होनेतक जीवन्मुक्तिका सुख-लाभ करता है और देहपातके अनन्तर विदेह—कैवल्यपदको प्राप्त होता है।

कुछ बेसमझ लोग यह कुशङ्का करते हैं कि मंगलस्वरूप भगवान् शिव जो सर्व ऐश्वर्योंका परित्याग कर दरिद्रके समान रहते हैं, श्मशानमें वास करते हैं और शरीरमें भस्म रमाकर व्याघ्रचर्म परिधान करते हैं, यह सब क्यों? इसका रहस्य, सूत्रभाष्यकी 'रत्नप्रभा' टीकामें श्रीरामानन्दस्वामीने निम्नलिखित श्लोकमें खोला है—

श्रीगौर्या सकलार्थदं निजपदाम्भोजेन मुक्तिप्रदं
प्रौढं विघ्नवनं हरन्तमनघं श्रीढुण्ढितुण्डासिना।
वन्दे चर्मकपालिकोपकरणैर्वैराग्यसौख्यात्परं
नास्तीति प्रदिशन्तमन्तविधुरं श्रीकाशिकेशं शिवम्॥

इसका सार यही है कि इस वृत्तिको धारणकर श्रीशङ्करने यही सूचित किया है कि वैराग्यसुखसे बढ़कर और कोई सुख नहीं है।

उपर्युक्त विवेचनसे यही सिद्ध हुआ कि शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा ही 'शिव' पदका लक्ष्य है और मायाविशिष्ट परमात्मा शिवपदका वाच्य है। वाच्यार्थकी अपेक्षा लक्ष्यार्थ श्रेष्ठ होता है, यही नियम है। शिवपुराणमें व्यासजीने देवताओंमें शिवको सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। यह सर्वश्रेष्ठत्व वहाँ शिवपदके लक्ष्यार्थकी दृष्टिसे है। इसी प्रकार विष्णुपुराणमें अन्य देवताओंकी अपेक्षा विष्णुभगवान्‌की जो श्रेष्ठता वर्णन की गयी है वह भी लक्ष्यार्थकी दृष्टिसे ही है। और इसी दृष्टिसे गणपति, राम, कृष्ण आदि देवताओंकी श्रेष्ठताका वर्णन है। जिस पुराणमें जिस देवताकी सर्वश्रेष्ठताका वर्णन किया गया है वह लक्ष्यार्थकी दृष्टिसे ही है और उसमें जो अन्य देवताओंकी निकृष्टताका वर्णन किया गया है वह वाच्यार्थकी दृष्टिसे है। जिसे इसका यथार्थ ज्ञान होता है उसे पुराणोंके वाक्योंमें परस्पर विरोध नहीं प्रतीत हो सकता और न वह अन्य देवताके उपासकोंसे विरोध ही कर सकता है।

शिवमय जगत्

(रुद्रहृदयोपनिषद्‌से)

जो ब्रह्म रुद्रहृदयकी महाविद्यासे प्रकाशित है उस ब्रह्ममात्रमें स्थित होनेके मार्गका मैं अवलम्बन करता हूँ।

हृदय अर्थात् रुद्रहृदयोपनिषद्, कुण्डली (योगकुण्डली उपनिषद्), भस्म (भस्मजाबालोपनिषद्), रुद्राक्षगण-दर्शन (रुद्राक्षजाबालोपनिषद्, गणपत्युपनिषद् तथा श्रीजाबालदर्शोपनिषद्), तारसार (तारसारोपनिषद्), महावाक्य (महावाक्योपनिषद्), पञ्चब्रह्म (पञ्चब्रह्मोपनिषद्), अग्निहोत्रक (प्राणाग्निहोत्रोपनिषद्) ये सब ब्रह्मविद्याप्रतिपादक उपनिषद् हैं। श्रीशुकदेवजीने व्यासजीके चरणोंमें सिर नवाकर उनसे पूछा कि सब देवताओंमें कौन-से देवता विराजमान हैं, सारे देवता किस एक देवताके अन्दर हैं और किसकी सेवा करनेसे सब देवता मुझपर प्रसन्न होंगे? शुकदेवजीके इस प्रश्नको सुनकर उनके पिता व्यासजी बोले कि रुद्रदेवता सर्वदेवात्मक हैं और सारे देवता शिवस्वरूप हैं। रुद्रके दक्षिण-पश्चिममें सूर्य, ब्रह्मा और तीन अग्नि हैं; वामपार्श्वमें उमादेवी, विष्णु और सोम—ये तीन देवता हैं। जो उमा हैं वही स्वयं विष्णु हैं, जो विष्णु हैं वही चन्द्रमा हैं। जो गोविन्दको नमस्कार करते हैं वे शंकरको ही नमस्कार करते हैं। जो भक्तिपूर्वक हरिकी पूजा करते हैं वे भगवान् वृषभकेतु (शंकर) को पूजते हैं। जो भगवान् त्रिलोचनसे द्वेष करते हैं वे भगवान् जनार्दनसे द्वेष करते हैं। जो रुद्रको नहीं जानते वे केशवको भी नहीं जानते। रुद्रसे बीज प्रवर्तित होता है और विष्णु बीजकी योनि हैं। जो रुद्र हैं वे स्वयं ब्रह्मा हैं, जो ब्रह्मा हैं वही अग्नि हैं। रुद्र ब्रह्मा और विष्णुके स्वरूप हैं। सारा जगत् अग्निसोमात्मक है।

जितने पुरुष हैं वे सब भगवान् रुद्र हैं और समस्त नारी-जाति भगवती उमाका स्वरूप है। समस्त चराचर जीव उमा और रुद्रके स्वरूप हैं। व्यक्त जगत् सब उमारूप हैं और अव्यक्त तत्त्व महेश्वर हैं। उमा और शंकरका योग 'विष्णु' कहलाता है। जो उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार करता है वह आत्मा (जीव), परमात्मा (ब्रह्म) और अन्तरात्मा (अन्तर्यामी) इन तीनों प्रकारके आत्माको जानकर परमात्माका आश्रय ग्रहण करता है। अन्तरात्मा ब्रह्मा हैं, परमात्मा महेश्वर हैं, सब प्राणियोंकी सनातन आत्मा विष्णुभगवान् हैं। पृथ्वी-पर विविध प्रपञ्चरूप छोटी-मोटी शाखावाले त्रिलोकरूपी वृक्षके अग्र, मध्य और मूल विष्णु, ब्रह्मा और महेश हैं। कार्य विष्णु हैं, क्रिया ब्रह्मा हैं और कारण महेश्वर हैं। रुद्र भगवान्ने प्रयोजनके लिये एक ही मूर्तिको तीन रूपोंमें विभक्त किया है। धर्म रुद्ररूप है, जगत् विष्णुरूप है और सर्वज्ञान ब्रह्मारूप है। जो 'रुद्र, रुद्र, रुद्र' इसप्रकार रुद्र भगवान्को पुकारता है वह संस्कारी जीव है। सर्वदेवरूप रुद्रभगवान्के कीर्तनसे सब पापोंका नाश हो जाता है।

रुद्र पुरुष हैं और उमा स्त्री हैं। इससे उन दोनोंको नमस्कार है। रुद्र ब्रह्मा हैं, उमा सरस्वती हैं, इससे उनको नमस्कार है। रुद्र विष्णु हैं, उमा लक्ष्मी हैं, इन स्वरूपोंमें उनको नमस्कार है। रुद्र सूर्य हैं, उमा छाया हैं, इससे उनको नमस्कार है। रुद्र सोम हैं और उमा तारा हैं, इस स्वरूपमें उनको नमस्कार है। रुद्र दिवस हैं, उमा रात्रि हैं, इस स्वरूपमें उनको नमस्कार है। रुद्र यज्ञ हैं उमा वेदी हैं, इस रूपमें उनको नमस्कार है। रुद्र अग्नि हैं और उमा स्वाहा हैं, इस स्वरूपमें उनको नमस्कार है। रुद्र वेद हैं और उमा शास्त्र हैं, इस स्वरूपमें उनको नमस्कार है। रुद्र वृक्ष हैं, उमा लता हैं, इस स्वरूपमें उनको नमस्कार है। रुद्र गन्ध हैं, उमा पुष्प हैं, इस रूपमें उनको नमस्कार है। रुद्र अर्थ हैं और उमा अक्षर हैं, इस रूपमें उनको नमस्कार है। रुद्र लिंग हैं और उमा पीठ हैं, इस रूपमें उनको नमस्कार है। सर्वदेवरूप रुद्रको विभिन्न रूपोंमें नमस्कार करके इन मन्त्रोंद्वारा ईश और पार्वतीको नमस्कार करता हूँ।

उपासक जहाँ कहीं भी हो, अर्थज्ञानपूर्वक इस मन्त्रका उच्चारण करे। ब्रह्महत्या करनेवाला जलके बीचमें खड़ा हो-कर इस मन्त्रका जाप करे तो वह सब पापोंसे छूट जाता है। सबका आश्रयरूप, सनातन परब्रह्म सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित है तथा सत्, चित्, आनन्दरूप है। वह वाणी और मनका विषय नहीं है। उसको सब प्रकारसे जाननेसे, हे शुकदेव! इस सारे दृश्य-प्रपञ्चका ज्ञान प्राप्त होता है। सब कुछ उन्हींका स्वरूप होनेसे उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है।

दो विद्याएँ जाननेयोग्य हैं—एक परा, दूसरी अपरा। हे मुनीश्वर! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष तथा आत्मासे भिन्न वस्तुओंका ज्ञान ये सब अपरा-विद्याके अन्तर्गत हैं। जिसके द्वारा परम अक्षर (अव्यय) आत्मा (परमात्मा) का ज्ञान होता है, वह परा-विद्या है। वह परमात्मा अदृश्य एवं अग्राह्य है; वह गोत्र (नाम) हीन, रूपहीन, नेत्रहीन, श्रोत्रहीन और हाथ-पैरसे बिल्कुल रहित है, नित्य है, व्यापक है, सबमें रहनेवाला अत्यन्त सूक्ष्म अव्यय (परिणामरहित) तथा सब प्राणियोंका कारण है। धीर (विद्वान्) पुरुष उस परमात्माको अपने अन्दर देखते हैं। वह सर्वज्ञ है और सब विद्याओंका आकर है। उसका तप ज्ञानमय है और उस रुद्रभगवान्से इस लोकमें जगत्के समूह अन्नरूपमें उत्पन्न होते हैं। रज्जुमें सर्पकी भाँति यह सारा जगत् उस ब्रह्मके अन्दर सत्यके समान ही जान पड़ता है। वह ब्रह्म अक्षर (अविनाशी) सत्य है। उसको जानकर प्राणी बन्धनसे छूट जाता है। ज्ञानसे ही संसार (आवागमन) का नाश होता है, कर्मसे नहीं। इसलिये (उस ज्ञानके लिये) श्रोत्रिय, (वेदवित्) ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास शास्त्र-विधिके अनुसार जाय। गुरु उसको ब्रह्म और आत्माका बोध करानेवाली परा-विद्याका उपदेश करे। इसप्रकार मनुष्य अति गूढ़, साक्षात् अक्षर ब्रह्मको यदि जान ले तो वह अविद्यारूपी महाग्रन्थिको छेदकर सनातन शिवको प्राप्त होता है। इसलिये मुमुक्षुओंको इस अमृत सत्यको जानना चाहिये। ॐकार धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य कहलाता है; इसलिये सावधानतासे लक्ष्यको बेधनेके लिये बाणके समान तन्मय हो जाय। लक्ष्य अर्थात् ब्रह्म सर्वगत है और शर (जीव) सबमें रहता है तथा तेज फलवाला (प्रणवके ध्यानमें सुसंस्कृत) है, बेधनेवाला ज्ञाता सर्वगत है। शिव ही लक्ष्य है, इसमें संशय नहीं। वहाँ चन्द्र अथवा सूर्यका स्वरूप प्रकाश नहीं करता, वायु नहीं बहती, वहाँ सब देवता भी नहीं हैं। वह यह परमात्मदेव सारे कार्य-पदार्थोंका यथार्थ तत्त्व है, स्वयंशुद्ध एवं रजोगुणसे रहित होकर प्रकाशमान है। इस शरीरमें जीव और ईश्वर नामके दो पक्षी साथ रहते हैं।

इसमें जीव कर्मका फल भोगता है और महेश्वर फलभोक्ता नहीं है। महेश्वर केवल साक्षीरूपसे बिना भोगके स्वयं प्रकाशित होता है। इन दोनोंमें भेद मायासे कल्पित है। जिस-प्रकार घटमें रहनेवाला आकाश घटाकाश है और मठके अन्दर रहनेवाला आकाश मठाकाश है, और यह मुख्य आकाशके भेदसे कल्पित है, इसी प्रकार जीव और शिवरूप-से एक तत्त्वमें दो तत्त्व कल्पित हैं।

वास्तविक शिवरूप परमेश्वर साक्षात् चैतन्यस्वरूप हैं और जीव भी स्वरूपतः चैतन्यात्मक है। चित् (ज्ञान) चैतन्यस्वरूपसे भिन्न नहीं है। यदि भिन्न हो तो उसकी चैतन्यस्वरूपता ही नहीं रहती। चित् (ईश्वरचैतन्य) से चित्त (जीवचैतन्य) भिन्न नहीं है; क्योंकि दोनों ही चैतन्य-स्वरूप हैं। यदि भिन्न हों तो उनकी जडरूपता हो जायगी, क्योंकि चेतनसे भिन्न सभी जड हैं। निश्चय ही चित् (चैतन्य) सर्वदा एक है। (श्रुत्यनुकूल) तर्क तथा प्रमाणके द्वारा भी चैतन्यकी एकरूपता निश्चित होनेसे चैतन्यत्वकी एकताका ज्ञान हो जानेपर शोक नहीं रहता और न मोह ही रहता है; समस्त जगत्के अधिष्ठानरूप सत्य, चिद्घन, अद्वैत, परमानन्दरूप शिवको प्राप्त होता है। वह शिव मैं ही हूँ, ऐसा निश्चय करके मुनि शोकसे मुक्त हो जाते हैं। जिनके अविद्या—काम-कर्मादि दोष क्षीण हो गये हैं ऐसे पुरुष अपने शरीरमें स्वयंप्रकाश एवं सबके साक्षी परमात्मा-को देखते हैं, परन्तु जो मायासे आवृत होते हैं वे उसे नहीं देख पाते। इसप्रकार जिस श्रेष्ठ योगीको अपने स्वरूप-का ज्ञान रहता है उस पूर्णस्वरूपवालेको कहीं भी जाना नहीं पड़ता। आकाश सम्पूर्ण और एक है, वह कहीं नहीं जाता। इसी प्रकार आत्म-स्वरूपको जाननेवाला भी कहीं नहीं जाता। वह मुनि जो निश्चयपूर्वक उस परब्रह्म-को जानता है, अपने स्वरूपमें स्थित होकर सत्-चित्-आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है। हरिः ॐ तत्सत्।

अनु०—मेहता इन्दुलाल बापालाल
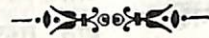
परम शिव-तत्त्व

(लेखक—डा० पं० श्रीहरदत्तजी शर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०)

भगवान् पशुपतिकी अभ्यर्चनाके अन्दर जो दार्शनिक तत्त्व भरा हुआ है उससे साधारण जनताको विशेष परिचय नहीं है, तथा भगवान् शङ्करको 'पशुपति' किसलिये कहते हैं इसका भी सर्वसाधारणको ज्ञान नहीं है। प्रस्तुत लेखमें शैवसिद्धान्तके अनुसार दार्शनिक तत्त्वका दिग्दर्शन कराया जाता है।

शैवागमका सिद्धान्त यह है कि 'पशु' (जीव) को तत्त्वज्ञानद्वारा अर्थात् विद्या, क्रिया, योग और चर्याद्वारा अपने 'पाशों' (बन्धनों) का छेद करना चाहिये। इसीसे 'पशुपति' (भगवान् शङ्कर) की कृपाद्वारा मोक्षप्राप्ति होती है। शैवागमके अनुसार तीन 'पदार्थ' (पशु, पाश तथा पशुपति) और चार 'पाद' या साधन (विद्या, क्रिया, योग तथा चर्या) हैं।

गुरुसे नियमपूर्वक मन्त्रोपदेश लेनेको 'दीक्षा' कहते हैं। यह दीक्षा मन्त्र, मन्त्रेश्वर, विद्येश्वर आदि पशुओंके ज्ञानके बिना नहीं हो सकती। इसी ज्ञानसे पशु, पाश तथा पशुपतिका ठीक-ठीक निर्णय होता है। अतः इस ज्ञानका प्रतिपादक प्रथम पाद 'विद्या' है। भिन्न-भिन्न अधिकारियोंके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी दीक्षा होती है। इन दीक्षाओंका प्रदर्शक दूसरा, 'क्रिया' नामक पाद है। किन्तु यम, नियम, आसन आदि अष्टाङ्गयोगके बिना अभीष्ट-प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः तीसरे 'योग' नामक पादकी आवश्यकता है। योगसाधनके लिये भी अत्यावश्यक—शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान और निषिद्ध कर्मोंका त्याग है। इन सब कर्मोंका प्रतिपादक 'चर्या' नामक पाद है।

१—पशुपति या पति

स्वयं सर्व प्रकार स्वतन्त्र भगवान् शङ्कर ही 'पति' नामक पदार्थ हैं। यद्यपि विद्येश्वर इत्यादि मुक्त जीव भी शिवभाव-को प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु यह सब स्वतन्त्र नहीं होते, अपितु परमेश्वरके अधीन रहते हैं। इसपर यदि कोई कहे कि ईश्वरका अस्तित्व तो सिद्ध करो तो हम इसका यह उत्तर देते हैं कि इस संसारमें मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि प्राणधारियोंके शरीर-इन्द्रिय आदिके निर्माणमें हमें एक

अटल नियम दृष्टिगोचर होता है। यह नियम किसी जड़से तो बनाया नहीं जा सकता, उसका बनानेवाला चेतन ही होना चाहिये। और वह चेतन-तत्त्व भी सर्वसामर्थ्ययुक्त होना चाहिये अन्यथा संसारकी प्रत्येक वस्तुमें लागू नियम नहीं बना सकता। वही सर्वसामर्थ्ययुक्त चेतन परमेश्वर है—वही इस देह, इन्द्रिय इत्यादि कार्योंका कारण है। इसपर यदि कोई कहे कि देह कार्य है और इसलिये कारणसे उत्पन्न हुआ है, इसमें क्या प्रमाण है? तो इसका उत्तर यह है कि जैसे घट, पट इत्यादि कार्य अवयवोंसे युक्त होते हैं और विनाशशील हैं, उसी प्रकार देह भी है। हाँ, इसका कर्ता ऐसा होना चाहिये जो निरवयव तथा नित्य हो—बस, वही परमेश्वर है। अब यदि यह प्रश्न हो कि निरवयव और नित्य तो जीवात्माको भी मानते हो, तो क्या जीवात्मा ही इस संसारका कर्ता है? इसका उत्तर यह है कि जीवात्मा अज्ञानी तथा परतन्त्र है, वह इस सृष्टिका कर्ता नहीं हो सकता। इसका कर्ता सब प्रकारसे स्वतन्त्र तथा ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ही हो सकता है, अन्य नहीं। यही ईश्वर सब जीवोंको उनके कर्मानुसार शरीरादि साधन तथा विषयादि भोग प्रदान करता है। सब वस्तुओंका कर्ता होनेके कारण ईश्वरको सर्वज्ञ भी मानना पड़ेगा। क्योंकि यदि ईश्वर अज्ञ या अल्पज्ञ हो तो वह सब वस्तुओंका उत्पादन कैसे कर सकता है? इसपर यदि कोई ऐसा कहे कि हम स्वतन्त्र ईश्वरको माननेके लिये तैयार हैं, किन्तु ईश्वरको सशरीर होना पड़ेगा—घट-पटादि कार्योंके कर्ता कुम्हार, जुलाहा आदि सब हमने सशरीर ही देखे हैं; और यदि ईश्वरको शरीरयुक्त माना जाय तो उसे हम-जैसे शरीरधारी प्राणियोंके समान सुख-दुःख आदिका भोक्ता, अल्पज्ञ तथा परिमित शक्तिवाला भी मानना पड़ेगा। इसका उत्तर यह है कि देखिये, आत्मा स्वयं शरीरवाला न होकर भी (अर्थात् शरीरसे भिन्न होकर भी) शरीरके अन्दर क्रिया उत्पन्न करता दिखायी देता है; इसलिये कर्ताको सशरीर होना ही पड़ेगा, यह नियम सर्वदा और सर्वत्र लागू नहीं हो सकता। फिर यदि ईश्वरको सशरीर मान भी लें तो भी उसका शरीर हमलोगोंके शरीर-जैसा नहीं हो सकता, किन्तु उसका शरीर निर्मल तथा कर्मादि-बन्धनोंसे मुक्त होनेके कारण 'शाक्त' (शक्तिस्वरूप) ही मानना पड़ेगा। अर्थात् ईश्वरका शरीर मन्त्रमय है, मन्त्र ही उसके अवयव हैं—जैसा कि नारायणोपनिषद्‌में वर्णित है (देखिये 'ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः'—निर्णयसागर-प्रेस, बम्बई, सन् १९२५, पृ० १४२)। अतः भगवान् शङ्करका शरीर, जिससे अनुग्रह, तिरोभाव, उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलयरूपी पाँचों कर्म होते हैं, हमारे शरीरोंसे भिन्न है। अर्थात् भगवान्‌का शरीर मलादि दोषोंके न होनेसे शक्तिस्वरूप है। इसपर यदि कोई फिर प्रश्न करे कि भगवान्‌के पाँच मुख, पन्द्रह आँखोंका वर्णन शास्त्रमें मिलता है ('पञ्चवक्त्रस्त्रिपञ्चदृक्' इत्यादि) तो फिर कैसे हमारे-जैसा सेन्द्रिय शरीर नहीं है? इसका उत्तर यह है कि निराकार भगवान्‌की उपासना असम्भव है, अतः भक्तोंकी सुविधाके लिये यह भगवान्‌का साकार रूपमात्र है।

२—पशु

व्यापक जीवात्मा या क्षेत्रज्ञ ही 'पशु' कहलाता है, यह चार्वाक आदि नास्तिकोंद्वारा निरूपित देह नहीं है। यदि देहको ही आत्मा मान बैठें, तो बाल्य, यौवन, बुढ़ापा आदि अवस्थाओंमें बदलता हुआ शरीर बाल्यावस्थाकी बात तरुणावस्थामें कैसे स्मरण कर सकेगा और न नैयायिकोंके समान हमारे यहाँ जीवात्मा अनुमानसे जाना जाता है; क्योंकि यदि अनुमानसे जाना जाय तो इस अनुमानको करके पहले जीवात्माको जाननेवाला दूसरा जीवात्मा होगा, दूसरेको तीसरा, तीसरेको चौथा—इस-प्रकार अनवस्था-दोष हो जायगा। जैन लोग जीवात्माका स्वरूप देहकी छोटाई-बड़ाईके अनुसार (अर्थात् हाथीका आत्मा बड़ा और चींटीका छोटा) मानते हैं और बौद्ध लोग आत्माको क्षणिक विज्ञानभर मानते हैं। किन्तु आत्मा तो देश तथा काल—इन दोनोंसे अतीत और अपरिमित है, अतः इन दोनोंका मत भी असंगत है। हम शैव लोग जीवात्माको अद्वैतवादियोंके समान एक मानने-को भी तैयार नहीं हैं, क्योंकि यदि आत्मा एक हो तो भिन्न-भिन्न प्रकारके सुख-दुःखादिका अनुभव भिन्न-भिन्न देहोंमें स्थित उस एक ही आत्माको क्योंकर होना ठीक है? जब आत्मा एक है और उसे यदि किसी विशेष समयपर सुख है तो उसे उस समयविशेषमें प्रत्येक देहमें सुखका ही अनुभव करना चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि भिन्न-भिन्न प्रकारका अनुभव होनेके कारण जीवात्मा अनेक तथा प्रत्येक देहमें भिन्न हैं। हमारे इस मतमें सांख्य-वादियोंसे भेद केवल इतना है कि हमारे यहाँ जीवात्मा अकर्ता, असंग तथा उदासीन नहीं है किन्तु ज्ञान और

क्रियाशक्तिवाला है। यदि ज्ञानक्रियाशक्तिसे रहित हो तो इन्द्रियोंके कर्मोंके द्वारा जीवात्माको बन्धन कैसे प्राप्त हो और मल तथा पाप इत्यादिके निवारणद्वारा उसकी मोक्षकी ओर प्रवृत्ति कैसे हो ?

वह पशु तीन प्रकारका है—(अ) विज्ञानाकल, (आ) प्रलयाकल तथा (इ) सकल।

(अ) जो परमात्माके स्वरूपको पहचानकर जप, ध्यान तथा संन्यासद्वारा अथवा भोगद्वारा कर्मोंका क्षय कर डालता है और जिसको देह, इन्द्रियादिका कोई बन्धन नहीं रहता किन्तु केवल मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाता है, उसे 'विज्ञानाकल' कहते हैं।

(आ) जिस जीवात्माके देह-इन्द्रियादि प्रलयकालमें लीन हो जाते हैं (किन्तु बीजरूपमें रहते हैं) तथा जिसमें मल और कर्मरूपी दो पाश (बन्धन) रह जाते हैं, वह 'प्रलयाकल' कहलाता है।

(इ) जिस जीवात्मामें मल, माया तथा कर्म—यह तीनों पाश (बन्धन) रहते हैं, उसे 'सकल' कहते हैं।

(अ) विज्ञानाकलके भी 'समाप्तकलुष' और 'असमाप्तकलुष'—ये दो भेद हैं। जीवात्मा जो कर्म करता है, उस प्रत्येक कर्मकी तह मलपर जमती रहती है। इसी कारण उस मलका परिपाक (अर्थात् मलके ऊपरसे रोध यानी रुकावटका हटना) नहीं होने पाता। किन्तु जब कर्मोंका त्याग हो जाता है तब तह न जमनेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्मा 'समाप्तकलुष' कहलाने लगता है। ऐसे जीवात्माओंको भगवान् आठ प्रकारके 'विद्येश्वर' पदपर पहुँचा देते हैं। उनके नाम ये हैं—

(१) अनन्त, (२) सूक्ष्म, (३) शिवोत्तम, (४) एकनेत्र, (५) एकरुद्र, (६) त्रिमूर्ति, (७) श्रीकण्ठ तथा (८) शिखण्डी।

'असमाप्तकलुष' जीवात्माओंको परमेश्वर मन्त्रस्वरूप दे देता है। कर्म तथा शरीरसे रहित किन्तु मलरूपी पाशमें बँधे हुए जीवात्मा ही मन्त्र हैं और इनकी संख्या ७ करोड़ है। ये सब अन्य जीवात्माओंपर अपनी कृपा करते रहते हैं।

(आ) 'प्रलयाकल' भी दो प्रकारके होते हैं—'पक्वपाशद्वय' और 'अपक्वपाशद्वय'। जिसके 'मल' तथा 'कर्म' रूपी दोनों पाशोंका परिपाक हो गया हो वह 'पक्वपाशद्वय' जीवात्मा मोक्षको प्राप्त हो जाता है। 'अपक्वपाशद्वय' जीव नाना प्रकारके कर्मोंको करते हुए नाना योनियोंमें घूमा करते हैं।

(इ) 'सकल' भी दो प्रकारके होते हैं—'पक्वकलुष' और 'अपक्वकलुष'। जैसे-जैसे जीवात्माके 'मल-कर्म' तथा माया—इन पाशोंका परिपाक बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होते चले जाते हैं। तब ये पक्वकलुष जीवात्मा 'मन्त्रेश्वर' कहलाते हैं। सात करोड़ मन्त्ररूपी जीवविशेषोंके, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, अधिकारी यही ११८ 'मन्त्रेश्वर' जीव हैं।

३—पाश

पाश चार प्रकारके होते हैं—(अ) मल, (आ) रोध, (इ) कर्म तथा (ई) माया।

(अ) जो आत्माकी स्वाभाविक ज्ञान तथा क्रिया-शक्तिको ढक ले, वह 'मल' (अर्थात् अज्ञान) कहलाता है। यह मल आत्मस्वरूपका केवल आच्छादन ही नहीं करता, किन्तु जीवात्माको ज़बरदस्ती दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला पाश भी यही है।

(आ) प्रत्येक वस्तुमें जो सामर्थ्य है उसको 'शिव-शक्ति' कहते हैं—जैसे अग्निमें जलानेकी शक्ति, जलमें शीतल करनेकी शक्ति, तेजमें प्रकाश करनेकी शक्ति, अन्धकारमें वस्तुको ढकनेकी शक्ति इत्यादि। यह शक्ति जैसे पदार्थमें रहती है वैसा ही स्वरूप धारण कर लेती है—अर्थात् अच्छेमें अच्छा और बुरेमें बुरा। अतः पाशमें रहती हुई यह शक्ति जब आत्माके स्वरूपको ढक लेती है, तब यह 'रोधशक्ति' कहलाती है।

(इ) फलकी इच्छासे किये हुए धर्म या अधर्मरूपी कर्मोंको ही कर्म-पाश कहते हैं।

(ई) जिस शक्तिमें प्रलयके समय सब कुछ लीन हो जाता है, तथा सृष्टिके समय जिसमेंसे सब कुछ उत्पन्न होता है, वह माया-पाश है।

अतः इन पाशोंमें बँधा हुआ पशु जब तत्त्वज्ञानद्वारा इन पाशोंको छेद डालता है, तभी वह परम शिव-तत्त्व अर्थात् 'पति' को प्राप्त करता है।

शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीभीमचन्द्र चट्टोपाध्याय बी० ए०, बी० एल०, बी० एस० सी०, एम० आर० इ० इ०, एम० आइ० इ०)

देवाधिदेव महादेवके विषयमें सम्यक् रूपसे आलोचना करना किसीके लिये भी सम्भव नहीं है, यही सब शास्त्रोंका सिद्धान्त है। पूर्णका वर्णन ही क्या किया जा सकता है ? हम भी गन्धर्वराज पुष्पदन्तके शब्दोंमें सर्वप्रथम यही कहते हैं—

> महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
> स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
> अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
> ममाप्येष स्तोत्रे हर ! निरपवादः परिकरः॥

'हे शिव ! मुझ-जैसे अज्ञ पुरुषसे तुम्हारी महिमा यदि पूर्णरूपेण व्यक्त करके नहीं कही गयी है तो मैं यह कहूँगा कि ब्रह्मादि भी तुम्हारी महिमाको व्यक्त करनेमें समर्थ नहीं हो सके हैं, मेरी तो बिसात ही क्या है ? किन्तु अपनी शक्तिके अनुसार तुम्हारा विषय कहनेमें यदि दोष न होता हो तो मैं भी यथासाध्य तुम्हारे गुणोंका वर्णन अपनी बुद्धिके अनुसार करता हूँ, इसमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं होनी चाहिये।' मेरी प्रार्थना है—

> आमि शिखि नाइ किछु बूझि नाइ किछु
> दाओ हे शिखाये बुझाये।

अर्थात् 'न तो मैंने कुछ सीखा है और न मैं कुछ समझता ही हूँ। तुम्हीं सिखा दो, समझा दो।' मेरी इच्छा होती है कि माता पार्वतीने ब्रह्मचारि-वेशधारी शङ्करके निकट शिवकी जो व्याख्या की है उसे ज्ञातव्य समझकर नीचे उद्धृत करूँ—

> स आदिः सर्वजगतां कोऽस्य वेदान्वयं ततः।
> सर्वं जगद्वपुरस्य रूपं दिग्वासाः कीर्त्यते ततः॥
> गुणत्रयमयं शूलं शूली यस्माद्बिभर्त्ति सः।
> अबद्धाः सर्वतो मुक्ता भूता एव स तत्पतिः॥
> श्मशानञ्चापि संसारस्तद्वासी कृपयार्थिनाम्।
> भूतयः कथिता भूतिस्तां बिभर्त्ति स भूतिभृत्॥
> वृषो धर्म इति प्रोक्तस्तमारूढस्ततो वृषी।
> सर्पाश्च दोषाः क्रोधाद्यास्तान् बिभर्त्ति जगन्मयः॥
> नानाविधान् कर्मयोगाञ्जटारूपान् बिभर्त्ति सः।
> वेदत्रयी त्रिनेत्राणि त्रिपुरः त्रिगुणं वपुः॥
> भस्मीकरोति तद्देवस्त्रिपुरघ्नस्ततः स्मृतः।
> एवंविधं महादेवं विदुर्ये सूक्ष्मदर्शिनः॥

'वे समस्त जगत्के आदि हैं, सुतरां उनके वंशका वृत्तान्त कौन जान सकता है ? समस्त जगत् उनका स्वरूप है, इसीलिये वे दिगम्बर हैं। वे त्रिगुणात्मक शूल धारण करते हैं, इसीलिये उन्हें 'शूली' कहते हैं। भूत सर्वथा संसारमें बद्ध नहीं हैं बल्कि पूर्णतः मुक्त हैं, इसीलिये वे मुक्त भूतगणोंके अधिपति हैं। यह संसार ही श्मशान-क्षेत्र है, वे प्रार्थियोंके प्रति कृपावशतः इस श्मशानमें वास करते हैं। उनकी विभूति ही सबको प्रकृत विभूति (ऐश्वर्य) प्रदान करती है, इसीलिये वे इस विभूतिको अपने शरीरपर धारण करते हैं। धर्म ही वृष है और उसपर आरूढ़ होनेके कारण वह 'वृषवाहन' कहलाते हैं। क्रोधादि दोषसमूह ही सर्प हैं, जगन्मय महेश्वर इन सबको वशीभूतकर भूषणके रूपमें धारण करते हैं। विविध कर्मकलाप ही जटा हैं, वह इन सबको धारण करते हैं। वेदत्रयी उनके तीन नेत्र हैं। त्रिगुणमय शरीर ही त्रिपुरपद-वाच्य है, इसको भस्मसात् करनेके कारण ही वह 'त्रिपुरघ्न' कहलाते हैं। जो सूक्ष्मदर्शी पुरुष इसप्रकारके महादेवको जानते हैं वे उन हरका भजन क्यों न करेंगे ?'

माँ-पार्वतीके द्वारा वर्णित शिव उन्हींके निकट प्रकट होते हैं। हम इस रहस्यको क्या समझें ? साधारण नेत्रोंसे देखते हैं तो मालूम होता है कि शिव सर्वशास्त्रके वर्णनातीत लक्ष्य हैं। काण्ट (Kant) के देश और काल (Time and Space) से अतीत 'Ding an sich' (वस्तु-तत्त्व) हमारे शिव ही हैं। इसीलिये यह महाकालके नामसे विख्यात हैं, दिगम्बर हैं—असभ्य, बर्बरजातीय पुरुष अथवा राक्षस नहीं। भर्तृहरिने भी उन्हें 'दिक्कालाद्यनवच्छिन्न' (दिशा एवं काल आदिसे अनवच्छिन्न) कहा है। श्रुति भी उन्हें 'अप्रमेय' और 'अनादि' कहती है—

> अप्रमेयमनाद्यञ्च ज्ञात्वा च परमं शिवम्।
> (ब्रह्मबिन्दु० १४। ५। २)

इसी कारण वह 'स आदिः सर्वजगताम्' हैं और उनके पिताका कोई पता नहीं बताया गया है। उन्हींके विषयमें यह कहा गया है—

सर्वकार्यधर्मविलक्षणे ब्रह्मणि
(तैत्ति० उ० भा०)

He forms the very supreme unity of all contradictions. (Cardinal Nichola Causa)

इसी कारण माता पार्वतीने कहा है—'सर्पाश्च दोषाः क्रोधाद्याः' इत्यादि। उनका प्रभुत्व असमग्र नहीं है अर्थात् वे Devil या Satan अथवा God ही नहीं, वह तो 'शिवमद्वैतम्' हैं—एकेश्वर, सर्वेश्वर हैं। शिव भिक्षुक हैं, यह सुनकर, जान पड़ता है, माता पार्वती सकुचा जाती हैं। परन्तु मैं समझता हूँ कि वह हमारे मनकी ही भिक्षा माँगते हैं। अहा! वह सर्वदा ही वंशीनिनादसे अथवा डमरू-ध्वनिसे हमारे मनको भिक्षारूपमें हरण करते हैं। हम उनको नहीं चाहते तथापि वह हमारे मनको चाहते हैं, क्योंकि वे अपना मन भक्तोंको देकर स्वयं भिक्षुक बन गये हैं। यही बात अन्यत्र भी देखनेमें आती है—

इत्थं वदति गोविन्दे विमला पद्मरातया।
मनोरथवती नाम भिक्षापात्रं समर्पिता॥
(काशीखण्ड ३०। १०२)

तथा हम भी प्रार्थना करते हैं—

लक्ष्मीपते निगमतत्त्वविदाश्रयाय
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसो मनसोऽस्ति दैन्यं
दत्तं मया मम मनः कृपया गृहाण॥

अब उपर्युक्त वर्णनके विषयमें कुछ विचार किया जायगा। 'बोधसार'* नामक ग्रन्थसे सर्वसाधारणके ज्ञानार्थ संक्षेपमें कहा जाता है।

* 'बोधसार' ग्रन्थ महात्मा श्रीनरहरिस्वामीकृत है। बहुत उत्तम ग्रन्थ है। इसका हिन्दी-भाषान्तर पं० रामावतारजी विद्याभास्कर शास्त्रीने किया है और उसे ठा० कायमसिंहजीने प्रकाशित किया है। उसका कुछ अंश कल्याणमें भी पहले छप चुका है। हिन्दी-भाषान्तरसहित, ६२५ पृष्ठके ग्रन्थका मूल्य २।) है। साधकों और वेदान्तप्रेमी महानुभावोंको ग्रन्थ पढ़ना चाहिये। पुस्तक मिलनेका पता—विद्याभास्कर बुकडिपो, चौक, बनारस है। —सम्पादक

दिगम्बरता-विचार

निरावरणविज्ञानस्वरूपो हि स्वयं हरः।
स्वैरं चरति संसारे तेन प्रोक्तो दिगम्बरः॥

जो कारणाविद्या जीवको अपने ब्रह्मत्वकी उपलब्धि नहीं करने देती, उस अविद्याका लेशमात्र भी परमात्मा-शिव गुरुमें स्वभावतः ही नहीं रह सकता, क्योंकि वे समष्टि-व्यष्टि देहत्रयरूप प्रपञ्चके विधि-निषेधसे अतीत हैं। इसी कारण वे 'दिगम्बर' कहलाते हैं। उनकी इस दिगम्बरताको बेसमझ लोग नग्नता कह बैठते हैं।

भस्मोद्धूलन-विचार

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते किल।
तेनैव भस्मना गात्रमुद्धूलयति धूर्जटिः॥

देह-संवलित चिदाभासमें 'मैं' बुद्धिके द्वारा जो कर्म होते हैं वे सञ्चित, प्रारब्ध और क्रियमाणरूपमें बन्धनका कारण बनते हैं, वही सब कर्म निष्क्रिय ब्रह्मरूपताकी प्राप्ति होनेपर शरीरान्तर (पुनर्जन्म) के उत्पादनमें असमर्थ हो जाते हैं और इसलिये भस्मके सदृश अकिञ्चित्कर हो जाते हैं—यह बात गीता आदि शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। शिवके असुर-विमर्दन तथा विश्वसंहारादि कर्म उसी प्रकार अकिञ्चित्कर हैं। इसी कर्मके द्वारा आवृत होकर वह लोकदृष्टिमें आविर्भूत होते हैं। इसी कारण वह मूढ़जनोंके निकट भस्मावृततया प्रतिपादित होते हैं।

भासते भिन्नभावानामपि भेदो न भस्मनि।
स्वस्वभावस्वभावेन भस्म भर्गस्य वल्लभम्॥

'परस्परभिन्न वस्तुएँ भी भस्मीभूत हो जानेपर एकरूप ही भासती हैं, इसी कारण भस्म सब वस्तुओंकी एकरूपताका प्रतिपादक है। तुल्य स्वभाववाले 'भर्ग' अर्थात् जगद्बीज-भर्जक शिवके निकट आनन्ददायक है।'

जटाजूट-विचार

विश्रामोऽयं मुनीन्द्राणां पुरातनवटो हरः।
वेदान्तसांख्ययोगाख्यास्तिस्रस्तज्जटयः स्मृताः॥

'यही हर अर्थात् अपरोक्ष परमात्मा पञ्चम्यादिभूमिकारूढ़ जीवन्मुक्तोंके विश्रामस्थान, पुरातन वटवृक्षस्वरूप हैं। वेदान्त, सांख्य और योग—यह तीन उस वटवृक्षकी जटाके रूपमें शिरोभूषण हैं। शिवके जटाजूटका यही तात्पर्य है।'

त्रिनेत्रता-विचार

आप्यायनस्तमोहन्ता विद्यया दोषदाहकृत् ।
सोमसूर्याग्निनयनस्त्रिनेत्रस्तेन शङ्करः ॥

'शङ्कर चन्द्रके समान जगदानन्ददायक, सूर्यके समान अज्ञानतमोनाशक तथा अग्निके समान रागादि-दोषोंके दहनकर्त्ता हैं । इसी कारण चन्द्रसूर्याग्निनयन अथवा त्रिनेत्र कहकर उनका वर्णन किया जाता है ।'

भुजगभूषणता-विचार

योगिनः पवनाहारास्तथा गिरिबिलेशयाः ।
निजरूपे धृतास्तेन भुजङ्गाभरणो हरः ॥

'योगिजन सर्पके समान वायुभक्षण कर प्राणधारण करते हैं तथा पर्वतीय गुहाओंमें रहते हैं । 'विविक्तसेवी' एवं 'लघ्वाशी' होनेके कारण वे शिवको इतने प्रिय हैं कि वे इन योगिजनोंको अपने अङ्गका भूषण बनाये रखते हैं । इसी कारण शङ्कर 'भुजङ्गाभरण' के रूपमें वर्णित होते हैं ।'

त्रिशूल-विचार

शान्तिवैराग्यबोधाख्यैस्त्रिभिरग्रैस्तरस्विभिः ।
त्रिगुणत्रिपुरं हन्ति त्रिशूलेन त्रिलोचनः ॥

शान्ति अर्थात् उपरति, जो यम-नियमादिके अभ्यास, चित्तनिरोध तथा व्यवहारके सङ्कोचद्वारा उत्पादित होती है ।

वैराग्य अर्थात् दोषदर्शनके द्वारा रूप-रसादि सब विषयोंके त्यागकी इच्छा एवं भोग्य वस्तुके अभावमें बुद्धिकी अदीनता ।

बोध अर्थात् श्रवणादिजनित सत्य-मिथ्या-विवेचन, जिसके द्वारा चिदात्मा और अहङ्कारकी एकतारूप ग्रन्थिका अनुदय और विनाश होता है—

ये तीनों उपाय अज्ञान और अज्ञानके कार्यको शीघ्र ही भेदन करनेमें समर्थ होनेके कारण त्रिशूलके फलोंके साथ सादृश्यको प्राप्त होते हैं । इसी त्रिशूलके द्वारा त्रिलोचन सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंका तथा उनके कार्यरूप स्थूल, सूक्ष्म और कारण नामक देहत्रयका विनाश करते हैं, मिथ्यात्वका निश्चय करा उसमें अप्रतीति उत्पादन करते हैं ।

वृषभवाहन-विचार

ब्रह्माद्या यत्र नारूढास्तमारोहति शङ्करः ।
समाधिं धर्ममेघाख्यं तेनायं वृषवाहनः ॥

जिस धर्ममेघ नामक समाधिमें ब्रह्मादि कोई स्थित नहीं हो सकते, शङ्कर उसी समाधिमें आरूढ़ देखे जाते हैं । इसी कारण शङ्कर 'वृषवाहन' कहलाते हैं । जिसप्रकार मन ही ब्रह्म है, ऐसा समझकर मनमें ब्रह्मबुद्धि करके उपासना की जाती है इसी प्रकार नन्दीवृषमें धर्ममेघसमाधि-बुद्धि एवं शिवमें ब्रह्माभिन्न-प्रत्यात्मगुरु-बुद्धि करके उपासना करनी चाहिये । समाधिद्वारा बुद्धिका साक्षात्कार हो जानेपर निरोध-समाधिद्वारा चैतन्यमात्राधिगम होनेसे वह बुद्धि जब पृथक्त्वविषयक प्रज्ञा बनती है तब उसे 'विवेक-ख्याति' कहते हैं । इसप्रकारकी विवेक-ख्यातिसे सर्वज्ञता-सिद्धि उत्पन्न होती है । ब्रह्मवेत्ता जब इस सर्वज्ञता-सिद्धिके प्रति भी आसक्तिरहित हो जाता है तब विवेक-ख्याति पूर्णताको प्राप्त होती है । इसप्रकारकी समाधिको 'धर्ममेघ' कहते हैं । मेघ जिसप्रकार वारिवर्षण करते हैं यह समाधि भी उसी प्रकार परम धर्मका वर्षण करती है, अर्थात् उस अवस्थामें साधक बिना प्रयत्नके ही कृतकृत्य हो जाता है ।

श्मशान-विचार

नित्यं क्रीडति यत्रायं स्वयं संसारभैरवः ।
तत्र श्मशाने संसारे शिवः सर्वत्र दृश्यते ॥

स्वतःसिद्ध प्रत्यगात्मस्वरूप, ज्ञानिजन-प्रत्यक्ष शङ्कर सर्व जगत्के लयके अधिष्ठान हैं । इसी कारण वह सबके भयका कारण बन संसारमें नित्य-क्रीड़ा करते हैं । इस श्मशानवत् अमंगलरूप संसारमें सर्वदा और सब पदार्थोंमें वह ज्ञानिजनोंको दृष्टिगोचर होते हैं । उपासनाके लिये श्मशानमें संसार-दृष्टि करनी चाहिये ।

गण-विचार

आनन्दसागरः शम्भुस्तच्छक्तिर्द्रव उच्यते ।
शीकरा इव सामुद्रास्तदानन्दकणा गणाः ॥

शम्भु चतुर्विध (विद्यानन्द चार प्रकारका होता है—(१) दुःखाभाव या दुःखनाश, (२) सर्वकामावाप्ति, (३) कृतकृत्यता तथा (४) प्राप्तप्राप्तव्यता) विद्यानन्दके समुद्रके समान हैं । मुनिगण शक्तिको या जगदुत्पादन-सामर्थ्यको इस सागरके जलरूपमें वर्णन करते हैं । समुद्रके शीकरोंके समान इस आनन्द-समुद्रके समस्त क्षुद्र अंशोंको अर्थात् विविध प्रकारके विद्यानन्दको, शिवके सान्निध्य और अन्तरङ्गताके कारण, गण या सेवक समझना चाहिये ।

अर्थात् उपासनाके लिये गणोंकी चिदानन्दरूपताका चिन्तन करना चाहिये ।

> जगद्विलक्षणः स्वामी स्वरूपाकृतिलक्षणैः ।
> जगद्विलक्षणा एव गणास्तस्य किमद्भुतम् ॥

जब स्वामी स्वयं ही स्वरूप, आकृति और लक्षणसे सृष्टिसे विलक्षण हैं तब उनके गण या सेवकगण अद्भुत स्वभाववाले हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? भावार्थ यह है कि सच्चिदानन्दस्वरूप शिव असत्, जड़ और दुःखरूप जगत्-प्रपञ्चके विपरीत स्वभाववाले होनेके कारण उनके सेवक—चिदानन्दादि भी विषयानन्दसे विपरीत स्वभाववाले अवश्य होंगे ।

इसप्रकार शिवके साधारण, प्रचलित तथा ध्यानमें वर्णित समस्त विषय शास्त्रोंमें विवेचित हुए हैं । लेखके बढ़ जानेके भयसे उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं किया जाता ।

कोई ऐसा विचार कर सकते हैं कि यदि तत्त्वतः शिव परमात्माके स्वरूप हैं तो उनका इस प्रचलित भावमें ध्यान क्यों किया जाता है ? बात यह है कि अधिकारिभेदसे कार्य-कारण-भेद होता है । परन्तु—

> 'नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।'

अर्थात् जिसप्रकारसे नानाप्रकारके नदी-नाले नाना मार्गसे समुद्रमें ही जाते हैं उसी प्रकार भक्त चाहे जिस भावसे भक्ति करे, तुम्हीं उसके गन्तव्य स्थान हो । कोई मार्ग तुमसे विपरीत नहीं है तथा कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसमें तुम शिव-स्वरूपसे विद्यमान न हो ।

> त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
> स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
> परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं
> न विद्मस्तत् तत्त्वं वयमिह तु यत् त्वं न भवसि ॥

अतएव उनका प्रचलित भावसे विचार करनेमें ही क्या दोष है ? वे भावमय हैं, भाव ही देखते हैं । वे अमूर्त हैं, भक्तके लिये मूर्ति धारण करते हैं । यही देखता हूँ—

> सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
> व्याप्तिञ्च सर्वेष्वखिलेषु चात्मनः ।
> अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
> स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥

> चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।
> उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥

साकारका अवलम्बन करके ही निर्गुण निराकार ब्रह्मकी भावना की जाती है । साकारके बिना निराकारमें स्थितिलाभ नहीं होता । सब कुछ साकार ही दृष्टिगोचर होता है, परन्तु अभ्यासके द्वारा निराकारकी उपलब्धि होती है तथा उसमें स्थिति प्राप्त की जाती है। भगवान् चिन्मय, अद्वितीय, कलारहित तथा रूपरहित होते हुए भी उपासकको कृतार्थ करनेके लिये उसके ध्येयरूपमें उपस्थित होते हैं । 'ब्रह्मणो रूपकल्पना—कर्त्तरि षष्ठी' । इसीको स्पष्ट करते हुए अगस्त्य ऋषि कहते हैं—

> सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतहिते रतः ।
> सर्वेषामुपकाराय साकारोऽभून्निराकृतिः ॥
> (अग० सं० तृ०)

जो सर्वेश्वर, सर्वमय, सब भूतोंके हितमें लगे रहनेवाले हैं वही सबके उपकारके लिये निराकार होते हुए भी साकार हुए हैं । यहाँ साकाररूप मनुष्यकी कल्पना नहीं है; माया ही अपनी शक्तिसे रूप धारण करती है ।

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा निर्दिष्ट पथपर चलनेसे गीताके १६ वें अध्यायमें वर्णित दैवी सम्पत्तिके लिये भगवान्से आत्म-निवेदन करनेपर तथा १२ वें अध्यायमें कहे हुए भक्तके लक्षणोंसे युक्त होनेपर आशुतोष शङ्कर साधकके निकट आविर्भूत होते हैं । ऐसा करनेसे ही शिवका रूप है या नहीं, पुराण सत्य हैं या असत्य, इत्यादि नाना प्रकारके सन्देह दूर होते हैं । केवल पुस्तक पढ़नेसे पुस्तकी विद्याके आगे कोई नहीं जा सकता । सद्गुरुके शरणागत हो अपने चरित्रको सुधार तथा भगवान् शङ्करकी कृपा प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ समझकर कार्य करनेसे शिव दया करते हैं । तब—

> भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
> क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

श्रीशिव-कथाओंका आध्यात्मिक रहस्य

(लेखक—स्वामी श्रीरामदासानन्दजी सरस्वती)

असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय । आविराविर्म रुद्र यत्ते दक्षिणमुखे तेन मां पाहि नित्यम् ।

प्राचीन सनातन आर्य-धर्म-वृक्षकी हिन्दूधर्म, पारसी-धर्म और यहूदी-धर्म—ये तीन शाखाएँ हुईं। यहूदी-धर्मसे ईसाई-धर्मकी एक बड़ी शाखा उत्पन्न हुई और उसके आधारपर, परन्तु उससे कुछ स्वतन्त्र-सी, मुहम्मदी धर्मकी शाखा निकली। हिन्दू-धर्मकी जैन और बौद्ध-धर्म—दो उपशाखाएँ हुईं और अर्वाचीन-कालमें उसमेंसे सिख-धर्मकी एक सुन्दर टहनी और निकल आयी है। उधर उपर्युक्त शाखा-उपशाखाओंसे भी अनेक टहनियाँ निकली हैं। शाखा-उपशाखाओंसे भरे हुए, मूल वृक्षके इस विस्तारमें यद्यपि स्थूल दृष्टिसे महान् विभिन्नता दिखलायी पड़ती है तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन करनेपर मुख्य-मुख्य तत्त्वोंके विषयमें उनके अन्दर अधिकांशमें समानता ही नजर आती है। प्रत्येक धर्ममें आचारप्रधान तथा तत्त्व-विचारप्रधान ये दो भाग होते हैं। यद्यपि आचारधर्मके सम्बन्धमें उनमें भिन्नता दिखलायी देती है तथापि तत्त्व-विचारके सम्बन्धमें अधिकतर ऐक्य ही दृष्टिगोचर होता है। धर्मके तत्त्वविचार अथवा विज्ञानके भागको केवल अधिकारी लोग ही सुगमतासे जान सकते हैं, अन्य पुरुषोंकी उसमें गति न होनेसे उनका इस ओर ध्यान नहीं रहता। ऐसे लोगोंके लिये भी तत्त्वविचारका यह कठिन मार्ग सुगम करनेके अभिप्रायसे परोपकारस्वभाव परमकारुणिक ऋषि-मुनियोंने उसका स्पष्टीकरण पुराणों, रामायण, महाभारत आदि इतिहास-ग्रन्थों तथा अन्य ग्रन्थोंमें कथा और आख्यानोंके द्वारा किया है। ऐसी कथाएँ सभी धर्मोंके प्राचीन ग्रन्थोंमें पायी जाती हैं। यहूदी, पारसी तथा ईसाई धर्मोंमें इसप्रकारकी बहुत-सी कथाएँ मिलती हैं। प्राचीन ग्रीक और रोमन लोगोंके ग्रन्थोंमें भी ऐसी कथाएँ हैं। हिन्दू-धर्म और उसकी जैन तथा बौद्ध-धर्म आदि शाखाओंमें भी ऐसी अनेक रहस्यमयी कथाएँ मिलती हैं। उनका उद्देश्य आध्यात्मिक तत्त्व-प्रतिपादन ही रहता है। कम-से-कम हिन्दू-धर्मकी तो सभी कथाएँ अध्यात्मके सुवर्ण-सूत्रमें गुँथी हुई हैं। परन्तु इस स्थलमें तो श्रीशिवकी कथाओं-मेंसे ही कतिपय आध्यात्मिक रहस्योंका परिचय 'कल्याण' के पाठकोंको कराया जाता है।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इस त्रयीमेंसे ब्रह्मा विश्व-स्रष्टा, विष्णु विश्व-पोषक और शिव विश्व-संहारक हैं। 'शिव' नाम ऋग्वेदमें नहीं मिलता, परन्तु उसमें रुद्रका वर्णन आया है। ऋग्वेदके कुछ सूक्तों (उदाहरणार्थ ४३, ११४) के देवता रुद्र हैं। ११४ वें सूक्तमें 'मा नो महान्तमुत' अर्थात् 'रुद्र न मारे' ऐसी प्रार्थना की गयी है। इससे रुद्र अथवा शिव विश्वके संहारकर्ता हैं। इस पौराणिक वर्णनका मूल बीज अत्यन्त प्राचीन ऋग्वेदके मन्त्रोंमें मिलता है।

शिव-लिङ्ग-पूजाके विषयमें प्राच्य और पाश्चात्य पण्डितों-के भिन्न-भिन्न मत हैं। प्राच्य साहित्यके जर्मन पण्डित, गस्टक ऑपर्टका अनुमान है कि शिव-लिङ्ग-पूजाकी उत्पत्ति जननेन्द्रियकी पूजासे हुई होगी और स्वामी विवेकानन्दजीका मत है कि वैदिक-यज्ञ-विधिमें ब्रह्माका चिह्न माने जानेवाले यूपस्तम्भसे उसकी उत्पत्ति हुई है। वे कहते हैं—

'यज्ञाग्निकी ज्वाला, उसमेंसे निकलनेवाला धूम, अपनी पीठपर सोमवल्ली धारण करनेवाला वृषभ, वैदिक यज्ञके लिये आवश्यक इध्म (ईंधन) और उसके जलनेसे होनेवाला भस्म—इनसे शिवजीका लोहितवर्ण, जटाजूट, नीलकण्ठ, शरीरपर धारण किया हुआ भस्म, वृषभारोहण आदि कल्पनाएँ निकली हैं। यूपस्तम्भ अर्थात् यज्ञस्तम्भसे कालान्तरमें शिवलिङ्गकी कल्पना निकली और उसीको श्रीशङ्करके श्रेष्ठ देवत्वका रूप प्राप्त हुआ।'

शिवजीके सम्बन्धमें अनेक रूपक मिलते हैं। एक पुराणमें यह श्लोक मिलता है—

चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च ।
ब्रह्मादीनाञ्च सर्वेषां दुर्विज्ञेयोऽस्ति शङ्करः ॥

'ब्रह्मा आदिके चरित्र भी गुह्य तथा गहन हैं, परन्तु शङ्करके चरित्र तो अत्यन्त दुर्विज्ञेय हैं।'

श्रीशङ्करके प्रत्येक नाममें कुछ-न-कुछ विशेषता है।

महादेवके सदाशिव, गङ्गाधर, कृत्तिवास, हर, शिव, मदनान्तक, शम्भु, पुरान्तक, दक्षहा, महेश्वर—ये दस नाम प्रमुख हैं; उनमेंसे शिव, सदाशिव, हर, शम्भु और महेश्वर नाम परमेश्वरके ही हैं। उदाहरणार्थ—'शं सुखं भावयति उत्पादयतीति शम्भुः, अथवा शं सुखं अस्मात् भवतीति शम्भुः'—जो सुखको उत्पन्न करते हैं अथवा जिनसे सुख होता है, वे शम्भु हैं। (शङ्करका अर्थ भी—ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकारके सुखका कर्ता—दाता ही है। 'शिवः कल्याणरूपः, अकल्मषः, निस्त्रैगुण्यः।'

समेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान् सर्वकर्मसु।
शिवमिच्छन्मनुष्याणां तस्माद्देवः शिवः स्मृतः॥
(महाभारत रुद्राध्याय)

१-श्रीशिवजीका श्मशानवास-ब्रह्मा, विष्णुकी भाँति शिवजीका भी सारा पौराणिक वर्णन अध्यात्मपरक है। उदाहरणार्थ, उनका श्मशानवास देखिये। यह एक आध्यात्मिक गूढ रहस्य है। शिवजीके श्मशानवासके सम्बन्धमें डा० बेसेण्टकृत 'मुमुक्षु-मार्ग' (Path of the discipleship) ग्रन्थमें किया हुआ विवेचन मनन करनेयोग्य है। आपका कहना है कि 'आपके मनमें अनेक बार ये बातें उपजी होंगी कि जिन्हें हम महादेव अर्थात् सबसे श्रेष्ठ देव मानते हैं उनका निवास श्मशानमें क्यों है? क्या कारण है कि ऐसे देवाधिदेव स्वयं पवित्र होकर भी ऐसे अपवित्र स्थानमें रहते हैं? विचार करनेपर इसमें एक बड़ा भारी तत्त्व नजर आता है। 'श्मशान'का अर्थ है संसार। वहाँपर शङ्करका वास होनेसे सांसारिक सर्व नीच मनोवृत्तियाँ भस्म हो जाती हैं। जैसे श्मशानमें मृतशरीरोंके भस्म हो जानेपर उनके सड़-गलकर दुर्गन्ध और रोग उत्पन्न करनेका डर नहीं रहता वैसे ही सांसारिक नीच मनोवृत्तिरूप पदार्थोंके शङ्करकी योगाग्निद्वारा भस्म हो जानेपर चित्त निर्मल हो जाता है और योगाग्निकी ज्वालासे योगी दिव्य शरीर धारणकर मोक्षपदको प्राप्त होता है। पीछे उसमें ममत्व अथवा नीचवृत्तिका लवलेश भी नहीं रहता। इस दृष्टिसे देखनेपर यह बात अच्छी तरह ध्यानमें आ जाती है कि शङ्करका निवास श्मशानमें क्यों है और उन्हें संहार-कर्ता क्यों कहा जाता है।'

२-मदनदहन-पुराणोंमें शिवजीकी अनेक कथाएँ मिलती हैं। कुछ पुराणोंमें ऐसा वर्णन मिलता है कि ज्ञानी पुरुष ही शिव या शङ्कर हैं और कुछ स्थानोंमें आत्मा और परमात्माको 'शिव' कहा गया है। जीव अथवा अन्तरात्मामें अनेक वासनाएँ और कल्पनाएँ होती हैं, वह अपने स्वरूपको भूला रहता है। बीजमें वृक्षके समान वासनाएँ अबोधरूप अज्ञानमें रहकर पुनः-पुनः स्वर्ग-नरकके रूपसे अङ्कुरित होती हैं और जीवको जन्म-मरणके चक्करमें डालती रहती हैं। परन्तु जीव अथवा अन्तरात्मा अपने आकाश-स्वरूपकी स्थितिको धारणकर स्वस्वरूपका चिन्तन करे तो उससे वासनाओं या कल्पनाओंका कारण जो अबोधरूप अमङ्गल अज्ञान है वह नष्ट होकर मङ्गल या शुद्ध स्वरूपकी प्रतीति होती है। बस, इसी मङ्गल, शुद्ध स्वरूपको ही 'शिव' (शिव=मङ्गल) कहना चाहिये—यही शिवका लक्षण है।

ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि ज्ञानी पुरुषको भी कहीं-कहीं 'शिव' कहा गया है। यद्यपि ज्ञानी पुरुष विचारद्वारा कामविकारका शमन करता है तथापि कामविकार स्वप्नकी अवस्थामें वासनारूपसे उत्पन्न होकर उसके मनःक्षोभका कारण हो जाता है और ज्ञानीके लिङ्गशरीरको स्वप्नावस्थामें पीडा पहुँचाने लगता है। ऐसा होनेपर ज्ञानी अथवा योगी पुरुष अग्निचक्रमें अर्थात् भ्रूमध्यस्थानमें ध्यान लगाकर कामविकारका नाश करता है। बस, शिवजीके अपने मस्तकके तीसरे नेत्रकी अग्निसे मदनदहन करनेकी कथाका यही तात्पर्य है।

३-दक्षकी कथा—'दक्षहा' (दक्षका नाश करनेवाले) की कथामें भी महादेवके सम्बन्धमें गूढ़ रूपक है। 'दक्ष' शब्दका अर्थ है निपुण। किसी विद्या अथवा कलामें प्रवीण मनुष्यको 'दक्ष' कहते हैं। दक्षता अथवा प्रवीणता प्रत्येक विद्या या कलामें होनी चाहिये, अर्थात् दक्षतासे ही विद्या अथवा कलाओंकी प्राप्ति होती है। इसीलिये ऐसा कहा गया है कि दक्ष (प्रजापति) की अनेक कन्याएँ (अनेक विद्याएँ) थीं। सर्वविद्याओंमें अध्यात्मविद्या श्रेष्ठ है और वह सदा 'एकमेवाद्वितीयम्' परमेश्वरके ही साथ रहती है, इसलिये उसे दक्षकी ज्येष्ठ कन्या—सती कहा गया है। सतीका विवाह मंगल-स्वरूप परमेश्वर शिवजीसे ही किया गया था। कृतयुगमें ब्रह्मवेत्ता ऋषिगण यज्ञ किया करते थे। वे यज्ञ प्रेम-प्रधान होते थे, अर्थात् केवल ईश्वर-कृपाकी कामनासे ही, नवीन स्तोत्र-रचना-पूर्वक किये जाते थे। ऐसे यज्ञोंमें

शिव और सतीका भलीभाँति मान-सम्मान होता था। परन्तु आगे चलकर लोगोंमें स्वार्थपरायणता उत्पन्न हो गयी, फलतः यज्ञ अर्थात् ईश्वरकी आराधना भी प्रीतिप्रधान अर्थात् केवल ब्रह्मसुखकी प्राप्तिके अर्थ नहीं रही, बल्कि धन-धान्य, पुत्र-पौत्र, दीर्घायु किंवा आरोग्य-प्राप्तिके अर्थ होने लगी। ऐसे यज्ञोंमें स्वार्थपरक विद्याओं तथा उनके पतियों-का सम्मान हुआ और ब्रह्मविद्या सती और उसके मंगलरूप पतिका भयङ्कर अपमान हुआ, इससे सती स्वयं अग्नि-कुण्डमें कूदकर भस्म हो गयी अर्थात् ब्रह्मविद्या गुप्त हो गयी। सतीके नाशसे 'यज्ञेश्वर' (प्रीतिप्रधान यज्ञोंके ईश्वर) शिवजीको क्रोध आ गया और उन्होंने कामप्रधान यज्ञोंका नाशकर उसमें हविर्भाग लेनेवाले देवताओंको दण्ड दिया। अनन्तर सती हिमालयकन्या पार्वती हो गयी और उन्होंने शिवजीको पतिरूपसे वरण किया। इसका यह अर्थ है कि ब्रह्मविद्या संसारमेंसे नष्ट होकर हिमालयमें स्थित ऋषि-मुनियोंके पास चली गयी और वहाँपर वह केवल परमेश्वर-की सेवामें ही रह गयी। Krishna and Krishnaism ग्रन्थमें दक्षयागकी कथाका गूढ़ार्थ इसप्रकार प्रकट किया गया है—

A solemn sacrifice which disdains to glorify Shiva or the Good must necessarily collapse, causing the death of Shakti (Supreme Force.)

भावार्थ—जिस यज्ञमें कल्याणरूप ईश्वरका सम्मान नहीं होता वह यज्ञ शक्तिसहित नष्ट हो जाता है।

४—मस्तकपर गंगा तथा चन्द्रमाको धारण करना—शिवजीने विषपानसे उत्पन्न हुए दाहको शमन करनेके लिये मस्तकपर गंगा और चन्द्रमाको धारण किया था। गंगाको धारण करनेका दूसरा यह भी कारण बतलाया जाता है कि जब गंगाजी आकाशसे पृथिवीपर अवतीर्ण हुई तब उनका प्रवाह इतने जोरका था कि यदि शिवजी बीचमें आकर उन्हें अपनी जटाओंमें धारण न करते तो सारी पृथिवी जल-मय हो जाती।

इस कथामें भी आध्यात्मिक गूढ़ार्थ भरा है। महादेव 'महायोगी' कहलाते हैं। महायोगीको काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और मत्सर—इन षड्विकारोंको जलाकर उसका भस्म शरीरपर धारण करना पड़ता है। उसका निवास भी ऐसे श्मशानमें होता है जहाँ इन षड्विकारोंकी चिता दिन-रात जलती रहती है। उसका तृतीय नेत्र अर्थात् ज्ञाननेत्र खुला रहता है। तीव्र योगसाधनके लिये उसका व्याघ्रचर्मका ही आसन होता है। जिस समय सुप्त कुण्डलिनी-शक्ति जाग्रत होने लगती है, उस समय योगीको हलाहल विष-पानके समान प्राणान्त वेदना होती है। उस वेदनाका शमन करनेके लिये वह मनके पुत्र चन्द्रमाको और सहस्रदलसे उत्पन्न हुई त्रिवेणीधारा (गंगा) को सिरपर धारण करता है। खेचरी आदि मुद्राओंको करनेके कारण उसके शरीर-पर सर्पभूषण सहज ही शोभायमान होते हैं।

५—भस्मासुरकी कथा—शकुनी असुरके पुत्र वृकासुरने ब्रह्मा-विष्णु-शिव—इन त्रिदेवोंमें शिवजीको शीघ्र प्रसन्न होने-वाले समझ उनकी घोर आराधना की और उन्हें प्रसन्न-कर यह वरदान प्राप्त किया कि 'जिसके सिरपर मैं हाथ रक्खूँ वह तुरन्त भस्म हो जाय।' फिर शिवजीके इस वरसे उन्मत्त होकर उक्त असुर, जिसे आगे चलकर 'भस्मासुर' नाम मिला; स्वर्ग, मृत्यु, पाताल तीनों लोकोंमें बड़ा उपद्रव मचाने लगा। उसकी दुष्टता यहाँतक बढ़ी कि एक समय स्वयं शिवजीके मस्तकपर हाथ रखकर उन्हें भस्म करके जगजननी श्रीपार्वतीजीका अपहरण करनेकी कुवृत्ति भी उसके अन्दर जाग्रत हो उठी। इतनेमें विष्णुभगवान् मोहिनी रूप धारण करके उसके सामने आ खड़े हुए और उन्होंने कटाक्षादि मधुर हाव-भावोंके साथ नृत्य प्रारम्भ किया, जिससे मोहित होकर भस्मासुर भी नाच उठा। ज्यों-ज्यों भगवान् नाचते त्यों-त्यों वह भी उन्हींका अनुकरण करता। आखिर मोहिनीरूप भगवान्ने नृत्य करते-करते अपने सिरपर अपना हाथ रख लिया। बस, भस्मासुरने भी उनका अनुकरण किया और स्वयं भस्म हो गया।

अध्यात्मवादी लोग इस कथाका रहस्य यों बतलाते हैं कि जो लोग कपटाचारी, विश्वासघाती, परपीडक और अपने उत्पन्नकर्त्ता ईश्वरके वेदप्रतिपादित नियमोंका उल्लङ्घन करनेवाले होते हैं और जिनमें भूतदया बिलकुल नहीं होती ऐसे लोग ही भस्मासुर हैं। जो नरदेह आत्मज्ञानद्वारा तारने-वाला है उसे पाकर वे लोग पतनोन्मुख होते हैं। सत्कर्मोंके लिये प्राप्त हुए वरका असत्कार्योंमें उपयोग करनेके कारण जैसे भस्मासुर स्वयं अपने नाशका हेतु बना वैसे ही अनेक सुकृतोंके फलस्वरूप संसारसे तरनेके लिये मिले

हुए इस मानव-शरीरको दुष्ट कृत्योंमें लगानेवाले पुरुष अज्ञानरूप मायासे आवृत होते हैं और उनका अमूल्य नरदेह उन्हें सूअर, कुत्ते, बकरी आदि नीच योनियोंमें डाल देनेका कारण बनता है।

६–त्रिपुरासुरवधकी कथा–तारक नामक असुरके तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमललोचन–तीन पुत्र थे। उन्होंने घोर तप करके ब्रह्माजी और शिवजीको प्रसन्न कर अन्तरिक्षके तीन पुरोंको प्राप्त कर लिया। उन वरोंसे उन्मत्त होकर उन्होंने उपद्रव मचाना प्रारम्भ किया जिससे तीनों लोक सन्तप्त हो उठे। विष्णुभगवान्‌की अध्यक्षतामें सब देवताओं-ने जाकर शिवजीकी शरण ली। शिवजीने सबको आश्वासन देकर युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा दी। तदनुसार देवताओंने तैयारी की। पृथिवीका रथ बनाया, चन्द्र-सूर्य दो पहिये हुए, मन्दर-पर्वतको धुरी बनाया, चारों वेद अश्व बने, ब्रह्माजी सारथी हुए, षट्शास्त्रोंकी लगाम बनायी गयी, सुमेरु धनुष बना, शेषनाग धनुषकी प्रत्यञ्चा और साक्षात् विष्णु शर बने। इसप्रकार इन सब सामग्रीके साथ महारथी महादेवने बहुत काल-पर्यन्त घनघोर युद्ध किया और अन्तमें विष्णुरूप बाणपर पाशुपतास्त्रको चढ़ाकर दैत्योंके सहित त्रिपुरोंका नाश किया। 'त्रिपुरान्तक' 'पुरान्तक' नाम शिवजीको मिलनेका बीज इस कथामें है।

हरिवंश-ग्रन्थके भविष्य-पर्वमें जनमेजयने इस कथाका तत्त्व वैशम्पायनसे पूछा है और वैशम्पायनने उसका आलङ्कारिक भाषामें उत्तर दिया है। उस विवरणका स्पष्टीकरण महाभारतके सुप्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ चतुर्धरने हरि-वंशके १३३वें अध्यायकी टीकामें उत्तम रीतिसे किया है, जिसका सारांश इसप्रकार है—

'स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर ही त्रिपुरासुरके तीन पुर हैं। 'शङ्कर'का अर्थ है बोध। श्रवण मनन-निदिध्यासन यह त्रिशूल है। काम, क्रोध, लोभादि असुर और शम-दमादि देवतागण हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति-अवस्थाओंके अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञ पुरत्रयके भोगनेवाले त्रिपुरासुर हैं। त्रिपुर आकाशमें दीखने लगे इसका अर्थ यह है कि वे अवस्थाएँ कारण-देहमें प्रकट हुईं। अन्नमय कोश उनका सुवर्णप्राकार है। यज्ञादि कर्मोंद्वारा असुरोंने इस पुरत्रयको प्राप्त कर लिया। इस नगरीमें स्रक्‌चन्दन-वनिताओंके कटाक्ष शस्त्र हैं, इसमें रहनेवाले सूर्यनाथ और चन्द्रनाथ चक्षु और मन हैं, मद-मत्सरादि अन्य अनेक असुर भी वहाँ हैं और वे श्रुतिकथित सदाचरणका मार्ग रोककर शम-दमादि देवताओंको पीड़ा देते हैं। पीड़ित देवतागण महादेव-बोधकी शरण लेकर उनकी आज्ञासे तत्त्व-चिन्तनरूप उग्र तप करने लगे। उनके तपके प्रभावसे असुर क्षीणबल हो गये और भयभीत होकर हृदयाकाशमें छिप गये; वहाँपर वासनारूपसे स्थित होकर वासना-परिपाकके समयकी प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु पीछे कुभोगकी क्षीण हुई वासनाएँ परिपाकके समय पुनः विजयी होने लगीं, जिससे देवतागण घबड़ाकर महादेवकी शरणमें पहुँचे। तब श्रीशङ्करने युद्धकी तैयारी की और प्रणव-धनुषपर चित्त-बाण चढ़ाकर युद्ध प्रारम्भ किया। ध्यानद्वारा प्रथम स्थूलाध्यासको उड़ा दिया, साथ ही वृषरूप विष्णुकी सहायतासे सूक्ष्माध्यासको भी निकाल दिया। उसके बाद महत्तत्त्व नामक प्रदेशमें असुर फिर कष्ट देने लगे। अबकी रुद्रभगवान्‌ने प्रणवरूपी धनुषके स्थानमें महावाक्यरूपी अग्निकी स्थापना की और चरमवृत्तिरूप ब्रह्मास्त्रके साथ चिदाभासरूप दिव्य बाण छोड़ा और इसप्रकार मूल-अज्ञानरूप त्रिपुरका संहार कर दिया। यही भाव मोरोपन्त कविकी निम्नलिखित आर्याओंमें प्रकट किया गया है—

> तेव्हां रुद्र धनुर्ध्यीं अग्नि स्थापूनि दिव्य शर जोडी।
> त्या दैत्यांच्या तिसऱ्या नगरीं ब्रह्मास्त्रयुक्त मग सोडी॥
> अग्नि महावाक्य, धनु प्रणव, चिदाभास होय दिव्य शर।
> ब्रह्मास्त्र चरमवृत्ति हि, पुर मूलाज्ञान, म्हणति सुज्ञवर॥
> कल्याण करें जीवें असुरपुरें जागृदादि जी तीन।
> सद्विद्यास्त्रें केलीं भस्म असें वर्णिति सुधी जीन॥
>
> (हरिवंशपर्व)

श्रीज्ञानेश्वर महाराजने 'ज्ञानेश्वरीके' १७ वें अध्यायके प्रारम्भमें श्रीगुरु-स्तुतिमें त्रिपुरसंहारके रूपकका उल्लेख दूसरे ही ढङ्गसे किया है। उनमेंसे आरम्भकी दो 'ओवियाँ' यहाँ-पर दी जाती हैं—

> (१) विश्व विकासित मुद्रा। जया सोडवी तुझी योगनिद्रा॥
> तया नमोजी गणेन्द्रा। श्रीगुरुराया॥
> (२) त्रिगुण-त्रिपुरीं वेढिला। जीवत्व दुर्गीं आडिला॥
> तो आत्मशम्भूने सोडविला। तुझिया स्मृति॥

अर्थात्, जिनकी योगनिद्रा विश्वविकसित मुद्रा अर्थात् संसारसे तार देती है, ऐसे हे गणेशरूपी श्रीगुरुराज! मैं

आपको नमस्कार करता हूँ। त्रिगुणरूपी त्रिपुरसे घिरे हुए और जीव-दशारूपी दुर्गमें कैद हुए आत्म-शम्भुने आपके स्मरणसे ही अपनी मुक्ति कर ली है।

इसमें सत्त्व, रज और तम—त्रिगुणोंको ही 'त्रिपुर' कहा गया है। त्रिगुणोंद्वारा संत्रस्त जीवात्मा सद्गुरु—शिवके स्मरणसे मुक्त हुआ, अर्थात् आत्म-शम्भुने उसे मुक्त कर दिया।

शिवपूजाका यह श्लोक प्रायः शिवभक्तोंको कण्ठस्थ रहता है—

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम्।
त्रिजन्मपापसंहारमेकबिल्वं शिवार्पणम्॥

कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीन नेत्रों तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासनरूप त्रिशूलको धारण करनेवाले शिवजीको सत्त्व, रज और तमरूप तीन दलोंका बिल्वपत्र (चित्त) चढ़ानेसे जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थारूपी जन्मोंका नाश होकर मुमुक्षु मुक्त हो जाता है।

इसके सिवा समुद्र-मन्थनके समय हलाहलपान, मोहिनीकृत मोहन आदि अन्य रूपक भी शिव-चरित्रमें मिलते हैं।

श्रीरामकृष्ण परमहंसके मतसे शिवजी योगके प्रत्यक्ष अवतार हैं। वे ध्यानद्वारा जीवात्मा और परमात्माका मेल करा देनेवाली एक मूर्तिमान् शक्ति हैं। वे ध्याननिष्ठ पुरुषोंके आदर्श हैं, क्योंकि वे नित्यप्रति समाधि लगाकर परब्रह्मके ऐश्वर्यका चिन्तन करते रहते हैं। संसारकी उन्हें कुछ भी परवा नहीं है; सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंके अतीत होकर परमात्मस्वरूपके साथ तादात्म्यका अनुभव करते हुए सदा शान्त, स्थिर और अचल रहते हैं। परमात्म-स्वरूपमें लीन शिवजीके गलेमें संसारके सर्प लिपटे रहते हैं; परन्तु वे उन्हें डस नहीं सकते। मृत्युका उग्र रूप प्रदर्शित करनेवाले नरमुण्डादि भीतिप्रद पदार्थ उनके चारों ओर फैले रहते हैं परन्तु उनपर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं हो सकता। सारे जगत्‌के दुःख आप स्वयं सहते हैं और दूसरोंको अमरता प्राप्त करानेके लिये स्वयं हलाहल विषका पान करते हैं। दूसरोंके सुखके लिये सम्पत्ति और ऐश्वर्यका स्वयं त्याग करते हैं। अपनी अर्धाङ्गिनीको उग्र तपश्चर्यामें लगाते हैं, चिताभस्म और व्याघ्राम्बरको ही भूषण मानते हैं; इसीलिये शिवजीको 'योगिराज' संज्ञा दी जाती है।

अन्तमें 'महिम्न' के श्लोकोंसे शङ्करकी स्तुति करके इस लेखको समाप्त किया जाता है—

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः।
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः॥
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः।
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

'संसारकी उत्पत्तिके समय आप रजोगुणप्रधान 'भव' कहे जाते हैं तथा संहारकालमें तमोगुणप्रधान होकर हर-नाम धारण करते हैं। इसी प्रकार सत्त्वगुणकी उद्रेकावस्थामें प्राणियोंको सुख देते हुए आप मृड-नामसे प्रसिद्ध होते हैं और तीनों गुणोंसे पृथक् होकर परम तेजोमय ब्रह्मपदमें स्थित होनेपर 'शिव' कहे जाते हैं। ऐसे आपको बार-बार नमस्कार है।'

'हे ईश! यदि समुद्ररूपी दावातमें कज्जल-पर्वतकी स्याही हो, कल्पवृक्षकी शाखा, लेखनी और यह पृथ्वी ही पत्र हो तथा साक्षात् शारदा भवानी प्रतिक्षण लिखती रहें, तो भी आपके गुणोंका पार नहीं पा सकतीं।'

श्रुतिवाणीमें—

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। आविरावीर्म एधि। रुद्र यत्ते दक्षिणमुखं तेन मां पाहि नित्यम्।

अर्थात् मुझे असत्‌मेंसे सत्य, अन्धकारमेंसे ज्योति और मृत्युमेंसे अमृत प्राप्त करा दो। हे रुद्र! प्रकट होकर अपनी शुभ दृष्टिसे मेरी निरन्तर रक्षा करो। ॐतत्सत् शिवाय नमः।

रुद्राक्षकी उत्पत्ति, धारण विधि और माहात्म्य

(रुद्राक्षजाबालोपनिषद्से)

रुद्राक्षोपनिषद्वेद्यं महारुद्रतयोज्ज्वलम् ।
प्रतियोगिविनिर्मुक्तं शिवमात्रपदं भजे ॥

'रुद्राक्ष-उपनिषद्से जाननेयोग्य, महारुद्ररूपसे उज्ज्वल, प्रतियोगीरहित, शिवपदवाच्य तत्त्वकी मैं शरण लेता हूँ ।' हरिः ओम् ।

भुसुण्ड नामके ऋषिने कालाग्निरुद्रसे पूछा कि, 'रुद्राक्षकी उत्पत्ति किसप्रकार हुई तथा उसके धारण करनेसे क्या फल मिलता है—इसे आप लोकहितके लिये कृपा करके कहिये ।' कालाग्निरुद्र भगवान्ने कहा कि 'त्रिपुरासुर नामक दैत्यका नाश करनेके लिये मैंने नेत्रोंको बन्द कर लिया था। उस समय मेरी आँखोंमेंसे जलके बिन्दु पृथिवीपर गिरे और वही रुद्राक्षरूपमें परिणत हो गये । सर्वलोकके अनुग्रहके लिये मैं यह बतलाता हूँ कि उनके नामोच्चारणमात्रसे दस गो-दानका फल, और दर्शन तथा स्पर्शसे दुगुने (अर्थात् बीस गो-दानका) फल प्राप्त होता है । इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता ।' इस सम्बन्धमें नीचे लिखी उक्ति है—

भुसुण्ड ऋषिने पूछा कि 'वह रुद्राक्ष कहाँ स्थित है, उसका क्या नाम है, वह किसप्रकार मनुष्योंके द्वारा धारण किया जाता है, कितने प्रकारके इसके मुख हैं और किन मन्त्रोंसे इसे धारण किया जाता है—आदि सब बातें कृपा करके कहिये ।'

श्रीकालाग्निरुद्र बोले—'देवताओंके हजारों वर्षोंतक मैंने अपनी आँखें खुली रखीं । उस समय मेरी आँखोंसे जलकी बूँदें पृथिवीपर गिर पड़ीं । वे आँसूकी बूँदें भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये स्थावरत्वको प्राप्तकर महारुद्राक्ष नामक वृक्ष हो गये । रुद्राक्ष धारण करनेसे भक्तोंके रात-दिनके पाप नष्ट होते हैं, उसका दर्शन करनेसे लाखोंगुना पुण्य मिलता है । जो मनुष्य रुद्राक्ष धारणकर रुद्राक्षकी मालासे इष्टदेवका जप करता है उसे अनन्तगुने पुण्यकी प्राप्ति होती है । आँवलेके फलके समान आकारवाला रुद्राक्ष उत्तम होता है, बेरके समान आकारवाला मध्यम और चनेके समान आकारवाला कनिष्ठ होता है । अब उसके धारण करनेकी प्रक्रिया कहता हूँ, सुनो । श्रीशङ्कर-भगवान्की आज्ञासे पृथिवीपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार जातिके रुद्राक्षके वृक्ष उत्पन्न हुए । प्रत्येक जातिके मनुष्यको अपनी-अपनी जातिके रुद्राक्ष ही फलदायक होते हैं । श्वेत रुद्राक्षको ब्राह्मण, लालको क्षत्रिय, पीलेको वैश्य और कालेको शूद्र जानना चाहिये और ब्राह्मणको श्वेत रुद्राक्ष धारण करना चाहिये, क्षत्रियको लाल, वैश्यको पीला और शूद्रको काला रुद्राक्ष पहनना चाहिये । आकारमें एक समान, चिकने, पक्के (मजबूत) मोटे तथा काँटोंवाले रुद्राक्षके दाने शुभ होते हैं । कीड़ा लगे हुए, टूटे-फूटे, बिना काँटोंके, छिद्रयुक्त तथा बिना जुड़े हुए—इन छः प्रकारके रुद्राक्षोंका त्याग करना चाहिये । जिस रुद्राक्षमें स्वयमेव बना हुआ छिद्र हो वह उत्तम है; जिसमें किसी मनुष्यद्वारा छिद्र किया हुआ हो उसे मध्यम जानना चाहिये । शास्त्रमें लिखे अनुसार एक समान, चिकने, पक्के एवं मोटे दानोंको रेशमके धागेमें पिरोकर शरीरके तत्तद् अवयवमें धारण करे । जिस रुद्राक्षकी माला कसौटीके पत्थरपर सुवर्णकी रेखाके समान जान पड़े वह रुद्राक्ष उत्तम है, ऐसे रुद्राक्षको शिव-भक्त धारण करे । शिखामें एक रुद्राक्ष, सिरपर तीस, गलेमें छत्तीस, दोनों बाहुओंमें सोलह-सोलह, कलाईमें बारह और कन्धेपर पचास दाने धारण करे और एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी मालाका यज्ञोपवीत बनावे । दो, पाँच अथवा सात लड़ोंकी माला कण्ठ-प्रदेशमें धारण करे । मुकुटमें, कुण्डलमें, कर्णफूलमें तथा हारमें भी रुद्राक्ष धारण करे । बाजूबन्दमें, कड़ेमें, विशेषकर करधनीमें, सोते-जागते, खाते-पीते सर्वदा मनुष्यको रुद्राक्ष धारण करना चाहिये । तीन सौ रुद्राक्ष धारण करना अधम, पाँच सौ मध्यम और एक हजार उत्तम है । बुद्धिमान् पुरुष—

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणः पतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ।

—इस मन्त्रसे मस्तकमें,

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

—इस मन्त्रसे कण्ठमें,

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।

—इस मन्त्रसे गले, हृदय और हाथोंमें धारण करे। गूँथे हुए पचास रुद्राक्षोंको चतुर पुरुष आकाशके समान व्यापक पेटपर धारण करे। और मूल मन्त्रोंसे तीन, पाँच अथवा सात लड़ोंमें गूँथी हुई मालाको धारण करे। इसके बाद भुसुण्ड ऋषिने महाकालाग्निरुद्र भगवान्से पूछा कि, 'रुद्राक्षके भेदसे जो रुद्राक्ष जिस स्वरूपवाला और जिस फलको देनेवाला, मुखयुक्त, अरिष्टका नाश करनेवाला और इच्छामात्रसे शुभ फलको देनेवाला है वह स्वरूप मुझे कहिये।' इस विषयमें निम्नलिखित उक्ति है—

'हे मुनिश्रेष्ठ! एक मुखवाला रुद्राक्ष परब्रह्मस्वरूप है और जितेन्द्रिय पुरुष उसको धारणकर परमब्रह्ममें लीन हो जाता है। दो मुखवाला रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर भगवान्का स्वरूप है; उसको जो नित्य धारण करता है उसपर अर्धनारीश्वर भगवान् सदा प्रसन्न रहते हैं। तीन मुखवाला रुद्राक्ष त्रिविध अग्निका स्वरूप है; उसके पहननेवालोंपर अग्निदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। चार मुखवाला रुद्राक्ष चतुर्मुख ब्रह्माका स्वरूप है और उसके धारण करनेवालेपर चतुर्मुख ब्रह्मदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। पाँच मुखवाला रुद्राक्ष पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका स्वरूप है और उसके धारण करनेवालेको पञ्चमुख भगवान् शिव, जो स्वयं ब्रह्मरूप हैं, नरहत्यासे भी मुक्त कर देते हैं। छः मुखवाला रुद्राक्ष कार्तिकेय स्वामीका स्वरूप है, उसके धारण करनेसे महान् ऐश्वर्य एवं उत्तम आरोग्यकी प्राप्ति होती है। बुद्धिमान् पुरुष ज्ञान और सम्पत्तिकी शुद्धिके लिये इस रुद्राक्षको धारण करे। इसे विद्वान्लोग विनायकदेवका स्वरूप भी कहते हैं। सात मुखवाला रुद्राक्ष सप्तमाला देवीका स्वरूप है। उसके धारण करनेसे अटूट लक्ष्मी तथा पूर्ण आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इस रुद्राक्षको सदा धारण करनेवाला महाज्ञानी और पवित्र हो जाता है। आठ मुखवाला रुद्राक्ष अष्टमातृकाका स्वरूप है और आठ वसुदेवताओंको तथा गङ्गाजीको प्रिय है। उसके धारण करनेवालेपर ये सत्यवादी अष्टवसु प्रसन्न होते हैं। नव मुखवाला रुद्राक्ष नवदुर्गाका स्वरूप है, उसके धारण करनेमात्रसे नवदुर्गाएँ प्रसन्न होती हैं। दस मुखवाले रुद्राक्षको यमका स्वरूप कहते हैं। वह दर्शनमात्रसे शान्ति प्रदान करनेवाला है, तो फिर उसके धारण करनेसे शान्ति मिलनेमें कोई सन्देह ही नहीं है। ग्यारह मुखवाला रुद्राक्ष एकादश रुद्रका स्वरूप है, उसे धारण करनेवालेको वह तद्रूप करनेवाला और सौभाग्य प्रदान करनेवाला है। बारह मुखवाला रुद्राक्ष महाविष्णुका स्वरूप है, वह बारह आदित्यके समान स्वरूप प्रदान करनेवाला है। तेरह मुखवाला रुद्राक्ष इच्छित फल तथा सिद्धि प्रदान करनेवाला है, इसके धारणमात्रसे परमेश्वर प्रसन्न होते हैं।*

'चौदह मुखवाला रुद्राक्ष रुद्रके नेत्रसे उत्पन्न हुआ है, वह सर्व व्याधिको हरनेवाला तथा सदा आरोग्य प्रदान करनेवाला है। रुद्राक्ष धारण करनेवाले पुरुषको मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहिंजन, बहुयार (लहटोर), विड्वराह (ग्राम्यशूकर)—इन अभक्ष्योंका त्याग करना चाहिये। ग्रहणके समय, मेष-संक्रान्ति, उत्तरायण, अन्य संक्रान्ति, अमावास्या, पूर्णिमा तथा पूर्ण दिनोंमें रुद्राक्ष धारण करनेसे तत्काल मनुष्य सर्व पापोंसे छूट जाता है। रुद्राक्षका मूल ब्रह्मा, विष्णु मध्यभाग और उसका मुख रुद्र है और उसके बिन्दु सब देवता कहे गये हैं।'

अनन्तर सनत्कुमारने कालाग्निरुद्र भगवान्से रुद्राक्ष धारण करनेकी विधि पूछी। उसी समय निदाघ, जडभरत, दत्तात्रेय, कात्यायन, भरद्वाज, कपिल, वशिष्ठ, पिप्पलाद आदि ऋषि भी उनके समीप आ गये। भगवान् कालाग्निरुद्रने उनके आनेका प्रयोजन पूछा; तब उन्होंने यही कहा कि, हम सब रुद्राक्ष-धारणकी विधिको सुनना चाहते हैं। तत्पश्चात् भगवान् कालाग्निरुद्रने कहा कि, 'रुद्रके नयनोंसे उत्पन्न होनेके कारण ही इनकी रुद्राक्ष-संज्ञा हुई है। भगवान् सदाशिव संहारकालमें संहार करके अपने संहारनेत्रको बन्द कर लेते हैं, उस नेत्रमेंसे रुद्राक्षके उत्पन्न होनेके कारण उसका नाम 'रुद्राक्ष' प्रसिद्ध हुआ है। रुद्राक्षका नाम उच्चारण करनेसे दस गो-दानका फल मिलता है। वही यह 'भस्मज्योति' रुद्राक्ष है। उस रुद्राक्षको हाथसे स्पर्शकर धारण करनेसे दो हजार गो-दानका फल मिलता है तथा एकादश रुद्रत्वकी प्राप्ति होती है। उस रुद्राक्षको सिरपर धारण करनेसे कोटि गो-दानका फल मिलता है। इन स्थानोंमें कानोंमें रुद्राक्ष धारण करनेका फल नहीं कहा जा सकता। जो मनुष्य इस रुद्राक्ष-जाबालोपनिषद्का नित्य पाठ करता है अथवा उसके रहस्यको जानता है वह बालक हो या युवा, महान् हो जाता है; वह सबका गुरु

---

* 'कामदेवः प्रसीदति' इस पदमें कामदेवकी व्युत्पत्ति इसप्रकार है—

काम्यते मुमुक्षुभिरिति कामस्तथाभूतः सन् दीव्यति परमेश्वरः।

और मन्त्रोंका उपदेश करनेवाला हो जाता है। रुद्राक्षको पहनकर होम करना चाहिये, इन्हींका धारण करके पूजन करना चाहिये; इसी प्रकार यह रुद्राक्ष राक्षसोंका नाश करनेवाला तथा मृत्युसे तारनेवाला है। रुद्राक्षको गुरुसे लेकर कण्ठ, बाँह और शिखामें बाँधे। रुद्राक्षके दाता गुरुको गुरुदक्षिणामें सप्तद्वीपवाली पृथिवीका दान भी अपूर्ण ही है, इसलिये उसे श्रद्धापूर्वक कम-से-कम एक गायका दान करे; यह गो-दान ही शिष्यको फल देता है। जो ब्राह्मण इस उपनिषद्का सायंकाल पाठ करता है उसके दिनके पाप नष्ट हो जाते हैं, मध्याह्नमें पाठ करनेसे छः जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा प्रातःकाल पाठ करनेसे अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं और छः अरब गायत्रीजपका फल मिलता है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, सुवर्णकी चोरी, गुरु-स्त्री-गमन तथा संसर्ग-दोषसे हुए अनेक पाप भी इससे नष्ट हो जाते हैं और वह पवित्र हो जाता है। वह सब तीर्थोंका फल भोगता है, पतितके सङ्ग भाषण करनेसे लगे हुए पापसे मुक्त हो जाता है, अपनी पंक्तिमें भोजन करनेवाले सैकड़ों-हजारोंको पवित्र करनेवाला हो जाता है और अन्तमें शिवलोकमें सायुज्य-मुक्ति पाता है; इससे उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

अनु०—आई० बी० मेहता

शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया)

वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम्।

वर्तमान शिवांक भी मेरी समझसे एक प्रकारसे ईश्वरांक ही है। मैं तो यही समझता हूँ कि सम्पादकजीने किसी साम्प्रदायिक उद्देश्यको सम्मुख न रखकर उस परात्पर प्रभुकी ही चर्चा करना अपना लक्ष्य रक्खा है, जो वेद-शास्त्रोंमें शिव, शङ्कर, रुद्र, महेश्वर, विश्वनाथ, महादेव इत्यादि नामोंसे भी अनेक स्थलोंमें वर्णित है। 'कल्याण' पत्रका उद्देश्य भी भगवद्भावोंका प्रचार करना ही है। अतएव भगवान्के कभी किसी नाम-रूपपर, कभी किसी नाम-रूपपर विचार प्रकट करना युक्तियुक्त ही है। वही लेखनी, वाणी और मन सार्थक है जो विश्वपतिके गुण-महिमा-रहस्यका प्रकाश करे। श्रीमद्भागवतमें भी कहा है—

> मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
> न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः।
> तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
> तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्॥
> तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
> तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
> तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
> यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते॥

'जिस कथामें भगवान् अधोक्षजकी चर्चा नहीं है वह असत् और मिथ्या है। जिस कथामें भगवान्के गुणगण-वर्णनका प्रसंग है, वही सत्य, मङ्गलदायिनी और पुण्यमयी है। जो उत्तमश्लोक भगवान्के यशसे पूर्ण हो वही परम-रमणीय और पल-पलपर नित्य नवीन है, वही महान् उत्सवस्वरूप है और वही मनुष्योंके शोकसागरको सुखानेवाला है। जगत्में जिसप्रकार खान-पान, रहन-सहन वेश-भूषामें सब मनुष्योंको एक-सी रुचि नहीं होती है, वैसे ही भगवत्-उपासनामें भी सबकी एक-सी रुचि होना सम्भव नहीं है। यह अवश्य है कि युक्त और वैध आहार-विहार चाहे भिन्न-भिन्न प्रकारका क्यों न हो उसका परिणाम शरीर-रक्षा आदि समान ही होता है, परन्तु उसीके अयुक्त और अवैध होनेपर फलमें समानता नहीं रहती, वैसे ही उपासनामें नाम-रूपका भेद होनेपर भी युक्त और वैध उपासनाका परिणाम सर्वत्र एक ही होता है, अवैध अयुक्त होनेसे ही फलमें भेद हो जाता है।

प्राचीन आर्य-ऋषियोंने सच्चिदानन्दघन परमात्माके अनेक नामों और रूपोंके भेदसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी उपासना-की विधि शास्त्रोंमें बतलायी है। इन सब विभिन्न उपासनाके भेदके मूलमें भाव, उद्देश्य, हेतु सब युक्तियुक्त रक्खे गये हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि जनसाधारण अपने-अपने भाव, उद्देश्य और रुचिके अनुसार नाम-रूपकी उपासनाको पसन्द करते हैं। सकाम उद्देश्यके अतिरिक्त यदि निष्काम-

भावसे भक्ति-श्रद्धासे युक्त होकर भगवान्के किसी भी नाम-रूपकी उपासना की जाय तो परिणाम सबका कल्याण ही है। पुष्पदन्त भक्तने कहा है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

'तीनों वेद (वेदविहित मार्ग), सांख्य (कापिल-मतानुसार मार्ग), योग (पतञ्जलिऋषिनिर्दिष्ट मार्ग), पाशुपत शास्त्र (शैवमत), वैष्णव (वैष्णवमत) इत्यादि अनेक विभिन्न मार्ग हैं; इनमेंसे किसीके मतसे कोई मार्ग श्रेष्ठ और हितकर है तो किसीके मतसे कोई मार्ग। परन्तु मनुष्योंके रुचिवैचित्र्यके कारण अर्थात् रुचि-भेदसे सरल और कुटिल अर्थात् कठिन प्रतीत होनेवाले नाना मार्गोंसे चलनेवाले भक्त उसी एक देवादिदेव महादेवको प्राप्त होते हैं, जैसे अनेक नदियोंका जल भिन्न-भिन्न मार्गोंसे सीधा या टेढ़ा घूम-फिरकर अन्तमें एक समुद्रमें ही जाकर शान्त होता है।

जब हम तात्त्विक दृष्टिसे शिव-नाम-रूपको विचारते हैं तो यही समझमें आता है कि यह उपासना अखिल भुवन-पति महेश्वरकी ही है जो सारे जगत्के उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता हैं, जो सारे जगत्में अव्यक्तरूपसे व्याप्त हैं और जिनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। उपनिषदोंमें कहा है—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥

'रुद्र एक है, उन्होंने (जाननेवालोंने) दूसरा नहीं ठहराया है। जो अपनी शक्तियोंसे सब लोकोंपर शासन करता है, जो सब लोगोंके पीछे वर्तमान है अर्थात् सबमें वर्तमान है और सारे भुवनोंको रचकर रक्षा करता तथा अन्तकालमें समेट लेता है।'

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥
महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्त्तकः।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः॥

'जिनके सर्वत्र मुख, सिर और ग्रीवा हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंके हृदयमें विराजमान हैं, सर्वव्यापी तथा सबके अन्दर रमे हुए हैं वही भगवान् शिव हैं। वह शिवभगवान् पुरुष हैं, महान् प्रभु हैं, सत्त्वके प्रवर्त्तक अर्थात् अस्तित्वके आधार हैं; अविनाशी ज्योतिःस्वरूप हैं तथा हर एक पदार्थमें अपनी पुण्यतम प्राप्तिके स्वामी हैं, अर्थात् उन्हीं भगवान् शिवकी कृपासे सर्वत्र उनके पवित्र स्वरूपकी प्राप्ति हो सकती है। यद्यपि शास्त्रोंमें कहीं-कहीं शिवको संहारकर्ता कहा है, वह भी ठीक ही है; क्योंकि एक ही अखिल भुवन-पति महेश्वर तीन रूपसे उत्पत्ति, पालन और संहारकर्ता बनते हैं। जैसे श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥
(१३।१६)

'वह परमात्मा विभागरहित एक रूपसे (आकाशके सदृश) परिपूर्ण हुआ भी चराचर सम्पूर्ण भूतोंमें पृथक्-पृथक्के सदृश प्रतीत होता है और वह जाननेयोग्य परमात्मा विष्णुरूपसे धारण-पोषण करनेवाला, रुद्ररूपसे संहार करनेवाला और ब्रह्मारूपसे उत्पन्न करनेवाला है।'

यहाँ कार्य-भेदसे एक ही परमात्माके तीन नामोंका वर्णन है। श्रुतिमें भी कहा है—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।'

'यह सब ब्रह्म है क्योंकि उससे उत्पन्न हुआ है, उसीमें लीन होता है और उसीमें स्थित है; अतएव शान्त होकर उसीके ध्यानमें स्थित होना चाहिये।'

यहाँ भी एक ही परमात्माको भिन्न-भिन्न कार्योंका कर्ता बतलाया है। जगत्पति परमात्मा तीन नहीं हैं, एक ही हैं; एकहीके कार्य-भेदसे नाम-रूपोंका भेद पाया जाता है। जो लोग शिवको केवल संहारकर्ता मानकर उपासते हैं वे लोग शिवके एक ही अंगकी उपासना करते हैं। उनकी उपासना पूर्ण उपासना नहीं समझी जा सकती। यह बात पाठकोंकी सेवामें पहले भी निवेदन की जा चुकी है कि उच्च कोटिका साधक या भक्त अपने इष्टदेवको किसी भी अंशमें खर्व नहीं कर सकता। उसके इष्टदेवसे ऊँचा और

कुछ नहीं है, उसमें अपूर्णता किसी भी अंशमें नहीं है। अपरिमित, अपरिच्छिन्न शक्तिवाला ही सर्वकाल और सर्वदेश-व्यापी होता है। उपर्युक्त वर्णनसे भगवान् शिवके साकार-रूपमें कुछ भी विरोध नहीं आता, विष्णु भगवान्‌के जिस-प्रकार दो रूपोंका वर्णन पाया जाता है—एक अव्यक्त (व्यापक) और दूसरा व्यक्त (साकार), उसी प्रकार भगवान् शिवके भी दो रूप हैं—एक अव्यक्त (सर्वव्यापक) और दूसरा (कैलासपुरीनिवासी साकार शिव)। साकार शिवकी अनेक लीलाओं और चरित्रोंका वर्णन पुराणोंमें मिलता है। शिवभक्त शिवकी जिस रूपसे उपासना करता है, सच्ची भक्ति और श्रद्धा होनेसे उसी रूपमें उनका दर्शन भी पाता है। साकाररूपमें भी प्रधान दो भेद हैं—एक हस्तपद-मस्तकादि पूर्णाङ्ग-विशिष्ट दिव्य स्थूल रूप (यहाँ 'स्थूल' शब्दसे पाञ्चभौतिक देह नहीं समझनी चाहिये) और दूसरा सूक्ष्म रूप अर्थात् शिवलिङ्ग। शिव भगवान्‌के स्वरूपका जो वर्णन पाया जाता है वह उच्च कोटिके वैज्ञानिक भावोंसे पूर्ण है। उसका किञ्चित् दिग्दर्शन यहाँ कराया जाता है—

भगवान् शिव विरक्त और त्यागी हैं, श्मशान उनका निवासस्थान है, भस्म उनका अङ्गराग है, पिशाच उनके सहचर हैं, वह मुण्डमालको धारण करनेवाले हैं—

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।

ऐसे प्रभु जिनके उपास्यदेव हैं वह भक्त कभी विषय-भोगाभिलाषी नहीं हो सकते। प्रायः शिवके उपासक त्यागी, संन्यासी और विरक्त पुरुष ही देखे जाते हैं, विरक्तकी उपासना विरक्त होनेसे ही बनती है। शिवका वस्त्र है पशु-चर्म, भूषण हैं रुद्राक्ष और सर्प, केशप्रसाधनके स्थानमें है जटा, अवलम्बन भिक्षा, वाहन वृषभ तथा आक-धतूरा आदि गन्धहीन पुष्पोंसे उनकी पूजा होती है। ये सभी वैराग्यके लक्षण हैं। ऐसे त्यागमूर्ति भगवान्‌की उपासना वैराग्यवान् ही करते हैं, क्योंकि जब स्वयं प्रभु वैराग्यकी मूर्ति बनकर वैराग्यकी शिक्षा दे रहे हैं तब विषय-भोग-सम्पदायुक्त होकर उनकी सेवा कभी शोभा नहीं देती। शिवप्रेमी क्या मनोरथ करता है—

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः।
भवाभोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्यार्तवचसा
कदा स्यामानन्दोद्गतबहुलबाष्पाप्लुतदृशः॥

'जहाँ शुभ्र ज्योत्स्ना फैली हुई हो, निर्मल स्थल हो, ऐसे गंगातटपर सुखसे बैठे रहें। जब सब ध्वनि शान्त हो जाय तब रात्रिमें आर्तस्वरसे 'शिव-शिव-शिव' कहते हुए संसारके दुःखसे व्याकुल हों और आनन्दके आँसुओंसे नेत्र पूर्ण हो रहे हों। ऐसी अवस्था हमारी कब होगी?'

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरि-
द्गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः।
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यं व्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता॥

'महादेव ही एक देव हों, गंगा ही नदी हो, एक कन्दरा ही घर हो, दिशा ही वस्त्र हो, काल ही मित्र हो, किसीसे दीनता न करना ही व्रत हो और कहाँतक कहें, वट-वृक्ष ही हमारी वल्लभा हो।' इत्यादि शिवभक्तोंके भावोंके नमूने हैं। शिवका वर्ण श्वेत है, जो वर्णहीन शुद्ध ब्रह्मका प्रतिपादक है।

शिवके त्रिनेत्र त्रिकाल अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमानके ज्ञान या सर्वज्ञताके प्रतिपादक हैं।

शिवका त्रिशूल आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक—तीन प्रकारके शूलोंसे बचानेवाला है।

शिवका मुण्डमालाका धारण मृत्युको स्मरण करानेवाला है, जिससे संसारमें आसक्ति नहीं रह जाती।

शिवका विष-पान—विषय-भोग ही विष हैं। विषय-भोगाभिलाषी विषजर्जरित समझे जाते हैं। वे लोग त्याग-वैराग्यकी महिमाको नहीं जानते। संसारभोग ही उनका चरम लक्ष्य है, परन्तु विचारवान् ज्ञानी भोग-विलाससे उदासीन रहते हैं और त्याग-वैराग्य ही उनका लक्ष्य होता है। कहा भी है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(भगवद्गीता २। ६९)

इसप्रकारसे शिव विषय-भोगरूपी विषको पान करने-वाले हैं अर्थात् इस विषसे छुड़ानेवाले हैं।

यहाँ प्रकृति देवी ही जगन्माता पार्वतीके रूपसे विराजमान हैं, क्योंकि जगत्‌की उत्पत्ति प्रकृति-पुरुषके संयोगसे ही होती है। हमलोग जो शिवके वक्षःस्थलपर कालिकाकी मूर्त्तिको देखते हैं उसमें भी यही दिखाया गया

है कि निष्क्रिय, शुद्ध ब्रह्मरूप शिव शान्तरूपसे स्थित है और प्रकृति या मायारूपी कालिका उस ब्रह्मके आश्रित एक देशमें स्थित है। यहाँ एक प्रकारसे जगत्का ही स्वरूप दिखाया जाता है, जो कुछ भी दृश्य हमलोगोंके इन्द्रियगोचर होते हैं वे सब मायिक हैं अथवा प्रकृति देवीके स्वरूप हैं जो सामने आधेयरूपसे खड़े हुए स्पष्ट दीखते हैं। पर जब साधक गुरुकृपासे शिक्षा प्राप्तकर, प्राकृत सब वस्तुओंसे अपनी दृष्टिको हटाकर, उसके जड मूलमें क्या तत्त्व है—इस बातकी खोज करता है तब वह शान्तरूपसे स्थित, सबके आधार, कल्याणरूप शिवको पाकर कल्याणको प्राप्त होता है।

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।

'सारे विश्वको घेरनेवाले अर्थात् उसके आधाररूप उस एकमात्र देवको जानकर सर्व फाँसोंसे मुक्त हो जाता है।'

अब शिवके सूक्ष्म रूपके विषयमें विचार कीजिये। यह भी युक्तियुक्त उपासना है, वास्तविक भावसे अनभिज्ञ होनेके कारण लोग नाना प्रकारकी शङ्काओंके जालमें पड़ जाते हैं। श्रद्धापूर्वक विचार करनेपर ऐसी शङ्काओंके लिये कोई स्थल नहीं रहता। शिवका सूक्ष्म रूप अथवा शिवलिङ्ग शिव-स्वरूपकी ही उपासना है, शिवके किसी अङ्ग-विशेषकी उपासना नहीं है। लिङ्ग-शब्दका अर्थ है 'चिह्न' जैसे विष्णुकी पूजा शालिग्राम-शिलामें की जाती है वैसे ही शिवकी पूजा पाषाण या मृन्मयी शिवलिङ्गमूर्त्तिमें की जाती है। यहाँ शिवलिङ्ग-शब्दमें अन्य किसी प्रकारकी कुत्सित भावना करना अज्ञतामात्र है। शास्त्रोंमें अनेक देवताओंकी आराधना उनकी हस्तपदविशिष्ट मूर्त्ति न बनाकर अन्य किसी भी आकारके पाषाण आदिकोंमें भी करनेकी विधि है और इस आराधनकालमें उस-उस पाषाण आदिके आकारकी भावना नहीं रक्खी जाती, बल्कि उन-उन देवोंकी ही भावना की जाती है जिनकी पूजा होती है। इस बातको समझनेके लिये अधिक दूर जानेकी आवश्यकता नहीं, केवल आप उन पूजाके मन्त्रोंके अर्थोंका ज्ञान कर लीजिये। बस, पता लग जायगा कि वह पाषाणकी पूजा नहीं है, देवताओंकी ही पूजा है। उदाहरणरूपमें पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर इसप्रकार ध्यान किया जाता है—

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।......

जब इसप्रकारके मन्त्रोंको स्मरण करके हम ध्यान करते हैं तब हमारी पूजा भी उसीकी होती है जिसका वर्णन मन्त्रमें किया जाता है, अन्यकी नहीं।

इसप्रकार शिव भगवान्के सब ही साकार रूप अत्यन्त भावपूर्ण और शिक्षाप्रद हैं, जिनका दिग्दर्शन संक्षेपसे ऊपर कराया गया है। विस्तारभयसे अब यह विषय यहाँ ही छोड़ दिया जाता है और अन्तमें यही निवेदन है कि 'शिव' शब्द कल्याणवाचक, मंगलवाचक है। शिवका नाम 'आशुतोष' अर्थात् 'शीघ्र प्रसन्न होनेवाला' भी है।

तुलसीदासजीने कहा है—

को जाँचिये संभु तजि आन।
दीनदयालु भगत-आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान।
....
सेवत सुलभ उदार कलपतरु, पारबती-पति परम सुजान॥

किसी भी मनुष्यको शैव नाम-रूपसे द्वेष रखकर वैष्णवीय नाम-रूपकी उपासनासे लाभ नहीं होता और न वैष्णवीय नाम-रूपसे द्वेष रखकर शैव नाम-रूपकी उपासनासे ही लाभ होता है। शास्त्रोंमें तो इस भेद-भावको दूर करनेके लिये यहाँतक दिखाया गया है कि राम, कृष्ण, विष्णु आदिने शिवकी उपासना की है और शिवजीने विष्णु, राम, कृष्ण आदिकी उपासना की है। वास्तवमें इनमें कोई भेद नहीं है। उपासना चाहे जिस नाम-रूपकी हमलोग करें किसीमें कोई भी हानि नहीं है, पर अन्य किसी नाम-रूपसे द्वेषभाव न रखना ही बुद्धिमत्ता है।

ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्य

(लेखक—पं० श्रीवृषभलिङ्ग शिवाचार्यजी गोम्बूर)

पञ्चाननमुखोद्भूतान् पञ्चाक्षरमनूपमान् । पञ्चसूत्रकृतो वन्दे पञ्चाचार्याञ्जगद्गुरून् ॥

अनादि भगवान् श्रीशिवजीकी लीला अगाध है, उन्हींकी असीम कृपासे आज सारे संसारका सञ्चालन हो रहा है । सृष्टिके साथ मुक्तिका मार्ग भी दयामय भगवान्के द्वारा दिखलाया गया है, किन्तु मनुष्योंमें बहुत थोड़े लोग अपने अधिकारोंका उपयोग करना जानते हैं । इसीलिये मिथ्यानन्दके मोहमें फँसकर वे वास्तविक सुखसे विमुख हो रहे हैं । आनन्दका विषय है कि भारतवर्षमें शुद्ध सात्त्विकभावसे मनुष्यको उस परमात्मातक पहुँचानेवाले विभिन्न शैव-सम्प्रदायोंमें एक अत्यन्त पवित्र वीरशैव-मत विद्यमान है । आज इसी मतके संस्थापक श्री १००८ जगद्गुरु पञ्चाचार्योंके विषयमें संक्षिप्त विवरण शिवाङ्कके पाठकोंके सामने उपस्थित किया जाता है ।

यह बात वेद, आगम, उपनिषद्, पुराण, इतिहास आदिसे प्रसिद्ध है कि शिवजीके सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान नामक पाँच मुख हैं । इन्हीं पाँच मुखोंसे रेणुक (रेवण या रेवणसिद्ध), दारुक (मरुल), घण्टाकर्ण (शङ्कुकर्ण और एकोराम), धेनुकर्ण (पण्डिताराध्य) और विश्वकर्ण (विश्वाराध्य) नामक पाँच आचार्य अवतीर्ण हुए । सुप्रबोधागममें कहा है—

पूर्वं मम मुखाज्जातः सद्योजाताच्च रेणुकः ॥
पूर्वं मम मुखाज्जातः वामदेवाच्च दारुकः ॥
पूर्वं मम मुखाज्जातः अघोराच्छङ्कुकर्णकः ॥
पूर्वं मम मुखाज्जातः तत्पुरुषाद्धेनुकर्णकः ॥
पूर्वं मम मुखाज्जातः ईशानाद्विश्वकर्णकः ॥

(पञ्चाचार्योत्पत्तिप्रकरण)

इसके अतिरिक्त मद्रास ओरियण्टल लाइब्रेरीकी अत्यन्त प्राचीन पुस्तक वीरलैंग्योपनिषद्में भी स्पष्टरूपसे ऐसा वर्णन है ।

सद्योजातमुखमासीद्रेणुकाचार्याराध्य उद्भवति । वामदेवमुखमासीद्दारुकाचार्याराध्य उद्भवति । अघोरमुखमासीद्घण्टाकर्णगणेशाराध्य उद्भवति । तत्पुरुषमुखमासीद्धेनुकर्णगणेशाराध्य उद्भवति । ईशानमुखमासीद्विश्वकर्णगणेशाराध्य उद्भवति ।

ये पञ्चाचार्य प्रत्येक युगमें भिन्न-भिन्न नामोंसे सोमेश्वर (कोलिपाक), सिद्धेश्वर (वटक्षेत्र), रामनाथ (द्राक्षाराम), मल्लिकार्जुन (सुधाकुण्ड) और विश्वनाथ (काशी) नामक सुप्रसिद्ध और पवित्र लिङ्गोंद्वारा इस भारतवर्षमें प्रकट हो शिव-तत्त्व और वीरशैवमतकी स्थापना करते आये हैं, ऐसा शैवशास्त्रोंमें प्रसिद्ध है । सामान्य-विशेष-निराभाररूप त्रिविध वीरशैवोंको दीक्षादि समस्त अधिकार और आश्रमोंके प्रदानमें ये ही पञ्चजगद्गुरु स्वतन्त्र हैं । सुप्रबोधागममें कहा है—

मत्पञ्चवदनोद्भूताः सर्व एव गुरूत्तमाः ।
तत्स्रष्टानाञ्च सर्वेषां तत्सामर्थ्यं कथं भवेत् ॥
तस्मात्पञ्चविधाचार्याः पञ्चपीठाधिदेवताः ।
पञ्चसिंहासनाधीशा जगद्गुरुतमाश्च ते ॥

(पञ्चाचार्योत्पत्ति)

वेदागमसम्प्रदायमाहेश्वरविरपञ्चाचार्येभ्यो दीक्षितः ॥

(वीरलैङ्ग्योपनिषद्)

इन आचार्योंकी कृपाके कारण ही प्रधानरूपसे संसारमें शिव-भक्ति और शिव-तत्त्वका प्रचार हुआ है । इन पाँच आचार्योंने क्रमसे वीर, नन्दि, वृषभ, भृङ्गि, स्कन्द नामक पाँच गोत्रोंका प्रवर्तनकर पड्विडी, वृष्टि, लम्बन, मुक्तागुच्छ, पञ्चवर्ण नामक महासूत्रोंकी रचना की । फिर इनके प्रत्येक महासूत्रसे बारह-बारह उपसूत्रोंकी रचना हुई । इन आचार्योंके पञ्चतत्त्व, पञ्चपञ्चाक्षरी, पञ्चकलश, पञ्चदण्ड, पञ्चसिंहासन आदि भिन्न-भिन्न अनेकों विषय हैं, जिनका उल्लेख विस्तारभयसे यहाँ नहीं किया जाता ।

इन पाँच जगद्गुरुओंमेंसे श्रीरेणुकाचार्य महाराज ही सर्वप्रथम हुए । महिमा, पाण्डित्य, शाप, अनुग्रह आदि सब पूज्य गुणोंमें भी ये आचार्य सर्वव्यापक और सर्वप्रधान हैं । इनके सम्बन्धमें अनेकों ग्रन्थ मिलते हैं । इन्होंने अपने 'वीर' सिंहासनको भारतके दक्षिण मलयाचल (जहाँ चन्दन होता है) के मध्य रम्भापुरी (बालेहोन्नूर, जिला कडूर, मैसूर-स्टेट) में स्थापित करके शिव-तत्त्व-प्रचारके साथ ही भारतवर्षमें दिग्विजय भी किया था । तत्पश्चात् अपने समर्थ शिष्य श्रीरुद्रमुनि शिवाचार्यको सिंहासन

देकर आप अन्तर्धान हो गये। परन्तु समय-समयपर जनताके कल्याणके लिये अवतार लेकर आप दुष्टशिक्षण, शिष्टपरिपालन आदि करते ही रहते हैं। श्रीरेणुकाचार्य महाराजसे लेकर अबतक उस सिंहासनपर ११८ बड़े-बड़े योगी, तपस्वी, विद्वान् और दयालु आचार्य हो गये हैं। इस गद्दीके गौरवार्थ मैसूर सरकारने बड़ी-बड़ी हुकूमतोंसे राहदानीमें अच्छी व्यवस्था कर रक्खी है। आजकल इस पीठपर श्रीजगद्गुरु शिवानन्द राजेन्द्र शिवाचार्य महास्वामी विराजते हैं जो महाविद्वान्, तपस्वी और भक्तजनोद्धरणकारी हैं। आपकी सहायतासे कितने ही विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं और अब एक संस्कृतकालेज खोलनेका प्रयत्न भी हो रहा है।

दूसरे जगद्गुरु श्रीदारुकाचार्यने अपने 'सद्धर्म' सिंहासनको उज्जयिनी (जिवल्लारी) में स्थापित करके महातपः साम्राज्यसे जनताका कल्याण किया था। सिकन्दराबादकी एक प्राचीन सूचीसे 'दारुकदिग्विजय' नामक ग्रन्थके अस्तित्वका पता चला है। इस पीठके पार्श्वमें जो मन्दिर हैं वे बड़े प्राचीन हैं। वहाँके दूसरी शताब्दीके एक लेखसे ऐसा सिद्ध होता है कि आजकलके इस मठको प्राचीनकालमें किसी पाण्ड्य राजाने बनवाया था। वर्तमानमें इस गद्दीपर श्री १०८ जगद्गुरु सिद्धलिङ्ग शिवाचार्य महाराज विराजमान हैं। आप दक्षिणमें महातपस्वी, दिव्य ज्ञानी, विशिष्ट विद्वान्, चतुर वक्ता, भक्तजन-कल्याणकारी माने जाते हैं। आप विद्यानुरागी होनेके कारण अनेकों पाठशालाओं और सत्रोंकी सहायता करते हैं। आपका सारा समय शिवचिन्तनमें ही खर्च होता है।

तीसरे जगद्गुरु एकोरामाचार्यने अपने 'वैराग्य' सिंहासनको हिमवत्केदारके ऊखीमठमें स्थापित किया है। सुप्रसिद्ध ज्योतिर्लिङ्ग श्रीकेदारनाथ गढ़वालके कितने ही मन्दिर और १४१ ग्राम इस पीठके अधीन हैं। इस गद्दीकी वंशावलीमें ३०० आचार्य हो गये हैं। सुप्रसिद्ध श्रीकरभाष्य*के कर्त्ता इसी पीठके शिष्य बतलाये जाते हैं और उनके इसी भाष्यसे पता चलता है कि एकोराम जगद्गुरुका एक 'अधिकरणभाष्य' भी है। आजकल इस गद्दीके 'रावल साहब' जगद्गुरु श्रीनीलकण्ठलिङ्ग शिवाचार्य महाराज हैं जो शरीरसम्बन्धी योगशास्त्र और वैद्यकशास्त्रके बड़े अच्छे मर्मज्ञ हैं। आप विविध भाषाओंके विद्वान् हैं और विद्याप्रेमी होनेके कारण एक 'संस्कृतायुर्वेद-आंग्ल महाविद्यालय' और कितनी ही संस्थाओंको सुचारुरूपसे चलाते हैं जिससे गढ़वाली प्रजाको बहुत कुछ लाभ पहुँचता है। इस गद्दीकी मर्यादाके लिये गवर्नमेण्टने बहुत-सी जागीरें दे रक्खी हैं।

चौथे जगद्गुरु पण्डिताराध्याचार्यने अपने 'सूर्य' सिंहासनको सुप्रसिद्ध ज्योतिर्लिङ्ग श्रीशैलमें संस्थापित किया। आपका भी एक 'पण्डिताराध्यभाष्य' होनेकी बात श्रीकरभाष्यसे मालूम पड़ती है। श्रीशैलके मल्लिकार्जुन-मन्दिरका सारा अधिकार पचास-साठ वर्ष पहले इस पीठके अधीन ही था (अब मद्रासके मन्दिर-कानूनके अनुसार ट्रस्ट-बोर्ड बन गया है)। मठकी ओरसे आजकल केवल पुजारी रहते हैं। यह पीठ वर्तमानमें श्रीशैलसे कुछ दूर गुन्तकाल (जिला कर्नूल) में स्थापित है। वर्तमान आचार्य जगद्गुरु श्रीवीरभिक्षावर्ति शिवाचार्य महाराज हैं। आप बड़े तपस्वी, वयोवृद्ध और सदा शिवपूजापरायण हैं।

पाँचवें जगद्गुरु, श्रीविश्वाराध्य महाचार्यने अपने अवतार-स्थान काशीमें ही 'ज्ञान' सिंहासनकी स्थापना की थी, जो सुप्रसिद्ध 'जङ्गमवाड़ी', 'विश्वाराध्यमहासंस्थान' नामसे काशीमें विद्यमान है। श्रीविश्वाराध्यजी महान् महिमाशाली और विद्यानाथ होनेके कारण 'विश्वगुरु' थे। आपके भी 'विश्वाराध्यभाष्य' का होना श्रीकरभाष्यसे ज्ञात होता है। अबतक इस गद्दीपर ८२ आचार्य हो गये हैं। इस गद्दीसे बहुतोंका कल्याण हुआ है। विशेषतः वीरशैव विद्वान् सब यहींकी सहायतासे तैयार हुए हैं। आजकलके सिंहासनाधिकारी श्रीजगद्गुरु पञ्चाक्षर शिवाचार्य महाराजजी बड़े ही शान्त, दयालु, तपस्वी और विद्वान् हैं। आपसे संस्कृत-विद्यार्थियोंका बड़ा उपकार होता है। आगे भी बहुत कुछ सहायता मिलनेकी पूरी आशा है।

इसप्रकार इन पञ्चाचार्योंकी परम्परामें बहुत-से गण्यमान्य महायोगी विद्वान् हो गये हैं जिनसे जनताका बहुत कुछ उपकार हुआ है। इनके अत्यन्त निराडम्बर

* यह भाष्य सिकन्दराबाद दक्षिणमें आन्ध्रलिपिमें आधा मुद्रित है।

नोट—श्रीकेदारनाथ मन्दिरका चित्र 'द्वादश ज्योतिर्लिंग' लेखके साथ अन्यत्र प्रकाशित होगा।
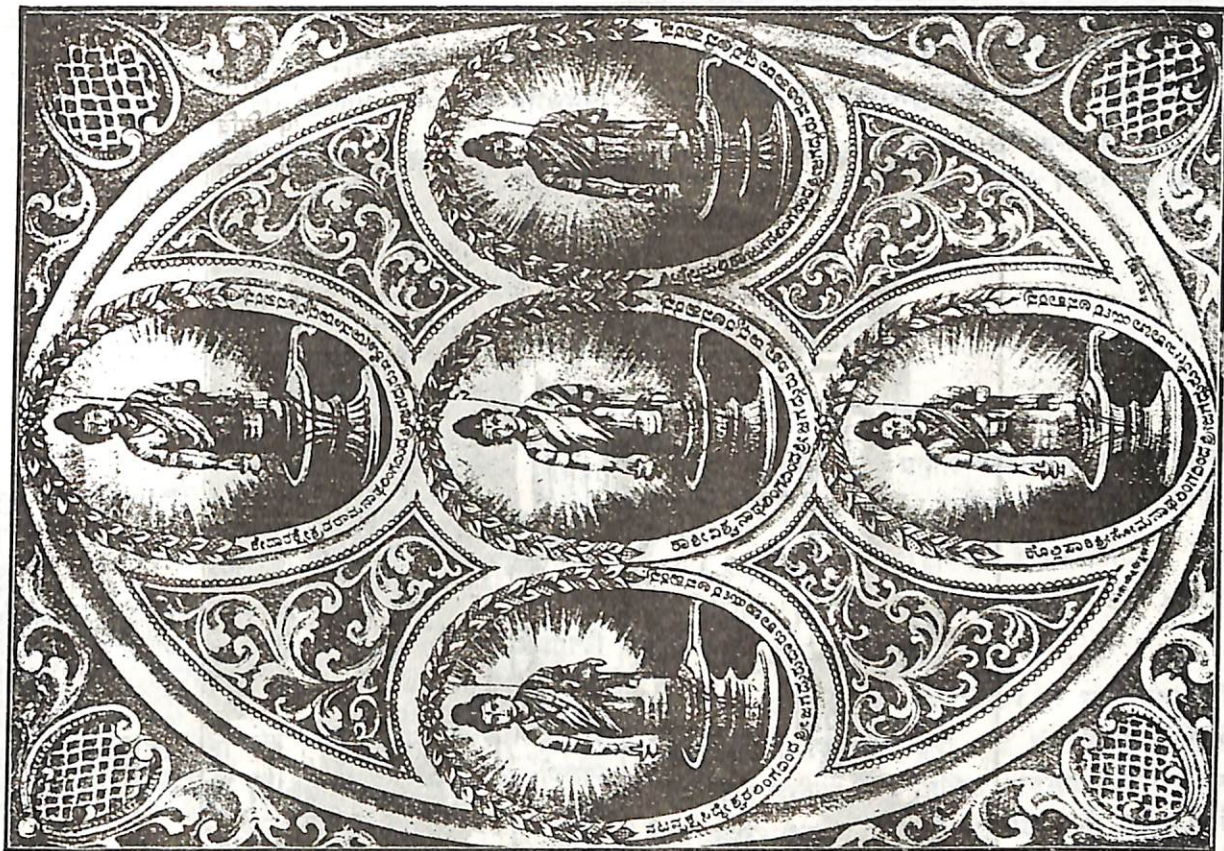
श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्योंका आविर्भाव
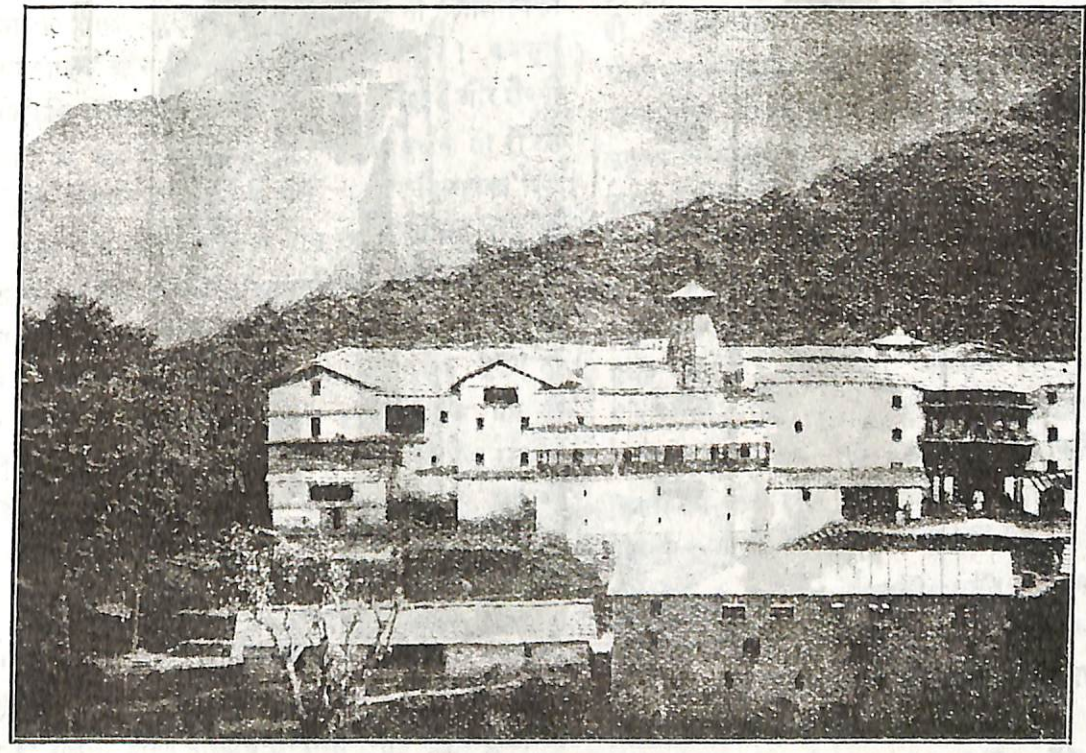
श्रीउखीमठ
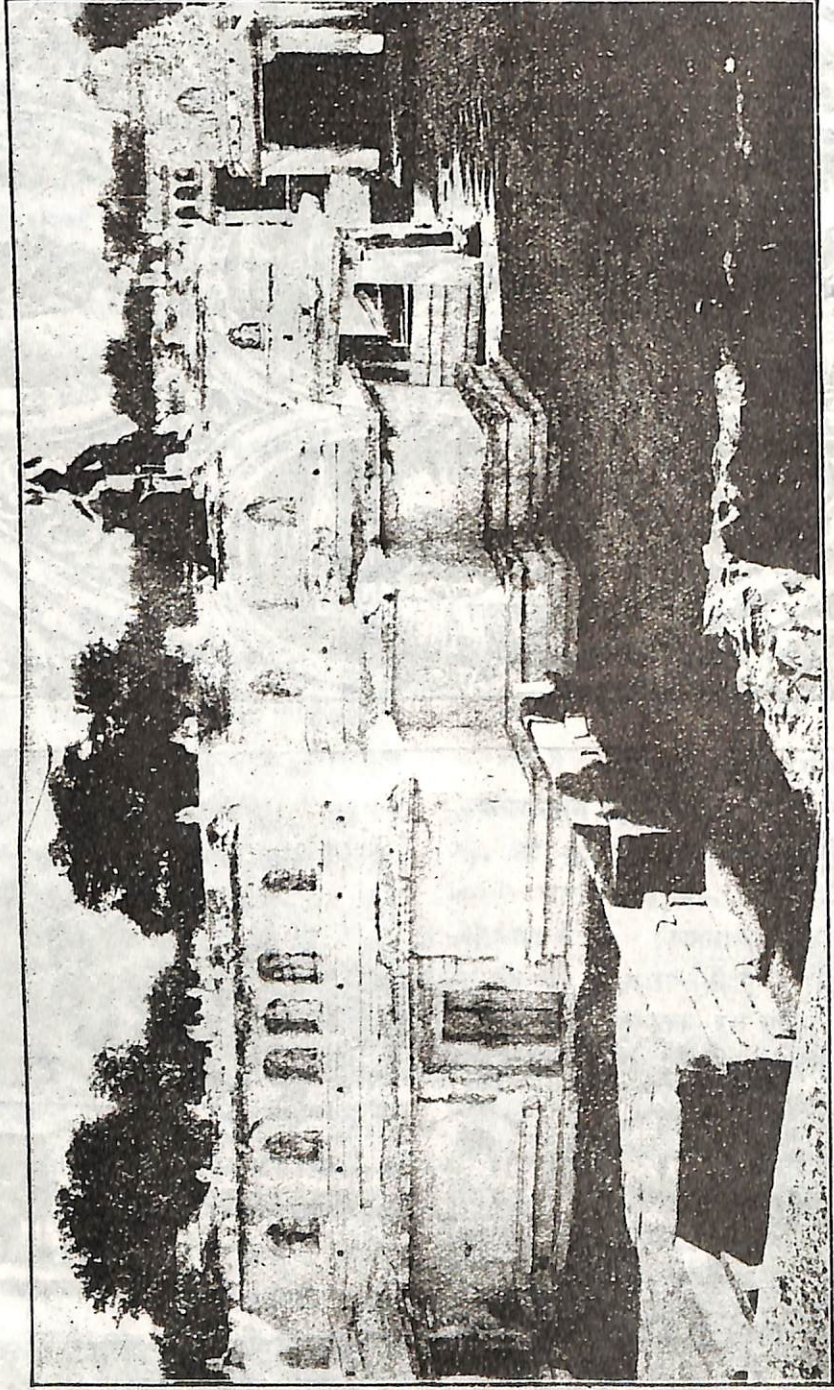
श्रीउज्जयिनी महापीठ

और मर्यादायुक्त जीवन होनेके कारण इने-गिने विद्वान् ही इन बातोंको जानते हैं। खैर, सम्पादक महोदयके परिश्रमसे कोने-कोनेमें स्थित शैववाङ्मयका 'शिवांक' में स्वागत होना 'कल्याण' ही है।

पूर्वं सृष्टिसमुद्भवात् परशिवादुद्भूय सद्वैभवात्
सिद्धान्तं श्रुतिसिद्धमद्भुततमं संस्थाप्य संविश्रुताः।
सिद्धस्तोमसुरद्रुमाः सुरवरैः संसेव्यमानाः सदा
पञ्चाचार्यगुरूत्तमाः सकरुणं सिद्धिं वितन्वन्तु मे॥

जगद्धर भट्टकी स्तुति-कुसुमाञ्जलि

(लेखक—आचार्य पं० श्रीमहावीरप्रसादजी द्विवेदी)
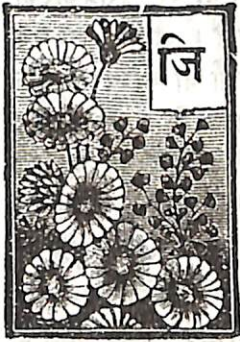
जिनके हृदय कोमल हैं, अर्थात् अलङ्कार-शास्त्रकी भाषामें जो सहृदय हैं, उन्हींको सरस काव्यके आकलनसे आनन्दकी यथेष्ट प्राप्ति हो सकती है। सम्भव है, औरोंको भी तन्मयताकी कुछ प्राप्ति हो—हास्य-रससे परिप्लुत कोई उक्ति सुनकर वे भी हँस पड़ें या किसीका करुणात्मक विलाप सुनकर कुछ दुःखानुभव करने लगें—पर सहृदयोंकी-जैसी तन्मयताका अनुभव उन्हें नहीं हो सकता। इसकी परीक्षा करनी हो तो किसी अभिनयको देखने जाइये और दर्शकोंके बीच जाकर बैठिये। कल्पना कीजिये कि हरिश्चन्द्र-नाटकका अभिनय हो रहा है और शैव्या विलाप कर रही है। आप देखेंगे कि कुछ दर्शक तो रो रहे हैं, कुछ केवल उदासीन हैं और कुछपर विलापका जरा भी असर ज्ञात नहीं होता—वे पान खाते, सिगरेट पीते या पास बैठे हुओंसे धीरे-धीरे अप्रासङ्गिक गप्पें लड़ा रहे हैं। बात यह है कि जिसका हृदय जैसा होता है, तदनुसार ही उसपर बाहरी दृश्योंका असर भी पड़ता है। हृदय तो सबके होता है; पर सब हृदयोंकी ग्राहिका शक्ति एक-सी नहीं होती। अतएव यह निश्चय समझिये कि रसवती कवितासे भी सबको एक-सा आनन्द अथवा एक-सा रसानुभव नहीं हो सकता।

मोटे तौरपर कह सकते हैं कि विकारोंहीका नाम रस है। जो विकार सबसे अधिक प्रबल होता है वही रसत्वकी संज्ञा पाता है। शृङ्गार-सम्बन्धी भाव प्रबल हुआ तो शृङ्गार-रस हो गया; हास्य-परिहास-सम्बन्धी भाव प्रबल हुआ तो हास्य-रस हो गया। इसी तरह और भी जानिये। अलङ्कारशास्त्रियोंने इन प्रधान विकारों या रसोंकी संख्या निश्चित कर दी है। काव्यमें उन्होंने ९ रस माने हैं, यथा—

(१) शृङ्गार, (२) हास्य, (३) करुणा, (४) वीर, (५) रौद्र, (६) भयानक, (७) अद्भुत, (८) बीभत्स और (९) शान्त।

जिस कवितामें जो भाव, विकार या रस प्रधान होता है वह कविता उसी रसमें डूबी हुई समझी जाती है और सहृदयोंको उसीका सबसे अधिक अनुभव होता है। परन्तु जैसा ऊपर कहा गया है, सहृदयतामें भी भेद होता है। किसीमें वह कम होती है, किसीमें अधिक। जिसमें जितनी ही अधिक सहृदयता होती है उसे उतना ही अधिक रसानुभव भी होता है—वही कविके हृदयके सबसे अधिक पास पहुँच जाता है। अथवा यह कहना चाहिये कि उसका और कविका हृदय एक हो जाता है। कवितागत प्रधान रस जितना ही अधिक उद्दाम होता है सहृदयोंके हृदयपर उसका प्रभाव भी उतना ही अधिक पड़ता है। कवितामें यदि हास्य-रसकी मात्रा काफ़ी है तो उसे सुनते ही सहृदयोंको हँसी आ जाती है। यदि उसमें करुण-रसका यथेष्ट परिपाक है तो उनकी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं। यदि उसमें शान्त-रस भरा हुआ है तो सहृदयोंके हृदयमें शान्तिका आविर्भाव हो जाता है। अच्छी कविता वही है जिसमें रस खूब हो—फिर चाहे पूर्ण निर्दिष्ट नौ रसोंमेंसे जो हो—और जिसे पढ़कर या सुनकर सहृदय फड़क उठें।

जिसमें किसी देवताकी स्तुति हो उस कविताको साहित्यशास्त्रज्ञोंने शान्तरसहीके अन्तर्गत माना है अर्थात् जिस कवितामें किसी देवताके सम्बन्धमें रति नामक भावकी विशेषता होती है वह शान्तरसहीकी कविता मानी जाती है। यह हो सकता है। परन्तु कुछ विद्वानोंने तीन और

रसोंकी भी कल्पना की है—दास्य, सख्य और वात्सल्य। दास-भाव, सखा-भाव और वत्सल-भाव प्रधान होनेसे इन रसोंकी अवतारणा होती है। इस हिसाबसे यदि कोई भक्त अपनेको अपने इष्ट देवताका दास मानकर दास्य-भाव-पूर्ण उक्तियाँ कहे तो उन उक्तियोंमें दास्य-रस ही अधिक परिस्फुट होता है। किसी देवताविशेष या परमेश्वरकी स्तुतियोंमें यह भाव प्रायः अधिकतासे पाया जाता है। ऐसी कवितामें दासताहीका भाव प्रबल होता है, शान्तिका नहीं। अस्तु, इसप्रकारकी स्तुतिमय कविताओंमें चाहे शान्तरस माना जाय चाहे दास्य-रस, उनसे कोमल-हृदय भावुकजनोंके हृदय हिल ज़रूर उठते हैं और हृदयका हिल उठना ही इस बातका प्रमाण है कि कविता सरस है और उसका आकलनकर्ता सहृदय है। ऐसी कविताके दो-एक उदाहरण सुनिये। पद्माकरकी एक उक्ति है—

> ब्याधहूतें बिहद (बाधिक ?) असाधु हौं अजामिल लौं,
> ग्राहसों गुनाही कहो तिनमें गनाओगे;
> गणिका हौं न गीध हौं न केवट कहूँ को न,
> गौतमी तिया हौं जापै पद धरि आओगे।
> रामसों कहत पदुमाकर पुकारि तुम,
> मेरे महापापनको पारहू न पाओगे;
> सीता-सी सतीको तज्यो बिनाहू कलंक, हौं तो
> साँचोहू कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे ?॥

यह कुछ पुरानी उक्ति है। इससे मिलती-जुलती एक नयी उक्ति लीजिये। वह प्रतापनारायण मिश्रकी है—

> आगे रहे गणिका गज गीध सु तौ अब कोऊ दिखात नहीं हैं।
> पापपरायन ताप भरे परताप-समान न आन कहीं हैं॥
> हे सुखदायक ! प्रेमनिधे ! जग यों तो भले औ बुरे सब ही हैं।
> दीनदयालु औ दीन प्रभो तुमसे तुमहीं हमसे हमहीं हैं॥

इन दोनों उक्तियोंकी भाषा है हिन्दी-कविताकी पुरानी भाषा। पर भाषा चाहे जैसी हो सरसता सभी भाषाओंकी कवितामें आ सकती है। नीचे बाबू सियारामशरणकी एक कविता दी जाती है—वह बोल-चालकी भाषामें है। पाठक देखेंगे कि उसमें शान्त या दास्य-रसकी मात्रा कितनी अधिक है। उसमें यह रस ऊपर दिये गये दोनों उदाहरणों-से यदि अधिक नहीं तो कम भी नहीं। देखिये—

> क्षुद्र-सी हमारी नाव चारों ओर है समुद्र,
> वायुके झकोरे उग्र रुद्र रूप धारे हैं।
> शीघ्र निगल जानेको ये नौकाके चारों ओर,
> सिन्धुकी तरंगें सौ-सौ जिह्वायें पसारे हैं॥
> हारे सभी भाँति हम अब तो तुम्हारे बिना,
> झूठे ज्ञात होते और सबके सहारे हैं।
> और क्या कहें अहो ! डुबा दो या लगा दो पार,
> चाहे जो करो शरण्य ! शरण तुम्हारे हैं॥

हमारा अनुमान ही नहीं, अनुभव भी यही कहता है कि ऐसी कविताओंके पाठसे कोमल-हृदयोंका हृदय द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह सकता। और रसोंकी कविताके पाठसे भी तल्लीनता प्राप्त हो सकती है, पर इसप्रकारकी कवितामें बहुत बड़ी विशेषता होती है। उसका सम्बन्ध किसी देवतासे होनेके कारण काव्य-कर्त्ता या काव्य-पाठकके हृदयमें एक अलौकिक भावका उदय हो उठता है और वह उतने समयके लिये किसी दिव्य लोकमें विचरण-सा करने लगता है। उस समय सांसारिक भावोंका एकदम तिरोभाव-सा हो जाता है और मनुष्य कुछ-का-कुछ हो जाता है। और-और रसोंकी कविताके पाठके प्रभावसे पाठकोंके शरीरपर जो चिह्न या अनुभाव प्रकट होते हैं उनकी अपेक्षा इसप्रकारकी तथा करुण-रसकी कविताके पाठसे उत्पन्न चिह्न बहुत अधिक प्रबल होते हैं, अतएव औरोंसे अधिक दृग्गोचर भी होते हैं। सांसारिक आपदाओं-के जालमें फँसे हुए भावुकजन जिस समय श्रीमद्भागवतकी प्रह्लादस्तुतिके पाठमें लीन हो जाते हैं, अथवा जिस समय वे ऊपर नकल की गयी कविताके सदृश कविता सुनाकर किसी देवतासे आत्मनिवेदन करते हैं उस समय वे अपना तत्कालीन दुःख ही नहीं भूल जाते, किन्तु वे इस दुःखमूल जगत्‌के अस्तित्वतकको भूल जाते हैं। उस समय उन्हें एक विलक्षण प्रकारकी विकलता आ घेरती है, उनका शरीर कण्टकित हो जाता है और उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारायें बह निकलती हैं। अंगरेजी भाषाके एक कविका कथन है कि धन्य हैं वे जन जिनको इसप्रकार रोना आता है। इस रोनेमें सचमुच ही एक अलौकिक आनन्द छिपा रहता है। उसका अनुभव वही कर सकते हैं जो उस दशाको प्राप्त होते हैं। अतएव जिस कविताके पाठ या श्रवणसे ऐसे अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति हो उसे कोई यदि और सब रसोंकी कवितासे श्रेष्ठ समझे तो उसकी ऐसी समझके सम्बन्धमें विशेष आक्षेपके लिये जगह नहीं। सांसारिक तापोंसे तप्त होनेपर भक्त जब अपने इष्टदेवकी

शरण जाता है तब भावावेशमें कभी तो वह उसकी स्तुति करता है, कभी उसका उपालम्भ करता है और कभी अपनी दुरवस्थापर विलाप करता है। उस समय उसकी अश्रुवर्षासे यदि और कुछ नहीं होता तो उसके हृदयका दुःखभार तो जरूर ही हलका हो जाता है। इसकी सत्यताका प्रमाण सभी भावुक भक्त दे सकते हैं।

आज हम एक ऐसे महाकविका संक्षिप्त परिचय कराते हैं जिसने दास्य, शान्त या करुण-रसहीकी कविता-रचनाद्वारा, महादेवजीसे आत्म-निवेदन करनेमें ही, अपनी सारी कवित्व-शक्ति खर्च कर दी। उसका यह आत्मनिवेदन संस्कृत-भाषामें है। उसके ३९ खण्ड हैं। एकको छोड़कर वे सभी खण्ड या स्तोत्र स्तुतिमय हैं। उनके नाम नीचे दिये जाते हैं—

(१) स्तुतिप्रस्तावनास्तोत्र, (२) नमस्कारस्तोत्र, (३) आशीर्वादस्तोत्र, (४) मङ्गलाष्टकस्तोत्र, (५) कविकाव्यप्रशंसास्तोत्र, (६) हराष्टकस्तोत्र, (७) सेवाभिनन्दनस्तोत्र, (८) शरणाश्रयणस्तोत्र, (९) कृपणाक्रन्दनस्तोत्र, (१०) करुणाक्रन्दनस्तोत्र, (११) दीनाक्रन्दनस्तोत्र, (१२) तमःशमनस्तोत्र, (१३) प्रभुप्रसादनस्तोत्र, (१४) हितस्तोत्र (१५) करुणाराधनस्तोत्र, (१६) उपदेशनस्तोत्र, (१७) भक्तिस्तोत्र, (१८) सिद्धिस्तोत्र, (१९) भगवद्वर्णनस्तोत्र, (२०) हसितवर्णनस्तोत्र, (२१) अर्धनारीश्वरस्तोत्र, (२२) कादिपदबन्धनस्तोत्र, (२३) शृङ्खलाबन्धस्तोत्र, (२४) द्विपदयमकस्तोत्र, (२५) रुचिररञ्जनस्तोत्र, (२६) पादादियमकस्तोत्र, (२७) पादमध्ययमकस्तोत्र, (२८) पादान्तयमकस्तोत्र, (२९) एकान्तरयमकस्तोत्र, (३०) महायमकस्तोत्र, (३१) नतोपदेशस्तोत्र, (३२) शरणागतोद्धारणस्तोत्र, (३३) कर्णपूरस्तोत्र, (३४) अग्र्यवर्णस्तोत्र, (३५) ईश्वरप्रशंसास्तोत्र, (३६) स्तुतिफलप्राप्तिस्तोत्र, (३७) स्तुतिप्रशंसास्तोत्र, (३८) पुण्यपरिणामस्तोत्र, (३९) कविवंशवर्णन।

इन सब स्तोत्रों या खण्डोंके श्लोकोंकी संख्या है १४०९। जिस पुस्तकमें ये सब निबद्ध हैं उसका नाम है 'स्तुतिकुसुमाञ्जलि'। अर्थात् कविने प्रत्येक स्तुति या स्तोत्रको एक-एक कुसुम कल्पना करके उनकी अञ्जलि अपने इष्टदेव शङ्करपर चढ़ायी या उनको अर्पण की है। इस श्लोकाञ्जलिके कर्ताका नाम है जगद्धर भट्ट। उसकी इस पुस्तकका प्रकाशन हुए कोई ३१ वर्ष हुए। बम्बईके निर्णयसागर-प्रेसने, काव्यमाला नामक पुस्तक-मालिकाके अन्तर्गत, इस कुसुमाञ्जलिके दर्शन कराये हैं।

जगद्धर भट्ट काश्मीरका रहनेवाला था। उसने 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि'के अन्तमें अपना जो वंशादि-वर्णन किया है उसमें लिखा है कि उसके पितामहका नाम गौरधर और पिताका रत्नधर था। पितामह समस्त शास्त्र-पारगामी था। पुरारिका परम भक्त था। यजुर्वेदके वेद-विलास नामक भाष्यका कर्ता था। रत्नधर महाकवि था; विवश होकर सरस्वतीको उसके कण्ठका आश्रय लेना पड़ा था; सहृदय सज्जन उसकी सदुक्तियाँ सुनकर आश्चर्यमग्न हो जाते थे। जगद्धरकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। तर्क-शास्त्रमें वह इतना व्युत्पन्न था कि उसके सामने प्रतिवादी तार्किकोंके मुँहपर मुहर-सी लग जाती थी। सरस्वतीकी उसपर पूर्ण कृपा थी। उसके मतिमन्दिरको इन्होंने अपना विहार-स्थल बना लिया था। वह निर्मत्सर था, सहृदय था, मधुरभाषी था, विनयशील था, शास्त्रसागरका पारगामी था। कवि वह इतना अच्छा था कि सुन्दर और सरस युक्तियोंने एकमात्र उसीकी शरण ली थी।

अपने पिता, पितामह और स्वयं अपनी तारीफमें जगद्धरने यह जो कुछ कहा है उसमें, सम्भव है, अतिशयोक्ति हो। पर इसमें सन्देह नहीं कि जगद्धर महाकवि था और उसके पूर्वज भी पूरे विद्वान् थे। शास्त्रोंका अनुशीलन और कविता-प्रेम उसके कुटुम्बमें उसके पूर्वजोंके समयहीसे चला आता था।

जगद्धर भट्टका स्थितिकाल १३५० ईसवीके लगभग माना जाता है। इसका पता इस तरह चला। जगद्धरका रचा हुआ एक और भी ग्रन्थ है। वह है 'बालबोधिनी' नामक कातन्त्रवृत्ति। उसकी रचना जगद्धरने अपने पुत्र यशोधरके पढ़नेके लिये की थी। यह बात उसने इसी वृत्तिके आरम्भमें लिखी है। इस वृत्तिका एक व्याख्यान भी है। उसका कर्ता है राजानक शितिकण्ठ। वह काश्मीरके अन्तर्गत पद्मपुरका रहनेवाला था और जगद्धरके नातीकी लड़कीकी लड़कीका लड़का था। यह बात शितिकण्ठने स्वयं ही लिखी है—

यो बालबोधिन्यभिधां बुधेन्द्रो
जगद्धरो यां विततान वृत्तिम्।
तन्नप्तृकन्यातनयातनूजो
व्याख्यामि तां श्रीशितिकण्ठकोऽल्पम्॥

अपने इसी व्याख्यानके आरम्भमें शितिकण्ठने लिखा है कि मैंने बहुत देशोंमें भ्रमण किया, खूब शास्त्रालोचना की, गुजरातके अधिपति मुहम्मदशाहतकने मेरी पूजा की। इस समय—इस व्याख्यान-रचनाके समय—हैदरशाहका लड़का, हसनशाह काश्मीर-देशका शासन कर रहा है।

मुहम्मदशाहने १५११ ईसवीतक और हसनशाहने १४८४ ईसवीतक राज्य किया। इसके सौ सवा सौ वर्ष पहले ही जगद्धर हुआ होगा। क्योंकि शितिकण्ठ उसकी छठी पुश्तमें था। अतएव १३५० ईसवीके इधर-ही-उधर जगद्धरका अस्तित्वकाल अनुमान किया जाता है।

जगद्धर भट्टकी 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि'की एक संस्कृत-टीका भी है। वह भी मूलके साथ ही प्रकाशित हुई है। उसके कर्ताका नाम है—राजानक रत्नकण्ठ। वह भी बड़ा पण्डित था। उसके बनाये हुए कई ग्रन्थ पाये जाते हैं। वह औरङ्गज़ेबके समयमें विद्यमान था और १७३८ विक्रम-संवत्‌में उसने 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' की टीका बनायी थी। उसने टीकाके अन्तमें लिखा है—

वस्वम्न्यश्वषष्टिभिर्वर्षे मिते विक्रमभूपतेः।
अवरंगमहीपाले कृत्स्नां शासति मेदिनीम्॥
बालानां सुखबोधाय हर्षाय विदुषां कृता।
जगद्धरकवेः काव्ये तेनैषा लघुपञ्चिका॥

जगद्धरके बनाये केवल दो ही ग्रन्थोंका पता चला है। एक तो यही 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि', दूसरी पूर्वनिर्दिष्ट कातन्त्र-वृत्ति। 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' में जगद्धरने अपने शिव-सम्बन्धी भक्ति-भावको इतना ऊँचा करके दिखाया है और अपने दास्य-भावका इतना हृदयहारी वर्णन किया है कि जान पड़ता है वह शिवका परम भक्त था और समस्त जीवन उन्हींकी स्तुति करके उसने अपनी कवित्व-शक्तिको सार्थक और वाणीको पवित्र किया। और कोई काव्य या ग्रन्थ लिखनेकी ओर शायद उसकी प्रवृत्ति ही नहीं हुई। 'कुसुमाञ्जलि' के पाँचवें स्तोत्रमें उसने सत्कवियोंके काव्यकी जो प्रशंसा की है उसमें उसने लिखा है कि जो आह्लाद शङ्करकी स्तुतिसे प्राप्त होता है वह सुधाकर चन्द्रमाके दर्शन, स्वभावशिशिर स्वर्गङ्गाके प्रवाहमें अवगाहन और स्मरज्वरहारी वामाधरके पानसे भी नहीं प्राप्त हो सकता। यथा—

सान्द्रानन्दकरे धृतामृतकरे नास्त्येष राकाकरे
न प्रौढप्रसरे निसर्गशिशिरे स्वर्गापगानिर्झरे।
गाढप्रेमभरे स्मरज्वरहरे नो वामरामाऽधरे
यः शम्भोर्मधुरे स्तुतिव्यतिकरे ह्लादः सुधासोदरे॥

जिस कविकी समझ ऐसी है वह सुधाके सहोदर शम्भुस्तवनको छोड़कर और किसी विषयपर क्यों कविता करने लगा? जगद्धरने तो शिवस्तुतिहीसे अपनी मनुष्यता, मनीषिता, सत्कविता और ब्राह्मणताको कृतार्थ माना है—

....

....

इयं मम क्षेमपरम्परा विभोः
स्तुतिप्रसङ्गेन गता कृतार्थताम्॥

बाल्यकालहीसे जगद्धरका हृदय शङ्कराराधनकी ओर झुक गया था। उसने लिखा है—

तेनादृतेन शिशुनैव निवेद्यमान-
मानन्दकन्दलितभक्तिकुतूहलेन।
एतं मृगाङ्ककलिकाकलितावतंस-
शंसारसायनरसं रसयन्तु सन्तः॥

ऐसे परम शैव और महाकविकी रचित स्तुतियोंके पाठसे सहृदयजनोंको यदि परमानन्दकी प्राप्ति हो और कुछ देरके लिये यदि वे अपने आपको भूल जायँ तो आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

कुछ विद्वानोंका विचार है कि महिम्नःस्तोत्रसे बढ़कर कोई स्तोत्र नहीं। 'स्तोत्ररत्नाकर' आदिमें प्रकाशित अन्य भी कितने ही स्तोत्रोंके सुन्दर भावों और सरस युक्तियोंपर कुछ लोग मुग्ध हो जाते हैं। शङ्कराचार्यकी 'सौन्दर्य-लहरी' और जगन्नाथरायकी 'गङ्गालहरी'की भी प्रशंसा अनेक रसिकोंके मुखसे सुनी जाती है। परन्तु हमारी सम्मति तो यह है कि स्तुति-साहित्यमें इस 'कुसुमाञ्जलि'से बढ़कर कोई ग्रन्थ नहीं। इसमें जगद्धरने अपने कवित्व-शक्तिकी पराकाष्ठा दिखा दी है। उसकी कविता इतनी सरस है, उसके स्तवनोंके अधिकांश भाव इतने कारुणिक हैं और उसने अपने आत्म-निवेदनको ऐसे प्रभावोत्पादक और हृदयद्रावक ढङ्गसे किया है कि पढ़ते-पढ़ते हृदय पसीज उठता है, आँखोंसे अश्रुधारा बह निकलती है और मन बे-तरह विकल हो जाता है। उसकी नयी-नयी उक्तियाँ, उसके विचित्र-विचित्र उपालम्भ, उसके करुणाक्रन्दनके अनूठे-अनूठे ढंग पढ़ने-वालेके हृदयपर बहुत ही आश्चर्यजनक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उसकी कविता रसवती होकर भी प्रासादिक है। अपनी

कवित्व-शक्तिका सामर्थ्य दिखाने—अपनी प्रबल प्रतिभाके उड्डानके दर्शन कराने—के लिये उसने स्तुति-कुसुमाञ्जलिके ३८ स्तोत्रोंमेंसे ९ स्तोत्रोंकी रचनामें चित्रकाव्यका आश्रय लिया है। उसने किसीमें 'शृङ्खलाबन्ध', किसीमें 'द्विपादयमक', किसीमें 'पादान्तयमक' और किसीमें 'महायमक'तकका गुम्फन किया है। पर प्रायः सब कहीं, उसकी इस तरहकी रचनामें, यह खूबी है कि वह विशेष क्लिष्ट नहीं होने पायी। श्लोकको जरा ध्यानसे देखने और उसका पदच्छेद करनेसे सब पदोंका पृथक्करण हो जाता है और कविका भाव ध्यानमें आते देर नहीं लगती। अक्षरमैत्री और अनुप्रासके साधनमें तो जगद्धरसे शायद ही और कोई संस्कृत-कवि बढ़ गया हो। देखिये—

स यस्य पादद्वयमिद्धशासनः
सदा समभ्यर्चति पाकशासनः।
प्रभुः प्रसादामलया दृशा स नः
क्रियाद्विपद्भङ्गमनङ्गशासनः॥७।२॥

कैसी ललित रचना है! कैसा स्वाभाविक अनुप्रास और यमक है!! साथ ही प्रसादगुणकी भी कितनी पूर्णता इस पद्यमें है!!! इद्धशासनः, पाकशासनः, दृशा स नः और अनङ्गशासनः—ये सभी पद पढ़ते ही ध्यानमें आ जाते हैं। सब कहीं 'शासनः' की सिद्धि होनेपर भी अर्थज्ञानमें ज़रा भी बाधा नहीं आती। पद्यका अर्थ है—बहुत बड़े शासन-का अधिकार रखनेवाला पाकशासन (इन्द्र) जिसके पादद्वयकी सदा पूजा करता है वह अनङ्गशासन (शिव) अपनी प्रसादपूर्ण निर्मल दृष्टिसे हमारी विपदाओंका विघात करे। इसी तरहका एक और पद्य लीजिये—

अहो कृतार्थोऽस्मि मनोऽभिरामया
गिरा गुणालङ्कृतयेह रामया।
तनुः स्थिरेयं ध्रियते निरामया
भवे च यद्भक्तिरभङ्गुरा मया॥३८।६॥

यों तो जगद्धर भट्टकी 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि'के सभी स्तोत्र सरस और मनोहारी हैं, पर उनमेंसे 'कृपणाक्रन्दन', 'करुणाक्रन्दन' और 'दीनाक्रन्दन' नामके नवें, दसवें और ग्यारहवें स्तोत्रोंकी हम प्रशंसा नहीं कर सकते। उनमें जगद्धरने कहीं-कहीं अत्यन्त आर्त होकर ऐसी-ऐसी करुणोक्तियाँ कही हैं कि उन्हें पढ़ते समय पाषाण-हृदयोंको छोड़कर औरोंसे बस रोते ही बनता है। कुछ नमूने लीजिये—

दुग्धाब्धिदोऽपि पयसः पृषतं शृणोषि
दीपं त्रिधामनयनोऽप्युररीकरोषि।
वाचां प्रसूतिरपि मुग्धवचः शृणोषि
किं किं करोषि न विनीतजनानुरोधात्॥११।१४॥

आपकी भक्तवत्सलताकी मैं कहाँतक तारीफ करूँ। भक्तोंको आप क्षीरसागरतक दे डालते हैं—बालक उपमन्यु-को क्षीरसागर दे ही डाला है। इतनी शक्ति रखनेपर भी, पूजनके समय, भक्तजनोंका वितीर्ण किया हुआ जलकण भी आप ग्रहण कर लेते हैं। आपकी एक आँख रविरूप है, दूसरी सोमरूप है और तीसरी अग्निरूप है। इसप्रकार सभी तेजोमय पिण्डोंके प्रभु होनेपर भी भक्तजनोंका दिया हुआ दीपदान भी आप खुशीसे स्वीकार कर लेते हैं। और देखिये, ब्राह्मी वाणियोंका उत्पत्ति-स्थान होनेपर भी अपने अल्पज्ञ और मुग्ध भक्तोंकी स्तुति भी आप सुन लेते हैं। आपसे अधिक भक्तवत्सल और कौन है? देखिये न, अपने विनीतजनोंके प्रणयानुरोधसे न मालूम, क्या-क्या करनेको आप सदा ही तैयार रहते हैं।

अच्छा तो अब आप ही बताइये कि मेरी स्तुति—मेरी वाणी—का स्वीकार आप क्यों नहीं करते। मैं अब-तक कोई ४०० श्लोकोंद्वारा आपकी स्तुति कर चुका, पर आप फिर भी मौन ही हैं। यह क्यों?

एका त्वमेव भवितासि मम प्रियेति
दत्तं वरं स्मरसि चेद् गिरिराजपुत्र्याः।
प्रेम्णा बिभर्षि कथमम्बरसिन्धुमिन्दु-
लेखां च मूर्ध्नि हृदये दयितां दयां च॥११।१७॥

आपने पार्वतीजीसे यह प्रतिज्ञा की है कि मैं एकमात्र तुम्हारा प्यार करूँगा और किसीका नहीं। कहीं आप अपनी इस प्रतिज्ञा—इस वरदान—का स्मरण करके मेरी वाणीके विषयमें उदासीन तो नहीं हो रहे? यदि यह बात हो तो बताइये, आकाश-गङ्गा और चन्द्रकलासे इतना प्रेम क्यों? उनको आपने सिरपर क्यों बिठाया है? और अपनी अत्यन्त प्यारी दयाको हृदयमें क्यों स्थान दिया है? इन तीनोंके सम्बन्धमें आपने अपनी प्रतिज्ञा क्यों तोड़ी है? फिर मैंने ही ऐसा कौन-सा गुरुतर अपराध किया है जो मेरी स्तुतिमय वाणीका आप इतना निरादर कर रहे हैं?

किं भूयसा यदि न ते हृदयङ्गमेय-
मस्या गृहे वससि किं हृदये मदीये।

साधं प्रियेण वसनं तदुपेक्षणं च
दुःखावहं हि मरणादपि मानिनीनाम् ॥ ११। २३॥

अच्छा, और सब बातें जाने दीजिये। एक बात तो बताइये—मेरी वाणीके घरसे आप परिचित हैं या नहीं? मेरा हृदय ही उसका घर है और वहीं—उसीके घरमें—आप चौबीसों घण्टे रहते हैं। (अर्थात् मैंने आपको अपने हृदयमें बिठा रक्खा है) यह क्यों? आपका यह अन्याय कैसा? जिससे आपको इतनी नफ़रत उसीके घरमें, उसीके साथ वास! जरा संसारकी तरफ आँख उठाकर तो देखिये। मानिनी महिलाओंके साथ ही यदि उनका प्रेमी रहे और रहकर भी उनकी उपेक्षा करे, तो उनको मर जानेसे भी अधिक दुःख होता है या नहीं? फिर क्यों आप मेरी वाणीको इतना दुःसह दुःख देनेसे विरत नहीं होते? बहुत अच्छा, आपके जीमें आवे सो कीजिये।

मातः सरस्वति बधान धृतिं त्वदीयां
विज्ञप्तिमार्तिविधुरां विभवे निवेद्य।
देवी शिवा शशिकला गगनापगा च
कुर्वन्त्यवश्यमबलाजनपक्षपातम् ॥ ११। २४॥

माँ सरस्वति! अपने आराध्यदेवको उपेक्षा करने दे। तू अपनी कारुणिक विज्ञप्ति उन्हें सुनाना बन्द न कर। धीरज न छोड़। भगवती भवानी, चन्द्रमाकी कला और व्योमगङ्गा वहीं उनके शरीरपर ही विराज रही हैं। वे तीनों स्त्री हैं। और स्त्री स्त्रीकी ज़रूर ही तरफ़दार होती है। अतएव कभी-न-कभी तो वे तेरी सिफ़ारिश शिवजीसे जरूर ही करेंगी, अब नहीं तो तब उन्हें तेरा आदर करना ही पड़ेगा। एक नहीं तीन-तीन स्त्रियोंकी सिफ़ारिश कभी-न-कभी सफल हुए बिना न रहेगी।

एषा निसर्गकुटिला यदि चन्द्रलेखा
स्वर्गापगा च यदि नित्यतरङ्गितेयम्।
देवी दयार्द्रहृदया तु नगेन्द्रकन्या
धन्या करिष्यति न ते निबिडामवज्ञाम् ॥ ११। २५॥

हाँ, डर इतना ही है कि यह चन्द्रलेखा स्वभावहीसे बड़ी कुटिला है। स्वर्गङ्गा भी प्रपञ्चचतुरा और चञ्चला है। देख न, ऊँची-नीची तरङ्गें उसमें उठा ही करती हैं। अतएव ऐसी नारियोंका विश्वास नहीं किया जा सकता। कुटिलों और चञ्चलोंका क्या टिकाना? सम्भव है, वे तुझे दाद न दें। अच्छा, न दें तो न सही। दयार्द्रहृदया पार्वतीजी तो वैसी नहीं। नगेन्द्र-कन्या (पर्वत-पुत्री) होनेके कारण उनकी क्षमाशीलतामें सन्देह नहीं। महाभागा पार्वती कदापि तेरी अवज्ञा न करेंगी। वे निःसन्देह ही तेरी आर्तिविधुर विज्ञप्ति स्वामीको सुनाकर तेरा आश्वासन करायेंगी।

अपनी स्तुतिमयी वाणीका इसप्रकार समाधान करके जगद्धर भट्ट फिर अपने स्वामी शङ्करसे आत्मनिवेदन आरम्भ करता है और कहता है—सरकार! आप मेरी रक्षा क्यों नहीं करते?

पापः खलोऽहमिति नार्हसि मां विहातुं
किं रक्षया कृतमतेरकुतोभयस्य।
यस्मादसाधुरधमोऽहमपुण्यकर्मा
तस्मात्तवास्मि सुतरामनुकम्पनीयः ॥ ११। २७॥

मैं पापी हूँ, मैं दुष्कर्मकारी हूँ—क्या यह समझकर ही आप मेरा परित्याग कर रहे हैं? नहीं, नहीं। ऐसा करना तो आपको मुनासिब नहीं। क्योंकि भयरहित, प्राज्ञ और सुकृतकारीको रक्षासे क्या प्रयोजन? रक्षा तो पापियों, भयातों और खलोंहीकी की जाती है। जो स्वयं ही रक्षित है उसकी रक्षा नहीं की जाती। रक्षा तो अरक्षितोंहीकी की जाती है। मुझ महापापी, महाअधम और महाअसाधुकी रक्षा आप न करेंगे तो फिर करेंगे किसकी? मैं ही तो आपकी दया—आपके द्वारा की गयी रक्षा—का सबसे अधिक अधिकारी हूँ। आप ही कहिये, हूँ या नहीं? हाँ, आप शायद यह कहें कि—

स्वैरेव यद्यपि गतोऽहमधः कुकृत्यै-
स्तत्रापि नाथ! न तवास्म्यवलेपपात्रम्।
दृप्तः पशुः पतति यः स्वयमन्धकूपे
नोपेक्षते तमपि कारुणिको हि लोकः ॥ ११। ३८॥

तेरा अधःपात तो तेरे ही दुष्कर्मोंसे हुआ है। अपने कियेका फल भोग। रक्षा-रक्षा क्यों चिल्लाता है? महाराज, आपका यह कहना बजा है। मैं अपने ही पापोंसे जरूर पतित हुआ हूँ। तथापि, ऐसा होनेपर भी मैं आपकी अवज्ञाका पात्र नहीं। आपको मेरा उद्धार करना ही चाहिये। आप तो सर्वसमर्थ महादेव हैं। साधारण दयाशीलजन भी तो पतितोंकी उपेक्षा नहीं करते। यदि कोई विवेकहीन दृप्त पशु स्वयमेव किसी अन्धकूपमें गिर जाता है तो कारुणिक मनुष्य उसे भी उस कुँएसे निकाल लेते हैं।

अतएव अपने ही कुकर्मोंसे पतित मुझ नरपशुपर भी दया करना आपका कर्तव्य है।

आप अपने इस कर्तव्य-पालनसे यदि बचना चाहें तो भी नहीं बच सकते। बचनेकी चेष्टा करनेसे आपपर पक्षपातका दोष लगेगा—आप अन्यायी ठहराये जायँगे; क्योंकि आपने मेरे ही सदृश और भी अनेक जनोंका परित्राण किया है। यदि मेरे समान-धर्मा अन्य कितने ही जनोंको आप अपने अनुग्रहका पात्र बना चुके हैं तो मुझे क्यों नहीं बनाते? आपने अपने गलेमें जिस साँपको लिपटा रक्खा है उसकी करतूतपर कभी आपने विचार किया है? जैसा वह है, ठीक वैसा ही मैं भी हूँ। देखिये—

निष्कर्ण एष कुसृतिव्यसनी द्विजिह्वो
मत्वेति चेत्त्यजसि निःशरणं प्रभो माम्।
एतादृशोऽपि पवनाशन एष कस्मा-
च्छ्रीकण्ठ! कण्ठपुलिने भवता गृहीतः ॥११।५१॥

मैं निष्कर्ण हूँ—किसीकी बात नहीं सुनता; मैं कुसृति-व्यसनी अर्थात् कुमार्गगामी हूँ; मैं द्विजिह्व अर्थात् असत्य-वादी हूँ। यह सब ठीक है। तो क्या मेरे इन्हीं दुर्गुणोंके कारण आप मुझ निःशरणका परित्याग करने चले हैं? भला, आपने अपने इस सर्पराज वासुकिके भी गुणों या दुर्गुणोंका कभी विचार किया है? वह भी तो ठीक मेरे ही सदृश है—वह भी तो निष्कर्ण (कर्णहीन) है, वह भी तो कुसृति-व्यसनी (कु=पृथिवी, सृति=मार्ग) अर्थात् पृथिवीपर पेटके बल चलनेवाला है; वह भी तो द्विजिह्व अर्थात् मुँहमें दो जिह्वाएँ रखनेवाला है। उसपर तो इतनी कृपा और मेरी इतनी उपेक्षा!

जिह्वासहस्रयुगलेन पुरा स्तुतस्त्व-
मेतेन तेन यदि तिष्ठति कण्ठपीठे।
एकैव मे तव नुतौ रसनास्ति तेन
स्थानं महेश! भवदङ्घ्रितले ममास्तु ॥११।५२॥

हाँ, एक बात ज़रूर है। किसी ज़मानेमें इस शेषनागने अपनी दो हजार जिह्वाओंसे आपकी स्तुति की थी। अतएव शायद आप उसकी इस सेवाके कारण ही उसपर इतने प्रसन्न हुए हों और उसे अपने कण्ठमें स्थान दिया हो। यदि यही बात है तो मुझे आपने दो हज़ार जिह्वाएँ क्यों न दीं? मेरे मुखमें तो केवल एक ही जिह्वा है। उस एकहीसे मैं आबाल्यकाल आपकी बराबर स्तुति कर रहा हूँ। सो, दयासागर, दो हजार जिह्वाओंसे स्तुति करनेपर यदि आप किसीको अपने कण्ठमें स्थान दे सकते हैं तो एक ही जिह्वासे स्तुति करनेवाले मुझे आप अपने पैरके तलवेके नीचे ही पड़ा रहने दीजिये। मुझे कण्ठ न चाहिये; आपके तलवेके तले पड़े रहनेहीसे मैं अपनेको कृतार्थ समझूँगा।

अच्छा, इस सर्पराजको जाने दीजिये। अपने वाहन बैलहीके गुणोंपर विचार कीजिये। वह भी तो मेरे ही सदृश है। जो बातें मुझमें हैं वही उसमें भी। वह भी मेरा ही समानधर्मा है। कैसे, सो सुन लीजिये—

शृङ्गी विवेकरहितः पशुरुन्मदोऽयं
मत्वेति चेत् परिहरस्यतिकातरं माम्।
एवंविधोऽपि वृषभश्चरणार्पणेन
नीतस्त्वया कथमनुग्रहभाजनत्वम् ॥११।५३॥

मैं शृङ्गी अर्थात् बड़ा घमण्डी हूँ; मैं निर्विवेक हूँ; मैं पशुप्राय या नरपशु हूँ; मैं उन्मत्त हूँ—तो क्या इसीसे आप मुझ महाकातरका परिहार करने चले हैं? क्या आपका बैल ऐसा नहीं? वह भी तो शृङ्गी है—उसके भी तो सींग हैं; वह भी तो विवेक-विरहित है; वह भी तो पशु है; वह भी तो उन्मत्त है। फिर उसके क्या सुरखाबका पर लगा है जो आपने अपने चरणस्पर्शसे उसे अपने अनुग्रहका पात्र बनाया है? हम दोनों ही बराबर हैं। पर अपने बैलका तो इतना पक्षपात और मेरी इतनी अवज्ञा! यह अन्याय है या नहीं?

पृष्ठे भवन्तमयमुद्वहते कदाचि-
देतावता यदि तवेति दयास्पदत्वम्।
स्वामिन्नहं तु हृदयेऽनवहमुद्वहामि
स्वामित्यतः कथमहो न तवानुकम्प्यः॥११।५४॥

हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि आपका वाहन यह बैल, कभी-कभी, ज़रूरत पड़नेपर आपकी सवारीके काम आता है। सम्भव है, इसीसे आप उसपर इतने दयालु हों। और होना भी चाहिये। जो जिसके काम आता है उसपर वह भी कृपा करता ही है। इस Give and take वाली नीतिका मैं भी क़ायल हूँ। अच्छा तो, सरकार, यह बैल आपको अपनी पीठपर सदा ही सवार तो कराये रहता ही नहीं। जब कभी ज़रूरत पड़ती है तभी वह अपनी पीठपर आपको बिठा लेता है। अब आप ज़रा मेरी सेवाका भी तो खयाल कीजिये। मैंने तो आपको पीठपर नहीं, हृदयपर बिठा

रक्खा है। सो भी कभी-कभी नहीं, दिन-रात, चौबीसों घण्टे! फिर भी मेरा परित्याग! दुहाई आपकी, आपका यह सरासर अन्याय है। दिन-रात आपको अपने हृदयपर बिठाकर भी मैं आपकी कृपाका पात्र क्यों नहीं?

महाराज, अब और विलम्ब न कीजिये। हमलोग जितने मनुष्य हैं सभी कालके पाशमें फँसनेवाले हैं। इस विषयमें हम अत्यन्त ही विवश हैं। जिस तरह धीवर मछलियोंको किसी दिन अचानक अपने जालमें फाँस लेता है उसी तरह मृत्यु भी हमें फाँस लेती है। उस समय किसीकी भी शरण जानेसे हमारा परित्राण नहीं। मन्नूका विवाह हम अभीतक नहीं कर सके; हमारा नया महल अभीतक बनकर तैयार नहीं हुआ; हाईकोर्टकी जजी मिलनेका हुक्म हो जानेपर भी अभीतक हम उस आसनपर नहीं बैठ सके—इस तरहकी दलीलों और अपीलोंका असर मौतपर नहीं होता। वह एकाएक आकर हमें ले गये बिना माननेवाली नहीं। जबतक वह नहीं आयी तभीतक अपने परित्राणकी फ़िक्र मनुष्यको कर लेनी चाहिये—

तावत्प्रसीद कुरु नः करुणाममन्द-
माक्रन्दमिन्दुधर! सर्पय मा विहासीः।
ब्रूहि त्वमेव भगवन्! करुणार्णवेन
त्यक्तास्त्वया कमपरं शरणं व्रजामः॥६।५४॥

अतएव, मौत आनेके पहले ही आप मुझपर कृपा कर दीजिये। मेरे इस रोने-चिल्लानेपर कुछ तो ध्यान दीजिये। मेरी प्रार्थना सुन लीजिये। भगवन्, मुझे बचा लीजिये। आप ही कहिये, यदि आपके सदृश करुणा-सागरने भी मेरी रक्षा न की तो मैं फिर और किसकी शरण जाऊँगा? क्या आपसे बढ़कर भी कोई ऐसा है जो मुझ-सदृश पापीको पार लगा सके?

आप शायद कहें कि तू मौतसे क्यों इतना डरता है? मौत तो सभीको आती है। डरनेसे वह दूर नहीं हो सकती। इसके जवाबमें मेरा यह निवेदन है कि जो पैदा होता है वह मरता जरूर है। मैं इस बातको अच्छी तरह जानता हूँ। मगर, सरकार! कुछ लोग मौतसे बच भी तो गये हैं। राजा श्वेतकेतु और आपके गणश्रेष्ठ नन्दीको ही मैं उदाहरणके तौरपर पेश करता हूँ। आपकी कृपासे इन लोगोंकी मृत्यु टल गयी है या नहीं? हाँ, यह सच है कि बहुत बड़ी तपस्याके प्रभावसे इन्होंने मृत्युको जीता है। मुझमें उतना तपोबल नहीं। कहाँ उनका घोर तप और कहाँ मेरा न कुछ! अच्छा, तो यदि मेरी मौत नहीं टल सकती तो मेरे लिये कुछ तो रियायत कर दीजिये। और कुछ न सही तो आप इतना ही कर दीजिये—

तवर्चनान्तसमये तव पादपीठ-
मालिङ्ग्य निर्भरमभङ्गुरभक्तिभाजः।
निद्रानिभेन विनिमीलितलोचनस्य
प्राणाः प्रयान्तु मम नाथ! तव प्रसादात्॥६।२६॥

मैं आपकी रोज पूजा करता हूँ। पूजा हो चुकनेपर आपके सिंहासनके नीचे स्थित, आपके पैर रखनेकी चौकीपर, अपना सिर रखकर मैं बड़े ही भक्तिभावसे उसका आलिङ्गन करता हूँ। बस, आप इतना कर दीजिये कि उसी दशामें मुझे नींद आ जाय और उस नींदहीके बहाने मेरे प्राणोंका उत्क्रमण हो जाय।

पाठक, मालूम नहीं, आपके हृदयपर जगद्धरकी इन कारुणिक उक्तियोंका क्या असर होगा, और कुछ होगा भी या नहीं। हमारी आँखोंसे तो आँसुओंकी झड़ी लग रही है। कागज भीग रहा है। अब और नहीं लिखा जाता। हृदय हलका होनेपर, कुछ और थोड़ा-सा लिखकर, हम इस आलोचनाको समाप्त करेंगे।

जगद्धर अपने दुख-दर्दकी कहानी सुनाते-सुनाते थक गया। पर शिवजीने उसकी खबर तक न ली। तब वह व्याकुल हो उठा और लगा शिवजीको उलटी-सीधी सुनाने। अत्यन्त परुष वाक्य कहनेमें भी उसे संकोच न हुआ। तरह-तरहसे उसने शिवजीको उलाहना दिया। उनकी भर्त्सनातक उसने की। उन्हें अज्ञ, अबल, आकुल, अक्षम, निर्दय—और न मालूम और क्या-क्या—कह डाला। वह रोता भी गया और शिवजीको धिक्कारता और उन्हें खरी-खोटी सुनाता भी गया। इसप्रकार विलाप करते-करते वह कहता है—

आः किं न रक्षसि नयत्ययमन्तको मां
हेलावलेपसमयः किमयं महेश!
मा नाम भूत् करुणया हृदयस्य पीडा
व्रीडापि नास्ति शरणागतमुज्झतस्ते॥११।१०२॥

आह! यह आप कर क्या रहे हैं! मुझे तो यमराज खींचे लिये जा रहा है और आप तमाशा देख रहे हैं! ऐसे समय भी आपको दिल्लगी सूझी है। मैं तो मर रहा हूँ और

आप मज़ाक़ कर रहे हैं ! क्या आपको यही मुनासिब है ? मैं सुनता आ रहा हूँ कि आपका कुछ सम्बन्ध करुणासे भी है। तो क्या आपका यह निर्दय व्यवहार देखकर वह करुणा भी आपके हृदयमें पीड़ा नहीं पैदा करती ? अच्छा, यदि वह नहीं पीड़ा पहुँचाती—यदि उससे आपका कुछ भी सम्बन्ध नहीं—तो क्या अपनी शरण आये हुए मुझ अभागीको काल-पाशमें फँसा देख आपको लज्जा भी नहीं आती ?

इत्यादि दूढ्य इव निष्ठुरपुष्टभाषी
यत्किञ्चन ग्रहगृहीत इवात्तशङ्कः ।
आर्त्या मुहुर्मुहुरयुक्तमपि ब्रवीमि
तत्रापि निष्कृप ! भिनत्सि न मौनमुद्राम् ॥११।१०५॥

मेरा तो बुरा हाल है। आर्तियोंसे मैं अत्यन्त आकुल हूँ। होशतक मेरे ठिकाने नहीं। मेरी तो अक़्ल ही मारी गयी है। इसीसे मैं पिशाचग्रस्त पुरुषके सदृश, जो कुछ मुँहसे निकलता है, निःशङ्क कहता चला जा रहा हूँ। मुझमें उचित-अनुचितका ज्ञान नहीं। इस दशामें यदि मैं कठोरसे भी कठोर बातें कहूँ तो क्या आश्चर्य ! अरे निर्दयी ! अरे निष्ठुर !! अरे निष्कृप !!! आश्चर्य तो इस बातपर होता है कि मेरे इन दुर्वचनोंको सुनकर भी तू अपने मुँहपर लगी हुई मौनकी मुहर नहीं तोड़ता ! मेरी यह करुण-कथा सुनकर कुछ भी तो बोल !

मैं ही भूलता हूँ। आपसे मेरी कुछ भी भलाई होनेकी नहीं—आपसे मुझे कुछ भी आशा नहीं—

सर्वज्ञशम्भुशिवशङ्करविश्वनाथ-
मृत्युञ्जयेश्वरमृडप्रभृतीनि देव !
नामानि तेऽन्यविषये फलवन्ति किन्तु
त्वं स्थाणुरेव भगवन् ! मयि मन्दभाग्ये ॥११।८३॥

सर्वज्ञ, शिव, शङ्कर, मृत्युञ्जय, मृड आदि आपके आठ-दस नाम बड़े ही सुन्दर हैं। वे सभी शुभसूचक हैं। किसीका अर्थ है कल्याणकर्त्ता, किसीका सुखदाता, किसीका विश्वनाथ, किसीका सर्वज्ञ और किसीका मृत्यु-विजयी। पर ये सब नाम हैं किसके लिये ? औरोंके लिये; मेरे लिये नहीं। जो सौभाग्यशाली हैं उन्हींको आप, अपने इन नामोंके अनुसार, फल देते हैं—किसीको सुख देते हैं, किसीका कल्याण करते हैं, किसीकी मृत्यु टाल देते हैं। रहा मैं, सो मुझ अभागीके विषयमें आपका एक और ही नाम सार्थक है। वह नाम है, स्थाणु (ठूँठ) ! पत्र, पुष्प, फल और शाखाओंतकसे रहित सूखे वृक्षसे भी भला कभी किसीको कुछ मिला है ? उससे तो छायातककी आशा नहीं। अतएव, आप जब मेरे लिये एकमात्र स्थाणु हो रहे हैं तब मैं आपसे क्या आशा रक्खूँ ? यह सब मेरे ही दुर्भाग्यका विजृम्भण है।

महाराज ! बहुत हो चुका। अब तो मुझपर कुछ कृपा की जाय। मुझे इससे अधिक अच्छी प्रार्थना करना नहीं आता—

अज्ञस्तावदहं न मन्दधिषणः कर्तुं मनोहारिणी-
श्चाटूक्तीः प्रभवामि यामि भवतो याभिः कृपापात्रताम् ।
आर्त्तेनाशरणेन किन्तु कृपणेनाक्रन्दितं कर्णयोः
कृत्वा सत्वरमेहि देहि चरणं मूर्धन्यधन्यस्य मे ॥१।८२॥

यदि मैं मीठी-मीठी बातें बना सकता, यदि मैं आपकी मनोहारिणी स्तुति करनेकी योग्यता रखता, यदि मुझे खुशामद करना आता, तो सम्भव है, आप प्रसन्न होकर मुझपर कृपा करते। पर मैं करूँ तो क्या करूँ ? मुझमें वैसी शक्ति ही नहीं। मैं तो ठहरा मन्दबुद्धि, अज्ञ, महामूर्ख ! अतएव आप मुझसे वैसी हृदयहारिणी उक्तियोंकी आशा न रखिये। आप तो केवल मेरी दीनताको देखिये—मैं आर्त्त हूँ, निःशरण हूँ, दुखी हूँ, आपकी दयाका भिखारी हूँ। मेरा यह विलापात्मक रोना-धोना सुनकर दौड़िये—देर न कीजिये—और मुझ पापीके मस्तकको अपने पैरोंका स्पर्श करा जाइये।

जगद्धर भट्टकी तरह भगवान् भवसे हम भी कुछ-कुछ ऐसी ही प्रार्थना करके स्तुति-कुसुमाञ्जलिकी करुण-कथासे विरत होते हैं*

---

* आचार्यजीकी साहित्यसन्दर्भ नामक 'गंगापुस्तकमाला' से प्रकाशित पुस्तकसे। पं० किशोरीदासजी वाजपेयीने इसके प्रकाशनार्थ पूज्य द्विवेदीजी और प्रकाशक श्रीभार्गवजीसे आज्ञा प्राप्तकर हमें लिखा और इस लेखको प्रकाशित करनेका अनुरोध किया, इसके लिये हम उनके और लेख-प्रकाशक महोदयके कृतज्ञ हैं। —सम्पादक

मदन-दहन

(लेखक—पं० श्रीरामनारायणदत्तजी पाण्डेय 'राम' शास्त्री)

(१)

इन्द्रका आदेश

ए हो कामदेव! काम विकट परो है आज,
आय मेरे निकट सहाय बनि जावै तू।
मोहिकै गिरीसकौं गिरीस-तनयाके संग,
सहित उमंग ब्याह-मंगल रचावै तू॥
एरे बीर! तेरे बीरबानैको बखानै कौन,
कानलौं कमान-बान तानि यदि धावै तू।
कौन ऐसो बीर जो अधीर ह्वै न पावै त्रास,
खास पदमासनको आसन हिलावै तू॥

(२)

कामदेवका प्रस्थान

सासन कठोर पाकसासनको मानि मार,
संकित सरासन लै संभु-ढिग आवै है।
लावै है समाज साजि-साजि अप्सरानहूकौं,
संगी संग रंगी ऋतुराजहू लखावै है॥
भावै है न आन सिव-ध्यान तोरिबेकौ ध्यान,
छाती कै उतानि तानि-तानि धनु धावै है।
कै तो मेटि जावै है महत्ता महादेवकी, कै,
आजु कामदेवहीकी सत्ता मेटि जावै है॥

(३)

वसन्तका विकास

नीली बेलि-पुंजसों सजे हैं केलि-कुंज तहाँ,
नाचै है नटी-सी नीली प्रकृति दिगन्तमैं।
कोयल सुजस-अनुराग-राग रागैं लगी,
बाजै लगी अलिकी नवीन बीन तन्तमैं॥
बर अरबिन्द-वृन्द चँवर सुहावै चारु,
बिजन डुलावै मलयानिल अनन्तमैं।
मंजुल रसाल-मंजरीको मंजु ताज बन्यौ,
आज ऋतुराजता बिराजै है बसन्तमैं॥

(४)

काम-विकार

देखत दिगन्तमैं बसन्तकौ अनूठौ रंग,
अमित उमंगसौं मनोज-मन पाग्यौ जात।
सामुहे महेसके अनूप रमनीय रूप,
अप्सरा-समूह त्यौं सनेह-राग राग्यौ जात॥
काम-बस जीव कामिनीन अनुराग्यौ जात
त्याग्यौ जात धीरज, बिरागभाव भाग्यौ जात।
जाग्यौ जात भोग-अभिलाख लाख भोगिनको,
जोगिनको बिषम बियोग-रोग लाग्यौ जात॥

(५)

शिवकी समाधि

जाइ तहाँ हरकौं निहार्‌यौ हरि हार्‌यौ कछू,
चारौ ना चलत तप कठिन प्रचार्‌यौ है।
बाँधि बीर-आसन समाधि साधि साँसनकौ—
रोकि, सोक-हीन आतम-तत्त्वको बिचार्‌यौ है॥
आँखैं मूँदि भाखैं नहीं, चाखैं चिदानन्द-रस,
'राम कवि' बिरस बिषय-बिष बार्‌यौ है।
मान अभिमानहू बिसार्‌यौ इमि मानसकौ,
ध्यान-धारणामैं एकतान करि डार्‌यौ है॥

(६)

तपका प्रभाव

टारि टेक एक मग मृग, मृगराज आज,
द्वेसलेस बारि नेक नीतिमैं निरत हैं।
तपके प्रभावतैं सुभाव बिपरीत तजि,
रीति भजि प्रीतिकी प्रतीतिसौं फिरत हैं॥
बात उतपातकी न जात सुनी नेकु कहूँ,
एक चहूँ ओर सान्ति-स्रोत ही गिरत हैं।
बिष, बिषधर, दोषाकर आदि दूषनहू,
भूषन बनाइ मानौं संभु पहिरत हैं॥

(७)

पार्वतीका आगमन

पेखि यौं त्रिलोचनकौं सोचनि परयौ ज्यौं काम,
तौलौं तहाँ आई उमा ललित लुनाई-सी।
चारुताके भारतें थकी-सी मन्द-मन्द चाल,
आली संग, अंगनितें झरति जुन्हाई-सी॥
कुंडल अमोल लोल लसत कपोलनपै,
आँखें झुकीं नेहसों लजाईं अलसाईं-सी।
मृदु-मुसुकानि-छटा छाई मंजु आननपै,
दूजौ पंचबानकौ कमान बनि आई-सी॥

(८)

महादेवका क्षोभ

बूझिकै निदेस गई मुदित महेस लगि,
पास परब्रह्मके बिलासमयी माया-सी।
हाथ जोरि जुग भूतनाथकौं नवायौ माथ,
साथ दिननाथके सुहाई मंजु छाया-सी॥
तौलौं जानि समय मनोज तीर तान्यौ, परी—
ईसके सरीरपै अधीरताकी साया-सी।
चाहसौं निहारयौ चन्द्रमौलि उमामुख हेरि,
फेरी सु तौ डीठि पीठि-ओर मुग्ध जाया-सी॥

(९)

शिवका क्रोध

चिहुकि सचेत ह्वैकै चेतकौं सँभारयौ पुनि,
सोचि छोभ औचक सँकोच मन भरिगे।
कारन बिकारको निहारिबेके हेतु तहाँ
चहूँ दिसि लोचन त्रिलोचनके परिगे॥
ताने देखि कामकौं निसाने त्यौं रिसाने संभु
कालरुद्र ह्वैगे भालपट्ट मानौं जरिगे।
उठत उसास-बायु बिषम बवण्डरसो
आँखिनतैं आगके अँगारे उग्र झरिगे॥

(१०)

ललाटाग्निकी लपट

जागि उठ्यौ धधकि कराल ज्वाल-जाल भाल-
अन्दर ज्यौं ज्वालामुखी मन्दर ही फूटिगो।
रूठिगो प्रचंड चंडिकेस तप-खंडिबे ते,
आजु रतिराजको सँहार-साज जूटिगो॥
नाचै लगे आँचते जटानिमैं भुअंग, गंग
सूखै लगी, इन्दुकी मयूखैं मनो लूटिगो।
छूटिगो स्फुलिंग यौं अनंग-अंग अंगनिपै,
मन्दरपै बज्र ज्यौं पुरन्दरकौ टूटिगो॥

(११)

मदन-दाह

गाढ़ी चंड-ज्वाला तहाँ बाढ़ी व्योम-मंडलमैं,
ठाढ़ी अप्सरानकौ परान थहरान्यौ है।
आहि करि 'रामजू' पुकारयौ 'त्राहि-त्राहि' काम,
काम नहीं कोऊ बामदेव-ढिग आन्यौ है॥
भूलि परयौ भुलसि सुफूलको कमान-बान
तूलसम मीन-धुजा धूल मिलि जान्यौ है।
देह भस्म ह्वैके तो भसकि भहरान्यौ किन्तु—
जीव रति-रूपमैं धरापै बिललान्यौ है॥

शरणागत

जिधर देखता हूँ पाता हूँ, तुमको ही मुसकाते।
आँखोंमें आकर बैठे हो, पास नहीं क्यों आते?
हो जाता हूँ मैं वियोगमें, जब विक्षिप्त व्याकुल-सा।
तब भी पास नहीं क्यों मेरे, आकर तुम समझाते?
घूँट आँसुओंके पी-पीकर, रहता हूँ मैं प्यासा।
प्रेमामृत क्यों नहीं पिलाकर, मेरी प्यास बुझाते?
क्षुधा-ग्रसित मैं कबसे आगे, हाथ पसार रहा हूँ।
दया-दृष्टिकी भूख नहीं क्यों, करके कृपा मिटाते?
भूखा-प्यासा मैं विक्षिप्त हूँ, आया शरण तुम्हारे।
तब भी क्यों मुझको 'कुसुमाकर' नाथ! नहीं अपनाते?

देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर' बी०ए०, एल-एल०बी०

व्याघ्रपाद

एक विद्वान् और धर्मात्मा ब्राह्मण गङ्गाके किनारे रहा करता था। उसके एक पुत्र था, जिसमें अद्भुत शारीरिक और मानसिक शक्ति थी। उसने अपने पितासे दीक्षा ली। उसके पिताने उसे सारी शिक्षा प्रदानकर पूछा कि—'बेटा! बतला, अब मैं तेरे लिये क्या करूँ?' पुत्रने उत्तर दिया—'पिताजी! मुझे वह मार्ग बतलाइये, जिससे परम पदकी प्राप्ति होती है।' पिताने कहा—'बेटा! शिवकी भक्तिसे परम पदकी प्राप्ति होती है।' पुत्रने पूछा—'उसकी पूजा कहाँ हो सकती है?' पिताने उत्तर दिया—'जिसप्रकार शरीरमें आत्मा सर्वत्र व्याप्त है, उसी प्रकार शिव भी समस्त संसारमें व्याप्त हैं तथापि कुछ स्थानविशेषमें उनका आविर्भाव होता है। उनमेंसे तिलय भी एक श्रेष्ठ स्थान है, जहाँ एक ज्योतिर्लिङ्ग है, वहाँ तुम्हारी पूजा शिवजी अवश्य स्वीकार करेंगे।'

वह बालयोगी अपने माता-पिताको छोड़कर दक्षिणकी ओर यात्रामें निकला। शीघ्र ही वह एक सुन्दर सरोवरके समीप पहुँचा जिसमें कमल खिले हुए थे। उसके किनारे ही उसने वटवृक्षके नीचे एक शिवलिङ्ग स्थापित देखा। भक्ति-भावनासे प्रेरित होकर वह नित्यप्रति नियमपूर्वक वहाँ पुष्पोदकसे शिवकी पूजा करने लगा। उस स्थानके समीप ही उसने अपनी कुटिया बनायी और साथ ही एक दूसरा शिवलिङ्ग स्थापित किया। अब तो उसे दोनों स्थानोंकी पूजामें बड़ी कठिनाई पड़ने लगी। क्योंकि उसे वहाँके मैदान, उपवन और सरोवरके पुष्पोंसे सन्तोष नहीं होता था। वह चाहता था कि पर्वत-शिखरके ऊपर लहराती हुई वृक्ष-लताओंके अत्यन्त मनोहर पुष्पोंसे पूजा करे। वह प्रातःकाल होनेके पहले ही पुष्प-चयनके लिये गिरि-शिखरपर चढ़ जाता और अँधेरेमें ही उन्हें चुनकर नीचे उतरता, नीचे उतरते-उतरते दोपहर हो जाता और उसके हाथके आधे पुष्प सूर्यकी तीव्र किरणोंसे झुलस जाते थे।

इच्छानुसार पूजा न हो सकनेके कारण वह अत्यन्त उदास होकर पृथिवीपर गिर पड़ा और भगवान् शिवसे सहायताके लिये प्रार्थना करने लगा। बस क्या था? शिवजी आशुतोष तो हैं ही, प्रकट हो गये और मुस्कराते हुए उससे वर माँगनेके लिये कहा। उसने प्रार्थना की कि 'हे प्रभो! मुझे बाघके समान मजबूत पञ्जोंवाले हाथ-पैर और चमकती हुई आँखें दीजिये। जिससे मैं ऊँचे वृक्षोंपर चढ़कर अँधेरेमें भी अत्यन्त मनोहर पुष्पोंका चयन करके नित्य नियमपूर्वक पूजा कर सकूँ।' शिवजी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये और उस बालयोगीको बाघके-से पैर और छः नेत्र हो गये। तबसे वह 'व्याघ्रपाद' कहलाने लगे। प्रसिद्ध शिवभक्त उपमन्यु ऋषि इन्हींके सुपुत्र थे।

लक्ष्मीजीका शिव-पूजन

एक बार श्रीविष्णुभगवान्ने लक्ष्मीजीके सामने भगवान् शङ्करकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि मुझे एकमात्र शिव ही प्रिय हैं, दूसरा कोई नहीं। यही नहीं, उन्होंने यहाँतक कह डाला कि शिव और मुझमें कोई भेद नहीं है और जो शिवकी पूजा नहीं करते वे मुझे कदापि प्रिय नहीं हैं। भगवान्के इन वचनोंको सुनकर लक्ष्मीजी बड़ी खिन्न हुई और अपनेको शिवपराङ्मुखी समझकर आत्मगर्हणा करने लगीं। तब भगवान्ने उनको सान्त्वना देते हुए कहा कि—देवि, सोच न करो; मैंने तुम्हें शिव-पूजामें प्रवृत्त करनेके लिये ही ये सब बातें कही हैं। अब आजसे तुम प्रतिदिन विधिपूर्वक शङ्करकी पूजा प्रारम्भ कर दो और उसमें कभी चूक न पड़ने दो। ऐसा करनेसे तुम मुझे शंकरके समान ही प्रिय हो जाओगी।

श्रीलक्ष्मीजीने पतिकी आज्ञाको मस्तकपर रख, नारद मुनिसे दीक्षा ग्रहणकर शिव-पूजा प्रारम्भ कर दी। पूजाके प्रभावसे उनकी दिनोंदिन शङ्करजीमें भक्ति बढ़ने लगी और शङ्करजीके साथ-साथ वे भगवान्की भी अतिशय कृपा-पात्र बन गयीं। (बृहद्धर्मपुराणसे)

शिव-तत्त्व

(लेखक—श्रीयुत नृसिंहदासजी वर्मा)

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयञ्च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥

'शिव-तत्त्व'—इन दो शब्दोंका मुखसे उच्चारण कर देना या लेखनीसे पत्र-पर लिख देना बड़ा सहज है परन्तु इसके मर्मको स्वयं यथार्थ-रूपसे समझना या दूसरेको समझा देना अत्यन्त ही कठिन है । क्योंकि शिव-तत्त्व वह दुर्विज्ञेय वस्तु है जिसके वास्तविक रहस्यको पूर्णतया निरूपण करनेमें वेदभगवान्‌ने भी अपनी असमर्थता प्रकट की है । श्रुति कहती है—

विज्ञातारमरे केन विजानीयात् । न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि ।

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह……
………………अवाङ्मनसगोचरम् ।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम् ॥

अर्थात् 'सबके जाननेवाले उस (विज्ञाता) को किससे जाना जाय ? हम नहीं समझते कि किसप्रकार उस शिव-तत्त्वका उपदेश करें ? क्योंकि वह ज्ञात और अज्ञात दोनों-से विलक्षण है । जिसको बिना प्राप्त किये मनसहित वाणी लौट आती है, वह मन और वाणीका विषय नहीं है । इस आत्मारूप शिवकी प्राप्ति न प्रवचनसे होती है, न बुद्धिसे और न शास्त्रोंके अधिक श्रवणसे ही । जिसको यह स्वयं कृपा करके वरण करता है उसे ही इसकी उपलब्धि होती है, दूसरेको नहीं ।' वस्तुतः शिव-तत्त्वको इदमित्थं रूपसे वर्णन करनेकी शक्ति ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देवोंमें भी नहीं है, अस्मदादिक मायाग्रसित अल्पज्ञ जीवोंकी तो बात ही क्या है ? तथापि अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार इसका कुछ विवेचन करना चाहता हूँ । त्रुटिके लिये विज्ञ महानुभाव क्षमा करें ।

साधारणतया उस कल्याणकारी परमात्माको शिव कहते हैं जो कीटसे लेकर हिरण्यगर्भपर्यन्त सबमें एकरस होकर अनुस्यूत है तथा जो सबका अधिष्ठान, मूलाधार और अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है । शास्त्रोंने जगन्नियन्ता भगवान् शिवके दो स्वरूप वर्णन किये हैं—एक व्यक्त और दूसरा अव्यक्त । इसे ही दूसरे शब्दोंमें मूर्त और अमूर्त कह सकते हैं । यथा—'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चामूर्तञ्च ।' योगियोंके परमाराध्य देव श्रीमहादेवजीका व्यक्त साकाररूप शूलपाणि, व्याघ्रचर्मधारी, चन्द्रमौलि, गंगाधर तथा पञ्चाननादि विशेषणोंसे युक्त है । ऐसा शास्त्रोंमें वर्णित है । यथा—

शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम् ।
नागं पाशञ्च घण्टां डमरुकसहितां साङ्कुशां वामभागे
नानालङ्कारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥

उनका अव्यक्त निराकार रूप सजातीय-विजातीय-स्वगत-भेद-शून्य देश-काल-वस्तु-परिच्छेद-रहित और अस्ति-भाति तथा प्रियरूप है । वे कल्याण-स्वरूप शिव ही अपने 'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय' इस संकल्परूप शाम्भवी मायाके द्वारा नाना प्रकारके अण्ड-ब्रह्माण्डरूप संसारके आकारमें परिणत हो रहे हैं । स्वयं श्रुति कहती है 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तैत्ति० २ । ६) या 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपमीयते' इत्यादि । उसी भगवान् शङ्करका जीवरूपसे प्रवेश भी स्मृति-सिद्ध है । श्रीमद्भागवतमें कहा है—'ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति' । उपर्युक्त उद्धरणोंसे तथा 'आत्मा वा इदमेवाग्र आसीत् । नान्यत् किञ्चन मिषत्' इस श्रुतिके अनुसार केवल शिवाद्वैत-तत्त्वका ही अस्तित्व त्रिकालमें सिद्ध होता है । तथापि इस विषयको सर्वसाधारणके समझनेयोग्य बनानेके लिये यदि शास्त्रपद्धतिके अनुसार यह कहें कि यह समस्त ब्रह्माण्ड केवल शिव और एकसे नाना होनेके संकल्प-रूप शैवी मायाके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, तो कोई क्षति

नहीं। यही कारण है कि अद्वैत-तत्त्ववेत्ता महात्माओंने इस समग्र दृश्य तथा अदृश्य प्रपञ्चको शिवरूप ब्रह्मका विवर्त और मायाका परिणाम माना है। जिसप्रकार अग्निसे दाहशक्ति अलग नहीं हो सकती, उसी प्रकार संकल्पशक्ति संकल्प करनेवालेसे भिन्न नहीं हो सकती। 'मैं एकसे अनेक हो जाऊँ' इसप्रकारकी सङ्कल्परूप शाम्भवी माया शम्भुसे पृथक् नहीं रह सकती। इसप्रकार दो ही पदार्थ सृष्टि-निर्माणके कारण सिद्ध होते हैं—एक शिवरूप नारायण और दूसरी शाम्भवी मायारूप वैष्णवी प्रकृति, जिसको शक्ति, महत्-तत्त्व, अव्यक्त, अविद्या, अजा, अज्ञान, समष्टि, सङ्कल्प आदि अनेक नामोंसे शास्त्रमें कहा गया है।

जिसप्रकार एक ही निराकार अव्यक्तरूप परब्रह्म प्रणव (ॐ) अकार, उकार और मकार (तथा अर्ध-मात्रा) रूप होकर व्यक्त साकारभावको प्राप्त होता है उसी प्रकार उस एकके ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश (शिव) ये तीन रूप हो जाते हैं। श्रुति कहती है—'एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधाऽस्यै'। इसप्रकार यद्यपि इन तीनोंका एक ही स्वरूप है तथापि शास्त्रने जिज्ञासुओंको समझानेके लिये कार्यानुसार एक ही कृपालु परमात्माका तीन नामोंसे संकेत कर दिया है। वस्तुतः वही निराकार है, वही साकार है; और अपने भक्तोंके कल्याणके लिये भाँति-भाँतिके अवतारोंको धारण करता है। शुक्ल यजुर्वेद-संहितामें लिखा है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

अर्थात् प्रजापति परमात्मा चिन्मात्र, दिव्य, अभौतिक तेजरूप आवेशके द्वारा गर्भमें प्रवेश करता है और समयानुसार विविध रूप धारणकर स्वेच्छासे प्रकट होता है। उसकी योनि अर्थात् अवतार लेनेके कारणको धीर पुरुष ही जान पाते हैं और उसीके अन्दर अखिल भुवन स्थित होते हैं।

यद्यपि प्रणवरूप ईश्वरके संसारको विध्वंस करनेवाले स्वरूपका नाम 'शिव' माना गया है और शिवके नामान्तर—'रुद्र' शब्दका अर्थ भी यही है कि जो पापियोंको दण्ड देकर रुला दे या एकसे दूसरेका मरणरूप वियोग कराके जीवित पुरुषको वियोगजन्य पीड़ासे रुदन करा दे। परन्तु दण्ड देनेकी शक्ति उत्पादन तथा पालन—दोनों शक्तियोंसे बलिष्ठ होती है, इस बातको सब जानते हैं। यदि संसारमें राजा अथवा उसके कर्मचारीगण अपराधीको उचित दण्ड न दें तो शीघ्र ही राष्ट्र-विप्लव हो जाय और जनसमाजको अत्यन्त दुःखका सामना करना पड़े। राजदण्ड, भूल या प्रमादवश निरपराधी मनुष्यको भी मिल सकता है परन्तु शिवका दण्ड तो माताके दण्डके समान प्रेमसे भरा हुआ और केवल अपराधीके कल्याणके लिये ही होता है। श्रुति कहती है—

भयादस्याग्निस्तपति, भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः। (कठ० २। ६। ३)

अर्थात् उस शिवरूप परमेश्वरके भयसे सूर्य तपता है, अग्नि तपती है और उसीके भयसे इन्द्र, पवन और पाँचवाँ मृत्यु अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं।

जिन भगवान् शिवसे भयभीत होकर सूर्य आदि संसारके अधिष्ठातृदेवोंको भी अपने-अपने नियत कार्योंमें नियत समयपर बिना किसी प्रमादके प्रवृत्त होना पड़ता है उन्हीं भगवान् स्मरारिके भयसे भयभीत होकर उनके इच्छारूप सङ्कल्पसे ही जड-परमाणु भी स्नेहयुक्त होकर सृष्टिकी उत्पत्ति-का कारण बन जाते हैं अथवा यों कहिये कि उन्हींके भयसे माया संसारकी रचना करती है। अतः यदि भगवान् त्रिपुरारि ही अपनी अलौकिक शक्तिद्वारा संसारका संहार करते हैं तो इसके उत्पन्न तथा पालन करनेवाले भी वे ही हैं।

श्रीशिवगीतामें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भगवान् चन्द्रमौलिकी स्तुति करते हुए कहा है—

त्वत्तो हि जातं जगदेतदीश
त्वय्येव भूतानि वसन्ति नित्यम्।
त्वय्येव शम्भो! विलयं प्रयान्ति
भूमौ यथा वृक्षलतादयोऽपि ॥
(७। २३)

अर्थात् हे शम्भो! जिसप्रकार वृक्ष, लता, गुल्म तथा वनस्पति आदि उद्भिज-पदार्थ पृथिवीसे उत्पन्न होते हैं, उसीमें स्थित रहते हैं और अन्तमें उसीमें लय हो जाते हैं; इसी प्रकार यह सारा जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है, आपमें ही स्थित रहता है और आपमें ही विलीन हो जाता है।

उसी शिवगीतामें भगवान् श्रीशङ्कर श्रीरामसे कहते हैं—

अथवा किं बहूक्तेन मयैवोत्पादितं जगत्।
मयैव पाल्यते नित्यं मया संह्रियतेऽपि च॥
(५। ३६)

अर्थात् हे राम! अधिक कहनेसे क्या है? (तू यही समझ कि) यह सारा विश्व मुझसे ही उत्पन्न होता है, मैं ही इसका नित्य पालन करता हूँ और इसका संहार भी मैं ही करता हूँ।

'शिव-स्वरोदय' में भी श्रीशङ्करजी पार्वतीजीसे कहते हैं—

निरञ्जनो निराकार एको देवो महेश्वरः।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्वायुसम्भवः॥

अर्थात् मायारहित, आकारहीन, एक, सर्वान्तर्यामी परमेश्वरसे आकाश उत्पन्न हुआ और आकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई।

'वेदसार-शिवस्तव' (श्लोक ११) में श्रीशङ्कराचार्य भी लिखते हैं—

त्वत्तो जगद्भवति देव! भव! स्मरारे!
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड! विश्वनाथ!
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश!
लिङ्गात्मकं हर! चराचरविश्वरूपिन्॥

इससे यह बात सिद्ध हुई कि प्रणवरूप भगवान् शिव यद्यपि संसारके संहर्त्ता कहे जाते हैं तथापि इसके उत्पादक और भर्त्ता भी वही हैं। भगवान् शिव ही संसारकी उत्पत्तिके समय 'ब्रह्मा' और पोषणकालमें 'विष्णु' नाम धारण करते हैं और तदनुरूप भिन्न-भिन्न आकारके भी हो जाते हैं, तथापि उनके वास्तविक स्वरूपमें कोई भेद नहीं आता। यही कारण है कि शास्त्रोंमें भगवान् शिवका परम वैष्णव होना और विष्णु भगवान् तथा उनके राम-कृष्णादि अवतारोंका परम शैव होना मिलता है। इधर भगवान् श्रीराम सेतुबन्ध-पर लङ्का-विजयके अनन्तर वहाँ स्थापित किये हुए शिवलिङ्गको लक्ष्य करके कहते हैं—'अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः' (वा० रा०) और उधर भगवान् श्रीराम श्रीमहादेवके परम आराध्य इष्टदेव होते हैं और शिवजी उनके नामका तारकमन्त्र काशीमें मरनेवालोंको मुक्ति-प्राप्तिके हेतु दिया करते हैं। ये बातें शास्त्रोंमें कई जगह वर्णित हैं। महाभारतमें लिखा है—

ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां रुद्रादित्याश्विनामपि।
विश्वेषामपि देवानां वपुर्धारयते भवः॥
(महा० अनु० अ० १४)

अर्थात् 'हर ही ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि देवताओंका शरीर धारण करते हैं।' इसप्रकार हरिका आत्मा हर और हरका आत्मा हरि होना सिद्ध होता है। इन दोनोंमें भेद-भावना करनेवालेके लिये शास्त्रका यह आदेश है—'किञ्चिदप्यन्तरं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्'। ऐसी दशामें इन जगदीश्वरोंमें भेद-बुद्धि करना केवल भूल है।

यद्यपि संसारमें वैष्णव, शैव, गाणपत्य और शाक्त आदि अनेक प्रकारके मत प्रचलित हैं और सब-के-सब अपने-अपने इष्टको सबसे श्रेष्ठ मानते हैं किन्तु इससे उस परमेश्वरका महत्त्व बढ़ता ही है, घटता नहीं। तथापि अपने उपास्यदेवको दूसरोंके आराध्यदेवसे भिन्न और श्रेष्ठ कहकर उनके इष्टकी निन्दा करना दुःखप्रद है और वैदिक सनातन सम्प्रदायके ह्रास और अधःपतनका कारण है। शास्त्रोंने तो केवल मनुष्योंकी रुचि-भिन्नताको देखकर, उनके कल्याण-के निमित्त विभिन्न पथोंका निरूपण किया है। भगवती श्रुति कहती है—

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिण-तश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥
(मुण्ड० उप० २। २। ११)

बस, वही एक परब्रह्म भक्त-मनोरञ्जनार्थ भिन्न-भिन्न उपास्योंकी आकृतिको धारण करता है। इसलिये भेदबुद्धिको छोड़कर सदा अपने पूज्य इष्टदेवकी अर्चना तथा उपासना श्रद्धापूर्वक करनी चाहिये। पञ्चदशीमें श्रीविद्यारण्य मुनिने इस विषयका बड़ा सुन्दर निरूपण किया है; उसे ध्यानपूर्वक पढ़ने और विचारनेसे ईश्वरविषयक सारे साम्प्रदायिक विरोध दूर हो जाते हैं। वे कहते हैं—

अन्तर्यामिणमारभ्य स्थावरान्तेशवादिनः।
सन्त्यश्वत्थार्कवंशादेः कुलदैवतदर्शनात्॥
तत्त्वनिश्चयकामेन न्यायागमविचारिणाम्।
एकैव प्रतिपत्तिः स्यात्साप्यत्र स्फुटमुच्यते॥

अर्थात् 'अन्तर्यामी ईश्वरसे लेकर स्थावरपर्यन्तको ईश्वर माननेवाले संसारमें पाये जाते हैं; क्योंकि पीपल, आक और बाँस आदि भी लोगोंके कुलदेवता देखनेमें आते

हैं। अतः तत्त्व-निश्चयकी इच्छासे न्यायागम अर्थात् श्रुति-स्मृतिका विचार करनेवाले पुरुषोंके लिये एक ही शास्त्रसिद्ध मार्ग है जिसका यहाँ स्पष्ट निरूपण किया जाता है।' वह यह कि माया अर्थात् प्रकृतिको जगत्का उपादान-कारण और मायाधिष्ठाता मायोपाधिक अन्तर्यामीको निमित्त-कारण समझना चाहिये। क्योंकि यह सारा ब्रह्माण्ड मायी महेश्वरके अंशरूप ईश्वरात्मक जीवोंसे ही व्याप्त है। श्रुतिके अनुसार ईश्वरके विषयमें यही निर्णय युक्तियुक्त है, क्योंकि ऐसा करनेपर सारे ईश्वरवादियोंका परस्पर सारा विरोध दूर हो जाता है।

आगे चलकर श्रीविद्यारण्य स्वामी फिर कहते हैं—

ईशसूत्रविराड्वेधोविष्णुरुद्रेन्द्रवह्नयः।
विघ्नभैरवमैरालमारिकायक्षराक्षसाः॥
विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा गवाश्वमृगपक्षिणः।
अश्वत्थवटचूताद्या यवव्रीहितृणादयः॥
जलपाषाणमृत्काष्ठवास्याकुद्दालकादयः।
ईश्वराः सर्व एवैते पूजिताः फलदायिनः॥
यथा यथोपासते तं फलमीयुस्तथा तथा।
फलोत्कर्षापकर्षौ तु पूज्यपूजानुसारतः॥

(पञ्चदशी ६। २०६-२०७-२०८-२०९)

अर्थात् ईश्वर हिरण्यगर्भ, विराट्, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अग्नि, यम, भैरव, मैराल, मारिका, यक्ष, राक्षस, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गाय, घोड़ा, हरिन, पक्षी, पीपल, बड़ और आम आदि तथा जौ, धान, तिनके आदि और पानी, पत्थर, मिट्टी, लकड़ी तथा बसूला और कुदाल आदि—ये सब-के-सब ईश्वररूप ही हैं और विधिवत् पूजे जानेपर यथेष्ट फलके देनेवाले हैं। परन्तु फलका उत्कर्ष तथा अपकर्ष तो पूज्यकी पूजाके अनुसार होता है। क्योंकि पूजक पूज्यकी जैसी पूजा करता है वैसा ही फल पाता है।

बस, इससे यही सिद्ध हुआ कि एक नामीके नाम और गुण भले ही अनेक हों परन्तु इन सब भिन्न-भिन्न वाचकों तथा गुणोंका लक्ष्य केवल एक ही है।

यहाँतक व्यक्त अर्थात् साकार, सगुण, मूर्त, शिवरूप ब्रह्मका निरूपण किया गया। यह मार्ग प्रतीकोपासकोंका है और उपासकगण ही इसका आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। भगवदनुग्रहसे अनन्त जन्मोंके अनन्तर किसी भाग्यशालीको ही इस मार्गपर आरूढ़ होनेका सौभाग्य प्राप्त होता है।

दूसरा जो अव्यक्त, अमूर्त, निराकार तथा निर्गुण शिव-तत्त्व है, वह तो अनिर्वचनीय है; उसके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु श्रुतिने इतना निर्देश कर दिया है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च॥

(श्वेता० उप० ६। ११)

एक ही परमेश्वर जो चैतन्य, केवल और निर्गुण है, सारे भूतोंमें गूढ़ और सबमें व्यापक है तथा सब भूत-प्राणियोंका अन्तरात्मा है वही कर्मोंके फलका देनेवाला तथा समस्त प्रपञ्चका निवासस्थान और साक्षी है। अथवा—

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।

(माण्डू० उप० ७)

इसका अर्थ स्पष्ट है। भगवान् शङ्कराचार्यने भी अपने 'सर्ववेदान्तसारसंग्रह' नामक ग्रन्थमें कहा है—

यस्येदं सकलं विभाति महसा तस्य स्वयंज्योतिषः
सूर्यस्येव किमस्ति भासकमिह प्रज्ञादि सर्वं जडम्।
न ह्यर्कस्य विभासकं क्षितितले दृष्टं तथैवात्मनो
नान्यः कोऽप्यनुभासकोऽनुभविता नातः परः कश्चन ६००
येनानुभूयते सर्वं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
विज्ञातारमिमं को नु कथं वेदितुमर्हति॥६०१॥

अर्थात् जिसके प्रकाशसे सारा ब्रह्माण्ड प्रकाशित हो रहा है उस सूर्यके समान स्वयंज्योति आत्माका प्रकाशक क्या कोई हो सकता है? क्योंकि प्रज्ञादि तो स्वयं जड होनेके कारण उसीसे प्रकाशित होते हैं। जैसे इस भूतलपर सूर्यका प्रकाशक दूसरा कोई दिखायी नहीं देता वैसे ही सूर्यको भी प्रकाशित करनेवाले उस आत्मदेवका भी कोई प्रकाशक नहीं है और न उसके सिवा कोई अनुभव करनेवाला ही है। 'जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिकालमें सारे पदार्थोंका अनुभव करता है उसे दूसरा कौन किसप्रकार अनुभव कर सकता है?' इत्यादि।

अव्यक्त शिव-तत्त्वका निरूपण वेद और शास्त्रोंमें इसी प्रकारका मिलता है। इसके आगे शास्त्र भी मौन हो जाते हैं। इस अव्यक्त शिव-तत्त्वके अवधारणका मार्ग विरक्त यतियों अर्थात् अहंग्रह-उपासकोंके लिये है, जनसाधारणके लिये नहीं; क्योंकि यह मार्ग अत्यन्त कठिन और दुर्गम है। भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है—

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।

ये दोनों मार्ग तुल्य महिमावाले हैं। जो अपनेको जिस योग्य देखे तथा जिस मार्गमें जिसकी श्रद्धा हो वह उसीपर आरूढ़ होकर वाञ्छित कल्याण-पदको प्राप्त कर सकता है।

अब प्रश्न यह होता है कि पूर्व-जन्मोंके अनन्त अशुभ अदृष्टों तथा मनकी भोग्य पदार्थोंमें रति-रूप नाना प्रतिबन्धकोंके विद्यमान रहते हुए मनुष्य उस पथपर कैसे आरूढ़ हो सकता है? कहा भी है—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥
(दुर्गासप्तशती १। ५५)

अथवा—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
(गीता ७। १४)

ऐसी दशामें इस शिव-तत्त्वको मनुष्य कैसे जान सकता है? इसका उत्तर यही हो सकता है कि जिसने हमपर माया-रूपी पर्दा डाला है उस त्रिलोकीनाथके चरणोंकी शरण लेनेसे ही छुटकारा हो सकता है, अन्य किसी प्रकारसे नहीं।

जिसप्रकार किसी मेस्मराइजर (Mesmeriser) की इच्छा-शक्ति (Current of will-power) के वशीभूत होकर प्रेक्षकगण उसकी इच्छाके अनुसार कार्य करते रहते हैं और उसकी इच्छाशक्तिरूप मायाको खींच लेनेपर वे स्वस्थ और सावधान हो जाते हैं, इसी प्रकार मनुष्य मायी महेश्वरकी माहेश्वरी मायाके वशवर्ती हुआ किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा है। वह इस मायाके चङ्गुलसे तभी छूट सकता है जब वह आशुतोष, परम मायावी, नटेश्वर श्रीउमानाथको उनकी पूजा, अर्चना तथा उपासनाद्वारा प्रसन्न करके उनके प्रसादका पात्र बन जाता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी गीतामें कहा है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(७। १४)

बस, इस मायाके पञ्जेसे छूटनेका एकमात्र उपाय उसी मायी परमेश्वरको येन केन उपायेन प्रसन्न करना ही है। उसको प्रसन्न करनेके लिये प्रतीक और अहंग्रह-उपासना—ये दो शास्त्रोक्त मार्ग हैं जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। कर्ममार्ग भी इस उपर्युक्त पूजा-अर्चनादि प्रतीकोपासनाके भीतर ही आ जाता है, इसलिये उसके पृथक् उल्लेखकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। शिव, विष्णु आदि प्रत्येक देवकी मूर्त, व्यक्त, प्रतीक या साकार-उपासना और पूजाका प्रकार वही है जो शास्त्रोंने निरूपण किया है; अर्थात् जिन-जिन विशेषणोंसे विशिष्ट जिस-जिस देवकी मूर्ति शास्त्रोंमें सुननेको मिलती है उन-उन विशेषणोंसे युक्त अपने-अपने उपास्यदेवका ध्यान करना और जिस-जिस प्रकारसे तथा जिस-जिस सामग्रीसे उसका पूजन और अर्चन करना लिखा है उस उस सामग्रीसे उसका पूजन और अर्चन करना प्रतीकोपासन और पूजार्चन कहलाता है। किसी कारणवश उपर्युक्त सामग्रीका अभाव होनेपर केवल हार्दिकभावसे भी मूर्त, व्यक्त ब्रह्मरूप शिवकी पूजा की जा सकती है; क्योंकि भगवान् तो केवल भावके भूखे हैं, न कि पदार्थोंके। यह प्रतीकोपासनका मार्ग प्राणिमात्रके लिये परम हितकर है।

अहंग्रह-उपासनाके अधिकारी जनसाधारण नहीं हो सकते, उनके लिये तो प्रतीकोपासना ही लाभदायक है। अहंग्रह-उपासनाका विधान तो शास्त्रमें प्रायः चतुर्थ-आश्रमारूढ़ यतियोंके लिये पाया जाता है और कहीं-कहीं उत्तम और उच्चकोटिके उपासक सद्‌गृहस्थोंके लिये भी इसका अधिकार शास्त्रमें देखनेको मिलता है।

सारांश यह कि यदि मनुष्यकी चित्तवृत्ति सांसारिक पदार्थोंकी ओर जाय तो व्यष्टिरूपेण उन पदार्थोंको श्रीमायी महेश्वरके शरीरके भिन्न-भिन्न अवयव, और समष्टि-रूपेण समग्र प्रपञ्चको उस मायोपाधिक, शरीरधारी विराट्-रूप, नटेश्वर शिवका शरीर समझना चाहिये। यदि किसी भाग्यशाली मनुष्यकी चित्तवृत्ति असम्प्रज्ञात-समाधिसे उत्थानके अनन्तर स्वयं अरूप, अव्यक्त 'शिवतत्त्व' में टिकने लग जाय तो व्यक्त शिवकी उपर्युक्त मायोपाधिका निरास करनेके अनन्तर शेष बचे हुए शुद्ध शिवरूपपर ब्रह्मका अपनी आत्माके साथ अभेद-चिन्तन करना ही उस

योगारूढ़ मनुष्यको शिवके परम-पदरूप कैवल्यका देनेवाला है। इस पदके प्राप्त हो जानेपर और किसी वस्तुका प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। क्योंकि—

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसञ्ज्वरेत्॥
(बृह० ४।४।१२)

—ऐसी वेदकी घोषणा है। यह आत्मतत्त्वका ज्ञाता सदा उस आनन्दका रसास्वादन करता है जिसका वर्णन निम्नलिखित पद्यमें किया गया है—

वाचः साक्षी प्राणवृत्तेश्च साक्षी
बुद्धेः साक्षी बुद्धिवृत्तेश्च साक्षी।
चक्षुःश्रोत्रादीन्द्रियाणाञ्च साक्षी
साक्षी नित्यः प्रत्यगेवाहमस्मि॥
(सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह श्लो० ८३६)

वह दिन-रात इसी आनन्दाम्बुधिमें बेसुध होकर निमग्न रहता है, इससे क्षणभरके लिये भी वियुक्त होनेको महान् अनर्थ और बड़ी हानि समझता है।

मनुष्यको उचित है कि येन केन उपायेन मायाके पङ्केसे छुटकारा पाकर शिवतत्त्वस्थितिरूप ब्रह्मात्मैकत्वके अनुभवको प्राप्त कर ले और फिर उससे मनको विचलित न होने दे। बस, यही कल्याणकारी मार्ग है। इसीको 'श्रेयपथ' तथा 'कैवल्य' कहते हैं। यही श्रीत्रिपुरारी, भव-भयहारी महादेवका परम पद है और इसीको 'शिवतत्त्व' कहते हैं। इसे जानकर मनुष्य सदाके लिये दुःखोंसे मुक्त हो जाता है और पुनः माताके गर्भमें नहीं आ सकता, वह स्वयं शिवरूप हो जाता है। श्रुति भी यही कहती है—

स सर्वपूतो भवति, स सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति, स सर्वैर्देवैरनुध्यातो भवति, आसप्तमान् पुरुषयुगान् पुनाति इत्याह भगवान् हिरण्यगर्भः। स सम्यग्ज्ञानं च लब्ध्वा शिवसायुज्यमवाप्नोति। न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते। (उपनिषद्)

बस यही शिवतत्त्व है। ॐ।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च, नमः शङ्कराय च मयस्कराय च, नमः शिवाय च शिवतराय च॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

शङ्कर-प्रणवरूप

(लेखक—स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी पुरी)

नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणवलिङ्गिने।
नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे च नमः पञ्चमुखाय ते॥

वेदोंमें भगवान् शङ्करका विशेष वर्णन है। यजुर्वेदके प्रधान देव भगवान् रुद्र हैं।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च, नमः शङ्कराय च मयस्कराय च, नमः शिवाय च शिवतराय च।
(यजुर्वेद अ० १६ मं० ४१)

भक्तोंको भोग-मोक्षरूप सुखके दाता, कल्याणरूप, कल्याणकारी शिवको नमस्कार है, इत्यादि। यजुर्वेदमें १६ वाँ अध्याय रुद्रकी महिमाका गान करनेके कारण ही 'रुद्राध्याय'के नामसे प्रसिद्ध है।

वेदोंके अतिरिक्त अनेक स्मृतियों तथा इतिहास-पुराणोंमें भी शङ्करके स्वरूपका अति स्पष्ट वर्णन पाया जाता है और स्कन्दपुराण, लिङ्गपुराणादिमें तो परमात्मा शिवका माहात्म्य तथा स्वरूप अति उत्तम रीतिसे वर्णित है। उनमें भगवान् शङ्करके अनेक रूपों तथा माहात्म्यका वर्णन है। परन्तु भगवान् शिवके प्रणव-स्वरूपका वर्णन जैसा शिव-पुराणमें स्पष्ट तथा विस्तृतरूपसे है वैसा अन्य किसी ग्रन्थमें नहीं मिलता, इसलिये यहाँ उक्त पुराणमें वर्णित भगवान् शङ्करके प्रणव-स्वरूप तथा उसके माहात्म्यकी कुछ आलोचना की जाती है।

एक समय भगवान् शङ्कर सुरम्य कैलाश-पर्वतके शिखर-पर भगवती पार्वतीके सहित विराजमान थे और दीक्षाविधि-के क्रमसे प्रणवादि महामन्त्रोंको देवीसे प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कर रहे थे, उस समय भगवती पार्वती पतिको प्रसन्न देखकर कहने लगीं—'हे देव! आपने मुझे प्रणवसहित मन्त्रका उपदेश दिया है, इस कारण मैं सर्वप्रथम प्रणव-स्वरूपको जानना चाहती हूँ। हे शिव! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो इसका अवश्य वर्णन कीजिये।' इस

प्रार्थनाको सुनकर भगवान् शङ्कर पार्वतीके प्रति कहने लगे—

"प्रणवार्थका परिज्ञान ही मेरे स्वरूपका ज्ञान है। प्रणवस्वरूप मन्त्र सब विद्याओंका बीज है, वह वटबीजके सदृश अति सूक्ष्म तथा महान् अर्थवाला है। यह वेदोंका आदि तथा सार है, एवं मेरा स्वरूप है। तीन गुणसे अतीत, सर्वज्ञ, सर्वस्रष्टा, सर्वप्रभु, सर्वगत, शिवस्वरूप मैं ही उस ॐकार-में स्थित हूँ, तीन गुणोंके न्यून-प्राधान्ययोगसे जगत्‌में जो कुछ वस्तु है वह समष्टि और व्यष्टिरूपसे प्रणवार्थ ही है। यह प्रणव सर्व अर्थका साधक है और अक्षर ब्रह्म है। इस कारण इसी प्रणवसे शिवजी सर्वप्रथम जगत्‌का निर्माण करते हैं। जो शिव है वही प्रणव है, जो प्रणव है वही शिव है; क्योंकि वाच्य और वाचकमें कोई भेद नहीं होता। इसीलिये ब्रह्मर्षिलोग मुझे एकाक्षर ॐकाररूप ब्रह्म कहते हैं। मुमुक्षुको चाहिये कि वह प्रणवको ही सर्वकारण, निर्विकार, निर्गुण शिवस्वरूप समझे।" (महाविष्णुपुराण कै० सं० अ० ३। १-९) भगवान् स्वामिकार्तिक ऋषि वामदेवसे कहते हैं—

"हे वामदेव! आपके स्नेहसे मैं आपके ज्ञानके लिये इस श्रुतिका तात्पर्य वर्णन करता हूँ, आप सुनें। शिवशक्तिका योग ही परमात्मा है (और वह परमात्मा ही आकाशादिके रूपमें परिणत होता है। जैसे उपादानकारण मृत्तिका अपनेसे अभिन्न घटरूप ग्रहण करती है, जैसे दुग्ध दहीके आकारमें बदल जाता है अथवा जैसे रज्जुरूप उपादान अज्ञानके कारण सर्पादि आकारमें परिणत हो जाता है, ऐसे ही ॐकारस्वरूप परब्रह्म पञ्चाकारमें परिणत होता है)। परमात्मा-की पराशक्तिसे चिच्छक्ति उत्पन्न होती है और चैतन्यशक्तिसे आनन्दशक्ति, उससे इच्छाशक्ति, इच्छाशक्तिसे ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्तिसे पञ्चमी क्रियाशक्ति उत्पन्न हुई है; और इन्हीं शक्तियोंसे क्रमशः जगत्‌की उत्पत्ति हुई है। चिदानन्दशक्तिसे नाद और बिन्दु उत्पन्न हुए हैं; इच्छाशक्तिसे मकार, ज्ञानशक्तिसे उकार और क्रियाशक्तिसे अकार-स्वर उत्पन्न हुआ है। इसप्रकार प्रणवकी सृष्टि हुई है और इस प्रणवसे पञ्चब्रह्मकी, तत्पश्चात् कलादि क्रमसे आकाशादिकी उत्पत्ति हुई है।" (कै० सं० अ० १६। ५३-५७) स्वामिकार्तिकेयने जिसप्रकार परमात्माकी पञ्चशक्तिसे प्रणवके अकारादि पञ्च-वर्णोंकी उत्पत्ति बतलायी है, ऐसे ही स्वयं भगवान् शङ्करने भी स्वीय पञ्चमुखसे प्रणवकी उत्पत्ति बतायी है। भगवान् शङ्कर ब्रह्मा-विष्णुसे कहते हैं—

'ॐकार मेरे मुखसे उत्पन्न होनेके कारण मेरे ही स्वरूपका बोधक है; यह वाच्य है, मैं वाचक हूँ; यह मन्त्र मेरा आत्मा है, इसका स्मरण करनेसे मेरा ही स्मरण होता है; मेरे उत्तरकी ओरके मुखसे अकार, पश्चिमके मुखसे उकार, दक्षिणके मुखसे मकार, पूर्वके मुखसे बिन्दु और मध्यके मुखसे नाद उत्पन्न हुआ है, इसप्रकार पाँचों मुखोंसे निर्गत हुए इन सबसे 'ॐ' यह एकाक्षर बना है। सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक जगत्, स्त्री-पुरुषादि भूतसमुदाय एवं चारों वेद—सभी इसी मन्त्रसे व्याप्त हैं और यह शिव-शक्तिका बोधक है।'

(विद्येश्वरसंहिता ८। १६-२०)

इसी प्रसङ्गमें भगवान् शङ्करने प्रणव-मन्त्रसे 'नमः शिवाय' मन्त्रकी भी उत्पत्ति बतायी है। यथा—

अस्मात् पञ्चाक्षरं जज्ञे बोधकं सकलस्य तत्।
अकारादिक्रमेणैव नकारादि यथाक्रमम्॥ २१॥

अर्थात् इसी प्रणवसे पञ्चाक्षरमन्त्र उत्पन्न हुआ है, अर्थात् अकारसे नकार, उकारसे मकार, मकारसे शि, बिन्दुसे वा, और नादसे यकार उत्पन्न हुआ है।

इसका नाम प्रणव क्यों है?

प्रो हि प्रकृतिजातस्य संसारस्य महोदधेः।
नवं नावान्तरमिति प्रणवं वै विदुर्बुधाः॥

(विद्ये० सं० अ० १७ श्लो० ४)

अर्थात् (प्र) प्रकृतिसे उत्पन्न हुए संसार-सागरके लिये (नवम्) यह प्रणव नौकारूप है, इस कारण पण्डितलोग इसे 'प्रणव' कहते हैं। अथवा—

प्रः प्रपञ्चो हि नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः।
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः॥ ५॥

(प्र) प्रपञ्च (न) नहीं है (वः) तुममें, अर्थात् जिसको जपनेसे संसार नहीं रहता उसका नाम 'प्रणव' है। अथवा—

(प्र) प्रकृष्टरूपसे (न) मोक्षको ले जाता है (वः) जपनेवाले तुमलोगोंको, इस कारण इसका नाम 'प्रणव' है। अथवा—

स्वजापकानां योगिनां स्वमन्त्रपूजकस्य च।
सर्वकर्मक्षयं कृत्वा दिव्यज्ञानं तु नूतनम्॥ ६॥

अर्थात् अपना पूजन करनेवालेको, उसके सर्व कर्म क्षय-कर, दिव्यज्ञान देनेसे यह 'प्रणव' कहलाता है। अथवा—

तमेव मायारहितं नूतनं परिचक्षते ।
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम् ॥ ७ ॥
नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्बुधाः ।

अर्थात् मायारहित होनेसे प्रणवको 'नूतन' कहते हैं, यह महात्माओंको अत्यन्त नवीन शुद्ध रूप प्रदान करता है । नूतन करनेवाला होनेके कारण पण्डितलोग इसे 'प्रणव' कहते हैं ।

स्वयं शिवजी भी कहते हैं-

ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु ।
प्राणः प्रणव एवायं तस्मात् प्रणव ईरितः ॥
(कै० सं० अ० ३ श्लो० १४)

अर्थात् ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियोंका यह प्रणव ही प्राण है, इससे इसको 'प्रणव' कहते हैं ।

हंस-मन्त्रमें प्रणवकी प्राप्ति

प्राणिमात्र श्वास-प्रश्वासमें हंस-मन्त्रका उच्चारण करते हैं । इस मन्त्रमें भी सदा प्रणवका ही जाप होता है, इस बातको भगवान् कार्तिकेय स्वामी वामदेवके प्रति कहते हैं—

प्रतिलोमात्मके हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम् ।
तव स्नेहाद् वामदेव ! सावधानतया शृणु ॥
व्यञ्जनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्जनात् ।
ओमित्येव भवेत् स्थूलो वाचकः परमात्मनः ॥
(कै० सं० अ० १६ । ३७-३८)

अर्थात् हे वामदेव ! हंस-मन्त्रके प्रतिलोम (विपरीत) 'सोऽहं' मन्त्रसे प्रणवकी प्राप्तिके विषयमें मैं तुमसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनो । व्यञ्जन (हल्) 'स' कार और 'ह' कारके वर्जनसे 'ॐ' इसप्रकार परमात्माका वाचक स्थूल अक्षर होता है ।

प्रणव तारक मन्त्र है

इस प्रणव-मन्त्रको 'तारक' मन्त्र कहा जाता है, क्योंकि इस मन्त्रद्वारा प्राणिमात्र भव-समुद्रसे तर जाते हैं । भगवान् शङ्कर कहते हैं—

एनमेवेहि देवेशि सर्वमन्त्रशिरोमणिम् ।
काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहेतवे ॥
(कै० सं० अ० ३ श्लो० १०)

अर्थात् 'हे देवि ! सर्व मन्त्रोंके शिरोमणि इस ॐकारको ही मैं काशीमें प्राणत्याग करनेवाले जीवोंको मुक्तिहेतु देता हूँ ।' स्वामिकार्तिकेय भी वामदेवके प्रति कहते हैं—

एनमेव महामन्त्रं जीवानाञ्च तनुत्यजाम् ।
काश्यां संश्राव्य मरणे दत्ते मुक्तिं परां शिवः ॥
(कै० सं० अ० १३ श्लो० ६२)

अर्थात् शिवजी काशीमें शरीर त्याग करनेवालेको मरते समय इसी महामन्त्रका उपदेश देकर मुक्त करते हैं ।

प्रणवका विषय

भगवान् शिवजी पार्वतीके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहते हैं—

विषयः स्यामहं देवि जीवब्रह्मैक्यभावनात् ।
(कै० सं० अ० ३ श्लो० ३६)

अर्थात् जीव-ब्रह्मकी एकभावनासे मैं (शिव) ही इसका विषय हूँ ।

स्वामि कार्त्तिकेय वामदेवसे कहते हैं—

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य शपथं प्रब्रवीमि ते ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥
प्रणवार्थः शिवः साक्षात् प्राधान्येन प्रकीर्तितः ।
श्रुतिषु स्मृतिशास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च ॥
(कै० सं० अ० १२ श्लो० ५-६)

अर्थात् मैं दक्षिण भुजा उठाकर शपथपूर्वक कहता हूँ कि यह सत्य है, सत्य है, सत्य है, प्रणव प्रधानतया साक्षात् शिवका ही वाचक कहा गया है । यही बात श्रुति-स्मृति, शास्त्र-पुराण और आगमोंमें भी बतलायी गयी है ।

इसके अधिकारी

अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्यं जायते दृढम् ।
(कै० सं० अ० ३ श्लो० ३५)

अर्थात् जिसे दृढ़ वैराग्य हो वही इसका अधिकारी है ।

शमादिधर्मनिरतो वेदान्तज्ञानपारगः ।
अत्राधिकारी स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सरः ॥६६॥

अर्थात् शम-दमादि धर्ममें निरत, वेदान्तज्ञानके पारगामी, मात्सर्यरहित, यत्नशील उपासक ही इसके अधिकारी हैं ।

सम्बन्ध

जीवात्मनो मया सार्धमैक्यस्य प्रणवस्य च ।
वाच्यवाचकभावोऽत्र सम्बन्धः समुदीरितः ॥
(कै० सं० अ० ३ श्लो० ३७)

अर्थात् प्रणव मेरी और जीवात्माकी एकताका वाचक है, अतः इस एकताका प्रणवके साथ वाच्य-वाचक-भाव-सम्बन्ध है।

प्रणवका स्थान

आधारो मणिपूरश्च हृदयं तु ततः परम् ।
विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात् ॥
स्थानान्येतानि देवेशि ! शान्त्यतीतं परात्परम् ॥
(कै० सं० अ० ३ श्लो० ३४-३५)

अर्थात् आधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धचक्र, आज्ञाचक्र, शक्ति और शान्ति, ये कलाक्रमसे प्रणवके स्थान हैं; हे देवि ! शान्तसे जो अतीत है उसको 'परात्पर' कहते हैं।

उपासना-विधि

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशोकं विशदं परम् ।
अष्टपत्रं केशराढ्यं कर्णिकोपरि शोभितम् ॥
आधारशक्तिमारभ्य त्रितत्त्वान्तमयं पदम् ।
विचिन्त्य मध्यतस्तस्य दहरं व्योम भावयेत् ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मां त्वया सह ।
चिन्तयेन्मध्यतस्तस्य नित्यमुद्युक्तमानसः ॥
(कै० सं० अ० ३ श्लो० ६७,६८, ८९)

अर्थात् उपासक स्वच्छ, शोकरहित, उज्ज्वल, अष्टदल कमलके समान मकरन्दयुक्त, कर्णिकासे शोभायमान हृदय-कमलके मध्यमें आधार-शक्तिसे आरम्भ करके त्रितत्त्वमय उत्तम पदका ध्यान करके दहरव्योमकी भावना करे। 'ॐ' इस एकाक्षर ब्रह्मका उच्चारण कर तुम्हारे साथ मेरा दहराकाशके बीचमें सदा उत्कण्ठासे चिन्तन करे।

उपासनाका फल

एवंविधोपासकस्य मल्लोकगतिमेव च ।
मत्तो विज्ञानमासाद्य मत्सायुज्यफलं प्रिये ॥

अर्थात् हे प्रिये ! इसप्रकार उपासना करनेवालेको मेरे लोककी गति प्राप्त होती है और मुझसे ज्ञान प्राप्तकर वह मेरे ही सायुज्यको प्राप्त हो जाता है।

जप-विधि

ॐ अस्य श्रीप्रणवमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, परमात्मा सदाशिवो देवता, अं बीजम्, उं शक्तिः, मं कीलकम्, मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः ।

प्रयोग

शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः । मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि परमात्मने देवतायै नमः । गुह्ये अं बीजाय नमः । पादयोः उं शक्तये नमः । नाभौ मं कीलकाय नमः । सर्वाङ्गे मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः ।

करन्यास

अं अंगुष्ठाभ्यां नमः । उं तर्जनीभ्यां नमः । मं मध्यमाभ्यां नमः । अं अनामिकाभ्यां नमः । उं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । मं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अङ्गन्यास

अं ब्रह्मणे हृदयाय नमः । उं विष्णवे शिरसे स्वाहा । मं रुद्राय शिखायै वषट् । अं ब्रह्मणे कवचाय हुम् । उं विष्णवे नेत्रत्रयाय वौषट् । मं रुद्राय अस्त्राय फट् ।

ध्यान

ॐकारं निगमैकवेद्यमनिशं वेदान्ततत्त्वास्पदं
चोत्पत्तिस्थितिनाशहेतुममलं विश्वस्य विश्वात्मकम् ।
विश्वत्राणपरायणं श्रुतिशतैः सम्प्रोच्यमानं प्रभुं
सत्यं ज्ञानमनन्तमूर्तिममलं शुद्धात्मकं तं भजे ॥

नमस्कार

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदञ्चैव ॐकाराय नमो नमः ॥

प्रणव-जपका फल

महर्षि पतञ्जलिने कहा है—

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।

अर्थात् प्रणवके जपसे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति तथा सारे विघ्नोंका नाश होता है।

भगवान् शङ्कर ब्रह्मा-विष्णुसे कहते हैं—

तत्तन्मन्त्रेण तत्सिद्धिः सर्वसिद्धिरितो भवेत् ।
(वि० सं० अ० १० श्लो० २३)

अनेन मन्त्रकन्देन भोगो मोक्षश्च सिद्ध्यति ।

सकला मन्त्रराजानः साक्षाद् भोगप्रदाः शुभाः ॥

अर्थात् उस-उस मन्त्रसे वह-वह सिद्धि होती है, किन्तु प्रणव-मन्त्रसे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । यह सकल मन्त्रोंका मूल है और भोग-मोक्ष दोनोंका देनेवाला है ।

वेदादौ च प्रयोज्यं स्याद्वन्दने सन्ध्ययोरपि ।
नवकोटिजपाञ्जप्त्वा संशुद्धः पुरुषो भवेत् ॥
(विद्ये० सं० अ० १७ श्लो० १८)

पुनश्च नवकोट्या तु पृथिवीजयमाप्नुयात् ।
पुनश्च नवकोट्या तु ह्यपां जयमवाप्नुयात् ॥१९॥
पुनश्च नवकोट्या तु तेजसां जयमाप्नुयात् ।
पुनश्च नवकोट्या तु वायोर्जयमवाप्नुयात् ।
आकाशजयमाप्नोति नवकोटिजपेन वै ॥२०॥
गन्धादीनां क्रमेणैव नवकोटिजपेन वै ।
अहङ्कारस्य च पुनर्नवकोटिजपेन वै ॥२१॥
सहस्रमन्त्रजप्तेन नित्यं शुद्धो भवेत् पुमान् ।
ततः परं स्वसिद्ध्यर्थं जपो भवति हि द्विजाः ॥२२॥
एवमष्टोत्तरशतकोटिजप्तेन वै पुनः ।
प्रणवेन प्रबुद्धस्तु शुद्धयोगमवाप्नुयात् ॥२३॥
शुद्धयोगेन संयुक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः ।
सदा जपन् सदा ध्यायञ्छिवं प्रणवरूपिणम् ॥२४॥
समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः ॥२५॥

अर्थात् वेदके आदिमें तथा दोनों कालके सन्ध्या-वन्दनमें भी ओङ्कारका प्रयोग करना चाहिये । नौ करोड़ जप करनेसे पुरुष शुद्ध हो जाता है । फिर नौ करोड़ जप करनेसे पृथिवी-तत्त्वका जय होता है । इसी प्रकार नौ-नौ करोड़से क्रमशः जल, अग्नि, वायु एवं आकाश-तत्त्वका जय होता है । पश्चात् नौ-नौ करोड़से क्रमशः पञ्च-तन्मात्राओं तथा अहङ्कार-तत्त्वका जय होता है । नित्य सहस्र मन्त्र जपनेसे पुरुष शुद्ध रहता है, फिर इससे अधिक जप आत्मज्ञानकी सिद्धिके लिये होता है । इसप्रकार १०८ करोड़ जप करनेसे पुरुष प्रबुद्ध होकर शुद्ध योगको प्राप्त होता है और शुद्ध योगसे निःसन्देह जीवन्मुक्त हो जाता है ।

प्रणवरूप शिवका सदा जप और ध्यान करनेवाला महायोगी समाधिमें स्थित होकर शिवरूप हो जाता है ।

इति शम्

अत्रि और त्रिदेव

अपने पिता ब्रह्माजीसे प्रजोत्पादनकी आज्ञा प्राप्तकर महर्षि अत्रि अपनी धर्मपत्नी, सतीशिरोमणि देवी अनसूयाको साथ लेकर कुलाद्रि ऋक्षपर्वतपर तपस्याके निमित्त गये । वहाँ जाकर उन्होंने सौ वर्षतक एक पैरपर खड़े रहकर, केवल वायुभक्षणकर, मनोनिग्रहके लिये प्राणायामका साधन किया और यह सङ्कल्प किया कि जो कोई इस संसारके स्वामी हैं वे कृपाकर मुझे अपने ही समान पुत्ररत्न प्रदान करें, मैं उन्हींकी शरण हूँ । उनकी घोर तपस्याके प्रभावसे ऋषिके मस्तकमेंसे एक अग्नि प्रादुर्भूत हुई जो प्राणायामसे वृद्धिको प्राप्तकर समस्त त्रिलोकीको सन्तप्त करने लगी । यह देखकर जगत्के तीनों अधीश्वर—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर—ऋषिके आश्रममें एक साथ पहुँचे । उनके प्रकट होते ही ऋषिका अन्तःकरण उद्भासित हो गया, और ज्यों ही उन्होंने आँखें खोलीं तो क्या देखते हैं कि तीनों देवता अपने-अपने वाहनों—हंस, गरुड़ एवं वृषभके साथ अपने-अपने चिह्नोंको धारण किये हुए ऋषिके सामने उपस्थित हैं । ऋषि तुरन्त भूमिपर लोट गये और दण्डवत्-प्रणाम करके उन्होंने तीनोंकी विधिवत् पूजा की । किन्तु वह अधिक देरतक उनके प्रकाशको न सह सके, अतः नेत्र मूँदकर तीनोंका ध्यान करते हुए हर्ष-गद्गद् एवं पुलकित होकर, हाथ जोड़ स्तुति करने लगे और बोले—मैंने तो सन्तानकी कामनासे आपलोगोंमेंसे केवल एकका ही स्मरण किया था, अहोभाग्य मेरे कि आप तीनोंने ही मुझ दीनपर अनुग्रह किया । इसपर तीनों देवता एक साथ बोल उठे—'मुनिवर्य ! तुम्हारे सत्-सङ्कल्पका ही यह फल है कि हम तीनोंको तुम्हारे पास आना पड़ा । तुम जिस तत्त्वका ध्यान करते थे वह हम तीनों ही हैं । 'यद्वै ध्यायति ते वयम्' अर्थात् स्वरूपसे हम तीन हैं, तत्त्वतः एक ही हैं ।' इतना कहकर और मुनिको इच्छित वर देकर तीनों देव अन्तर्धान हो गये । समय पाकर अनसूयाजीके ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय और महादेवके अंशसे सुलभकोप महर्षि दुर्वासा उत्पन्न हुए । इस इतिहाससे त्रिदेवोंकी अभिन्नता सिद्ध होती है । (श्रीमद्भागवतसे)

शिव-सूत्र-विमर्श

(लेखक—पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी, साहित्यरत्न)

हिमगिरितनयाकान्तं शशधरकलिकोत्तंसम् । स्थितिलयजनिकर्त्तारं प्रणमत वरदं देवम् ॥

—श्रीभट्ट भास्कराचार्य

वाधिदेव, भूतभावन, भवानीपति भगवान् शङ्कर जिस अपूर्व योगके प्रवर्तक माने जाते हैं, वह 'लययोग' के नामसे प्रसिद्ध है। कालक्रमसे योग-साधनकी प्रणाली इस धर्मप्राण भारतभूसे विलीन-सी होती जान पड़ती है। सद्‌गुरुकी प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ हो गयी है। योग-साधनके जिज्ञासुओंको यथार्थ मार्गदर्शकके अभावमें मन मसोसकर रह जाना पड़ता है। क्या किया जाय, कोई चारा नहीं है। योगकी विभूति तथा साधन-पथका जो उल्लेख योगशास्त्रके ग्रन्थोंमें मिलता है उसे पढ़कर हृदयमें उमङ्ग और अनुत्साह एक साथ ही उत्पन्न हो उठते हैं। तथापि यह निर्विवाद है कि जो पुरुष जिस वस्तुका अधिकारी होता है वह उसे अवश्य मिलती है, अतः इस गये गुज़रे ज़मानेमें भी सद्‌गुरुकी प्राप्ति दुर्लभ होते हुए भी सम्भव है। खोजी पुरुषको लययोगके भी पथ-प्रदर्शक मिल सकते हैं, आवश्यकता है केवल अधिकारी बननेकी। यह लययोग क्या है, इसका किञ्चित् दिग्दर्शन इस लेखमें कराना है।

शाम्भवोपाय

लययोगकी रूप-रेखाका किञ्चित् आभास हमें शिव-सूत्रोंमें मिलता है। स्थान और समयके अभावके कारण इसकी विस्तारपूर्वक विवेचना न कर केवल संकेतमात्रसे मूल-सिद्धान्तका निदर्शन किया जाता है, पाठकोंकी सुविधाके लिये पाद-टिप्पणीमें सूत्रोंका भी अवतरण साथ-साथ दिया जाता है।

आत्मा—शरीर, प्राण, मन, इन्द्रियाँ अथवा इनके संघातको 'आत्मा' नहीं कहते; आत्मा तो चैतन्य ही है, जिसमें ये सब प्रतिभात होते हैं।[1] यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यदि आत्मा चैतन्य है तो वह इस बन्धनमें क्यों है? यह बन्धन ही क्या वस्तु है? इसका उत्तर यह है कि मन और इन्द्रिय-प्रणालीके द्वारा जो ज्ञान इसको हो रहा है, वह बन्धन है।[2] इस ज्ञानके निवृत्त होनेसे वह बन्धन भी निवृत्त हो जाता है। वे बन्धन तीन प्रकारके मल हैं—एक तो योनि अर्थात् मायासे उत्पन्न (वर्ग) भेदात्मक पृथिवी आदि पञ्चभूतात्मक विस्तार, दूसरा भोग प्रदान करनेवाले[3] संस्कार (कला) और तीसरा पुण्यपापात्मक शरीर। ये तीन प्रकारके बन्धन ही ज्ञान हैं,[4] इनका अधिष्ठान अर्थात् आधार मातृका (शब्दमय) है; कहा भी है—

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन गम्यते ॥

तात्पर्य यह है कि 'संसारमें कोई भी प्रत्यय, कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं जो शब्दानुगमसे हीन हो। सब प्रकारके ज्ञान मानो शब्दमें लिप्त हुए जान पड़ते हैं।' मैं अपूर्ण हूँ, मैं दुर्बल हूँ, मैं अज्ञानी हूँ, मैं सुखी हूँ—इसप्रकारके शब्दानुवेधसे ही शोक-हर्ष उत्पन्न करनेवाले ज्ञान होते हैं जो बन्धनरूप हैं। इस बन्धनसे छूटनेके लिये जो पूर्णाहंभावनात्मक तथा इन विकल्पोंका नाशक अन्तःस्पन्द (उद्यम) होता है वह 'भैरव' कहलाता है।[5] इसप्रकारके उद्यम (भैरव) में एक महती शक्ति होती है, उस सर्वतः प्रसरित शक्तिके सन्धानसे स्वसंविद् (चैतन्यमात्र) की अग्निमें विश्वका संहार हो जाता है।[6] जिस योगीको यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है, उसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिके भेदमें भी तुर्याभोग अर्थात् परानन्दकी ही अनुभूति होती है।[7] इनमें 'जाग्रत्' तो इन्द्रियजन्य बाह्य ज्ञानको कहते हैं;[8] अपने आत्मामें अपनेहीसे जो विकल्प होते हैं वह 'स्वप्न' हैं;[9] तथा जिसमें अपना ही बोध न हो ऐसा मायात्मक अविवेक (मोह) ही 'सुषुप्ति' है।[10] इन तीनों अवस्थाओंमें जो अभेदभावात्मक[11] तुर्यानन्दरसका आस्वादन करता है वह 'वीरेश' कहलाता है; क्योंकि वीरोंको भी भेदरूप बन्धनमें डालनेवाली तथा बाहर-भीतर प्रसरण करनेवाली इन्द्रियोंका वह अधीश्वर है। कहा भी है—

प्रथमोन्मेष—१ चैतन्यमात्मा । २ ज्ञानं बन्धः ।

३ योनिवर्गः कलाशरीरम् । ४ ज्ञानाधिष्ठानं मातृका । ५ उद्यमो भैरवः । ६ शक्तिचक्रसन्धाने विश्वसंहारः । ७ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभेदे तुर्याभोग-(संवित्) सम्भवः । ८ ज्ञानं जाग्रत् । ९ स्वप्नो विकल्पाः । १० अविवेको माया सौषुप्तम् । ११ त्रितयभोक्ता वीरेशः ।

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः ।
विद्यात्तदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते ॥

'जाग्रदादि तीनों धामोंमें जो भोग्य है तथा जो इनका भोक्ता है, इन दोनोंको जाननेवाला भोगता हुआ भी लिप्त नहीं होता ।'

जिसप्रकार किसी मनुष्यको अत्यन्त आनन्द होनेसे विस्मय होता है, उसी प्रकार इस योगीको जब निरन्तर अद्भुत परानन्दकी अनुभूति होती है तब उसे इस अपनी आत्मामें ही तृप्तिके प्राप्त होनेसे विस्मय होता है और यह योगकी भूमिका है[१२]। इसप्रकारके विस्मयरूप योगकी भूमिकामें आरूढ़ योगीकी इच्छा-शक्ति उमा है[१३], उसे कुमारी भी कहते हैं; क्योंकि वह 'कुं' अर्थात् महामायाकी भूमिको मारनेवाली है। यह कुमारी भैरवात्मा योगीके ही भोगनेयोग्य है । इस इच्छा-शक्तिसे युक्त योगीका अखिल दृश्य ही शरीर बन जाता है[१४], तथा विश्वका महान् आयतन उसका हृदय बन जाता है। इसमें चित्तके सङ्घट्टसे जो नाना दृश्य होते हैं वे उसे स्वप्नवत् दीख पड़ते हैं[१५]।

इसी प्रकार प्रपञ्चमें शुद्ध तत्त्वकी (शिवात्मक) भावना करनेसे भी बन्धनात्मक पशु-शक्ति नष्ट हो जाती है[१६] तथा योगी सदाशिवके समान जगत्पति बन जाता है। इसप्रकारका योगी आत्मज्ञानके लिये 'मैं विश्वात्मा शिव ही हूँ' ऐसा वितर्क (चिन्तन) करता है[१७]। इसप्रकार योगी लोकमें अपनेको ही दृश्य, दर्शन और द्रष्टारूपमें देखता हुआ 'मैं ही सब हूँ' इसप्रकारके लोकानन्दमें समाधिसुखको प्राप्त होता है[१८]। कहा भी है—

ग्राह्यग्राहकसंवित्तिः सामान्या सर्वदेहिनाम् ।
योगिनां तु विशेषोऽयं सम्बन्धे सावधानता ॥

अर्थात् ग्राह्य और ग्राहककी संवित्ति (प्रत्यय) तो सामान्यतः सभी प्राणियोंको होती है,परन्तु योगी इस सम्बन्धमें सावधानतापूर्वक सदा आत्मभाव रखता है ।

ऊपर जिस इच्छा-शक्ति उमा—कुमारीका उल्लेख हम कर चुके हैं, उसके सन्धानसे जब योगीकी भावना तन्मयी हो जाती है तब वह उसके द्वारा अपनी इच्छानुसार शरीर उत्पन्न करता है[१९]। ऐसा योगी भूतसन्धान अर्थात् पञ्चभूतोंमें आत्मभाव कर लेता है, जिससे यह उसके लिये आवरणरूप नहीं रहते; भूतोंके पृथक्त्वसे नाना प्रकारकी व्याधियों और क्लेशोंको क्षणभरमें शान्त करता है तथा विश्व-सङ्घट्टन अर्थात् यौगिक शक्तिसे नवीन विश्वका निर्माण कर सकता है[२०]।

जब परिमित सिद्धिकी इच्छा न कर योगी विश्वात्मरूप 'परासिद्धि' की इच्छा करता है, तब 'अखिल विश्व मैं ही हूँ' इसप्रकारकी बुद्धि (शुद्ध निर्मला विद्या) के उदयसे उसे 'महैश्वर्य' (चक्रेशत्व) की सिद्धि होती है[२१]। जैसे—

ईश्वरो बहिरुन्मेषो निमेषोऽन्तः सदाशिवः ।
सामानाधिकरण्यं च सद्विद्याहमिदं धियोः ॥

बहिरुन्मेषरूप ईश्वर तथा अन्तर्निमेषरूप सदाशिवका सामानाधिकरण्य अर्थात् 'यह सब मैं ही हूँ' इसप्रकारकी बुद्धि ही सद्विद्या है।

जब योगी इस विश्वात्मक अवस्थासे उत्तीर्ण होकर स्वात्माराम हो जाता है, तब देश-कालादिसे अपरिच्छिन्न, जगद्व्यापी महाह्रदके अनुसन्धानसे पूर्णाहन्तारूप मन्त्रवीर्यका उसे अनुभव होता है[२२]।

शाक्तोपाय (द्वितीयोन्मेष)

प्रथम उन्मेषमें बतलाया गया है कि शक्ति मन्त्र-स्वरूपा है। अब मन्त्रका स्वरूप बतलाया जाता है । जिससे आत्मतत्त्वका चिन्तन होता है उसे 'चित्त' कहते हैं[१] और वही स्वस्वरूपके मननके कारण 'मन्त्र' कहलाता है। इस मन्त्रके अनुसन्धानमें जो अन्तःप्रयत्न है वह 'साधक' है[२]। परम अद्वैतसंवेदन-रूपी विद्याका शरीर अखिल शब्दराशि है, उसकी अल्पाहन्ता और पूर्णाहन्तास्वरूपी सत्ता है[३]। इसका स्फुरण ही मन्त्रकी गुप्तार्थताका उत्पादक रहस्य है । इसप्रकारका मन्त्र-वीर्य, जिसका ऊपर महाह्रदके अनुसन्धानके रूपमें वर्णन हो चुका है, महेश्वरकी इच्छासे ही हृदयङ्गम हो सकता है।

'गर्भ' अर्थात् महामायामें चित्तका विकास अशुद्धा

१२ विस्मयो योगभूमिका । १३ इच्छाशक्तिरुमा कुमारी । १४ दृश्यं शरीरम् । १५ हृदये चित्तसङ्घट्टाद् दृश्यस्वापदर्शनम्। १६ शुद्धतत्त्वसन्धानाद्वाऽपशुशक्तिः । १७ वितर्क आत्मज्ञानम् । १८ लोकानन्दः समाधिसुखम् । १९ शक्तिसन्धाने शरीरोत्पत्तिः । २० भूतसन्धानभूतपृथक्त्वविश्वसङ्घट्टाः । २१ शुद्धविद्योदयाचक्रेशत्वसिद्धिः । २२ महाह्रदानुसन्धानान्मन्त्रवीर्यानुभवः ।
द्वितीयोन्मेष—१ चित्तं मन्त्रः । २ प्रयत्नः साधकः । ३ विद्या-

(अविशिष्ट) विद्या है, वह स्वप्न-स्वरूपी अर्थात् विकल्प-प्रत्ययात्मिका है[४]। शङ्करकी इच्छासे जो परमाद्वैत-संवेदन-स्वरूप स्वाभाविक समुत्थान होता है वह सम्पूर्ण स्वानन्द-को उच्छ्वासित करनेवाली खेचरी मुद्रा अर्थात् शिवावस्था है[५]। मुद (आनन्द) प्रदान करनेके कारण यह 'मुद्रा' कहलाती है तथा आकाश (खे) मात्रमें विचरण करनेके कारण इसका 'खेचरी' नाम है। यह मुद्रा विश्वोत्तीर्ण-स्वरूप योगीको सम्यक्‌रूपसे अनुभूत होती है।

इसप्रकारके मन्त्र और मुद्राकी प्राप्तिके लिये जो उपदेश करता है (गृणात्युपदिशतीति गुरुः) वह गुरु ही इनकी प्राप्तिका उपाय है[६]। उस गुरु अर्थात् ईश्वरानुग्रहात्मिका पराशक्तिकी प्रसन्नतासे पूर्वोक्त 'मातृकाचक्र'का सम्यक् ज्ञान होता है[७]। इसप्रकारके अनुगृहीत योगीके स्थूल और सूक्ष्मादि शरीर चिदग्निकी आहुति बन जाते हैं[८]। तब बोधका ऊर्ध्व प्रकाश प्रज्वलित हो उठता है और योगीके पूर्वोक्त तीन प्रकारके ज्ञानरूप बन्धन अन्न (अग्निका भक्ष्य) हो जाते हैं[९]। जब परमाद्वैतानुभवरूप विद्याका संहार (अनुत्थान) होता है तब भेदनिष्ठ स्वप्न (विकल्प) का दर्शन होने लगता है[१०], इसलिये शाश्वत योगी विद्याके अवधानमें ही सदा लिप्त रहता है।

आणवोपाय (तृतीयोन्मेष)

उपर्युक्त दो उन्मेषोंमें शम्भु और शक्ति-सम्बन्धी कुछ विवेचना हुई। अब आत्मामें अनात्मा (देह-बुद्धि आदि) तथा अनात्मामें आत्माका भान करानेवाले अणुस्वरूप आत्मा-का विवेचन किया जाता है। विश्वस्वभावभूत आत्मा ही सङ्कुचितरूपमें बुद्धि-क्रियाके साथ चित्त बनता है[१]। इस सङ्कुचितरूप अर्थात् बन्धनका कारण भेदाभासरूप ज्ञान है[२]। चित्तमें भौतिक तत्त्वों (कलाओं) का अविवेक मायाके कारण होता है[३]। अतः योगी इस मायाके प्रशमनार्थ पञ्च-भूतात्मक स्थूल और सूक्ष्म तत्त्वोंको अपने संवित्-शरीर-रूपी अग्निमें नष्ट (संहार) कर देते हैं[४]। इसप्रकारके साधनमें लगनेवाला योगी संहारके उपायोंका प्रयोग करता है, वह प्राणके संयम (प्राणायाम) के द्वारा प्राणादिवाहिनी नाडियों-का संहार कर तन्मय हो जाता है अथवा उन्हें आत्ममय कर लेता है[५]। तब उसे भूतजय, भूतकैवल्य और भूतपृथक्त्वकी शक्ति प्राप्त हो जाती है।* शाम्भवोपाय और आणवोपाय—दोनोंके द्वारा प्राप्त होनेवाली एक ही प्रकारकी सिद्धिमें अन्तर यही है कि आणवोपायमें सिद्धि प्रयत्नतः होती है और शाम्भवोपायमें बिना प्रयत्नके। इसप्रकार देहशुद्धिसे लेकर समाधिपर्यन्त साधनके पश्चात्[६] जो सिद्धि होती है वह मोहावरणसे होती है, आत्मज्ञानसे नहीं।

योगी जब मोहको (निजाख्यातिको) जीत लेता है तब अनन्त उद्यमरूपी सूर्यके प्रकाशका विस्तार होता है[७] और इस आत्मप्रकाशके द्वारा सहज विद्याकी प्राप्ति होती है। उस पूर्णाहन्तारूपी स्वयंप्रकाशकी सतत चैतन्य (जाग्रत्) द्वितीय किरण है[८]। इसप्रकारका आत्मा स्वेच्छासे स्वात्म-चित्‌रूपी आधारपर स्वपरिस्पन्द-लीलासे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूपी अपनी भूमिकामें नृत्य करता हुआ[९] आभासित होनेके कारण 'नर्तक' कहलाता है। इसप्रकार नाट्य करनेवाले योगीके भूमिका ग्रहण करनेका स्थान (रंगभूमि) स्वयं अन्तरात्मा जगद्‌गुरु है[१०]। इन्द्रियाँ दर्शक हैं[११]। इसप्रकार इन्द्रिय-व्यापारको देखनेवाला योगी तात्त्विक चिद्रूप मति (धी) के वश सत्त्व (स्पन्दके अन्दर रहनेवाली) सिद्धिको प्राप्त होता है[१२]। इस सिद्धिसे युक्त (सिद्ध) पुरुष स्वतन्त्र हो जाता है[१३], उसे अखिल विश्वको स्ववश करनेकी क्षमता प्राप्त होती है। वह जैसे अपने देहमें वैसे ही अन्य देहोंमें भी स्वात्मानन्दकी अनुभूति करता है[१४]।

इसप्रकारके योगीको भी अनवधान कभी नहीं करना चाहिये बल्कि विश्वके कारणरूप बीजमें चित्तको बारम्बार

शरीरसत्तामन्त्ररहस्यम्। ४ गर्भे चित्तविकासोऽविशिष्टविद्या-स्वप्नः। ५ विद्यासमुत्थाने स्वाभाविके खेचरी शिवावस्था। ६ गुरुरुपायः। ७ मातृकाचक्रसम्बोधः। ८ शरीरं हविः। ९ ज्ञानमन्नम्। १० विद्यासंहारे तदुत्थस्वप्नदर्शनम्।

तृतीयोन्मेष—१ आत्मा चित्तम्। २ ज्ञानं बन्धः। ३ कलादीनां तत्त्वानामविवेको माया। ४ शरीरे संहारः कलानाम्। ५ नाडीसंहारभूतजयभूतकैवल्यभूतपृथक्त्वानि। ६ मोहावरणात् सिद्धिः। ७ मोहजयादनन्ताभोगात् सहजविद्याजयः। ८ जाग्रद् द्वितीयकरः। ९ नर्तक आत्मा। १० रङ्गोऽन्तरात्मा। ११ प्रेक्षकाणीन्द्रियाणि। १२ धीवशात् सत्त्वसिद्धिः। १३ सिद्धः स्वतन्त्रभावः। १४ यथा

* इस सिद्धिका वर्णन शाम्भवोपाय–प्रथमोन्मेषमें देखिये।

लगाना (अवधान करना) चाहिये।[१५] परशक्तिमें सदा सावधान रहनेवाला योगी आसनस्थ ही परानन्दरूपी संवित्सिन्धुमें (ह्रदमें) सुखसे निमज्जित—तन्मय होता रहता है।[१६] इसप्रकार आणवोपायसे प्राप्त शाक्तावेशके प्रकर्षसे योगी शाम्भव वैभवको प्राप्त हुआ स्वेच्छासे स्वमात्राका निर्माण कर सकता है,[१७] अर्थात् बुद्धि-क्रियासे युक्त चित्का निर्माण-कर उसे देख सकता है। जब यह सहजा विद्या सदा उदित रहती है तब पुनर्जन्मादिका सम्बन्ध नष्ट हो जाता है।[१८]

जब शुद्ध विद्याके स्वरूपमें योगी निमज्जित होने लगता है तब उसे मोहनेके लिये अनेकों शक्तियाँ उठती हैं। इनमेंसे कवर्गादिमें अधिष्ठित माहेश्वरी आदि शक्तियाँ तत्तत्प्रत्यय भूमिमें आविष्ट होकर प्रमाताओं (पशुओं) को तत्तच्छब्दानुवेधसे मोहनेके कारण (पशुमाता) कहलाती हैं।[१९]

इसलिये शुद्धा विद्याके प्राप्त होनेपर भी अनवधान होना योगीके लिये कदापि ठीक नहीं है; उसे तो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, तीनोंमें चौथी—तुरीयाको सदा ही आसेचन करना चाहिये,[२०] तुरीयानन्दमें स्वचित्त अर्थात् स्वसंवित्में प्रवेश करना चाहिये।[२१] ऐसे योगीका प्राण जब सम्यक्रूपसे प्रसरित होता है तो उसे सब अवस्थाओंमें सम्यक् अभेद-दर्शन होता है।[२२] जो योगी तुर्यावस्थाको प्राप्त होकर तुर्यातीत अवस्थामें नहीं पहुँचता उस मध्यमें स्थित योगीको कुत्सित (अवर) सृष्टिमें (प्रसवमें) पड़ना होता है।[२३] अतएव रूपादि पदार्थों (मात्राओं) में स्वप्रत्ययका सन्धान (तादात्म्यका अनुभव) करते हुए नष्ट तुर्यानन्दको पुनः-पुनः उठाना चाहिये।[२४] इसप्रकारके उद्यममें जब सम्यक् उन्नति होती है तब योगी शिवतुल्य हो जाता है।[२५] वह—

अन्तरुल्लसदच्छाच्छभक्तिपीयूषपोषितम्।
भवत्पूजोपयोगाय शरीरमिदमस्तु मे॥

अर्थात् 'अन्तःआनन्दसे उल्लसित, भक्ति-सुधासे परिपोषित यह शरीर तुम्हारी पूजाके उपयोगमें ही लगा रहे, इसकी कदापि तुच्छ धारणा न हो'—इसप्रकारकी शरीरवृत्तिका व्रत करता है।[२६] ऐसे योगीकी, जो बार-बार परम भावसे भावित होता रहता है, बातचीत ही जप है।[२७] वह अपने परिपूर्ण स्वरूपको, शिवात्मज्ञानको दानरूपमें वितरण करता है।[२८] उसकी माहेश्वर्यादि शक्तियाँ 'अवीन् पशुजनान् पातीत्यविपं शक्तिमण्डलम्'-कवर्गादिकी अधिष्ठात्री देवियाँ बन जाती हैं और वह स्वयं ज्ञानशक्तिका कारण बन जाता है।[२९] उसकी स्वशक्ति—आत्म-संवेदनका स्फुरणरूप विकास (प्रचय) ही विश्व हो जाता है।[३०] उसमें चिन्मय अहंताकी स्थिति तथा आत्म-विश्रान्तिरूप लय भी होता है।[३१] ये विकास और सङ्कोच स्वशक्तिके विकाससे 'आत्म-संवित्'में ही होते हैं।

यहाँ यह शङ्का की जा सकती है कि सृष्टि, स्थिति, ध्वंसमें इनके अन्योन्य-भेदसे योगीके स्वस्वरूपमें अन्यथा भाव आ सकता है। इसका उत्तर यह है कि सृष्ट्यादि भावोंमें प्रवृत्त होते हुए भी वह योगी स्वसंवित्से कदापि च्युत (निरास) नहीं होता है।[३२] उसे लोकवत् सुख-दुःखका अन्तःसंवेदन नहीं होता, वह तो नील-पीतादिके समान इनका बहिर्मनन करता है।[३३]

सुख-दुःखसे मुक्त, संस्कारोंसे अस्पृष्ट योगी 'केवली' (चिन्मय) कहलाता है।[३४] मोह (ख्याख्याति) से प्रतिसंहत—संयुक्त हुआ वही 'कर्मात्मा' बनता है।[३५] देह-प्राणादिमें अहन्ता-रूपी भेदके तिरस्कारसे सर्गान्तरमें कर्मत्वकी प्राप्ति होती है।[३६] स्वतः स्वानुभवमें सतत लगे रहनेपर सृष्टि योगीकी करण-शक्ति बनी रहती है।[३७] वह अपनी दृढ़ भावनासे स्वप्न-सङ्कल्पके समान सृष्टि-निर्माण करता है। इस स्वतन्त्र करण-शक्तिसे योगी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनों पदोंको धारणकर अनुप्राणित करता है।[३८] यह स्वतन्त्रलक्षणा शक्ति चित्तस्थितिके समान ही शरीरके बाह्य करणों (इन्द्रिय तथा

तत्र तथान्यत्र। १५ बीजावधानम्। १६ आसनस्थः सुखं ह्रदे निमज्जति। १७ स्वमात्रानिर्माणमापादयति। १८ विद्याऽविनाशे जन्मविनाशः। १९ कवर्गादिषु माहेश्वर्याद्याः पशुमातरः। २० त्रिषु चतुर्थं तैलवदासेच्यम्। २१ मग्नः स्वचित्तेन प्रविशेत्। २२ प्राणसमाचारे समदर्शनम्। २३ मध्येऽवरः प्रसवः। २४ मात्रास्वप्रत्ययसन्धाने नष्टस्य पुनरुत्थानम्, २५ शिवतुल्यो जायते। २६ शरीरवृत्तिर्व्रतम्। २७ कथा जपः। २८ दानमात्मज्ञानम्। २९ योऽविपस्थो ज्ञाहेतुश्च, ३० स्वशक्तिप्रचयो विश्वम्। ३१ स्थितिलयौ। ३२ तत्प्रवृत्तावप्यनिरासः संवेत्तृभावात्। ३३ सुखासुखयोर्बहिर्मननम्। ३४ तद्विमुक्तस्तु केवली। ३५ मोहप्रतिसंहतस्तु कर्मात्मा। ३६ भेदतिरस्कारे सर्गान्तरकर्मत्वम्। ३७ करण-शक्तिः स्वतोऽनुभवात्। ३८ त्रिपदाद्यनुप्राणनम्।

उनके विषयों) को भी अनुप्राणित करती है[३९] और तन्मय हो जाती है।

पुनः यदि योगीकी तुर्यात्मिका दशासे च्युति होकर देहादिमें अहंभावना हो जाय तो इस अपूर्णमन्यतारूप अभिलाषासे जन्म-जन्मान्तरमें भटकानेवाले पशुत्व (संवाह्य) की केवल बहिर्गति (विषयोन्मुखता) ही होती है।[४०] अन्तस्तत्त्वका अनुसन्धान नहीं रह जाता। पुनः प्रमिति अर्थात् संवित्के विमर्शमें तत्पर रहनेवाले योगीकी अभिलाषा-के क्षय होनेसे उसकी जीवत्व-भावना नष्ट हो जाती है।[४१] तब वह प्रपञ्च (भूत) रूपी कञ्चुकसे मुक्त हुआ पुनः पति—शिवरूप हो जाता है।[४२] परन्तु पाञ्चभौतिक शरीरसे उसका सम्बन्ध बना ही रहता है, इसका कारण यह है कि प्राणसम्बन्ध नैसर्गिक होता है।[४३] तथापि जो संविद्-विमर्शमें सतत रत रहते हैं तथा चन्द्र, सूर्य और सुषुम्णा-नाडियोंमें प्राणशक्ति (नासिका) की अन्तः अर्थात् आन्तर संवित् एवं मध्य अर्थात् अन्तरतम, अतएव प्रधान, विमर्शमय रूपका संयम करते हैं, उनके लिये फिर क्या शेष रह जाता है,[४४] वे पुनः-पुनः शिवात्मतत्त्वको प्राप्त होते रहते हैं।[४५] अर्थात् जीवन्मुक्त-अवस्थाके परमानन्दका आस्वादन करते हैं।*

भगवान् शङ्कर और शङ्कर-सम्बन्धी शास्त्र तामसिक नहीं हैं

(लेखक—पं० श्रीशंकरलालजी शर्मा त्रिवेदी)

भगवान् शङ्कर तामसिक हैं और उनकी महिमा गानेवाले शास्त्र भी तामसिक हैं, इसलिये ये दोनों तमोगुणी मनुष्योंके ही उपास्य हैं—यह आक्षेप कुछ लोगोंद्वारा जोरोंके साथ किया जाता है। वे इसके प्रमाणमें कुछ पुराण-वचनोंको भी उपस्थित किया करते हैं और कहते हैं कि इनमें शिवको तमोगुणी और विष्णुको सतोगुणी बतलाया गया है। विचार करनेपर पता लगता है कि उनके ये आक्षेप वस्तुतः सर्वथा निराधार हैं, जो या तो समझकी कमीसे अथवा दुराग्रहपूर्वक किये हुए हैं। शिवके सम्बन्धमें शास्त्र क्या कहते हैं, देखिये—

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्॥

(श्रुति)

'उमादेवीसहित परमेश्वर, सबके प्रभु, तीन नेत्रवाले, अत्यन्त शान्तस्वरूप, नीलकण्ठ महादेवका ध्यान करके अधिकारी पुरुष अद्वितीय ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं। वे महादेव—ब्रह्म सर्व भूतोंकी योनि अर्थात् कारण हैं, समस्त जगत्के साक्षी हैं और 'तम' से अत्यन्त परे हैं।' महाभारतमें कहा गया है—

रुद्रो नारायणश्चैवेत्येकं सत्त्वं द्विधा कृतम्।
लोके चरति कौन्तेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु॥

(शान्ति० अ० ३४७। २७)

हे कौन्तेय! रुद्र और नारायण दोनों एक ही शुद्ध सत्त्वके दो रूप हैं।

उपर्युक्त दो प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि भगवान् महेश्वर तमोगुणी नहीं हैं, बल्कि सतोगुणी हैं। तब प्रश्न यह होता है कि पुराणोंमें भगवान् शिवको जो तमोगुणी कहा है इसका क्या तात्पर्य है? इसका उत्तर यह है कि पुराणोंका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि भगवान् शिव तमोगुणी हैं। उनका तात्पर्य यह है कि भगवान् शिव तमोगुणको ग्रहण करके सृष्टिका संहार किया करते हैं। वे स्वयं व्यवहारमें तमोगुणी नहीं, सतोगुणी ही हैं। वास्तवमें तो महेश्वर होनेके कारण वे किसी भी गुणसे लिपायमान

---

३९ चित्तस्थिति वच्छरीरकरणबाह्येषु, ४० अभिलाषाद्बहिर्गतिः संवाह्यस्य। ४१ तदारूढप्रमितेस्तत्क्षयाज्जीवसंक्षयः, ४२ भूतकञ्चुकी तदा विमुक्तो भूयः पतिसमः परः। ४३ नैसर्गिकः प्राणसम्बन्धः। ४४ नासिकान्तर्मध्यसंयमात् किमत्र सव्यापसव्यसौषुम्णेषु, ४५ भूयः स्यात् प्रतिमीलनम्।

* इस लेखमें वरदराजकृत शिवसूत्रवार्तिकसे अधिकांशमें सहायता ली गयी है।

नहीं होते । वे गुणोंसे सर्वथा अतीत हैं । तमोगुणके संसर्गसे यदि ईश्वर भी तमोगुणी हो जायँगे तो फिर जीव और ईश्वरमें विलक्षणता ही क्या रही ? कारण, जीव वास्तवमें शुद्ध सच्चिदानन्द होनेपर भी गुणोंके बन्धनमें आकर ही तो जीवसंज्ञाको प्राप्त होता है, इसी प्रकार ईश्वर भी यदि तमोगुणके ग्रहणसे तमोगुणी हो जायगा तो वह ईश्वर ईश्वर ही नहीं रहेगा । कदाचित् कोई कहे कि हम तो शिवको ईश्वर ही नहीं मानते—वे तो देवता हैं और विष्णुके भक्त हैं, तो फिर यह आपत्ति आवेगी कि विष्णुके भक्त होनेपर भी यदि भगवान् शिव तमोगुणी ही रहे तो विष्णु-भक्तिका माहात्म्य ही क्या रह गया ? फिर तो विष्णु-भक्ति करना भी निष्फल ही है । यदि दुर्जनतोष-न्यायसे थोड़ी देरके लिये यह मान भी लिया जाय कि भगवान् शिव तमोगुणी हैं और भगवान् विष्णु सतोगुणी होनेके कारण ही श्रेष्ठ हैं तो फिर भगवान् विष्णुका भी माहात्म्य कुछ नहीं रह जाता । इस दशामें तो सत्त्वगुणको ही भगवान् विष्णुसे श्रेष्ठ मानना पड़ेगा । तब भगवान् विष्णुकी उपासना करनेके बदले केवल सतोगुणकी उपासना करना ही उत्तम सिद्ध होगा ।

यदि उपर्युक्त तर्कको भी भुलाकर कोई यह हठ करे कि सतोगुणी होनेके कारण भगवान् विष्णुकी उपासना श्रेष्ठ है और तमोगुणी होनेके कारण भगवान् शङ्करकी उपासना कनिष्ठ है तो इसका उत्तर शिवपुराणमें यों दिया गया है । यद्यपि यह लीला विनोदकी दृष्टिसे ही है, वस्तुतः श्रीशिव-विष्णुमें कोई भी गुणोंके बन्धनमें नहीं है—भगवान्के तीनों ही रूप गुणोंसे परे हैं, परन्तु दुराग्रहका समाधान इससे हो जाता है । शिवपुराणके वाक्य ये हैं—

अन्तस्तमा बहिःसत्त्वस्त्रिजगत्पालको हरिः ।
अन्तःसत्त्वस्तमोबाह्यस्त्रिजगल्लयकृद्धरः ॥
अन्तर्बहीरजाश्चैव त्रिजगत्सृष्टिकृद्विधिः ।
एवं गुणास्त्रिदेवेषु गुणभिन्नः शिवः स्मृतः ॥

अर्थात् तीनों लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् हरि भीतरसे तमोगुणी हैं और बाहरसे सतोगुणी हैं । तीनों लोकोंका संहार करनेवाले भगवान् हर भीतरसे सतोगुणी हैं पर बाहरसे तमोगुणी हैं, भगवान् ब्रह्मदेव जो तीनों लोकोंको उत्पन्न करते हैं, भीतर और बाहर उभय-रूपमें रजोगुणी हैं और भगवान् परब्रह्मरूप शिव तीनों गुणोंसे रहित हैं । इसका रहस्य यह है कि सुखका रूप सतोगुण है, दुःखका रूप तमोगुण और क्रियाका रूप रजोगुण है । भगवान् विष्णु सृष्टिका पालन करते हैं इसलिये देखनेमें तो सृष्टि सुखरूप प्रतीत होती है; परन्तु भीतरसे अर्थात् वास्तवमें दुःखरूप होनेसे विष्णुभगवान्का कार्य बाहरसे सतोगुणी होनेपर भी वास्तवमें तमोगुणी ही है । इसीलिये भगवान् विष्णुके वस्त्राभूषण आदि सुन्दर, सात्त्विक होनेपर भी स्वरूप श्याम वर्ण है । भगवान् शिव सृष्टिका संहार करते हैं । वे देखनेमें तो दुःखद हैं; पर वास्तवमें संसारको मिटाकर परमात्मामें एकीभाव कराना सुखरूप है । इसी अभिप्रायसे भगवान् शङ्करका बाहरी शृङ्गार तमोगुणी होनेपर भी निजस्वरूप गौर-वर्ण है और उनका शीघ्र प्रसन्न होना भी, जिसके कारण वे 'आशुतोष' कहलाते हैं, सतोगुणका ही स्वभाव है । भगवान् ब्रह्मदेव सदा सृष्टिका निर्माण ही किया करते हैं, इसलिये वे रक्तवर्ण हैं, क्योंकि क्रियात्मक स्वरूपको शास्त्रोंने रक्त वर्ण ही बताया है । इस न्यायसे भगवान् विष्णु भी तमोगुणी सिद्ध होते हैं और तब तो उनकी भी उपासना तामसी लोगोंके लिये ही उपयोगी होगी । इसपर यदि कोई कहे कि यह शिवपुराण तामसिक होनेसे हमें मान्य नहीं है; तो लीजिये, अब हम सात्त्विक कहे जानेवाले पुराणों तथा स्मृतिग्रन्थोंका ही प्रमाण उपस्थित करते हैं ।

श्रीमद्भागवतमें राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूछा है—

यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ।
तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्तमिवेश्वरः ।
एतन्नो भगवन् सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥
(८ । २४ । २-३)

'हे मुने ! ईश्वरने लोकदृष्टिमें हेय, घोर कर्मोंसे ग्रसित, जीवोंकी तरह तमोगुणी मत्स्य-अवतार क्यों धारण किया, हे भगवन् ! यह मुझे यथार्थरूपसे समझाइये ।'

इस श्लोकमें परमभागवत राजा परीक्षितने भगवान् विष्णुजीके मत्स्यावतारको तामसिक कहा है, इसी प्रकार वराह, कूर्म, हयग्रीव, परशुराम, नृसिंह, बुद्ध, ऋषभ—ये सभी विष्णुके अवतार न्यूनाधिक अंशमें तमोगुणी ही थे और श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अर्जुनको अपना विराट् रूप दिखाकर, उसके यह पूछनेपर कि आप कौन हैं, उत्तर देते हैं—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।

'मैं लोकोंका क्षय करनेवाला काल हूँ और बढ़े हुए लोकोंका नाश करनेको प्रवृत्त हुआ हूँ।' इस वचनसे बाहरका सात्त्विक अंश हटाकर भगवान् शिवकी तरह अपने सृष्टि-संहारक होनेका ही सङ्केत करते हैं। इसके अतिरिक्त रावण, कंस और अनेक राक्षसोंका मारना भी क्रोधरूप तमोगुणके स्वाँग बिना सम्भव नहीं।

उपर्युक्त शास्त्र-प्रमाणोंसे भगवान् शिव और भगवान् विष्णु दोनों ही सात्त्विक और दोनों ही तामसिक भी सिद्ध होते हैं। ऐसी स्थितिमें केवल भगवान् शिवपर ही तामसिकताका आरोप करके उनकी निन्दा करना सरासर अन्याय है। यथार्थ बात तो यह है कि भगवान् शिव, भगवान् विष्णु और भगवान् ब्रह्मा—ये तीनों ईश्वर हैं और तीनों एकरूप एवं गुणातीत हैं; केवल सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये मायाके गुणोंको ग्रहण करते हैं, पर उनमें लिपायमान कदापि नहीं होते। क्योंकि ईश्वर सर्वथा गुणोंसे रहित यानी गुणातीत हैं और माया उनके अधीन है। शिवपुराणमें स्पष्ट लिखा है—

गुणभिन्नः शिवः साक्षात् प्रकृतेः पुरुषात् परः॥

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें परीक्षितके प्रश्नके उत्तरमें परमभागवत शुकदेवजी कहते हैं—

गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि॥
उच्चावचेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः।
नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धि यो गुणैः॥

अर्थात् हे राजन्! भगवान् स्वतन्त्र होकर भी गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, धर्म और अर्थकी रक्षा करनेकी इच्छासे मत्स्यादि अवतार धारण करते हैं और जैसे वायु उत्तम, अधम—समस्त प्राणियोंमें विचरता हुआ भी उनसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही बुद्धिद्वारा उत्तम—अधम प्राणियोंमें प्रेरकरूपसे विद्यमान रहनेवाला ईश्वर भी निर्गुण होनेके कारण उत्तमता या अधमताको प्राप्त नहीं होता।

इसप्रकार शास्त्र-प्रमाणसे जब भगवान् शिवका स्वरूप गुणोंसे रहित—निर्गुण सिद्ध है तब उनकी महिमा वर्णन करनेवाले पुराणों और स्मृतियोंके तामसिक होनेका कोई कारण नहीं है। प्रमाण बहुत हैं, पर विस्तारभयसे नहीं दिये जाते। जिन पुराण-स्मृतियोंको शास्त्र सर्वोपरि और ग्राह्य मानते हैं उन्हींको तामस, राजस बताकर जो लोग उनकी निन्दा करते हैं उनके लिये क्या कहा जाय? जब भगवान् शिव पूर्वोक्त प्रकारसे तामसिक नहीं, किन्तु गुणातीत सिद्ध होते हैं तब उनकी महिमा कहनेवाले शास्त्र ही कैसे तमोगुणी हो सकते हैं? सम्भवतः कुछ ऐसे निन्दा-सूचक वचन द्वेषके कारण शास्त्रोंमें मिला दिये गये हैं; वास्तवमें वेद-शास्त्र, पुराण-स्मृतियोंमें राजस-तामस-भेद मानना भ्रान्ति है। सभी शास्त्रोंके अधिकारियोंका कल्याण करनेमें समर्थ होनेके कारण अठारहों पुराण और अठारहों स्मृतियाँ सर्वथा मान्य और आदरणीय हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। अतएव निन्दकोंके बहकावेमें आकर अपना भला चाहनेवाले धार्मिकोंको शास्त्रोंमें मान्य-अमान्यका भेद माननेका पाप नहीं करना चाहिये।

अतएव सारग्राही सात्त्विक धार्मिकोंको निस्सन्देह त्रिगुणातीत और थोड़ी-सी भक्तिसे भी शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, आशुतोष भगवान् शङ्करकी उपासना शास्त्रविधि और तन-मनसे करके अपने जीवनको सफल करना चाहिये। भगवान्, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणपति, सूर्य, शक्ति—सभी एक ही ईश्वरके अनेक नाम-रूप हैं और सभी एक ही समान पूज्य और समान फलदाता हैं।

आशुतोष शिव

दरसन करत हरत
तीन ताप आप,
परसन पद पाय होत पाप परस न।
पर सन काजकौं, न
लेस राहि जात सेस,
सोभित महेस लोक-चारिदस हरसन॥
हर सनमानिबेकौं
नैसुक न श्रम 'मान',
प्रेम मान करु मन वाकी ओर करसन।
कर सन जल पाय
बेल-पातसौं अघाय,
सूल नासि मूलसौं अमोघ देत दरसन॥

—प्रेमयोगी 'मान'

भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीराम

रात्पर, परब्रह्म भगवान् श्रीरामने लङ्काविजयके अनन्तर अयोध्याको लौटकर राज्याभिषेक हो जानेपर मुनि अगस्त्यके आदेशसे रावणादि-वधजनित ब्रह्महत्या-दोषकी निवृत्तिके लिये अश्वमेध-यज्ञका समारम्भ किया। यज्ञका घोड़ा देश-देशान्तरोंमें घूमता हुआ देवपुर नामक नगरमें पहुँचा। वहाँके राजा-वीरमणि-ने घोड़ेको पकड़ लिया और दोनों सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया। राजा वीरमणि शिवके अनन्य भक्त थे और परम दयालु शङ्कर अपने भक्तकी रक्षाके लिये सदा उसके नगरमें निवास करते थे। जब उन्होंने देखा कि वीरमणिकी सेना राघवी सेनाके चमूपति—शत्रुघ्नके द्वारा पराभूत हो रही है और सैनिकोंका क्रमशः ह्रास हो रहा है तो उन्होंने स्वयं रणाङ्गणमें उपस्थित होकर शत्रुघ्नकी सेनाके साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। जब संहारमूर्ति भगवान् रुद्र क्रुद्ध होकर समरमें आ डटे तो भला किसकी मजाल जो उनके अस्त्रशस्त्रोंके प्रहारको सह सके। बात-की-बातमें राघवी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और सैनिकोंमें हाहाकार मच गया। जब शत्रुघ्नने देखा कि भगवान् शङ्करके बाणोंसे किसी प्रकार रक्षा नहीं है तो उन्होंने कातर होकर श्रीकोसलाधीशका स्मरण किया और भगवान् उसी क्षण भक्तकी पुकार सुनकर यज्ञ-दीक्षाके वेशमें ही युद्धभूमिमें उपस्थित हो गये। भगवान्के भक्तभय-हारी, सस्मित वदनारविन्दका दर्शनकर राघवी सेनामें प्राण आ गये और सैनिकोंने जयघोषपूर्वक भगवान्का अभिनन्दन किया।

शङ्करजीने अपने इष्टदेवको जब सामने आते देखा तो तुरन्त युद्ध बन्द करके सम्मुख आये और प्रेमविह्वल होकर चरणोंपर गिर पड़े। भगवान्ने उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया। भक्त और भगवान्के इस अपूर्व प्रेम-मिलनको देखकर सारी सेना मुग्ध हो गयी और लगी जयजयकार करने। शङ्करजी कुछ स्वस्थ होनेपर बोले—"हे प्रभो, आप प्रकृतिसे पर, साक्षात् परमेश्वर हैं; आप ही अपनी अंश-कलासे अखिल विश्वका सृजन, पालन और संहार करते हैं और स्वयं अरूप होते हुए भी मायासंवलित होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन रूपोंको धारण करते हैं। आपके लिये ब्रह्महत्या-दोषके परिमार्जनके लिये अश्वमेध-यज्ञका उपक्रम करना विडम्बनामात्र है। जिनके चरणोंसे निकली हुई श्रीगङ्गाजी लोकमें पतितपावनी नामसे प्रसिद्ध हैं और मेरे शिरका भूषण हो रही हैं, जिनके नामके उच्चारणमात्रसे अजामिल-जैसे अनेकों महापातकी तर गये, उन्हें कभी ब्रह्म-हत्याका पाप लग सकता है? आपकी सारी क्रियाएँ संसारमें मर्यादा-स्थापनके लिये ही हैं, इसीलिये तो आपको 'मर्यादापुरुषोत्तम' कहते हैं। नाथ! आपके कार्यमें विघ्न डालकर मैंने वास्तवमें महान् अपराध किया है, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। बात यह है कि मुझे सत्यके पाशमें बँधकर इच्छा न रहते हुए भी यह सब कुछ करना पड़ा। इसीलिये आपके प्रभावको जानते हुए भी आपकी सेनाके विरुद्ध खड़े होनेका अनुचित कार्य मैंने किया। इस राजाने प्राचीन कालमें उज्जयिनीमें महाकालके स्थानपर बड़ी उग्र तपस्या की थी, जिससे प्रसन्न होकर मैंने उसे एक वरदान दिया था। वह यह था कि जबतक अश्वमेधके प्रसङ्गमें मेरे इष्टदेव यहाँ न पधारें तबतक मैं तुम्हारे नगरकी रक्षा करूँगा। बस, आज मेरा व्रत समाप्त हुआ। मैं वास्तवमें अपनी कृतिपर लज्जित हूँ। अब आप कृपया मेरे इस भक्तको अपना दासानुदास समझकर अपनाइये और घोड़ेसहित इसके राज्य एवं सर्वस्वको अपनी सेवामें अङ्गीकार कीजिये।" यह कहकर भगवान् त्रिलोचनने राजा वीरमणिको पुत्र-पौत्रोंके सहित भगवान्के सम्मुख ला उपस्थित किया, उनके भवभयहारी चरणोंमें डाल दिया। देवतालोग जो विमानोंमें बैठे हुए यह अपूर्व दृश्य देख रहे थे, 'धन्य, धन्य' कहकर राजा वीरमणिके भाग्यकी सराहना करने और पुष्प बरसाने लगे।

भगवान् हँसकर बोले—प्राणाधिक शङ्कर! भक्तकी रक्षा करके आपने भक्तिकी मर्यादाकी ही रक्षा की है, इसमें अनुचित कौन-सी बात हुई जिसके लिये आप इसप्रकार दीन-भावसे क्षमा-याचना करते हैं? फिर आपसे तो अपराधकी शङ्का ही नहीं हो सकती, आप तो सदा मेरे हृदय-मन्दिरमें निवास करते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। वास्तवमें हम दोनोंमें कोई अन्तर ही नहीं है। जो मैं हूँ सो आप हैं, और जो आप हैं सो मैं हूँ। हम दोनोंमें जो भेद समझता

है वह मूर्ख और जड़बुद्धि है, वह हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकमें घोर यातनाओंको सहता है। जो आपके भक्त हैं उन्हें सदासे ही मैं अपना भक्त समझता रहा हूँ और जो मेरे भक्त हैं वे अवश्य ही आपके भी दास हैं।*

इसप्रकार दोनों सेनाओंके विरोधको शान्तकर और शङ्करके साथ अपना अभेद बताकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और श्रीशङ्कर भी अपने भक्तका कल्याण कर कैलासको चले गये। (पद्मपुराण पातालखण्डसे)

श्रीशिवाङ्क (शिव या शिवाके चिह्न)

(लेखक—पं० श्रीबाबूरामजी शुक्ल, पद्यार्थवाचस्पति, कविसम्राट्)

(१) यह प्रसिद्ध है और शास्त्रोंसे भी सिद्ध है कि श्रीशिवजी नगाधिराज हिमालयके एक भाग—कैलाश नामक पर्वतपर सपरिवार वास करते हैं। उनके पास प्रतापी भारतवासी जाते हैं। परशुराम और अर्जुन आदि उनसे विद्याएँ भी प्राप्त कर लाये; पाणिनि तथा सनकादिने उनके डमरूसे सम्पूर्ण व्याकरण या मोक्षविद्या प्राप्त की। भारतवासियोंका यह परम सौभाग्य है कि उनके गुरु साक्षात् महादेव हैं और वे उन्हींके लोकमें सपरिवार निवास कर रहे हैं। इसप्रकार देवोंमें हमारा सबसे अधिक सम्बन्ध महादेवजीके ही साथ सिद्ध होता है। श्रीविष्णु आदिके वैकुण्ठ आदि लोक हमारी पृथिवीसे पृथक् हैं। श्रीविष्णु-भगवान् हमारे कल्याणार्थ सपरिवार और सगण हमारे पास ही डेरा डाले नहीं रहते। वे न किसीको गुरुरूपसे विद्याभ्यास ही कराते हैं। उनके यहाँ तो जो जाता है वह उन्हींका होकर रहने पाता है। जैसे सरकारी नौकरीमें शामिल होनेपर अपने वस्त्र त्यागकर सरकारी वर्दी पहन लेनी पड़ती है वैसे ही श्रीविष्णुके लोकमें मनुष्यका मनुष्यत्व (द्विभुजत्व) नष्टकर उसे चतुर्भुज बनाकर रहने दिया जाता है। अन्यथा बड़ों-बड़ोंको अर्द्धचन्द्र देकर निकाल बाहर किया जाता है। इधर शिवजीके दरबारमें नीचातिनीच भूत-प्रेततक अपने उसी रूपमें ले लिये जाते हैं और उन्हें यहाँतक अधिकार प्राप्त हो जाता है कि शिवजीकी समाधिके समय दर्शनार्थ आनेवाले इन्द्रादि देवोंको भी वे द्वारपालरूपमें अर्द्धचन्द्र देकर हटा दें।

(२) श्रीशिवजीसे प्राप्त हुई भारतीय अपूर्व विद्याएँ (ज्ञानगङ्गा):—

(१) व्याकरण, (२) गान्धर्व-वेद (गान-विद्या), (३) सामुद्रिक (हस्तरेखाविज्ञान), (४) वैद्यक, (५) अस्त्र-शस्त्र-विद्या, (६) योग-शास्त्र, (७) भक्ति-शास्त्र, (८) 'रुद्रयामल' आदि तन्त्र, (९) साबर आदि मन्त्रशास्त्र, (१०) स्वरोदय (११) और कथाएँ तो प्रायः सब—

कैलाशशिखरे रम्ये गौरी पृच्छति शङ्करम्।
गुह्याद् गुह्यतरं किञ्चित् कथयस्व महेश्वर॥

—यहींसे प्रारम्भ होती हैं। इसपर कोई यह कहे कि अरे, उमा-महेश्वर-संवादकी रीति भी इसी प्रकार चल पड़ी मालूम होती है जैसे कोई अपनी तुकबन्दी करके उसके साथ सूर, तुलसी, कबीर आदिका नाम जोड़ देता है। इसका उत्तर यह है कि पहले तो इन कवियोंने वास्तवमें पद्य-रचनाएँ की थीं, इसके सिवा यदि पीछेसे कुछ रचनाएँ झूठ-मूठ उनका नाम देकर प्रसिद्ध की गयी हैं तो भी झूठ-मूठ नाम उसीका लिया जाता है जो पहले सचमुच उक्त कार्यके द्वारा नाम पाये हुए रहता है। वैसे ही शिवजी भी अनेकों विद्याओंके प्रवर्तक प्रसिद्ध हैं, तभी उनका नाम दूसरे डालते हैं। श्रीशिवजीकी अनेक विद्याएँ तो कालके प्रभावसे लुप्त हो गयीं, फिर भी जो शेष हैं वे किसी अनिर्वचनीय अपूर्व दैवी शक्तिको बतला रही हैं। उदाहरणार्थ, कोई सुजान यह नहीं मान सकता कि 'अष्टाध्यायी' (व्याकरण) तथा १५–३४ आदि यन्त्र मानवीय ज्ञानसे बने हैं। अबतक बड़े-बड़े पारङ्गत गणितज्ञ इस यन्त्र-विद्याको नहीं समझ सके हैं।

(३) जैसे उपर्युक्त ज्ञानगङ्गा श्रीशिवके मस्तिष्कसे

---

* ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्। आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः। कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥
ये त्वद्भक्ताः सदाऽऽसंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः। मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिङ्कराः॥
(पद्म० पाता० २८। २०, २१, २२)

निकली, वैसे ही पुण्यसलिला गङ्गा (भागीरथी) भी उन्हींके मस्तकसे भारतमें उतरी हैं।

(४) शिवजी प्रातःकाल उठकर हमलोगोंकी देख-भाल करते हैं और उस समय पार्वतीजी भी प्रायः सङ्गमें रहती हैं। जो कोई दीन-दुखी, किन्तु सुकर्मी, सौभाग्यसे सामने आ जाता है, उसे निहाल कर देते हैं। कहीं भङ्गके नशेमें आगे बढ़ गये और आर्तजनपर दृष्टि न गयी तो दयार्द्र-हृदया जगन्माता पार्वती उन्हें स्मरण दिला देती हैं।

(५) कैलाशके अतिरिक्त अन्य बारह स्थानोंमें भी शिवाङ्क (शिवके चिह्न) हैं जो द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त श्रीगोकर्ण (दक्षिण और उत्तर भारतमें), पशुपतिनाथ (नेपाल) और शिवकाञ्ची (दक्षिण-भारत), अमरनाथ (काश्मीर) आदि भी शिवस्थान हैं।

(६) भारतमें जो ७ मुक्तिदायिनी पुरियाँ हैं उनमेंसे आधी श्रीविष्णुकी और आधी शिवकी हैं—

विष्णुकी ३ १/२		शिवकी ३ १/२
अयोध्या मथुरा द्वारका १/२ काञ्ची	अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका। पुरी, द्वारावती चैत्र सप्तैता मोक्षदायिकाः॥	हरद्वार काशी अवन्ती १/२ काञ्ची

(७) यद्यपि शिव और विष्णुकी अलग-अलग पुरियाँ हैं तथापि एकाधिपत्य किसीका किसीमें नहीं है। एककी पुरीमें दूसरेके स्थान भी मिलते हैं। लेखकका खयाल था कि श्रीनाथद्वारामें कोई शिव-मन्दिर नहीं है; पर वहाँ भी एक मिल ही गया, और दो शैव पण्डित भी मिले जिनमेंसे एक प्रसिद्ध वैष्णव पण्डित गट्टूलालजीके शिष्य थे।

ये तो शिवके 'धाम' हुए, अब 'काम' भी सुनो, जो बड़े विलक्षण हैं।

(८) भूत, प्रेत, राक्षस, देव, मनुष्य, गन्धर्व, दैत्य—सभीपर उनकी अनिवार्य कृपा रहती है, जिससे कभी-कभी उन्हें पछताना भी पड़ता है।

(९) ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, गणेश—इन सबसे उनकी खटक भी चुकी है, जिसकी कथाएँ पुराणोंमें हैं।

(१०) शिवजी भङ्ग, धतूरा, बेल बहुत खाते हैं, शरीरमें साँप लपेटे रहते हैं, सवारी बैलकी करते हैं और साथमें भूतगण रखते हैं।

शङ्का—ऐसा क्यों ? ये बातें तो ठीक नहीं।

उत्तर—तुम उनके अभीष्टको नहीं जान सकते। मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ समाधान करता हूँ, सुनो। भङ्ग, धतूरा और सर्पोंके विना शीतप्रधान कैलाशपर दिगम्बररूपमें कैसे रहा जा सके, जब कि कैलाशके दर्शनार्थी वहाँसे दो-चार कोसकी दूरीपर ही रह जाते हैं और फिर भी उनमेंसे लगभग ५ प्रतिशत कालके ग्रास बनते सुने जाते हैं। बेलका गुण भी उसे दो-चार वर्षतक सेवन किये विना कैसे मालूम हो सकता है। मैं जानता हूँ, जो २३ वर्ष सेवन कर चुका हूँ। बैलमें घोड़े और भैंसेसे भी अधिक बल होता है, बैल बड़ा सतोगुणी होता है। इसी प्रकार भूतोंके साथ रहनेका भी समाधान है। जो काम अङ्गिरा, भृगु, वशिष्ठ आदिसे नहीं हो सकता वह भूत करते हैं। कारण, जिसका जो काम है उसके लिये वही उपयुक्त है। पण्डित-जन भी दो-एक भूत वशमें रखते हैं जो उनके अनेक ऐसे काम करते रहते हैं जो भैरव और दुर्गासे होने कठिन हैं। महाजन भी रुपया वसूल करनेके लिये भूत (दुर्जन) रखते हैं। सरकारी अफसर भी रखते हैं। कहावत प्रसिद्ध है कि 'अमीनका काम कमीनके विना नहीं चलता।' वृक्षोंका काम भी भूत विना नहीं चलता। आमकी रक्षा बबूल ही करता है। दक्षयज्ञविध्वंस देवताओं और मुनियोंके लिये दुष्कर था; पर भूतोंने तत्काल कर डाला। भूतोंकी बदौलत ही शिव 'महादेव' बन गये। शिवका विशेष कार्य (महाभूतसंहार) भूतोंके विना होना कठिन है।

(११) सबसे अद्भुत कार्य इनका है अर्द्धनारीश्वररूप (अर्थात् आधे अङ्गमें शिवरूप और आधेमें पार्वतीरूप) धारण करना, जिसका मर्म देवता भी नहीं समझ सकते और जिसका ध्यान इसप्रकार करते हैं—

मातापितृभ्यां जगतो नमो वामार्द्धजानये।
सद्यो दक्षिणदृक्पातसङ्कुचद्वामदृष्टये॥

अब शिवाङ्क (शिवाका चिह्न) के दूसरे अर्थका विचार करो—

शिवा (पार्वती) के ५२ स्थान 'सिद्धपीठ' कहे जाते हैं। इसकी कथा यों है कि जब दक्षसुता (सती) ने शरीर

छोड़ा तब शिवजी उनके शवको उठाये पृथिवीपर घूमते फिरे और जब देवताओंके प्रयत्न भी निष्फल हुए तब श्रीविष्णुने अपने चक्रसे उसके ५२ खण्ड कर फेंके। जिस स्थानपर जो खण्ड गिरा वही सिद्धपीठ बन गया। यहाँ पुरश्चरण करनेसे सिद्धि अति शीघ्र प्राप्त होती है। इन पीठोंमें हिङ्गलाज, ज्वालादेवी, कामाक्षा आदि हैं। कहते हैं कि कामाक्षामें एक कुण्ड है जिसका जल महीनेमें एक बार लाल हो जाता है। पण्डेलोग इसमें कपड़ेके थान डुबोकर रखते हैं और यजमानोंको उसमेंसे चीर फाड़-फाड़कर प्रसादस्वरूप देते हैं। जल लाल होनेके सम्बन्धमें लिखा भी है—

प्रतिमा सम्भवेद्यत्र मासि मासि रजस्वला।

ज्वालादेवीको प्रसाद चढ़ानेसे कहते हैं कि ज्वाला आकर आधा या तिहाई प्रसाद ले जाती है। अमरनाथके सम्बन्धमें भी यह कथा है कि वहाँ बर्फका शिवलिङ्ग स्वयं बन जाता है और कबूतरका जोड़ा पाया जाता है। ऐसे हिमाच्छादित स्थानमें साधारण पक्षीका रहना असम्भव है।

यहाँतक शिवके धाम और काम हुए, अब नाम-माहात्म्य भी सुनिये।

(१२) 'शिव'का अर्थ है कल्याण, इसीसे शिव-भक्तोंके सब कार्य सिद्ध होते हैं—

महादेव महादेव महादेवेति कीर्तनात्।
वत्सं गौरिव गौरीशो धावन्तमनुधावति॥

अर्थात् 'महादेव ! महादेव !! महादेव !!!' पुकारनेसे शिव उसके पीछे ऐसे दौड़ते हैं जैसे बछड़ेके पीछे गाय।

श्रीशिवाष्टक

(१)

जय महेश जगवन्धु नित्य त्रिभुवन-अभयङ्कर।
जय रामप्रिय शर्व सर्वदा जय शिव शङ्कर॥
व्योमकेश सर्वेश त्रिपुरदनुजेशविनाशन।
जय मङ्गलमयमूर्ति शम्भु जय भवभयनाशन॥

(२)

जय जय चन्द्रललाम कुण्डलीकुण्डलधारी।
जय प्रमथादिक-भूत-प्रेत-गुह्यकसुखकारी॥
प्रालेयाचलनन्दिनीश मुदमंगलदाता।
जय गणेश शिखिवाहनपितु जय निजजनत्राता॥

(३)

परमरम्य-कैलाशविहारी वृषभध्वज जय।
कृत्तिवास जय नीलकण्ठ जय जय मृत्युञ्जय॥
शुद्ध सच्चिदानन्द सदाशिव शक्तिनाथ जय।
जय भैरव, दशकण्ठवरद जय जय तेजोमय॥

(४)

सर्वदेव-अधिदेव निरञ्जन जय मदनान्तक।
निराधार निष्पाप निरङ्कुश जय शमनान्तक॥
निर्गुण निर्मद निष्कलङ्कनिष्काम त्रिलोचन।
कालकाल कर्पूरगौरवपु भवभयमोचन॥

(५)

पञ्चानन, फणिराजविभूषण जय गङ्गाधर।
जय कमलासन श्रीपतिपूजित, जय गुणसागर॥
डमरुनादप्रिय, भृङ्गीप्रिय, आनन्दराशि हर।
भक्तप्रिय शवभस्मप्रिय रजनीशकलाधर॥

(६)

महाकाल श्रीसोमनाथ नागेश जटाधर।
वैद्यनाथ केदार सनातन ईश दयापर॥
विश्वेश्वर रामेश्वर सर्वेश्वर काशीश्वर।
बाणेश्वर श्रीवामदेव पशुपति नन्दीश्वर॥

(७)

अन्धकरिपु शितिकण्ठ पिनाकी जय गिरीश जय।
शूलपाणि मृड महादेव जय जय करुणामय॥
निष्प्रपञ्च निर्द्वन्द्व कपाली निर्मल निर्मम।
ज्ञानरूप वेदान्तसार कैवल्यद अनुपम॥

(८)

पारिजातवरमालविभूषित धनदमित्रवर।
अष्टसिद्धिनवनिधिपरिसेवित भर्ग महेश्वर॥
खण्डपरशु ईशान चन्द्रशेखर (प्रसन्नमन)(निर्धन-धन)
उग्र रुद्र श्रीकण्ठ नीललोहित शुभदर्शन॥

—विनायकराव भट्ट

जगद्गुरु श्रीरेणुकाचार्यकी लीलाएँ

(लेखक—श्री 'वेदतीर्थ' जी)

श्रीमच्छिवाचारविचारदीक्षं
स्वशिष्यसम्प्रीणनपूर्वपक्षम् ।
दुर्वारकामादिविदारदक्षं
भजाम्यहं रेवणकल्पवृक्षम् ॥
(श्रीकरभाष्य)

वागमोंके कथनानुसार शिवजीके सद्योजात-मुखसे श्रीरेणुकाचार्यजीका अवतार हुआ । आपने प्रत्येक युगके आदिमें अवतार लेकर वीर-शैवमतकी स्थापना की और आवश्यकतानुसार दुबारा भी अवतार ग्रहण किये । युगभेदसे आपके अनेक नाम होनेपर भी रेवण, रेवणसिद्ध, रेवणाराध्य, रेणुक, रेणुकाचार्य, रेणुकगणाधीश्वर आदि नाम ही प्रसिद्ध हैं । कलियुगके आदिमें श्रीरेणुकाचार्यजीका अवतार आन्ध्र-देशस्थ 'कोलिपाक' (निजाम-राज्य) नामक नगरमें सुप्रसिद्ध सोमेश्वरलिङ्गसे हुआ था—

श्रीमद्रेवणसिद्धस्य कोलिपाकपुरोत्तमे ।
सोमेशलिङ्गाज्जननमावासः कदलीपुरे ॥
(स्वायम्भुवागम)

अथ त्रिलिङ्गविषये कोल्लिपाक्यभिधे पुरे ।
सोमेश्वरमहालिङ्गात् प्रादुरासीत् स रेणुकः ॥
(सिद्धान्तशिखामणि ४ । १)

यद्यपि आचार्यपादने अठारह मठोंकी स्थापना की, जो अबतक विद्यमान हैं, तथापि अपने मुख्य सिंहासनको मैसूर-देशके रम्भापुरी (बाले होन्नूर) नामक स्थानमें स्थापित किया था। शिवाचार्योंमें आप सर्वप्रथम, प्रबल और अगाध महिमाशाली थे; इस कारण आपके चरित्रग्रन्थ संस्कृत, आन्ध्र तथा कर्नाटक भाषामें भरे पड़े हैं। परन्तु उनमेंसे श्रीसिद्धनाथ शिवाचार्यकृत 'रेणुकविजय' काव्यके अति प्राचीन (वि० सं० १०१६ में रचित) और 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' होनेके कारण यहाँ उसीके आधारपर जगद्गुरु श्रीरेणुकाचार्य महाराजकी मुख्य-मुख्य लीलाओंका संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है ।

सनातन वैदिक पद्धतिके अनुसार जो महापुरुष प्रस्थान-त्रय (ब्रह्मसूत्र, दशोपनिषद् और गीता) की भाष्य-रचना कर अपने मतकी स्थापना करता है वह उक्त सम्प्रदायका जगद्गुरु माना जाता है। शक्तिविशिष्टाद्वैत (वीरशैव) मतके संस्थापक होनेके कारण श्रीरेणुकाचार्य भी जगद्गुरु-रूपमें सम्मानित हो गये हैं। इनके प्रवर्तित उपाचार्य भी हैं; परन्तु वे केवल शिवाचार्य कहलाते हैं, जगद्गुरु नहीं । श्रीमहाचार्य-कृत एक सूत्र-भाष्य होनेकी बात प्रसिद्ध है, और इसका पता सिकन्दराबाद-निवासी पं० मार्कण्डेय शास्त्रीजीकी प्राचीन पुस्तक-सूचीसे भी लगता है; परन्तु वह आज उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि आन्ध्र-देशके 'आराध्य' पण्डितोंके पाससे उसे एक जर्मन-प्रोफेसर ले गये, तबसे उसका कोई पता नहीं चला। जर्मनीके एक पुस्तकालयकी पुस्तक-सूचीमें एक जगह 'रेणुककारिका' ग्रन्थका नाम मिलता है, जिससे यह अनुमान होता है कि हो-न-हो यही वह भाष्य है। मुझे अपने एक विश्वसनीय, प्रतिष्ठित मित्रसे मालूम हुआ है कि कोई पाँच-छः वर्ष पूर्व निजाम-रियासतके अन्तर्गत जिला सङ्गरेड्डी-के निकट एक शिवाचार्य स्वामीके पास भी ताड़-पत्रपर लिखित रेणुक-भाष्यकी एक प्रति थी; परन्तु अब वह भी प्राप्त नहीं है। उसे एक पण्डित देखनेके बहाने उड़ा ले गये। शैवोंमें रेणुकाचार्य और रेणुक-भाष्यकी जो बहुत अधिक चर्चा है उससे यह कहना पड़ता है कि उक्त भाष्य कहीं-न-कहीं अवश्य होगा।

'सिद्धान्तशिखामणि'[2] नामक एक अमूल्य ग्रन्थका बहुत प्रचार देखा जाता है जिसमें अगस्त्य मुनिके प्रति श्रीरेणुकाचार्यका उपदेश है। इसका संग्रह 'शिवयोगी' नामक अति प्राचीन शिवाचार्यने वैसे ही किया है, जैसे भगवद्गीताका संग्रह व्यासजीने। यह ग्रन्थ पूर्ण प्रामाणिक, बहुत गम्भीर और बड़ा उपयोगी माना जाता है; इसका मुकाबला शिवागमोंको छोड़कर इस विषयका और कोई-सा भी ग्रन्थ नहीं कर सकता। अगस्त्यका शैवोंके

१ मैसूर 'वेस्लियन मिशन प्रेस' में मुद्रित ।

२ शोलापुर वारदोंकी लिङ्गिब्राह्मण-धर्मग्रन्थमालासे प्रकाशित ।

श्रीकोलपाक, श्रीसोमेश्वरलिंगसे श्रीरेणुकाचार्यका आविर्भाव ।

श्रीअगस्त्यके प्रति श्रीरेणुकाचार्यका शिवतत्त्वोपदेश
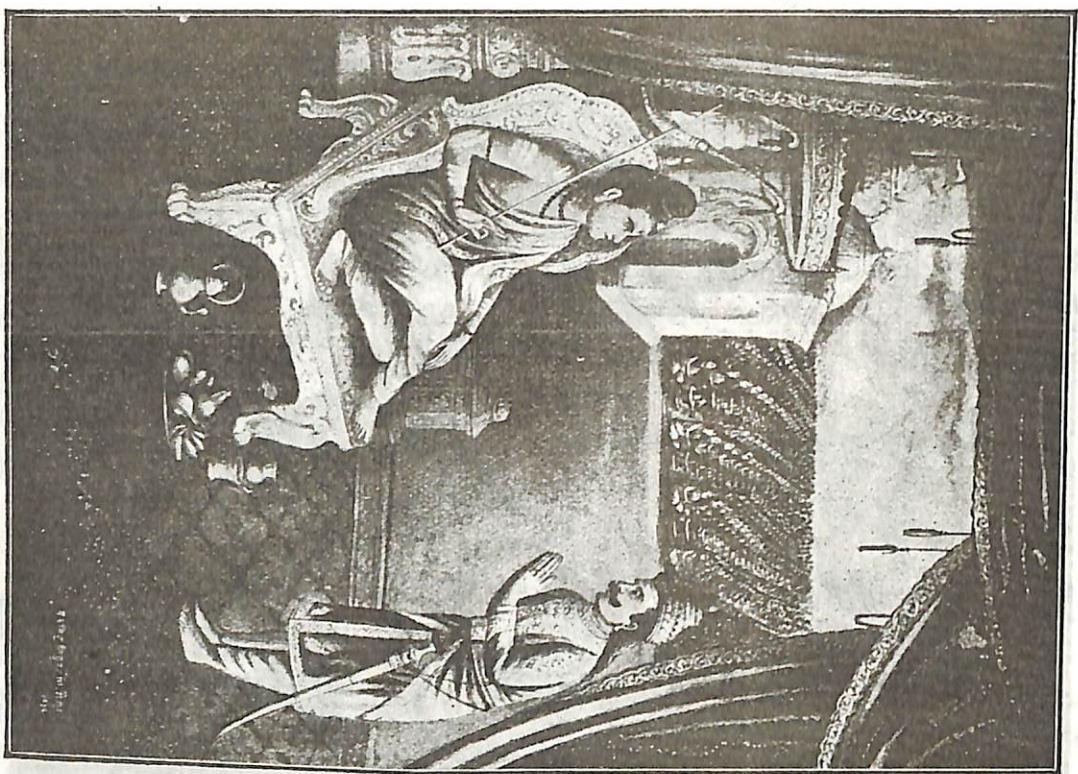
विभीषणकी प्रार्थनानुसार तीन कोटि लिंगस्थापन

श्रीशंकराचार्यको चन्द्रमौलीश्वरलिंगदान

साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध जान पड़ता है। 'सिद्धान्त-शिखामणि', 'रेणुकविजय', 'वेदान्तसार-वीरशैवचिन्तामणि,' आदि ग्रन्थोंसे यह सिद्ध है कि श्रीरेणुकाचार्यने अगस्त्यमुनि-चन्द्रको शिवसिद्धान्तका उपदेश किया था। अनुमानतः इस उपदेश-श्रवणके बाद ही अगस्त्यने 'ब्रह्मसूत्र'की शैववृत्ति बनायी होगी, जिसे देखकर श्रीपति पण्डिताराध्यने 'श्रीकर-भाष्य' की रचना की। उन्होंने स्वयं लिखा है—

अगस्त्यमुनिचन्द्रेण कृतवैयासिकां शुभाम्।
सूत्रवृत्तिं समालोक्य कृतं भाष्यं शिवङ्करम्॥
(श्रीकरभाष्य)

शैवोंका कहना ठीक ही है कि जैसे शैवेतर लोगोंने शिवपुराणादिमें हेर-फेर कर दिया वैसे ही आजकलकी 'अगस्त्यवृत्ति' में भी बहुत कुछ परिवर्तन दिखलायी पड़ता है। श्रीअगस्त्य और आचार्यपादके घनिष्ठ सम्बन्धका एक यह भी प्रमाण है कि शिवदीक्षामें रेणुकाचार्यका जो पूर्व (सद्योजात) कलश-स्थापन होता है उसकी पूजाके लिये ऋत्विक् रेवक, रेवण, रुद्र, नीलमुनि, महेश्वर, घण्टासिद्ध, सारङ्ग, वृद्ध, अगस्त्य आदि किसी वंशका ही होता है। यह विषय 'शिवतत्त्व-रत्नाकर'[4] के कल्लोल ९, तरङ्ग ७ से विदित होता है। अगस्त्यके प्रति शिव-सिद्धान्तका जो सुन्दर उपदेश हुआ है उसे 'सिद्धान्तशिखामणि'मेंसे देख सकते हैं।

इसके बाद श्रीमदाचार्यने विभीषणके प्रार्थनानुसार लंकामें पधारकर एक ही समयमें तीन करोड़ रूप धारणकर तीन करोड़ शिवलिङ्गोंकी स्थापना की। इस त्रिकोटि लिङ्ग-स्थापनका विवरण 'रेणुकविजय'में इस-प्रकार है—'एक बार रावणने नवकोटि शिवलिङ्गोंकी प्रतिष्ठा करनेकी प्रतिज्ञा की थी; परन्तु अपने देहावसान-कालतक वह कुल छः करोड़ लिङ्गोंकी स्थापना ही करवा सका और इस कारण प्राणत्याग करते समय वह शेष तीन करोड़ लिङ्गोंकी स्थापनाका भार अपने भाई विभीषणपर छोड़ गया, जिसे विभीषणने सहर्ष स्वीकार किया और पीछे योग्य गुरुकी प्राप्ति होनेपर उसने वह कार्य सम्पन्न करवाया।' इस सम्बन्धमें जो चित्र प्रकाशित हो रहा है उसमें प्रत्येक लिङ्गके बगलमें आचार्यकी प्रतिमा भी दिखायी पड़ेगी।

आर्यधर्मोद्धारक एवं अद्वैतमतसंस्थापक, सकलविद्या-निष्णात, पूज्यपाद श्रीशङ्कराचार्यके पवित्र नामको कौन हिन्दू नहीं जानता? आप भी एक समय जब श्रीशैलमें भगवान् महादेवके साक्षात्कारके लिये तपस्या कर रहे थे तो आपको अकस्मात् अन्तर्वाणी सुनायी पड़ी कि तुम्हारी इच्छा तब पूर्ण होगी जब तुम श्रीरेणुकाचार्यसे 'चन्द्र-मौलीश्वर लिङ्ग को प्राप्तकर उसे पूजोगे। फलतः श्रीशङ्कराचार्यने मलयाचलमें भ्रमण करते हुए श्रीरेणुकाचार्यके आश्रममें जाकर उनका साक्षात्कार किया और उनकी स्तुति की—

भद्राङ्कुराय भजतामभयङ्कराय
मोहान्धकाररवये कवये मनूनाम्।
कैवल्यकल्पतरवे गुरवे गुरूणां
श्रीरेणुकाय गणपाय नमोऽस्तु तुभ्यम्॥
(रेणुकविजय ३।१८)

इसके साथ ही श्रीचन्द्रमौलीश्वर लिङ्गकी याचना भी की ('तथा ययाचे मुदितान्तरात्मा श्रीचन्द्रमौलीश्वरनाम लिङ्गम् ३-२२)। श्रीरेणुकाचार्यको भी इनसे बढ़कर सुपात्र और कौन मिल सकता था, अतः आपने बड़े प्रेमसे इन्हें वह शिवलिङ्ग प्रदान किया। अब यहाँ यह विचारणीय है कि ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेपर यह बात कहाँतक टिकती है। श्रीनञ्जणाचार्यकृत 'वेदान्तसार-वीरशैवचिन्तामणि' के पूर्वखण्डमें इस लिङ्गप्रदानके सम्बन्धमें स्पष्ट उल्लेख है—

(यः) शङ्कराचार्यसन्नामयोगीन्द्राय महोज्ज्वलम्।
चन्द्रमौलीश्वरं लिङ्गं दत्तवानिति विश्रुतः॥
श्रीरेणुकगणेशाख्यं रेवणं सिद्धदेशिकम्।
वीरशैवमताचार्यं वन्देऽहं तं जगद्गुरुम्॥

इसके अतिरिक्त 'गुरुवंशकाव्य'[5] के तीसरे सर्गमें भी इस चन्द्रमौलीश्वर लिङ्ग-प्रदानकी बात आयी है।

श्रीचन्द्रमौलीश्वरलिङ्गमस्मै
सद्रत्नगर्भं गणनायकञ्च।
स विश्वरूपाय सुसिद्धदत्तं
दत्वा न्यगादीच्चिरमर्चयेति॥३३॥

अर्थात् 'श्रीशङ्कराचार्यने श्रीरेवणसिद्ध महायोगीसे प्राप्त चन्द्रमौलीश्वर लिङ्ग और रत्न गर्भ गणपतिको विश्वरूप नामक

३ सिकन्दराबादमें सन् १८९३ का मुद्रित।

४ मद्रासके B. M. Natha & Co. द्वारा प्रकाशित।

५ श्रीरंगमका वाणीविलास सं०, नं० १२।

शिष्यको देते हुए इसे चिरकालतक पूजनेको कहा।' उपर्युक्त श्लोककी टीका स्वयं ग्रन्थकारने ही की है। वह अपनी 'सुसिद्धेन रेवणसिद्धमहायोगिना दत्तं श्रीचन्द्रमौलीश्वर-लिङ्गम्'—इस व्याख्यासे इस बातको और भी स्पष्ट कर देते हैं। इन ग्रन्थकार महाशयका शुभ नाम है 'काशी लक्ष्मण शास्त्री।' आपने प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसार ही इस काव्यकी रचना की है, निराधार कोई बात नहीं लिखी—'प्राचामसम्मतं नैव लिख्यतेऽत्र न चाधिकम्॥३॥' इस कथनकी सत्यतामें संशय करनेकी आवश्यकता नहीं। श्रीलक्ष्मणशास्त्रीजी श्रीशृङ्गेरी पीठके 'आस्थान-विद्वान्' थे और उस समयके पीठाचार्य—श्रीसच्चिदानन्द भारती महाराजके आदेशानुसार ही उन्होंने इस काव्यकी रचना की थी। इस काव्यका सम्पादन मैसूर महाराजाके धर्माधिकारी, 'विद्याविशारद' पं० कुणिगल् रामशास्त्रीजीने किया है। इन सब कारणोंसे 'गुरुवंशकाव्य'की प्रामाणिकता सिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'शिवतत्त्वरत्नाकर'में भी (पृष्ठ १०५में) पूर्ण विस्तारके साथ इस विषयका प्रतिपादन किया गया है। उसका भी एक श्लोक यहाँ दिया जाता है—

ततः स रेवणासिद्धसम्प्रदायप्रवर्त्तिनाम्॥
रेवणासिद्धसम्प्राप्तं चन्द्रमौलीशमप्यदात्।
आख्याद्यानेन लिङ्गेन तवाभीष्टाप्तिरित्यपि॥

इस बृहदाकार ग्रन्थके सम्पादक, भारत सरकारके पुरातत्त्व-विभागके सुप्रसिद्ध विद्वान्, स्वर्गीय रावबहादुर डो० कृष्णशास्त्री B. A. ने अपने गवेषणापूर्ण वक्तव्यमें इस बातको और भी स्पष्ट कर दिया है। आप लिखते हैं—

One very interesting point, which must be particularly drawn attention to in the story of Vidyaranya as given in the twelfth Taranga of the 4th Kallola, is the रेवणसिद्धसम्प्रदाय which the आचार्यs of the शङ्कराचार्य line that initiated our विद्यारण्य were then practising at शृंगेरी. The लिङ्ग of चन्द्र-मौलीश्वर which is still worshipped as the chief deity by the आचार्यs of शृंगेरीमठ is also said to have been presented to विद्यारण्य by his direct Guru. रेवणसिद्ध we know is a well-known Saiva teacher whom the Lingayats still claim as one of their earliest आचार्यs. The Keladi chiefs, who were mostly followers of the Lingayat creed, were devout adherents of the शृंगेरी-शंकराचार्य-मठ perhaps also for this same reason viz, that the शंकराचार्यs were followers of the रेवणसिद्धसम्प्रदाय. This explains perhaps why in the अद्वैतमठ of शृंगेरी there is still a greater bias towards Saivism and Saiva worship than towards Vaishnavism and Krishna-worship, though the founder, the great शङ्कराचार्य, was no respector of creeds nor of any distinction between शिव and विष्णु.

इसका भाव यह है कि इस पुस्तकके कल्लोल ४, तरङ्ग १२ में यह विशेष ध्यान देनेयोग्य बात है कि विद्यारण्यको संन्यास देनेवाले इस पीठके आचार्य रेवणसिद्धसम्प्रदायी थे। कहा जाता है कि शृंगेरीमठमें उक्त पीठके आचार्योंद्वारा सदासे जिस चन्द्रमौलीश्वर लिङ्गकी पूजा होती आ रही है वह वहाँ श्रीविद्यारण्यको अपने गुरुसे प्राप्त हुआ था। सुप्रसिद्ध श्रीरेवणसिद्ध तो शिव-सिद्धान्तके संस्थापक हैं और वीरशैवलोग उनको अपने अत्यन्त प्राचीन आचार्य मानते आये हैं। शङ्कराचार्यजी रेवणसिद्धसम्प्रदायी थे, इसी कारण शृङ्गेरीपीठके प्रति वीरशैव 'केलदी' राजाओंकी बड़ी श्रद्धा थी। वस्तुतः शङ्कराचार्यकी शिव और केशवमें कोई भेद-बुद्धि नहीं थी, फिर भी उस अद्वैत-मतके शृङ्गेरीमठमें कृष्णोपासना और वैष्णव-सिद्धान्तकी अपेक्षा अबतक लिङ्ग-पूजा और शैव सिद्धान्तकी प्रधानता है।

श्रीरेणुकाचार्यकी रम्भापुरी और श्रीशङ्कराचार्यकी शृङ्गेरी—इन दोनों पीठस्थानोंमें भी केवल पन्द्रह-बीस मीलका फासला है। इसको तो सभी लोग जानते हैं कि शृङ्गेरीमठ-की आचार्य-परम्पराके द्वारा अब भी चन्द्रमौलीश्वर-लिङ्गकी पूजा होती है। जिस समय यह लिङ्ग प्रदान किया गया था उस समयकी एक मूर्ति भी रम्भापुरीमें स्थित श्रीरेणुका-चार्यके पीठमें वर्तमान है जिसे इन पंक्तियोंके लेखकने अपनी आँखों देखा है। श्रीशङ्कराचार्यके काल-निर्णयमें बड़ा मतभेद है। कुछ लोगोंका कहना है कि उनका समय ७ वीं या ८ वीं शताब्दी होगा; परन्तु मद्रासके बी०

६ देखिये उस काव्यपर J. K. Balasubrahmanya Aiyar कृत Preface.
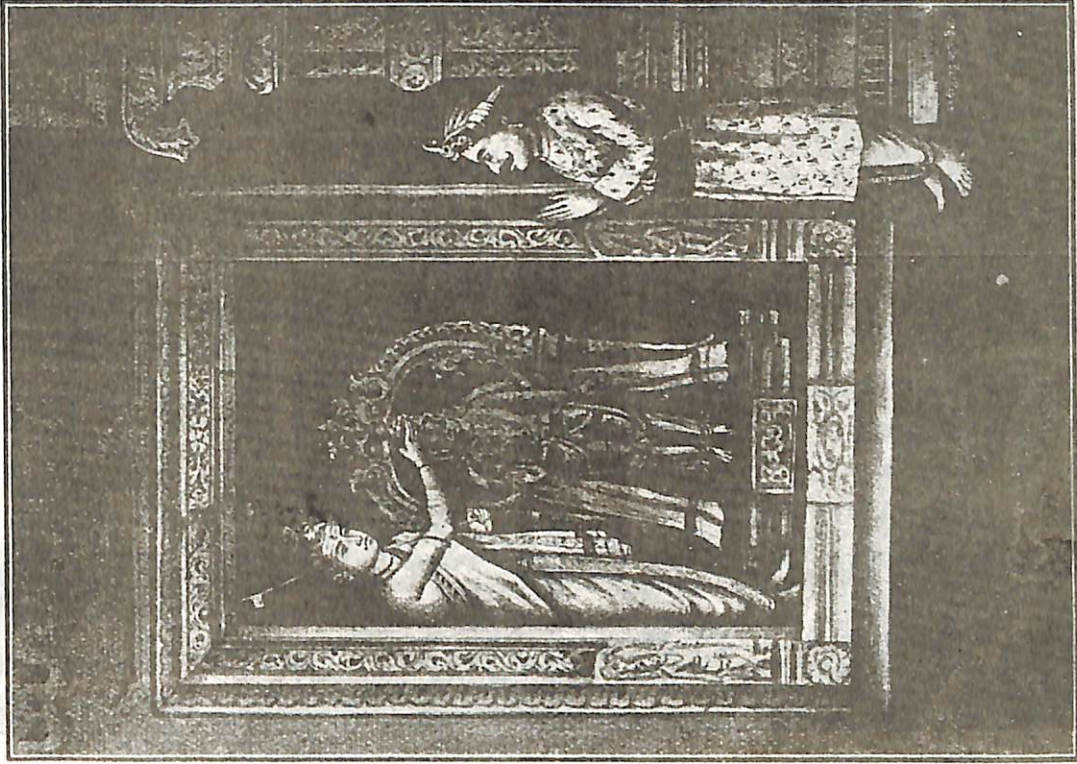
काञ्ची वरदराजका शिरःकम्पन-निवारण

यक्ष-मिथुन-ध्वंस

गोरक्षनाथ-गर्व-हरण
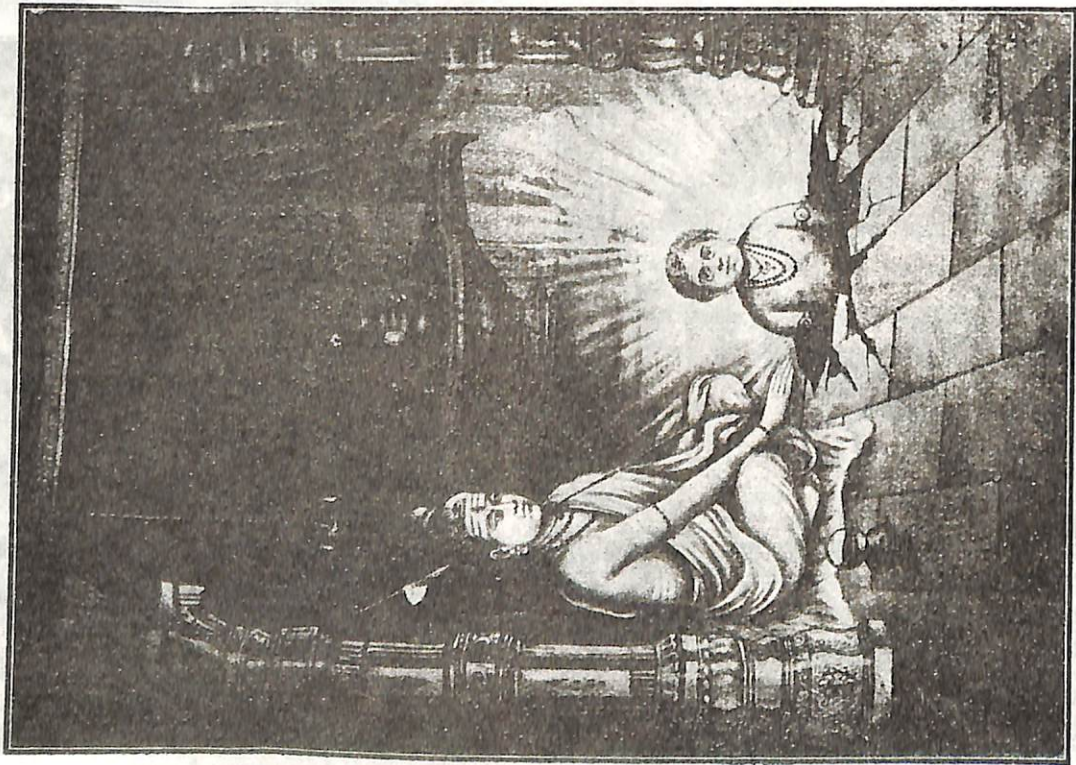
श्रीरुद्रमुनिशिवाचार्यका भूगर्भसे निकलना
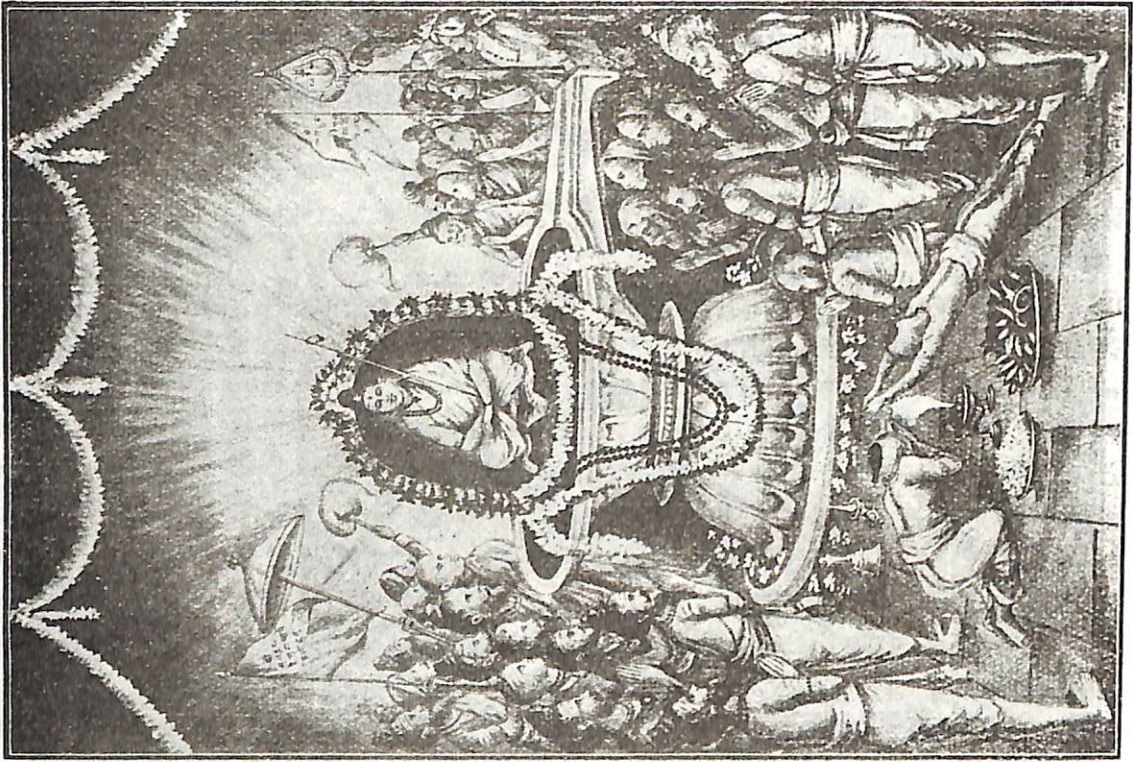
श्रीसोमनाथलिंगमें प्रवेश

सूर्यनारायणराव बी० ए०, एम० आर० ए० एस० ने अपने 'विजयनगर-चरित्र' में विक्रम संवत्‌की पहली शताब्दीके आस-पास शङ्कराचार्यका होना सिद्ध किया है। श्रीरेणुकविजयमें वर्णित रेणुकाचार्यके विक्रम महाराजको खड्गप्रदानसे भी इसी कथनका समर्थन होता है।

इसप्रकार लीला करते हुए एक बार श्रीरेणुकाचार्य भिक्षुकरूपसे काञ्चीनगर भी पहुँचे। वहाँके सुप्रसिद्ध वरदराज-मन्दिरकी मूर्तिका मस्तक बहुत दिनोंसे हिल रहा था; सुधारके बहुत कुछ उपाय किये गये, पर कुछ लाभ न हुआ। वहाँका चोळ नामक राजा पहलेसे ही आचार्यके नाम और महत्त्वसे परिचित था, परन्तु भिक्षुकरूपधारी आचार्यको न पहचान सका; पीछेसे क्षमाप्रार्थी होकर आचार्यकी शरणमें गया। आचार्यश्रीने करस्पर्शसे वरदराज-मूर्तिका शिरःकम्पन बन्द कर दिया। उसी अवसरपर चोळ राजाको विस्तृत उपदेश दिया था, जिसका संग्रह 'चोळ-रेणुक-संवाद' के नामसे प्रसिद्ध है।

मासनूर-नगरके बाहर एक देवालयके पास एक वटवृक्ष था, जिसपर एक यक्ष-दम्पतीका वास था। ये लोग सबको बड़ा कष्ट देते थे। एक दिन श्रीरेणुकाचार्य वहाँ जा पहुँचे और रात बितानेके लिये देवालयमें प्रवेश करने लगे, पर पुजारीने अन्दर जानेसे मना किया। फिर भी आप उसमें घुस ही गये। यक्षोंने अन्य लोगोंकी भाँति आचार्यपर भी आक्रमण किया; परन्तु दुष्टोंके सभी कार्य थोड़े ही सफल होते हैं। आचार्यने क्रोधाग्निसे उन्हें भस्मकर लोहेके दो गोलोंके रूपमें बदल दिया, जिनसे पीछे दो तलवारें बनायी गयीं। उन तलवारोंमेंसे एक श्रीआचार्यने उज्जयिनीके राजा विक्रमादित्यको दे दी और दूसरीको अपने ही पास रक्खा, जिससे पीछे कोल्हापुरके गोरक्षनाथका काम तमाम हुआ।

कोल्हापुरका राजा गोरक्षनाथ बड़ा अत्याचारी था। उसके कारण प्रजा और सामन्तमण्डली बहुत ही दुःखित थी। साधु-संन्यासीका तो उस नगरमें प्रवेश ही दुःसाध्य था। एक बार संयोगसे श्रीआचार्य वहाँ जा पहुँचे। लोगोंको आपके सम्बन्धमें बड़ी चिन्ता हुई। पर आपको क्या भय था? आप सीधे राज-द्वारमें प्रविष्ट हुए और कहा—'भवति भिक्षां देहि।' गोरक्षनाथ इसे सुनते ही क्रोधसे जल उठा। उसने गरजते हुए अपनी पत्नीसे कहा कि 'यह तो बड़ी बेजा बात है कि एक भिक्षुक यहाँ दरबारमें घुस आकर भिक्षा माँगे। लो! इस तलवारसे उसके दोनों हाथ काट डालो। बस, इसके लिये यही भिक्षा है।' महारानी बड़े संकटमें पड़ी, पर आखिर करती क्या? काँपते हुए हाथसे वह तलवारको लेकर श्रीआचार्यकी तरफ़ बढ़ी। इतनेमें अचानक देखती क्या है कि गोरक्षनाथके पेटमें भी एक तलवार भोंकी हुई है। सारे दरबारमें हाहाकार मच गया। गोरक्षकी दुर्दशाका तो कहना ही क्या था! इसप्रकार आचार्यने उसे अच्छी शिक्षा दी। कितनी ही लीलाओंके बाद काञ्चीके एकाम्रेश्वर-मन्दिरमें आचार्यके पृथिवी-स्पर्शसे श्रीरुद्रमुनि शिवाचार्यका अवतार हुआ जिन्हें आचार्यने कालक्रमसे अपने ही सदृश पाकर रम्भापुरीके वीरसिंहासनका उत्तराधिकारी बनाया। जब आपने अपने कार्यक्रमको साङ्गोपाङ्ग पाया तो फिर किस बातकी देर थी? वहीं सुप्रसिद्ध सोमेश्वरलिङ्गके गर्भमें जहाँसे आप आविर्भूत हुए थे, विलीन हो गये। इस विषयपर रेणुकविजयकारका एक सुन्दर श्लोक देखनेलायक है—

> तपनहिमकराद्याः प्राग्भवाः पश्चिमायां
> दिशि तु सततमस्तं यान्ति नैतद्विचित्रम्।
> गुरुरयमुदितोऽभूद्यत्र तत्रैव चास्तं
> गत इति तु विचित्रं शक्तिरेषा क्व तेषाम्॥
> (५। ५३)

धन्य हैं वे महात्मा, जिनका अवतार मानवोंके कल्याणार्थ होता है और जिनका अपना कोई स्वार्थ नहीं रहता।

यहाँ बहुतोंको यह शङ्का हो सकती है कि महाचार्यकी इन विभिन्नकालीन लीलाओंका सामञ्जस्य कैसे हो सकता है? ठीक है! परन्तु कृतयुगसे लेकर अबतक जितने भी अवतार या महानुभाव हो गये हैं उनमेंसे किसीके भी जीवनकालका संकेत हम ठीक-ठीक नहीं कर सकते। इतिहासके नामसे हम जो कुछ कुतर्क करते हैं उसमें भी कोई ठीक निर्णय भारतीय वाङ्मयमें न मिल सका है, और न आगे मिलनेकी कोई सम्भावना है। यों तो हम भी कुछ अटकलें पेश कर सकते हैं कि अमुक-अमुक समयमें श्रीरेणुकाचार्यका अवतार हुआ होगा। इसके अतिरिक्त यह भी बात है कि उनकी गद्दीपर अबतक जितने महापुरुष हो गये हैं वे सभी साधारणतया 'रेणुकाचार्य' ही कहलाते रहे होंगे, जैसे आजकल शङ्कराचार्य या रामानुजाचार्यकी सिंहासनारूढ़ शिष्यपरम्पराका दस्तूर है। सम्भव है, इसी तरह रेणुकविजयकारने भी उस पीठके भिन्न-भिन्न दो

महानुभावोंका चरित्र संग्रह किया हो। किन्तु इस बातसे हमको सन्तोष नहीं है। कारण, रेणुकाचार्य तो महासिद्ध पुरुष थे। उनके लिये चिरकालतक रहना असंगत नहीं कहा जा सकता। 'रेणुकविजय' बहुत सुन्दर और प्रसादगुणपूर्ण एक भव्य काव्य (चम्पू) है। उसकी गद्यशैली विशेष रूपसे मनोहारिणी है।*

श्रीमहाचार्यचरणके ९ चित्र भी इसके साथ छप रहे हैं। बोलिये एक बार जगद्गुरु श्रीरेणुकाचार्यकी जय!

भगवान् कृष्ण और भगवान् शिव

प्रलयकालमें सारी सृष्टि परमात्माके अन्दर लीन हो जाती है और कोटि सूर्यतुल्य प्रभाशाली, समस्त विश्वब्रह्माण्डका आदि-कारण, एक अविनश्वर ज्योतिःपुञ्ज ही अवशेष रहता है। स्वेच्छामय परमात्माके उस ज्योतिःस्वरूपके मध्यमें त्रिलोकी अन्तर्हित रहती है। उस त्रिलोकीके ऊपर ईश्वरके ही समान अविनश्वर 'गोलोकधाम' अवस्थित है। उस गोलोकके अभ्यन्तरमें एक परम आनन्द-जनक एवं परम आनन्दस्वरूप ज्योति विकसित रहती है। योगिजन योगमार्गमें आरूढ़ होकर ज्ञानचक्षुके द्वारा उसी ज्योतिका ध्यान करते हैं। उस निराकार, परात्पर ज्योतिके अन्तरालमें अत्यन्त रमणीय, नवजलधरश्यामकलेवर, कमललोचन, शरदिन्दुसुन्दरमुखारविन्दयुक्त, कोटिकन्दर्प-लावण्य, मुरलीमनोहर, पीतवसनधारी, मन्दस्मितवदन, भक्तवत्सल, रत्नाभरणभूषित, केसर-कस्तूरी एवं चन्दनादिका लेप किये हुए, श्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थल, कौस्तुभमणिराजित, किरीट-मुकुटशोभित, वनमालाविभूषित, साक्षात् परब्रह्म-स्वरूप भगवान् श्यामसुन्दर नित्य विराजमान रहते हैं। वे सर्वाधार, निरीह, निर्विकार, मङ्गलमय, सिद्धिप्रद, सिद्धीश्वर, सत्य, अक्षय, अव्यय एवं निर्गुण हैं। उन्होंने अखिल विश्व एवं गोलोकको प्राणिशून्य, निर्जन, निर्वात, वृक्ष-शैल-सरित्-समुद्रादिविहीन, सस्य-तृणविवर्जित, शून्यमय देखकर मानसिक सङ्कल्पके द्वारा स्वेच्छापूर्वक सृष्टिरचना प्रारम्भ की। उसी समय उनके दक्षिण पार्श्वसे श्यामकलेवर, तरुणवयस्क, पीतवसन, वनमाला-धारी, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये साक्षात् नारायण आविर्भूत हुए। उनका मुखारविन्द मन्दस्मितयुक्त था, वे अनेक प्रकारके आभूषणों तथा कौस्तुभमणिसे विभूषित थे, शार्ङ्गधनुष कन्धेपर लटकाये हुए थे, उनका मुख चन्द्रमाके समान देदीप्यमान था और वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे अलंकृत था, उनका रूप-लावण्य कामदेवके तुल्य था। वे प्रकट होते ही भगवान् श्यामसुन्दर-की स्तुति करने लगे और स्तुति समाप्त होनेपर उन्हींके इशारेसे उनकी बगलमें एक रत्नजटित सिंहासनपर विराजमान हो गये।

इसके अनन्तर भगवान्के वामपार्श्वसे शुद्ध स्फटिकके समान शुभ्रवर्ण, पञ्चवदन, दिगम्बर महेश्वर आविर्भूत हुए। उनकी कान्ति तप्त काञ्चनके समान उज्ज्वल थी और मस्तकमें कपिशवर्ण जटाकलाप फहरा रहा था। उनके सुप्रसन्न वदनारविन्द मन्दहास्ययुक्त थे, प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे और ललाटमें बालचन्द्र सुशोभित था। वे योगियोंके भी परमगुरु, त्रिशूल-पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्र एवं जपमाला धारण किये हुए थे। उनका मनोहर रूप चन्द्रमाका भी तिरस्कार करता था। उन्होंने पुलकित गात्र, साश्रु नयन एवं गद्गद स्वरसे भगवान्की स्तुति की और उनके बताये हुए आसनपर बैठ गये।

उनके बैठ जानेपर भगवान्के नाभिकमलसे एक महा-तपस्वी, कमण्डलु हाथमें लिये वृद्ध पुरुष प्रादुर्भूत हुए। उनके चारों दिशाओंमें चार मुख थे, वे शुक्र वसन पहने हुए थे, उनकी मनोहर दन्तावलि तथा केशकलाप भी शुभ्रवर्ण थे। इनका नाम ब्रह्मा था। ये भी भगवान्की स्तुति कर अपने स्थानपर बैठ गये।

इसी प्रकार परमात्मा श्रीकृष्णके वक्षःस्थलसे धर्म और धर्मके वामपार्श्वसे एक अत्यन्त रूपवती कन्या प्रादुर्भूत हुई। मुखारविन्दसे वीणा-पुस्तकधारिणी, शुक्लवर्णा, अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी, सकल विद्याओं तथा कलाओंकी जननी, शुद्ध-

* इस लेखमें पूज्य पण्डित श्रीकाशीनाथजी शास्त्री (मैसूर) की 'Speeches on Veerasaiva Religion' नामक पुस्तकसे बड़ी सहायता मिली है जिसके लिये लेखक आपका ऋणी है।

सत्त्वस्वरूपा, वागधिष्ठात्री, कवियोंकी एवं विद्वानोंकी आराध्य देवी, भगवती सरस्वती प्रकट हुई। भगवान्के मनःप्रदेशसे रत्नालङ्कारभूषिता, गौरवर्णा, स्मेरमुखी, नवयौवना, पीतवसना, सकल ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री, देवी महालक्ष्मी प्रकट हुई और बुद्धिसे सकल जगत्की अधिष्ठात्री, परमेश्वरी, मूल प्रकृति प्रादुर्भूत हुई। उनका वर्ण तप्त काञ्चनके सदृश एवं कान्ति कोटि सूर्यके समान थी। उनके सौ भुजाएँ थीं, वे रक्तवर्णके वस्त्र पहने हुई थीं; क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, दया, श्रद्धा एवं क्षमा आदि सारे गुणोंकी अधिष्ठात्री थीं और दुर्गा नामसे प्रसिद्ध हुईं। यही परमात्माकी शक्ति एवं जगज्जननी हैं। हाथमें त्रिशूल, शक्ति, शार्ङ्गधनुष, खड्ग, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, अक्षमाला, कमण्डलु, वज्र, अङ्कुश, पाश, भुशुण्डि, दण्ड, तोमर, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, पाशुपतास्त्र, पार्जन्यास्त्र, गान्धर्वास्त्र एवं वारुणास्त्र धारण किये रहती हैं। भगवान्की रसनाके अग्रभागसे विशुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वलकान्ति, श्वेतवसना, सर्वालङ्कारभूषिता, जपमालाधारिणी, सावित्री देवी प्रकट हुई।

इसके अनन्तर भगवान्के मनसे मन्मथ उत्पन्न हुए और मन्मथके वामपार्श्वसे अनुपम रूप-लावण्यवती रति प्रकट हुई, इसी प्रकार अग्नि, जल, वायु आदि देवता तथा उनकी स्त्रियाँ प्रकट हुईं। फिर अखिल विश्वके आधार, विराट् पुरुष उत्पन्न हुए जिनके एक-एक रोमकूपमें एक-एक ब्रह्माण्ड अवस्थित है। उन्हींकी 'महाविष्णु' संज्ञा है। वे महार्णवमें पद्मपत्रकी भाँति शयन करते रहते हैं। उनके कानके मैलसे मधु-कैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्न हुए। वे ब्रह्माजीको मारने दौड़े। भगवान् नारायणने उनका वध करके ब्रह्माजीकी रक्षा की। उन दैत्योंके मेदसे पृथिवी उत्पन्न हुई। इसीलिये उसे 'मेदिनी' कहते हैं।

फिर भगवान्के वामपार्श्वसे श्रीराधा उत्पन्न हुईं जो भगवान्की प्राणाधिष्ठात्री तथा उन्हें प्राणोंसे भी प्यारी हैं। श्रीराधाके रोमविवरोंसे कई करोड़ स्थिरयौवना गोपाङ्गनाएँ उत्पन्न हुईं और भगवान्के रोमकूपोंसे तीस करोड़ गोप एवं नाना वर्णकी गौएँ, बैल तथा बछड़े उत्पन्न हुए जिनमें कई कामधेनु थीं। उनमेंसे एक मनोहर बैल, जो बलमें करोड़ सिंहोंके समान था, भगवान्ने श्रीशङ्करको वाहनरूपमें प्रदान किया, इसी प्रकार भगवान्के चरणोंके नखरन्ध्रोंसे मनोहर हंसोंकी पंक्तियाँ उत्पन्न हुईं। उनमेंसे एक महान् बलशाली राजहंस भगवान्ने ब्रह्माजीको दिया जिसपर वे सवारी करने लगे। भगवान्के बायें कर्णविवरसे श्वेत तुरङ्गोंकी एक कतार उत्पन्न हुई, जिसमेंसे एक सुन्दर घोड़ा भगवान्ने धर्मको दिया। दक्षिण कर्ण-कुहरसे अत्यन्त बलशाली मृगेन्द्रोंकी अवलि उत्पन्न हुई। उसमेंसे एक सिंह भगवान्ने श्रीदुर्गाको दिया। भगवान्के गुह्य प्रदेशसे गुह्यक (यक्ष) तथा उनके नेता—कुबेर तथा भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस एवं बेताल आदि उत्पन्न हुए और कुबेरके वामपार्श्वसे कुबेरकी पत्नी कुबेरी उत्पन्न हुई, इसी प्रकार भगवान्के मुखकमलसे चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, वनमाली, पीतवसन, श्यामवर्ण, किरीट-कुण्डलविराजित, रत्नाभरणभूषित पार्षद उत्पन्न हुए। भगवान्ने नारायणको पार्षद, कुबेरको गुह्यक एवं शङ्करको भूत-प्रेतादि प्रदान किये। भगवान्के दक्षिण नेत्रसे भयङ्कर त्रिशूल-पट्टिश-गदा आदि धारण किये, त्रिनेत्र, विशालकाय, दिगम्बर, चन्द्रशेखर, अग्निशिखाके समान तेजस्वी, शिव-तुल्य—रुरु, संहार, काल, असित, क्रोध, भीषण, महाभैरव एवं खट्वाङ्ग नामके अष्टभैरव उत्पन्न हुए। उनके वाम नेत्रसे दिक्पालोंके अधीश्वर ईशानदेव उत्पन्न हुए। नासिका-रन्ध्रसे सहस्रों डाकिनी, योगिनी एवं क्षेत्रपाल उत्पन्न हुए और पृष्ठदेशसे तीन करोड़ दिव्य मूर्तिधारी देवता उत्पन्न हुए।

इसके अनन्तर भगवान्ने महालक्ष्मी और सरस्वती नारायणको प्रदान कीं, सावित्री ब्रह्माजीको, मूर्ति धर्मको, रति कामको, मनोरमा कुबेरको और इसी प्रकार अन्य कन्याएँ अपने-अपने योग्य वरोंको प्रदान कीं। फिर शङ्करजीको बुलाकर कहा कि आप श्रीदुर्गाको ग्रहण कीजिये। इसपर शङ्करजी बोले—इस समय मैं इन्हें अङ्गीकार करना नहीं चाहता, क्योंकि इनके परिग्रहसे आपकी भक्तिमें बाधा पहुँचेगी। आप अपने भक्तोंको इच्छित वर देनेवाले हैं और मुझे तो आपकी भक्तिके अतिरिक्त और कोई वस्तु सुहाती ही नहीं। इसलिये आप कृपा करके मुझे अपनी नवधा भक्ति प्रदान कीजिये। आपके नाम-जप और पाद-सेवनसे मेरी तृप्ति ही नहीं होती। मैं तो सोते और जागते सदा आपके नामकी ही रटना लगाये रहता हूँ, भोगकी ओर मेरी वृत्ति ही नहीं जाती। मैं तो समझता हूँ कि अणिमादि अष्टादश सिद्धियाँ, सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य, सामीप्य, साम्य एवं सारूप्य—ये छः प्रकारकी मुक्तियाँ, योग, तप, दान, व्रत, यश, कीर्ति, ब्रह्मवर्चस, सत्य, धर्म, उपवास, तीर्थयात्रा, पुण्य सलिलावगाहन, अन्य देवताओंका पूजन,

देवालयोंका दर्शन, सप्तद्वीपा मेदिनीकी प्रदक्षिणा, समुद्रस्नान, स्वर्गसुख, यहाँतक कि ब्रह्मा, रुद्र एवं विष्णुका परम पद अथवा इससे भी परे जो कोई अनिर्वचनीय सुख हो वे सब आपकी भक्तिकी सोलहवीं कलाके तुल्य भी नहीं हैं। शङ्करके इन भक्तिभावसे भरे हुए वचनोंको सुनकर भगवान् परम प्रसन्न हुए और कहने लगे—हे सर्वेश ! आप सौ करोड़ कल्पपर्यन्त मेरी अहर्निश सेवा कीजिये। आप तपस्वियों, सिद्धों, योगियों, ज्ञानियों, देवताओं तथा वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हैं; आपको मैं अमर, मृत्युञ्जय एवं सर्वज्ञ बनाता हूँ। आप असंख्य ब्रह्माओंका पतन देखेंगे। आजसे आप अपनेको ज्ञान, तेज, वय, पराक्रम, यश एवं प्रतापमें मेरे ही तुल्य समझिये; आप मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे एवं मेरे परम भक्त हैं। आपसे बढ़कर मुझे और कोई प्रिय नहीं है; अधिक क्या, आप मेरे आत्मस्वरूप हैं। जो अज्ञानी, मूर्ख आपकी निन्दा करते हैं वे पापी, जबतक चन्द्र और सूर्य हैं, तबतक कालपाशमें बँधे हुए घोर दुःख भोगते रहेंगे। सौ करोड़ वर्ष बीत जानेपर आप शिवाको अङ्गीकार कर लेना, जिससे मेरे वचनका उल्लङ्घन न हो और आपके वचनका भी पालन हो जाय; क्योंकि आपने यही कहा है कि मैं इन्हें अभी ग्रहण नहीं करूँगा। आप केवल तपस्वी ही नहीं हैं, आप तो मेरे ही समान महान् ईश्वर हैं। इसलिये आपको मेरे अनुरोधसे इस साध्वीको अवश्य अङ्गीकार करना होगा। जो पुरुष किसी तीर्थस्थानमें संयमपूर्वक पवित्र एवं जितेन्द्रिय रहकर, तीर्थकी मृत्तिकासे आपका लिङ्ग बनाकर, षोडशोपचारसे उसका सहस्र बार पूजन करेगा वह करोड़ कल्पपर्यन्त मेरे साथ गोलोकमें आनन्दोपभोग करेगा। और जो विधिपूर्वक लाख बार पूजा करेगा वह कभी गोलोकसे भ्रष्ट नहीं होगा और मेरे और आपके समान हो जायगा। जो मिट्टी, भस्म, गोबर अथवा बालुकाका लिङ्ग बनाकर एक बार भी किसी तीर्थमें उसका पूजन करेगा वह दस हज़ार कल्पतक स्वर्गमें वास करेगा। शिवलिङ्गका अर्चन करनेसे मनुष्यको सन्तान, पृथिवी, विद्या, पुत्र, धन, ज्ञान एवं मुक्तितककी प्राप्ति होती है और वह साधु बन जाता है। जिस स्थानपर शिवलिङ्गका पूजन होता है वह लोकदृष्टिमें तीर्थ न होनेपर भी वास्तवमें तीर्थ ही है। उस स्थानपर मरा हुआ पुरुष, चाहे वह पापी ही क्यों न हो, शिवलोकको प्राप्त होता है। जो पुरुष 'महादेव, महादेव, महादेव' इसप्रकार कहता है मैं उस नामश्रवणके लोभसे व्यग्र होकर उस पुरुषके पीछे-पीछे जाता हूँ। जो 'शिव' इस शब्दका उच्चारण करके प्राणत्याग करता है वह करोड़ जन्मोंके पापोंसे मुक्त होकर मुक्तिको प्राप्त होता है। 'शिव' शब्दका अर्थ कल्याण है और 'कल्याण' शब्द मुक्तिका वाचक है। मुक्ति शङ्करसे प्राप्त होती है, इसीलिये उन्हें 'शिव' कहते हैं। धन और बान्धवोंसे वियोग होनेके कारण जो शोकसागरमें डूब जाता है, 'शिव' शब्दके उच्चारणमात्रसे ही उसे सारे मङ्गलोंकी प्राप्ति होती है। 'शि' का अर्थ है—पापनाशक और 'व' कहते हैं मुक्तिदाताको। पापनाशक एवं मुक्तिप्रद होनेके कारण ही महादेव 'शिव' कहलाते हैं। जिसकी जिह्वापर 'शिव' यह मङ्गलमय नाम रहता है उसके करोड़ जन्मोंके पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं।

इसके अनन्तर भगवान् दुर्गासे बोले—कि तुम अभी कुछ समयतक मेरे पास गोलोकमें रहो। समय आनेपर तुम्हें कल्याणदायक एवं कल्याणरूप शिव अङ्गीकार करेंगे। तुम समस्त देवताओंके तेजःपुञ्जसे आविर्भूत होकर सारे दैत्योंका संहार करोगी और सर्वपूज्य बनोगी। किसी खास कल्पके सत्ययुगमें तुम दक्षप्रजापतिके यहाँ प्रकट होकर शिवको वरण करोगी और पिताके यज्ञमें पतिका अपमान न सहकर देहत्याग करोगी और फिर पार्वतीरूपमें पर्वतराज हिमालयके यहाँ प्रकट होकर हज़ार दिव्य वर्षपर्यन्त शिव-पत्नी होकर रहोगी। इसके अनन्तर तुम शिवके अन्दर लीन होकर उनके साथ अभेदको प्राप्त होगी। तुम्हारी सब कालमें और गाँव-गाँव और नगर-नगरमें पूजा होगी। जो तुम्हारा भजन करेंगे उनके यश, कीर्ति, धर्म एवं ऐश्वर्यकी वृद्धि होगी। (ब्रह्मवैवर्तपुराणसे)

राजनीतिज्ञ शङ्कर

मूसेपर साँप राखै, साँपपर मोर राखै, बैलपर सिंह राखै, वाकै कहा भीति है।
पूतनिकों भूत राखै, भूतकों बिभूति राखै, छमुखकों गजमुख यहै बड़ी नीति है॥
कामपर वाम राखै, बिषकों पियूष राखै, आगपर पानी राखै सोई जग जीति है।
'देवीदास' देखौ ज्ञानी संकरकी सावधानी, सब बिधि लायक पै राखै राजनीति है॥—देवीदास

परानुग्रहव्यग्र शिवका हलाहलपान

(लेखक—विद्यालङ्कार पं० श्रीरामकुमारजी जोशी)

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥

वर्तमान जगत्के प्राणी अनेकों दुःखोंके भारसे पीड़ित और भ्रमित हैं। दुःखोंका भार भी इतना गुरु हो चला है कि उसका वहन करना भी अत्यन्त कठिन हो गया है। इन दुःखोंके भारसे शीघ्रातिशीघ्र छुटकारा पानेके उपाय जाननेकी बड़ी आवश्यकता है। प्राचीन ग्रन्थोंको देखनेसे पता लगता है कि पहले जब कभी संसारपर विपत्ति और दुःख पड़ा तब इसने अपने इष्टदेवका ध्यान किया और देवानुग्रहद्वारा इसका मनोरथ सिद्ध हो गया। इस समय भी दुःखपीड़ित संसारको शीघ्रातिशीघ्र दुःख-मोचन करानेवाले देवानुग्रहकी बड़ी आवश्यकता है। अब यहाँ यह विचारणीय है कि सब देवोंमें ऐसा महान् देव कौन है जो अविलम्ब संसारको दुःख और भयसे बचाकर सुखमय बना सकता हो। इसके लिये शास्त्र, पुराण और सन्त-मुनियोंने भगवान् श्रीशिवको ही उपयुक्त बतलाया है। अहा ! यह शिव-नाम ही कैसा कल्याणकारी और मधुर है, जिसके उच्चारणमात्रसे हृदय उल्लसित हो जाता है। वास्तवमें श्रीशिव बड़े ही करुणासागर और सहज-दयालु हैं। त्रिदेवोंमें इनके सदृश अति शीघ्र भक्तोंपर द्रवित होनेवाला कोई नहीं। आप भक्तिपूर्वक एक लोटा जलमात्रके चढ़ानेसे ही प्रसन्न होकर मनोरथ पूर्ण करते हुए निज पद प्रदान करते हैं। वृत्रासुर जब श्रीशिवकी सकाम आराधनामें अपना शरीर काट-काटकर हवन करने लगा तब महाकारुणिक श्रीशंकरजीने अग्निकुण्डसे प्रकट हो उसे अपना अलभ्य दर्शन देकर दोनों भुजाओंसे निवारण करते हुए कहा कि—'भाई ! मैं तो जलमात्रके चढ़ानेसे ही प्रसन्न हो जाता हूँ। तूने वृथा ही अपने शरीरको क्यों कष्ट दिया ?'

तमाह चाङ्गालमलं वृणीष्व मे
यथाभिकामं वितरामि ते वरम् ।
प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यता-
महो त्वयात्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥
(श्रीमद्भा० १० । ८८ । २०)

श्रीशिवके उपर्युक्त वचनोंसे यह सहज ही प्रकट हो जाता है कि भगवान् श्रीशङ्कर कितने महाकारुणिक हैं। यह बात श्रीशिवके हलाहलपानसे और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। इसकी सुन्दर कथा श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें है।

एक समय देवता और असुरोंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया। मन्थन होनेपर सर्वप्रथम उसमेंसे महोल्वण हलाहल नामक विष निकला। अति उग्र वेगसे दसों दिशाओंमें नीचेसे उफनकर ऊपर आनेवाले, प्रतीकाररहित विषको देखकर देवतालोग विष्णुभगवान्से भी रक्षा न पाकर, अत्यन्त भीत हो भूतनाथ श्रीशंकरजीकी शरणमें गये। उस समय देवदेव महादेव कैलासपर जगदम्बा पार्वतीके सहित विराजमान थे। सभी देवता समीप जा, प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे—

देवदेव ! महादेव ! भूतात्मन् ! भूतभावन !
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥
त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः ।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥
इत्यादि ।
(श्रीमद्भा० ८ । ७ । २१-२२)

इस प्रार्थनाको सुनकर, श्रीशङ्करजी प्रसन्न हो पार्वतीजीसे बोले कि 'हे प्रिये ! देखो, क्षीर-सागरसे निकले हुए इस कालकूटसे देवताओंको कितना कष्ट हो रहा है, समस्त देवता प्राणोंकी रक्षाके लिये अत्यन्त व्याकुल हैं। अतः इनको अभय देना हमारा अनिवार्य कर्तव्य है, क्योंकि दीनजनोंका रक्षण-पालन करना ही सामर्थ्यवान् पुरुषोंका धर्म है। इसीलिये साधु पुरुष प्राणोंको क्षणभङ्गुर समझ, उनसे दूसरोंकी रक्षा करते हैं। इसलिये इस दुःखसे देवगणोंको बचानेके लिये मैं स्वयं विषपान करता हूँ।' भगवती श्रीपार्वतीजी भी दयालु शंकरको विषपानार्थ प्रस्तुत देखकर अत्यन्त हर्षित हुईं। वे श्रीमहादेवजीका प्रभाव जानती थीं। तदनन्तर करुणाहेतु, भूतभावन भगवान् श्रीशङ्कर दिशाओंमें व्याप्त उस हलाहलको हथेलीपर रखकर चट कर गये। पान करते समय भी करुणामय भगवान् श्रीशङ्करजीने दयाको नहीं भुलाया। विषपानके द्वारा तो

उन्होंने देवगणोंपर दया की और हृदयस्थित ईश्वरको कहीं वह विष स्पर्श न हो जाय, एतदर्थ उन्होंने विषको कण्ठमें ही रोक रखकर मानो ईश्वरपर भी दया की। हलाहल विष कण्ठमें नील वर्ण धारणकर श्रीशिवजीका भूषणस्वरूप हो गया। इसी कारण श्रीशङ्करको 'नीलकण्ठ' भी कहते हैं। कहा जाता है कि विषपान करते समय शिवजीकी हथेलीसे खिसककर जो थोड़ा-सा विष गिर गया था वह बिच्छू, साँप, विषमय ओषधि तथा अन्य डँसनेवाले जहरीले जीवोंने ग्रहण किया था। इसी कारण ये सब उग्र हो गये। इन सबकी उग्रताको देखते हुए इसका विचार सहज किया जा सकता है कि वह हलाहल विष कितना उग्र रहा होगा! उसे श्रीशिवके सिवा और कौन ग्रहण कर सकता था? इसीलिये कहा है—

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥
(श्रीमद्भा० ८। ७। ४४)

अर्थात् 'साधु पुरुष दूसरोंके दुःखोंसे ही दुखी हुआ करते हैं। उनका दीनजनोंपर दयार्द्र होकर प्रेम करना ही परब्रह्मका परमाराधन है।' परोपकारपरायण पुरुषपर भगवान् श्रीशङ्कर बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं, अतएव दीन और आर्तजनोंपर दया और प्रेम रखना भी आशुतोष श्रीशङ्करजीको प्रसन्न करनेका एक प्रधान उपाय है। प्रिय पाठकगण! यदि हम भगवान् शिवका भजन करते हुए सब सांसारिक दीन-दुखीजनोंके प्रति प्रेम और सहानुभूतिका भाव रक्खें तो करुणाहेतु देवदेव महादेव श्रीशङ्करजी हम सबपर अति शीघ्र प्रसन्न हो सकते हैं। और इसप्रकार उनके प्रसन्न होनेपर हमारे सारे दुःखोंका नाश होकर हमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चतुर्वर्गकी सहज ही प्राप्ति हो सकती है।

इति शम्।

शिव-नामकी महिमा

(लेखक—श्रीजनकनन्दनसिंहजी)

न यस्य कालो न च बन्धमुक्ती
न यः पुमान्न प्रकृतिर्न विश्वम्।
विचित्ररूपाय शिवाय तस्मै
नमः परस्मै परमेश्वराय॥

सब शास्त्रोंमें भगवान्के दो रूप माने गये हैं—एक सगुण और दूसरा निर्गुण। वास्तवमें दोनों रूप परस्पर अभिन्न हैं। निर्गुण ब्रह्ममें निष्क्रियता होनेसे गुणका होना सम्भव नहीं है; तथापि वही मायामें प्रविष्ट होकर भक्तोंके रक्षणार्थ, धर्म-संस्थापनार्थ, जप-पूजा इत्यादिके अर्थ निर्गुणसे सगुण रूप धारण कर लेते हैं।

स्वरूप-भेदसे उपासनामें भी भेद है। एक निर्गुण उपासना कहलाती है और दूसरी सगुण उपासना। इनमें निर्गुण उपासना अत्यन्त क्लिष्ट है। जबतक मनुष्य परमात्माके निर्गुण स्वरूपको अच्छी तरहसे नहीं समझ लेता तबतक सगुणोपासनाको छोड़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। शिवपुराण-वायुसंहितामें सगुणोपासनाके आठ भेद बताये गये हैं। यथा—भक्तोंमें प्रीति, पूजाका अनुमोदन, स्वयं अर्चा करना, प्रभुके निमित्त अङ्गोंकी चेष्टा करना, कथा-श्रवणमें भक्ति, स्वर, नेत्र और अङ्गोंकी विक्रिया, मेरा नित्य स्मरण और केवल मेरा ही आश्रय। इसप्रकारके चिह्न जिसमें हों वही सर्वश्रेष्ठ है, चाहे वह म्लेच्छ ही क्यों न हो—

मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायाञ्चानुमोदनम्।
स्वयमप्यर्चनञ्चैव मदर्थं चाङ्गचेष्टितम्॥
मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रियाः।
ममानुस्मरणं नित्यं यश्च मामुपजीवति॥
एवमष्टविधं चिह्नं यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्त्तते।
(शिव पु० वा० सं० उ० अ० ११)

यद्यपि श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन इत्यादि सभी समान फलप्रद हैं, तथापि इनमें स्मरण विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। निरन्तर नामस्मरणसे मनुष्यका अन्तःकरण शुद्ध होकर हृदयमें एक प्रकारकी आत्मशक्ति उत्पन्न होती है जो बहुत शीघ्र ही उसको अपना अभीष्ट फल प्राप्त करा देती है। यों तो भगवान्के अनेक नाम हैं, किन्तु भगवान् स्वयं कहते हैं—हे वरानने, मेरा 'शिव' यह नाम उत्तमोत्तम है, वही परब्रह्म है। 'शिव' यह नाम मुझ ब्रह्मकी अभिव्यक्ति है। शिव-नामसे यथार्थमें मुझे ही समझो। जो वेदान्तसे प्रतिपादित, अव्यक्त परब्रह्म है, द्व्यक्षर 'शिव' भी वही है। दो अक्षरोंका यह 'शिव'

नाम परब्रह्मस्वरूप एवं तारक है, इससे भिन्न कोई तारक नहीं है–

शिव इत्यस्ति यन्नाम तद्धि नामोत्तमोत्तमम् ।
तदेव परमं ब्रह्म तदेव हि वरानने ॥
शिवनामस्वरूपेण व्यक्तं ब्रह्माहमेव हि ।
शिवनामाहमेवेति विजानीहि यथार्थतः ॥
यदव्यक्तं परं ब्रह्म वेदान्तप्रतिपादितम् ।
तदेवेदं विजानीहि शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥
तारकं ब्रह्म परमं शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
नैतस्मादपरं किञ्चित् तारकं ब्रह्म सर्वथा ॥

(शिवरहस्य-सप्तमांश अ० २३)

भगवान् मायापति हैं, इस हेतु भगवान‌के नामके साथ उनकी मायाका भी नाम होना जरूरी है। शक्ति शक्तिमान्‌से भिन्न नहीं है और न वह कभी शक्तिमान‌को छोड़कर रह ही सकती है। दोनोंका नाम एक साथ मिलाकर उच्चारण करनेकी प्रथा प्रायः सभी सम्प्रदायोंमें देखी जाती है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके कृष्णजन्मखण्डमें नारायणने नारदसे कहा है कि प्रकृति जगत्‌की माता है तथा पुरुष जगत्‌के पिता हैं। तीनों लोकोंकी माताका दर्जा पितासे सौगुना अधिक है, इससे 'हे राधाकृष्ण, हे गौरीशङ्कर' ऐसे प्रयोग वेदोंमें मिलते हैं। 'हे कृष्णराधे' 'हे ईशगौरी' यह कोई नहीं कहता। जो पहले पुरुष‌के नामका उच्चारण करके पश्चात् प्रकृतिके नामका उच्चारण करता है वह मनुष्य वेदवाक्यका उल्लङ्घन करनेवाला मातृद्वेषी होता है। जो आदिमें राधाका नाम लेकर पश्चात् परात्पर कृष्णका नाम लेता है वही पण्डित योगी अनायास ही गोलोकको प्राप्त करता है।

भगवान‌का नाम चलते-फिरते, दिन रात, उठते-बैठते, जैसे हो वैसे ही जपना चाहिये, इसमें कोई बाधा नहीं है। नाम-जपमें किसी नियम-संयमकी आवश्यकता नहीं है और देश-कालका भी विचार नहीं है–

अशुचिर्वा शुचिर्वापि सर्वकालेषु सर्वदा ।
नामसंस्मरणादेव संसारान्मुच्यते क्षणात् ॥

(पद्मपु० पातालखण्ड)

न देशनियमो राजन् ! न कालनियमस्तथा ।
विद्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्त्तने ॥
न देशकालनियमः शौचाशौचविनिर्णयः ।
परं संकीर्त्तनादेव रामरामेति मुच्यते ॥
कालोऽस्ति यज्ञे दाने वा स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे ।
विष्णुसंकीर्त्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीपते ॥
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि पिबन् भुञ्जञ्जपंस्तथा ।
कृष्ण कृष्णेति सङ्कीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात् ॥

(वैश्वानरसंहिता—नारदवाक्य)

आसने च तथा निद्राकाले भोजनकर्मणि ।
क्रीडने गमने नित्यं राममेव विचिन्तयेत् ॥

(आनन्दरामायण—मनोहरकाण्ड)

निकटा एव दृश्यन्ते कृतान्तनगरद्रुमाः ।
शिवं स्मर, शिवं ध्याय, शिवं चिन्तय सर्वदा ॥

(सौरपुराण अ० ४७)

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(गीता)

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपञ्जाग्रदुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि शिवं सर्वत्र चिन्तयेत् ॥

(शिवधर्मपुराण अ० ११)

'जो मनुष्य पवित्रता अथवा अपवित्रताका विचार न कर सदा-सर्वदा नाम-स्मरणमें रत रहता है वह बहुत शीघ्र संसार (आवागमन) से मुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुके नाम-स्मरणमें न देशका नियम है, न कालका–यह निश्चय समझो। न तो देश-कालका नियम है और न पवित्रता अथवा अपवित्रताका विचार है, मनुष्य केवल राम-नामके कीर्तनसे मुक्त हो जाता है। यज्ञमें, दानमें, स्नानमें तथा जपमें भी कालका विचार है; किन्तु हे राजन् ! विष्णुके कीर्तनमें कालका विधान बिलकुल नहीं है। घूमता हुआ, बैठा हुआ, सोता हुआ, पीता हुआ, खाता हुआ तथा जपता हुआ कृष्णनामके संकीर्तनमात्रसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है। बैठे हुए, सोते हुए, खाते हुए, खेलते हुए तथा चलते-फिरते सदा रामका ही चिन्तवन करते रहना चाहिये। अरे मूर्ख ! यमपुरीकी वृक्षावली निकट ही दिखलायी देती है; इसलिये शिवका स्मरण कर, शिवका ही ध्यान कर और शिवका ही सर्वकालमें स्मरण कर। चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते तथा आँख खोले हुए और मूँदे हुए, पवित्रतामें अथवा अपवित्रतामें सर्वत्र शिवका ही चिन्तन करना चाहिये।'

नाम-जप करनेकी विधि महर्षि पतञ्जलि यह बतलाते हैं कि नाम और रूप दोनोंको मिलाकर जप करना चाहिये,

अर्थात् नामके साथ नामीके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये और उसमें अपनेको तन्मय कर देना चाहिये—

तस्य वाचकः प्रणवः ।
तज्जपस्तदर्थभावनम् ।
ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।
(योगसूत्र)

नाम और नामीका गोस्वामी तुलसीदासजी क्या सुन्दर वर्णन करते हैं—

देखिय रूप नाम आधीना । रूपज्ञान नहिं नाम बिहीना ॥
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे । आवत हृदय सनेह बिसेषे ॥
रूप बिसेष नाम बिनु जाने । करतलगत न परत पहिचाने ॥

शास्त्रोंमें नाम-जपका जो फल कहा है वह बार-बार बहुत दिनोंतक नाम-जप करनेसे भी नहीं मिलता, इसका कारण महात्माओंने दस प्रकारके नामापराधोंका अज्ञान बतलाया है । इन दस अपराधोंसे बचकर नाम-जप करनेसे अति शीघ्र फल होता है ।

सत्पुरुषोंकी निन्दा; शिव और विष्णुके गुणों और नामोंमें भेद-बुद्धि; गुरुकी निन्दा करना; श्रुति और शास्त्रोंकी निन्दा; भगवान्‌के नाममें अर्थवादकी कल्पना करना; नामके बलपर पाप करना; धर्म, व्रत, दान, होम आदि शुभ कर्मोंके समान ही नाम-स्मरणको भी एक शुभ कर्म मानना; नामविमुख एवं अश्रद्धालु लोगोंके सुनते नामका उपदेश करना; नाम-माहात्म्य सुनकर भी उसमें प्रेम नहीं करना और अहंता, ममताको ही परम पुरुषार्थ मानकर उन्हींमें रत रहना और नामपरायण नहीं होना—ये दस नामापराध हैं । यदि प्रमादवश इन दसोंमेंसे कोई-सा भी अपराध हो जाय तो उससे छूटकर शुद्ध होनेका उपाय भी पुनः नाम-कीर्तन ही है । भूलके लिये पश्चात्ताप करते हुए प्रभुनाम-कीर्तनसे नामापराध छूट जाता है—

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम् ।
अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च ॥
(पद्मपुराण)

निरन्तर नाम-कीर्तनसे सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं । नामके यथार्थ माहात्म्यको समझकर प्रेमपूर्वक नाम-जप करनेसे अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर भगवद्भक्तिरूप मधुर फलकी प्राप्ति होती है और सकाम मनुष्यको अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थोंकी सिद्धि अनायास ही हो जाती है । भगवान् शिवके नामका कुछ माहात्म्य यहाँ लिखा जाता है । नाम-माहात्म्यसे सब शास्त्र भरे पड़े हैं, यहाँ केवल कुछ वचनोंका अनुवाद मात्र दिया जाता है (विस्तार-भयसे श्लोक नहीं दिये गये)—

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'महादेव, महादेव' कहनेवालेके पीछे-पीछे मैं नामश्रवणके लोभसे अत्यन्त डरता हुआ जाता हूँ । जो 'शिव' शब्दका उच्चारण करके प्राणोंका त्याग करता है वह कोटि जन्मके पापोंसे छूटकर मुक्तिको प्राप्त करता है । 'शिव' शब्द कल्याणवाची है और 'कल्याण' शब्द मुक्तिवाचक है; वह मुक्ति भगवान् शङ्करसे ही प्राप्त होती है, इसीलिये वे 'शिव' कहलाते हैं । धन तथा बान्धवोंके नाश हो जानेके कारण शोकसागरमें मग्न हुआ मनुष्य 'शिव' शब्दका उच्चारण करके सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त करता है । 'शि' का अर्थ है पापोंका नाश करनेवाला और 'व' कहते हैं मुक्ति देनेवालेको । भगवान् शङ्करमें ये दोनों गुण हैं, इसीलिये वे 'शिव' कहलाते हैं । 'शिव' यह मङ्गलमय नाम जिसकी वाणीमें रहता है उसके करोड़ जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं । 'शि' का अर्थ है मङ्गल और 'व' कहते हैं दाताको, इसलिये जो मङ्गलदाता है वही शिव है । भगवान् शिव विश्वभरके मनुष्योंका सदा 'शं' कल्याण करते हैं और 'कल्याण' मोक्षको कहते हैं । इसीसे वे 'शङ्कर' कहलाते हैं । ब्रह्मादि देवता तथा वेदका उपदेश करनेवाले जो कोई भी संसारमें महान् कहलाते हैं उन सबके देव अर्थात् उपास्य होनेसे वे ऋषि 'महादेव' कहे जाते हैं । अथवा महती अर्थात् विश्वभरमें पूजित जो मूल प्रकृति ईश्वरी है उस प्रकृतिद्वारा पूजित देव 'महादेव' कहलाते हैं । संसारमें स्थित सारी आत्माओंके ईश्वर (स्वामी) होनेसे वे 'महेश्वर' हैं । 'महादेव', 'महादेव' इसप्रकारकी जो रट लगाता है उसके पीछे-पीछे मैं नाम-श्रवणके लोभसे सन्तुष्ट हुआ घूमता हूँ । (ब्रह्मवैवर्तपुराण—ब्रह्मखण्ड)

शिवजीने मृत्युको देखकर कहा कि इसने मरणकालमें मेरा नाम लिया है । मुझे लक्ष्य करके अथवा और किसी वस्तुके अभिप्रायसे जो मेरा नाम एकाध अक्षर जोड़कर अथवा घटाकर भी कहता है उसे मैं सत्य ही अपना लोक प्रदान करता हूँ । इसने मरते समय 'प्रहर' शब्दका उच्चारण किया है । केवल 'हर' शब्द ही परम पदका देनेवाला है । फिर इसने तो 'प्र' शब्द अधिक कहा है । यमराजसे मेरा

आदेश कह दो कि जो 'शिव' नामके जपनेवाले हैं उन्हें तुम नमस्कार किया करो। जो लोग शिवको नमस्कार करते हैं उनकी पूजा करते हैं, उनके नाम-गुणका कीर्त्तन करते हैं, उनकी उपासना करते हैं, अथवा दास्यभावसे उनकी भक्ति करते हैं, श्रुतिमें वर्णित पञ्चाक्षरमन्त्र–'नमः शिवाय' का जप करते हैं तथा 'शतरुद्रिय' का अनुष्ठान करते हैं, उनपर मेरा ही शासन है–इसमें तनिक भी विचार न करना।

(पद्मपुराण-पातालखण्ड–शिवमृत्युसंवाद)

जो गति योगियों और काशीमें शरीर छोड़नेवालोंकी होती है वही गति मेरे नामका कीर्त्तन करनेवालोंको प्राप्त होती है। जो मनुष्य मेरे मुक्तिदायक–महेश, पिनाकपाणि, शम्भु, गिरीश, हर, शङ्कर, चन्द्रमौलि, विश्वेश्वर, अन्धकरिपु, पुरसूदन इत्यादि नामोंका उच्चारण करते हुए मेरी अर्चा करते हैं वही धन्य हैं। जो नीललोहित, दिगम्बर, कृत्तिवास, श्रीकण्ठ, शान्त, निरुपाधिक, निर्विकार, मृत्युञ्जय, अव्यय, निधीश, गणेश्वर—इत्यादि नामोंका उच्चारण करते हुए मेरी पूजा करते हैं वे धन्य हैं। मेरे नामरूपी अमृतका पान करनेवाले और निरन्तर मेरे चरणोंका पूजन करनेवाले तथा मेरे लिङ्गोंका पूजन करनेवाले मेरे प्रिय भक्त पुनः माताका दूध पीनेकी न तो इच्छा करते हैं और न उन्हें फिर वह प्राप्त होता है। वे तो सारे दुःखोंसे छूटकर मेरे लोकमें अनन्त कालतक निवास करते हैं। महेशरूपी नामकी दिव्य अमृतधारासे परिप्लावित मार्गमेंसे होकर भी जो निकल जाते हैं वे कदापि शोकको प्राप्त नहीं होते।

(शिवरहस्य-सप्तमांश, प्रथम अध्याय)

'भगवान् श्रीशिव यमदूतोंको आज्ञा देते हैं कि आज कोई महापापी ब्रह्महत्या करनेवाला मरा है; उसके पापोंकी गिनती ही नहीं है। उसने मरते समय जो वाक्य कहे उन्हें मैं कहता हूँ, सुनो। यह 'आहर अन्नम्' (अन्न लाओ), 'संहर एतौ' (इनको मारो), 'प्रहर प्रहर' (प्रहार करो, प्रहार करो) यह कहता हुआ वह पापी ब्रह्महत्यारा मर गया। किन्तु उपर्युक्त वाक्योंके उच्चारणसे उसके सारे पाप नष्ट हो गये। 'आहर' इत्यादि वाक्योंके अन्तर्भूत 'हर' नाम पापोंका नाश करनेवाला है। उसीका मरणकालमें उच्चारण होनेसे उसके सारे पापोंका नाश हो गया। बुद्धिपूर्वक अथवा अबुद्धिपूर्वक जो लोग मरणके समय मेरे नामका उच्चारण करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं। 'प्रहर प्रहर' इन वाक्योंमें मेरे नामका जो दो बार उच्चारण हुआ वही मेरी पूजाके लिये पर्याप्त हो गया। यह मैं भुजा उठाकर डंकेकी चोट कहता हूँ। मृत्युकालमें जो मेरे नामोंका स्मरण करते हैं मैं उन्हें शीघ्र ही मोक्ष देता हूँ, यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है। 'आहर' इत्यादि वाक्योंमें उपसर्गोंको हटा देनेसे मेरे मुक्तिदायक नाम ही शेष रह जाते हैं। मृत्युकालमें अगर कोई महापातकी भी मेरा नाम लेता है तो उसे मैं उस नामके प्रभावसे मोक्ष दे देता हूँ। मेरे जितने नाम हैं उन सबमें मुक्ति देनेका स्वभाव है। मृत्युकालमें मेरा नाम लेकर अनेक मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर चुके हैं। नामका माहात्म्य ही ऐसा है, इसमें किसी प्रकारका आश्चर्य नहीं करना चाहिये। 'हर' यह नाम अनेकों पापोंको हरता है। मैं पापोंको हरनेवाला हूँ, इसीलिये मुझे लोग 'हर' कहते हैं। हालहीमें महापाप करके अन्तकालमें शिवस्मरण करनेसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसीलिये हे सौम्य! तुम उसे यहाँ तुरन्त ले आओ।'

श्रीविष्णु ब्रह्माजीसे कहते हैं कि जो 'शम्भु, शम्भु, महेश' इन नामोंका उचारण बराबर आनन्दपूर्वक करते हैं उनको गर्भवासका भय नहीं होता। 'हे शिव! हे परमेश' !!–इस प्रकार आनन्दपूर्वक जो निरन्तर भगवान् शिवका नाम लेते हैं उन्हें गर्भमें आना नहीं पड़ता। इसप्रकार यहाँ बहुत-से श्लोकोंमें नाममाहात्म्य कहा है, किन्तु विस्तारभयसे थोड़ा ही लिखा है। जो प्रतिदिन आनन्दपूर्वक शङ्करका नाम लेते हैं वे धन्यवादके पात्र हैं–यह हम सत्य-सत्य कहते हैं। संसाररूपी घोर सागरसे तरनेके लिये शङ्करनामरूप ही नौका है। इसको छोड़कर संसार-सागरसे पार होनेका कोई और उपाय नहीं है। हे ब्रह्मा! यह निर्मल शिव-नाम मधुरसे भी मधुर है और मुक्तिको देनेवाला तथा संसारभयका नाश करनेवाला है। (शिवरहस्य ७।२०)

पूर्वकालमें एक पापी, कुष्ठ-रोगसे पीड़ित ब्राह्मण कीकट (मगध) देशमें रहता था। वह सदा ब्रह्महत्यादि पाप किया करता था। उस ब्राह्मणको वृद्धावस्थामें सोमवारके दिन पुत्र पैदा हुआ। उसने हर्षसे उस पुत्रका नाम 'सोमवासर' रख दिया। वह ब्राह्मण अपने पुत्रको बराबर हर काममें 'सोमवासर, सोमवासर' कहकर पुकारा करता था। एक दिन उस ब्राह्मणको साँपने काट लिया। विषकी ज्वालासे पीड़ित होकर बार-बार 'सोमवासर, सोमवासर' पुकारते-पुकारते ब्राह्मणका देहान्त हो गया। उसी समय शिवके गण तुरन्त एक सुन्दर विमान लाये और उसको उसमें चढ़ाकर सब

देवताओंसे पूजित कराते हुए कैलास ले गये। (शिवरहस्य ७। २०)

भगवान् शिव स्वयं यमराजसे कहते हैं—

जो पुरुष प्रसङ्गसे भी मेरा नाम उत्साहपूर्वक रटता है यह सर्वथा पापोंसे छूट जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे यमराज! मेरा नाम पापोंके वनको जलानेमें दावानल-के समान है। मेरे एक नामका उच्चारण करते ही पापोंका समूह तुरन्त नष्ट हो जाता है। मेरे नामका श्रद्धापूर्वक स्मरण करनेपर पाप कहाँ ठहर सकते हैं? क्योंकि पापोंके झुण्डका नाश करनेमें तो उसे वज्रपातकी उपमा दी गयी है। जिस-प्रकार कालाग्निकी ज्वालाओंसे करोड़ों पर्वत जल गये थे, उसी प्रकार मेरे नामरूपी अग्निसे करोड़ों महापातक नष्ट हो जाते हैं। मैं उस चाण्डालको भी निःसन्देह घोर संसारसमुद्रसे तार देता हूँ जिसका चित्त मेरे नाम-स्मरणमें अनुरक्त है। जिसने पापोंके झुण्डका नाश करनेवाला मेरा नाम अन्तकाल-में स्मरण कर लिया उसने घोर संसारसमुद्रको चुटकियोंमें पार कर लिया समझो। मेरे नामका स्मरण मेरे ही स्मरणके तुल्य है; और मेरी स्मृति हो जानेपर पाप कहाँ ठहर सकते हैं? हे धर्मराज! किसी पुरुषके अन्दर पाप तभीतक ठहरते हैं जबतक कि वह महापातकोंका नाश करनेवाले मेरे नामका स्मरण नहीं करता। करोड़ों महापातकोंका नाश तभीतक नहीं होता जबतक मन मेरे नाम-स्मरणमें लीन नहीं हो जाता। इसने महापातकोंका नाश करनेवाले मेरे 'सोम' नामका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ा, इसलिये इसकी मुक्तिमें कोई सन्देह ही नहीं हो सकता। हे यम! मैं तुम्हारे हितकी एक बात और कहता हूँ। वह यह है कि तुम प्रतिदिन मेरे भक्तोंकी यत्नपूर्वक पूजा किया करो, क्योंकि वे मुझे सर्वदा प्यारे हैं। (शिव० सप्त० अ० २०)

ब्रह्माजी महर्षि गौतमसे कहते हैं—

'शिवनामरूप मणि जिसके कण्ठमें सदा विराजमान रहती है वह नीलकण्ठका ही स्वरूप बन जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। हे द्विजवर! तुम नित्य शङ्करका पूजन करो और शिवनामामृतका पान करो, शिवनामसे बढ़कर कोई दूसरा अमृत नहीं है। मृत्युके समय 'शिव' ये दो अक्षर भगवान् शङ्करकी कृपाके विना मनुष्यके होठोंपर नहीं आते।' गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

जनम-जनम मुनि जतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं॥

मुझ-जैसे अस्थिरचित्त पुरुष शिवनामस्मरणके फलका वर्णन नहीं कर सकते; स्वयं शङ्कर ही इस कार्यको कर सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया—'राम न सकहिं नाम-गुन गाई।' 'शिवनामरूपी कुल्हाड़ीसे संसाररूपी वृक्ष जब एक बार कट जाता है तो फिर वह दुबारा नहीं जमता। पाप ही संसाररूपी वृक्षकी जड़ोंकी जड़ है और शिवनामका एक बार जप करनेसे ही उसका नाश हो जाता है।' (शिव० ७। २२)

यमराज भी गौतमजीसे कहते हैं—

महान्-से-महान् पापी भी अथवा जिसने जीवनमें कोई भी पाप न छोड़ा हो वह अन्तकालमें यदि शिवनामका उच्चारण कर ले तो वह फिर मेरा द्वार नहीं देख सकता। शिव-शब्दका उच्चारण किये बिना ब्राह्मण भी मुक्त नहीं हो सकता और शिव-शब्दका उच्चारण कर एक चाण्डाल भी मुक्त हो सकता है। यों तो शिवजीके सभी नाम मोक्षदायक हैं; किन्तु उन सबमें शिव नाम सर्वश्रेष्ठ है, उसका माहात्म्य गायत्रीके समान है। (शिव० ७। २२)

श्रीमद्भागवतमें भगवतीका वाक्य है—

'शिव' इस द्व्यक्षर नामका एक बार प्रसङ्गवश उच्चारण करनेसे भी मनुष्यके पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। आश्चर्य है कि आप उन पुण्यश्लोक, अलङ्घ्यशासन भगवान् शिवका विरोध करते हैं। इससे बढ़कर अमङ्गल क्या हो सकता है?

सौरपुराण (अ० ६४) में लिखा है—

जो बिल्ववृक्षके नीचे बैठकर तीन रात उपोषित रहकर पवित्रतापूर्वक शिवनामका एक लाख जप करता है वह भ्रूणहत्याके पापसे छूट जाता है।

जितने भी स्थूल अथवा सूक्ष्म पाप हैं वे सारे-के-सारे केवल क्षणभर शिवका चिन्तन करनेसे तुरन्त नष्ट हो जाते हैं।

जलके अन्दर निमग्न होकर शिवका ध्यान करते हुए प्रसन्नचित्तसे 'हर' इस नामको केवल आठ बार जपनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाता है।

महादेवका स्मरण करनेवाले यदि पापी भी हों तो उन्हें महात्मा ही समझना चाहिये, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।

जो लोग भगवान् महेश्वरके नामोंका अज्ञानपूर्वक भी

उच्चारण करते हैं भगवान् भोलेनाथ उन्हें भी मुक्ति दे डालते हैं, इससे अधिक और क्या चाहिये ? (सौ० पु० अ० ३)

हे महादेव ! आपके अतिरिक्त संसारमें कुछ नहीं है। इस पृथिवीतलपर महान्‌-से-महान् पाप करके भी मनुष्य आपके नाम-सङ्कीर्तनके प्रभावसे स्वर्गको प्राप्त कर लेता है।

(पद्मपु० नागर० अ० १)

शिव-नामका उच्चारण करनेवालेको नरक अथवा यमराजका भय नहीं होता।

ब्रह्माजी यमदूतोंसे कहते हैं—

जो बैठे हुए, सोते हुए, चलते-फिरते दिन-रात शिव-नामका कीर्तन करते रहते हैं उनपर तुम्हारा अधिकार नहीं है। (शि० पु० ध० सं० अ० १६)

जिसने 'शिव' अथवा 'रुद्र' अथवा 'हर' इन द्व्यक्षर नामोंमेंसे किसीका एक बार भी उच्चारण कर लिया वह (मरनेके बाद) अवश्य रुद्रलोकको जाता है।

(शि० पु० ध० सं० अ० १५)

जो 'नमः शिवाय' इस मन्त्रका उच्चारण करता है उसका मुख देखनेसे निश्चय ही तीर्थ-दर्शनका फल होता है।

जिसके मुखमें शिव-नाम तथा शरीरपर भस्म और रुद्राक्ष रहता है उसके दर्शनसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं।

(शि० पु० शा० सं० अ० ३०)

जो पुरुष अन्त-समयमें शिवका स्मरण करता है वह चाहे ब्रह्महत्यारा हो, चाहे शराबी हो, चोर हो अथवा गुरुस्त्रीगामी ही क्यों न हो, शिवके साथ सायुज्यको प्राप्त होता है। (सौर० पु० अ० ६६)

जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक भगवान् शम्भुके नामोंका कीर्तन करता है, मुक्ति सदा उसके करतलगत रहती है।

(सौर० पु० अ० ४)

जो मनुष्य प्रसङ्गवश, कौतूहलसे, लोभसे, भयसे अथवा अज्ञानसे भी हर-नामका उच्चारण करता है वह सारे पापोंसे छूट जाता है। (सौर० पु० अ० ७)

शिवनामके स्मरणसे कर्मोंकी न्यूनता पूर्ण हो जाती है—

यत्पादपद्मस्मरणाद्यच्छ्रीनामजपादपि ।
न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम् ॥

(शि० पु० कै० अ० ९ । ५६)

कलियुगमें शिव-नाम सब नामोंसे बढ़कर है—

ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः ।
द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः ॥

(कूर्मपु० अ० १८)

नाम-कीर्तनका सबको अधिकार है—

नामसङ्कीर्त्तने ध्याने सर्व एवाधिकारिणः ।

(शिव-गीता)

परमात्माके विशिष्ट नाम ये हैं—

न च नामानि रूपाणि शिवस्य परमात्मनः ।
तथापि मायया तस्य नामरूपे प्रकल्पिते ॥
शिवो रुद्रो महादेवः शङ्करो ब्रह्म सत् परम् ।
एवमादीनि नामानि विशिष्टानि परस्य तु ॥

(सूतसं० यज्ञवै० खं० अ० २७)

शिवशङ्कररुद्रादिशब्दाभ्यासश्च सादरम् ।
देवदेवस्य विप्रेन्द्रा महाप्रीतिकरं सदा ॥
कुलं पवित्रं पितरः समुद्धृता
वसुन्धरा तेन च पाविता द्विजाः ।
सनातनोऽनादिरनन्तविग्रहो
हृदि स्थितो यस्य सदैव शङ्करः ॥

शिव-नामकी महिमा कहाँतक कही जाय ? पुष्पदन्ताचार्यने अपने महिम्नःस्तोत्रमें कहा है कि स्याहीके लिये तो काजलका एक पहाड़ हो और समुद्रकी दावातमें उसे भरकर रक्खा जाय, कल्पवृक्षकी टहनियोंकी कलम बनायी जाय और पृथिवीको कागज बनाकर भगवती सरस्वती अनन्त कालतक लिखती रहें तब भी हे प्रभो ! आपके गुणोंका अन्त नहीं आ सकता। भला, जब माता सरस्वती ही भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं तब दूसरा कोई इस कार्यको क्या कर सकता है ? इसी बहाने भगवान्‌का यत्किञ्चित् स्मरण हो जाय, केवल इस हेतुसे कुछ श्लोकार्थोंका संग्रह प्रेमी पाठकोंके लिये कर दिया गया है। भगवान्‌का नाम-कीर्तन जीवके लिये परम अवलम्बन है, इससे बड़ा सहारा और कोई हो ही नहीं सकता। नामपर विश्वास करनेवाले मनुष्यको इसके प्रमाणकी आवश्यकता ही नहीं होती। जिसने भगवन्नामका आश्रय ले लिया वह स्नेहमयी जननीकी सुखद गोदकी भाँति भगवान्‌की निरापद गोदमें सदाके लिये जा बैठा। परन्तु यह

विश्वास और श्रद्धाके बिना नहीं होता। विश्वास हुए बिना मनुष्य भगवन्नामका आश्रय नहीं लेता। भगवन्नामका आश्रय लिये बिना मनसे जगत्‌के विषयोंका आश्रय नहीं छूटता और जबतक विषयोंका आश्रय है तबतक किसी प्रकार भी सच्चे सुख और शान्तिका अनुभव नहीं हो सकता। वासनानाशका सर्वोत्तम उपाय मनको प्रभुके नाम-जप-कीर्तनादिमें बराबर लगाये रहना और विश्वास करना ही है।

आरसमें रस-नीरसमें परके बसमें सुबसे रहतेमें।
रोसमें औ अफसोसमें जोसमें होस अहोस समै लहतेमें॥
आस-निरास अवास-प्रवासमें, हास-बिलास हिये चहतेमें।
बासर-रैन बितीत हो मेरी सदाशिव-ईश-शिवा कहतेमें॥

'सत्यं शिवं सुन्दरम्'

शिव-विष्णुका अलौकिक प्रेम

प्राचीन कालमें सुरमुनिसेवित कैलास-शिखरपर महर्षि गौतमका एक आश्रम था। वहाँ एक बार पाताल-लोकसे जगद्विजयी बाणासुर अपने कुलगुरु—शुक्राचार्य तथा अपने पूर्वज—भक्तशिरोमणि प्रह्लाद, दानवीर बलि एवं दैत्यराज वृषपर्वाके साथ आया और महर्षि गौतमके सम्मान्य अतिथिके रूपमें रहने लगा। एक दिन प्रातःकाल वृषपर्वा शौच-स्नानादि नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर भगवान् शङ्करकी पूजा कर रहा था। इतनेमें ही महर्षि गौतमका एक प्रिय शिष्य, जिसका अन्वर्थ नाम शङ्करात्मा था और जो अवधूतके वेशमें उन्मत्तकी भाँति विचरता था, विकराल रूप बनाये वहाँ आ पहुँचा और वृषपर्वा और उनके सामने रक्खी हुई शङ्करकी मूर्तिके बीचमें आकर खड़ा हो गया। वृषपर्वाको उसका इसप्रकारका उद्धत-सा व्यवहार देखकर बड़ा क्रोध आया। उसने जब देखा कि वह किसी प्रकार नहीं मानता तो चुपकेसे तलवार निकालकर उसका सिर धड़से अलग कर दिया। जब महर्षि गौतमको यह संवाद मिला तो उनको बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि शङ्करात्मा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय था। उन्होंने उसके बिना जीवन व्यर्थ समझा और देखते-देखते वृषपर्वाकी आँखोंके सामने योगबलसे अपने प्राण त्याग दिये। उन्हें इसप्रकार देहत्याग करते देखकर शुक्राचार्यसे भी नहीं रहा गया, उन्होंने भी उसी प्रकार अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया और उनकी देखा-देखी प्रह्लादादि अन्य दैत्योंने भी वैसा ही किया। बात-की-बातमें ऋषिके आश्रममें शिव-भक्तोंकी लाशोंका ढेर लग गया। यह करुणापूर्ण दृश्य देखकर ऋषिपत्नी अहल्या हृदयभेदी स्वरसे आर्तनाद करने लगीं। उनकी क्रन्दनध्वनि भक्तभयहारी भगवान् भूतभावनके कानोंतक पहुँची और उनकी समाधि टूट गयी। वे वायुवेगसे महर्षि गौतमके आश्रमपर पहुँचे। इसी प्रकार गजकी करुण पुकार सुनकर एक बार भगवान् चक्रपाणि भी वैकुण्ठसे पाँव-पियादे आतुर होकर दौड़े आये थे। धन्य भक्तवत्सलता! दैवयोग-से ब्रह्माजी तथा विष्णुभगवान् भी उस समय कैलासमें ही उपस्थित थे। उन्हें भी कौतूहलवश शङ्करजी अपने साथ लिवा लाये।

भगवान् त्रिलोचनने आश्रममें पहुँचकर अपने कृपा-कटाक्षसे ही सबको बात-की-बातमें जिला दिया। तब वे सब खड़े होकर भगवान् मृत्युञ्जयकी स्तुति करने लगे। भगवान् शङ्करने महर्षि गौतमसे कहा—हम तुम्हारे इस अलौकिक साहस एवं आदर्श त्यागपर अत्यन्त प्रसन्न हैं, वर माँगो। महर्षि बोले—प्रभो, आपने यहाँ पधारकर मुझे सदाके लिये कृतार्थ कर दिया। इससे बढ़कर मेरे लिये और कौन-सी वस्तु प्रार्थनीय हो सकती है? मैंने आज सब कुछ पा लिया। मेरे भाग्यकी आज देवतालोग भी सराहना करते हैं। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। मैं चाहता हूँ आज आप मेरे यहाँ प्रसाद करें।

भगवान् तो भावके भूखे हैं। उनकी प्रतिज्ञा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

इसी भावके वशीभूत होकर उन्होंने एक दिन श्रीरामरूपमें शबरीके बेर और श्रीकृष्णरूपमें सुदामाके तन्दुलोंका भोग लगाया था। उन्होंने महर्षिकी अविचल एवं निश्छल प्रीति देखकर उनका निमन्त्रण तुरन्त स्वीकार कर लिया और साथ ही ब्रह्मा-विष्णुको भी महर्षिका आतिथ्य स्वीकार

करनेको राजी कर लिया। जबतक इधर भोजनकी तैयारी हो रही थी तबतक शङ्कर विष्णुको साथ लेकर आश्रमके एक सुन्दर भवनमें गये और वहाँ एक सुकोमल शय्यापर लेटकर बहुत देरतक प्रेमालाप करते रहे। इसके अनन्तर वे आश्रमभूमिमें स्थित एक सुरम्य तड़ागपर जाकर वहाँ जलक्रीड़ा करने लगे। रँगीले भोलेबाबा भगवान् श्रीहरिके पद्मदलायत लोचनोंपर कमलकिञ्जल्कमिश्रित जल अञ्जलिके द्वारा फेंकने लगे। भगवान्ने उनके प्रहारको न सह सकनेके कारण अपने दोनों नेत्र मूँद लिये। इतनेमें ही भोलेबाबा मौका पाकर तुरन्त उछलकर भगवान्के वृष-सदृश गोल-गोल सुडौल मांसल कन्धोंपर आरूढ़ हो गये। वृषभारोहणका तो उन्हें अभ्यास ही ठहरा, ऊपरसे जोरसे दबाकर उन्हें कभी तो पानीके अन्दर ले जायँ और कभी फिर ऊपर ले आवें। इसप्रकार जब उन्हें बहुत तङ्ग किया तो विष्णुभगवान्ने भी एक चाल खेली। उन्होंने तुरन्त शिवजीको पानीमें दे मारा। शिवजीने भी नीचेसे ही भगवान्की दोनों टाँगें पकड़कर उन्हें गिरा दिया। इसप्रकार कुछ देरतक दोनोंमें पैंतरेबाज़ी और दाँव-पेंच चलते रहे। विमानस्थित देवगण अन्तरिक्षसे इस अपूर्व आनन्दको लूटने लगे। धन्य हैं वे आँखें जिन्होंने उस अद्भुत छटाका निरीक्षण किया।

दैवयोगसे नारदजी उधर आ निकले। वे इस अलौकिक दृश्यको देखकर मस्त हो गये और लगे वीणाके स्वरके साथ गाने। शङ्कर उनके सुमधुर सङ्गीतको सुनकर, खेल छोड़ जलसे बाहर निकल आये और ओदे वस्त्र पहने ही नारदके सुर-में-सुर मिलाकर स्वयं राग अलापने लगे। अब तो भगवान् विष्णुसे भी नहीं रहा गया। वे भी बाहर आकर मृदङ्ग बजाने लगे। उस समय वह समाँ बँधा जो देखते ही बनता था। सहस्रों शेष और शारदा भी उस समयके आनन्दका वर्णन नहीं कर सकतीं। बूढ़े ब्रह्माजी भी उस अनोखी मस्तीमें शामिल हो गये। उस अपूर्व समाजमें यदि किसी बातकी कमी थी तो वह प्रसिद्ध सङ्गीतकोविद पवनसुत हनुमान्जीके आनेसे पूरी हो गयी। उन्होंने जहाँ अपनी हृदयहारिणी तान छेड़ी वहाँ सबको बरबस चुप हो जाना पड़ा। अब तो सब-के-सब निस्तब्ध होकर लगे हनुमान्जीके गायनको सुनने। सब-के-सब ऐसे मस्त हुए कि खान-पानतककी सुधि भूल गये। उन्हें यह भी होश नहीं रहा कि हमलोग महर्षि गौतमके यहाँ निमन्त्रित हैं।

उधर जब महर्षिने देखा कि उनका पूज्य अतिथिवर्ग स्नान करके सरोवरसे नहीं लौटा और मध्याह्न बीता जा रहा है तो वे बेचारे दौड़े आये और किसी प्रकार अनुनय-विनय करके बड़ी मुश्किलसे सबको अपने यहाँ लिवा लाये। तुरन्त भोजन परोसा गया और लोग लगे आनन्दपूर्वक गौतमजीकी मेहमानी खाने। इसके अनन्तर हनुमान्जीका गायन प्रारम्भ हुआ। भोलेबाबा उनके मनोहर सङ्गीतको सुनकर ऐसे मस्त हो गये कि उन्हें तन-मनकी सुधि न रही। उन्होंने धीरे-धीरे एक चरण हनुमान्की अञ्जलिमें रख दिया और दूसरे चरणको उनके कन्धे, मुख, कण्ठ, वक्षःस्थल, हृदयके मध्यभाग, उदरदेश तथा नाभिमण्डलसे स्पर्श कराते हुए मौजसे लेट गये। यह लीला देखकर विष्णु कहने लगे—आज हनुमान्के समान सुकृती विश्वमें कोई नहीं है। जो चरण देवताओंको भी दुर्लभ हैं तथा वेदोंके द्वारा अगम्य हैं, उपनिषद् भी जिन्हें प्रकाश नहीं कर सकते, जिन्हें योगिजन चिरकालतक विविध प्रकारके साधन करके तथा व्रत-उपवासादिसे शरीरको सुखाकर क्षणभरके लिये भी अपने हृदयदेशमें स्थापित नहीं कर सकते, प्रधान-प्रधान मुनीश्वर सहस्रकोटि संवत्सरपर्यन्त तप करके भी जिन्हें प्राप्त नहीं कर सकते उन चरणोंको अपने समस्त अङ्गोंपर धारण करनेका अनुपम सौभाग्य आज हनुमान्को अनायास ही प्राप्त हो रहा है। मैंने भी हजार वर्षतक प्रतिदिन सहस्र पद्मोंसे आपका भक्तिभावपूर्वक अर्चन किया, परन्तु यह सौभाग्य आपने मुझे कभी प्रदान नहीं किया।

मया वर्षसहस्रं तु सहस्राब्जैस्तथान्वहम्।
भक्त्या सम्पूजितोऽपीश पादो नो दर्शितस्त्वया॥
लोके वादो हि सुमहान् शम्भुर्नारायणप्रियः।
हरिः प्रियस्तथा शम्भोर्नैतादृग् भाग्यमस्ति मे॥
(पद्म० पा० ६९। २४७-२४८)

लोकमें यह वार्ता प्रसिद्ध है कि नारायण शङ्करके परम प्रीतिभाजन हैं, परन्तु आज हनुमान्को देखकर मुझे इस बातपर सन्देह-सा होने लगा है और हनुमान्के प्रति ईर्ष्या-सी हो रही है।

भगवान् विष्णुके इन प्रेम-लपेटे अटपटे वचन सुनकर शङ्कर मन-ही-मन मुसकराने लगे और बोले—नारायण! यह

आप क्या कह रहे हैं ? आपसे बढ़कर मुझे और कोई प्रिय हो सकता है ? औरोंकी तो बात ही क्या, पार्वती भी मुझे आपके समान प्रिय नहीं हैं—

न त्वया सदृशो मह्यं प्रियोऽस्ति भगवन् हरे !
पार्वती वा त्वया तुल्या न चान्या विद्यते मम ॥

(पद्म० पा० ६९। २४९)

इतनेमें ही माता पार्वती भी वहाँ आ पहुँचीं। शङ्करको बहुत देरतक लौटते न देखकर उनके मनमें स्त्रीसुलभ शङ्का हुई कि कहीं स्वामी नाराज तो नहीं हो गये। दौड़ी हुई गौतमके आश्रममें पहुँचीं। गौतमकी मेहमानीमें जो कमी थी वह उनके आगमनसे पूरी हो गयी। उन्होंने भी अपने पतिकी अनुमति लेकर महर्षिका आतिथ्य स्वीकार किया और फिर शङ्करजीके समीप आकर उनकी और विष्णु भगवान्‌की प्रणयगोष्ठीमें सम्मिलित हो गयीं। बातों-ही-बातोंमें उन्होंने विनोद तथा प्रणयकोपमें शङ्करजीके प्रति कुछ अवज्ञात्मक शब्द कहे और उनकी मुण्डमाला, पन्नगभूषण, दिग्वस्त्रधारण, भस्माङ्गलेपन और वृषभारोहण आदिका परिहास किया। तब तो विष्णुभगवान्‌से नहीं रहा गया। आप शङ्करकी अवज्ञाको नहीं सह सके और बोल उठे—'देवि ! आप जगत्पति शङ्करके प्रति यह क्या कह रही हैं ? मुझसे आपके ये शब्द सहे नहीं जाते। जहाँ शिवनिन्दा होती हो वहाँ हम प्राण धारण नहीं कर सकते, यह हमारा व्रत है।' यह कहकर वे शिव-गिरिजाके सम्मुख ही नखके द्वारा अपना शिरश्छेदन करनेको उद्यत हो गये। शङ्करजीने बड़ी कठिनतासे उन्हें इस कार्यसे रोका।

किमर्थं निन्दसे देवि देवदेवं जगत्पतिम्।
... ...
यत्रेशनिन्दनं भद्रे तत्र नो मरणं व्रतम्।
इत्युक्त्वाऽथ नखाभ्यां हि हरिश्छेत्तुं शिरो गतः॥
महेशस्तु करं गृह्य प्राह मा साहसं कृथाः।
... ...

(पद्म० पा० ६९। ३३१—३३३)

अहा ! कैसी अद्भुत लीला है ! एक बार रामावतारके समय शङ्करने अपनी स्वामिनीका वेश धारण करनेके अपराधमें सतीशिरोमणि सतीका परित्याग कर दिया था। शिवकी निन्दा करनेवाले वैष्णवो और विष्णुकी अवज्ञा करनेवाले शैवो ! इन प्रसङ्गोंको ध्यानपूर्वक पढ़ो और व्यर्थका दुराग्रह छोड़ शिव-विष्णुकी एकताके रहस्यको समझनेकी चेष्टा करो। (पद्मपुराण पातालखण्डसे)
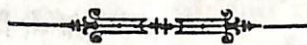
शिव-तत्त्व

(लेखक—श्री'ज्योतिः')

१—सृष्टिके पूर्व चैतन्यमय पुरुषने जब निष्काम और निष्क्रिय दर्शकभावसे स्थूलभावमें प्रकट होनेकी इच्छा की, तब उनकी इच्छाके उन्मेष मात्रमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ईश्वरसदृश कई महापुरुषोंकी सृष्टि हो गयी। इन सबको विदेह भी कहते हैं।

महेश्वरका दूसरा नाम शिव अथवा मङ्गलमय है। उनका अद्भुत वेश है। मनुष्यके समान आकृति होनेपर भी उन्हें पञ्चानन, त्रिनयन, व्याघ्रचर्मपरिहित, भस्मादिलेपित अद्भुत पूर्णदेवभावापन्न मानकर देवाधिदेव महादेवके नामसे भी पुकारते हैं। प्रचलित कथाओंमें उनके और भी कितने ही नाम हैं, यथा—शङ्कर, आशुतोष, भोलानाथ, मृत्युञ्जय, विश्वनाथ इत्यादि।

२—परमात्माने जगत्-निवासियोंको अपने ही बनाये हुए माया-मोहका अतिक्रमण कर मृत्युको जीत लेनेके लिये मृत्युञ्जयको आदर्श बनाकर सिरजा है। वे प्राणि-जगत्‌के आदर्श और गुरु हैं। उनके आश्रयके बिना प्राणि-जगत्‌का कोई भी जीव मृत्युको जीतकर पूर्णबोध ब्रह्म नहीं हो सकता। वे जीवोंके मङ्गलके लिये ध्यानस्थ एवं पूर्णके साथ योगयुक्त हैं। दूसरी ओर वे श्मशानवासी हैं, श्मशान उनका नित्यस्थान है। अनित्यताकी शिक्षा देनेके लिये वह जीव-शरीरके अन्त्येष्टिस्थान श्मशानमें वास करते हैं। उनके साथ प्राण खोलकर तारकब्रह्मका नाम लेनेसे ही वे खुश होते हैं, इसीलिये उनका एक नाम आशुतोष है। त्यागकी पूर्णावस्था उनके जीवनमें प्रतिफलित है, इसी कारण किसी प्रकारके ऐश्वर्यके उपकरणके द्वारा उनकी पूजा नहीं होती। भाँग, धतूरा, बिल्वपत्र उनकी पूजाके उपकरण

हैं, अर्थात् मनुष्य जिसे पसन्द नहीं करता, उसीसे उन्हें प्रेम है।

मृत्युञ्जय नामकी एक सार्थकता यही है कि जिस वस्तुसे जगत्की मृत्यु होती है, उसे भी वह जय कर लेते हैं, तथा उसे भी प्रिय मानकर ग्रहण करते हैं।

भगवत्-शक्तिकी महिमाका कीर्तन करनेके लिये उस पञ्चाननके पाँच मुख हैं। यद्यपि यह उनके योग-शरीरका विकासमात्र है, तथापि वे सर्वदा ही पञ्चमुख नहीं रहते। योगीका शरीर जब आनन्दमें पूर्ण होकर भगवत्कीर्त्तन करता है, तब उसके अनेकों सिर हो जाते हैं। यह अस्वाभाविक नहीं है, साधन-सापेक्ष है।

३–शिवलोकको छोड़कर उनका आदिस्थान हिमालयका कैलास है। यह उस समयकी बात है जिस समय भारतवर्ष देवताओंकी लीलाभूमि थी। देवता लोग यहाँ लीला करते थे। अनेक पुराण-इतिहासोंमें यह बात पायी जाती है। यही क्यों, उस समय भारतवर्ष त्रिकोणाकार भूमिके रूपमें वर्णित था। हिमालय भू–भारतमें सर्वोच्च पर्वत है, शिवके समान शुभ्रवर्ण धारण करके वह अचल और अटलभावसे खड़ा है। योगिश्रेष्ठ शिवजी पार्वतीके साथ वहीं आकर जगत्के कल्याणके लिये ध्यानमग्न हुए थे। ये शिव ही अपने योग और विभूतिका प्रकाश कर नाना स्थानमें नानारूपमें हमारे सम्मुख प्रतिभात होते हैं। योगीश्वर महादेवके लिये योग-विभूतिके प्रकाशमें एक ही समय अनेकों स्थानोंमें स्थित रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

४–मेरे अपने व्यक्तिगत जीवनकी दो-एक घटनाओंका उल्लेख करनेसे बहुतोंको शिव-चरित्र सहज ही समझमें आ जायगा। शारदीया पूजाके पश्चात् दीपावलीके समय काशीमें अन्नपूर्णाके मन्दिरमें अन्नकूट-उत्सव होता है। माँ अन्नपूर्णाकी स्वर्णमयी मूर्ति उसी समय केवल तीन दिनके लिये सर्वसाधारणको दिखलायी जाती है। लगभग १५ वर्ष पूर्वकी बात है। ऐसे ही समय, याद नहीं कहाँसे घूमते-घामते मैं काशीधाम आ पहुँचा। अन्नकूट देखनेके लिये मन अत्यन्त व्यग्र था। एक बार देखकर लौटनेके कुछ ही समय बाद पुनः लोगोंकी भीड़को हटाता हुआ मैं अन्नकूट देखने जाता। स्वर्णनिर्मित अन्नपूर्णाकी मूर्ति तथा उसके साथ अन्यान्य मूर्तियाँ मुझे इतनी अच्छी लगती थीं जिसका वर्णन नहीं कर सकता। मैं एकदम मुग्ध हो गया। परन्तु एक विषयमें मेरे मनमें एक आशङ्का उठी। अन्नपूर्णाके समीप रौप्यनिर्मित विश्वनाथकी मूर्तिका साज भिखारीका होनेपर भी वह नितान्त ऐश्वर्यमण्डित था, यह भाव मुझे अच्छा न लगा। मन खराब होनेसे मैं मन्दिरसे बाहर निकल कर नीचेके द्वारके निकट खड़ा हो गया। यहाँ मैं लोगोंकी भीड़ देखने लगा, उसी समय एक आठ वर्षका लड़का आकर मेरा हाथ पकड़कर खींचने लगा, और मुझसे बोला–'आपने अन्नपूर्णाकी मूर्तिके दर्शन नहीं किये?' मैं उस बालकके आग्रह और ताकीदपर 'हाँ' या 'ना' कुछ भी न बोल सका। वह मेरा हाथ पकड़कर मुझे ऊपर स्वर्ण-मूर्तिके दर्शन करनेके लिये ले चला। मैं चुपचाप उसके पीछे-पीछे चला, परन्तु लोगोंकी इस भीड़में इतना छोटा बालक मुझ-जैसे सबल और स्वस्थ-शरीर युवकको पकड़कर लिये जा रहा है, यह देखकर लोग क्या कहेंगे–इस बातका विचार कर मैं मन-ही-मन लज्जित हो रहा था। जो हो, मैं उसके पीछे-पीछे मन्दिरमें घुसा। वह मुझे अत्यन्त आग्रह-पूर्वक मूर्तियोंका परिचय देने लगा। उस समय भी मैंने मनोवेदनाके कारण शिवमूर्तिकी ओर नहीं देखा। तत्पश्चात् हम दोनों बाहर दरवाजेके पास आये। बालकने कहा—'नीचे जो महामायाकी मूर्ति है, जान पड़ता है आपने उसके भी दर्शन नहीं किये।' बालक पुनः मेरा हाथ पकड़ नीचे महामायाके निकट ले गया और बोला—'महामायाके दर्शन कीजिये, यहाँ चरणामृत लेना होता है।'

मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि यह बालक कौन है, इसका घर कहाँ है, मुझे कैसे पहचानता है? जो हो, मैंने चरणामृत लिया। बालकका परिचय जाननेके लिये उससे पूछनेको ज्यों ही मैंने पीछे फिरकर देखा तो उसे नहीं पाया। मानो एक ही सेकण्डमें वह गायब हो गया। मैं अवाक् रह गया। तथापि उसे खोजनेके लिये बाहर निकला। कितने ही लोग मन्दिरसे बाहर निकल गये परन्तु मैंने उस बालकको कहीं नहीं पाया। मैं धीरे-धीरे अपने डेरेपर आकर सो रहा। कुछ समयके बाद समझमें आया, स्वयं विश्वनाथने मुझे यह बात समझा दी कि उनके समान योगिश्रेष्ठ होना मेरे लिये कभी सम्भव नहीं। तथापि उन्होंने मानों कहा—'तुम सरल हृदयसे जो कुछ समझते हो, माँके बच्चेकी तरह माँका आश्रय लेकर चलते रहो।'

५–मुझे इसप्रकार बोध होनेका एक दूसरा भी कारण था। उपर्युक्त घटनाके प्रायः दो वर्ष पूर्व जब किसी महापुरुषकी

कृपासे मैं व्याकुल होकर इधर-उधर घूम रहा था, तब एक दिन रात्रिमें किसी श्मशानमें पहुँचा। उस समय रात्रि अधिक हो गयी थी। अत्यन्त घना अन्धकार था। श्मशानके भीतरके मन्दिरमें मानों कोई सो रहा है ऐसा जान पड़ा। पहले विचारमें आया कि हो-न-हो कोई साधु ध्यान-धारणाके लिये गम्भीर रात्रिमें श्मशानमें आया हुआ है। छोटे गाँवका श्मशान कितना भयङ्कर होता है, शहरमें रहनेवालोंको इसकी धारणा नहीं हो सकती। मनुष्योंकी बस्तीसे दूर नदीके किनारे, जहाँ मनुष्योंका आना-जाना नहीं होता, एक दीपक भी नहीं जलता, तथा प्रेतात्माएँ अदृश्यमें नाना प्रकारके शब्द करती हैं, रातको जाना तो दूर रहा, मनुष्य दिनमें भी भयके मारे वहाँ नहीं जाता। जो हो, मैं उस मन्दिरके भीतर जाकर संन्यासी समक्ष उसकी ओर आगे बढ़ा। देखा कि वह स्वयं शिव हैं, उनका वर्ण धवल-गिरिके समान शुभ्र है। ऊपर भस्मलेप किये हुए हैं, परिधान व्याघ्रचर्म है, जो देखनेमें बहुत ही सुन्दर लगता था। मैं मुग्ध हो गया, तथापि उनसे पूछा—'आपको किस उपायसे प्राप्त किया जा सकता है, कृपा करके बतला दीजिये।' मेरी बात सुनते ही वे बोले—'मेरा हृदय कितना कठिन है, तुम क्या नहीं जानते?' यह कहकर वे कहीं अन्तर्धान हो गये, मैं न देख सका। मैंने समझा कि योगिश्रेष्ठ शिवके पथका अनुसरण करना मेरे-जैसे क्षुद्र व्यक्तिके लिये असाध्य है। भगवान्पर एकान्त-निर्भरता ही सरल पथ है। इसीसे मानों यहाँ भी उन्होंने प्रकारान्तरसे माँके चरणोंका आश्रय-ग्रहण करनेका उपदेश दिया। माँ मुझपर दया करेंगी, इसी आशामें बैठा हूँ।

६—कैलास हिमालयका ही एक सर्वोच्च निर्जन स्थान है। सांसारिक ऐश्वर्यके न रहनेपर भी प्राकृत ऐश्वर्य वहाँ प्रचुर परिमाणमें वर्तमान है। पृथ्वीकी सृष्टिके साथ ही कैलासका भी सृजन हुआ था। पृथ्वीके ऐश्वर्यसे दूर रहनेके लिये देवाधिदेव महादेवने कैलासको चुना। समुद्रके ऊपर होकर घूमने-फिरनेसे ही जिसप्रकार समुद्रके ऐश्वर्यपर विजय नहीं प्राप्त की जाती, उसी प्रकार हिमालयके उच्च शिखरपर आरोहण करनेसे ही कैलासपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। इसके लिये योगचक्षुकी आवश्यकता है।

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई प्रभृति धर्मोंके महापुरुषोंने जिस-प्रकार अपनी-अपनी साधनासे सिद्धि प्राप्तकर संसारमें अनेकों दर्शनीय वस्तुओंको देखा है उसी प्रकार शिवभक्तिकी प्राप्ति होनेपर कैलासमें उन कठोर योगी शिवके दर्शन हो सकते हैं। वहाँ वे पार्वतीके साथ निवास करते हैं। इनमें एक निष्क्रिय योगिराज हैं और दूसरी ऐश्वर्यमयी क्रियाशीला चञ्चल प्रकृति। एक सृष्टि करती हैं, तो दूसरे उसका ध्वंस कर जीवोंको ब्रह्मके साथ मिलाकर ब्रह्म हो जानेका उपदेश देते हुए तारक-ब्रह्मनाम वितरण करते हैं।

७—पृथ्वीमें शिवलिङ्ग-पूजाकी व्यवस्था है। मैंने सुना है, कितने ही हजारों वर्ष पूर्वके शिवलिङ्ग आज भी मिट्टीके नीचेसे पृथ्वीके अनेकों स्थानोंमें खोजकर निकाले गये हैं। मेरा खयाल है कि देवर्षि नारदने इस लिङ्गपूजाका प्रचार किया था। अवश्य ही आजकल कुछ लोग लिङ्गपूजाको असभ्यताका परिचायक बतलाते हैं, परन्तु वे नहीं जानते कि इसमें असभ्यता माननेका कोई कारण नहीं है। प्रत्येकके जीवनमें प्रकृति और पुरुषके मिलनकी जो दुर्दमनीय इच्छा वर्तमान रहती है उसी इच्छासे सृष्टिका आरम्भ होता है। इसीका प्रतिरूप दिखलानेके लिये शिवलिङ्गकी पूजाका प्रवर्तन ऋषिराजने किया है। शिवके बिना इस इच्छाको कोई करानेसे भी नहीं कर सकता। प्रवृत्तिको वशीभूत कर उसे पूर्णब्रह्मके साथ युक्त करके योगिराज बनना और किसीके लिये सम्भव नहीं हुआ। पृथ्वीके लोगोंको सृष्टिकी इच्छासे निवृत्त होनेका उपदेश देनेके लिये देवर्षि नारदने अनुग्रह करके इस सहज पथका प्रचार किया है। इस इच्छासे निवृत्ति पाते ही मुक्तिकी, पूर्णज्ञानकी प्राप्ति होती है। इसी कारण शिव मुक्तिदाता, पूर्णज्ञानी, विश्वनाथ हैं।

जीव इसीलिये शिव-पूजा कर दुर्दान्त कामपर विजय प्राप्त करे, यही इसका अभिप्राय है। काम-जय तथा मदन-को भस्मीभूत करना एक ही बात है। शिवलिङ्ग स्पर्शकर मनुष्यको यह प्रार्थना करनी पड़ती है कि 'हे प्रभो! मनकी विषय-वासनाको दूर कर मुझे मुक्त कर दो। मैं प्रकृतिकी ताड़नासे कामनामें निमग्न हूँ, मेरी रक्षा करो।'

८—पुराणमें एक सुन्दर आख्यान है। एक दिन एक व्याध कोई शिकार न पाकर भूखसे व्याकुल हुआ चतुर्दशी-की रातमें एक बेलके वृक्षपर चढ़ गया। गम्भीर अन्धकारसे घिरे हुए उस तामसी व्याधने अन्य कोई उपाय न देखकर विश्वनाथके चरणोंका आश्रय ले लिया। मङ्गलमय भगवान् शिवने उसे दर्शन देकर मुक्त कर दिया।

मनुष्यकी इसी प्रकारकी अवस्था होती है। जब चारों ओर खोजनेपर कहीं आश्रय नहीं मिलता, जब प्राण कण्ठगत हो जाते हैं, तब अकस्मात् भगवत्सत्ताका आविर्भाव होता है और तामसिक भाव दूर हट जाता है। यद्यपि यह स्वाभाविक नहीं है, तथापि अनेकोंके जीवनमें ईश्वरोपलब्धि इसी प्रकारसे होती है। इसीलिये भक्तलोग अपने हृदयको शिव—चैतन्यमयके साथ युक्त जानकर अपने-अपने नामसे एक-एक शिवलिङ्ग स्थापित कर गये हैं। प्रकारान्तरसे वे सृष्टि-रहस्यसे दूर रहकर हृदयस्थ मङ्गलमय शिवके निकट ही मुक्ति-प्राप्तिके लिये प्रार्थना कर गये हैं। हमारे खयालसे जो देहके भीतर सूक्ष्मभावसे विराजमान हैं वही स्थूलरूपसे देहके बाहर विराट् आकारमें प्रकाशमान हैं। यही शिव-भावका प्रतीकस्वरूप है।

प्रकृति-तत्त्वकी उपलब्धिके लिये ज्ञाताको ज्ञेय तत्त्वके स्तरमें आना पड़ता है; नहीं तो ज्ञान सम्भव नहीं है। इसी कारण बहुधा आध्यात्मिक रहस्य साधारण दृष्टिकी आड़में रह जाता है। ज्ञानके लिये एक समान वस्तुकी आवश्यकता है।

बीजके भीतर वृक्ष है यह बात जैसे सहजमें ही एक बालकको समझायी नहीं जा सकती इसी प्रकार गौरीपीठपर शिवलिङ्ग स्थापित देखकर जो सृष्टि-रहस्यको तनिक भी नहीं समझते अथवा प्राणिजगत्‌की उत्पत्तिके कारणका अनुसन्धान न कर जो मङ्गलमय शिवसे दूर रहते हैं उन्हें शिवलिङ्ग-पूजाका माहात्म्य समझाना असम्भव है। फलतः शिवलिङ्ग-पूजा सृष्टि-रहस्यका ही एक चित्र है। जिन्होंने इस पूजाको प्रचलित किया है, उनका उद्देश्य जीवको जन्म-मृत्युके पंजेसे छुड़ाना है। यदि कोई जन्म-मृत्युसे बचना चाहते हों तो उन्हें या तो मङ्गलमय शिवस्वरूप सृष्टिकर्त्ताके इस कौशल-को समझ उससे दूर हो रहना चाहिये अथवा उसकी इच्छाके साथ युक्त होकर सृष्टि-कौशलकी विचित्रताका अवलोकन करना चाहिये। इसका तात्पर्य यही है कि प्रकृति-पुरुषके मिलनसे जो सृष्टि-व्यापार चला आ रहा है उसके रहस्यको भेदकर निर्लिप्तभावसे साक्षीस्वरूप होकर रहना ही शिव-तत्त्व है। इसी तत्त्वकी उपलब्धिके लिये शिवपूजा-की आवश्यकता है।

परमेश्वर नित्य, चैतन्यस्वरूप निराकार हैं, यह सभी जानते हैं। जीवोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्योंमें महापुरुष; तथा देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं। इन मनुष्यों और देवताओंमें पुनः ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर श्रेष्ठ हैं। ये तीनों परस्पर युक्त होकर प्रत्येकशः श्रेष्ठ हैं। साधकोंने साधनद्वारा इस बातको जाना है।

९—इस स्थूल जगत्‌के पीछे और भी कितने ही जगत् हैं, यह बात कल्याणके 'ईश्वराङ्क' में दिखलायी जा चुकी है। जड-विज्ञान इसे नहीं समझ सकता। आध्यात्मिक विज्ञानके विधाताकी कृपासे स्थूल चक्षुमें आभासित होनेपर ही इनका पता लगता है। उसी कृपाको ऋषियोंने 'साधना' कहा है। जड-विज्ञान जडके द्वारा ही प्रकृतिराज्यमें नाना-प्रकारकी आश्चर्यजनक घटनाएँ दिखला सकता है। परन्तु आध्यात्मिक जगत्‌के विषयको जाननेके लिये देवाधिदेव महादेव शिवकी उपासना करनी पड़ती है। प्रकृति-पुरुषके मिलनके पश्चात् जो दर्शकभावसे रहते हैं उनको प्राप्त करना ही अन्तिम उद्देश्य है। इसीलिये दिव्यचक्षु ऋषिगण प्रकृति-पुरुषके मिलनरूप शिवलिङ्ग-पूजाकी व्यवस्था कर गये हैं। हाय! दुःखकी बात है कि कालधर्मके कारण यह आज अश्लील समझा जा रहा है।

मैं क्षुद्र मनुष्य हूँ, तथापि महापुरुषके अनुग्रहसे मैंने जो कुछ देखा है उसे कहता हूँ। एक दिन मैंने देखा कि महापुरुष मुझे पृथ्वीके बाहर किसी स्थानमें ले गये। हमारी इस पृथ्वीके बाहर असंख्य पृथ्वियाँ और हैं। यह बात विज्ञान-सम्मत भी है, इसी प्रकारकी एक दूसरी पृथ्वीपर महापुरुष मुझे ले गये। मैंने देखा कि जलपूर्ण नदीके तीरपर शिवमन्दिरों-की पंक्तियाँ लगी हुई हैं। मन्दिरोंके भीतर शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित हैं। हमारे रेलपथके समान उस पृथ्वीपर भी रेल है। उन मन्दिरोंके समीप ही एक रेलवे स्टेशन है। उसकी गाड़ियाँ छोटी-छोटी हमारी मालगाड़ीके समान हैं। ऊपर छत नहीं है, परन्तु भीतर बैठनेके लिये बेञ्चें हैं। उसपर चढ़कर दूर-देशसे लोग मन्दिरमें पूजा करने आ रहे हैं। प्रत्येकके हाथमें पुष्पकी डलिया है। उसमें फूल, बिल्वपत्र आदि पूजाकी सामग्री है। हमारी पृथ्वीके समान वहाँ उज्ज्वल सूर्यका आलोक नहीं है, किन्तु वहाँ एक प्रकारका स्निग्ध प्रकाश फैल रहा है। जो धर्मकार्यके लिये मन्दिरमें आते हैं उनको किराया नहीं देना पड़ता। लोगोंको परस्पर बातें करते मैंने नहीं सुना। सभी चुप हैं, सभी परमेश्वरके लिये व्याकुल हैं! पूजार्थिनी एक स्त्री मेरी परिचित जान पड़ी। जान पड़ा, उसने भी मुझे छायाके समान देखा। उसने पूछा—'क्या है रे?' और इतना कहकर वह भी गाड़ीपर सवार होकर चली गयी।

और भी देखा, नाना प्रकारके सम्प्रदायके लोग वहाँ हैं। परस्पर धर्मभावके एक ही उद्देश्यको समझकर मानों वे हिंसा-द्वेष-शून्य हो रहे हैं। जड-विज्ञान यदि कभी इसका पता लगा सका तो ज्ञात हो जायगा कि हमारी पृथ्वीपर कोई बात नयी नहीं है। जो कुछ है वह एक-एक नमूनेके रूपमें उस पृथ्वीसे उल्काके समान छूटकर आता है और यहाँ कार्यकर हो जाता है।

१०–भाइयो और बहनो! तुम लोग शिवके समान शव हो करके सर्वस्व त्यागकर बैठ रहो। अपनी उत्पत्ति अर्थात् सृष्टि-कौशलका विचारकर इस सृष्टिके पीछे जो चैतन्यस्वरूप 'दर्शक' रूपमें अवस्थित हैं उनकी उपलब्धि करो। तभी शिवलिङ्ग-पूजाका उद्देश्य समझ सकोगे तथा यह भी जान सकोगे कि इच्छामूर्ति शिव मङ्गलमयरूपमें स्थूल-सूक्ष्मभावसे सर्वत्र विद्यमान हैं। वे गुरुरूप हैं, प्राण-मन उनमें लगा देनेसे वे अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले जाते हैं।

वे आशुतोष हैं, थोड़ेमें ही सेवकके ऊपर सन्तुष्ट हो जाते हैं। उनको किसी वस्तुकी कमी नहीं है, परन्तु जीवके कल्याणके लिये मूर्ति-परिग्रह कर अपनेको सीमाबद्ध करते हैं और तदनुसार अपने अभावकी भी सृष्टि कर लेते हैं। जीवको शिक्षा देनेके लिये वे जिस आदर्शमें अनुप्राणित हो सर्वत्यागी हो रहे हैं, सृष्टि-रहस्यको समझनेके लिये जीवको भी उसी त्यागके आदर्शका ग्रहण करना होगा, अन्य कोई उपाय नहीं है। सृष्टि-रहस्यमें प्रवेश किये बिना वास्तविक धर्मजीवनका आरम्भ नहीं होता।

हे त्यागवीर! तेरा यह भोलापन मानव-हृदयका आदर्श बने, यही प्रार्थना है। जय शिव! जय शङ्कर! जय, जय, जय! तू मुझे क्षमा कर!

आवाहनं न जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर॥

विष्णु-उपासक शिव

किसी एक सर्गके आदिमें भगवान् आदिपुरुष नारायण पञ्चमुख (ब्रह्माके) रूपको धारणकर सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्त हुए। तदनन्तर उन्होंने दूसरी तमोमयी मूर्तिको धारण किया और रुद्ररूपसे प्रकट हुए। फिर भगवान्ने अहङ्कारको उत्पन्न किया। इस अहङ्कारने ब्रह्मा और रुद्र दोनोंको वशीभूत कर लिया। बस, फिर क्या था? लगे दोनों आपसमें विवाद करने और एक दूसरेकी उत्पत्तिको पूछने। बातों-ही-बातोंमें झगड़ा बढ़ गया और क्रोधके आवेशमें आकर भगवान् रुद्रने अपनी अनामिकाके नखसे ब्रह्माजीके पाँचवें मुखको, जो अधिक बोल रहा था, काट डाला। वह सिर कटते ही महादेवजीके बायें हाथकी हथेलीपर आ गिरा और वहाँसे किसी प्रकार टल नहीं सका। अब तो महादेव बड़े चिन्तित हुए और उससे छुटकारा पानेका उपाय सोचने लगे। इतनेमें वे क्या देखते हैं कि एक भयङ्कर रौद्रमूर्ति उनके सामने खड़ी है और कह रही है कि मैं ब्रह्महत्या हूँ, मुझे ग्रहण कीजिये। यह कहकर वह उनके शरीरमें प्रवेश कर गयी। ब्रह्महत्यासे अभिभूत होकर शङ्कर बदरिकाश्रमको गये, किन्तु वहाँ नर-नारायणको न देखकर बड़े व्याकुल हुए। स्नान करनेके लिये यमुनाजीमें प्रवेश किया तो वहाँका जल ही सूख गया। प्लक्षजा नदीके किनारे आये तो वह अन्तर्धान हो गयी। क्रमशः उन्होंने सारे तीर्थोंमें भ्रमण किया, किन्तु ब्रह्महत्याने किसी प्रकार उनका पिण्ड नहीं छोड़ा। अन्तमें वे व्याकुल होकर कुरुक्षेत्र गये और वहाँपर गरुड़पर विराजमान, चक्रपाणि भगवान् विष्णुका दर्शन किया। विष्णुको देखकर वे अत्यन्त कातरभावसे उनसे प्रार्थना करने लगे कि 'हे प्रभो! किसी प्रकार मुझे इस ब्रह्महत्यारूप पातकसे छुड़ाइये, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आपके सिवा मुझे इस पापसे छुड़ानेवाला और कोई नज़र नहीं आता। आप सर्वसमर्थ हैं, सबके ईश्वर हैं, करुणासागर हैं; मुझ दीनपर अनुग्रह कीजिये।' शङ्करजीके इन दीनतापूर्ण वचनोंको सुनकर भगवान् हँसकर बोले— 'आप घबड़ाइये नहीं। पुण्यक्षेत्र वाराणसीमें दशाश्वमेध-घाटपर मेरे प्रतिष्ठित आश्रममें 'लोलार्क' नामके सूर्य सदा विराजमान रहते हैं। वहीं मेरे अंशस्वरूप केशव स्थित हैं। वहाँ जाकर आप सारे पापोंसे छूट जायँगे।' यह कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये और शङ्करजी उस स्थानपर गये जहाँ भगवान्ने उन्हें जानेको कहा था। वहाँ जाकर उन्होंने पुण्यतीर्थमें अवगाहनकर भगवान् केशवका दर्शन किया, जिससे वे सारे पापोंसे मुक्त हो गये और कपाल उनके हाथसे छूटकर गिर पड़ा। तभीसे वह तीर्थ 'कपाल-मोचन' के नामसे प्रसिद्ध है। (वामनपुराणसे)

देवताका स्वरूप क्या है ?

(लेखक—श्रीयुत बी० भट्टाचार्य, डाइरेक्टर, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा)

देवताओंके सम्बन्धको लेकर हिन्दुओंको असंख्य बार अन्धविश्वासी-पदसे विभूषित होना पड़ा है। ब्रह्मसमाजी हिन्दुओंको अन्धविश्वासी और मूर्ति-पूजक कहकर उनसे अलग हो गये। स्वामी दयानन्द सरस्वती हिन्दुओंके अन्धविश्वास, विशेषकर देवी-देवताओंके प्रति उनकी अन्ध-श्रद्धाके कारण इस हिन्दूधर्मके विरोधी बन गये और उसे उन्नति एवं सुधारके अयोग्य समझने लगे। इसप्रकार हिन्दुओंके देवताओंके कारण ही हिन्दू-धर्मके—ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज आदि—कई रूपान्तर हो गये। देवताओं तथा उनके अर्चा-विग्रहोंके कारण ही उसे विरोधियोंके द्वारा चारों ओरसे आक्षेपोंकी बौछारें सहनी पड़ी। वास्तवमें हिन्दुओंके देवतावादका दिग्गज दुर्ग किस आधारपर खड़ा है, देवताओंका यथार्थ स्वरूप क्या है ? तथा हिन्दुओंका ईश्वर भी क्या केवल अन्ध-विश्वासके सहारे ठहरा हुआ है, इत्यादि प्रश्न ऐसे हैं जो हिन्दुओंके मस्तिष्कोंमें आन्दोलन मचा रहे हैं। इसलिये इन सब विषयोंका विवेचन वाञ्छनीय ही नहीं, अपितु आवश्यक प्रतीत होता है।

हिन्दुओं तथा बौद्धोंके ईश्वरका क्या स्वरूप है, इस सम्बन्धमें आजकलके लोगोंमें बहुत-से भ्रम फैले हुए हैं। अधिकांश लोग तो देवताको मूर्तितक ही सीमित मानते हैं, उन्हें इस बातपर आश्चर्य होता है कि समझदार लोगोंकी इतनी बड़ी संख्या पत्थरकी मूर्त्तिको पूजनेमें अपने समय तथा धनको क्यों बरबाद करती है।

यूरोपियन लोग तो इस बातको देखकर हैरान होते हैं कि इन मूर्त्तियोंके लिये, जो उनकी दृष्टिमें निरे पत्थरके टुकड़े हैं, लोग अदालतोंमें जाकर झगड़ते हैं। सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि इन देवताओं तथा मूर्तियोंकी इतनी थुकाफजीहत होनेपर भी उनके पूजनकी प्रथा केवल भारत-वर्षमें ही नहीं, अपितु एशिया-खण्डके प्रायः सभी देशोंमें अभीतक अक्षुण्णरूपसे वर्तमान है। मूर्ति-पूजामें ऐसी कौन-सी विलक्षण शक्ति है जिसके कारण वह इतनी लोकप्रिय बनी हुई है !

तन्त्रशास्त्रका अध्ययन करनेवाले सभी इस बातको जानते हैं कि देवताओंका साधन एवं सिद्धिके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है और ईश्वरका स्वरूप वास्तवमें एक आध्यात्मिक विषय है। मूर्तिपूजकोंकी दृष्टिमें मूर्ति अथवा शिलाखण्डका कोई महत्त्व नहीं है; वे लोग पूजा करते हैं भावकी, जो उस मूर्तिके अन्दर अभिव्यक्त है, और उन सारे सम्बन्धोंकी, जिनकी उपासक किसी खास देवताके साथ कल्पना कर लेता है। यह सबपर भलीभाँति विदित है कि साधनका सम्बन्ध किसी देवताविशेषके पूजनकी पद्धतिसे है। उसका स्वरूप जन-समूहसे अलग किसी विविक्त स्थानमें आसन लगाकर ध्यान करना और जबतक ध्यानकी गाढ़ अवस्था अथवा समाधि न हो जाय तबतक इसी योग (ध्यानयोग) का निरन्तर एवं दीर्घकालतक श्रद्धा एवं सत्कारपूर्वक अभ्यास करते रहना है। समाधि-अवस्थामें योगीका उस अनन्त आत्मा (ब्रह्म) अथवा शक्तिके अटूट भण्डारके साथ सम्पर्क हो जाता है, जिससे इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति मानी जाती है। इस सम्पर्कके स्थापित हो जानेपर योगी उस शक्तिके अटूट खजानेमेंसे शक्ति-संग्रह कर स्वयं शक्तिशाली बन जाता है। अनन्त (विभु) आत्माका साक्षात्कार करनेकी इस प्रक्रियाको ही 'साधन' कहते हैं और इस साधनका दीर्घ-कालतक अतिशय श्रद्धापूर्वक अभ्यास करनेसे योगीको कुछ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ये सिद्धियाँ अनेक प्रकारकी होती हैं। इनमेंसे कुछके नाम ये हैं—मृतसञ्जीवन, त्रिकालज्ञान, यथेष्टगति, आकाशविचरण इत्यादि। सामान्यतः कुल सिद्धियोंकी संख्या बत्तीस मानी जाती है और इन अलौकिक सिद्धियोंमेंसे कुछ सिद्धियाँ जब योगीको प्राप्त हो जाती हैं तब उसकी 'सिद्ध' अथवा 'महापुरुष' संज्ञा होती है। तन्त्रशास्त्रमें सिद्धोंकी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ—तीन श्रेणियाँ बतायी गयी हैं। उत्तम श्रेणीके सिद्ध 'महासिद्ध' कहलाते हैं। वे सत्यसङ्कल्प होते हैं—उनके मनमें जो कुछ सङ्कल्प उठता है वह तुरन्त सिद्ध हो जाता है।

ऊपरके विवेचनसे यह बात समझमें आ गयी होगी कि साधन और सिद्धि तत्त्वतः आध्यात्मिक विषय हैं, इसलिये जिन देवताओंका साधनकी प्रक्रियासे सम्बन्ध है वे भी आध्यात्मिक पद्धतिके अन्तर्गत ही हैं। इससे यह सिद्ध

हुआ कि जिन आगमोंमें साधनकी प्रक्रियाओंका वर्णन है वे वास्तवमें आध्यात्मिक विषयोंका प्रतिपादन करनेवाले तथा विविध प्रकारके मानसिक साधनोंकी रीतियाँ बतलानेवाले आध्यात्मिक शास्त्र हैं। इसलिये यह मानना पड़ेगा कि तन्त्र भी एक विद्या है जिसके उपदेश एवं प्रचारके लिये योग्य आचार्यों एवं योग्य शिष्योंकी आवश्यकता है; किन्तु अन्य विद्याओंकी भाँति तन्त्रशास्त्रके अध्ययन-अध्यापनका अधिकार सबको नहीं है। केवल वे ही लोग जिनका इस शास्त्रके गूढ़ तत्त्वोंमें प्रवेश हो गया है और जो धैर्य एवं उत्साहके साथ उसके अन्दर बताये हुए साधनोंका अभ्यास करनेकी योग्यता रखते हैं, इस शास्त्रका अध्ययन कर सकते हैं। तान्त्रिक साधनोंके लिये ऐसे ही लोग योग्य पात्र अथवा अधिकारी होते हैं। प्रायः सभी आगम-ग्रन्थोंमें गुरुओं तथा शिष्योंकी योग्यताका बड़े-बड़े अध्यायोंमें विवेचन हुआ है और तान्त्रिक दीक्षा देने अथवा ग्रहण करनेकी पात्रताको जाँचनेके कई गुरु बताये गये हैं।

किसी योग्य गुरुसे तान्त्रिक दीक्षा लेनेके पूर्व अधिकारी-को कई प्रकारकी तैयारियाँ करनेकी आवश्यकता होती है। सच पूछिये तो तन्त्रका मार्ग इतना दुरूह है कि जितनी तैयारी इस मार्गके पथिकको करनी पड़ती है उतनी प्राचीन भारतकी और किसी विद्याके सीखनेवालेको नहीं करनी पड़ती। पहली बात तो यह है कि दीक्षा लेनेवाला धीर, तितिक्षु, श्रद्धालु एवं सरल होना चाहिये; उसे चाहिये कि वह पूर्ण निष्ठाके साथ गुरुकी सेवा करे। उसके लिये सबसे अधिक आवश्यकता इस बातकी है कि उसे राजयोग एवं हठयोगमें परिनिष्ठित होना चाहिये, क्योंकि इसके बिना वह किसी भी साधनको ठीक तरहसे नहीं कर सकेगा और न वह किसी कठिन तान्त्रिक प्रयोगको ही सिद्ध कर सकेगा।

किसी देवताके साक्षात्कार अथवा उनकी स्वरूप-कल्पना-के लिये भी लम्बी-चौड़ी प्रक्रियाएँ हैं और वह गुह्यसमाज नामक एक बौद्ध-तान्त्रिकोंद्वारा रचित ग्रन्थमें, जो सम्भवतः ईसवी सन्‌की तीसरी शताब्दीमें प्रणीत हुआ था, विस्तार-पूर्वक दी हुई है। किन्तु इस लम्बी-चौड़ी प्रक्रियाका संक्षिप्त वर्णन देनेके पूर्व यह बतला देना आवश्यक है कि समाधि-अवस्थामें जीवात्माका परमात्मामें मिल जाना बिजलीका बटन दबानेके समान है। उस समय चित्ताकाश असंख्य चमत्कारों तथा दृश्योंसे परिपूर्ण हो जाता है। होते-होते उसे बीज-मन्त्रोंके वर्ण अग्निकी चिनगारियोंके समान दिखायी देने लगते हैं और ये धीरे-धीरे देवताओंका रूप धारण कर लेते हैं—पहले तो वे अस्फुटरूपमें दिखायी देते हैं, फिर साङ्गोपाङ्ग तेजस्वी चैतन्य मूर्तिके रूपमें प्रकट हो जाते हैं जो उस अनन्तकी ही मूर्तियाँ होती हैं। इन्हीं स्वरूपोंका नाम देवता है। इनका एक बार साक्षात्कार हो जानेपर ये साधक-का साथ नहीं छोड़ते और उसे अधिकाधिक आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करानेमें सहायक बन जाते हैं। देवताओंके साक्षात्कारकी प्रक्रियाका कई प्रसिद्ध ग्रन्थोंमें वर्णन मिलता है।

देवाराधनकी योग्यता रखनेवाले व्यक्तिके लिये क्या-क्या तैयारीकी आवश्यकता होती है और देवताओंका स्वरूप कैसा है इसका दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका। अब 'गुह्यसमाज' मेंसे उस प्रक्रियाका सविस्तर वर्णन करना आवश्यक है जिसके द्वारा साधक देवताका साक्षात्कार कर सकता है। गुह्यसमाजमें इसको 'उपाय' कहा गया है और उसके सेवा, उपसाधन, साधन और महासाधन—ये चार प्रकार बताये गये हैं। सेवाके भी 'सामान्य' और 'उत्तम'—इस-प्रकार दो भेद किये गये हैं। सामान्य सेवाके अन्तर्गत (१) शून्यताकी भावना, (२) उसका बीज-मन्त्रके रूपमें प्रकट होना, (३) बीज-मन्त्रका देवताके रूपमें प्रस्फुटित होना और (४) देवताका बाह्यरूपमें प्रकट होना—ये चार 'वज्र' हैं। इस प्रक्रियाका खुलासा ऊपर किया जा चुका है।

उत्तम सेवामें योगके छः अङ्गोंका उपयोग होता है। ये हैं प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति और समाधि। 'प्रत्याहार' उस क्रियाका नाम है जिसके द्वारा दसों इन्द्रियोंका निरोध होता है। 'ध्यान'का अर्थ है वैरोचन, रत्नसम्भव, अमिताभ, अमोघसिद्धि एवं अक्षोभ्य नामके पाँच 'ध्यानी' बुद्धोंके रूपमें पाँच अभीष्ट पदार्थोंकी भावना करना। इस ध्यानके भी वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और एकाग्रता—ये पाँच अवान्तर भेद बताये गये हैं। प्राण-वायुको रोकनेकी प्रक्रियाको 'प्राणायाम' कहते हैं। इसके द्वारा प्राणको, जो पञ्चभूतोंका ही विकार है तथा पाँच प्रकारके (ऐन्द्रिय) ज्ञानका स्वरूप है और एक भास्वर रत्नके समान है, भीतरसे खींचकर एक पिण्डके रूपमें नासिकाके अग्रभागपर रख लिया जाता है और फिर उसका ध्यान किया जाता है।

मन्त्रका हृदयमें ध्यान करने तथा इन्द्रियोंके रत्न (Jewel of the sense-organs) का निरोध कर उस मन्त्रको प्राण-बिन्दुपर स्थापित करनेको 'धारणा' कहते

हैं। धारणाके सिद्ध हो जानेपर निमित्त अथवा शकुन दिखायी देने लगते हैं। ये पाँच प्रकारके होते हैं और क्रमशः एक-एक करके दिखायी देते हैं। पहला निमित्त (चिह्न) मरीचिका या मृगतृष्णाका होता है, दूसरा धुएँका, तीसरा खद्योतका, चौथा प्रकाशका और पाँचवाँ निरभ्र गगनकी भाँति स्थिर आलोकका।

'अनुस्मृति' उस वस्तुके अनवच्छिन्न ध्यानको कहते हैं जिसके लिये मानसिक (आध्यात्मिक) साधन किया जाता है। इसके अभ्याससे 'प्रतिभास' (revelation) होने लगते हैं। 'प्रज्ञा' और 'उपाय' इन दो तत्त्वोंके सम्मिश्रणके बाद समस्त दृश्य प्रपञ्च घनरूपमें पुञ्जीभूत हो गया है, ऐसी भावना करनी चाहिये और फिर उसका बिम्बके अन्दर ध्यान करना चाहिये। इस प्रक्रियाके अनुसरणसे अतीन्द्रिय (transcendental) ज्ञानकी तुरन्त उपलब्धि होती है और इसीको 'समाधि' कहते हैं।

साक्षात्कारके लिये यह आवश्यक है कि साधना छः मासतक चालू रक्खी जाय और 'गुह्यसमाज' के अनुसार इसका अभ्यास हमेशा सब प्रकारके भोगोंको भोगते हुए ही करना चाहिये। यदि अवधिके अन्दर देवताका साक्षात्कार न हो तो शास्त्रमें बताये हुए निग्रहके नियमोंका पालन करते हुए अनुष्ठानकी तीन आवृत्तियाँ और करनी चाहिये। यदि इसपर भी देवताका साक्षात्कार न हो तो फिर हठयोगके अभ्यासके द्वारा उसकी चेष्टा करनी चाहिये। इस योगके अभ्याससे साधकको देवताका अनुभव हो जाता है।

प्रसङ्गवश यहाँ यह भी बता दिया गया कि ईश्वरकी स्वरूपकल्पनामें राजयोग और हठयोगका कितना महत्त्व है। इससे यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि जहाँ योगकी गति कुण्ठित हो जाती है तन्त्रका कार्य वहींसे प्रारम्भ होता है। इसलिये देवाराधन करनेवालोंके लिये यह आवश्यक है कि वे योगाभ्यास करके तन्त्रविद्याके अनुसार साधनमें प्रवृत्त हों, क्योंकि तन्त्रविद्याका साधन योगसे ऊँचा है और वह साधारण जन-समुदायके लिये उपयोगी नहीं है। इसप्रकार हिन्दुओं तथा बौद्धों दोनोंके ही आगम-ग्रन्थोंमें ईश्वरका विवेचन दार्शनिक दृष्टिसे बहुत ही गम्भीर है और भारतवर्षने संसारकी विचारसम्पत्तिके बढ़ानेमें जो कुछ भी योग दिया है उसमें कदाचित् इसका भी बहुत बड़ा स्थान है।

व्यष्टि-आत्माको 'जीवात्मा' कहते हैं और अनन्त चेतनको 'परमात्मा' कहते हैं। समाधि-अवस्थामें जब इन दोनोंका समागम होता है–और यह अवस्था योगके निरन्तर अभ्याससे उत्पन्न की जा सकती है—उस समय साधकके इष्टदेवका ज्योति अथवा स्फुलिङ्गके रूपमें आविर्भाव होता है। जीवात्मा स्वरूपतः परिच्छिन्न है, इसलिये अपरिच्छिन्न परमात्माके समग्र रूपका साक्षात्कार होना सम्भव नहीं है, अर्थात् जीवात्माके अलौकिक अनुभवका परिणाम भी परिच्छिन्न ही रहता है। और प्रत्येक साधकका ध्येय भिन्न-भिन्न होनेसे जिस देवताका साक्षात्कार होता है उसका स्वरूप भी भिन्न-भिन्न होता है। साधककी भावना जो एक प्रकारकी मानसिक शक्ति है उस अनन्त सत्ताको प्रभावित करती है और वह प्रभाव जिस ढङ्गका होता है उसी प्रकारका स्वरूप उसके सामने खड़ा हो जाता है। इस प्रभावके असंख्य प्रकार होते हैं, इसलिये आराध्य देवता भी असंख्य रूपोंमें प्रकट होता है। यही कारण है कि हिन्दुओं तथा बौद्धोंके देवतावादमें असंख्य देवताओंका उल्लेख मिलता है। जिस साधकको किसी देवताका साक्षात्कार होता है वह प्रायः उस देवताका तथा उस साधनका जिससे उसे वह प्राप्त हुआ अपने शिष्योंके लाभार्थ वर्णन अवश्य करता है, ताकि वे लोग सुगम-से-सुगम एवं उत्तम-से-उत्तम रीतिसे उन्हीं देवताका साक्षात्कार कर सकें।

इसप्रकारके गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वसे पूर्ण गुह्य अनुभवोंको भी यदि कोई अन्धविश्वास कहे और उन साधकोंको जिन्हें किसी देवताका साक्षात्कार हो चुका है 'मूर्तिपूजक' कहे तो भले ही कहे। अवश्य ही यह विषय बुद्धिगम्य अथवा तर्कसाध्य नहीं है।

भारत शिवका रूप है !

(स्व० मा०)

भारत शिवका रूप है, समझो सोच-विचार।
सेवासे सब सुख मिले, कर देखो संसार॥
भारत शिवका रूप है, केवल देव सुरेश।
सबकी मानस-कामना, पूरी करै महेश॥
भारत शिवका रूप है, कोई जानों ताहि।
क्या राजा क्या रंक सब, सेवाकी मन चाहि॥
भारत शिवका रूप है, जो देखो चित लाय।
शिवके सम कोई नहीं, सबकी करै सहाय॥
भारत शिवका रूप है, दयावंत दातार।
काम सुखद 'कल्याण' का, शुभदायक प्रति वार॥

शिवपुराणकी कुछ उपयोगी बातें

(लेखक—एक शिव-भक्त)

अभ्यन्तरमें अविमुक्तक्षेत्र काशी–शिवपुराणके सनत्कुमार-संहिताके ३५ वें अध्यायमें है—

अविमुक्ते स्थितो देवो रुद्रावासे तु ईश्वरः ।
प्राणास्तु रुद्रा विज्ञेया अविमुक्तं परं स्मृतम् ।
तस्मिन् स्थाने वसेद्देवो रुद्रावासेऽपि चोच्यते ॥

ईश्वर महादेव रुद्रायासमें स्थित होकर अविमुक्त क्षेत्र (काशी) में रहते हैं, सब प्राण रुद्रमें स्थित हैं, परम शरीर (कारणोपाधि) अविमुक्त काशी क्षेत्र है। उस स्थानमें श्रीमहादेवके रहनेको 'रुद्रावास' कहते हैं।

पञ्चप्राणाग्निहोत्र–मनुस्मृतिका कथन है कि भोजनके पूर्व घृतयुक्त अन्नके पाँच ग्रास पञ्च प्राणोंको उन उनके नाममें 'स्वाहा' लगाकर, दाँतोंको स्पर्श न कराते हुए, मुखमें दे; यह आभ्यन्तरिक प्राणाग्निहोत्र है । शिवपुराणकी सनत्कुमार-संहिताके ३९ वें अध्यायमें लिखा है कि इस पञ्चप्राणाग्निहोत्रसे सब देवता, चतुर्वेद, ओषधि, वनस्पति, चन्द्र, वायु, स्थावर, जङ्गम, ऋषि, पितर, विष्णु, दोनों अश्विनीकुमार, वरुण, यम, प्रजापति कुबेर, रुद्र, शिव, नन्दिकेश्वर, उमा, ब्रह्मा, मन, प्राण, नक्षत्र, सप्तद्वीप, सप्तलोक, यक्ष, राक्षस आदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और पृथ्वी तृप्त होती है । इससे सिद्ध है कि इस प्राणाग्निहोत्रसे श्रीशिवकी तुष्टि होती है ।

काम-दहन–आरोग्य, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूलकारण काम-दहन अर्थात् ब्रह्मचर्य-पालन या जननेन्द्रियनिग्रह है । यह कामोपभोगकी प्रवृत्ति बड़ी ही प्रबल है; काम बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको भी क्षुभित कर देता है । गीतामें भी कामकी प्रबलताका प्रमाण मिलता है । इसका पूर्ण निग्रह श्रीशिवके तृतीय नेत्र खुलनेसे ही होता है । यह शिवका तृतीय नेत्र सभी मनुष्योंके अभ्यन्तरमें अप्रकट और गुप्तरूपमें स्थित है । कामका पूर्णरूपसे निग्रह करनेके लिये इस तृतीय नेत्रका विकास कर उसे जाग्रत करना होगा । अपनेको शरीर, प्राण, मन, चित्त, अहङ्कार और बुद्धि आदि न मानकर, इनसे परे जो शुद्ध चैतन्य है उसीको अपना असली रूप जान उसमें नित्य स्थित रहना ही तृतीय नेत्रको खोलना है । इस ज्ञान-चक्षुके उदय होनेपर काम, जोकि प्रकृतिका एक गुण है, आप ही शान्त हो जायगा । क्योंकि प्रकृतिका प्रभाव शुद्ध चैतन्यपर नहीं पड़ सकता । गीतामें भी लिखा है कि अपनेको सबसे श्रेष्ठ आत्मा मानकर कामका दमन करे । (३ । ४३) ऐसी आत्मभावनाका दीर्घकालतक मनन करनेसे और व्यवहारमें भी इसी भावनाका स्मरण रखकर तदनुसार आचरण करनेसे दिव्य ज्ञान-चक्षुका विकास होता है । जो कोई इस दिव्य ज्ञान-चक्षुद्वारा सर्वत्र अखण्ड, एकरस महाचैतन्यको अपनेमें और दूसरोंमें परिपूर्ण देखेगा वही कामपर विजय प्राप्त कर सकेगा । चैतन्यके प्रकाशके सामने जड प्रकृतिका तम ठहर नहीं सकता । सन्तानके हेतुसे ऋतुकालमें स्वस्त्री-समागम गृहस्थके लिये ब्रह्मचर्यके विरुद्ध नहीं है ।

शिवधर्म—पाँच प्रकारके शिवधर्म हैं—१ तप, २ कर्म, ३ जप, ४ ध्यान और ५ ज्ञान । 'तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानञ्चेति समासतः' (शिवपुराण–वायवीयसंहिता–उत्तरार्ध, अ० ८ । ३७) । सात्त्विक आहार, उपवास, ब्रह्मचर्य आदिसे शरीरकी शुद्धि शारीरिक तपस्या है । इष्टका कीर्तन, पूजन, अर्चन आदि कर्म है तथा एकाग्रचित्त और प्रेमसे अखण्ड शिव-नामोंका स्मरण जप है । मनको सब विषयोंसे हटाकर शिवरूपमें संलग्न करना ध्यान है और तत्त्वज्ञानके अनुसार आचरण करना ज्ञान है ।

यथार्थमें साकार मूर्तिका चिन्तन ही ध्यान है, निराकारका चिन्तन ध्यान नहीं है । 'ध्यानं मद्रूपचिन्ताद्यं नात्माद्यर्थसमाधयः ।'

शिवपुराण–वायवीयसंहिताके उत्तरार्धमें शिवके ध्यान-स्वरूपका वर्णन इसप्रकार है—

अङ्गुष्ठमात्रममलं दीप्यमानं समन्ततः ।
शुद्धदीपशिखाकारं स्वशक्त्या पूर्णमण्डितम् ॥
इन्दुरेखासमाकारं ताराख्पमथापि वा ।
नीवारशूकसदृशं बिससूत्राभमेव वा ॥
कदम्बगोलकाकारतुषारकणिकोपमम् ॥

(अ० २९ । १४२-१४३)

अङ्गुष्ठमात्र-परिमित, निर्मल, सम्पूर्णरूपसे देदीप्यमान, विशुद्ध दीप-शिखाकी भाँति उज्ज्वल, स्वशक्तिपूर्ण, चन्द्र-कलाके समान अथवा नक्षत्ररूप, नीवारशूक (धानकी बाल)के समान, मृणालसूत्रके आकारमें, कदम्ब-पुष्पके समान गोलाकृति अथवा हिम-कणके समान शिवका ध्यान करना चाहिये।

बिना स्थूल मूर्तिके ध्यानके चित्तकी एकाग्रता हो नहीं सकती, वह मूर्ति भी चित्ताकर्षक और अभिमत*होनी चाहिये।

'स्थिरयर्थं मनसः केचित् स्थूलध्यानं प्रकुर्वते'
(शिवपु० वा० सं०)

अहंता-ममताका त्याग मोक्षका मुख्य उपाय है—इस विषयमें शिवपुराण-धर्मसंहितामें शिवके वचन इस-प्रकार हैं—

देहेऽस्मिन्नहमित्येकः पृथक् चिन्त्यः सदा बुधैः।
एवं ज्ञात्वा चरंल्लोके मुच्यते भवबन्धनात्॥
ममेति परमं दुःखं न ममेति परं सुखम्।
द्वाविमौ भवमोक्षाणां न ममेति ममेति च॥
यस्य नास्त्यात्मनो देहस्तस्य दारादिकं कथम्।
गृहक्षेत्रादिकं तद्वदेवं बद्धो न मुच्यते॥
एष पाशुपतो योगः समासात् कथितो मया।

विद्वान् पुरुष अपनेको देहसे पृथक् आत्मा जानकर विचरण करे, इससे वह भव-बन्धनसे छूट जायगा। 'मेरा' ही परमदुःख है और 'मेरा नहीं' परमसुख। 'मेरा' संसार है और 'मेरा नहीं' मोक्ष। जिसकी अपने शरीरमें ही अहंता (अपनापन) नहीं होती, वह स्त्री-पुत्र-घर आदिको कैसे अपना मान सकता है? जबतक घर-द्वार आदि है तबतक पुरुष बद्ध ही है, मुक्त नहीं। यही पाशुपत योग है जिसको संक्षेपमें बतलाया गया है।

शिवपूजासे सृष्टिकी पुष्टि

वृक्षके मूल-सेचनसे उसकी शाखा आदिकी पुष्टि होती है, इसी प्रकार शिव-पूजासे संसाररूप शरीरकी पुष्टि होती है—

वृक्षमूलस्य सेकेन शाखाः पुष्यन्ति वै यथा।
शिवस्य पूजया तद्वत् पुष्यत्यस्य वपुर्जगत्॥
सर्वाभयप्रदानञ्च सर्वानुग्रहणं तथा।
सर्वोपकारकरणं शिवस्याराधनं विदुः॥

दीक्षा-गुरु—किसी दीक्षा-गुरुसे मन्त्र लेनेसे सफलता होती है, अन्यथा फलमें कुछ न्यूनता रह जाती है।

'दीक्षायुक्तं गुरोर्ग्राह्यं मन्त्रं ह्यथ फलाप्तये'—मन्त्र गुरुसे मिलनेपर ही फलप्रद होता है। दीक्षा-गुरुके लक्षणके विषयमें शिवपुराणमें यह वचन है कि 'ब्राह्मणः सत्यपूतात्मा गुरुर्ज्ञानी विशिष्यते'—सत्यवादी पवित्र ज्ञानी ब्राह्मण ही गुरु बनानेके लिये प्रशस्त माना गया है।

उपगम्य गुरुं विप्रमाचार्यं तत्त्ववेदिनम्।
जापिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम्॥

सर्व शास्त्रोंमें पारङ्गत, तत्त्वको जाननेवाले, जप करनेवाले, सद्गुण-सम्पन्न और ध्यानयोगमें निपुण ब्राह्मण आचार्यके पास जाकर शिवदीक्षा लेनी चाहिये। जो ब्राह्मण सर्वलक्षणसम्पन्न होनेपर भी तत्त्वज्ञानसे रहित हो, जिसके दर्शनसे आनन्द न मिले और जिसके स्पर्शसे ज्ञान न होता हो उसे कदापि गुरु न बनाना चाहिये—

सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वशास्त्रविदप्ययम्।
सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्त्वहीनस्तु निष्फलः॥४३॥
यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्र प्रवर्त्तते।
तस्यावलोकनाद्यैश्च परानन्दोऽभिजायते॥४४॥
तस्माद्यस्यैव सम्पर्कात् प्रबोधानन्दसम्भवः।
गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः॥४५॥
(शिवपुराण वि० सं० अ० १३)

सौत-सन्ताप

चाँदीके पहारपै सुचारु मृगराज-चाम, चामीकर-चादर समान चित चोरती।
त्र्यंबक बिराजैं तापै हिरन-कदंबक से, कुंदन-कला-सी अंब राजै कर जोरती॥
कहत 'कुमार' किंतु पारद-प्रभा-सी गंग, पेखिकै भवानी भृकुटी उठी मरोरती।
डारि-डारि कंत-कंठ गंधक-से पुष्प-हार, बार-बार सौतिकी तरंगनकों तोरती॥

—शिवकुमार केडिया 'कुमार'

---

* यथाभिमतध्यानाद्वा—योगसूत्र।

शिवजीके पूर्वज

(लेखक—श्रीभारतसिंहजी)

(विवाहके समय प्रश्नोत्तर)

प्र०—तुम्हारे पिता कौन हैं ?

उ०—ब्रह्मा ।

प्र०—बाबा कौन हैं ?

उ०—विष्णु ।

प्र०—परबाबा कौन हैं ?

उ०—सो तो सबके हम ही हैं ।

परमगुरु शिव

(लेखिका—श्रीमती आर० एस० सुब्बलक्ष्मी अम्मल, बी० ए०, एल० टी०)

मनुष्य-जीवनका ध्येय, उसका परम पुरुषार्थ मुक्ति अथवा मोक्ष है। मुक्तिका अर्थ है—छुटकारा। मुक्तिके द्वारा मनुष्य किस बातसे छुटकारा चाहता है ? वह छुटकारा चाहता है अपनी आसुरी प्रकृतिसे, काम-क्रोधादि विकारोंसे तथा दुर्गुणोंसे । श्रीमद्भगवद्गीता (१६ वें अध्याय) के निम्नलिखित दो मन्त्रोंसे इसका स्पष्टीकरण हो जाता है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥

अर्थात् 'काम, क्रोध एवं लोभ—ये तीन नरकके द्वार तथा आत्माका विनाश करनेवाले हैं । इसीलिये इन तीनोंका परित्याग करना उचित है ।

हे कौन्तेय ! अधोगतिके इन तीनों द्वारोंसे मुक्त हुआ पुरुष अपनी आत्माका कल्याण करनेमें समर्थ होता है और फिर परम गतिको प्राप्त होता है ।'

इस आसुरी प्रकृतिसे छुटकारा पाना सहज नहीं है । यहाँतक कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके सम्बन्धमें भी यह उल्लेख मिलता है कि कभी-न-कभी वे इन विकारोंके वशीभूत अवश्य हुए थे ।

ये विकार यथार्थ ज्ञान—विशुद्ध अन्तरात्माको आक्रान्त-कर उन्हें बिल्कुल ढक देते हैं, जैसा कि (गीता ३ । ३८, ३९) में कहा है ।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥

अर्थात् 'जिसप्रकार अग्निको धूम आच्छादित कर देता है, दर्पणको मैल ढक देता है, गर्भ जेरसे ढका हुआ रहता है, उसी प्रकार यह ज्ञान कामनारूपी मैलसे आच्छादित है ।

'हे कौन्तेय ! इस कामनारूपी अग्निने, जिसका पेट कभी भरता नहीं और जो ज्ञानीका नित्य-वैरी है, ज्ञानको ढक रक्खा है ।'

इस आसुरी प्रकृतिसे छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय दैवी सम्पदाको बढ़ाना ही है । मनुष्यको अन्ततोगत्वा इस बातको समझनेसे ही छुटकारा मिलता है कि उसके भीतर जो वास्तविक 'अहम्' है, जो उसका सच्चा और असली स्वरूप है, यह सर्वथा शुद्ध है, आनन्दमय है, विज्ञान-घन है; वह साक्षात् परमेश्वरका स्वरूप है । इस बातको हृदयङ्गम करनेके लिये—ईश्वरके साथ अपनी एकताका अनुभव करनेके लिये—मनुष्यको अपने सङ्कल्प एवं इच्छा-शक्तिका पूर्ण विकास करना होगा और उस ईश्वरीय सत्ताके साथ अपनी अभिन्नताका अनुभव करना होगा जो सच्चिदानन्दस्वरूप है, प्रेमका अटूट भण्डार है, काम-क्रोधादि विकारोंसे रहित है, अपार आनन्दकी राशि है और देश-कालसे अपरिच्छिन्न है ।

मनुष्यकी प्रारम्भिक अवस्थाओंमें—उसके विकासकी प्राथमिक भूमिकामें वह सर्वथा अपनी आसुरी प्रकृतिके

वशमें होता है; किन्तु धीरे-धीरे समय पाकर उसकी इच्छा-शक्ति, ज्ञान इत्यादिके क्रमिक विकासके साथ-साथ उसकी दैवी प्रकृति प्रबुद्ध होने लगती है। उसके वास्तविक 'अहम्' को, जो पहले अविकसितरूपमें रहता है, अनावृत करनेकी आवश्यकता होती है। उसके अनावृत हो जानेपर तथा जीवात्माका परमात्माके साथ एकीभाव हो जानेपर आसुरी अथवा दैवी कोई-सी भी प्रकृति नहीं रहती।

इस महान् प्रयत्न एवं द्वन्द्वमें मनुष्यको सहायताकी अपेक्षा होती है, वह सहायता इसे गुरुसे प्राप्त होती है। गुरु ही इसे अधिकार एवं योग्यताके अनुसार साधन बतलाता है और वह बड़ी तत्परता एवं अध्यवसायके साथ उसमें लगकर क्रमशः अपने ध्येयकी प्राप्ति करता है।

वह गुरु कौन है? दक्षिणामूर्तिके विग्रहमें स्वयं परमेश्वर ही गुरुरूपसे उसकी सहायता करते हैं। दक्षिण भारतके सभी शिव-मन्दिरोंमें निज-मन्दिरकी बायीं दीवारपर गुरु दक्षिणामूर्तिके लिये एक विशेष स्थान निर्दिष्ट रहता है। वे एक वटवृक्षके नीचे महायोगी गुरुका-सा आसन लगाकर अपने दाहिने हाथके अँगूठे तथा तर्जनीके द्वारा चिन्मात्राकी मुद्रा प्रदर्शित करते हुए और सनक, सनातन, सनत्कुमार एवं सनन्दन, अपने इन चार आदर्श शिष्योंको उपदेश देते हुए प्रतिष्ठित रहते हैं। दक्षिणामूर्ति-उपनिषद्में 'दक्षिणा' का अर्थ बुद्धि लिखा है। अतः दक्षिणामूर्ति हमारे गुरु हैं जो हमें अपनी बुद्धिको नितान्त परिशुद्ध, समाहित एवं सब प्रकारकी लौकिकतासे मुक्त करनेकी विधि बतलाते हैं और चिन्मात्राकी मुद्राके द्वारा हमें सर्वश्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश देते हैं।

उनके उपदेशका ढंग निराला है। वास्तवमें जितने भी महान् गुरु होते हैं वे वाणीद्वारा उपदेश नहीं करते। वाणी एक ससीम पदार्थ है। परिच्छिन्न इन्द्रियके द्वारा तथा परिच्छिन्न मनकी सहायतासे उच्चारण की हुई वाणी स्वयं परिच्छिन्न होती है। प्रकृति स्वयं एक महागुरु है जो अपनी खुली हुई पुस्तक—प्राकृतिक वस्तुओं और दृश्यों—के द्वारा हमें उपदेश देती है। जिस किसीको उस उपदेशसे लाभ उठानेकी लगन हो वह उससे अनन्त लाभ उठा सकता है और अपनेको उन्नत बना सकता है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

मौनं चैवास्मि गुह्यानाम्।

अर्थात् गोपनीय वस्तुओंमें मैं मौन अर्थात् वाणीका संयम हूँ। शिव-मन्दिरोंमें दक्षिणामूर्तिको भी 'मौनगुरु' अथवा 'मौनमूर्ति' कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य पूर्णतया मौन हो जानेपर ही उस महान् सत्यको—परम गुह्यको उपलब्ध कर सकता है और ईश्वरके साथ अपनी एकताका अनुभव कर सकता है। मौनगुरु अपने शिष्योंको निरन्तर अपने मौनका पाठ पढ़ाते रहते हैं तथा 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि महावाक्योंद्वारा निर्दिष्ट परम तत्त्वका मौन होकर मनन करनेका उपदेश देते रहते हैं।

दक्षिण-भारतके सभी शिव-मन्दिरोंमें सायंकालके समय 'दीग आराधन' होता है जिसमें तुमुल संगीत-ध्वनिके साथ-साथ अनेक घण्टोंका नाद, वेदमन्त्रोंका उच्चारण तथा भक्तोंका भक्तिभावपूर्ण कलरव होता है। इस आराधनके अनन्तर कपूरकी आरती होती है और प्रत्येक भक्त एक नारियलका गोला भगवान्को चढ़ाता है और कपूर जलाकर मन्दिरकी प्रदक्षिणा करता हुआ उस स्थानपर पहुँचता है जहाँ मौनगुरु वटवृक्षके नीचे शान्त, समाहित होकर विराजते हैं। भक्त उनके सामने बैठकर कम-से-कम पाँच या दस मिनटतक मौन होकर ध्यान करता है, वह उनसे प्रार्थना करता है—'थोड़ी देर पहले इस दासने जो नारियलका गोला चढ़ाया था उसके भीतर बोलनेवाले जलके बिलकुल सूख

जानेपर जिसप्रकार उसमें केवल सफेद और ठोस गरी रह जाती है, उसी प्रकार मेरी इस नीच प्रकृतिका, जिसने मुझको चञ्चल बना रक्खा है, सर्वथा लोप हो जाय और मेरे अन्दर शुद्ध, स्थिर, सात्त्विक प्रकृति ही बच रहे; एवं जिसप्रकार कपूर जलकर उड़ गया, उसी प्रकार मेरा अज्ञान भी दग्ध हो जाय और मेरे हृदयमें शुद्ध सात्त्विक ज्ञानका प्रकाश हो जाय।'

इसलिये दक्षिणामूर्तिके रूपमें परम महेश्वर शिवका (अज्ञानका नाश करनेवाले) परमगुरुकी भावनासे प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये और उनसे हमें मौनका पाठ पढ़ना चाहिये। तभी हम सारी सांसारिक चिन्ताओंसे छूटकर शान्त, समाहित हो सकते हैं और उस महान् शान्ति तथा ज्ञानको प्राप्त कर सकते हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

शिवोपासनासे लाभ

(लेखक—श्रीयुत चिरञ्जीलालजी शर्मा)

भगवान् एक हैं पर अनेक रूप भी उन्हींके हैं। जिस समय वे जैसा स्वाँग भरते हैं उस समय उनका वैसा ही नाम पड़ जाता है। संसारका सृजन करनेपर वे ब्रह्मा, पालन करनेपर विष्णु और संहार करनेपर शिव कहलाते हैं। 'शिव' कल्याणवाची शब्द है। भगवान् शिवकी संहार-लीलामें भी जीवोंके कल्याणका रहस्य छिपा पड़ा है। वे चतुर-

शिरोमणि होते हुए भी अपने भक्तोंके लिये निरे भोले हैं। वे रुद्र होते हुए भी वस्तुतः आशुतोष ही हैं। धतूरे और आककी श्रद्धापूर्ण पुष्पाञ्जलि ही लोकपावन शिवकी प्रसन्नता प्राप्त करवानेमें पर्याप्त है। राम-रसमाते 'तुलसी'ने भी 'कवितावली'के उत्तरकाण्डमें यही निर्णय सुनाया है—

इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथपद,
ताको फल 'तुलसी' सो कहैगो बिचारिकै।
आकके पतौवा चारि, फूलकै धतूरेके द्वै,
दीने हैहैं बारक पुरारिपर डारिकै॥

कल्याणके भावुक पाठकोंको भगवान् महादेवके 'आशुतोष' विशेषणकी प्रत्यक्ष सार्थकता और आश्चर्यमयी उपादेयताका विश्वास करवानेके लिये मैं कुछेक आँखों-देखी घटनाओंका वर्णन निम्नाङ्कित पंक्तियोंमें करनेका विचार करता हूँ। ये सभी घटनाएँ यद्यपि सकाम भक्तोंके जीवनमें घटित हुई हैं, तथापि भगवान् श्रीकृष्णकी 'उदाराः सर्व एवैते' इस मान्यताके अनुसार हम इनको कम महत्त्व नहीं दे सकते। अस्तु।

चूरू (बीकानेर) में करीब एक सौ वर्ष पूर्व गोसाईंजी नामके एक संन्यासी शिवभक्त हो गये हैं। लोग उन्हें सिद्ध महापुरुष मानकर अब भी उनकी समाधिकी पूजा करते

हैं। स्थानीय शिवमन्दिरमें ही वे भजन-पूजन करके लोगोंको शिवभक्तिका माहात्म्य बतलाया करते थे। उनके उपदेशानुसार शिव-पूजामें रत रहकर अनेक सकाम भक्तोंने अपने मनोरथ सफल किये। चूरूके श्री………………… की स्त्री उनके दर्शनार्थ प्रायः नित्य ही आया करती थीं। उनके कोई सन्तान नहीं थी; अतः श्रीगोसाईंजीके सामने पुत्रकी याचना की। श्रीगोसाईंजीने उनकी वेदनाभरी वाणी सुनते ही तीन पुत्रोंका वरदान दे दिया। कहना नहीं होगा कि महापुरुषके वचनानुसार भगवान् आशुतोषकी दयासे उनके तीन पुत्र हुए और वे तीनों ही करीब साठ-साठ वर्षकी आयु भोगकर परलोकवासी हुए। शिवभक्त गोसाईंजीने चार दिन पूर्व ही अपनी मृत्युकी सूचना देकर भक्तोंको कह दिया था कि मेरा शरीर मेरे स्वामीकी मूर्तिके सामने ही गाड़ा जाना चाहिये। उनकी मृत्यु संवत् १९२५ में हुई।

उनके परमधामगमनके अनन्तर पूज्य श्रीमोतीरामजी ओझा एवं उनके बाद उनके पुत्र श्रीवैजनाथजी मन्दिरकी सेवा करते रहे, परन्तु इनकी मृत्युके बाद पूजाकार्यमें कठिनता पड़ने लगी। मन्दिर भी पुराना होनेके कारण गिरने लगा। इसी बीच श्री……………ने पुत्रकी कामनासे सेवा-पूजाके कार्यमें योग देना प्रारम्भ कर दिया। आशुतोष महादेवके रीझनेमें देरी नहीं, देरी है केवल उनके सामने आतुर होकर—सब आश्रयोंको छोड़कर पुकारनेकी। श्री……को प्रतिभासम्पन्न, परम सुन्दर और प्रभावशाली पुत्रकी प्राप्ति हुई। पर भगवान्‌को इन्हें अपनी ओर विशेष खींचना था। दैववश बारह वर्षकी अवस्थामें उस बालकका देहान्त हो गया। अब इनके दुःखकी सीमा न रही। पुत्रके मुखदर्शनसे निराश हो गये। चारों ओर आँख पसारकर देखा, पर शङ्कर-सा उदार दानी और सर्वोपरि शरण्य दीख नहीं पड़ा। कलकत्तेसे सीधे चूरू आये। स्टेशनसे उतरते ही शिव-मन्दिरका रास्ता लिया। मन्दिरके पास पहुँचते ही उन्हें ढाढस बँध गया। मूर्तिके दर्शनोंसे उन्होंने जिस निश्चिन्त भावना और सुखमयी आशाका अनुभव किया वह निस्सन्देह वर्णनसे परे है। आध्यात्मिक जगत्‌के साधारण सुखाभासको भी प्रकट करनेमें वस्तुतः मानवी भाषा पङ्गु ही है। वे उसी आशाभरे हृदयसे उद्भूत कातर स्वरमें अपने शरणदाताके सामने रो पड़े। भगवान्‌का हृदय दुष्टोंके लिये वज्रसे भी कठोर, पर भक्तोंके लिये कुसुमसे भी कोमल होता है। भक्तके आर्तनादसे आशुतोष शिव दयार्द्र हो गये। 'सर्वतःश्रुतिमल्लोके'—सर्वत्र स्थित होकर सबकी सुननेवाले महादेवजीने हृदयकी पुकारका तत्काल उत्तर दिया। तेरह वर्षके दीर्घकालके बाद इस समय उनकी स्त्री इतनी अधिक आयुमें भी गर्भवती हुईं और उनको पुत्रकी प्राप्ति हो गयी। यह है आशुतोष भगवान् शिवकी स्नेहमयी सुन्दर लीलाका छोटा-सा नमूना!

इसी प्रकार दो ब्राह्मण-बन्धुओंकी सकाम पूजा भी विचित्र ढंगसे सफल हुई। जगत्‌की दृष्टिसे ये दोनों ही निराधार थे। न माँ, न बाप! न धन, न कुटुम्ब!! ऐसे असहायोंके विवाहकी चर्चा ही कौन सुने! सांसारिक आश्रयके छूट जानेपर मनुष्य स्वभावतः सर्वेश्वरकी शरण ढूँढ़ता है। अतः इन दोनोंने भी भगवान् शङ्करके द्वार खटखटाने शुरू कर दिये। रात-दिन सरल स्वभावसे आतुर होकर पुकारा करते—'हे शम्भो! हमें और कुछ नहीं चाहिये, केवल हमारा विवाह कर दीजिये।' लोग इनकी कामना सुनकर हँस पड़ते, आकाशसे फूल तोड़नेके समान इसकी पूर्तिकी सम्भावनापर खिल्लियाँ उड़ाते; पर 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः' शिवके लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है। दोनोंकी अर्जियाँ मंजूर हो गयीं। किसीने मन्दिरमें ही आकर बेटी दे दी, किसीने पैसा लगा दिया और कुछेक शिवभक्त ही बराती बन गये। धूम-धामसे विवाह सम्पन्न हो गया। लोग अनहोनी घटना देखकर दंग रह गये। सच है—शिवजीके द्वारसे कभी कोई निराश नहीं गया।

अब एक और आश्चर्यमयी घटना सुनिये। श्री………………………………………कलकत्ता, रंगून और अहमदाबादके प्रसिद्ध व्यापारी हैं। दैववशात् उनका इकलौता बेटा ८-९ वर्षकी अवस्थामें चल बसा! अनेक डोरे-यन्त्र करवाये गये, बीसों औषध-उपचार किये गये, पर उनकी स्त्रीके गर्भ न रहा। अन्तमें निराश होकर गोदके लड़केकी खोज करने लगे। एक बालक पसन्द भी कर लिया गया। पर भोले शङ्करकी प्रसादी इनको प्राप्त होनी बाकी थी। ये एक दिन मन्दिरमें दर्शनार्थ आये। गोदके पुत्रकी चर्चा चली। करीब बीस भक्तोंकी मण्डली जम रही थी। कोई भावुक भक्त बोल उठा—'सेठजी! शङ्कर-सरीखे दाताके होते हुए आप निराश क्यों हो गये? शुद्ध हृदयसे प्रार्थना कीजिये, भोले शम्भु आपपर प्रसन्न होकर कामना पूरी कर देंगे।' इनके भी जँच गयी। तत्काल हाथ जोड़-

कर शिवजीके सम्मुख हो गये। बड़े ही करुणोत्पादक आतुर स्वरमें पुत्रकी याचना की। उपस्थित मण्डलीने एक स्वरसे कहा--'सेठजी! महादेवजीने आपकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। आजसे नवें महीने आपके अवश्य ही पुत्र होगा।' उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो अणु-अणुमें रमण करनेवाले शिवजीने ही इतने मुखोंसे सेठजीकी पुकारका मधुर उत्तर दिया। ठीक नवें मास आपके पुत्र उत्पन्न हुआ। मैंने उस बालकको तोतली वाणीमें 'भाईजी, जय छङ्करकी' कहते सुना है। बालकका शिव-भक्त होना स्वाभाविक ही है। श्रीसेठजीने इस उपलक्ष्यमें ४००) शिवजीके फण्डमें भेंट किये एवं पुजारीका प्रबन्ध करके सेवा आदिकी समुचित व्यवस्था कर दी है। शिवभक्तोंने करीब दो हजार रुपये लगाकर मन्दिरको बहुत ही सुन्दर और आकर्षक बना दिया है। श्रीबीकानेर-नरेशकी कोठीके दक्षिण ओर स्थित यह मन्दिर शिव-भक्तिके माहात्म्यका सरस गान कर रहा है।

मैं नहीं कह सकता कि जड़वादके उपासकोंको इन प्रत्यक्ष सच्ची घटनाओंको पढ़कर भी उस अन्तर्हित सर्वोपरि शक्तिपर विश्वास हो सकेगा, जिसकी शीतल और सुखद छायाका आश्रय लेकर मनुष्य सहज ही दुस्सह त्रितापके भीषण और अनवरत आक्रमणोंसे अविलम्ब उन्मुक्त हो सकता है। भगवान्‌की सकाम उपासनाका भी जब प्रत्यक्ष इतना अधिक माहात्म्य है तो निष्काम भक्तिके फलस्वरूप यदि भक्तको सुगमतया और शीघ्रतया ऊँचे-से-ऊँचा पद प्राप्त होता है तो कौन-सी बड़ी बात है?
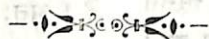
प्रसिद्ध शिवभक्त कैलासवासी परमहंस विप्रराजेन्द्रस्वामीजी महाराज

संयुक्त-प्रान्तके बलिया जिलेके अन्तर्गत अन्तरवली नामक ग्राममें विक्रम संवत् १८६० में इन परम शिवभक्त योगिराजका सरयूपारीण ब्राह्मणकुलमें जन्म हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीमन्युदत्त और पितामहका नाम देवेन्द्रदत्त था। आपकी बालकपनसे ही विद्याध्ययनमें बड़ी अभिरुचि थी। यद्यपि उस समयकी प्रथाके अनुसार नौ वर्षकी अवस्थामें ही आपका विवाह कर दिया गया था, किन्तु द्विरागमन (गौना) नहीं हुआ था। आपकी विद्या पढ़नेकी इच्छा इतनी प्रबल हुई कि आप विवाह होनेके कुछ ही दिन बाद एक दिन अकस्मात् बिना किसीसे कुछ कहे-सुने घरसे निकल पड़े
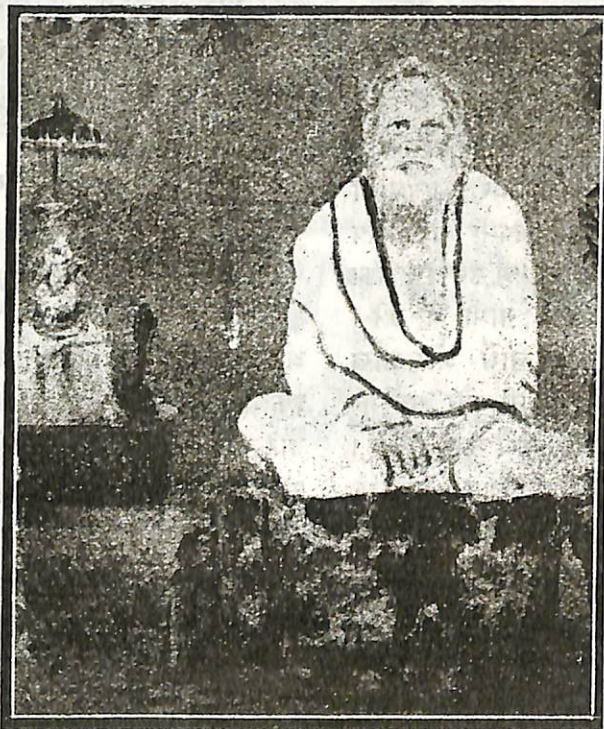
और लगभग चार वर्षतक काशी आदि स्थानोंमें अध्ययन करते रहे। इस छोटी-सी अवस्थामें इतना साहस आपकी अलौकिक शक्तिका ही परिचायक था। आपकी बुद्धि इतनी प्रगल्भ थी कि चार ही वर्षोंमें आप व्याकरण, दर्शनशास्त्र, उपनिषद् आदि कई विषयोंमें पारङ्गत हो गये और संवत् १८७३ वि० में, जब वे केवल १३ वर्षके थे, शास्त्रार्थके निमित्त देश-देशान्तरोंमें घूमनेके लिये चल पड़े और मिथिला, नवद्वीप, शान्तिपुर आदि विद्याके प्रसिद्ध केन्द्रोंमें होते हुए बिहार-प्रान्तकी डुमरावँ-राजधानीमें पहुँचे। उस समय डुमरावँमें भी पण्डितोंका अच्छा जमाव था। इनकी विद्वत्ताको देखकर सारी पण्डित-मण्डली दङ्ग रह गयी। वहाँसे लौटकर आप अपने घर आये तो मालूम हुआ कि आपकी माताके अतिरिक्त घरमें कोई नहीं बचा था। माताकी आज्ञासे आप अपनी विवाहिता-स्त्रीको घर ले आये और गृहस्थीका कार्य करने

लगे। आपकी विद्वत्ताकी ख्याति आस-पास सब जगह फैल गयी और सैकड़ों विद्यार्थी आपसे अनेक शास्त्रोंका अभ्यास करने लगे।

संवत् १८९२ में आपको योगाभ्यास करनेकी इच्छा हुई और आप अपनी मातासे आज्ञा लेकर अपने मकानकी एक अलग कोठरीमें योगसाधन करने लगे। साधनकी अवस्थामें आप केवल दुग्ध और जलका सेवन करते थे और रात-दिन कोठरीमें बन्द रहते थे। थोड़े ही दिनोंमें आपका अभ्यास इतना बढ़ा कि आपको तीन-तीन मासकी समाधि होने लगी। अन्तिम समाधि नौ मासतक रही। संवत् १९०४ में आप अभ्यास समाप्त करके बाहर निकले, उस समय आपका शरीर सूखकर काष्ठवत् हो गया था, जटाएँ बढ़कर भूमिको स्पर्श करने लग गयी थीं, आँखें धँस गयी थीं और नितम्बके चर्ममें दीमकोंने घर कर लिया था। आपको देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि आप जीवित हैं। आपने योगकी क्रियासे कायाकल्प किया और आपका शरीर पुनः पहलेकी भाँति स्वस्थ हो गया। इसके अनन्तर आप देश-देशान्तरोंमें घूम-घूमकर उपदेश देने लगे। आपकी ख्याति इतनी बढ़ी कि सैकड़ों नर-नारी दूर-दूरसे आपके दर्शनके लिये एकत्र होते और आपके उपदेशसे लाभ उठाते।

संवत् १९१४ के सिपाही-विद्रोहके समय आपने अपनेको 'भारताधिपति' प्रसिद्धकर स्थान-स्थानपर व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। परिणाम यह हुआ कि काशी पहुँचनेपर वहाँके कलक्टरने आपको गिरफ्तार कर लिया, किन्तु योगबलसे एक दिन आप जेलसे बाहर निकल आये। आपने जेलरको और भी अनेक चमत्कार दिखाये और दूसरे ही दिन आपको छोड़ देनेकी आज्ञा हो गयी। आपने अनेक विषयोंपर अनेक ग्रन्थोंकी रचना की और बादमें भारतके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वानोंको अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभासे चकित किया। आपकी शिवभक्ति अनुकरणीय थी। आप भगवान् शिवजीकी प्रतिमा हर समय अपने साथ रखते थे।

आपकी मृत्यु भी योगियोंकी-सी ही हुई, मृत्युके कुछ दिन पूर्व आप सबको अपने देहत्यागका समय निकट बतलाकर काशी चले आये थे। वहाँ मृत्युके पूर्व रात्रिके समय आपके श्वासकी गति बन्द हो गयी। दूसरे दिन प्रातःकाल आपका मस्तक एक जगह फूल गया। कुछ समयके बाद अचानक धड़ाकेका शब्द हुआ और आपका मस्तक फूटकर उसीमेंसे प्राणवायु निकल गया। आपने अनेकों ग्रन्थोंका निर्माण किया था, जो आज भी आपकी शिवभक्ति और विद्वत्ताका डङ्का बजा रहे हैं।

शिव-सेवाका प्रत्यक्ष फल

(लेखक—पं० श्रीविद्याभास्करजी शुक्ल)

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश देते हुए ठीक ही कहा है कि 'हे अर्जुन! तू जो कुछ भी करता है, खाता है, हवन आदि करता है, देता-लेता है, तपस्या करता है सब मेरे अर्पण कर।' इस बुद्धिसे मनुष्यको केवल कर्त्तव्य-ज्ञान रहता है। उसमें अनासक्ति-भाव रहता है और सदसद्विवेक-भाव रहता है। उसके कार्य-पथमें आनेवाली विघ्न-बाधाएँ उसकी एक-निष्ठामें किञ्चित् मात्र भी अन्तर नहीं डाल सकतीं। वह जानता है कि मैं जो कुछ भी कर रहा हूँ वह अपने लिये नहीं, अपने स्वामीके लिये। मुझे वही करना है जिसमें मेरे स्वामी प्रसन्न रहें, कोई भी ऐसा कार्य मुझसे न हो जो मेरे स्वामीकी अरुचि या अप्रसन्नताका कारण हो। यह मेरा शरीर मेरे स्वामीका है, स्वामीके लिये है, इसलिये उनकी सेवामें किसी प्रकार व्यतिक्रम करना अभीष्ट नहीं। सच है, अपनेको और अपने समस्त कार्योंको स्वामीके चरणोंमें अर्पण करनेकी निष्ठावाला भक्त तप्त स्वर्णके समान समुज्ज्वल हो जाता है। वह भगवान्‌का, और भगवान् उसके हो जाते हैं। वह अपनी तमाम अड़चनोंको तृणवत् समझकर अपने भगवान्‌को रिझानेमें तन्मय हो जाता है। वह अपना कुछ समझता ही नहीं; सब कुछ भगवान्‌का समझता है। उसका एक ही भाव रहता है—

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

भगवान्‌की इन पुनीत लीलाओंका अनुभव सभी नहीं कर पाते। इसीलिये उनमें उनकी आस्था भी नहीं रहती; क्योंकि भगवान्‌की आस्थामें आवश्यकता है श्रद्धाकी,

धैर्यकी, सन्तोषकी, प्रतीक्षाकी और सच्ची लगनकी। भगवान्‌की देन परोक्ष है; परन्तु एकनिष्ठावाले और सच्ची लगनवाले भक्त उसका प्रत्यक्ष अनुभव भी करते हैं।

भगवान्‌के स्वरूपोंमें शङ्कर-स्वरूपकी महिमा अमित है। भगवान्‌का शिव-स्वरूप, बिना किसी भेद-भावके सबपर अपनी समान कृपाकोर रखनेवाला है। इसीलिये देवाधिदेव महादेवको 'औढरदानी' कहा है। देवोंमें वे सबसे बड़े होनेके कारण तो महादेव हैं ही, परन्तु देनेवालोंमें भी सबसे बढ़कर देनेवाले होनेसे भी 'महादेव' हैं। उनका दान मनमौजी है, अटपटा है, बेढब है। उपासनासे जितना शीघ्र भगवान् शङ्कर प्रसन्न होते हैं उतना शीघ्र प्रसन्न होनेवाला भगवत्‌का कोई स्वरूप नहीं है।

विमलेश्वर महादेवका मन्दिर

देव, दानव, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, ऋषि-मुनि जब किसीने किसी शक्ति या वस्तुकी इच्छा की है तो सभी प्रायः कैलाशपति शङ्करकी शरण गये हैं; सभीने उन्हींकी उपासना की है, उन्हींका आश्रय लिया है और आशुतोषसे अपनी इच्छा पूर्ण की है। हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण कुम्भकर्ण, मेघनाद, बाणासुर आदि दैत्य दुर्दमनीय और अजेय शक्ति प्राप्त करनेके लिये भगवान् शङ्करकी ही शरण गये। देव, ऋषि, मुनि आदि भी उन्हींकी शरण गये। भस्मासुरने भगवान्‌को ही मारनेके लिये भगवान्‌की उपासना की, परन्तु भगवान् अपनी देनसे न चूके, उसको इच्छित वरदान दे ही दिया।
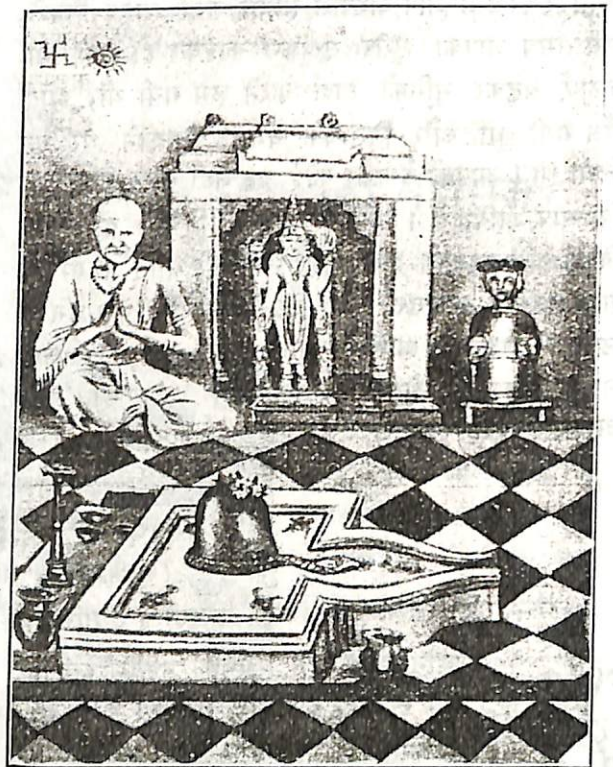
कहनेका तात्पर्य यह कि शङ्करके समान दूसरा औढरदानी, आशुतोष, जग-हितकारी कोई नहीं। समुद्र-मन्थनसे निकले हुए हलाहल विषको देखकर जब सभी सुरासुर भयभीत हो गये तो जग-कल्याणकारी शङ्करने उसे हँसते-हँसते पान कर लिया। कल्याण चाहनेवालेके लिये शङ्करकी उपासना अभीष्ट है। अनन्यभावसे जो उनकी शरण गया है, निहाल होकर लौटा है।

देवेश्वरजीकी विमलेश्वर-पूजा

इन्दौर-राज्यके नेमाड़-प्रान्तमें बड़वाह नामका एक शहर है। उससे करीब तीन मील रतनपुर नामका एक गाँव है। रतनपुरसे दक्षिणकी ओर, तीन मील दूर, नर्मदाके तटपर श्रीविमलेश्वर महादेवका विशाल मन्दिर है। यह मन्दिर

सैकड़ों वर्ष पुराना है और एकान्त स्थानमें बना हुआ है। इसका जीर्णोद्धार महारानी अहल्याबाईने करवाया था। सघन वृक्षोंकी झुरमुटमें मन्दिर अति ही सुन्दर, कला-कौशल-पूर्ण एवं दर्शनीय है। यद्यपि ऊपरसे मन्दिर इस समय भी जीर्ण-शीर्ण है परन्तु अपनी प्राचीनता, महत्ता और शिल्प-कौशलका प्रत्यक्ष स्वरूप वह आज भी अपने अक्षय प्रताप-का परिचय दे रहा है। समय-समयपर अब भी भगवद्भक्त अपनी इष्ट-सिद्धि, शङ्कर-दर्शन और पाप-मार्जनके लिये वहाँ पहुँचते रहते हैं। भगवान् विमलेश्वरकी उपासनाका कितने ही भक्त आज प्रत्यक्ष फल भोग रहे हैं।

श्रीदेवेश्वरजी दुबे नामके एक बहुत ही सज्जन, भगवद्-भक्त, धर्मनिष्ठ ब्राह्मण रतनपुर ग्राममें रहते थे। कङ्गाली ही उनका घर, भिक्षा उनकी जीविका और भजन ही उनका धन था। इसी सम्पत्तिसे सन्तोषपूर्वक वे अपना और अपने परिवारका पालन-पोषण करते थे। देवेश्वरजी-के ठाकुर थे शङ्कर और शङ्करके भक्त थे देवेश्वर। श्रीदेवेश्वर-जीने वर्षों एकनिष्ठ होकर शिवजीकी निष्काम आराधना और पूजा की। वे उनके अनन्य भक्त एवं पुजारी रहे।

उस समय एक जमींदार ठाकुरसाहब थे। वे शिव-भक्त थे। उन्होंने देवेश्वरजीको शिवजीपर जल चढ़ाने और पूजा करनेके लिये नियुक्त कर दिया था। इसके लिये ठाकुरसाहब देवेश्वरजीको थोड़ी-सी वार्षिक सहायता दे दिया करते थे। उनके और परिवारके निर्वाहका केवल यही साधन था। परन्तु उनकी निष्ठा, भक्ति और श्रद्धामें किञ्चित्मात्र भी कमी न थी। वे शिवजीका पूजन अर्थ-दृष्टिसे नहीं किन्तु आन्तरिक श्रद्धासे करते थे।

चाहे बिजली चमक रही हो, चाहे बादल गरज रहे हों, चाहे मूसलधार वर्षा हो रही हो, चाहे शीतसे शरीर गला जा रहा हो, परन्तु देवेश्वरजी विमलेश्वरको जायँगे, अवश्य जायँगे। उनको कोई शक्ति उनकी भक्तिसे विचलित नहीं कर सकती। देवेश्वरजी रतनपुरमें रहते थे, मन्दिर वहाँसे तीन मील था। बरसातके दिनोंमें जाँघों और कमरतक चारों ओर मार्गोंमें पानी भर जाता था। नेमाड़ी चिकनी मिट्टीमें देवेश्वरजी जाँघोंतक धँस जाते थे। बागड़ोंके (कीचड़में गिरे हुए) काँटे कभी-कभी पैरोंमें चुभ जाते थे, परन्तु देवेश्वरजीकी शङ्कर-पूजामें एक दिनका भी व्यतिक्रम न होता था। वे नित्य-नियमसे प्रातःकाल चार बजे उठकर, बेलपत्र, पुष्पादि लेकर, उसी दल-दलमें खुचते, फँसते, भींगते, नर्मदा किनारे पहुँचते, स्नानादि करते, नर्मदा-जल भरते और मन्दिरमें जाकर श्रीविमलेश्वर महादेवकी पूजा-अर्चा करते थे।

जमींदार ठाकुरसाहब उनके इस कार्यकी कभी देख-भाल या जाँच-पड़ताल न करते थे। देवेश्वरजी सालमें केवल एक बार उनके यहाँ जाकर अपना पावना ले आते थे। यदि देवेश्वरजी एकनिष्ठ न होते तो वर्षा आदिके दिनोंमें पूजाको न जाया करते, क्योंकि कोई पूछनेवाला तो था नहीं। दूसरे देखनेवाले भी आश्चर्य करते और ऐसे समयोंमें अपना शरीर सङ्कटमें डालनेकी मूर्खतापर देवेश्वरजीको हटकते थे; परन्तु वे किसीकी कैसे मानते, उन्हें शारीरिक कष्टोंका क्या ध्यान था? वे दत्तचित्त होकर ईश्वर-भजनमें लीन थे, तपस्यामें संलग्न थे। उन्हें ठाकुरका डर न था, रुपयोंका मोह न था; उन्हें प्रेम था शिवजीसे और उनके पूजनसे, जिसके आगे अपने शरीरको वे तृणवत् समझते थे।

कार्य तो कोई भी व्यर्थ नहीं जाता, परिश्रमका फल मिलता ही है। फिर भगवद्-पूजाके विषयमें क्या पूछना! भगवान् ही उसके हो जाते हैं। वह भगवान्से ही कहला लेता है—'हम भक्तनके भक्त हमारे'। उसमें भी शङ्करकी उपासना, आशुतोष औढरदानीकी पूजा! फिर भला, क्यों न फल मिलेगा, क्यों न सिद्धिप्राप्ति होगी? जो उसके ध्यानमें मग्न होगा उसका आनन्द अक्षय है। देवेश्वरपर विमलेश्वर प्रसन्न हुए; शिवजीके प्रत्यक्ष दर्शनकर देवेश्वरजीका हृदय गद्गद, शरीर पुलकायमान, वाणी मौन हो गयी। देवेश्वरजीके कुछ बिना माँगे ही भगवान्का विरद हाथ उनपर उठ गया। आज दुबे-परिवार शिक्षित है, सम्पन्न है। उनके यहाँ किसी बातकी कमी नहीं। देवेश्वरजीको शरीर छोड़े बीस वर्ष हो गये, पर उनके घरमें शङ्करकी कृपा है। उनका घरभर अपनी सम्पन्नताका एकमात्र कारण शङ्करकी ही कृपाका फल मानता है और शङ्कर-पूजा करता है। देवेश्वर-जीके योग्य पुत्र श्रीबलरामजी दुबेने विमलेश्वरजीके मन्दिरमें सङ्गमरमरका फर्श लगवाया है। शिवजीकी कृपासे और अपनी ईमानदारी तथा सचाईसे वे साधारण दशासे एक अच्छी उन्नत-अवस्थाको पहुँचे। ९) मासिक नौकरीसे ८०) मासिकतक वेतन पाया और आज ४०) मासिक पेन्शन पाते हुए पुत्र-पौत्रोंके बीच ईश्वर-भजनमें अपने जीवनके शेष दिन बिता रहे हैं। श्रीबलरामजी दुबेने भारतके सभी तीर्थोंके दर्शन किये हैं और कई जगह

धर्मशाला आदि बनवायी हैं । ऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वारमें उनकी ओरसे चार ब्रह्मचारी शिक्षा पाते हैं । श्रीबलरामजी दुबेके सुपुत्र श्रीदयाशंकरजी दुबे एम० ए०, एल-एल० बी० प्रयाग-विश्वविद्यालयमें अर्थशास्त्रके प्रोफेसर हैं । आप हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक हैं । हिन्दीमें आपने कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं । आप हिन्दी-प्रचार और धर्म-प्रचारके जबर्दस्त समर्थक और सेवक हैं । आजकलके शिक्षित-समाजमें, दुबेजी-ऐसे सच्चरित्र, मिलनसार, सन्तोषी, निरभिमानी, धर्मनिष्ठ और ईश्वरभक्त शायद बहुत थोड़े हैं । यह शिवजीकी कृपाका फल है कि वर्तमानकालमें ऊँची अङ्गरेजीकी शिक्षा पाकर भी वे पूरे धर्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ ब्राह्मण हैं और भगवान्में आस्था तथा धर्ममें अपार श्रद्धा रखते हैं । अपने पूज्य पिताके साथ आपने भी प्रायः सब तीर्थोंका भ्रमण किया है ।

आज शिवभक्त दुबेजीका घर विद्या, विनय, ईश्वरभक्ति और सम्पत्तिसे परिपूर्ण है । बात-बातमें दुबेजी अपनी इस उन्नतिका कारण अपने बाबा श्रीदेवेश्वरजी दुबेकी तपस्या और शिवजीकी कृपाका फल बतलाते हैं ।

भक्तराज पण्डित श्रीदेवीसहायजी

(लेखक—श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, एम० ए०, डिप्टी कलक्टर)

हिन्दी-भाषा बोलनेवाले उत्तरी हिन्दुस्तानके निवासियोंमें बहुत लोग ऐसे होंगे जिन्होंने भगवान् शङ्करके अनन्य भक्त तथा उनकी स्तुतिमें परम मधुर और सुललित भजनोंके निर्माता, पण्डित देवीसहायजी वाजपेयीका नाम सुना होगा । अपनी जन्मभूमि, काशीके विषयमें तो मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि किसी भी बड़े शिव-मन्दिर की ओर निकल जाइये, इन भक्तप्रवरके भजनोंकी गूँज आपके कानोंको अवश्य पवित्र करेगी । आज मैं उन्हीं देवीसहायजीके विषयमें कुछ लिखना चाहता हूँ ।

पण्डित देवीसहायजीका जन्म संवत् १८६८ विक्रमीयमें जिला फर्रुखाबादके अन्तर्गत सरायमीरा नामक ग्राममें हुआ था । यह सरायमीरा ग्राम कन्नौज रेलवे-स्टेशनके पास बसा हुआ है । जिस समय देवीसहायजी अपनी माताके गर्भमें थे, उस समय एक दिन इनकी माताजी घोड़ेको कुछ खानेको देनेके लिये अस्तबलमें गयीं । घोड़ेकी पिछाड़ी खुली हुई थी। इनके पहुँचते ही वह भड़क उठा और उसने लात चलाना शुरू किया । इस आघातसे पीड़ित होकर इनकी माताजी मूर्च्छित होकर वहीं मृतप्राय-सी हो गिर पड़ीं । लोगोंने श्वास न चलते देखकर समझ लिया कि वे मर गयीं और उनको गंगाजी ले चलनेकी तैयारियाँ करने लगे । अकस्मात् उसी अवसर पर एक दिव्य महापुरुष मस्तकमें त्रिपुण्ड्र लगाये, हाथमें कमण्डलु लिये तथा श्वेत वस्त्र धारण

किये, 'नारायण', 'नारायण' कहते सहसा आ उपस्थित हुए। उन्होंने कहा कि यह स्त्री जीवित है, मरी नहीं; इसको दो दिन बाद चेतना होगी। दो दिनके बाद ऐसा ही हुआ और पण्डितजीकी माताजी चैतन्य होकर उठ बैठीं। मूर्च्छितावस्थामें उनको ऐसा भान हुआ कि साक्षात् भगवती दुर्गाजी, जिनकी आराधना माताजी करती थीं, इनके पास आयीं और उन्होंने अपने हाथसे इनको हींग खिलाया। कहा जाता है कि उस समय भी इनके मुखसे हींगकी सुगन्ध आ रही थी। जगज्जननी भगवतीकी सहायतासे ही इनकी माता बची थीं और उन्हींके अनुग्रहसे देवीसहायजी भी गर्भमें रक्षित हुए थे। इसीलिये लोगोंने इनका नाम 'देवीसहाय' रक्खा।

तेरह वर्षकी अवस्थामें देवीसहायजीने महाजनी-विद्या तथा मुड़िया अक्षरोंका अभ्यास प्रारम्भ किया। संवत् १८८८ में, बीस वर्षकी अवस्थामें, इन्होंने फ़र्रुखाबादमें आकर शोरे-कोठीवाले लाला द्वारकादास अग्रवालके यहाँ पन्द्रह रुपये मासिकपर मुनीमी प्रारम्भ की। आजकलकी तरह उस समय भी नमक बनाना कानूनके विरुद्ध था और ऐसा करनेवाला दण्डका भागी होता था। शोरा बनानेमें नमक बहुत आसानीसे बन सकता है। कहा जाता है कि एक समय लोभमें पड़कर लाला द्वारकादासने कुछ नमक बनाया और उसे अपने गोदाममें रक्खा। किसीने इस बातकी सूचना अधिकारियोंको दे दी। लालाजीके गोदामकी तलाशीकी नौबत आयी, वह बहुत घबड़ाये कि सब बनी-बनायी इज़्ज़त मिट्टीमें मिल जायगी। मुनीम देवीसहायजीने इनको समझाया कि घबड़ाइये नहीं। भगवान् शङ्करकी शरणमें जाइये, वह आपकी अवश्य रक्षा करेंगे। लालाजीने तुरन्त ही रुद्राभिषेक प्रारम्भ करवा दिया। आशुतोष बाबा भोलेनाथको प्रसन्न होते देर नहीं लगती। तलाशी हुई। पर जहाँपर नमकका ढेर रक्खा था, वहाँ शोरा मिला। लालाजी निर्दोष छूट गये और उनकी आबरू रह गयी। पर देवीसहायजीको बड़ी मार्मिक वेदना हुई। उनकी बात रखनेके लिये इष्टदेवको इतना कष्ट करना पड़ा और प्रकृतिके नियमोंको भी तोड़ना पड़ा। इस दुर्दशाका मूलकारण वेतनवृत्ति अथवा नौकरी ही थी। अतः उन्होंने उसी दिनसे नौकरी छोड़ दी और फिर जीवनभर किसीके यहाँ भी वेतन-वृत्ति स्वीकार नहीं की। लाला द्वारकादासकी मनोवृत्तिमें भी बड़ा परिवर्तन हो गया। उन्होंने मैनपुरी जिलेमें भवगाँव नामक स्थानपर एक बड़ा मन्दिर बनवाया और उसीके साथ एक धर्मशाला बनवा दी। लालाजीके अन्तिम वंशज लाला नारायणदास अभी हालमें आठ वर्ष हुए निःसन्तान स्वर्गवासी हुए। इन्होंने अपनी बची हुई कुल सम्पत्ति इसी मन्दिर और धर्मशालाके निमित्त दान कर दी। इसका प्रबन्ध आजकल एक ट्रस्टके सुपुर्द है।

संवत् १८९० में देवीसहायजीने फ़र्रुखाबादमें सराफीकी दूकान खोली। इसके तीन वर्षके बाद पण्डितजी ओंकारेश्वरजीकी यात्राको निकले। उस समय रेल न थी। रास्ता बहुत दिनोंका था और जंगलोंमें होकर जाना पड़ता था। एक दिन रास्तेमें पण्डितजीने कोई जंगली फल खा लिया। तबीयत बहुत खराब हो गयी। दस्त आने लगे। चित्त बड़ा व्याकुल हुआ। संयोगवश एक तरबूज़ मिला, उसको खानेसे इनको बड़ी शान्ति हुई। थोड़ी देरमें एक तालाबसे इन्होंने खूब जी भरकर स्वच्छ जल-पान किया। तुरन्त ही यह भले-चङ्गे हो गये। आगे जाकर मालूम हुआ कि इन्होंने जमालगोटा खा लिया था। उसकी ओषधि यह तरबूज़ और जल था और भगवान् शङ्करने उनको अनायास ही इनके लिये सुलभ कर दिया था।

ओंकारजीमें इन्होंने अनुष्ठान प्रारम्भ किया। इनका ध्येय था कि जबतक नर्मदामाहात्म्यमें लिखित शुद्ध नर्मदेश्वर न प्राप्त हों तबतक अनुष्ठान समाप्त न हो। संयोगवश एक दिन जब ये पार्थिव-पूजनके समय ध्यान-मग्न थे, किसीने इनसे कहा कि 'जैसे नर्मदेश्वर चाहते हो, लो। हम उस पार ॐकारजीमें जा रहे हैं।' इन्होंने अनायास ही अपना हाथ आगे कर दिया और सचमुच किसीने एक नर्मदेश्वर इनके हाथमें रख दिया। आँख खोलकर देखा तो सामने कोई नहीं। देवीसहायजीको नर्मदेश्वर देनेवाले महात्माके दर्शनकी बड़ी उत्कण्ठा हुई। चट उस पार ॐकारजीके मन्दिरमें जानेको तैयार हुए। समय बड़ा भयङ्कर था, आँधी चल रही थी। नर्मदा अपनी उत्ताल तरङ्गोंके रूपमें साक्षात् चण्डी प्रतीत होती थी। कोई नाववाला ऐसे समयमें कैसे अपनी नाव ले जानेकी हिम्मत करता ? अधिक पुरस्कारका प्रलोभन व्यर्थ हुआ। निराश होकर देवीसहायजी अगाध नर्मदामें कूद पड़े और बड़ी कठिनाईसे तैरकर उस पार पहुँचे। मन्दिरमें जाकर पूछा तो पुजारीने कहा कि यहाँ तो कोई महात्मा नहीं

आये। मालूम होता है आपको साक्षात् भगवान् शङ्करने दर्शन दिये हैं।

एक दिन पण्डितजी पार्थिव-पूजनके लिये मृत्तिका ढूँढ़ते हुए नर्मदाके किनारे बहुत दूर निकल गये। अँधेरी रात्रि थी और बिजली चमक रही थी। अकस्मात् एक बार जब बिजली चमकी तो इनको सामने एक बड़ा भयङ्कर नरकङ्काल दिखलायी पड़ा। देवीसहायजी डर गये। जोर-जोरसे 'महादेव' 'महादेव' पुकारने लगे। मानों इनकी पुकारका उत्तर देते हुए किसीने बगलके मान्धाता-पर्वतपरसे पूछा कि 'तुम ऐसे भयङ्कर समयमें कहाँ जा रहे हो।' इन्होंने कहा कि पूजनके लिये मृत्तिका ढूँढ़ने। देवीसहायजीने यह भी कहा कि 'हमको बहुत डर लगता है। आप कौन हैं।' उत्तर मिला 'हम यहीं रहते हैं। तुम बराबर 'महादेव', 'महादेव' पुकारते चले जाओ, हम उत्तर देते रहेंगे।' हुआ भी ऐसा ही। जबतक पण्डितजी मृत्तिका लेकर दूर नहीं निकल गये, बराबर पहाड़परसे 'महादेव', 'महादेव' की आवाज आती रही। बादको जब पण्डितजीने पता लगाया कि पर्वतपरके महात्मा कौन हैं तो मालूम हुआ कि वहाँ तो कोई रहता ही नहीं। धन्य हैं देवीसहायजी जिनको प्रणवतुल्य यह 'महादेव' शब्द साक्षात् भगवान् भूतभावनके मुखसे सुनायी दिया।

ओंकारेश्वरजीका अनुष्ठान समाप्त करके देवीसहायजी समीपस्थ उज्जैनमें महाकालेश्वरके दर्शनको गये। वहाँ इन्होंने शङ्करजीके समीप दिनभर जप करना प्रारम्भ किया। जप करनेके बाद जब ये अपने निवास-स्थानको जाने लगते, तो मार्गमें एक सुन्दरी इन्हें कुछ फल और मेवे देती थी। देवीसहायजी इसको माता पार्वतीजीका प्रसाद समझकर वहीं बैठकर उसी समय खा लेते थे। यह क्रम कई मास-तक जारी रहा। एक रोज सहसा उस सुन्दरीने कुछ प्रेमा-लाप-सा प्रारम्भ किया। देवीसहायजीने उसे माता पार्वती-रूपसे सम्बोधन किया और इस अनर्थ-कल्पनाके लिये खेद प्रकट किया। उस दिनसे सुन्दरीने फल और मेवे देना बन्द कर दिया। कुछ कालके उपरान्त वही सुन्दरी एक दिन इनको मन्दिरमें मिली। यह जप कर रहे थे। उस स्त्रीके हाथमें जलका भरा एक घड़ा था। उसने घड़ा वहीं रख दिया और यह कहकर चली गयी कि 'इसे देखते रहना, जब मैं आऊँगी तब ले जाऊँगी।' प्रसङ्गवश वहाँ एक परमहंसजी भी थे। उन्होंने देवीसहायजीसे कहा कि 'इस स्त्रीने आपपर टोना किया है। आपका वचना कठिन है।' देवीसहायजीने कहा 'हर-इच्छा'। रात्रिको देवीसहायजीके नाकसे खून आने लगा। बड़ी व्यथा हुई, मूर्च्छित हो गये। तन्द्राकी अवस्थामें जगज्जननी पार्वतीजी-ने इनको आदेश दिया कि 'तुरन्त क्षिप्रा-नदीमें नहाकर जल पी लो।' इन्होंने वैसा ही किया और सवेरेतक स्वस्थ हो गये। पश्चात् तीन मास उज्जैन रहकर फ़र्रुखाबाद लौट आये।

संवत् १९०० में पण्डितजी बदरी-केदार-यात्राके लिये निकले। केदारजीमें पहुँचकर बीमार हो गये। पहाड़का पानी लग गया और इनको दस्त आने लगे। बचनेकी कोई आशा न रही। इनके सब साथी चले गये। केवल इनकी भौजाई रह गयीं, सो उन्होंने विचार किया कि यदि पण्डितजीका शरीर छूट गया तो मैं भी आत्महत्या कर लूँगी। उनके चित्तमें यह विचार आया ही था कि एक जटाधारी महात्मा दिखलायी दिये। उन्होंने डाँटकर कहा कि 'यहाँ यात्रा करने आयी है या आत्मघात करने।' इसी समय पण्डितजी भी स्वप्न-सा देख रहे थे। उन्होंने अपनेको कैलाश-पर्वतपर भगवान्‌के दरबारमें पाया। ज्यों ही प्रभुने प्रसन्न होकर इनके सिरपर हाथ रक्खा, ये जाग उठे और जल्दी ही भले-चंगे हो गये।

पाठकगण! इन अपूर्व दैवी सहायताकी घटनाओंको असत्य न समझें। मेरे एक पूज्य मित्र अभी मौजूद हैं जिनको इसी प्रकार स्वप्नमें साक्षात् मारुतिस्वरूप उनके पितामहने किशमिश खानेको दी और जागनेपर उन्होंने अपनेको उस भयङ्कर बीमारीसे मुक्त पाया जिसके लिये वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंने जवाब दे दिया था।

संवत् १९१० से १९१६ तक पण्डितजी नेत्र-रोगसे पीड़ित रहे। पीड़ित क्या थे अन्धे ही हो गये थे। स्वयं इनको तो कुछ परवा न थी, पर इनके सम्बन्धी तथा इष्ट-मित्र बड़ी-बड़ी तदवीरें करते रहे, परन्तु कुछ न हुआ। अन्त-को वे एक रोज सिविलसर्जनको लाये। उसने कहा कि अगर देवताओंके वैद्य धन्वन्तरि भी आ जावें तब भी पण्डित देवीसहायकी आँखोंमें ज्योति नहीं आ सकती। वैसे तो पण्डितजी शान्त थे, पर देवताओंपर किये गये आक्षेपको वे न सह सके। बोले, मेरी आँखें ठीक होंगी और शङ्करजीको उन्हें ठीक करना होगा। पण्डितजी यह बात कह तो गये पर उन्हें इसका बड़ा पश्चात्ताप हुआ। किन्तु भक्तकी बात

भला कभी टल सकती थी। पण्डितजीके नेत्र खुल गये और उनमें पूर्ण ज्योति आ गयी।

संवत् १९२४ में पण्डितजीके पुत्र–पुत्तूलालपर विष देनेका अभियोग लगा। पुत्तूलाल इस समय २४ वर्षके थे और यही एकमात्र सन्तान देवीसहायजीको बची थी। उनका विवाह भी हो चुका था और एक पुत्र भी था। इस स्थितिमें भी देवीसहायजी अविचलित रहे। उन्होंने कहा–'हमसे घर-घर दौड़कर लोगोंकी खुशामद न होगी। यदि पुत्तूलाल दोषी है तो उसे फाँसी होगी, अन्यथा शङ्करजी उसकी रक्षा करेंगे।' यह कहकर पण्डितजी गङ्गातटपर चले गये और कह गये कि 'जबतक यह समस्या हल न हो जावेगी मैं घर नहीं लौटूँगा।' मृत व्यक्तिका शव सिविलसर्जनने चीरा-फाड़ा, पर उसमें कोई विष नहीं मिला। पुत्तूलाल निर्दोष छूट गये।

संवत् १९३५ में पण्डितजीके शिष्य–ललिताप्रसाद काशी गये और वहाँ उन्होंने देवीसहायजीके बनाये पदोंको गा-गाकर गली-गली घूमना प्रारम्भ किया। इससे काशी-निवासियोंको पण्डितजीके दर्शनकी बड़ी उत्कण्ठा हुई। पण्डितजीके पास काशीसे कई प्रतिष्ठित महानुभावोंके निमन्त्रणपत्र आये। इनमें पण्डितजीने शंकरहीकी प्रेरणा, इच्छा तथा आज्ञा समझा। अतः दूसरे वर्ष इन्होंने काशी-वासका संकल्प करके वहाँके लिये प्रस्थान किया।

काशीमें पण्डितजी सुप्रसिद्ध आत्मावीरेश्वरके मन्दिरके समीप एक शिवालयमें रहने लगे और नित्यप्रति प्रातःकाल और रात्रिके समय भगवान् आत्मावीरेश्वरके सम्मुख स्वरचित भजनोंको गाने लगे, इसी प्रकार आठ वर्ष काशी-सेवन करके इस अनन्य भक्तने शिव-सायुज्य लाभकर संवत् १९४४ में इहलीला संवरण की।

देवीसहायजीके रचे हुए भजन अत्यन्त मर्मस्पर्शी तथा हृदयग्राही हैं। भाषाकी सरलता और छन्दोंके लालित्यके विषयमें तो कहना ही क्या है!*

देवीसहायजीकी एक जीवनी पण्डित गोकुलनाथ शर्मा औदीच्यने काशीस्थ हरिप्रकाश-यन्त्रालयसे संवत् १९५४ में प्रकाशित करायी थी। उक्त पुस्तकसे मुझे इस लेखमें बड़ी सहायता मिली है।

अन्तमें मैं स्वर्गीय देवीसहायजीका एक पद बिना लिखे नहीं रह सकता। यह पद मुझे बार-बार काशीमें श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें सुनायी पड़ा है। मेरेलिये तो यह मन्त्रवत् हो गया है। आशा है, पाठकोंको भी रोचक होगा।

दीनबन्धु दयालु शंकर, जानि जन अपनाइये।
भवसार पार उतार मोको, निज स्वरूप दिखाइये॥
जाने अजाने पाप मेरे, तिनहिं आप नसाइये।
कर जोरि भोरि निहोरि माँगों, बेगि दरस दिखाइये॥
देवीसहाय सुनाय शिवसों, प्रेमसहित जे गावहीं।
भवबन्धतें छुटि जाहिं ते नर, सदा अति सुख पावहीं॥

भगवान् शङ्करका उपदेश

भगवान् शङ्करके ज्योतिर्लिङ्गरूपमें प्रकट होनेके बाद जब ब्रह्माजी एवं विष्णुभगवान्ने उनकी स्तुति की तो उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर अपने असली स्वरूपमें प्रकट होकर बोले—हे देववरो! मैं आपलोगोंपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आप दोनों ही मेरी इच्छा-स्वरूपा प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं। मैंने अपने निर्गुण स्वरूपको तीन रूपोंमें विभक्तकर अलग-अलग गुणोंसे युक्त कर दिया है। मेरे दक्षिणपार्श्वमें ये लोकपितामह ब्रह्मा, वामपार्श्वमें विष्णु और हृदयदेशमें परात्पर परमात्मा अवस्थित हैं। यद्यपि मैं निर्गुण हूँ, तथापि गुणोंके संयोगसे मेरा बन्धन नहीं होता। वस्तुतः सारे दृश्य पदार्थ मेरे ही स्वरूप हैं। मैं, आपलोग (ब्रह्मा, विष्णु) तथा रुद्र नामक जो व्यक्ति अब उत्पन्न होंगे, सभी एकरूप हैं। हमलोगोंके अन्दर कोई भेद नहीं है, भेद ही बन्धनरूप है। फिर वे विष्णुको लक्ष्यकर कहने लगे—'हे सनातन विष्णो! आप मुक्तिप्रदान-का कार्य अपने जिम्मे रखिये। मेरे दर्शनसे जो फल होता है वही आपके दर्शनसे भी होगा। मेरे हृदयमें आप निवास करते हैं और आपके हृदयमें मेरा निवास है। जो व्यक्ति इसप्रकार हमारे अन्दर भेद नहीं देखते वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।' यह कहकर भगवान् शङ्कर वहीं अन्तर्धान हो गये। (शिवपुराणसे)

* इनके भजन पुस्तकरूपमें छप गये हैं। जिन भक्तोंकी रुचि इनका अवलोकन करनेकी हो वे 'शैवमनोरञ्जनी' नामक ग्रन्थ देखें। यह प्रायः सर्वत्र प्राप्य है। कदाचित् किसीको न मिल सके तो वह इस पुस्तकको पण्डित मोतीराम औदीच्य, स्थान विन्ध्याचल, जिला मिर्जापुरसे मँगा सकते हैं। मूल्य प्रायः १) है।

शिव और तन्त्रशास्त्र

(लेखक—पं० श्रीजगदीशजी शर्मा, व्याकरण-साहित्याचार्य, प्रोफेसर, धर्मसमाजसंस्कृत-कालेज, मुजफ्फरपुर)

संसारमें सभी प्राणी सुख चाहते हैं, परन्तु वास्तवमें यह सुख है क्या चीज ? प्रकृत पक्षमें तो वास्तविक सुख वही हो सकता है जो इहलोक और परलोक–दोनोंका साधक हो। यही कारण है कि हमारे पूर्वजोंने वैदिक धर्मको, जिसमें इसी सुखको सच्चा सुख बतलाया गया है, अपनाया था। परमकारुणिक भगवान् शङ्करने उस समय जब कि वेद एक ही था—श्रीवेदव्यासद्वारा उसका विभाजन नहीं हुआ था–उसका सारांश निकालकर तन्त्र-सिद्धान्तके रूपमें संसारके समक्ष रक्खा। यद्यपि उन दिनों वैदिक धर्मका प्रचार बहुत अधिक था, इस कारण आरम्भमें लोग इसकी ओर आकृष्ट नहीं हुए; तथापि ज्यों-ज्यों इसकी व्यावहारिक उपयोगिता उनके ध्यानमें आने लगी त्यों-त्यों वे इसे अपनाने लगे। और धीरे-धीरे एक ऐसा समय आया जब कि सारे संसारमें इस तन्त्र-सिद्धान्तकी पताका फहराने लगी। देव, राक्षस, यक्ष, किन्नर, मनुष्य–सभी इसके अनुगामी बन गये। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियोंने इसीके बलसे लोकोत्तर ख्याति प्राप्त की। श्रीशिवजीने इस तन्त्र-शास्त्रकी रचना किस उद्देश्यको लेकर की, यह तो यहाँ नहीं बतलाया जा सकता; परन्तु यह स्पष्ट है कि तन्त्रशास्त्र वेदके समकालीन है। संसारके सभी धार्मिक शास्त्र 'निगम' और 'आगम'–इन दो भागोंमें बाँटे जा सकते हैं। वेद और दर्शनशास्त्र 'निगम'के अन्तर्गत हैं और तन्त्रशास्त्रको 'आगम' कहते हैं। जिसकी सहायतासे मोक्षका मार्ग प्रशस्त हो, उसे 'निगम' समझना चाहिये और जिसके द्वारा मोक्षकी प्राप्ति हो उसे 'आगम'। शिवजीने पचास-पचास साठ-साठ अक्षरोंके बहुत बड़े-बड़े वैदिक मन्त्रोंकी शक्ति खींचकर तन्त्रके एकाक्षर मन्त्रोंमें भर दी है। जो काम वैदिक प्रयोगके द्वारा दिनोंमें होता है वही तान्त्रिक प्रयोगके द्वारा घण्टोंमें हो जाता है। इस चञ्चल चित्तको अधिक कालतक स्थिर रखना असम्भव-सा ही है, इस कारण शीघ्र फल देनेवाली तान्त्रिक पद्धति अधिक सुसाध्य और उपयोगी है। अब हम समझते हैं कि श्रीशिवजीका उद्देश्य भी स्पष्ट सामने आ गया है। जो देवोपासना और मोक्ष-साधना वैदिक मार्गसे अति कष्टसाध्य थी उसे तन्त्रने सर्व-सुलभ बना दिया। वैदिक सिद्धान्त है कि विषयोंके प्रति इन्द्रियोंकी जो प्रवृत्ति नैसर्गिक है उसे रोकना चाहिये। समस्त ऐहिक सुखोंका परित्याग करना चाहिये—प्राणायाम आदिके द्वारा इन्द्रियोंको शिथिल कर डालना चाहिये। ऐसा होनेपर मन असहाय होकर ईश्वरकी ओर झुक पड़ेगा और इसप्रकार मोक्षका मार्ग परिष्कृत हो जायगा। परन्तु शिवजीका तान्त्रिक सिद्धान्त इससे बिल्कुल विलक्षण है। उसमें यम-नियम, आसन, प्राणायाम आदिका इतना झगड़ा नहीं है। हमारे योगीश्वर शिवका कथन है—

> **यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो**
> **यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।**
> **श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां**
> **भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥**

अर्थात् जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं है और जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं है; परन्तु देवी श्रीसुन्दरीके सेवनमें तत्पर पुरुषोंके लिये भोग और मोक्ष दोनों हस्तामलकके समान हैं।

एकात्म-भावना ही मोक्षका पूर्वरूप है। इसीको मोक्षरूप महाप्रासादपर चढ़नेके लिये प्रथम सोपान कहा गया है। इसी उद्देश्यसे यह कहा गया है—

> **व्यतिरेकेतराभ्यां हि निश्चयोऽन्यनिजात्मनोः।**
> **व्यवस्थितिः प्रतिष्ठाऽथ सिद्धिर्निर्वृतिरुच्यते ॥**

सुख-दुःख, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य, द्वेष-प्रेम, ज्ञान-अज्ञानकी तुल्य भावना ही उस(एकात्म-भावना)का प्रधान लक्षण है। परन्तु ऐसी भावना होना सर्वसाधारणके लिये अत्यन्त कठिन है। अतः यह कहना पड़ता है कि प्राणियोंके उपकारार्थ श्रीशिवजीने मोक्षमार्गकी कठिनाइयोंको दूरकर तन्त्रशास्त्रकी रचनाके द्वारा उसका पथ परिष्कृत कर दिया। वे यदि ऐसा न करते तो संसारी जीवोंको मोक्षके अधिकारसे प्रायः वञ्चित रह जाना पड़ता। अब रहा इहलौकिक सुख, सो वह तो इच्छाकी पूर्तिसे प्राप्त हो ही जाता है; और इच्छा-सिद्धि भी शिवजीकी कृपासे तन्त्रमार्गके द्वारा अनायास ही

हो जाती है। षट्कर्मादि साधनोंके द्वारा अनायास ही लौकिक सुखका साधन हो सकता है। गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त समस्त क्रियाएँ शिवप्रणीत 'महानिर्वाणतन्त्र' में भलीभाँति वर्णित हैं। तान्त्रिक सन्ध्या, तान्त्रिक उपचार, तान्त्रिक यज्ञ—सबका विवेचन उक्त ग्रन्थमें किया गया है। इस वैज्ञानिक शक्तिके द्वारा शिवजीने संसारका प्रवाह ही पलट दिया। शिवप्रणीत 'मेरुतन्त्र' जिसकी श्लोकसंख्या सत्रह हजार है, शिवजीके चमत्कारोंसे भरा हुआ अत्यन्त रहस्यपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त रुद्रयामल, शाबरतन्त्र, महाकालरहस्य, डामरतन्त्र आदि अनेक विशाल ग्रन्थ, जिनकी विद्युच्छक्तिका प्रभाव आज भी संसारपर छाया हुआ है इन्हीं महाप्रभु शिवकी कृपाके फल हैं। इस तन्त्र-शास्त्रमें दर्शन और उपनिषत् भी हैं जिनके नाम प्रत्यभिज्ञादर्शन, परात्रिंशिका आदि हैं। इन ग्रन्थोंमें तान्त्रिक सिद्धान्तानुसार ईश्वरकी खोज की गयी है। इनमें बतलाया गया है कि व्याकरणके अनुसार 'ब्रह्मन्' शब्द नपुंसक है और नपुंसकसे संसारकी सृष्टि हो नहीं सकती। सृष्टि करनेवाली तो परमा प्रकृति शिवा हैं जो शिवशक्तिके नामसे पुकारी जाती हैं। ब्रह्म तो द्रष्टामात्र है। इसके सिवा महर्षि वाल्मीकिने अपने रामायणमें जिन जृम्भक, वायव्य, पार्जन्य, आग्नेय आदि अस्त्रोंका वर्णन किया है, जिनके द्वारा गगनमण्डलसे सर्पवृष्टि, अग्निवृष्टि आदि अद्भुत कार्य किये जा सकते हैं और जिन्हें ऋषि विश्वामित्रकी कृपासे श्रीरामचन्द्रजीने प्राप्त किया था, उन सबका उपयोग शिवजीके तान्त्रिक मार्गसे ही होता था। शिवकृपाके फलस्वरूप तान्त्रिक प्रयोगोंके पूर्ण अनुशीलनसे ही श्रीविश्वामित्र उक्त अस्त्रोंकी कल्प, रहस्य, आवरण, संवरण आदि क्रियाएँ जान सके थे, जिन्हें उन्होंने परम शिवभक्त श्रीरामचन्द्रजीको सिखाया और उन्हींकी सहायतासे वे अपने प्रबल शत्रुका संहार करनेमें समर्थ हुए। यह बात भी इतिहास-सिद्ध है कि देवासुर-संग्राममें, जोकि सत्ययुगमें हुआ था, तन्त्रशास्त्रानुसार ही शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग होता था। बाणासुरकी कन्या 'उषा' को भी शिवजीकी कृपासे ही आकर्षण-प्रयोग सिद्ध हुआ था जिससे वह सुदूर द्वारकामें वास करनेवाले श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धका आकर्षण कर सकी। महाभारतकालमें भी तान्त्रिक क्रियाओंके द्वारा अस्त्रप्रयोग होना पाया जाता है। घोर तपस्यासे श्रीशिवजीको प्रसन्नकर अर्जुनने उनसे 'रौद्र' आदि अनेक अस्त्र प्राप्त किये थे जिनके द्वारा उसने अपने शत्रुओंका संहार कर विजय प्राप्त की।

इन सब बातोंसे तथा तन्त्रसाहित्यका विशेष अध्ययन करनेसे यह मालूम होता है कि श्रीशिवजीका तन्त्रशास्त्रके साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्रीशिव लोकोपकारकी मूर्ति हैं। लोकोपकारके लिये उन्होंने बड़े-बड़े कष्ट स्वीकार किये। लोकोपकारकी भावनासे ही वे हलाहल पान कर गये और इसीलिये उषा-अनिरुद्ध-प्रसङ्गमें उन्होंने अपने भक्त बाणासुरका पक्ष लेकर भगवान् श्रीकृष्णसे संग्राम किया। उन शिवकी इस तन्त्ररचनाके उद्देश्यका मूल भी लोकोपकार-भावना ही होना चाहिये। शिव संसारके कल्याणकर्त्ता हैं और अवस्थाभेदसे वही ब्रह्मा और विष्णुके नामसे विख्यात हैं। यही तन्त्रका सिद्धान्त है, और वैदिक सिद्धान्त भी प्रायः यही है।

हर हर हर

बसत अचल पर धवल बरन हर,
　　सरप लसत अँग गँग शशधर सर।
जलज-नयन गर गरल अमल धर,
　　धरत चरम गज भजत धनद कर॥
करज कमल सज रजत बदन रज,
　　वरद वदत भल सहज वचन वर।
दरस करत सब चढ़त अछत जल,
　　लहत मनन धन कह हर हर हर॥१॥

जरत सकल जग गरल धरत गल,
　　करत अभय भय जय कह जय कर।
तपत करम तप तन मन जरजर,
　　छनक न भल रह जनम जनम जर॥
जप तप मख सत धरम अगम फल,
　　लहत सहज जन वदत वरद वर।
सरबस अघनस घर भर धन जन,
　　रह न तनक डर कह हर हर हर॥२॥

—शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' साहित्यरत्न

षडक्षर वा पञ्चाक्षर मन्त्र

(ॐ नमः शिवाय)

(लेखक—श्रीगौरीशंकरजी गनेड़ीवाला)

भगवान् श्रीमहादेवजी देवी पार्वतीजीसे कहते हैं कि पञ्चाक्षर मन्त्रका पूरा माहात्म्य करोड़ों वर्षोंमें भी कोई नहीं कह सकता। परन्तु संक्षेपसे हम सुनाते हैं। प्रलयकालमें स्थावर, जंगम, देव, असुर और नाग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। तुम भी प्रकृतिके रूपमें लीन हो जाती हो। तब हम एकाकी रहते हैं, कोई दूसरा अवशिष्ट नहीं रहता। उस समय वेद और शास्त्र हमारी शक्तिद्वारा पालन किये हुए पञ्चाक्षर मन्त्रमें निवास करते हैं। फिर जब हम दो रूप धारण करते हैं तब हमारी प्रकृति ही मायामय शरीर धारणकर नारायणरूपसे समुद्रमें शयन करती है। उसके नाभि-कमलसे पञ्चमुख ब्रह्मा उत्पन्न हो सृष्टि करनेकी सामर्थ्य-के लिये प्रार्थना करते हैं। एक बार ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुन उनके हितके लिये मैंने पाँच मुखोंसे पाँच अक्षरोंका उच्चारण किया। उन वर्णोंको ब्रह्माजीने पाँच मुखोंसे ग्रहण किया और वाच्य-वाचक-भावके द्वारा परमेश्वरको जाना। उन पाँच अक्षरोंके त्रैलोक्य-पूजित शिवजी वाच्य हैं। यह पञ्चाक्षर मन्त्र शिवका वाचक है। ब्रह्माजीने इस पञ्चाक्षर मन्त्रका विधिपूर्वक दीर्घ कालतक जपकर सिद्धि प्राप्त की और तदनन्तर भगवान् शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये मेरु-पर्वतके मूजवान् शिखरपर दिव्य हजार वर्षोंतक तप किया। उनकी दृढ़ भक्ति देख भगवान्ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर लोकहितके लिये पञ्चाक्षर मन्त्रके ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, बीज, षडङ्गन्यास, दिग्बन्ध और विनियोगका उपदेश किया।

ऋषिगण भी इस तरह मन्त्रका माहात्म्य सुनकर अनुष्ठान करने लगे, क्योंकि उसीके प्रभावसे देवता, मनुष्य, असुर, चार वर्णोंके धर्मादि, वेद, ऋषि तथा शाश्वत धर्म और यह जगत् स्थित है।

पञ्चाक्षर मन्त्र अल्पाक्षर है। इसमें अनेक अर्थ भरे हैं। वेदका सार, मुक्तिका देनेवाला, असन्दिग्ध, अनेक सिद्धि देनेवाला, सुखसे उच्चारण करने योग्य, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, सब विद्याओंका बीज, सब मन्त्रोंमें आदि, वट-बीजकी भाँति बहुत विस्तारयुक्त और परमेश्वरका वाक्य पञ्चाक्षर ही है। इसके आदिमें प्रणव लगा देनेसे यह षडक्षर हो जाता है।

पञ्चाक्षर तथा षडक्षर मन्त्रमें वाच्य-वाचक-भावके द्वारा शिव स्थित हैं। शिव वाच्य हैं और मन्त्र वाचक है, यह वाच्य-वाचक-भाव अनादिसिद्ध है। जिस पुरुषके हृदयमें पञ्चाक्षर मन्त्र विद्यमान है; उसने मानो सब शास्त्र और वेद पढ़ लिये, क्योंकि शिव ही ज्ञान हैं, वही परमपद हैं। इसलिये नित्य पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। पञ्चाक्षर भगवान् शिवजीका हृदय, गुह्यसे भी गुह्य और मोक्ष-ज्ञानका सबसे उत्तम साधन है।

न्यास तीन प्रकारका है—उत्पत्ति, स्थिति और संहार। १ उत्पत्ति-न्यास ब्रह्मचारियोंको करना चाहिये, २ स्थिति-न्यास गृहस्थके करनेयोग्य है, ३ संहार-न्यासके एकमात्र अधिकारी संन्यासी हैं।

इसप्रकार गुरुसे प्राप्त पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। क्योंकि सब यज्ञोंमें जपयज्ञ उत्तम है। और सब यज्ञोंमें हिंसा होती है, किन्तु जपयज्ञ हिंसारहित है। इसीसे और सब यज्ञ, दान, तप आदि जपयज्ञके षोडशांशकी भी तुलना नहीं कर सकते। जप करनेसे देवता प्रसन्न होते हैं और भोग तथा मोक्ष देते हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच, ग्रहादि भी भयभीत होकर जप करनेवालेसे दूर रहते हैं। जपसे पुरुष मृत्युको भी जीत लेता है।

न्यास करते समय पहले करन्यास, बाद देहन्यास और पीछे अङ्गन्यास करे।

पुरश्चरणके समय मन्त्रके वर्णोंसे चौगुने लाख जप करे। रातको भोजन करे। सब प्रकार नियमसे रहे। आसन बाँध पूर्व-मुख या उत्तर-मुख बैठकर एकाग्र चित्त हो मौन-भावसे जप करे और आदि-अन्तमें पञ्चाक्षरजपपूर्वक प्राणायाम करे, अन्तमें १०८ बीज (ॐ) मन्त्रका जप करे।

बीज	शक्ति	स्वर	ऋषि	वर्ण	देवता	मुख	छन्द
प्रणव	पार्वती	उदात्त	ॐ	श्वेत	परमात्मा		गायत्री
,,	,,	,,	न	पीत	इन्द्र	पूर्व	,,
,,	,,	,,	मः	कृष्ण	रुद्र	दक्षिण	अनुष्टुप्
,,	,,	निषाद	शि	धूम्र	विष्णु	पश्चिम	त्रिष्टुप्
,,	,,	उदात्त	वा	वर्ण	ब्रह्मा	उत्तर	बृहती
,,	,,	स्वरित	य	रक्त	स्कन्द	ऊर्ध्व	विराट्
,,	,,						

(ॐ) हृदयाय नमः (न) शिरसे स्वाहा (मः) शिखायै वषट् (शि) कवचाय हुं (वा) नेत्राय वौषट् (य) अस्त्राय फट्।

आचारहीन पुरुषका सब साधन निष्फल होता है। आचार ही परमधर्म और परमतप है। आचारयुक्त पुरुषको कहीं भी भय नहीं रहता। सदाचारके पालन करनेसे पुरुष ऋषि और देवतातक बन जाते हैं। मुख्यतः असत्यका त्याग करे, क्योंकि सत्य ब्रह्म है, और असत्य ब्रह्मका दूषण है। असत्य तथा कठोर वाक्य, पैशुन्य (चुगली), परस्त्री, पराया धन तथा हिंसा आदिको मन-वचन-कर्मसे त्याग दे। दीर्घायु चाहनेवाला पवित्र होकर गङ्गादि नदियोंपर पञ्चाक्षर मन्त्रका लक्ष जप करे। दूर्वाके अङ्कुर, तिल और गुड़ूची (गिलोय) का दश हजार हवन करे। अपमृत्यु-निवारणके लिये शनिवारको अश्वत्थ-वृक्षका स्पर्श करे और जप करे। व्याधि दूर करनेके लिये एकाग्रचित्त हो एक लक्ष जप करे और नित्य आककी समिधासे अष्टोत्तर शत हवन करे उदर-रोगके शान्त्यर्थ पाँच लक्ष मन्त्र जप करके दस हजार हवन करे। नित्य सूर्यके सम्मुख पवित्र जलको अष्टोत्तर शत बार अभिमन्त्रण करके पान करे।

मोक्षकी इच्छा करनेवाला निष्कामभावसे निरन्तर प्रेमपूर्वक जप करे। जपके प्रभावको जानकर सदाचारपरायण हो निरन्तर निष्काम जप करनेसे अवश्य कल्याण होगा।

इतिहास

प्राचीन समयमें एक बार बड़े तेजस्वी वत्स नामक मुनि भ्रमण करते हुए सूतजीके आश्रममें पहुँचे। सूतजीने भक्तिसे प्रणाम करके पाद्य, अर्घ्य आदि देकर मुनिकी पूजा की और कुशल-प्रश्नके अनन्तर सूतजीकी प्रार्थनासे चातुर्मास-व्रतका अनुष्ठान करनेके लिये वत्समुनि उनके यहाँ ठहर गये। सूतजी विनयपूर्वक उनकी सेवा करने लगे। महर्षि वत्स दैनिक कार्यसे निवृत्त होकर रात्रिके समय अवकाश मिलनेपर सूतजीको विचित्र कथाएँ सुनाया करते थे।

एक समय कथाके अन्तमें सूतजीने विस्मित होकर महर्षि वत्सजीसे पूछा कि 'हे भगवन्! आपका यह शरीर इतना सुकुमार है और आप अनेक विचित्र कथाएँ कहते हैं। हे तात! मुझे यह बतलाइये कि इतनी छोटी अवस्थामें आपने ये घटनाएँ कैसे देखीं? हे मुनीश्वर! यह आपकी तपस्याका प्रभाव है अथवा किसी मन्त्रका फल है?'

वत्समुनि हँसकर बोले—'हे सूतजी! तुमने बहुत ठीक पूछा। यह मन्त्रका ही प्रभाव है। मैं प्रतिदिन शिवजीके समीप उनके षडक्षर मन्त्रका आठ हजार जप किया करता हूँ। इसीके प्रभावसे मेरी युवावस्था तीनों कालमें एक-सी रहती है और मुझे सदैव भूत-भविष्यका ज्ञान बना रहता है। मेरा जन्म हुए एक हजार वर्ष हो गये। हे महामते! सदाशिवजीकी प्रसन्नतासे मैंने जिस-प्रकार सिद्धि प्राप्त की है, इसका वृत्तान्त मैं विस्तारसे तुम्हें सुनाता हूँ।

एक बार वनोंमें भ्रमण करते-करते मैं महर्षि देवरात ऋषिके आश्रमपर पहुँचा। ऋषिके मृगावती नामकी एक रूप-गुण-सम्पन्ना कन्या थी, उन्होंने शुभ मुहूर्तमें बड़ी प्रसन्नतासे मेरे साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। मैं मृगावतीके साथ आनन्दसे रहने लगा। परन्तु मेरे भाग्यमें यह आनन्द अधिक कालके लिये नहीं बदा था!

एक दिन मृगावती अपनी सहेलियोंके साथ वनमें विचरण करने गयी। घूमते-घूमते उसका पैर घास-फूससे ढके एक भयङ्कर नागके सिरपर पड़ गया। सर्पने क्रोधमें आकर मृगावतीको काट लिया और वह तत्काल मर गयी।

सखियोंने आकर यह दारुण वृत्तान्त मुझे सुनाया। मैं यह दुःखद वृत्तान्त सुनते ही हाहाकार करता घटना-स्थलपर जा पहुँचा और अपनी प्राणप्रियाको निर्जीव

देख छाती पीट-पीटकर विलाप करने और करुणस्वरसे रोने लगा।

इसप्रकार हृदय-विदारक विलाप करते-करते दुखी होकर मैंने चिता बनायी। मृगावतीके शरीरको उसपर रखकर आग लगा दी और स्वयं भी उस चितापर चढ़ने लगा। इतनेमें ही मेरे कुछ मित्र इस दारुण वृत्तान्तको सुनकर वहाँ पहुँच गये और उन्होंने मुझको समझा-बुझाकर आत्महननरूपी दुष्कर्मसे रोक लिया एवं आश्रममें ले गये। आधीराततक तो मैं किसी प्रकार विलाप करता हुआ आश्रममें पड़ा रहा; पर ज्यों ही मेरे समीपवर्ती लोग सो गये, त्यों ही मैं कान्ताके वियोगमें विलाप करता हुआ आश्रमको त्यागकर निर्जन वनकी ओर निकल पड़ा। लेकिन वे मुझे फिर पकड़ लाये और आश्रममें लाकर फटकारते हुए उन्होंने कहा—हे कामिन्! तुमको धिक्कार है, ब्रह्मर्षि होकर तुम स्त्रीके लिये इस तरह रोते हो? हम, तुम और संसारके सब प्राणी जो भूमिमें उत्पन्न हुए हैं, वे सब मरेंगे। इनके लिये विलाप करनेसे क्या लाभ? किसीके साथ बहुत दिनतक एकत्र वास नहीं होता। दूसरोंकी कौन कहे, अपने शरीरका भी अधिक दिनतक साथ नहीं रहता। खोई हुई वस्तु, बीती हुई बात अथवा मरे हुए प्राणीके लिये जो पुरुष सोच करता है वह इस लोक और परलोकमें दुःखका पात्र होता है।

आश्रममें आनेपर मेरा दुःख कोपरूपमें परिणत हो गया और मैंने आँखोंके सामने आये हुए सभी सर्पोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की।

एक रात्रिको मैं रोता-पीटता फिर निकलकर बहुत दूर चला गया। इधर जब मेरे मित्रोंकी नींद खुली तो वे मुझे न पाकर बहुत दुखी हुए और खोजने निकले। खोजते-खोजते किसी प्रकार मेरे समीप पहुँचे और मुझे आश्रममें पकड़ लाये। इसके अनन्तर आश्रममें रहकर सर्पजातिका विनाश करना ही मैंने अपने जीवनका एकमात्र कर्तव्य बना लिया।

उसी दिनसे मैं ब्राह्मणवृत्तिका परित्यागकर एक मोटा-सा डण्डा ले साँपोंकी खोजमें निकला। मेरे सामने छोटे-बड़े, विषैले, काले, पीले, जैसे भी साँप पड़े वे सब मेरे दण्डप्रहारसे कालके गालमें पहुँच गये। इसप्रकार असंख्य सर्पोंको मारता हुआ मैं एक दिन एक सरोवरके समीप जा पहुँचा। वहाँ मुझे एक बूढ़ा, बनैला साँप दिखायी दिया। उसको देखते ही मैंने मारनेके लिये अपना डण्डा सम्हाला।

अपने सिरपर कालको सवार देखकर उस वृद्ध सर्पने नम्रतापूर्वक कहा कि 'हे ब्राह्मणसत्तम! मैं यहाँ एकान्तमें पड़ा अपना जीवन व्यतीत करता हूँ। न किसीसे बोलता हूँ और न किसीको कोई कष्ट ही पहुँचाता हूँ। फिर मुझ निरपराधी बूढ़ेको आप क्यों मारते हैं?'

उसने मुझसे बहुत प्रार्थना की, पर मैंने अपना डण्डा उसपर चला ही दिया। डण्डा लगते ही सर्पका शरीर तो न जाने कहाँ चला गया और मुझे अपने सामने सूर्यके समान तेजस्वी एक महापुरुष दिखायी पड़ा। यह घटना देखकर मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ और मैं उस पुरुषको प्रणामकर कहने लगा कि हे महापुरुष! मैंने कोपवश बहुत अनुचित कार्य किया है, कृपया मेरा अपराध क्षमा कीजिये। अब दया करके मुझे यह बतलाइये कि आप कौन हैं और आपने सर्पका शरीर क्यों धारण किया था? किसीके शापसे ऐसा हुआ या यह आपकी एक लीलामात्र थी?

उस महापुरुषने प्रसन्न मनसे गम्भीर वाणीमें उत्तर दिया कि हे मुने! मैं आपको अपना पूरा वृत्तान्त सुनाता हूँ। आप ध्यानपूर्वक सुननेकी कृपा करें।

इससे पूर्वजन्ममें मैं चमत्कारपुरमें निवास करता था। ईश्वरकी दयासे मैं परम तेजस्वी एवं धन-धान्यसे समृद्ध था। उसी नगरमें सिद्धेश्वर महादेवका विशाल मन्दिर था। एक दिन बड़े उत्साहके साथ उस शिवालयमें उत्सव मनाया गया। वहाँपर नाना प्रकारके बाजे बजते थे, जिनकी ध्वनिसे सारा आकाश भर गया था। उस आवाजको सुनकर हजारों शैव तथा अन्य शिवभक्त दूर-दूरसे वहाँ आ पहुँचे। उनमेंसे कुछ केवल एक बार भोजन करते, कुछ सूखे पत्ते चबाकर निर्वाह करते, कुछ केवल जल पीकर रहते, कुछ वायु पीकर ही सन्तुष्ट रहते और कुछ एकदम निराहार रहकर भगवान शङ्करका ध्यान किया करते थे।

सब भक्त भगवान् सिद्धेश्वरकी वन्दनाकर उनके सामने बैठ जाते और अनेक देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों तथा राजर्षियोंकी दया, धर्म, सत्य आदिके उपदेश देनेवाली विविध प्रकारकी कथाएँ कहते-सुनते थे। भक्तिपूर्ण हृदयवाले कितने ही साधुजन नृत्य, गान, वादन आदिमें मग्न हो जाते। कुछ धनिक लोग दीन, अन्ध और दरिद्रोंको धन देकर सन्तुष्ट करते थे।

उस समय जवानीके मदमें चूर मैं भी अपने मित्रोंके साथ तमाशा देखनेकी गरजसे वहीं जा डटा। मैं अज्ञानसे अन्धा हो रहा था। मेरे हृदयमें शिवकी भक्ति तो थी नहीं; मैं केवल उस उत्सवमें विघ्न डालकर आनन्द लूटना चाहता था। अन्तमें मैंने जीभ लपलपाते हुए एक बड़े लम्बे भयङ्कर जलसर्पको उठाकर उन लोगोंके बीचमें फेंक दिया। साँपको देखते ही सब लोग डरके मारे इधर-उधर भाग गये। केवल एक सुप्रभ नामक महान् तपस्वी परमात्माके ध्यानमें निमग्न, समाधि लगाये बैठे रहे। वहाँ वे कमलासनपर विराजमान, अनिन्द्य, अभेद्य, जरा-मरणसे रहित, वेदनाथ महेश्वरके ध्यानमें लीन थे। परमानन्दसे उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। सारा शरीर रोमाञ्चित हो रहा था। इस स्थितिमें उन महामुनिको कहाँ क्या हो रहा है, इसका लेशमात्र भी ज्ञान नहीं रह गया था।

सर्पको और कोई तो मिला नहीं, यही समाधिस्थ मुनि मिले। उसने इनके शरीरको भलीभाँति जकड़ लिया। इसी बीचमें सर्वशास्त्रपारङ्गत, परमतपस्वी श्रीवर्धन नामक उनके शिष्य वहाँ आ पहुँचे। पूज्य गुरुदेवके शरीरको सर्पसे जकड़ा हुआ और मुझे उनके समीप ही खड़ा देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। उनकी आँखें लाल हो गयीं, होंठ फड़कने लगे और क्रोधके मारे आँखोंमें आँसू भर आये। वे अत्यन्त कठोर स्वरमें कहने लगे कि 'यदि मैंने तीव्र तप किया हो, सच्चे हृदयसे गुरुकी शुश्रूषा की हो और निर्विकल्प-चित्तसे भगवान् महेश्वरका ध्यान किया हो तो यह ब्राह्मणाधम इसी समय सर्पयोनिको प्राप्त हो जाय।' उन महातपस्वीका वचन अन्यथा कैसे हो सकता था ? शाप देते ही मैं मनुष्यसे सर्प बन गया।

कुछ देर बाद सुप्रभ मुनिका ध्यान टूटा। उन्होंने अपने शरीरमें लिपटे हुए एक भयङ्कर सर्पको और पास ही सर्पके आकारमें मुझे तथा अपने आस-पास भयभीत जनसमुदायको देखा। तुरन्त सब बातें उनकी समझमें आ गयीं। वे मेरी ओर कृपापूर्ण दृष्टिसे देखते हुए श्रीवर्धनसे बोले, वत्स ! तुमने इस दीन ब्राह्मणको शाप देकर तपस्वियोंके योग्य कार्य नहीं किया। जो मान और अपमानको समान समझता है, पत्थर और सोनेमें भेद नहीं देखता, शत्रु और मित्रको एक-सा मानता है, वही तपस्वी सिद्धपद पा सकता है। तुमने बिना समझे-बूझे इसको शाप दे दिया, अतएव इसके सब अपराध क्षमा करके इसे शापसे मुक्त कर दो।

परम सत्यवादी श्रीवर्धनने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा कि 'हे पूज्यपाद गुरुवर ! अज्ञानसे अथवा ज्ञानसे मेरे मुखसे जो कुछ निकल गया वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता। इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। जब हँसीमें भी मेरे मुखसे निकले हुए वचन झूठे नहीं हुए हैं तो शापके निमित्त कहे गये वाक्य कैसे झूठे हो सकते हैं ? सूर्यदेव चाहे पूर्व दिशाको त्यागकर पश्चिम दिशामें उदित हो जायँ, अगाध और अनन्त महासागर सूखकर मरुस्थल बन जाय, सुमेरु पर्वत नष्ट हो जाय; पर मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। आप मेरी इस धृष्टताको क्षमा करके मुझे अनुगृहीत करें।'

महर्षि सुप्रभने कहा कि 'मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारे वचन मिथ्या नहीं हो सकते। तुम्हें इसप्रकार उपदेश देना इस समयके लिये नहीं, बल्कि इसलिये है कि भविष्यमें कभी तुम्हें ऐसा करनेका साहस न हो। गुरुका यह कर्तव्य है कि वह वयस्क शिष्यपर भी सदा शासन करता रहे। तुम तो अभी बालक हो, तुम्हें उपदेश देना तो मेरा परम कर्तव्य है। क्षमासे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। तपस्वियोंके लिये तो क्षमासे बढ़कर कोई शस्त्र है ही नहीं। पापीके प्रति भी अपने मनमें पाप-बुद्धि न लानी चाहिये। उपकार करनेवालेके प्रति जो सज्जनता प्रकट करता है, उसमें क्या विशेषता है ? जो मनुष्य अपकार करनेवालेके साथ उपकार करता है, वास्तवमें वही साधु है।'

इसप्रकार अपने शिष्यको अनेक प्रकारके उपदेश देकर वे ऋषि मुझसे कहने लगे—'हे भाई ! तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख है। परन्तु अब कोई उपाय नहीं है। इस सत्याश्रितका कथन त्रिकालमें भी अन्यथा नहीं हो सकता। अतः तुमको सर्पयोनिसे मुक्त होनेके लिये कुछ समयकी प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।'

तब मैंने बड़ी नम्रताके साथ पूछा कि 'हे महाराज ! मैं बड़ा अज्ञानी और दीन हूँ। मुझपर कृपाकर बतलाइये कि इस शापका अन्त कब होगा ?'

महर्षि सुप्रभने कहा कि 'जो व्यक्ति शिवालयमें एक घड़ीभर नृत्य, गीत आदि करता है उसके पुण्यका पारावार नहीं रहता और जो उत्सवमें एक घड़ीभर भी विघ्न करता है उसके पापका ठिकाना नहीं रहता। तुमने इस महोत्सवमें विघ्न

डालकर घोर पाप किया है, अब केवल बातोंसे काम नहीं चलेगा। मैं उपाय बताता हूँ, उसके करनेसे ही इस घोर पातकसे छुटकारा मिल सकता है। वह उपाय है शिव-षडक्षर मन्त्रका जप। शिवजीके 'ॐ नमः शिवाय' इस षडक्षर मन्त्रके जप करनेसे ब्रह्महत्या-जनित पापसे भी मुक्ति मिल जाती है। षडक्षर मन्त्रका यदि दस बार जप किया जाय तो एक दिनके सब पाप दूर हो जाते हैं, बीस बारके जप करनेसे सालभरके पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये यदि तुम जलमें बैठकर इसी मन्त्रका जप करो तो धीरे-धीरे तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायँगे। कुछ दिनोंके अनन्तर वत्स नामक एक ब्राह्मण आवेंगे। उनके डण्डेकी चोट खाते ही तुम्हें इस योनिसे मुक्ति मिल जायगी।'

महर्षिके उपदेशसे मैं तभीसे इस जलाशयमें बैठा भक्तियुक्त चित्तसे षडक्षर-मन्त्रका जप किया करता था। आज आपके प्रसादसे मुझे सर्पयोनिसे छुटकारा मिल गया। देखिये, मुझे ले जानेको यह देवप्रेषित दिव्य विमान आ रहा है। अब मैं इसीपर बैठकर परमधामको चला जाऊँगा। आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। मुझे बतलाइये कि इस ऋणसे मुक्त होनेके लिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

वत्सने कहा कि यदि आप मेरा कुछ उपकार करना चाहते हैं तो मुझे ऐसा कोई उपाय बतलाइये जिससे मेरा यह दुःख दूर हो जाय और शत्रु, व्याधि, दरिद्रता आदिसे भी मुझे कभी दुःख न उठाना पड़े।

उस दिव्य पुरुषने कहा कि 'हे मुने! शिवजीका षडक्षर-मन्त्र प्राणियोंके सब अशुभोंका हरण करता है। आप उस मन्त्रका यथाशक्ति दिन-रात जप कीजिये। इससे आपकी सभी कामनाएँ पूरी होंगी और आप सब पातकोंसे मुक्त होकर स्वर्ग, मोक्ष आदि जो कुछ चाहेंगे, सब अनायास ही आपको मिल जायगा। षडक्षर-मन्त्रके जपसे दान, तीर्थस्नान, व्रत, तप, गयाश्राद्ध और सहस्र गोदानका फल मिल जाता है। अधिक क्या, ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवाले योगीको जो पद मिलता है। वही पद षडक्षर-मन्त्रका जप करनेवालेको भी मिलता है। इसलिये हे मुने! आप षडक्षर-मन्त्रका जप कीजिये। इससे आपकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी और दुःख भी दूर हो जायगा। मैंने आपको यह परमगोप्य मन्त्र बता दिया है। परन्तु हे द्विजवर! यह मन्त्र तभी सिद्ध और फलदायक होगा, जब आप पूर्णरूपसे हिंसाका परित्याग कर देंगे। सब वेदोंमें अहिंसा ही परमधर्म बताया गया है। ब्राह्मणके लिये अहिंसाव्रतका पालन करना परमावश्यक है। अहिंसाको न मानकर जो मनुष्य जीवोंका वध करता है, उसे महाप्रलयपर्यन्त घोर नरकमें निवास करना पड़ता है। चर और अचर प्राणियोंको जो अभय देता है, वही इस लोकमें अनेक तरहके सुख भोगकर स्वर्गको जाता है।'

उस दिव्य पुरुषका वचन सुनकर वत्सने कहा कि मैंने वृद्धोंके मुखसे सुना है कि हिंसाजन्य पाप सबको नहीं लगता। राजा लोग वनमें असंख्य जीवोंको मारते हैं; किन्तु उनको इसका पाप नहीं लगता। वैद्योंने मांसका भक्षण परम हितकर बताया है, उसके सेवनसे शरीर पुष्ट होता और आयुष्यकी वृद्धि होती है। हे महामते! मुझे इस विषयमें बड़ा सन्देह है। आप इसको दूर कर दीजिये। आप जो कहेंगे, उसे मैं अवश्य मान लूँगा।

उस दिव्य पुरुषने उत्तर दिया कि यह 'मांसलोलुप महापापियों और दुर्जनोंकी कपोलकल्पना है। ऐसे निर्दयी पापी लोग शोचनीय हैं। मांसका भक्षण करना तो परम-दोषावह है। मांससे न तो आयुकी वृद्धि होती और न बल ही बढ़ता है। इसके भक्षणसे आरोग्यलाभ भी असम्भव है। मांसके खानेवाले भी अनेक रोगोंसे पीड़ित दुर्बल तथा अल्पायु दिखायी देते हैं। इसी प्रकार मांसका परित्याग करनेवाले मनुष्य नीरोग और मोटे-ताजे रहकर पृथ्वीमें आनन्द लेते हुए दीखते हैं, उनकी आयु भी बड़ी होती है। अतः मांसके भक्षणसे कुछ लाभ नहीं। हाँ, हानि तो अवश्य ही होती है।

मांसका भक्षण करनेवाला मनुष्य घोर नरकमें जाता है। घास, लकड़ी आदि स्थावर पदार्थसे तो मांस मिलता नहीं, प्राणीका शरीर काटनेसे ही वह मिलता है। जो कष्ट अपने अङ्ग काटनेसे अपनी आत्माको होता है, वही कष्ट दूसरेकी आत्माको उसके अङ्गोंके काटनेसे होता है। ऐसा समझकर जीवोंकी हत्या कभी नहीं करनी चाहिये। केवल उनके सौन्दर्य और उनमें दीखती हुई जगदीश्वरकी कारीगरीको देखना और सराहना उचित है। हिंसा करनेका पाप केवल एक व्यक्तिको नहीं होता, किन्तु आठ व्यक्तियोंको होता है। जीवको मारनेवाला, अनुमोदन करनेवाला, उसका मांस काटनेवाला, खरीदनेवाला, पकाकर तैयार करनेवाला, परोसनेवाला और भक्षण करनेवाला, ये आठ प्रकारके घातकी होते हैं। ये आठों उस हिंसाजनित

पापके भागी होते हैं। जो व्यक्ति मनसा-वाचा-कर्मणा कभी हिंसा नहीं करता, वह जरा और मरणसे रहित परमपदको प्राप्त होता है। जो केवल शाक, मूल और फलोंका खानेवाला हो और ब्रह्मचर्यका पूर्णरूपसे पालन करता हो; किन्तु हिंसासे पृथक् न हो तो उसे किसी प्रकारका फल नहीं मिलता। सैकड़ों वर्ष घोर तप करनेवाले हिंसक मनुष्यसे अहिंसाधर्मका पालन करनेवाला दयालु पुरुष कहीं अधिक अच्छा है। दयावान् पुरुष जिस किसी वस्तुकी इच्छा करता है, वह उसे अवश्य मिल जाती है।'

इस प्रकार अहिंसामय उपदेश देकर वह दिव्य पुरुष उत्तम विमानपर चढ़ स्वर्गलोकको चला गया। उसके चले जानेपर मेरे मनमें निष्कारण इतने सर्पोंको मारनेका बड़ा पश्चात्ताप हुआ और मैं अनेक प्रकारसे विलाप करने लगा। अन्तमें मैंने निश्चय किया कि अब मैं हिंसाका सर्वथा परित्याग कर शिवदीक्षा ले महेश्वरकी पूजा करूँगा। संसारके जितने भी सुख हैं वे तपसे बहुत शीघ्र मिल जाते हैं।

उसी समय मैंने भक्तियुक्त चित्तसे शिवजीकी दीक्षा ले ली और मौन धारणकर दिन-रातका सारा समय एक वृक्षके नीचे बिताता हुआ सब शरीरमें भस्म रमाये षडक्षर मन्त्रका जप करता विचरने लगा। अन्तमें सिद्धेश्वर महादेवकी शरणमें पहुँच अहर्निश उनकी आराधना और षडक्षर-मन्त्रका जप करने लगा।

इस तपके ही प्रभावसे मेरा यौवन सदाके लिये स्थायी हो गया है। मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त हो गयी है कि जिससे मैं एक स्थानपर बैठे हुए ही दूसरे लोकोंका वृत्तान्त जान सकता हूँ। उसी तपके प्रभावसे मुझमें आकाशमार्गसे आने-जानेकी शक्ति भी आ गयी है।

इसप्रकार सूतजीके प्रश्नोंका उत्तर देकर वत्सजी लोक-लोकान्तरमें भ्रमण करते हुए तथा जीवनका अनुत्तम आनन्द लेते हुए अन्तमें शिवलोकको चले गये।*

हरिहरात्मक रूप

एक बार समस्त देवताओंके गुरु भगवान् श्रीशङ्कर सहस्र वर्षपर्यन्त स्तब्धभावसे रहे। उनके इसप्रकार रहनेसे सारा विश्व डावाँडोल हो गया और सम्पूर्ण देवता भयभीत हो गये। तब सारे देवता मिलकर भगवान् विष्णुके पास गये और प्रणाम कर उनसे जगत्के विक्षोभका कारण पूछने लगे। भगवान्ने कहा—'चलो, श्रीमहादेवजीके यहाँ चलें। वे महाज्ञानी हैं, जगत्के क्षोभका कारण अवश्य जानते होंगे।' यह कहकर वे देवताओंको साथ लेकर मन्दराचल-पर्वतपर गये। किन्तु देवताओंने वहाँ किसीको नहीं देखा। तब वे भगवान्से पूछने लगे कि 'शङ्कर कहाँ हैं, हम तो उन्हें कहीं नहीं देखते।' भगवान्ने कहा—'शङ्कर आपलोगोंके सामने ही तो बैठे हैं। आपलोगोंने स्वार्थवश देवी पार्वतीके गर्भको नष्ट किया है, इसी कारण, मालूम होता है, महादेवजीने आपके ज्ञानको नष्ट कर दिया है। अब आपलोग पापमुक्तिके लिये तप्तकृच्छ्र नामक व्रत करें और विधिपूर्वक शङ्करका पूजन करें, तब आप शङ्करका दर्शन पा सकेंगे।' देवताओंने भगवान्के आदेशानुसार शरीरशुद्धिके लिये 'तप्तकृच्छ्र'व्रत किया और व्रतकी समाप्तिपर पापमुक्त होकर उन्होंने भगवान्से कहा कि 'अब हमें कृपया शङ्करका दर्शन कराइये जिससे हम उनका विधिवत् पूजन कर सकें।' तब भगवान् मुरारिने उन्हें अपने हृदय-कमलपर शयन करनेवाले शिवलिङ्गका दर्शन कराया और देवताओंने उस लिङ्गका विधिवत् अर्चन किया। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि सत्त्व और तमोगुणसे आवृत हरि-हर किसप्रकार एकशरीर हो गये। बात यह है कि देवताओंको चिन्तित देखकर सर्वव्यापी भगवान् विश्वमूर्ति हो गये। त्रिनेत्र शिवकी अर्द्धमूर्तिका डेढ़ नेत्र और द्विनेत्र विष्णुकी अर्द्धमूर्तिका एक नेत्र—इसप्रकार उस हरि-हर मूर्तिके ढाई नेत्र थे; कानोंमें कनक और सर्पके कुण्डल विराजमान थे; मस्तकपर घुँघुराले काले बाल और कपिशवर्णकी जटाएँ सुशोभित थीं; गरुड़ और वृषभका वाहन था; हार और भुजङ्गसे अङ्ग विभूषित था; कटिप्रदेशमें पीतवसन और गजचर्म बँधा था; कर-कमलोंमें चक्र, कृपाण, हल, शार्ङ्ग, पिनाक और आजगव नामके धनुष, कपर्द, खट्वाङ्ग, कपाल, घण्टा और शङ्ख धारण किये हुए थे। इसप्रकारकी हरिहरात्मक युगल मूर्तिको देखकर देवतालोग परम प्रसन्न हुए और गद्गद् होकर स्तुति करने लगे। (वामनपुराणसे)

---

* इस लेखके शिवभक्त लेखकने शिवभक्तमाल पूर्वार्ध ॥), शिवभक्तमाल उत्तरार्ध ॥), शिवपूजाविधान सहित ॥।), काशीमोक्ष-निर्णय ।-), शिवपंचामृत ।), द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग -)॥ और शिवाशिव ललितावली (शिवभजनोंकी पुस्तक) नामक बहुत ही सुन्दर और सस्ती पुस्तकें केवल प्रचारके उद्देश्यसे स्वयं लिखकर प्रकाशित की हैं। जो शिवभक्तोंकी और शिवमहत्त्वकी बातें जानना चाहते हों उन्हें ये पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिये। मिलनेका पता श्रीगौरीशंकरजी गनेड़ीवाला, छपरा (सारन) है। सम्पादक

वेदोंमें शिवका स्वरूप

(लेखक—श्रीयुत वी० एच० वडेर, एम० ए०, एल-एल० बी०)

व्हिट्नी (Whitney) तथा जॉन डाउसन (John Dowson) प्रभृति पाश्चात्य वेदविशारदोंका कहना है कि वेदोंमें देवतावाचक 'शिव' का कहीं नाम भी नहीं है; हाँ, शिवके पर्यायवाची शब्द 'रुद्र' का, जो 'शिव' के समान ही प्रचलित है, एकवचन और बहुवचन दोनोंमें प्रयोग मिलता है। महादेव शिव और उनकी रुद्र नामक मूर्तियोंका विकास इसी शब्दसे हुआ है।

ऋग्वेदके कई मन्त्रोंमें अग्नि और रुद्रका एक ही व्यापार बताया गया है और मरुत् नामक देवताओंको उनका पुत्र कहा गया है। कुछ मन्त्र ऐसे भी हैं जिनमें रुद्रका व्यापार अग्निसे बिलकुल भिन्न बतलाया गया है।

डा० वेबर (Dr. Weber) का मत यह है कि महादेव (शिव) का स्वरूप अग्निसे ही प्रादुर्भूत हुआ है।

लोकमान्य तिलकने अपने 'Orion' नामक ग्रन्थमें यह प्रतिपादन किया है कि प्राचीन कालमें जब 'महाविषुव' की स्थिति मृगशिर-नक्षत्र (Sirius or Dog-star) के समीप थी, रुद्र अथवा शिव उक्त नक्षत्रके अभिमानी देवता माने जाते थे। कलकत्तेके पण्डित केदारनाथ विनोद तथा 'Popular Hinduism' नामक अंग्रेजी-पुस्तकके रचयिता श्रीयुत के० कृष्णस्वामी अय्यर आदि विद्वानोंका मत है कि शिव सूर्यके ही स्वरूप हैं।

हिन्दुओंके त्रिदेवोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी गणना है। वेदोंमें महेशको 'महादेव' नामसे अभिहित किया गया है और उनके उग्र और शान्त अथवा शिव—इसप्रकार दो रूपोंका वर्णन है।

तैत्तिरीय, बाष्कल, वाजसनेयी तथा मैत्रायणीय-संहिताके आधारपर हम निःसन्देह यह कह सकते हैं कि 'महादेव' रुद्रका ही पर्यायवाचक शब्द है। इसी निबन्धमें आगे चलकर हम यह भी बतलायेंगे कि ऋक्संहिता, यजुर्वेद तथा अथर्ववेदके आधारपर यह निर्विवाद सिद्ध किया जा सकता है कि रुद्र अथवा अग्निके कुछ विशिष्ट स्वरूपोंका नाम ही 'महादेव' है। ब्राह्मणग्रन्थों तथा पुराणोंसे भी इसी सिद्धान्तकी पुष्टि होती है; किन्तु प्रस्तुत निबन्धमें हमने केवल वेदों तथा वैदिक साहित्यमेंसे ही प्रमाण दिये हैं। वेदोंमें रुद्र अथवा शिवके असली स्वरूपका जो वर्णन है उसपर सूक्ष्म विचार करनेसे हम इस निर्णयपर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि रुद्र ही महादेव हैं और अग्नि ही रुद्र है, अथवा महादेव जो रुद्रका पर्यायवाचक शब्द है अग्निका ही विशेष स्वरूप है।

२—ऋग्वेदके निम्नलिखित प्रमाणसे यह सिद्ध होता है कि अग्नि ही रुद्र है—

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महादिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नुत्मना॥

(ऋग्वेद २ । १ । ६)

अथर्ववेद (७ । ८७ । १), तैत्तिरीयसंहिता (५ । १, ३, ४ तथा ५ । ७ । ३) एवं शतपथब्राह्मण (६ । १ । ३, १० तथा १ । ७ । ३–८) से भी इसी बातकी पुष्टि होती है।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद (१ । २७ । १०, ३ । २ । ५ तथा ४ । ३ । १) से यह प्रमाणित होता है कि रुद्रका एक स्वरूप अग्नि है।

३—विशेषकर यजुर्वेदमें कई ऐसे मन्त्र हैं जो इस बातको सूचित करते हैं कि रुद्रके कुछ स्वरूप अग्निके ही स्वरूप हैं—उदाहरणतः देखिये २ । ६ । ६ और ३ । ५ । ५ ।

यजुर्वेदका सम्पूर्ण रुद्राध्याय एक प्रकारसे अग्निपरक ही है और इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि अग्नि ही रुद्र है और उसके उग्र और सौम्य—दो रूप हैं।

४—महाभारत (वनपर्व अ० २२७) में भी लिखा है—

रुद्रमग्निं द्विजाः प्राहू रुद्रसूनुस्ततस्तु सः॥२६॥

५—शतपथब्राह्मण (९ । १ । १) में रुद्रको 'शर्वाग्नि' कहा गया है और उनका हवन 'शतरुद्रिय' और 'शान्तरुद्रिय'—दोनों ही विधिसे बताया गया है। वहीं प्रखर अग्निको 'गिरिश', गिरिशन्त', 'गिरिष्ठ', एवं 'गिरित्र' आदि अनेक नामोंसे अभिहित किया गया है। निरुक्त (१० । ७ । २) में लिखा है—'अग्निरपि रुद्र उच्यते,' अर्थात् अग्निको भी 'रुद्र' कहते हैं।

६–ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलका तैंतीसवाँ सूक्त, जो गृत्समद-सूक्त कहलाता है, रुद्रपरक है। उसके पहले मन्त्रका भाव यह है—'हे मरुतिपता, हमें सूर्य-दर्शनसे वञ्चित न करो।' इससे यह सूचित होता है कि रुद्र उत्तरीय ध्रुव-प्रदेशकी दीर्घ रात्रिके, जो वहाँ कम-से-कम तीन मासतक रहती है, अभिमानी देवता हैं। आगे चलकर तीसरे मन्त्रमें रुद्रसे यह प्रार्थना की गयी है कि आप अन्धकारको दूरकर अपने भक्तोंके लिये ऐसी व्यवस्था कीजिये कि वे नीरोग एवं स्वस्थ रहकर अन्धकारके सुदीर्घकालको व्यतीत कर सकें।

८वें मन्त्रमें रुद्रको कपिशवर्ण और बभ्रु (भूरा) कहा गया है।

९वाँ मन्त्र भी इस सम्बन्धमें बड़े महत्त्वका है—

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो
बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरे-
र्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम्॥

उपर्युक्त मन्त्रमें रुद्रको 'पुरुरूप' अर्थात् अनेक रूप अथवा रङ्गवाला, असाधारण तेजस्वी एवं बभ्रुवर्ण कहा गया है। यह रङ्ग 'आर्द्रा' (Betelgense) नक्षत्रका खास रङ्ग है, जिसप्रकार 'मृगशिर' (Sirius) नक्षत्रका खास रङ्ग सफेद है।

रुद्रका रङ्ग एकदम सुनहरी है।

७–अथर्ववेद (१३।४) में लिखा है कि चन्द्र, सूर्य, तारे आदि जितने चल मण्डल हैं वे सब रुद्रके वशवर्ती हैं। इस मन्त्रमें रुद्रको 'महादेव' कहा गया है और आजकल इस शब्दका शिवके अर्थमें प्रयोग होता है।

अथर्ववेद (१२।४,५) में गोरूपिणी पृथ्वीकी स्तुति की गयी है। अपना खुर उठाते समय वह 'तीर' बन जाती है और जब अपने चारों ओर देखती है तो महादेवरूप हो जाती है (देखिये १२।५।१८)। वह वृद्धिङ्गत होकर 'परिव्राजक व्रात्य' बन गया और 'महादेव' कहलाने लगा (देखिये अथर्व० १५।१।४)।

८–अथर्ववेदके १५वें काण्डके ५वें अध्यायमें 'धन्वी' के निम्नलिखित नाम दिये गये हैं। उनके द्वारा परिपालित दिशाओंके नाम भी, जिनका वहाँपर उल्लेख है, सामने दिये जाते हैं—

भव–पूर्वीय दिशाका अन्तराल।

शर्व–दक्षिण दिशाका अन्तराल।

पशुपति–पश्चिम दिशाका अन्तराल।

भीम–उत्तर दिशाका अन्तराल।

रुद्र–अधर दिशाका अन्तराल।

महादेव–ऊर्ध्व दिशाका अन्तराल।

अथर्ववेदके नवें मण्डलके सातवें अध्यायमें आदर्श 'वृषभ और धेनु' की स्तुति की गयी है।

महादेवको 'वृषभका बाहु' बताया गया है (९।७।७)

९–महादेव ही सूर्यरूप अग्नि अथवा लौकिक अग्नि हैं।

ऋग्वेद (१।१६४) की भाँति ३।५८ भी रहस्यमय है। अभीतक यह निश्चित नहीं हो सका है कि इस सूक्तके देवता कौन हैं।

'चार सींगवाले वृषभने घृत उत्पन्न किया है।'

चत्वारि शृङ्गास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य।

उसके चार सींग, तीन टाँगें, दो मस्तक और सात हाथ हैं। पता नहीं, यह वर्णन अग्निका है अथवा सूर्यका।

वह तीन स्थानोंमें सुरक्षित है—

महो देवो मर्त्यान् आविवेश।

त्रिधा हितं पणिभिः
इन्द्रः एकम्
सूर्यः एकम्
वेनात् एकम्

} यहाँ 'पणि' कौन हैं इस बातका भाष्यकारोंने स्पष्टीकरण नहीं किया है।

'घृतकी धाराओंके बीचोबीच एक सुनहरी सरकण्डा है।'

१०–मैत्रायणीय संहिता' (१।६।१) में ऋग्वेद (३।५८।३) से मिलता-जुलता ही एक मन्त्र है जो इसप्रकार है:—

अग्नियों नः पितरो हृत्स्वन्तरमर्त्यो मर्त्यमाविवेश।

ऋग्वेद (१०।२७।१) तथा तैत्तिरीय संहिता (१।२–९) में भी इसी प्रकारका एक मन्त्र है—

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षुषे
महो देवाय तदृतं सपर्यत।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे
दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत॥

रुद्रदेवतापर आधुनिक विद्वानोंके विचार

(सं०—पं० श्रीगणेशदत्तजी शर्मा गौड़ 'विद्यावाचस्पति')

वैदिक रुद्रदेवताके सम्बन्धमें पौर्वात्य तथा पाश्चात्य विद्वानोंने अपने जो विचार प्रकट किये हैं। उन्हें हम यहाँ विद्वानोंके विचारार्थ उद्धृत करते हैं—

१–लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक महोदयने लिखा है–

'रुद्र तूफानका अधिष्ठाता देव है। साथ ही वह आकाशका मृगव्याध अथवा आर्द्रा-नक्षत्र है।'

(The Orion, pp. 124, 128)

२–मैसूरके जज श्रीपरमशिव अय्यर अपने 'ऋक्' (Riks) नामक ग्रन्थमें लिखते हैं—

'जब मैं स्कूलमें विद्याभ्यास करता था, तब मुझे यह पूर्ण विश्वास था कि बिजली ही रुद्र है। रुद्र-सम्बन्धी कतिपय वैदिकसूक्तोंके स्वाध्यायानन्तर ही मेरी ऐसी धारणा बनी थी। मैं कृष्ण यजुर्वेदीय होनेके कारण उसके रुद्राध्यायको पढ़कर इस निर्णयपर पहुँचा था कि यह चमकनेवाला तथा प्रचण्ड बाण फेंकनेवाला देव बिजलीके अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता। यह रुद्र तारक और मारक दोनों ही है। जब यह क्रुद्ध होता है तब इसे प्रसन्न करनेके लिये 'नमन' ही एकमात्र उपाय है। इसीलिये रुद्राध्यायमें 'नमः' की भरमार है।

इस एक रुद्र तथा अनेक रुद्रोंको पहाड़ी बिजली और बर्फका स्वरूप माननेकी भूल नहीं करनी चाहिये। यह रुद्राग्नि 'असुर' अर्थात् श्वासोच्छ्वास करनेवाला है। इसे मुख्यतः वायुसे शक्ति प्राप्त होती है। इसका तुषारपात और विद्युत्से सम्बन्ध है, क्योंकि इसकी बड़े पहाड़ोंकी चोटियों तथा वहाँके बर्फीले स्थानोंमें ही उत्पत्ति मानी जाती है।'

(The Riks, Chapters 2 and 4)

३–प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डाक्टर कुन्हने लिखा है—

'रुद्र रात्रि, शीतकाल तथा तूफानका देवता है।'

४–मि०डाउसन महोदयने लिखा है—

'यह रुद्र घोर गर्जन करनेवाला देव है, जो तूफानका अधिष्ठाता और रुद्रों अथवा मरुतोंका पिता है। कभी-कभी इसका सम्बन्ध अग्निदेवसे जोड़ा जाता है। यह देवता रोग-प्रसारक एवं संहारक भी समझा जाता है, साथ ही इसे आरोग्य-प्रदायक एवं सुखदाता भी माना जाता है। यही मूल अङ्कुर है जिसे आगे चलकर शिवका रूप प्राप्त हो गया।'

५–प्रोफेसर ओल्डेनबर्ग कहते हैं—

'सम्भयतः रुद्र मूलतः जङ्गल और पर्वतका देवता था।'

६–सर मोनियर विलियम सा० लिखते हैं—

'गर्जनशील रुद्र तूफानोंका अधिष्ठाता है और रुद्रों तथा मरुतोंका पिता और राजा है (वेदमें रुद्रका इन्द्रके साथ और उससे भी अधिक अग्निके साथ सम्बन्ध बताया गया है। इसे सर्वभक्षक कालके साथ भी सम्बद्ध कर दिया गया है। इसे सर्वसंहारक माना जाता है और कल्याण-कारक भी। यह वायुमण्डलको पवित्र करता है, इसीलिये इसे आरोग्यदाता भी कहते हैं)।'

७–मि० आर्थर आटोनी मॅकडानल अपनी 'वैदिकरीडर' (Vedic Reader) नामक पुस्तकमें लिखते हैं—

'इस रुद्रको ऋग्वेदमें नीचे दरजेका देव माना गया है, क्योंकि सारे ऋग्वेदमें केवल तीन सूक्त ही निरे रुद्र-सम्बन्धी हैं। उसके शरीरका वर्णन इसप्रकार किया गया है—उसके होंठ सुन्दर हैं, रङ्ग बदामी है, सिरपर बड़े-बड़े बाल हैं। उसका शरीर सूर्यके समान देदीप्यमान है। ......'वह वज्र हाथमें लिये हुए है तथा आकाशसे विद्युतरूपी प्रचण्ड बाण चलाता है। वह प्रायः धनुष-बाण ही धारण करता है।'

रुद्रका मरुतोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह उनका पिता है तथा पृश्नि नाम्नी गौके स्तनोंसे उन्हें उत्पन्न करनेवाला है। वह भयानक पशुके समान नाशकारी है। उसे बैल (वृषभ *) कहते हैं तथा उसे स्वर्गका लाल सूअर (वराह †) बताया गया है। वह शानदार अत्यन्त बलवान् तेज और दुर्धर्ष है। यह जरारहित, स्थिरयौवन है; विश्वका

---

* 'वृषभो वर्षिता अपाम्'–जो जलकी वृष्टि करता है उस मेघको वृषभ कहते हैं।

† 'वराहो मेघो भवति वराहारः'=मेघ।

स्वामी (ईशान) और पिता है । अपने शासन और सर्वाधिपत्यके बलसे वह मनुष्य और देवताओंके कर्मोंको भलीभाँति जाननेवाला है । वह औढरदानी, कल्याण-कर्त्ता और आशुतोष है । परन्तु उसे बहुधा अमङ्गलकारक माना गया है, क्योंकि उसका वर्णन करनेवाले सूक्तोंमें उसके भयङ्कर अस्त्र एवं क्रोधका उल्लेख किया गया है । किन्तु वह राक्षसके समान निरा अत्याचारी ही नहीं है, वह कष्टोंसे रक्षा करता तथा वर भी देता है । उसके पास हजारों ओषधियाँ हैं और वह वैद्योंका भी वैद्य है' इत्यादि ।

हमें इन सम्मतियोंपर अपनी ओरसे कुछ भी आलोचना नहीं करनी है । आशा है, विवेकी पाठक इसपर स्वयं विचार कर लेंगे ।

शिवोपासनाकी प्राचीनता

(लेखक—पं० श्रीवासुदेवजी उपाध्याय, बी० एस० सी०)

भगवान् शिवकी पूजाका पौराणिक कालसे बहुत महत्त्व चला आया है तथा महादेवजीकी गणना तीन सर्वश्रेष्ठ देवताओंमें है । प्रायः यह सबकी धारणा है कि शिवकी पूजा इसी समयसे प्रचलित हुई और पहले महादेवजीकी पूजा इस रूपमें नहीं थी । हिन्दुओंके धर्म-ग्रन्थोंको न छेड़कर इस छोटे-से लेखमें शिलालेख, ताम्रपत्र, मुद्रादि पुरातत्त्वविषयक सामग्रियोंसे शिवोपासनाकी प्राचीनता दिखलानेका प्रयत्न किया जायगा ।

वैदिक कालमें शिवकी पूजा आधुनिक रूपमें नहीं थी और न महादेव या शिव-शब्दका अधिक प्रयोग ही होता था। ऋग्वेदमें 'रुद्र' शब्दका शिवके लिये प्रयोग मिलता है और जो विशेषण शिवजीके लिये प्रयुक्त हुये हैं वे प्रायः रुद्रके लिये मिलते हैं । (ऋ० १० । ९२ । ९ तथा १ । ११४ । ९)

सर रामकृष्ण भण्डारकरने बहुत विस्तारके साथ यह दिखलाया है कि रुद्रका रूप आगे चलकर शिवके रूपमें कैसे बदला तथा महाभारतके समय शिवलिङ्गकी पूजा कैसे प्रचलित हुई । [भण्डारकर—'वैष्णव तथा शैवपन्थ', पृष्ठ १४५, १६०]

भारतके इतिहासमें पुरातत्त्वका बहुत बड़ा स्थान है । इससे भारतीय सभ्यताकी विशेषताका बहुत कुछ पता चला है। आधुनिक मोहन-जो-दड़ो तथा हरप्पाकी खुदाईने भारतीय धार्मिक इतिहासपर बहुत प्रकाश डाला है। सिन्धु-तटवर्तिनी सभ्यतामें शिव-पूजाकी विशेषता दिखलायी पड़ती है। यहाँपर दो तरहकी शिव-मूर्त्तियाँ मिली हैं। पहली मूर्त्ति जो मोहन-जो-दड़ोकी मुहरोंमें मिलती है योगावस्थामें बैठे 'ध्यानी' शिवकी है ।

इसमें शिवजी बीचमें बैठे हैं तथा उनके चारों ओर पशुकी आकृतियाँ हैं । शिवको 'पशुपतिनाथ' कहते हैं, अतः बाघ, हाथी, गैंडा, तथा भैंसा 'ध्यानी' शिवके चारों तरफ खड़े हैं। त्रिशूलकी जगह शिवके मस्तकपर तीन आकृतियाँ हैं जो आगे चलकर अलग त्रिशूलका आकार धारण कर लेती हैं। उस चौकोन मुहरमें शिवके सिंहासनके नीचे दो मृग भी हैं । दूसरी मुहरमें शिवके तीन मुख हैं जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशका बोध कराते हैं ।

'ध्यानी' शिवकी आकृतिके सिवा मोहन-जो-दड़ो तथा हरप्पामें बहुत-सी पत्थर आदिकी सामग्रियाँ मिली हैं जो शिव-लिङ्गकी मूर्त्तिके समान हैं । इससे यह स्वतः प्रमाणित होता है कि उस कालमें भी शिवलिङ्गकी पूजा होती थी। ऋग्वेदमें दो जगह (७ । २१ । ५, १० । १० । ९९) 'शिश्न देवाः' शब्द आया है । इसका अर्थ पश्चिमीय विद्वान् यह करते हैं कि अनार्य लोग शिवलिङ्गके पूजक थे। आर्योंमें जो शिवलिङ्गकी पूजा देखनेमें आती है वह अनार्योंसे ली गयी है। परन्तु पश्चिमीय विद्वानोंकी यह धारणा युक्तिसङ्गत नहीं है । यास्क तथा सायणने शिश्नका अर्थ 'अब्रह्मचर्य' किया है। अतः इसका दूसरा अर्थ जो पाश्चात्योंने किया है, ठीक नहीं है। अभीतक इसके लिये पर्याप्त प्रमाण भी नहीं मिले हैं जिनसे यह सिद्ध हो सके कि आर्योंने शिवलिङ्गकी पूजा अनार्य लोगोंसे ली है। विद्वानोंमें अभीतक इस विषयपर मतभेद है कि सिन्धु-तटवर्तिनी सभ्यता वैदिक सभ्यतासे पहलेकी है या पीछेकी । परन्तु अनेक कारणोंसे यह सभ्यता वैदिककालसे पीछेकी मानी जा सकती है । सिन्धु-तटवर्तिनी सभ्यता आजसे ५ या ६ हजार वर्ष पूर्व उस प्रदेशमें प्रचलित थी। अतः शिव-पूजाको भी उतनी ही पुरानी माननेमें कोई आपत्ति नहीं है । पुरातत्त्वकी खोजमें इससे प्राचीन

कोई स्थान नहीं मिला है जो हिन्दू-सभ्यतापर प्रकाश डालता हो। ऐतिहासिक कालसे बौद्धधर्मकी प्रबलता हुई। इसी कालमें हिन्दू-धर्मग्रन्थोंके अतिरिक्त पुरातत्त्व विशारदोंको इस कालकी बौद्ध धर्म-सम्बन्धी भी बहुतसी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। ईसासे २०० वर्ष पूर्व जब पुष्पमित्र सुंगने ब्राह्मण-धर्मका पुनरुद्धार किया, तबसे ब्राह्मण-धर्मकी प्रबलता दिनोंदिन बढ़ती ही गयी।

ईसासे पूर्व पहली शताब्दीमें बैक्ट्रियन तथा शक राजाओंने उत्तर-पश्चिम भारतपर राज्य किया। उनके सिक्कोंपर वृषभके चिह्न अङ्कित हैं। राजा अपलदतस तथा शक राजा मोस (Maues) की मुद्रापरका वृषभ-चिह्न शिवके नन्दीका द्योतक है, इस सम्बन्धमें प्रोफेसर रैपसन (Rapson) महोदयको सन्देह है। परन्तु यह सन्देह युक्तिसङ्गत नहीं मालूम पड़ता। इतिहासज्ञ लोग इस बातको जानते हैं कि बौद्धकालसे देवताको छोड़कर उसके चिह्न (Symbol)की पूजा की जाने लगी। इसी प्रथाके अनुसार शिवकी पूजा छोड़कर लोग उन दिनों उनके चिह्न, नन्दीकी पूजा करने लगे। अतः उस समयकी मुद्राओंपर अङ्कित वृषभको शिवका प्रतीक माननेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। कुछ समयके उपरान्त स्वयं शिवकी मूर्ति सिक्कोंपर अङ्कित होने लगी। पार्थियन (Parthian) राजा गोण्डाफरनिसके सिक्केपर शिवकी मूर्ति अङ्कित है, जिससे यह सिद्ध है कि उन दिनों उस देशमें शिव-पूजाका विशेष प्रचार था। [देखिये लाहौर म्यूजियमके सिक्कोंका सूचीपत्र-- प्लेट १५, नं० ४३ तथा गार्डनर प्लेट २२, नं० ८]

ईसवी सन्की पहली शताब्दीमें कुषाणवंशीय नरेशोंने एक बहुत विस्तृत राज्य कायम किया, जिसका विस्तार काशी-तक था। राजा वीम ब्रडफाइसीस तो शैव-धर्मको स्वीकार कर महादेवका उपासक बन गया, जैसा कि उसके सिक्कोंको देखनेसे प्रतीत होता है। उनमें एक तरफ राजाका चित्र है, दूसरी तरफ महादेवजी नन्दीको लिये खड़े हैं। उनमें शिवजी त्रिशूल तथा डमरू लिये दिखलाये गये हैं। राजा वीमका एक भी सिक्का ऐसा नहीं है जिसपर शिव तथा नन्दीकी मूर्ति न हो। उसके उत्तराधिकारी, महाराजा कनिष्कने तथा उसके वंशजोंने भी इसी प्रकारके सिक्के चलाये। महाराजा कनिष्ककी बौद्धधर्म स्वीकार करनेकी प्रसिद्धि है, परन्तु इसके सिक्कोंपर भी शिवकी मूर्ति पायी जाती है। उनमें शिवजी 'ईशो' (Oesho) या ईशके नामसे अङ्कित हैं। उस मूर्तिमें महादेवजीके चार भुजाएँ हैं, जिनमेंसे एकमें डमरू साफ दिखायी पड़ता है। [देखिये लाहौर म्यूजियमकी मुद्राओंकी सूची—प्लेट १७, नं० ६५]।

कुषाणवंशीय नरेशोंके सिक्कोंपर शिवके लिये दूसरा नाम 'मयासेनो' (Maaceno) यानी 'महेश' भी आया है। कुषाणवंशीय वासुदेवके सिक्केपर तो केवल चतुर्भुज शिवकी मूर्त्ति तथा नन्दीकी आकृति दिखलायी पड़ती है। उस समय शिवकी पूजा इतनी महत्त्वपूर्ण समझी जाती थी, अथवा इसका इतना अधिक प्रभाव था कि करीब दो सौ बरसतक (दूसरी तथा तीसरी शताब्दीमें) 'छोटे' कुषाण तथा 'किदार' कुषाणोंने निरन्तर शिवको ही अपनी मुद्राओंपर स्थान दिया। यद्यपि पञ्जाबके पूरबी हिस्सेमें लक्ष्मीका प्रभाव अधिक था, तथापि उस समय शिवोपासनाकी ही प्रधानता थी। अवश्य ही इन तीन शताब्दियोंमें लिङ्ग-पूजाकी प्रधानता नहीं दिखलायी पड़ती, यद्यपि इसके बाद कई सौ वर्षतक लिङ्ग-पूजाकी ही प्रधानता रही ऐसा प्रतीत होता है।

बाबू काशीप्रसाद जायसवालने नागवंश नामक एक नये राजवंशका उल्लेख किया है, जिसने कुषाणोंके बाद तथा गुप्त-राज्यके उत्थानके पहले राज्य किया। इस वंशके राजा मध्य-भारतमें राज्य करते थे। इनके शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि इस वंशके आदिपुरुषने शिवलिङ्गको अपने कन्धेपर रखकर तथा शिवजीको परितुष्ट कर अपने वंशकी स्थापना की थी जिसका पता निम्नलिखित शिलालेखसे लगता है— 'अंसभारसन्निवेशितशिवलिङ्गोद्वहनशिवसुपरितुष्टसमुत्पादित-राजवंशानां पराक्रमाधिगतभागीरथ्यमलजलमूर्द्धाभिषिक्तानां दशाश्वमेधावभृथस्नानानां भारशिवानाम्' [ना० प्र० पत्रिका—भाग १३, अंक १]। इसीलिये इस वंशका नाम 'भारशिव' भी पड़ा। इससे ज्ञात होता है कि नागवंशी नरेशोंने शिवको अपना आराध्यदेव माना था तथा वे शिव-लिङ्गकी पूजा किया करते थे। काशीमें एक मूर्त्ति भी मिली है जिसमें मस्तकपर शिवजीकी पिण्डी लिये हुए किसी पुरुषकी आकृति बनी हुई है। ['गङ्गा'-पुरातत्त्वाङ्क, पृष्ठ ६९]।

इनके बाद उत्तरी भारतमें गुप्त-साम्राज्यका प्रादुर्भाव हुआ। यह तो प्रसिद्ध है कि गुप्तवंशीय नरेश वैष्णव थे तथा उनके नामके आगे हमेशा 'परमभागवत'की पदवीका उल्लेख मिला है। इस कालमें विष्णु-पूजाका उत्कर्ष था, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उस समय शिवकी पूजा नहीं होती थी।

पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजसे सिद्ध है कि गुप्तकालमें विष्णु-

पूजाके साथ-साथ शिवकी भी पूजा होती थी। उस समयका एक शिवलिङ्ग मिला है जो लखनऊके म्यूजियममें रक्खा है। इसको महाराजा कुमारगुप्तने तैयार कराया था। यह लिङ्ग ऊपर गोलाकार शिव-लिङ्ग है तथा इसके नीचेका हिस्सा चपटा है जिसपर एक लेख खुदा हुआ है। इसे 'करमदण्डा-की प्रशस्ति' कहते हैं। उस कालमें शिवपूजाका प्रचार इतना बढ़ गया था कि जिन बाहरी जातियोंने भारतपर आक्रमण किया उन्होंने भी शैवधर्मको स्वीकार किया। गुप्तवंशी राजा स्कन्दगुप्तके समयमें हूण लोगोंने कई बार आक्रमण किया परन्तु उसने अपनी वीरताके द्वारा उन्हें पीछे भगा दिया। कुछ कालके बाद हूणोंने मध्यभारतमें एक सुदृढ़ राज्य स्थापित कर लिया। तोरमाणके लड़के मिहिरकुल-ने एक छोटा सिक्का चलाया था जिसपर एक तरफ वृषभकी आकृति बनी हुई है तथा उसके नीचे 'जयतु वृषः' लिखा हुआ है। मुद्रापर राजाकी आकृतिके सामने भी एक वृषाङ्कित ध्वजाका चिह्न है। इससे प्रतीत होता है कि हूणोंने महादेवजी-को ही अपना आराध्यदेव माना तथा वे उनकी पूजा-अर्चा करते थे।

गुप्तोंके ह्रासके अनन्तर उत्तरी भारतमें छठी शताब्दी-में मौखरि-राजाओंने बहुत बड़ा राज्य स्थापित किया था। मौखरि-वंशके राजाओंके शिलालेखोंमें राजाओंके नामके साथ-साथ 'परम माहेश्वर'की उपाधि मिलती है। मध्यप्रान्तके असीरगढ़ नामक स्थानमें इन्हीं राजाओंकी एक मुहर मिली है जिसपर नन्दीका चित्र है। नन्दीके साथ दो सेवक भी हैं। इससे ज्ञात होता है कि मौखरि शिवके उपासक थे। उन्हीं दिनों बंगालमें राजा शशाङ्कने अपनी महत्ता स्थापित की। महाकवि बाणने अपने 'हर्षचरित' में वर्णन किया है कि शशाङ्कने मौखरि-वंशके अन्तिम राजाको मार डाला। उसने बौद्धधर्मका नाश करनेकी बहुत कोशिश की। कहा जाता है कि वह शैवधर्मको माननेवाला था। इसलिये उसने बोधगयासे बोधिवृक्षको उखड़वाकर फेंकवा दिया। इस बातकी पुष्टि उसके सिक्कोंसे होती है। उसके सिक्कोंपर नन्दीसहित शिवका चित्र अङ्कित है। शशाङ्कने केवल इसी तरहके सिक्के चलाये जिससे यह सिद्ध होता है कि वह शिवका बहुत बड़ा उपासक था तथा इसीलिये उसने बौद्धधर्मको निर्मूल करनेका प्रयत्न किया। अलन साहब (Allan) ने अपनी 'गुप्त सिक्कोंकी सूची' की भूमिकाके पृष्ठ १०१ में यह बतलाया है कि वलभीके राजाओंने भी उस शताब्दीमें वृषभके चित्रको अपने झण्डेपर स्थान दिया था। इसका कारण यही हो सकता है कि वलभी (गुजरात) के राजाओं-ने शैवधर्मको स्वीकार किया हो। सातवीं शताब्दीसे लेकर दसवीं शताब्दीतक सारे भारतमें शिव-पूजाकी ही प्रधानता रही। ओहिन्दके राजाओंने भी शिवको अपना उपास्यदेव माना तथा अपने सिक्कोंपर वृषभका चित्र रक्खा। इसकी प्रधानता इतनी बढ़ी कि सब राजपूत-नरेशोंने भी इसी सिक्केकी नकलपर अपना सिक्का चलाया। नवीं सदीमें काश्मीरमें शिवकी पूजा जोरोंपर थी। राजा अवन्तिवर्मन्‌के मन्त्री सूरने एक मन्दिरमें भूतेश्वर महादेवकी मूर्ति स्थापित करवायी। ये राजा प्रायः शैव ही थे, यद्यपि उनके धर्मके विषयमें कोई विशेष प्रमाण नहीं है। इसी समयमें स्वामी शङ्कराचार्यका दक्षिणमें प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने हिन्दूधर्मका शङ्ख फूँका। दक्षिणमें शिवकी प्रधानता दिनोंदिन बढ़ने लगी। स्वामी-जीके उपदेशसे राजा, रङ्क, सभी शिवके उपासक बन गये। यों दसवीं शताब्दीमें चोलवंशीय महाराज 'राजराजा' ने तञ्जौरमें अपने नामपर राजराजेश्वरमन्दिरका निर्माण करवाया। ऐसे विशाल मन्दिर हिन्दूकालमें कम देखनेको मिलते हैं।

इसके बाद शिवकी पूजाका प्रचार इतना बढ़ा तथा शिव-मन्दिरोंका निर्माण इतने अधिक पैमानेमें होने लगा कि जिसका वर्णन इस छोटे-से लेखमें नहीं किया जा सकता। दसवीं सदीके पीछे प्रायः शिवकी ही प्रधानता रही।

ऊपर लिखे पुरातत्त्वके प्रमाणोंसे यह ज्ञात होता है कि शिवकी उपासना बहुत प्राचीन है। जहाँतक प्रमाण मिले हैं, आजसे छः हजार वर्ष पूर्व मोहन-जो-दड़ो तथा हरप्पामें शिवकी पूजा होती थी और उसके बाद भी शिव-पूजाकी परम्परा बराबर जारी रही। केवल गुप्त-नरेशोंको छोड़कर प्रायः सभी राजाओंने शैव-धर्मको स्वीकार कर शिवकी पूजाका प्रचार किया था। पौराणिक कालसे इस शिव-पूजाको स्वामी शङ्कराचार्यके अनन्तर प्रचलित हुई बतलाना नितान्त दुःसाहस है।

भक्त मानिक वाशगर

इस महात्माने मदुराके पास वाथवुर नामक स्थानमें एक ब्राह्मणके घर जन्म लिया था। १६ वर्षकी उम्रमें इन्होंने अपने समयके विद्वान् ब्राह्मणोंसे सारी विद्या सीख ली, और शैव धर्मशास्त्रका विशेषरूपसे मनन किया। उनकी विद्या और बुद्धिकी प्रशंसा राजाके कानोंतक पहुँची। राजाने उनको आदरपूर्वक बुलाकर अपना प्रधान मन्त्री बनाया। पाण्ड्य राजाके दरबारमें उन्हें समस्त स्वर्गीय सुख प्राप्त थे। जब वे राजकीय वेषभूषामें अपने दरबारियों, सिपाहियों और हाथी-घोड़ोंसे घिरे हुए राजसभामें आते थे तो ऐसा जान पड़ता था कि पूर्ण चन्द्र तारोंके बीच सुशोभित हो रहे हैं। तथापि वह युवक मन्त्री अपनेको न भूला। उसे सदा याद रहा कि ये बाहरी सुख केवल आत्माको बन्धनमें डालनेवाले हैं और मुक्तिकी चाह रखनेवालोंको इनका त्याग करना ही पड़ेगा। जीवोंको जन्मभर असंख्य दुःख सहते देखकर वह बड़ा ही आर्त होता। उसका हृदय शिवको प्राप्त करनेके लिये सदा व्यग्र रहता था। वह न्यायपूर्वक राज्यको सुन्दरताके साथ चलाता रहा, परन्तु उसके हृदयमें सदा किसी ऐसे सद्गुरुसे मिलनेकी अभिलाषा बनी रहती थी, जो उसे मुक्तिका मार्ग दिखलाता। जिसप्रकार भ्रमर रसके लिये फूलोंके पास दौड़ता रहता है, उसी प्रकार वह ज्ञान-रसकी प्राप्तिके लिये विभिन्न शैव गुरुओंकी शरण लेता रहा; परन्तु उसके मनको किसी प्रकार सन्तोष न हुआ। एक दिन उसे किसीने यह सूचना दी कि एक जहाज पड़ोसके राजाके बन्दरमें खड़ा है जिसमें किसी दूसरे देशसे घोड़े आये हैं। राजाने इस बातको सुनकर काफी रुपये दे मन्त्रीको घोड़े खरीदनेके लिये भेजा। मन्त्रीने सिपाहियोंके एक दलको साथ ले प्रस्थान किया। उसके सांसारिक जीवनका यह अन्तिम प्रदर्शन था!

उसी समय कैलासमें उमासे शिवने कहा कि—'हे प्रिये! मैं मनुष्यरूपमें उस महापुरुषका गुरु बनने जा रहा हूँ जो दक्षिणके तामिल-प्रदेशको भक्ति-सुधासे परिप्लावित करेगा।' वे तत्काल ही एक सघन वृक्षके नीचे अपनी शिष्यमण्डलीके सहित विराजमान हो गये। उस बन्दरके समीप वनमें भगवान् शिवने अपना आसन जमाया, वहाँ चारों ओर बिना ऋतुके ही वृक्षलताएँ मञ्जरित और पुष्पित हो गयीं। चिड़ियाँ पासके वृक्षोंकी डालियों और टहनियोंपर कलरोर मचाने लगीं। उसी समय वह युवक मन्त्री अपने साथियोंके साथ उस रास्तेसे होकर निकला और उसे वनमेंसे शिव-स्तोत्रोंकी ध्वनि सुनायी पड़ी। उसने अपने एक अनुचरको उस दिव्य गानका पता लेनेके लिये भेजा। थोड़ी ही देरमें उसे ज्ञात हुआ कि साक्षात् शिवके समान एक महात्मा वनमें एक बड़े वटके नीचे विराजमान हैं। तुरन्त वह घोड़ेसे उतर पड़ा और विनीत भावसे उन महात्माकी ओर अग्रसर हुआ। उनके तीसरे नेत्रकी ज्योतिसे जान पड़ता था कि वे साक्षात् शिव हैं। उसने पता लगाया कि वे महात्मा अपने शिष्योंको किस धर्मका उपदेश कर रहे हैं। अन्तमें यह भक्ति-धर्ममें दीक्षित हुआ और समस्त सांसारिक ऐश्वर्योंका त्यागकर गद्गद्कण्ठसे आँसू बहाते हुए गुरुके चरणोंपर गिर पड़ा। सद्गुरुके द्वारा साधनपथमें अग्रसर होनेके पश्चात् ही वह जीवन्मुक्त हो गया। उसने तनमें भस्म रमा, जटाजूट धारण किया। यही क्यों, उसने जो कुछ द्रव्य राजासे घोड़े खरीदनेके लिये लिया था उसे वहाँ सन्तोंकी सेवामें लगा दिया।

राजपुरुषोंने आकर उसे रोका और कहा कि राजाके धनको दान करनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। परन्तु मन्त्रीने उत्तर दिया—'तुम लोग मुझे पुनः सांसारिक झंझटोंमें क्यों घसीटते हो?' इसपर वे लोग मदुरा लौट गये और राजासे जाकर इस युवक मन्त्रीका सारा हाल कह सुनाया। राजा बहुत ही कुपित हुआ और एक कड़ी आज्ञा लिखकर मन्त्रीको शीघ्र ही दरबारमें उपस्थित होनेका हुक्म दिया। इस-पर मन्त्रीने जवाब दिया कि—'मैं शिवको छोड़कर किसीको राजा नहीं मानता, उनके पाससे तो यमके दूत भी मुझे नहीं ले जा सकते।'

तथापि शिवने उससे कहा कि डरो मत, मदुरा लौट जाओ और राजासे जाकर कह देना कि घोड़े ठीक समयपर उसके यहाँ चले आवेंगे। अनन्तर शिवने उसे एक सुन्दर सवारी और एक बहुमूल्य लाल देकर विदा किया।

राज्यमें पहुँचनेपर पहले तो राजाको विश्वास हो गया था कि उसके घोड़े आ जायँगे, परन्तु दूसरे दरबारियोंके मुँहसे मन्त्रीकी सारी कहानी सुनकर उसको सन्देह हुआ

और घोड़ोंके आनेकी निश्चित तिथिसे दो दिन पूर्व ही उसने उसको (मन्त्रीको) कैदखानेमें डलवा दिया।

परन्तु भगवान् शिव अपने शिष्यको नहीं भूले थे। उन्होंने एक झुण्ड गीदड़ोंका इकट्ठा कर उन्हें घोड़ोंके रूपमें बदल डाला। और देवताओंको साईसके भेषमें बदलकर स्वयं उस सौदागरका रूप धारण किया जो उन घोड़ोंका मालिक था। राजा इनको देखते ही बहुत प्रसन्न हुआ और मन्त्रीसे क्षमा माँगते हुए उसे मुक्त कर दिया। घोड़े खोल-खोलकर राजाके अस्तबलमें भेज दिये गये और वेष बदले हुए देवताओंने भी अपना रास्ता लिया।

सुबह होनेके पहले ही गीदड़ोंकी भयानक आवाजसे सारा नगर जाग उठा। घोड़े अब पुनः गीदड़ हो गये और इसके साथ ही एक और आफ़त यह हुई कि वे अस्तबलके घोड़ोंको काटने लगे। राजाको मालूम हो गया कि उसके साथ धोखा किया गया है, उसने उस मन्त्रीको पकड़वाकर उसके सिरपर पत्थर रखकर धूपमें खड़ा करा दिया। मन्त्रीने प्रभुकी प्रार्थना की। शिवने इसके बदलेमें अपनी जटासे गङ्गाकी धारा बहाकर नगरको जलमग्न कर दिया। अब राजाको अपनी भूल सूझी, उसने उस महात्मा (मन्त्री) को एक प्रतिष्ठित पदपर बिठा दिया और नगरकी रक्षाके लिये बाँध बँधवाने लगा। यह काम हो जानेपर राजाने अपना राज्य उस महात्माकी भेंट कर दिया। परन्तु मानिक्कवाशगरने राज्य भोगनेकी अपेक्षा वहीं जाना अच्छा समझा जहाँ उसने भगवान् शिवका पहले पहल दर्शन किया था। वहाँ उसने गुरुके चरणोंका आश्रय लिया। शिवका काम अब हो गया था, वे कैलास चले गये और उन्होंने तामिल-प्रान्तमें भक्ति-धर्मके प्रचारका काम अपने इस भक्तके ऊपर छोड़ दिया।

तबसे ये महात्मा शिवजीका गुण गाते नगर-नगर घूमने लगे। इससे उनकी बड़ी ख्याति हुई। अन्तमें वह उस तीर्थभूमि—चिदम्बरम्‌में पहुँचे जहाँ शिवका दैनिक नृत्य होता था, और जहाँ व्याघ्रपाद नामक महात्माका निवासस्थान था। यहाँ वह महात्मा प्रभुके अन्तिम मिलनतक पड़े रहे।

कुछ दिनोंके बाद एक अज्ञात महान् विद्वान्‌ने अकस्मात् प्रकट होकर सिंहलके विद्वान् भिक्षुओंको पराजित किया और इन महात्माके मुखसे निकले हुए दिव्य ज्ञानको लिपिबद्ध किया और यह काम पूरा होनेके बाद वह अन्तर्धान हो गया। यह शिवके सिवा दूसरा कोई न था। शिव ही देवताओंको आनन्दित करनेके लिये इस संगीतको शिवलोकमें ले गये। दूसरे दिन प्रातःकाल शिवजीके हस्ताक्षरसहित एक पूरी प्रति देवमन्दिरमें पड़ी मिली। मन्दिरके सब भक्त उन महात्माके पास इस रहस्यको समझनेके लिये पहुँचे। वे उन सबको अपने पीछे-पीछे स्वर्ण-मन्दिरमें शिवमूर्तिके पास लिवा ले गये और 'इसका यही अर्थ है' इतना कहकर वे स्वयं अन्तर्धान हो गये और उनका शरीर मूर्तिके रूपमें रह गया। इसके पश्चात् उनका फिर किसीको दर्शन न मिला। माणिक्यकी एक सुन्दर मूर्ति अब भी दक्षिणके तिरोचेनगोड्डके एक मन्दिरमें विराजित है।

भस्मविधि और माहात्म्य

(कालाग्निरुद्रोपनिषद्से)

जिन रुद्रभगवान्‌की विभूति (भस्म) ब्रह्मज्ञानके उपायरूपमें बखानी गयी है, और जो अपना भजन करनेवालोंको निज स्वरूप दे डालते हैं, उन कालाग्निरूप रुद्रकी मैं शरण जाता हूँ, ओम्।

कालाग्निरुद्रोपनिषद्‌के प्रवर्त्तक अग्नि ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीकालाग्निरुद्र देवता हैं, और श्रीकालाग्निरुद्रकी प्रसन्नताके लिये भस्मका त्रिपुण्ड्र धारण करना 'विनियोग' (उपयोग) है।

सनत्कुमारने भगवान् कालाग्निरुद्रसे पूछा कि—हे भगवन्! त्रिपुण्ड्र-धारणकी विधिको तत्त्वसहित बताइये। उसमें कौन-सा द्रव्य और कितना स्थान अपेक्षित है और त्रिपुण्ड्रका क्या प्रमाण है, उसमें रेखाएँ कितनी होती हैं, उसके मन्त्र क्या हैं, शक्ति क्या है, देवता कौन है, कर्ता कौन है और उसके धारण करनेसे क्या फल मिलता है?

भगवान् कालाग्निरुद्रने उनको उत्तर दिया—अग्निहोत्र अथवा आवसथ्य, याग, गृहशान्ति आदिमें कहे हुए (शुष्क गोमय), पीपल, खैर इत्यादिकी समिधासे बना हुआ भस्म ही अपेक्षित द्रव्य है। उसे—

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः।
भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानाम् ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम् ॥

—इन पाँच ब्रह्मसंज्ञक मन्त्रोंसे बायें हाथमें लेकर दाहिने हाथसे ढँके और—

ॐ अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, व्योमेति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म ।

—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे । तत्पश्चात्—

मानस्तोके तनये मान आयुषि मानो गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः मानो वीरान्रुद्रभामिनोव्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ।

—इस मन्त्रसे समुद्धार कर 'मानो महान्तमुत' इस मन्त्रद्वारा जलमें सानकर, फिर भस्मको दोनों हाथोंसे मले और 'त्र्यायुषम्०' इस मन्त्रसे मस्तक, ललाट, वक्षःस्थल तथा कन्धोंपर, 'त्र्यायुषैः', 'त्र्यम्बकैः', 'त्रिशक्तिभिः' इत्यादि तीन मन्त्रोंसे तीन-तीन रेखाएँ खींचे । वेद जाननेवालोंने सब वेदोंमें इस व्रतको 'शाम्भव' व्रत कहा है । इसलिये मुमुक्षुओंको इस व्रतका आचरण करना चाहिये, जिससे पुनर्जन्म न हो ।

इसके पश्चात् सनत्कुमारने इस त्रिपुण्ड्-धारणका प्रमाण पूछा, तब भगवान् कालाग्निरुद्र बोले—ललाटसे लेकर नेत्रपर्यन्त और मस्तकसे लेकर भ्रुकुटीपर्यन्त तथा मध्यमें, इसप्रकार तीन रेखाएँ होती हैं । इनमेंसे पहली रेखा गार्हपत्य अग्नि, अकार, रजोगुण, भूलोक, देहात्मा, क्रियाशक्ति, ऋग्वेद, प्रातःकालीन सवन (हवन) एवं महेश्वर देवताका स्वरूप है । द्वितीय रेखा दक्षिणाग्नि, उकार, सत्त्वगुण, अन्तरिक्ष, अन्तरात्मा, इच्छाशक्ति, यजुर्वेद, मध्याह्नके सवन एवं सदाशिव देवताका स्वरूप है । तीसरी रेखा आहवनीय अग्नि, मकार, तमोगुण, स्वर्गलोक, परमात्मा, ज्ञानशक्ति, सामवेद, तीसरे सवन और महादेव देवताका स्वरूप है ।

इसप्रकार जो कोई विद्वान् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, अथवा संन्यासी उपर्युक्त विधिसे भस्मका त्रिपुण्ड् करता है वह महापातकों तथा छोटे पापोंको नष्ट कर पवित्र हो जाता है तथा उसे सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मिल जाता है । वह सारे वेदोंका अध्ययन कर चुकता है, सब देवोंके रहस्यको जान जाता है और वह निरन्तर सर्व रुद्र-मन्त्रोंके जापका भागी बन जाता है । वह सब भोगोंको भोगता है तथा देहत्यागके अनन्तर शिव-सायुज्य मुक्ति लाभ करता है । उसे पुनर्जन्म धारण नहीं करना पड़ता, यही भगवान् कालाग्निरुद्रने कहा है । जो मनुष्य इस उपनिषद्का अभ्यास अथवा पाठ करता है उसे भी यही फल प्राप्त होता है । ओं सत्यम् । (अनु०—इन्दुलाल)

हिन्दी-साहित्यमें शिव

(लेखक—श्रीगिरिधारीलाल झँवर 'अविनाश')

यद्यपि अभीतक संस्कृतकी तरह हिन्दीमें शिव-सम्बन्धी किसी महाकाव्य अथवा खण्डकाव्यकी रचना नहीं हुई, तो भी हिन्दीमें शिव-साहित्यका अभाव नहीं है । यों तो हिन्दीमें शिव-विषयक रचना प्रायः सभी रसोंमें थोड़ी-बहुत हुई है; पर प्रधानतः हास्य, वीर (दानवीर), भयानक, रौद्र—इन्हीं चार रसोंमें अधिक हुई है ।

हिन्दीमें शिवका रूप 'जटाजूटसहित, अङ्गमें सर्पोंको, सिरपर गङ्गाजीको और ललाटपर चन्द्रमाको धारण किये हुए, दिगम्बरवेश, कभी-कभी मृगछाला पहने, बायें हाथमें डमरू और दाहिनेमें त्रिशूल लिये, सर्वाङ्गमें भस्मलेपन किये, नीलकण्ठ, कैलासवासी (श्मशानवासी भी), प्रेत, भूत, पिशाच आदि गणोंके साथ, वामाङ्गमें पार्वती और दाहिनेमें गणेश और कार्त्तिकेयके सहित तथा सामने हाथ जोड़े नन्दीके सहित', प्रायः ऐसा ही चित्रित किया जाता है । शिवजीका स्वभाव हिन्दी-रचनाओंमें प्रायः इसप्रकार वर्णन किया गया है कि वे पलमें प्रसन्न और पलमें अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं । जिस समय वे क्रुद्ध होते हैं उस समय वे अपना तृतीय नेत्र खोल देते हैं और उसकी ज्वालासे सारा संसार भस्म हो जाता है । यही उनकी प्रलयङ्करी मूर्त्ति है । इसके

साथ-ही-साथ शिवजीको औढरदानी, पूर्णयोगी और देवाधिदेव भी कहा गया है।

शिव-विषयक रचना सबसे अधिक जिस रसमें पायी जाती है वह है हास्यरस। यदि हम कहें कि हिन्दीमें हास्य-रसकी उत्पत्ति शिवजीने ही की है तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। हास्यरसमें कविता करनेवाला शायद ही कोई ऐसा कवि होगा जिसने शिव-विषयक दो-चार कवित्त न लिखे हों—शिवजीसे ठठोली न की हो। देखिये महाकवि पद्माकर भोलेबाबाके परिछनका कैसा सुन्दर चित्र खींचते हैं—

हँसि-हँसि भजैं देखि दूलह दिगम्बरकों,
पाहुनी जे आवैं हिमाचलके उछाहमें।
कहै 'पदमाकर' सु काहुसों कहै को कहा,
जेई जहाँ देखै हँसैं सोई तहाँ राहमें॥
मगन भयेई हँसैं नगन महेश ठाढ़े,
और हँसेऊ हँसै हँसीके उमाहमें।
सीसपर गंगा हँसै भुजनि भुजंगा हँसैं,
हाँसहीको दंगा भयो नंगाके बिबाहमें॥

और भी देखिये। उस समय शङ्करजीको हार पहनाने मालिन आयी—

शंकरके ब्याहमें उछाह भौ अनेक भाँति,
मालिन कै आयी गूँथ फूलनके हरवा।
'शारद रसेन्द्र' दर्श पायो भयो मन हर्ष,
दिहिसि पिन्हाय तुर्त शंकरके गरवा॥
हँसि-हँसि नैन मटकाय रहैं घूँघटते,
माँगति इनाम मोतीहार सतलरवा।
डारि हाथ गरवा उठायो ब्याल करवा तो,
मारत गोहरवा सो भागि चली घरवा॥

कैसा सुन्दर पुरस्कार रहा!

देखिये 'वचनेश' जी शङ्करजीकी ठनठनगोपालीका हाल कितनी सुन्दरतासे वर्णन करते हैं—

माँगें कहा अम्बर तैं आप ही दिगम्बर है,
माँगें कहा भूषण कपाल-ब्याल-धारी तैं।
माँगें कहा बाहन तिहारे एक डूँडो बैल,
माँगें कहा पाक बिष-आकको अहारी तैं॥
माँगें कहा धाम है मसानको प्रवासी देव,
माँगें कहा तोसों धन बिदित भिखारी तैं।
'वचनेश' नाथ हाथ जोरि यही माँगैं हम,
हर है तो हर हर बिपति हमारी तैं॥

देखा माँगनेका ढंग? ऐसा बढ़िया तरीका कि जिससे देना ही पड़े।

शङ्करजी बड़े कठोर शासक हैं। क्या मजाल कोई चूँ तक भी कर सके। इसी शासनका नमूना श्री 'बन्धु' कवि हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं। देखिये—

सिंह न बैल सों बोलै कछू न भुजंगम मूषक ओर निहारे।
मोर रहै बनि मित्र भुजंगको प्रेत-पिशाच हैं दीनता धारे॥
देख्यो दिगम्बरके घरमें हरि हेकड़ हूँ मिले दाँत निकारे।
औरकी 'बन्धु' है का गति मंगड़ नंगासे हैं भगवानहु हारे॥

हैं न ब्रिटिश गवर्नमेंण्टसे भी कठोर? और भी देखिये, कविता-कामिनी-कान्त श्रीनाथूरामजी 'शङ्कर' शंकरसे कैसी जबरदस्त ठठोली कर रहे हैं—

शैल बिशाल महीतल फोड़ बढ़े तिनको तुम तोड़ कढ़े हो।
लै लुढ़की जलधार धड़ाधड़ने घर गोल-मटोल गढ़े हो॥
प्राण-बिहीन कलेवर धार बिराजि रहे न लिखे न पढ़े हो।
हे जड़देव शिलासुत 'शङ्कर' भारतपै करि कोप चढ़े हो॥

अच्छा, अब जरा शिव-शिवा-विनोदकी बहार भी देख लीजिये। श्रीपार्वतीजी कहती हैं—

इन भूत परेत पिशाचनके डरसे निशिवासर ही डरती।
दधि दूध न अन्नहु ढूँढ़े मिलै नित भाँग भकोसत ही मरती॥
नहिं अम्बर अङ्ग दिगम्बरके तनमाँहि भभूत मल्यो करती।
हँसि पारबती कहे शंकरसों हम ना बरतीं तुम्हें को बरती॥

शङ्कर महाराज भला कब चुप रहनेवाले थे! झट बोल उठे—

तजि रम्य मनोरम दर्शन को इन आय पहारनमें मरतो।
ससुरारि सबै जड़ जोग न एक वृथा अपमानमें को अरतो॥
चढ़ि सिंह लिये कर आयुध आचरती तुम को तब आचरतो।
हँसि शङ्कर शैलसुतासों कहैं हम ना बरते तुम्हें को बरतो॥

अब जरा उमा-कमला-संवाद और देख लीजिये, पीछे दूसरे रस चखेंगे। कमला पूछती हैं, उमा उत्तर देती हैं—

भिक्षुक तिहारो कहाँ? बलिमखशाला जहाँ,
सर्पनको संगी? कहूँ ह्वैहै क्षीरसागरमें;
एरी बहुरङ्गी! बैलवालो कहाँ नाचत है?
कीन्हे तिरभंगी कहूँ ह्वैहै ग्वाल-बालनमें।
चाँवर चबैया कहाँ? ह्वैहै सुदामा पास,
बिषको अहारी कहाँ? पूतनाके घरमें;
सिंधुसुता आन मिली तर्कसों वितर्क करी,
गिरिजा मुसुकात जात झारी लिये करमें॥

रसखानिजी कहते हैं कि इनके स्वरूपका ध्यान करते ही सारे दुःख-द्वन्द्व मिट जाते हैं।

यह देखु धतूरेको पात चबात औ गातमें धूर रमावत है।
चहुँ ओर जटा अटकैं लटकैं फनसे सँपनी फहरावत है।
गज-खाल कपालकी माल बिसाल सो गाल बजावत आवत है।
रसखानि जोई चितवै चित दै तिहिकौ दुख-द्वन्द भजावत है॥

पहले कहा जा चुका है कि हिन्दीमें शिवजीका स्वभाव 'औढरदानी' माना गया है; देखिये तुलसीदासजी इनके महान् दानीपनका व्याज-स्तुतिमें कैसा सुन्दर चित्रण करते हैं। ब्रह्माजी उमाजीसे कहते हैं—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद बड़ाई मानी॥
निज घरकी बर बात बिलोकहु हो तुम परम सयानी।
सिवकी दई संपदा देखत श्रीसारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि सुखकी नेसुक नहीं निसानी।
तिन रंकनको नाक सँवारत हौं आयो नकबानी॥
दुख-दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहि भीख भली मैं जानी॥
प्रेम प्रसंसा बिनय ब्यंगजुत सुनि बिधिकी बर बानी।
तुलसी मुदित महेस मनहिं मन जगत-मातु मुसुकानी॥

महाकवि पद्माकरजी तो भोलेबाबाकी औढरदानीपनपर रीझ गये हैं। बात भी ठीक है, एक धतूरेके फूलके बदलेमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारों मिल जाते हैं न। आप कहते हैं—

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत पै,
पावत न पार जा अनन्त गुन पूरेको।
कहै 'पदमाकर' सु गालके बजावत ही,
काज करि देत जन जाचक जरूरेको॥
चन्दकी छटानजुत पन्नग फटानजुत,
मुकुट बिराजै जटा-जूटनके जूरेको।
देखो त्रिपुरारीकी उदारता अपार जहाँ,
पैये फल चार फूल एक दै धतूरेको॥

सेनापतिजी बेलपत्रसे ही भोलेबाबाको प्रसन्न होते देखते हैं। वे कहते हैं—

सोहत उतंग जाको उत्तमंग ससि संग
गंग गौरि अरधंग काम प्रतिकूल है।
देवनकौ मूल 'सेनापति' अनुकूल करि
चाम सारदूलकौ सदा कर त्रिसूल है॥
कहाँ भटकत अटकत क्यों न तामें मन
जाते आठ सिद्धि नव निद्धि रिद्धि तूल है।
लेत ही चढ़ाइबेको जाके एक बेल-पात
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल फूल है॥

श्रीतुलसीदासजीने तो आपका दानीपन देख अपनेको केवल शिवजीपर ही निर्भर कर दिया। वे इनको छोड़कर दूसरी जगह माँगनेके लिये जाना ही नहीं चाहते। यथा—

(१) को जाँचिये संभु तजि आन।
(२) दानी कहुँ संकरसम नाहीं।
(३) जाँचिये गिरिजापति कासी,
जासु भवन अनिमादिक दासी।

क्योंकि—

औढरदानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे॥

और क्योंकि—

सुख संपति मति सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर-सेवकाई॥

और ऐसा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि—

देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे।
किये दुख दूरि सबनके जिन-जिन कर जोरे॥

इसलिये सबको छोड़कर केवल इन्हींकी पूजा करनी चाहिये, क्योंकि ये आजमाये हुए हैं।

अब एक भयानक रसका उदाहरण भी देख लीजिये—

तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिन निकर मुख रजनीचरा॥
जो जियत फिरहिं बरात देखत पुन्य बड़ तेहिकर सही।
देखहिं सो उमा-बिबाह घर-घर बात अस लरिकन कही॥

(रामचरितमानस)

शिवजीका रौद्ररस तो अति प्रसिद्ध है। इस रसका वर्णन, युद्धोंमें योगिनी, प्रेत, पिशाच आदिको संग लिये हुए शंकर प्रलयकालका रूप धारण करते हैं, तब आता है। शिवजीका तीसरा नेत्र इस रसकी रौद्रताको सिद्ध करनेमें बड़ा सहायक होता है, क्योंकि वह पूर्ण रौद्रता ला देता है। यथा—

सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रयलोका॥
तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा॥
हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भे असुर दुखारी॥
समुझि काम सुख सोचहिं भोगी। भये अकंटक साधक जोगी॥

(रा० च० मा०)

भगवान् शिवका नित्यधाम महाकैलास

कैलास दो हैं—एक महाकैलास और दूसरा भू-कैलास। वर्तमानमें जिसको कैलास माना जाता है, अनुभवी शिवभक्तगण कहते हैं कि वह तो असली भू-कैलास भी नहीं है। भू-कैलासपर शिवगण और शिवभक्तोंके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जा सकता।

'काशी-केदार-माहात्म्य'नामक ग्रन्थके चतुर्थ अध्यायमें महाकैलासका वर्णन इसप्रकार आता है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके आधारभूत 'महोदक'* में लाख योजन विस्तीर्ण स्वर्णभूमि है, वहाँ लाख योजन ऊँचा परमेश्वरका स्थान है। उसीको वेदवित् पुरुष 'महाकैलास' कहते हैं। उसके चारों ओर पचास हजार योजन विस्तृत और बीस हजार योजन ऊँची राजत (चाँदीकी) भूमिका घेरा है। उसके आठों दिशाओंमें मणियोंके आठ फाटक हैं। पूर्व द्वारके मालिक महात्मा विघ्नेश हैं, अग्निकोणके फाटकके मालिक महागण भृङ्गीरिटि हैं और दक्षिण द्वारके पालक गणोंके सरदार महाकाल हैं, नैर्ऋत्यके द्वारपाल साक्षात् शङ्करके अङ्गसे उत्पन्न वीरभद्र हैं और पश्चिम द्वारकी पालिका शिवदुहिता महाशास्ता हैं, वायव्य कोणकी द्वारपालिका सङ्कटमोचिनी दुर्गा हैं, उत्तर दिशाके द्वारपाल सुब्रह्मण्य नामक पर-शिव हैं तथा ईशान कोणके द्वाररक्षक शैलादि गणनायक हैं। इन लोकोंके जो अनुचर हैं उनकी तो गिनती ही नहीं है। पचास हजार योजन विस्तारकी वह नगरी है। उसमें दस हजार योजन ऊँचे सौ अरब (एक खरब) शिखर (गुम्बज) हैं, जो मूँगेके बने हुए और चारों तरफसे घिरे हुए हैं। उसके भीतर बीस हजार योजन ऊँचे दस अरब शृङ्ग(शिखर) और हैं जो सब-के-सब पद्मराग-मणिके बने हुए हैं और चारों ओरसे घिरे हुए खड़े हैं। उनके भीतर तीस हजार योजन ऊँचे एक करोड़ एक विशाल वैडूर्यमय शिखर हैं जो चारों ओरसे घिरे हुए हैं। फाटकके बाहरकी भूमि दस हजार योजन विस्तीर्ण है तथा फाटकके भीतरकी भूमि चालीस हजार योजन परिमाणकी है। इस भूमिमें तथा शृङ्गोंपर तारतम्य-क्रमसे सालोक्य-मुक्तिवाले रहते हैं। उनके मनोनुकूल उसमें घर, बाग, बावड़ी, कुआँ, नद और नदियाँ हैं। वह भोगभूमि दिव्य अप्सराओं, दिव्य पान और दिव्य भक्ष्यसे पूर्ण है। वहाँ अगणित शिवके गण और सुन्दर प्रभावाली रुद्रकी कन्याएँ रहती हैं।

श्रीमहाकैलास का चित्र

* सम्भवतः इसीको आधुनिक विज्ञानी Perfect Fluid कहते हैं।

कल्पवृक्षके वहाँ वन हैं और कामधेनुओंके टोल हैं तथा चिन्तामणियोंके ढेर लग रहे हैं। वहाँ पुण्यके तारतम्यसे शिव-धर्मपरायण, शिवके आराधक एवं शिवभक्तोंके पूजनेवाले, जो सालोक्य-मुक्तिको प्राप्त कर चुके हैं, बसते हैं। वहाँ जिसको जो वस्तु चाहिये वही उसके सामने मौजूद रहती है। यही नहीं, लोग काल पाकर सारूप्य, सामीप्य और सार्ष्टि-मुक्तिको भी प्राप्त करते हैं। शिखरोंके भीतर प्रभासे दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले तथा चालीस हजार योजन ऊँचे दस करोड़ पुष्पराग-मणिके शृङ्ग हैं। उनमें शिवपूजक गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, गरुड़, नाग आदि सदा सब भोगोंसे युक्त होकर रहते हैं। उनके भीतर पचास हजार योजन ऊँचे एक करोड़ एक गोमेदक-मणिके शृङ्गोंका घेरा है। यहाँपर अपने पदसे च्युत हुए इन्द्रगण शङ्करकी आराधना करते हुए रहते हैं। इसके बाद साठ हजार योजन ऊँचे दस लाख नीलमणिके शिखरोंका घेरा है। यहाँ चार मुखवाले अनेकों ब्रह्मा, जिनका हृदय और मन शिवके ज्ञानसे शान्त हो गया है, भक्तिसे शिवके ध्यानमें रत होकर रहते हैं। उसके बाद गारुत्मत (नीलम) मणिके एक लाख एक चमकते हुए शृङ्ग हैं। इनमें अनेकों विष्णु निरन्तर शिवजीका ध्यान करते हुए रहते हैं। अपना अधिकार समाप्त होनेपर मुक्तिकी इच्छासे शिवजीके ध्यानद्वारा हृदयके समस्त मलको दूरकर इन सत्तर हजार योजन ऊँचे शिखरोंमें ये लोग रहते हैं। इन सब लोगोंको तारतम्यसे सायुज्य-मुक्ति प्राप्त होती है। इसके बाद अस्सी हजार योजन ऊँचे दस हजार एक मुक्तामय शृङ्गोंका घेरा है। इनमें महात्मा रुद्रगण पशुपाशके ज्ञान तथा गुरुसेवाके माहात्म्यद्वारा सारूप्य-मुक्ति प्राप्त कर हृदयकमलमें शिवका ध्यान किया करते हैं। लोगोंपर अनुग्रह करनेवाले ये अगणित महात्मा नित्यमुक्त हैं। शिव-की आज्ञासे नित्य-कैलासमें निवास करते हुए ये अपने तेजसे देदीप्यमान रहते हैं। इसके भीतर नब्बे हजार योजन ऊँचे एक हजार एक दिव्य स्फटिकके शिखरोंका घेरा है। इनमें नन्दी-भृङ्गी, महाकाल, वीरभद्र आदि रहते हैं, जो परमात्मा शिवकी अपर मूर्ति हैं एवं सच्चिदानन्दरूप, सायुज्य तथा सार्ष्टि-मुक्तिको प्राप्त हैं। ये शङ्करकी आज्ञासे करोड़ों ब्रह्माण्डोंको बनाने, बिगाड़ने तथा उलट-पलट करनेमें समर्थ हैं। ये लोग अपनी इच्छासे कैलासकी रक्षा करते हुए बसते हैं। इस घेरेके भीतर एक सौ एक योजन ऊँचे, हीरेके एक सौ एक शिखर हैं, जो अपने प्रकाशसे अखिल धामको प्रकाशित किया करते हैं। यही शङ्करके निजधामको घेरे खड़े हैं। श्रीपरमेश्वरकी और देवीकी शक्तियाँ तथा स्वामिकार्तिकेय, विघ्नराजादि इनमें रहते हैं। ये अन्तःपुरनिवासी नित्यानन्दमय हैं और सदा महेश्वर और जगदम्बाकी सेवा करते हैं। यह स्थान ज्योतिर्मय और लाख योजन ऊँचा है। यह शङ्करका धाम साधारण देवताओंके लिये अगम्य है। शिवज्ञानमें परिनिष्ठित पुरुष इस धामको 'अन्तःपुरी' कहते हैं। इसके बाद शङ्करका निजधाम है जिसके ज्योतिर्मय ग्यारह शृङ्ग हैं और ये साम्ब शुद्ध सदाशिवको घेरे खड़े हैं। शिवजी अनुग्रहात्मक हैं, शान्त हैं और अपनी ही महिमासे प्रतिष्ठित हैं। अलौकिक विशाल महलके दिव्य सिंहासनपर वे अपनी पराशक्तिके साथ विराजमान हैं। बाहरी दसों घेरोंके निवासी सदा इनका ध्यान किया करते हैं और शिवजीकी आज्ञासे भोगके अन्तमें मुक्ति चाहते हैं। महाकैलासकी भाँति इन्होंने भू-कैलासमें भी अपने योग्य वैसी ही कल्पना संक्षेपमें की है। भू-कैलास भी गणोंके सहित प्रलय-कालमें ऊपर बढ़कर अण्डका भेदन करता हुआ परिवारके सहित बाहर निकलकर वहीं चला जाता है और उस नित्य अलौकिक महाकैलासके अन्तर्भूत हो जाता है। निग्रह और अनुग्रहके व्याजसे सदाशिवकी मूर्तियोंमें भेद होता है। जम्बू-द्वीपवाले कैलास और महाकैलासकी भूमिकाएँ उस परमेश्वरके निग्रहानुग्रहके शाश्वत स्थान हैं।

शिवकी व्यापकता

(स्व० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, परलोकसे)

तारक देव महेश है, सबका तारनहार।

तम, सत, रजके रूपमें, व्यापित है संसार॥

प्रे०—झाबरमल्ल शर्मा

काशीमरणान्मुक्तिः

(लेखक—पं० श्रीमदनमोहनजी शास्त्री प्रिंसिपल मारवाड़ी संस्कृत-कालेज, काशी)

इस जगत्के अन्दर जो लोग नाना दुःख-परम्पराओंसे पूर्ण संसार-समुद्रके प्रवाहमें पतित होकर पुनः उससे निकलना चाहते हैं, वे विचारशील पुरुष अन्य अनेकों मार्गोंके रहते हुए भी काशी-निवासरूपी पन्थका ही अनुसरण करते हैं। धार्मिक मुमुक्षुगण इस विश्वको स्वप्नके समान मानकर सदा इस निम्नाङ्कित सूक्तिका अनुसन्धान किया करते हैं।

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां सङ्गो गङ्गाम्भः शिवपूजनम्॥

अर्थात् इस असार संसारमें यही चार बातें सार हैं—काशीका निवास, महात्माओंका सङ्ग, गङ्गाजल-सेवन और शिवका पूजन। इन चारोंमेंसे किसी भी उपायका अवलम्बन कर वे महात्माजन काशीकी ही शरण लेते हैं, इसे क्षणभर भी छोड़ना नहीं चाहते। इससे यह मालूम होता है कि काशीका अवश्य ही कोई अलौकिक माहात्म्य है! यहाँका मरण भी किसप्रकार मङ्गलजनक होकर आत्यन्तिक तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होता है—यही हम इस छोटे-से निबन्धमें संक्षेपसे कहना चाहते हैं।

यद्यपि निमेषमात्रमें ही जगत्की सृष्टि, रक्षा और प्रलय करनेकी शक्ति रखनेवाले एवं साधुजनोंकी रक्षा, दुर्जनोंका नाश तथा धर्मकी स्थापनामात्रके उद्देश्यसे दिव्य शरीर धारण करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्र आदि अवतार-पुरुषों, समस्त ब्रह्माण्डको करामलकवत् प्रत्यक्ष करनेवाले वशिष्ठ आदि ब्रह्मर्षियों और सत्यकी खोजमें लगे हुए महान् महिमाशाली नल आदि राजाओंसे सर्वथा पावन और पूजनीय इस भारतवर्षमें दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर 'नाना कष्टोंका निवारण करनेवाले किस अविनाशी एवं दुर्लभ लक्ष्यकी सिद्धि करनी चाहिये और उस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये कौन-कौन-से साधन हैं?' इस बातको यहाँके धूलिसे खेलनेवाले बालक-बालिकाएँतक जानते थे, अतः इसके सम्बन्धमें कुछ कहना या लिखना अवश्य पिष्ट-पेषण ही होगा; तथापि आज इस भयङ्कर कलिकालसे ग्रस्त अवस्थामें हम भारतीय अपनी प्राचीन संस्कृतिका अध्ययन न करनेके कारण इधर ध्यान नहीं देते, इसीलिये कुछ लिखा जाता है।

आजकल चारों ओर उन्नतिकी चर्चा है। उन्नतिकी इच्छा स्वाभाविक होनी ही चाहिये; परन्तु वास्तविक उन्नति क्या है? इस बातको नहीं जाननेके कारण आज उन्नतिकी आशामें—उन्नतिके नामपर शास्त्रका उल्लङ्घन और मनमाना आचरण लोग करने लगे हैं। भारतीयोंकी दृष्टिमें वही यथार्थ उन्नति है जिसकी किसी भी कारणसे कभी न अवनति हुई हो, न होती हो और न भविष्यमें हो सकती हो।

ऐसी उन्नति दो प्रकारकी होती है—एक परा और दूसरी अपरा। उसमें अपराके भी दो भेद हैं—इहलौकिक तथा पारलौकिक। आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्ड-नीति—इन चारों विद्याओंमें वर्णित, पारलौकिक उन्नतिको बाधा न पहुँचानेवाले उपायोंद्वारा प्राप्त किये हुए धनसे वर्णाश्रम-मर्यादा तथा कुल-धर्मका यथाशक्ति पालन करनेसे जो अच्छे पुत्र, कलत्र, मित्र आदि प्रचुर सुखोंकी परम्परा प्राप्त होती है उसकी अनुभूति ही ऐहिक उन्नति कहलाती है। और भगवद्भजन आदिसे परमात्मामें चित्तवृत्तिके एकाग्र हो जानेपर जो अपूर्व आनन्दका अनुभव होता है, धार्मिक पुरुषों, महात्माओं तथा विद्वानोंके समागमसे अन्तःकरणमें जो उल्लासकी तरङ्गें उठती हैं, वे सब इहलौकिक उन्नतिके ही अन्दर हैं।

पारलौकिक उन्नति वेद, स्मृति, इतिहास (रामायण, महाभारत) और पुराणोंमें बताये हुए कर्मोंके अनुष्ठानसे होती है। इसका उपभोग केवल परलोकमें ही होता है तथा इसका उत्कर्ष उत्तरोत्तर हिरण्यगर्भपर्यन्त रहता है।

परा-उन्नति भी इहलौकिक और पारलौकिक-भेदसे दो तरहकी है। इहलौकिक उन्नतिसे जीवन्मुक्ति तथा पारलौकिक उन्नतिसे परममुक्ति सिद्ध होती है।

वेदान्त-वाक्योंके श्रवण-मननसे तत्त्वज्ञानरूपी अग्निद्वारा अपने सम्पूर्ण कर्मोंको जलाकर लोकदृष्टिसे बचे हुए प्रारब्ध-कर्मोंका द्रष्टा-बुद्धिसे उपभोग करते हुए देहत्यागमात्रकी अपेक्षा रखनेवाले महात्मा पुरुषकी शरीर छोड़नेसे पहलेकी अवस्था ही जीवन्मुक्तिका स्वरूप है और शरीर छूट जानेके बाद समस्त कर्मोंका सम्पूर्ण दृष्टिसे क्षय हो जानेके कारण आत्मस्वरूपकी उपलब्धि हो जाना ही परममुक्ति है।

ये ऐहिक, आमुष्मिक (पारलौकिक) भेदसे वर्तमान

परापररूप दोनों प्रकारकी उन्नतियाँ ही 'उन्नति' शब्दसे अभिहित हो सकती हैं। इनमें अवनतिकी सम्भावना-का कलङ्क नहीं लग सकता।

परा-उन्नतिके दो साधन हैं—कर्म और तत्त्वज्ञान। इनमें भी कर्म चित्तके प्रक्षालनद्वारा तत्त्वज्ञानका सहकारी बन जाता है। वर्णाश्रम-धर्मोचित अनेकों कर्म, योग, भगवान्‌की उपासना, संन्यास, मोक्षदायक सातों पुरियोंमें अथवा पुण्यक्षेत्रोंमें निवास एवं प्राणत्याग, प्रायश्चित्तोंका अनुष्ठान—ये सभी साधन-समूह पुरुषके प्रयत्नोंद्वारा साध्य हैं तथा इनका करना, न करना और अन्यथा करना सब कुछ सम्भव है; इसलिये ये सब भिन्न-भिन्न रूपसे कर्म ही हैं। इनमेंसे एकके या सबके करनेसे चित्त शुद्ध होता है और शुद्धचित्त पुरुष तत्त्व ग्रहण करनेमें समर्थ होता है। इसलिये अपनी निश्चित एवं आत्यन्तिक उन्नति चाहने-वालोंको शास्त्रोक्त साधनोंका ही सहारा लेना चाहिये, दूसरोंका नहीं।

तत्त्वज्ञान किसी विशेष गुरुके उपदेशसे अथवा श्रवण, मनन एवं निदिध्यासनसे होता है। अन्तःकरणकी भाँति आत्माका साक्षात्कार होना ही उसका स्वरूप है। तत्त्वका साक्षात्कार हो जानेके बाद सञ्चित कर्म ज्ञानाग्निसे दग्ध हो जाते हैं और प्रारब्ध कर्मोंका उपभोगद्वारा क्षय हो जाता है। तत्त्वज्ञानके अनन्तर किये हुए किसी भी कर्मसे पाप-पुण्यकी उत्पत्ति नहीं होती। जन्मके चक्करमें डालनेवाला अदृष्टरूप बीज (कारण) नष्ट हो जाता है, अतः पुनः शरीर आदिका प्रादुर्भाव नहीं होता। तब दुःखोंका अत्यन्ताभावरूप मुक्ति सिद्ध होती है—यही शास्त्रज्ञोंका सिद्धान्त है। इसीको महर्षि गौतमने अपने न्यायसूत्रमें स्पष्ट किया है। यथा—

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तद-नन्तरापायादपवर्गः।*

वैशेषिक-भाष्यके रचयिता महर्षि प्रशस्तपादने कर्म-परायण पुरुषोंकी हिरण्यगर्भपर्यन्त उन्नति बतलाकर पुनः ज्ञाननिष्ठ मनुष्योंकी उन्नतिके विषयमें इसप्रकार कहा है—'ज्ञानपूर्वक किये हुए, फलके सङ्कल्पसे रहित कर्मद्वारा मनुष्य विशुद्ध कुलमें जन्म लेता है। फिर वह दुःखोंको दूर करनेके उपायकी जिज्ञासासे आचार्यके पास जाकर जब तत्त्वज्ञान प्राप्त करता है तब उसका अज्ञान मिट जाता है। यदि वह विरक्त हुआ, तो उसके अन्दर राग-द्वेष आदिका अभाव होनेसे तज्जन्य धर्म और अधर्मकी भी उत्पत्ति नहीं होती और पूर्वसञ्चित धर्माधर्मका उपभोगद्वारा क्षय हो जाता है। रागादि-निवृत्तिरूप केवल धर्म भी उसे सन्तोष, शरीरका विवेक और परमात्मदर्शनजन्य सुख देकर निवृत्त हो जाता है। रागादिका निरोध हो जानेसे आत्मा निर्बीज हो जाता है, अतः उसे फिर शरीर नहीं धारण करना पड़ता। शरीरकी उत्पत्ति न होनेसे इन्धन जल जानेके बाद अग्निकी भाँति वह शान्तिरूप मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसप्रकार उसकी परम उन्नति होती है।

इन्हीं पारमार्थिक उन्नतियोंको लक्ष्य करके भारतीयोंके समस्त शास्त्र, सम्पूर्ण कलाएँ और अखिल व्यवहार एवं सब विधि-निषेधरूप कर्म प्रवृत्त होते हैं। इन्हीं दोनों प्रकारकी उन्नतियोंके लिये राजा-प्रजाके सङ्गठनकी व्यवस्था होती थी। इसप्रकारकी उन्नतिके बाधक, शास्त्रोपदेशसे विमुख लोगोंकी उच्छृङ्खलताको मिटाकर उन्हें उन्नतिके मार्गपर अग्रसर करानेके लिये ही भारतवर्षमें राजा या शासकका होना आवश्यक समझा जाता था—न कि ऐश-आराम करने, शास्त्रानुसार चलनेवाले सत्पुरुषोंको दण्ड देने, शास्त्रविरुद्ध नये-नये कानून चलाने और प्रजापर मनमाना कर लगाकर उनका सर्वस्व हरण करनेके लिये।

इन दोनों प्रकारकी उन्नतियोंके साधनोंका हमारे पूर्वज, त्रिकालज्ञ ऋषियोंने अष्टादश विद्यास्थानोंमें भलीभाँति विवेचन किया था। परन्तु आज भारतीय पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता और संस्कृतिके प्रवाहमें अपनेको सर्वथा बहाकर उन्नतिके इन स्वरूपों और उसके साधनोंको सर्वथा भूल-से गये हैं। इसीलिये आज इन्द्रिय-सुख और धन-लोलुपता आदिके फन्देमें पड़कर उन्हींको प्राप्त करनेके लिये परिणाम-शून्य होकर उन्मत्तकी भाँति इतस्ततः दौड़ रहे हैं। इसीसे ईश्वर, धर्म, वेद-पुराणादि शास्त्र, तत्त्वज्ञ महात्मा, साधु-ब्राह्मण और तीर्थकी आज अवहेलना हो रही है; बल्कि कोई-कोई तो इनका नाम-निशान ही मिटा देना चाहते हैं! बिना भेद-भावके सबके साथ खान-पान और विवाह-सम्बन्ध करना, जाति-पाँतिके धार्मिक बन्धनोंको तोड़ देना, सतीके आदर्शको नष्टकर पुनर्विवाहका प्रचार करना, शास्त्रीय स्पर्शास्पर्श-विचारका विरोध करना, शास्त्रकी बात कहनेवालोंको मूर्ख मानना, विद्वानोंका अपमान करना और धार्मिक संस्कारोंको कुसंस्कार बतलाना आदि निषिद्ध आचरण आज गौरवके कार्य समझे जाने लगे हैं। इस-

* इसीके अर्थका स्पष्टीकरण ऊपर हुआ है।

प्रकार उन्नतिका स्वरूप बहुत ही सङ्कुचित और भ्रमपूर्ण हो गया है। अधर्ममें धर्मबुद्धिका यही फल होता है। इसीलिये काम, क्रोध, लोभ इन त्रिविध नरक-द्वारोंकी सेवा बढ़ चली है और मनुष्योंमें पशुपन आने लगा है। कहा है—

मनोभवमयाः केचित् सन्ति पारावता इव।
कूजत्प्रियतमाचञ्चुचुम्बनासक्तचेतसः॥
केचित् क्रोधप्रधानाश्च सन्ति ते भुजगा इव।
ज्वलद्विषानलज्वालाजालपल्लविताननाः॥
तथात्र केचिद् विद्यन्ते लोभमात्रपरायणाः।
द्रव्यसङ्ग्रहणैकाग्रमनसो मूषका इव॥

'कुछ लोग तो कबूतरोंके समान मञ्जु शब्दोंमें बोलती हुई प्राणवल्लभाके चञ्चु-चुम्बनमें आसक्त हो कामविलासमें मग्न हो रहे हैं। कुछ भुजङ्गमोंकी भाँति वदनसे विषाग्निकी जलती हुई ज्वालाएँ उगलते हुए क्रोधको ही मुख्यरूपसे अपनाये बैठे हैं और यहाँपर कुछ लोग चूहोंकी तरह केवल लोभ-परायण हुए धन बटोरनेमें ही दत्तचित्त हैं।'

विचार करना चाहिये कि क्या इस जडताका नाम ही उन्नति है? परन्तु क्या किया जाय? आज तो पाश्चात्य सभ्यताके पीछे भारतीय लोग भेड़िया-धसानकी भाँति आँखें मूँदकर दौड़ रहे हैं और आचार, विचार, व्यवहारमें उन्हींकी नकलकर सब ओरसे पतनके विकराल मुँहमें प्रवेश करना चाहते हैं। क्या हाथी, घोड़े, गैंडेकी भाँति शरीरको ऊँचा बनानेका नाम ही उन्नति है? क्या मांसलोलुप पशुओंकी भाँति विधि-निषेध, पवित्र-अपवित्र और भक्ष्याभक्ष्यका विचार छोड़कर सब कुछ चट कर जाना ही उन्नति है? क्या विवेक और मर्यादाहीन जीवोंकी भाँति सपिण्ड और सगोत्रका निषेध न मानकर या असवर्णमें विवाह करना, पर-स्त्री-गमन करना, ऋतुकाल, तिथि, नक्षत्र, दिन और गम्यागम्य आदिका विचार न करना, पशुवत् आचरण करना ही उन्नति है? क्या सभ्यताकी आड़में गरीबोंको सताना, परोपकार और सेवाके नामपर अपना स्वार्थ साधना, मीठे बोलकर दूसरों-का स्वत्व हरण कर लेना, साहूकार कहलाकर चोरका काम करना उन्नति है? क्या पात्रापात्रका विचार न कर, नाम-बड़ाई या अन्य स्वार्थसाधनके लिये अशास्त्रीय कर्मोंमें धन लगाना उन्नति है? क्या वाक्चातुरीसे लोगोंपर प्रभाव जमाकर, उन्हें बहकाकर धर्मपथसे डिगाना उन्नति है? क्या दूसरोंको सतानेके लिये, अपराधके बिना ही प्रतिकूल मत रखनेवालोंको दण्ड देनेके लिये या मौज-शौक करने और धर्मविरुद्ध कार्य करनेके लिये शासनाधिकार प्राप्त कर लेना उन्नति है? क्या हवाई जहाज, नाशक यन्त्र आदि वैज्ञानिक आविष्कारोंके द्वारा अपनेसे कमजोर राष्ट्रपर आतङ्क जमाना और उसे लूटनेकी तैयारी करना उन्नति है? भारतीय ऋषियोंकी दृष्टिसे विचारकर देखा जाय तो इनमेंसे एक भी उन्नति नहीं है, वरं ऐसी सभी स्थितियाँ मनुष्यकी अवनतिकी ही सूचक हैं। परन्तु खेदका विषय है कि कुसंसर्गसे आज बुद्धिमें इतना अन्तर पड़ गया है कि इन्हींको उन्नति समझा जा रहा है और इन्हींके वशमें हुए राग-द्वेषसे प्रमत्त होकर लोग आज अपनेको बड़ा उन्नत समझ रहे हैं। वञ्चनापूर्ण व्यवहार करनेपर भी अपनेको आत्मज्ञानी समझना, सदा-सर्वदा स्वार्थसाधनके लिये विकल रहनेपर भी परोपकार-प्रियताका ढिंढोरा पीटना और मनमाने आचरणकर अपनी उच्छृङ्खलताको बहादुरी बताना और गौरवका अनुभव करना आजकी उन्नतिका स्वरूप है। मनुष्य आज इस बातको भूले जा रहे हैं कि जन्म-जन्मान्तरोंके महान् पुण्यसे यह पाञ्चभौतिक मनुष्य-शरीर धर्माचरणपूर्वक भगवत्प्राप्तिके लिये मिला है। इसके अन्दर मल भरा है और एक-न-एक दिन इसका अन्त पुरीष, भस्म या कृमिके रूपमें हो जायगा। अतएव हमें वही करना चाहिये जिससे आत्माका यथार्थ कल्याण हो अर्थात् पूर्वोक्त अपरा और परा-उन्नतिका स्वरूप समझकर वैसी उन्नति करनेमें लगें। दयामय ऋषियोंने इन्हीं उन्नतियोंकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंकी रचना की थी, जिनके अनुसार चलकर मनुष्य इसलोकमें सात्त्विक सुख और अन्तमें मुक्तिकी प्राप्ति कर सकता है।

यों तो परमार्थके साधक ज्ञानी तथा पुण्यात्मा जनोंके लिये श्रवण, मनन आदि अनेकों मुक्तिके साधन बतलाये गये हैं; परन्तु जो लोग नाना प्रकारके पाप कर्मोंमें लगे हुए, गौ, ब्राह्मण और देवताओंकी निन्दा करनेवाले तथा विषय-सेवी हैं और जो श्रवण-मनन आदिमें आलसी एवं नास्तिक हैं, तथा इसी प्रकार जो श्रुति-स्मृति आदिके अनधिकारी शूद्र, अन्त्यज, म्लेच्छ और कीट-पतङ्गादि प्राणी हैं, जिनका शरीर असाध्य रोगोंसे पीड़ित है, अथवा अधिकारी होनेपर भी जो साधन-सम्पत्तिसे रहित हैं—इन सबोंके लिये तो काशीमें मरना ही मुक्तिका साधक है, और कोई नहीं।

यद्यपि—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

अर्थात् 'अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (हरद्वार) काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारकापुरी—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं'—इस वाक्यके अनुसार यद्यपि अयोध्या आदि नगरियाँ भी काशीहीके समान मोक्षरूप फल देनेवाली प्रतीत होती हैं, तथापि—

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि वै।
काशीं प्राप्य विमुच्येत नान्यथा तीर्थकोटिभिः॥

अर्थात् 'अन्य जितने मुक्तिक्षेत्र हैं वे सभी काशीकी प्राप्ति कराते हैं और काशीमें पहुँचकर ही जीव मुक्त हो सकता है, अन्यथा करोड़ों तीर्थोंसे भी मुक्ति नहीं मिल सकती।' इस कथनसे काशी ही विशेषरूपसे मुक्ति देनेवाली प्रमाणित होती है।

अब यहाँ शङ्का उठती है कि जब 'अयोध्या मथुरा०' इत्यादि तथा 'अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि०' इत्यादि दोनों वाक्य व्यासजीके ही कहे हुए हैं तो इनसे यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि 'काशी ही विशेषरूपसे मुक्ति देती है, अन्य सभी तीर्थ काशीको ही प्राप्त कराते हैं।'

इसका समाधान इसप्रकार है। 'अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि०' इस वाक्यमें 'मुक्ति' पदके उपादानसे यह सिद्ध हुआ कि अयोध्या आदि तीर्थ सम्यक्प्रकारसे ज्ञानोत्पादनद्वारा सालोक्य-मुक्ति प्रदान करते हैं; परन्तु काशीमें तो जाने, अनजाने अथवा किसी भी कारणसे मरण हो जानेपर मुक्ति ही मिलती है, पुनः गर्भवासकी यातना नहीं भोगनी पड़ती। पद्मपुराणमें भी कहा है—

तीर्थान्तराणि क्षेत्राणि विष्णुभक्तिश्च नारद।
अन्तःकरणसंशुद्धिं जनयन्ति न संशयः॥
वाराणस्यपि देवर्षे तादृश्येव परन्तु सा।
प्रकाशयति ब्रह्मैक्यं तारकस्योपदेशतः॥

'हे नारद! इसमें कोई सन्देह नहीं कि काशीके अतिरिक्त अन्य तीर्थ तथा पुण्यक्षेत्र और भगवान् विष्णुकी भक्ति—ये सभी साधन अन्तःकरणको शुद्ध करते हैं। हे देवर्षे! चित्त शुद्ध करनेमें काशी भी इन्हींके समान है; परन्तु इसमें एक विशेषता यह है कि यह तारक मन्त्रके उपदेशसे ब्रह्मकी एकताका ज्ञान कराती है।'

काशीखण्डमें—

अविमुक्तिरहस्यज्ञा मुच्यन्ते ज्ञानिनो नराः।
अज्ञानिनोऽपि तिर्यञ्चो मुच्यन्ते हि सकल्मषाः॥

'यहाँ अविमुक्तिके रहस्यको जाननेवाले ज्ञानी मनुष्योंकी मुक्तिकी तो बात ही क्या है; जो अज्ञानी पक्षी आदि जीव हैं, वे चाहे पापी ही क्यों न हों, मुक्त हो जाते हैं।'

पद्मपुराणमें—

नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे।
स्नानात् संसेवनाद्वापि न मोक्षः प्राप्यते नरैः।
इह सम्प्राप्यते येन तत एव विशिष्यते॥
सूच्यग्रमात्रमपि नास्ति ममास्पदेऽस्मिन्
स्थानं सुरैश्च विमृतस्य न यत्र मुक्तिः।
भूमौ जले वियति वा भुवि मध्यतो वा
सर्पाग्निदस्युपविभिर्निहतस्य जन्तोः॥

'नैमिषक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, गङ्गाद्वार (हरद्वार) तथा पुष्कर आदि क्षेत्रोंमें स्नान या निवास करनेसे मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता, परन्तु काशीमें मिल जाता है; इसलिये यह सारे तीर्थोंमें विशिष्ट है। मेरे निवास-स्थान इस काशीमें सूईकी नोक बराबर भी ऐसी जगह नहीं है जहाँपर मरे हुए-की मुक्ति न हो। भले ही वह देवताओंद्वारा या पृथ्वीपर, अथवा जलमें डूबकर, आकाशसे गिरकर, भूमिके अन्दर धँसकर मरा हो अथवा साँप, अग्नि, डाकू या बिजलीके गिरने आदि किसी भी कारणसे उसका प्राण गया हो।'

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें—

जितेन्द्रियाः पापविवर्जिताश्च
शान्ता महान्तो मधुसूदनाश्रयाः।
अन्येषु तीर्थेष्वपि मुक्तिभाजो
भवन्ति काश्यामपि को विशेषः॥

'जितेन्द्रिय, पापरहित, शान्त तथा भगवान्के भक्त महात्मा पुरुष तो अन्य तीर्थोंमें भी मुक्ति-लाभ कर सकते हैं; काशीहीमें कौन-सी विशेषता है'—ऐसा प्रश्न उठाकर समाधान किया है—

विशेषं शृणु वक्ष्यामि काश्याः कथयतो मम।
क्व तानि साधनान्यत्र स्वल्पान्यपि महामते॥
भवन्ति काशीमाहात्म्यात् सिद्धान्येव न संशयः।
अन्यत्र साधुसुकृतैः कृतैर्मुच्येत वा न वा॥
अत्र साधनवैकल्ये काशी पूर्णं प्रकल्पयेत्।

इसका तात्पर्य यह है कि साधन-सम्पत्तिसे युक्त अधिकारियोंकी मुक्ति काशीसे अतिरिक्त स्थानोंमें भी हो

जाती है; परन्तु काशीमें तो सभीकी मुक्ति होती है, यही उसकी विशेषता है। अतएव काशीखण्डमें कहा है—

संसारभयभीता ये ये बद्धाः कर्मबन्धनैः।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥
श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचारविवर्जिताः।
येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥

अर्थात् जो कर्म-बन्धनोंमें बँधकर जन्म-मरणरूप संसार-से भयभीत हो रहे हैं तथा जो श्रुति-स्मृतिके ज्ञानसे रहित हो शौच तथा आचारको छोड़ बैठे हैं, जिनका मोक्ष होना कहीं भी सम्भव नहीं, उनकी एकमात्र काशीमें ही मुक्ति हो सकती है।

इसे अर्थवाद नहीं समझना चाहिये, क्योंकि—

यत्र विश्वेश्वरो देवः साक्षात् स्वर्गतरङ्गिणी।
मिथ्या तत्रानुसूयन्ते तार्किकाश्चानुसूयकाः॥
उदाहरन्ति ये मूढाः कुतर्कबलदर्पिताः।
काश्यां सर्वार्थवादोऽयं ते विट्कीटा युगे युगे॥
मा जानीह्यर्थवादस्त्वं काश्यां मुक्तिविनिर्णये।

'जहाँ भगवान् विश्वनाथ तथा साक्षात् पतितपावनी श्रीगङ्गाजी हैं, उस काशीपुरीकी निन्दा करनेवाले तार्किक व्यर्थ ही निन्दा करते हैं। अपने कुतर्कके बलपर घमण्ड करनेवाले जो मूर्खलोग काशीके माहात्म्यको अर्थवाद कहा करते हैं वे प्रत्येक युगमें विष्ठाके कीड़े होते हैं। काशीमें मुक्ति होनेका जो निर्णय है, उसे तुम अर्थवाद न समझो'— इत्यादि वाक्योंसे अर्थवाद कहनेवालोंका कीट-योनिमें गिरना कहा है। काशीमें मरनेके विषयमें काल अथवा अवस्थाका कोई विशेष विचार नहीं है। यही बात काशी-खण्डमें कही गयी है—

उत्तरं दक्षिणं वापि अयनं न विचारयेत्।
सर्वोऽप्यस्य शुभः कालो ह्यविमुक्ते प्रिये यतः॥

'यहाँ उत्तरायण और दक्षिणायनका विचार नहीं करना चाहिये। हे प्रिये! इस अविमुक्त क्षेत्रमें मरनेवालेके लिये प्रत्येक समय शुभ ही है।'

सनत्कुमारसंहितामें भी कहा है—

रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये
चाण्डालवेश्मन्यथवा श्मशाने।
कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो
देहावसाने लभतेऽत्र मोक्षम्॥

'गली-कूचोंके अन्दर या मल-मूत्रके नालोंमें अथवा चाण्डालके घरमें या श्मशानमें प्रयत्न करनेपर अथवा अनायास ही काशीमें देहत्याग करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है।'

इससे यह सिद्ध हुआ कि पूर्वोक्त रीतिसे जिस किसी भी समयमें, जिस किसी स्थानपर, जिस किसी भी अवस्थामें काशीमें मरे हुए सभी मनुष्योंकी मुक्ति हो जाती है। काशी-खण्डमें कहा है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वा पापयोनयः।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः॥
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये॥
चन्द्रार्धमौलयः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः।
अकामो वा सकामो वा तिर्यग्योनिगतोऽपि वा॥
अविमुक्ते त्यजन् प्राणान् मम लोके महीयते॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, म्लेच्छ आदि सम्पूर्ण पापयोनि अथवा वर्णसङ्कर जीव तथा कोड़े, चींटियाँ, मृग और पक्षिगण तथा अन्य भी जितने जीव हैं वे सभी कालके वश हो मरनेपर मस्तकमें चन्द्रमा और ललाटमें नेत्र धारणकर वृषध्वज हो शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। इच्छा या अनिच्छासे पशु-पक्षी आदि योनियोंमें प्राप्त हुआ भी जीव इस काशीक्षेत्रमें प्राण-त्याग करके मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है।'

पद्मपुराणमें यह भी कहा है कि काशीमें मरनेके अनन्तर सालोक्य आदि चारों प्रकारकी मुक्तियाँ क्रमशः होती हैं। यथा—

काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात् प्राप्नोति सत्तमः।
ततः सरूपतां याति ततः सान्निध्यमश्नुते।
ततो ब्रह्मैकतां याति न परावर्तते पुनः॥

इनमें सालोक्य-मुक्तिका तात्पर्य शिवलोकमें निवास करना, सारूप्यका शिवके समान रूप प्राप्त करना, सान्निध्यका शिवके समीप रहना और सायुज्यका अर्थ शिवमें मिल जाना है। सालोक्यादि मुक्तिका भी क्षेत्र-भेदसे तारतम्य है, जैसे—काशी-क्षेत्रमें सालोक्य-मुक्ति, वाराणसी-क्षेत्रमें सारूप्य-मुक्ति, अविमुक्ति-क्षेत्रमें सान्निध्य-मुक्ति और अन्तर्गृह-क्षेत्रमें सायुज्य-मुक्ति होती है। इसीको पद्मपुराणमें बतलाया है—

चतुर्धा भिद्यते क्षेत्रे सर्वत्र भगवाञ्छिवः।
व्याचष्टे तारकं वाक्यं ब्रह्मात्मैक्यप्रबोधकम्॥

काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात् प्राप्नोति सत्तमः।
वाराणस्यां मृतो जन्तुः साक्षात्सारूप्यमश्नुते॥
अविमुक्ते विपन्नस्तु साक्षात्सान्निध्यमाप्नुयात्॥
सलोकताञ्च सारूप्यं सान्निध्यं वापि सत्तमः।
कल्पं कल्पमवाप्नोति ततो ब्रह्मात्मको भवेत्॥

काशी आदि क्षेत्रोंका परिमाण अन्यत्र देखना चाहिये, लेख बढ़ जानेके भयसे उसे यहाँ नहीं दिया जाता। उपर्युक्त आलोचनासे यह सिद्ध हो गया कि अन्य क्षेत्रोंकी अपेक्षा काशीमें मरनेकी विशेषता है।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है—

न कर्मणामनुष्ठानैर्न दानैस्तपसापि वा।
कैवल्यं लभते मर्त्यः किन्तु ज्ञानेन केवलम्॥

अर्थात् 'मनुष्य यज्ञादि कर्मोंके अनुष्ठान, दान और तपस्यासे भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता, वह तो केवल ज्ञानसे ही सिद्ध हो सकता है'—इस स्मृतिके वाक्यसे तथा—

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

अर्थात् 'उस ब्रह्मको जानकर ही मनुष्य अमृत (मोक्ष) पद प्राप्त कर सकता है, उसे पानेका और कोई मार्ग नहीं है'—इस श्रुति-वचनसे भी विरोध होनेके कारण 'काशी-मरण' को मोक्षका साधक कैसे माना जा सकता है?

इसका समाधान यों है—'काशीमें मरनेसे मुक्ति होती है'—इस वाक्यका तात्पर्य यह है कि काशीमें मरनेसे पहले तत्त्वज्ञान होता है, तब मुक्ति। ऐसा माननेपर विरोधके लिये कोई स्थान नहीं रह जाता।

अब पुनः यह प्रश्न होता है कि जन्य (होनेवाले) ज्ञानमें तो जीवित शरीर ही कारण हुआ करता है, फिर काशीमें मर जानेके बाद तत्त्वज्ञान कैसे सम्भव हो सकता है? क्योंकि उस समय जीवित शरीररूप कारण रहता ही नहीं। यदि कहें कि 'प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मोपदिष्टे' (प्राण निकलते समय रुद्र तारक-ब्रह्मका उपदेश करते हैं)—इस श्रुतिके अनुसार प्राण निकलनेकी ही अवस्थामें भगवान्‌द्वारा मन्त्रोपदेश हो जानेसे तथा विशिष्ट गुरुके दिये हुए मन्त्रके प्रभावसे शीघ्र ही उसी शरीरसे तत्त्वज्ञान हो जाता है; अतः वहाँ कारणका अभाव नहीं रहता, तो यह भी कहना ठीक नहीं; क्योंकि यदि मृत्युके पहले ही तत्त्वज्ञान हो जाय तो काशीका मरना तत्त्वज्ञानका कारण नहीं सिद्ध हो सकता। इसका उत्तर यों है—काशीमें मृत्यु हो जानेके अनन्तर अदृष्ट-विशेषसे शरीरकी प्राप्ति होती है और उसके द्वारा तत्त्वज्ञानकी उत्पत्ति होनेमें कोई प्रतिबन्धक नहीं रह जाता। अथवा जिसप्रकार बिना शरीरके ही ईश्वरमें ज्ञान होना माना जाता है उसी तरह काशीमें मरे हुए जीवको भी जीवित शरीरके अभावमें भी ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है।

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि काशी-मरणसे यदि सभी जीवोंकी मुक्ति मान ली जाय तो निषिद्ध कर्म करनेवालों और नियमपूर्वक विहित कर्म करनेवालोंमें क्या विशेषता रह जाती है, कोई नहीं। ऐसी दशामें काशीमें भले-बुरेका विचार छोड़कर लोग मनमाना आचरण करने लग जायँगे। यदि बुरे कर्मोंका प्रतिकूल फल न मिले तो अत्यन्त प्रयत्नसे सिद्ध होनेयोग्य पुण्य कर्ममें कौन प्रवृत्त होगा? और—

अशनं व्यसनं वासः काश्यां येषाममार्गतः।
कीकटेन समा काशी गङ्गाप्यङ्गारवाहिनी॥

अर्थात् 'काशीमें जिन लोगोंका अशन, व्यसन अथवा निवास कुमार्गसे होता है उनके लिये काशी तो कीकट (मगध) के समान है और गंगा आग बहानेवाली है'—इस शास्त्र-वाक्यकी सङ्गति कैसे होगी? इसका रहस्य यों समझना चाहिये कि सदाचारका त्याग न करनेवाले पापहीन पुरुषोंकी तो भगवान्‌के द्वारा उपदेश किये हुए तारकमन्त्रसे उत्पन्न तत्त्वज्ञानद्वारा तुरन्त मुक्ति हो जाती है। परन्तु अपने पापोंका प्रायश्चित्त न करनेवाले पापियोंकी इस काशी-क्षेत्रमें कहीं भी जिस किसी तरह मृत्यु हो जानेपर उन्हें पापके अनुसार यम-यातना अर्थात् तीस हजार बरसतक रुद्रपिशाचता प्राप्त होती है, तत्पश्चात् शीघ्र अथवा देरीसे उनकी मुक्ति होती है। जैसा कि गरुडपुराणमें कहा है—

वाराणस्यां स्थितो यो वै पातकेषु रतः सदा।
योनिं प्रविश्य पैशाचीं वर्षाणामयुतत्रयम्॥
पुनरेव च तत्रैव ज्ञानमुत्पद्यते ततः।
मोक्षं गमिष्यते सोऽपि गुह्यमेतत् खगाधिप॥

काशीखण्डे—

कृत्वापि काश्यां पापानि काश्यामेव म्रियेत चेत्।
भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनर्मोक्षमवाप्स्यति॥

'जो मनुष्य काशीमें रहकर सदा पापोंमें रत रहता है वह तीस हजार वर्षतक पिशाच-योनिको भोगता है, फिर वहीं उसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उसके बाद मोक्ष

मिल जाता है । हे गरुड ! यह रहस्यकी बात है। मनुष्य काशीमें पाप करके यदि काशीमें ही मर जाय तो वह रुद्र पिशाच होकर फिर मोक्ष पाता है।'

अब फिर यह प्रश्न उठता है कि यदि पापी पुरुष काशीमें मरनेसे रुद्र पिशाच हो जाता है तो फिर उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है ? क्योंकि उसके अन्दर तत्त्व-ज्ञान तो होता ही नहीं। इसका उत्तर यह है कि पिशाच भी देवयोनिके ही अन्तर्गत है, इसलिये वह भी ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेका अधिकारी है और शङ्करजीके उपदेश किये हुए तारकमन्त्रद्वारा उसे तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्ति हो ही जाती है। सनत्कुमारसंहितामें भी लिखा है—

> यो वा गमिष्यत्यघकृद् बहिष्ठ-
> स्त्यक्त्वासुमत्रैव शिवं लभेत ।
> अत्रैव पापैः सह चेन्मृतोऽसौ
> न जन्ममृत्यू लभते च काइयाम् ॥
> कालेन मे यामगणैः फलेषु
> नियोजितस्तत्सकलं प्रभुज्य ।
> अल्पेन कालेन समस्तमेव
> सार्धं पुना रुद्रपिशाचरुद्रैः ॥
> भवप्रसादेन कृतोपदेशः
> पिशाचयोनेरपि मुक्तिमेति ।

'जो बाहरका रहनेवाला पापी पुरुष काशीमें जाकर प्राण-त्याग करता है वह यहीं शिव-सायुज्य प्राप्त कर लेता है। और यदि वह काशीमें ही पापाचरण करता हुआ मर जाता है तो उसका भी फिर यहाँ जन्म-मरण नहीं होता; बल्कि मेरे यम नामक गण उसे कर्मानुसार फलोंमें नियुक्त करते हैं और वह रुद्रपिशाचगणोंके साथ थोड़े ही नियमित समयमें उन समस्त फलोंको भोगकर शिवकी कृपासे ज्ञानोपदेश पाकर पिशाच-योनिसे भी मुक्त हो जाता है।'

जो काशीमें पाप करके अन्यत्र जाकर मर गये हों उनके विषयमें इसप्रकार कहा है—

> अन्यत्र भुक्त्वापि समस्तपापं
> पुण्यं च पश्चात्तृणगुल्मकादौ ।
> जातः क्रमाद् ब्राह्मणतामुपेत्य
> त्वदुक्तमार्गैरपि मुक्तिमेति ॥

'अन्यत्र मरनेपर भी समस्त पाप-पुण्योंको भोग लेनेके बाद वह तृण-लता आदि उद्भिज योनियोंमें जन्म लेता है, पुनः क्रमशः ब्राह्मण होकर तुम्हारे बताये हुए मार्गसे मुक्त हो जाता है।'

यदि कहें कि अन्तःकरणकी शुद्धिके बिना काशीमें मरनेवालोंको तत्त्व-ज्ञान कैसे हो सकता है, क्योंकि तत्त्व-ज्ञान होनेके लिये अन्तःकरणका शुद्ध होना आवश्यक है—तो यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि अनेक जन्मोंके सञ्चित किये हुए पुण्य-कर्मोंद्वारा जिनका चित्त शुद्ध हो चुका है; उन्हींका काशीमें मरना सम्भव है। अतएव ब्रह्मपुराणमें कहा है—

> अनेकजन्मसंसिद्धान् वर्जयित्वा महामुनीन् ।
> नान्येषां मरणं तत्र यच्छन्त्येते विभीषणाः ॥

अर्थात् ये भयावह रुद्रगण अनेक जन्मोंके सिद्ध महर्षियोंको छोड़कर और किसीको काशीमें नहीं मरने देते।

कुछ लोग यह कह सकते हैं कि काशीमें तो पापियोंकी भी मृत्यु होती देखी जाती है; परन्तु जिसका चित्त शुद्ध होगा उसमें पापकी वासना हो ही नहीं सकती। ऐसी दशामें यह नियम कैसे माना जाय कि 'अनेक जन्मोंके उपार्जित पुण्योंद्वारा शुद्धचित्त महात्माओंकी ही यहाँ मृत्यु होती है ?' यह भी ठीक नहीं, क्योंकि पूर्वोक्तरूपसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर भी प्रारब्ध पापके कारण कंस और शिशुपाल आदिके समान पाप-वासना सम्भव है, अतः उक्त नियममें कोई बाधा नहीं आती।

मरणावस्थामें अपान-वायुसे टकराकर जब मर्म फटने लगता है उस समय व्याकुलचित्त पुरुष तो कुछ भी सुन नहीं सकता और असम्भावना तथा विपरीत भावना भी मिटायी नहीं जा सकती, ऐसी स्थितिमें तत्त्वका साक्षात्कार होना असम्भव है—इस तरहकी शङ्का भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि अपरिमित महिमाशाली श्रीविश्वनाथकी कृपासे हर तरहकी वेदना मिट जानेपर चित्तको प्रसन्न रखनेकी शक्ति प्राणीके अन्दर हो सकती है और इस तरह श्रवण आदिके भी सम्भव होनेसे असम्भावना तथा विपरीत भावनाकी निवृत्तिमें किसी तरहकी बाधा नहीं आ सकती। तथा मरणकालमें बाह्य इन्द्रियोंकी अपेक्षाके बिना ही केवल हृदयमात्रसे श्रवण आदिकी उपपत्ति होती है; इसलिये काशीमरणसे जो अत्यन्त शुद्ध हो चुका है और श्रीविश्वनाथजीके प्रत्यक्ष दर्शनसे जिसकी पापराशि नष्ट हो गयी है उसके असम्भावनादि प्रतिबन्धक तो नष्ट हो ही जाते हैं।

जैसे गुरुके प्रभावसे अनादिकालिक अज्ञान मिट जाता है, वैसे ही अनादि असम्भावना तथा विपरीत भावना भी मिट ही जाती है। इस तरह काशीका अलौकिक महत्त्व तथा वहाँके मरणका मोक्षदायकत्व सिद्ध हुआ। इस विकराल कलिकालमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन आदि उपायोंसे तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करके मुक्त होना संसारमें आसक्त हम-जैसे पुरुषोंके लिये अत्यन्त कठिन है। उस तरहकी अभिलाषा करनी भी लड़कोंके चाँद पकड़नेकी इच्छाके समान है। भगवान्‌की कृपासे किन्हीं-किन्हीं महापुरुषोंकी यदि उस प्रकार मुक्ति होती हो तो हो, सर्वसाधारणके लिये वह सुलभ नहीं है। इसीको श्रीहर्षने बतलाया है—

ईश्वरानुग्रहादेषा पुंसामद्वैतवासना।
महाभयकृतत्राणा द्वित्राणां यदि जायते॥

'महान् भयसे रक्षा करनेवाली यह अद्वैतवासना ईश्वरकी कृपासे दो ही तीन पुरुषोंके अन्दर होती है।'

इस कलियुगमें काशीमरणके अतिरिक्त मुक्त होनेका और कोई सरल उपाय नहीं है। जैसा कि कहा है—

कलिकालस्त्वयं तीक्ष्णः क्व नयः क्व परात्मदृक्।
काश्येव शरणं तेषां मुक्तिदा मलिनां नृणाम्॥
कलौ विनष्टव्रतधैर्यवीर्या
गच्छन्तु काशीं परमार्थराशिम्।

'यह कलिकाल तो अत्यन्त विकराल है, इसमें कहाँ नीति और कहाँ परमात्माका ज्ञान? इस युगमें पापी मनुष्योंको मुक्ति देनेके लिये काशी ही एकमात्र शरण है।' 'कलिमें जिन लोगोंका व्रत, धीरता और वीरता नष्ट हो चुकी हैं, वे लोग परमार्थकी राशिभूत काशीको ही जायँ।'

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि इस तरहकी मुक्तिमें विद्वानोंकी प्रवृत्ति सर्वथा अनुचित है, क्योंकि दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये किये गये यत्नसे यदि सुखका भी त्याग हो जाय, तब तो आय-व्यय दोनों बराबर ही हुए। संसारमें थोड़ा-बहुत दुःख रहनेपर भी जैसे धान्य चाहनेवाला पुआलका, चावलका इच्छुक भूसेका तथा मांसार्थी कण्डक (मल) आदिका त्यागकर केवल अभीष्ट वस्तुओंको ही ग्रहण करता है इसी प्रकार विवेकी पुरुष दुःख और उसके साधनोंको छोड़कर केवल सुखमात्र ग्रहण करता है। इसका समाधान यह है कि दुःख और उसके साधनोंका त्याग कर देनेसे सुखमात्रकी उपलब्धि हो ही नहीं सकती। इसको ही न्यायवार्तिकमें स्पष्ट किया है—

विवेकहानस्याशक्यत्वात्।

इसलिये सुख भोगनेकी इच्छावालेको दुःख भी भोगना पड़ता है और दुःखका त्याग करनेवालेको सुख भी छोड़ना पड़ता है। जिस तरह मधु और विष मिले हुए अन्नमें एकका त्याग और दूसरेका ग्रहण नहीं हो सकता।

यदि कहें, दुःखकी तरह सुखको भी मिटानेवाले तत्त्व-ज्ञानके कारणभूत काशीमरण आदि उपायोंमें विशेषज्ञ पुरुषोंका द्वेष होना स्वाभाविक है, अतः उसमें उनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती; तो यह भी कहना उचित नहीं, क्योंकि जिन विषयी पुरुषोंका सुखमें उत्कट राग होता है वे—

युष्मत्कृते खञ्जनमञ्जुलाक्षि
शिरो मदीयं यदि याति यातु।
नीतानि नाशं जनकात्मजार्थे
दशाननेनापि दशाननानि॥

'हे खञ्जरीटके समान मनोहर नेत्रोंवाली! तुम्हारे लिये यदि मेरा सिर भी जाता है तो जाय। देखो, सीताके लिये रावणने भी अपने दशों मस्तकोंको नष्ट कर डाला था'—इत्यादि बातें मानकर परस्त्रीमें आसक्त हो सचमुच ही मुक्तिमार्गमें प्रवृत्त नहीं होते। परन्तु जो लोग विवेकी हैं वे यह सोचकर कि 'इस संसारके कण्टकाकीर्ण पथमें दुःखरूपी अँधेरी रातें कितनी हैं और सुखके जुगनू कितने चमकते हैं? ये सब कुछ क्रोधित भुजङ्गमके फणोंकी छायाके समान क्षणिक हैं' सुखको भी त्याग देना चाहते हैं। वे सुख तथा उसके साधनोंको भी व्यर्थ समझते हैं। वे विश्वासी पुरुष द्वेष न करके उलटा उसमें प्रवृत्त होते हैं, क्योंकि बहुत बड़े दोषका ज्ञान ही प्रवृत्तिमें विरोधी होता है। इसलिये अपनी आध्यात्मिक उन्नति चाहनेवालोंको काशीका सेवन अवश्य करना चाहिये।

काशीवसत्या तत्त्वस्य संविदया चोन्नतिः परा।
जायते सज्जना नूनं काशी संसेव्यतां मुदा॥
भारतीयसमाजोऽयं धर्माचरणलोलुपः।
कदाचित् समजो माभूत् सुधारकविमोहितः॥
म्लेच्छपाषण्डसुगतसमाजमतविभ्रमाः।
जनाः सन्मार्गमायान्तु जननीशप्रसादतः॥

हे सज्जनो ! काशीमें निवास करनेसे और तत्त्वज्ञान-से परा उन्नति होती है, इसलिये आप प्रसन्नताके साथ काशीसेवन अवश्य करें । यह भारतीय समाज सदासे ही धर्माचरणमें आसक्त रहा है, सुधारकों-द्वारा विमोहित होकर कभी मूर्ख न बने । म्लेच्छ, पाखण्ड और बौद्ध आदि समाजोंके मतसे भ्रान्त मनुष्य पार्वती तथा शिवकी कृपासे अच्छे पथपर आ जायँ । इति शम्

महाशिवरात्रि-व्रत

(लेखक—काव्यतीर्थ प्रोफेसर श्रीलौटूसिंहजी गौतम एम० ए०, एल-टी०, एम० आर० ए० एस०)

सन्तोंकी उच्छिष्ट उक्ति है मेरी बानी। जानूँ उसका भला भेद क्या मैं अज्ञानी ॥ —तुकाराम

बौद्धकालसे ही 'शिव-तत्त्व' के विषयमें घोर अज्ञान छाया हुआ है। आजकल-के साक्षर विद्वानोंमेंसे कुछ तो ऐसे हैं जो प्रायः शिव-तत्त्व, शिवार्चन, महा-शिवरात्रि-व्रत आदिके रहस्यसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं; बहुत-से पाश्चात्य विद्वानोंकी कुतर्कपूर्ण विचारधारामें बहे जा रहे हैं तथा कुछ मायामुग्ध विषयासक्तजन अपने कुत्सित विचारोंको ही मङ्गलमूर्ति शिवपर आरोपित करते हैं। कोई उन्हें गँजेड़ी, भँगेड़ी समझता है, कोई सीधा-सादा, भुलक्कड़ भोलानाथ और कोई उन्हें व्याघ्रचर्माम्बरधारी, डमरू-बजानेवाला भूतनाथ। इससे परे उनकी दृष्टि नहीं जाती। हम यह नहीं कहते कि भगवान् अपने भक्तोंकी भावनाके अनुसार रूप धारण नहीं करते; परन्तु अपनी दुर्बलताओंको भगवान्के मत्थे मँढ़ना अवश्य ही निन्द्य कर्म है। इसीसे कहना पड़ता है कि इस सम्बन्धमें लोगोंमें कितना भ्रम फैला हुआ है। अवश्य ही वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य आदि सम्प्रदायोंके सम्बन्धमें भी भ्रम फैला हुआ है; परन्तु शैव और पाशुपत-मत-सम्बन्धी भ्रम उससे बहुत आगे बढ़ गया है। इनके सम्बन्धमें तो यहाँतक नौबत पहुँच गयी है कि लोग इन्हें अनार्य-धर्मतक मानने लगे हैं।* इस सम्बन्धमें यहाँ हम अधिक विस्तार न कर केवल इतना निवेदन कर देना ही पर्याप्त समझते हैं कि शैव और पाशुपत-धर्मोंको अनार्य-धर्म मानना उचित नहीं है—वे शुद्ध वैदिक आर्य-धर्म हैं। यद्यपि समयके प्रभावसे इनमें अन्य प्रकारके विचारोंका भी थोड़ा-बहुत समावेश हो गया है, तथापि जैसे अनेक नदियोंके आकर मिल जानेपर भी पुण्यतोया गङ्गाका गङ्गापन नष्ट नहीं होता, वैसे ही इस वैदिक धर्मरूपी सुरसरिकी सुधाधारामें अनेकों विचार-सरिताओंका सम्मिश्रण हो जानेसे ही इसकी पवित्रता नष्ट नहीं हो गयी। इस सम्मिश्रणसे इन आर्य-धर्मोंको अनार्य-धर्म कदापि नहीं कहा जा सकता। जो कहते हैं, वे भूल करते हैं। अस्तु।

जैसे शैवमतके विषयमें मतभेद है वैसे ही शिवसम्बन्धी व्रतोंके विषयमें भी है। इस विषयकी विधिवत् मीमांसा करना तो इन पंक्तियोंके लेखककी सामर्थ्यके बाहरकी बात है, फिर भी अपनी अल्प मतिके अनुसार भगवान् शिवकी अनुकम्पासे प्राप्त हुए कुछ अनुभवके आधारपर यत्किञ्चित् लिखनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

महाशिवरात्रि-व्रतके रहस्यको जाननेके लिये यह आवश्यक है कि उसका पदच्छेद करके उसके अङ्गीभूत प्रत्येक शब्दपर विचार किया जाय। देखा जाय कि 'शिव' किसे कहते हैं, 'रात्रि' क्या चीज है और 'व्रत' का क्या अर्थ है। साथ ही, इसका साधन क्या है और इसे करनेसे किस फलकी प्राप्ति होती है, आदि।

शिव

अवश्य ही 'शिव क्या हैं' इसका ज्ञान लेना शिव-कृपापर ही अवलम्बित है। वस्तुतः इसे जानना ही शिवका साक्षात्कार कर लेना है, जो बहुत दूरकी बात है; फिर भी साधारण ज्ञानके लिये इतना जान लेना आवश्यक है—

शेते तिष्ठति सर्वं जगत् यस्मिन् सः शिवः शम्भुः विकाररहितः.................. ।

अर्थात् 'जिसमें सारा जगत् शयन करता है, जो विकार-रहित है वह 'शिव' है, अथवा जो अमङ्गलका ह्रास

* देखिये डा० राधाकृष्णन्-कृत 'भारतीय-दर्शन' प्रथम-भाग (Indian Philosophy, Part I, pp. 488-89 by Dr. Radhakrishnan).

करते हैं वे ही सुखमय, मङ्गलरूप भगवान् शिव हैं। जो सारे जगत्को अपने अन्दर लीन कर लेते हैं वे ही करुणा-सागर भगवान् शिव हैं। जो भगवान् नित्य, सत्य, जगदाधार, विकाररहित, साक्षीस्वरूप हैं वे ही शिव हैं; उन्हींका वर्णन श्रीपुष्पदन्ताचार्यने शिव-महिम्नःस्तोत्रमें इसप्रकार किया है—

त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

महासमुद्ररूपी शिवजी ही एक अखण्ड पर-तत्त्व हैं, इन्हींकी अनेक विभूतियाँ अनेक नामोंसे पूजी जाती हैं, यही सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् हैं, यही व्यक्त-अव्यक्तरूपसे क्रमशः 'सगुण ईश्वर' और 'निर्गुण ब्रह्म' कहे जाते हैं तथा यही 'परमात्मा', 'जगदात्मा', 'शम्भव', 'मयोभव', 'शङ्कर', 'मयस्कर', 'शिव', 'रुद्र' आदि नामोंसे सम्बोधित किये जाते हैं। आचार्यने सत्य ही कहा है—

त्वमापस्त्वं सोमः......................
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत् त्वं न भवसि।

यही भगवान् शिव वर्णनातीत होते हुए भी अनुभव-गम्य हैं, यही आशुतोष भक्तोंको अपनी गोदमें रखते हैं, यही त्रिविध तापोंको शमन करनेवाले हैं, इन्हींसे समस्त विद्याएँ एवं कलाएँ निकली हैं, ये ही वेद तथा प्रणवके उद्गम हैं, इन्हींको वेदोंने 'नेति-नेति' कहा है। यही नित्याश्रय और अनन्ताश्रय हैं और यही दयासागर एवं करुणावतार हैं। इनकी महिमाका वर्णन करना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है।

रात्रि

अब रात्रिके सम्बन्धमें सुनिये। 'रा' दानार्थक धातुसे 'रात्रि' शब्द बनता है, अर्थात् जो सुखादि प्रदान करती है वह 'रात्रि' है। ऋग्वेद-रात्रिसूक्तके यूप-मन्त्रमें रात्रिकी बड़ी प्रशंसा की गयी है—

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित। उप ऋणेव यातय॥

(ऋग्वेद सं० रा० सू० १०। १२७। ७)

'हे रात्रे! अक्लिष्ट जो तम है वह हमारे पास न आवे। ...... आदि।'

रात्रि सदा आनन्ददायिनी है, अतः सबकी आश्रय-दात्री होनेके कारण उसकी स्तुति की गयी है और यहाँ रात्रिकी स्तुतिसे प्रकृतिदेवी, दुर्गादेवी अथवा शिवादेवीकी ही स्तुति समझनी चाहिये। इसप्रकार शिवरात्रिका अर्थ होता है 'वह रात्रि* जो आनन्द देनेवाली है और जिसका शिवके नामके साथ विशेष सम्बन्ध है।' ऐसी रात्रि माघ-फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीकी है, जिसमें शिवपूजा, उपवास और जागरण होता है। उक्त फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिको शिवपूजा करना एक महाव्रत है, अतः उसका नाम महा-शिवरात्रि-व्रत पड़ा। परमात्मा शिवके भावुक भक्तोंके लिये इस सम्बन्धमें कुछ आवश्यक उद्धरण दिये जाते हैं—

परात् परतरं नास्ति शिवरात्रिपरात् परम्।
न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्।
जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः॥

(स्कन्दपुराण)

सौरो वा वैष्णवो वान्यो देवतान्तरपूजकः।
न पूजाफलमाप्नोति शिवरात्रिबहिर्मुखः॥

(नृसिंह-परिचर्या और पद्मपुराण)

इसका आशय यह है कि शिवरात्रि-व्रत परात्पर है। जो जीव इस शिवरात्रिमें महादेवकी भक्तिपूर्वक पूजा नहीं करता, वह अवश्य सहस्रों वर्षोंतक घूमता रहता है। चाहे सूर्यदेवका उपासक हो, चाहे विष्णु तथा अन्य किसी देवका, जो शिवरात्रिका व्रत नहीं करता उसको फलकी प्राप्ति नहीं होती। स्कन्दपुराण फिर डंकेकी चोट कहता है—

शिवं तु पूजयित्वा यो जागर्ति च चतुर्दशीम्।
मातुः पयोधररसं न पिबेत् स कदाचन॥

जो शिव-चतुर्दशीमें शिवकी पूजा करके जागता रहता है, उसको फिर कभी अपनी माताका दूध नहीं पीना पड़ता अर्थात् वह मुक्त हो जाता है।

सागरो यदि शुष्येत क्षीयेत हिमवानपि।
मेरुमन्दरशैलाश्च श्रीशैलो विन्ध्य एव च॥
चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम्।

(स्कन्दपुराण)

---

* श्रीमाधवाचार्यने स्वप्रणीत 'कालमाधव' में शिवरात्रिकी यों व्याख्या की है—

'शिवस्य प्रिया रात्रिर्यस्मिन् व्रते अङ्गत्वेन विहिता तद्व्रतं शिवरात्र्याख्यम्।'

अर्थात् 'चाहे सागर सूख जाय, हिमालय भी क्षयको प्राप्त हो जाय, मन्दर, विन्ध्यादि पर्वत भी विचलित हो जायँ, पर शिव-व्रत कभी विचलित (निष्फल) नहीं हो सकता।' इसका फल अवश्य मिलता है।

यहाँतक 'शिव' और 'रात्रि' का अर्थ निरूपणकर, उस विशेष रात्रिमें व्रत करनेकी प्रशंसा की गयी। अब तत्त्वतः शिवरात्रि-व्रत क्या है तथा फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिमें क्या विशेषता है, इसका थोड़ा-सा तात्त्विक विवेचन भी किया जाता है। जो मनुष्य 'कालतत्त्व' का भाव जानते हैं उन्हें विदित है कि समयपर कार्य करनेसे इष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति होती है। फाल्गुनके पश्चात् नये वर्ष-चक्रका प्रारम्भ होता है। रात्रिके पश्चात् दिन और दिनके पश्चात् रात्रि होती है अथवा लयके बाद सृष्टि और सृष्टिके बाद लय होता है। इसप्रकार लयके बाद सृष्टि और फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीके बाद वर्षचक्रकी पुनरावृत्ति एक ही बात है। वर्षचक्रकी पुनरावृत्तिके समय मुमुक्षु जीव परम-तत्त्व शिवके पास पहुँचना चाहता है। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार कृष्ण चतुर्दशीमें चन्द्रमा सूर्यके समीप होते हैं। अतः उसी समयमें जीवरूपी चन्द्रका शिवरूपी सूर्यके साथ योग होता है, अतएव फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको शिव-पूजा करनेसे जीवको इष्ट पदार्थकी प्राप्ति होती है।

शिवरात्रि-व्रत

अब यह समझना है कि शिवरात्रि-व्रत क्या है? इस व्रतमें उपवास, जागरण और शिव-पूजा प्रधान हैं। इन सबका तात्त्विक अर्थ समझना चाहिये। इसके पहले 'व्रत' क्या है, यह समझना आवश्यक है। वैदिक साहित्यमें व्रतका अर्थ वेदबोधित, इष्टप्रापक कर्म है। दार्शनिक कालमें 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस' कर्मोंका हेतु-पदार्थ ही 'व्रत' शब्दका अर्थ समझा जाता था। अमरकोषमें 'व्रत' का अर्थ नियम है। पुराणोंमें व्रत 'धर्म' का वाचक है। निष्कर्ष यह है कि वेदबोधित अग्निहोत्रादि कर्म, शास्त्रविहित नियमादि अथवा साधारण तथा असाधारण धर्मको ही 'व्रत' कहते हैं अथवा थोड़ेमें यों समझिये कि जिस कर्मद्वारा भगवान्का सान्निध्य होता है वही व्रत है।

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम्।
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्थितः॥

(भविष्यपुराण)

अतः निश्चित हुआ कि व्रत ही समयानुसार साधारण तथा असाधारण धर्मका वाचक है जैसा कि ऊपर कहा गया है।

अब, यह देखना है कि उपवास क्या है? जीवात्माका शिवके समीप वास ही 'उपवास' कहा जाता है।

उप-समीपे यो वासः जीवात्मपरमात्मनोः।
उपवासः स विज्ञेयो न तु कायस्य शोषणम्॥

(वराहोपनिषत्)

अथवा—

उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः॥

(भविष्यपुराण)

देवीपुराणमें कहा गया है—

'भगवान् (शिव) का ध्यान, उनका जप, स्नान, भगवान्की कथाका श्रवण आदि—इन गुणोंके साथ वास अर्थात् इन क्रियाओंको करते हुए काल-यापन करना ही उपवासकर्त्ताका लक्षण है। व्रतीके अन्दर ये लक्षण अवश्य होने चाहिये। व्रतीके लिये सब प्रकारके विषय-भोगोंका वर्जन आवश्यक है। केवल अनशन करनेसे उपवास या व्रत नहीं होता। अवश्य ही अनशनसे भी कुछ लाभ तो होता ही है। हाँ, यथेष्ट लाभकी प्राप्तिके लिये विधिपूर्वक क्रियाएँ भी करनी चाहियें। इसप्रकार 'व्रत' और 'उपवास' प्रायः एक ही चीजके दो नाम हैं।

जागरण—मुमुक्षु जीवात्माके लिये 'जागरण' आवश्यक है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(गीता २।६९)

'सर्व प्राणियोंकी अर्थात् विषयासक्त संसारी जनोंकी जो निशा है उसमें संयमी जगे रहते हैं। आत्मदर्शन-विमुख प्राणिगण जिस जगदवस्थामें जागते हैं मनीषी, आत्मदर्शननिरत योगीके लिये वह निशा है।' अतः सिद्ध है कि विषयासक्त जिसमें निद्रित हैं उसमें संयमी प्रबुद्ध हैं। अतः शिवरात्रिमें जागरण करना आवश्यक है। शिवपूजाका अर्थ पुष्प-चन्दन-बिल्वपत्र अर्पितकर शिव-नामका जप-ध्यान करना एवं चित्तवृत्तिका निरोधकर जीवात्माका परमात्मा 'शिव' के साथ योग करना है।

जीवात्माका 'आवरणविक्षेप' हटाकर पर-तत्त्व 'शिव'

के साथ एकीभूत होना ही वास्तविक 'शिव-पूजा' है। यही जीवनका ध्येय है। योगशास्त्रके शब्दोंमें इन्द्रियोंका प्रत्याहार, चित्तवृत्तिका निरोध और महाशिव-रात्रिव्रत वास्तवमें एक ही पदार्थ हैं। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, अहङ्कार, चित्त और बुद्धि—इन चतुर्दशका समुचित निरोध ही सच्ची 'शिव-पूजा' या 'शिवरात्रि-व्रत' है। इसका निरोध कर्म, ज्ञान अथवा भक्तिके द्वारा हो सकता है—श्रीगीताने स्पष्ट कर दिया है कि—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥
(३।३)

चाहे शिव-पूजा ज्ञानयोगद्वारा कीजिये अथवा कर्मयोग-द्वारा, भक्तिका सम्मिश्रण दोनोंमें रहेगा। ज्ञानप्रधान भक्ति अथवा कर्मप्रधान भक्तिद्वारा फाल्गुन-कृष्ण चतुर्दशीको शिवरात्रि-व्रत करनेसे मुक्ति मिलेगी।

शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम्।
आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥
(ईशानसंहिता)

जो लोग शिव-भक्तिसे प्रेरित होकर सच्चे पवित्र मनसे अनशनव्रतकर परतत्त्व शिवकी पूजा बिल्व-पत्र, दुग्ध, पुष्पादिसे करते हैं उन्हें भी अपनी भक्तिके अनुसार फल मिलता है; क्योंकि वास्तवमें महाशिवरात्रि-व्रतका उद्देश्य जीवात्माका परमात्माके साथ सहयोग ही है। अपनी-अपनी भक्तिके अनुसार समस्त भूमण्डलके भावुकजन वैज्ञानिक महाशिवरात्रि-व्रतका अनुष्ठान कर सकते हैं। भगवान् भूतनाथकी दयासे उन्हें सिद्धि अवश्य मिलेगी।

हमने जान-बूझकर यह लिखा है कि समस्त प्राणियोंके लिये महाशिवरात्रि-व्रत कल्याणकर है। अज्ञानवश एक व्याधने महाशिवरात्रि-व्रतका अनुष्ठान किया था, जिससे शिवके गणोंने उसके लिये भी एक विमान भेजकर उसे शिवलोकमें पहुँचा दिया। यमने भगवान् शिवके पास जाकर उस व्याधकी इन शब्दोंमें शिकायत की—

निषादो जीवघाती च सर्वधर्मबहिष्कृतः।
न धर्मोऽप्यर्जितस्तेन निर्गतं यमशासनम्॥
आदि।

भगवान् शिवने यमदेवको उस व्याधकी कहानी कह सुनायी कि कैसे उसने बिल्वपत्रद्वारा शिवलिङ्गकी उपासना की और कैसे अनशन-व्रतद्वारा ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने यमदेवको आध्यात्मिक घटनाओंका तारतम्य भी समझा दिया। अस्तु।

महाशिवरात्रि-व्रतके अधिकारी आचाण्डाल समस्त प्राणी हैं, इसमें दो मत नहीं हो सकते।

यद्यपि वैज्ञानिक महाशिवरात्रिद्वारा ही यथेष्ट लाभ होगा जैसा कि ऊपर कहा गया है, तथापि अनशनद्वारा भक्तिपूर्वक शिवकी बिल्वपत्र, पुष्प, चन्दन, दुग्ध, दधिद्वारा पूजासे बहुत बड़ा आध्यात्मिक लाभ और सांसारिक अभ्युदय प्रारम्भमें होगा।* हाँ, भक्ति खरी या अमायिक होनी चाहिये, बाजारू नहीं।

आज ईश्वरके नामपर जगह-जगह झगड़े हो रहे हैं। शैव-पदार्थोंकी अवहेलना है। यद्यपि अनेक व्रतों तथा साधनोंद्वारा शान्तिकी चेष्टा की जा रही है तथापि महाशिवरात्रि-व्रतद्वारा ही इस ओर विशेष सफलता मिल सकती है। इन शब्द-पुष्पोंको शिवके चरणोंपर सादर समर्पितकर विनीत लेखक आशा करता है कि इनसे भावुकजन समुचित लाभ उठाकर सच्चे महाशिवरात्रि-व्रतद्वारा अपना तथा जगत्का सच्चा कल्याण-सम्पादन करेंगे। 'ॐ शम्।'

शिव-महिमा

सैन चतुरंगिणी कहा है भूत प्रेतनकी सैन बहुरंग आगे, बजत मृदंग है।
भंग-चंग कोऊ, नंग कोऊ, पंग कोऊ और, लंग कोऊ करत अजीब करि ढंग है॥
नाचत बजावत औ गावत उमंग संग देखि-देखि दंग होत रंग भदरंग हैं।
भंगकी तरंगमें अनंग अरि बैठ्यो नंग, संगमें भवानी अंग-अंगनें भुजंग हैं॥

—अवन्तविहारी माथुर 'अवन्त'

* इस लेखके लिखनेमें लेखकको परमाराध्यपद श्रीश्रीभार्गवशिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्दजीके उपदेशोंसे सहायता मिली है, अतः लेखक उनका कृतज्ञ है।

शिवमें श्रद्धासे लाभ

(लेखिका—सौ० कमलाबाई किबे)

हिन्दूसमाजमें ऐसा कोई भी मनुष्य न होगा कि जिसे शिवका नाम या उसकी उपासना विदित न हो। महादेव मनुष्यका जीवनाधार है, सृष्टिका संहारक कैलासवासी शङ्कर भोले स्वभावका है, जो किसी भी सांसारिक झगड़ेमें नहीं पड़ता, जिसे हिमालयके सुनसान निर्जन गिरिशृङ्गोंपर निवास करना ही सुखद प्रतीत होता है। अतएव हृदयमें प्रश्न उत्पन्न होता है कि इसप्रकारका महादेव सृष्टिका संहारक कैसे हो सकता है? जो नैसर्गिक प्रेमी, सम्पत्तिका उपहास-कर्ता, भक्तोंके लिये उदार दाता, आदर्श दम्पती आदि गुणोंसे विभूषित भोला भण्डारी है, उसे प्रत्येक मनुष्य जानता है किन्तु उसका सबसे अधिक भयङ्कर रुद्र रूप है। यदि मनुष्य देवता-उपासक न भी हो, तथापि वह इस बातको भली प्रकार समझता है कि महादेव ही उसकी जीवन-ज्योति बुझानेवाली मुख्य शक्ति है! यह काम अन्य देवताका नहीं है।

क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि प्रकृतिका इतना प्यारा देवता मृत्युका कठोर कार्य करता है। कैलासवासी महादेवका निवास-स्थान अत्यन्त रमणीय, पूर्ण शान्तिमय, सांसारिक कोलाहलसे अलिप्त है। वे इस स्थानपर रात-दिन रामनामका जप किया करते हैं। इसप्रकारके वर्णनसे प्रतीत होता है कि महादेवका स्वभाव बालकोंके निर्मल हृदयकी सरलताके समान है, वे दाम्पत्य-जीवनके आदर्श हैं, सांसारिक झगड़ोंसे अलिप्त हैं। इसप्रकारकी अनेक बातोंपर विचार करनेसे महादेवकी मूर्ति प्रत्येक आर्य-हृदयमें उपर्युक्त भावनाओंको उत्पन्न करती है। आधुनिक पद्धतिसे संशोधन किया जाय या प्राचीन पद्धतिसे देखा जाय तो अनादि शङ्कर अगम्य ही प्रतीत होंगे। कई लोगोंका ऐसा भी विचार है कि संकटके समय या रुग्णावस्थामें शिवकी उपासनासे अनेक व्याधियाँ दूर हो जाती हैं, किन्तु इस बातके अनुभवके लिये अत्यन्त दृढ़ श्रद्धा और अचल व्रत-पालन करनेकी आवश्यकता है। अनुभवके बिना कोरा तर्क निरुपयोगी है। महाराष्ट्र, मद्रास और उत्तरीय भारतमें शिवके उपासक अनेक लोग हैं। महाराष्ट्र-प्रान्तमें अनेक स्त्री-पुरुष 'शिवलीलामृत' ग्रन्थको नित्य-नियमसे पढ़ते हैं। कोई द्रव्यकी आशासे, कोई रोगोंसे छुटकारा पानेको, कोई प्रेमवश ही, इसप्रकार भिन्न-भिन्न कारणोंसे लोग शिवकी उपासना करते हैं। 'शिवलीलामृत' ग्रन्थमें चौदह अध्याय हैं। अन्तिम अध्यायमें ग्रन्थकी फलश्रुति है। आश्चर्यकी बात तो यही है कि यदि वर्तमान समाजमें श्रद्धाका अभाव है तो वह समाज जीवनका आनन्द कैसे पाता है, यह एक विकट समस्या है। श्रद्धा-भावसे ही पत्थरके देव देवता बनते हैं। इसके विपरीत वर्तमान समयमें श्रद्धाके अभावमें देवताके समान मनुष्य पत्थरके समान बन जाते हैं। संसारके समस्त व्यवहार नियमबद्ध और किसी ध्येयको लेकर ही चला करते हैं। उसमें भी सभी बातोंके लिये मर्यादाका बन्धन रहता ही है। इसका ठीक-ठीक अर्थज्ञान न होनेसे अनेक लोग इस बन्धनसे बाहर निकलनेका प्रयत्न करते हैं। उनका ध्येय वही रहता है। समाजके नेतागण किसीको भी दोषी न समझकर अनुकूल क्षेत्र निर्माण करनेमें लगे रहते हैं। ध्येयहीन जीवन मुर्देके समान होता है। अतएव यदि हम मानसिक उन्नति और जीवनकी सफलता चाहते हैं तो हमें भक्ति-रसमें डूबना चाहिये। इसीके लिये अनेक पन्थ और अनेक देवताओंका निर्माण हुआ है, उद्देश्य यही है कि लोग उपासनाको बढ़ाकर समाजके अन्दर शान्तिप्रद वातावरण उत्पन्न करें। सांसारिक जीव इसी मार्गद्वारा सुखी होंगे। शिव-उपासनाके सम्बन्धमें मैं अपना एक अनुभव लिखती हूँ, जिससे पाठकगण निर्णय कर लेंगे कि यह विषय विचारणीय है या नहीं। २६ वर्ष पहलेकी बात है। मैं बचपनसे ही देवताओंकी कथा सुनकर प्रसन्न हुआ करती थी, उसमें मेरा मन खूब लगता था। इसका कारण मेरे दादाजी थे। वे मुझे नित्य-नियमसे रामायण और महाभारतकी कथा सुनाया करते थे और इसप्रकार मेरे मनमें धर्म और ईश्वरके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कराते थे। बचपनमें मुझे उनके इस कार्यसे कुछ भी प्रतीत न होता था और मैं समझती थी कि मेरे दादा कथा-कहानियोंके एक जीते-जागते ग्रन्थ ही हैं। मुझे उनके मुँहसे कहानियाँ सुननेका बड़ा शौक था। जब मेरे मनमें, लङ्का-दहनके समयका हनूमान्‌द्वारा रावणकी दाढ़ी जलानेका चित्र उपस्थित होता था, तब बालकोंके

स्वभावानुसार मुझे यह जिज्ञासा होती थी कि राम और रावण इस समय कहाँ होंगे ? क्या मैं उन्हें देख सकती हूँ ? मैं उस समय समझती थी कि मेरे दादाको संसारका पूरा ज्ञान है। मेरी पढ़ाईका प्रथम पाठ मुझे दादाने ही सिखाया था। यद्यपि मेरी बाल्यावस्थामें कोल्हापुरमें पुत्री-पाठशाला थी, किन्तु मेरे दादा पाठशालामें लड़कियोंको भेजना उचित नहीं समझते थे। अक्षरज्ञान होनेपर उन्होंने सबसे पहले मुझे 'शिवलीलामृत' पढ़नेको दिया। आठ वर्षकी अवस्थामें मैं मराठी भाषाकी सुन्दर-सुन्दर कविता-पुस्तकें पढ़ती थी। अन्य पुस्तकोंका मुझे उस समय ज़रा भी ज्ञान न था। जब मैं इस समय उन बातोंको स्मरण करती हूँ तो मनमें आश्चर्य, श्रद्धा और सात्त्विक भावोंका उदय होता है। मानसिक आनन्दमें मैं डूब जाती हूँ। मुझे बचपनमें भक्ति-रसका जो अमृत पिलाया गया था वह इस समय मेरे जीवनका मार्गदर्शक बन रहा है और साथ ही मुझे उपासनामें दृढ़ता रखना सिखाता है। जीवनमें समय-समयपर उत्साह और धैर्य देता है। जब मेरा विवाह हो गया तब मैंने देखा कि हमारे घरमें अग्निकी उपासना होती है। यद्यपि अन्य धार्मिक ग्रन्थोंको मैं पढ़ती रहती थी पर यहाँपर 'शिवलीलामृत' का स्वाध्याय कई वर्षोंतक बन्द रहा। इसका कारण यही था कि मेरा उस ओर दुर्लक्ष्य हो गया था। कभी-कभी विचार होता था कि इस ग्रन्थके स्वाध्यायको छोड़ देना ठीक नहीं है। किन्तु यह विचार क्षणिक होता था, फिर सब भूल जाती थी। जब मेरा पुत्र शरद छः वर्षका था तब उसे विषम ज्वरने इतना सताया कि किसी भी कुशल डाक्टरकी दवासे, हवा-पानीके परिवर्तनसे भी वह अच्छा न हुआ। मेरे मनमें विचार होता था कि अब इसकी यह बीमारी क्षयरोगमें परिवर्तित हो जायगी। उसे छः महीनेतक रोज शामको ज्वर हो आता था। डाक्टरी उपाय, वैद्यकीय उपचार आदि सभी किये गये, पर किसीका ठीक नतीजा न निकला। एक दिन मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं 'शिवोपासना' के द्वारा इस सङ्कटसे मुक्त हो सकती हूँ। मुझे वही व्रत लेना चाहिये। अन्तमें यही निश्चय किया कि इस ग्रन्थका स्वाध्याय प्रारम्भ कर देना चाहिये और यदि एक मासमें बालकका ज्वर उतर गया तो मैं इस व्रतको अपने जीवनमें अन्ततक पालन करूँगी। तदनुसार मैंने स्वाध्याय प्रारम्भ किया। आश्चर्यकी बात यह हुई कि बालकका ताप-मान कम होने लगा। मेरे बड़े लोग मुझे चिढ़ाने लगे कि यह तुम्हारे स्वाध्यायका प्रभाव है। मैं सुनकर केवल हँस देती थी, पर भीतरसे मन कहता था कि धर्मका बल होना ही चाहिये। व्यर्थ कुतर्क करना उचित नहीं है। इस समय उस बातको २५ वर्ष हो गये हैं पर मैंने अपने उस व्रतको अखण्डरूपसे निभानेका प्रयत्न किया है। मेरी दृढ़ भावना है कि मेरा वह सङ्कट भगवान् महादेवकी कृपासे ही दूर हुआ था। रुग्णावस्था, परदेश-गमन आदि ऐसे मौके आते हैं, जहाँ शुद्ध रहना असम्भव होता है। ऐसे मौकोंपर मैं ब्राह्मणको दक्षिणा देकर घरपर स्वाध्याय कराकर इस व्रतको चालू रखती हूँ। वर्तमान कालकी भावनाओंके अनुसार कुछ नवयुवक और युवतियाँ इस बातको जानकर मुझे पागल बतावेंगी, इस बातको मैं भली प्रकार जानती हूँ; किन्तु 'कल्याण-सम्पादक' ने जब मुझे अपने अनुभव लिखनेकी प्रेरणा की है, तब अन्य लोगोंके कल्याणके लिये मैंने ये बातें लिखी हैं। सभी बड़े-बड़े कार्योंकी नींव श्रद्धा है। श्रद्धापर कुतर्क करना आत्माका हनन करना है। श्रद्धापूर्वक आचरण करनेसे कुछ शास्त्रीय तत्त्व मिल सकता है। वह दिन बड़ा सुदिन समझा जायगा कि जिस दिन भगवान् श्रीमहादेव स्त्री-पुरुषोंके हृदयमें उपासनाका बल जाग्रत करेंगे। महाराष्ट्रदेशमें दत्त-सम्प्रदायी लोग 'गुरुचरित्र' का, वैष्णव लोग 'भागवत और गीता' का तथा शिवोपासक लोग 'शिवलीलामृत' का पाठ नित्य-नियमसे करते हैं। आधुनिक समयमें नूतन शिक्षाके प्रभावमें आकर नयी पीढ़ीके लोग इन सब बातोंको व्यर्थ समझते हैं, किन्तु याद रखना चाहिये कि धार्मिक बलके बिना कार्यनिष्ठामें प्रखर तेज कभी नहीं आवेगा।

'शिवलीलामृत' ग्रन्थका बड़ा महत्त्व है। उसके लेखक श्रीधरस्वामी थे। महाराष्ट्रमें श्रीधरस्वामीके ग्रन्थ प्रत्येक गाँवमें बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखे जाते हैं। जैसे हिन्दी-भाषाभाषी लोगोंमें तुलसीकृत रामायणका विशेष प्रचार है, उसी तरह महाराष्ट्रीय जनतामें 'शिवलीलामृत' का है। श्रीधरस्वामीकी भाषा सरल, मधुर और प्रसादगुणसे परिपूर्ण है। उनकी ओवियों (कविता) को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कहींसे अमृतका प्रवाह ही बह रहा है।

शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवः केवलोऽहम्

(लेखक—श्रीअनन्तशङ्करजी कोल्हटकर बी० ए०)

'बुद्धिवाद करते समय कोई चाहे आत्मवादी हो या अनात्मवादी, हर एक ऐच्छिक व्यवहारका मूल-कारण मैं हूँ,' यह अनुभव होता ही है। जैसे जीभसे एक बार चख लेनेपर चीनीके मिठासकी सिद्धिके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं रहती, वैसे ही हमारी अपनी हस्तीके सम्बन्धमें भी किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। वास्तवमें होती भी नहीं। किसी एकान्त स्थलमें, मनकी प्रशान्तावस्थामें, हमारा आत्मिक अनुभव क्या हुआ करता है ? 'मैं हूँ, मैं अमर हूँ, ज्ञानवान् और आनन्दस्वरूप हूँ।' बस, यही तो मानव-जीवनकी इति-कर्त्तव्यता है। इस अल्पकालीन तथा अस्पष्ट अनुभूतिको सर्वकालीन और सुस्पष्ट बनानेमें दत्तचित्त रहना ही हमारा परमकर्तव्य है। शरीरसे हम भले ही 'नियत-कर्म' करते रहें, पर हृदयमें हमें सदा यही अनुभव करना चाहिये—

'चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम् ।'

शिवागम

(लेखक—पं० श्रीसिद्धेश्वरजी शास्त्री)

सृष्टिकाले महेशानः पुरुषार्थप्रसिद्धये ।
विधत्ते विमलं ज्ञानं पञ्चस्रोतोपलक्षितम् ॥
(मृगेन्द्रागम)

सकल जगन्नियन्ता पर-शिवने सृष्टिके आरम्भमें सृष्टि-जीवोंके पर एवं अपर अर्थात् भोग-मोक्षरूपी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये 'ऊर्ध्व', 'प्रोद्गण' आदि पञ्च प्रवाहोंसे युक्त शास्त्ररूपी ज्ञानको उत्पन्न किया। यह ज्ञान पर-अपर-भेदसे दो प्रकारका है। 'स्वायम्भुवागम'में लिखा है—

अथानादिमलमायाख्यकर्मबन्धनिवृत्तये ।
व्यक्तये च शिवत्वस्य शिवाज्ज्ञानं प्रवर्तते ॥
तदेकमप्यनेकत्वात् शिववक्त्राम्बुजोद्भवम् ।
परापरविभेदेन गच्छत्यर्थप्रतिश्रयात् ॥

अर्थात् जीवके साथ लगे हुए आणवादि मलत्रयरूपी कर्म-बन्धकी निवृत्ति और शिवत्वाभिव्यक्तिकी सिद्धिके लिये पर-शिवसे ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है। वह एक ही ज्ञान, पर-शिवके सद्योजातादि पाँच मुखोंसे निकलनेके कारण अनेकत्वको प्राप्त होकर पर-अपर-भेदसे प्रवाहित होता है। 'कामिकागम'के तन्त्रावतार-पटलमें कहा है कि—

आदावभूद् द्विधा ज्ञानमधिकारिविभेदतः ।
परापरेण भेदेन पतिपश्वर्थदर्शकम् ॥
शिवप्रकाशकं ज्ञानं शिवज्ञानं परं स्मृतम् ।
वेदाद्यमपरं ज्ञानं पशुपाशार्थदर्शकम् ॥

'सृष्टिके आरम्भमें सर्वज्ञत्वादि 'गुणसम्पन्न पति और अल्पज्ञत्वादिसम्पन्न पशु, यह द्विपदार्थदर्शक ज्ञान अधिकारिभेदसे पर-अपर नामसे दो प्रकारका हुआ। जो ज्ञान पतिपदवाच्य पर-शिवस्वरूपका बोधक है वही पर (परा विद्या) है, जिसका कि कामिकादि-वातुलान्त शिवागमोंमें वर्णन है। और जो पशु-पाशादिका ज्ञान कराता है वह ऋगादि वेदोंमें वर्णित ज्ञान अपर (अपरा विद्या) है। इसप्रकार 'पर' और 'अपर'रूपी वेदागम एक ही कालमें पर-शिवके मुखसे निकले हैं। इन विद्याओंकी उत्पत्तिके विषयमें ईशानशिवगुरुजी अपनी 'पद्धति' में इसप्रकार प्रतिपादन करते हैं—

परैः शिवादिभिर्दिव्यैरागमैः पाशमोचकैः ।
विशिष्टभोगविभवशिवत्वफलदायिभिः ॥
अपरैरपि वेदाद्यैरागमैः स्वमुखोद्गतैः ।
स्वर्गादिफलसिद्ध्यर्थं पशुज्ञानप्रकाशकैः ॥
स शिवः स्वमुखोद्भूतैरागमैस्तु परापरैः ।
अनुगृह्णाति हि जगद्भोगमोक्षप्रसिद्धये ॥

जीवोंके कल्याणके निमित्त ही इन आगमोंका उपदेश हुआ है। 'पर' नामक यह शिवज्ञान—

शैवं पाशुपतं सोमं लाकुलञ्च चतुर्विधम् ।
तेषु शैवं परं सौम्यं रौद्रं पाशुपतादिकम् ॥
शैवं पुनश्चतुर्भेदं वामदक्षिणमेव च ।
मिश्रञ्चैव तु सिद्धान्तं तेषु सिद्धान्तमुत्तमम् ॥
अष्टाविंशतिभेदेन सिद्धान्तं शृणु तत्त्वतः ॥

—इस सुप्रभेदागम-क्रियापादके प्रश्नविधि-पटलके वचनानुसार शैव, पाशुपत, सोम और लाकुल नामसे चार प्रकारका है। इनमेंसे शैव बहुत ही सौम्य है, शेष पाशुपतादि रौद्र हैं। शैवमें भी वाम, दक्षिण, मिश्र और सिद्धान्त—ये चार भेद हैं, जिनमेंसे 'सिद्धान्त' ही सर्वश्रेष्ठ है। यह सिद्धान्त भी अट्ठाईस प्रकारका है—

नादरूपतया पूर्वं शिवेनाविष्कृतं पुनः।
सदाशिवादिरूपेण तेनैवासौ पृथक् पृथक्॥
कामिकादिप्रभेदेन शिष्येभ्यः सम्प्रकाशितः।
अष्टाविंशतिसंख्योऽसौ सिद्धान्त इति संज्ञितः॥

इस शिवागमोक्तिके अनुसार शिवजीने अपनेमें जो नित्यसिद्ध विमल ज्ञान था, उसे पहले नादरूपसे प्रकट किया और फिर उसी ज्ञानको सदाशिव होकर अपने सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान—इन पाँच मुखोंसे प्रणवादि दस शिव और अनादि इत्यादि अठारह रुद्र—इसप्रकार अट्ठाईस शिष्योंको कामिकादि अट्ठाईस आगमसंहिताओंका उपदेश दिया। इन्हीं आगमोंको 'सिद्धान्त' कहते हैं।

अब यह प्रश्न होता है कि सदाशिवने पञ्चमुखोंमेंसे किस-किस मुखसे किस-किस शिष्यको उपदेश दिया। सर्वप्रथम 'कामिकागम'के तन्त्रावतार-पटलमें वर्णित—

ईशानवक्त्रादूर्ध्वस्तात् ज्ञानं यत्कामिकादिकम्।
तदेव युगभेदेन सद्योजातादिमूर्तिभिः॥
दशाष्टादशभेदेन शिवरुद्रावतारकैः।
षट्षष्टिभिः क्रमेणैव कथितं तु शिवाज्ञया॥

—इत्यादि प्रमाणोंसे मालूम होता है कि शिवजीके ऊर्ध्वमें जो ईशानमुख है, उससे निकला हुआ कामिकादि शिवज्ञान युगभेदसे सद्योजातादिके अवताररूपी दस-दस जनोंके तीन दलोंको और अठारह-अठारहके दो दलोंको अर्थात् कुल मिलाकर ६६ व्यक्तियोंको प्राप्त हुआ। अब इन आगमोंकी उत्पत्तिका भी क्रम बतलाया जाता है कि किस-किस मुखसे कौन-कौन आगम निर्गत हुआ। उत्पत्ति इसप्रकार है—

सद्योजातमुखाज्जाताः पञ्चाद्याः कामिकादयः।
वामदेवमुखाज्जाता दीप्ताद्याः पञ्च संहिताः॥
अघोरवक्त्रादुद्भूताः पञ्चाथ विजयादयः।
पुंवक्त्रादथ सम्भूताः पञ्चाथो रौरवादयः॥
ईशानवदनाज्जाताः प्रोद्गीताद्यष्टसंहिताः॥

पर-शिवके सद्योजात मुखसे—कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण और अजित; वामदेव मुखसे—दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमत् और सुप्रबोध; अघोर मुखसे—विजय, निश्वास, स्वायम्भुव, अनल और वीर; तत्पुरुष मुखसे—रौरव, मुकुट, विमल, चन्द्रज्ञान और बिम्ब तथा ईशान मुखसे—प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, सर्वोत्तर, पारमेश्वर, किरण और वातुल—इसप्रकार ये अट्ठाईस आगम निर्गत हुए। इस सिद्धान्त-शास्त्रका उपदेश पहले शिवभट्टारकोंको मिला था। 'स्वायम्भुव'में कहा है—

सृष्ट्यनन्तरमेवेशः शिवान् स्मृत्वा दशात्मजान्।
ज्ञानमेकं विभज्यैव तेषां तत्संख्ययावदत्॥
प्रणवः स्याच्छिवज्ञानं मुक्तिमार्गप्रदर्शकम्।
एकमेव शिवज्ञानं विभिन्नं दशधा पुनः॥

सृष्टिके अनन्तर इच्छामात्रसे ही शिवजीने प्रणव, शुद्ध, दीप्त, कारण, सुशिव, ईश, सूक्ष्म, काल, गणेश और अंशु—इन दस शिवभट्टारकोंको उत्पन्न किया और इन्हें नादरूपी मुक्तिदायी शिवज्ञानका दस भागोंमें विभक्त करके बोध कराया। पुनः अपनी शक्तिसे अनादिरुद्र प्रभृति अठारह जनोंका सृजन कर उसी शिवज्ञानको अठारह प्रकार-से उन्हें दिया। द्रविड-देशके अमर्धक-मठाधीश सकलागम-ज्ञाननिधि श्रीत्रिलोचन शिवाचार्यजीने अपनी सुप्रसिद्ध 'सिद्धान्तसारावली' में भी इसी विषयका प्रतिपादन किया है। वह इसप्रकार है—

संकल्पाद्दश चात्मनः प्रथमतः सृष्ट्वा शिवान् केवलान्
तेषां मन्त्रपतिप्रबोधपरतो ज्ञानं तथा भव्य तत्।
साक्षादेव उपादिदेश च शिवः शैवास्तथा चागमाः
रुद्रांश्चाष्टदशावबोध्य कथितास्तैरागमाश्चापरे ॥

इसके अतिरिक्त सर्वात्मशम्भु शिवाचार्यजीने भी अपनी 'शैवसिद्धान्तप्रदीपिका' में इस विषयका वर्णन किया है। उसमें विशेष बात यह है कि एक-एक संहिताका परिमाण कोटिसंख्यक बताया गया है। परन्तु संख्याके विषयमें मतभेद है। नीचे लिखी तालिकासे यह भी पता लगेगा कि इन २८ आगमोंमेंसे किस-किसने किस-किसका अध्ययन किया।

आगम	अध्ययन करनेवाले
सद्योजातमुखीय	
कामिकागम	प्रणव, त्रिकल, हर
योगजागम	शुद्ध, बाहु, विभु

चिन्त्यागम	दीप्त, योग, अम्बिका
कारणागम	कारण, सर्वरुद्र, प्रजापति
अजितागम	सुशिव, शिव, अच्युत
वामदेवमुखीय	
दीप्तागम	ईश, त्रिमूर्ति, हुताशन
सूक्ष्मागम	सूक्ष्म, वैश्रवण, सुप्रभञ्ज
सहस्रागम	कालरुद्र, भीम, धर्म
अंशुमदागम	अंशु, उग्र, औरस
सुप्रबोधागम	गणेश, महासेन, शशी
अघोरमुखीय	
विजयागम	अनादि रुद्र, अनादि परमेश्वर
निःश्वासागम	उदय, गिरिजा
स्वायम्भुवागम	निधनेश, स्वयम्भू
अनलागम	व्योम, हुताशन
वीरागम	तेजस्वन्त, प्रजेश
तत्पुरुषमुखीय	
रौरवागम	सुब्रह्मण्य, नन्दीश्वर
मकुटागम	शशाख्य, महादेव
विमलागम	सर्वात्मक, वीरभद्र
चन्द्रज्ञानागम	अनन्त, बृहस्पति
बिम्बागम	प्रशान्त, दधीचि
ईशानमुखीय	
प्रोद्गीतागम	शूली, कच
ललितागम	यम, ललित
सिद्धागम	इन्द्र, चण्डीश
सन्तानागम	वशिष्ठ, शशपाय
सर्वोत्तरागम	सोम, नृसिंह
पारमेश्वरागम	देवी, बोधन
किरणागम	देवपिता, संवर्तक
वातुलागम	शिवरुद्र, महाकाल

इसप्रकार पहलेके दस आगमोंका तीन-तीन महापुरुषोंने और बादके अठारह आगमोंका दो-दोने अध्ययन किया। कुल २८ आगमों और ६६ अध्ययन करनेवालोंका हिसाब भी ठीक-ठीक बैठ जाता है। यही उपदेश 'महौघ-क्रम' और 'प्रतिसंहिताक्रम' से दो प्रकारका है।

परमेश्वरोपदिष्ट एक-एक संहिताको ही पहले प्रणवादि पुरुषोंने, उनसे त्रिकलादि महापुरुषोंने और तदनन्तर उनसे हरादि महापुरुषोंने श्रवण किया और इसप्रकार श्रोताओंकी अधिकताके कारण इनकी अनेकों शाखाएँ हो गयी हैं। इसीसे यह 'महौघक्रम' है।

सदाशिवने शुद्धाध्ववासी प्रणवादि दस शिवोंको और अनादिरुद्रादि अठारह रुद्रोंको नादरूपसे आविर्भूत ज्ञानका छन्दोबद्ध उपदेश और ज्ञान, ज्ञेय, अनुष्ठान, अनुष्ठेय, अधिकारी, साधन नामक षट्पदार्थोंके अनुसार एक-एक व्यक्तिको एक-एक संहिताका पृथक्-पृथक् उपदेश दिया। इसी कारण इसका नाम 'प्रतिसंहिताक्रम' है।

इन २८ आगमोंकी प्रत्येक संहिता उपागम नामकी विविध शाखाओंसे युक्त होकर २०८ प्रकारकी हो गयी। इन वैदिक शैव संहिताओंकी कुल ग्रन्थसंख्या, १ परार्ध १ शंख १ पद्म १ अर्बुद ११२ कोटि ८२ लाख ५३ हजार है। हम आशा करते हैं कि इन मोक्षसाधनीभूत संहिताओंके अध्ययन और मननसे मानवसमाज असली कल्याणको प्राप्त करेगा। इति शिवम्।

शंकरकी कृपा

जिनके दिगम्बर बिराजता है अद्वितीय, भूषित-विभूति-वर्ण सुन्दर कपूर-से।
बायीं ओर जिनके हैं गिरिजा बिराजमान, कालकूट पीते फल खाते जो धतूर-से॥
अंग अंग लिपटे भुजंग जटा-जूट-मध्य, गंगकी तरंगें लहरातीं अति दूरसे।
ऐसे शिवशंकर-कृपाकी एक कोर मुझे, कोटिगुना कीमती है कोटि 'कोहनूर' से॥

—भगवतीप्रसाद त्रिपाठी विशारद, एम० ए०, एल-एल० बी०

वेदोंमें भगवान् शिव

(लेखक—पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, आचार्य, एम० ए०)

भगवान् सदाशिवकी महिमा वेदोंमें स्थान-स्थानपर गायी गयी है। शिवका ही दूसरा नाम 'रुद्र' है। ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके तैंतीसवें सूक्तमें इनको समस्त संसारका अधिपति कहा गया है—'ईशानादस्य भुवनस्य भूरेः'। ये अपने कर-कमलोंमें धनुष तथा बाण धारण करते हैं—'अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्व।' इनके गलेमें नाना वर्णमय सुन्दर कण्ठा विराजमान है—'अर्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।' इनके ओष्ठ परम सुन्दर हैं, अतएव इनको 'सुशिप्र' कहा गया है। ये सदा ही अजर, अमर हैं; अतएव 'युवा' ('स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानम्') कहकर इनका स्तव किया जाता है। इनसे अधिक बलशाली और कोई नहीं है—'न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति।' वर्ण इनका गौर है तथा ये सुवर्णभूषणालङ्कृत हैं—'बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।' इनके अनेकों रूप हैं, सुन्दर भी और असुन्दर भी—'स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रः।'

रुद्रदेव वैद्योंके शिरोमणि हैं—'भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि।' ये अपने शीतल कर-कमलके स्पर्शसे गतजीवनको भी नवजीवन प्रदान करते हैं—'हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः,' 'उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिः।' प्राणिमात्रसे रुद्रदेव श्रेष्ठ हैं—'श्रेयो जातस्य रुद्र श्रियासि।' आपत्तिसे बचानेके लिये तथा दुरवस्थाके आक्रमणको रोकनेके लिये भगवान् रुद्रसे प्रार्थना की गयी है—'पर्षिणः पारमंहसः स्वस्ति, विश्वा अभीती रपसो युयोधि।' मरुद्गण इनके पुत्र हैं—'आते पितर्मरुतां सुम्नमेतु' तथा भक्तगण इनसे सन्तान-लाभकी कामना किया करते हैं—'प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः।'

उपर्युक्त वर्णन ऋग्वेदोक्त है। यजुर्वेदके अनुसार भगवान् शिवकी कुछ चर्चा नीचे की जाती है।

भगवान् शङ्करके दो भुजाएँ हैं—'बाहुभ्यामुत ते नमः,' 'सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः।' 'उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने।' इनका कमनीय कलेवर पापनाशक है—'या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी।' आप सर्वप्रथम चिकित्सक हैं—'प्रथमो दैव्यो भिषक्', तथा सर्प-दर्पको खर्व करनेवाले हैं—'अहींश्च सर्वान् जम्भयन्।' इनके सहस्रों रूप हैं, ताम्र, अरुण, बभ्रु आदि—'असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलो ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशः।' ये गुलाबी वर्णवाले तथा नीलकण्ठ हैं—'असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।' मस्तकपर इनके जटाजूट शोभित है, अतएव इनका नाम 'कपर्दी' पड़ा है।

आप रोगियोंके रोगोंको शान्त करनेवाले, क्षेत्रोंके अधिपति, वनोंके स्वामी तथा समस्त भुवनोंके ईश्वर हैं। अतएव आपके विषयमें 'व्याधिनेऽन्नानां पतये', 'क्षेत्राणां पतये', 'वनानां पतये', 'जगतां पतये' इन विशेषणोंका प्रयोग किया गया है। आप पर्वतको अपने निवाससे पवित्र कर रहे हैं—'नमो गिरिशयाय।' आप छोटे-से-छोटे हैं—'नमो ह्रस्वाय च वामनाय च', तथा बड़े-से-बड़े हैं—'नमो बृहते।' और आप ही सबसे पहले आविर्भूत हुए हैं—'नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च।' आपकी सत्ताकी अनुभूति सर्वत्र है, अतएव आपके 'गुह्य' 'व्रज्य', 'गह्वरेष्ठ', 'सरस्य', 'नादेय' आदि अनेकों नाम हैं। आप चर्माम्बर हैं—'कृत्तिं वसानः', तथा आपके धनुषका नाम पिनाक है—'पिनाकं बिभ्रदागहि।' ये देवाधिदेव सर्वथा भक्त-कल्याणकारी हैं, अतएव इनके 'शम्भव', 'मयोभव', 'शङ्कर', 'मयस्कर', 'शिव', 'शिवतर' आदि अनेकों नाम हैं।

जिन भगवान् शिवकी गुणावलीके गानमें वीतराग वेदपाठी भक्तवर सतत निरत रहते हैं, उन्हींके पतितपावन, सौम्य चरण-नलिन-युगलमें कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।

ॐ नमः शिवाय

वीरशैव-विज्ञान

(लेखक--पं० श्री सि० गुरुशान्तजी शास्त्री, आस्थानविद्वान्, मैसूर)

यत्र विश्राम्यतीशत्वं स्वाभाविकमनुत्तमम् । नमस्तस्मै महेशाय महादेवाय शूलिने ॥
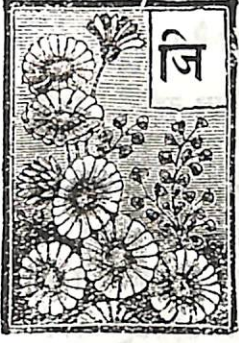
जिससे यह चराचरात्मक जगत् उत्पन्न हुआ, जिससे जीवित है और जिसमें लीन हो जायगा वही पर-शिव है, * तैत्तिरीयोपनिषद्के इस प्रमाणसे शिवजी ही सृष्टि-स्थिति-लयके स्थान हैं। ब्रह्मसूत्रका 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्र भी इसी अर्थका बोधक है। निखिल जीवात्मा इस परमेश्वरकी उपासनासे उद्धारको प्राप्त हो जावें'—इस सदिच्छासे ही कपिल, पतञ्जलि आदि महर्षियोंने सांख्य-वैशेषिकादि शास्त्रोंकी रचना की और इसी महत्त्वाकांक्षाको लेकर अन्यान्य अनेक मताचार्योंने भी श्रुति, उत्तर-मीमांसा, आगम और अपने अनुभवोंके आधारपर अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थोंकी रचना की है। ये सब शास्त्र मनुष्यको परमात्मा और जीवात्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान कराकर उसे दुःखोंसे मुक्त करनेवाले हैं, इसीलिये इन्हें मोक्षसाधक कहते हैं। इन शास्त्रोंसे शक्तिविशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तके संस्थापक श्रीजगद्गुरु पञ्चाचार्य हैं। इस सिद्धान्तको आचार्योंने शिवाद्वैत, द्वैताद्वैत, वीरशैव, विशेषाद्वैत आदि नामोंसे भी पुकारा है। इसमें 'अमृतस्य देवधारणो भूयासम्', 'पाणिमन्त्रं पवित्रम्' आदि अनन्त मन्त्रोंका प्रतिपादन लिङ्गधारणपरक होनेके कारण शरीरमें शिवलिङ्ग धारण करनेवाले ही इस शक्तिविशिष्टाद्वैतसिद्धान्तके अधिकारी हैं।

इस सिद्धान्तमें वेद और आगम ही श्रेष्ठप्रमाण हैं, साथ ही इनसे अविरुद्ध स्मृति, पुराण तथा इतिहास-ग्रन्थोंको भी प्रमाण माना गया है। कई सिद्धान्त ऐसे हैं जो सब श्रुतियोंका समन्वय न कर कुछ श्रुतियोंके अनुकूल हैं और कुछके प्रतिकूल हैं। परन्तु इस शक्तिविशिष्टाद्वैतसिद्धान्तमें समस्त श्रुतियोंका समन्वय हुआ है और इसमें मोक्ष-साधक उपासनादि उपाय भी सुलभतापूर्वक बतलाये गये हैं, अतएव यही सिद्धान्त हमारे पञ्चाचार्योंको मान्य है। जैसे सत्कुलमें उत्पन्न हुई अनेक सहोदरा कन्याएँ एक ही पतिसे ब्याही जानेपर परस्पर बड़े प्रेमसे रहती और मिलकर पतिदेवकी सेवा किया करती हैं, वैसे ही एक ही मूलस्रोतसे उद्भूत विभिन्न श्रुतिरूप कन्याएँ, एक दूसरेसे भिन्न मत न रखकर एक स्वरसे जगज्जन्मादिकारण, शक्तिविशिष्ट परमात्माको ही पति मानकर उसीकी सेवामें नित्य लगी हुई परस्परके प्रेम-बन्धनका दृश्य दिखलाती हैं।

सांख्यकार कपिल महर्षिका मत है कि 'स्थावर-जङ्गम-रूपी इस जगत्की उत्पत्ति रजः-सत्त्व-तमोमयी प्रकृतिसे हुई है, इससे भिन्न कोई जगत्कर्ता नहीं है और प्रकृति-पुरुषोंका विवेक ही मुक्ति है।' परन्तु यह मत श्रुतियोंके विरुद्ध पड़ता है, क्योंकि 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्', 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते', 'य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः' इत्यादि श्रुतियाँ एकस्वरसे कह रही हैं कि परमेश्वरने ही अपने शक्तिविलाससे जगत्की सृष्टि की है। इसके अतिरिक्त 'नीलग्रीवो विलोहितः', 'ऋतं च सत्यम्' आदि श्रुतियाँ भी ईश्वरकी गुणविभूति आदिका ही प्रतिपादन करती हैं। प्रकृति तो जड है, अतः चेतनकी सहायताके बिना वह अकेली सृष्टिकी रचना कभी नहीं कर सकती। इसी प्रकार 'भूयसां स्याद् बलीयस्त्वम्'—इस न्यायसे मन्वादि अनन्त स्मृतियाँ भी परमेश्वरका जगत्कर्तृत्व बतला रही हैं, इसलिये यह सांख्यमत तो वेदविरुद्ध ही ठहरता है।

योगशास्त्रके प्रणेता—पतञ्जलि भी सांख्योंकी ही भाँति जगत्का कारण प्रधानको ही मानते हैं, अतएव उनके योगमें यम-नियमादि अष्टाङ्गका वर्णन वेदानुकूल होनेपर भी सिद्धान्ततः वेदविरुद्ध ही है।

न्याय-वैशेषिक-मतानुयायी कहते हैं कि जगत्का कारण परमाणु है, ईश्वर तो निमित्तमात्र है और इस निमित्तमात्र ईश्वरको भी वे अनुमानसे ही सिद्ध करते हैं, शब्दप्रमाणसे नहीं। इसप्रकार परमाणुको ही जगत्का कारण मान लेनेपर इस मतपर भी वही दोष आरोपित होता है जो सांख्यपर

---

* यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। (तैत्तिरीयोपनिषद्)

लागू होता है। वैदिक मतावलम्बी तो ईश्वरको शब्दप्रमाणसे ही सिद्ध करेंगे और वेदमें ईश्वरको ही जगत्का उपादान-कारण बतलाया गया है। अतः यह न्याय-वैशेषिक-मत भी वैदिक नहीं माना जा सकता।

इसी प्रकार मीमांसा-मत भी श्रुत्युक्त सृष्टि, स्थिति, संहार एवं तिरोधानको और सर्वज्ञत्वादि असाधारण धर्मोंको ईश्वरके अन्दर न माननेके कारण सर्वथा वेदानुकूल कैसे कहा जा सकता है?

वैयाकरणोंका यह मत है कि 'स्फोट' नामक शब्द-ब्रह्म ही जगत्का कारण है; परन्तु इस मतमें भी 'जडरूपी स्फोट-ब्रह्ममें जगदुत्पत्तिकी शक्ति कैसे हो सकती है' यह अनुपपत्ति होनेके कारण यह भी अवैदिक ही ठहरता है।

इसप्रकार सांख्य, योग, न्याय-वैशेषिक, व्याकरण, मीमांसादि मत अन्यान्य अंशोंमें वेदानुकूल होनेपर भी ईश्वर-कर्तृत्वके विषयमें वेदविरुद्ध हैं और इसीलिये 'स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात्', 'इतरेषां चानुपलब्धेः', 'एतेन योगः प्रत्युक्तः' इत्यादि ब्रह्मसूत्रोंमें उन मतोंपर श्रुति-विरोधका दोष आरोपित किया गया है।

इधर द्वैतादि मत वैदिक सिद्धान्तके अनुसार परमेश्वरको जगत्का कर्ता तो मानते हैं; परन्तु वे 'द्वा सुपर्णा' आदि श्रुतिवचनोंका सहारा लेकर जीव और ब्रह्मका आत्यन्तिक भेद स्वीकार कर लेते हैं, 'स आत्मा, तत्त्वमसि' आदि अभेद-प्रतिपादक श्रुतियोंका समन्वय नहीं करते।

इसके विपरीत अद्वैत-मतमें 'नेह नानास्ति किञ्चन' आदि अभेद-प्रतिपादक श्रुतियोंका ही सम्मान है। वहाँ भेद-प्रतिपादक श्रुतियाँ व्यर्थ समझी जाती हैं। इस मतमें ब्रह्मसे भिन्न जो कुछ है वह सब मिथ्या और अविद्या-कल्पित है, इसप्रकार इसके अनुसार ब्रह्मसे भिन्न श्रुतियोंकी अप्रतिष्ठा हो जाती है। परन्तु हमारे इस शक्तिविशिष्टाद्वैतमें भेद-प्रतिपादक एवं अभेद-प्रतिपादक उभयविध श्रुतियोंमेंसे किसी एककी भी व्यर्थता नहीं है। यहाँ आचार्यलोग सारी श्रुतियोंका समन्वय करके उनकी सर्वमान्यता और एक-वाक्यता प्रदर्शित करते हैं।

'शक्तिविशिष्टाद्वैत' मतमें जो 'शक्ति' है उसमें 'सूक्ष्म-चिदचिद्विशिष्ट शक्ति' और 'स्थूलचिदचिद्विशिष्ट शक्ति' ये दो भेद हैं। इनमेंसे पहली शक्तिसे 'पर-शिव' का ग्रहण है और दूसरीसे जीवका। 'शक्तिविशिष्टाद्वैत' पदके विग्रहसे शक्तिविशिष्ट परमात्मा और जीवात्माओंके ऐक्यका ही बोध होता है। परमात्मासे भिन्न शक्ति या शक्तिसे भिन्न परमात्मा नहीं हैं। दृग्गोचरीभूत यह चराचरात्मक जगत् परमात्माका शक्तिरूप ही है। इस शक्तिसे सम्पन्न ही परमात्मा हैं। अग्नि और तद्गत दाहजनक शक्तियोंकी भाँति शक्ति और परमात्माका सर्वथा अभेद ही है।

धर्मरूप शक्ति धर्मीरूप पर-शिवसे भिन्न नहीं है। शक्ति-तत्त्वसे लेकर पृथिवी-तत्त्वपर्यन्त यह सारा संसार शिव-तत्त्वसे ही उत्पन्न हुआ है और इसलिये पर-शिव उसका कारण है और जगत् कार्य है। मृत्तिका कारण और घट कार्य होनेपर भी मृत्तिका घटसे अलग न होकर जैसे घट-भरमें व्याप्त है वैसे ही कारणरूपी पर-शिव जगद्रूप कार्यमें व्याप्त ही है। इससे यह सिद्ध है कि जगत्का उपादान-कारण परमेश्वर ही है। पूर्ववर्ती अवस्थावाली वस्तु जैसे आगेकी स्थूल वस्तुका उपादान-कारण होती है, अर्थात् जैसे घटत्वावस्थाविशिष्ट घट-पदार्थका उपादान-कारण कपाल-त्वावस्थाविशिष्ट कपाल-पदार्थ होता है वैसे ही सूक्ष्मावस्था-विशिष्ट ब्रह्म स्थूलावस्थाविशिष्ट जगद्रूप ब्रह्मका उपादान-कारण है। इसीलिये पर-शिवको कारण-ब्रह्म और जगत्को कार्य-ब्रह्म कहते हैं।

शक्तयोऽस्य जगत् कृत्स्नं शक्तिमांस्तु महेश्वरः।
शक्तिस्तु शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न गच्छति॥
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहकयोरिव।
शक्तिशक्तिमतोर्यस्मादभेदः सर्वदा स्थितः॥
अतस्तद्धर्मधर्मित्वात् परा शक्तिः परात्मनः।
न वह्नेर्दाहिका शक्तिर्व्यतिरिक्ता विभाव्यते॥
शक्त्यादि च पृथिव्यन्तं शिवतत्त्वसमुद्भवम्।
तेनैकेन तु तद् व्याप्तं मृदा कुम्भादिकं यथा॥
तथास्य विविधा शक्तिः प्रबोधानन्दरूपिणी।
एकानेकस्वरूपेण भाति भानोरिव प्रभा॥

—इत्यादि अनेक वचनोंसे उपर्युक्त विषय सिद्ध ही है।

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि 'जब परमेश्वर जगत्-का उपादान-कारण है तो उसके सर्वज्ञत्वादि गुण जीवमें भी होने चाहिये; परन्तु ऐसा नहीं है। पर-शिव तो सर्वज्ञ, नित्यतृप्त, परिपूर्ण, सुखमय और सकलैश्वर्यसम्पन्न है और जीवात्मा अल्पज्ञ, क्षणिकतृप्त, अपूर्ण, दुखी और

अपूर्णकाम है । जड जगत्का तो कहना ही क्या है, वह तो ईश्वरसे सर्वथा विलक्षण है। इस विरोधका समन्वय कैसे किया जाय?' इसका उत्तर यह है कि साधारणतया कार्य-कारणमें विरोधका आभास होता है, किन्तु विचार करनेपर कुछ भी विरोध नहीं रह जाता। श्रुति स्वयं कहती है—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि
तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥
(मुण्डकोपनिषद्)

'जैसे मकड़ी अपनी इच्छासे स्वयं जालको तैयार करके उसमें फँसकर छटपटाती है और पुनः स्वयं उसे अपने ही अन्दर समेट लेती है, जैसे पृथिवीमें लता-वृक्ष उत्पन्न होते हैं, जैसे चेतन पुरुषसे अचेतन केश और रोम पैदा होते हैं, जैसे जड-पदार्थ गोमयमें चेतन बिच्छू आदि कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं, वैसे ही परिपूर्ण और शक्तिविशिष्ट पर-शिवसे जड और अजडरूपी इस जगत्की उत्पत्ति होती है।' 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः' परमेश्वरकी इच्छा-शक्तिसे संसारकी उत्पत्ति होनेमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। यदि कहा जाय कि 'किसी भी कार्यको करनेके लिये तदपेक्षित सामग्रीकी आवश्यकता होती है; परन्तु पर-शिवमें वह आवश्यक सामग्री कहाँ है, जिससे इस अद्भुत जगत्की रचना होती है,' तो इसका उत्तर यह है कि जीवकी भाँति परमेश्वरको स्थूल सामग्रीकी आवश्यकता नहीं है। कहा भी है—

चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्॥

अर्थात् जैसे 'योग-शक्तियुक्त सिद्ध पुरुष अपनी इच्छा-मात्रसे बिना कारण-सामग्रीके ही मनमानी वस्तुओंकी रचना कर लेते हैं वैसे ही परमेश्वर भी इच्छामात्रसे ही अपने अन्दर स्थित सूक्ष्म शक्तिको प्रकट करके जडाजडात्मक जगत्की सृष्टि करता है।' इसलिये ईश्वरके लिये ऐसी शङ्का उठाना युक्तिसङ्गत नहीं।

जैसे अग्निसे निकले हुए कणोंमें दाहिका शक्ति रहती है वैसे ही परमेश्वरके अंश जीवमें भी साधारणतया सर्वज्ञत्वादि धर्म हो सकते हैं; परन्तु 'मलावृतः संसारी'—इस वचनके अनुसार उसके मलसे आवृत रहनेके कारण उसके अन्दर शिवधर्म कुण्ठित रहता है और अल्पज्ञत्वादि अल्पधर्म ही दिखलायी पड़ते हैं। कारण, जैसे किसी अपराध-में दण्ड पाया हुआ कैदी कैदखानेमें पड़ा सड़ा करता है वैसे ही घोर भवपाशसे जकड़ा हुआ मनुष्य भी नाना प्रकार-के कष्टोंको भोगा करता है। जबतक मलकी निवृत्ति नहीं होगी तबतक जीवात्मा बार-बार संसार-सागरमें पड़कर यातनाएँ भोगता ही रहेगा।

वीरशैव-सिद्धान्तमें बतलाया गया है कि आणव, माया और कार्मिक—इन तीन मलोंसे आत्मा आवृत है और परमेश्वरकी इच्छा, ज्ञान, क्रिया नामक क्रियाएँ ही संकोच-भावसे त्रिविध मलरूप हो गयी हैं। इन्हीं त्रिमलोंसे आवृत आत्मा अपने विभुत्वको खोकर 'पशु' कहलाता है। इन मलोंका नाश न हो जानेतक आत्माको स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। अतः मलनिवृत्तिपूर्वक अपनी पूर्वस्थितिकी प्राप्तिके लिये ही जीवको 'स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'—इस श्रुतिके आज्ञानुसार समित्पाणि होकर श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुकी शरणमें जाना चाहिये।

तनुत्रयगतानादिमलत्रयमसौ गुरुः।
दीक्षात्रयेण निर्दह्य लिङ्गत्रयमुपादिशत्॥
(सिद्धान्तशिखामणि)

श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्य भगवत्पादकी इस आज्ञाको मानकर त्रिविध दीक्षासे मलत्रयको नष्ट करके भक्त्यादि षडङ्गोंके अभ्याससे परिपक्वान्तःकरण होकर 'न स पुन-रावर्तते' के अनुसार जीवात्मा अपने सर्वज्ञत्वादि पूर्वधर्मोंको पा जाता है। तब वह 'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रं गच्छन्ति' के अनुसार स्थूल आकारको त्यागकर शिवस्वरूप हो जाता है। यही नित्य-सुख है। इसी उद्देश्यसे इस वीरशैव-विज्ञान (शक्तिविशिष्टाद्वैत) का उपदेश देकर श्रीरेणुकादि पञ्चा-चार्योंने मानव-समाजका अभूतपूर्व कल्याण किया है।

जगद्गुरु-तत्त्व

(लेखक—भा० ध० म० के एक साधु)

स त्-चित् और आनन्दके एकाधारमें अद्वैतानुभव ही स्वस्वरूपका अनुभव है । यह सृष्टिसे अतीत जो स्वस्वरूपका अनुभव है वह परम मन्त्रमय है, वही महादेव सदाशिवका परममंगलमय शिवरूप है, वही निर्गुण ब्रह्मपद है । तीनों गुणोंसे अतीत, अद्वैतरूपमें सृष्टिसे भी परे, परममङ्गलके आधारभूत शिवका यही निर्गुण स्वानुभव है । इसके अतिरिक्त सदाशिवरूपी महादेवी-आलिंगित महादेवका जो स्वरूप है वही सगुण ब्रह्मका स्वरूप है । उसी रूपको ईश्वर कहते हैं तथा उसी रूपकी वैष्णवगण महाविष्णु, सौरगण सूर्यदेव, शाक्तगण महादेवी, गाणपत्यगण गणपति और शैवगण महादेव नामसे अपने-अपने ढङ्गपर उपासना करते हैं । सगुणरूपमें गुणमयी ब्रह्मशक्ति ब्रह्मरूपसे अलग होकर, महादेवके साथ आलिङ्गित रहकर जगत्-प्रपञ्चकी सृष्टि, स्थिति और लय करती है । महादेवी ब्रह्ममयी प्रकृति ही निर्गुण ब्रह्मको सगुण बनानेका कारण होती है । सगुण पञ्चोपासनासम्बन्धीय विष्णुभागवत, देवीभागवत, शिवपुराण आदि पञ्चोपासनाके अलग-अलग पुराणोंमें निर्गुण ब्रह्मसे सगुण ब्रह्मके स्वानुभवका जो रहस्य है वह रूपान्तरसे इसी विचारको पुष्ट करता है । केवल शिवोपासनासम्बन्धी पुराणोंमें महादेव और महादेवीके संयोग और वियोग, विहार और लीला, जन्म और विवाह आदि मधुर चरित्रोंका वर्णन सबसे अधिक पाया जाता है । इसका कारण यह है कि शिवचरित्रमें जड और चेतन इन दोनों राज्यों और प्रकृति और पुरुषसम्बन्धी दोनों वैभवोंका विस्तार बहुत पाया जाता है । एक ओर सदाशिव ज्ञान-प्रदाता होनेसे देवताओंके ही महादेव नहीं हैं, वे ऋषियोंके भी अधिनायक हैं । दूसरी ओर भगवान् ब्रह्मा केवल निगमके प्रकाशक हैं, रचयिता नहीं; क्योंकि वेद अपौरुषेय हैं । परन्तु भगवान् शिव आगमके प्रणेता हैं और निगमके स्मारक महर्षियोंके नेता हैं । इस कारण उन्हें 'मुक्तिदाता' कहनेमें सुगमता होती है । योगशास्त्रके तो भगवान् शिव आदिगुरु हैं । क्योंकि शिव-शक्तिका योग ही यथार्थ योग है । मन्त्रयोगमें बहिःप्रकृति तथा अन्तःप्रकृति नाम और रूपके योगसे समाधिरूपी शिवत्वकी प्राप्ति होती है । हठयोगमें प्राणरूपी शिव और सूक्ष्मशरीरावच्छिन्न प्रकृतिके योगसे समाधिरूपी शिवस्वरूपकी प्राप्ति होती है । लययोगमें कुलकुण्डलीरूपी शक्तिके जाग्रत होकर सहस्रकमलमें स्थित सदाशिवके साथ आलिङ्गित होनेपर लययोग-समाधिका उदय होकर शिवत्वकी प्राप्ति होती है । ज्ञानमय राजयोग तो स्वयं ही शिवस्वरूप है और उसका फल साक्षात् शिवत्वकी प्राप्ति है । इस कारण यह मानना पड़ेगा कि परमयोगिराज शिव ही योगके प्रकाशक एवं प्रधान योगाचार्य हैं । विश्वजननी महामाया पार्वतीरूपसे उनकी सदा सेवा करती हैं, प्रकृतिके यावत् ऐश्वर्योंका आकर नगराज हिमालय पार्वतीदेवीका पित्रालय हो सकता है, इसमें सन्देह ही क्या है? ऐसी महादेवी शिवा जिनकी अर्द्धाङ्गिनी हैं, वही 'सदाशिव' कहला सकते हैं । हिमालय-दुहिता त्रिगुणमयी प्रकृति जिनको सदा आलिङ्गित किये रहती हैं उनका स्वरूप ही ब्रह्मका सगुण ध्यानगम्य स्वरूप हो सकता है, इसमें भी क्या सन्देह हो सकता है? महामाया महादेवी भक्तको विद्यारूपिणी होकर अपनी गोदमें लेती हुई ब्रह्ममें लय हो जाती हैं, ऐसी महामायासे युक्त 'सदाशिव' ही मुक्तिदाता हो सकते हैं और वही यथार्थमें 'जगद्गुरु' कहा सकते हैं । यही कारण है कि शक्तिसहित शिवके रूपमें ही गुरुका ध्यान करनेकी आज्ञा तन्त्रोंमें पायी जाती है । यही परमात्माके निर्गुणसे सगुण हो जानेका मधुर रहस्य है और शिवजीकी लिङ्गपूजा वास्तवमें श्रीभगवान्के विराट्स्वरूपकी पूजा है, इस बातको लिङ्गपुराण और शम्भुगीता आदि शास्त्र हाथ उठाकर जगत्में उद्घोषित कर रहे हैं । इसप्रकार जो तत्त्वज्ञानी त्रिभावतत्त्वयुक्त ब्रह्म, ईश और विराट्का स्वानुभव प्राप्त कर सकते हैं, जो सगुण और निर्गुण ब्रह्मका रहस्य समझ सकते हैं, जो त्रिमूर्ति-तत्त्वकी उपासना करनेमें समर्थ होते हैं और जो सगुण पञ्चोपासनाकी उदारता और सगुण ब्रह्मके अवताररूपी लीलाविग्रहकी मधुर लीलाका यथार्थरूपसे आस्वादन कर सकते हैं, वे ही जगद्गुरुके साथ तादात्म्यभावसे युक्त होकर गुरुपदवाच्य होते हैं ।
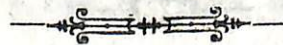
शङ्कर-भक्ति

(लेखक—पं० श्रीकालूरामजी शास्त्री)

यमेकमेव श्रयतो न जायते
स्पृहाऽपरस्मै महतेऽपि नाकिने ।
नमः समस्तापदुपेतपालन-
व्रताय तस्मै विभवे पिनाकिने ॥
त्वत्तो जगद्भवति देव! भव! स्मरारे!
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड! विश्वनाथ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश!
लिङ्गात्मकं हर! चराचरविश्वरूपिन् ॥

रे मन क्यों भटकत फिरत कर वा भवको ध्यान।
जाने भव-भय-हरन-हित कियो हलाहल पान ॥

भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥

(माण्डूक्य०)

'भूत और वर्तमान तथा भविष्यमें जो कुछ भी है वह सब ब्रह्म है, जो इस त्रिकालसे अतीत है वह भी ब्रह्म है।'

भाव यह है कि त्रिकाल तथा त्रिकालसे बाहर जो होनेवाले पदार्थ हैं वे सब ब्रह्म हैं। इस श्रुतिको लेकर संसाररूप ब्रह्म, जीवरूप ब्रह्म एवं मायारहित परमात्मा आदि ब्रह्मके अनेक रूप हो जाते हैं। परमात्मा भी अपनी माया-का अवलम्बन कर अनेक रूप धारण करता है। उन सब रूपोंमें विष्णु तथा शङ्कर जीवोंके भव-बन्ध तोड़नेका काम करते हैं। न तो विष्णुसे शङ्कर कम और न शङ्करसे विष्णु ही कम हैं, तो भी शङ्करको शास्त्रोंमें 'आशुतोष' कहा गया है। जितने शीघ्र शङ्कर प्रसन्न होते हैं इतना शीघ्र परमात्माका अन्य रूप प्रसन्न नहीं होता। इसी कारणसे यजुर्वेद—अध्याय १६ और अथर्ववेद—काण्ड ११ आदि वेदके अनेक स्थलोंमें शङ्करकी अगाध महिमाका वर्णन किया गया है। डमरू बजाकर नाचते हुए आपने सनकादिको ब्रह्मज्ञान प्रदान कर दिया और देव-दानवोंको जलते देखकर आप हलाहल विष पी गये।

इसी कृपालुताको ध्यानमें रखते हुए परमवैष्णव रामके अनन्य भक्त, हिन्दी-साहित्यके सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं कि—

जरत सकल सुरबृन्द, बिषम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मतिमन्द, को कृपालु शंकर सरिस॥

शङ्कर

भगवान् शिव अपने भक्तोंको इस लोकमें सुख देते हैं और मृत्युके बाद सुखके भण्डार मोक्षको दे देते हैं, इसीसे भगवान् शिवका नाम 'शङ्कर' है। ये सदा ही कल्याण करते रहते हैं, इसी कारण नित्य पूजन-विधिमें तथा विशेष आपत्ति आनेपर मनुष्य शङ्करकी शरणमें जाते हैं। शङ्करके नित्य-पूजनमें अनेक ग्रन्थोंके सैकड़ों प्रमाण पाये जाते हैं, उनमेंसे हम केवल एक प्रमाण श्रोताओंके आगे रखते हैं।

जिस समय भरत भगवान् रामचन्द्रजीको अयोध्या वापिस लिवा लानेके उद्योगमें चित्रकूट पहुँचे, प्रातःकाल होते ही समस्त अयोध्यावासी स्नान करके नित्य-कर्म करने लगे। यहाँपर गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं कि—

करि मज्जन पूजहिं नर नारी। गणपति गौरि पुरारि तमारी॥

आपत्ति आनेपर गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं कि—

देखहिं रात भयानक सपना। जागि करहिं बहु कोटि कलपना॥
बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना। शिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥
माँगहिं हृदय महेश मनाई। कुशल मातु पितु परिजन भाई॥

यह उस समयकी कथा है जब भरत-शत्रुघ्न अपने मामाके यहाँ थे और अयोध्यामें भगवान् राम वनको चले गये एवं राजा दशरथकी मृत्यु हो गयी। उस समय भरत-शत्रुघ्नको बुरे-बुरे स्वप्न आने लगे, तब उन्होंने शिव-अभिषेक और ब्राह्मण-भोजनका अनुष्ठान किया।

मोक्ष

काहेको बिसारे मूढ़ डोलत महेश-पद,
परम पवित्र क्षोभ लोभके हरैया हैं।
मायाकी मरोरनिके मोह-झकझोरनिके,
कामकी करोरनिके पलमें बरैया हैं॥
आठौ जाम रक्षण करैया साधु-सन्तनके,
संकट-कटैया उर धीरके धरैया हैं।

धर्मके बढ़ैया शुद्ध बुद्धि उपजैया निज-
रूप दरसैया भव-सिन्धुके तरैया हैं ॥

ऊपरके पद्यमें कहा है कि भगवान् शङ्कर इस जीवको संसाररूपी सागरसे पार कर देते हैं। कई एक श्रोता यह कह बैठेंगे कि 'हम इस पद्यको प्रमाण नहीं मानते। भगवान् शङ्कर मोक्ष देते हैं—इस विषयमें कोई अन्य प्रमाण दीजिये।' ऐसे लोगोंके सन्तोषके लिये हम शिवपुराणमें वर्णित एक ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख करेंगे।

किसी ब्राह्मणके ऋषिका नामकी एक कन्या थी, उसके पिताने किसी ब्राह्मणके लड़केके साथ उसका ब्याह कर दिया। वह कन्या चारुचरित्रा होनेपर भी पूर्वजन्मके पापोंसे बालकपनमें ही विधवा हो गयी। वह शङ्करकी भक्त थी, एक समय जब वह जङ्गलमें शङ्करका तप कर रही थी, एक मूढ़ नामका दैत्य उसके पास पहुँचकर कुछ कामोद्दीपक बातें कहने लगा। उसकी दूषित वार्ताको सुनकर कन्याने उस दैत्यका तिरस्कार किया। दैत्य इस तिरस्कारको सह न सका। वह अपने असली रूपमें आ गया और भयङ्कर रूप धारणकर विकट क्रोध करने लगा। इसके बाद उस दैत्यने भय उपजानेवाले कुवाक्य कहे और उस लड़कीको त्रास देनेको उद्यत हो गया। भयविह्वला उस ब्राह्मण-कन्याने अनेक बार 'शिव-शिव' कहकर भूतनाथका स्मरण किया और उन्हींकी शरण ली। शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् चन्द्रशेखर अपने भक्तको सङ्कटमें देख तत्काल वहीं प्रकट हो गये और मूढ़ नामक उस दैत्येन्द्रको अपने कोपानलके द्वारा भस्म कर दिया। वे कन्यासे कहने लगे—मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो। पहले उस कन्याने पृथिवीपर गिरकर शङ्करकी स्तुति की और फिर प्रार्थना की कि भगवन्! मुझे अपने चरणोंकी अनपायिनी भक्ति दें। शङ्कर 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये और उसने शेष जीवन शङ्करजीकी सेवामें व्यतीतकर अन्तमें मोक्ष-पदकी प्राप्ति की।

कुछ लोग सब बातोंमें वेदका ही प्रमाण चाहा करते हैं, इसलिये यहाँ हम वेदके प्रमाण देते हैं—

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः॥
नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः॥
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः॥

(अथर्व० का० ११ अ० ५ सू० १५, १६)

'हे पशुपते! तेरे मुखको प्रणाम है और तेरे नेत्रोंको भी प्रणाम है। तेरी त्वचा एवं देखनेयोग्य जो तेरा रूप है उसको प्रणाम है। पश्चिम दिशाके अधिपति तुझको प्रणाम। आते हुए तुझको प्रणाम और जाते हुएको भी प्रणाम। हे रुद्र! खड़े हुए तुझको प्रणाम तथा बैठेको भी प्रणाम। सायङ्काल प्रणाम, प्रातःकाल प्रणाम, रात्रिको प्रणाम, दिनमें प्रणाम, भवरूप तथा शर्वरूप जो तू है—उसे मैं प्रणाम करता हूँ।'

वेद-मन्त्र संसारमें नित्य और नैमित्तिक कर्मोंमें शङ्करके पूजनकी विधिका उपदेश करते हैं। शिव अति शीघ्र सुखपूर्वक मोक्ष देते हैं, इस विषयमें वेदका उपदेश यह है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

(यजु० ३। ६०)

'तीन नेत्रवाले, सुगन्धयुक्त एवं पुष्टिके वर्द्धक शङ्करका हम पूजन करते हैं; वे शङ्कर हमको दुःखोंसे ऐसे छुड़ावें जैसे खरबूजा पककर बेलसे अपने-आप टूट जाता है, किन्तु वे शङ्कर हमें मोक्षसे न छुड़ावें।'

भक्ति

यदि किसीको भक्तिका उत्कर्ष देखना हो तो वह उत्कर्ष शङ्करकी भक्ति और विष्णुकी भक्तिमें ही मिलेगा—अन्यत्र नहीं मिल सकता। संसारको भक्तिमार्गपर लाने, जीवोंका संसार-बन्धन तोड़ने, एक-दूसरेको परमात्मा सिद्ध करनेके लिये शङ्कर विष्णुकी और विष्णु शङ्करकी भक्ति करते हैं। केदारखण्डमें शङ्करकी भक्तिका चित्र इसप्रकार खींचा गया है—

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्।
जल्पञ्जल्पन् प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी॥

'भूतभावन भगवान् विश्वनाथ काशीकी गलियोंमें कहते फिरते हैं कि तुमलोग अपने कानोंद्वारा सब जगह अभिरमण करनेवाले भगवान् रामके नामका पान करो और

अपने मनमें सर्वदा निरन्तर तारक ब्रह्म राम-नामका ध्यान करो। जिस समय प्राणीका स्वास्थ्य बिगड़कर विकृत हो जाता है और जब वह इस नश्वर संसारको छोड़नेको तैयार हो जाता है तब भगवान् शङ्कर उस प्राणीके कर्णमूलमें मोक्षदायक तारक मन्त्रका उपदेश करते हैं। भगवान् शङ्कर किसी एक नियत स्थानमें बैठकर यह काम नहीं करते, किन्तु वे काशीमें गली-गली घूमकर मनुष्योंको राम-नामका स्मरण कराते हुए मोक्षमार्गमें भेजनेका उद्योग निरन्तर करते रहते हैं।'

विष्णुके परमभक्त शङ्करके भक्त्यनुष्ठानका वृत्तान्त आप सुन चुके। अब शिवके अनन्य भक्त विष्णुकी प्रेमोत्कण्ठाके चरित्रको सुनें। चित्रकूट जाते हुए विष्णुके अवतार भगवान् श्रीरामके विषयमें गो० तुलसीदासजी लिखते हैं—

तब मज्जन करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा॥

भगवान् श्रीरामके द्वारा रामेश्वरलिङ्गकी स्थापनाका समस्त रामायणोंमें उल्लेख मिलता है। वाल्मीकीय रामायणमें भी लङ्कासे लौटते समय प्रभु श्रीरामचन्द्रजी जनक-नन्दिनीसे कहते हैं—

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः॥

'यह महात्मा सागरका तीर्थ है। हे जनकनन्दिनी! लङ्काको जाते समय इस स्थानपर भगवान् शङ्करने मुझपर अनुग्रह किया था।'

भगवान् विष्णुने स्वयं अपना नेत्रकमल देकर भगवान् शिवकी पूजा की थी, जिसपर शिवजीने प्रसन्न होकर उन्हें नेत्रसहित सुदर्शनचक्र प्रदान किया, जो तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये प्रतिक्षण उद्यत रहता है।

जब शर-शय्यापर पड़े हुए पितामह भीष्म राजा युधिष्ठिरको धर्मोपदेश कर रहे थे उस समय भीष्मने मोक्षदायक वैष्णव-धर्मका भी वर्णन किया। इसको सुन राजा युधिष्ठिरने प्रश्न किया कि अब आप हमें शङ्कर-महत्त्व सुनावें। राजाके इस प्रश्नको सुन भीष्मने जवाब दिया कि 'इससे मैं अनभिज्ञ हूँ। न तो कभी मुझे शङ्करका साक्षात्कार हुआ है और न मैंने शङ्कर-महत्त्वको ही भलीभाँति समझा है—इसे भगवान् श्रीकृष्ण खूब जानते हैं। वे कई बार शङ्करका तप कर चुके हैं। लो, मैं श्रीकृष्णका स्मरण करता हूँ।' भीष्मके स्मरण करते ही भगवान् श्रीकृष्ण तत्काल वहाँ आ गये और उन्होंने विस्तारपूर्वक अपने द्वारा किये गये शङ्करके उग्र तप तथा वरदान-प्राप्तिका वर्णन किया। भगवान् विष्णु और भगवान् शङ्करसे भक्तिकी शिक्षा ले संसार-बन्धनको तोड़ना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है।

शिव-लिङ्ग

आजकल एक और रिवाज चला है। जब शङ्कर-भक्तिकी उपयोगिता तथा शङ्करका बहुत शीघ्र मोक्ष देना सिद्ध हो जाता है तब लोगोंको और तो कुछ कहनेको रह नहीं जाता, लिङ्ग-पूजापर शङ्का उठाने लगते हैं। सुतरां, अब 'लिङ्ग' शब्दपर विचार कीजिये। देखिये—

विषाणी ककुद्मान् प्रान्ते बालधिः सास्नावानिति (गोत्वे दृष्टं लिङ्गम्)।

(वै० द० अ० २ आ० १ सू० ८)

'सींग, ककुद (थूहा), पूँछ, गलेमें कम्बलकी भाँति लटकती हुई सास्ना, ये गो-जातिके लिङ्ग (चिह्न) हैं'।

और देखिये—

आकृतिर्जातिलिङ्गाख्या।

(न्या० द० अ० २ आ० २ सू० ७०)

'आकृति ही जातिकी पहचान है।'

—इत्यादि दर्शनोंमें अनेक सूत्र ऐसे आते हैं जिनमें पहचान करानेवाले चिह्नको ही 'लिङ्ग' कहते हैं। जैसे पुरुषका लिङ्ग मूँछ है। रही बात शिव-लिङ्गोंकी, सो स्वतः शिवपुराणमें शिवलिङ्गोंका स्पष्टीकरण इसप्रकार किया गया है—

लिङ्गानां च क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुत द्विजाः।
तदेव लिङ्गं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम्॥
सूक्ष्मप्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम्।
स्थूललिङ्गं हि सकलं तत्पञ्चाक्षरमुच्यते॥
तयोः पूजा तपः प्रोक्तं साक्षान्मोक्षप्रदे उभे।
पुरुषप्रकृतिभूतानि लिङ्गानि सुबहूनि च॥
तानि विस्तरतो वक्तुं शिवो वेत्ति न चापरः॥

(शिव० विद्येश्वरसं०)

'ब्राह्मणो! मैं लिङ्गोंका यथावत् क्रम तुमसे कहता हूँ। सबसे प्रथम शङ्करका लिङ्ग प्रणव (ओंकार) है, वह समस्त

कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। शिवका सूक्ष्म लिङ्ग प्रणवरूप है और सूक्ष्म ही निष्कल हुआ करता है। शङ्करका स्थूल लिङ्ग यह समस्त ब्रह्माण्ड है, इसका नाम पञ्चाक्षर है। स्थूल तथा सूक्ष्म—इन दो प्रकारके लिङ्गोंकी पूजा ही तप है, ये दोनों ही प्रकारकी पूजाएँ साक्षात् मोक्षकी देनेवाली हैं। पुरुष-प्रकृति तथा आकाशादि पञ्च महाभूत इत्यादि शङ्करके अनेक लिङ्ग हैं, उनका विस्तारसे वर्णन करनेकी शक्ति शिवमें ही है, दूसरा कोई उन समस्त लिङ्गोंको जान ही नहीं सकता।'

जब शिवपुराणमें शङ्करके लिङ्गोंके स्वरूप तथा नामोंका इसप्रकार वर्णन हो चुका है तब उपर्युक्त लिङ्गोंको छोड़कर शिवलिङ्गसे मूत्रेन्द्रियका ग्रहण करना क्या संसारकी आँखोंमें धूल झोंकना नहीं है?

आजकल जो शिवलिङ्ग पूजे जाते हैं उनकी आकृति ब्रह्माण्डकी आकृति है। जिसप्रकार ब्रह्माण्डमें गोलाई और ऊँचाई है उसी प्रकार शिवलिङ्गका स्वरूप है। शिवलिङ्ग क्या है—ब्रह्माण्डका नकशा है। जिस मनुष्यको सूर्य, चन्द्र, विष्णु, लक्ष्मी, इन्द्रादि ईश्वर-शक्तियोंमेंसे एक-एकका पूजन करना हो वह एक-एकका कर ले और जिसको सबका पूजन करना हो वह शङ्करका पूजन करे, क्योंकि सब जड़-चेतन ब्रह्माण्डके अन्तर्गत हैं और ब्रह्माण्डका नकशास्वरूप शिवलिङ्ग है।

बस, शङ्करकी एक पावनी कथाको सुनाकर ही लेख समाप्त करना है। मृकण्डके पुत्र महर्षि मार्कण्डेय शङ्करका पूजन कर रहे थे। उसी समय उनकी मृत्यु आ गयी। यमदूतोंमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वे शङ्करभक्त मार्कण्डेयकी आत्मा-को शरीरसे निकाल सकें, इस कारण महिषारूढ़ होकर यमराज ही स्वयं मार्कण्डेयकी आत्माको लेनेके लिये वहाँ पहुँचे। यमराजने मार्कण्डेयके गलेमें रस्सी डाली और भाला सिरपर फेंका, इस आपत्तिको देखकर मार्कण्डेयने बार-बार अपने मुखसे शिवके नामका उच्चारण किया। इतनेपर भी जब शिव प्रकट न हुए तब मार्कण्डेयको क्रोध आ गया, इस क्रोधमें महर्षि मार्कण्डेय शङ्करपर आक्षेप करते हुए बहुत कुछ बुरा-भला कहने लगे।

भक्तके हृदयभेदक, भक्तिमिश्रित, आक्षेपयुक्त वचनोंको सुनकर शङ्करने क्या किया, इसके लिये हम नीचे एक पद्य उद्धृत करते हैं। वह इसप्रकार है—

साक्षेपं क्रन्दनं श्रुत्वा शङ्करो भक्तवत्सलः।
मार्कण्डेयस्य रक्षार्थं लिङ्गात् स स्वयमुद्बभौ॥

'भक्तवत्सल भगवान् मार्कण्डेयके साक्षेप वचनोंको सुन-कर मार्कण्डेयकी रक्षाके लिये लिङ्गसे स्वयं प्रकट हो गये।'

शङ्करके दर्शन करते ही यमराजके दिग्विजयका खातमा हो गया। लगे भैंसेसे उतरकर स्तुति करने। भगवान् शङ्करने कहा कि 'हो गयी स्तुति, जाइये घरको। मार्कण्डेयजी तुम्हारे ले जानेसे नहीं जायँगे। अब ये चिरजीवी हो गये। यमराज हाथ जोड़ संयमनी पुरीको लौट आये, मार्कण्डेयजी फिर तप करने चले गये।

पाठको! शङ्करके कुछ पवित्र चरित्र हमने आपके कानोंमें डाले। आशा है, आप लोग शङ्करके सच्चे भक्त बन, इह लोकमें सुख-समृद्धि एवं अन्तमें शिव-सायुज्यको प्राप्त करेंगे।

स्तव

ताण्डवसे त्रिभुवन-भरको
हे कम्पित करनेवाले!
हे काल-रूप! हे भैरव!
मद-मत्सर हरनेवाले!
कैलाश-गुफाके बासी!
हे चन्द्र-चूड़ प्रलयंकर!
हे अन्तक! हे अविनाशी!
संन्यासी उग्र भयंकर!
हे आदिसत्य करुणामय, हे मदन-मान-मद-भंजन!
तेरे पवित्र चरणोंमें कवि करता है अभिवादन।

नागेन्द्रहार मृत्युञ्जय!
हे आशुतोष अखिलेश्वर!
गरलाभिराम गंगाधर!
हे सुखद सर्वसंपत्कर!
शितिकण्ठ रुद्र भूताधिप!
निर्दोष निरीह दिगम्बर!
धृतपाणिपिनाक सनातन!
त्रिविलोचन विश्व-धुरन्धर!
निर्लोभि निरंकुश निर्गुण, हे देव अपावन-पावन!
तेरे पवित्र चरणोंमें कवि करता है अभिवादन।

प्रज्वलित चिताओंपरके
हे निर्भय मुक्त विहारी!
सुर-श्रेष्ठ, वेद-अभिवंदित!
हे पूर्णरूप त्रिपुरारी!
हे भुक्ति-मुक्ति-फल-दायक!
सम्पूज्यमान गत-कलिमल!
हे धर्मसेतु-परिपालक!
ज्योतिर्मय, चन्द्रकलोज्ज्वल!
हे कालातीत सदाशिव, तेजस्वी वीर तपोधन!
तेरे पवित्र चरणोंमें कवि करता है अभिवादन।

—प्रभात

भगवान् शिवके परमतत्त्वका निरूपण

(लेखक—पं० श्रीबदरीदासजी पुरोहित वेदान्तभूषण)

परमात्मा—ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्तरूप हैं। 'सत्य' का अर्थ अविनाशी है। देश, काल और वस्तुके परिच्छेदके नाश होनेपर भी जिसका नाश नहीं होता उसको 'अविनाशी' कहते हैं। उत्पत्ति-विनाशसे रहित जो अखण्ड चैतन्य है उसको 'ज्ञान' कहते हैं। मिट्टीके विकारमें मिट्टीके समान, स्वर्णके विकारमें स्वर्णके समान तथा तन्तुके विकारमें तन्तुके समान अव्यक्तादि सृष्टिके प्रपञ्चोंमें पूर्णतया व्याप्त जो चैतन्य है उसको 'अनन्त' कहते हैं। परिमाणरहित सुखका नाम 'आनन्द' है। जिनके ये चारों लक्षण हैं, जो देश, काल और निमित्तमें अव्यभिचारी—निश्चल रहते हैं—वही परमात्मा 'शिव' हैं, इन्हींको 'महादेव' कहते हैं।

यह सम्पूर्ण जगत् कर्म-मूलक है। कर्मोंके जड होनेसे तथा उनके सञ्चालनमें देवताओंकी आवश्यकता रहनेसे देवताओंकी संसारमें प्रधानता मानी गयी है। जब देवताओंमें प्रधान 'महादेव' ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूपी त्रिगुणात्मक त्रिमूर्तिको धारण करके अपनेको सगुणरूपसे प्रकट करते हैं तब उनकी त्रिगुणमूर्ति सर्वदेवप्रधान होकर प्रत्येक ब्रह्माण्डमें प्रधान देवताके नामको धारणकर प्रसिद्ध होती है। वस्तुतः इन तीन मूर्तियोंमें और 'महादेव' में कोई भेद नहीं है। ये तीन प्रधान अधिदेव मूर्तियाँ ही प्रत्येक ब्रह्माण्डमें 'ईश्वर' कहलाती हैं। ब्रह्माजीमें परमात्मस्वरूप भगवान् शिवकी अध्यात्मशक्ति और अधिदैवशक्तिका पूर्ण विकास है। इसीसे वे लोकस्रष्टा होकर 'पितामह' अर्थात् पितृगणोंके नायक कहलाते हैं। 'महेश'में उनकी अधिभूतशक्ति एवं अधिदैवशक्तिका पूर्ण विकास है। इसीसे वे ज्ञानदाता हैं और ऋषियोंके नायक माने जाते हैं। इसी प्रकार विष्णुमें परमात्मा शिवकी अधिभूतशक्ति और अध्यात्मशक्तिका पूर्ण विकास रहनेपर भी वे दैवीशक्ति-समूहके केन्द्र होनेसे देवताओंके नायक हैं। भगवान् महादेवने पितृगणोंका अधिकार केवल स्थूल जगत्पर और पिण्डोंमें अर्थात् मनुष्य-पिण्डोंपर ही विशेषरूपसे रक्खा है। इसी प्रकार ऋषियोंका अधिकार केवल ज्ञानी जीवोंपर है। परन्तु देवताओंका अधिकार प्रत्येक ब्रह्माण्डके सभी विभागोंपर समान रूपसे होनेके कारण वे सर्वमान्य हैं।

इसप्रकार चैतन्य और जड़के जो द्रष्टा हैं वही अच्युत, ज्ञानस्वरूप 'महादेव' हैं। उन्हींको 'महाहरि' कहते हैं। वही ज्योतियोंकी ज्योति हैं। वही परमेश्वर हैं। वही परब्रह्म हैं। वही ब्रह्म मैं हूँ, इसमें कोई संशय नहीं। कारण, जीव शिव है, शिव जीव है। वह जीव केवल शिव है। जिसप्रकार छिलकेसे युक्त 'धान' कहलाता है और छिलका उतर जानेपर वही 'चावल' कहलाता है, ठीक वैसे ही कर्ममें बँधा हुआ जीव है और कर्म-वासनाका नाश हो जानेपर वही 'सदाशिव' कहलाता है। अतः उपनिषद्में कहा है—

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति॥

(श्वेता० ४। १४)

'जो सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म है, कलिल (अव्याकृत प्रकृति) के मध्यमें स्थित है, सृष्टिको उत्पन्न करनेवाला, अनेकरूपोंसे युक्त है तथा जो संसार एवं विश्वको अकेला परिवेष्टित किये हुए है उस 'शिव' को जानकर अधिकारी अक्षय शान्तिको प्राप्त होता है।

इस अक्षय शान्तिकी प्राप्तिके लिये 'शिव' को जानना आवश्यक है और उस शिवका विष्णु आदिके साथ भेद मानना अनुचित है। क्योंकि जो शिव हैं वही विष्णु हैं और जो विष्णु हैं वही शिव हैं। शिवके हृदय विष्णु हैं और विष्णुके हृदय शिव हैं, जैसे कि उपनिषद्में लिखा है—

शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः॥
यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।
यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्तिरायुषि॥

शिव और पितर-संवाद

सूतजीसे ऋषि कहते हैं—

हे लोकसुहृत्! एक ओर देवासुर-सृष्टि तथा दूसरी ओर चतुर्विध भूतसङ्घकी प्राकृत सृष्टि है। इन दोनों सृष्टियों-

के बीच सर्वाङ्गपूर्ण एवं कर्मकी अधिकारिणी जो स्वाधीन सृष्टि है वही मनुष्य-सृष्टि है। जिस धर्मके प्रभावसे मनुष्य-सृष्टिकी गति क्रमशः ऊपरकी ओर रहती है और जो जीवोंका मनुष्य-योनिसे पतन नहीं होने देता वही वर्णाश्रम-धर्म है। हे तात सूत! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

वर्णाश्रम-धर्मसे अत्यन्त संवर्द्धित होकर पितृगण जीवोंको सर्वदा अभ्युदय प्रदान किया करते हैं—इसमें सन्देह नहीं। हे सूत! वर्णाश्रम-धर्मके शिथिल हो जानेसे कर्म करनेकी अधिकारिणी स्वाधीन मानव-सृष्टिमें भी अवश्य विपर्यय होता है। हे प्राज्ञ सूत! स्वाधीन सृष्टि-समूहमें विपर्यय होनेसे सभी प्रकारकी सृष्टिमें विप्लव होनेकी सम्भावना रहती है। इसी भीषण परिणामको देखकर पितरोंने विश्व-कल्याण-सम्पादन करनेके लिये पूर्वकालमें घोर तपस्या की थी और अपनी तपस्याके प्रभावसे उन्होंने सर्वशक्तिमान् एवं सर्वलोकहितकर भगवान् शम्भुको प्रसन्न किया था। हे तात! उस समय उन सब पितरोंने अनुभव किया कि—

सातों स्वरसमूहोंके स्वरूपकी समष्टिरूप ओङ्कार-ध्वनिसे एक दिव्य ज्योति प्रकट हुई। उस ज्योतिके अन्तरमें प्रणवरूपी आसनपर विराजमान लोकशङ्कर, महादेव भगवान् शम्भु आविर्भूत हुए। उनके शुभ्र अङ्गवर्णोंसे अगणित रजतगिरि अत्यन्त तिरस्कृत हो रहे थे। वे तीन नेत्रोंसे सुशोभित थे। दिव्य जटा-जूटधारी, भस्मभूषितकलेवर, अपने चारों दिव्य हाथोंमें डमरू, खप्पर, त्रिशूल और सींगा धारण किये हुए थे। उनके कन्धेमें अनन्त नागका यज्ञोपवीत था। दिव्य बाघाम्बर पहने हुए अत्यन्त शोभायमान थे।

उनके वामाङ्कमें बैठी हुई सर्वसुन्दरी पूर्णशक्तिमयी मनोहारिणी षोडशवर्षीया श्यामा उनके वैभवकी पूर्णताको निरन्तर सम्पादित करती हुई अत्यन्त सुशोभित थीं। वे पाश और अङ्कुशको धारण किये हुए एवं तीन लोचनोंसे भूषित थीं और जगत्‌का कल्याण करनेके लिये मन्द हास्यसे सुशोभित थीं। उस समय ऐसे दिव्य सगुण रूपको देखकर पितृगण आशायुक्त हो हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे—

'हे विश्वेश्वर! हम जगत्‌के भावी दुःखसे कातर होकर उसके निवारणके लिये ही आपकी शरण आये हैं। हे करुणावरुणालय प्रभो! इस समय मनुष्य-लोकमें धर्म-विप्लव हो जानेसे धर्मका यथार्थ सार्वभौम स्वरूप प्रजामें प्रायः लुप्त ही हो गया है और वर्णाश्रम-धर्मकी ओरसे प्रजाकी श्रद्धा उठ जानेसे ही आर्य-जातिका आर्यत्व लुप्तप्राय हो गया है। इससे हे दयार्णव शम्भो! हम भयभीत हो गये हैं। हमको यथायोग्य उपदेश देकर निर्भय कीजिये। हे नाथ! यही आपके चरणकमलोंमें हमलोगोंकी साञ्जलि प्रार्थना है।'

पितरोंके वचन सुनकर भगवान् श्रीसदाशिव बोले—

'हे महानुभावो! आप इस उत्कट भयको अपने चित्तसे हटाइये और मेरे उपदेशोंपर श्रद्धा कीजिये। आपका भय दूर होनेपर सारे जगत्‌का भय दूर हो जायगा। कारण, आपलोग ही स्थूल सृष्टिके नियामक हैं। स्थूल सृष्टि निःसन्देह सूक्ष्म सृष्टिकी धात्री—धारण करनेवाली है। जीव जिसप्रकारके स्थूल शरीरको प्राप्त होते हैं, हे पितृगण! निश्चय ही वे उसी श्रेणीके कर्म किया करते हैं—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। मैं आपलोगोंसे सत्य-सत्य कहता हूँ, अतः आप सबके प्रसन्न होनेसे निरन्तर ही मनुष्योंके स्थूल शरीर धर्मकी सहायता करनेवाले उत्पन्न होंगे।

हे पितृगण! संसारमें इस समय धर्मकी गम्भीरताका लोप होजानेसे निश्चय घोर धर्म-विप्लव आ उपस्थित हुआ है। धर्मविप्लव उपस्थित होनेके कारण अहो! वे लोग धर्मको अत्यन्त गौण समझने लगे हैं जो अहम्मन्य एवं पाखण्डमें पण्डित हैं। सनातन-धर्मके सार्वभौम स्वरूपको साधारण मनुष्य तो बेचारे क्या जानें, धर्माचार्योंने भी उसके स्वरूपको न समझकर अलग-अलग पन्थ चलाना शुरू कर दिया है, जिनसे भ्रान्त होकर मनुष्य कुपथगामी बन रहे हैं। धर्मकी गम्भीरताका नाश होजानेसे ही मनुष्योंकी बुद्धि बहिर्मुखी एवं इन्द्रियपरायण हो गयी है।

इसप्रकार भगवान् शिवने पितृगणोंको उपदेश देकर सनातन-धर्मके सार्वभौम धर्मका स्वरूप समझानेके लिये निम्नलिखित आदेश किया—

'हे पितृगण! समष्टि और व्यष्टिरूपसे सृष्टिको धारण करनेवाली जो मेरी नियामिका शक्ति है उसीको सनातन-धर्म कहते हैं। उस सनातन-धर्मके चार पाद हैं यथा—साधारण धर्म, विशेष धर्म, असाधारण धर्म और आपद्धर्म। यह सनातन-धर्म सार्वभौम और सर्वलोकहितकर होनेसे अभ्युदय एवं निःश्रेयसरूप नित्य सुख प्रदान करता है। यह

चराचर समस्त विश्व धर्मकी ही शक्तिसे क्रमशः अभ्युदयको प्राप्त कर मेरी ओर अग्रसर होता है।

हे पितृवृन्द ! धर्म मेरी सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्ति है। यह सारी इन्द्रियोंसे जाननेयोग्य स्थूल पदार्थ नहीं है और न इसका किसी स्थूल पदार्थसे स्थूल सम्बन्ध ही है। भावसे ही धर्म अधर्ममें और अधर्म धर्ममें परिणत हो जाता है, यही धर्मके सूक्ष्म स्वरूपका परिचायक है। मेरी शक्तिके विद्या और अविद्या नामक दो भेद हैं और उन्हींके साथ धर्म और अधर्मका सम्बन्ध है। इसका धर्मज्ञ व्यक्ति ही सम्यक् अनुभव करते हैं। हे विज्ञो ! संसारमें असद्भावमूलक आसक्ति सदा अविद्याके प्रभावको ही अत्यन्त बढ़ाती है।

परन्तु मुझसे युक्त सद्भावात्मक कर्म निरन्तर जगत्‌में विद्याके प्रभावकी ही वृद्धि करते हैं। हे पितृगण ! भावका प्रभाव इतना महान् है कि उसके बलसे जड महाद्भुत चैतन्यको प्राप्त हो जाता है। इसी कारण मैं जड मूर्तिमें भी निश्चय प्रकट होता हूँ। भावके कारण वह मिथ्या भी सत्य हो जाता है जो जीवोंके हितके लिये ही कहा गया हो, तथा अधर्म धर्म हो जाता है, जैसे यज्ञमें पशु-हिंसा। इसप्रकार इस संसारमें भावके सम्बन्धसे चैतन्य जड, सत्य असत्य और धर्म अधर्म हो जाता है। इसलिये भावशुद्धियुक्त असत्कर्म भी आपद्धर्ममें निःसन्देह सद्धर्मरूपमें परिणत होकर जीवोंके लिये सदैव परममङ्गलकर होता है। इसीलिये धर्मकी गतिको सूक्ष्मातिसूक्ष्म कहा गया है। अतएव हे पितृगण ! आप सबलोग भावशुद्धिपूर्वक मद्गतचित्त होकर यदि कर्म करेंगे तो अवश्य सनातन-धर्मके पूर्णाधिकारको प्राप्त कर सकेंगे।'

इसप्रकार भगवान् सदाशिवने धर्मोपदेश देकर उसका उपसंहार करते हुए पुनः सारयुक्त वचन कहकर पित्रीश्वरोंको भयसे मुक्त कर दिया और उन्हें आशीर्वाद दिया कि आपलोगोंकी सम्पत्ति चिरकालतक बनी रहे और संसारमें सबकी प्रसन्नताके लिये निरन्तर धर्मकी वृद्धि हो।

मद्भक्ता ज्ञानिनो विज्ञा धर्मज्ञानाब्धिपारगाः।
सार्द्धं केनापि धर्मेण विरोधं नैव कुर्वते॥
साधारणे विशेषे च धर्मेऽसाधारणे तथा।
सम्प्रदायेषु सर्वेषु भक्ता ज्ञानिन एव मे॥
ममैवेच्छास्वरूपिण्या धर्मशक्तेः स्वधाभुजः।
सर्वव्यापकमद्वैतं रूपं नन्वीक्षितुं क्षमाः॥
संसारेऽत्राभिधीयन्ते श्रीजगद्गुरवो ध्रुवम्।
लोकाभ्युदयसिद्ध्यर्थं कल्याणार्थञ्च वः सदा॥
अति गुह्यं रहस्यं वो वेदतात्पर्यबोधकम्।
भवद्भक्त्या प्रसन्नेन पितरो वर्णितं मया॥
संवर्द्धन्तां चिरं विज्ञा भवत्कल्याणसम्पदः।
धर्मवृद्धिश्च संसारे जायतां नितरां मुदे॥

'हे विज्ञो ! मेरे धर्म-विज्ञानरूप समुद्रके पारगामी ज्ञानी भक्त किसी भी धर्मके साथ विरोध नहीं करते। हे पितरो ! मेरे ज्ञानी भक्त ही विशेष धर्म, साधारण धर्म और असाधारण धर्म तथा सर्व धर्म-सम्प्रदायोंमें मेरी ही इच्छा-रूपिणी धर्म-शक्तिके एक सर्वव्यापक अद्वैतरूपको दर्शन करनेमें समर्थ होकर संसारमें निश्चय ही 'जगद्गुरु' नामसे अभिहित होते हैं। हे पितृगण ! मैंने समस्त संसारके अभ्युदय तथा आपलोगोंके कल्याणके लिये वेदके तात्पर्यका बोधक अति गुह्य रहस्य आपकी भक्तिसे प्रसन्न होकर आपसे कहा है। अतः हे विज्ञो ! आपलोगोंकी कल्याण-सम्पत्ति चिरकालतक बढ़ती रहे और संसारमें सबकी प्रसन्नताके लिये निरन्तर सनातन-धर्मकी वृद्धि हो। अस्तु।'

शिव-देवता-संवाद

पितरों और महादेवका संवाद सुनाकर अब देवों और महादेवका संवाद कहता हूँ। एक समय देवतालोग घूमते-घूमते शिवलोकमें गये और वहाँ जाकर भगवान् रुद्रसे पूछने लगे—'आप कौन हैं ?' भगवान् रुद्रने कहा—'मैं एक हूँ, मैं भूत, भविष्य और वर्तमानकाल हूँ। ऐसा कोई नहीं जो मुझसे रहित हो। जो अत्यन्त गुप्त है, जो सर्व दिशाओंमें रहता है वही मैं हूँ। मैं नित्यानित्यरूप, व्यक्त-अव्यक्तरूप, ब्रह्मरूप, अब्रह्मरूप, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशारूप हूँ। मैं ऊर्ध्व और अधोरूप, दिशा-प्रदिशा, पुमान्-अपुमान्, स्त्री, गायत्री, सावित्री, त्रिष्टुप्-जगती-अनुष्टुप् छन्द हूँ। मैं गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सत्य, गौ, गौरी, ऋक्, यजु, साम, अथर्व, अंगिरस्, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ हूँ। मैं जल, तेल, गुह्य, अरण्य, अक्षर-क्षर, पुष्कर, पवित्र, उग्र, मध्य, बाह्य, पुरस्तात्—इसप्रकार ज्योतिरूप मैं हूँ। मुझको सबमें रमा हुआ जानो। जो मुझको जानता है वह सब देवोंको जानता है और अङ्गों-सहित सब वेदोंको भी जानता है। मैं अपने तेजसे ब्रह्माको, ब्राह्मणसे गौको, गौसे ब्राह्मणको, ब्राह्मणसे हविष्यको, हविष्यसे

आयुष्यको, आयुष्यसे सत्यको तथा सत्य एवं धर्मसे धर्मकी तृप्ति करता हूँ।' वे देव सशङ्क नेत्रोंसे भगवान् शिवकी ओर देखने लगे। पीछे उन लोगोंने हाथ जोड़कर भगवान् शिवकी इसप्रकार स्तुति प्रारम्भ की—

'हे रुद्र भगवन्! आप ब्रह्मारूप, विष्णुरूप, रुद्ररूप, स्कन्दरूप, इन्द्ररूप, वायुरूप, अग्निरूप, सूर्यरूप, सोमरूप, अष्टग्रहरूप, प्रतिग्रहरूप, भूरूप, भुवःरूप, स्वःरूप, महःरूप, पृथिवीरूप, अन्तरिक्षरूप, द्यौरूप, जलरूप, तेजोरूप, कालरूप, यमरूप, मृत्युरूप, अमृतरूप, आकाशरूप, विश्वरूप, स्थूलरूप, सूक्ष्मरूप, कृष्णरूप, शुक्लरूप, सत्यरूप और सर्वरूप हैं। अतः आपको बारम्बार नमस्कार है।

हे शिव! पृथिवी आपका आदिरूप, भुवर्लोक मध्यरूप और स्वर्गलोक आपका मस्तकरूप है। आप विश्वरूप, केवल ब्रह्मरूप होकर दो प्रकार या तीन प्रकारसे प्रकाशमान होते हैं। आप बुद्धिरूप, शान्तिरूप, पुष्टिरूप, हुतरूप, अहुतरूप, दत्तरूप, अदत्तरूप, सर्वरूप, असर्वरूप, विश्व, अविश्व, कृत, अकृत, पर, अपर और परायणरूप हैं। आपने हमको अमृत पिलाकर अमर किया है। हम ज्योतिर्भावको प्राप्त हुए हैं और हमें ज्ञान प्राप्त हुआ है; अब शत्रु हमारा क्या कर सकेंगे? हमें वे पीड़ा नहीं दे सकेंगे। आप मनुष्यके लिये अमृतरूप हैं। आप चन्द्र-सूर्यसे प्रथम और सूक्ष्म पुरुष हैं।

जो यह अक्षर और अमृतरूप प्रजापतिका सूक्ष्म रूप है वही सब जगत्का कल्याण करनेवाला पुरुष है। वही अपने तेजसे ग्राह्य वस्तुको अग्राह्य वस्तुसे, भावको अभावसे, सौम्यको सौम्यसे, सूक्ष्मको सूक्ष्मसे और वायुको वायुसे, ग्रास करता है। ऐसे उपसंहार और महाग्रास करनेवाले आपको नमस्कार है। हे महादेव! सबके हृदयमें देवताओंका, प्राणोंका तथा आपका वास है। ये तीन मात्राएँ हैं और उनके परे आप हैं। उत्तरमें उसका मस्तक है, दक्षिणमें पाद है। जो उत्तरमें है वही ॐकाररूप है, जो ॐकार है वही प्रणवरूप है। जो प्रणव है वही सर्वव्यापी है। जो सर्वव्यापी है वही अनन्त है। जो अनन्तरूप है वही ताररूप है। जो ताररूप है वही सूक्ष्मरूप है। जो सूक्ष्मरूप है वही शुक्लरूप है। जो शुक्लरूप है वही विद्युद्रूप है। जो विद्युद्रूप है वही परब्रह्मरूप है। जो परब्रह्मरूप है वही एकरूप है। जो एकरूप है वही रुद्र-शिवरूप है। जो शिवरूप है वही ईशानरूप है। जो ईशानरूप है वही भगवान् महेश्वर हैं।

हे शिव! ॐकारका उच्चारण करनेके समय प्राण ऊपरको खींचने पड़ते हैं, इसीलिये आप ॐकार कहे जाते हैं। आपको 'प्रणव' कहनेका कारण यह है कि इस प्रणवका उच्चारण करते समय ऋक्, यजु, साम, अथर्व, अङ्गिरस् और ब्रह्मा ब्राह्मणको नमस्कार करने आते हैं। आपको 'सर्वव्यापी' कहनेका कारण यह है कि इस नामके उच्चारण करनेके समय जैसे तिलोंमें तेल व्याप्त रहता है ठीक वैसे ही आप सब लोकोंमें व्यापक हो रहे हैं; अर्थात् शान्तरूपसे आप सबमें ओतप्रोत हैं। आपको 'अनन्त' कहनेका हेतु यह है कि इसको उच्चारण करते समय ऊपर, नीचे और तिर्यक्—कहीं भी आपका अन्त देखनेमें नहीं आता।

हे शम्भो! आपको 'तारक' कहनेका कारण यह है कि इस नामका उच्चारण करनेके समय आप गर्भ, जन्म, व्याधि, जरा और मरणवाले संसारके महाभयसे तारनेवाले हैं। 'शुक्ल' कहनेका हेतु यह है कि इस नामका उच्चारण करनेमें क्लेद—श्रम होता है। आपको 'सूक्ष्म' इसलिये कहा जाता है कि इस शब्दका उच्चारण करनेमें आप सूक्ष्म रूपवाले होकर स्थावरादि सब शरीरोंपर अधिकार करते हैं। आपको 'सूक्ष्मवैद्युत' कहनेका यही हेतु है कि इसके उच्चारणके साथ ही स्थूल, महान् अन्धकारमें भी सारे शरीर प्रकाशको प्राप्त होते हैं।

हे महादेव! आपको ब्रह्म कहनेका कारण यह है कि आप पर, अपर और परायणका बड़ी वीणासे ज्ञान कराते हैं। आपको 'एक' इसलिये कहते हैं कि आप सब प्राणोंका भक्षण करके अजरूप होकर उत्पत्ति और संहार करते हैं। कोई पुण्यतीर्थमें जाते हैं; कितने ही दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व-दिशामें तीर्थाटन करते हैं, उन सबकी सद्गति यही है। आप सभी प्राणियोंके साथ होकर एकरूपसे रहते हैं; इसीलिये आपको 'एक' कहते हैं।

हे शिव! आपको 'रुद्र' क्यों कहते हैं? इसके उत्तरमें कहा जाता है कि आपका स्वरूप ऋषियोंको प्राप्त हो सकता है, सामान्य भक्तोंको आपका तात्त्विकरूप प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये आपको 'रुद्र' कहते हैं। आपको 'ईशान' कहनेका कारण यह है कि सब देवताओंका ईशानी और जननी नामकी परमशक्तियोंसे आप नियमन करते हैं।

हे शूर ! जैसे दूधके लिये गौको रिझाते हैं, ठीक वैसे ही हम आपकी स्तुति करते हैं।

हे इन्द्र ! आप ही इस वर्तमान जगत्के ईश और दिव्य-दृष्टिवाले हैं। इसीलिये आपको 'ईशान' कहते हैं।

हे महेश ! आपको भगवान् परमेश्वर कहनेका कारण यह है कि आपको जो भक्त ज्ञानके लिये भजते हैं उनके ऊपर आप अनुग्रह करते हैं और उनके लिये वाणीका प्रादुर्भाव करते हैं तथा सब भावोंको त्यागकर आप आत्मज्ञानसे, योगके ऐश्वर्यसे अपनी महिमामें विराजते हैं। इसीलिये आपको भगवान् महेश्वर कहते हैं।

भगवान् महादेवकी इसप्रकार स्तुति करते हुए देवताओंने उनके परमतत्त्वको जाननेका सुफल क्या है—इसका निम्न प्रकारसे वर्णन किया—

'वह एक ही देव सब दिशाओंमें रहता है। प्रथम जन्म उसीका है। मध्यमें तथा अन्तमें वही महादेव उत्पन्न होता है और भविष्यमें भी होगा। वही प्रत्येक व्यक्तिभावमें व्याप्त हो रहा है। एक ही रुद्र किसी अन्यकी अपेक्षा न रखते हुए अपनी महाशक्तिसे इस लोकको नियममें रखता है। सब उसमें रहते हैं और अन्तमें सबका संकोच उसीमें होता है। विश्वको प्रकट करनेवाला तथा जगत्का रक्षक वही है। जो सब योनियोंमें व्याप रहा है और जिससे यह सब कुछ प्राप्त हो रहा है उस पूज्यवर 'ईशान' और देवरूप पुरुषका चिन्तन करनेसे मनुष्य परम शान्तिको प्राप्त करते हैं। सब हेतुसमूहके मूलरूप अज्ञानका त्याग करके सञ्चित कर्मोंको बुद्धिसे रुद्रमें स्थापित करनेसे एकताकी प्राप्ति होती है। जो शाश्वत, पुराण तथा अपने बलसे प्राणियोंको अन्न और धन देकर उनके मृत्युपाशका नाश करनेवाला है, उसके साथ आत्मज्ञानप्रद अर्ध चतुर्थमात्रासे वह कर्मके बन्धनको तोड़ते हुए 'परमशान्ति' प्रदान करते हैं। अस्तु।

पाठकवृन्द ! भगवान् शिवके परमतत्त्वका निरूपण संक्षेपमें किया गया है। जिसप्रकार विश्वरूपका चित्र या फोटो देखकर आप अनुमान कर सकते हैं कि ये अनन्त स्वरूप कितने विशाल और अनुपम हैं, ठीक वैसे ही भगवान् शिवके परमतत्त्वका वर्णन अत्यन्त विशाल है। इसीलिये पुष्पदन्तने स्पष्ट कहा है कि 'संसारके सम्पूर्ण पर्वतोंकी स्याही तथा समुद्रोंकी दावात बनाकर कल्पवृक्षकी लेखनीसे साक्षात् भगवती सरस्वती निरन्तर लिखती जायँ तो भी भगवान् शिवके परम अद्भुत गुणोंका पार नहीं पा सकतीं। इसलिये शिवगुणानुवाद जितना गाया जाय, लिखा जाय और पढ़ा जाय, उतना ही मनुष्यके लिये कल्याणकर है। मैं इस लेखको समाप्त करनेके पहले एक बात लिख देना आवश्यक समझता हूँ कि शास्त्रोंमें शिव और विष्णुमें वस्तुतः कुछ भी भेद नहीं मिलता। अनन्यभावके साथ अपने-अपने उपासकके लिये दोनों कल्याणप्रद हैं। दोनों ही विश्वेश्वर, जगत्पिता हैं। इनमें जरा भी भेद नहीं करना चाहिये। क्योंकि भेदवादीपर न तो शिव प्रसन्न होते हैं और न विष्णु ही राजी हो सकते हैं। अतः शिव और विष्णुको सदा एकरूप जानकर, जिनमें अपना चित्त सुखसे लग जाय उन्हीं देवका आराधन करना चाहिये।

शिव-ताण्डव

खुल गया तीसरा विलोचन त्रिलोचनका,
नेत्रकी प्रभासे भरी भूतनाथकी कुटी।
रुद्रमें अलख एक ज्योति भी बमक उठी,
दीप्तिसे दमक उठी शंकरकी त्रिकुटी॥

शीघ्र अपनेमें रज-रजको समेट लिया,
भेट लिया नभ, ले ली नागिनकी लकुटी।
कमर दिगम्बरकी चाप-सी लरक उठी,
ढरक उठी गंगा फरक उठी भृकुटी॥

डिम डिम डिम उठा गूँज डमरूका नाद,
ताण्डवके उग्र भाव आने लगे हरमें।
नाचें देव-दानव त्रिदेव सविनोद नाचें,
नभमें पयोद नाचें जल जलधरमें॥

नाचें यक्ष-किन्नर पिशाच-भूत-प्रेत नाचें,
नाचें निशाकर कर नाचें दिनकरमें।
हिलके सुमेर नाचें वरुण-कुवेर नाचें,
घेर नाचें गरुड सुमेर नाचें करमें॥

श्यामनारायण पाण्डेय 'श्याम' साहित्यरत्न

महारानी मैनाका वात्सल्य

(लेखक—साहित्यभूषण पं० श्रीनाथूरामजी शुक्ल बी० ए०)

भक्तवर तुलसी और सूरके अनेकों वर्ष पहले मिथिलामें विद्यापति कवि हो गये हैं। उन्हींने भगवान् शङ्करकी प्रार्थनामें अनेकों पद लिखे हैं। उन्हींकी सहायतासे हम आज यह लेख लिखनेका साहस कर रहे हैं। यद्यपि विद्यापतिकी भाषा ६०० वर्ष पुरानी है, फिर भी दुरूह नहीं है। इसमें कविकी उक्ति तथा भक्त-भावना ओतप्रोत है। यहाँ हम महारानी मैनाका वात्सल्यभाव भक्त पाठकोंके हितार्थ प्रदर्शित करते हैं।

जब सतीने हिमाचलके यहाँ जन्म लिया और शिव-प्राप्तिके लिये कठोर तपस्या की, तब उनका नाम 'उमा' रक्खा गया। भगवान् विष्णुकी प्रार्थनापर भगवान् शिवने उन्हें स्वीकार करनेका वचन दे दिया। हिमाचलने लग्न भेजकर विवाहकी तैयारी की। भगवान् शङ्कर बरात लेकर आये। पुरवासी स्वागतके लिये गये, परन्तु उनके विकराल भयंकर वेषको देखकर भाग चले। उमाकी माता मैनाको यह संवाद मिला। वे बड़ी क्षुभित हुईं और बोलीं—

हम नहिं आज रहब यहि आँगन जो बुढ़ होएत जमाई।
एकरु बइरि भेल बीध बिधाता दूसरि धियाका बाप।
तीसरे बइरि भेला नारद बाम्हन जै बूढ़ आनल जमाई॥

वे कहने लगीं कि यदि यह बूढ़ा मेरा जमाई हुआ तब तो मैं इस घरमें कदापि नहीं रह सकती। प्यारी पुत्रीके भावी जीवनपर विचारकर माता कातर होकर देवर्षि नारद-तकको खरी-खोटी कहती है। यहाँतक कि—

पहिलुक बाजन डमरू तोरब, दोसरे तोरब रुँडमाला।
बरद हाँकि, बरिआत बेलाइब धिआ ले जाएब पराई॥

आवेशमें मातृ-वात्सल्य क्रोधका रूप ले लेता है और अपनी दुलारी बेटीको ले भागनेकी ठान लेता है।

इसप्रकार ज्यों-ज्यों माता सोचती हैं त्यों-त्यों उनकी विकलता बढ़ती जाती है। वे सोचती हैं, भला मेरी पुत्रीको वहाँ क्या सुख मिलेगा? विवाहका लक्ष्य तो सुख ही होना चाहिये। शङ्करजीके पास न तो एक बालिस्त भर वस्त्र है और न उनके घर-द्वार ही है। बगलमें बाघकी छाल लिये घूमते हैं। मेरी पुत्री अकेली क्या करेगी। न तो घरमें सास है न ससुर; न ननद है और न जेठानी-देवरानी ही! कोई भी तो नहीं है। बेचारी किसके पास बैठकर समय काटेगी। ये निरमोही भूतनाथ तो झोली लटकाये जमीन नापते फिरते हैं। एक कौड़ी भी पास नहीं है। अगर कुछ है तो भाँग। इन्हीं सब बातोंको सोचकर मैना कहती हैं—

नाहिं करब बर हर निरमोहिया।
बित्ता भरि तन बसन न तिन्हका,
बघछल काँखतर रहिया॥
बन बन फिरथि मसान जगावथि,
घर आँगन ऊ बन्नौलन्हि कहिया।
सास ससुर नहिं ननद जेठौनी,
जाए बैठति धिया केकरा ठहिया॥
बूढ़ बरद ढकढोल गोल एक,
सम्पति भांगक झोरिया।
भनइ विद्यापति सुनु हे मनाइन,
सिवसन दानि जगत के कहिया?॥

बूढ़े बैलवालेमें अनेक अवगुण देखते हुए भी हमारे भक्त-कवि विद्यापति माता मैनाको इतनेपर भी ढाढ़स देते हैं और कहते हैं—देखो संसारमें भगवान् शङ्कर-जैसा दानी और कौन हो सकता है?

देवर्षि नारदके भगवान् शङ्कर और माता पार्वतीके पुरातन प्रेमके रहस्यको समझानेपर महाराज हिमाचलका गृह पुनः शान्त वातावरण धारण करता है। बरात आती है। किसप्रकारसे?

…यहि बिधि ब्याहन आयो, पहन बाऊर जोगी!
टपर टपर कए बसहा आयल, खटर खटर रुँडमाल,
भकर भकर सिव भाँग भकोसथि, डमरू लेऊकर लाय॥
ऐपन मेटल पुरहर फोरल, बर किमि चौमुख दीप,
धिआ ले मनाइनि मंडप बइसलि, गावइ जनु सखि गीत॥
भनइ विद्यापति सुनु ष मनाइनि ईथिका त्रिभुवन ईस।

इसप्रकारके लोग त्रिभुवनके देवता भगवान् शङ्कर तथा जगन्माता भवानीके अद्भुत रहस्यको समझनेका प्रयत्न करते हैं।

× × ×

यह सब होनेपर भी माताके प्रेमभरे हृदयको ढाढ़स बँधना कठिन हो रहा है। रह-रहकर वह बाँध प्रयत्न करनेपर भी टूट जाता है और वे अधीर होकर कहती हैं—

पत जप-तप हम किअ लागि कैलहु,
कथिला कपकि नित दान।
हमरि धियाके एहो बर होइता,
अब नहिं रहत परान॥

अपनी इस व्याकुलताका कारण बतलाती हुई वे कहती हैं—

घास काट लौती, बसह चरौती कुटती भाँग धतूर,
एकौ पल गौरा बैसहु न पौती, रहती ठाढ़ि हुजूर।
भन विद्यापति सुनु ए मनाइनि, दृढ़ करु अपन गेआन,
तीन लोकके एहो छथि ठाकुर गौरा देवी जान॥

कहावत है कि सोनेकी कीमत कसौटीपर कसनेके बाद ही जानी जाती है, और आदमी कुछ समय साथ रहनेपर ही पहचाना जा सकता है। माता मैना अब बहुत दिनोंके पश्चात् अपने दामादके समस्त दोष तथा गुण जान जाती है और उनका वह पार्वतीके प्रति वात्सल्यभाव अपने प्यारे जमाईके वात्सल्यरूपमें परिणत हो जाता है। वे प्रेममें विभोर होकर अपनी सखीसे कह उठती हैं—

आगे माई, जोगिया मोर जगत सुखदायक,
दुख ककरो नहि देल।
दुख ककरो नहि देल महादेव,
दुख ककरो नहि देल॥
यहि जोगियाके भाँग भुलैलक,
धतुर खोआई धन लेल।

ठीक है। मैनाका सीधा-सादा जगत्-सुखदायक जोगिया कभी किसीको रत्तीभर दुख नहीं पहुँचाता। उसे भाँग-धतूरा खिला-खिलाकर मनचले लोग मनमानी सम्पत्ति प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु उसके दो पुत्रोंके पास एक सोनेकी बाली भी नहीं है। कितना मीठा दुःख है! कितनी भावुकताकी शिकायत है, पर माता मैना दूसरे ही क्षण अपने भोले दिगम्बरकी लीलाओंका दिग्दर्शन भी करा देती हैं। वे कहती हैं—

आगेमाई, कातिक गनपति दुइजन बालक,
जग भरिके नहिं जान।
तिनका अभरन किछुओ न थिकइन,
रति एक सोन नहिं कान॥

आगे माई, छनमें हेरथि कोटि धन बकसथि,
ताहि देव नहिं थोर।
भन विद्यापति सुनहु मनाइनि,
थिका दिगम्बर मोर॥

धन्य हैं भगवान् शङ्कर जो दूसरोंके लिये ही सब कुछ करते हैं पर अपने लिये तो जरा भी फिकर नहीं करते। धन्य हैं आशुतोष! आपकी कृपाका वर्णन कौन कर सकता है? हम तो भगवान्‌की शरणमें हैं। अतएव—

हर जनि बिसरब मो ममिता,
हम नर अधम परम पतिता;
तुमसम अधम-उधार न दोसर,
हमसन जग नहिं पतिता।

जमके द्वार जबाब कओन देब,
जखन बुझत निज गुनकर बतिया;
जब जमकिंकर कोप पठावत,
तखन के होत धरहरिया।

भन विद्यापति सुकवि पुनित मति,
संकर विपरित बानी;
असरन सरन चरन सिर नाओल,
दया करु दिअ सुलपानी॥

त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्वपुण्ड्र

(लेखक—स्वामी श्रीहरिनामदासजी उदासीन, श्रीसाधुवेला)

स्वरूप प्रकृतिकी साम्यावस्थासे ईश्वरकी उत्पत्ति हुई और फिर उसके सत्व, रज और तम इन तीन गुणोंसे क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा और शिवका आविर्भाव हुआ । इसीलिये सत्वप्रधान पदार्थोंके उत्पन्न करनेवाले विष्णु, रजःप्रधानके ब्रह्मा और तमःप्रधानके शिव माने जाते हैं । कहा है—

एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधासौ
सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम् ।
हरेर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्-
वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ॥

अर्थात् एक ही परमेश्वर-मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश-इन तीन भेदोंको प्राप्त हुई । शास्त्रोंमें यह भी कहा गया है कि शिवने ईश्वरकी आज्ञासे सृष्टि-रचना आरम्भ की और भूत, प्रेत, मृत्यु, यम आदि तामसी सृष्टि रच डाली, जिससे विष्णु आदि प्रसन्न नहीं हुए । फिर ईश्वरने विष्णुको सृष्टि रचनेका आदेश दिया । उन्होंने नर-नारायणको उत्पन्न किया । इस मानवी सृष्टिको देखकर ब्रह्मा आदि समस्त देवता बड़े प्रसन्न हुए । इसके बाद ब्रह्माने ईश्वरकी आज्ञासे मनुष्योंके निर्वाहके लिये अन्न, वृक्ष, लता आदिकी उत्पत्ति की । इसप्रकार इस जगत्‌की सृष्टि हुई ।

कहनेका तात्पर्य यह है कि तामसी सृष्टिके कर्त्ता महादेवजी माने गये हैं । इसीसे भूत, प्रेत, मृत्यु, यम आदि इन्हींके मन्त्र-तन्त्रोंको मानते हैं—इन्हींकी आन (शपथ) को मान्य समझते हैं । इसी कारण मृत्युञ्जय आदि मन्त्र अमोघ फलके दाता हैं । महादेव (भूतनाथ) कहलाते भी हैं–महादेवको प्रसन्न कर लेनेसे भूत-प्रेत तो क्या, मृत्यु एवं यमतकका भय नहीं रहता । 'शिव' शब्दका अर्थ ही है कल्याणकर्त्ता । एक सत्ययुगकी कथा है कि जब महादेवजी त्रियुगीनारायणमें पर्वतराज हिमालयकी कन्या—पार्वतीके साथ विवाह करने गये तो उन्होंने सिरमें शेलीसे मुकुट बाँधा था और कानोंमें कुण्डल पहने थे । श्रीशिवजीके उस विवाहकालिक वेशको जङ्गम लोग अबतक अपनाये हुए हैं और उसी विवाहकी वाणी पढ़कर लोगोंको भविष्यद्वाणी सुनाया करते हैं । मस्तकमें शिवजीका त्रिपुण्ड्र लगाकर उसके बीचमें बिन्दु लगाते हैं । गौरीशङ्करके अभेदोपासक इसे गौरीशङ्करस्वरूप मानते हैं । यह प्रकृति और पुरुषके अभेदचिन्तनके फलकी पराकाष्ठा समझी जाती है । आगे चलकर उपासकोंके अनेक भेद हो गये और तदनुसार तिलकके भी अनेक प्रकार हो गये । पुरुष, प्रकृति अथवा गौरीशङ्करके अभेद-उपासकोंमें भी कोई शङ्करका त्रिपुण्ड्र लगाकर गौरीका बिन्दु लगाते हैं । कोई बिन्दु लगाकर पीछे त्रिपुण्ड्र लगाते हैं । कोई केवल पुरुषोपासक होनेके कारण त्रिपुण्ड्र लगाते हैं और इसी प्रकार कोई केवल भगवतीके उपासक होनेके कारण केवल बिन्दु लगाते हैं ।

महादेवके तिलकको देखकर विभिन्न मतावलम्बियोंने इसे त्रिशूलाकार मानकर त्रिपुण्ड्र नाम दिया है और इसी प्रकार भुजाओंपर त्रिशूलका तिलक लगाकर द्वादश तिलक निर्धारित किये हैं । कोई-कोई त्रिशूलमेंसे 'त्रि' को उड़ाकर केवल शूलसदृश एक सीधा तिलक लगाते हैं । कोई बीचका शूल उड़ाकर आसपासकी दो रेखाएँ रखते हैं । कोई बीचमें बिन्दु लगाते हैं, कोई नहीं भी लगाते । अपने-अपने इष्टके अनुसार लोग चाहे जिसप्रकारका तिलक धारण करनेके लिये स्वतन्त्र हैं । और वास्तवमें विष्णु और शिवमें भेद ही क्या है ? कहा है—

रुद्रो नारायणश्चैवेत्येकं सत्त्वं द्विधाकृतम् ।
लोके चरति कौन्तेय ! व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु ॥

(महाभारत)

अर्थात् हे कौन्तेय ! उस परमेश्वरने अपनी मायाके एक ही शुद्ध सत्त्व-गुणको रुद्र और नारायण–इन दो रूपोंसे बतलाया है ।

इसप्रकार यह सिद्ध है कि इस भेदभावमें तत्त्वतः कोई खास भेद नहीं है । परन्तु तिलक लगाना हिन्दू फ़िलासफीके अनुसार है अत्यन्त आवश्यक ।

महादेवजी भगवाँ (काषाय) वस्त्र पहनते हैं और कण्ठमें रुद्राक्ष-माला धारण करते हैं । शरीरमें विभूति रमाते और एक हाथमें त्रिशूल ले, दूसरेसे डमरू बजाते हुए

ताण्डवनृत्य करते हैं। आपको सङ्गीत-विद्याका आचार्य माना गया है। आपके डमरूसे ही व्याकरणके १४ सूत्र निकले। आप जब अपने शिष्योंको ब्रह्मज्ञानका उपदेश देते थे तब पूर्ण ब्रह्मज्ञानीके रूपमें आपके दर्शन होते थे। यही महादेव साक्षात् परब्रह्म होकर भी मानवी लीला करते हुए महात्मास्वरूपसे अखिल विश्वमें विचरण करते हुए अमरनाथ, कैलासवासी, गोपेश्वर—जहाँ-जहाँ गये वहीं वहींके नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्हीं शिवने लोकमर्यादाके रक्षणार्थ ईश्वरसे 'ॐनारायणाय' यह गुरुमन्त्र लिया और फिर स्वयं भी गौरी, कार्तिक, गणेश, सूर्य तथा चन्द्र आदिको गुरुमन्त्र दिया। तबसे अबतक यह गुरु-परम्परा चली आ रही है।
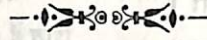
वैष्णव हर और शैव हरि

(लेखक—पं० श्रीरामसजीवनजी मिश्र, व्याकरण-शास्त्री)

संसारमें हिन्दू-धर्मका गौरव किसीसे छिपा नहीं है। धर्माचरणसे ही भारतवर्ष सदासे जगद्‌गुरु रहा है और सदा रहेगा। धर्म-तत्त्वके ज्ञाता हिन्दू-धर्मको कर्म, उपासना और ज्ञान—इन तीन भागोंमें विभाजित करते हैं। हिन्दू ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ–इन तीन आश्रमोंमें कर्म तथा उपासनारूपसे और संन्यास-आश्रममें ज्ञानरूपसे धर्मको धारण करते हैं।

रुचि-वैचित्र्यसे उपासना कई प्रकारकी होती है। क्योंकि यद्यपि तत्त्वतः उपास्यदेव एक ही हैं तथापि रुचिके अनुसार उनके अनेक रूप हैं—जैसे शिव, विष्णु आदि। जिस मनुष्यका जिस रूपमें प्रेम होता है वह उसी रूपकी अनन्य-भावसे उपासना कर परमपदको प्राप्त होता है। इसी कारण संसारमें अनेक मतोंकी सृष्टि हुई है। परन्तु विचार-पूर्वक देखा जाय तो सबका लक्ष्य एक ही दीख पड़ेगा।

जो मनुष्य जिस रूपकी उपासना करता है उसको उपास्यदेवके नामके अनुसार ही पुकारते हैं, जैसे शिवकी उपासना करनेवाले 'शैव' और विष्णुकी उपासना करनेवाले 'वैष्णव' कहलाते हैं। शिव और विष्णु वस्तुतः एक हैं, उनका स्वरूप चनेकी दो दालके समान है। इनमेंसे किसको किसका सेवक कहें और किसको किसका स्वामी ? तथापि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

अर्थात् 'श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, और लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं'—इस उद्देश्यसे दोनों एक दूसरेकी उपासना करते हैं। इसीलिये विष्णु शिवजीकी उपासना करनेके कारण शैव, और शिवजी विष्णुकी उपासना करनेके कारण वैष्णव ही नहीं, बल्कि महावैष्णव कहलाते हैं। श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें लिखा है—

'वैष्णवानां यथा शम्भुः'

अर्थात् 'जैसे वैष्णवोंमें शम्भु हैं।' इसी कारण जब भस्मासुर शिवजीसे वर प्राप्तकर उन्हींको भस्म करने चला तब भगवान् विष्णुने मोहिनीरूप धारणकर युक्तिसे भस्मासुरको भस्म किया और अपने परमभक्त शिवजीकी रक्षा की। इसीलिये जो मनुष्य श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ शिवजीके सम्मुख करता है उससे प्रसन्न होकर शिवजी उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। जैसे—

शिवालये पठेन्नित्यं तुलसीवनसंस्थितः।
नरो मुक्तिमवाप्नोति चक्रपाणेर्वचो यथा॥

इसी प्रकार श्रीराम-कृष्णादि अवतारोंमें श्रीविष्णु भगवान्‌ने श्रीशिवजीकी भक्ति-भागीरथीको प्रवाहित किया है। श्रीरामतापनीयोपनिषद्‌में अत्रि और याज्ञवल्क्यके संवादमें लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजीकी तपस्यासे ही शिव-जीको काशीमें सब जीवोंको मुक्ति प्रदान करनेका अधिकार मिला है। यथा—

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः।
मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः॥
ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम्।
वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर॥

अर्थात् 'जप-होम-अर्चनके द्वारा श्रीशिवजीने सहस्र मन्वन्तरपर्यन्त श्रीरामके नामका जप किया, तब प्रसन्न होकर भगवान्‌ने कहा कि हे महेश्वर ! मैं प्रसन्न हुआ, जो चाहो वर माँगो।' शिवजी बोले—

मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।
म्रियेत देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नातो वरान्तरम्॥

अर्थात् 'मणिकर्णिकारूप मेरे क्षेत्रमें या श्रीगङ्गाके तटपर अथवा गङ्गाजीके भीतर जो मरे उसे मुक्ति दो, मैं केवल यही वर चाहता हूँ।' भगवान् श्रीरामने कहा—

क्षेत्रेऽत्र तव देवेश ! यत्र कुत्रापि वा मृताः।
कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥

अर्थात् हे शिवजी ! आपके इस क्षेत्रमें जहाँ कहीं भी जो कोई कृमि-कीटादिपर्यन्त जीव मरेगा वह शीघ्र ही मुक्त हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। मरते समय जिस किसीके दाहिने कानमें आप स्वयं उपदेश करेंगे वह शीघ्र मुक्त हो जायगा।

श्रीकृष्णावतारमें भी गर्भमें तथा जन्मके समय आकर शिवजीने भगवान्की स्तुति की है। इसलिये शिवजीके परमवैष्णव होनेमें किञ्चित्मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये।

जिसप्रकार शिवजी परमवैष्णव हैं उसी प्रकार श्रीविष्णु भी परमशैव हैं—तन-मनसे शिवजीकी उपासना करते हैं। इन्हें शिवजीके समान कोई प्रिय नहीं है। श्रीपुष्पदन्तराज गन्धर्वने अपने महिम्नःस्तोत्रमें लिखा है—

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर ! जागर्ति जगताम्॥

अर्थात् 'भगवान् विष्णु प्रतिदिन सहस्र पुष्पोंसे श्रीशिवजीकी पूजा करते थे। एक दिन उसमेंसे एक कमल कम हो गया। तब कमलनयन श्रीविष्णु भगवान् अपना नियम पूरा करनेके लिये अपना एक नेत्रकमल निकालने लगे, इससे भगवान् शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसी भक्तिका उत्कर्ष चक्ररूपसे आज भी त्रिलोकीकी रक्षाके लिये विद्यमान है !' इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि विष्णुके समान शिवजीका दूसरा कोई भक्त नहीं है। विष्णु भगवान्ने श्रीरामकृष्णादि अवतारोंमें भी शिवजीकी पूजा की है, जिसके प्रमाणस्वरूप आज भी सेतुबन्धमें रामेश्वर और गोकुलमें गोपेश्वर नामसे शिवजी प्रसिद्ध हैं। इसलिये विष्णुके परमशैव होनेमें कोई सन्देह नहीं है। वस्तुतः—

शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।

अर्थात् 'शिवके हृदय विष्णु हैं और विष्णुके हृदय शिव हैं।' इसी बातको ब्रह्माजीने नारदजीसे स्पष्ट कह दिया।

रामेश्वर-स्थापनाके पश्चात् एक बार विष्णु और शिवके परस्पर पूजनको देखकर विस्मित हो नारदजीने शिव और विष्णुमें कौन बड़ा है—इस बातको जाननेके लिये श्रीरामजीसे पूछा कि महाराज ! 'रामेश्वर' पदमें कौन समास है ? तब नारदजीकी चतुराई समझकर श्रीरामजीने उत्तर दिया कि रामेश्वर-पदमें षष्ठी तत्पुरुष है अर्थात् रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः (रामके जो ईश्वर हैं वही रामेश्वर हैं)। यह सुनकर नारदजी कैलास पहुँचे और वहाँ जाकर शिवजीसे भी यही प्रश्न किया। शिवजीने उत्तर दिया कि रामेश्वर-पदमें बहुव्रीहि समास है अर्थात् 'राम एव ईश्वरो यस्य स रामेश्वरः' (राम ही जिसके ईश्वर हैं वही रामेश्वर हैं)। इस उत्तरसे नारदजीकी शङ्का और बढ़ी, और उन्होंने ब्रह्माजीके पास पहुँचकर उनसे भी यही प्रश्न किया। श्रीब्रह्माजीने उत्तर दिया कि 'रामेश्वर' पदमें कर्मधारय समास है, अर्थात् 'रामश्चासौ ईश्वरः रामेश्वरः (राम ही ईश्वर हैं, इसीसे ये रामेश्वर कहलाते हैं)। सारांश यह कि जिसप्रकार 'नीलकमल' पदमें नील और कमल दोनों भिन्न नहीं हैं उसी प्रकार राम और ईश्वर (शिवजी) भी अभिन्न हैं।

इसी कारण किसी भक्तने कहा है कि भक्त अनेक हैं, परन्तु उनकी पहचान एक ही है। हरि और हरकी कथाएँ अनन्त हैं। उनका अन्त शेष और शारदा भी नहीं पा सकते, बेचारे चर्मचक्षु मनुष्यकी तो बिसात ही क्या है ? इसलिये अब इस निबन्धको समाप्त करते हुए मैं आशा करता हूँ कि जिनके हृदयमें शिव और विष्णुके प्रति भेद-भावना है वे वैष्णव तथा शैव मेरे इस लेखको पढ़कर अपने मनोमालिन्यको प्रेमकी ज्ञानगङ्गामें धोकर निर्मल हृदयसे कल्याणके भागी बनेंगे।

भक्त कण्णप्प
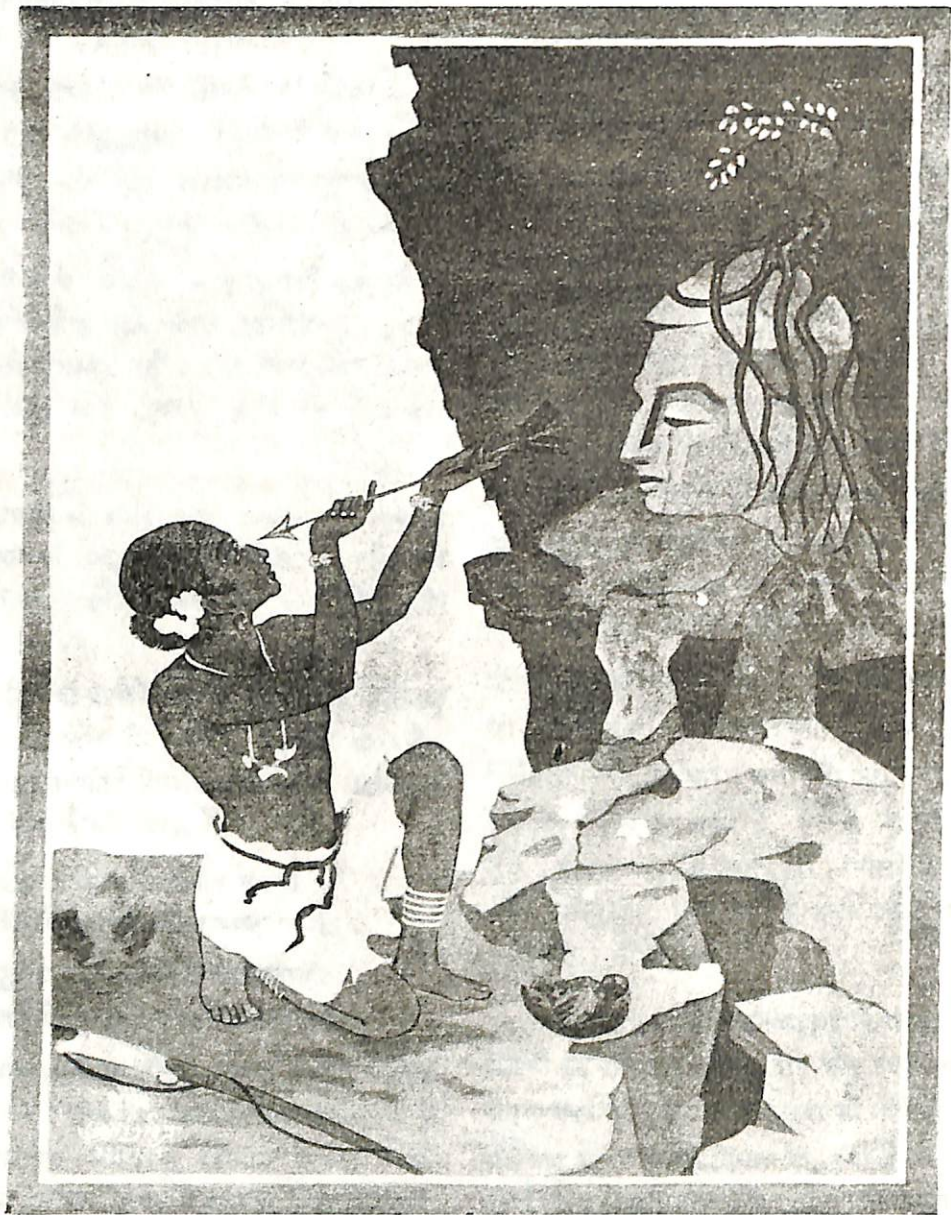
प्रार्थना

(लेखक—पं० श्रीमौजीलालजी शर्मा 'मौजी')

जय भोले भण्डारीकी ! बाबा विश्वनाथकी जय ! त्रिपुरारि त्रिलोकीनाथकी जय ! सुखके सदन शिवशङ्करकी जय ! हर हर महादेव !!!

भारतवर्षके एक सिरेसे लेकर दूसरे सिरेतक प्रत्येक तीर्थ-स्थानमें, प्रत्येक देवालयमें, यहाँतक कि प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें आज तुम्हारा ही जय-जयकार हो रहा है। सबलोग तुम्हें ही पुकार रहे हैं, परन्तु फिर भी हे मृत्युञ्जय ! न जाने तुम हमपर क्यों नहीं दयालु होते ? माना कि हम महान् अवगुणोंके धाम हैं; परन्तु हैं तो आखिर तुम्हारे ही। बोलो, बोलो, कृपालु शङ्कर ! अपने ही अंश, अपनी ही सन्तानके लिये यह मौनावलम्बन कैसा ?

यह भी ठीक है कि हम बड़े स्वार्थी, कुटिल और पामर हैं; परन्तु तुम तो दयामय हो ! तुम संसारके पिता हो, हम तुम्हारी सन्तान हैं। तुम भगवान् हो तो हम तुम्हारे भक्त हैं; तुम स्वामी हो तो हम सेवक हैं;—इस दशामें तुम्हीं बतलाओ, प्रभो ! तुम्हें छोड़कर हम और किसकी शरण लें ! और कहाँ हमारा निस्तार हो सकता है ? दीनानाथ ! कैसा आश्चर्य है कि ऐसे परमदयालु, पिता, भगवान् और स्वामीको पाकर भी हम इसप्रकार दीन-हीन हैं !

भगवन् ! तुमसे हमारे कष्ट छिपे नहीं हैं। क्योंकि तुम घट-घट-वासी—सर्वान्तर्यामी हो। इसलिये प्रार्थना यही है कि अब अधिक न तड़पाओ ! बहुत हो चुका, क्लेशोंको सहते-सहते हृदय जर्जर हो रहा है। कहते हैं—'धोबीका कुत्ता घरका न घाटका'। स्वामिन् ! ठीक यही दशा आज हमारी हो रही है। अन्न-वस्त्रके लिये संसार त्राहि-त्राहि कर रहा है। धर्मके नामपर अधर्म बढ़ाया जा रहा है। इसप्रकार इहलोक और परलोक—कहीं भी गति नहीं दिखलायी पड़ती। शम्भो ! जिन महापुरुषोंने अनेक जन्मोंतक घोर तपस्या करके तुमसे अक्षय भक्तिका वरदान पाया है, खेद है, आज उन्हींकी सन्तानें इस अधोगतिको प्राप्त हो रही हैं। भोलानाथ ! लगाओ इन भूले-भटकोंको ठिकाने ! ऐसा न हो कि तुम-जैसे कर्णधारको पाकर भी इनकी डगमगाती हुई जीर्ण-शीर्ण जीवननौका डूब ही जाय।

परमपिता ! प्रार्थना स्वीकार करो, दुष्टोंका दलन करो और भक्तोंको हृदयसे लगा लो। निश्चय ही तुम ऐसा करोगे; पर अभी नहीं। जब अपने भक्तोंको खूब रुला लोगे, उन्हें दाने-दानेको तरसाकर उनकी प्रेम-परीक्षा ले लोगे तब ! परन्तु भगवन् ! तुम्हारी परीक्षामें यहाँ तो बीचमें ही प्राण निकले जा रहे हैं। हाय ! वह घड़ी कब आयगी ?

आओ, विश्वम्भर ! पधारो, अपने भक्तोंके कष्ट-निवारणार्थ दौड़ पड़ो। पुनः एक बार अधर्मका नाश कर धर्मकी स्थापना करो, भक्तोंका कल्याण करो। बस, एकमात्र यही श्रीचरणोंमें प्रार्थना है !

कण्णप्प भील

बहुत दिनकी बात है, किसी जङ्गलमें एक भील सरदार रहता था। सारे दिन उसके शिकारमें ही बीतते थे। जङ्गलोंमें सदा उसके कुत्तोंके भोंकने और उसके नौकरोंके पुकारनेकी आवाज़ गूँजती रहती थी। वह सुब्रह्मण्य नामक पहाड़ी देवताका भक्त था। उसकी पूजा वह बड़े-बड़े नाच-गान और भोजके साथ किया करता था। उसके एक लड़का था, जिसको भीमकी उपाधि दी गयी थी। उसे वह सदा शिकार खेलनेके समय साथ रखता और शिकार मारनेकी कला सिखाया करता था। कुछ ही दिनोंमें जब वह बूढ़ा और कमज़ोर हो गया तो उसने अपने पुत्र भीमको अपना शासनाधिकार समर्पित कर दिया।

एक बार भीम जङ्गलमें एक पहाड़पर जा पहुँचा। वहाँ एक शिवलिङ्ग स्थापित था, जिसके ऊर्ध्व भागमें शिवके मुखका-सा आकार बना हुआ था। तत्काल पूर्व-जन्मके संस्कारोंके कारण उसका स्वभाव एकदम बदल गया और अब उसके हृदयमें उस देवताकी भक्तिके सिवा और किसीके लिये स्थान नहीं रह गया। वह उस मूर्तिको प्रणाम करता हुआ इसप्रकार चिपट गया जैसे माता अपने बहुत दिनके बिछुड़े हुए पुत्रको गले लगा लेती है। उसने देखा कि मूर्तिके

ऊपर थोड़ी ही देर पहले किसीने जल चढ़ाकर उसे पत्तियोंसे विभूषित कर दिया है। उसके एक सेवकने उसे बतलाया कि एक बूढ़ा भक्त ब्राह्मण उसके पिताके समयसे उस देवताकी पूजा करता है।

भीमने भी अपने मनमाने ढंगसे शिवकी पूजा आरम्भ कर दी।

एक दिन भगवान् भूतभावनने अपने भोले-भाले भील-भक्त भीमकी भक्तिको प्रकट करनेके लिये अपनी दाहिनी आँखसे रक्तकी धारा बहा दी। जब भीम अपने नित्यके नैवेद्यको लेकर पहुँचा तो उसने देवताकी दाहिनी आँखसे रक्त बहता हुआ देखा। वह चिल्ला उठा—'हे भगवन्! तुम्हें किसने चोट पहुँचायी? मेरे न रहते हुए किसने यह पाप किया?' तब उसने शत्रुकी खोजमें सारे जङ्गलको छान डाला और जब किसीको न पाया तो वनस्पतियोंसे उस रक्तको बन्द करनेकी चेष्टा करने लगा। परन्तु उसे सफलता न मिली। तब उसे वैद्योंकी यह बात याद आयी कि 'विषस्य विषमौषधम्।' बस, तत्काल उसने एक तेज तीरकी नोकसे अपनी दाहिनी आँख निकाल डाली और उसे देवताकी आँखमें लगा दिया। उसे यह देखकर बड़ा ही कौतुक हुआ कि मूर्तिकी आँखसे रक्त बहना वास्तवमें बन्द हो गया। परन्तु इतनेमें ही वह क्या देखता है कि अब मूर्तिकी दूसरी आँखसे रक्त बहने लगा। अब तो भीम थोड़ी देरके लिये किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया! परन्तु शीघ्र ही उसे स्मरण आ गया कि इस व्याधिकी आजमूदा दवा तो पास ही है। फिर क्या था? उसने अपना एक पैर आगे बढ़ाकर अपने बाँयें हाथको मूर्तिकी बाँयीं आँखपर रक्खा, जिससे नेत्रहीन होनेपर वह अपनी आँखको ठीक देवताकी आँखके ऊपर लगा सके और दायें हाथमें तीर लेकर अपनी बाँयीं आँखमें मारना ही चाहता था कि भगवान् लिङ्गमेंसे प्रकट हो गये और हाथ बढ़ाकर उसके हाथको जहाँ-का-तहाँ थाम लिया और बोले—'बस! बस!! रहने दे। मैं तेरी अलौकिक भक्तिपर प्रसन्न हूँ। आजसे तेरा स्थान सदा कैलासमें मेरे बायें ओर होगा!' *

धन्य थी वह घड़ी!

(लेखक—एक बड़भागी)

सचमुच वह घड़ी धन्य थी! वह दिन धन्य था!! और वह तिथि धन्य थी जबकी घटना लिखी जा रही है!!!

अबसे कोई एक वर्ष पूर्वकी बात है। सायंकाल—गोधूलिका समय था। भगवान् भुवन-भास्करको अस्ताचलकी ओर गमन करते देख विहंगवरोंने भी अपने पंखोंके एकमिल बाजेके साथ सुख-सङ्गीत-गान करते हुए अपने वासस्थानकी राह ले ली थी। हमलोग बाबा विश्वनाथकी पुण्यनगरी काशीमें, पुण्यसलिला माता जाह्नवीके एक सुन्दर घाटपर बैठे सायंकालीन नैसर्गिक छटा एवं मन्द-मन्द मलय-मारुतका आनन्द लेकर दिन भरकी शारीरिक और मानसिक क्लान्तिको दूर कर रहे थे। वह भगवती भागीरथीका तरङ्गावलियोंसहित मन्द-मन्द प्रवाह, उसके ऊपर यत्र-तत्र छोटी-बड़ी नौकाओंका गमनागमन, बीच-बीचमें उनमें तथा घाटपर बैठे हुए व्यक्तियोंमेंसे किसी-किसीका श्रुतिमधुर रागिनी अलाप उठना, दूसरी ओर कुछ कर्मनिष्ठजनोंका आसन बिछा, भस्म रमा, सन्ध्या-वन्दन, जप-ध्यानमें संलग्न हो जाना, किसी-किसीका स्तोत्र-पाठ कर उठना—सब कुछ शोभा देखते और सुनते ही बनती थी। सभी अपने-अपने रंगमें मस्त थे। मैं भी अपने मित्रोंके साथ धर्मविषयक चर्चा कर रहा था। इतनेमें एकाएक एक ओरसे 'साँप-साँप' की आवाज कानमें पड़ी। देखा तो, लोगोंमें कुछ भगदड़-सी पड़ गयी थी। मालूम हुआ कि पास ही, कुछ ही सीढ़ियाँ ऊपर एक चित्ताकर्षक अल्पकाय सर्प अपने प्रकृत चाञ्चल्यमिश्रित असाधारण निर्भयताके साथ अपने फणको इधर-उधर डुला रहा है। लोग भयभीत हो उठे और उन्होंने तालियाँ पीटना शुरू किया जिससे वह तुरन्त ही नीचेकी ओर मुड़ा और एक

* शिवभक्त कण्णप्पकी जीवनी विस्तारसे कल्याणके भक्ताङ्कमें प्रकाशित हो चुकी है। तीसरे वर्षकी पूरी फाइल ४≡) में लेनेपर भक्ताङ्क मिल सकता है।

सरपटमें सीढ़ियोंको पार करते हुए चटसे गंगामें जा उछला और फिर देखते-देखते गायब !

यह घटना होनेतक बिल्कुल शाम हो चुकी थी; और लोगोंने भी वहाँसे जाना आरम्भ कर दिया था। कुछ ही मिनटोंमें घाट बिल्कुल खाली-सा हो गया। अब हम दोनों मित्र भी बगलके घाटपर जाकर बैठ गये और भगवद्दर्शन-सम्बन्धी चर्चा छिड़ गयी। उसी सिलसिलेमें हमारे मुखसे निकला कि 'देखें, हमलोगोंपर भगवान्‌की ऐसी कब कृपा होती है। पर इतना तो विश्वास है कि एक दिन जागेंगे हमारे भी भाग्य। हम भी एक बार दर्शन लाभकर अवश्य कृतकृत्य होंगे।'

बात यहींतक हो पायी थी कि एकाएक घाटके ऊपर-से किसीने कहा—'जय-जय सिया-राम !' हठात् मेरा ध्यान उधर खिंचा। देखता हूँ तो एक हृष्टपुष्ट, जटाजूटधारी परम भव्य मूर्ति सामने खड़ी है। उसकी जटाएँ गर्दन-तक लटक रही हैं, कमरमें कोई वस्त्र है, वक्षःस्थलपर न जाने क्या लटक रहा है और मुख-मण्डल परम प्रफुल्लित है। उन्होंने एक बार पुनः और भी कुछ उच्च स्वरमें कहा—'जयजय सिया-राम !' मानो वे हमें भी इसे दुहरानेका आदेश कर रहे हों। अब मेरी भाँति मेरे मित्रका भी ध्यान उधर ही पहुँच गया। मैंने भी बाध्य होकर कहा—'जय-जय सिया-राम !'

बस, मेरा इतना कहना था कि वह मूर्ति जहाँ-की-तहाँ अदृश्य ! फिर तो मैंने लाख आँख फाड़-फाड़कर देखा; पर अब पुनः वह दिव्य दर्शन कहाँ ! मुझे रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। आनन्दसे हृदय भर आया। हमलोग कृतकृत्य हो गये।

निश्चय हो गया कि यह और कोई नहीं, वही दयाके निधान भूतभावन भवानीपति भगवान् भोलानाथ थे जो हम भोले-भाले भक्तोंकी भावनासे हृदयको दयासे भरकर इन अनाथोंको सनाथ करने पधारे थे। अवश्य ही, धन्य थी वह भव्य मूर्ति! और धन्य थी वह परमपावन घटिका, जब परम कारुणिक काशीपति आशुतोष भगवान् विश्वम्भरने क्षण-भरके लिये अपनी बाँकी झाँकीकी एक अनोखी छटाका आनन्द लाभ करनेका अवसर प्रदान करनेकी अनुकम्पा दिखलायी थी ! प्रभो ! अब कब करोगे ऐसी कृपा ? अधीर हो रहा हूँ !

शिवभक्तिका साक्षात्कार

(लेखक—काव्यालङ्कारभूषण पं० श्रीबालकृष्णजी जोशी कन्नडकर)

शिवस्य माया परमाद्भुता सा।

एक बार महाशिवरात्रिके अवसरपर मैं वेरुल-क्षेत्रमें गया था। सायङ्कालको पहुँचकर श्रीसदाशिवके मङ्गल-स्नान-का दर्शन किया और फिर घृष्णेश्वर ज्योतिर्लिङ्गकी मध्यरात्रिकी पूजा और अभिषेकको देखकर प्राङ्गणमें आकर अपने आत्मीय, स्नेही एवं हरिहरभक्तिसम्पन्न श्रीविनायक बुवाजीके स्वरचित शिवकरुणासम्बन्धी पद्य सुनने लगा। उसमें ऐसा तल्लीन हुआ कि बहुत अधिक रात बीत गयी। उस ब्रह्मानन्दमें समयका भान ही नहीं रहा। उसी ब्रह्मानन्दके प्रवाहमें मेरी आँख लग गयी और उषाकालके समय मुझे एक अद्भुत स्वप्न दिखायी दिया। अब उस स्वप्नका हाल बतलाता हूँ।

मानो एक सुरम्य, विस्तीर्ण बालुकामय प्रदेशमें एक शुभ्र सुन्दर शिवालय स्थित है। पास ही, घाटके नीचे स्वच्छ जलका शान्त प्रवाह प्रवाहित हो रहा है और मैं उस शिव-मन्दिरके पास पहुँच गया हूँ। शिवदीक्षाधारी द्वारपालने प्रवेशकी आज्ञा प्राप्त होनेतक मुझे बाहर ही रोक रक्खा और इसके बाद उनके साथ मैं भीतर चला गया। वहाँपर दिव्य शान्त प्रकाशकी छटा छिटक रही थी, कोई हिन्दू-राजदम्पती दिव्य वस्त्रालङ्कारोंसे विभूषित, ब्राह्मणोंसहित बड़ी पवित्रतासे श्रीशिवकी महापूजा कर रहे थे और 'ॐ नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षरी मन्त्रका घोष हो रहा था। स्फटिक-निर्मित शिवलिङ्गपर पञ्चामृत, मोतियों और रत्नोंका अभिषेक हो रहा था। शोभा अपूर्व थी। 'ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवे' इस मन्त्रकी गम्भीर ध्वनिसे मन्दिर गूँज रहा था।

मालूम होता था कि वह मन्दिर भूगर्भमें है और मैं भी स्नान-सन्ध्यासे निवृत्त होकर पवित्रताके साथ दर्शनके लिये गया हूँ। बड़े प्रेमसे आनन्दपूर्वक पूजा समाप्त हुई और प्रार्थना होने लगी—

घृष्णेश्वरेशं शिवदं सुरेशं
शम्भुं महेशं करुणाकरेशम्।
एलापुरेशं कनकावतीशं
कैलासदेशं गिरिजाहरेशम्॥

सभीके मुखसे उच्चस्वरसे यह श्लोक निकल रहा था। सुनते-सुनते मुझे भी वह कण्ठाग्र हो गया।

इतनेमें द्वारकी ओरसे 'चलो, बाहर चलो। जलकी बाढ़ आ गयी। नहीं तो वर्षभर बाहर नहीं जा सकोगे।' ये शब्द कानमें पड़े जिन्हें सुनकर बहुत-से लोग घबरा गये। परन्तु राजा-रानीने वहींपर रहनेका निश्चय किया। अब घाटपरसे बढ़ता हुआ जल भीतर आने लगा। उन्होंने शिवपूजासे बचा हुआ चन्दन प्रसादस्वरूप एक ब्राह्मणद्वारा सबके मस्तकपर लगवा दिया। मुझको भी वह प्रसाद मिला। अहा! बड़ी दिव्य सुगन्ध थी उसकी। मन्दिरका शिखर पानीमें डूब गया। वह जल स्वच्छ और स्वादमें दूधके समान था। हम सबलोग शिवजीका ध्यान करने लगे। इधर तबतक सब कुछ जलमय हो गया। थोड़ी देरमें 'नमः शम्भवाय च मयोभवाय च' इस रुद्र-ऋचाका गम्भीर शब्द कानमें आने लगा और साथ-ही-साथ बाढ़का जल भी अपने आप घटने लगा। शीघ्र ही पूर्ववत् अवस्था हो गयी। फलतः सब भक्तजन अपने-अपने स्थानको चले गये। मन्दिरके प्रधान द्वारका बड़ा घण्टा बजने लगा, जिससे मेरी नींद टूट गयी। देखता हूँ तो वही श्रीघृष्णेश्वर-मन्दिरके महाद्वारका प्रातःकालका घण्टा बज रहा था। मनमें बड़ा कौतूहल हुआ।

इस स्वप्नके ठीक सवा महीने बाद एक दिन मैं महाभारतका श्रीकृष्ण-शिवदर्शनका प्रसंग पढ़ रहा था, इतनेमें अकस्मात् एक पवित्रगात्र तेजस्वी ब्राह्मण देवता मेरे सामने आ बिराजे और मुझसे कुशल-प्रश्न करने लगे। मैंने नियमानुसार अपने नवागत अतिथिका सत्कार करते हुए प्रसाद पानेकी प्रार्थना की। उत्तर मिला कि आपका आदर-सत्कार और प्रसाद मुझे मिल गया। श्रीघृष्णेश्वरका मौक्तिक अभिषेक है, मुझे वहाँ जाना है। लौटते समय मैं फिर दर्शन करूँगा। आपसे मिलते हुए जानेका विचार था, इसीलिये यहाँ आ गया हूँ। परन्तु आप तो मुझे भूल गये-से दिखायी देते हैं।

यह सब सुनकर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, क्योंकि इन महानुभावके प्रथम दर्शनकी मुझे स्मृति नहीं थी। तब आपने गम्भीरताके साथ फिर कहा, 'पण्डितजी! शिवरात्रिकी मानसमहापूजाके समय आपके दर्शन हुए थे न? मैंने ही आपके प्रसादका चन्दन लगाया था। उस समयके शिव-प्रार्थना-सम्बन्धी श्लोकको आपने हृदयमें धारण किया या नहीं?'

इतना सुनते ही मुझे उक्त शिवरात्रिके स्वप्नकी स्मृति हो आयी और मनमें उन ब्राह्मणको जाननेकी इच्छा भी उत्पन्न हुई। मैं उनकी ओर देखने लगा। उन्होंने पुनः एक बार—

घृष्णेश्वरेशं शिवदं सुरेशं
शम्भुं महेशं करुणाकरेशम्।
एलापुरेशं कनकावतीशं
कैलासदेशं गिरिजामहेशम्॥

—श्लोकका उच्चस्वरसे पाठ किया और फिर 'ॐ शम्' कहकर चुप हो गये। मेरा हृदय भक्तिरससे परिपूर्ण हो गया और मैं आनन्दातिरेकसे मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, और फिर सावधान हो उठकर नम्रतापूर्वक उक्त सज्जनका मैंने परिचय चाहा; परन्तु बहुत आग्रहके बाद उन्होंने केवल इतना ही कहा कि 'यह उपासनाका फल है, इससे अधिक मैं इस समय कुछ नहीं कह सकता। फिर एक बार आपसे मिलूँगा तब सब बातें आपको ज्ञात हो जायँगी'—यह कहकर ब्राह्मण देवता बड़े वेगसे वेरुलके रास्ते चल दिये। और तबसे मेरा हृदय उनके बतलाये हुए उस पुण्य समयकी प्रतीक्षा कर रहा है।

इस प्रसंगको क्या कहा जाय? यदि इसे स्वप्न कहें तो उसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ; और यदि जाग्रत्-अवस्थाकी सत्य घटना कहें तो यह भी नहीं कहते बनता, क्योंकि वास्तवमें घृष्णेश्वर-मन्दिरमें उस दिन मुझे स्वप्न हुआ था। जो हो, स्वप्नकी घटनाका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। धन्य शिवकी माया!

शिवस्य माया परमाद्भुता सा।

ॐ नमः शिवाय

विद्यापति और उदना

(लेखक— पं० श्रीमथुराप्रसादजी दीक्षित)

प्रसिद्ध मैथिल कवि श्रीविद्यापति भी बड़े शिव-भक्त थे। इनका जन्म मैथिल ब्राह्मणकुलमें संवत् १४०७ के लगभग हुआ था। आप संस्कृतके बड़े विद्वान् और कवि थे। आपकी मैथिल-भाषाकी कविताएँ बड़ी उच्च कोटिकी हैं। इन्होंने शिवजीपर अनेक कविताएँ लिखी हैं, जिन्हें आज भी अनेक शिवभक्त बड़े चावसे गाया करते हैं। अवश्य ही इन कविश्रेष्ठने श्रीराधा-कृष्ण तथा श्रीसीता-रामपर भी अनेक कविताएँ लिखी हैं ! कारण, आप संकीर्ण विचारोंवाले भक्त नहीं थे। आपकी दृष्टि अभेद-भावापन्न थी। आपने लिखा भी है—

भल हरि भल हर भल तुअ कला।
खन पित बसन खनहि बघछला ॥

कहते हैं कि विद्यापतिकी भक्तिसे श्रीशिवजी इतने प्रसन्न हुए कि गुप्तरूपसे इनके यहाँ नौकर होकर इनकी सेवा-टहल करने लगे। यहाँ आपका नाम था 'उदना' या 'उगना'। एक बारकी बात है, श्रीविद्यापति ऐसे स्थानमें पहुँच गये जहाँ कोई जलाशय न था; परन्तु उन्हें बड़े ज़ोरकी प्यास लगी। साथमें उदना था, उसे आज्ञा दी कि जा, भैया ! कहींसे जल ला। उदनाने तुरन्त लाकर अपने स्वामीको जल पिलाया। परन्तु उसे पीनेपर विद्यापतिको मालूम हुआ कि वह साधारण जल नहीं, वरं गङ्गाजल है। उन्होंने उदनासे इस सम्बन्धमें जिज्ञासा प्रकट की, जिसपर उदनाने अपना साधारण रूप त्याग शिवरूप धारण कर लिया और कहा कि मैंने अपनी जटाओंसे निकालकर तुम्हें यह गङ्गाजल पिलाया है। तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हारे यहाँ नौकरके रूपमें रहने लगा हूँ। देखो, तुम इस रहस्यको प्रकट मत करना, नहीं तो मैं अन्तर्धान हो जाऊँगा।

परन्तु होनहार प्रबल होती है। एक दिन किसी कारणवश श्रीविद्यापतिकी धर्मपत्नी मनाइन (मानिनी) उदनासे रुष्ट हो गयी और क्रोधमें भरकर एक डण्डा ले उसे मारने दौड़ीं; परन्तु विद्यापतिसे यह नहीं देखा गया। उन्होंने पत्नीको सावधान करते हुए कहा—'अरे ! यह क्या करती हो ? तुम्हें मालूम नहीं, ये साक्षात् शिव हैं ! शिवजीके साथ यह व्यवहार ?' बस, विद्यापतिका इतना कहना था कि शिवजी अपनी पूर्व-सूचनानुसार तत्क्षण अन्तर्धान हो गये।

विद्यापतिको इस आकस्मिक वियोगसे बड़ा ही कष्ट हुआ। वे 'उदना-उदना' पुकारते-पुकारते पागल-से हो गये। अपनी उसी वियोग-व्यथित अवस्थामें उन्होंने एक कविता की जो इसप्रकार है—

उदना रे मोर कतय गेला। कतय गेला शिव ! कि तुहुँ भेला ॥
भाँग नहि बटुआ रुसि बैसलाह। जोंहि हेरि आनि देल हँसि उठलाह ॥
जे मोर कहता उदना उदेस। ताहि देवों करकँगना बेस ॥
नन्दन-बनमें भेटल महेस। गौरि मन हरखित मेटल कलेस ॥
विद्यापति मन उदनासों काज। नहिं हितकर मोर त्रिभुवनराज ॥

कवितामें विद्यापति 'हाय ! मेरा उदना कहाँ गया ?' कहकर बेहद विलाप करते हैं। उसके दूसरे चरणमें उसके वास्तविक शिवस्वरूपका भी स्मरण करते हैं। उदना जो-जो उनकी सेवा-टहल किया करता था, उन्हें सबकी याद हो आती है। पूजाके आसनपर जाते हैं; पर भाँग-बटुआ (सुपारी, सरौता, खैनी आदि रखनेकी थैली) को न पाकर रूटकर बैठ जाते हैं। धर्मपत्नी सब सामग्री ढूँढ़-ढाँढ़कर इकट्ठी करती है तो कुछ क्षणके लिये प्रसन्नताकी झलक चेहरेपर आ जाती है; परन्तु फिर भी उन्हें उदनाकी स्मृति नहीं भूलती। वह फिर उसीका पता चाहते हैं। कहते हैं कि यदि कोई उसका पता बता दे तो मैं उसे पुरस्कारमें हाथका कंगन दूँ। आगे चलकर इस कवितासे यह भी प्रकट होता है कि नन्दन-वनमें इन्हें शिवजीके साथ पुनः साक्षात्कार हो जाता है, जिससे इनका क्लेश दूर होता है। ये उदनाके प्रति इतना प्रगाढ़ भाव रखते थे कि उसके बिना त्रिभुवनका राज्य भी इनके लिये तुच्छ था।

इस कवितामें जो उदनाका पता बतलानेवालेको कंगन देनेकी बात कही गयी है उसका तात्पर्य यह भी हो सकता है कि उससे विद्यापतिने जगदम्बाकी स्तुति की हो; क्योंकि

उदना (शिव) का पता जगन्मातासे ही मिल सकता है; और भगवतीको कंगन बहुत प्रिय है, इसलिये शिव-विरही विद्यापति कंगनकी भेट चढ़ानेको तैयार हो गये हैं। इसी प्रकार नन्दन-वनमें शिव-साक्षात्कारका आशय यह भी समझा जा सकता है कि नन्दन-वनमें अर्थात् उस वनमें जहाँ सदा परमानन्दकी प्राप्ति होती है, महेश या उदनासे सम्मिलन होता है। कथासे तो यह सिद्ध ही है कि उदना वास्तवमें शिव थे; परन्तु भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे यह भी मालूम होता है कि 'उदना' शब्द भी वास्तवमें रुद्रका रूपान्तर-मात्र है। उदना—रुदना—रुदला—रुदल—रुदर—रुद्र—ये शब्दके क्रमिक विकासके विशिष्ट रूप हैं।

श्रीविद्यापतिके सम्बन्धमें एक और अद्भुत कथा प्रचलित है जो शिवप्रसङ्गसे खास सम्बन्ध न रखनेपर भी आवश्यक समझकर यहाँ दी जा रही है। जब मृत्युका समय समीप आया प्रतीत हुआ तो गङ्गा मैयाके निकट प्राण छोड़नेकी अभिलाषासे विद्यापति एक पालकीद्वारा घरसे चल पड़े। लम्बी यात्रा करनेके बाद जब गङ्गाजी चार मीलपर रह गयीं तब उन्होंने वहीं बाजीतपुर ग्राममें पड़ाव डाल दिया। कहा कि जब मैं गङ्गा मैयाके लिये इतनी दूर दौड़ा आया तब वे भी क्या यहाँतक नहीं आ सकतीं। भक्तिमें बड़ी शक्ति होती है। विद्यापतिकी भक्ति भी माता जाह्नवीको खींचकर वहीं ले आयी। दूसरे दिन प्रातःकाल देखते हैं तो पुण्यसलिला गङ्गा उसी स्थानपर प्रवाहित हो रही हैं! इसप्रकार विद्यापतिने माताकी पावन गोदमें अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। इनके चितास्थलपर एक शिवलिङ्ग स्थापित किया गया, जो उक्त स्थानमें एक मन्दिरके अन्दर अबतक विद्यमान है। यह स्थान दरभङ्गा जिलेमें, बी० एन० डब्लू रेलवेकी मेन लाइनपर बाजीतपुर स्टेशनके निकट है।

तारकेश्वरके शिव

प्रत्यक्ष घटना

(लेखक—पं० श्रीपञ्चाननजी भट्टाचार्य, तर्करत्न)

बङ्गालके हुगली जिलेके अन्तर्गत तारकेश्वर नामक प्रसिद्ध ग्राम है। वहाँके अनादि लिङ्ग श्रीश्रीतारकेश्वर शिवके नामसे ही इस ग्रामका नामकरण हुआ है। इस समय हुगली जिला पश्चिम-वंगके अन्तर्गत माना जाता है। संस्कृत-भाषानुसार इसको राढ़-देश कहते हैं।

'राढे च तारकेश्वरः'—यह तन्त्रशास्त्रका वचन है। भक्तोंके मुखसे सदा बाबा तारकनाथ, बाबा तारकेश्वर शब्द उच्चरित होते हैं। ये जाग्रत् देवता हैं। कृपामय आशुतोष इस अनादि मूर्तिमें अधिष्ठित होकर प्रतिदिन इतने दुखियोंके दुःखको दूर करते हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती।

इस घोर अविश्वासके युगमें भी बाबाके मन्दिरके सामने अपनी-अपनी दुःख-यन्त्रणा दूर करनेके उद्देश्यसे कितने ही लोग धरना दिये हुए पड़े देखे जाते हैं। इनके प्रसादसे कुष्ठ प्रभृति दुःसाध्य रोगोंकी शान्ति तथा अपुत्रको पुत्रकी प्राप्ति हो जाती है। अब भी ये शरणागतको स्वप्नमें ओषधि या आदेश प्रदान करते हैं। कभी कोई वहाँ जाय, ओषधि या आदेशके प्रार्थी मनुष्य मन्दिरके सामने पड़े हुए दिखायी देंगे। मैंने अपनी आँखों देखा है कि एक मुसलमानने उनके शरणागत होकर अपना अभीष्ट प्राप्त किया। मेरे जन्म-वृत्तान्तमें भी बाबा तारकेश्वरकी महिमा प्रकट है।

मेरे पूज्यपाद पितृदेव स्व० नन्दलाल विद्यारत्न भट्टाचार्य महाशय परम धार्मिक, सुकवि और पण्डित थे। मेरी पूज्यचरणा जननी उनकी अत्यन्त अनुगता आदर्श सती सहधर्मिणी थीं। हमारा वंश पाण्डित्यमें उज्ज्वल था, हमारे वृद्ध प्रपितामहका बहु-पण्डित-मण्डित विशाल वंश क्रमशः क्षयको प्राप्त हो गया, केवल एकमात्र मेरे पितृदेव ही बचे थे। परन्तु पितृदेव निःसन्तान थे। माताकी अवस्था २४ वर्षकी थी, किन्तु इसी उम्रमें उनका मासिक स्त्री-धर्म बन्द हो गया था, वंशलोपकी आशङ्का प्रबल हो उठी। तब बन्धु-बान्धवोंने पिताजीको दूसरा विवाह करनेके लिये आग्रह किया; किन्तु पितृदेवने दैवकृत्यमें मन लगा दिया, उनकी बात नहीं मानी।

उस समय तारकेश्वर पहुँचना दुर्गम था। रेलका रास्ता नहीं था, मार्गमें लुटेरोंका डर था। इसी अवस्थामें मेरी परमाराध्या जननी कुछ रक्षकोंको साथ ले बाबाके चरणोंमें

शरणागत होनेके लिये चलीं और वहाँ पहुँचकर पाँच दिनतक केवल चरणामृत पानकर मन्दिरके सामने मण्डपमें पड़ी रहीं। इसके बाद उन्हें स्वप्नादेश हुआ और उसके अनुरूप आचरण करनेपर मासिकधर्म पुनः होने लगा। एक ही वर्षके अन्दर जननीके गर्भसे मेरे ज्येष्ठ भ्राताने जन्म लिया। जननीका वन्ध्या-दोष दूर हो गया।

माताजीके मनमें यह भाव छिपा हुआ था कि किसी तरह मेरा वन्ध्या नाम दूर हो जाय, इसका कारण वही पिताजीके दूसरे विवाह करनेकी चर्चा थी। परन्तु दो वर्ष, छः महीनेके बाद मेरे उस भाईकी मृत्यु हो गयी, दीर्घजीवी पुत्रकी कामनासे पुनर्बार आशा लगाकर मेरी पूजनीया जननी बाबा तारकेश्वरके शरणापन्न हुईं। इस बार भी स्वप्नादेश प्राप्त हुआ और उसके अनुरूप कार्य करते कुछ समय बीता। पश्चात् तीसवें वर्षकी उम्रमें मैं माताके गर्भमें आया।

मेरे परमाराध्य पिताजी जबतक जीवित थे तबतक मेरे किसी भी रोग-प्रशमनमें और शिक्षा-विधानमें वे श्रीतारकेश्वर महादेवको स्मरण करते थे। फल भी हाथोंहाथ मिलता जाता था। जब मैं सात वर्षका था, मेरे श्लीपद-रोग हो गया। बहुत दवाइयाँ की गयीं, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर एक दिन पूज्यपाद पिताजीने श्रीश्रीतारकेश्वर बाबाको रोगका हाल सुनाकर उनसे रोग मिटानेके लिये कातरभावसे प्रार्थना की, दूसरे ही दिन रोग दूर हो गया।

हमारी ब्राह्मण-सभाके द्वारा महन्तके हटानेके मुकद्दमेमें भी हम भगवान् शिवजीके आदेशसे वञ्चित नहीं रहे। यदि हम उनके आदेशका यथोचित पालन कर सकें तो श्रीतारकेश्वर ही सम्पूर्ण कलिदोषको दूर करनेकी कृपा दिखलावेंगे; किन्तु उस आदेशके प्रकट करनेका समय अभी नहीं आया है। यह एक अत्यन्त क्षुद्र घटना है। वहाँ जाकर प्रत्येक मनुष्यको इसप्रकारकी सैकड़ों बड़ी-बड़ी घटनाओंका प्रमाण मिल सकता है। जय अनादिलिङ्ग बाबा तारकेश्वर शिवजीकी जय! जय वाञ्छाकल्पतरु आशुतोषकी जय!! जय करुणानिधानकी जय!!!

भगवान्‌का भजन करनेकी विधि

(लेखक—श्रीरामयशजी गुप्त)

यद्यपि परब्रह्म परमात्मा ॐकारस्वरूप भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीविष्णुके नाम-स्मरणकी अनन्त महिमा वेद-शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित है तथापि कोई-कोई यह कहा ही करते हैं कि 'भाई! हम नित्य ईश्वरका स्मरण करते हैं, फिर भी हमें इसका कुछ भी फल मिलता प्रतीत नहीं होता—इसका क्या कारण है?' इस लेखमें इसी एक प्रश्नको लेकर कुछ विचार किया जा रहा है।

प्रकृतिका यह अटल नियम है कि कोई भी कार्य क्यों न हो, उसे उपयुक्त पद्धति या विधिके साथ करनेसे ही वह सफल होता है। यही बात ईश्वर-स्मरणके सम्बन्धमें भी है। यदि उसे विधिपूर्वक किया जायगा तो निश्चय ही वह शास्त्रोक्त फलका दाता होगा। कितने ही भोले-भाले भाई कहते हैं कि परमात्माके नाम-स्मरणमें नियमकी आवश्यकता नहीं है। देखो न, गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

तुलसी अपने रामको, रीझ भजो कै खीज।
उलटे सुलटे नीपजे, खेत पड़े सो बीज॥

अर्थात् रामको प्रेमसे अथवा द्वेषसे किसी भी प्रकार भजो उसका फल अवश्य मिलेगा; जैसे खेतमें बीज सीधा पड़े, चाहे उलटा, वह जमेगा अवश्य। परन्तु वे भाई गोस्वामी तुलसीदासजीके आशयको समझे नहीं। गोस्वामीजी-जैसे मर्यादाके पोषक महात्मा शास्त्रविरुद्ध आदेश कभी नहीं दे सकते। उन्होंने उपर्युक्त दोहेमें भजन-विधिका खण्डन नहीं, बल्कि समर्थन किया है; और इसके प्रमाणस्वरूप उक्त दोहेमें 'खेत' शब्द बैठा है। बीज उलटा पड़े या सीधा, इसकी विशेष परवा नहीं है; परन्तु उसके लिये नियमानुसार उर्वरा भूमि, यथोचित हवा-पानी और रखवालीकी जरूरत तो रहती ही है। इसलिये गोस्वामीजीने जो 'रीझ' और 'खीझ' शब्द रक्खे हैं उन्हें विकल्पमात्र मानना चाहिये। दोहेका तात्पर्य तो यही है कि शुद्ध अन्तःकरणरूपी खेतमें ही ईश्वर-नाम-स्मरणरूपी बीज उगता है, न कि अशुद्ध मनरूपी ऊसर भूमिमें। और साथ-साथ 'खेत' शब्दसे सङ्केत कर दिया है कि ईश्वर-प्रेमरूपी जल सींचते रहनेसे, ईश्वरके नामके (आगे कहे जानेवाले) दस अपराध-

रूपी घास-फूसको हटा देनेसे, शास्त्रविरुद्ध, मनःकल्पित मतवादरूपी कीड़ों, पशु-पक्षी और तुषारसे उसे बचाते रहनेसे, सच्चे सन्तोंकी सत्संगतिरूपी प्रचण्ड सूर्यके ब्रह्मविचार या तत्त्वविचाररूपी तापके निरन्तर लगते रहनेसे और मनरूपी चन्द्रमाकी उत्साह (लगन) रूपी अमृतवर्षा आदि सम्पूर्ण साधनरूप विधिसे ही भजनरूपी बीज परमात्म-साक्षात्कार-रूपी धान्य उत्पन्न करनेमें हेतु होता है। इसमें शास्त्र-विधि-का निषेध कहाँ है ? अवश्य ही यह बात जाननेकी है कि ईश्वर-स्मरण अर्थात् भजन करनेकी शास्त्रोक्त विधि क्या है। शास्त्रका वचन है—

सन्निन्दाऽसति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरैः
साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश॥

अर्थात् (१) सन्तोंकी निन्दा, (२) असत् (पापी) पुरुषके सामने नामके वैभवकी कथा कहना, (३) शिव और विष्णु (उनसे उपलक्षित गणेश, सूर्य, शक्ति) में भेद-बुद्धि रखना, (४) वेद-वचनोंमें अश्रद्धा, (५) शास्त्र-वचनोंमें अश्रद्धा, (६) सद्गुरुके वचनोंमें अश्रद्धा (७) ईश्वरके नामकी महिमाको अर्थवाद समझनेका भ्रम (८) 'सब पापोंको मिटानेवाला ईश्वरका नाम मेरे पास ही है, इससे मैं जो-जो पाप करूँगा वे सब-के-सब नाम लेनेसे ही मिटते रहेंगे'—ऐसा समझकर पाप करते रहना, (९) ईश्वरके नामसे सबसे अधिक पुण्य होता है, इसलिये सन्ध्या-वन्दन, गायत्री-जप, देव-पूजा, दान-यज्ञ-तप आदि अन्य कृत्य करनेकी कोई आवश्यकता न मानकर नित्य-नैमित्तिक वेद-शास्त्रोक्त शुभ कर्मोंको छोड़ देना और (१०) ईश्वरके नामको अन्य धर्मोंके बराबर समझना—ये ऊपर कहे हुए भगवान् शिव और विष्णुके नाम-जप-सम्बन्धी दस अपराध हैं, अतएव उन्हें छोड़कर ईश्वरका नाम जपना चाहिये। इसी भावको लेकर किसी महात्माने कहा है कि—

राम-राम सब कोइ कहे, दसरित कहे न कोय।
एक बार दसरित कहे, (तो) कोटि यज्ञफल होय॥

अर्थात् 'राम-राम तो सभी कहते हैं, परन्तु नाम-जपके दस अपराधोंसे रहित होकर नहीं जपते। यदि इन दस अपराधोंसे रहित होकर एक बार भी जपे तो कोटि यज्ञोंका फल होता है।' आश्चर्य है, शास्त्रकी ऐसी स्पष्ट आज्ञा होते हुए भी कोई-कोई शिव और विष्णुमें भेद मानते हैं; परन्तु ऐसा करके वे अपना अनिष्ट साधन करते हैं।

भगवान्‌के किसी भी नाम और स्वरूपकी निन्दा न करते हुए, भगवान्‌के समस्त नाम मेरे इष्टके ही नाम-रूप हैं—ऐसा समझना चाहिये।

उपरिलिखित दस अपराधोंसे बचते हुए, शुद्ध और स्थिर चित्तसे, उत्साह और प्रेमके साथ, प्रतिदिन यथाशक्ति नित्य-नैमित्तिक शुभ कर्मोंको करते हुए, प्रातः-सायं सन्ध्याओंमें तथा यथासम्भव मध्याह्न और मध्यरात्रिके समय एकान्तमें बैठकर नित्यप्रति कम-से-कम एक लक्ष ईश्वरके नाम शान्तिपूर्वक दीर्घकालतक जपने चाहिये। ईश्वरके नामके जपमें चित्तकी वृत्तिको राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणपति, सूर्य, शक्ति, नृसिंह, गोविन्द, नारायण, महादेव आदि ईश्वरके प्रसिद्ध नामोंमेंसे अपनी रुचिके अनुसार किसी भी नामका जप किया जा सकता है।

यही ईश्वरके भजनकी सामान्य विधि है। इस विधिसे नियमित रूपसे दीर्घकालतक किया हुआ नाम-जप निस्सन्देह अन्यान्य शास्त्रोक्त फलोंको प्रदानकर अन्तमें परमपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है।

स्तुति

हे जगत-नाटक-सूत्रधार ! अपार तव महिमा अहै।
छनमाहिं करत भरत हरत यह विश्व सब मुनि-गन कहैं॥
हे दोष-दारिद-दम्भ-हर ! तव दास 'दामोदर' यही।
अब करिय नाथ बिलम्ब जनि अवलम्ब मोहिं दूसर नहीं॥

(स्वर्गीय श्रीदामोदरसहायसिंहजी 'कविकिङ्कर' रचित शिवस्तुतिसे)

श्रीशिवजीकी प्रत्यक्ष कृपा

(लेखक—एक जानकार)

बिहार-प्रदेशमें मुजफ्फरपुर जिलेके अन्दर एक मुतलपुर ग्राम है। इस ग्राममें एक शिव-मन्दिर है। एक बार इसके एक पुजारीको छुट्टी लेनेकी आवश्यकता पड़ी। वह अपने स्थान-पर पूजा-कार्य करनेके लिये एक अन्य व्यक्तिकी व्यवस्थाकर अपने मालिक-से छुट्टी माँगने गया; परन्तु उसके मालिकको, जो मुतलपुर ग्रामसे आठ मील दूर एक अन्य ग्राममें रहते थे, उसके आनेके पूर्व रात्रिको ही स्वप्नमें श्रीशङ्करजीने यह आदेश किया कि कल पुजारीजी छुट्टी माँगने आवेंगे और अपने स्थान-पर अपने नियुक्त किये हुए व्यक्तिके लिये स्वीकृति चाहेंगे, पर तुम इसे स्वीकार मत करना। उक्त सज्जनने शिवादेशको शिरोधार्य किया और सारा हाल पुजारीसे कहकर छुट्टी देनेसे इनकार कर दिया।

× × ×

दरभङ्गा जिलेमें श्रीवैद्यनाथ या शिवजीके बहुत भक्त हैं। एक बार एक शिवभक्त सज्जन कौंसिलके चुनावमें हार गये। परन्तु शिवकी प्रेरणासे उन विजेता सज्जनको किसी विशेष घटनाके कारण इस बातपर पश्चात्ताप हुआ कि वे एक शिवभक्तके मुकाबलेमें खड़े हुए। इस घटनाके बादसे वहाँ प्रायः वह शिवभक्त ही कौंसिलके मेम्बर होते आ रहे हैं।

× × ×

दरभङ्गेमें एक परम शिवभक्त ज़मींदारकी यह आकांक्षा हुई कि श्रीशिवके मुकुटसहित दर्शन हों। भगवान् शङ्करने उनपर कृपा करके उन्हें मुकुटधारी शिवके रूपमें दर्शन दिये।

× × ×

छपरा जिलेके 'नयागाँव' वासी एक सज्जनको कई बार शिवजीने दर्शन देनेकी कृपा की है। एक बार शङ्करजीने अपने वामाङ्गमें विराजमान गौरीकी ओर सङ्केत करके उन्हें मौन भाषामें यह आदेश दिया कि इनकी कृपाके बिना मेरी कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। एक बार इन सज्जनने स्वप्नमें श्रीगौरीशङ्कर और श्रीगणेशकी मूर्तियोंके दर्शन किये और कुछ दिनों बाद उन्होंने मानों वे ही मूर्त्तियाँ गङ्गा-तटपर एक नवनिर्मित मन्दिरमें स्थापित देखीं।

भील-भीलनीकी शिव-भक्ति

पञ्चावमें सिंहकेतु नामका एक धर्मात्मा राजा था। एक बार वह शिकार खेलने जंगलमें गया। रास्तेमें उसे एक स्थानपर एक पुराने शिव-मन्दिरका खँडहर मिला। उस मन्दिरमें सुन्दर शिव-लिङ्गकी एक मूर्ति थी। राजाके साथ चण्ड नामका एक नौजवान भील था। उसको यह बड़ी सुन्दर और प्रिय मालूम हुई, उसने पूर्व-जन्मोंके पुण्यसे उस मूर्तिको बड़े प्रेम एवं आदरपूर्ण शुद्ध, सरल-भावसे अपने साथ ले लिया एवं प्रेमविह्वल हो राजासे कहा—महाराज! यह सुन्दर शिवजी मुझे रास्तेमें मिले हैं, मेरी इनपर बड़ी श्रद्धा है। मैं मूर्ख हूँ, पूजा करना नहीं जानता। आप कृपा करके पूजाकी विधि बतला दें तो मैं पूजा करके इनको प्रसन्न करूँ।

राजाने भीलकी सरलतापर हँसते हुए मज़ाकके रूपमें उससे कहा—इन्हें रोज नहलाकर आसनपर बैठाया करो, फिर फूल-बेलपातसे पूजकर धूप-दीप दिया करो। शिवजीको चिताकी राख बहुत प्रिय है इससे चिता-भस्म रोज-रोज जरूर लगाया करो, देखना चिताकी ही राख हो, भला! फिर भोग लगाकर इनके सामने नाचा-गाया करो। ये नाचनेसे बहुत खुश होते हैं। चिता-भस्म लगानेमें कभी चूकना नहीं।

सरल-हृदय चण्ड राजाके मज़ाकको अक्षरशः सत्य मानकर ठीक उसी तरह शिव-लिङ्गकी पूजा करने लगा। पूजन करते कई वर्ष बीत गये; चिता-भस्मके लिये राजाने दो बार जोर देकर कहा था, इसलिये मसानोंमें जाकर चिता-भस्म वह जरूर लाता, किसी दिन भी चिता-भस्म बिना लगाये वह नहीं रहा। एक दिन उसके पास चिता-भस्म नहीं रही। चण्ड भस्म लाने गया, पर उस रोज उसे कहीं भी भस्म नहीं मिली। वह निराश हो घर लौट आया

और अपनी स्त्रीसे कहने लगा—'प्रिये ! आज मुझ पापीको चिताकी राख कहीं न मिली; शिवजीकी पूजामें बड़ा विघ्न हो गया, इनकी पूजा किये बिना मैं कैसे जी सकता हूँ !' पतिको दुखी देखकर पतिव्रता भीलनीने कहा—'मेरे मालिक ! तुम इसके लिये कोई चिन्ता न करो; निर्भय हो पूजाका सामान इकट्ठा करके पूजा शुरू कर दो, चिता-भस्मका प्रबन्ध मैं अभी कर देती हूँ । घरमें आग लगाकर मैं अभी जल जाती हूँ, इससे तुमको कई दिनोंके लिये चिताभस्म मिल जायगी ।' चण्ड अपनी प्रियाका त्याग, प्रेम और साहस देखकर चकित हो गया; उसने कहा—'प्रिये ! सुना है, मनुष्यका शरीर चारों पुरुषार्थोंको पूरा करता है, इसे जलाना नहीं चाहिये ।' परन्तु भीलनीने नहीं माना, उसने प्रेममें भरकर कहा—'मेरे मालिक ! शरीर तो एक दिन गिरनेवाला है ही, यदि यह भगवान्‌की सेवामें लगे और तुम्हारी पूजा पूरी हो तो इससे ज्यादा इसकी क्या सफलता होगी; यह तो इसका बड़ा पुण्य समझो कि आज यह शिवजीके काम आवेगा । तुम कोई विचार न करो ।

भील कुछ भी न बोल सका, वह सहमा-सा रह गया। भीलनीने जाकर स्नान किया और धुली धोती पहनकर घरमें आग लगा दी और उसकी फेरी देकर वह शिवजीका ध्यान करती हुई प्रार्थना करने लगी । उसकी अनन्य भक्तिपूर्ण—प्रेमपूर्ण रहस्यमयी स्तुतिसे यह सिद्ध होता है कि उस अशिक्षिता भीलनीको आज भगवान् शिवके तत्त्वका शिव-कृपासे पूर्ण ज्ञान हो गया और वह उनकी भक्तिका प्रसाद पाकर कृतार्थ हो गयी । वह बोली—

> वाञ्छामि नाहमपि सर्वधनाधिपत्वं
> न स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः ।
> भूयो भवामि यदि जन्मनि नाथ नित्यं
> त्वत्पादपङ्कजलसन्मकरन्दभृङ्गी ॥
>
> किञ्जन्मना सकलवर्णजनोत्तमेन
> किं विद्यया सकलशास्त्रविचारवत्या ।
> यस्यास्ति चेतसि सदा परमेशभक्तिः
> कोऽन्यस्ततस्त्रिभुवने पुरुषोऽस्ति धन्यः ॥
>
> (ब्र० सं० भ० १७)

'मेरे ईश्वर ! मैं न तो कुबेरका पद चाहती हूँ, न स्वर्ग चाहती हूँ और न मुझे अचल-पद मोक्षकी ही इच्छा है। मेरे चाहे कितने ही जन्म हों, पर सबमें मेरा मनरूपी भँवरा तुम्हारे चरण-कमलोंका पराग चूमनेमें लगा रहे । ऊँचे वर्णमें जन्म लेने, विद्या पढ़ने और शास्त्र-विचार करनेसे क्या होता है ? जिसका चित्त परमेश्वरकी भक्तिमें लगा है, त्रिभुवनमें उससे बढ़कर धन्य और कौन है ?

इसप्रकार प्रार्थना करती हुई वह अग्निमें जलकर भस्म हो गयी ।

चण्ड भीलने बड़े प्रेमसे उस भस्मसे भगवान् शङ्करका पूजन किया । भोग लगाकर वह पुलकित-कलेवर हो गद्गद् स्वरमें पत्नीके त्याग, वैराग्य और भक्तिका स्मरण करता हुआ प्रभुकी प्रार्थना करने लगा । कुछ ही देरमें उसे अपने समीप दिव्य देह धारण किये भीलनी खड़ी दिखलायी दी । वह आश्चर्यचकित हो गया । उसने पूछा—'प्रिये ! तुम तो अभी आगमें जल गयी थी न ? यहाँ कैसे आ गयी ? मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ !' भीलनीने उत्तर दिया—'सपना नहीं है प्राणनाथ ! सचमुच तुम्हारे सामने मैं ही तुम्हारी दासी खड़ी हूँ, मुझे तो पता भी नहीं कि मैं कब जली थी ।' दोनों इस आश्चर्यपूर्ण घटनाकी आलोचना कर ही रहे थे कि एकाएक आकाशसे एक अलौकिक विमान वहाँ उतर आया और शिवजीके दिव्य दूत दम्पतीको आदर-सहित विमानपर बैठाकर शिवलोकमें ले गये ।

बोलो भक्त और भगवान्‌की जय !

पश्चात्ताप

> अवलोकनको अरबिंद-सो आनन क्यों अँखियाँ न अनेक भई ?
> कविबेको कथामृत पान सदा किन सुन्दर श्रोत भये न कई ?
> शुचि कीरति शम्भु बखानिबेको मति मंजुल भूरि भली न ठई ?
> गुण गाइबेको गिरिजापतिके कस कोटिन जीह दई न दई ?
>
> (शैवप्रमोदसे)

परम भक्त उपमन्यु

चीन कालकी बात है। यशस्वी वेदज्ञाता परम शिवभक्त ऋषि व्याघ्रपाद इस नश्वर देहको त्याग शिवलोकको पधार गये थे। उनके पुत्र उपमन्यु और धौम्य अभी बालक थे। वे एक दिन मुनियोंके आश्रमपर जा पहुँचे। मुनियोंने उनको दूध पिलाया। वे घर लौट आये और मातासे भी दूध माँगने लगे। घरमें दूध नहीं था। ऋषि-पत्नीने चावलका आटा पानीमें मिलाकर बालकोंको दे दिया; पर उन्होंने तो दूध चख लिया था, कहा—'यह तो दूध नहीं है।' माताने कहा—'वत्स! हम नदियोंके किनारे पर्वतोंकी गुफाओंमें एवं तीर्थोंपर तप करनेवाले मनुष्य हैं, हमारे यहाँ दूध कहाँ रक्खा है? हमारे आश्रय-दाता तो भगवान् शिव हैं। उनको प्रसन्न करो, वे प्रसन्न होकर तुमलोगोंको दूध-भात देंगे। तुम श्रद्धापूर्वक उन्हींकी शरणमें जाओ!'

माताके वचन सुन बालक उपमन्युने हाथ जोड़कर पूछा—'माँ! भगवान् शिव कौन हैं? वे कहाँ रहते हैं? उनके दर्शन कैसे होंगे? उनका रूप कैसा है?'

बालकके सरल वचनोंको सुन माताकी आँखें आँसुओंसे भर आयीं। बच्चेका मस्तक सूँघ बड़े प्रेमसे वह बोली—'बेटा! शिव कहाँ नहीं हैं? सारा विश्व शिवमय है। वे सब प्राणियोंके हृदयमें वास करते हैं, भक्तोंपर दया करके कभी-कभी उन्हें दर्शन दे दिया करते हैं। तत्त्वज्ञानके बिना उनको पाना बहुत ही कठिन है। लोग उनके अनेक रूप बतलाते हैं, पर उनके यथार्थ चरित्रको कोई नहीं जानता। वे जिसपर कृपा करके अपना रूप जनाते हैं वही जान सकता है। वे निराकाररूपसे सर्वत्र विराजमान हैं और साकाररूपसे नित्य महाकैलासमें रहते हैं। उनका श्वेत वर्ण है, उनके मस्तकपर चन्द्रमा विराजित हैं, वे सर्पका यज्ञोपवीत पहने हुए हैं। मनको हरनेवाले भगवान् शिव यज्ञकी वेदीमें, यज्ञस्तम्भमें एवं यज्ञाग्निमें विशेषरूपसे निवास करते हैं। वे निष्कल, मायाके ईश्वर, आदि, अन्त और जन्मरहित हैं। उन परमात्मरूप महेश्वरका ज्ञान केवल भक्तिसे हो सकता है। तू उनका भक्त बन, उनमें मन लगा, उनमें निष्ठा रख, उनकी शरण हो, उनका ही भजन कर, ऐसा करनेसे तेरी मनोकामना पूर्ण होगी।'

माताके इस उपदेशसे उपमन्युकी भगवान् शिवमें अविचल भक्ति हो गयी। वह तपस्यामें लग गया। एक हजार दिव्य वर्षोंतक उसने दाहिने अँगूठेके अग्र-भागपर खड़े रहकर भगवान् शिवको सन्तुष्ट किया। भगवान् शिवने उसके अनन्य भावकी परीक्षाके लिये इन्द्रके रूपमें प्रकट होकर कहा—'वत्स! मैं प्रसन्न हूँ; जो इच्छा हो, वर माँग।'

उपमन्युने कहा—'देवराज! मैं आपसे कुछ भी नहीं चाहता। मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये, मैं तो भगवान् शङ्करका दास होना चाहता हूँ। वे जबतक प्रसन्न न होंगे, तबतक मैं तपसे विरत नहीं होऊँगा। तीनों भुवनोंके सार, सबके आदिपुरुष, अद्वितीय, मृत्युरहित रुद्रको प्रसन्न किये बिना किसीको शान्ति नहीं मिल सकती। मेरे दोषोंके कारण यदि मेरा फिर जन्म हो तो उसमें भी भगवान् शिवपर ही मेरी अक्षय भक्ति बनी रहे।'

इन्द्रने कहा—तुम्हारा कहना तो ठीक है, पर उस शिवके होनेमें ही तुम्हारे पास क्या प्रमाण है?

उपमन्युने कहा—'वह अव्यक्त, आदि और बीजरूप है। यह सारा दृश्य जगत् जिसमें लीन होता है उसी तत्त्वका नाम शिव है, इस बातको कोई इनकार नहीं कर सकता। वह मायासे परे परमज्योतिःस्वरूप है। हे देवराज! भले ही आप खड़े रहें या चले जायँ, मैं तो केवल उस महेश्वरसे ही वर लूँगा, दूसरे किसीसे नहीं।' यह कहकर उपमन्यु व्याकुल होकर सोचने लगा कि भगवान् शङ्कर अभीतक क्यों प्रसन्न नहीं हुए?

इतनेहीमें उपमन्युने देखा कि ऐरावत हाथीने चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिवाले बैलका रूप धारण कर लिया। उस समय भगवान् शिव माता उमाके साथ उसपर विराजमान थे। वे पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभित हो रहे थे। उनके शान्तिमय शीतल प्रखर तेजसे सहस्रों सूर्योंके समान दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं। वे अनेक प्रकारके आभूषण पहने हुए थे। उनके उज्ज्वल सफेद वस्त्र थे, श्वेत पुष्पोंकी सुन्दर माला गलेमें थी। वे श्वेत चन्दन मस्तकपर लगाये हुए थे। श्वेत ही ध्वजा थी और श्वेत यज्ञोपवीत

धारण किये हुए थे। धवल-चन्द्रयुक्त मुकुट था। सुन्दर शरीरपर सुवर्णकमलोंसे गूँथी हुई और रत्नोंसे जड़ी हुई माला शोभायमान हो रही थी। ऐसे देवमुनिवन्दित भगवान् शंकरके दर्शनकर उपमन्यु प्रार्थना करने लगा—'हे देवाधिदेव! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हाथमें वज्र लिये पीले और रक्तवर्णवाले हे देवदेव! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे महेन्द्ररूप! हे महादेव!! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।' इसपर भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर कहा—'बेटा उपमन्यु! मैं तुझपर परम प्रसन्न हूँ, मैंने परीक्षा करके देख लिया कि तू मेरा दृढ़ भक्त है। बोल, तू क्या चाहता है? याद रख, तेरेलिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'

भगवान् शंकरके कृपापूर्ण वचनोंको सुन उपमन्युके आनन्दकी सीमा नहीं रही, उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी। वह गद्गद् स्वरसे कहने लगा—'प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया। देवता भी जिनको प्रत्यक्ष नहीं देख पाते वे देवदेव आज मेरे सामने विराजमान हैं। इससे अधिक और क्या चाहिये? इसपर भी यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो यही दीजिये कि आपमें मेरी अविचल भक्ति सदा बनी रहे।'

उपमन्युके वचन सुनकर भगवान् शङ्करने कहा—'उपमन्यु! तू जरामरणरहित, यशस्वी, तेजस्वी, दिव्यज्ञान-युक्त हो गया। तेरे सारे दुःख दूर हो गये। तू सर्वज्ञ सुन्दर अग्नि-सदृश तेजस्वी हो गया। तू एक कल्पपर्यन्त अपने भाइयोंके साथ दूध-भात खाता रहेगा। बादमें मेरे समीप पहुँच जायगा। मुझमें तेरी अचल भक्ति होगी, मेरा स्मरण करनेके साथ ही मैं तुझे दर्शन दूँगा।'

इसप्रकार वरदान देकर भगवान् शिव अदृश्य हो गये। यही उपमन्यु ऋषि भगवान् श्रीकृष्णके दीक्षागुरु थे।

सिख गुरु गोविन्दसिंहजीका शिव-काव्य

(लेखक—भाई श्रीअरूड़सिंहजी)

गुरु गोविन्दसिंहजीका जन्म 'सोढी' क्षत्रिय-वंशमें हुआ था। सोढी लववंशी हैं, अतः यह वंश रघुकुलकी ही एक शाखा है। श्रीगुरु गोविन्दसिंहजी श्रीसतगुरु नानकदेवजीके नवें उत्तराधिकारी हुए हैं। अकालपुरुषने श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीको दिव्य चक्षु प्रदान किया जिससे उन्हें अपने पूर्व-जन्मोंका स्मरण हो आया, समस्त सृष्टिलीला आदिसे अन्ततक दृष्टिपथमें आ गयी। श्रीगुरु गोविन्दसिंह-जीने दिव्य दृष्टिसे जगत्‌की लीला देखकर कई पुस्तकें लिखीं और अकालपुरुषको समर्पित कीं। इन पुस्तकोंमेंसे एकका नाम 'बचित्रनाटक' है। यह नाटक 'दशम गुरुग्रन्थ' में संगृहीत है।

'बचित्रनाटक' में श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीने अपने सिद्धान्तका स्पष्ट निरूपण किया है, अपने 'मिशन' (प्रयोजन) की सविस्तर व्याख्या की है; अपने उद्देश्यको भलीभाँति निबाहा है, अपने अकाली सिद्धान्तकी शिक्षा सिख-संगतको दी है। यह नाटक नगर पाँवटा (नाहन सरमौर स्टेट) और आनन्दपुर (कहिलूर स्टेट) में लिखा गया। नाटककार उस समय शतद्रुतीर और कालिन्दीतटपर निवास करते थे। सं० १७४१ वि० से सं० १७५६ वि० तक लगातार १६ साल-तक श्रीगोविन्दसिंहजीकी लेखनी काम करती रही। नाटककी तरतीब (क्रम) भी उन्होंने स्वयं दी थी।

'बचित्रनाटक' में सन्तोंके निस्तार और दैत्योंके संहार-के प्रसङ्ग दिये हुए हैं। शक्तिमान् नर-नारी महापुरुषोंके चरित्र लिखे हुए हैं। शक्ति, सत्, रज और तमके प्रसिद्ध प्रभावशाली अवतारों और उप-अवतारोंके वृत्तान्त दिये हैं; साधुओंकी रक्षा और असाधुओंका नाश ही उन अवतारोंका प्रयोजन बताया गया है।

'बचित्रनाटक' में श्रीशिवजी महाराजको भगवान् विष्णुका ही अवतार माना है। शिव-अवतारके प्रसङ्गमें 'अन्धक-पिनाकी' और 'शिव-जलन्धर-युद्ध' का वर्णन है; कल्कि-अवतारके अन्तमें भी रुद्रावतारका वर्णन किया गया है। दत्तात्रेय और पारसनाथ—इन दो शिव-अवतारोंका भी प्रसङ्ग वर्णित है।

'बचित्रनाटक' गुरुमुखी भाषामें लिखा हुआ है।

हिन्दी अक्षरोंमें अभीतक वह प्रकाशित नहीं हुआ है। यहाँ हम 'अन्धक-पिनाकी-युद्ध'का कुछ वर्णन देते हैं।

अन्धक-पिनाकी-युद्ध

तोटक छन्द—

शिव धाय चल्यो तिह मारनको,
जगके सब जीव उधारनको।
कर कोप तज्यो सित सुद्ध सरं,
इक बार ही नाश कियो 'त्रिपुरं'॥ ११॥

वह ओर चढ़े दल लै दुजनं,
इह ओर रिस्यो गहि सूल 'शिवं'।
रण रंग रँगे रणधीर रणं,
जन शोभित पावक ज्वाल बणं॥ १५॥

रण रंग सु 'दानव-देव' रचे,
गह शस्त्र सबै रस रुद्र मचे।
सर छाडत बीर दोऊ हर्षे,
जन अंत 'प्रलै-घन' से बर्षे॥ १६॥

रुआमल छन्द—

घाय खाइ भजे सुररदन कोप ओप मिटाइ,
अंध कंध फिरया तबै 'जय दुंदभीन' बजाइ।
सूल, सैहथ, परघ, पटसी, बाण ओघ प्रहार,
पेल पेल गिरे सु बीरन खेल जान घमार॥१७॥

सेल रेल भई तहाँ अरु तेग तीर प्रहार,
गाहि गाहि फिरे फवज्जन बाहि बाहि हथयार।
अंग भंग परे कहूँ, सरबंग श्रोणत पूर,
एक एक बरी अनेकन हेर हेर सु हूर॥१८॥

चौर चीर रथी रथोतम बाज राज अनंत,
श्रोणकी सरिता उठी, सु बियत रूप दुरंत।
साज बाज कटो कहूँ गजराज ताज अनेक,
उष्ट पुष्ट गिरे कहूँ रिप बाचियं नहीं एक॥१९॥

छाड छाड चले तहाँ नृप साज बाज अनंत,
गाज गाज हने 'सदाशिव' शूरबीर दुरंत।
भाज भाज चले हठी, हथियार हाथ बिसार,
बाल पाण कमाण छाड सु चरम बरम बिसार॥२०॥

नाराच छन्द—

जितेक शूर धाइयं, तितेक रुद्र घाइयं।
जितेक और धावहीं, तित्यो महेश घावहीं॥२१॥

कमंद अंध उट्ठही, बसेख बाण बुट्ठही।
'पिनाक-पाण' ते हणे, अनंत सूरमा बणे॥२२॥

रसावल छन्द—

सिलह संज सज्जे, चहूँ ओर गज्जे।
महाबीर बंके, मिटे नाहि डंके॥२३॥

बजे घोर बाजं, सजे सूर साजं।
घणं जेम गज्जे, 'महेखुआस' सज्जे॥२४॥

'महेखुआस' धारी, चले ब्योमचारी।
सभै सूर हर्षे, सरधार बर्षे॥२५॥

धरे बाण पाणं, चढ़े तेजमाणं।
कटाकट्ट बाहैं, अधो अंग लाहैं॥२६॥

रिसे रामे 'रुद्रं' चले भाज छुद्रं।
महाबीर गज्जे, सिलहि संज सज्जे॥२७॥

लये शक्त पाणं, चढ़ै तेज माणं।
गणं गूढ़ गाजे, रणं रुद्र राजे॥२८॥

भभंकेत घायं, लगे चौप चायं।
डकी डाकणीयं, रणं काकणीयं॥२९॥

भयो रोस 'रुद्रं', हणे दैत्य छुद्रं।
कटे अद्ध अद्धं, भई सैन बद्धं॥३०॥

रिस्यो शूलपाणं, हणे दैत्य भाणं।
सरं ओघ छुट्टे, घणं जेम छुट्टे॥३१॥

रणं 'रुद्र' गज्जे, सबै दैत्य भज्जे।
तजे शस्त्र सर्बं, मिट्यो देह गर्बं॥३२॥

चौपाई—

धायो तब अंधक बलवाना। सँग लै सेन दानवी नाना॥
अमित बाण 'नन्दी' कहु मारे। बेध अंग कह पार पधारे ३३
जबहि बाण लागे 'बाहण' तन। रोस जग्यो तब ही 'शिव' के मन॥
अधिक रोसकर बिसख चलाए। भूमि अकास छिनकमहि छाए ३४
बाणावली 'रुद्र' जब साजी। तब ही सैण दानवी भाजी॥
तब 'अंधक' 'शिव' सामुहि धायो। दुंदजुद्ध रणमध्य मचायो ३५

अड़िल्ल—

बीस बाण तिन 'शिवहि' प्रहारे कोप कर।
लगे 'रुद्र' के गात गये वह घाय कर।
गहि 'पिनाक' कहि पाण 'पिनाकी' धायो।
हो 'तुमल जुद्ध' दुहुँअन रणमध्य मचायो॥३६॥

ताड़ शत्रुकों बहुरि 'पिनाकी' कोप है,
हने 'दुष्ट' को बाण निखँग ते काढ है।
गिर्यो भूम भीतर सिर सतृ प्रहार्यो,
हो जनक गुरज़न कर कोप बुरज कउ मार्यो ॥३७॥

तोटक छन्द—

घट एकविखै रिप चेत भयो,
धनुबाण बली पुन पाण लयो।
कर कोप कुवँड करके रखियो,
सरधार बली घन ज्यों बरस्यो ॥३८॥

कर कोप बली बरस्यो बिसखं,
इह ओर लगे निसरे दुसरं।
तब कोप करं 'शिव' शूल लियो,
अरिको सिर काट दुखंड कियो ॥३९॥

(बचित्रनाटक-रुद्रावतार ११)

*सुरराज प्रसन्न भये तब ही।
अरि 'अंधक' नाश सुन्यो जब ही॥ १॥

(बचित्रनाटक—रुद्रप्रबंध, अध्याय १२)

शिव-स्वरूप और महाराष्ट्र-साहित्य

(लेखक—पं० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर, बी० ए०)

इस लेखमें मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि महाराष्ट्र-साहित्यमें शिवोपासना-का क्या महत्त्व है। लिङ्ग-पूजा साक्षात् परमात्माकी पूजा है। हरि (विष्णु) और हर (शिव) दोनों स्वरूपतः एक हैं। 'इ' कारके सिवा उनमें कुछ भी अन्तर नहीं है। उनमें परस्पर मिठास और चीनी-जैसा सम्बन्ध है। शिवजीके उपासक होकर जो विष्णुभगवान् या वैष्णवोंके द्वेषी हैं और विष्णुके उपासक होकर जो शिव या शैवोंके द्वेषी हैं, वे दोनों ही न शिवजीको जानते हैं और न विष्णुभगवान्-को ही—इसप्रकारके वचन महाराष्ट्रके सन्त-साहित्यमें स्थान-स्थानमें बिखरे पड़े हैं। कर्नाटक-प्रान्तमें श्रीमन्मध्वाचार्यजी-के समयसे लेकर शैव और वैष्णवोंमें तीव्र मतभेद और कलह चला आनेपर भी महाराष्ट्रमें यह जहर न फैल सका। इसका प्रमुख कारण यही है कि महाराष्ट्रके सन्तोंने दोनों उपासनाओंको समान माना है और इसीलिये महाराष्ट्रमें ११ वीं शताब्दीसे एकादशी और सोमवारके व्रत रखनेकी परिपाटी चली आयी है। यह बात सच है कि ११ वीं शताब्दीके पहलेके अधिकांश प्राचीन मन्दिर शिवजीके ही मिलते हैं; परन्तु इससे यही कहा जा सकता है कि उस समयतक महाराष्ट्रमें शिवोपासना ही प्रधानरूपसे प्रचलित थी। महाराष्ट्रीय वैष्णवोंका प्रमुख क्षेत्र पण्ढरपुर है और उनके उपास्यदेव विट्ठल हैं—विट्ठल अर्थात् विष्णु। श्रीकृष्णके बालरूपको विट्ठल कहते हैं। विट्ठलभक्त 'वारकरी' वैष्णव ही हैं। यद्यपि श्रीज्ञानेश्वरजी और नामदेवजीने शाके १२०० से १२५० तक विट्ठलोपासनाका बहुत अधिक प्रचार किया तथापि उसका प्रारम्भ सर्वप्रथम किया था पुण्डलीक भक्तने। पुण्डलीकका काल-निर्णय करनेके लिये आज कोई साधन उपलब्ध नहीं है, तथापि उसका समय ८ वीं अथवा ९ वीं शताब्दीके बीच होना चाहिये। इसप्रकार महाराष्ट्रमें वैष्णवपन्थका उद्गम ८ वीं या ९ वीं शताब्दीमें होनेपर भी १२ वीं शताब्दीसे उसका प्रवाह बड़े वेगसे बढ़ा और आज तो कुछ थोड़े-से शैवोंको छोड़कर सम्पूर्ण महाराष्ट्र वैष्णव-पन्थी कहा जा सकता है। इसमें दो बातें ध्यानमें रखनेकी हैं—एक तो यह कि महाराष्ट्रमें शिवोपासना अधिक प्राचीन होनेके कारण वहाँ प्राचीन मन्दिर प्रायः शिवजीके ही हैं; और दूसरी विशेष महत्त्वकी बात यह है कि महाराष्ट्रके वैष्णवोंने शिवजीसे लेशमात्र भी द्रोह न कर शिवोपासना-को पूर्णरूपसे अपनाया। इसका प्रमाण यह है कि पण्ढरपुरकी विट्ठल (विष्णु) मूर्तिके मस्तकपर शिवलिङ्ग देखनेको मिलता है। इसका अर्थ यह है कि विष्णुभगवान्-ने शिवको अपना आद्य परमभक्त होनेसे प्रेमसे सिरपर धारण किया है। अपने उपास्य विष्णुभगवान् हैं, उनके आदिभक्त और वैष्णवोंके आदिगुरु शिवजी हैं—महाराष्ट्रीय वैष्णवोंकी विष्णु-भक्तिके मूलमें यही भावना है। इसे स्पष्ट करनेके लिये सन्त-साहित्यमेंसे कितने ही अवतरण दिये जा

* अंधक-पिनाकी-कथा विस्तारपूर्वक नहीं लिखी। यह कथा शिव-भक्तजन सभी जानते ही हैं, इसलिये केवल युद्ध ही लिखा है।

सकते हैं। मराठी-भाषाका पहला सर्वमान्य ग्रन्थ 'ज्ञानेश्वरी' है और महाराष्ट्रीय वैष्णव-पन्थके पहले प्रचारक श्रीज्ञानेश्वरजी हैं। श्रीज्ञानेश्वरजीने अपनी गुरुपरम्परा बतलाते हुए कहा है कि 'आदिगुरु श्रीशिवजीसे चली हुई यह परम्परा हमें प्राप्त हुई है।' और ज्ञानेश्वरीके १२ वें अध्यायमें (ओवी २१४ से २१८) उन्होंने अपने 'श्रीगुरु सदाशिव' का उल्लेख करके श्रीकृष्णसे यह कहलाया है कि 'उन्हें मैं अपने सिरपर धारण करता हूँ।' हरि और हरकी एकात्मता, दोनोंके सम्बन्धमें उत्कृष्ट प्रेम और आदरभाव, तथा एकादशी, सोमवार दोनों व्रतोंकी मान्यता—इन सब बातोंसे यह बात निःसंशय सिद्ध होती है कि महाराष्ट्रमें शिव और विष्णु दोनों बिना किसी भेदभावके एक-से पूजनीय माने गये हैं। मराठी भाषामें केवल शिवोपासकोंका प्रमुख ग्रन्थ 'शिवलीलामृत' है। श्रीसमर्थ रामदासस्वामी जो रामभक्त अर्थात् वैष्णव थे, अपने 'मनोबोध' नामक ग्रन्थमें कहते हैं—

> जेणें जाळिला काम तो राम ध्यातो
> उमेसीं अती आदरें गूण गातो।
> बहु ज्ञान वैराग्य सामर्थ्य जेथें
> परी अंतरी नाम विश्वास तेथें ॥८३॥
> विठोनें शिरी वाहिला देवराणा
> तया अंतरी ध्यास रे त्यासि नेणा।
> निवाला स्वयें तापसी चन्द्रमौळी
> जिवा सोडवी राम हा अन्तकाळीं ॥८४॥

अर्थात् जिन्होंने कामको भस्म किया वे मदनान्तक शिवजी श्रीरामका ध्यान करते हैं और अति आदरसे पार्वतीजीके प्रति उनके चरित्र और गुणोंका गान करते हैं। पूर्ण ज्ञान, वैराग्य और सामर्थ्यसम्पन्न शिवजीका राम-नाममें अत्यन्त विश्वास है और वे सदा राम-नाम जपा करते हैं। श्रीविट्ठलने देवताओंके राजा अर्थात् शिवजीको प्रेमसे मस्तकपर धारण किया है और शिवजीके अन्तःकरणमें जिनका ध्यान है उसे तुम नहीं जानते, यह कितने आश्चर्यकी बात है! जिनके पवित्र नामसे महान् तपस्वी चन्द्रमौलि श्रीशङ्करको (हलाहल विष-सेवनके अनन्तर) शान्ति प्राप्त हुई वह प्रभु रामचन्द्रजी मृत्यु-समयमें जीवोंको मोक्ष देनेवाले हैं।

१३ वीं शताब्दीमें नरहरि सोनार एक कट्टर शिव-भक्त था। उसे हमारे तत्कालीन वैष्णव वीरोंने अपने पन्थमें मिला लिया था; और तुकारामके प्रशिष्य मल्लापा वारकर जो प्रथम लिंगायत शैव थे, वारकरी-पन्थके एक प्रमुख प्रवर्तक हो गये हैं। ये दोनों कथाएँ महाराष्ट्र-साहित्यमें प्रसिद्ध हैं।

२—अब यथामति शिव-स्वरूपका रहस्य कथन करता हूँ। लिङ्ग, शिव-लिङ्ग, महालिङ्ग, परब्रह्मके वाचक हैं और लिङ्ग-पूजा परमात्माकी पूजा है। शिवजीका जो लिङ्ग देखनेमें आता है उसे 'महालिङ्ग' कहते हैं। उसके दो भाग हैं—पिण्डी और दूसरा पिण्डीका आधारभूत सबके नीचेका भाग वेदी। वेदीमें मूलपीठ और ऊर्ध्वपीठ दो भाग हैं। मूलपीठ, ऊर्ध्वपीठ और पिण्डी सबको मिलाकर शिव-सम्प्रदायमें 'महालिङ्ग' कहते हैं। मूलपीठ ब्रह्मा अर्थात् रजोगुणका चिह्न, ऊर्ध्वपीठ विष्णु अर्थात् सत्त्वगुणका चिह्न और पिण्डी शिव अर्थात् तमोगुणका चिह्न—इसप्रकार सम्पूर्ण महालिङ्ग ब्रह्मा-विष्णु-महेशात्मक त्रिमूर्तिरूप परब्रह्म है। 'लिङ्ग' शब्द लिग् (जानना) धातुसे बना हुआ है जिससे लिङ्गका अर्थ होता है परमेश्वरीय ज्ञान अथवा आत्मज्ञान। इन सबका विस्तृत वर्णन लिङ्गपुराण, कूर्मपुराण और मत्स्यपुराणमें मिलेगा। लिङ्ग मस्तक है और महालिङ्ग शिवशरीर है। समाधि-स्थितिमें योगीका शरीर महालिङ्गके आकारवाला हो जाता है। और ऐसा कहते हैं कि अनेक क्षेत्रोंमें जो स्वयम्भू महालिङ्ग देखनेमें आते हैं वे सब महायोगियोंके शरीर ही हैं। महालिङ्ग सगुण ब्रह्म होनेसे उपासनाके योग्य है।

३—महालिङ्गके सिवा शिवजीका और एक रूप प्रसिद्ध है और वह भी ध्यान देने योग्य है। शिवजीके पाँच मुख पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके चिह्नस्वरूप हैं। शिवजीके हाथमें 'त्रिशूल' रहता है और आप त्रिपुरासुरका वध करनेवाले हैं। इसका अर्थ यह है कि स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीन शरीर त्रिपुर हैं और उसका नाश श्रवण, मनन, निदिध्यासनरूप त्रिशूलसे होता है। शिवजी बोधस्वरूप किंवा ज्ञानस्वरूप हैं और उनके इस रूपकी प्राप्ति उपर्युक्त तीन साधनोंद्वारा होती है, इसलिये वे साधन उनके तीन नेत्रोंके समान हैं। इसीलिये उन्हें 'त्र्यम्बक' कहते हैं।

४—महाराष्ट्र-साहित्यमें शिवोपासनाका प्रमुख ग्रन्थ 'शिवलीलामृत' है, यह पहले कहा जा चुका है। इस ग्रन्थकी रचना लोकप्रिय श्रीधरस्वामीजीने संवत् १७७५ में पूना जिलेके बारामती नामक ग्राममें की थी। स्कन्दपुराणके ब्रह्मोत्तरखण्डके आधारसे मराठीके 'ओवी' छन्दमें इस ग्रन्थकी रचना की गयी है और इसके १४ अध्याय हैं। शिव-भक्तोंको यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रिय है।

श्रीशङ्करका अद्भुत अवतार

श्रीचिदम्बर दीक्षित

(लेखक—ह० भ० प० श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत)

'अवतरण' शब्दका अर्थ है ऊपरसे नीचे आ जाना—सूक्ष्मातिसूक्ष्म और इन्द्रियातीत उच्चतम अवस्थासे स्थूल इन्द्रियगम्य और अनेक बन्धनोंसे युक्त जड शरीररूप निम्न श्रेणीको प्राप्त होना। 'उद्धार' शब्दका अर्थ है ऊपर खींच लेना—नीच अवस्थासे उच्चतम अवस्थाको पहुँचा देना। जिन लोगोंका उद्धार करना होता है उन लोगोंकी भूमिकामें आये बिना वह कार्य नहीं हो सकता। इस कार्यके लिये ईश्वरावस्थासे मनुष्य-अवस्थाको प्राप्त हो जाना अथवा प्राप्त हुएके समान दिखायी देना ही 'ईश्वरका अवतरण' है। भरतखण्ड-में ईश्वरके अनन्त अवतार हो चुके हैं। धर्मकी ग्लानि और अधर्मकी प्रबलता अवतारका 'कारण' है और सज्जनोंकी रक्षा, दुर्जनोंका नाश तथा धर्मकी संस्थापना उसका 'कार्य' है। इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिये श्रीविष्णुभगवान्‌के समान श्रीशिवजीने भी अनेक अवतार धारण किये हैं। इस लेखके शीर्षकमें उल्लिखित श्रीचिदम्बर प्रभु श्रीशंकरके अवतार थे। आपका संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त 'कल्याण' के पाठकोंके लिये यहाँपर दिया जाता है।

दक्षिण-देशमें बीजापुर जिलेके गोठें नामक ग्राममें नागेश्वर भट्ट नामक यजुर्वेदी ब्राह्मण जोशीपनेकी वृत्तिसे गृहस्थी चलाया करते थे। इनके पुत्र शङ्कर भट्ट अच्छे वैदिक ब्राह्मण थे, शङ्कर भट्टके पुत्र त्र्यम्बक जोशी ज्योतिषके अच्छे ज्ञाता थे। इनके छः पुत्र हुए थे, उनमें सबसे बड़े मार्तण्ड जोशी ही श्रीचिदम्बर प्रभुके पिता थे। मार्तण्डजीमें वैराग्यकी मात्रा अधिक होनेके कारण युवावस्थामें ही ये काशीमें जाकर स्वयंप्रकाश नामक संन्यासीके छात्र बनकर रहने लगे। गुरुजीकी आज्ञामें रहकर उन्हें सन्तुष्ट किया, गुरुजीने इन्हें सर्वविद्याओंमें पारङ्गत करके गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेकी आज्ञा दी। गृहस्थाश्रमकी ओर इनकी रुचि नहीं थी, तथापि गुरु-आज्ञा-पालन करनेके लिये ये दक्षिण-देशमें जाकर बेलगाँव जिलेके मुरगोड गाँवमें रहने लगे। वहींपर लक्ष्मीबाई नामकी स्त्रीसे इनका विवाह हो गया। विवाहके अनन्तर अग्निहोत्रका नियम लेकर ये धर्मानुकूल जीवन व्यतीत करने लगे। मनोली ग्राममें इन्होंने एक सोमयाग किया, तभीसे इन्हें 'दीक्षित' नाम प्राप्त हुआ।

मार्तण्ड दीक्षित स्वयं विद्वान् थे, लोगोंमें इनकी अच्छी मान्यता थी; परन्तु सन्तानके अभावके कारण इनकी पत्नी लक्ष्मीबाई मनमें दुखी रहा करतीं, जिससे इनको भी क्लेश होता था। प्रथम दक्षिण सोमनाथ-क्षेत्रमें जो मुरगोडसे तीन मीलपर सोगल गाँवमें है—पत्नीसहित जाकर इन्होंने तीन गायत्री-पुरश्चरण किये। वहाँसे सुव्वा-क्षेत्रमें गुरुके नामसे शिवलिङ्ग स्थापित कर मार्तण्डक्षेत्रमें चले गये और पुत्र-प्राप्तिके लिये वहाँपर अनुष्ठान प्रारम्भ किया। छः महीने बाद इन्हें स्वप्नादेश हुआ कि 'दक्षिण दिशामें चिदम्बरम्-क्षेत्रमें जाकर सेवा करो, तुम्हारे सारे मनोरथ पूर्ण होंगे।' इस आदेशके अनुसार पत्नीके सहित ये मद्रास इलाकेके चिदम्बरम्-क्षेत्रमें जा पहुँचे और इन्द्रियोंको संयममें रखकर एकनिष्ठासे श्रीचिदम्बर शिवजीकी आराधना करने लगे। बारह वर्षका अनुष्ठान समाप्त हो जानेपर भक्तवत्सल, दयानिधि भगवान् नटराज—शिव प्रसन्न हो गये और मार्तण्ड दीक्षितको साक्षात् दर्शन देकर आज्ञा की कि 'धर्मरक्षाके हेतु मुझे अवतार धारण करना है, मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपमें अवतरित होऊँगा। पुत्ररूपसे मैंने ही जन्म लिया है, इसका प्रमाण यह होगा कि जनमते ही मेरे दाहिने कानपर बिल्वपत्र, बायें कानमें तुलसीपत्र और मस्तकपर शुभ्र अक्षत होंगे; अब तुम अपने स्थानको चले जाओ।'

इस संवादसे लक्ष्मीबाईको बड़ा आनन्द हुआ। अनुष्ठान-समाप्तिके उपलक्ष्में तीर्थवासी ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट कर दीक्षित-दम्पती मुरगोड गाँवको लौट आये। शीघ्र ही यथासमय लक्ष्मीबाईको संवत् १८१५ मार्गशीर्ष कृष्ण षष्ठी-के दिन शुभ मुहूर्तमें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। साक्षात्कारके समयके सारे चिह्न बालकमें ज्यों-के-त्यों मौजूद थे; और प्रसूतिगृह एक अपूर्व तेजसे जगमगा रहा था।

इसप्रकार भगवान् शङ्करने मार्तण्ड दीक्षितके घरमें

अवतार धारण किया। उस समय अनेक भक्त जीव उत्कट भक्तिसे भगवान्की कृपाकी याचना कर रहे थे, उन सबके कल्याणार्थ यह अवतार प्रकट हुआ।

मार्तण्ड दीक्षितने अपने पुत्रका नाम चिदम्बर रक्खा। वे उसके असली स्वरूपको जानते थे, परन्तु उनकी यही इच्छा होती थी कि वह रूप लोगोंमें शीघ्र प्रकट न हो, कारण, उनकी यह धारणा थी कि ऐसा होनेसे पुत्र-सुखका लाभ जैसा होना चाहिये वैसा न हो सकेगा। परन्तु सूर्य अथवा अग्निको सहजमें कौन छिपा सकता है ? अष्टमहासिद्धियाँ भगवान्में स्वाभाविक ही होती हैं। योगी और भक्तलोगोंको वे प्रयत्नसाध्य हैं। स्वयं भगवान् सदाशिव चिदम्बर नामसे प्रकट हुए थे। उनका अद्भुत दैवी सामर्थ्य शीघ्र ही प्रकट होने लगा। उनकी अलौकिक लीलाएँ प्रथम माता-पिताके देखनेमें आने लगीं। पाँच वर्षकी अवस्थामें पिताने इन्हें 'ॐ नमः सिद्धम्' का पाठ—जो कि महाराष्ट्र-प्रान्तमें विद्यारम्भके समय प्रत्येक विद्यार्थीको दिया जाता है—दिया। ॐकारके श्रवणकी ही देरी थी कि बालक चिदम्बरने चारों वेदोंकी ऋचाएँ पिताको सुना दीं। चिदम्बरके बाद मार्तण्ड दीक्षितके प्रभाकर नामका पुत्र और शेषा नामकी कन्या हुई। प्रभाकर शेषके अवतार कहे जाते हैं। तीनों ही बालक अपनी बाल-लीलाओंसे माता-पिताको आह्लाद प्रदान करते थे।

छः वर्षकी अवस्थामें चिदम्बरका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ। ये कभी वेदाध्ययन नहीं करते थे, इससे पिताको बड़ा कष्ट होता था। एक समय ये पिताके पास जाकर संस्कृतमें बातें करने लगे। कण्वशाखाके कुछ पद-क्रमों, यजुर्वेदके ध्यान और स्वरूपका भी स्पष्टीकरण कर दिया और बालस्वभावानुरूप साथियोंमें दौड़कर खेलमें मस्त हो गये। अन्य बालकोंको इकट्ठा करके ये शिवलिङ्ग-पूजाका खेल खेला करते और अन्तमें मिट्टी तथा कङ्कड़ोंको प्रसादस्वरूप उनमें बाँट देते थे; मिट्टीकी चीनी और कङ्कड़ोंके पेड़े हो जाया करते थे। इन बातोंको बच्चोंके मुखसे सुनकर सबलोग इस विलक्षण बालकके दर्शनार्थ आ जाते; परन्तु अपने बच्चेको कहीं नजर न लग जाय, यही डर मार्तण्ड दीक्षित और लक्ष्मीबाईको सदा लगा रहता था।

पासके होसुर ग्राममें 'गज-गौरीव्रत' की कथा कहनेको अपने एक भक्तके यहाँ मार्तण्ड दीक्षितने चिदम्बरको भेज दिया था। उस व्रतमें मिट्टीके हाथीपर मिट्टीकी ही गौरीकी मूर्ति बैठाकर स्त्रियाँ उसका पूजन करती हैं और उत्सव मनाती हैं। पूजाके समय इन्होंने बीज-मन्त्रके सहित प्राणप्रतिष्ठाके मन्त्रोंका उच्चारणकर ज्यों ही अक्षत उस हाथीपर फेंके कि उसके अन्दर चैतन्यशक्ति प्रकट हो गयी।

ब्रह्मचर्य-व्रतके बारह वर्ष पूर्ण होनेपर चिदम्बर प्रभुका पहला विवाह सरस्वती नामकी कन्याके साथ हुआ। इस विवाहमें भवानीसहित शङ्करने प्रकट होकर वधू-वरपर मंगल-अक्षत डाले। कुछ दिनोंके बाद इनका दूसरा विवाह सावित्री नामकी कन्यासे हुआ। दोनों स्त्रियोंसे इन्हें छः पुत्र हुए।

गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेके थोड़े ही दिनों बाद इन्हें माता-पिताका वियोग हुआ। शास्त्रानुकूल गृहस्थाश्रमका पालन करते हुए चिदम्बर प्रभुने अनेक लोगोंपर अनुग्रह करके उन्हें ईश्वर-भक्तिमें लगाया और अनेक चमत्कार दिखलाये। एक समय मुरगोडमें दिनके बारह बजे एक ब्राह्मणकी हत्या हो गयी, उसी समय उस ग्रामको छोड़कर आप बारह मील दूर मलप्रभा-नदीके तटपर जा बसे। वहींपर आगे चलकर बहुत-से लोग प्रभुकी सेवामें आकर रहने लगे। वर्तमान 'गुर्लहोसुर' गाँव उसी जगहपर बसा हुआ है। 'गुरुगल होस ऊरु' 'गुर्लहोसुर' का शुद्ध रूप है, जिसका कनाडी-भाषामें 'गुरुका बसाया हुआ नया गाँव' यह अर्थ होता है। पेशवाओंके सरदार रास्ते, गोखले, फडनवीस आदिकी कोठियोंके ध्वंसावशेष अद्यावधि वहाँपर देखनेको मिलते हैं (महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सङ्गीत-नाटककार कै० अण्णा किर्लोस्कर, सुप्रसिद्ध वेदान्ती कै० बाबा गर्दे और वर्तमान समयके प्रसिद्ध किर्लोस्कर-ब्रदर्स इसी गुर्लहोसुरके निवासी थे)।

इस नये स्थानपर प्रभुने एक बड़ा भारी यज्ञ किया। एक दिन यज्ञमें समयपर घी न पहुँचनेके कारण घीकी कमी हो गयी। उस समय नदीमेंसे छत्तीस घड़े पानी निकलवाकर बरताया गया, जो बिल्कुल घी ही था। बादमें घीके जब छत्तीस घड़े यज्ञशालामें आ गये तब उनको नदीमें डलवाया गया।

चिदम्बर प्रभुकी लीलाएँ अगाध, अपार और अनन्त हैं। हजारों नहीं, लाखों लोगोंको इन्होंने नव-जीवन प्रदान किया, कामनावालोंकी कामनाएँ पूर्णकर उन्हें मोक्षका अधिकारी बना दिया, निष्काम मुमुक्षुओंको दर्शनके साथ ही निज

स्वरूपका दर्शन कराके निजानन्दका लाभ करा दिया और सिद्ध पुरुषोंको तो ये साक्षात् सच्चिदानन्दरूप ही दिखायी देते थे। वृद्ध, मुमुक्षु एवं साधक पुरुषोंकी भाँति सिद्धकोटिके महात्मा तथा देवतागण भी चिदम्बर प्रभुके दर्शनार्थ आया करते थे। अक्कलकोटके प्रसिद्ध स्वामी महाराज इनके यज्ञ-समारम्भमें घी परोसनेका कार्य किया करते थे। चिदम्बर प्रभुकी अवतार-लीला पूर्ण होनेपर अक्कलकोटके महाराजने अपना अवतार प्रकट किया। लीला-संवरण करनेके कुछ दिन पहले चिदम्बर प्रभु अपने मूल-स्थान मुरगोडमें आकर रहने लगे थे। वहाँपर भी उन्होंने अनेक लीलाएँ करके लोगोंका उद्धार किया। जड-द्रव्यावलम्बी राजशक्तिकी अपेक्षा धर्मावलम्बी अथवा धर्मप्रसविनी दैवी शक्ति अति उच्च एवं अति सामर्थ्यवान् होती है, इसका लोगोंको अनुभव कराकर प्रभुने उन्हें धर्मपरायण बनाया।

चाहे कोई कैसा भी महापुरुष अथवा ईश्वर-अवतार ही क्यों न हो, इस मर्त्यलोकके कायदेके अनुसार—निसर्ग-नियमके अनुसार—उसे यहाँसे अवश्य कूच करना पड़ता है। जिसप्रकार राजा अपने कायदोंका स्वयं पालन करता है, उनका उल्लङ्घन नहीं करता, इसी प्रकार अवतारी पुरुष भी अपने ही बनाये हुए नियमोंका उल्लङ्घन न कर तदनुसार ही चलते हैं। अतः 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ' चिदम्बर प्रभुने इहलोककी लीला संवत् १८७३ माघकृष्ण ४ के दिन समाप्त की।*

शिव-पूजाका फल

'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रकी महिमा

(दाशार्ह राजाकी कथा)

मथुरा-नगरमें दाशार्ह नामक एक यदुवंशी राजा राज करता था। वह बड़ा ही गुणवान्, उदार और शूर था। उसके राज्यमें प्रजा और ब्राह्मण बहुत ही सुख-शान्तिसे रहते थे। पड़ोसके राजा उसका लोहा मानते थे। राजाकी स्त्री भी अत्यन्त रूपवती और परम पतिव्रता थी। उसका नाम कलावती था। एक दिन राजा कामातुर हो अपनी रानीके पास रङ्गमहलमें गया। रानी उस दिन व्रत करके शिवकी उपासनामें रत थी। उसने राजाको अपने पास आनेसे मना किया, क्योंकि शास्त्रका आदेश है कि व्रतस्थ स्त्रीके साथ पुरुषका समागम नहीं होना चाहिये। परन्तु राजाने न माना, वह ज़बरदस्ती रानीका आलिङ्गन करनेके लिये आगे बढ़ा। किन्तु जैसे ही रानीके समीप पहुँचा उसके (रानीके) शरीरके तापसे वह जलने लगा। तब उसने चकित होकर इस तापका कारण पूछा! रानीने उत्तर दिया—'महाराज! मैंने शिव-मन्त्रकी दीक्षा ली है, उसीके जपकी यह महिमा है कि कोई भी मनुष्य मुझे व्रतसे च्युत नहीं कर सकता। आप भी चाहें तो गर्ग-मुनिसे इस मन्त्रकी दीक्षा ले अपनेको निष्पाप और सुरक्षित बना सकते हैं।

कलावतीके मुखसे इस बातको सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न हुआ और गर्ग-मुनिके आश्रममें पहुँचा। मुनिको साष्टाङ्ग प्रणामकर राजाने शिव-षडक्षरी मन्त्रके उपदेशके लिये उनसे प्रार्थना की। मुनिने राजाको यमुनामें स्नान करवाकर शिवकी षोडशोपचार पूजा करवायी। तत्पश्चात् राजाने मुनिका दिव्य रत्नोंसे अभिषेक किया। इससे प्रसन्न हो मुनिने अपना वरद हस्त राजाके मस्तकपर रक्खा और उसे षडक्षरी मन्त्रका उपदेश दिया। मन्त्रके कानमें पड़ते ही राजाके हृदयाकाशमें ज्ञान-सूर्यका उदय हुआ और उनका अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया। उस मन्त्रका ऐसा विलक्षण प्रभाव दिखलायी दिया कि क्षणभरमें राजाके सारे पाप उसके शरीरसे कौओंके रूपमें बाहर निकल पड़े। उनमेंसे कितनोंके पंख जले हुए थे और कितने तड़फड़ाकर ज़मीन-पर गिरते जाते थे। जिसप्रकार दावाग्निसे कण्टक-वन दग्ध हो जाता है वैसे ही पापरूप कौओंके भस्मीभूत होनेसे राजा-को महान् आश्चर्य हुआ। उसने गर्ग-मुनिसे पूछा कि 'एका-

* श्रीचिदम्बर प्रभुकी विस्तृत जीवनी आयी थी, परन्तु स्थानाभावके कारण उसका सारमात्र यहाँपर दिया गया है।
—सम्पादक

दाशार्ह राजाके पापनाश

भद्रायुको जीवनप्राप्ति
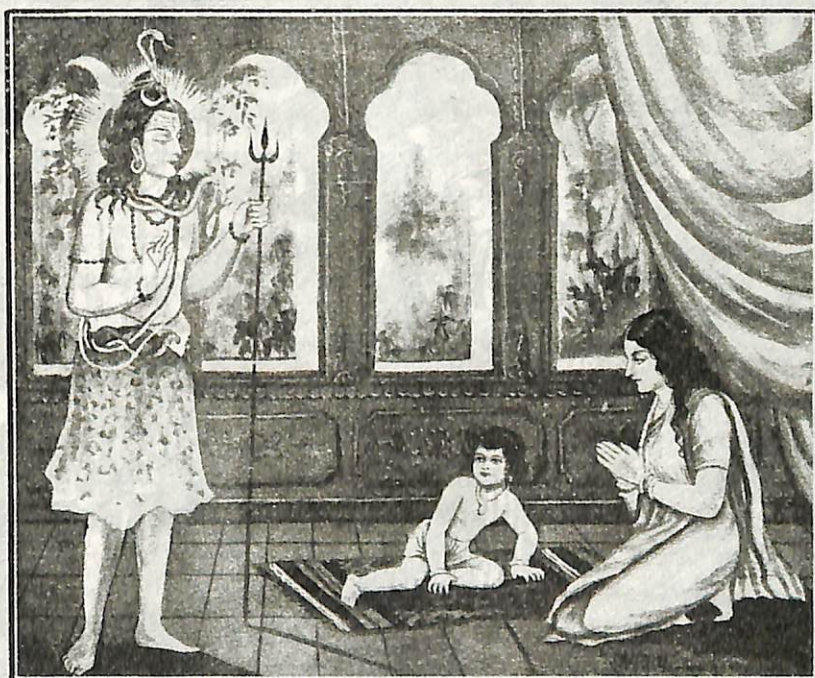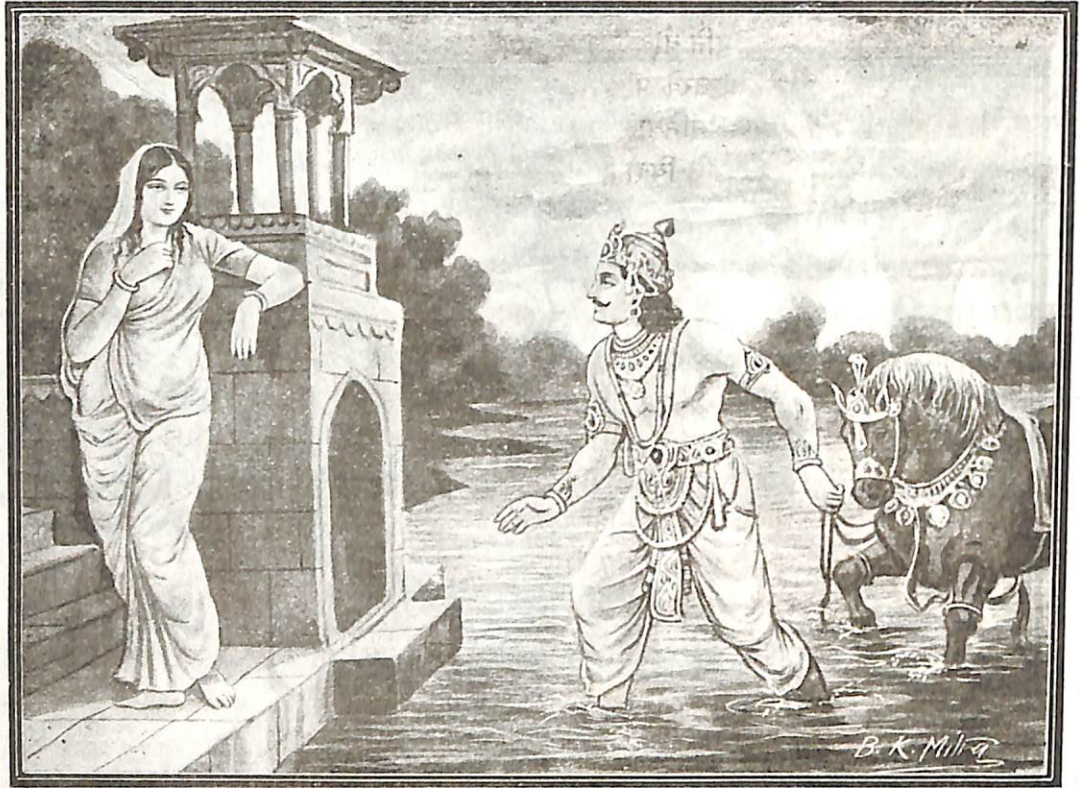
चित्राङ्गद और सीमन्तिनी

सुधर्माकी यमपाशसे मुक्ति

एक मेरा शरीर ऐसा दिव्य कैसे हो गया?' मुनि बोले—'ये जो कौए तुम्हारे देहसे निकले हैं सो जन्म-जन्मान्तरके पाप हैं। राजाने शिव-मन्त्रके उपदेशके द्वारा निष्पाप बनानेवाले उन परमगुरु गर्गमुनिको बारम्बार प्रणामकर उनसे विदा माँग अपने घरको प्रस्थान किया।

सोमवार-व्रत-महिमा

(सीमन्तिनीकी कथा)

प्राचीन कालमें आर्यावर्त-देशमें चित्रवर्मा नामके प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। उनको एक परम रूप, गुण, शीलसे युक्त सीमन्तिनी नाम्नी कन्या थी। एक दिन उस कन्यासे किसी सखीने आकर कहा कि 'ज्योतिषीने यह भविष्य बतलाया है कि चौदह वर्षकी उम्रमें ही सीमन्तिनी विधवा हो जायगी।' यह सुनकर सीमन्तिनीको बड़ा दुःख हुआ और उसने याज्ञवल्क्यकी परम साध्वी भार्या मैत्रेयीकी शरण ली। मैत्रेयीने उसे धीरज देकर सोमवार-व्रत और शिवपञ्चाक्षरीके जपका उपदेश दिया। उसकी आज्ञानुसार सीमन्तिनी व्रत करने लगी। कुछ ही दिनोंमें नल राजाके नाती चित्राङ्गदके साथ उसका ब्याह हुआ।

एक दिन चित्राङ्गद एक बड़ी सेना साथ ले शिकार खेलने निकला। यमुनाके किनारे पहुँच उसने एक नौका ली और अकेला जलक्रीड़ा करने लगा। अचानक एक भयङ्कर तूफान आया और उस नौकाको मँझधारमें ले जाकर डुबो दिया। सीमन्तिनीके शोकका पारावार न रहा। इस दुःखद समाचारके सुनते ही वह मूर्च्छित हो गिर पड़ी। दैव-दुर्विपाकसे शत्रुओंने चित्राङ्गदके राज्यको हरण कर लिया। सीमन्तिनीको उन्होंने कैदकर कारागारमें डाल दिया। परन्तु सीमन्तिनीने अपना व्रत न छोड़ा, वह दिन-रात शिव-स्मरण करती रही। इसप्रकार तीन वर्ष बीत गये।

उधर यमुनामें डूबा हुआ चित्राङ्गद नाग-कन्याओंके द्वारा पाताललोक पहुँचा। वहाँके राजा तक्षकको जब मालूम हुआ कि परम शिवभक्त चित्राङ्गद यही है तो वह उसपर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने चित्राङ्गदसे कहा कि 'परम-कृपालु शिवकी भक्ति करनेसे कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ, तू जो चाहे माँग ले।' चित्राङ्गदने कहा—'मैं अपने माता-पिताका एक ही पुत्र हूँ, मुझे उनके चरणोंके दर्शन करनेकी बहुत ही प्रबल इच्छा है। मेरी भक्तिमती रानी सीमन्तिनी मेरे बिना प्राण-त्याग कर देगी, इसलिये आप कृपाकर शीघ्र-से-शीघ्र मुझे घर पहुँचा दीजिये।' नागराजने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि 'जाओ, तुम्हें बारह हजार हस्तीका बल प्राप्त हो जायगा' और एक घोड़ा तथा चिन्तामणि प्रदानकर एक सर्पके द्वारा उसे यमुनाके किनारे पहुँचा दिया।

यमुनाके किनारे शिवपूजामें रत सीमन्तिनीको शिवकी कृपासे सौभाग्यकी प्राप्ति हुई। उसने अपने सामने पूर्वापेक्षा अधिक तेजस्वी और रूपवान् चित्राङ्गदको देखा और विस्मयके कारण हक्कीबक्की-सी रह गयी! सोमवार-व्रतकी महिमा धन्य है! चित्राङ्गदको शिवकी कृपासे खोया हुआ राज्य भी प्राप्त हो गया और सीमन्तिनीके साथ अनेकों बरसोंतक वह राज्य करता रहा।

मृत्युञ्जय-मन्त्र-महिमा

(भद्रायु और कीर्तिमालिनीकी कथा)

दशार्ण-देशके राजा वज्रबाहुकी सुमति नामकी एक रानी थी। उसकी गर्भावस्थामें ही सौतोंने उसे विष दे दिया। भगवत्-प्रेरणासे उसका गर्भपात तो नहीं हुआ, परन्तु उसके शरीरमें व्रण रह आये। उसको जो बच्चा पैदा हुआ उसका शरीर भी व्रणसे भरा था। दोनों माँ-बेटेके शरीर घावोंसे भर गये। राजाने अनेकों प्रकारके उपचार किये, परन्तु कुछ भी लाभ होते न देख निराश हो अपनी अन्यान्य स्त्रियोंकी सलाहसे, जो सुमतिसे द्वेष रखती थीं, रानीको उसके बच्चेके साथ वनमें छुड़वा दिया। वह वहाँ छोटी-सी कुटिया बनाकर रहने लगी। वनमें सुमतिको दुःसह कष्ट होने लगे, शरीरकी पीड़ासे उसे बारम्बार मूर्च्छा आने लगी, उसका बच्चा तो पहले ही स्वर्ग सिधार गया।

उसे जब होश आया तो वह बहुत ही कातरभावसे भगवान् शङ्करसे प्रार्थना करने लगी—'हे प्रभो! आप सर्वव्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, दीन-दुःखहारी हैं, मैं आपकी शरण आयी हूँ, अब मुझे केवल आपका ही भरोसा है।' उसकी इस कातरवाणीको सुनते ही करुणामय आशुतोषका सिंहासन डोल उठा। शीघ्र ही शिवयोगी वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने सुमतिको मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप करनेको कहा और अभिमन्त्रित भस्मको उसकी तथा उसके बच्चेकी देहमें लगा दिया। लगाते ही उसकी सारी व्यथा दूर हो गयी और बच्चा भी प्रसन्न-मुख हो जी उठा। सुमतिने शिवयोगीकी शरण ली। शिवयोगीने बच्चेका नाम भद्रायु रक्खा।

सुमति और भद्रायु दोनों मृत्युञ्जय-मन्त्रका जप करने लगे और इधर राजा वज्रबाहुको अपनी निर्दोष पत्नी और अनाथ बच्चेको व्यर्थ कष्ट पहुँचानेका फल मिला। उसके राज्यको शत्रुओंने हड़प कर लिया और उसे बन्दीगृहमें डाल दिया।

एक दिन भद्रायुके मन्त्र-जपसे प्रसन्न हो शिवयोगी प्रकट हुए। उन्होंने उसे एक खड्ग और एक शंख दिया और बारह हजार हस्तीका बल देकर वे अन्तर्धान हो गये। भद्रायुने चढ़ाई करके अपने पिताके शत्रुओंको मार भगाया और पैतृक राज्यको अधिकृतकर पिताको बन्दीगृहसे छुड़ाया। उसका यश चारों ओर फैल गया। चित्राङ्गद और सीमन्तिनीने अपनी कन्या कीर्तिमालिनीका ब्याह भद्रायुके साथ कर दिया।

भद्रायुने शिवपूजा करते हुए सहस्रों वर्षोंतक सुख-पूर्वक प्रजाको सुख-शान्ति पहुँचाते हुए राज्य किया और अन्तमें शिवसायुज्यको प्राप्त हुआ। यह मृत्युञ्जय-मन्त्रके जपकी महान् महिमा है।

रुद्राभिषेक और रुद्राक्षकी महिमा

काश्मीर-देशके भद्रसेन राजाका पुत्र सुधर्मा और मन्त्रिपुत्र तारक दोनों ही महान् शिवभक्त और पितृभक्त थे। दोनों ही नित्य सर्वाङ्गमें विभूति धारण करते, गलेमें रुद्राक्ष-की माला पहनते और सदा शिवपूजनमें लगे रहते। एक बार महामुनि पराशरजी राजाके यहाँ पधारे। उनसे राजाको यह विदित हुआ कि सुधर्माकी आजसे सातवें दिन अकाल-मृत्यु होनेवाली है। इससे राजाको बड़ा शोक हुआ। राजाके पूछनेपर पराशरजीने बतलाया कि 'यदि दस हजार रुद्रावर्तनसे शङ्करपर अभिषेकधारा चढ़ायी जाय तो तुम्हारे पुत्रकी अपमृत्यु टल सकती है।' श्रीशिवजीकी कृपासे कुछ भी असम्भव नहीं है। मुनिके वचनसे राजाको कुछ आश्वासन मिला। राजाने हजारों ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर उनके द्वारा रुद्राभिषेक प्रारम्भ करवा दिया। सातवें दिन दोपहरके समय सुधर्माकी मृत्यु हो गयी। पराशरमुनिने रुद्राभिषेकके तीर्थसे सुधर्माके मृत शरीरको सींचा और पवित्र मन्त्रीकृत रुद्राक्षके द्वारा कुछ तीर्थ उसके मुँहमें डाला। शङ्करकी कृपासे राजकुमारके प्राण लौट आये। पूछनेपर राजकुमारने बतलाया कि 'मुझे यमराज ले जा रहे थे, इतनेमें ही अकस्मात् एक तेजोमयी श्वेतकाय जटाजूटधारी मूर्तिने प्रकट होकर यमराजको फटकारा और मुझे उनसे छुड़ा लिया। यमराज मुझे छोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।' राजपरिवारमें आनन्द छा गया। सबलोग शिव-भक्तिमें लग गये। राजपुत्र सुधर्मा और मन्त्रिपुत्र तारकने शिवभक्तिका खूब प्रचार किया।

प्रदोष-व्रतकी महिमा

(धर्मगुप्तकी कथा)

विदर्भ-देशमें सत्यरथ नामके एक परम शिवभक्त, पराक्रमी और तेजस्वी राजा हो गये हैं। उन्होंने अनेकों वर्ष राज्य किया, परन्तु किसी दिन भी शिवपूजनमें अन्तर न आने दिया।

एक बार शाल्वदेशके राजाने दूसरे कई राजाओंको साथ ले विदर्भपर चढ़ाई की। सात दिनतक घनघोर युद्ध होता रहा; आखिर दैवगतिसे सत्यरथको हारना पड़ा। वे कहीं निकल गये। शत्रु नगरमें घुस पड़े। रानीको जब यह समाचार मालूम हुआ तो वह भी चुपकेसे महलसे निकल पड़ी और उसने जंगलका रास्ता लिया। राजमहलमें रहनेवाली रानी नाना प्रकारके कष्टोंको सहती हुई वनमें बढ़ी चली जा रही थी, उसको नौ मासका गर्भ था। अचानक एक दिन अरण्यमें ही उसे एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। बच्चेको वहाँ ही अकेला छोड़कर वह प्यासके मारे पानीके लिये वनमें एक सरोवरके पास गयी और वहाँ एक मगर उसे निगल गया।

उसी समय उमा नामकी एक ब्राह्मणी विधवा अपने एक वर्षके बालकको गोदमें लिये उसी रास्तेसे होकर निकली। उसे बिना नाल कटे हुए उस बच्चेको देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी कि यदि इस बच्चेको अपने घर ले जाऊँ तो लोग मुझे नावँ धरेंगे और न ले जाऊँ तो इसे यहीं बाघ-शेर खा जायँगे। इसी समय भगवान् शङ्कर वहाँ प्रकट हुए और उस विधवासे कहने लगे—'इस बच्चेको तू अपने घर ले जा, यह राजपुत्र है। अपने पुत्रके समान ही इसकी रक्षा करना और लोगोंमें इस बातको प्रकट न करना, इससे तेरे भाग्यका उदय होगा।' इतना कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मणीने अपने पुत्रका नाम शुचिव्रत और राजपुत्रका नाम धर्मगुप्त रक्खा।

यह विधवा दोनोंको साथ ले उस बच्चेके माता-पिताको ढूँढ़ने लगी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते शाण्डिल्य ऋषिके आश्रममें

उमा ब्राह्मणीपर शिवकी कृपा

ब्रह्मराक्षसकी मुक्ति

भस्मासुर-भस्म
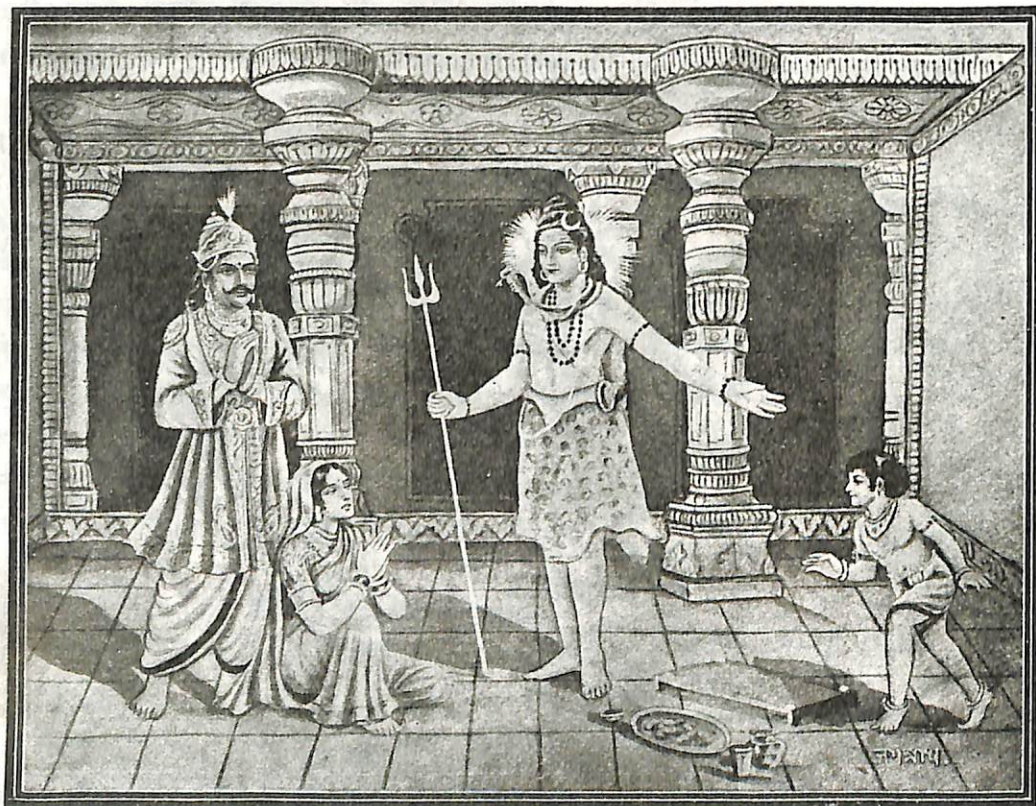
श्रियाल राजापर कृपा

पहुँची। ऋषिने बतलाया कि 'राजा सत्यरथका देहान्त हो गया है। पूर्वजन्ममें प्रदोष-व्रतको अधूरा छोड़नेके कारण ही उसकी ऐसी गति हुई है। रानीने पूर्वजन्ममें अपनी सौतको मारा था, उसीने इस जन्ममें मगरके रूपमें इससे बदला लिया।'

ब्राह्मणीने दोनों बच्चोंको ऋषिके पैरोंपर डाल दिया। ऋषिने उन्हें शिवपञ्चाक्षरी मन्त्र देकर प्रदोष-व्रत करनेका उपदेश दिया। इसके बाद उन्होंने ऋषिका आश्रम छोड़कर एकचक्रा नगरीमें निवास किया और वहाँ वे चार महीनेतक शिवाराधन करते रहे। दैवात् एक दिन शुचिव्रतको नदीके तीर खेलते समय एक अशर्फियोंसे भरा स्वर्णकलश मिला, उसे लेकर वह घर आया। माताको यह देखकर अत्यन्त ही आनन्द हुआ और इसमें उसने प्रदोषकी महिमा देखी।

इसके बाद एक दिन वह दोनों लड़के वनविहारके लिये एक साथ निकले, वहाँ अंशुमती नामकी एक गन्धर्व-कन्या क्रीड़ा करती हुई उन्हें दीख पड़ी। उसने धर्मगुप्तसे कहा कि 'मैं कोद्रविण नामक गन्धर्वराजकी कन्या हूँ, श्रीशिवजीने मेरे पितासे कहा है कि अपनी कन्याको सत्यरथ राजाके पुत्र धर्मगुप्तको प्रदान कर। इसलिये तुम मुझसे ब्याह करो।'

उसने आकर मातासे यह बात कही। ब्राह्मणीने इसे शिवपूजाका फल और शाण्डिल्य मुनिका आशीर्वाद समझा। बड़े ही आनन्दसे अंशुमतीके साथ धर्मगुप्तका ब्याह हो गया। गन्धर्वराजने बहुत धन और अनेकों दास-दासी उन्हें प्रदान किये। इसके पश्चात् धर्मगुप्तने चढ़ाई करके पुनः अपने विदर्भराज्यको प्राप्त किया और सदा प्रदोष-व्रतमें शिवाराधन करते हुए वह ब्राह्मणी और उसके पुत्र शुचिव्रतके साथ सैकड़ों वर्ष सुखसे राज्य करता रहा और अन्तमें शिवलोकको पधार गया।

भस्म-महिमा

(ब्रह्मराक्षसकी मुक्ति)

एक बार दुर्जय नामक महापापी ब्रह्मराक्षस क्रौञ्च वनमें जा पहुँचा। वहाँ एक शिवभक्त योगी तप करते थे, वह राक्षस योगी महाराजको खानेके लिये दौड़ा। योगी ध्यानमग्न थे। हृदयमें भगवान् शिवके मङ्गलमय स्वरूपका ध्यान कर रहे थे। वे उसी भाँति निश्चल बैठे रहे। विकराल-वदन निर्दय राक्षसने महात्माको पकड़ लिया। परन्तु आश्चर्य! उनके अङ्गका स्पर्श होते ही राक्षस सर्वथा निष्पाप हो गया। उसकी बुद्धि परम निर्मल हो गयी। सच्चे महात्माओंके साथ भाषण और उनके दर्शन-स्पर्शका ऐसा ही शुभ फल हुआ करता है! राक्षसने विनय करके योगीजीको अपने पूर्वजन्मोंका और पापोंका हाल सुनाकर अकस्मात् विमल बुद्धि होनेका कारण पूछा। तब योगिराजने कहा कि 'हे भाई! यह भगवान् शिवजीकी विभूतिका फल है। शिवजी हमारे परम आराध्य देव हैं। उनके भस्म-स्पर्शसे ही तुम दिव्य बुद्धिको प्राप्त हुए हो। इसी भस्मके प्रतापसे अब तुम शिवधामके अधिकारी हो गये। यह सब भस्म-धारणका ही माहात्म्य है।'

शिव-भक्ति-महिमा

(श्रियाल राजाकी कथा)

एक बार नारदमुनि हाथमें वीणा लिये, हरिगुणगान करते श्रीशङ्करजीके पास पहुँचे और बोले—'भगवन्, मैंने इतने लोक देखे हैं, परन्तु कान्ति-नगरीके श्रियाल राजाके समान अतिथिवत्सल शिवभक्त किसीको नहीं देखा।' इस बातको सुनकर शङ्करजीने कुरूप अघोरी वेष बना उस राजाके पास जाकर आँखें लाल करके खानेको माँगा और इसी सिलसिलेमें किसी बहाने उनके लड़केको मरवा दिया। रानी और राजाको इससे कुछ भी शोक नहीं हुआ, उन्होंने अतिथि-सेवामें कोई त्रुटि न आने दी।

भगवान् शङ्कर यह सब लीला देख-देखकर मन-ही-मन प्रसन्न हो उनके अतिथि-सत्कारकी प्रशंसा कर रहे थे। जब रसोई तैयार हो गयी तो वह यह कहते हुए लौटने लगे कि 'तुम पुत्रहीनोंके यहाँ मैं भोजन नहीं करूँगा।' अब तो अतिथिको रूठे देख राजा और रानी बहुत घबड़ाये, उन्होंने इस सङ्कटसे बचानेके लिये भगवान् शिवसे प्रार्थना की। कुरूप मनुष्य तुरन्त शिवजीके रूपमें बदल गया और बोला, 'तुम अपने पुत्रको जोरसे पुकारो।' उन्होंने वैसा ही किया और शिवकी दयासे वह मृत पुत्र और भी तेज-युक्त होकर हँसता हुआ उनके सामने उपस्थित हो गया। कान्ति-नगरीमें चारों ओर आनन्दकी धारा बह निकली। शिवलोकसे तत्काल ही एक दिव्य विमान उतरा और राजा-रानी तथा बच्चेको लेकर कैलासको चला गया। शिव-भक्तिकी ऐसी ही महामहिमा है।

शिवके प्रति कृतघ्नताका फल

एक राक्षस बड़ा स्वार्थी था, वह स्वार्थ-साधनेके लिये शिवकी उपासना करने लगा। वह रोज चिता-भस्म लाता और शिवजीके चढ़ाकर उनकी पूजा करता। इसीसे उसका नाम भस्मासुर पड़ गया। औढरदानी आशुतोष सर्वान्तर्यामी होनेपर भी राक्षसके मनकी बुरी नीयतका कुछ भी खयाल न कर उसके सामने प्रकट हो गये और बोले कि 'मनमाना वर माँग ले।' राक्षसने कहा—'महाराज! मैं जिसके सिरपर हाथ रक्खूँ वही भस्म हो जाय! बस, मुझे तो यही चाहिये।' भगवान् भोलेनाथने 'तथास्तु' कह दिया। राक्षस मनमाना दुर्लभ वर पाकर उन्मत्त हो उठा। देवता घबराये। इधर भस्मासुरने भगवान् शिवजीके पास जाकर कहा कि 'मैं तो पहले तुम्हारे ही सिरपर हाथ रखकर वरकी परीक्षा करूँगा।' शिवजीने बहुत समझाया-बुझाया, परन्तु दुष्ट राक्षसने उनकी एक भी न सुनी। उसके मनमें भगवती पार्वतीजीपर पाप आ गया और वह शिवजीको भस्म करके अपना मतलब साधनेकी चेष्टा करने लगा। भगवान् चाहते तो उसे भस्म कर सकते थे, अथवा उसकी शक्तिका ही हरण कर सकते थे, परन्तु उन्होंने यह सब कुछ भी नहीं किया और अपने दिये हुए वरदानकी सत्यता सिद्ध कर दिखानेके लिये डरकर भागनेका-सा स्वांग रचा। श्रीशिवजीके साथ इसप्रकार औद्धत्य और कृतघ्नता करना शिवजीके ही अभिन्न स्वरूप भगवान् विष्णुको असह्य हो गया, परन्तु उन्हें भी शिवजीके वरदानका खयाल था। इसलिये वे अन्य उपायोंसे काम न लेकर मोहिनीरूप बनकर राक्षसके सामने प्रकट हो गये। राक्षस तो उन्हें देखते ही मोहित हो गया। मोहिनीरूप भगवान् उसके सामने नाचने लगे और वह मोहित हुआ उन्हींका अनुकरण करने लगा। नाचते-नाचते मोहिनीने अपना हाथ सिरपर रक्खा—उसीकी देखा-देखी मोहित असुरने भी अपना हाथ सिरपर रख लिया। हाथ रखना था कि तत्काल उसके अंगसे आगकी लपटें निकलने लगीं और बात-की-बातमें वह जलकर भस्म हो गया। भस्मासुर नामकी सार्थकता सिद्ध हुई और शिवके प्रति कृतघ्नताका फल प्रकट हो गया।

बोलो भगवान् भोलानाथकी जय!

ताण्डव

भूतनाथ! वह नृत्य तुम्हें आता है स्मृतिमें
जिसकी उपमा मिली नहीं अबतक संसृतिमें।
दक्षसुता अपमान देख होते निज पतिका
सती सती हो, दिया प्रखर परिचय निज रतिका।
टूटी गहन समाधि, खुले दृग, तोड़ा आसन
छोड़ा चर्म त्रिशूल विशाल पिनाक शरासन।
दौड़े संभ्रमसहित कँपी अचला जोरोंसे
लगे परस्पर टकराने भूधर शिखरोंसे।
डोले फण शत शेषनागके अधो-भुवनमें
एक दूसरेसे उलझीं शाखायें वनमें।
फैली श्यामल जटा व्योममें प्रलय-जलद-सी
डमरू डिम-डिम सुनी गयी थी गाज निनद-सी।
गिरी तारकायें थीं सित गंगा-शीकरकी
श्वेत तड़ित-द्युति मिली कान्तिसे थी शशधरकी।
गिरे फणी फुफकार मार बन्धनसे नभके
विश्व-हव्य तव नयन हुताशन दीखे भभके।
हुआ विश्व विस्मित चिन्ताको लगी न देरी
आते, रविने एक चक्र रथकी गति फेरी।

पवन हुए निःस्पन्द भीति अन्तरमें छायी
लगी सृष्टि मिटने धाताकी बनी-बनायी।
हाहाकार मचा सुर-मानव-दानव-पुरमें
जीवन-आशा रही कहीं न किसीके उरमें।
भयने पायी विजय किसीमें रहा न साहस
जो समीप जा करे प्रणत हो तुम्हें दयावश।
प्रलयंकर उस भीषणतम तेरे नर्त्तनसे
लगा नाश-ही-नाश दीखने परिवर्त्तनसे।
देवोंने मिल किया विचार चलें सब मिलकर
होंगे स्तुतिसे सन्तोषित अवश्य ही शंकर।
हरि-वनमाला मिली धरासे झट तदनन्तर
मिले इन्द्र-शिर सुमन रेणु, रज, रहा न अन्तर।
कितने विकसित कर-सरोज बदले कलियोंमें
आशुतोष! तुमने रोकी गति भ्रू वलियोंमें।
रोका अपना वेग सम्हाला सारा साधन
देखा अपना रूप और आयतिका बन्धन।

—रामचन्द्र मिश्र 'मोहन'

शिवमहिम्नःस्तव

(लेखक—प्रोफेसर श्रीरामेश्वर गौरीशङ्कर ओझा, एम० ए०, अजमेर)

'महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।'

अत्यन्त प्राचीन कालसे भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश रहा है। संसारके देशोंमें सबसे पहले यहींके निवासियोंने धर्मके वास्तविक तत्त्वको समझा था। इस देशका धार्मिक साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। समयकी आवश्यकताके अनुसार इसमें परिवर्तन होते रहे हैं। पौराणिक कालसे स्तवसम्बन्धी साहित्यका विशेष प्रचार होने लगा। संस्कृत-भाषामें देवी-देवताओंके हजारों स्तोत्र रचे गये। आज भी सैकड़ों प्राचीन स्तव उपलब्ध हैं।[1] स्तवसंग्रहोंमें शिव, विष्णु और देवीसे सम्बन्ध रखनेवाले स्तोत्रोंकी प्रधानता है।

शिव-स्तवोंमें 'शिवमहिम्नःस्तव' बहुत प्रसिद्ध है। इस स्तवका महत्त्व इसीसे प्रकट है कि अबतक अनेक विद्वान् इसपर टीका लिख चुके हैं।[2] यजुर्वेदके रुद्राध्यायकी भाँति इस पवित्र स्तवमें धर्मप्राण हिन्दू-समाजकी अत्यधिक श्रद्धा है। भगवान् शङ्करके अभिषेकमें प्रायः इसका पाठ होता है। शायद ही कोई पठित ब्राह्मण होगा, जिसके पास 'शिवमहिम्नःस्तव'की पुस्तिका न हो। यह स्तव छोटा और इसकी भाषा सुन्दर एवं छन्द गायनोचित होनेसे इसे कण्ठाग्र करनेमें कठिनाई नहीं होती, इसलिये अनेक शिव-भक्त इस भक्ति-रस-पूर्ण स्तवको प्रायः कण्ठ कर लिया करते हैं। शिव-भक्तिसे प्रेरित होकर 'कल्याण' के सुयोग्य सञ्चालकोंने शिवाङ्क-प्रकाशनका प्रशंसनीय आयोजन किया है। शिवजीकी विश्व-व्यापिनी एवं अनन्त महिमा है और 'शिवमहिम्नःस्तव'में उसी महिमाका भलीभाँति दिग्दर्शन हुआ है; इसीलिये इन पंक्तियोंके लेखकको भी शिव-सेवाका कुछ पुण्य प्राप्त होगा, यह जानकर निम्नलिखित पंक्तियोंमें शिवमहिम्नःस्तवसम्बन्धी कुछ विचार हिन्दी-प्रेमियोंके सम्मुख रक्खे जाते हैं।

मध्य भारतके इन्दौर-नगरसे करीब ५० मील दक्षिण-पूर्वमें, मध्य प्रदेशके नीमाड़ जिलेमें ओङ्कारेश्वर (या मान्धाता) नामका पुराना क़स्बा है, जिसकी गणना भारतके प्रमुख तीर्थस्थानोंमें की जाती है। भारतके सुप्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमेंसे एक यहीं बतलाया जाता है। सन् १९३१ ई० के अप्रेल मासमें मैंने ओङ्कारेश्वर जाकर वहाँके प्राचीन देवालयोंका दर्शन किया। वहाँ ममलेश्वर नामका एक शिवालय है। ज्योतिर्लिङ्गोंकी गणनाके श्लोकोंमें 'उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम्' इस श्लोकार्धके 'ओङ्कार-ममलेश्वरम्'की सन्धि पृथक् करनेसे 'ओङ्कारम्+अमलेश्वरम्' होता है। इससे सहज ही अनुमान हो सकता है कि जिसे 'ममलेश्वर' कहते हैं, उसका उपर्युक्त श्लोकांशके अनुसार शुद्ध रूप 'अमलेश्वर' या 'अमरेश्वर' (रलयोरभेदात्) होना चाहिये। इस मन्दिरमें खुदे हुए शिलालेखोंमें इसका 'अमरेश्वर' नाम मिलता है। 'ओङ्कारेश्वर' मन्दिर नर्मदाके उत्तरी तट और 'ममलेश्वर' दक्षिणी तटपर है। ओङ्कारेश्वरकी अपेक्षा अमरेश्वरका देवालय कहीं प्राचीन मालूम होता है। इसके शिल्प तथा वर्तमान स्थितिसे जान पड़ता है कि इसी शिवालयमें ज्योतिर्लिङ्गकी स्थिति होनी चाहिये। इन्दौरकी पुण्यश्लोका महारानी अहल्याबाईके समयसे अबतक अमरेश्वरमें प्रतिदिन लिङ्गार्चन होता है।

१—स्तोत्र-साहित्यके सम्बन्धमें विशेष परिचयके लिये देखिये 'दि इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली,' जिल्द १, पृ० ३४०—६०।

२—यहाँ कतिपय टीकाकारों तथा उनमेंसे कुछकी टीकाओंका नाम-निर्देश किया जाता है—अमरकण्ठ, अहोबल, उपदेव, कृष्णनृप, कैवल्यानन्द, गोपालभट्ट (स्तुतिचन्द्रिका), गोविन्दराम (महिम्नःस्तवप्रकाशिका), गोविन्दानन्द (कौमुदी), जगदीश-पञ्चानन (रहस्यप्रकाश), देवयात्मा, परमानन्द चक्रवर्ती, भगीरथ मिश्र, मधुसूदन सरस्वती, रामजीवन तर्कवागीश, रामदेव, रामानन्द तीर्थ, विश्वेश्वर सरस्वती, बोपदेव (पञ्जिका-द्व्यर्थी), शङ्कर, श्रीकृष्ण तर्कालङ्कार, श्रीधरस्वामी (शिवविष्णुपक्षोभयार्थिका महिम्नःस्तवटीका) और हरगोविन्द शर्मा (वैष्णवी)।

(ऑफ्रेक्ट; कॅटॅलॉगस् कॅटॅलॉगरम्; जि० १, पृ० ४४४; जि० २, पृ० १०२ और जि० ३, पृ० ९६ ।)

इस मन्दिरके सभामण्डप और गर्भगृहके बीच एक कमरा बना हुआ है, जिसमें दिनमें भी अँधेरा रहता है। इसकी दाहिनी और बायीं ओरकी दीवारोंपर अनेक छोटे-बड़े लेख खुदे हुए हैं, जिनमें वि० सं० ११२० (ई० स० १०६३) के चार स्तव उल्लेखनीय हैं। शेष छोटे-छोटे लेखोंमें यात्रियोंने अपने-अपने नाम खोदे हैं। उक्त चार स्तोत्रोंमें दो क्रमशः नर्मदा और अमरेश्वर महादेवके सम्बन्धके अष्टक हैं। तीसरा तिरसठ श्लोकोंका एक शिवस्तोत्र है, जिसका रचयिता बङ्गालके राढ़-प्रान्तके नवग्राम (नौगाँव) से आया हुआ हलायुध नामका पण्डित था। चौथा स्तोत्र, जो बायीं ओरकी दीवारके नीचेके भागमें खुदा हुआ है, शिवमहिम्नःस्तव है जिसका चित्र इसके साथ दिया जाता है। यह तीन फुट दस इञ्च लम्बे और एक फुट तीन इञ्च चौड़े स्थानमें देवनागरी लिपिके सुन्दर अक्षरोंकी बीस पंक्तियोंमें खुदा है। इसका समय भी वि० सं० ११२० है और इसे भट्टारक गन्धध्वजने सावधानीसे लिखा था। इसमें यत्र-तत्र लिपि-सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ दीख पड़ती[3] हैं। स्थानाभावसे यहाँ उनका निर्देश सम्भव नहीं है।

अमरेश्वर-मन्दिरसे मिली हुई शिवमहिम्नःस्तवकी इस प्रस्तराङ्कित प्रतिमें केवल इकतीस श्लोक पाये जाते हैं। ३१वें श्लोकके अनन्तर लिखा है कि 'इति श्रीमहिम्नःस्तवं समाप्तमिति'; जिससे जान पड़ता है कि आजसे ८७० वर्ष पूर्व, जब यह पवित्र स्तव वहाँ खोदा गया था, शिवमहिम्नःस्तव—आजकल प्रचलित चालीस, इकतालीस, बयालीस या तैंतालीस श्लोकोंके[4] स्थानमें—केवल इकतीस श्लोकोंका था। इसपरसे यह अनुमान असङ्गत प्रतीत नहीं होता कि इस

३—द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ (काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभाद्वारा मई सन् १९३३ ई० में प्रकाशित), पृ० २४७–६१ में मैंने शिवमहिम्नःस्तवकी इस प्रतिका सविस्तर परिचय दिया है। वहाँ लिपि-सम्बन्धी सब त्रुटियाँ बतलाकर मूल-पाठके साथ उन्हें शुद्ध किया गया है।

४—शिवमहिम्नःस्तवकी आजकलकी प्रतियोंमें इकतीसवें श्लोकके पश्चात् निम्नलिखित विशेष श्लोक न्यूनाधिक रूपमें क्रम-भेदके साथ पाये जाते हैं—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरार्चितस्येन्दुमौलेर्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगुणवरिष्ठः **पुष्पदन्ता**भिधानो रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत् पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः। अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३५॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः। महिम्नःस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः शिशुशशधरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात् स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३७॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः स्तवनमिदममोघं **पुष्पदन्त**प्रणीतम् ॥३८॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम्। अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥३९॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः। अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४०॥

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर। यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥४१॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥४२॥

श्री**पुष्पदन्त**मुखपङ्कजनिर्गतेन स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठास्थितेन पठितेन समाहितेन सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४३॥

इन श्लोकोंका पाठ निर्णयसागर-प्रेस, बम्बईसे प्रकाशित 'महिम्नःस्तोत्रम्' (मधुसूदन सरस्वतीप्रणीत शिव और विष्णु दोनोंके अर्थको प्रकट करनेवाली संस्कृत-टीकासे युक्त), छठा संस्करण (ई० स० १९३०) के अनुसार दिया गया है।
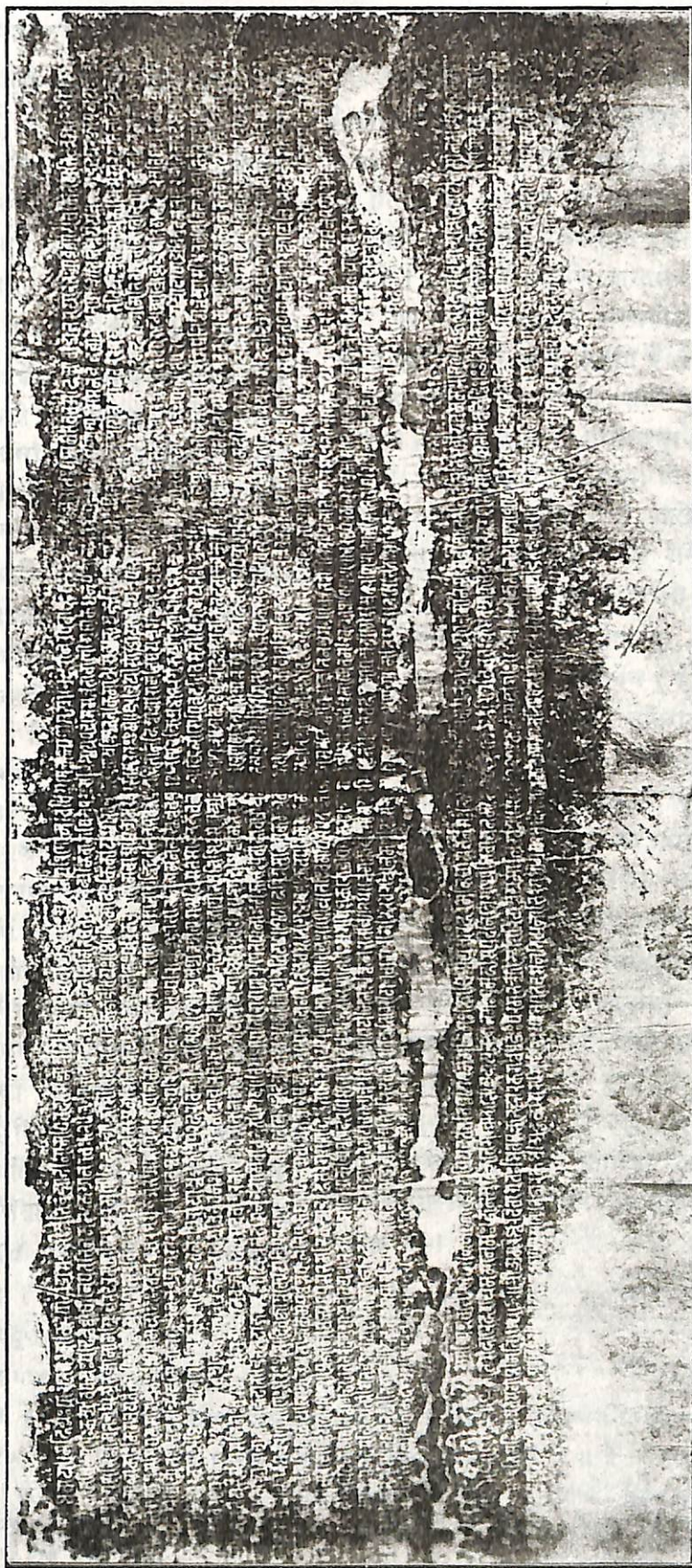
अमरेश्वर मन्दिरमें खुदा हुआ शिवमहिम्नःस्तोत्र

पवित्र स्तवमें इकतीसवेंसे आगेके श्लोक वि० सं० ११२० के पश्चात् किसी समय जोड़े गये होंगे।

शिवमहिम्नःस्तवकी प्रचलित प्रतियोंमें इसके प्रणेताके सम्बन्धमें किंवदन्ती प्रचलित है कि पुष्पदन्त नामक कोई गन्धर्वराज किसी राजाके बाग़से प्रतिदिन पुष्प तोड़ लाया करता था। यह जानकर उस राजाने सोचा कि यदि उक्त गन्धर्वराज शिव-निर्माल्यको लाँघ जाय, तो उसकी अन्तर्धान-शक्ति नष्ट हो जायगी। राजाके इस उपायसे अनभिज्ञ होनेके कारण बागमें प्रवेश करते ही पुष्पदन्त शक्ति-हीन हो गया। फिर उसे प्रणिधानद्वारा शिव-निर्माल्यको लाँघनेसे अपनी शक्तिके ह्रासका पता चला, तब शिव-महिमा और अपनी भक्तिको व्यक्त करनेके लिये उसने इस स्तोत्रकी रचना की। वर्तमान पाठके ३७वें श्लोकसे भी इस कथाका आभास मिलता है। इससे आगेके श्लोकोंमें स्तोत्र-प्रणेता पुष्पदन्तका चार बार नामोल्लेख हुआ है और प्रचलित प्रतियोंके आरम्भ एवं अन्तमें क्रमशः 'पुष्पदन्त उवाच' तथा 'श्रीपुष्पदन्तविरचितं शिवमहिम्नःस्तोत्रं सम्पूर्णम्' लिखा मिलता है, किन्तु मुझे अमरेश्वरसे मिली हुई इस प्राचीन प्रतिमें कहीं भी पुष्पदन्तका नाम नहीं है; इसलिये निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इस स्तवका रचयिता कौन था—गन्धर्वराज पुष्पदन्त अथवा अन्य कोई संस्कृतका उत्तम कवि? उदयपुरके राजघरानेमें करजालीके परम योगी महाराज चतुरसिंहजी (स्वर्गीय) ने इस स्तोत्रका मेवाड़ी भाषामें समश्लोकी अनुवाद प्रकाशित किया है। उसकी भूमिकामें उन्होंने इसकी ताड़पत्रपर लिखी हुई एक बहुत प्राचीन प्रति मिलनेका उल्लेखमात्र किया है, किन्तु उसके समय आदिका कोई निर्देश न होनेसे नहीं कह सकते कि वह इस प्रस्तराङ्कित प्रतिसे प्राचीन है अथवा नहीं। अमरेश्वरकी प्रतिसे स्तोत्र-प्रणेताका कोई पता नहीं चलता, इसलिये विज्ञ पाठक ही इस प्रश्नको हल करें कि इसका वास्तविक रचयिता कौन था?

अमरेश्वर-मन्दिरसे प्राप्त प्रतिमें केवल इकतीस श्लोक हैं, जो अनेक हस्तलिखित एवं मुद्रित प्रतियोंमें इसी क्रमसे मिलते हैं। इनसे आगेके श्लोकोंमें न्यूनाधिक्य एवं क्रम-भेद मिलता है, अतएव यह अनुमान असङ्गत न होगा कि इस पवित्र स्तोत्रके मूलपाठमें इकतीस श्लोक ही होने चाहिये। इकतीसवें श्लोकके अन्तमें 'इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम्' लिखा होनेसे अनुमान हो सकता है कि उसके कर्त्ताने इस वाक्यके साथ स्तवको समाप्त करते हुए भगवान् शङ्करके चरणोंमें अपने वाक्यरूपी पुष्प चढ़ाये हैं। यदि प्रचलित स्तवको ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय, तो इकतीसवेंसे आगेके श्लोकोंमें अर्थकी सरलता और पहलेके श्लोकोंकी भाषासे स्पष्ट अन्तर प्रतीत होता है। यह अन्तर भी इस अनुमानकी पुष्टि करता है कि ये श्लोक पीछेसे जोड़े गये हों।

देवगिरि (वर्तमान दौलताबाद, हैदराबाद राज्य) के यादव राजा कृष्ण या कृष्णदेव (ई० स० १२४७–६०) के राजत्वकालमें जैनाचार्य मुनिराज जयचन्द्रके शिष्य सोमसुन्दरने 'श्रीयुगादिदेव महिम्नःस्तव' लिखा, जिसके प्रत्येक श्लोकके अन्तिम चरणकी पूर्ति शिवमहिम्नःस्तवके प्रत्येक श्लोकके चौथे चरणसे की गयी है। कहीं-कहीं शिवस्तवके एक-एक चरणपर दो-दो श्लोक भी लिखे गये हैं। उक्त जैन-स्तोत्रमें भी इस शिव-स्तवके ३१ श्लोकोंके अन्तिम चरण ही लिये गये हैं। जिसप्रकार अमरेश्वरकी प्रतिका अन्तिम श्लोक 'वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम्'—इस चरणसे समाप्त हुआ है, उसी तरह उपर्युक्त जैनस्तवकी समाप्ति भी इसी श्लोकसे हुई है। जैनस्तवमें इकतीसवाँ श्लोक समाप्त होनेपर पुष्पिका आरम्भ होती है, जिससे जान पड़ता है कि उस स्तोत्रकी रचनाके समय—तेरहवीं शताब्दीमें—शिवमहिम्नःस्तव इकतीस श्लोकोंका ही माना जाता था।

शिवमहिम्नःस्तवके सुप्रसिद्ध टीकाकार श्रीमधुसूदन[९]

५–महिम्नःस्तोत्र (उपर्युक्त संस्करण), पृष्ठ १

६–'मेवाड़ी बोलीमें समश्लोकी महिम्नःस्तोत्र', पृ० (क)

७–इकतीसवेंसे आगेके श्लोकोंके सम्बन्धमें विशेष विवेचनके लिये देखिये 'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ', पृ० २५३।

८–जैन-ग्रन्थावली, पृ० २८७, संख्या १३६। इसमें इसका नाम 'युगादिदेव-स्तुति' दिया है।

९–मधुसूदन सरस्वती परमहंस श्रीविश्वेश्वर सरस्वती, श्रीधर सरस्वती एवं माधव सरस्वतीके शिष्य और पुरुषोत्तम सरस्वतीके गुरु थे। वे संस्कृत-भाषाके प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने अनेक संस्कृत-ग्रन्थ एवं टीकायें लिखीं, जिनके नाम यहाँ अकारादि क्रमसे पाठकोंके परिचयके लिये दिये जाते हैं—

सरस्वतीने इसपर शिव और विष्णु दोनोंके अर्थको प्रकट करनेवाली टीका लिखी, जिसे बम्बईके निर्णयसागर-प्रेसने प्रकाशित किया है। सम्भवतः वह अन्यत्र भी मुद्रित हुई हो। इसमें केवल ३६ श्लोक दिये गये हैं। उनमें भी मधुसूदन सरस्वतीने इकतीस श्लोकोंपर ही अपनी विशद व्याख्या लिखी और शेष पाँचको सुगम जानकर छोड़ दिया। निर्णयसागर-संस्करणके सम्पादकने पाद-टिप्पणीमें लिखा है—'मधुसूदन सरस्वतीने केवल इकतीस श्लोकोंपर अपनी टीका लिखी और आगेके पाँचको सरल जानकर छोड़ दिया, तो भी लोकपाठका अनुसरण कर हमने इनसे आगेके श्लोक भी दे दिये हैं।'[१०] मधुसूदन एवं अमरेश्वरके पाठका मिलान करनेसे जान पड़ता है कि दोनों एक-दूसरेसे बहुत मिलते-जुलते हैं। इससे मालूम होता है कि मधुसूदन सरस्वतीके समय (अनुमान सोलहवीं शताब्दी) तक स्तोत्रके प्राचीन पाठमें विशेष अन्तर नहीं पड़ा था। पहलेके इकतीस श्लोक मुख्य माने जाते थे और उनके आगेके माहात्म्य-सूचक पाँच गौण। समय बीतनेपर कुछ और श्लोक जोड़े गये, जिससे धीरे-धीरे यह स्तोत्र चालीस और फिर तैंतालीस श्लोकोंका बन गया।

भट्टारक गन्धध्वजने आजसे ८७० वर्ष पूर्व अमरेश्वर-मन्दिरकी दीवारपर शिवमहिम्नःस्तवको खुदवाकर अपनी शिव-भक्तिका परिचय दिया था। इससे यह अनुमान युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है कि उस समयसे कई शताब्दी पूर्व इस पवित्र स्तवकी रचना हुई होगी और उस समय-तक यह बहुत कुछ प्रसिद्धि पा चुका होगा।

काश्मीरी विद्वान् अभिनन्दके पिता जयन्त भट्ट (नवीं शताब्दी) ने स्वरचित 'न्यायमञ्जरी' में पुष्पदन्तका उल्लेख करते हुए देवीके शापसे उसके पतनका निर्देश किया है।[११] यहाँ केवल शाप देनेवालेके सम्बन्धमें मतभेद है। यदि पुष्पदन्त नामक किसी विद्वान्को स्तोत्र-प्रणेता माना जाय, तो उसका समय जयन्त भट्टके पूर्व होना चाहिये। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि पुष्पदन्त उक्त काश्मीरी विद्वान्से कितने वर्ष पूर्व हुआ, फिर भी यह अनुमान असङ्गत न होगा कि जयन्त भट्ट और पुष्पदन्तके समयमें कुछ शताब्दियोंका अन्तर होना चाहिये, अन्यथा उसके पतनकी कथाका थोड़े समयमें प्रसिद्ध होना सम्भव नहीं है।

श्रीयुत शिवप्रसाद भट्टाचार्यका अनुमान है कि शिव-महिम्नःस्तवका समय सातवीं शताब्दीसे पूर्व और दसवींके पश्चात् नहीं हो सकता।[१२] दसवीं शताब्दीके अनन्तर न होनेका कथन तो ठीक जान पड़ता है, किन्तु यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि सातवें शतकसे पूर्व शिव-महिम्नःस्तवका अस्तित्व नहीं था। यह पहले बतलाया गया है कि ई० स० १०६३ तक इसकी पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी, इसीलिये भट्टारक गन्धध्वजने अमरेश्वर मन्दिरमें इस पवित्र स्तवके तत्कालीन (मूल) पाठको खुदवाया और

---

(१) अद्वैतब्रह्मसिद्धि, (२) अद्वैतरत्नरक्षण, (३) आत्मबोध-टीका, (४) आनन्दमन्दाकिनी, (५) ऋग्वेदजटाद्यष्टविकृति-विवरण, (६) कृष्णकुतूहल नाटक, (७) प्रस्थानभेद, (८) भक्ति-सामान्यनिरूपण, (९) भगवद्गीतागूढार्थदीपिका, (१०) भगवद्गीता-तात्पर्यकारिका, (११) भगवद्भक्तिरसायन, (१२) भागवतपुराण-प्रथमश्लोकव्याख्या, (१३) भागवतपुराणाद्यश्लोकत्रयव्याख्या, (१४) महिम्नःस्तोत्रटीका, (१५) राज्ञां प्रतिबोधः, (१६) वेद-स्तुतिटीका, (१७) वेदान्तकल्पलतिका, (१८) शाण्डिल्यसूत्र-टीका, (१९) शास्त्रसिद्धान्तलेशटीका, (२०) संक्षेपशारीरक-सारसंग्रह, (२१) सर्वविद्यासिद्धान्तवर्णन, (२२) सिद्धान्ततत्त्व-बिन्दु और (२३) हरलीला-व्याख्या।

(ऑफ्रेक्ट; कॅटॅलॉगस् कॅटॅलॉगरम्, जि० १, पृ० ४२७; जि० २, पृ० ९२।)

१०—महिम्नःस्तोत्र (उपर्युक्त निर्णयसागर-संस्करण), पृ० ६३।

११—पुष्पदन्तोऽप्याह—भ्रष्टः शापेन देव्याः शिवपुर-वसतेर्वन्घहं मन्दभाग्यो भव्यं वा……।

१२—दि इण्डियन हिस्टॉरिकल कार्टर्ली, जि० १, पृ० ३५०।

उसके साथ रहनेवाले भट्टारक श्रीअङ्गदास और सुशील पण्डित आदि विद्वानोंने भी अपने नाम खुदवाकर शिवभक्तिका परिचय दिया। सातवीं शताब्दीसे पूर्व इस स्तवका अस्तित्व न होनेका कोई प्रमाण नहीं है, इसलिये सातवीं शताब्दीसे पूर्व इसका अस्तित्व असम्भव भी नहीं है।

शिवमहिम्नःस्तव बहुत प्राचीन स्तोत्र है और इन पंक्तियोंके लेखकको इसकी ८७० वर्ष पुरानी प्रति मिल गयी है, जिससे इसके प्राचीन एवं मूलपाठका पता चल सकता है। मैंने द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थमें अमरेश्वरकी प्रतिका मूल पाठ प्रकाशित किया है। आशा है शिवमहिम्नःस्तव और स्तोत्र-संग्रहोंके विद्वान् सम्पादक महोदय भविष्यमें प्रकाशित होनेवाले संस्करणोंमें पहले मूलपाठ छापकर उसके अनन्तर स्तोत्र-प्रणेता एवं माहात्म्य-सम्बन्धी श्लोकोंको उससे पृथक् स्थान देंगे, जिससे पाठकोंको मूल-पाठ एवं क्षेपकका भेद भलीभाँति मालूम हो जाय।

अन्तमें यह सूचित करना आवश्यक है कि गुजरात, नेपाल तथा राजपूतानेके कतिपय राज्यों, तञ्जौर, पूना, मद्रास, काशी, बड़ौदा, लाहौर, कलकत्ता और यूरोप एवं अमेरिकाके बड़े-बड़े पुस्तकालयोंमें हस्तलिखित संस्कृत-ग्रन्थोंके अनेक बृहत् संग्रह विद्यमान हैं; सम्भव है उनमें अथवा किसी विद्वान्के निजी संग्रहमें शिवमहिम्नःस्तवकी अमरेश्वरसे मिली हुई इस प्रस्तराङ्कित प्रतिसे प्राचीनतर प्रति विद्यमान हो और उससे मूल पाठका निश्चय करनेमें विशेष सुविधा हो सके; किन्तु जबतक इससे प्राचीनतर प्रति उपलब्ध न हो, तबतक इसीको मूल पाठकी द्योतिका मानना चाहिये।

आशा है, विज्ञ पाठक इस निबन्धको पढ़कर शिवमहिम्नःस्तवके सम्बन्धमें विशेष प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे। इन पंक्तियोंके लेखकको पाठकोंका सप्रमाण सत्परामर्श सदैव ग्राह्य होगा। अस्तु। ॐ नमः शिवाय।

शिवस्तुति

क्रतुकर! शम्भो! क्रतुकिर! अगजामित्र! प्रभो! गजामित्र!
योगिञ्जयतु वियोगिन्! कर! पालक! हर! विचित्रवैचित्र्य!॥

× × × ×

अष्टविभूति-विभूषित होकर काहेको अंगमें भूति रमाई।
थी करनी गिरिजा गृहिणी फिर काहे मनोजकी देह जलाई॥
भोले कहो तो दिगम्बर होकर कैसे पिनाकसे प्रीति बढ़ाई।
मुण्डकी माल अपूत गले धर क्यों पुनि सीसपै गंग चढ़ाई॥१॥
होके असंग भुजंगको संगम मंगलअंग अमंगल धूली।
त्याग सुधा विष पान कियो अरु भंग-धतूर चबावत फूली॥
भक्तके तीनहु शूल समूल हरो हर! क्यों फिर आप त्रिशूली।
माँगहु भीख महेश्वर होकर क्यों मति भोलेजी! आपकी भूली॥२॥
नाम त्रिलोचन, हो समलोचन, है भवनाम, करो भवहानी।
नाम है शूली, न शूल है एकहु, नाम असंग है, संग भवानी॥
नाम है कामहा, कामप्रपूर हो, नामके हो हर, कामके दानी।
नामके और हो, कामके और हो, भोले! तुम्हारी विचित्र कहानी॥३॥
शंकरनाम, भयंकर दुष्टको, नामके भीम, तथा भयहारी।
नामके शर्व, सभी जग पालक, हो पुररक्षक, नाम पुरारी॥
नाम पशूपति, हो पुरुषोत्तम, रुद्र हो, दुःखित वाष्पनिवारी।
अष्टस्वरूप, अनष्टस्वरूप हो, भोले! विचित्र है बात तुम्हारी॥४॥

वासुदेव शास्त्री

हरदत्त शिवाचार्य

(लेखक—श्रीयुत एस० एस० सूर्यनारायणजी शास्त्री, एम० ए०, रीडर, मद्रास विश्वविद्यालय)

रदत्त शिवाचार्य मद्रास-प्रान्तके तञ्जौर जिलेके अन्तर्गत कंसपुर (कञ्जनूर) ग्रामके निवासी थे । इनके माता-पिता वैष्णव थे और उन्होंने इनका नाम 'सुदर्शन' रक्खा । किन्तु इनकी बहुत छोटी अवस्थासे ही शिवोपासनाकी ओर विशेष अभिरुचि पायी गयी । बालक सुदर्शनको अपने शरीरमें भस्म रमाने तथा शिवकी स्तुति गानेका बड़ा शौक था । उसके इस 'अवैष्णव' व्यवहारसे माता-पिताको बहुत असन्तोष एवं उद्वेग होता था और आगे चलकर गाँवके सारे वैष्णव-समाजको वह खटकने लगा । एक बार जब वह निरा बालक था, मन्दिरके पास ही एक जलती हुई लोहेकी तिपाईपर बैठकर लगा शिवके परात्परत्वको सिद्ध करने । उस समय उसने जिन पद्योंकी रचना की वे 'हरिहरतारतम्य' नामक ग्रन्थके रूपमें सङ्कलित हैं । इस ग्रन्थकी अनेकों हस्तलिखित प्रतियाँ तथा कम-से-कम एक ग्रन्थलिपि (देवनागरी अक्षरों) में मुद्रित संस्करण भी उपलब्ध है। उसमेंका एक पद्य हम नमूनेके तौरपर नीचे उद्धृत करते हैं—

एको विवेश सरयूसलिलान्तराले
ह्यन्यो दधौ त्रिपथगां घटवज्जटायाम् ।
को वाऽनयोरधिक इत्यनुचिन्त्य वृद्धाः
सत्यं ब्रुवन्तु तमिमं वयमाश्रयामः ॥

अर्थात् शिव और विष्णु इन दोनोंमेंसे एक अर्थात् विष्णु तो (श्रीरामरूपसे) श्रीसरयूमें प्रवेश कर गये और दूसरे (शिव) ने माता जाह्नवीको कुम्भकी भाँति लीलासे ही अपने जटाजूटमें धारण कर लिया । अब विद्वान् लोग विचार करके बतावें कि इन दोनोंमें वास्तवमें कौन बड़ा है, ताकि हम उसीकी शरण लें ।

आचार्य हरदत्तने शिवकी परमेश्वरताको सिद्ध करनेके लिये पाँच पद्योंका एक और छोटा-सा ग्रन्थ रचा जो 'पञ्चरत्नमालिका' के नामसे प्रसिद्ध है । 'कूरेश-विजय' नामक ग्रन्थमें, जो आचार्य श्रीरामानुजके शिष्य कूरेशकी रचना बतायी जाती है, इस ग्रन्थके सिद्धान्तोंका पूरे तौरसे खण्डन किया गया है । इससे स्पष्ट है कि हरदत्त रामानुजके पूर्ववर्ती थे । यही नहीं, उस कालमें इनके सिद्धान्तोंके खण्डनकी आवश्यकता समझी गयी, इससे तो यह अनुमान होता है कि उनके और रामानुजके बीचमें बहुत अधिक व्यवधान नहीं होना चाहिये; बहुत सम्भव है कि वे रामानुजके समसामयिक तथा अवस्थामें उनसे बड़े रहे हों। लोगोंकी परम्परागत मान्यता यह है कि हरदत्तने कलियुगाब्द ३९७९ (ईस्वी सन् ८७८-७९) की पौष शुक्ला पञ्चमी भृगुवारको शरीर छोड़ा था; किन्तु गणनासे पता लगता है कि उस साल पौषशुक्ला पञ्चमीको शुक्रवार नहीं था । इनके सम्बन्धमें इसी प्रकारकी एक बात और भी कही जाती है, जिसपर सहसा विश्वास नहीं होता । वह यह है कि अपनी महाकैलास-यात्राके समय वे अपने गाँवके सभी निवासियोंको अपने साथ ले गये, केवल एक वृद्धा स्त्री बच रही, जो उस समय गणेशजीकी आराधना कर रही थी । किन्तु हरदत्तके कैलासधाम पहुँचनेके पूर्व ही गणेशजीने उस बुढ़ियाको अपनी सूँड़के सहारे श्रीशिवजीके धामको पहुँचा दिया ।

हरदत्तका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ कदाचित् 'श्रुतिसूक्तिमाला' है, जिसे 'चतुर्वेदतात्पर्यसंग्रह' भी कहते हैं । उसमें यह प्रतिपादन किया गया है कि वेदों तथा वेदान्तका पर्यवसान केवल शिव-महिमामें ही है । हरदत्तके परवर्ती श्रीकण्ठ एवं अप्पय्य दीक्षित आदि शैव ग्रन्थकारोंने इस ग्रन्थका बहुत सहारा लिया है । तिन्नेवली (Tinnevelly) की 'शैव-सिद्धान्त सोसायटी' की ओरसे इस ग्रन्थका एक देवनागरी संस्करण तामिल-भाषान्तरके साथ प्रकाशित हुआ है । इसके पूर्व भी इस ग्रन्थके कई संस्करण निकल चुके हैं । इसके अन्दर 'रुद्र' शब्दकी इसप्रकार व्युत्पत्ति की गयी है—रुजं (दुःखं) द्रावयतीति रुद्रः; अर्थात् शिव दुःखको दूर करनेवाले हैं, इसी लिये 'रुद्र' कहलाते हैं । पीछेके शैव ग्रन्थकारोंमें भी प्रायः सभीने 'रुद्र' शब्दकी यही व्युत्पत्ति की है । (प्रसङ्गवश यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि 'आपस्तम्ब-सूत्र' के प्रसिद्ध टीकाकार हरदत्त मिश्र हमारे चरित्र-नायकसे भिन्न थे । यद्यपि ये भी शैव ही थे, किन्तु

हमारे चरित्रनायकके बहुत-से विशिष्ट सिद्धान्त इनको मान्य नहीं थे, ऐसा प्रतीत होता है।) एक सिद्धान्त ऐसा और है जो हरदत्त, श्रीकण्ठ और अप्पय्य तीनोंको ही समानरूपसे सम्मत है। वह यह है कि श्रीकृष्णने योगबलके द्वारा परमेश्वर शिवका ध्यान करके अर्जुनको विश्वरूप दिखलानेकी शक्ति प्राप्त की थी। यहाँ हम एक और बातका उल्लेख करेंगे जो पाठकोंको रुचिकर प्रतीत होगी और जो शैव और वैष्णवोंके विवादका एक प्रधान विषय रहा है। यह है 'कप्यासं पुण्डरीकम्' का अर्थ। कुछ लोग इसका अर्थ करते हैं—कपि (बन्दर) के आस (चूतर)-जैसा रक्तवर्ण कमल, और दूसरे लोग उसका अर्थ करते हैं—सूर्यकी रश्मियोंद्वारा विकास-प्राप्त कमल। यह दूसरा अर्थ जो अधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है आचार्य रामानुजका किया हुआ बतलाया जाता है; किन्तु यदि हरदत्त रामानुजसे अवस्थामें बड़े थे, जैसा कि हमारा विश्वास है, तो यह श्रेय किसी शैव ग्रन्थकारको ही मिलना चाहिये। हरदत्तके उक्त ग्रन्थपर शिवलिङ्गभूपकृत एक टीका भी है, जिसे कुछ लोग भूलसे हरदत्तकृत मानते हैं। टीकाकार वास्तवमें 'कोण्डुवीडु रेड्डी' वंशके एक राजा थे जो सम्भवतः ईस्वी सन्‌की पन्द्रहवीं शताब्दीमें विद्यमान थे। जिन लोगोंकी शिवाद्वैत-सिद्धान्तमें कुछ रुचि है उनके लिये इस ग्रन्थका टीकासहित अध्ययन करना प्रयोजनीय सिद्ध होगा।*

लिङ्ग-रहस्य

(लेखक—पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत-कालेज, काशी)

जिज्ञासु—पाश्चात्य पण्डित तथा पाश्चात्य विचारोंसे प्रभावित आजकलके कोई-कोई नवशिक्षित भारत-सन्तान भारतवर्षीय उपासनाकी बात चलनेपर कहते हैं कि यद्यपि दर्शन और धर्मतत्त्वके सम्बन्धमें भारतवर्षमें ऐसे गम्भीर तत्त्वोंका आविष्कार हुआ था जो समस्त जगत्‌के लिये विस्मयजनक हैं, परन्तु उपासनाके सम्बन्धमें सब समय वैसी प्रशंसा नहीं की जा सकती। वे कहते हैं कि लिङ्ग-उपासना भारतवर्षका एक कलङ्क है। उनके विचारसे वर्तमान सभ्य युगमें इसप्रकारकी अश्लील और असभ्य-कालोचित आदिम उपासनाका प्रचलित रहना उचित नहीं है। उनकी इस आलोचनापर धीरतापूर्वक विचार करनेसे लिङ्गोपासनाके सम्बन्धमें स्वभावतः हृदयमें कुछ-कुछ संशय उत्पन्न होता है। हम बाल्यकालसे ही लिङ्गरूप शिवकी उपासना देखते आ रहे हैं, इसी संस्कारकी दृढ़तासे इसकी अश्लीलता हमारे मनको वैसी अश्लील नहीं लगती। परन्तु पूर्वसंस्कारोंको त्यागकर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि विदेशीय समालोचक स्वाभाविक प्रेरणावश ही इसप्रकारकी उपासनाकी निन्दा करते हैं। इस विषयमें मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। यदि कृपाकर आप लिङ्ग-रहस्यकी यथासम्भव संक्षेपमें व्याख्या करें तो मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ होऊँगा। सम्भवतः आपकी व्याख्यासे मेरे सब संशय दूर हो जायँगे। यदि कोई नया संशय उठेगा तो उसे स्पष्ट कर उसकी भी मीमांसा करा सकूँगा।

वक्ता—तुम्हारे संशयको मिटानेके लिये मैं अवश्य ही तुमसे यथाशक्ति कुछ कहूँगा। परन्तु कहनेके पूर्व मैं दो-एक बातें तुमसे पूछ लेना चाहता हूँ। तुमने तो प्राचीन इतिहासकी आलोचना की है; क्या तुम नहीं जानते कि पृथिवीकी अधिकांश अति प्राचीन सभ्य जातियोंमें लिङ्ग-उपासना किसी-न-किसी रूपमें प्रचलित थी? भारतवर्षमें भी प्राग्-ऐतिहासिक युगसे लिङ्ग-उपासना प्रचलित है। 'मोहन जो-दड़ो'में प्राप्त प्राचीन निदर्शनोंका अवलोकन करनेसे स्पष्ट-रूपसे ज्ञात होता है कि उस समय भी लोग ठीक आजकलके समान ही विशेष आकारके शिव-लिङ्गकी पूजा करते थे। जो उपासना या साधना एक समय जगद्व्यापक थी तथा परवर्ती युगमें भी भारतवर्षमें जो भगवत्कल्प श्रीशङ्कराचार्य प्रभृति असंख्य ज्ञानी और योगैश्वर्यसम्पन्न मनीषियोंके

---

* हरदत्तके सिद्धान्तोंके विषयमें जो लोग अधिक जानना चाहते हों उन्हें लेखकके 'Sivadvaita of Srikantha' नामक अंग्रेजीके ग्रन्थको पढ़ना चाहिये। कंसपुरके सम्बन्धमें 'अग्नीश्वरक्षेत्र-पुराण' नामक एक स्थल-पुराण है जो आजकल दुष्प्राप्य है। तिरुवेवलीकी शैव-सिद्धान्त-सोसाइटीके द्वारा आचार्य हरदत्तकी एक संक्षिप्त जीवनी भी तामिल-भाषामें छपी है। —लेखक

द्वारा अनुष्ठित होती आ रही है, वह अज्ञजनोचित उपहास-वचनोंका विषय होनेयोग्य कदापि नहीं है। विना तीव्र साधनाके किसी भी तत्त्वका सम्यक् रूपसे ज्ञान होना सम्भव नहीं है। किन्तु इसीलिये उसकी निन्दा करने लगना धृष्टताके सिवा और क्या हो सकता है ?

जिज्ञासु—मैंने जिज्ञासुभावसे ही आपसे प्रश्न किया है, निन्दा-के उद्देश्यसे नहीं। लिङ्गोपासनाके मूलमें जो एक अश्लील भाव है, उसे क्या आप अस्वीकार करना चाहते हैं ? और यदि न कर सकते हों तो फिर सभ्य समाजमें इसका किसप्रकार समर्थन किया जा सकता है ?

वक्ता—वत्स ! श्लील और अश्लीलका विचार नव्य रुचि-सम्पन्न युवकोंकी विकृत दृष्टिके निर्णयके अनुसार नहीं हो सकता। व्यक्तिगत संस्कार तथा सामाजिक मनोभावोंसे संवेष्टित प्रकृतिके अनुसार आपेक्षिकरूपसे श्लील और अश्लीलका निर्धारण हो सकता है। नग्नकाय पवित्र-चित्त छोटे-से शिशुकी दृष्टिमें संसारमें कहीं कुछ भी अश्लील नहीं देखा जाता है। यही बात ज्ञानसम्पन्न परमहंसकी दृष्टिमें भी समझनी चाहिये। अन्यत्र जिसका जिसप्रकारका संस्कार होता है, वस्तुसत्ता उसके निकट उसी प्रकार प्रतिभात हुआ करती है। भगवान्‌की सृष्टिमें अपवित्र कहलानेवाली कोई भी वस्तु नहीं है। परन्तु कलुषित-हृदय द्रष्टा अपने अन्दरकी कालिमाका आरोपण कर वस्तुविशेषको अपवित्र समझ लेता है। शुद्ध चित्तसे जिस ओर देखो, उसी ओर सत्यकी उज्ज्वल मूर्ति देखकर आनन्द प्राप्त कर सकते हो। फिर किसी भी स्थानमें सङ्कोचका कारण नहीं प्रतीत होगा। देखो, लिङ्ग और योनि—ये दो ही सृष्टिके मूल-रहस्य हैं। पुरुष और स्त्रीके पारस्परिक संयोगके विना सृष्टि प्रभृति कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते। शिव और शक्ति, ईश्वर और माया, पुरुष और प्रकृति—प्रस्थानभेदसे चाहे जिस नामको लिया जाय—सर्वत्र ही दो मूल-शक्तियोंके पारस्परिक संघर्षसे सृष्टि प्रभृति कार्य सम्पन्न होते हैं।

जिज्ञासु—यह जो दो शक्तियोंकी बात आपने कही, क्या ये ही वास्तविक मूल-शक्तियाँ हैं अथवा इनके पीछे कोई अद्वितीय शक्ति और भी है ?

वक्ता—जबतक द्वैत जगत्‌का अतिक्रमण नहीं किया जाता तबतक इन दो शक्तियोंको ही मूलशक्ति मानना पड़ता है। कार्यक्षेत्रमें भी मूलतः यही प्रतीत होता है और युक्तिसे भी यही बात सिद्ध होती है। ईरानी, यहूदी तथा अन्य किसी भी प्राचीन धर्ममें यही मौलिक द्वैत स्वीकृत हुआ है। परन्तु याद रखना कि वस्तुतः इस द्वैतके मूलमें नित्य अनुस्यूत-भावसे अद्वैत-सत्ता ही है। सृष्टिके प्रारम्भमें यद्यपि प्रकृति और पुरुष दोनों पृथक्‌रूपमें उपलब्ध होते हैं, तथापि यह जान लेना चाहिये कि सृष्टिकी आदिभूत बीजावस्थामें ये दोनों ही शक्तियाँ अभिन्नरूपमें ही विराजमान रहती हैं। इसे चाहे ईश्वर कहो या महाशक्ति, उसमें कुछ अन्तर नहीं पड़ता। उस अवस्थामें एक ओर जैसे प्रकृति और पुरुष परस्पर भेदरहित और एकाकार हैं, वैसे ही दूसरी ओर वह अद्वैत ईश्वर-सत्ता भी निरञ्जन निष्कलसत्ताके साथ एकीभूत है। यह अव्यक्त अवस्था है, इसको एक ओर सृष्टिका बीज कहा जानेपर भी दूसरी ओर यह नित्य सृष्टिसे अतीत, प्रपञ्चहीन, शान्त और निःस्पन्द शिवभावमात्र है। इसीकी स्वतन्त्रताके उन्मेषवश इस अक्षोभ्य चित्-सत्ताके ऊपर वाक् और अर्थके समान नित्य-सम्पृक्त, परन्तु भेदयुक्त, पुरुष और प्रकृतिरूप तत्त्व-द्वयका आविर्भाव होता है। ये पुरुष और प्रकृति एक होते हुए भी भिन्न हैं और भिन्न होते हुए भी एक हैं, क्योंकि इनमेंसे एकको छोड़कर दूसरा अपनी सत्ताका संरक्षण नहीं कर सकता। पारमार्थिक दृष्टिसे यह अव्यक्त अवस्था न होनेपर भी सांसारिक दृष्टिसे सृष्टिकी अभिव्यक्ति न होनेके कारण इसको एक प्रकारसे अव्यक्त कहा जा सकता है। शास्त्रके मतसे यह अलिङ्ग अवस्था है। किन्तु पारमार्थिक दृष्टिसे निष्कल अवस्था अलिङ्ग है; अतः इसको महालिङ्ग-अवस्था कहा जा सकता है। लिङ्ग और अलिङ्ग इन दो शब्दोंका तात्पर्य आपेक्षिकभावसे ही समझना पड़ेगा। परिचायक चिह्नको 'लिङ्ग' कहते हैं। जिसकी अभिव्यक्ति नहीं है, उसका कोई भी निदर्शन नहीं दिखलाया जा सकता। किन्तु इस अव्यक्त सत्तासे जो तेजोमय और ज्योतिर्मय तत्त्व आविर्भूत होता है वह स्वयं आविर्भूत होता है, इसलिये उसे स्वयम्भू कहा जाता है। यही अव्यक्त-अवस्थाका परिचायक है। इसीलिये यह लिङ्ग-पदवाच्य है।

जिज्ञासु—आपने जो स्वयम्भूरूप लिङ्गका परिचय दिया, उसे सुनकर मुझे तृप्ति हुई। इस लिङ्गके अतीत अलिङ्ग-अवस्थाके सम्बन्धमें अभी मुझे कुछ भी पूछना नहीं है। मेरा कहना यही है कि लिङ्ग और योनि परस्पर संश्लिष्ट होकर सांसारिक कार्योंका सम्पादन करते हैं। उसका

एकांश यह लिङ्गतत्त्व है; किन्तु द्वितीय अंश या योनितत्त्व-की कुछ धारणा न होनेसे लिङ्ग-रहस्य सम्यक्प्रकारसे नहीं जाना जा सकता है। अतः मेरी प्रार्थना है कि प्रसङ्गतः संक्षेपमें योनिरहस्यके सम्बन्धमें भी दो-चार बातें बतलाइये, जिससे प्रस्तावित विषयको मैं अच्छी तरह समझ सकूँ।

वक्ता-तुम्हारा प्रश्न बहुत ही उचित है। योनितत्त्वकी धारणा न होनेसे लिङ्ग-रहस्यका सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता। यद्यपि यह विषय अत्यन्त जटिल है एवं सिवा अन्तःप्रविष्ट साधकके दूसरेके लिये नितान्त दुर्बोध्य है, तथापि आलोचनाका विषय होनेके कारण संक्षेपमें दो-चार बातें कह देना आवश्यक समझता हूँ।

जिसप्रकार आधार और आधेय परस्पर सम्बन्धविशिष्ट हैं, उसी प्रकार एक प्रकारसे लिङ्ग एवं योनिको भी समझना चाहिये। परन्तु ध्यान रहे कि यह सादृश्य सर्वाङ्गीण नहीं है। जब आद्याशक्ति या श्रीभगवान् परम साम्यावस्थामें रहते हैं, उस समय उनमें लिङ्ग या योनि—किसी प्रकारके भी द्वैत-भावकी कल्पना सम्भव नहीं है। परन्तु जहाँ अनादि द्वैतभाव प्रकाशित है, वहाँ एकके बिना दूसरेकी उपलब्धि नहीं की जा सकती। तन्त्रशास्त्रमें योनिको त्रिकोणरूपसे एवं लिङ्गको उसके केन्द्रस्वरूप या मध्यबिन्दुरूप बतलाया गया है। सृष्टिकी अतीत अवस्थामें जहाँ सर्वशक्ति नित्य प्रकाशमान अथवा नित्य अवगुण्ठित है, वहाँ बिन्दु, मण्डल और बिन्दुसे मण्डलपर्यन्त निःसृत किरणधारा—ये तीनों ही अभिन्नरूपसे प्रकाशित होती हैं। इस अभेदात्मक सत्तामें मण्डलको योनिके एवं बिन्दुको लिङ्गके पूर्वरूप होनेकी कल्पना की जा सकती है। परन्तु सृष्टिकी आदिम अवस्थाके समय—यद्यपि यह आदिम अवस्था भी अनादि कालसे ही वर्तमान है—बिन्दु एवं उसके आवरण—इन दोनोंमें एक भेदाभास जाग उठता है। इसके फलस्वरूप जो आवरणरूप मण्डल बिन्दुके साथ अभिन्नरूपसे वर्तमान था, वह भेद-सृष्टिसे पहले त्रिरेखाङ्कित त्रिकोणसमन्वित क्षेत्ररूपसे प्रकट होता है। यद्यपि बिन्दुसे अनन्त किरणमालाएँ विकीर्ण होती हैं, तथापि सङ्कुचित अवस्थाके समय सृष्टिके आरम्भकालमें तीन किरणें ही प्रधानतः ग्रहण करनेयोग्य हैं। ये तीनों रश्मियाँ सरल रेखाओंके रूपमें परस्पर समान दूरीपर रहकर तीन ओर बढ़ती हैं। महाशून्यके वक्षःस्थलपर यह विकिरण-लीला सम्पन्न होती है, इसलिये यह सर्वत्र समानभावसे ही होती है। क्योंकि उस समय आकर्षण या विकर्षण करनेकी कोई भी शक्ति वर्तमान नहीं है। इसलिये ये तीनों रेखाएँ परस्पर समभावापन्न ही होती हैं। एक ही मूलस्थानसे निर्गत होनेके कारण जब ये तीनों रेखाएँ प्राथमिक गतिके निरोधके समय स्थिरता प्राप्त करती हैं, तब इनके अग्रभाग परस्पर मिलनेके लिये पुनः गतिविशिष्ट हो जाते हैं, फलतः तीन बाह्य रेखाओंका विकास होता है एवं एक समबाहु और समकोण त्रिभुजका आविर्भाव होता है। उस समय ये तीन बाह्य रेखाएँ ही केन्द्रस्वरूप बिन्दुका आवरण मानी जाती हैं। कहना नहीं होगा कि यही प्रथम आवरण है। कम-से-कम बिना तीन सरल रेखाओंके किसी भी वस्तुका वेष्टन नहीं किया जा सकता। तन्त्रशास्त्रमें इसी त्रिकोण या त्रिभुजको 'मूल त्रिकोण' कहा गया है। बिन्दुके स्पन्दनके तारतम्यके कारण इस त्रिकोणके रूप भी भिन्न-भिन्न प्रकारके हो सकते हैं, क्योंकि बाहु या कोणका परस्पर असंख्य प्रकारका वैषम्य संघटित हो सकता है। किन्तु मूल त्रिकोण साम्यभावापन्न होनेसे सर्वदा एक ही प्रकारका रहता है। यह मूल त्रिकोण ही विश्वकी उत्पत्तिका कारण महायोनिस्वरूप है। जब इसका मध्यवर्ती बिन्दु विक्षुब्ध होकर ऊर्ध्वगतिशील ज्योतिर्मय रेखाके रूपमें परिणत होता है तब इसको उज्ज्वल प्रकाशपुञ्जके स्तम्भरूपमें प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। कहना नहीं होगा कि यही वह पूर्ववर्णित स्वयम्भू नामक ज्योतिर्लिङ्ग है। अन्तर्दृष्टि खुल जानेपर भीतर और बाहर सभी जगह यह लीला प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ती है। बाइबिल और अन्यान्य धर्म-ग्रन्थोंमें जिस अग्नि-स्तम्भ (pillar of fire) का वर्णन मिलता है, वह भी इस लिङ्ग-ज्योतिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

जिज्ञासु-आपने जिसप्रकार वर्णन किया, उससे तो यही समझमें आता है कि योनिसे ही लिङ्गका विकास होता है। क्या यह आंशिक सत्य नहीं है?

वक्ता-तुम्हारी धारणा निर्मूल नहीं है, परन्तु अभीतक लिङ्ग और योनिके पारस्परिक सम्बन्धको तुम भलीभाँति हृदयङ्गम नहीं कर सके हो। इसीलिये सूक्ष्म तत्त्वको अब भी तुम ग्रहण नहीं कर पाते हो। तुम्हारे सरलतापूर्वक समझनेके लिये मैं विषयको और भी कुछ स्पष्ट करनेकी चेष्टा करता हूँ। देखो, मैंने जिस योनिके सम्बन्धमें तुमसे कहा है, उसके मूलतः एक होनेपर भी द्वैत-जगत्में उसे

द्विविध जानना चाहिये। एक ब्रह्मयोनि और दूसरी मातृ-योनि। इसीलिये त्रिकोण भी ऊर्ध्वमुख और अधोमुख-भेदसे दो प्रकारका है। दोनोंके ही केन्द्रस्थलमें बिन्दु वर्तमान है। बिन्दु विक्षुब्ध होकर जब रेखारूपमें गतिशील होता है, तब वह भी ऊर्ध्व और अधोभेदसे दो प्रकारका हो जाता है। इनमें एकका नाम ऊर्ध्वलिङ्ग और दूसरेका नाम अधोलिङ्ग है। साधारण अवस्थामें जगत्के यावतीय जीव-जन्तु अधोलिङ्गविशिष्ट ही हैं, परन्तु साधनाके द्वारा कुण्डलिनी शक्तिके प्रबुद्ध होनेपर ये ऊर्ध्वलिङ्गके रूपमें आ सकते हैं।

देखो, बिन्दु जब विसर्गके रूपमें परिणत होता है अर्थात् जब द्वैतजगत्का मूलभूत द्वन्द्व आविर्भूत होता है तब एक बिन्दु ऊपर एवं दूसरा नीचे गिर जाता है। इन दोनों बिन्दुओंकी संयोजक रेखा ही अक्षरेखा या ब्रह्मसूत्र है। ऊपरका बिन्दु एक त्रिकोणका मध्यबिन्दु है, इसी प्रकार नीचेका बिन्दु भी एक दूसरे त्रिकोणका मध्यबिन्दु है। जब ऊर्ध्व त्रिकोण एवं तन्मध्यस्थ बिन्दु विक्षुब्ध होता है तब उस बिन्दुसे अधोमुखी (नीचेकी ओर) शक्ति-धारा निकलती है। यही सृष्टि-अवस्थाकी सूचना है। इसी प्रकार जब अधःस्थित बिन्दु और त्रिकोण विक्षुब्ध होता है तब उस बिन्दुसे ऊर्ध्वमुखी शक्ति-धारा निःसृत होती है। यह संहारकी अवस्था है। जो शक्ति-धारा सृष्टिके समय ऊर्ध्वबिन्दुसे नीचेकी ओर उतर जाती है, एक त्रिकोण क्षेत्ररूपसे उसे अपने वक्षःस्थलपर धारण कर लेता है। इसीके फलस्वरूप प्राकृतिक देह निर्मित होते हैं एवं अज्ञानमय प्रपञ्चका आविर्भाव होता है। दूसरी ओर, जब अधोबिन्दु ऊर्ध्वलिङ्ग अवस्थाको प्राप्त होकर ऊर्ध्वमुखी शक्तिका सञ्चार करता है, तब दूसरा त्रिकोण क्षेत्रस्वरूप होकर उसको बीजरूपसे धारण करता है। इसीके फलस्वरूप अप्राकृतिक या दिव्य प्रपञ्चका आविर्भाव होता है। देवताका देह-निर्माण या साधकको दिव्यभावकी प्राप्ति इसीसे हुआ करती है। दिव्य सृष्टिके मूलमें प्राकृत सृष्टिके संहारकी आवश्यकता है एवं प्राकृत सृष्टिके मूलमें दिव्य सृष्टिका तिरोभाव आवश्यक है। अतएव सृष्टि और संहार—ये दोनों ही क्रियाएँ परस्पर अनुस्यूत हो रही हैं और दोनोंके ही मूलमें लिङ्ग एवं योनिका परस्पर संयोग विद्यमान है।

तन्त्रशास्त्रमें जिस मध्यबिन्दुविशिष्ट षट्कोणका वर्णन मिलता है उसे इस ऊर्ध्वमुख और अधोमुख त्रिकोणके परस्पर संयोगसे ही उत्पन्न समझना चाहिये। मध्यबिन्दु दोनों त्रिकोणोंके लिये ही समान है। यह षट्कोण ही शिव-शक्तिका मिलित रूप है। हिन्दू, बौद्ध और जैन—सभी सम्प्रदायोंके उपासकगण किसी-न-किसी रूपमें इसको स्वीकार कर चुके हैं।

देखो, मैंने यहाँ जिस योनि और लिङ्गकी बात कही है, वैदिक साधनामें इसीने यज्ञकुण्ड और यज्ञाग्निका स्थान प्राप्त किया है। आचार्योंने अनेकों जगह यह स्पष्ट निर्देश किया है कि कुण्ड ही प्रकृति या योनि है एवं अग्नि ही रुद्र या शिवज्योति है। देहतत्त्वविद् योगियोंद्वारा वर्णित आधार-चक्र भी यह कुण्ड या योनिस्वरूप ही है। तन्मध्यस्थ ज्योति जब प्रकाशित होकर ब्रह्म-मार्गपर सञ्चार करती है, तब उसीको 'लिङ्ग' कहते हैं।

जिज्ञासु—लिङ्ग कितने प्रकारके हैं और योनि कितने प्रकारकी है? एवं उनके मौलिक भेद क्या-क्या हैं?

वक्ता—लिङ्ग एक होते हुए भी योनि या आधारभेदसे असंख्य रूपोंमें आविष्कृत होता है। स्वयम्भूलिङ्ग, बाणलिङ्ग, इतरलिङ्ग प्रभृति सारे भेद केवल एक ही लिङ्गके विभिन्न प्रकारके विकास हैं। उसी प्रकार यह भी सत्य है कि मूल योनि भी एक ही है, पर लिङ्गकी विचित्रताके कारण वह भी खण्ड-खण्ड योनियोंके रूपमें आविर्भूत होती है। शास्त्रोंमें चौरासी लाख योनियोंका जो वर्णन तुमने पढ़ा है उसका यही एकमात्र कारण है। अतएव एक दृष्टिसे लिङ्ग भी एक है और योनि भी एक ही है, परन्तु दूसरी दृष्टिसे देखनेपर दोनोंहीका वैचित्र्य अनन्त प्रकारका है। जीव-देहमें जिन मूलाधारादि षट्संख्यक आधार-कमलोंका वर्णन आता है, वह भी वस्तुतः योनिका ही प्रकार-भेदमात्र है। सर्वत्र ही बिन्दुरूपमें लिङ्ग अनुस्यूत है। इसकी अतीत अवस्थामें बिन्दु निराधार होकर अव्यक्त हो जाता है, लिङ्गका अलिङ्गमें पर्यवसान हो जाता है एवं द्वैतभाव शान्त होकर अद्वैतभाव आविर्भूत हो जाता है। उस समय लिङ्ग और योनिमें किसी प्रकारके पार्थक्यका अनुभव नहीं किया जा सकता। यही निरालम्ब या निर्विकार-अवस्था है। वेदान्त-सूत्रकारने कहा है—'योनेः शरीरम्'। यह बिल्कुल सच है, क्योंकि लिङ्ग-ज्योति योनिमें प्रविष्ट होकर यदि पुनरुत्थित न हो तो किसी प्रकार देहका निर्माण-कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। हम जो भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंके सहयोगसे दर्शन-श्रवणादि

भिन्न-भिन्न कार्य सम्पादन करते हैं, यह भी सृष्टि-कार्यका ही एक अङ्ग है। अतः इसके मूलमें भी लिङ्ग-योनिका सम्बन्ध वर्तमान है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसलिये जगत्के स्वरूपका भलीभाँति विश्लेषण करनेपर यह लिङ्ग और योनितत्त्व क्षुद्रतम परमाणुके गठनसे लेकर बृहत्तम ब्रह्माण्डके संस्थानतक सर्वत्र दिखलायी पड़ेगा। पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—ये तीन प्रकारके शब्द ही त्रिकोणकी तीन रेखाओंके रूपमें कल्पित हैं। इन्हींका दूसरा नाम इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति है अथवा निम्न-स्तरमें सत्त्व, रज और तम है। मध्यस्थ बिन्दु परा-वाक् या शब्दकी तुरीय-अवस्थाका निदर्शन है। अतः बिन्दुयुक्त त्रिकोण मायासहित ईश्वर अथवा शक्तियुक्त शिवका ही नामान्तर है। यही सम्मिलितरूपसे चतुर्विध वाक्-तत्त्वकी समष्टि है अर्थात् शब्द-ब्रह्मस्वरूप है। इसपर यथार्थ अधिकार होनेसे शब्दातीत, वेदके अगोचर, अप्रमेय, निष्कल और निरञ्जन, तत्त्वातीत सत्ताका साक्षात्कार होता है। जिसको ॐकार या प्रणव कहा जाता है, वह अर्द्धमात्रा-युक्त इस त्रिकोणका ही नामान्तर है। यही योगशास्त्रकी कुण्डलिनी या शब्दमातृका है। इस त्रिकोणात्मक योनिकी तीनों रेखाएँ जब एक सरल समरेखामें परिणत होंगी, जब यह रेखा अर्धमात्रामें पर्यवसित हो जायगी और जब अर्ध-मात्रा बिन्दुमें विलीन होकर अव्यक्त हो जायगी तब मध्यस्थ बिन्दु आवरणमुक्त होकर बिन्दुभावसे अतीत, सर्वविकल्परहित अद्वैत-सत्तामें विलीन हो जायगा।

लिङ्ग-रहस्यके सम्बन्धमें मैंने अभी संक्षेपसे तुमको दो-चार बातें बतलायी हैं। इस समय इसकी विस्तृत आलोचना सम्भव नहीं है, परन्तु यह तुम निश्चय समझो कि गौरीपीठपर शिवलिङ्ग-उपासनामें अश्लीलता रत्तीमात्र भी नहीं है। इसके असली तत्त्वसे अनभिज्ञ लोग ही इसप्रकार अश्लीलताकी कल्पना कर दिल्लगी उड़ाया करते हैं। मैंने जो कुछ कहा है, उससे लिङ्गके तत्त्वका बहुत थोड़ा-सा विवेचन हुआ है। यह लिङ्गोपासना स्थूल जगत्में किसप्रकार एवं किन-किन प्राकृतिक नियमोंसे चली, इस विषयकी आलोचना यहाँ नहीं की गयी है। लिङ्गोपासनामें मृत्तिका, सुवर्ण एवं रजतादि धातु प्रभृति उपादानोंके भेदमें क्या रहस्य है और इसकी अन्यान्य आनुषङ्गिक क्रियाओंका क्या रहस्य है, एवं देव-जगत्में विष्णु प्रभृति देवताओंकी अपेक्षा शिव-तत्त्वसे इसका अधिकतर घनिष्ट सम्बन्ध क्यों है—ये सब बातें इस लेखमें नहीं उठायी गयी हैं। लिङ्ग-रहस्य यथार्थरूपसे बुद्धिगोचर होनेपर ये सब स्थूलविषय और भी सहज ही समझमें आ सकेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

—:o:—

शिवजीकी सर्वोत्तमता

(लेखक—पुराणरत्न पं० श्रीवृषभलिङ्गजी शास्त्री, आस्थानविद्वान्, श्रीरम्भापुरी-वीरसिंहासन)

शिवः सर्वोत्तमो यत्र सिद्धान्तो वीरशैवकः।

(पारमेश्वरागम)

सर्वस्मादधिकं ब्रूयाद् भगवन्तमुमापतिम्।

(आदित्यपुराण)

मर्त्यलोकके मानवोंका-सा तारतम्य स्वर्गलोकके देवताओंमें भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि पार्थिव ऐश्वर्यकी सीमाकी जैसे सार्वभौमपदमें समाप्ति हो जाती है वैसे ही देवत्वकी सीमा देवताओंके सार्वभौम, देवाधिदेव महादेवमें पर्यवसित होती है, क्योंकि मुक्तिरूप सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थको देनेवाला ही देवताओंमें सार्वभौम हो सकता है। शिवजीके मुक्तिप्रदाता होनेके विषयमें अनन्त प्रमाण हैं, जिनमेंसे कुछ नीचे दिये जाते हैं। श्रुति भगवती कहती है—

ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।
ईशं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति।
शिव एको ध्येयः शिवङ्करः सर्वमन्यत् परित्यज्य।
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥
क्रमेणैव महादेवं मोचकं परमेश्वरम्।
प्राप्नुयादप्रमादेन मुमुक्षुरिति वै श्रुतिः॥

ब्रह्मगीतामें भी स्वयं ब्रह्माजीके वाक्य हैं—

प्रसादादेव रुद्रस्य शिवायाश्च तथैव च।
परमाद्वैतविज्ञानं विष्णोः साक्षान्ममापि च॥
अदाने च तथा दाने न स्वतन्त्रो महाहरिः।
तथैवाहं सुरश्रेष्ठ सत्यमेव मयोदितम्॥
स्वतन्त्रः शिव एवायं स हि संसारमोचकः।
विष्णुभक्त्या च मद्भक्त्या नास्ति नास्ति परा गतिः।
शम्भुभक्त्यैव सर्वेषां सत्यमेव मयोदितम्॥

—इत्यादि

भक्त सत्यसन्धके प्रति विष्णुका उपदेश भी इसी बातको पुष्ट करता है—

नाहं संसारमग्नानां साक्षात्संसारमोचकः ।
ब्रह्मादिदेवताः सर्वे नहि संसारमोचकाः ॥
सर्वमुक्तं समासेन मम भक्तस्य तेऽनघ ।
सर्वमन्यं परित्यज्य शिवं साम्बं सदा भज ॥

इसी उपदेशका अनुसरण कर सत्यसन्धने सबको छोड़कर शिवकी शरण ली और मुक्त हो गया, इस बातका प्रमाण मुक्तिखण्डमें देखनेको मिलता है—

परित्यक्त्वाऽखिलान् देवानाश्रितोऽभवदीश्वरम् ।
ईश्वरस्य प्रसादेन सत्यसन्धो महाद्विजः ॥
ज्ञानं वेदान्तजं लब्ध्वा विमुक्तो भवबन्धनात् ।

ध्रुव-प्रह्लादादि महान् वैष्णव भी शिव-पूजाके प्रभावसे ही मुक्त हुए। इसमें काशीके 'ध्रुवेश्वर', 'प्रह्लादेश्वर' आदि शिवलिङ्ग ही प्रमाणभूत हैं। इन सब प्रमाणोंसे शिवजीका मुक्तिप्रदत्व और देवताओंमें सार्वभौमत्व सिद्ध होता है।

कुछ लोग 'अयं परः स्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः' के अनुसार यह कहते हैं कि 'देवताओंके सम्बन्धमें अमुक छोटा है और अमुक बड़ा—इसप्रकारका वाद-विवाद करना धृष्टतामात्र है, त्रिमूर्तियोंमें तारतम्यकी कल्पना नहीं करनी चाहिये, इत्यादि। उपर्युक्त सिद्धान्त भी वेदविरुद्ध होनेके कारण मान्य नहीं हो सकता; क्योंकि यजुर्वेदमें कहा है—

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्या जनिताऽग्नेर्जनितेन्द्रस्य जनिताऽथ विष्णोः ।

इसी प्रकार लैङ्ग्योपनिषद्में आता है—

धरा च वह्निः सूर्यश्च वज्रपाणिः शचीपतिः ।
विष्णुर्नारायणः श्रीमान् सर्वं सोममयं जगत् ॥

दूसरे उपनिषदोंमें भी आया है—

न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।

उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि शिवजीसे बड़ा होनेकी तो बात ही क्या, उनके जोड़का भी कोई नहीं है; अतः वही सर्व देवोंमें श्रेष्ठ हैं। शिव-पार्वतीके साथ दूसरे देवताओंकी तुलना करना तो एक प्रकारका अन्याय ही है। आदित्यपुराणमें इसका स्पष्ट शब्दोंमें निषेध किया गया है—

विश्वेश्वरमुमाकान्तं विश्वान्तर्यामिनं शिवम् ।
न ब्रह्माद्यैः समं ब्रूयाच्छक्तिभिश्चापि पार्वतीम् ॥
ब्रूयाद्यदि शिवं साम्बं ब्रह्मविष्ण्वादिभिः सुरैः ।
यः कश्चिच्चमसाविष्टः कदाचिन्नैव तं स्पृशेत् ॥
सर्वस्मादधिकं ब्रूयाद् भगवन्तमुमापतिम् ।

ठीक है, जगत्के माता-पिता, सर्वान्तर्यामी पार्वती-परमेश्वरकी समता कौन कर सकता है? उनके साथ दूसरे देवताओंकी समानताका प्रतिपादन करनेवालोंको उपर्युक्त वाक्योंमें बहुत कुछ बुरा-भला कहा गया है। गायत्री-महामन्त्रसे भी परमात्मा शिवजीका ही बोध होता है, दूसरे किसी देवताका नहीं; अतः सब देवताओंमें उत्कृष्ट शिवजी ही हैं।

यः सर्वदेवोत्कृष्टो न भवति स गायत्र्या बोधितो न भवति यथा घटः ।

—इस व्यतिरेकी अनुमानसे भी यही सिद्ध होता है कि शिव ही सब देवताओंमें श्रेष्ठ हैं।

गायत्री-मन्त्रके शिवपरक होनेमें 'यदेष रुद्रो भर्गाख्यो ब्रह्मवादिनः'—यह 'मैत्रायणीय उपनिषद्' का वाक्य प्रमाण है। इसपर यदि कोई यह आपत्ति करे कि—

भक्तस्नेहाद् भाग्यदानाद् भर्जनाद् भञ्जनाद् भृतेः ।
भ्राभ्राजिधातोर्व्युत्पत्त्या .... ॥

—इस वचनके अनुसार यौगिक अर्थके द्वारा भर्ग-शब्दसे यहाँ अन्य देवताओंका भी ग्रहण हो सकता है—रूढिके द्वारा उसका 'शिव' यह अर्थ करना अवसर प्राप्त नहीं है, तो इसके उत्तरमें हम कहेंगे कि 'रथकाराधिकरणन्याय' से निरुक्त-शास्त्रियोंके मतमें योगकी अपेक्षा रूढि अधिक बलवान् है, इसलिये यहाँ भर्ग-शब्दसे अन्य देवताका ग्रहण न कर शिवका ही ग्रहण करना चाहिये। 'यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः', 'सदाशिवोम्' आदि श्रुति-स्मृति-वाक्योंसे प्रणवकी भी शिववाचकता सिद्ध होती है। गायत्री-मन्त्रके सम्बन्धमें भी यहाँ विस्तृत विवेचन करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

इस मन्त्रका अर्थ इसप्रकार करना चाहिये—

(यः भर्गः) जो शिव (नः धियः) हमारे चित्तोंको (प्रचोदयात्) प्रेरित करता है और जो (देवस्य सवितुः) प्रकाशमान सूर्यदेवसे भी (वरेण्यम्) श्रेष्ठ है (तत्) उस शिव-तत्त्वका (धीमहि) हम ध्यान करें।

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि इस मन्त्रमें 'यत्' शब्द तो पुँल्लिङ्ग है और 'तत्' शब्द नपुंसकलिङ्ग है, ऐसी दशामें दोनों एक ही अर्थके बोधक कैसे हो सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि 'छन्दसि व्यत्ययो बहुलम्' इस सूत्रके अनुसार वेदमें तत्-शब्दका पुँल्लिङ्गमें भी प्रयोग हो सकता है। 'योगयाज्ञवल्क्य' नामक ग्रन्थके निम्नलिखित वाक्यसे भी हमारे इस कथनकी पुष्टि होती है—

आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वै मुमुक्षुभिः।

श्वेताश्वतर उपनिषद्में भी कहा है—

यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रि-
र्नसन्न चासच्छिव एव केवलः।
तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी।

'चतुर्वेदतात्पर्यसंग्रह' में भी लिखा है—

वाच्यः किमस्य सविता सवितुर्वरेण्यः
किं वा भवानिति वितर्कपदं न शेषः।
भास्वन्तमेव विषयीकुरुते न मन्त्रः
शक्नोति वक्तुमधिदैवतमीश्वर! त्वाम्॥
तस्मादयं त्वयि निरोहति भर्गशब्दः
प्रज्ञाप्रचोदकतया त्वभिधीयसे त्वम्।

उपर्युक्त प्रमाणोंसे शिवजी ही हमारी प्रज्ञा (बुद्धिके) प्रचोदक (प्रेरक) होनेके कारण भर्ग-शब्दवाच्य सिद्ध होते हैं। सुतरां यह सिद्ध हुआ कि गायत्री-मन्त्रके अभिमानी देवता शिव ही हैं। कवि तार्किक-चक्रवर्ती श्रीहरदत्ताचार्यने शिवजीके उत्कर्षका प्रतिपादन करनेवाली स्वरचित पञ्चश्लोकीमें ठीक ही कहा है—

गायत्र्या बोधितत्वादपि नमकमुखे राघवस्थापितत्वा-
च्छौरेः कैलासयात्राक्रममुदिततयाऽभीष्टसन्तानदानात्।
नेत्रेन स्वेन साकं दशशतकमलैर्विष्णुना पूजितत्वा-
त्तस्मै चक्रप्रदानादपि च पशुपतिः सर्वदेवप्रकृष्टः॥१॥

'गायत्रीसे बोधित होनेके कारण, श्रीरामचन्द्रके द्वारा सेतुबन्धमें (लिङ्गरूपसे) स्थापित होनेके कारण, श्रीकृष्णको उनकी कैलास-यात्रासे सन्तुष्ट होकर उनकी इच्छानुसार सन्तान देनेसे* तथा सहस्र कमलके द्वारा शिवलिङ्गका पूजन करते समय एक कमलकी कमी हो जानेके कारण, कमलके स्थानमें विष्णुके अपना एक नेत्र निकालकर रख देनेपर उन्हें सुदर्शनचक्र प्रदान करनेसे (इसके लिये 'हरिस्ते साहस्रं कमलदलमाधाय पदयोः' इत्यादि महिम्नःस्तोत्रका पद्य प्रमाणरूपमें उद्धृत किया जा सकता है) शिवजी ही सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वदेवताओंके उपास्य हैं।'

पञ्चश्लोकीका दूसरा श्लोक इसप्रकार है—

कन्दर्पध्वंसकत्वाद्गरलकवलनात् कालगर्वापहत्वाद्
दैतेयावासभूतत्रिपुरविदलनाद्दक्षयागे जयित्वात्।
पार्थाय स्वास्त्रदानान्नरहरिविजयान्माधवस्त्रीशरीरे
शास्तोः सम्पादकत्वादपि च पशुपतिः सर्वदेवप्रकृष्टः॥२॥

'अभिमानी कामदेवका ध्वंस करनेसे, देवासुरोंके द्वारा समुद्र-मन्थनसे जो त्रिलोकध्वंसकारी महाकालकूट विष निकला था उसे देवताओंकी प्रार्थनाके अनुसार पान कर जानेसे, मार्कण्डेय और श्वेत नामक मुनियोंको पीडा देनेवाले यमराजका मद चूर करनेसे* तारकाक्ष, कमलाक्ष एवं वीरविद्युन्माली नामक तीन राक्षसोंके निवास 'त्रिपुरों' का नाश करनेके कारण (यह कथा सुप्रसिद्ध ही है), मदान्ध दक्षप्रजापतिके यज्ञका वीरभद्ररूप धारणकर ध्वंस करनेके कारण (श्रीमद्भागवतमें यह कथा भी प्रसिद्ध है)।

अर्जुनको पाशुपतास्त्र प्रदान कर देनेसे, नृसिंहरूपधारी विष्णुको जीतनेके कारण (इसकी शिवपुराणादिमें विस्तारसे कथा आती है) तथा स्त्री (मोहिनी) शरीरधारी विष्णुके गर्भसे शास्तु नामक पुत्र उत्पन्न करनेके कारण भगवान् शिव सारे देवताओंमें श्रेष्ठ हैं †।'

अब तीसरा श्लोक भी सुनिये—

भूमौ लोकैरनेकैः सततविरचिताराधनत्वादमीषा-
मष्टैश्वर्यप्रदानाद्दशविधवपुषा केशवेनार्चितत्वात्।

---

* इसमें भागवतके निम्नलिखित प्रमाण हैं—

आराध्य देवदेवेशं शङ्करं लोकशङ्करम्।
तपसा तोषयित्वा तं कैलासगिरिवासिनम्॥

रुक्मिण्यां तनयं लेभे दग्धकामं पुनर्हरिः।
वीरं प्रद्युम्ननामानं रूपौदार्यगुणान्वितम्॥

* इसके लिये 'श्वेताख्यान' में निम्नलिखित प्रमाण है—

ततः सदाशिवः स्वयं द्विजं निहन्तुमागतं
निहन्तुमन्तकं स्वयं सरारिरायर्यौ हरः।
त्वरन् बहिर्गतः पुरः शिवः स्वयं त्रिलोचन-
स्त्रियम्बकोऽम्बया सहाथ नन्दिना गणेश्वरैः॥

† तदीयतपसा शम्भुर्ददौ तुष्टः किरीटिने।
दिव्यं पाशुपतं देव्या प्रार्थितो जगदीश्वरः॥
(महाभारत)

हंसक्रोडाङ्गधारिद्रुहिणमुरहराद्दष्टशीर्षाङ्घ्रिकत्वा-
जन्मध्वंसाद्यभावादपि च पशुपतिः सर्वदेवप्रकृष्टः ॥३॥

'इस भूमण्डलमें सब लोगोंसे पूजित होनेके कारण, विष्णुके दशों अवतारोंसे पूजा प्राप्त करनेके कारण (इस विषयमें शिवपुराण, लिङ्गपुराण, शिवरहस्य, कूर्मपुराण आदिके प्रमाणोंके अतिरिक्त 'रामेश्वर', 'कूर्मेश्वर', 'मत्स्येश्वर', 'नृसिंहेश्वर' आदि शिवलिङ्ग भी साक्षी हैं) क्रमशः हंस और वराहका रूप धारणकर ब्रह्मा और विष्णुके इनके ज्योतिर्मय स्वरूपके ओर-छोरका पता लगानेके लिये प्रवृत्त होनेपर भी उसका थाह न पा सकनेके कारण* और जनन-मरणादिसे रहित होनेके कारण भी शिव ही सर्व देवोंमें श्रेष्ठ हैं।'

अब जरा चौथा श्लोक भी सुन लीजिये—

वाराणस्यां च पाराशरिनियमिभुजस्तम्भकत्वात् पुराणां
प्रध्वंसे केशवेन श्रितवृषवपुषा धारितक्ष्मारथत्वात्।
धस्तोकब्रह्मशीर्षास्थ्युपकलितगलालङ्क्रियाभूषितत्वा-
द्दातृत्वाज्ज्ञानमुक्त्योरपि च पशुपतिः सर्वदेवप्रकृष्टः ॥४॥

'काशीमें शिवनिन्दा करनेवाले व्यासजीके दोनों भुजाओंका स्तम्भन करनेसे (नैमिषारण्यके मुनियोंके सामने जब व्यासजीने विष्णुके उत्कर्षका बखान किया तो वे लोग बोले कि यदि आप इस बातको काशी-विश्वनाथके सामने सिद्ध कर दें तो हम मानें। तब उन्होंने काशीमें आकर उसी आवेशसे दोनों हाथ उठाकर ज्यों ही 'न देवः केशवात्परः' ये शब्द कहे, त्यों ही भगवान् शिवकी आज्ञासे नन्दिकेश्वरने उनके हाथोंका उसी रूपमें स्तम्भन कर दिया। तब विष्णुने स्वयं व्यासजीको बताया कि 'शिव ही सारे देवताओंमें सार्वभौम हैं। तुमने उनकी अवज्ञा कर बड़ा अपराध किया। अब उनकी स्तुति कर उन्हें प्रसन्न करो।' यह सुनकर व्यासजीने—

एको रुद्रो न द्वितीयो यतस्तद् ब्रह्मैवैकं नेह नानास्ति किञ्चित्। यद्यस्त्यन्यः कोऽपि वा कुत्रचिद्वा व्याचष्टे तद्यस्य शक्तिः समो वा।

—आदि महास्तम्भोंकी रचनासे शिवजीकी कृपा प्राप्तकर श्रीघण्टाकर्ण शिवाचार्य गुरुके आज्ञानुसार 'व्यासेश्वर' महादेवकी स्थापना की, जहाँ आज 'व्यास-काशी' बन गया है। 'व्यासेश्वर' के मन्दिरमें घण्टाकर्ण गुरुकी शिलामूर्ति अबतक अच्छी हालतमें है। इस विषयका प्रमाण काशीखण्डादिमें विशेष वर्णित है); त्रिपुरसंहारके समय वृषभरूपधारी विष्णुके द्वारा धारण किये हुए धरारूपी रथपर बैठनेके कारण (शङ्करसंहितासे ज्ञात होता है कि शिवजीके रथमें बैठते ही भूमि धँस गयी, तब उनकी आज्ञासे विष्णुने वृषभरूप धारणकर पृथ्वीका वहन किया था); ब्रह्माजीके कपालकी अस्थियोंकी माला बनाकर अपने गलेमें धारण करनेके कारण, (ब्रह्माजीने अपने ऊर्ध्वमुखसे जब शिवनिन्दा प्रारम्भ की तब भैरवने इनका शिरश्छेद किया और उसी मुण्डकी अस्थियोंकी माला शिवजीने अपने गलेमें धारण कर ली—देखिये शङ्करसंहिता एवं वायवीयसंहिता) तथा ज्ञान एवं मुक्तिके दाता होनेसे भी पशुपति ही सर्वदेवोंमें श्रेष्ठ हैं'—यहाँ शिवरहस्यके निम्नलिखित प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

महादेवार्चने प्रीतिर्नृणामत्यन्तदुर्लभा।
सुलभा यदि सा नृणां तदा मुक्ता हि ते नराः॥
यदि देवोत्तमत्वेन ज्ञात्वा देवोत्तमं शिवम्।
समर्चयति यत्नेन तदा मुक्तिर्न दुर्लभा॥
एवमप्यभिचारेण नित्यमभ्यर्चितः शिवः।
ददाति भुक्तिं मुक्तिञ्च सत्यं सत्यं न संशयः॥

—इत्यादि।

इस तरहके अनन्त प्रबल प्रमाणोंसे श्रीभगवान् शिवका सर्वदेवशिखामणित्व निर्विवाद सिद्ध है। जो लोग शिवकी निन्दा करते हैं वे—

यः सर्वभूताधिपतिं विश्वेशं तु विनिन्दति।
न तस्य निष्कृतिः शक्या वक्तुं वर्षशतैरपि॥

—इस प्रमाणके अनुसार प्रायश्चित्तके भागी नहीं होते; उन्हें तो इस घोर पापका फल भोगना ही पड़ेगा। अन्तमें हम 'हरिहरतारतम्य' नामक ग्रन्थके निम्नलिखित वचनको उद्धृत कर अपना वक्तव्य समाप्त करते हैं—

एकः सहस्रकमलैर्यमुपास्य तस्था-
वन्यस्तु तैरुपचितः सह मोदते स्म।
को वाऽनयोरधिक इत्यनुचिन्त्य वृद्धाः
सत्यं ब्रुवन्तु तमिमं वयमाश्रयामः॥

इति शिवम्

* यह विषय कूर्मादि पुराणोंमें तथा महिम्नःस्तोत्रके—

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चो हरिरधः
परिच्छेत्तुं याताावनलमनिलस्कन्धवपुषः॥

—इत्यादि पद्यमें भी प्रतिपादित है।

अद्भुत शिवकोटि

(लेखक—पं० श्रीवीरभद्रजी शर्मा तैलङ्ग, वेद-काव्यतीर्थ)

यद्यपि वर्तमानकालमें चारों ओर सदाचारका ह्रास ही देखनेमें आता है, तथापि यत्र-तत्र महापुरुषोंके भी दर्शन हो जाते हैं। सौभाग्यवश हमारे देशमें ऐसे महानुभाव अब भी विद्यमान हैं जो भगवान्पर अटल विश्वास होनेके कारण समय आनेपर अपने जीवनको घोर-से-घोर सङ्कटमें डालनेमें भी आगा-पीछा नहीं सोचते। आज ऐसे ही एक महात्माका परिचय 'कल्याण' के पाठकोंको कराया जाता है।

निजाम-रियासतके 'वरंगल' (एकशिलानगर) नामक सुप्रसिद्ध ज़िलेमें 'जनगाम' स्टेशनके निकट 'लिङ्गम्पल्ली' नामक एक छोटा-सा गाँव है; वहाँ अभी हालहीमें 'शिवकोटि वीरभद्रय्या' नामके एक गरीब गृहस्थ सज्जन हो गये हैं। ये सज्जन कुछ विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे। मातृ-भाषाकी मिडिलतककी पढ़ाईके बाद माता-पिताके आज्ञानुसार विवाह किया और एक पाठशालाके अध्यापक होकर गृहस्थी चलाने लगे। बाल्यकालसे ही ज्ञान, वैराग्य, सत्सङ्ग आदिमें इनकी पूर्ण प्रीति थी। इनकी भाँति इनके बाल-बच्चे भी सदाचारी और भगवद्भक्त थे; परन्तु अपने ग्राम-वासियोंकी दृष्टिमें ये खटकते थे। उन्हें इनका यह सब ज्ञान-वैराग्य कोरा ढोंग प्रतीत होता, जिसका परिणाम यह हुआ कि यह वहाँ टिक नहीं सके। दो-तीन वर्षमें ही पाठशाला छोड़-छाड़कर अपने गाँवके निकटवर्ती पहाड़पर जाकर कोई अनुष्ठान करने लगे; परन्तु वहाँ उनका रहना न हो सका। वहाँ लोकप्रियता उनके मार्गमें बाधक हुई। कुछ ही महीनोंमें उनकी महिमा चारों ओर फैल गयी, पहाड़में भी लोगोंका ताँता लगने लगा। परन्तु परमार्थ-पथके सच्चे पथिकको यह सब कहाँतक रुचिकर हो सकता है! आखिर उन्होंने उससे ऊबकर फिरसे गाँवमें ही प्रवेश किया; और वहीं रहकर चार वर्ष शिव-भक्तिका प्रचार करते रहे। जहाँ जाते वहीं 'शिव-भजन-संघ' की स्थापना करते। गरीबोंको अन्न आदि बाँटनेकी व्यवस्था भी कराते। आपको शिवजीमें, विशेषकर श्रीवीरभद्रमें बड़ी श्रद्धा थी। आपको यह आशा थी कि निकट भविष्यमें श्रीवीरभद्रजी अवतार धारणकर दुष्टोंका अवश्य दमन करेंगे। आपके अन्दर अनेक चमत्कार देखनेमें आये। उदाहरणार्थ, आपने अपने ग्राममें एक सुन्दर शिवालयकी स्थापना की, जिसमें कोई साठ-सत्तर हजार रुपये खर्च हुए होंगे। भगवान् जाने, इतना रुपया एक गरीबके हाथ कहाँसे लगा। साथ ही एक विशेष बात यह भी थी कि यह सब कुछ होनेपर भी उनकी अपनी झोंपड़ी ज्यों-की-त्यों बनी रही। अन्न-वस्त्रका भी पूर्ववत् अभाव-सा ही रहा।

श्रीशिवकोटि वीरभद्रय्या स्वामी एक अद्भुत मेधावी और विलक्षण व्यक्ति थे। बिल्कुल साधारण पढ़े-लिखे होनेपर भी, आपने स्वतन्त्र विद्याभ्याससे पुराण और तन्त्रशास्त्रमें अच्छी योग्यता प्राप्त की। उन्हें अपने प्रान्तमें जो श्रेय मिला उसका एकमात्र कारण उनका स्वरचित 'शिवकोटि' नामक अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें 'कल्याण' के करीब डबल साइजके प्रायः एक सौ पृष्ठ होंगे; जिनमें शिव-सम्बन्धी चित्र चित्रित हैं। खूबी यह है कि सरसरी नज़रसे उन चित्रोंमें अन्य चित्रोंकी भाँति अनेक बहुरङ्गी रेखाएँ और बेल-बूटे ही दिखायी पड़ेंगे; परन्तु ध्यानपूर्वक देखनेसे पता लगेगा कि उनमें कोरी रेखा एक भी नहीं है, बल्कि वे सब-की-सब रेखाएँ वास्तवमें अक्षर (तेलगु-लिपिके) हैं।* हाथ, पैर, नाक, कान, आँख, वस्त्राभूषण आदि सभी कुछ—यहाँतक कि सिर और पलकोंके बाल भी अक्षरोंसे ही तैयार हुए हैं और विशेषता यह कि यह सब होनेपर भी चित्र-कलाकी दृष्टिसे चित्रोंकी सुन्दरतामें कोई कमी नहीं आयी है। उदाहरणार्थ, पुस्तकके प्रारम्भमें ही गणेशजीका बड़ा सुन्दर चित्र बना है। उसके चारों ओर बार्डरमें बेल-बूटेकी भाँति श्रीगणेशजीकी पुराण-वर्णित उत्पत्ति-कथाएँ भी विस्तार-

* भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीरामजीके चित्र नागरी-अक्षरोंमें हैं।

पूर्वक चित्रित हैं । बीचमें जो गणेशका चित्र है उसमें सम्पूर्ण गणेशसहस्रनाम अङ्कित है। चित्रकारने यहाँतक बुद्धिमत्ता दिखलायी है कि कान, दाँत, पेट आदि प्रत्येक अङ्गमें यथाविधि 'शूर्पकर्णाय नमः' 'एकदन्ताय नमः' 'लम्बोदराय नमः' इत्यादि लिख दिये गये हैं। शिवजीकी पचीस लीलाएँ, द्वादश-ज्योतिर्लिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग, काशीखण्ड और शिव-पुराणकी मुख्य घटनाओं आदिके चित्र भी बहुत सफाई और बारीकीसे अङ्कित किये गये हैं। भगवत्कृपासे उनकी तूलिका भी इतनी नपी तुली चलती थी कि चित्रोंमें कहीं भी कोई ऐसा स्थान नहीं मिलता जहाँ एकबार रबरसे मिटाकर पुनः बनानेका चिह्न मालूम होता हो। आरम्भमें आपने बड़ी सुन्दरताके साथ शिवजीके एक करोड़* नाम लिखे थे जिससे आपके नामके पीछे 'शिवकोटि' पदवी लग गयी। उसके बाद आपने दस-बारह वर्षकी कठिन तपस्यासे उपर्युक्त अद्भुत ग्रन्थ तैयार कर अपनी 'शिवकोटि' पदवीको सार्थक कर दिया।

शिवकोटि एक अत्यन्त अद्भुत ग्रन्थ है। सिकन्दराबाद (दक्षिण) के यूरोपियन अधिकारियोंने एकबार चार-पाँच हजार रुपये पुरस्कारस्वरूप प्रदानकर इसे खरीद लेनेकी इच्छा प्रकट की थी; परन्तु श्रीवीरभद्रय्याजीने इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। आपने खेद प्रकट करते हुए कहा कि मैं तो इसे श्रीशिवजीके चरणोंमें अर्पित कर चुका हूँ; उसपर अब मेरा उतना ही अधिकार है जितना देवमूर्तिपर पुजारीका। कितने परले सिरेके स्वार्थत्याग और समर्पणका भाव है! वास्तवमें तो यह ग्रन्थ इस योग्य है कि इसके एक-एक चित्रके ब्लाक बनाकर उससे विचित्र चित्रावली तैयार की जाय। इस विशाल भारतवर्षमें पुण्यात्माओंकी संख्या मेरी समझसे कम नहीं है। दस-बीस हजार रुपया ऐसे कार्यके लिये खर्च कर देना कोई बड़ी बात नहीं है। कोई शिवभक्त इसके लिये तैयार हो जाय तो काम हो सकता है। बड़े खेदकी बात है कि शिवकोटि वीरभद्रय्या अभी हाल-हीमें चालीस वर्षकी उम्रमें ही शिवलोक सिधार गये!

शिवरात्रि-रहस्य

(लेखक—श्रीसुरेशचन्द्र सांख्य-वेदान्त-तीर्थ)

इस देशमें जितने प्रकारके पूजा-पार्वण, व्रत-उपवास, होम-नियम प्रचलित हैं उनमें शिवरात्रि-व्रतके समान प्रचार अन्य किसीका भी नहीं देखा जाता। इस विराट् हिन्दू-भारतके स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, प्रौढ़-युवा—प्रायः सभी किसी-न-किसी रूपमें इसके अनुष्ठानमें रत देखे जाते हैं। बहुतेरे यथाविधि पूजादि न करते हुए भी उपवास करते हैं। जिनकी उपवासमें भी रुचि नहीं होती वे कम-से-कम रात्रि-जागरण करके ही इस व्रतके पुण्यका कुछ भाग लेना चाहते हैं।

सौर, गाणपत्य, शैव, वैष्णव और शाक्त—प्रधानतः इन्हीं पाँच सम्प्रदायोंमें विराट् हिन्दू-समाज विभक्त है। इनमेंसे जो जिसके उपासक होते हैं वे अपने उस इष्टदेवको छोड़कर अन्यकी उपासना प्रायः नहीं करते। परन्तु इस शिवरात्रि-व्रतकी महिमा है—शास्त्रमें भी ऐसा ही विहित है तथा इसी विधानका आजतक पालन होता आया है—कि सम्प्रदायके भेदको त्याग सभी मनुष्य इसका पालन करते हैं और इसके फलस्वरूप भोग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त करना चाहते हैं—

आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।

शिव-पूजा और शिवरात्रि-व्रतमें जरा अन्तर है। व्रत-शब्दके निर्वचनसे हम समझ सकते हैं कि जीवनमें जो वरणीय है—बार-बार अनुष्ठानके द्वारा मन, वचन, कर्मसे जो प्राप्त करनेयोग्य है वही व्रत है। इसी कारण प्रत्येक व्रतके साथ कोई-न-कोई कथा या आख्यान जुड़ा रहता है। इन कथाओंमें ऐसे-ऐसे जीवनोंकी बातें रहती हैं जिनके साथ उस व्रतकी उत्पत्ति, परिणति और समाप्तिका संक्षिप्त इतिहास ग्रथित रहता है। इसके अतिरिक्त इन कथाओंके द्वारा यह भी प्रमाणित होता है कि व्रत मानव-जीवनकी धर्मपिपासाकी परितृप्तिके लिये केवल बीच-बीचमें ही अनुष्ठान करनेयोग्य नहीं है बल्कि यह हमारे व्यावहारिक जीवनका एक प्रधान अङ्ग बन सकता है।

* इस तरह 'शिवकोटि', 'रामकोटि' लिखनेकी प्रथा बहुत कालसे दक्षिणमें जारी है।

ईशान-संहितामें शिवरात्रिव्रतके सम्बन्धमें कहा है—

माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि ।
शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥
तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः ॥

अर्थात् माघ-मासकी कृष्ण चतुर्दशीकी महानिशामें आदिदेव महादेव कोटि सूर्यके समान दीप्तिसम्पन्न हो शिव-लिङ्गके रूपमें आविर्भूत हुए थे, अतएव शिवरात्रि-व्रतमें उसी महानिशा-व्यापिनी चतुर्दशीका ग्रहण करना चाहिये ।

माघ-मासकी कृष्ण चतुर्दशी बहुधा फाल्गुनमासमें ही पड़ती है । ईशान-संहिताके मतसे शिवकी प्रथम लिङ्ग-मूर्ति उक्त तिथिकी महानिशामें पृथिवीसे पहले-पहल आविर्भूत हुई थी, इसीके उपलक्ष्यमें इस व्रतकी उत्पत्ति होती है । इस श्लोकका 'महानिशा' शब्द भी एक विशिष्ट अर्थका ज्ञापक है । महर्षि देवल कहते हैं—

महानिशा द्वे घटिके रात्रेर्मध्यमयामयोः ।

चतुर्दशी तिथियुक्त चार पहर रात्रिके मध्यवर्ती दो पहरोंमें पहलेकी अन्तिम और दूसरेकी आदि । इन दो घटिकाओंकी (घड़ी) ही महानिशा संज्ञा है ।

व्रत-कथामें कहा गया है कि एकबार कैलास-शिखर-पर स्थित पार्वतीने शङ्करसे पूछा—

कर्मणा केन भगवन् व्रतेन तपसापि वा ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुस्त्वं परितुष्यसि ॥

अर्थात् हे भगवन् ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गके तुम्हीं हेतु हो । साधनासे सन्तुष्ट हो मनुष्यको तुम्हीं इसे प्रदान करते हो । अतएव यह जाननेकी इच्छा होती है कि किस कर्म, किस व्रत या किसप्रकारकी तपस्यासे तुम प्रसन्न होते हो ?

इसके उत्तरमें भगवान् शङ्कर कहते हैं—

फाल्गुने कृष्णपक्षस्य या तिथिः स्याच्चतुर्दशी ।
तस्यां या तामसी रात्रिः सोच्यते शिवरात्रिका ॥
तत्रोपवासं कुर्वाणः प्रसादयति मां ध्रुवम् ।
न स्नानेन न वस्त्रेण न धूपेन न चार्चया ॥
तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासतः ॥

'फाल्गुनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी-तिथिको आश्रयकर जिस अन्धकारमयी रजनीका उदय होता है उसीको 'शिवरात्रि' कहते हैं । उस दिन जो उपवास करता है वह निश्चय ही मुझे सन्तुष्ट करता है । उस दिन उपवास करनेसे मैं जैसा प्रसन्न होता हूँ वैसा स्नान, वस्त्र, धूप और पुष्पके अर्पणसे भी नहीं होता ।'

उपर्युक्त श्लोकसे यह जाना जा सकता है कि इस व्रतका उपवास ही प्रधान अङ्ग है । तथापि रात्रिके चार प्रहरोंमें चार बार पृथक्-पृथक् पूजाका विधान भी प्राप्त होता है—

दुग्धेन प्रथमे स्नानं दध्ना चैव द्वितीयके ।
तृतीये तु तथाऽऽज्येन चतुर्थे मधुना तथा ॥

'प्रथम प्रहरमें दुग्धद्वारा शिवकी ईशान-मूर्तिको, द्वितीय प्रहरमें दधिद्वारा अघोर-मूर्तिको, तृतीयमें घृतद्वारा वामदेव-मूर्तिको एवं चतुर्थमें मधुद्वारा सद्योजात-मूर्तिको स्नान कराकर उनका पूजन करना चाहिये ।' प्रभातमें विसर्जनके बाद व्रत-कथा सुनकर अमावस्याको यह कहते हुए पारण करना चाहिये—

संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शङ्कर ।
प्रसीद सुमुखो नाथ ! ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥

'हे शङ्कर ! मैं नित्य संसारकी यातनासे दग्ध हो रहा हूँ, इस व्रतसे तुम मुझपर प्रसन्न होओ । हे प्रभो ! सन्तुष्ट होकर तुम मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करो ।'

महाकवि कालिदास अपने अमर काव्य रघुवंशके प्रारम्भमें ही कहते हैं—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

'वाक्य और अर्थकी ज्ञान-प्राप्तिके लिये वाक्य और अर्थके समान नित्य-संयुक्त जगत्‌के माता-पिता पार्वती और शङ्करकी मैं वन्दना करता हूँ ।' कविने यहाँ 'वागर्थौ' पदके द्वारा इस सनातन सत्यको व्यक्त किया है कि वाक्यके साथ अर्थका नित्य सम्बन्ध है । वाक्य मानों स्थूल देह है और अर्थ उस देहमें अनुस्यूत सूक्ष्म प्राणशक्ति है । गोसाईंजीने भी कहा है—

गिरा-अर्थ जल-बीचि-सम, कहियत भिन्न न भिन्न ॥

वाक्यके साथ जैसे अर्थका सम्बन्ध है वैसे ही अनुष्ठानके साथ उद्देश्यका भी नित्य सम्बन्ध है और यह उद्देश्य कभी व्यक्त और कभी अव्यक्त अवस्थामें रहता है । शास्त्रीय

अनुष्ठानोंके मूलमें सर्वत्र ही एक गूढ उद्देश्य निहित रहता है। क्योंकि—

अज्ञातज्ञापकं हि शास्त्रम्।

शास्त्रोंका कार्य ही यही है कि जो ज्ञात नहीं उसे ज्ञात करा दें। शिवरात्रिके व्रतानुष्ठानमें शास्त्रका कौन-सा गूढ़ उद्देश्य निहित है, वह किस अज्ञात तत्त्वको बतलाता है—यह हमें जानना चाहिये, नहीं तो अनुष्ठानकी कोई सार्थकता नहीं रहेगी। परन्तु इस अन्तर्निहित तात्पर्य को जाननेके पूर्व इसके साथ जो कथा संयुक्त है उसे संक्षेपमें जान लेना आवश्यक है।

वाराणसीका एक व्याध शिकार के लिये वनमें गया। वहाँ अनेक मृगोंका शिकार कर लौटते समय मार्गमें वह थका-माँदा किसी वृक्षके नीचे सो रहा। नींद टूटनेपर देखता है कि सन्ध्या हो गयी है। चारों ओर भीषण अन्धकार हो जानेसे मार्ग नहीं सूझता। उस समय घर लौटना असम्भव देख वह हिंस्र जन्तुओंके आक्रमणके भयसे वृक्षके ऊपर चढ़कर उसीपर रात्रि बितानेका विचार करने लगा। उस दिन भाग्यवश शिवरात्रि थी और वह वृक्ष जिसपर वह बैठा था बेलका था तथा उसकी जड़में एक अति प्राचीन शिवलिङ्ग था। व्याध शिकारके लिये बड़े सबेरे घरसे बाहर निकल पड़ा था और तबसे उसने कुछ खाया नहीं था; इसप्रकार उसका उपवास भी स्वाभाविक ही सध गया। इस अद्भुत मणिकाञ्चन-संयोगसे और महादेवके आशुतोष होनेके कारण वसन्तकी रात्रिमें ओसकी बूँदोंसे भीगा हुआ बिल्वपत्र व्याधके देहसे लगकर शिव की उस लिङ्ग-मूर्तिपर जा गिरा, इससे आशुतोष के तोषका पार न रहा। फलस्वरूप आजीवन दुष्कर्म करनेपर भी अन्त कालमें उस व्याध को शिवलोककी प्राप्ति हुई।

शिवरात्रिके व्रत का स्वरूप और उसकी कथा संक्षेप में यही है। अब इसके तत्त्वके समझने के लिये हमें कुछ गहराईके साथ विचार करनेकी आवश्यकता है। शिव कौन हैं? ये केवल पौराणिक देवता हैं अथवा वेद में भी इनका वर्णन मिलता है? वेदके अनेक स्थलोंमें इनका रुद्रनामसे उल्लेख हुआ है। साधन-पथमें यही ब्रह्मवादियोंके ब्रह्म, सांख्य-मतावलम्बियोंके पुरुष, तथा योगपथमें आरूढ़ होनेवालोंके सहस्रारमें स्थित प्रणवकी अर्द्धमात्राके रूपमें कीर्तित हुए हैं। पुराणोंमें इनके आधिदैविक स्वरूपका अधिक विस्तार तथा

इनकी विविध लीलाओंका वर्णन होनेपर भी उसमें यही गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्व अन्तर्निहित है। शिवरात्रि-व्रतमें भी शिवका यही दार्शनिक परिचय अन्तःसलिला फल्गुकी धाराके समान प्रच्छन्नरूपेण प्रवाहित हो रहा है। उसी स्वादु सुशीतल धारामें अवगाहन करनेके लिये हमें और भी गहरेमें गोता लगाना पड़ेगा। इस व्रतमें उपवासकी प्रधानता क्यों हुई, यह रात्रिमें ही क्यों होता है, चतुर्दशी और अमावस्या इन दो तिथियोंके साथ इसका योग क्यों हुआ, तथा 'पारण' शब्दका यथार्थ अभिप्राय क्या है; इन सब बातोंको हमें एक-एक करके जाननेकी आवश्यकता है।

'उपवास' शब्दका क्या अर्थ है? 'आहारनिवृत्तिरुपवासः'—साधारणतः निराहार रहनेको ही 'उपवास' कहते हैं। किन्तु इस निर्वचनके अन्दर ही इसके वास्तविक अर्थका भी सङ्केत वर्तमान है। 'आङ्' पूर्वक 'हृ' धातुसे कर्मवाच्यमें घञ् प्रत्यय लगानेसे आहार-शब्द व्युत्पन्न होता है। इस व्युत्पत्तिके अनुसार जो कुछ आहरण किया जाता है, सञ्चय किया जाता है, वही आहार है—

आह्रियते मनसा बुद्ध्या इन्द्रियैर्वा इति आहारः।

मन, बुद्धि अथवा इन्द्रियोंके द्वारा जो बाहरसे भीतर आहृत, संगृहीत होता है, उसीका नाम आहार है। स्थूल और सूक्ष्म-भेदसे यह आहार साधारणतः दो प्रकारका है। मन आदिके द्वारा आहृत संस्कार ही सूक्ष्म आहार है और पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा गृहीत शब्द-स्पर्श-रूपादि स्थूल आहार है। इसके अतिरिक्त हम जिसे 'आहार' कहते हैं वह चावल, दाल, व्यञ्जनादि सर्वथा स्थूलतर आहार है। 'उपवास' शब्दका धातुमूलक अर्थ 'किसीके समीप रहना' है, सो यहाँ उसका अर्थ 'शिवके समीप' होना है। उपनिषदोंमें जिसे 'शान्तं शिवमद्वैतं यच्चतुर्थं मन्यते' कहा गया है उस शिवके समीप जानेसे स्वभावतः ही जीवके मन-प्राणकी समस्त रङ्गीन वृत्तियाँ अपने आप ही बुझने लगती हैं। इसीसे उपवासका अर्थ होता है आहार-निवृत्ति अर्थात् सूक्ष्म, स्थूल एवं स्थूलतर आहारका अत्यन्त अभाव। यह उपवास यदि यथोचितरूपेण अनुष्ठित हो तो व्रतके बहिरङ्ग अनुष्ठानोंमें कमी होनेपर भी कोई हानि नहीं होती। इसी कारण शिवरात्रि-व्रतमें 'उपवास' ही प्रधान अङ्ग है।

शिवरात्रि-व्रत रात्रिको ही क्यों होता है, अब हमें इस प्रश्नका उत्तर ढूँढ़ना है। जिसप्रकार नदीमें ज्वार-भाटा होता है उसी प्रकार इस विराट् ब्रह्माण्डमें सृष्टि और प्रलयके दो विभिन्नमुखी स्रोत नित्य बह रहे हैं। मानचित्रमें जैसे पृथ्वीके विस्तारको छोटे-से आकारमें पाकर उसे पकड़ लेना हमारे लिये सहज हो जाता है वैसे ही इस विराट् ब्रह्माण्डमें सृष्टि और प्रलयके जो सुदीर्घ स्रोत प्रवाहित हो रहे हैं, दिवस और रात्रिकी क्षुद्र सीमामें उन्हें बहुत छोटे आकारमें प्राप्तकर उसे अधिगत करना हमारे लिये सम्भव है। शास्त्रमें भी दिवस और रात्रिको नित्य सृष्टि और नित्य प्रलय कहा गया है। एकसे अनेक और कारणसे कार्यकी ओर जाना ही सृष्टि है और ठीक इसके विपरीत अर्थात् अनेकसे एक और कार्यसे कारणकी ओर जाना ही प्रलय है। दिनमें हमारा मन, प्राण और इन्द्रियाँ हमारे आत्माके समीपसे भीतरसे बाहर विषय-राज्यकी ओर दौड़ती हैं और विषयानन्दमें ही मग्न रहती हैं। पुनः रात्रिमें विषयोंको छोड़कर आत्माकी ओर, अनेकको छोड़कर एककी ओर, शिवकी ओर प्रवृत्त होती हैं। हमारा मन दिनमें प्रकाशकी ओर, सृष्टिकी ओर, भेद-भावकी ओर, अनेककी ओर, जगत्की ओर, कर्मकाण्डकी ओर जाता है, और पुनः रात्रिमें लौटता है अन्धकारकी ओर, लयकी ओर, अभेदकी ओर, एककी ओर, परमात्माकी ओर और प्रेमकी ओर। दिनमें कारणसे कार्यकी ओर जाता है और रात्रिमें कार्यसे कारणकी ओर लौट आता है। इसीसे दिन सृष्टिका और रात्रि प्रलयकी द्योतक है। 'नेति नेति' की प्रक्रियाके द्वारा समस्त भूतोंका अस्तित्व मिटाकर समाधियोगमें परमात्मासे आत्मसमाधानकी साधना ही शिवकी साधना है। इसीलिये रात्रि ही इसका मुख्य काल—अनुकूल समय है। प्रकृतिकी स्वाभाविक प्रेरणासे उस समय प्रेम-साधना, आत्म-निवेदन, एकात्मानुभूति सहज ही सुन्दर हो उठती है।

शिवरात्रिका अनुष्ठान रात्रिमें ही क्यों होता है यह समझमें आ गया। अब यह समझना है कि चतुर्दशी तिथिके साथ इसका घनिष्ठ संयोग क्यों हुआ। परन्तु चतुर्दशीके तत्त्वको समझनेके पूर्व 'अमावस्या' किसे कहते हैं, यह जानना होगा। 'अमा' पूर्वक 'वस्' धातुके साथ ण्यत् प्रत्ययके योगसे 'अमावस्या' शब्द व्युत्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति यों करनी चाहिये कि—अमा=सह अर्थात् एक साथ वास करते हैं—अवस्थान करते हैं सूर्य और चन्द्र जिस तिथिमें, वही 'अमावस्या' है। यह व्याकरण और ज्योतिषसम्मत अर्थ है। परन्तु साधन-राज्यमें सूर्य

और चन्द्र परमात्मा और जीवात्माके बोधक हैं। अतएव समाधि-योगमें जब जीव और शिव एकत्र अवस्थित होते हैं वह अद्वयानुभूतिका समय ही साधन-राज्यके अध्यात्म-शास्त्रकी अमावस्या है। समष्टिभावसे प्रकृतिमें जब इस एकात्मानुभूतिकी लीला होती है उस समय व्यष्टिभावसे अपने अन्दर यह लीलास्वादन सहज हो जाता है। परन्तु एकान्त अभेदमें तो उपासना हो ही नहीं सकती, इसीलिये चतुर्दशीमें जीव बहुत कुछ शिवमें डूब जाता है परन्तु थोड़ी-सी भेदकी रेखा शेष रह जाती है। वह शुभ मुहूर्त ही जीवकी शिवोपासनाका, शिवपूजाका पुण्य लग्न है। तत्पश्चात् अमावस्यामें जीव जब शिवमें एकबारगी डूब जाता है, भेदका लेश भी नहीं रह जाता, 'नेति नेति' के साधनसे पूर्ण समाधिमें अद्वैतानुभूतिका चरमोत्कर्ष साधित होता है, तभी व्रतका पारण—पूर्णता सम्पन्न होती है। उसी समय 'इति इति' की साधनामें 'यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनम्' इस प्रक्रियाका आरम्भ होनेसे ही शिवरात्रि-व्रतका अनुष्ठान सार्थक होता है।

इसप्रकार व्रत-कथाके तात्पर्यको हृदयङ्गम कर लेनेपर हमारा शिवरात्रिका तत्त्वानुसन्धान एक प्रकारसे समाप्त हो जाता है। शास्त्रमें अनेक स्थलोंपर मनुष्य-देहकी एक वृक्षके रूपमें कल्पना की गयी है। मनुष्य-शरीरके स्नायुजाल (Nervous System) का गठन ही इस कल्पनाका मूल है। देहका ऊर्ध्वभाग—मस्तिष्क ही इस वृक्षका मूल है, मेरुदण्ड काण्ड है और हस्त-पादादि अङ्ग-प्रत्यङ्गके रूपमें इसकी अनेकों शाखा-प्रशाखायें फैली हुई हैं। इस अपूर्व वृक्षका मूल ऊर्ध्वदिशामें और शाखा-प्रशाखायें अधोदिशामें प्रसरित हैं। इसीसे—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।

—कहा गया है।

उपासक-भेदसे इस वृक्षको कोई अश्वत्थ, कोई बिल्व, कोई कल्पतरु या कदम्ब कहा करते हैं। इसी कारण कोई इसके मूलमें सदाशिवको, कोई श्रीकृष्णको, कोई साक्षात् नारायणको देखते हैं। शिवरात्रिके व्रतकी कथामें इसीलिये बिल्ववृक्षके मूलमें शिवका स्थान है। जीवात्मा ही व्याध है, इन्द्रियरूप तीरोंके द्वारा विषयरूप पक्षियोंका शिकार करना इसका कार्य है। इस प्राकृत जीवनका स्रोत जब रुद्ध होता है, जब वह अपने समस्त कर्मफलोंको भगवान्के अर्पण करना सीख जाता है, जब देहरूप बिल्ववृक्षके त्रिगुण-रूप त्रिपत्रको गुणातीत शिवके मस्तकपर अर्पण करता है, आसक्तिशून्य हो जाता है, तब 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' अर्थात् जलमें पद्मपत्रके समान वह फिर कर्मके शुभाशुभ फलोंका भागी नहीं होता, जीवन्मुक्त होकर सामने आये हुए प्रारब्ध कर्मोंको ही भोगता रहता है तथा शरीरान्त होनेपर कैलासके कैवल्य-धाममें परमानन्द-रसके आस्वादनमें निमग्न हो जाता है।

शिव-शक्ति-वाद

(लेखक—प्रो० श्रीभीखनलालजी आत्रेय, एम० ए०, डी० लिट्)

दर्शनकी प्राचीनतम समस्या यह है कि 'इस दृश्यमान परिवर्तनशील नानारूप-गुणयुक्त जगत्की तहमें क्या तत्त्व है और वह एक है अथवा अनेक?' भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शनमें इस प्रश्नके बहुत-से उत्तर पाये जाते हैं। उन सबको हम निम्नलिखित मतोंके अन्तर्गत कर सकते हैं—

(१) संसारके समस्त पदार्थ एक ही तत्त्वके नाम-रूप हैं। वह तत्त्व कुछ लोगोंके मतमें जड प्रकृति है और दूसरे लोगोंके मतमें चेतन ब्रह्म है। प्रकृतिवादियोंके अनुसार चेतनता जड प्रकृतिहीका एक रूप, कार्य अथवा विवर्त है। इस मतका नाम 'जडाद्वैत' है। ब्रह्मवादियोंके मतमें जडता चेतन ब्रह्मका ही एक रूप, कार्य अथवा विवर्त है। इस मतका नाम 'चेतनाद्वैत' है।

(२) संसारमें हमको दो वस्तुएँ दिखायी पड़ती हैं—जड और चेतन। उनके भेदका निराकरण नहीं हो सकता, इसलिये जड प्रकृति और चेतन पुरुष (आत्मा) इन दोनों तत्त्वोंकी सत्ता माने बिना दर्शनका काम नहीं चल सकता। इस मतका नाम 'द्वैतवाद' है।

(३) तीसरा वह मत है जिसके अनुसार जगत्में केवल दो ही पदार्थ नहीं, बल्कि अनेक हैं। सामान्य गुणानुसार उनको हम भले ही दो जातियों—जड और चेतन—में रख लें; किन्तु यह कहना कदापि ठीक नहीं है कि

सब चेतन जीव एक ही जीव हैं; और सारे जड-पदार्थोंका स्वरूप एक-सा ही है। जीव अगण्य हैं और प्रत्येक जीव एक दूसरेसे भिन्न हैं। जड-पदार्थ भी नाना प्रकारके हैं और उनके भिन्न-भिन्न गुण-स्वभाव हैं।

(४) चौथा मत उन लोगोंका है जो अद्वैत, द्वैत और नानात्व-वादका किसी-न-किसी रूपमें समन्वय कर लेते हैं। वे अनेकतामें एकता और एकतामें अनेकता देखते हैं। और एकता और अनेकता, दोनोंका पल्ला उनके लिये बराबर भारी है। संसारमें अगण्य पदार्थ हैं और वे सब अपना-अपना विशेषत्व और व्यक्तित्व सदाके लिये क़ायम रखते हैं। फिर भी इनका संयोजक और नियामक एक परमतत्त्व है, जिसका नाम ईश्वर है।

अब संक्षेपमें हमको यह देखना है कि इन मतोंमें कौन-सा मत युक्तिसङ्गत है।

जडाद्वैतवाद किसी प्रकार युक्तियुक्त दार्शनिक सिद्धान्त नहीं हो सकता (देखिये—कल्याण-ईश्वराङ्कमें हमारा लेख—'प्रकृतिवादकी त्रुटियाँ', पृष्ठ ३९७)। जडसे चेतनकी उत्पत्ति, विकास, समुदय इत्यादिकी सिद्धि नहीं हो सकती। चेतनकी सत्ता स्वयंसिद्ध ही है। जडकी सत्ता किसी-न-किसी चेतनके ज्ञानके अधीन है। यदि ऐसा कोई जड पदार्थ है जिसको कोई नहीं जानता, तो उसकी सत्ता असत्ताके समान है। यह कहना कि कोई वस्तु सर्वथा जड है, क्योंकि हमको उसके चेतनत्वका ज्ञान नहीं, इतना ही युक्तिहीन है जितना कि यह कहना कि मेरे अतिरिक्त सब मनुष्य जड हैं, क्योंकि उनके चेतनत्वका मुझको प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है। विज्ञान दिन-पर-दिन यह सिद्ध करता जा रहा है कि संसारमें वस्तुतः कोई पदार्थ जड नहीं है, प्रकृतिके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कणके भीतर भी कोई महान् शक्ति और चेतनता कार्य करती हुई प्रतीत होती है।

चेतनाद्वैतवादमें भी बहुत-सी कठिनाइयाँ दृष्टिगत होती हैं। यदि ब्रह्म एक और एकस्वरूप है और वह स्वरूप शुद्ध चेतन है, तो वह अनेक नाम और रूपोंमें कैसे परिणत हो गया? शुद्ध चेतनसे उसके प्रतियोगी जडकी उत्पत्ति अथवा उसकी जडमें परिणति अथवा उसका जडरूपमें भासमान होना कैसे सम्भव है? यदि वह वास्तवमें एक ही है तो उसमें नानात्व और परिवर्तन इत्यादि नहीं हो सकते। यदि यह कहा जाय कि नानात्व वस्तुतः है ही नहीं, केवल हमको दिखायी पड़ता है; और ऐसा देखना हमारे मन, इन्द्रिय और बुद्धिका भ्रम है, तो यह प्रश्न उठता है कि उस एकमें हम दूसरे उसको नाना रूप देखनेवाले कैसे और कहाँसे आ गये? यदि हम भी इस भ्रम और मायाके कार्य हैं, तो यह भ्रम स्वयं कैसे उदय हो गया? शुद्ध चेतन-ब्रह्मके अतिरिक्त किसी अल्पज्ञ द्रष्टा और दोषकी सत्ता माने बिना भ्रम सम्भव नहीं हो सकता। इन कठिनाइयोंके कारण शुद्ध चेतनाद्वैतवाद भी युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता।

अब रहा द्वैतवाद। स्थूल दृष्टिसे देखनेसे द्वैतवाद भले ही युक्तिसङ्गत मालूम पड़े, किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टिसे इसका निरीक्षण किया जाय तो यह भी ठीक नहीं जान पड़ता। सारे जड-पदार्थोंको एक ही गुण-स्वभाववाली प्रकृति मान लेना भूल है। प्रत्येक द्रव्यका विशेष गुण होता है। एक द्रव्यके स्थानपर दूसरा द्रव्य कार्य नहीं कर सकता। यदि सब द्रव्योंको एक गुणवाली प्रकृति मान लें तो उस प्रकृतिमें सर्वसामान्य गुणके अतिरिक्त और कोई गुण नहीं रह जाता। संसारकी वस्तुओंसे इसका विकास होना उसी प्रकार असम्भव होगा, जिसप्रकार अद्वैतमतमें एकका अनेक होना; इसी प्रकार सब चेतन जीवोंको एक चेतन पुरुष मान लेनेसे व्यक्तित्व और जीवगत अनेकताकी समस्या हल नहीं होती। प्रत्येक जीव व्यक्ति है, उसके सुख-दुःख, इच्छा, राग-द्वेष आदि स्वयंगत हैं और दूसरे जीवोंके सुख-दुःख आदिसे भिन्न हैं। एक जीव दूसरेके हृदयमें प्रविष्ट नहीं हो सकता। सब जीवोंको चेतन या पुरुष कहना ऐसा ही है जैसा कि यह कहना कि सब मनुष्य मनुष्य हैं या सब पशु पशु हैं। इन सामान्य नामोंसे व्यक्तित्वकी समस्या जरा भी हल नहीं होती। सब मनुष्य मनुष्य होते हुए भी एक दूसरेसे भिन्न व्यक्ति हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि संसारमें दो ही तत्त्व हैं—एक जड दूसरा चेतन, तो भी यह समझमें नहीं आता कि एक जडसे अनेक जड वस्तुएँ और एक चेतनसे अनेक चेतन जीव क्यों और कैसे हो गये? दूसरा आक्षेप जो द्वैतवादके ऊपर किया जा सकता है, यह है कि यदि जड और चेतन दो भिन्न स्वभाववाली वस्तुएँ हैं तो उनमें आपसमें सम्बन्ध कैसे हो सकता है? जगत्में सब वस्तुओंका एक दूसरेके साथ सम्बन्ध है। जड और चेतनमें भी घनिष्ठ सम्बन्ध दिखायी पड़ता है। शरीर और आत्मा, ज्ञाता और ज्ञेय अत्यन्त ही सम्बद्ध हैं। इसलिये यह मानना

पड़ेगा कि जड और चेतन अपने अन्तिम स्वरूपमें विषम नहीं हैं। तत्त्वरूपसे दोनों एक ही हैं। इन दोनों प्रकारके विचारोंसे द्वैतवाद निरर्थक जान पड़ता है। व्यक्तित्व तथा विशेषत्वकी ओर विशेष ध्यान देनेसे नानात्ववाद सत्य प्रतीत होता है। सम्बन्धकी ओर ध्यान देनेसे अद्वैतवाद सिद्ध होता है।

नानात्ववादीलोग व्यक्तित्व और विशेषत्वपर अधिक जोर देते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक वस्तु विशिष्ट और प्रत्येक जीव व्यक्ति है। और जो दर्शन इस ओर ध्यान न देकर केवल सामान्य धर्मयुक्त सत्तामात्रपर ही जोर देता है और सब वस्तुओंको सन्मात्र प्रकृति अथवा ब्रह्म कहकर छुट्टी लेता है और बार-बार प्रश्न करनेपर यह कहता है कि नानात्व, व्यक्तित्व-भेद भ्रम है, वह कदापि सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं हो सकता। ऐसे ही जो दर्शन नाना वस्तुओं और व्यक्तियोंके अतिरिक्त जगत्में किसी प्रकारकी एकता नहीं मानता वह भी ठीक नहीं मालूम पड़ता। यदि सब द्रव्यों और जीवोंमें सम्बन्ध करानेवाले उनसे अतिरिक्त एक विशेष पुरुष अर्थात् ईश्वरको भी मान लें, तो यह कठिनाई आ जाती है कि प्रत्येक द्रव्य और जीव ईश्वरसे भिन्न अस्तित्व, गुण, स्वभाव रखते हुए ईश्वरके अधीन कैसे हो सकता है। नानावादकी कठिनाई ईश्वरका अस्तित्व मान लेनेसे कदापि दूर नहीं हो सकती। ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनोंका परस्पर सम्बन्ध तबतक सिद्ध नहीं हो सकता जबतक कि तीनोंमें तीनोंका अन्तरात्मा कोई एक परमतत्त्व न माना जाय।

नानात्व और एकत्व सापेक्ष हैं। प्रत्येक दृश्यमान पदार्थ किसी दृष्टिकोणसे नानारूप है और दूसरे दृष्टिकोणसे एक है। उदाहरणार्थ वृक्ष अथवा शरीरको लीजिये। वे एक भी हैं और अनेक भी। अवयवीरूपसे वे एक हैं; अवयव-रूपसे वे नाना हैं। प्रत्येक अवयव दूसरे अवयवोंसे भिन्न स्वरूप, गुण तथा स्वभाववाला है। संसारके समस्त पदार्थ इसी प्रकार एक और अनेक हैं। विशेषत्व और व्यक्तित्व क्या है—यह कहना कठिन है। संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जो किसी विशेष रूपमें बहुत कालतक वर्तमान रहता हो। सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेसे यह ज्ञात होता है कि कोई भी वस्तु एक क्षणके पश्चात् वही विशेष वस्तु नहीं रहती, अवश्य किसी दूसरे रूपमें परिणत हो जाती है। एक स्थानसे दूसरेपर ले जानेसे भी वस्तुके विशेषत्वमें परिवर्तन आ जाता है। एक वस्तुके समीप रहनेसे किसी वस्तुका जो विशेष रूप है वह दूसरी वस्तुओंके समीप चले जानेसे परिवर्तित हो जाता है। यही बातें चेतन व्यक्तियोंके सम्बन्धमें भी कही जा सकती हैं। प्रत्येक क्षण, प्रत्येक देशमें और प्रत्येक परिस्थितिमें हमारा व्यक्तित्व बदलता रहता है। दूसरी ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि जगत्में कोई भी वस्तु दूसरी वस्तुओंसे सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखती। प्रत्येक पदार्थका संसारके सब पदार्थोंसे सम्बन्ध है। अणुमात्र समस्त विश्वकी शक्तियोंका केन्द्र है और प्रत्येक व्यक्तिके पीछे सारे जगत्की अनन्त शक्ति अव्यक्तरूपसे वर्तमान जान पड़ती है। संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है और न ऐसा कोई व्यक्ति है जिसको, जैसा वह इस समय है, वैसा बनानेमें सारे संसारकी शक्तियाँ सहायक न होती हों। विशेषत्व और व्यक्तित्व स्वयं पर्याप्त तथा स्वयं सिद्ध नहीं हैं। वे उन झरोखोंके सदृश हैं जिनके भीतर देखनेसे सारा जगत् दीख पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तित्व-दृष्टिसे अणु-सा है, किन्तु वही विचार करनेसे महान्-से-महान् भी है। एक वैज्ञानिकने ठीक कहा है कि जगत्के एक-एक कणके पीछे इतनी शक्ति गुप्तरूपसे वर्तमान है कि जिसके द्वारा करोड़ों वर्षतक करोड़ों घोड़ोंकी ताकत-वाली मशीनें चलायी जा सकती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक वस्तु एक ओर तो अणु-से-अणु और दूसरी ओर महान्-से-महान् अथवा अनन्त रूपवाली है। अनन्त बहुत-से नहीं हो सकते। इसलिये यह कहना उचित होगा कि अणु-रूपसे जगत्की वस्तुएँ नाना हैं तथा महान्‌रूपसे वे सब एक ही हैं, अर्थात् प्रत्येक अणु एक महान् शक्तिका केन्द्र है।

इस विचारधारासे हम इस सिद्धान्तपर पहुँचते हैं कि विश्वगत नानात्व देश-काल-परिस्थिति-कृत है। स्वरूपतः वह अवर्णनीय है। इसके पीछे इसका आधार और तत्त्व एक है। एक ही अनेक रूपमें प्रकट हो रहा है। और वह एक तत्त्व सामान्य गुण-स्वरूपवाला कोई शुष्क सत्-मात्र नहीं है। वह सर्वगुणस्वभाव-शक्तिमय एक है। वह एक होता हुआ भी अनेक रूपोंमें परिणत हो रहा है। व्यक्तित्व और विशेषत्व उसी एक परमतत्त्वका किसी विशेष क्षण, स्थान और परिस्थितिमें प्रकट होनेका नाम है। अतएव वह क्षणिक है। इस दृष्टिकोणसे सदा ही उसमें अनेकता और परिणाम रहेंगे। एकत्व-दृष्टिसे वह नित्य है, अनन्त है और सर्व-शक्तिमय है। वह जो है सदा है, सर्वत्र है और सब कुछ है। इसलिये उसका कोई विशेष नाम और गुण नहीं कहा जा

सकता। उसका हम लक्षणसे ही वर्णन कर सकते हैं। भारतीय शास्त्रोंमें उस तत्त्वका नाम प्रायः ब्रह्म है। योगवासिष्ठ महारामायणमें, जोकि भारतीय अध्यात्मशास्त्रोंमें एक उच्च कोटिका ग्रन्थ है, उस तत्त्वका नाम 'ब्रह्म' और उसके नाना रूपमें प्रकट होनेका नाम 'बृंहण' है। इसी ग्रन्थमें कुछ स्थानोंपर जगत्‌के इन दो स्वरूपोंका नाम 'शिव' और 'शक्ति' भी दिया है। परमतत्त्व शिव है। और नानारूप जगत् उसकी क्रियाशक्तिका अनन्त रूपोंमें नृत्य करनेका नाम है। शिव और शक्ति कभी एक दूसरेसे अलग नहीं हो सकते; दोनों एक ही हैं। शिव बिना शक्ति नहीं और शक्ति बिना शिव नहीं। यह शिव-शक्ति-वाद योगवासिष्ठके निम्नोद्धृत श्लोकोंसे विदित होता है—

भूत्वा भूत्वा प्रलीयन्ते समस्ता भूतजातयः।
अनारतं प्रतिदिशं देशे देशे जले स्थले॥

'सब व्यक्ति चारों ओर देश-देशमें, जल-थलमें बराबर उत्पन्न हो-होकर लय होते रहते हैं।'

न सम्भवति सम्बन्धो विषमाणां निरन्तरः।
ऐक्यं च विद्धि सम्बन्धं नास्त्यसावसमानयोः॥

'विषम-स्वरूप वस्तुओंमें घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं हो सकता। सम्बन्धका अर्थ एकता है। वह कभी असमान वस्तुओंमें नहीं हो सकता।'

सर्वा एताः समायान्ति ब्रह्मणो भूतजातयः।
किञ्चित्प्रचलिताभोगात्पयोराशेरिवोर्मयः॥

'ये सब प्राणी ब्रह्मसे इसप्रकार उदय होते हैं जैसे हिलते हुए समुद्रसे लहरें।'

सत्यं ब्रह्म जगच्चेकं स्थितमेकमनेकवत्।
ब्रह्म सर्वं जगद्वस्तु पिण्डमेकमखण्डितम्॥

'एक सत्य ब्रह्म नानारूप जगत्‌के रूपमें वर्तमान है। सारा जगत् एक अखण्डित पिण्डरूप ब्रह्म है।'

जगच्चित्पुष्पसौगन्धं चिल्लताग्रफलं जगत्।
चित्सत्तैव जगत्सत्ता जगत्सत्तैव चिद्वपुः॥

'जगत् ब्रह्मरूपी फूलकी सुगन्ध है, ब्रह्मरूपी लताका फल है। ब्रह्मकी सत्ता ही जगत्‌की सत्ता है। और जगत् ही ब्रह्मका रूप है।'

सर्वशक्तिपरं ब्रह्म सर्ववस्तुमयं ततम्।
सर्वथा सर्वदा सर्वं सर्वैः सर्वत्र सर्वगम्॥

'वह सर्ववस्तुमय और सर्वशक्तिवाला ब्रह्म सर्वरूपसे सब कालमें, सब स्थानोंपर, सबके भीतर और सबके साथ फैला हुआ है।'

समस्तशक्तिखचितं ब्रह्म सर्वेश्वरं सदा।
ययैव शक्त्या स्फुरति प्राप्तां तामेव पश्यति॥

'सर्वशक्तियुक्त ब्रह्म सबका ईश्वर है। जिस शक्तिद्वारा प्रकट होना चाहता है वही दृष्टिगोचर हो जाती है।'

चिन्मयः परमाकाशो य एव कथितो मया।
एषोऽसौ शिव इत्युक्तो भवत्येष सनातनः॥

'वह परम आकाश (अनन्त तत्त्व) जिसको मैंने चेतन-स्वरूप (ब्रह्म) बताया है, शिव भी कहलाता है। वह सनातन है।'

अनन्यां तस्य तां विद्धि स्पन्दशक्तिं मनोमयीम्।
स्पन्दशक्तिस्तदिच्छेयं दृश्याभासं तनोति सा॥

'उसकी मनोमयी स्पन्द-शक्ति (क्रिया-शक्ति) को उससे अनन्य समझो। वह ब्रह्मकी स्पन्द-शक्तिरूपी इच्छा ही दृश्यमान पदार्थोंका विस्तार करती है।'

सा राम प्रकृतिः प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा॥

'हे राम! वह पारमेश्वरी शिवेच्छा, जोकि अनादि स्पन्द-शक्ति है, प्रकृति और जगन्माया भी कहलाती है।'

तस्माच्चिच्छक्तिकोशस्थाः सर्वाः सर्गपरम्पराः।
सर्वाः सत्याः परं तत्त्वं सर्वात्मा कथमन्यथा॥

'इसलिये जगत्‌के सब पदार्थ शिव-शक्तिके कोशमें वर्तमान हैं, सभी सत्य हैं और परम-तत्त्व (शिव) उनका आत्मा है। इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है?'

तस्मान्न द्वैतमस्तीह न चैक्यं न च शून्यता।
न चेतनाचेतनत्वं वै मौनमेव न तच्च वा॥

'अतएव न द्वैत है, न ऐक्य है, न शून्यता है। परम-तत्त्व न चेतन है, न जड। चुप ही रहना पड़ता है। लेकिन चुप भी नहीं रहा जा सकता।'

बम् बम् बम्

(लेखक—पं० श्रीबुद्धिसागरजी मिश्र 'पञ्चानन')

(१)

नटराजराज नृत्य अवसान होते होते—
शब्द ब्रह्म व्यक्तकी प्रतीक सूत्र-जाल हैं।
अकथ अगोचर अनामय अनीह अज,
जाने जाते स्वेच्छासे ही प्रिय चन्द्रभाल हैं॥
अहह ! असीम तुष्टिकी समष्टि सत्य नित्य;
बन जाते आशुतोषरूप भक्तमाल हैं।
'पञ्चानन' पातकी तू शङ्कर-शरण हो जा,
फिर देख, भाग्य तेरे कितने विशाल हैं ?॥

(२)

सूर्य एक ही हैं किन्तु पात्र-पात्रमें विभिन्न
जिस भाँति प्रतिबिम्ब दीखते अनेक हैं।
विश्व-वृक्ष अग्र-मध्य-मूल विधि-विष्णु-शिव,
नाम-रूप भिन्न, भक्त-त्राण स्वच्छ टेक हैं॥
'पुंलिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं भगवत्युमा,
वेदवाक्य सत्य हैं, सतत सविवेक हैं।
हर हर हर हर, हरि हरि हरि भज,
दो नहीं हैं, एक ही हैं; एक ही हैं, एक हैं॥

(३)

रुद्र रुद्र रुद्र नाम जपनेसे नित्य नित्य,
पातक-समूह आशु होते छार-छार हैं।
वेधा-विष्णु-वाणी-रमा, रुद्र-उमा रूप ही हैं,
परम शरण्य पूज्य दयाके अगार हैं॥
सर्वगत अव्यय अव्यक्त सूक्ष्मतम ईश,
भक्त-वात्सल्य-वश लेते अवतार हैं।
'पञ्चानन' तू भी शिव शिव शिव शिव रट—
तेरे तुल्य अधमके वे ही तो अधार हैं॥

(४)

उफ़! कोटि कोटि, मेरु मन्दर हिमालय भी
निज पाप-पुञ्जके मुकाबिलेमें धूल हैं।
यह इतराना, पर कहाँ है ठिकाना ज़रा,
सोचता न भ्रान्तिग्रस्त कहाँ तेरे मूल हैं॥
अरे दुष्ट! होश कर, भव-सिन्धु भारी यह,
आँखें खोल देख अब, कहाँपर कूल हैं ?
'पञ्चानन' पातकी सँभल जा, न देर कर,
सत्य 'भगवान्', ये प्रपञ्च सब भूल हैं॥

(५)

यद्यपि न चारा कुछ चाहता सहारा यह—
रसना बेचारी बम् बम् बम् रटती।
पैर, चल-चलकर वैद्यनाथ-धाम जाते,
आँखें, दिव्य मूर्तिपर उनके ही डटतीं॥
हाथ, बिल्व-दल जल, षोडशोपचारयुत,
पूजननिरत होते, पापराशि कटतीं।
मत्था टेक पाता व्योमकेशके चरणपर
भक्ति-भावनाके साथ,भ्रान्ति-भीति हटतीं॥

शिवका स्वरूप

(लेखक—श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एम० ए०, एल-एल० बी०)

शिव परमयोगीश्वर हैं। उनका वाहन वृष है। उन्होंने कामको भस्म कर लिया है। पार्वती उनकी शक्ति है जिसमें सम्भृत होकर उनका तेज स्कन्द या स्वामिकार्त्तिकेयके रूपमें प्रकट हुआ है। शिवके मस्तकमें चन्द्रमा और गंगा हैं। उनके कण्ठमें विषका निवास है। शरीरपर भस्म है। अङ्गमें कुण्डली सर्पोंका वेष्टन है। उन्होंने त्रिपुरासुरको जीत लिया है। कैलास उनका वासस्थान है। उनकी एक संज्ञा 'भृगुपति' है। परशुरामको भी 'खण्डपरशु' और 'भृगुपति' कहते हैं। परशुरामने रेणुकाको नवीन जन्म दिया था। उन्होंने क्रौञ्च पर्वतका दारण किया है। इन कल्पनाओंके साथ अनेक उपाख्यानोंका सम्बन्ध है। प्रश्न यह है कि उनका वास्तविक अर्थ क्या है। ये सब भाव किन अचिन्त्य अध्यात्म अर्थोंका संकेत करते हैं?

कालिदास शिवके स्वरूपको आद्योपान्त जानते थे। उस तत्त्वको उन्होंने अपने 'कुमारसम्भव' और 'मेघदूत' नामक ग्रन्थोंमें प्रकट किया है। अन्तर्दृष्टिसे शिव-तत्त्वका साक्षात्कार करनेके बाद उन्होंने बाह्य-स्थूल दृष्टिसे देखनेवाले लोगोंको लक्ष्य करके कहा था—

न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।

(कुमार० ५। ७७)

शिवको यथार्थरूपसे जाननेवाले और अनुभव करनेवाले मनुष्य कम हैं। शिवका पिनाक नामक धनुष कौन-सा है, उनके मदन-दहनका क्या रहस्य है, वृष कौन है, गङ्गा और चन्द्रमा क्या हैं, 'भृगुपति' किसे कहते हैं, कैलास और उसपर स्थित मणितट क्या हैं?—इत्यादि प्रश्नोंका समाधान ही शिवके स्वरूपका यथार्थ निरूपण है।

शिव भारतीय योगविद्याके परमगुरु, आचार्य या आदिप्रवर्तक हैं। शिव और योग एक ही तत्त्वकी ख्याति हैं। योग-समाधिका फल ही शिवका आत्मदर्शन है। कालिदासने लिखा है कि जिस समय देवकार्यकी सिद्धिके लिये शिवकी समाधि भङ्ग करनेको कामदेव कैलासपर पहुँचा, उस समय शिव समाधिके द्वारा उस आत्म-तत्त्वका साक्षात्कार कर रहे थे जिसे योगीलोग अपने शरीरके भीतर ढूँढ़ा करते हैं—

मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति
हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम्।
यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्त-
मात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम्॥

(कुमार० ३। ५०)

अर्थात् नव इन्द्रियद्वारोंमें सञ्चार करनेवाली मानसी वृत्तियोंको समाधिके द्वारा वशीभूत करके शिव उस अक्षर आत्मतत्त्वको अपने क्षेत्र या शरीरमें ही देख रहे थे, जिसका क्षेत्रज्ञ योगी ज्ञान करते हैं। योग ही शिवत्वका आदि और अन्त है।

भारतीय रहस्य-तत्त्वके अनुसार मनुष्यका मेरुदण्ड या सुषुम्णा (Central Nervous System) ही वह यूप या खम्भा है जिसमें मनुष्यरूपी पशु बँधा हुआ है—

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम्।

इसी यूपमें अजीगर्तका पुत्र शुनःशेप बाँधा गया था और इसीमें हममेंसे प्रत्येक प्राणी बँधा हुआ है। इस यूपमें मनुष्य त्रिधा बद्ध है। वेदमें कहा है—

चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महोदेवो मर्त्यां आविवेश॥

(ऋग्०)

अर्थात् मन-बुद्धि-चित्त-अहङ्काररूपी चार सींगवाला, भूत-भविष्य-वर्तमानरूप तीन पैरवाला, मर्त्य और अमृत—दो सिरवाला तथा सत प्राणरूप सात हाथोंवाला एक बड़ा विलक्षण वृषभरूप यह पुरुष है जो तीन स्थानोंमें बँधा हुआ है। यह बन्धनमें पड़ा हुआ महादेव वृषभ अत्यन्त रुदन करता है, पर उस बन्धनसे मुक्तिका उपाय इसके हाथ नहीं आता। इन्हीं तीन बन्धनोंकी ओर शुनःशेपने संकेत किया था—

उदुत्तमं वरुणपाशमस्म-
दवाधमं विमध्यमं श्रथाय।

अथा वयमादित्यव्रते
तवानागसो अदितये स्याम ॥
(ऋग्० १ । २४ । १५)

'हे वरुण, हमारे उत्तम, मध्यम और अधम पाशोंको शिथिल करो, दूर करो। हे आदित्य, हम तेरे व्रतमें अनागस् अर्थात् निष्पाप रहते हुए, अदिति-स्थितिको प्राप्त करें।' तीन प्रकारके पाशोंका मोचन और त्रिपुरासुरकी विजय एक ही अध्यात्म-तत्त्वका द्विविध निरूपण है। ये तीन पाश या तीन पुर कौन-से हैं ? दार्शनिक-जगत्‌में प्रसिद्ध त्रिगुण ही ये त्रिपुर हैं। इन तीन गुणोंसे यह ब्रह्माण्डव्यापी और पिण्डव्यापी सृष्टि-विसृष्टिक्रम गतिशील है। त्रैगुण्य ही विश्वकी आधार-शिला है। वेदोंमें, ब्राह्मणोंमें, उपनिषदोंमें, दर्शनोंमें, पुराणोंमें तथा मध्यकालीन ग्रन्थोंमें सर्वत्र ही त्रैगुण्यका अनन्त विस्तार पाया जाता है। ओम्‌के व्यष्टिरूपकी व्याख्या ही त्रिगुण हैं। गार्ग्यायणके प्रणववादमें त्रैगुण्यका अनेक प्रकारसे निरूपण किया गया है। यहाँ हम उस विस्तारमें नहीं पड़ना चाहते। केवल थोड़े-से वैदिक और लौकिक त्रिकोंका ही उल्लेख करके सन्तोष करेंगे—

अ	उ	म्
गायत्री	त्रिष्टुप्	जगती
जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति
प्रातःसवन	माध्यन्दिनसवन	सायंसवन
२४ वर्ष	४४ वर्ष	४८ वर्ष
वसु	रुद्र	आदित्य
वसन्त	ग्रीष्म	शरद्
आज्य	इध्म	हवि
भूः	भुवः	स्वः
पृथिवी	अन्तरिक्ष	द्यौः
ऋक्	यजुः	साम
अग्नि	वायु	आदित्य
वाक्	प्राण	मन
होता	अध्वर्यु	उद्गाता
सत्त्व	रज	तम
गार्हपत्याग्नि	दक्षिणाग्नि	आहवनीयाग्नि
अम्बा	अम्बिका	अम्बालिका
विष्णु	ब्रह्मा	शिव
ज्ञान	क्रिया	इच्छा

इन कतिपय उदाहरणोंसे ही वैदिक साहित्यके गूढ-व्यापी त्रिकवादका परिचय हो सकता है। इस देशकी संस्कृति तो त्रिकके ही विचार-विस्तारका फल है। त्रिसुपर्ण, त्रिणाचिकेत, विष्णुका त्रेधा विचङ्क्रमण और त्रिवृत् आदि शब्दोंमें त्रिकवादका ही संकेत गूढ है। ब्रह्माण्डव्यापी तीन गुण हमारे शरीरमें भी काम कर रहे हैं। हर एक परमाणुमें त्रिककी गति है। त्रिक ही शक्तिका रूप है। प्रकृतिकी व्यक्त दशा त्रैगुण्यकी विषमताका ही फल है।

योग-शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है कि इन तीन गुणोंकी अधीश्वरी शक्ति एक त्रिक या त्रिकोणके मध्यमें प्रतिष्ठित रहती है। इस त्रिकोणात्मक शक्तिका संयम करके उसे आत्मवश्य करना ही महती विजय है। यह कुण्डलिनी शक्ति जबतक स्वच्छन्द होकर रहती है तबतक इसका प्रवाह अधोमुखी रहता है और असंयमके कारण इससे मनुष्यकी हानि भी हो सकती है। इसके प्रवाहको ऊर्ध्वगामी बनाकर पूर्ण ब्रह्मचर्यकी प्राप्ति ही शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्वस्थताकी सिद्धि है। सुषुम्णा (Central Nervous System)में ही कुण्डलिनी शक्तिका सञ्चार रहता है। सुषुम्णा या मेरुदण्डके दो सिरे हैं। ऊपरके सिरेपर कैलास या मस्तिष्क है, नीचेके सिरेपर शक्तिका त्रिकोण या पीठ है। मानसिक समाधिके लिये आवश्यक है कि सबसे नीचेकी कोटिपर स्थित शक्तिका प्रवाह ब्रह्माण्डस्थित शिवके साथ मिल जाय। यही शिव और शक्तिका विवाह है जिसका काव्यमय वर्णन अनेक ग्रन्थोंमें पाया जाता है।

त्रिपुर

ऋग्वेदके कौषीतकी और ऐतरेय ब्राह्मणोंमें त्रिकका निम्नलिखित वर्णन है—

(असुराः) हरिणीं (पुरं) द्यां दिवि चक्रिरे,
रजतां अन्तरिक्षलोके, अयस्मयीमस्मिन् अकुर्वत।
(कौ० ८ । ८, ऐ० १ । २३)

अर्थात् असुरोंने हिरण्मयी पुरीको द्युलोकमें बनाया, रजतमयीको अन्तरिक्षमें और अयस्मयीको पृथिवीलोकमें। पुराणोंमें कहा है कि त्रिपुरासुर नामक असुरने सोने-चाँदी और लोहेके तीन नगर या किले बनाये थे, जिनको लेकर वह सब जगह उड़ा करता था। अन्तमें शिवने उसका दमन किया और उसको मारकर ताण्डव किया। इसीसे

शिवकी संज्ञा 'त्रिपुरान्तक' या 'त्रिपुरारि' हुई। शतपथ-ब्राह्मणके एक प्रकरणमें भी त्रिपुरका वर्णन किया है—

सा हैषा अग्निपुरी दीप्यमाना तिष्ठति तिसृभिस्त्रिपुरमेवास्मा एतत्करोति तस्मादु हैतत्पुरां परमं रूपं यत्त्रिपुरम्। स वै वर्षीयसा वर्षीयसा छन्दसा परां परां लेखां वरीयसीं करोति तस्मात् पुरां परा परा वरीयसी लेखा भवति, लेखा हि पुरः।

(श० ब्रा० ६।३।३।२५)

अर्थात् सबसे उत्तम पुर त्रिपुर हैं। उत्तम-उत्तम छन्दसे एक-एक लेखाको श्रेष्ठ बनाता है, क्योंकि लेखा ही पुर हैं। सोने-चाँदी और लोहेके तीन पुर देवोंके वासस्थान हैं। वे उनकी रक्षाके उत्तम दुर्ग हैं। उनके मध्यमें एक-एक परिधि या रेखा है, वह रेखा ही पुरका रूप है। इस अलङ्कारमय वर्णनमें जिन तीन पुरियोंका वर्णन है वे पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक हैं। वे ही सत्त्व, रज और तम हैं। वे ही बाल्य, यौवन और जरा हैं। प्रत्येकके बीचमें एक विभागकी रेखा या सीमा है। तीनों रेखाओंके समवायसे जो कार्य सम्पन्न होता है उसे ही त्रिपुण्ड्र (पुण्ड्र = रेखा= पर्व = ग्रन्थि) कार्य कहना चाहिये। मनुष्यकी आयु एक त्रिपुण्ड्र है, क्योंकि इसमें ब्रह्मचर्य, यौवन, जराकी त्रिसन्धि विद्यमान है। संवत्सर भी एक त्रिपुण्ड्र है, अर्थात् उसमें भी त्रिकका व्यवहार तीन ऋतुओंके रूपमें पाया जाता है। तीन पुरोंका तीसरा त्रिपुण्ड्र है जिसको प्रत्येक व्यक्तिने इच्छा या अनिच्छासे धारण कर रक्खा है। उसके अभ्यन्तरमें ही पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक विद्यमान हैं। मेरुदण्ड पृथिवी-भाग है। मस्तिष्क द्युलोक या स्वर्ग है। इनके बीचका संसक्त भाग अन्तरिक्ष है। चौथा त्रिपुण्ड्र शिवका त्र्यम्बक-रूप है। प्रत्येक भागका नाम अम्बा है, तीन अम्बाओंवाला (त्रि + अम्बक) यह मनुष्य-शरीर या मनुष्यायु त्र्यम्बक है। 'त्र्यम्बकं यजामहे' आदि मन्त्रमें इसी वैदिक मनुष्यायु (त्र्यम्बक) की पूर्तितक यजनकी प्रार्थना की जाती है। इसी भावको 'पुरुषो वाव यज्ञः' कहकर व्यक्त किया गया है। तीनों सवनोंके जोड़से मनुष्यकी आयु २४+४४+४८=११६ वर्ष मानी गयी थी। इस आयुतक निर्विघ्न कर्म करते हुए जीवित रहना त्र्यम्बक-यजन है। इसीकी काल्पनिक परिभाषा त्रिपुण्ड्र-धारण है जिसपर पीछेके जाबालोपनिषद् आदिमें खूब विस्तार किया गया है। वेदोंमें इन्द्रको भी 'पुरां भेत्ता' कहा है।

मेरुदण्ड

त्रिपुरके साथ शक्तिका अभेद्य सम्बन्ध है। यह माना गया है कि मूलाधार-चक्रमें त्रिकोणात्मक त्रिपुरके बीचमें शक्ति वास करती है। ज्यों-ज्यों योगके द्वारा चक्रोंकी शक्ति-पर संयम प्राप्त किया जाता है, त्यों-त्यों शक्ति नीचेके केन्द्र-से उठकर ऊपरके केन्द्रमें चढ़ती जाती है, यहाँतक कि षट्चक्रभेद करनेपर शिव और शक्तिका मेल हो जाता है। इसके समझनेके लिये मेरुदण्ड, सुषुम्णा या पार्वतीका ज्ञान आवश्यक है। यह आनन्दका विषय है कि मेरुदण्डके सम्बन्धमें भारतीय योग-शास्त्रका जो मत है वही करीब-करीब आधुनिक विज्ञानको भी सम्मत है।

मेरुदण्ड (Spinal Column) पृष्ठवंश या रीढकी हड्डी है जो तैंतीस अस्थिपर्वोंसे बना हुआ है। ये अस्थिपर्व (vertebrae) एक दूसरेसे सटकर ऊपर-नीचे बाँसकी पोरियोंकी तरह जमे हुए हैं। प्राचीन योगियोंने ३३ पर्वोंकी जो गिनती की थी उसीको हम अब भी मानते हैं। एक-एक पर्वमें एक-एक देवका निवास है। इसीसे ३३ कोटि देवोंकी गणना होती है। इस मेरुदण्डका विस्तार मूलाधार-चक्रसे मस्तिष्कके अधोभागतक है। इसके पाँच भाग दृष्टि-गोचर होते हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित है। पाश्चात्त्य शरीर-शास्त्री भी इन प्रत्यक्षकृत विभागोंको मानते हैं, अतएव हम उनके अंग्रेजी नाम भी कोष्ठकमें देते हैं—

१–मूलाधार—इसमें ४ पर्व (vertebrae) हैं जोकि ऊपरके पर्वोंकी अपेक्षा छोटे और अविकसित-दशामें हैं। ये जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। इस भागको 'कीकसा' (Coccyx) कहते हैं, जिसके कारण यह भाग Coccygeal region कहा जाता है। कॉक्सिक्स (Coccyx) का संस्कृत रूप 'कीकसा' है। कीकसासे ही कैकसी-शब्द बनता है जो दशानन रावणकी माताका नाम था। इस प्रदेशमें पृथिवी-तत्त्व प्रधान है और गुदा-भागका इससे नियन्त्रण होता है।

२–स्वाधिष्ठान (Sacral Region)—इस भागमें पाँच पर्व हैं जो एक ही अस्थिमें जुड़े-से रहते हैं। इस संयुक्त अस्थिको Sacrum कहते हैं। मूलाधार और स्वाधिष्ठान-की दोनों अस्थियों (Coccyx और Sacrum) के नौ पोरोंको निकालकर कोई-कोई अर्वाचीन शरीर-शास्त्री मेरुदण्डमें २४ अस्थिपर्वों (vertebrae) की गणना करते हैं। परन्तु हमारे यहाँ शक्तिको तैंतीस पर्वसंयुक्त ही

माना है। इस चक्रमें जलतत्त्व प्रधान है और उपस्थ-प्रदेशके कार्योंका सञ्चालन यहाँसे होता है। ऐतरेय आरण्यकके अनुसार 'आपः' अर्थात् जलतत्त्वने इस प्रदेशमें निवास किया है—

आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ।

काम-विकारका अत्यधिक सम्बन्ध इसी चक्रके संस्थानसे है। इसमेंसे जन्म लेनेवाली विलासकी वृत्तियोंको जलतत्त्वसे प्रसूत होनेके कारण 'अप्सरा' कहा जाता है। 'अद्भ्यः सरन्तीति अप्सरसः।' जलको 'इरा' भी कहते हैं और कामकी एक संज्ञा इराज (Eros) भी है।

३—मणिपूर (Lumbar Region)—इसमें पाँच पर्व हैं। इसमें तेज-तत्त्वका अधिष्ठान है। जठराग्निके कार्योंका नियमन इसीकी शक्तिसे होता है।

४—अनाहत (Dorsal Region)—इसमें १२ पर्व हैं। यहाँ वायु-तत्त्व प्रधान है और हृत्प्रदेशका सञ्चालन इस चक्रकी शक्तिसे होता है।

५—विशुद्धिचक्र (Cervical Region)—इसमें ७ पर्व हैं। यहाँ आकाश-तत्त्व है, जिससे कण्ठका नियमन होता है। इन पाँच चक्रोंतक ३३ पर्व पूरे हो जाते हैं और पञ्चभूत भी समाप्त हो जाते हैं। इनसे ऊपर छठे-सातवें चक्र अभौतिक शक्तिसे प्रेरित होते हैं। जिस योगीने साधनाके द्वारा पाँचों चक्रोंपर अधिकार कर लिया है उसे फिर काम-बाधा नहीं सता सकती। इतनी समाधिके द्वारा वह अपने अभ्यन्तरसे कामके अस्तित्व (Subjective Existence) को मेट देता है, उसके रूपको विपरिणमित कर देता है। भौतिक देहवाला कामदेव पाँच चक्रोंतक ही है। भूतोंके पर्यवसानके साथ काम भी विदेह या अनङ्ग बन जाता है। शिवने कामकी आभ्यन्तरिक सत्ताको समाधिके द्वारा भस्म कर दिया था। इसीलिये कविने उनको 'रूपसे मोहित न हो सकनेवाला' कहा है—

अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्
पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति।

समाधिकी उस ऊँची स्थितिमें पहुँचकर जब शिवके मनमें कामदेवके कारण काम-विकार उत्पन्न हुआ तो उन्होंने यही सोचा कि मेरी स्थितिमें आये हुए योगीको आन्तरिक काम-बाधा नहीं सता सकती, अवश्य ही इसमें कोई बाह्य कारण होना चाहिये। देखा, तो सामनेके वृक्षपर कामको मूर्तिमान् पाया और तत्क्षण ही तृतीय नेत्रके अप्रतिम तेजसे उसे भस्मीभूत कर दिया—

भस्मावशेषं मदनं चकार ।

छटा चक्र 'आज्ञाचक्र' कहलाता है, जिसका स्थान भ्रूमध्यमें है। इससे भी ऊपर सातवाँ चक्र 'सहस्रार' है। कोई-कोई इनके मध्यमें एक और चक्रकी गणना करते हैं, जिससे आठ चक्रोंकी संख्या पूरी होती है। अथर्ववेदमें आठ ही चक्रोंका वर्णन है—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
अस्यां हिरण्मयः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

अर्थात् यह शरीर देवपुरी है, इसका नाम अयोध्या है, क्योंकि यहाँ देवासुरयुद्धमें देवोंकी विजयसे असुरयुद्ध शान्त हो चुका है। इसमें आठ चक्र और नौ इन्द्रियद्वार हैं। ज्योति अर्थात् तेजसे आवृत जो हिरण्यमय कोष (मस्तिष्क) है वही इसमें स्वर्ग है। हिरण्यमय कोष या सोनेकी पुरी ब्राह्मणग्रन्थोंमें द्युलोकमें कही गयी है। यह द्युलोक मस्तिष्क है। सब देवोंका वास यहीं है, यहींसे सब ज्ञानतन्तुओंका विकास होता है। इसीसे यहाँ ज्योतिषावृत या प्रकाशमय लोककी कल्पना की गयी है। इस ब्रह्माण्डके ही एक प्रदेशका नाम कैलास है। कालिदासने कैलासके सम्बन्धमें मेघदूतमें कहा है—

यो वितत्य स्थितः खम्
(१ । ५८)

अर्थात् कैलास 'खम्' या ब्रह्माण्ड-प्रदेशको वितानकी तरह व्याप्त करके स्थित है। खं-ब्रह्मका स्थान पाँचों चक्रोंसे ऊपर ब्रह्माण्ड या मस्तिष्क है। पाँच चक्रोंतक 'कम्' का प्रदेश है। इन चक्रोंके जो नाम ऊपर दिये गये हैं उनका जन्म किस समय हुआ यह निश्चय ज्ञात नहीं। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि ये नाम वैदिक साहित्यमें हमें अभीतक प्राप्त नहीं हुए। प्रतीत होता है, चक्रोंके वैदिक नाम वे ही हैं जो सप्त व्याहृतियोंके हैं और सन्ध्यामें जिनका पारायण किया जाता है—

ॐ भूः पुनातु शिरसि—सहस्रदल कमल
ॐ भुवः पुनातु नेत्रयोः—आज्ञाचक्र
ॐ स्वः पुनातु कण्ठे—विशुद्धिचक्र

ॐ महः पुनातु हृदये—अनाहतचक्र

ॐ जनः पुनातु नाभ्याम्—मणिपूरचक्र

ॐ तपः पुनातु पादयोः—स्वाधिष्ठान और मणिपूरचक्र

ॐ सत्यं पुनातु पुनः शिरसि—शिरःस्थान—

—सीमा है। सीमा उभय-सामान्य होती है अर्थात् मध्यमें स्थित सीमाका सम्बन्ध दोनों ओर लगाया जाता है। जैसे उत्तर और दक्षिणके मध्यकी सीमा विन्ध्याचल है। यह आर्यावर्तका दक्षिणी भाग और दक्षिणापथका उत्तरी भाग गिना जायगा। इसी प्रकार विदृतिद्वार इस देह और अनन्तके बीचकी सीमा है। कहा भी है—

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत।
सा एषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम्॥
(ऐ० उ० १। ३। १२)

'वह इन्द्र इस सीमाको विदीर्ण करके जिधरसे इस देहमें आया, उस द्वारका नाम 'विदृतिद्वार' है। उससे लगा हुआ नन्दनवन है। वही ब्रह्मानन्दका स्थान है। इसी सीमाको लक्ष्य करके कहा जाता है—ॐ सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। 'भू' से 'तप' तक एक आवृत्ति हुई। यह मर्त्य या एकपाद् अंश है। इससे परे अमृत-त्रिपाद्लोक है। उसका सूत्र भी शिरःस्थानसे संयुक्त है। दिव्य चेतनाओं (Ethereal Impulses) का प्रवेशद्वार विदृतिमार्ग ही है। इसीकी पवित्रताके लिये 'सत्यं पुनातु पुनः शिरसि' कहा जाता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि मेरुदण्डकी रचना तैंतीस पर्वोंके संयोगसे हुई है। 'पर्व' जिसमें हों उसीको 'पर्वत' कहते हैं। 'पर्वाणि सन्ति अस्मिन्निति पर्वतः।' इसलिये मेरुदण्ड पर्वत हुआ। स्थूल पहाड़ोंको भी चोटीरूपी पर्वोंके कारण 'पर्वत' कहा जाता है। इसलिये मेरुदण्डका पर्वत नाम बहुत ही उपयुक्त और सार्थक है। इस पर्वतराजके भीतर रहनेवाली शक्तिको उपचारसे 'पर्वतराज-पुत्री' या 'पार्वती' कहा जाता है। उस पार्वतीकी स्वाभाविक गति शिवकी ओर है। पार्वती शिवको छोड़कर और किसीका वरण कर ही नहीं सकती। परन्तु पार्वतीको शिवकी सम्प्राप्ति तपके द्वारा ही हो सकती है, भोगके मार्गसे नहीं। महाकवि कालिदासने कुमारसम्भवमें इसी तत्त्वका वर्णन किया है। शिवजी कैलासपर तप कर रहे थे। उन्होंने अखण्ड समाधि लगायी थी। उस हालतमें कामने उनकी समाधिको भङ्ग किया और पार्वतीने जो वहींपर उनकी पूजाके लिये उपस्थित थीं शिवके मनको हाव-भावसे विकृत करना चाहा। शिवने कामको भस्म करके पार्वतीकी सब अभिलाषाओंपर पानी फेर दिया। पार्वतीको पहले रूपका अभिमान था, सोचती थीं रूपसे शिवको मोहित कर लेंगी। परन्तु ऐसा आजतक कहीं नहीं हुआ। शिवकी प्राप्ति तपसे होती है, भोगसे नहीं। यही बात कविने कुमारसम्भवमें बतायी है। इसीलिये पार्वतीने भी तप और समाधिके द्वारा शिवको प्राप्त करनेका नया व्रत आरम्भ किया—

तथा समक्षं दहता मनोभवं
पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती
प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥

अर्थात् अपनी आँखोंके सामने मनोभव (कामदेव) को भस्म होते देखकर पार्वतीका रूप-गर्व खण्डित हो गया, उन्होंने रूपकी भरसक निन्दा की और मनमें स्थिर किया कि शिवकी प्राप्तिके लिये केवल सुन्दरता पर्याप्त नहीं है। इसलिये उन्होंने दूसरे मार्गका अवलम्बन किया—

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां
तपोभिरास्थाय समाधिमात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥

रूपको अवन्ध्य (अमोघ) करनेके लिये पार्वतीने तपके द्वारा आत्म-समाधि लगाना निश्चय किया। समाधिकी पूर्णता ही शक्तिका संयम या शिव-तत्त्वकी प्राप्ति है। विचार और मनोभावोंकी उच्छृङ्खलता आसुरी है, उससे प्राण क्षीण होते हैं, प्राणोंकी व्याधिसे या मानसिक विकल्पोंसे जीवनशक्तिका ह्रास होता है। व्याधिसे इतर समाधि है। प्राणोंकी समाधिसे मनकी स्थिरता और शान्ति होती है। मस्तिष्क बहुत ही सूक्ष्म और चैतन्यमय है। उसकी प्रक्रियाओंकी गति और बल विद्युत्के समान तेज़ हैं। वस्तुतः मनकी तुलनामें विद्युत्का वेग भी कुछ नहीं है। मस्तिष्कमें चार वापी या सरोवर हैं जिन्हें अंग्रेजीमें वेन्ट्रिकिल (Ventricles) कहते हैं। ये पुराणोंके मानस आदि सरोवर हैं जहाँ देवता बसते हैं। इन्हींके आस-पासके उन्नत प्रदेशोंको 'पर्वत' कहा गया है। कैलास और मन्दराचल, सुमेरु और गन्धमादन इन्हींकी संज्ञाएँ हैं। ये देवोंके

क्रीडा-पर्वत हैं। देवरूपी इन्द्रियोंको प्रकाशित करनेवाले स्थान ही (Sensory and Motor Centres) देवोंके क्रीडास्थल हैं। पुराणोंके ये वर्णन आलङ्कारिक ही समझने चाहिये। इनका मूल मस्तिष्क और मेरुदण्डकी रचनामें पाया जाता है। मस्तिष्कसे चेतनाओंका आना और जाना एक प्रकारकी क्रीडा या केलि है। इन्हीं केलियोंके स्थानको 'कैलास' कहा जाता है—

केलीनां समूहः कैलम्। तेन आस्यते अत्र इति कैलासः।

केवल कैलास ही क्या, अलकापुरी, वैभ्राज या चैत्ररथ-वन, नन्दन-कानन, सब मस्तिष्कके ही विभिन्न प्रदेशोंकी संज्ञाएँ हैं। योग-समाधिके लिये इससे प्रशस्यतर और क्या हो सकता है कि हमारे चित्तकी समस्त बाह्य वृत्तियाँ और विचार मस्तिष्कमें ही स्थिर होकर हम आनन्दका अनुभव करें। नन्दनवन-विहार, चैत्ररथकी सैर, कैलासवास आदि पौराणिक कथाओंका आध्यात्मिक अर्थ यही है।

पिनाक क्या है?

शिवके धनुषकी संज्ञा 'पिनाक' है। शिवको 'पिनाक-पाणि' कहते हैं, पिनाकको अधिज्य करनेवाला शिवके अतिरिक्त और कोई नहीं है। जो व्यक्ति जिस धनुषको अधिज्य करनेकी शक्ति रखता है वही उस धनुषका धारण करनेवाला कहा जाता है। पिनाकके धारणकी शक्ति उसीमें हो सकती है जो शिवरूप हो गया हो। धनुषके दण्डमें अनन्त शक्ति रहती है। उस शक्तिको व्यक्त करनेके लिये या उससे कार्य लेनेके लिये धनुर्दण्डके एक सिरेपर बँधी हुई प्रत्यञ्चा-को दूसरे सिरेसे मिलाना अनिवार्य है। जिसने धनुषको अधिज्य नहीं किया, वह उसकी शक्तिपर अधिकृत नहीं हो सकता। शिवने पिनाकको अधिज्य करके उसकी शक्तिको अपने वशमें कर लिया है। यह पिनाक मेरुदण्डकी ही दूसरी संज्ञा है। निरुक्तकार यास्कने लिखा है—

रम्भः पिनाकमिति दण्डस्य।

(नि० ३। २१)

अर्थात् रम्भ और पिनाक दण्डको कहते हैं। मेरुपर्वत-का दण्ड ही वह विशिष्ट दण्ड है, जिसके लिये रम्भ और पिनाक-शब्दोंको पुराणकारोंने अपनाया। इस तरह पिनाक या मेरुदण्ड ही शिवका परमधनु है। इस धनुषके एक सिरेपर शक्ति है, दूसरेपर शिव। शक्तिकी कल्पना कुण्डली-की आकृति-जैसी की गयी है, इसीलिये उसे 'कुण्डलिनी' कहते हैं। अविकसित-दशामें सोयी हुई शक्तिको सर्पकी तरह विश्राम करते हुए माना है। वस्तुतः शक्तिका रूप वैज्ञानिकोंके अनुसार भी सीधी रेखासे व्यक्त नहीं हो सकता। शक्तिकी गति तरङ्गाकार (wavy motion) होती है। यह तरङ्गाकृति सर्पकुण्डलों (serpent coils) से मिलती है, अतएव अर्वाचीन वैज्ञानिक जिसे लहरिया गति मानते हैं, उसे ही भारतीय निरुक्तकारोंने 'कुण्डलित गति' कहा है। इसी रूपके कारण शक्तिको 'कुण्डलिनी' कहा गया है। यह कुण्डलिनी ही यह प्रत्यञ्चा है जो मेरुदण्डके मूलाधार सिरेमें स्थित रहती है। प्रत्येक चक्र या केन्द्रका अधिष्ठातृदेव शिव है। पाँच चक्रोंमें पृथक्-पृथक् शक्तियोंके साथ निवास करनेके कारण शिवको 'पञ्चानन' भी कहा जाता है। पाँच चक्र ही शिवके पाँच मुख हैं। पञ्च वैदिक प्राण ही कालान्तरमें 'पञ्चानन' कहलाये। पञ्चानन शिवकी शक्ति भी पञ्चात्मिका ही समझनी चाहिये। इसी कल्पनाके अनुसार कहा जाता है कि शक्ति शिवके चारों ओर वेष्टित या वलयित होकर प्रत्येक चक्रमें निवास करती है। उसका सर्वप्रथम स्थान मूलाधार-चक्र है। इस कुण्डलिनी प्रत्यञ्चाको धनुषके दूसरे सिरेसे, जहाँ शिव रहते हैं, मिला देना ही शक्तिका शिवके साथ विवाह करना है। योगके द्वारा षट्चक्रवेध होकर शक्तिका केन्द्र ब्रह्माण्डमें उठ जाता है, तभी मानो पिनाक अधिज्य हो जाता है, और पिनाकके स्वामीको यह अधिकार प्राप्त होता है कि उसके पिनाक-दण्डमें जितनी शक्ति निहित है उस सबको वह अपने काममें ला सके।

कृष्ण-यजुर्वेदमें शिवको 'अवततधन्वा पिनाकहस्तः' कहा है। अवततधन्वाका अर्थ अधिज्य धनुषवाला है अर्थात् जिसके धनुषपर प्रत्यञ्चा आरोपित है। पुराणोंमें मस्तिष्कके जिन प्रदेशोंको कैलास, गन्धमादन, मन्दर आदि कहा है उन्हींको ही वेदमें 'त्रिककुद्' और 'मूजवान्' पर्वत कहा गया है। जहाँ इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा नामक तीन प्राणधाराएँ मिलती हैं, भ्रूमध्यभागके समीपका वह प्रदेश ही वैदिक त्रिककुद् पर्वत है। ककुद्को ही 'ककुप्' कहते हैं। ककुप् प्राणका वैदिक नाम है—

प्राणो वै ककुप् छन्दः—

(श० ब्रा० ८। ५। २। ४)

मूजवान और त्रिककुद् पर्वतोंकी योगविद्यामें बड़ी महिमा है। स्थूल दृष्टि रखनेवाले इन्हें बाह्य—स्थूल पर्वत समझते हैं और इनके अध्यात्म यौगिक अर्थोंसे वञ्चित रह जाते हैं। त्रिककुद् पर्वत वह स्थान है जहाँ शिवका तृतीय नेत्र है। शिवका तृतीय नेत्र ही वास्तविक त्रिककुद् है। शिवने तृतीय नेत्रके प्रतापसे कामको भस्म कर दिया। इन्द्रने जिस स्थानपर जिस चक्षुके प्रभावसे वृत्रासुरका वध किया वह त्रिककुद् हुआ—

यत्र वा इन्द्रो वृत्रमहन् तस्य यदक्ष्यासीत्तं गिरिं त्रिककुदमकरोत्।

(श० ३।१।३।१२)

काम और वृत्र एक ही अध्यात्मभावकी द्विविध कल्पना हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें 'पाप्मा वै वृत्रः' (शतपथ० ११। १।५।७) अर्थात् पाप ही वृत्रासुर है—यह कहा है। गीतामें भी कामको सब पापोंका सिरमौर माना है—

महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।

इन्द्रने वृत्रको वशमें करके देवोंके लिये स्वाराज्य प्राप्त किया। शिवने कामको भस्म करके देवसेनाकी रक्षा की। कामको भस्म करनेवाली दृष्टि किसकी हो सकती है? जिसने योगके द्वारा छठे चक्रको वशमें कर लिया है अर्थात् त्रिककुद् पर्वतका अञ्जन जिसने अपने नेत्रोंमें आँज लिया है, वही काम और उसकी अप्सराओंके हावभावोंसे विकारको प्राप्त नहीं होता। अथर्ववेदमें त्रिककुद् पर्वतसे उत्पन्न अञ्जनकी बहुत महिमा कही गयी है। त्रैककुदाञ्जनको नेत्रोंमें आँज लेनेसे पुनः तारकासुरका भय नहीं रह सकता—ऐसे मनुष्य-को विकार अपनी ओर नहीं खींच सकते।

मूजवान् पर्वतको सोमका उत्पत्तिस्थान माना गया है। यह पर्वत उदीची दिशामें है। उदीची दिशाके मूजवान्को काश्मीरमें ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं है। उदीची दिशा या उत्तरायण मार्ग मस्तिष्कमें है। दिशाओंका आध्यात्मिक अर्थ ही यहाँ अभिप्रेत है। रेतका अधिष्ठान उपस्थ-प्रदेश ही दक्षिण दिशा है जहाँ पितरोंका निवास है। बिना दक्षिणायन मार्गसे चले हुए पितृलोक नहीं मिलता। इसी प्रकार प्राची दिशा मुख, प्रतीची दिशा गुदा और उदीची दिशा मस्तिष्क है। वहींका स्थान मूजवान् है जहाँ सोम उत्पन्न होता है। सोम मस्तिष्कमें बहनेवाला और उसके स्वास्थ्यका परमकारण वह अत्यन्त पवित्र रस है जिससे समस्त केन्द्रीय नाडी-जाल (Central Nervous System) का सिञ्चन होता है। सोमकी पवित्रतापर मस्तिष्ककी समाधि निर्भर करती है। समस्त विचारोंकी विद्युत् सोमरसपर, जो मस्तिष्कमें ओतप्रोत है, उसी प्रकार अपने संस्कार डालती है जैसी रसपूरित घट (Battery) को विद्युत्का प्रवाह प्रभावित करता है। समस्त अध्यात्म और अधिभूत शक्तिको, जिसकी अभिव्यक्ति मनुष्यमें पायी जाती है, उत्पन्न करनेके लिये यह सोम-पूरित कलश या मस्तिष्क हम सबमें प्रतिष्ठित है। इसके तार सर्वत्र फैले हुए हैं, इस सोमका ही नाम अमृत है; क्योंकि इसीकी पवित्रता और स्थिरतापर शारीरिक और मानसिक अमृतत्व निर्भर करता है। इस अमृतको शरीरमें ही पचा लेना सबसे अधिक आवश्यक कर्तव्य है। वैसे तो शक्तिरूपी यह अमृत हम सबके भीतर रहता है, परन्तु सब मनुष्योंके अधिकारमें यह बात नहीं होती कि वे अपने अमृतका स्वयं ही पान कर सकें। उनके अमृतको असुर पी जाना चाहते हैं। उनकी शक्ति शरीरके भीतर ही सञ्चित न होकर बाह्य विषयोंमें क्षीण हो जाती है।

यज्ञके कर्मकाण्डमें सोमपान करानेवाले सोमयागोंका बहुत वर्णन आता है। उन सबका उद्देश्य यही है कि मनुष्यरूपी शकटमें जो सोम भरा है उसे अपने ही भीतर पचाकर हम अमृतत्व लाभ करें। शरीरके भीतर सोम (Cerebro-spinal fluid) की उत्पत्तिमें जितनी प्रक्रियाएँ (physiological processes) होती हैं उनका अनुकरण याज्ञिक कर्मकाण्डमें किया जाता है। हमारी इन्द्रियाँ ही सोमपानके ग्रह या पात्र हैं। उस वैदिक कर्मकाण्डके आध्यात्मिक अर्थपर विस्तारसे विचार करना यहाँ इष्ट नहीं है। सारांश यही है कि सोमका ही दूसरा नाम अमृत है। सोम उदीची दिशाका देवता है—

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः।

सोमपान और अमृतपान एक ही तत्त्वको बताते हैं। पूर्ण समाधि, मनपर पूर्ण अधिकार, विचारोंका पूर्ण संयम, योगकी परमसिद्धि ही सोमपानका फल है। शरीरके रेत (वीर्य) को शरीरमें ही ओजरूपसे प्रतिष्ठापित कर लेना ही परम सोमपान है। वेदमें जिसे सोमपान कहा है, उसीको पुराणोंमें अमृतपान कहा गया है। शिव सदा अमृतका पान करते हैं। अमृत और सोमका परमस्थान चन्द्रमा उनके मस्तकपर है। शिव स्वयं सोम हैं। शक्ति या पार्वतीको आत्मवश करके ही शिव 'सोम' कहलाते हैं। शिवजी उमाके सहित होनेसे सोम

(स+उमा) बनते हैं। शिवका सोमस्कन्दरूप प्रसिद्ध ही है। उमा और शिवके सम्मिलनका परिणाम स्कन्द है। इसका विवेचन आगे करेंगे।

केन्द्रीय नाडीजालको सींचनेवाला सोम या अमृत मस्तिष्कसे प्रवाहित होता हुआ सुषुम्णाको तृप्त करता रहता है। इसीका योगमें इसप्रकार वर्णन आता है कि अमृत आकाश-प्रदेशसे एक-एक बूँद करके टपकता है, योगिजन उसका पान कर लेते हैं। असंयमीलोग इसी अमृतका क्षय कर देते हैं। असुरोंके अमृतपानसे सोमका क्षय होता है, देवोंके पानसे आप्यायन या वृद्धि। इन्हीं द्विविध प्रक्रियाओंको हम चन्द्रमाके वृद्धि और क्षयमें पाते हैं। उनकी अध्यात्म-व्यञ्जनाको बतानेके लिये आधिदैविक चन्द्रमाका उदाहरण लिया जाता है।

वेद, ब्राह्मण और उपनिषदोंमें मस्तिष्कको कलश, कुम्भ या द्रोण कहा गया है। इस कलशमें अमृत भरा हुआ है। अमृतपूर्ण यह घट हम सबके अन्दर उलटकर रक्खा हुआ है। इसमेंसे निरन्तर अमृतका क्षरण होता रहता है। इस झरते हुए अमृतबिन्दुको योगी पी जाते हैं, विषयी इसका दुरुपयोग करते हैं। 'ब्राह्मण' ग्रन्थोंमें गायत्रीके सोमाहरणकी जो कथाएँ हैं, उनसे मिलती हुई कथाएँ पुराणोंमें गरुड और अमृतघटकी हैं। गरुडजी स्वर्गसे अमृतका घट लाये थे। उस अमृतको पीकर नाग अपना विष बढ़ाना चाहते थे, परन्तु वे उसे न पी सके और अमृत स्वर्गको ही लौट गया। शरीरके प्राण ही नाग या सर्प हैं, वीर्य गरुत्मान् या गरुड़ है। रेतकी सूक्ष्मतम, पवित्र, ब्रह्माण्डसञ्चारिणी शक्ति अमृत है। बिना अमृतके असुर अपने भोग भी नहीं भोग सकते। इसीलिये वे सदा अमृतके लिये लालायित रहते हैं। समुद्र-मन्थन करके उन्होंने इसी अमृतको पीना चाहा था, परन्तु देवताओं-के प्रयत्नसे अमृत असुरोंको नहीं मिल पाया। प्रकृतिके स्वाभाविक विधानमें अमृतके अधिकारी देव हैं। देव या इन्द्रियप्राण अमृत पीनेसे शक्तिमान् होकर इन्द्र या आत्मा-के तेजकी वृद्धि करते हैं। जो अमृत देवोंको अमरपन देता है, वही असुरोंके हाथमें सुरारूप हो जाता है, जिसको पीकर वे उद्दाम और उच्छृङ्खल हो जाते हैं। सुरा विषरूप है। उससे आयुका क्षय होता है। मानसरोवर देवताओंका स्थान है। उसमें अमृत भरा हुआ है, वहाँ समस्त चक्र या कमल अमृतके प्रतापसे खिले रहते हैं, हंसरूप योगी उनका उपभोग करते हैं।

शिवका विषपान

जलपूर्ण घटमेंसे सन्तत क्षरणशील जलबिन्दुसे शिव-स्नानका जो प्रयोग अहर्निश हमारे सम्मुख किया जाता है, उसका अध्यात्म-अर्थ ऊपरके विवेचनसे स्पष्ट हो गया होगा। सोमपूरित मस्तिष्कसे जो अमृतबिन्दु अनवरत निःसृत होकर शरीरस्थ तेजःस्फुलिङ्गका संवर्धन करता है उसीकी अनुकृति इस घटके द्वारा बतायी जाती है। यह विशुद्ध अध्यात्म-प्रयोग (spiritual experiment) है इसी प्रकारके यज्ञमें सोमका कूटना, छानना और पीना आदि प्रयोग हैं। आध्यात्मिक तत्त्वोंके परिज्ञानके लिये भौतिक प्रयोगोंका आश्रय लिया जाता है। देवोंके अमृतपानके साथ शिव-के विषपानका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जबतक शिवजी विष पीकर उसकी दाहक ज्वालाओंको शान्त नहीं कर देते, तबतक देवता अमृतका पान नहीं कर सकते। तुलसीदास-जीने कहा है—

जरत सकल सुरबृन्द, बिषम गरल जेहि पान किय।

अर्थात् हलाहल विषकी ज्वालासे जब सब देवता जलने लगे तब शिवने कृपा करके विषका पान कर उसे अपने कण्ठमें रख लिया। यदि शिव ऐसा न करते, तो देवोंको अमृत कभी न मिल सकता। देखना चाहिये कि विष क्या है और शिवने कण्ठमें ही विषको क्यों रख लिया?

निघण्टुमें जलके १०१ नाम दिये गये हैं—'उदकनामानि एकशतम्'। उनमें दो शब्द विष और अमृत भी हैं। ये दोनों जलके पर्यायवाची हैं। लौकिक संस्कृतके कोषोंमें भी 'विष' और 'अमृत' जलके पर्यायरूपमें पाये जाते हैं। बात यह है कि वीर्य या रेत जलका ही रूप है। रेत ही कामका अधिष्ठान है। रेतसे जो शक्ति बनती है उसके दो रूप हैं—दैवी और आसुरी या अमृतरूप और विषरूप। उस शक्तिसे जब मनुष्य आत्मविनाशकी ओर प्रवृत्त होता है तब वह उसके विषरूपसे दग्ध होता है। उसीको संयम-के द्वारा शान्त बनाकर उसके सौम्यरूपसे जब अमृततत्त्व-की ओर बढ़ता है तभी मानों जल या रेत-तत्त्वके अमृतका आस्वादन करता है। विष और अमृत दोनों एक ही समुद्रसे जन्म लेते हैं। विषके साथ यदि अमृत भी रहे तो वह विषका ही काम करेगा। अतएव विषके प्रकट होनेपर

देवोंको यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि कोई महावीर इस विषको पचाकर इसे शान्त कर दे तो हमारे लिये अमृत-पानका मार्ग सरल हो जाय। शिवके अतिरिक्त और किसी देवमें यह सामर्थ्य न थी। शिवके विषपानका कारण उनका योग है। शिवजी योगीश्वर हैं। उन्होंने छओं चक्रोंपर पूर्ण अधिकार पा लिया है। अतएव शक्तिका जो विषाक्त रूप है उसको पचाने या भस्म करनेकी सामर्थ्य भी उनको प्राप्त है। हम कह चुके हैं कि पाँच चक्रोंका भेद न कर लेनेके बाद योगी पुनः कामके अधीन नहीं होता। काम सर्वथा योगीके वशमें हो जाता है, अर्थात् वह कामके विकारोंको पूर्णतः जीत लेता है। जबतक यह स्थिति प्राप्त नहीं होती तबतक साधनाके मार्गमें निरन्तर कामकी बाधाएँ आती हैं। काम या जलका विष-स्वरूप जबतक योगीको जलाता रहता है, तबतक वह अमृतका निर्बाध पान नहीं कर पाता। शिव-स्वरूप होकर ही योगी कामसे अतीत हो जाता है। कामसे अतीत योगी ही विषको पूरी तरह अपने वशमें कर पाता है। विषको जिसने अपने लिये निरापद् बना लिया हो, उसीके देवोंको अमृतपानकी सुविधा और सामर्थ्य प्राप्त होती है। विषको कण्ठ या पाँचवें चक्रमें स्थापित करनेका रहस्य यह है कि पाँचवें चक्रमें आकर ही योगी निर्भय और निरामय बनता है। यदि विष कण्ठसे नीचे रहे अर्थात् योगीकी साधना विशुद्धिचक्रसे नीचे हो तो विष अपना प्रभाव अवश्य दिखलाता है। देवासुरोंके या विष और अमृतके आध्यात्मिक युद्धमें विषपानकी सामर्थ्य रखने-वाला योगीश्वर ही स्वयं विजयी होकर सबको विजय प्राप्त कराता है।

भृगु और भस्म

शिवको 'भृगुपति' भी कहा जाता है। जल तत्त्व या रेतको षट्चक्रोंकी अग्निमें खूब भूनकर भस्म कर देनेके कारण शिवजी 'भृगु' कहलाते हैं। गोपथ-ब्राह्मणमें कहा है—

ताभ्यः श्रान्ताभ्यस्तप्ताभ्यः सन्तप्ताभ्यः (अद्भ्यः) यद्रेत आसीत्तदभृज्यत, यदभृज्यत तस्माद् भृगुः समभवत्, तद् भृगोर्भृगुत्वम्।

(गो० पू० १। ३)

अर्थात् तपाये हुए जलोंसे जो रेत उत्पन्न हुआ, वह भूँजा गया, इसलिये वह 'भृगु' कहलाया। भूँजनेके कारण ही भृगुका भृगुत्व है। जलोंको भस्म करनेके लिये इस शरीरको यदि भाड़ मान लें तो योगी उसका भड़भूँजा है। वह जलोंकी भस्म बनाकर उसको अपने शरीरपर लगाता है, यही उसके ब्रह्मचर्यका तेज है। ब्रह्मचारीके शरीरपर जो स्वाभाविक तेज या कान्ति रहती है, वह वीर्यकी भस्म ही है। अर्थात् उसके शरीरमें तपके द्वारा रेतका परिपाक होता है और वह भस्मरूपमें परिणत हो जाता है। मेघ भी जलकी भस्म है—

अभ्रं वा अपां भस्म

(शतपथ० ७। ५। २। ४८)

अग्निके संयोगसे तप्त होकर जल आकाशगामी होता है। इसीलिये तपके द्वारा मनुष्य ऊर्ध्वरेत बनता है। बाहर ब्रह्माण्डमें सूर्यके तापसे जैसे मेघ बनते हैं, वैसे ही शरीरके भीतर तपकी अग्निके द्वारा रसोंके परिपाकसे रेतकी भस्म बनती है। वही शरीरकी त्वचाके ऊपर तेज और कान्तिके रूपमें प्रकट होती है। ब्रह्मचारीके लिये इसप्रकारकी भस्म परम विभूति है। यह भस्म ही उसके मण्डनके लिये श्रेष्ठ अंगराग है। इस भस्मसे भासित होनेके कारण ही वटुरूपधारी शिवको कालिदासने 'ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा' लिखा है।

भृगुपति और रेणुका

तुलसीदासजीने लिखा है—

परसुराम पितु-आग्या राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥

अर्थात् परशुरामने रेणुकाका वध करके उसे नया जीवन प्रदान किया। यह रेणुका कौन है और क्यों परशुरामने उसका संहार किया? पुराणोंके अनुसार जमदग्निकी पत्नी रेणुका थी। उसके पाँच पुत्र थे। सबसे छोटेका नाम भृगुपति परशुराम था। रेणुकाने सरोवरपर चित्ररथ गन्धर्व-की अप्सराओंके साथ विहार करते देखकर विचारा कि वह भी जमदग्निके साथ विहार करे। इस अपवित्र सङ्कल्प-के आते ही उसका तेज नष्ट हो गया। जब वह लौटकर आयी, तब जमदग्निने उसको हततेज देखकर ध्यानसे विचारा तो सब रहस्य जान लिया। अपवित्र रेणुकाको अपने पास रखना अनुचित जानकर उन्होंने अपने बड़े पुत्रसे कहा कि तुम रेणुकाका संहार करो। वह यह नहीं कर सका। शेष तीन पुत्र भी यह नहीं कर सके। तब पाँचवें पुत्र परशुरामने पिताकी आज्ञा पाते ही रेणुकाका संहार कर डाला और जमदग्निसे वरदान माँगा कि रेणुका फिर

जीवित होकर पहलेकी तरह ही हो जाय और उसे बीचकी घटनाकी कुछ भी खबर न रहे। जमदग्निके 'तथास्तु' कहनेसे रेणुका फिर पूर्वके समान ही पवित्र और वर्चस्से युक्त हो गयी।

वीर्य या रेतका नाम ही रेणु या रेणुका है। पाँच चक्र ही उसके पाँच पुत्र हैं। सबसे प्रथम अर्थात् मूलाधार-चक्र उसका ज्येष्ठ पुत्र और विशुद्धिचक्र कनिष्ठ पुत्र परशुराम है। शेष तीन चक्र तीन पुत्र हैं। यह रेणु मनके अपवित्र विचारोंसे ही अपवित्र हो जाती है। विकारयुक्त विचार ही मनुष्यकी पवित्रताको नष्ट कर देनेके लिये काफी हैं। मानसिक विचारोंकी विकृतिसे ब्राह्म तेजकी तुरन्त हानि हो जाती है। पूर्ण ब्रह्मचर्यकी परिभाषामें शारीरिक क्रिया नीचेकी चीज़ है, मानसिक संकल्पोंकी पवित्रता सबसे महत्त्व-की वस्तु है। कामके विकार पहले मनमें प्रकट होते हैं। कामको मनसिज, मनोभव, मनोज या संकल्पयोनि कहा गया है। उसका उदय हमारे भीतरी विचारोंमें ही देखा जाता है। पूर्ण ब्रह्मचर्यके लिये शुद्ध विचार परम आवश्यक सञ्जीवनी हैं।

एक बार जब रेणु अपवित्र हो जाती है तब उसका पवित्र करना कितना कठिन है, यह ऊपरकी कथासे मालूम होता है। प्रथम चक्रकी या दूसरे, तीसरे और चौथे चक्रकी यह सामर्थ्य नहीं है कि वे अशुद्ध रेतको पुनः पूर्ववत् शुद्ध कर सकें। इसीलिये रेणुकाके पहले चार पुत्र यदि वे चाहते, तो भी जमदग्निकी इच्छानुसार अपनी माताको नवीन जीवन नहीं दे सकते थे। यह सामर्थ्य परशुराममें ही थी। अर्थात् पाँचवें चक्रकी शक्तिपर अधिकार पाकर योगी अपवित्र और अशुद्ध रेणुको पुनः पवित्र बना सकता है। प्रत्येक चक्रको यदि हम भर्जन-क्रियाकी एक-एक मंजिल मानें तो पाँचवें पड़ावको पार करनेपर ही रेणुको पूर्णतया भूँजनेमें सफलता प्राप्त होती है। रेणुको भस्म करनेवाली शारीरिक अग्नि ही जमदग्नि (Metabolic fire) है।

शिवका वाहन वृष

शिवको वृषाङ्कन, वृषभध्वज और वृषकेतु भी कहते हैं। उनकी सबसे बड़ी विजय वृषको अपने वशमें करके उसपर सवारी करना है। प्रायः जगत्के सब पुरुषोंपर वृष सवारी करता है, पर शिवजी वृषपर सवारी करते हैं। प्रश्न यह है कि जगत्में मनुष्य वृषका वाहन बना हुआ है या वृष मनुष्यका। मनुष्य अपने असली रूपमें सवार है, पर अपने आपको भूलकर वह सवारी बन गया है। अपनी महिमाका ज्ञान न रहनेसे वह वामन बन गया है, उसके पिण्डपर वृष आरूढ़ रहता है। परन्तु जो मनुष्य आत्म-ज्ञानसम्पन्न है, जिसने पवित्र सङ्कल्पसे कामविकारोंको जीत लिया है, वही वृषपर आरूढ़ होता है। शिवजीके लिये वृष वाहन बन जाता है।

यह वृष काम है। वर्षणशील (sprinkling, fertilising) रेतको 'वृष' कहा गया है। यह वृष या काम अधोरेत करके मनुष्योंको अपने आसनसे च्युत कर देता है। इसपर पैर रखकर खड़े होना महती धीरता है। इस लेखमें उन वैदिक और पौराणिक प्रमाणों और उपाख्यानोंके विस्तारके लिये स्थान नहीं है जिनसे वृष या वृषाके पूर्ण स्वरूपका परिचय मिलता है। सूत्ररूपसे यह जान लेना पर्याप्त है कि कामकी ही एक संज्ञा 'वृष' है। शिवजी मदनका दहन कर चुके हैं, उन्होंने कामको परास्त कर लिया है, वे अरूपहार्य योगीश्वर हैं, अतएव वृष उनका वाहन बन गया है। योगी और भोगीमें यही भेद है, एक-का वाहन काम है और एक स्वयं कामका वाहन है।

इस वाहनपर चढ़नेके लिये शिवको कुम्भोदर सिंहपर पैर रखना पड़ता है। कविने कहा है—

कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः
पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्।
अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः
कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्॥

(रघुवंश २। ३५)

अर्थात् कैलासके समान शुभ्र वर्णवाले वृषपर जब शिव-जी चढ़ना चाहते हैं, तब वे मेरी पीठपर पैर रखकर सहारा लेते हैं, ऐसा मैं कुम्भोदर नाम शिवका अनुचर हूँ। यहाँ यह बताया गया है कि वृषपर सवारी करने अर्थात् उसे अपने अधिकारमें लानेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य पहले उदर या रसनेन्द्रियपर संयम प्राप्त कर ले। स्वादको वशमें करना ब्रह्मचर्यकी सिद्धिके लिये अनिवार्य है। जिह्वा-पर अङ्कुश रक्खे बिना ब्रह्मचर्यकी सफलता असम्भव है। विश्वामित्रको मेनकाने मक्खन खिलाकर अपने अनुरागमें फँसा लिया। गीतामें भी कहा है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

अर्थात् काम बहुत भोग (महाशन) चाहता है, यह महापापके गर्तमें फँसानेवाला है । इस महापापीपर विजय पानेके लिये कुम्भोदरपर संयम प्राप्त करना चाहिये । जिस जलतत्त्व या रससे स्वादेन्द्रियका पोषण होता है, वही कामका अधिष्ठान है, इसीलिये कामविकार और रसनामें इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है । शिश्नदेव या कामी पुरुष उदर-परायण भी होते हैं । अतएव वृषपर आरुरुक्षु योगीके लिये कुम्भोदरपर पैर रखना परमावश्यक है । शिवके परिवारमें सिंह और वृष विगतवैर होकर बसते हैं । शिव समता और शान्तिकी मूर्ति हैं ।

स्कन्द या कुमार

कुमारसम्भव-काव्य और शिवपुराणमें कुमारके जन्मका विशद वर्णन है । कुमारको षडानन और षाण्मातुर कहते हैं । वे सेनानी हैं, देवसेना उनकी पत्नी है; तो भी वे सनातन ब्रह्मचारी हैं । उनके जन्मके लिये ही शिव-पार्वतीका विवाह हुआ था । मयूर उनका वाहन है । उन्होंने देवताओंका सेनापति बनकर तारकासुरपर विजय पायी थी । इन सब रहस्योंका विवरण इसप्रकार है ।

जिस समय देवलोग असुरोंसे परास्त हो गये, तब वे इन्द्रको लेकर ब्रह्माजीके पास गये—

तस्मिन् विप्रकृताः काले तारकेण दिवौकसः ।
तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायंभुवं ययुः ॥
(कुमार० २ । १)

अर्थात् तारकासुरसे सताये हुए देवता इन्द्रको अगुआ बनाकर ब्रह्मलोकमें गये । वहाँ उन्होंने तारकासुरके उत्पातोंका विस्तृत वर्णन करनेके बाद कहा कि हे देव, सेना तो हमारे पास है, पर सेनापति कोई नहीं है । इसलिये आप कृपा करके हमें एक सेनापति दीजिये । यथा—

तदिच्छामो विभो स्रष्टुं सेनान्यं तस्य शान्तये ।
कर्मबन्धच्छिदं धर्मं भवस्येव मुमुक्षवः ॥
गोप्तारं सुरसैन्यानां यं पुरस्कृत्य गोत्रभित् ।
प्रत्यानेष्यति शत्रुभ्यो बन्दीमिव जयश्रियम् ॥
(कुमार० २ । ५१-५२)

अर्थात् हे प्रभो, उस तारकासुरकी शान्तिके लिये हमलोग एक सेनापति चाहते हैं जिसको अग्रणी बनाकर इन्द्र पुनः असुरोंपर विजय प्राप्त करें । ब्रह्माजीने कहा—

केवल शिवके वीर्यमें ही इतनी सामर्थ्य है कि वे तारकासुरका निरोध कर सकें, अतएव तुम उन्हींके अंशको पार्वतीके पुत्ररूपमें प्राप्त करके अपना सेनानी बनाओ—

संयुगे सांयुगीनं तमुद्यन्तं प्रसहेत कः ।
अंशादृते निषिक्तस्य नीललोहितरेतसः ॥
उमारूपेण ते यूयं संयमस्तिमितं मनः ।
शम्भोर्यतध्वमाक्रष्टुमयस्कान्तेन लोहवत् ॥
तस्यात्मा शितिकण्ठस्य सैनापत्यमुपेत्य वः ।
मोक्ष्यते सुरबन्दीनां वेणीर्वीर्यविभूतिभिः ॥
(कुमार० २ । ५७, ५९, ६१)

अर्थात् नीललोहित शिवका रेत ही उस असुरका निरोध कर सकता है । संयममें ठहरे हुए शिवके मनको तुमलोग पार्वतीरूपी चुम्बकसे खींच लो, जिससे शिवजी पार्वतीके साथ विवाह कर लें । उन शिवका मूर्त्यन्तर तेज ही तुम्हारा सेनानी बन सकता है ।

इस उपायको जानकर देवोंने प्रयत्न किया कि शिवका पार्वतीके साथ मेल हो तथा उससे जो सन्तान उत्पन्न हो वह उनकी सेनाका सञ्चालन करे । शिवजी समाधिस्थ थे । समाधिकी दशामें कामकी आन्तरिक सत्ता नष्ट हो जाती है । अतएव जिस समय कैलासपर जाकर कामने शिवका ध्यान भङ्ग करना चाहा, तभी शिवने यह सोचा कि अवश्य ही बाह्य स्थितिसे कामने उनपर आक्रमण किया है । उन्होंने तुरन्त अपने मनको सँभालकर कामको भस्म कर दिया । पार्वतीने शिवको अपने रूपसे लुभाना चाहा था, उनका गर्व भी खण्डित हो गया । शिवजी पुनः समाधिस्थ हो गये । पार्वती स्वयं तप करने लगीं, बड़ी उग्र तपश्चर्याके द्वारा उन्होंने अन्तमें तपके प्रभावसे शिवको प्राप्त किया । जब शिवजी ब्रह्मचारीका रूप बनाकर पार्वतीकी परीक्षा लेने आये, तब पार्वतीने यही कहा—

तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनम्

अर्थात् तप ही शिवकी प्राप्तिका साधन है । तपके द्वारा पार्वती-शक्तिपर शिव अधिकार प्राप्त करते हैं । उस तपसे जो सामर्थ्य या वीर्य उत्पन्न होता है, वही स्कन्द या कुमार है । छठे चक्रको भेदनेके बाद कुमारका जन्म होता

है। जिस शरीरमें कुमारने जन्म नहीं लिया है वहाँ देवसेना असुरोंसे बराबर हारती रहती है। असुरोंसे दुर्जेय या अजेय बननेके लिये कुमारका जन्म आवश्यक है।

कुमार-जन्मकी जो प्रक्रिया है उसको एक श्लोकमें यों समझना चाहिये—

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः॥

(मेघदूत १।४३)

अर्थात् हे मेघ! देवगिरिपर सदा बसनेवाले स्कन्दको आकाश-गङ्गाके जलसे सींचे हुए पुष्पोंसे तुम स्नान कराना। इन्द्रकी सेनाओंकी रक्षाके लिये अग्निके मुखमें शिवके द्वारा क्रमशः सम्भृत होता हुआ जो सूर्यसे भी अधिक प्रकाशमान तेज है, वही 'स्कन्द' है। यह हम जानते हैं कि असुरोंसे पराजित देवसेनाकी रक्षाके लिये, उसको सेनापति देनेके लिये शिवने स्कन्दरूपमें जन्म लिया। वह शिवका तेज अग्नि (हुतवह) के मुखमें एकत्र किया गया। यह अग्नि क्या है?

सुषुम्णाका नाम ही अग्नि है। तीनों नाडियोंके नामान्तर निम्नलिखित हैं—

इडा—गङ्गा	और	चन्द्र
पिङ्गला—यमुना	और	सूर्य
सुषुम्णा—सरस्वती	और	अग्नि

सुषुम्णा-प्रदेशमें स्थित पाँच चक्रोंका वर्णन ऊपर हो चुका है। छठा आज्ञा-चक्र है। पहले चक्रको भेदकर जब योगी दूसरेमें जाता है तब मानों पहलेकी शक्तिको भी वह दूसरेमें ले जाता है। दूसरे चक्रतक जिसने सिद्धि पा ली है वह पहले और दूसरे दोनों चक्रोंकी शक्तिका स्वामी हो जाता है। इसी तरह छठे चक्रतक सिद्धि-प्राप्त योगी उन सब चक्रोंकी शक्तिका स्वामी बन जाता है। सुषुम्णा या अग्निके छः चक्र ही वे मुख हैं जिनमें शिवका तेज क्रमसे तपाया जाकर ऊपर उठता हुआ ब्रह्माण्डमें पहुँचता है। छठे चक्रमें जाकर जो शक्ति उत्पन्न होती है उसका नाम कुमार है अर्थात् वह ब्रह्मचर्य-सिद्धिकी परमावस्था है। इसलिये कुमारको सनातन ब्रह्मचारी या सनत्कुमार (सनत् Eternal, कुमार Brahmacharin) का अवतार कहा जाता है। जिस योगीने कुमारको प्राप्त कर लिया है, स्वप्नमें भी उसका मन असंयत विचारोंसे नहीं हरा जा सकता। स्वप्नगत विचारोंको वशमें करना महा कठिन है। अन्तर्दृष्टि (sub-conscious vision) ही तारक है। यह पुतली या तारक उस समय भी कार्य करता रहता है, अर्थात् सङ्कल्प-विकल्पमें लीन रहता है, जिस समय कि बाह्य विचारोंपर जाग्रत्-दशामें मनुष्य अधिकार प्राप्त कर चुकता है। जाग्रत्‌के समान ही सोतेमें भी जिसने परोक्ष मनपर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है वही पूर्णयोगी, पूर्णब्रह्मचारी और सब प्रकार स्वस्थ है। जिसने अपने विचारोंपर पूर्ण संयम प्राप्त कर लिया है, सोते हुए भी जिसका मन इधर-उधर नहीं डोलता, वही पूर्णतः स्वस्थ है। यह स्थिति उस योगीको अनायास मिल जाती है जिसने तपके द्वारा छः चक्रोंकी समस्त शक्ति और चेतनाको अपने वशमें कर लिया है, अर्थात् पाँच चक्रोंके पञ्च विषय और छठे चक्रसे सम्बद्ध सङ्कल्पोंपर जिसे विजय प्राप्त हो गयी है।

षट्चक्रभेदसे सेनानी कुमारका जन्म होता है। यह कुमार शिवका ही तेज या मूर्ति है। सुषुम्णाके मुखमें यह तेज क्रमशः सम्भृत होता है। इसे सुषुम्णापुत्र या अग्निका पुत्र भी कह सकते हैं। अग्निका देवता कृत्तिका है। कृत्तिका नक्षत्रसे संयुक्त कालमें जन्म लेनेके कारण कुमारको कार्तिकेय भी कहा जाता है। तपके अनुकूल जो जीवनक्रम है वही अग्नि देवतासे अधिष्ठित है। जिस समय अग्नि सबसे अधिक सुखावह और सौम्य हो वह कृत्तिकाका समय है। षट्चक्रोंमें पुष्ट होनेके कारण कुमारको छः मुखवाला या छः माताओंका पुत्र भी कहा जाता है। वह सत्यमेव षडानन और षाण्मातुर है। षष्ठी तिथिसे कुमारको बहुत प्रेम है।

मयूर कुमारका वाहन है। मयूर और सर्पोंका स्वाभाविक वैर है। परन्तु शिवके सर्प और कुमारका मयूर परस्पर वैर त्यागकर मैत्री-भावसे रहते हैं। सर्पोंके विषका पान करनेके लिये मयूरकी आवश्यकता है। आसुरी प्राणोंको यदि सर्प कहा जाय तो उनके घोर, अशान्त रूपको संयमके द्वारा शान्त और सौम्य बनानेवाले प्राण मयूर हैं। मयूरको वाहन कल्पित करनेवाले कुमार ही शिवकी कुण्डलिनीके विषको अमृत बना सकते हैं। छः चक्रोंका सम्मिलित उद्गीथ या स्वर षड्ज कहलाता है। इस षड्ज स्वरसे संवादिनी वाणी बोलनेवाला वाहन मयूर ही है। शिवकी साधनासे जन्मे हुए कुमारका वाहन बनकर मयूर कुण्डलिनीका मित्र हो जाता है। सर्पके विषका द्वेष करनेवाली मयूरी उन गरुडके पंखोंसे उत्पन्न हुई जो स्वर्गसे अमृतका घट लाये। यहाँ स्थूल, भौतिक भावोंसे तात्पर्य न होकर आध्यात्मिक अर्थोंका कथारूपसे संकेत करना ही इन उपाख्यान-निर्माताओंको इष्ट था। ऋग्वेदमें त्रिःसप्त अर्थात् इक्कीस मयूरियोंका वर्णन है—

त्रिःसप्तमयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं विजभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥
(१ । १९१ । १४)

अर्थात् २१ मयूरी—सात बहनें—तेरे विषको दूर ले गयीं, जैसे कुम्भवाहिनी स्त्रियाँ जलको ले जाती हैं ।

इस सूक्तभरमें विषके दूर करनेका ही वर्णन है । यूरोपीय विद्वान् इसे मन्त्र-यन्त्र मानते हैं । वस्तुतः प्राणोंकी विषाक्तताको योगके द्वारा शुद्ध-पवित्र करके उन्हें अमृतमय बनानेकी ही इन मन्त्रोंमें उपदेश है । सप्तशीर्षण्य प्राण ही सात बहनें हैं । सप्त-प्राणोंके प्रवाहके लिये पृथिवी (spinal cord), अन्तरिक्ष (bulb or medula oblongata) और द्युलोक (brain) में फैली हुई शिराएँ ही सप्तत्रिक—इक्कीस मयूरियाँ हैं जिन्होंने विषको सोख लिया है । इसी सूक्तमें ९९ नदियोंका वर्णन है । ये नवनवति नदियाँ भी नाड़ियाँ ही हैं जो प्राणसञ्चारकी सरिताएँ हैं । इनमें जो विष है वह मधु हो जावे । अग्निके त्रिःसप्त स्फुलिङ्ग भी प्राण ही हैं, उनमें जो विष है वह मधु हो जावे (हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार—ऋ० १ । १९१ । १२, १३) कुमारने मयूरके वाहनपर आसीन होकर षट्चक्रोंके साथ संवादिता या सामञ्जस्य प्राप्त करके सब विषोंको मधु बना दिया ।

काशी और मणिकर्णिका

काशी ज्ञानकी पुरी है । वह शिवके त्रिशूलपर बसी है । इडा, पिंगला, सुषुम्णाके सङ्गमसे आगे काशी है अर्थात् मस्तिष्क ही काशीपुरी है । 'काशाः सन्त्यस्यामिति काशी' अर्थात् काश जहाँ हों वही काशी है । कुमारका जन्म इसी काशके वनमें हुआ था, अतएव मस्तिष्क ही काशीपुरी या काशवन है । श्वेत मींगीसे भरे हुए मस्तिष्कके भाग ही काशरूप हैं । सहस्रदल पद्म ही काशीपुरी है । यहाँ शिव साक्षात् निवास करते हैं । स्वर्गकी नदी गङ्गाके पवित्र तट-पर काशीपुरी है । मस्तिष्ककी वापियों (Ventricles) में बहनेवाला अविच्छिन्न अमृत-प्रवाह ही मन्दाकिनी है जो अन्तरिक्षमें होती हुई पृथिवीलोक (spinal cord) को भी पवित्र करती है । इस सहस्रदल पद्मको मणिपद्म भी कहते हैं । वहींके एक भागका नाम मणिपीठ, मणितट या मणिकर्णिका है । उस मणिपद्मकी एक कर्णिका मणिकर्णिका है जहाँ स्नान करनेसे पुनर्जन्मका खेद मिट जाता है । सहस्रकमलतक सिद्धि प्राप्त करके जो प्राण त्यागता है उसे पितृयानकी संसृतिमें फिर नहीं आना पड़ता । यहीं योगियों-का विहृतिद्वार है । इसी मणिकर्णिकाको बौद्धलोग मणिपद्म कहते हैं और 'ॐ मणिपद्मे हुं' यह मन्त्र जपते हैं । मेघदूतमें कालिदासने इसे 'मणितट' कहा है—

सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ।
(१ । ६०)

अर्थात् क्रीडाशैलपर शम्भुके साथ जहाँ गौरी विचरती हों वहाँ उन्हें मणितटपर चढ़नेमें सहायता देनेके लिये हे मेघ ! तुम अपने शरीरको सोपान बना देना ।

काम ही मेघ है । उसके शरीरका इससे अच्छा और क्या उपयोग हो सकता है कि उसपर पैर रखकर शिव-पार्वती मणितटपर आरोहण करें । सब लोकोंके कामभावोंको लेकर मेघ ऐसे लोकमें उन्हें समर्पित कर देना चाहता है जहाँ शिवका साक्षात् निवास जानकर काम अपना धनुष चढ़ानेसे डरता है—

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ॥
(मेघ० २ । १०)

कामसे शून्य लोकमें समस्त कामभावोंका विसर्जन ही मेघका दूतकार्य है । अलका या कैलास ही ऐसा लोक है जहाँ मदनको भस्मावशेष करनेवाले शिवजी बसते हैं । काम शिवके तेजको पहचान गया है । शिव कामको जीतकर योगिराट् बने हैं ।

हमारी समस्त वासनाओंका मूलकारण कामवासना है । उसकी पवित्रताके बिना नित्यतत्त्वकी प्राप्ति दुर्लभ है । बुद्धने 'सम्बोधि' प्राप्त करनेके लिये पहले 'मार'को जीता । प्रत्येक ज्ञानी और योगीको अध्यात्म-मार्गमें इस घाटीसे पार होना पड़ता है । इन्द्र-वृत्रकी वैदिक कथामें यही मूलतत्त्व है । वृत्रवध ही इन्द्रका महाव्रत है जिससे इन्द्रको आत्मज्ञान हुआ । शिव और काममें भी उसी तत्त्वकी पुनरावृत्ति है ।

सनातन योग-तत्त्वोंका विवरण ही शिवका स्वरूप है । उसके यथार्थ रूपको जानकर उसकी इयत्ताका निर्वचन परम कठिन है । कविने कहा है—

न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥ (कुमारसम्भव)

अथवा—

को हि तद्वेद यावन्त इमेऽन्तरात्मन् प्राणाः ।
(शतपथ० ७ । २ । २ । २०)

बहुधा ह्येवैष निविष्टः ।
(जै० उ० ३ । २ । १३)

संहार-सत्यता

(लेखक—ताजीमी सरदार पुरोहित श्रीप्रतापनारायणजी 'कविरत्न')

परमेश्वर भी नाम तुम्हारा है शिव ! शंकर ! भोलेनाथ !

तुम पूजे जाते देवोंमें आदिदेव-पदवीके साथ।

कामवाम[1] ! हम कैसे मानें कामजीत तुम पूरंपार

काम-कामिनी[2]-सी कालीके हो तुम कान्त कण्ठके हार॥

तुम संहारी, उग्र हो गये होकर अतुलित दयानिधान

तुम्हें अगम्य सदा बतलाते अन्तर्यामी भी भगवान।

तुम तो कुछ भी वस्तु नहीं हो, हम कहते ये वचन ललाम,

जो कुछ हो तो कह दो अपने माता और पिताका नाम॥

बिना युग्मके जन्म किसीका कभी नहीं होता ईशान[3] !

बिना जन्मके तुम कैसे हो मृत्युञ्जय हे महिमावान !

हे अविनाशी ! काशीवासी ! धाम तुम्हारा 'काशीधाम',

फिर क्यों हो तुम सदा सदाशिव ! सबमें, हे त्रिपुरासुर-वाम !॥

क्या-क्या महिमा करें तुम्हारी हम तो हैं अल्पज्ञ महान,

हम निर्धन बन चाह रहे हैं कल्पवृक्षको देना दान।

स्रष्टा हो करके भी ब्रह्मा, फैला अपनी करुणा-दृष्टि—

हे भव[4] ! भवमें नहीं करेगा अणुकी भी तो सुन्दर सृष्टि॥

इसी तरहसे महाविष्णु भी देते नहीं किसीको वृद्धि,

तत्त्वोंमें बसती है सन्तत बढ़ जानेकी शक्ति-समृद्धि।

जो[5] है नहीं न वह हो सकता, जो है उसका होय न नाश।

जो शंखों वर्षों पहले था, अब भी पाता वही विकास॥

फिर क्या तो नव सृष्टि बनेगी, क्या पालन, क्या है संहार ?

यही तुम्हारी बस लीला है—माया है—हे अपरंपार !

ब्रह्मा, विष्ण, महेश एक हैं, कार्य-रूपका भेद महान,

एक वही है एक सभीमें, वही करे भारत-कल्यान॥

---

१ कामदेवके वैरी। २ रति-सम (काली) पार्वती। काली हेमवतीश्वरी। ३ ईश्वरः शर्व ईशानः, इत्यमरः। ४ शिव और संसार। ५ नासतो विद्यते भावः ···।

काशीमें मृत्यु और मुक्ति

(संकलनकर्ता—श्रीसत्य ठाकुर)

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे, येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति।
तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत, अविमुक्तं न विमुञ्चेदेवमेवैतद्याज्ञवल्क्य ॥ १ ॥

(जाबालोपनिषद्)

इस अविमुक्त-क्षेत्र अर्थात् वाराणसी-धाममें जीवके प्राणोत्सर्ग-कालमें—मृत्यु-कालमें (जगद्गुरु) रुद्र उसे तारक ब्रह्म (प्रणव) का उपदेश करते हैं, जिसके प्रभावसे जीव अमरत्व पाकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसलिये इस अविमुक्त-धामका आश्रय करना चाहिये, इसका त्याग किसीके लिये भी उचित नहीं है। हे याज्ञवल्क्य ! इस क्षेत्रका ऐसा ही माहात्म्य है।'

(याज्ञवल्क्यके प्रति बृहस्पतिके वचन)

भगवान् श्रीरामके अनन्यभक्त गोसाईं तुलसीदासजी महाराज काशीमें ही रहे और वहीं उन्होंने स्थूल शरीरका त्याग किया। उन्होंने घोषणा की है—

मुकुति जनम महि जानि, ग्यानखानि अघहानिकर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न ॥

(रामचरितमानस)

परवर्ती समयके प्रसिद्ध महात्मा श्रीतैलङ्गस्वामी, स्वामी भास्करानन्द आदि अनेकों महापुरुषोंने भी काशीको इसी दृष्टिसे देखा और यहीं देहावसान किया।

केवल सनातनी हिन्दू ही नहीं, कितने ही भिन्न धर्मावलम्बियोंने भी काशीकी पवित्रताका अनुभव किया है। पारसी-अध्यापक श्रीउनवाला महोदय बार-बार कहा करते थे कि 'मैं मरूँ तो इस मुक्तिक्षेत्रमें ही मरूँ।' कहना नहीं होगा कि हमारे सामने ही उनका देहावसान आश्चर्यरूपसे काशीमें ही हुआ।

आज इसी पवित्र काशी-मृत्युके सम्बन्धमें कुछ विचार और एक-दो अनुभव संग्रह करके कल्याण-पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किये जाते हैं।

उपक्रमणिका

(पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए० लिखित)

हिन्दूशास्त्रोंमें तीर्थोंके माहात्म्य-प्रसङ्गमें अनेकों स्थानोंपर कर्मतीर्थ और ज्ञानतीर्थके नामसे दो प्रकारके तीर्थोंका वर्णन मिलता है। कर्मतीर्थ-क्षेत्रकी विशेषताके कारण धर्म या पुण्यसंस्कारोंको उत्पन्न कर स्वर्गादि सुखमय अवस्थाकी प्राप्ति कराते हैं। परन्तु यदि ज्ञानतीर्थोंका विधिपूर्वक सेवन किया जाय तो उससे क्रमशः ज्ञानसंस्कार सञ्चित होते हैं और अन्तमें पूर्ण ज्ञानका विकास होकर मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। इसीलिये ज्ञानतीर्थोंको मोक्षदायक तीर्थ कहा गया है और इसीलिये शास्त्रोंमें अयोध्या, मथुरा, माया आदि नगरियोंको प्राचीन कालमें मोक्षदायिनी बतलाया गया है। परन्तु दूसरे-दूसरे मुक्ति-स्थानोंकी अपेक्षा काशीकी कुछ विशेषता है। क्योंकि अन्यान्य ज्ञान-भूमियोंमें जीवन धारण करनेसे अर्थात् उन स्थानोंपर निवास करनेसे ही स्थान-माहात्म्यके कारण ज्ञानका उदय होता है; परन्तु काशीमें निवाससे नहीं, अपितु देहत्यागसे ही मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है।

कुछ लोग ऐसा सोचा करते हैं कि 'किसी स्थान-विशेषमें मृत्यु होनेसे ही मुक्ति हो जायगी, ऐसा मानना सर्वथा युक्ति-विरुद्ध है। काशीमरणके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें जो प्रशंसा-सूचक वाक्य हैं वे अर्थवादमात्र हैं; यानी लोगोंको आकर्षित करनेके लिये बढ़ाकर कहे गये हैं। यदि काशीमें मरनेसे ही मुक्ति हो जाय तो फिर कृत कर्मोंका फलभोग नहीं हो सकता और यदि कर्मोंका फल न मिलेगा तो सृष्टिमें नाना प्रकारकी विषमता उत्पन्न हो जायगी। तथा पापी और पुण्यात्मा अपने-अपने कर्मोंके अनुसार फल न भोगें और दोनोंको समान गति मिल जाय, यह भी अनुचित मालूम होता है। इसके सिवा आत्मज्ञान हुए बिना मुक्ति भी कैसे हो सकती है? ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती, यह ऋषियोंका चरम और अभ्रान्त सिद्धान्त है। यह भी समझमें नहीं आता कि पापी और पुण्यात्मा दोनों ही काशीमें मरते ही अपने पाप और पुण्यके संस्कारोंसे छूटकर तत्त्वज्ञानकी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। और कर्मोंका क्षय हुए बिना ज्ञानका उदय भी कैसे हो सकता है? आदि-आदि।'

जिनके मनमें इसप्रकारके सन्देह पैदा होते हैं उनको

यह समझना चाहिये कि स्थानमाहात्म्यका निरूपण युक्तियों-से नहीं हो सकता। बाह्य अथवा पाञ्चभौतिक दृष्टिसे काशी तथा अन्य पार्थिव स्थानोंमें कोई लौकिक भेद नहीं दिखलायी पड़ता। काशीमें कोई अलौकिक विशेषता है या नहीं, इसका निर्णय किसी शक्तिसम्पन्न पुरुषके अनुभवके द्वारा ही हो सकता है। कार्यके द्वारा ही शक्तिका अनुमान होता है, क्योंकि अतीन्द्रिय शक्ति साधारण मनुष्योंके प्रत्यक्षका विषय नहीं है। अग्निकी दाहिका शक्ति साधारण दृष्टिसे नहीं देखी जा सकती। साधारण मनुष्य तो दहनादि कार्योंको देख-कर ही उसके अस्तित्वका अनुमान करते हैं। इसी प्रकार काशी-में ऐसी कोई विशेषता है या नहीं जिसके प्रभावसे जीव ज्ञानवान् होकर मुक्ति-लाभ कर सकता है—इस तत्त्वकी यथार्थ उपलब्धि करनेके लिये उसका कुछ स्थूल परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। ऐसा किये बिना इसप्रकारके माहात्म्यका अनुमान करना भी सम्भव नहीं है।

मृत्युके समय प्रत्येक मनुष्यका सूक्ष्म (लिङ्ग) शरीर स्थूल शरीरसे अलग होकर अपने कर्म-संस्कारोंके अनुसार गति प्राप्त करता है। जबतक स्थूल शरीरसे सूक्ष्म शरीर अलग नहीं होता तबतक यह गति आरम्भ नहीं होती। अर्थात् मृत्युके बाद ही सूक्ष्म शरीरमें गति दिखलायी पड़ती है। इस गतिकी विचित्रता कर्म-वैचित्र्यके अनुसार ही होती है। ऊर्ध्वगति, अधोगति तथा तिर्यग्गति और प्रत्येक गतिके असंख्यों अवान्तरभेद अनन्त प्रकारके जटिल कर्म-संस्कारोंके कारण ही हुआ करते हैं। परन्तु काशी-क्षेत्रमें जब मृत्युके समय वह लिङ्ग-ज्योति (सूक्ष्म शरीर) स्थूल या अन्नमय कोषसे पृथक् होती है तब वह अपनेको एक तीव्र ऊर्ध्वगामी आकर्षणके मध्य देखती है, और इस आकर्षणके प्रभावसे वह लिङ्ग-देह (सूक्ष्म शरीर) क्रमशः ऊर्ध्वगामी होता है। काशीके सिवा अन्यान्य स्थानोंमें मृत्युकालमें लिङ्ग-की ऐसी गति नहीं होती। अवश्य ही जिनको ज्ञान हो गया है, उनकी मृत्यु कहीं भी क्यों न हो, उनका लिङ्ग-शरीर ज्ञानके प्रभावसे स्वभावतः ही ऊर्ध्वगामी होता है। यह क्रम-मुक्तिके अनुसार उत्क्रमणकी व्यवस्था है।

अब प्रश्न होता है कि काशी-क्षेत्रमें शरीर छोड़नेपर साधारण मनुष्योंकी अर्थात् अज्ञानी जीवोंकी भी इसी प्रकार ऊर्ध्वगति होती है या नहीं? जब इसका साक्षात् अनुभव, जिनकी मृत्यु हो गयी है उन्हें छोड़कर, दूसरोंके लिये असम्भव है तब जीवित मनुष्य इस सम्बन्धमें किसी स्थिर सिद्धान्तपर कैसे पहुँच सकता है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि योगियों एवं योगाभ्यासियोंके लिये इस संशयको दूर करना कोई बहुत कठिन कार्य नहीं है। कारण, पके हुए फलके डालसे टूटकर भूमिपर गिर पड़नेकी भाँति जैसे प्रारब्धकर्मका भोग पूरा होनेपर सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरसे अलग हो जाता है, ठीक वैसे ही योगलब्ध बलसे सम्पन्न पुरुष जीवनकालमें अपनी इच्छानुसार योगशास्त्रोक्त कौशलके द्वारा अन्नमय कोषसे लिङ्ग (सूक्ष्म देह) को पृथक् करके बाहर निकाल सकते हैं। इसप्रकार योगी जब अभ्यासके समय लिङ्ग-शरीरको स्थूल शरीरके सम्बन्धसे कुछ अंशमें मुक्त करके बाहर ले आता है तब उसी क्षण वह बाह्य जगत्के विचित्र आकर्षणका अनुभव करता है। कहना नहीं होगा कि इस आकर्षणसे ही लिङ्ग (शरीर) की भिन्न-भिन्न प्रकारकी गतियोंका आरम्भ हुआ करता है। अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह आकर्षण और तज्जनित गति लिंगनिहित कर्म-संस्कारोंका फल है। यदि यह देखा जाय कि किसी स्थान-विशेषमें अभ्यासकालमें लिङ्ग-शरीर अन्नमय कोषसे पृथक् होनेके साथ ही किसी अचिन्त्य शक्तिके आकर्षणसे ऊर्ध्वगामी होता है, यहाँतक कि उसके विचित्र कर्म-संस्कार भी उसे खींचकर नीचेकी ओर नहीं ला सकते तो यह समझना होगा कि यह स्थान-माहात्म्यका ही फल है। अनुभूति-सम्पन्न योगियोंको काशीमें इसप्रकारकी अचिन्त्य विशेषताकी उपलब्धि हुआ करती है। इसलिये यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ज्ञान-प्राप्तिके अनन्तर योगबलसे देह-त्याग करनेपर जिसप्रकार लिङ्ग-शरीर-की ऊर्ध्वगति होती है उसी प्रकार काशीमें भी मृत्युकाल-में लिङ्ग पृथक् होनेके साथ ही ऊर्ध्वगति प्राप्त हुआ करती है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह ऊर्ध्वगति ज्ञान बिना नहीं हो सकती, इसलिये अज्ञानावृत, पापी अथवा पुण्यवान्—कोई किसी प्रकारके भी कर्मवाला हो, इस ज्ञान-क्षेत्रमें देह त्यागनेके साथ ही ज्ञान प्राप्त कर ऊर्ध्वगति पाता है। शास्त्रों-में लिखा है कि काशी पृथिवीके अन्तर्गत नहीं है। इसका असली तात्पर्य यह है कि दूसरे-दूसरे स्थानोंमें जैसे पार्थिव-आकर्षण या मध्याकर्षण स्थूल देहसे पृथक् हुए लिङ्गको नीचेकी ओर खींचते हैं काशीमें ठीक इसके विपरीत ऊर्ध्व आकर्षण लिङ्गको ऊर्ध्वकी ओर आकर्षित करता है। स्थूल देहका सम्बन्ध टूटनेके साथ-ही-साथ ऐसा दीखने लगता है। जिसप्रकार अधः आकर्षण अज्ञानका कार्य है

उसी प्रकार ऊर्ध्व आकर्षण ज्ञानका कार्य है। काशी-मृत्युसे लिङ्ग-देह एक प्रकारकी ऊर्ध्वगतिशील अवस्थाको प्राप्त होता है, इसीलिये काशीकी श्रेष्ठ ज्ञान-क्षेत्रके रूपमें पूजा होती है तथा शास्त्रोंमें 'मरणं यत्र मङ्गलम्' कहकर काशी-मृत्युकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है।

काशीका ऐसा माहात्म्य या वैशिष्ट्य है या नहीं- इसका निर्णय केवल अनुभवके द्वारा ही किया जा सकता है, युक्तियोंद्वारा नहीं। ऋषियोंके इसप्रकारके अनुभवके बलपर ही शास्त्रकार काशीकी महिमाका प्रचार कर गये हैं। अब भी समर्थ योगी अपने जीवितकालमें ही इसप्रकारके अनुभव प्राप्त करते हैं। यह ज्ञान-प्राप्ति साक्षात् कृपाका फल होनेके कारण इसके साथ कर्मोंका कोई विरोध नहीं रह सकता। कहना नहीं होगा कि ज्ञानस्वरूप श्रीभगवान्‌की कृपाके बिना कभी ज्ञानका उदय नहीं हो सकता। कर्मक्षय होनेसे ही ज्ञानका उदय होता है—यह प्रकृत सिद्धान्त नहीं है। वस्तुतः साक्षात् या अपरोक्ष ज्ञानका आविर्भाव होते ही हृदय-ग्रन्थिका भेदन होकर समस्त संशयोंका भञ्जन एवं कर्मोंका क्षय हो जाता है। अतएव काशी-मृत्युरूप सौभाग्यको प्राप्त करना अथवा आत्मज्ञानका उदय होना, दोनों ही भगवान्‌की कृपासे होते हैं। दार्शनिकगण जानते हैं कि Justice (न्याय) और Mercy (दया) में कोई वास्तविक विरोध नहीं है। Mercy (दया) से Justice (न्याय) की ही पूर्णता होती है- Love is the fulfilment of law (प्रेम न्यायका पूरक है)-इस वाक्यके द्वारा ईसाके उपासकोंने भी इसी बातकी घोषणा की है। जिस कृपाके द्वारा काशी-मृत्यु प्राप्त होती है, उसके साथ कर्मोंका विरोध न रहनेका कारण यह है कि काशी-मृत्युद्वारा तारक-ज्ञानका उदय होनेसे अधः आकर्षण और गर्भवास-यन्त्रणा निवृत्त हो जाती है, पर कृत कर्मोंका फल चाहे वह सुख हो या दुःख ही हो—ऊर्ध्वलोकमें भोगना पड़ता है। अवश्य ही ज्ञानोदय होनेके कारण नये कर्म नहीं होते और पुराने कृत कर्म क्रमशः सुख और दुःखरूप फल-भोगके द्वारा क्षीण हो जाते हैं। पर ज्ञान पूर्णताको प्राप्त करता है और जीव परमा मुक्तिका अधिकारी हो जाता है। अतएव काशीमें मृत्यु होनेपर भी पापका फल दुःख और पुण्यका फल सुख भोग करना ही पड़ता है। तब किसी प्रकारके वैषम्य अथवा अन्यायका कारण नहीं रह जाता। परन्तु देवादिदेव महादेवकी कृपासे स्थान-माहात्म्यके कारण ज्ञानका उदय हो जाता है, इसलिये मुक्ति प्राप्त करनेमें भी कोई बाधा नहीं आती। इस सम्बन्धमें अन्यान्य विषयोंपर फिर कभी आलोचना की जा सकती है। यह ज्ञानाग्नि सञ्चित कर्मोंको निःशेषरूपसे जला डालती है।

यहाँ सद्योमुक्तिके सम्बन्धमें आलोचना करनेकी आवश्यकता नहीं है।

अनुभव

(१)

स्वामी श्रीशारदानन्दजी द्वारा लिखित 'श्रीश्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसङ्ग' नामक पुस्तकमें श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवका एक अनुभव इसप्रकार लिखा है।

'वाराणसीके मणिकर्णिकादि पञ्चतीर्थोंका दर्शन करनेके लिये लोग नावपर सवार होकर गङ्गाजीमें जाया करते हैं। एक दिन ठाकुर (श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव) के साथ मथुरबाबू* भी गये। मणिकर्णिकाके बगलमें ही काशीका प्रधान श्मशान है। मथुरबाबूकी नाव जब मणिकर्णिकाके सामने पहुँची तब यह दिखायी दिया कि श्मशान चिताओंके धूएँसे भरा है—मुर्दे जल रहे हैं। भावमय ठाकुर (परमहंसदेव) उस ओर देखते ही एकदम आनन्दमें भर गये और पुलकित होकर दौड़कर बाहर निकल आये, और एकबारगी नौकाके किनारेपर खड़े होकर समाधिमग्न हो गये। मथुरबाबूके पण्डे और नावके मल्लाह यह समझकर कि यह आदमी जलमें गिरकर बह जायगा, ठाकुरको पकड़ने दौड़े। परन्तु किसीको भी उन्हें पकड़नेकी आवश्यकता नहीं हुई। देखा, ठाकुर धीर स्थिरभावसे चुपचाप ध्यानमग्न खड़े हैं और एक अद्भुत ज्योति और हास्यकी छटा उनके मुखसे प्रस्फुटित हो रही है, जिससे वह सारा स्थान ही शुद्ध ज्योतिर्मय बन गया है। मथुरबाबू और ठाकुरके भानजे हृदय बड़ी सावधानीसे ठाकुरके पास खड़े रहे; मल्लाह भी अचरजभरी नजरसे दूर खड़े, ठाकुरका अद्भुत भाव देखने लगे। कुछ देर बाद ठाकुरके उस दिव्य भावका लोप होनेपर सब लोग मणिकर्णिका-घाटपर उतरे और स्नान-दानादि करके पुनः नावपर सवार होकर आगे बढ़े।

तदनन्तर ठाकुर अपने अद्भुत दर्शनकी बात मथुरबाबू आदिसे कहने लगे। उन्होंने कहा कि मैंने देखा, पिङ्गल वर्णकी जटाओंवाले एक लम्बे श्वेतकाय पुरुष गम्भीरतासे

* मथुरबाबू रानी रासमणिके दामाद थे।

चलते हुए श्मशानकी प्रत्येक चिताके पास आते हैं और प्रत्येक देहीको अच्छी तरहसे उठाकर उसके कानमें तारक ब्रह्म-मन्त्र प्रदान कर रहे हैं। सर्वशक्तिमयी श्रीश्रीजगदम्बा भी स्वयं महाकालीरूपसे जीवके दूसरी तरफ उसी चितापर बैठकर उसके स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि सब प्रकारके संस्कार-बन्धनोंको खोल रही हैं तथा निर्वाण-का मार्ग उन्मुक्त कर अपने हाथोंसे उसे अखण्ड धाममें भेज रही हैं। इसप्रकार श्रीविश्वनाथ अनेक कल्पोंके योग-तपसे प्राप्त होनेवाला अद्वैतानुभवरूप भूमानन्द जीवोंको दया-पूर्वक प्रदानकर उन्हें कृतार्थ कर रहे हैं।'

मथुरबाबूके साथ जो शास्त्रज्ञ पण्डित थे, उन्होंने उपर्युक्त दर्शनकी बात सुनकर कहा कि 'काशीखण्डमें इतना तो लिखा है कि काशीमें मृत्यु होनेसे श्रीविश्वनाथजी जीवको निर्वाण-पद देते हैं; परन्तु किस दिव्य भावसे कैसे देते हैं, यह नहीं लिखा। आज आपके इस दर्शनसे उसकी रीति समझमें आ गयी।' [देखिये श्रीरामकृष्ण-लीलामृत (बङ्गला) गुरुभाव—उत्तरार्द्ध, पृष्ठ १२७-२८, चतुर्थ संस्करण]

श्रीरोमां रोलांने काशीके परमहंसदेवके अनुभवके बारेमें एक बात और लिखी है—

He visited Benares, it seemed to him not built of stones, but a 'condensed mass of spirituality.' This has also been the experience of other Yogis who have visited Sacred Kashi. (Life of Rama-krishna by Romain Rolland)

अर्थात् स्वामी रामकृष्ण परमहंसने काशीको पत्थरोंसे निर्मित नहीं देखा, उन्होंने देखा कि यह 'दिव्य चेतनका समूह है।' जिन अन्यान्य योगियोंने इस पवित्र काशीके दर्शन किये हैं उन्हें भी ऐसा ही अनुभव हुआ है।

(२)

पण्डित श्रीगोपीनाथजी कविराजके एक खास मित्र व्यावहारिक जीवनसे अलग होकर काशी-सेवन कर रहे हैं, उन्होंने अपने जीवनकी निम्नलिखित घटना कविराजजीको सुनायी थी। मेरे आग्रहसे उन्होंने मुझसे जैसा कहा, ठीक वैसा ही मैं यहाँ लिख रहा हूँ। उन्होंने अपना नाम प्रकाशित करनेकी आज्ञा नहीं दी, इसलिये उनका पूर्ण परिचय नहीं दिया जा सकता।

'शायद सन् १९०५ में बङ्गालसे एक विजय नामक लड़का काशी आया था। मुझसे परिचय होनेके बादसे ही उसका मेरे प्रति अत्यन्त अनुराग हो गया, और क्रमशः हम दोनोंका प्रेम-सम्बन्ध इतना घनिष्ठ हो गया कि हम दोनों शामके वक्त रोज ही घूमने जाया करते। प्रायः एक सालके बाद विजयके एक बूढ़े सम्बन्धी (उसके फूफाके पिता) का पत्र आया कि 'मैं बीमार हूँ और सपरिवार काशी आ रहा हूँ।' विजयने मुझसे एक मकान किरायेपर ठीक कर देनेके लिये कहा। देख-सुनकर हमलोगोंने टेढ़ीनीमके पास एक मकान किरायेपर लिया। वे लोग आकर उसमें ठहर गये। रोगीको ऊपरके मंजिलपर रक्खा गया। वृद्ध बहुत दिनोंसे बीमार थे, घरवालोंने बतलाया कि ये गत छः महीनोंसे काशी आनेके लिये बड़े ही व्याकुल थे। काशी आनेपर उनके रोगमें कुछ भी कमी नहीं हुई, परन्तु मनमें एक आनन्दका भाव दिखलायी दिया। रोगने क्रमशः डबल निमोनियाका रूप धारण कर लिया और उनकी हालत बिगड़ गयी। एक दिन शामके वक्त डाक्टरोंने आशा छोड़ दी और वे जाते समय कह गये कि 'आज रातको परिचारकोंको सावधान रहना चाहिये।' मैं उस समय वहीं था। विजय भोजनादिके लिये घर चला गया। अन्नपूर्णा फार्मेसीके किङ्करबाबू रोगियों-की परिचर्यामें बड़े कुशल थे। इसलिये निश्चय हुआ कि रातको उन्हींको यहाँ रक्खा जाय। उन्हें बुलानेका भार विजयको सौंपा गया। उनकी प्रतीक्षामें मैं रोगीके पास बैठा रहा। घरके और भी दो एक मनुष्य वहाँ थे।

कुछ ही देर बाद, नीचेके तल्लेमें खड़ाऊँकी आवाज सुनकर मैं सीढ़ीकी ओर देखने लगा; क्रमशः मैंने देखा कि एक दिव्यमूर्ति संन्यासी हाथमें त्रिशूल और कमण्डलु लिये सीढ़ीसे आकर सीधे रोगीके बिल्कुल निकट चले गये एवं सिर झुकाकर रोगीके कानमें कुछ कहने लगे। रोगीमें करवट बदलनेकी ताकत बिल्कुल नहीं रह गयी थी, परन्तु उसने सहज ही करवट बदलकर मानों संन्यासीके वचन सुने। संन्यासी चले गये। वृद्धने दो एक लम्बे श्वास लिये और साथ ही उनका प्राण-पखेरू उड़ गया। यह घटना मेरी आँखोंके सामने हुई, मैं सोचने लगा—'ये संन्यासी कौन थे।' घरके दूसरे लोगोंसे पूछनेपर उन्होंने कहा कि 'कहाँ? हमलोगोंने तो किसी संन्यासीको नहीं देखा!' मैं अवाक् रह गया।

मैं मानों किसी दिव्यलोकमें बैठकर यह रहस्य देख रहा था। तबसे मेरे मनमें यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि

परमकारुणिक शिव ही इस काशीधाममें विशेषरूपसे जीवके अन्तकालके समय आकर उसके कानमें तारक-ब्रह्म-मन्त्रका उपदेश किया करते हैं।

मैं बैठा था, कुछ ही देर बाद किङ्करबाबूने आकर कहा कि 'अरे ! यहाँ तो सब शेष हो गया, कब हुआ ?'

यह घटना मैंने पूजनीय महामहोपाध्याय पण्डित यादवेश्वर तर्करत्नको सुनायी थी। इसने उनके मनपर इतना प्रभाव डाला कि उसके बाद वे, इस भयसे कि कहीं जीवनके शेष मुहूर्तमें शिवगुरुलाभके सौभाग्यसे वञ्चित न रह जाऊँ, थोड़े समयके लिये भी काशी छोड़ना नहीं चाहते थे। इस घटनाके बादसे जब कभी मैं उस मकानके पाससे निकलता हूँ, मेरा शरीर और मन आशा और आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठता है।'

जिस मकानमें यह घटना हुई थी, उसको उन्होंने आनन्द-गद्गद्भावसे मुझको दिखलाया। इसप्रकारकी घटनाएँ और भी अनेकों सज्जनोंसे सुनी जाती हैं।

(३)

काशीमें एक साध्वी वृद्धा विधवा रहती हैं। हम उन्हें 'खालिसपुराकी माँ' के नामसे जानते हैं। सब प्रकारसे संबलहीन होकर केवल धर्मके ऊपर निर्भर रहकर वे काशीसेवन करती हैं। हमारी धारणा है कि वे धार्मिक जीवनमें बहुत ऊँची भूमिकापर स्थित हैं। कुछ समयतक उनके पास रहनेसे या उनके वाक्य श्रवण करनेसे मन एक अपूर्व धर्मभावसे पूर्ण हो जाता है। उनके जीवनकी निम्नलिखित घटना गतवर्ष मैंने कई मित्रोंके साथ उन्हींके मुखसे सुनी थी।

'उस समय मेरे स्वामी जीवित थे। एक बूढ़ी बिल्ली कहींसे आकर हमारे घरमें रहने लगी। उसमें विशेषता यह थी कि यह हमारे साथ निरामिष आहार करती, मांस खानेके लोभमें दूसरी जगह कहीं नहीं जाती एवं एकादशीके दिन कुछ भी नहीं खाती थी। ज्यादातर मेरे पास पड़ी रहती। कालक्रमसे उस बिल्लीकी मृत्यु हुई और उसे सड़कपर एक तरफ फिंकवा दिया गया, जिसमें उसे डोम आकर उठा ले जायँ। पर मैंने सोचा, डोम उसे न जाने कहाँ ले जाकर फेंकेगा ? ऐसी हिंसाशून्य सद्गुणी बिल्ली तो देखनेमें नहीं आयी, क्या इसका शव गङ्गामें नहीं डाला जा सकता ?

स्वामीसे जब मैंने यह कहा तो वे पहले कुछ नाराज-से हुए। बिना मतलब उन्हें एक दुर्गन्धमय मृत पशुको ले जाना ठीक नहीं मालूम पड़ा। परन्तु पीछे मेरे हृदयकी वेदनाका अनुभवकर वे उसे ले जानेको राजी हो गये। मैंने बिल्लीको लाल कपड़ेके एक टुकड़ेमें लपेट दिया। वे उसको गङ्गामें बहा आये और आकर मुझसे बोले कि 'बिल्लीको तुम्हारी मनचाही गङ्गा-प्राप्ति हो गयी।' इस घटनाके पाँच-छः दिन बाद अकस्मात् एक दिव्य मनुष्याकृति सधवा रमणी, जो लाल पाड़की साड़ी पहने थी और जिसकी माँगमें सेंदुर भरा था, मेरे समीप आकर बैठ गयी। मैंने पूछा—'बहिन ! तुम कौन हो ? उसने कहा—मैं वही बिल्ली हूँ, जिसे तुमने दया करके गङ्गाजीमें बहा दिया था; अब मैं मुक्त होकर जा रही हूँ, इसलिये जानेके पहले तुमसे मिले जाती हूँ।' यह कहकर वह तुरन्त अन्तर्धान हो गयी। मैं अपने आसनपर बैठी रह गयी। मैंने देखा, कितने ही देवी-देवता उसके आगमनकी प्रतीक्षामें बैठे हैं, न जाने किस पापसे बेचारीको कुछ दिनोंतक बिल्लीकी योनिमें रहना पड़ा !'

(४)

हिन्दू-विश्वविद्यालयके इलेक्ट्रिक इञ्जिनियरिङ्ग-विभागके मुख्याध्यापक श्रीभीमचन्द्र चट्टोपाध्यायके जीवनकी निम्नलिखित घटना अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी है—

'काशी-विश्वविद्यालयसे मिले हुए वासस्थान (नगवा) में रहते समय मेरी बड़ी लड़की सरस्वती सख्त बीमार हो गयी। एक दिन उसको घरमें छोड़कर मैं एक कामसे अपनी स्त्रीसहित एक मित्रके घर गया था। उसी समय एक आदमीने आकर हमें खबर दी कि तुम्हारी लड़कीकी अवस्था बहुत खराब है। लड़कीकी माँ उसी समय घर गयी, लड़कीको उस समय भयानक हिचकी आ रही थी। माता और कुछ भी निश्चय न कर सकनेके कारण, श्रीहरिका स्मरण करके, नारायणके स्नानोदकमें तुलसी-पत्र छोड़कर, वही जल कन्याके मुखमें डालने लगी। इससे हिचकी बन्द हो गयी। उस समयतक मैं भी आ गया, पर उसकी हालत खराब ही होती जा रही थी।

इसके बाद लड़कीने नगवा छोड़कर वरुणा और असीके बीच काशीके अन्दर रहनेकी इच्छा प्रकट की। मैंने पहले भी अपने परममित्र, प्रिंसिपल मि० सि० ए० किंगसे इसके लिये कहा था। परन्तु उस समय उन्होंने बिल्कुल

असम्मति प्रकट की थी। आज इस अवस्थामें मेरी लड़कीके सङ्कल्पकी बात जानकर उन्होंने उसी समय मुझसे कहा कि 'तुम कल ही यह घर छोड़कर काशीके अन्दर चले जाओ।'

मैंने उनके कथनानुसार किया। दूसरे दिन सवेरे ही गुधोलियामें एक मकान किरायेपर लेकर बीमार लड़कीको किसी तरह पालकीमें बैठाकर हमलोग उस घरमें चले गये। इस लड़कीके पुण्य-प्रभावसे ही इस समय हमलोगोंका काशी-सेवन हो रहा है।

लड़कीका रोग दिनों-दिन बढ़ने लगा। मृत्युके दो दिन पहले मेरी लड़कीने काशीखण्ड और गीता सुननी चाही, मैंने यथासम्भव पढ़कर सुनायी। लड़की मेरे घरपर प्रायः चार वर्षोंसे बीमार थी। उसके पति काशी-धाममें ही रहते थे, परन्तु उन्होंने इतने दीर्घकालमें एक दिन भी आकर उसे नहीं देखा। मेरी लड़कीके बीमार होनेके दो वर्ष बाद उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया था। इन सब कारणों-से मेरे मनमें दुःख था। लड़की यह जानती थी, तो भी उसने शेष समय एक बार अपने स्वामीके दर्शन करनेकी इच्छा नौकरसे जनायी और कहा—यदि माँ गुस्सा न हों तो एक बार उन्हें बुला लाओ। कहना नहीं होगा कि अभिमान छोड़कर मैंने अपने दामादको बुला लिया। सरस्वती उनका चरणोदक पीकर तृप्त हो गयी और बोली कि 'मुझे शान्ति मिल गयी।' उनको अपने पास बैठाकर उसने बातें की। सरस्वतीके उस भावको याद करके आज भी मैं आँसुओंको नहीं रोक सकता।

मृत्युके पहले दिन सरस्वतीने अपनी माँको बुलाकर अपने सोनेके सारे गहने एक-एक करके कुछ अपनी बहिनों-को और कुछ दूसरोंको बाँट दिये। कहना नहीं होगा कि पहले दिन इस सम्बन्धमें उसने स्वामीसे पूछ लिया था। गहने बाँटनेके कुछ पहले उसकी माँने उससे कहा था कि 'बेटी! तुम अच्छी होनेपर इन गहनोंको पहनना। तुम अपने इस प्यारे अनन्तको इस अमृता बहिनको क्यों दे रही हो? यह तो तुमसे लड़ा करती थी न? इत्यादि।' सरस्वतीने उत्तर दिया कि माँ! मेरे राग-द्वेष और कामनाका पर्दा फट गया है, मेरा अब किसीपर क्रोध नहीं है। अच्छी होनेपर भी अब मुझे गहने पहननेकी इच्छा नहीं है और न किसी भी वस्तुके लिये वासना या लोभ ही है। क्रोधका बिल्कुल नाश हो गया है, इसलिये जो मुझसे झगड़ा करती थीं उनसे भी मेरा प्रेमभाव हो रहा है। मैंने जैसा कहा है, वैसा ही करनेसे मुझे आनन्द होगा।

उसके कथनानुसार ही किया गया। दिनभर लड़कीने घरके लोगों, आत्मीयजनों एवं नौकर-नौकरानी सबको एक-एक करके बुलाया और अपने दोषोंके लिये हाथ जोड़कर उनसे क्षमा-प्रार्थना की। यहाँतक कि मेहतरको भी बाकी नहीं छोड़ा। सबसे जानेकी अनुमति माँगी तथा सारे नौकरोंको कुछ-न-कुछ दिया।

सन्ध्या-समय सरस्वतीने अपनी माँको बुलाकर कहा—'माँ! तुमने जो कहा कि मैं उत्तम स्थानको जाऊँगी सो ठीक है, देखो लोग मुझे लेनेके लिये आ गये हैं। परन्तु वे तुम्हारी आज्ञा बिना मुझे ले जाना नहीं चाहते। मुझे अनुमति दो।' इसप्रकार रात्रिके ११ बजेतक कहते रहनेपर, मेरी स्त्री बिना अनुमति दिये न रह सकी। उसने कहा—'बेटी! तुम किसी सुन्दर जगह जाओ तो मैं बाधा डालना नहीं चाहती।' इसी समय 'शिव' का नाम स्मरण करती हुई सरस्वती देवादिदेव महादेवमें लीन हो गयी, मानों अभीतक माताकी अनुमतिकी ही प्रतीक्षा कर रही थी।

मैंने अनुभव किया कि भगवान्ने गीतामें काम, क्रोध, लोभ नामक जिन तीन नरकोंके द्वारोंका उल्लेख किया है (गीता १६। २१) उनसे मेरी लड़की श्रीविश्वनाथकी कृपासे विनिर्मुक्त होकर सदाशिवमें लीन हो गयी।

उस समयसे मुझे विश्वास हो गया कि काशी-मृत्यु इसीको कहते हैं। किसप्रकार बीस वर्षकी युवा लड़कीके सारे बन्धन, माया-मोह, राग-द्वेष आदि अकस्मात् पर्देकी तरह हट गये! शिव-कृपाके बिना ऐसी पतिभक्ति एवं मृत्यु-समयमें सबके साथ ज्ञानपूर्वक इसप्रकारका आचरण सम्भव नहीं। यह 'काशीमरणान्मुक्तिः' इस शास्त्र-सम्मत वाक्यका स्मरण रखनेसे सहज ही हृदयङ्गम किया जा सकता है।

शिव-तत्त्व-रहस्य

(लेखक—श्रीगणेशप्रसादजी एम० ए०, बी० एस० सी०, मण्डला फोर्ट)

वेदोंमें शिव-तत्त्व

वैदिक कालको आज ६४०० वर्षसे अधिक बीत चुका। वेदोंके ऋषि एक ही परमात्माकी आराधना उसकी अनेक विभूतियोंद्वारा करते थे। उन विभूतियोंमें प्रधान विभूतियाँ सूर्य, विद्युत् तथा अग्नि थीं। हॉपकिन्स (Hopkins) कहता है कि ऋग्वेदके ऋषि उपर्युक्त तीन चमकदार शक्तियोंकी आराधना करते थे। संस्कृतमें 'दिव्' धातु चमकनेके अर्थमें आती है, इसीलिये सूर्य, विद्युत् तथा अग्निको देवता कहते थे। संसारके प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद-संहिताके आदिकी ऋचाओंमें ही सूर्यका वर्णन आता है। इसप्रकार ऋग्वेदका सबसे प्राचीन देवता सूर्य है। आदिकालके मनुष्य (Primitive Man) के हृदयमें सूर्यने अपनी तेजस्वितासे अवश्य आदरका भाव उत्पन्न कर दिया होगा। ठीक समयपर उदय तथा अस्त होना, उसपर आँख न ठहर सकना तथा आदिकालके महान् शीतयुग (Glacial Age) में उसकी धूपकी जीवनदायिनी शक्तिने मनुष्यके हृदयमें सूर्यके प्रति आदर तथा भय (awe) का भाव अवश्य उत्पन्न कर दिया होगा। सूर्यकी यही आराधना आगे चलकर पौराणिक कालमें विष्णुकी आराधनामें परिणत हो गयी। सूर्य (पूषन्) की पोषक-शक्ति विष्णुकी पालन-शक्ति बन गयी।

आदर तथा भयका भाव पृथिवीपर अग्निने उसी प्रकार उत्पन्न किया होगा जिसप्रकार आकाशमें सूर्यने किया। भोजन पकानेमें हितकारी (रक्षक) बनना तथा वन-के-वन भस्म कर डालनेमें नाशकका रूप धारण करना—इन दो विरोधी कृत्योंद्वारा अग्निने आदिकालके मनुष्यके हृदयमें यह भाव भी उत्पन्न कर दिया होगा कि अग्निमें इच्छात्मक चेतनता है, क्योंकि एक चेतन पदार्थ ही कभी रक्षक तथा कभी नाशक बन सकता है। सूर्य तथा विद्युत् मनुष्यके वशके बाहर थे; परन्तु अग्नि तो इच्छानुसार चैतन्य रक्खी जा सकती थी, इसलिये इस चञ्चल तथा अद्भुत देवताको सदैव चैतन्य रखकर हवन-कुण्डमें इसकी आराधना आरम्भ कर दी गयी। कुछ पाश्चात्य पण्डित मानते हैं कि आदिकालके मनुष्यको सरलतासे आग जलाना नहीं आता था, इसलिये वे उसे सदा चैतन्य रखते थे; परन्तु यह मत भ्रमात्मक है। अग्निकी यही आराधना आगे चलकर पौराणिक कालमें शिवकी आराधनामें परिणत हो गयी। इसप्रकार वेदोंमें शिव-तत्त्व अग्नि है।

पुराणोंमें शिव-तत्त्व

वैदिक कालकी सात्त्विक अग्निकी आराधना क्रमशः रक्तकी आराधनामें परिणत हो गयी। अश्वमेध, गोमेध तथा नरमेध आदि हिंसायुक्त यज्ञोंसे विक्षुब्ध होकर बौद्ध तथा जैन-धर्मोंने बड़ा आन्दोलन किया। हिंसाकाण्ड बन्द हुआ और उसके साथ ही अग्निकी प्राचीन आराधना भी उड़ गयी; परन्तु अग्निके स्थानमें अग्निकी नाशक पर साथ ही रक्षकशक्तिका द्योतक चिह्न अर्थात् लिङ्ग (Symbol) रह गया। इसी लिङ्ग अर्थात् चिह्नको 'शिव-लिङ्ग' का नाम दिया गया, क्योंकि संहारकारी, परन्तु साथ ही कल्याणकारी, शक्तिको 'शिव' कहते हैं। यह ऐतिहासिकोंका मत है। इस मतके अनुसार पुराणकालके शिव-तत्त्वका स्वरूप केवल वैदिक कालकी अग्निकी आराधनाका एक अवशिष्ट लिङ्ग (चिह्न) मात्र है, परन्तु स्वयं पुराणोंको यह मत मान्य नहीं है। पुराणोंके अनुसार शिव-तत्त्व निम्नप्रकार है।

पुराणोंके निजके मतानुसार शिव-लिङ्ग-पूजन, विश्वरूपी शिवका पार्थिव पूजन है। पृथिवीपर रहनेवालोंको केवल इसी अङ्गकी आराधनाका अधिकार है; वे शिवके पूरे स्वरूपकी आराधना नहीं कर सकते। स्वर्गमें शिवजीके सिरकी, पृथिवीपर शिव-लिङ्गकी तथा पातालमें उनके पैरोंकी पूजा की जाती है। इसका रहस्य यों है। हमारे सूर्यके आसपास बुध, शुक्र, पृथिवी, मंगल, गुरु, शनि, वरुण (Uranus), प्रजापति (Neptune) तथा प्लेटो—ये नवग्रह परिक्रमा करते हैं। इस समस्त सौर-सम्प्रदायको सौर-चक्र (Solar System) कहते हैं। आकाश-गंगा (Milky Way) में ऐसे सौर-चक्र लगभग ९ करोड़ हैं और हमारा सौर-चक्र उनमेंसे एक है। समस्त आकाशमें तारागणोंकी सबसे अधिक सृष्टि आकाश-गङ्गामें है। आकाश-गङ्गाके बाद नक्षत्र-चक्रका नम्बर आता है। इस

चक्रमें २७ नक्षत्र हैं। इन नक्षत्रोंके नाम चित्तकी किसी आकारविशेषमें कल्पनाके अनुसार दे दिये गये हैं। जैसे—
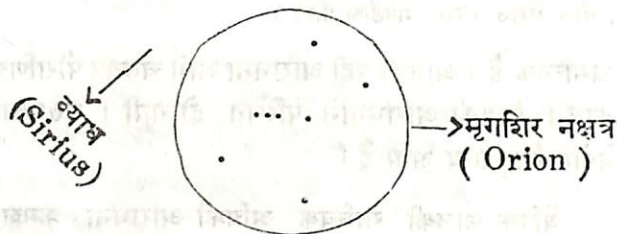
ऊपरकी आकृतिमें व्याध नामक ताराके पास मृगशिर नामक नक्षत्र है। इस नक्षत्रके तारागणोंकी कल्पना हिरनके शरीरसे की गयी है जिसमें बड़े चतुर्भुजके चार तारे हिरनके चार पैर हैं, इसीलिये उसे 'मृगशिर' कहते हैं। यदि नक्षत्र-चक्रके सब तारागणोंको २७ में न बाँटकर १२ विशेष भागोंमें बाँट दें तो इन्हीं तारागणोंकी १२ राशियाँ बन जाती हैं। इसी प्रकार आकाशके अन्य भागोंके तारागणोंके नाम उनके विशेष झुण्डोंमें किसी प्रकारकी भावनाद्वारा दिये गये हैं। अब यदि हम समस्त ब्रह्माण्डको पार करके ब्रह्माण्ड-कपाटके उस पार चले जायँ तो हमें तारागणोंका समस्त ब्रह्माण्ड मनुष्यके शरीरके आकारका दिखायी देगा; परन्तु मनुष्यका यह शरीराकार पुराणोंमें वर्णित शिवजीके स्वरूपके आकारका होगा। इस विश्वरूप शिवाकारमें हमारी पृथिवी उसी स्थानपर होगी जहाँ मनुष्य-शरीरमें 'लिङ्ग' अर्थात् शिश्नका स्थान है। बिना योगाभ्यासके हम विश्वरूपकी कल्पना नहीं कर सकते, इसलिये इस पृथिवीपर हमें केवल शिव-लिङ्ग-पूजनका ही अधिकार है।

सृष्टिके आदिमें अनादि-सिद्ध एक हिरण्यगर्भ था। यह हिरण्यगर्भ (golden egg) और कुछ नहीं, एक परम विशाल नीहारिका (nebula) था जो कि अपने अक्षपर बड़ी तेजीसे घूमता था। जिसप्रकार आतिशबाजीकी घूमती हुई अग्निकी चरखीमेंसे अग्निकी चिनगारियाँ टूट-टूटकर निकलती हैं और उसी चरखीके आसपास घूमने लगती हैं, उसी प्रकार उस घूमते हुए आदि हिरण्यगर्भ (nebula) मेंसे करोड़ों सूर्य टूट-टूटकर निकले और उसीके आसपास घूमने लगे और फिर इसी विधिसे प्रत्येक सूर्यसे और-और टुकड़े होकर उन-उनके सौर-चक्र (solar systems) बने। हमारा सौर-चक्र (अर्थात् सूर्यके साथ आठों ग्रहों आदि-का झुण्ड) शौरी (Hercules) नामक एक बहुत बड़े सूर्यकी ओर बड़ी तीव्र गतिसे भागा चला जा रहा है। हमारा सौर-चक्र शायद शौरीसे उत्पन्न हुआ है और इसीलिये अभी भी यह उसकी परिक्रमा करता है। हिरण्यगर्भसे समस्त तारागणोंके विकासका नाम ही शिवजीका ताण्डव नृत्य है।

पुराणोंके अर्थ-की समस्या

पुराणोंकी भाषा संस्कृत है। संस्कृतमें प्रत्येक शब्दके अनेक अर्थ होते हैं; इसलिये ठीक अर्थ क्या है, यह जानना बहुत कठिन हो जाता है। अनुभवकी कसौटीके बिना ठीक अर्थ जानना कठिन क्या, असम्भव-सा हो जाता है। बहुसंख्यक पौराणिक आख्यानोंके तीन प्रधान अर्थ किये जा सकते हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। उदाहरणद्वारा यह सरलतासे स्पष्ट किया जा सकता है। गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्या थी। आश्रममें गौतमकी अनुपस्थितिमें एक बार इन्द्रने अहल्यासे व्यभिचार किया। आश्रममें आनेपर गौतमने अहल्याको शाप दिया कि 'जा तू पत्थरकी हो जा। जब श्रीरामचन्द्रका राज्य आयेगा तब उनके चरणोंकी धूलिका स्पर्श पाकर तू फिर स्त्री हो जायगी।' इन्द्रको शाप दिया कि 'तेरे शरीरमें सहस्र भग हो जायँ।' इन्द्रके प्रार्थना करनेपर गौतमने कहा कि 'अच्छा तेरे सहस्र भगोंके स्थानमें सहस्र नेत्र हो जायँगे।' ब्रह्मपुराणमें वर्णित अहल्याके आख्यानका यह सीधा-सादा आधिभौतिक अर्थ है। इस अर्थमें यह मानना पड़ता है कि अस्थि-मांसकी अहल्या सचमुच पत्थरकी हो गयी और श्री-रामचन्द्रके चरणोंकी धूलिका स्पर्श पाकर यह पत्थर फिरसे अस्थि-मांसवाली नारी बन गया। शापके शब्दोंकी अद्भुत शक्तिसे इन्द्रके शरीरभरमें एक हजार भग हो गये जिनके स्थानमें आगे चलकर नेत्र निकल आये। सम्भव है कि वर्त्तमान विज्ञान इन बातोंकी सचाईको किसी दिन अक्षरशः सिद्ध कर दे। इस सम्बन्धमें तत्त्वोंके रूपान्तरवाला सिद्धान्त (transmutation of elements), डा० जगदीश-चन्द्र बोसका कृत्रिम नेत्र (artificial retina) वाला सिद्धान्त, जीवन-तत्त्व (protoplasm) की अद्भुत रूप-धारणशक्ति (power of adaptation) तथा ध्वनियों-द्वारा रासायनिक प्रतिक्रियावाला सिद्धान्त विशेष विचारणीय है।

आधिदैविक अर्थमें, प्रकृतिके नित्यके अथवा किसी विशेष कालके, स्वाभाविक कृत्योंका वर्णन पाया जाता है। गौतम नामका एक किसान था। उसकी भूमिका नाम अहल्या था, क्योंकि उसपर हल नहीं चलाया गया था।

एक बार इन्द्र अर्थात् बादलोंने अहल्या-भूमिपर इतनी वर्षा की कि उसकी उपजाऊ मिट्टी सब बह गयी और नीचेसे बड़े-बड़े पत्थर निकल आये। उपजाऊ अहल्या पत्थरकी हो गयी। कुछ समयके बाद वर्षा बन्द हो गयी और इन्द्र अर्थात् बादलोंके टुकड़े हो गये, जिससे उनके बीच-बीचमेंसे नीला आकाश अनेकों जगहसे दीख पड़ने लगा। इन बादलोंके बीच-बीचके आकाशरूपी छिद्रोंमेंसे रात्रिको नेत्ररूपी तारे दीख पड़ने लगे। जब रामराज्य आया तब खेतीकी उन्नति हुई। नृपतिने घूम-घूमकर देशकी उन्नति की। अपने पैरके इशारेसे उन्होंने मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि अमुक-अमुक ऊसर भूमिके पत्थर हटाकर और उसपर मिट्टी आदि डालकर भूमि उपजाऊ की जाय। पत्थरकी अहल्या फिरसे उपजाऊ अहल्या बन गयी।

आध्यात्मिक अर्थके अनुसार मनोविज्ञानशास्त्र (Psychology) के किसी स्वाभाविक रहस्यका वर्णन आता है। गौतम जीवात्माका नाम है। बुद्धिका नाम अहल्या है। इन्द्ररूपी चित्तकी अनेक शङ्काओं (अर्थात् छिद्र) रूपी चञ्चलतासे बुद्धि मूढ़ हो जाती है अर्थात् बुद्धिपर पत्थर पड़ जाते हैं। ज्ञानद्वारा चित्तकी शंकाएँ दूर होते ही बुद्धि फिरसे 'स्थित' हो जाती है जिससे राम-राज्यरूपी शान्तिकी प्राप्ति होती है। आध्यात्मिक अर्थ वाच्यार्थ नहीं है, वरं यह लक्ष्यार्थके समान है जिसमें तुलनाओंकी प्रधानता रहती है।

'पुराणोंमें शिव-तत्त्व' नामक उपर्युक्त वर्णनमें शिव-स्वरूपके पौराणिक मतका जो वर्णन है, वह आधिदैविक अर्थमें है। शिवजीने अपनी जटामें गङ्गाजीको बाँध लिया—इसका आधिभौतिक अर्थ यही है कि कैलासपर रहनेवाले प्रत्यक्ष शरीरधारी शिवजीने अपने बालोंकी जटामें उतनी बड़ी पानीकी नदीको यथार्थमें बाँध लिया। महाराज-की विचित्र सृष्टिमें ऐसा होना भी असम्भव नहीं है। प्रभु अपनी अद्भुत क्रीड़ा इसप्रकारसे भी कर सकते हैं। यह विषय अत्यन्त गम्भीर है, जो योगशास्त्रके सिद्धान्तोंसे सम्बन्ध रखता है और इन सिद्धान्तोंकी तुलनात्मक विवेचना वर्तमान वैज्ञानिक आविष्कारोंसे बहुत कुछ की जा सकती है। यह एक दूसरा विषय ही हो जाता है। आधिदैविक अर्थमें उपर्युक्त बातका केवल यही मतलब है कि शिवस्वरूपी विश्वरूपमें शिवजीके मस्तकके ऊपर करोड़ों सौर-चक्र (solar-systems) वाली आकाश-गङ्गा (Milky Way) स्थित है।

मनुष्य-देहमें शिव-तत्त्व।

प्राणि-शास्त्र (Biology) के अनुसार जीवन-तत्त्व (protoplasm) की दो प्रधान क्रियाएँ हैं–उत्पादक क्रिया (anabolism) तथा संहारक क्रिया (ketabolism)। बिना संहारक क्रियाके उत्पादक क्रिया-में कोई तत्त्व नहीं। जीवनकी सबसे आवश्यक संहारक क्रियाको उत्सर्ग-क्रिया (Respiration) कहते हैं। उत्सर्गके द्वारा शरीरके प्रत्येक जीव-कोषाणु (cell) का मल प्रतिक्षण बाहर फेंक दिया जाता है। यदि यह क्रिया एक क्षणके लिये भी बन्द हो जाय तो उसी क्षण जीवनका अन्त हो जायगा। पसीना निकलना, मूत्र बनना तथा श्वास लेना आदि सब इसी क्रियाके फल हैं। संसारका कोई भी प्राणी, चाहे वह वनस्पति हो, पशु हो अथवा मनुष्य हो, इसी संहारकारी क्रियासे जीवित है। कोई जीवधारी जीवित है अथवा मृतक, यह जाननेके लिये उसके जीवनका यही अन्तिम चिह्न देखना पड़ता है कि उसमें उत्सर्ग-क्रिया हो रही है या नहीं। गेहूँके दानेको यदि आप हाथमें लेकर उसकी परीक्षा करें तो आपको उसमें कोई भी चिह्न ऐसा नहीं दीख पड़ेगा जिससे आप उसे जीवित कह सकें; परन्तु फिर भी वह जीवित है। कारण कि बोनेसे उसमें उग आनेकी शक्ति है। यदि आप गेहूँके दानेको अग्निपर भून लें तो वह बोनेसे नहीं उग सकता। गेहूँके दानेके अन्दर एक बड़ी महत्त्वपूर्ण क्रिया हो रही है, जिसे अणुओंके बीचवाली उत्सर्ग-क्रिया (intra-molecular respiration) कहते हैं। संहारवाली यह क्रिया गेहूँके अन्दर बरसों होती रहती है। गेहूँको भूननेसे उसकी यह क्रिया नष्ट हो जाती है। प्राणियोंमें इस अनिवार्य सर्वव्यापी क्रियाके अनेक बाह्य स्वरूप हैं। मनुष्य-देहमें इस उत्सर्ग-क्रियाके ग्यारह स्वरूप हैं—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा। उपर्युक्त दसों वायु और जीवात्मा—इन्हीं ग्यारहको एकादश रुद्र कहते हैं। मनुष्य-देहके अन्दर भिन्न-भिन्न स्थानोंमें उपर्युक्त दसों वायु रहती हैं और शरीरके भिन्न-भिन्न स्थानोंकी उत्सर्ग-क्रियाकी हेतु हैं। जीवात्मा (consciousness) भी उत्सर्ग-क्रियाका प्रधान हेतु है। इनके अभावमें उत्सर्ग-क्रिया नष्ट हो जाती है और जीवनका अन्त हो जाता है, इसीलिये इन्हें रुद्र अर्थात् भयानक कहते हैं। 'रुद्र' का अर्थ रोना भी है। अपने अभावद्वारा

शरीरको नष्ट करके ये उस मनुष्यके सम्बन्धियोंको रुलाती हैं, इस कारणसे भी इन्हें 'रुद्र' कह सकते हैं। मनुष्य-देहके शिव-तत्त्व ये एकादश रुद्र ही हैं; परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे इन सबकी क्रियाओंका स्वरूप एक ही है, जिसे अंग्रेजीमें केटाबोलिज़्म (ketabolism) कहते हैं।

मन्त्र-योगमें शिव-तत्त्व।

देवनागरी वर्णमालामें ३३ व्यञ्जन हैं—क्, ख्, ग्, घ्, ङ्—च्, छ्, ज्, झ्, ञ्—ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्—त्, थ्, द्, ध्, न्—प्, फ्, ब्, भ्, म्—य्, र्, ल्, व्—श्, ष्, स् और ह्। मन्त्र-शास्त्रमें इन ३३ वर्णोंको ३३ देवताओं अर्थात् शक्तियोंके बीज-मन्त्र कहते हैं। इन तत्त्वोंका विकास जिस क्रमसे हुआ है वह क्रम माहेश्वर सूत्रोंके अनुसार है, अर्थात् ह् य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् और स्। 'हं' आकाशका बीज है, 'यं' वायुका बीज है, 'वं' जलका बीज है, 'रं' अग्निका बीज है और 'लं' पृथिवीका बीज है। आकाशसे वायु, वायुसे जल, जलसे अग्नि तथा अग्निसे पृथिवीका विकास हुआ है। इसीलिये माहेश्वर सूत्रोंमें इन वर्णोंका क्रम ह् य् व् र् ल् ऐसा दिया हुआ है। विकासका यह क्रम वेदान्तके भूत-विकास-क्रमसे मिलता है; अन्तर केवल इतना ही है कि वेदान्तमें वायुसे अग्निकी और फिर अग्निसे जलकी उत्पत्ति मानी है, परन्तु 'माहेश्वर' मतके अनुसार वायुसे जल और फिर जलसे अग्निका विकास होता है। विकासका यह क्रम उसी प्रकार निश्चित है जिसप्रकार एक नगरमें मोहल्ले और मकानोंका क्रम निश्चित है, इसीलिये माहेश्वर सूत्रके वर्णोंको देवनागरी अर्थात् शक्तियोंका नगर कहते हैं। व्याकरणकी दृष्टिसे वर्णोंके इस क्रमका और सूत्रोंके अन्तके अमुक-अमुक ही 'इतों' का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। व्याकरणका उद्देश्य इन सूत्रोंसे केवल 'प्रत्याहार' बनानेका है, परन्तु शिवके डमरूसे निकले हुए ये माहेश्वर सूत्र व्याकरणकी मौरूसी (hereditary) सम्पत्ति नहीं है।

ध्वनियोंद्वारा रासायनिक प्रतिक्रिया की जा सकती है; परन्तु इस ओर अभी अधिक खोज नहीं हुई है। न्यूथ (Newth) ने पारेके कम्पाउण्डपर होनेवाली इसप्रकारकी क्रियाका एक उदाहरण दिया है, जिसे सायंसकी ए० बी० सी० डी० पढ़नेवाले देख सकते हैं। तत्त्वाणुओंमें सदैव ध्वनियाँ होती रहती हैं; परन्तु इन्हें मानवी कान नहीं सुन सकते थे। डाक्टर रामन्‌ने इन्हें सुननेकी विधि खोज निकाली है। ज्ञात होता है कि शिवके डमरूसे माहेश्वर सूत्रोंकी उत्पत्तिका रहस्य विशेष ध्वनियोंद्वारा भिन्न-भिन्न रासायनिक अणुओंका विकास (evolution) ही है। मेण्डेलिफ़ (Mendelejiff) ने अणुओं (atoms) के विकासका क्रम अपने क्रम-विकास-चक्र (periodic classification) में दिया है। यह चक्र अभी भी काट-छाँटकी अवस्थामें है। सम्भव है, किसी दिन यह सिद्ध हो जाय कि तत्त्वाणुओंकी संख्या उतनी ही है जितनी देवनागरीके वर्णोंकी और उनमेंसे प्रत्येक तत्त्वाणुका विकास वर्णोंकी अमुक-अमुक ध्वनिसे सम्बन्ध रखता है।

'रं' बीज अग्नि अर्थात् शिवका है। 'वेदोंमें शिव-तत्त्व' वाले प्रकरणमें यह बतलाया जा चुका है कि वैदिक शिव-तत्त्वका स्वरूप अग्नि ही है। अग्नि तीन प्रकारकी है—यह बात 'शषसर्' नामक तेरहवें माहेश्वर सूत्रसे विदित होती है जिसका इत् 'र्' है। 'र्' वर्ण ही एक ऐसा अक्षर है जिसके तीन विकार होते हैं—रेफ़ (ꣴ)–जो वर्णोंके ऊपर आता है, (्र)–जो वर्णोंके पश्चिममें आता है और (‸)–जो वर्णोंके नीचे आता है; जैसे आर्य, चक्र तथा ट्‸क। वैज्ञानिक दृष्टिसे भी दीपककी लौ (ज्योति) के तीन हिस्से होते हैं (three zones of flame)—

ꣴ ——> शकार शक्ति।
्र ——> षकार शक्ति।
‸ ——> सकार शक्ति।
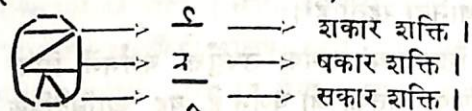
भिन्न-भिन्न शक्तियोंसे युक्त भिन्न-भिन्न तत्त्वाणुओंके, ध्वनियोंद्वारा, विकासका क्रम चौदह माहेश्वर सूत्रोंमें बतलाया गया है। यही सब शक्तियाँ मनुष्य-देहमें भिन्न-भिन्न स्थानोंमें स्थित हैं और योगकी विशेष प्रकारकी क्रियाओंद्वारा इन शक्तियोंको चैतन्य करके इनसे काम लिया जा सकता है। योगका षट्-चक्र-वेध इस विषयसे सम्बन्ध रखता है, इस विषयका वर्णन इस लेखसे सम्बन्ध नहीं रखता।

यद्यपि मनुष्य-देहकी उपर्युक्त उत्सर्ग-क्रिया शरीरके प्रत्येक जीव-कोषाणुमें होती रहती है, तथापि वह विशेष प्रकारसे उत्पादक संस्थानोंसे सम्बन्ध रखती है। मनुष्य-देहके अवयव स्त्री तथा पुरुष दोनोंमें अपने-अपने कर्त्तव्योंके अनुसार तीन प्रधान भागोंमें बाँटे जा सकते हैं—

(१) ज्ञान-तन्तु-संस्थान (Nervous System and sense-organs)—इन अङ्गोंका प्रधान कर्त्तव्य सञ्चालन-क्रिया (Directive force) है। यह 'ब्रह्मा' का कार्य है और मोटी दृष्टिसे कण्ठसे ऊपरका यही हिस्सा है। यह 'रं' बीजकी शकार शक्ति है।

(२) पोषक-संस्थान (Veinous System, Arterious System and Digestive System)—मोटी दृष्टिसे ये अङ्ग कण्ठ और नाभिके बीचके हिस्से हैं। इनका प्रधान कार्य पोषण करना (Protective force) है। यह 'विष्णु' का कार्य है। यह 'रं' बीजकी षकार शक्ति है।

(३) उत्पादक-संस्थान (Reproductive System)–मोटी दृष्टिसे ये अङ्ग नाभिसे नीचेके हैं। इनका प्रधान कार्य उत्पन्न करना है; परन्तु उत्पन्न करनेवाली क्रियामें शरीरसे वीर्य आदिका नाश होता है, इसलिये फलतः शारीरिक दृष्टिसे यह नाशक क्रिया (Destructive force) है। यह 'शिव' का कार्य है। यह 'रं' बीजकी असली सकार शक्ति है। इस शक्तिका स्थान नाभिके नीचे 'रुद्र-ग्रन्थि' (Pyro-plexus) में है; परन्तु यह गुप्तरूपसे गुदद्वारमें रहती है और इडा-मार्गद्वारा मस्तिष्कमें चढ़ती रहती है। इसे मेधस्-शक्ति भी कहते हैं। जो इस शक्तिको विद्याध्ययन आदिद्वारा मस्तिष्कमें व्यय करते हैं वही सच्चे ऊर्ध्वरेता हैं। यह शक्ति पिङ्गला-मार्गद्वारा नीचे उतरती है। इस उतरती हुई शक्तिको व्यायाम आदिद्वारा बीचमें ही व्यय कर डालना सच्चे ऊर्ध्वरेताका दूसरा प्रधान कर्त्तव्य है। जो ऊपर और बीचमें इस शक्तिको उपर्युक्त प्रकारसे व्यय नहीं करते उनकी वह शक्ति अधोरेतसद्वारा शिश्नके मार्गसे वीर्यके रूपमें निकल जाती है। योगशास्त्रके अनुसार उपर्युक्त शक्तिका शरीरमें ठीक व्यय ही शिवकी आधिदैविक आराधना है।

अब केवल यह देखना बाकी रह गया है कि शिवकी सबसे ऊँची (आध्यात्मिक) आराधना क्या है ? यह अत्यन्त गुप्त रहस्य है कि बिना शङ्कर-भजनके मनुष्यको परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इस रहस्यको समझनेके लिये तनिक शङ्करजीका ध्यान कीजिये। शिवजी बर्फसे ढके हुए कैलाश-पर्वतपर नङ्गे रहते हैं। शरीरपर मुर्दोंकी भस्म रगड़ते हैं। गलेमें तथा हाथोंकी कलाईमें भयानक जिन्दे सर्प लपेटे हैं। गलेमें मनुष्यके मुण्डोंकी भयानक माला पहने हैं। देवताओंके कहनेपर समुद्र-भरका हलाहल जहर आपने कण्ठमें रोककर रख लिया है। भङ्ग, धतूरा इत्यादि आपके भोजन हैं। भूत, प्रेत, पिशाच और डाकिनी आदि अत्यन्त भयङ्कर और अण्ट-सण्ट स्वरूपवाले आपके सेवक और नौकर हैं। आपके अन्दर भी न जाने क्या-क्या खुराफात भरे हैं; बेचारे दक्षप्रजापतिपर जरा-सा क्रोध आ गया कि आपके अन्दरसे 'ज्वर' निकल पड़े।

> औरो एक गुपुत मत, सबहिं कहौं कर जोरि।
> संकर-भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि॥

इसप्रकार शिवजी संसारभरकी भयानक चीजोंसे सराबोर हैं, पर वे स्वयं पूर्ण निर्भय तथा परमशान्त हैं। एक शब्दमें कहा जाय तो शिवजी निर्भय-पदके साक्षात् अवतार हैं। आप 'भय' को भी भयभीत कर देते हैं, पर स्वयं निर्भीकताके अवतार हैं। अभय-पदका दूसरा नाम ही शिव है। बिना इस 'अभय-पद' को प्राप्त किये मनुष्य परमात्माको नहीं पा सकता। इस अभय-पदको प्राप्त करना ही शङ्कर-भजन है, जिसके बिना ईश्वरमें सच्ची भक्ति यानी प्रीति नहीं हो सकती। जिसे यह पूरा विश्वास है कि ईश्वर हमारा रक्षक है और सर्वव्यापी है, अर्थात् सब जगह ओत-प्रोत भरा हुआ है उसे डर किस बातका ? जबतक पूरे निर्भय नहीं हुए तबतक परमात्मामें पूरा, अटूट विश्वास (Living faith) कैसा ? एक ओर चिन्तित और भयभीत हृदय और दूसरी ओर परमात्मामें विश्वास—ये दो विरोधी बातें हैं, जहाँ एक है वहाँ दूसरा हो ही नहीं सकता !!!

आज प्रतिदिनके काममें आनेवाला हिन्दू-धर्म नखसे सिखतक डरकी बातोंसे भरपूर है। हम शिवजीकी सच्ची पूजा भूल गये हैं।

अपने दिलपर हाथ रखकर पूछिये कि क्या आप इस बातमें विश्वास करते हैं कि 'ईश्वर सर्वरक्षक और दयालु है' ? यदि आपको ऐसा विश्वास है तो भय आपको छू भी नहीं सकता; यदि आपमें भय है तो आपमें 'ईश्वरमें विश्वास' की कमी है। तब आप प्रतिदिन विश्वासमें सच्चे बननेका प्रयत्न कीजिये। अभय-पद प्राप्त होते ही आप तन्मय और मस्त हो जायँगे। आपकी सारी चिन्ताएँ दूर हो जायँगी।

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

—पतञ्जलिके इस सूत्रके अनुसार महात्माओंने प्रेमकी

शक्ति और प्रभुमें पूर्ण विश्वासके बलसे सर्पों और सिंहोंके संग स्वतन्त्ररूपसे बाल-क्रीडाएँ की हैं और हिंसक जीव अपनी हिंसाका भाव भूल गये हैं। हम उन्हीं महात्माओंकी सन्तान हैं।

निर्भयताके लिये सत्य, प्रेम और प्रभुमें पूर्ण विश्वास— ये तीन बातें परम आवश्यक हैं। इतनी निर्भयता होते ही, शङ्करका इसप्रकार भजन करते ही, आप ईश्वरकी इस सुन्दर सृष्टिमें, उसकी जरा-जरा-सी बातोंमें रचना-चातुर्य देखकर और बुद्धिको ज्ञानके पीछेकी अज्ञानमयी अवस्था (learned ignorance) में पाकर मस्त (inspired) हो जायँगे। आपको प्रभुकी भक्ति अनेक प्रकारसे प्राप्त हो जायगी और आप इस जीवनमें ही प्रभुको पा लेंगे।

शिवस्वरूपी परमात्मा हमें अभय-पद दें !

शिव-तत्त्व

(लेखक—डा० श्रीदुर्गाशङ्करजी नागर, सम्पादक 'कल्पवृक्ष')

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः॥

हे प्रभो ! हमारा कल्याण किसमें है और अकल्याण किसमें है, हम इसका निर्णय करनेमें असमर्थ हैं। इस तत्त्वको समझनेका सामर्थ्य हममें नहीं है। आप क्या हैं, कैसे हैं, यह भी हम नहीं जानते। वेद-शास्त्रोंमें आपके स्वरूपका, जिन गुण, कर्म, स्वभावका वर्णन है, वह भी नहीं जानते। आप जो कुछ भी हों, जैसे भी हों, आपको प्रणाम है।

अर्वाचीन कालमें बाह्य ज्ञानका विस्तार अत्यधिक हुआ है। हम अपने पूर्वजोंकी अपेक्षा व्यवहार-ज्ञानमें बहुत आगे बढ़े हुए हैं। आजका शिक्षित युवक-समाज, बाह्य जगत् एवं उसके तत्त्वसे, प्राचीन वृद्धजनोंकी अपेक्षा अधिक जानकार है। भूगोलशास्त्र, भूस्तरशास्त्र, खनिज-शास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जीवनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायन-शास्त्र, यान्त्रिकशास्त्र आदि-आदि अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता है। प्रकृतिके रहस्योंका उद्घाटन कर इसने प्रकृतिपर शासन प्राप्त कर लिया है। परन्तु प्रकृति अनात्म है, परिवर्तनशील है और अस्थिर है। अतः इन पदार्थ-विद्याओंके पारङ्गत विद्वान् और अर्वाचीन नवीन शोधक शिव-तत्त्वसे—आत्म-तत्त्वसे बिल्कुल अपरिचित हैं। अनन्त विद्याविद् होते हुए भी शिव-तत्त्वका साक्षात्कार न होनेसे शोक-मोहादि सांसारिक प्रपञ्चोंसे कदापि मुक्त नहीं हो सकते और सच्चे सुख एवं शान्तिका अनुभव नहीं प्राप्त कर सकते।

शास्त्रोंमें तीन प्रकारकी विद्या कही गयी है—अधिभूत-विद्या (भूगोल, खगोल, वनस्पति आदि व्यावहारिक विज्ञान), अधिदैव (अदृष्ट सत्ताका बोध करानेवाला शास्त्र, अन्तर और बाह्य जगत्का सम्बन्ध करानेवाला धर्मज्ञान) और अध्यात्मविद्या (केवल अन्तर्वस्तुको स्पर्श करानेवाला शास्त्र) है। 'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्'—अध्यात्मविद्याका परमतत्त्व शिवतत्त्व अथवा परमात्मतत्त्व है, जिसको उपनिषदोंमें सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इस तत्त्वको—नैसर्गिक आनन्दमय स्वरूपविज्ञानको प्रकट करनेका नाम ही 'शिव-तत्त्व' है।

जिस मनुष्यने इस शिव-तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया है, उसके लिये संसारमें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं रह जाती जिसे प्राप्त करनेकी उसे इच्छा हो। सच्चा सुख हमारे भीतर ही है। शिव-समाधि लगानेसे ही अमृत-तत्त्वका भीतरी पता लगता है। जो मनुष्य निजस्वरूपमें, शिवस्वरूपमें वास करता है वही स्वतन्त्र है। ऐ दुःख और क्लेशोंसे पीड़ित आत्माओ ! उठो !! जाग्रत् होओ !!! और अपने आत्म-स्वरूपको पहचानो। परमात्माके साथ अपना अभेद अनुभव करो। सदाशिवके साथ अपनी आत्माकी एकताका अनुभव करो। दरिद्रता, दुर्बलता, शोक-सन्तापमें कबतक सड़ते रहोगे ? वृथा दुःख और चिन्तामें क्यों फँसे हो ? 'शिव-तत्त्व' का साक्षात् करो। तुम्हारी अन्तरात्मामें तुम्हें सुख-शान्ति और सम्पूर्ण आनन्दका अनुभव होगा।

यह शिव-तत्त्व-विचार सब वेदोंका, शास्त्रोंका, वेदान्त और प्राचीन एवं अर्वाचीन तत्त्वज्ञोंकी शिक्षाका अनुपम

उपदेश है। वेदोंमें चार महावाक्य कहे हैं—'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि', 'अयमात्मा ब्रह्म', 'प्रज्ञानं ब्रह्म'—इन सबका अर्थ शिव-तत्त्व है।

इन सबका सारांश यही है कि अपनी आत्माको जानो और फिर तुम जो कुछ चाहोगे वही तुम्हें प्राप्त होगा।

सामान्य जीवोंके दो नेत्र होते हैं। बाह्य दृष्टिका द्वार हमारे दोनों नेत्र हैं। इन्द्रियजन्य ज्ञानसे मनकी प्रज्ञा जाग्रत होती है। बाह्य जगत्को सत्य मानना, सर्वत्र भेदमय पदार्थ दृष्टिगोचर होना, इसे इन्द्रियग्राह्य ज्ञान अथवा लौकिक ज्ञान कहते हैं। इन्हीं दो दृष्टियोंमें संसार रहता है। तीसरी शिव-प्रज्ञाकी दृष्टि जिसे 'अन्तःप्रज्ञा' कहते हैं, वह शास्त्राध्ययन और अनुभव-बलसे बड़े प्रयत्नसे प्रकट होती है।

हृदयमें धड़कनेवाला, नेत्रोंसे देखनेवाला, वृक्ष और पुष्पोंमें हँसनेवाला, नाड़ीमें चलनेवाला, मेघोंसे बरसनेवाला, विद्युत्में चमकनेवाला, पर्वत और वनमें शान्त रहनेवाला—यह सब आत्मा ही है। ऐ अल्पज्ञ जीव! अपने सामर्थ्यका अनुभव कर!!

वह एक ही चैतन्य, सत्परब्रह्म शिव ही सत्य है। सारे विश्वमें और विश्वके सब पदार्थोंमें अन्तर्यामीरूपसे वास करता है और अखिल विश्वका सञ्चालन करता है। सर्वाधार है, सर्वनियामक है, सर्वप्रकाशक है। मन, वाणी, बुद्धि एवं तर्कसे अगम्य है। वह साक्षी चेतन शिव तुम्हारे अन्तःकरणमें प्रकाशित हो रहा है। यही तुम्हारा सत्य-स्वरूप अमृत आनन्द है। राग-द्वेषोंसे मुक्त हो। शुद्ध संस्कारको जाग्रत कर अन्तःकरणको निर्मल बनाओ। देहाभिमानसे रहित हो। इस शिव-तत्त्वको, अपने आत्माको सबमें देखो।

तुम्हारे मनकी इतनी शुद्धि, इतनी प्रबलता हो जाय कि उसमें अकल्याणकारी सङ्कल्प कदापि न उठें। सब संकल्प सत्य हों, शुभ हों, सुन्दर हों। कोई भी अशिव न हो। 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'—तेरा मन सर्वथा शिवसङ्कल्प करनेवाला हो जाय। तुम्हारा मन सत्य-सङ्कल्पसे पूर्ण हो। 'यदन्तरं तद् बाह्यं, यद् बाह्यं तदन्तरम्'—जो तुम्हारे अन्दर हो, वही बाहर हो और जो बाहर हो, वही अन्दर हो।

शिव-तत्त्वका साक्षात् करनेहीसे शुद्ध आनन्दका अनुभव होता है। श्रीशङ्कराचार्यजीके 'आत्मषट्क'में, इस विशेष जीवनका, जब जीव शिवरूप होकर जीवनरसका—चिरस्थायी आनन्दस्वरूपका अनुभव करता है, उसकी उच्चतम स्थितिपर आरूढ़ होनेका यथार्थ भाव प्रकट किया गया है—

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
न मृत्युर्न शङ्का न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता च जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

'मेरे अन्दर न द्वेष है, न राग है; न लोभ है, न मोह है; न मद है, न मत्सरका भाव है; और न मेरे अन्दर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ही हैं। मैं चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ, शिव हूँ। मेरे अन्दर न पुण्य है, न पाप है; न सुख है, न दुःख है; न तीर्थ है, न वेद है, न यज्ञ है। मैं भोजन नहीं हूँ, न भोज्य ही हूँ और भोक्ता भी नहीं हूँ। मैं तो सच्चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ। मैं शिव हूँ। मेरी न तो मृत्यु होती है और न मुझे किसी प्रकारकी शङ्का ही है; मुझमें जातिका भेद नहीं है, मेरा पिता नहीं है, माता नहीं है, जन्म नहीं है, बन्धु नहीं है, मित्र नहीं है, गुरु-शिष्य भी नहीं है, मैं चिदानन्दस्वरूप शिव हूँ। मैं शिव हूँ।'

जो संसारसे सब प्रकारसे निराश हो चुके हों, किसी भी प्रकारसे शान्ति प्राप्त न कर सके हों, जिनको जीवन भाररूप प्रतीत हो रहा हो और जो चारों ओरसे दुःख, क्लेश और शोककी लपटोंसे जल रहे हों, उन सब आत्माओंके लिये शान्ति प्राप्त करनेका उपाय शिव-तत्त्वका साक्षात्कार करना है। शान्ति प्राप्त करनेका इससे उत्तम उपाय नहीं है।

अपूर्व साधन

जन-समाज और व्यावहारिक कार्योंसे समय निकालकर प्रातःकाल तथा सायङ्काल अथवा रात्रिको सोते समय किसी शुद्ध, पवित्र, एकान्त स्थानमें अथवा अपनी कोठरीमें किवाड़ बन्द करके अभ्यासके लिये बैठ जाओ, जिससे कि कोई तुम्हारे अभ्यासमें विघ्न न डाल सके। निश्चिन्त होकर सुखासनसे बैठ जाओ, प्रत्येक शरीरके प्रत्येक स्नायु और ज्ञानतन्तुको शिथिल और निश्चेष्ट करो। शान्तिसे नासिकासे दस-बीस दीर्घ श्वास-प्रश्वास करो, जिससे मन और शरीर शान्त हों। मनको जगत्‌के विचारोंसे हटाकर अन्तर्मुखी करो। पाँच-चार मिनट 'ॐ' का जप करो। इस जपकी ध्वनिके आन्दोलनोंसे तुम्हारे आस-पासका वातावरण परम शुद्ध हो जायगा। इसको शिव-कवच कहते हैं। शान्तिमें तल्लीन हो जाओ और एकाग्र-चित्त होकर निम्न शिव-भावनाओंका श्रद्धा, प्रेम और शान्तिसे मन, हृदय और आत्मामें प्रवेश कराओ। यह सब साधनोंमें श्रेष्ठ साधन है और सारे दुःखों और दोषोंसे मुक्त होनेका सर्वोत्तम उपाय है। मनुष्य जिस वस्तुकी भावना करता है—मनमें रचना करता है उसका मन उस वस्तुके आकारवाला बन जाता है और अन्तःकरणमें दीर्घकालतक जिस वस्तुकी स्थिति रहती है वह वही हो जाता है। यह मानस शास्त्रका अचूक सिद्धान्त है। इसलिये जो व्यक्ति अपने जीवनको सुख, शान्ति एवं अखण्ड आनन्दमय बनाना चाहता हो, वह इस साधनका अभ्यास चार-छः मास करके देखे, उसे अलौकिक आनन्द और शान्ति प्राप्त होगी।

ॐ आत्मतत्त्वाय शोधयामि स्वाहा।
ॐ विद्यातत्त्वाय शोधयामि स्वाहा।
ॐ शिवतत्त्वाय शोधयामि स्वाहा।

—इसप्रकार मन्त्र बोलकर तीन आचमन करके जल-प्राशन करनेसे शरीर, मन और आत्मा स्थिर होता है। इसका भावार्थ यह है कि मेरा जो जीवात्म-तत्त्व (Energy) है उसे मैं शुद्ध करता हूँ और वह अन्तर्यामी तत्त्व मुझे प्रेरणा करे। ज्ञानका तत्त्व (Energy) है, वह मुझे सम्पूर्ण ब्रह्मविद्या प्रदानकर अन्तरमें प्रकाश करे और उत्तरोत्तर मेरा कल्याण करनेवाला, प्रगति करनेवाला जो शिव-तत्त्व है वह मुझे सन्मार्ग प्रदर्शित करे।

मैं अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोषोंसे अतीत तत्त्व हूँ। मैंने प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और पञ्चमहाभूतोंपर विजय प्राप्त की है। मैं पञ्चकोषातीत हो गया हूँ। मैं हृदयाकाशमें ज्योतिर्मय शिवरूपके दर्शन कर रहा हूँ, मुझे उस महान् प्रकाशका दिव्य तेज स्पर्श कर रहा है। इस प्रकाशके आगे सूर्य, अग्नि और विद्युत्‌का प्रकाश फीका पड़ रहा है। मैं अब स्वस्वरूपस्थितिमें लय हो रहा हूँ।

मैं सच्चिदानन्दघन, शान्त, आनन्दमय आत्मा हूँ। मेरी द्वैतभावना दूर हो गयी है। जीव और शिवका एकीकरण हो गया है। अहङ्कार तो, न मालूम, कहाँ विलीन हो गया है। शास्त्र जिसे 'शिव-तत्त्व' कहते हैं वह मेरा मूलस्वरूप ही है।

मैं नित्य-शुद्ध-मुक्त स्वयंप्रकाशरूप हूँ, प्रत्येक जीवमें, प्रत्येक पदार्थमें सौन्दर्य, बल, सामर्थ्य, तेज तथा आनन्द—यह सब मेरी सत्ता, मेरा ही स्वरूप एवं मेरे ही अनन्त ऐश्वर्य-का विकास है। इस जगत्‌में कहीं दुःखका लेशमात्र भी नहीं है। मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ; मैं सदा अखण्ड, आनन्दमय हूँ; मैं सकल ऐश्वर्यसम्पन्न, सर्वदा सर्वशक्तिमान्, परब्रह्मस्वरूप हूँ; मैं नित्य, निर्विकार, निरामय; अजर, अमर तथा पूर्ण निर्भय हूँ।

पिता शैवः शैवी तदनु जननी बन्धुसुहृदः
सुताः शैवाः शैवं कुलमिति कुलं शैवमिति च।
मतिः शैवे शास्त्रे शिवचरणसेवानुसरणं
मुखे शैवी वाणी भवतु भगवन्मे शिव ! शिवा॥

'पिता हमारा शैव हो, उसी तरह हमारी माता, बन्धु और मित्र—वे भी शैव हों। लड़के शैव हों, कुल शैव हो। शिवशास्त्रमें हमारी सदा मति हो और शिवके चरणकी सेवामें हमारा सदा मन लगा रहे और मुखमें सदा शिव-शिव-शिवकी कल्याण करनेवाली शिव-वाणी निकलती रहे।

अन्तर्ज्योतिर्बहिर्ज्योतिः प्रत्यग्ज्योतिः परात्परः।
ज्योतिर्ज्योतिः स्वयंज्योतिरात्मज्योतिः शिवोऽस्म्यहम्॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

राजपूतानेका गणगौरपूजन

(लेखक—पं० श्रीझावरमल्लजी शर्मा)

वादिदेव भगवान् शङ्करकी अर्द्धाङ्गिनी भगवती पार्वतीकी पति-भक्ति अतुलनीय है। सावित्री और सीताजीने भी उमा—पार्वतीका ही पदानुसरण करना अपना ध्येय माना। वस्तुतः सनातन-सभ्यतामें जो कल्याणमय दाम्पत्य-प्रेम है, उसकी मन्दाकिनी-का स्रोत 'शङ्कर-पार्वती' से ही आरम्भ होता है।

गर्वोन्मत्त दक्षद्वारा अपने पति सदाशिवका अपमान सती सहन न कर सकी और उसने—'तजन्म धिग् यन्महतामवद्यकृत्'—उस जन्मको धिक्कार है, जिससे अपने आराध्यका अपमान होता है, इस भावनासे अपने शरीरको ही त्याग दिया, जो दक्षसे उत्पन्न हुआ था। सतीके आत्म-त्यागके इस उज्ज्वल उदाहरणपर ही सती-प्रथाका जन्म हुआ और धर्मप्राण हिन्दू-जातिने इसको इतना अपनाया कि ब्राह्मणसे लेकर शूद्रपर्यन्त कोई भी ऐसा अभागा हिन्दू-परिवार न होगा जिसके कुलमें पतिपर आत्मोत्सर्ग करनेवाली सती न हुई हो और जिसकी पूजा उस कुलमें न होती हो।

सतीने ही पर्वतराज हिमालयके गृहमें जन्म धारणकर 'पार्वती' नाम पाया था। कविकुलगुरु कालिदासने अपनी अमर कृति कुमारसम्भवमें पार्वतीजीकी एकान्त-भक्तिका पवित्र और सुन्दर चित्र बड़ी निपुणताके साथ अङ्कित किया है।

देवर्षि नारदसे पार्वती सुन चुकी थी कि प्रेमबलसे एक दिन वह महादेवकी अर्द्धाङ्गिनी बनेगी, मृत्युको भी जीतने-वाले भूतनाथके हृदयको जीत लेनेमें समर्थ होगी। पार्वती-ने अपने हृदयमें इस भावनाको अङ्कित कर लिया। इसके अनन्तर समय पाकर शङ्करने समाधि लगायी और पार्वतीने पिताकी आज्ञासे शङ्करको पतिरूपमें पानेकी कामनासे सेवा आरम्भ की।

पार्वतीकी सेवामें कामगन्धवर्जित विशुद्ध सेवा-भाव था और उस सेवामें पार्वतीजीने अपने-आपको सब तरहसे लगा दिया। दिनके बाद दिन, पक्ष, महीना, वर्ष और यों ही एक लम्बा समय बीत गया; किन्तु चन्द्रशेखरकी पलकें नहीं खुलीं। अपनी समाधिमें ही वे संलग्न थे। उसी अवधि-में वहाँ इन्द्रादि देवोंकी योजनासे समाधि भङ्ग करनेके लिये वसन्त और रतिसहित मदनका आगमन हुआ। यावच्छक्य-बलोदय अपना प्रभाव दिखाकर मदन भी परास्त किंवा हतमनोरथ ही नहीं, प्रत्युत शङ्करके क्रोधानलसे भस्म हो गया।

पश्चात् पार्वतीने और भी कठिन तपस्याद्वारा भगवान् शङ्करकी कृपा लाभ करनेका निश्चय किया। महाकवि कालिदास कहते हैं—

> उ मेति मात्रा तपसो निषिद्धा
> पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम।

'माताके द्वारा बार-बार तपका निषेध किये जानेपर ही पार्वतीका उमा नाम हुआ।' अस्तु, पार्वतीने अपने सङ्कल्पानु-सार दृढ़ताके साथ एकनिष्ठ होकर तप आरम्भ कर दिया। क्योंकि उसने समझ लिया कि तपस्वीके हृदयको जीतनेके लिये तपस्याकी आवश्यकता है। गौरीकी कठिन तपस्याने सबको आश्चर्यचकित—स्तम्भित कर दिया। तपस्या कभी व्यर्थ नहीं जाती। उमाकी तपस्या सफल हुई। आशुतोष भगवान् शङ्करका आसन हिला और उन्होंने प्रसन्न होकर पार्वतीकी आकाङ्क्षा पूर्ण की। भगवती उमा—पार्वतीको अपनी देहार्द्धभागिनी बनाया।

हिन्दू-शास्त्रोंमें सदाशिवकी जो सनातन-मूर्ति बतायी गयी है, उसमें शिव ध्यानमग्न—समाधि लगाये हुए आत्म-चिन्तन कर रहे हैं। शङ्करका आत्मचिन्तन क्या है, अपने रचे हुए विश्वका निरीक्षण। क्योंकि वे विश्वरूप हैं और विश्व उनका रूप है। अतएव विश्वका निरीक्षण शङ्करका आत्म-चिन्तन है। उनकी सहायक शक्ति पार्वती आत्मचिन्तन-निरत सदाशिवकी सेवामें सावधान विराजमान है। शिवकी आज्ञासे उसने ही विश्वको प्रकृतिरूपसे रचा है। शङ्करका पत्नीप्रेम आदर्श है, उसी प्रकार उमाकी पतिभक्ति आदर्श है।

दाम्पत्य-प्रेमके उच्च आदर्शकी शिक्षा देनेके लिये ही साम्ब शिवकी पूजाका विधान विशेषरूपसे किया गया है।

भारतवर्षके अन्य प्रान्तोंके सम्बन्धमें तो मैं कह नहीं सकता, किन्तु राजस्थानमें सोलहों आना उक्त विधानकी कार्यमें परिणति ईश्वर-गौरी (ईशर-गणगौर) के महोत्सवके रूप-में देखी जाती है। राजस्थानमें यह गौरी-पूजा सौभाग्यवती स्त्रियों और कन्याओंका खास त्यौहार है। यहाँ कन्याओंके लिये विवाह होते ही प्रथम चैत्रमासमें एक-दो दिन नहीं, पूरे पन्द्रह दिनतक 'गणगौरि' पूजा करना अवश्य पालनीय कर्त्तव्य समझा जाता है। होलिका-दहनके पश्चात् चैत्रारम्भ होते ही तालाबसे मिट्टी लाकर ईश्वर और गौरीकी मूर्तियाँ बनायी जाती हैं, जिनको सौभाग्यकी कामनासे विवाहिता और योग्य वर पानेकी इच्छासे कुमारी कन्याएँ श्रद्धाके साथ प्रतिदिन लगातार पूजती हैं। पूजाके लिये हरी दूर्वा, पुष्प और जल लानेको अपनी-अपनी टोली बनाकर लड़कियाँ प्रातःकाल सुमधुर गीत गाती हुई निकलती हैं। प्रत्येक विवाहिता लड़की अपने 'व्यावलेवर्ष' (विवाहवाले वर्ष) की गणगौरि अपनी छः, आठ या दस संख्यक अन्य अविवाहिता साथिनोंको वरणपूर्वक साथ लेकर पूजती है। सौभाग्यवती उस विवाहिता लड़कीको मिलाकर उस तुङ्गकी लड़कियोंकी संख्या सात, नौ या ग्यारह-तक हो सकती है। यह क्रम चैत्रकृष्णा १ से आरम्भ कर शुक्ला ३ तक रहता है। चैत्रशुक्ला ३ को प्रातःकालकी पूजाके बाद मध्याह्नोत्तर (शुभ वार हुआ तो उसी दिन, नहीं तो दूसरे दिन) तालाबमें और जहाँ तालाब न हो वहाँ कूएँमें, ससमारोह मङ्गल-गानके साथ प्रतिमा-विसर्जन किया जाता है। 'गण-गौरि' की विदा अथवा प्रतिमा-विसर्जनका दृश्य देखने ही योग्य होता है। इसमें लड़कियाँ और स्त्रियाँ सभी सुसज्जित वस्त्र और आभूषण-धारणपूर्वक भाग लेती हैं। उनकी सम्मिलित कण्ठध्वनिके सामयिक गीत बड़े सुहावने और चित्ताकर्षक होते हैं। 'ईश्वर-गौरि' की वे ही मूर्तियाँ जलमें पधरायी जाती हैं जो पन्द्रह दिनतक पूजनेके लिये मृत्तिकाकी बनायी जाती हैं। राजघरानोंकी ओरसे 'ईश्वर और गौरी' की जो सवारी निकलती है वह यथास्थान सरोवर या तालाबके किनारे पहुँचकर 'राग-रंग' होनेके बाद राजप्रासादको लौट आती है। ये मूर्तियाँ (ईश्वर और गौरीकी) कदमें आठ-दश वर्षके बालक-बालिकाके समान बनी हुई होती हैं। गौरीको अधिक-से-अधिक सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित किया जाता है। ईश्वरको ढाल-तलवार धारण कराकर वीर-वेश बना दिया जाता है। 'ईश्वर-गौरी' अथवा राजस्थानी भाषामें 'गण-गौरि' की सवारीमें राज्यके राजा किंवा ठिकानों-के सरदार अपने दरबारियों, राजकीय अधिकारियों और पूरे लवाजमेके साथ सम्मिलित होते हैं। गाजे-बाजेके कारण क्षत्रिय नरेशोंकी राजधानियोंमें 'गण-गौरों' की सवारीके दृश्यका बनाव विशेष दर्शनीय बन जाता है। स्थानीय लोगोंके साथ आस-पासके स्थानोंकी जनता भी बड़ी संख्यामें एकत्र हो जाया करती है। क्षत्रिय नरेशोंकी राजधानियोंमें बूँदीके अतिरिक्त और सभी जगह 'गण-गौरि' की सवारी उत्साहके साथ निकाली जाती है। कितने ही स्थानोंमें मेले लगते हैं और उत्सव तीन-चार दिनोंतक मनाया जाता है। घुड़दौड़, ऊँटोंकी दौड़ और पट्टेबाजीके मर्दाने खेल भी होते हैं। सच तो यह है कि अमीर-गरीब सबके यहाँ इस उत्सवकी चहल-पहल रहती है। राजस्थानमें केवल बूँदी ही ऐसी जगह है जहाँ राव बुधसिंहके भाई जोधसिंहके 'गण-गौरि'के दिन तालाबमें नौकासहित डूब जानेके कारण 'हाडैने ले डूबी गणगौर' की कहावत चलनेके साथ इस उत्सवका मनाया जाना बन्द हो गया। हिन्दुओंके गौरवस्थल मेवाड़—उदयपुरके 'गण-गौरि' महोत्सवका सुन्दर वर्णन कर्नल जेम्स टॉडने अपने 'राजस्थानके इतिहास'में किया है।

स्त्रियोंके 'गण-गौरि' त्यौहारके गीत भी राजस्थानमें अपनी विशेषता रखते हैं। उनमें भगवती गौरीकी प्रार्थना-के साथ समयोचित वासन्तिक प्रेमानुराग भी कूट-कूटकर भरा हुआ है। गीतोंमें गौरीके 'हिमाचलकन्या' होनेका स्पष्ट वर्णन है। गौरीकी प्रार्थनाका नमूना देखिये—

गौरि ए गौरि माता! खोलू किंवाड़ी,
बाहर ऊबी थारी पूजनवाळी।
पूजो ए पूजाओ बाई, काईजी! माँगो?
अन्न माँगाँ, धन माँगाँ, लाछ माँगाँ, लछमी॥
जलहर जामी बाबळ माँगाँ रातादेई माई।
कान कुँवरसो वीरो माँगाँ राईसी भौजाई
ऊँट चढ्यो बहणेई माँगाँ चुड़लावाळी बहणल॥
इत्यादि।

× × ×

गौरि! तिहारेड़ा देसमें जी! चोखीसी मेंहदी होय,
सो म्हे ल्यायी थी पूजतां जी! सो म्हारे अविचळ होय।

परम शिवभक्ता महारानी अहल्याबाई होल्कर

श्रीसिद्धेश्वर, शोलापुर
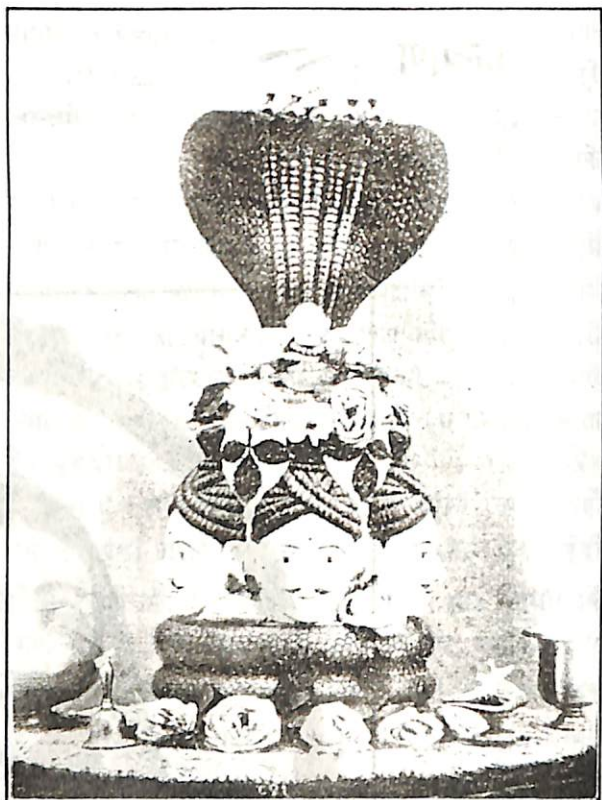
श्रृंगारमूर्ति शोलापुर
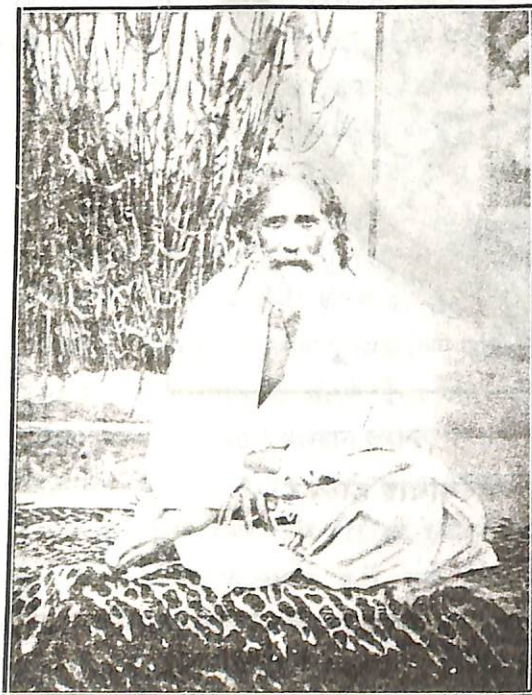
शिवभक्त स्वामी श्रीगंभीरनाथजी, गोरखनाथधाम गोरखपुर

शिवरामकिंकर स्वामी श्रीयोगत्रयानन्दजी महाराज

गौरि ! तिहारेड़ा देसमें जी ! चोखो-सो काजळ होय,
चोखो-सो गहणू होय चोखो-सो कपड़ो होय,
सो म्हे पहरयो थो पूजताँ जी ! सो म्हारे अविचळ होय ।
इत्यादि ।

× × ×

इस 'गण-गौरि' महोत्सवको बहुत-से लोग केवल राजस्थानका लौकिक त्यौहार समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस उत्सवके मनानेका प्रकार लौकिकतासे खाली नहीं है, परन्तु इसके मूलमें शास्त्रीयताकी छाप लगी हुई है। निर्णयसिन्धुका वचन है—

चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुताम् ।
सम्पूज्य दोलोत्सवं कुर्यात् ॥

देवीपुराणमें लिखा है—

तृतीयायां यजेद्देवीं शङ्करेण समन्विताम् ।
कुङ्कुमागरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः ॥
स्रग्गन्धधूपदीपैश्च नमनेन विशेषतः ।
आन्दोलयेत्ततो वत्सं शिवोमातुष्टये सदा ॥

इन वचनोंका अर्थ स्पष्ट है। चैत्रशुक्ला तृतीया 'गण-गौरि' पूजाका निर्दिष्ट दिन है। उसमें सौभाग्य-तृतीयाका महत्त्व भी समाया हुआ है।

अर्द्धनारीश्वर

(लेखक—श्री एरच जे० एस० तारापुरवाला, बी० ए०, पी-एच० डी०, बार-एट-ला)

भगवान् शिवके अनेक रूपोंमें उनका अर्धनारीश्वर रूप ही सम्भवतः सर्वोत्तम है। अवश्य ही, पहले पहल देखनेमें वह भद्दा, बेतुका एवं अस्वाभाविक-सा नजर आता है; परन्तु अधिक ध्यानपूर्वक देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है, मानों इसके अन्दर मानव-जातिका एक महान् आदर्श छिपा हुआ है। इलोराके एक गुहा-मन्दिरमें भगवान् शिवके इस अर्धनारीश्वररूपकी एक बड़ी भव्य मूर्ति है। उसे देखनेसे यह पता लगता है कि इसके निर्माणकर्ताने उस आध्यात्मिक भावको भलीभाँति हृदयङ्गम किया था, जो इसके पीछे छिपा हुआ है। मूर्तिके अन्दर नर एवं नारी-रूपका अच्छा सम्मिश्रण हुआ है, उसके दोनों अङ्गोंका इस सुन्दरताके साथ मेल हुआ है कि वह देखते ही बनता है। इस मूर्तिके दर्शनमात्रसे मैं इतना अधिक प्रभावित हुआ कि मेरा मस्तिष्क इस अर्धनारीश्वररूपके आध्यात्मिक रहस्य-की खोजमें लग गया।

सत्, चित् और आनन्द-ईश्वरके इन तीन रूपोंमें आनन्दरूप, जिसका दूसरा नाम साम्यावस्था अथवा अक्षुब्ध भाव है, भगवान् शिवका है। मनुष्य भी ईश्वरसे ही उत्पन्न—उसीका अंश है, अतः उसके अन्दर भी ये तीनों रूप विद्यमान हैं। इनमेंसे स्थूल शरीर उसका सदंश है तथा बाह्य चेतना चिदंश है और जब ये दोनों मिलकर परमात्माके स्वरूपकी पूर्ण उपलब्धि कराते हैं तब जाकर उसके आनन्दांशकी अभिव्यक्ति होती है। इसप्रकार मनुष्यके अन्दर भी सत् और चित्के पूर्ण अविसंवादसे आनन्दकी उत्पत्ति होती है।

एक दूसरी ही दृष्टिसे विचार करनेपर यह समझमें आता है कि ईश्वरका सत्स्वरूप उनका मातृस्वरूप है और चित्स्वरूप पितृस्वरूप है। उनका तीसरा आनन्दरूप वह स्वरूप है जिसमें मातृभाव और पितृभाव दोनोंका पूर्णरूपेण सामञ्जस्य हो जाता है, अथवा यों कहिये कि शिव और शक्ति दोनों मिलकर अर्धनारीश्वररूपमें हमारे सामने आते हैं। उसीमें हमें सत् और चित् इन दो रूपोंके साथ-साथ उनके तीसरे आनन्दरूपके भी दर्शन होते हैं। बाइबलके सर्गसम्बन्धी अध्याय (Genesis) में लिखा है कि—'ईश्वरने मनुष्यके रूपमें अपनी ही प्रतिकृति बनायी, उन्होंने उसकी पुरुष और स्त्रीके रूपमें सृष्टि की।' (God created man in his own image, male and female created He them.) स्त्री और पुरुष दोनों ही ईश्वरकी प्रतिकृति हैं, स्त्री उनका सद्रूप है और पुरुष चिद्रूप, परन्तु 'आनन्द' के दर्शन तब होते हैं जब ये दोनों पूर्णतया मिलकर एक हो जाते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि इस पूर्ण एकताका स्वरूप

क्या है ? साधारणतया लोग शिवको 'योगीश्वर' कहते हैं; परन्तु वास्तवमें वे गृहस्थोंके ईश्वर हैं, विवाहित दम्पतीके उपास्य देवता हैं। विवाहित स्त्रियाँ जो उन्हें पूजती हैं, इसमें अवश्य ही कुछ तत्त्व है। बात यह है कि शिवजी स्त्री और पुरुषकी पूर्ण एकताकी अभिव्यक्ति हैं। इसी कारण वे उन्हें पूजती हैं। हमें किसी भी वस्तुको, उसके गुण-दोषका विचार करते हुए उसके यथार्थ स्वरूपमें देखना चाहिये और उसी रूपमें उसके महत्त्वको समझना चाहिये। हमें परस्परविरोधी द्वन्द्वोंकी विषमताको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि यही तो वास्तविक योग है। कहा भी है—'समत्वं योग उच्यते' अर्थात् समताका नाम ही 'योग' है। स्थूल जगत्की सारी विषमताओंसे घिरे रहनेपर भी अपनी चित्तवृत्तिको शान्त एवं स्थिर बनाये रखना ही योगका स्वरूप है। भगवान् शिव अपने पारिवारिक सम्बन्धोंसे हमें इसी योगकी शिक्षा देते हैं। देखिये न, वाह्यदृष्टिसे आपका परिवार विषमताका जीता-जागता नमूना है। सबके जुदे-जुदे रास्ते हैं। किसीका किसीके साथ मेल नहीं। आप बैलपर चढ़ते हैं तो भगवती भवानी सिंहवाहिनी हैं, दोनोंका कैसा जोड़ मिला है ? आप भुजङ्गभूषण हैं तो श्रीस्वामि-कार्तिकेयको मोरकी सवारी पसन्द है और उधर लम्बोदर गणेशजी महाराजको चूहेपर चढ़नेमें ही सुभीता सूझता है। आपने गङ्गाजीको सिरपर चढ़ा रक्खा है जिससे पार्वतीजीको दिन-रात सौतियाडाह हुआ करता होगा। इसप्रकार आपकी गृहस्थी क्या है, मानों झंझटकी पिटारी है; मानसिक शान्ति और पारिवारिक सुखके लिये कैसा सुन्दर साज जुटा है ? परन्तु भगवान् शिव तो प्रेम और शान्तिके अथाह समुद्र एवं सच्चे योगी ठहरे। उनके मङ्गलमय शासनमें सभी प्राणी अपना स्वाभाविक वैर-भाव भुलाकर आपसमें तथा संसारके अन्य सब जीवोंके साथ पूर्ण शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। स्वयं उनका तो किसीके साथ द्वेष है नहीं, वे तो आनन्दरूप ही हैं; जो कोई उनके सम्पर्कमें आता है वह भी आनन्दरूप बन जाता है। उनके चारों ओर आनन्दके ही परमाणु फैले रहते हैं। यही महेशका सबसे महान् गुण है और इसीलिये आप 'शिव' (कल्याणरूप) एवं 'शङ्कर' (आनन्ददाता) कहलाते हैं। सारे विरोधोंका सामञ्जस्य कर उस शान्तिकी उपलब्धि करनी चाहिये, जो बुद्धिसे परेकी वस्तु है, यही अमूल्य शिक्षा हमें शिवजीके चरित्रसे मिलती है।

हम क्षुद्र जीवोंको गृहस्थाश्रममें रहकर ही भगवान् शिवकी इस शिक्षाको अमलमें लाना चाहिये। हममेंसे प्रत्येकको चाहिये कि वह पार्वती-जैसी योग्य पत्नीका वरण कर स्वामि-कार्तिकेय और गणेशजी-जैसी विरुद्ध स्वभाववाली सन्ततिका प्रेमपूर्वक लालन-पालन करे। अपनी धर्मपत्नीके साथ पूर्ण एकात्मताका अनुभव कर, उसकी आत्मामें आत्मा मिलाकर ही मनुष्य आनन्दरूप शिवकी उपलब्धि कर सकता है। वास्तविक योगका स्वरूप यही है, जिसकी सिद्धि संसारमें रहकर ही हो सकती है। यह बिल्कुल सीधी-सी बात है कि किसी जङ्गलमें अथवा हिमालयकी चोटीपर रहकर कोई भी समताका व्यवहार कर सकता है; परन्तु अपने दैनिक जीवनमें, नाना प्रकारकी झंझटोंका सामना करते हुए भी जो अक्षुब्ध रह सकता है वही शिवका सच्चा भक्त है।

यही सच्ची समता, जो सत् और चित्के पूर्ण संयोगसे उत्पन्न होती है, अर्धनारीश्वरके विग्रहमें अभिव्यक्त हुई है। इसमें पुरुष प्रकृतिके संयोगद्वारा माया (द्वन्द्वमय जगत्) के आवरणको भेदकर आनन्दरूप पूर्णताको प्राप्त कर लेता है। तब सारे विरोध मिट जाते हैं और मनुष्य उस स्थितिमें पहुँच जाता है, जहाँ न पुरुष है, न प्रकृति; न स्त्री है, न पुरुष—केवल एक अद्वितीय वस्तु—'एकमेवाद्वितीयम्' ही शेष रह जाता है। वही अनन्त आनन्दकी मूर्ति अर्धनारीश्वर शिव हैं।

शिव-कृपा

(लेखक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी, प्रोफेसर, रसायन-शास्त्र, डी० ए० वी० कालेज, देहरादून)

यह घटना बत्तीस-तैंतीस वर्ष पूर्वकी है। उस समय मैं चार-पाँच वर्षका बालक था। इस घटनाका जो हिस्सा मैंने स्वयं देखा वह मुझे खूब याद है और इसकी चर्चा भी मेरे घर अक्सर होती है। इससे पूरी बातोंका मुझे पता है।

हमारा घर मउरानीपुर, जिला झाँसीमें है। मेरे पिताजी (श्रीकुन्नाईंलालजी पुरवार) उस समय हाथरस, जिला अलीगढ़में आढ़तका कारबार करते थे। वहीं हमारे वंशके एक वृद्ध महानुभाव श्रीहीरालालजी भी कुछ रोज़गार करते थे। वे दूरके रिश्तेसे मेरे पिताजीके चाचा लगते थे। उनके स्त्री या कोई सन्तान न थी। जब वे बुढ़ापेके कारण दुर्बल होने लगे तो मेरे पिताजी उनको मउरानीपुर लिवा लाये और घरमें उनके रहनेका प्रबन्ध करके फिर हाथरस चले गये।

उन दिनों घरमें मेरी माताजी, मेरे एक बड़े भाई, एक बड़ी बहिन और मेरी दादीजी—ये चार प्राणी थे, मेरा जन्म बादमें हुआ। वृद्ध महानुभाव अब हमारे घरमें रहने लगे। सब लोग उन्हें बड़े बब्बाजी कहते थे।

ये बड़े ही भक्त पुरुष थे। प्रतिदिन सबेरे उठकर स्नानादिके बाद पाठ-पूजनमें ही दोपहरके बारह बजा देते। फिर भोजन करके थोड़ा विश्राम करते और मुहल्लेके लोगों-से भक्तिसम्बन्धी चर्चा करते। शामको चार-पाँच बजेसे फिर राततक भजन आदिमें लगे रहते। फिर भोजन कर लेट जाते। वे अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, फिर भी नगरके दो-एक वृद्ध पण्डित अक्सर उनसे बातें करने आते थे। बड़े बब्बाजी सदा एक माला लिये रहते थे और जभी अवकाश मिलता, उसे फेरते रहते थे।

उनके सत्य, दया, अहिंसा, मिष्टभाषण और अक्रोध आदि गुणोंसे प्रभावित होकर घरके सब लोग उनका बड़ा आदर करने लगे। कुछ दिनोंमें वे निस्सङ्कोच घरवालोंकी भाँति ही रहने लगे। उन्होंने अपने सञ्चित धनमेंसे कुछ गहने आदि तो (पिताजीके बहुत रोकनेपर भी) मेरी माता-जीको दे दिये और शेष धन लगाकर एक बड़ा सुन्दर शिवजीका मन्दिर बनवाया और उसके साथ एक दो-मंजिला मकान पुजारीजीके रहनेके लिये बनवा दिया। फिर तो वे अक्सर मन्दिरमें ही रहकर भजन करने लगे।

इसके कुछ समय (चार-पाँच वर्ष) बाद बब्बाजी दृष्टि-हीन हो गये। इन्हें पाठ आदि सब छोड़ना पड़ा। अब भी ये यथापूर्व प्रातः स्नानादि करते और हम तीन बालकोंमें-से किसीको अपनी लाठीका एक सिरा पकड़ाकर आगे करते और दूसरा सिरा स्वयं पकड़कर शिवालयको जाते और वहीं बैठे-बैठे भक्तिपूर्वक भजन-स्तुति आदि करते रहते। भोजनके समय हमारी माँ उन्हें बुलवा भेजतीं। तब वे आकर भोजन करते। शामको भी प्रायः शिवालयमें ही चले जाते।

इन्हीं दिनों हमारी दादीजीकी भी दृष्टि जाती रही। दादीजी बड़ा दुःख मानतीं और कभी-कभी हमलोगोंपर बहुत अप्रसन्न हो जाती थीं। पर बड़े बब्बाजी कभी अप्रसन्न नहीं होते। मुझे पूर्णतया स्मरण है कि मैं अक्सर उनकी माला खेलनेको छीन ले जाता था और उसे कभी तोड़ देता, कभी खो देता। पर वे मुझे कभी नहीं धमकाते थे। उनको एकमात्र यही दुःख था कि वे दृष्टिहीन होनेके कारण न तो पाठादि कर सकते और न शिव-दर्शन ही।

इसप्रकार दो-तीन वर्ष बीत गये। एक बार भादोंके महीनेमें जल-विहारका मेला था। बब्बाजी सबेरेसे ही शिवालयमें गये हुए थे। दोपहरके बाद तीन-चार घण्टे हो गये। पर हमलोग मेला देखनेमें उनको घर लिवा लाना ही भूल गये। जब मैं घर आया तो देखा कि मेरी माँ रसोईमें बैठी हैं, उन्होंने अबतक भोजन नहीं किया है, क्योंकि उनका नियम था कि बड़े बब्बाजीको भोजन करानेके बाद ही वे भोजन करती थीं। माताजीने मुझे धमकाया और बब्बा-जीको जल्दी लिवा लानेको कहा। मैं उनको शिवालयसे लिवा ला रहा था कि रास्तेमें एक विशालकाय पुरुष मिले। देखनेमें वे मेलेमें आये हुए देहातके लोगोंमेंसे जान पड़ते थे। बड़ी सफेद पगड़ी, काली दाढ़ी, जिसमें कुछ बाल सफेद भी थे, और बड़ी-बड़ी आँखें थीं। मैं उन्हें देखकर डर गया।

उन्होंने मुझसे पूछा—'बूढ़े को कहाँ लिये जा रहे हो?' मैं डरके कारण चुप रहा। मेरे बब्बाजीने कहा—'यह मेरा नाती है, मुझे घर लिवाये जा रहा है।' नये सज्जनने फिर पूछा—'यह लाठी क्यों पकड़े है?' बब्बाजीने उत्तर दिया—'मुझे दिखायी नहीं देता।' उन्होंने फिर पूछा—'तुम कहाँ गये थे?' बब्बाजीने कहा—'शिवालयमें'। उन्होंने कुछ व्यङ्ग-हास करते हुए कहा—'जब तुम अन्धे हो तो तुमने शिवालयमें क्या देखा? वहाँ काहेको गये थे?'

बब्बाजीने तुरन्त कहा—'मैंने कुछ नहीं देखा—यह मेरा अभाग्य है, पर शिवजीने तो देख लिया कि मैं उनकी शरणमें आया हूँ।'

तब उस पुरुषने नरमीसे कहा—'आँखें दिखलाओ तो क्या रोग है?' मेरे बब्बाजीने यह पूछते हुए कि—'क्या तुम आँखोंके रोग जानते हो?' अपनी आँखें उन्हें दिखला दीं। इसप्रकार बात करते-करते हमलोग अपने घरके द्वारतक आ गये। वे दोनों द्वारके बाहर चबूतरेपर बैठ गये। उन सज्जनने कहा कि—'आँखें तो बननेलायक हैं' और बब्बाजीके पूछनेपर यह भी कहा कि वे आँखें बनाना जानते हैं। इसपर बब्बाजीने कहा कि बिना लड़के और बहूकी सलाहके मैं आँखें नहीं बनवा सकता। तब उन सज्जनने कहा कि ठीक है। मैं तो इस समय तुम्हारी आँखोंमें दवा लगा दूँगा। दो दिन बाद आऊँगा, तब पट्टी खोलूँगा और जो तुम्हारे 'लड़का-बहू' की राय होगी तो आँखें बना दूँगा। बब्बाजी इसपर राजी हो गये। मुझसे आँख बाँधनेको कपड़ा मँगवाया और उनकी आँखमें कुछ लगाकर पट्टी बाँध दी। फिर वे सज्जन चले गये।

बब्बाजीने रोटी खाते समय यह वृत्तान्त मेरी माताजीसे कहा। पिताजी भी उन दिनों घरपर ही थे। सबकी सलाह हुई कि आँखें बनवा लेना चाहिये। मेरी दादीजी भी आँखें बनवानेको बड़ी उत्सुकतासे तैयार हुईं। मेरी माँने कई दिनके लिये आटा पीस रक्खा, क्योंकि आँख बननेके बाद घरमें कई दिन चक्की चलाना उचित नहीं होता। मेरे पिताजीने भी बाजारसे चीनी, घी, मेवा आदि सब पदार्थ जो आँखें बनवानेके बाद प्रयोगमें आते हैं, लाकर रख लिये।

उन सज्जनके बतलाये हुए दिन सबेरेसे ही उनकी प्रतीक्षा होने लगी। सब लोग घर ही रहे, पर कोई न आया। दूसरा दिन भी यों ही निकल गया। सन्ध्या-समय मेरे बब्बाजीसे न रहा गया, उन्होंने मेरी माँके सामने पट्टी उतारकर फेंक दी। पट्टी खोलते ही वे चिल्ला उठे—'बहूजी, बहूजी! मुझे खूब दिखायी पड़ता है।' मैं भी वहीं था, मुझे उठाकर बब्बाजीने गोदमें ले लिया। बार-बार मेरा मुँह चूमते थे। कहते थे कि 'तेरा मुँह तो देखा ही नहीं था।' उस समय बब्बाजीकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। वे बार-बार यही कहते थे 'मेरे शिवजी मेरी आँखें बना गये हैं।' मेरी माँकी और मेरी आँखोंमें भी उस समय आँसू आ गये।

दूसरे दिनसे ही बब्बाजी फिर अपने पाठादिमें पूर्ववत् लग गये और मरते समयतक उन्हें आँखका कोई कष्ट नहीं हुआ। उनकी पाठकी पुस्तकें अब भी हमारे घरमें हैं।

मेरे पिताजी और माताजी अब भी इस घटनाकी बात करते हैं। सबको, और विशेषकर मेरी माताजीको तो रोमाञ्च हो जाता है।
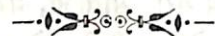
शिव-प्रार्थना

त्रिभिस्तापैरहं तप्तस्त्रिशीतैर्नाथ युग् भवान्।
अहमालिङ्गनीयस्ते उभयोस्तेन शान्तता॥१॥
चन्द्रमाः स्वर्णदी श्रीमान् कैलासो हिमसंहतिः।
अध्यात्मादित्रयैस्तापैर्युक्तस्य योग्यता प्रभो॥२॥
रावणादिवदीशान! नैव कर्तास्म्यहं शिव।
पुनः किमर्थं सा ते न कृपा स्यात्कृपणे मयि॥३॥
नरसिंहे तव कृपा जाता तेन च हे शिव।
वृन्दावने श्रीगोविन्दमित्रताऽजनि दुर्लभा॥४॥
पाणिनिर्व्याकृतौ विद्वान् तवैव सत्कृपाफलम्।
येन वेदमहाकूपारस्य स्यात्तीर्णता भुवि॥५॥

—बालचन्द्र शास्त्री, विद्यावाचस्पति

पार्वतीके तपकी सफलता

हरितालिका-व्रत

(लेखक—सैयद कासिम अली विशारद, साहित्यालङ्कार)

माचल-कन्या भगवती पार्वतीने भगवान् शिवको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये घोर तप किया। जिस स्थानमें पार्वती तप करती थीं, वह बड़ा ही भयानक और सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि हिंसक प्राणियोंसे पूर्ण था। वहाँ दिन-रात वर्फकी वर्षा-सी होती रहती थी। पार्वतीने वहाँ बारह वर्षतक नीचेकी ओर मुख करके केवल धूम्र-पान किया। चौंसठ वर्षतक केवल सूखे पत्ते खाकर रहीं। वैशाखकी गर्मीमें पञ्चाग्निका ताप किया और श्रावणकी अँधेरी रातें वर्षामें भीगते वितायीं। पुत्रीकी इसप्रकारकी कठोर तपस्या देखकर पिता हिमाचलको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने मुनि नारदजीकी सम्मतिसे भगवान् विष्णुके साथ उसका विवाह करना स्थिर किया। यह समाचार जब अनन्य-उपासिका पार्वतीजीने सुना तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे अपनी विश्वासपात्र सखियोंकी सलाहसे उनके साथ दूसरे घोर वनमें चली गयीं; और वहाँ अन्न-जलका सर्वथा त्याग कर उन्होंने शिवजीकी बालुकामयी मूर्ति बनाकर उनका पूजन किया और रात्रिको जप-कीर्तन करती हुई जागती रहीं, उस दिन भाद्र-शुक्लपक्षकी तृतीया तिथि थी और हस्त-नक्षत्र था। भगवान् शिवजी पार्वतीकी सच्ची अनन्यभक्तिसे, पूर्ण दृढ़ 'व्रत' से परमप्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हो गये और उन्हें पत्नीरूपमें ग्रहण करना स्वीकार किया। शिवजीके साथ पार्वतीका विवाह हो गया। पार्वतीका तप आज सफल हुआ।

एक दिन पार्वतीने शङ्करजीसे पूछा कि मैंने ऐसा कौन-सा कार्य किया था जिससे आपको स्वामीरूपमें प्राप्त करनेका मुझे सौभाग्य मिला। शिवजीने उपर्युक्त कथा सुनाकर कहा कि मैं इस तृतीया-व्रतसे बहुत ही प्रसन्न होता हूँ। जैसे तारागणमें चन्द्रमा, ग्रहोंमें सूर्य, वर्णोंमें ब्राह्मण, नदियोंमें गङ्गा, पुराणोंमें भारत, वेदोंमें सामवेद और इन्द्रियोंमें मन श्रेष्ठ है, उसी प्रकार व्रतोंमें यह व्रत श्रेष्ठ है। इस दिन तुम्हारा अनुकरण करके प्रत्येक स्त्रीको निर्जल, निराहार रहकर तुम्हारेसहित मेरी (शिव-पार्वतीकी) मूर्ति बनाकर पूजा करनी चाहिये। केलेके स्तम्भ लगाने चाहिये। बन्दनवार बाँधनी तथा सुन्दर मण्डप बनाना चाहिये और उसपर चँदवा तानकर रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पोंसे उसे सजाना चाहिये। चन्दन, अक्षत, पुष्प, दीप, धूप, नैवेद्य आदि नाना उपचारोंसे रातको चार पहरकी चार पूजा तथा भजन, स्तवन, गायन आदि करना चाहिये। गीत-वाद्यसहित मेरा गुण गाते हुए रातभर जागरण करना चाहिये। व्रत-कथा श्रवण करनी चाहिये। दूसरे दिन प्रातःकाल तीन बाँसकी टोकरियोंमें पका हुआ अन्न वस्त्रसहित ब्राह्मणको दान देकर पारण करना चाहिये। व्रतके पहले दिन भी संयमसे रहना चाहिये। इसप्रकार भक्तिपूर्वक व्रत करनेवाली स्त्री यहाँ विविध भोगोंको भोगकर अन्तमें सायुज्यमुक्तिको प्राप्त होती है। भाद्रशुक्ल तीजको हस्त-नक्षत्र न हो तो भी व्रत करना चाहिये। जो स्त्री उस दिन भोजन करती है वह सात जन्मोंतक वन्ध्या और विधवा होती है, दरिद्रता और पुत्र-शोकको प्राप्त होती है तथा अन्तमें उसे नरकोंमें जाना पड़ता है। इसलिये प्रत्येक सुख चाहनेवाली पतिव्रता स्त्रीको पार्वतीके दृढ़ व्रतकी स्मृति दिलानेवाले इस व्रतको अवश्य करना चाहिये।

श्मशान

(लेखक—पं० श्रीकन्हैयालालजी मिश्र 'प्रभाकर', विद्यालङ्कार, एम० आर० ए० एस०)

प्रभुका स्मारक सुन्दरतर है, नीरवताका है भण्डार; मोहोन्माद-विनाशक देता निर्वृतिका मङ्गल उपहार।
यद्यपि पुस्तक पास नहीं है, तदपि अहो! शिक्षक है श्रेष्ठ; वाणी-हीन यदपि है, जगको देता है सुन्दर उपदेश॥
विस्तृतिमें यद्यपि छोटा है, पर है स्फुट जीवन-इतिहास; करुणाका यह कलित भुवन है, आशुतोषका प्रिय आवास।
कण-कणमें स्मृतियाँ सोती हैं, स्मृतियोंमें आकुल अरमान; अरमानोंमें अकथ कहानी, भग्नहृदय, जीवन-निरवान॥
यहाँ खेलती है ज्ञानीके, ओठोंपर प्रेरक मुसकान; अज्ञानीका हृदय बेधती हूकभरी पीड़ा सुनसान।
यह श्मशान कितना सुन्दर है! कितना हाय! असुन्दर है; पावकसे भी दाहक निष्ठुर, हिमसे भी शीतलतर है॥
पापी जनके भी कर देता दुर्भावोंका है अवसान; इस गुण-गरिमाके ही कारण, मेरा प्रिय है महाश्मशान!

सेवक-स्वामि-सखा सिय-पीके

(लेखक—श्री 'दीन' रामायणीजी)

(१)

सेवक-स्वामि-सखा सिय-पीके। हितु निरवधि सब बिधि तुलसीके ॥

—श्रीरामचरितमानसकी इस चौपाईमें श्रीसीतापति रामचन्द्रजीके साथ भगवान् शङ्करके तीन सम्बन्ध प्रकट हो रहे हैं—शिवजी रामजीके सेवक हैं, स्वामी हैं और सखा भी हैं। परन्तु एक ही व्यक्तिमें इन तीनों प्रकारके सम्बन्धोंका योग कैसे बन सकता है, इसीपर यहाँ विचार करना है।

१–ऐश्वर्य-कोटिमें परात्पर ब्रह्मके अवतार होनेसे श्रीरघुनाथजीके शिवजी सेवक हैं। इसके प्रमाणमें स्वयं भगवान् शङ्करकी निष्ठा और कर्तव्यके उदाहरण श्रीरामचरितमानससे उद्धृत किये जा सकते हैं—

हृदयं बिचारत जात हर, केहि बिधि दरसन होइ।
गुपुतरूप अवतरेउ प्रभु, जानि गये सब कोइ ॥

सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥
जय सच्चिदानन्द जगपावन। अस कहि चले मनोज-नसावन ॥

रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिव नायउ माथ ॥

श्रीरघुनाथरूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा ॥
बन्दौं बालरूप सोइ रामू। सब बिधि सुलभ जपत जस नामू ॥
करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी। हरषि सुधासम गिरा उचारी ॥
कासी मरत जन्तु अवलोकी। जासु नामबल करौं बिसोकी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अन्तरजामी ॥

२–माधुर्य-कोटिमें 'नर इव चरित करत रघुराई,' 'जस काछिय तस चाहिय नाचा' के अनुसार परात्पर ब्रह्म राजपुत्र बनकर श्रीशिवजीको स्वामी भी मान रहे हैं। जैसे—

पूजि पारथिव नायउ माथा।
तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहिं माथ।
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। —इत्यादि।

३–नीति-कोटिमें उपासनादि-भेद तथा द्वेषकी निवृत्तिके लिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने अपनी ओरसे भगवान् शिवको सखाका पद भी प्रदान किया है, जिससे वैष्णव तथा शैव अपने इष्टदेवोंको समान तथा मित्ररूप समझकर परस्पर प्रीतिपूर्वक वर्तते हुए अपना परमार्थ सिद्ध करें। जैसे—

संकर प्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम, दास।
सो नर करे कलपभरि, घोर नरकमहँ बास ॥

कोउ नहिं सिव-समान प्रिय मोरे। अस परतीति तजहु जनि भोरे ॥
जेहिपर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि ॥

संकर-भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि।
सिव समान प्रिय मोहिं न दूजा। —इत्यादि।

इसी भावको सूचित करनेवाली एक आख्यायिका प्रसिद्ध है। जब मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने सेतुबन्धपर शिवलिङ्ग स्थापित किया और उसे रामेश्वरके नामसे प्रसिद्ध किया तब ऋषियोंने 'रामेश्वर' शब्दका 'रामश्चासौ, ईश्वरः, इसप्रकार समास करके राम और ईश्वर (महेश्वर) की समता सिद्ध की। तब श्रीरामचन्द्रजी बोले–नहीं, ऐसा नहीं; इसमें 'रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः' इसप्रकार षष्ठीतत्पुरुष समास है, अर्थात् ईश्वर (महेश्वर) रामके स्वामी हैं। तत्पश्चात् कहा जाता है कि शिवलिङ्गमेंसे ध्वनि निकली—'राम एव ईश्वरो यस्य सः' अर्थात् राम जिसके स्वामी हैं, इसप्रकार इस शब्दका समास करना चाहिये। यह वाणी सुनकर समस्त ऋषि दंग रह गये और श्रीरामजी मुस्कराने लगे।

इसी भावके अनुसार श्रीगोसाईंजी लिखते हैं–'सेवक-स्वामि-सखा सिय-पीके।' और साथ ही यह भी कहते हैं कि अपने लिये तो सब प्रकारसे 'निरवधि हितु' अर्थात् असीम कल्याण करनेवाले श्रीशिवजी महाराज हैं ही—'हितु निरवधि सब विधि तुलसीके।' यही लक्ष्य श्रीयाज्ञवल्क्यजीका है—

बिनु छल बिस्वनाथ-पद-नेहू। रामभगतकर लच्छन एहू ॥

(२)

(लेखक—श्रीमथुराप्रसादजी बी० ए०, रिटायर्ड रेवेन्यू कमिश्नर, बीकानेर स्टेट)

उपर्युक्त आधी चौपाई रामायणमें श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामजन्मसे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियोंकी वन्दना करते हुए श्रीशिवजीके सम्बन्धमें लिखी है।

साधारण दृष्टिसे जो व्यक्ति किसीका सेवक होता है वह उसीका सखा नहीं कहला सकता; और सखा यदि कह भी लें, तो भी उसे उसका स्वामी तो कदापि नहीं कह

सकते। परन्तु जब गोस्वामीजी-सरीखे श्रीरामभक्तकी लेखनी-से यह वाक्य निकला हुआ पाते हैं तब उसपर विशेष विचार करना आवश्यक हो जाता है और यह सम्बन्ध भी दो साधारण व्यक्तियोंका नहीं, बल्कि भगवान् राम तथा भगवान् शङ्करके बीच है। निश्चय ही यह वाक्य बड़ा रहस्यमय होना चाहिये।

इस आधी चौपाईका अर्थ तीन प्रकारसे करना आवश्यक प्रतीत होता है। एक तो इसका बिल्कुल साधारण अर्थ, जिससे यह शिकायत न की जा सके कि अजी! गोस्वामीजीने सीधी-सी बात लिखी थी, लोगोंने व्यर्थकी खींचतान करके तिलका ताड़ बना दिया। दूसरा अर्थ उन लोगोंकी दृष्टिको ध्यानमें रखकर लिखा जायगा जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव-को संसारका कर्त्ता, धर्त्ता और संहर्त्ता मानते हैं—इससे आगे बढ़कर नहीं सोचते। इन तीनोंमेंसे किसीको छोटा-बड़ा नहीं समझते—तीनोंको समान मानते हैं अथवा एक ही सर्वव्यापक परमेश्वरके ये तीन रूप समझते हैं। इसके बाद तीसरा अर्थ कुछ विस्तारपूर्वक वैष्णव-दृष्टिकोणसे किया जायगा।

पहला अर्थ

सेतुबन्धपर श्रीरामेश्वर-स्थापनके अवसरपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उसकी महिमाके सम्बन्धमें जो उद्गार निकाले उनसे सेवक, स्वामी और सखा—ये तीनों ही सम्बन्ध घटित होते हैं—

भगति मोरि तेहि संकर देहीं।

इस वचनसे शङ्करजीका सेवकत्व प्रकट होता है। जो प्रसन्न होकर श्रीरामजीकी भक्ति देते हैं वह स्वयं भी श्रीराम-के भक्त होने चाहिये। 'स्वामित्व' का सम्बन्ध इसीसे प्रकट है कि श्रीरामचन्द्रजीने शिवलिङ्गकी स्थापना कर उसकी विधिवत् पूजा की और सखा समझनेके लिये—

सिवसमान प्रिय मोहिं न दूजा।

तथा—

संकर-प्रिय मम द्रोही, सिव-द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलपभरि, घोर नरकमहँ बास॥

—ये वचन पर्याप्त हैं। इनमें दोनों देवोंकी घनिष्ठता अथवा एकता प्रतिपादित है और सेवक, स्वामी और सखा—इन तीनों भेदोंका समन्वय यही है कि श्रीशङ्करजी श्रीरामजीके सर्वस्व हैं।

दूसरा अर्थ

महाभारतमें शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मपितामह भगवान् श्रीकृष्णसे पूछते हैं कि 'भगवन्! आप तो त्रिलोकीके नाथ स्वयं नारायण हैं, फिर यह तो बतलाइये कि आप शिव-जीकी पूजा क्यों करते हैं? इसपर भगवान् उत्तर देते हैं कि हम और शिव दो नहीं हैं। एक ही शक्तिकी दो अभिव्यक्तियाँ हैं। इस अवस्थामें हम अन्य किस देवताकी पूजा करें, जब कि हमसे परे कोई है ही नहीं? और यदि किसीकी पूजा नहीं करते हैं तो मर्यादा भङ्ग होती है। फिर सब लोग हमारा ही अनुसरण करने लग जायँगे, अतएव उस अनर्थसे संसारकी रक्षा करनेके लिये हम दोनों आपसमें एक दूसरेकी पूजा कर लेते हैं। इसी एक विश्वव्यापिनी शक्तिकी दो अभिव्यक्तियोंके व्यावहारिक सम्बन्धको श्रीतुलसीदासजीने—

सेवक-स्वामि-सखा सिय-पीके।

—इन शब्दोंमें व्यक्त किया है, जिसप्रकार उन्होंने उसी स्थलमें—

गिरा-अरथ जल-बीचिसम, कहियत भिन्न न भिन्न।

—कहकर श्रीराम और श्रीसीताका अभेद प्रतिपादित किया है। वास्तवमें जगन्माता और जगत्पिता लीलामात्रके लिये दो हैं—वस्तुतः दोनों एक ही हैं।

दोनों रूपकोंमें यदि कुछ अन्तर है तो इतना ही कि पहलेमें एकताके पटलपर विविधताका चित्र चित्रित है और दूसरेमें विविध रूप-रेखाओंके अन्दर एक मूल-शक्तिके दर्शन-की झाँकी है।

तीसरा अर्थ

गोस्वामीजी भगवान् शम्भुको उन अखिल ब्रह्म श्री-रामका 'सेवक-स्वामि-सखा' नहीं बतला रहे हैं जिन्हें शङ्कर-जीने 'जय सच्चिदानन्द परधामा' कहकर दूरसे प्रणाम किया था। गोस्वामीजी 'सिय-पी' शब्द स्पष्ट लिख रहे हैं, जिसका अर्थ होता है दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र। अब देखना यह है कि दशरथ-सुत राजा रामचन्द्र किसके अवतार थे, और जिनके वे अवतार थे उनका शिवजीके साथ कौन-सा नाता हो सकता है?

गोस्वामीजी कहते हैं, और सारे वैष्णव भी यह मानते हैं, कि रामावतार कई बार हो चुका है और प्रत्येक बार एक ही व्यक्तिने रामावतार नहीं धारण किया; किन्तु तीन भिन्न-

भिन्न व्यक्तियोंमेंसे कभी किसीने किया और कभी किसीने। वे तीन व्यक्ति कौन हैं?

पार्वतीजीके प्रश्नपर भगवान् शङ्कर कहते हैं कि राम-जन्मके अनेक हेतु हैं। उनमेंसे एक हेतु यह है कि श्री-नारायणके द्वारपाल जय और विजयको नारदजीके शापसे राक्षस-योनिमें जन्म लेना पड़ा था। अपने इन्हीं सेवकोंका उद्धार करनेके लिये श्रीनारायणने रामावतार धारण किया था। [रघुवंशमें कालिदासने जो वर्णन देवताओंकी स्तुतिके समयका और भगवान्‌की योगनिद्राका किया है वह इसी अवतारसे सम्बन्ध रखता प्रतीत होता है।] दूसरा हेतु वे यह बतलाते हैं कि जलन्धरकी सती स्त्री वृन्दाने विष्णु-भगवान्‌को शाप दिया था, इसीसे उन्होंने रामावतार धारण किया। तीसरा हेतु यह है कि नारदजीने उस मायारचित कन्याकी प्राप्तिसे वञ्चित रहनेपर विष्णुभगवान्‌को शाप दिया था, जिससे उन्होंने रामरूपसे जन्म धारण किया। और भी अनेक अवतारोंकी चर्चा करते हुए श्रीशङ्करजी कहते हैं कि जब-जब धर्मकी हानि होती है और असुरोंकी वृद्धि होती है तब-तब भगवान् असुरोंका संहार करनेके लिये अवतार लेते हैं। हाँ, रामावतारका एक हेतु श्रीशङ्करभगवान् विस्तारसहित कहकर उसे 'विचित्र' नाम देकर अज, अगुण, अनूप, पूर्ण ब्रह्मका अवतार बतलाते हैं। शिवजीने या किसी औरने विष्णु या नारायणको कहीं भी अज, अगुण, अनूप नहीं कहा, वरं उनके-जैसे अनेक बताये। यहाँपर शिवजीने पार्वतीजीसे यह कहकर इस तथ्यको और भी स्पष्ट कर दिया है कि जिन श्रीरामको तुमने वनमें फिरते देखा था (और जिनको मैंने 'जय सच्चिदानन्द परधामा' कहकर प्रणाम किया था) वे उसी अज, अगुण, अनूप ब्रह्मके अवतार थे।

अब देखना है कि विष्णु, नारायण तथा अज, अगुण, अनूप ब्रह्ममें क्या कोई अन्तर है और शङ्करभगवान्‌का इनके साथ क्या नाता है? देवत्रयीमें तो कर्त्ता-धर्त्ता और संहर्त्ताके नाम क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं और ये प्रत्येक ब्रह्माण्डमें तीन-तीन हैं। इनका आदि-अन्त भी है और जब इनका आदि है तो इन्हें उत्पन्न करनेवाला भी कोई इन तीनोंसे न्यारा होना चाहिये। इस सम्बन्धमें वैष्णवों और शैवोंमें मतभेद है। एकका यह मत है कि इन तीनोंके कारण तथा स्वामी शेषशायी श्रीनारायण हैं और दूसरेका कहना है कि तीनोंके कारण तथा स्वामी श्रीसदाशिव हैं। इधर नाभिसे उत्पन्न कमलकी कथा है, उधर अग्नि-शिखा तथा केतकीकी कथा है। अब यदि ये शेषशायी नारायण और सदाशिव एक ही व्यक्तिके दो रूप हैं, जैसा कि महाभारतमें कहा गया है तो, और यदि ये भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र रूपधारी दो व्यक्ति माने जायँ तो भी, दोनों पदमें समान हुए। कोई किसीका सेवक या स्वामी नहीं हो सकता। हाँ, इन्हें एक दूसरेका सखा भले ही कह सकते हैं।

शेषशायी नारायण या सदाशिवकी उत्पत्ति किनके द्वारा हुई, इसका तो स्पष्ट वर्णन नहीं देखनेमें आया। इतना मालूम होता है कि ये स्वयं ही प्रकट हो गये। स्वयं ही प्रकट हुए सही, तो भी इस व्यक्त रूपके आदि कारणस्वरूप इसके परे किसी अव्यक्त-रूपकी कल्पना करनी ही पड़ती है। जो हो, वैष्णवोंका मत है कि इन दोनोंके उत्पन्न करनेवाले एवं स्वामी वही अज, अगुण, अनूप ब्रह्म हैं जिनका वर्णन शिवजी पार्वतीजीसे कर रहे हैं और जिन्हें 'संकर जगदबन्द्य जगदीसा' ने 'जै सच्चिदानन्द जगपावन' कहकर प्रणाम किया था और जिन्होंने किसीके शापवश नहीं, किसीको मारने-बचानेके क्षुद्र कार्यके निमित्त नहीं, वरं स्वायम्भुव मनु तथा शतरूपाके तप और प्रेमपर रीझकर उनकी अभिलाषा पूरी करनेके हेतु अवतार धारण किया था। कहना न होगा कि इस अवतारका भी लीला-वपु नाम 'राम' था और ये भी अपने अवतारमें 'सिय-पी' थे।

गोस्वामीजीने शङ्करजीकी वन्दना करते समय उन्हें भी 'रुद्र' कहीं नहीं कहा, 'हर-गौरि' कहा, 'शिवा-शिय' कहा और 'महेश' कहा। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गोस्वामीजी किसी एक रामावतारकी कथा जुदी नहीं कह रहे हैं, सब रामावतारोंकी कथा, जैसी कुछ पढ़ी या सुनी थी, अपनी मतिके अनुसार भाषाबद्ध कर रहे हैं। इन सब रामावतारोंमेंसे किसी-में विष्णुभगवान् 'सिय-पी' थे, किसीमें श्रीनारायण 'सिय-पी' थे और कम-से-कम एकमें अज, अगुण, अनूप ब्रह्म 'सिय-पी' थे। जिस अवतारमें अज, अगुण, अनूप ब्रह्म 'सिय-पी' थे उसकी दृष्टिसे महेश अवश्य ही 'सिय-पी' के सेवक थे, जिस अवतारमें नारायण 'सिय-पी' थे

उसमें महेश 'सिय-पी' के सखा थे; और जिस अवतारमें श्रीविष्णु 'सिय-पी' थे उसमें महेश 'सिय-पी' के स्वामी थे। कारण, यदि शैव-मतानुसार सदाशिवने सब जगत् तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रको उत्पन्न किया, तब तो स्वामी हुए ही; यदि श्रीनारायणने उत्पन्न किया, यह वैष्णव-मत ग्रहण करें तो भी स्वामीका सखा भी स्वामि-तुल्य ही है।

इस हिसाबसे एक ही स्थानपर सेवक, सखा और स्वामी—तीनों कहा जा सका है।

शिव-नौरस

(लेखक—काव्याचार्य श्री'शारद रसेन्द्र'जी)

१—शृङ्गार

रूपघनाक्षरी

कुन्दसम इन्दुसम गंगकी तरंगसम,
हास्यके उमंगसम जस-कीर्तिके समान।
'शारद रसेन्द्र' स्वेत पंकज-चमेलीसम,
मोतीसम, हीरासम गजदंत-अनुमान ॥
केवड़ा-कपूरसम बिज्जुके बिकाससम,
चन्दनसुवास सम अमृतको रंग मान।
चाँदीहूसो उज्जर बदन सिवसंकरको,
लखि मोही पारबती अरधंग भई आन ॥

२—वीर (क) दानवीर

घनाक्षरी

चाउर चढ़ाये चार देत बेग फल चार,
दुख दोष दूर करै गालके बजायेते।
'शारद रसेन्द्र' कौन दानबीर संकरसो ?
मुकति देत सबहीकों कासीमें समायेते ॥
दीननको कष्ट नष्ट करिबेमें हैं समर्थ,
इन्द्र कर देत नेक सिरके नवायेते।
बरदानदाता कोई सिवसो दिखाता नहीं,
धनद बनाता है बिपत्तिके सुनायेते ॥

(ख) कर्मवीर

रूपघनाक्षरी

उदध मथत जो हलाहल कढ़ो कराल,
ताकी ज्वालमाल महाकाल-सी तपायमान।
'शारद रसेन्द्र' भये व्याकुल धराधरेन्द्र,
जरन त्रिलोक लागो प्रलयसो भासमान ॥
करमबीर तू ही सिवसंभु बिन स्वार्थ धाय,
लील गये ताको लीलकण्ठ जानिये प्रमान।
तेरा (१३) रतन और सरब बाँट दीन ठौर ठौर,
दौर दौर सुरासुर कीन्ह जासु गुण-गान ॥

(ग) धर्मवीर

घनाक्षरी

सती कीन्ह सीताको सरूप बनबीच जाय,
राम लीन्ह चीन्ह लौटि संकरपै आई है।
'शारद रसेन्द्र' सो समुझि सिव-संभु गये,
ता तनते तीय-भाव दीन्ह बिलगाई है ॥
दच्छ-गेह जग्य देखि भई अपमानित सो,
हिमगिरपहँ पारबती बनी जाई है।
तब धरमबीर ईस लीन्ह अपनाई ताहि,
लोक सुख पाई बजी आनँद-बधाई है ॥

(घ) दयावीर

रूपघनाक्षरी

भागीरथ भूप भारी तप गंगहेत कीन्ह,
ब्रह्मा तब दीन्ह ताहिपर कौन रखवार।
'शारद रसेन्द्र' वह संकरकी सरनमें,
आयो दयासिंधु कहि करन लगो पुकार ॥
प्रभु ह्वै प्रसन्न बेग रोकिबेको पैज कीन्ह,
महातीव्र धार जटाजूटमें लियो सँभार।
पुनि कछु ताहीमेंसे जलको दियो निकार,
तार तासु पित्र मृत्युलोकको लियो उबार ॥

(ङ) युद्धवीर

दुर्मिला

त्रिपुरासुर दानव जो दुख-दावन, देवन काहिं पछार दयो।
तब 'शारद' संकरपाहिं पुकार परी सुनतै दुख टार दयो ॥
चढ़ि नादियापै तिरसूल लिये अरिवृन्दनको ललकार दयो।
तिहु लोकनमें उपकार कियो रणरंग मचाय सँहार दयो ॥

३—बीभत्स

मालती, अरविन्द सवैया

सिर कंघी कभी नहीं भूल परी
चिताभस्मसे बार गये लटियाय।

बयताल कपालमें हालको रक्त
लिये खड़े हैं मुख लार बहाय ॥
दसमाथ तहाँ निज माथकों होमत
गंध चिराइँधि सूँघि न जाय।
यह कैसे बिभत्ससे आप प्रसन्न है
देत अहौ बर हे गिरिराय ?॥

४–भयानक

बड़ सीस जटानमें सेस गुँथे
जहरीले करीले रहे फुफकार।
न 'रसेन्द्र' तहाँ गम जानकी है
बड़ी आफत जानकी होत निहार ॥
गिरनाथके माथमें तीसरे नेत्रसे
ज्वाल जगै भय होत अपार।
पहरेमें खबीस पचीसन है रहे
दंत हैं पीस भयानक भार ॥

५–अद्भुत

घनाक्षरी

गंग जटाजूटमें भुजंग खूँट-खूँटनमें,
चन्द्र और तीजो नेत्र भभकत माथमें।
'शारद रसेन्द्र' कंठ नीलम रतन सम,
आधे अंग पारबती रहत हैं साथमें ॥
आप पञ्चआनन तो सुवन खड़ानन है,
दूजो पुत्र गजतुंड मूसबाग हाथमें।
बैल, सिंह, मोर बैठे बाहन हैं एकठौर,
गौर करो अदभुत सरूप बिस्वनाथमें ॥

६–रौद्र

तीजो नेत्रज्वाल-माल धधकत प्रलयसो,
कण्ठमें हलाहलहू भभकत क्रोधसे।
'शारद रसेन्द्र' रौद्ररूप महादेवजीको,
त्रिभुवन छिनमें सँहारत प्रबोधसे ॥
बाधा ध्यानमें करन कुसुम कमान लैके,
आयो कामदेव सरबदेवअनुरोधसे।
छार भयो काम तबते अनंग पायो नाम,
कौन कौनौ धाम बचै संकर-बिरोधसे ॥

७–करुणा

माधवी-सुन्दरी सवैया

रति धाय गिरी पग संकरपै
पतिकों करि छार महागति दीन्ही।
अब काह करौं उनके बिन मैं
प्रभुकी बढ़ि सकति नहीं उन चीन्ही ॥
करुना सुनिकै करुना-निधने
करुनाथलपै करुना अति कीन्ही।
बरदान दियो हरि-पूत बनै
वह द्वापरमें सोइ संगति लीन्ही ॥

८–हास्य

रूपघनाक्षरी

बनकर बनरा बिवाह हेत बिस्वनाथ,
लैकर बरात आये हिमगिरदरमें।
'शारद रसेन्द्र' द्वारचारकी तयारी माहिं,
डार दीन्ह मालिनहू माला बना गरमें ॥
बार-बार घूँघुट उघार माँगै उपहार,
तब संभु लीन्ह काढ़ कारो नाग करमें।
देखि बिखधर डरकर हरबर नार,
मारत गोहार भागि जाय घुसी घरमें ॥

× × ×

एक समै पारबती लैके धूनीकी भभूत,
होरी होरी कहि जटाजूटपर दीन्ह डार।
सो 'रसेन्द्र' नैननमें नागके परी तनक,
भड़क उठो सो चन्द्रपर दीन्ह फन मार ॥
चन्द्रते चुयो अमी गिरो सो जो बघम्बरपै,
जीवित भयो सो लागो करन तहाँ चिघार।
नंदीकेरी नाथ बिस्वनाथ रहे बाँधे हाथ,
भागत ही घसिटे हँसी तहाँ भई अपार ॥

पार्वती-वचन

रोज-रोज भीख माँगिबो न भल भोलानाथ !
द्वार-द्वार बागत कपाल लीन्हे करमें ।
'शारद रसेन्द्र' शान सकति ना सिरावो स्वामि !
खेती कीजिये तो रहो गुजर-बसरमें ॥
गणपति गोड़ैं खेत खटमुख खोदैं खाद,
ससुरजू मैरा चढ़ि ताकैंगे कगरमें ।
एहो हर ! एक हर आपहू करैं तयार,
जमको महिख एक बैल बाँधो घरमें ॥

९-शान्त

मूसापै न झपटत साँप, साँपपै न मोर,
बैलपै न सिंह हेरै बैठे एक ठौर है ।
'शारद रसेन्द्र' चन्द मन्द मन्द दीप्तमान,
गंग तीव्र धार भूलि बनी सिरमौर है ॥
दायें खटमुख सेनापति हैं सचेत हेत,
बायें गोद गनपतिकों बिठाये गौर है ।
सावधान संकर हैं मानों सांतरूप भूप,
हाथमें है माला माथमें लगाये खौर है ॥
नौरस संकरके कबित, 'शारद' जो धरि ध्यान ।
पढ़ै सुनै ताको सदा, जगमें है कल्यान ॥

भगवान् शिवके साथ गोस्वामी तुलसीदासजीका सम्बन्ध

(लेखक—श्रीमाताप्रसादजी गुप्त, एम० ए०)

यों तो शिवजीके साथ तुलसीदासजीके 'नाते' एकसे अधिक थे, 'मानस' में वे कहते हैं—

गुरु-पितु-मातु महेस-भवानी । प्रनवउ दीनबंधु दिनदानी ॥
सेवक-स्वामि-सखा सिय-पीके । हित निरुपधि सब-विधि तुलसीके ॥
'रामचरितमानस' बाल०, दो० १५ (श्रीरामदास गौड़-सम्पादित)।

किन्तु इनमें सबसे प्रमुख नाता गुरु-शिष्यका था । जीवन-लीलाकी समाप्तिसे कुछ ही पूर्व श्रीराम, हनुमान् और शिवके साथ जो उनके प्रमुख सम्बन्ध थे उन्हें तुलसीदासजीने बाहुपीड़ासे पीड़ित होनेपर इसप्रकार स्पष्ट कहा था—

सीतापति साहेब, सहाय हनुमान नित,
हित उपदेसकों महेस मानौं गुरुकै ।
मानस बचन काय सरन तिहारे पायँ,
तुम्हरे भरोसे सुर मैं न जानें सुरकै ॥
(बाहुक ४३)

फलतः यह निश्चित है कि अनेक नातोंमें सबसे प्रमुख था गुरु-शिष्यका नाता और यह अन्य कई प्रकारसे भी सिद्ध है ।

ऊपर जो चौपाइयाँ उद्धृत हैं उनमें प्रथम और चतुर्थ चरण विशेष ध्यान देनेयोग्य हैं । प्रथम चरणमें स्वतः सबसे प्रमुख नाता ही कविकी कल्पनामें पहले आता है । इस सम्बन्धको ध्यानमें रखते हुए जब हम चतुर्थ चरण-का मिलान ऊपर उद्धृत 'बाहुक' के छन्दके दूसरे चरणसे करते हैं, तो भावसाम्य प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता है । 'मानस' की रचना सं० १६३१ में हुई थी और बाहुपीड़ा हुई थी उससे लगभग पचास वर्ष पीछे; किन्तु फिर भी वह नाता इतना दृढ़ और निश्चित था कि उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ने पाया—सत्यका स्वरूप ऐसा ही होता है ।

'गुरु' का आशय होता है अज्ञानका नाश करनेवाला । फलतः 'मानस' में वाणी-विनायककी वन्दना श्रद्धा-विश्वासरूप भवानी-शङ्करकी वन्दना पहले श्लोकमें कर लेनेके पीछे दूसरे ही श्लोकमें की गयी है और उसका कारण यह है कि अज्ञानका नाश और ज्ञानकी प्राप्ति बिना श्रद्धा और विश्वासके असम्भव है, जैसा भगवान् श्रीकृष्णने भी 'गीता' में स्पष्ट कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्
(गीता ४ । ३९)

अर्थात् श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है, अथवा—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥
(गीता ४ । ४०)

अर्थात् अज्ञ, श्रद्धारहित और संशययुक्त पुरुष नाशको

प्राप्त होता है और संशययुक्त पुरुषके लिये न सुख है, न यह लोक है और न परलोक ही है।

तीसरे श्लोकमें वे जब गुरुकी वन्दना करने लगते हैं तो उनकी समताके लिये शङ्करका ही ध्यान आता है—

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।...

आगे चलकर सोरठोंमें जब तुलसीदासजी वन्दना करते हैं तो पाँचवें सोरठेमें वे गुरुकी जो वन्दना करते हैं, साधारणतः, मुद्रित प्रतियोंमें, उसका पाठ इसप्रकार मिलता है—

बंदउँ गुरुपद-कंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह-तम-पुंज, जासु बचन रबि-कर-निकर॥

किन्तु कुछ हस्तलिखित प्रतियोंमें दूसरे चरणके 'हरि' के स्थानपर 'हर' पाठ भी मिलता है! इसकी ओर मेरा ध्यान अभी थोड़े दिन पूर्व ही आकर्षित हुआ—वह भी इसप्रकार। पिछले द्विवेदी-अभिनन्दनोत्सवपर मैं जब काशी गया हुआ था, मुझे नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशीके वर्तमान उपसभापति राय कृष्णदासजीने इस विचित्र पाठकी सूचना दी। यह पाठ सं० १८७० की लिखी हुई 'मानस' के बालकाण्डकी एक हस्तलिखित प्रतिमें, जहाँतक मुझे स्मरण है, पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी साहित्यरञ्जनको मिला था, जो 'मानस' का एक सम्पादन कर रहे हैं। राय कृष्णदासजीने मुझे उस प्रतिके प्रथम और अन्तिम पृष्ठ भी दिखाये। प्रथम पृष्ठपर यह सोरठा लिखा हुआ था और अन्तिमपर लिपिकाल, लिपिकारका नाम आदि। किन्तु अन्ततक मुझे यह विश्वास न हुआ कि यह पाठ शुद्ध है। और मैं यही समझता रहा कि लिपिकारके प्रमादसे ऐसा हो गया है। काशीसे लौटनेपर फिर भी मैंने कुतूहलवश अपने यहाँकी एक हस्तलिखित प्रतिको, जो अत्यन्त शुद्ध है और सं० १८७८ की लिखी हुई है, देखा। उसमें भी मुझे 'हर' ही पाठ मिला—यद्यपि जब उसके पीछे ही अपने यहाँकी दो अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ देखीं, जिनमेंसे एक सं० १९०३ की और दूसरी भी उसीके आसपासकी लिखी हुई थी, उनमें 'हरि' पाठ पाया। फलतः यह धारणा दृढ़ हो गयी कि 'हर' पाठ भी 'हरि' के साथ-ही-साथ मिलता है।

ऊपर दिये हुए सोरठेमें 'हरि' और 'हर' पाठोंमें कौन-सा अधिक समीचीन है, यह कहना कठिन है; फिर भी नीचे दिये हुए कारणोंसे 'हर' पाठ ही अधिक समीचीन जान पड़ता है—

१—वन्दनाएँ जिन सोरठोंमें मङ्गलाचरणके श्लोकोंके पीछे की गयी हैं, उनकी संख्या पाँच है। इन पाँच सोरठोंमेंसे प्रथम चार तुकान्त हैं—प्रत्येकमें प्रथम और तृतीय तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणोंके तुक आपसमें मेल खाते हैं और पाँचवें सोरठेमें भी, जो ऊपर उद्धृत किया गया है प्रथम और तृतीय चरणोंका तुक मिलता है, फलतः यह धारणा स्वतः उत्पन्न होती है कि द्वितीय और चतुर्थ चरणोंका तुक उस सोरठेमें भी मिल जाना चाहिये।

२—'वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्' पाठसे 'बन्दउँ गुरु-पद-कंज, कृपासिंधु नर-रूप हर' पाठ मेल भी खाता है।

३—सोरठेमें आयी हुई शब्दावली 'महामोह-तम-पुंज, जासु बचन रबि-कर-निकर' 'विनय-पत्रिका' में संग्रहीत पदों और स्तोत्रोंकी नीचे लिखी शब्दावलियोंसे मिलानेयोग्य है—ये पद और स्तोत्र शिवजीको सम्बोधित करके कहे गये हैं।

'मोह-निहार-दिवाकर संकर'

'देव! मोह-तम-तरनि, हर, रुद्र संकर सरन'

'अहँकार-निहार-उदित दिनेस।'

'मोह-तम-भूरि भानुं।'

(विनयपत्रिका ९, १०, १३, १२)

यह शब्दावली, जहाँतक मेरा ध्यान है, तुलसीदासजीने किसी अन्यके लिये कहीं नहीं प्रयुक्त की है।

फलतः यह धारणा स्वतः पुष्ट हो जाती है कि उक्त सोरठेमें 'हरि' के स्थानपर 'हर' पाठ ही कदाचित् अधिक शुद्ध है। यदि यह पाठ मान्य हो तो 'नर-रूप हरि' से किन्हीं नरहरिदासजीके उनके गुरु होनेकी कष्ट-कल्पना भी बहुत कुछ दूर हो जाती है।

गोस्वामीजीने 'मानस' के लिये रामचरित 'अध्यात्म-रामायण' से ही वस्तुतः लिया है, यह निर्विवाद है। 'अध्यात्मरामायण' के कर्ता हैं शिवजी, जिन्होंने उसे उमासे कहा है। इसी तथ्यको गोस्वामीजीने इसप्रकार कहा है—

रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ उमासन भाखा॥
तातें रामचरित मानस बर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर॥
(रामचरितमानस बाल० दोहा ३५)

'रामचरितमानस' के भी आदि वक्ता-श्रोता शिव-शिवा ही हैं। एक प्रकारसे यों भी शिवजी तुलसीदासजीके गुरु ठहरते हैं।

गोस्वामीजीने 'मानस' की मूल-कथा प्रारम्भ करनेके पूर्व सती-मोह और उमा-शम्भु-विवाहकी कथा कही है। केवल प्रबन्धकी दृष्टिसे सती-मोह-प्रकरण ही आवश्यक नहीं था, उमा-शम्भु-विवाह-प्रकरणकी बात तो दूर रही, क्योंकि बिना इन प्रकरणोंके भी 'अध्यात्मरामायण' और 'वाल्मीकि-रामायण' का प्रारम्भ हुआ है। मेरा अनुमान यह है कि भगवान्‌से पूर्व भक्त और सबसे बड़े भक्तकी कथा-कहानी गोस्वामीजीको इष्ट थी, इसीलिये इसप्रकार सती-मोह और उमा-शम्भु-विवाह-प्रकरण उन्होंने राम-कथासे पूर्व रक्खे, यद्यपि इनका उससे प्रबन्धकी दृष्टिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। भागवत-सम्प्रदायने शिवको हरिका सबसे बड़ा भक्त माना है। इसके प्रमाणस्वरूप हम 'श्रीमद्भागवत' चतुर्थ स्कन्धके दूसरेसे चौथे अध्यायतककी कथा ले सकते हैं, जिसमें दक्षद्वारा शिवके अपमान, दक्षयज्ञ, सतीके देहत्याग और पुनः शिवके प्रसन्न होनेपर यज्ञकी समाप्तिका सविस्तर वर्णन हुआ है। अथवा 'भक्तमाल' के ७ वें छप्पयपर प्रियादासजीकी टीकाको ही हम ले सकते हैं। छप्पयमें द्वादश भक्तोंका उल्लेख किया गया है—जिनमें 'बिधि नारद संकर सनकादिक' की गणना की गयी है। प्रियादासजीने टीका केवल शिवजी और अजामिलके सम्बन्धमें की है, अजामिलकी इसलिये कि उससे श्रीनारायणके नामस्मरणका माहात्म्य सूचित होता है और शिवजीकी केवल इसलिये कि वह भक्तिका चरम आदर्श उपस्थित करती है। इस टीकामें उन्होंने सती-मोह और शिवजीद्वारा सती-त्यागकी कथा भी कही है। फलतः गोस्वामीजीके सामने भक्तिका चरम आदर्श उपस्थित करनेके कारण भी शिवजीको उन्होंने गुरुवत् माना है और अपने इन 'गुरु' का चरित्र 'गोविन्द' के चरित्रसे भी पहले गाया है।

'मानस' के बालकाण्डके प्रारम्भकी वन्दनाओंके सम्बन्धमें ऊपर हम कह ही चुके हैं, अयोध्या और अरण्यकाण्डोंके भी प्रारम्भ करनेवाले पहले ही श्लोक शिवजीकी वन्दनामें कहे गये हैं। 'मानस' के पाठोंके सम्बन्धमें शङ्काएँ और समाधान करनेवाले, सम्भव है, इस विशेषताके लिये अनेक कारण दे सकें; किन्तु हमें तो इस विशेषतामें यह स्पष्ट व्यञ्जना दिखायी पड़ती है कि शिवजीको गुरु माननेके कारण ही कदाचित् आप-से-आप उनकी वन्दना इन काण्डोंमें रामकी वन्दनासे भी पूर्व हो गयी है।

भारतीय भक्तोंने अपने सामने सदा यही सिद्धान्त रक्खा है—

भक्ति भक्त भगवंत गुरु, चतुर नाम बपु एक।
('भक्तमाल' का मूल मङ्गलाचरण दो० १)

इसी सिद्धान्तके अनुसार शिवजीकी स्तुतिमें कहे गये एक स्तोत्रमें तुलसीदासजी उन्हें न केवल 'निर्गुणं निर्विकारम्' कहते हैं[1], वरं 'विष्णुविधिवन्द्यचरणारविन्दम्' भी कहते हैं। एक दूसरे स्तोत्रमें उन्होंने शिवजीको 'रामरूपी रुद्र' कहा है[2] और एक अन्य स्तोत्रमें हरि और शिवकी एकत्र स्तुति की है और उसका नाम ही 'हरि-शङ्करी-नाममन्त्रावली' रक्खा है[3]।

इन कुल बातोंपर ध्यान देनेसे हमारी यह धारणा अत्यन्त पुष्ट हो जाती है कि—

'गुरु पितु मातु महेस भवानी'[4] आदि।

अथवा—

'बंधु गुरु जनक जननी बिधाता'[5] आदि।

—वाक्योंको कहते हुए भी उन्हें गोस्वामीजी आदिसे अन्ततक गुरुवत् मानते रहे। फलतः लौकिक गुरु हम चाहे जिसे मानें, उनके अलौकिक गुरु शङ्कर ही थे—इसमें सन्देह नहीं और यही वह नाता था जो तुलसीदासजीको अपने अन्तिम दिनोंमें भी सबसे अधिक मान्य था।

---

१ 'विनय-पत्रिका' १२।
२ ,, ११।
३ ,, ४९।
४ 'रामचरितमानस', बाल०, दो० १५ (श्रीरामदास गौड़-संस्करण)।
५ विनय-पत्रिका ११।

श्रीकृष्णजन्मसमयागत श्रीशिव-ध्यान

(प्रेषक—श्रीहितरूपलालजी गोस्वामी)

नन्दभवनमें डोलै जोगी निपट हठीलौ आयौ
उझकत सौं कछु फिरत कौतुकी सींगी-नाद बजायौ ।
जोगी निपट० ॥
कर डौंरू बाघम्बर काँधै भस्म लपेटैं काया ।
पुरुख अलेख बदनतें बोलत छुवत न कंचन माया ॥
सीस जटा माथै कछु चमकत कानन मुद्रा भारी ।
जसुमतिके आँगनमें मचल्यौ बहुत जुरीं ब्रजनारी ॥
ब्रजरानी कर जोर कहति यों नाथ बात सुनि मेरी ।
जो चाहौ सो लै पग धारौ नगरी बसत घनेरी ॥
भौंह चढ़ाय अनख मुख मोर्‌यौ देखि डरीं नवबाला ।
मोरि कपाट जाइ मणिमन्दिर महरि दुरायौ लाला ॥
हौं बलि नाथ कहौ तुम मनकी कौन काज हठ एतौ ।
तुम प्रसाद मो भवन सब कछू लेहु चाहिये जेतौ ॥
अमल छके लोचन रतनारे बोल्यौ रावल बानी ।
तेरौ भलौ करन मैं आयौ बचन मानि नँदरानी ॥
एक पुत्र तेरैं सुनि मो मन करुना उपजी आई ।
ता कारन बनखंड भ्रमततें तो घर आयौ माई ॥
जंत्र कराय लेहु बालककौं डर न, अमरु होय काया ।
जो मो सीस चरन सुत छ्वावै लगै न कबहूँ छाया ॥
गुरु प्रताप हौं जतन घनेरे जानत तोहि सुनाऊँ ।
अरु जो सुतकौ हाथ दिखावै लच्छन सबै बताऊँ ॥
कछु मन लोभ कछू मन संकित महरि बिचारि रही है ।
जोगी देखि डरै जिनि बारौ चरननि लाग कही है ॥
बालककौ परताप बड़ौ है तू जिन जानैं छोटा ।
आगम देखि सत्य हौं भाखत सकल गुनन है मोटा ॥
पौढ़े छोटी चँदन पलकिया चरन अँगूठा चौंसैं ।
कन अँखियन चितवत जोगी तन मन-ही-मन अति हौंसैं ॥
गोदी ढाँपि महरि सुत लाईं नाथ-चरन सिर राखे ।
दई भभूति बदन तन निरखत अमृत-बचन मुख भाखे ॥
अंतर प्रेम घुमायौ रावल भये प्रभु बाल-बिहारी ।
अधरनिमें मुसिकान स्यामकी देखि थकित भये भारी ॥
मंदिरतें मुहि देहु पँजीरी पीत झँगुलिया पाऊँ ।
आदिनाथकी धुजा चढावौं तेरौ उदौ मनाऊँ ॥
अलखपुरुख रच्छा करैं याकी बालक है बड़भागी ।
सब ब्रजपालक माता तुव सुत होय परम अनुरागी ॥
बहुत पँजीरी पीत झँगुलिया रावल गोद भराई ।
धन्य कूँखि तेरी री माई जिन मेरी आस पुजाई ॥
बार-बार जसुमति भागनुकी रावल करत बड़ाई ।
बृंदाबनहितरूप गोपकुल सिव बन्दत सिरनाई ॥

—श्रीचाचा हितवृन्दावनदासजी

ताण्डव नृत्य

ताण्डव हो फिर एक बार ।
प्रलयङ्कर ! कम्पित झंकृत कर, सृष्टि-सृष्टिका तार-तार ॥
कण-कणमें प्रतिक्षण रण-रण हो, प्राण-प्राणसे हो पुकार ।
विचलित थल-थलपर प्रतिपल हो, बार-बार द्रुत पद-प्रहार ॥
पृथक्-पृथक् नव प्रकृति-तत्त्व, नभ अनिल अनल जल भूमि-भार—
अङ्ग-अङ्गमें ओ अनङ्ग-रिपु ! मङ्गलमय हो एक बार ॥

—श्रीरामकुमार वर्मा एम० ए०

हरिभक्तपर हरकी कृपा

(लेखक—आचार्य श्रीमदनमोहनजी गोस्वामी वै० दर्शनतीर्थ, भागवतरत्न)

मार्कण्डेयजीको शिवजीका वरदान

महर्षि मार्कण्डेयजी, 'विश्व भगवान्‌की मायाद्वारा रचा गया है तथा भगवान्‌की विचित्र शक्तिसम्पन्ना मायामें देवगण भी मुग्ध होते हैं, तो फिर मैं मन्दमति इस योगमायाके प्रभावको कैसे समझ सकता हूँ' इस बातको विचार भगवान् श्रीहरिका ध्यान करने लगे। इसी समय पार्वतीसहित नन्दीपर सवार श्रीशिवजी अपने अनुचरोंके साथ आकाश-मार्गसे जा रहे थे। उन्होंने देखा कि महातेजस्वी मार्कण्डेयजी अपने आश्रममें समाधि लगाये बैठे हैं।

पार्वतीजी ऋषिके प्रेममय भावको देखकर प्रसन्न चित्तसे श्रीशिवजीसे कहने लगीं कि 'भगवन्! देखिये, वायुके रुक जानेसे जैसे महासागरका जल निश्चल हो जाता है और जलके भीतर रहनेवाले मत्स्य, मगर आदि जीव भी स्थिर हो जाते हैं, ठीक उसी तरह ये तपस्वी ऋषि समाधि लगाये एकाग्र हो रहे हैं। आप इनको अपने दर्शन देकर इनके तपको सफल बना दें तथा वाञ्छित वरदानसे ऋषिके मनोरथको पूर्ण कर दें।'

श्रीशिवजी पार्वतीजीके कृपामय वचनको सुनकर कहने लगे कि 'प्रिये! यह तपस्वी परमकरुणासागर श्रीभगवान्‌की भक्तिको पा चुके हैं। इसलिये न इन्हें मोक्षकी इच्छा है और न अन्य किसी फलकी अभिलाषा है। तथापि तुम्हारे आग्रहसे इनके समीप चलकर इनसे बातें करूँगा। क्योंकि साधु-समागमकी अभिलाषा सभीको होती है।'

भक्तोंके रक्षक भगवान् श्रीशिवजी मार्कण्डेय ऋषिके निकट उपस्थित हुए। ऋषिके अन्तःकरणकी वृत्ति बाह्य विषयोंसे हटकर आत्मामें लीन हो रही थी, यहाँतक कि अपने शरीरको भी वे भूले हुए थे। श्रीशिव और पार्वतीजीका समीपमें उपस्थित होना उनको मालूम ही नहीं हुआ। श्रीशिवजी उनके अन्तःकरणकी वृत्तिको जानकर, जैसे वायु छिद्रमें घुस जाता है वैसे ही, अपने योगबलसे ऋषिके हृदयमें प्रवेश कर गये।

मार्कण्डेयजीने बिजलीके समान जटा-जूटसे सुशोभित, त्रिलोचन, व्याघ्र-चर्म ओढ़े हुए, दस भुजाओंमें त्रिशूल, धनुष, बाण, खड्ग, चर्म, डमरू, कपाल आदि आयुध धारण किये भगवान् शिवको अकस्मात् अपने हृदयमें देखा। ऋषिका ध्यान टूट गया और समाधि खुल गयी। पार्वतीजीके साथ श्रीशिवजीके दर्शनकर वे उठ खड़े हुए और मस्तकको अवनतकर विविध वाक्योंसे स्तुति की तथा पाद्य-अर्घ्य आदिसे उनका पूजन किया। ऋषिके स्वागतसे सन्तुष्ट हो श्रीशिवजीने कहा कि 'हे मुनिवर! जो इच्छा हो, मुझसे वर माँगो।'

चन्द्रशेखर श्रीशिवजीके वाक्यको सुनकर महर्षिका हृदय गद्‌गद् हो उठा। मार्कण्डेयजी कहने लगे कि 'प्रभो! आपके इस अपूर्व दर्शनसे मेरी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो गयीं। तथापि आपकी आज्ञाको शिरोधार्य करता हुआ केवल यही एक वर चाहता हूँ कि अच्युतभगवान्‌में मेरी अटल भक्ति हो।' ऋषिके परम गम्भीर वचनको सुनकर श्रीपार्वतीजीकी इच्छाके अनुसार श्रीशिवजीने कहा कि 'हे महर्षे! परम कृपालु अच्युतभगवान्‌की अटल भक्ति तो तुमको प्राप्त हो ही चुकी है, तथापि तुम्हारी प्रार्थनाके अनुसार मैं यह वर देता हूँ कि तुम्हारी वह भक्ति प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त तुम्हारी कीर्त्ति और तुम्हारे पुण्यका कदापि क्षय न होगा। तुमको तीनों कालका ज्ञान प्राप्त होगा।'

श्रीशिवजीने इस तरह वर प्रदानकर अपने लोकको प्रस्थान किया। श्रीहरिभक्तोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी भी वर प्राप्तकर इच्छानुसार विचरने लगे। प्रिय पाठकगण! आपलोग यह तो समझ गये होंगे कि श्रीहरिका ही दूसरा स्वरूप श्रीशिव हैं। हरि और हरमें सदा अभेद है। जैसे दूध विकारविशेषके योगसे दधि हो जाता है परन्तु वह दधि अपने कारण दुग्धसे पृथक् वस्तु नहीं होता, इसी तरह श्रीशिवजी संहारकार्यके लिये रुद्ररूपसे अवतीर्ण होकर भक्तिमार्गको पुष्ट करते हैं। शास्त्रमें कहा गया है—

तमोयोगाच्छम्भुर्भवति न तु गोविन्दाच्छम्भुरन्यः।

शङ्कर-नख-सिख-वर्णन

पद-नख दिनकर-निकर-प्रकासा[1]। उदय होत उर-तिमिर बिनासा ॥
पद-पंकज प्रभु-तनु-तड़ागके । चरम-सरम-पद-बीतरागके[2] ॥
मृदु मंजुल मुद-मंगल-मूला । सतत बिकास बिस्व-अनुकूला ॥
सुरभि पराग मधुर मकरंदन । बितरत[3] निज-रत भगत-मलिंदन ॥
पद-सामीप्य-जोग जदि पावै । अगुन अनगुभव अभव न भावै[4] ॥
जोगी-जुगत[5] मुगत-अभिमानी । जनम-जनम-जतननि जेहि जानी ॥
सिधि प्रभु-पद-प्रसाद बिनु सोऊ । लही, रहे लहि, लहहिं न कोऊ[6] ॥

करकोटक[7] कोपीन कटि, केहरि कदन-कुरंग[8] ।
बाघंबर कंबर[9] कबहुँ, निपट दिगंबर अंग ॥

सृंखल[10] सुंदर संख[11] सुहावा । अचर[12] अपर उर-प्रभुहिं न भावा ॥
उदर उदधि बलि-बलित[13] अथाहा[14] । जीव-जंतु जहँ कोटि कटाहा[15] ॥
बक्ख माल तक्खक[16] बिसालकी । अक्ख, दक्ख-दुहिता-कपालकी[17] ॥
महापदम अरु पदम बासुकी[18] । बिलसत त्रिगुन[19] जनेउ जासुकी ॥
कर-अरबिंद मृदुल मुदकारी । परिघ[20] प्रलंब बाहु भयहारी ॥
असमय प्रलय भयातुर भारी । दयाद्रवित सुर असुर निहारी ॥
पान कीन्ह बिष बिषम असेषा । किंतु कंठ श्री भई बिसेषा ॥
मुख-मुसुकान मनोहरताई । सीत प्रकास सुबास सुहाई ॥
समुझि स्वयंभु[21] अप्राकृत सोभा । चतुर बिरंचिहिं भा चित छोभा ॥
बिरचेउ रुचिर प्रचुर अनुहारा । चारु चंद्रिका, मंजुल मारा ॥
चंद, गुलाब सुगंधन-पूरे । तदपि रहेउ अभिलाष अधूरे ॥
तबते बिधि रिसाइ, करि डारे । अनित अनंग सरुज कटियारे[22] ॥

मुद्रा-मंडल-मय उभय, कुंडलि[23] करत कलोल ।
करननि कुलिक[24] कुलीनके, कुंडल झलकत लोल ॥

तीन नयन दल-नलिन बिसाला । हिमकर[25] हंस[26] हुतासन[27] माला ॥
बिस्व-बिकास-बिलास-बिनासा । करत कटाच्छ भृकुटि अनयासा[28] ॥
तिलक त्रिपुंड भस्म भल भ्राजत । माल बिसाल बाल बिधु राजत ॥
सीस सुबद्ध कपर्द सुहावा । तिहिंपर जन्हु-सुता इहिं भावा ॥
प्रगटी ब्रह्म-कमंडलुमाही । निदरि[29] निडर बिधि डारेसि ताही ॥
तब हरि-पदनि परी अकुलाई । तहँहु न रहन ठौर कहुँ पाई ॥
पुनि ह्वै बिकल धवल जल-धारा । नभतें गिरी टूटि जिमि तारा[30] ॥
पाहि-पाहि अति आरत बानी । सुनि सुरधुनिहिं संभु सनमानी ॥
देखि अनाथ तिरस्कृत त्यागी । प्रनतारति हरता जिय जागी[31] ॥
सादर सपदि[32] जटासन दीन्हा । जग-अघ-नासन सासन[33] कीन्हा ॥
को अस आसुतोष जन-रंजन । भय-भंजन मलीन-मन-मंजन ॥
जटा-मुकुट अति अद्भुत रूपा । फन-अनंत-अहि-छत्र अनूपा ॥
बृषभ-जान[34] समसान-बिहारी । चिता-भसम-भूषित भव-हारी ॥
प्रमथ पिसाच भूत सहचारी । ब्याल-कपाल-छाल-मृग-धारी[35] ॥

उक्त तंत्र उपकरन[36] कर, कारन जग कल्यान ।
किंतु ईस आसयनतें[37], अखिल अनीस अजान[38] ॥

कुंद-इंदु-निंदक दुति-भंगा । फटिक-पुंज छबि कोटि पतंगा ॥
अजगव[39] डमरु कमंडलु सूला । करन[40], भुवन-भय-हरन समूला ॥
बिधि बिरची सुखमा, जिहिं अंगनि । लखि, सोइ उमा संभु-अरधंगनि ॥
सिव सम्मिलित सिवा कहु कैसे । कुमुदिनि-कांत कौमुदी जैसे ॥

---

(१) सूर्य-समुदाय । (२) अन्तिम शान्तिके स्थान । (३) देते हैं । (४) मोक्ष । (५) युक्तयोगी (जिसको योग सिद्ध हो चुका हो)। (६) न किसीने पायी है, न पा रहा है और न पायगा । (७) सर्पकुलपति । (८) मृग-नाशक । (९) कम्बल । (१०) शृङ्खला=मेखला । (११) सर्पकुलपति । (१२) जड़ । (१३) त्रिवली । (१४) व्याप्त । (१५) ब्रह्माण्ड । (१६) तक्षक=सर्पकुलपति । (१७) आपके वक्षःस्थलमें विशाल तक्षक, रुद्राक्ष और दक्ष-प्रजापतिकी पुत्री (सती) के कपालोंकी मालाएँ हैं । (१८) ये तीनों भी सर्पकुलपति हैं । (१९) तीन डोरेकी । (२०) अगेला । (२१) अपने आप उत्पन्न हुई । (२२) तब उस विधाताने क्षोभसे चाँदनीको अनित्य, कामको शरीररहित, चन्द्रमाको क्षयीपीड़ित और गुलाबको कण्टकयुक्त कर दिया । (२३) गोल मुद्रामय दो सर्प । (२४) सर्पकुलपति । (२५) चन्द्र । (२६) सूर्य । (२७) अग्नि । (२८) विना ही श्रमके । (२९) निरादर करके ; (३०) तारेकी तरह टूटकर गिरी । (३१) प्रणतपालकता उत्पन्न हुई । (३२) तुरन्त ही । (३३) आज्ञा । (३४) यान=वाहन । (३५) सर्प, मुण्ड, व्याघ्रचर्म और मृग धारण करनेवाले हैं । (३६) सामग्री । (३७) अभिप्रायों । (३८) जीव । (३९) धनुष । (४०) हाथोंमें ।

त्रिजगत जीव चराचर झारी[41]। स्वलय करत प्रभु प्रलय-मँझारी ।।
पुनि जब हो जग-कौतुक-इच्छा। होत तबहि तिहिं प्रकृति-प्रतिच्छा[42] ।।
तिहिं छन यह अनादि जगदंबा। विस्व-बिधान होत अवलंबा ।।
काया कारन सुच्छम स्थूला[43]। देहिनँ[44] देहि करम-अनुकूला ।।
तदपि परम करुनामइ माता। प्रतिदिन जीवन उन्नति-दाता ।।
बरु[45] बारिद बिनु बारि, बरषै बार हजार, पै।
नहिं तोषत त्रिपुरारि, बिनु तुषार गिरिजा-कृपा ।।

—स्व० अर्जुनदास केडिया

शिव-लीला

(१)
कल्याणकारी शिव

कासीके बसैया परकासीके दिवैया नाथ,
भंगके छनैया अरु गंगके धरैया तुम।
बेसके अमंगल औ जंगलके बासी प्रभु,
तौहू महामंगल हौ मंगल करैया तुम ॥
केतिक उधारे केते तारे भवसागरतें,
केतिक सम्हारे ऐसे बिपद-हरैया तुम।
एहो त्रिपुरारी अघहारी सुखकारी शिव!
'प्रेम' परयौ द्वारे आज लाजके रखैया तुम ॥

(२)
अद्भुत शिव

सतीके गहैया 'प्रेम' सतीके छँड़ैया जोगी,
कामके बचैया पूरे कामके नसैया तुम।
जगके भरैया शिव जगके हरैया काल,
पशुपति-गहैया पाशुपत-चलैया तुम ॥
औघड़-दिवैया दानी औघड़-छनैया मस्त,
औघड़ कहैया खासे औघड़ नचैया तुम।
सूलके धरैया रखवारीके करैया प्रभो!
लाजके रखैया आज लाजके रखैया तुम ॥

(३)
अलबेला शिव

माथेमें त्रिपुण्ड बिधु बालहू बिराजै 'प्रेम',
जटनके बीच गंगधारको झमेला है।
सींगी कर राजै एक करमें त्रिसूल धारे,
गरे मुंडमाल घाले काँधे नाग-सेला है ॥
कटि बाघछाला बाँधे भसम रमाये तन,
बाम अंग गौरी देवी चढ़नको बैला है।
घेला है न पल्ले, खरचीला है अजूबी भाँति,
ऐसा गिरिझेला देव संभु अलबेला है ॥

(४)
भक्तरक्षक शिव

सोच बिमोच अनेक लये जस गान सुन्यौं शिव तैं सुजसी है।
देवनमें गुरुदेव तु ही प्रभु तेरी ही चित्तमें गाँस गँसी है ॥
ओ सिरताज चराचरके! तव प्रेममें 'प्रेम' की फाँस फँसी है।
लाजु बचा कितौ देखु इतै, अब मेरी हँसी किधौं तेरी हँसी है ॥

—प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम'

(४१) समग्र। (४२) प्रतीक्षा। (४३) कारण, सूक्ष्म और स्थूल तीन प्रकारके शरीर। (४४) जीवोंको। (४५) चाहे।

जगद्गुरु भगवान् शिवशङ्कर

(लेखिका—श्रीमती श्यामकिशोरीजी गुप्ता)

परमार्थकी सिद्धिके लिये गुरुकी आवश्यकता होती है; परन्तु वर्तमान युगमें उपयुक्त गुरुकी प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ हो गयी है। इस दशामें क्या करना चाहिये, यह प्रश्न है। मैं तो अपने निजी अनुभवके आधारपर अपने कल्याणकामी भाई-बहिनोंके समक्ष यह निवेदन करती हूँ कि क्यों न उन शङ्करजीको गुरु मानकर हम अपनी जीवन-साधनामें अग्रसर हों जिनके कि पास हमें पहुँचना है। साधक चाहे उनके सगुण स्वरूपका उपासक हो, चाहे निर्गुणका। इसमें कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। करना केवल यह है कि अपने उन्हीं आराध्यदेव शङ्करको अपना गुरु—एकमात्र अवलम्ब मानकर सच्चे दिलसे हम उनसे प्रार्थना करें कि–'हे प्रभो! आप मेरे सर्वस्व हैं, अतएव आप ही मुझे सत्य मार्ग दिखलाइये। आप मेरे अन्दर ऐसी प्रेरणा करें जिसे गुरुके आदेशवत् ग्रहण करके मैं अपने साधनपथमें अग्रसर होऊँ और लक्ष्यसिद्धि प्राप्त करूँ।' इसप्रकार प्रार्थना करनेपर हमारे अन्दर जो प्रेरणा हो, बस, उसीका आश्रय लेकर हमें चलना चाहिये। उससे कल्याण निश्चित है। यह सब लिखनेसे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि गुरुपरम्परा ही मेट दी जाय। जिन्हें उपयुक्त गुरु मिलते हों वे अवश्य गुरु करें; परन्तु जो कल्याणकामीजन गुरुके अभावमें भटक रहे हैं, केवल उन्हींके लिये मैंने उपर्युक्त विचार प्रकट किये हैं। मानवी गुरु मिलता हो, अच्छी बात है; परन्तु यदि न मिलता हो तो भी यह नहीं मान बैठना चाहिये कि अब कल्याणकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती। भगवान् महादेव गुरुओंके भी गुरु हैं, उनपर विश्वास करके चलनेसे वे अवश्य पार लगा देंगे। वे परम दयालु और आशुतोष हैं, अति शीघ्र प्रसन्न होकर हमें कल्याण-मार्गपर चलाकर हमारा उद्धार कर देंगे।

भगवान् शिव

चिदानन्दघन, सर्वान्तर्यामी, सर्वाधार, सर्वगुणसम्पन्न, गुणातीत, अनादि, अनन्त भगवान् शिवके सम्बन्धमें मैं क्या लिखूँ; मैं न शिव-तत्त्वका ज्ञाता हूँ और न शिवका भक्त; विद्याका बल भी नहीं, जिसके सहारे शास्त्रोंके वाक्योंके आधारपर ही कुछ लिख सकूँ। फिर भारतवर्षके इतने बड़े-बड़े पूज्यचरण तत्त्वज्ञ और विद्वान् महानुभावोंके, जिनके चरणोंमें बैठकर श्रद्धापूर्वक मुझे जीवनभर नयी-नयी बातें सीखनेको मिल सकती हैं, लेखों और विचारोंके सामने कुछ कहना सर्वथा धृष्टता ही है। श्रीशिव-गुण-गानकी नीयत-से दो-चार शब्द रस्म पूरी करनेके लिये लिख देता हूँ। गुरु-जन क्षमा करेंगे।

१–भगवान् शिव कल्याणस्वरूप, विज्ञानानन्दघन, वेदवेद्य परमात्मा हैं, वे स्वयं ही अपने ज्ञाता हैं, अनिर्वचनीय हैं, अकल हैं, मन और बुद्धिके अतीत हैं।

२–वही अपनी शक्तिद्वारा जगत्का सूत्रपात करते हैं, वही ब्रह्मारूपसे रचते, विष्णुरूपसे पालन करते और रुद्र-रूपसे संहार करते हैं और अनन्त रुद्रोंके रूपमें जगत्में फैले हुए हैं। सब रूपोंमें भासते हैं, सब रूपोंमें प्रकट हैं। उन्हींसे सबकी उत्पत्ति है, उन्हींमें निवास है और उन्हींमें सब लय होते हैं। यह उत्पत्ति, पालन और विनाश भी उनकी लीलामात्र है। वही सब कुछ हैं और साथ ही सब कुछसे विलक्षण भी हैं।

३–शिव सर्वव्यापी, सर्वेश्वर, सर्वोपरि, सर्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वतश्चक्षु, सर्वान्तर्यामी, सर्वमय, सर्वसमर्थ, सर्वाश्रय, शक्तिपति, नित्य, शुद्ध-बुद्ध-ज्ञानस्वरूप, 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' हैं। वे निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार हैं; उभयातीत हैं।

४–वे माता-पिता, सुहृद्, स्वामी, सखा, न्यायकारी, पतितपावन, दीनबन्धु, परम दयामय, भक्तवत्सल, अशरण-शरण, अतिउदार, सर्वस्वदानी, आशुतोष, सम, उदासीन, पक्षपातहीन, भक्तजनाश्रय, भक्तपक्षपाती, शुभप्रेरक, अशुभनिवारक, योगक्षेमवाहक, प्रेममय, भूतवत्सल, श्मशानविहारी, कैलासनिवासी, हिमालयवासी, योगीश्वर और महामायावी हैं।

५–वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं। 'नमः शिवाय' उनका

प्रधान मन्त्र है, आबालवृद्ध, वनिता, ब्राह्मण, शूद्र सभी इसका श्रद्धापूर्वक जप करके अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।

६–शिवलिङ्ग-पूजा अश्लील नहीं है, यह परम रहस्यमय तत्त्व है। शिवकृपासे रहस्यका ज्ञान हो सकता है। भक्ति-श्रद्धा-पूर्वक पूजा करनी चाहिये।

७–शिवनिन्दा करना और सुनना महापाप है; अतएव उससे सर्वथा बचना चाहिये।

८–शिवको परात्पर ब्रह्म मानते हुए भी शिव, विष्णु, ब्रह्मामें भेद मानना अमङ्गलका सूचक है। तीनों ही एक-रूप हैं, तीनोंकी उपासना एककी ही उपासना है।

९–शिवतत्त्व जाननेके लिये पक्षपात छोड़कर शिवपुराणका अध्ययन, मनन करना चाहिये।

१०–शिव-नामका जप प्रेमसहित निष्कामभावसे सदा करना चाहिये। **हनुमानप्रसाद पोद्दार**

दक्ष-यज्ञ-ध्वंस

एक बार पूर्वकालमें प्रयागराजमें मुनियोंका एक महान् सत्र हुआ, जिसमें देवता-लोग भी सम्मिलित हुए। पीछेसे प्रजा-पतियोंके पति महान् तेजस्वी दक्षप्रजापति भी वहाँ आये। उन्हें देखकर सारी सभा उनके सम्मानार्थ उठ खड़ी हुई। केवल आत्माराम शङ्करजी अपने आसनपर ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। दामादको अभिवादन न करते देख दक्षको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने शङ्करजीको सबके सामने अनेक दुर्वचन कहे और यह शाप दिया कि भविष्यमें उन्हें यज्ञमें भाग नहीं मिलेगा। शिवजीने अपने श्वशुरके वाग्बाणोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और थोड़ी देरके बाद वे चुपचाप वहाँसे उठकर चल दिये। दक्ष भी क्रोधमें भरकर उनके साथ ही उठ खड़े हुए और उन्होंने अपनी नगरी कनखलमें आकर शिवके अपमानका बदला लेनेके उद्देश्यसे एक महान् यज्ञका आयोजन किया, जिसमें उन्होंने शिवजीको छोड़कर अन्य सभी देवताओं तथा मुनियोंको निमन्त्रित किया।

शिवपत्नी दाक्षायणीने जब इस यज्ञका वृत्तान्त सुना तो उन्होंने बिना बुलाये ही अपने पिताके घर जानेके लिये शिवसे अनुमति चाही और शिवके समझानेपर भी अपना हठ न छोड़ा। तब शङ्करने लाचार हो उन्हें राजोचित ठाट-बाटके साथ उनके नैहर भिजवा दिया। इसप्रकार सती अपने पिताके यहाँ पहुँच तो गयीं, किन्तु वहाँ जाकर उन्होंने जो कुछ देखा उससे उन्हें बड़ी मर्मवेदना हुई। वहाँ वे क्या देखती हैं कि यज्ञमें सारे देवताओंका भाग मौजूद है, किन्तु शङ्करजीका भाग जान-बूझकर नहीं रक्खा गया है। केवल इतना ही नहीं, उनके पिता-माताने उनसे प्रेमपूर्वक सम्भाषणतक नहीं किया, उन्हें न बुलानेपर खेद प्रकट करना तो दूर रहा। उन्हें इस दुर्व्यवहारपर इतना दुःख हुआ कि उन्होंने क्रोधमें भरकर अपने पिताको बहुत कुछ खोटी-खरी सुनायी और यज्ञमें उपस्थित सभी लोगोंकी भर्त्सना की। यही नहीं, उन्होंने अपने शिवद्रोही पिताके अंशसे उत्पन्न हुए शरीरको रखना भी पाप समझा और वहीं सबके देखते-देखते, शङ्करका स्मरण करते हुए योगानलसे अपना शरीर भस्म कर दिया। यह करुणा-जनक दृश्य देखकर सबलोग सन्न रह गये और दक्षको बुरा-भला कहने लगे।

इधर जब शङ्करजीको यह दुःखपूर्ण संवाद मिला तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने तत्काल अपनी एक जटा उखाड़कर पत्थरपर दे मारी, जिससे उसके दो टुकड़े हो गये। एक टुकड़ेसे प्रलयाग्निके समान महाबली वीरभद्र उत्पन्न हुआ और दूसरेसे महाकाली। ये दोनों अपने स्वामीकी आज्ञा पाकर अपने-अपने परिकरोंके साथ दक्षके यज्ञमण्डपमें पहुँचे। वहाँ जाते ही इन्होंने बड़ी निर्दयतापूर्वक यज्ञका विध्वंस प्रारम्भ कर दिया और बात-की-बातमें सब कुछ तहस-नहस कर डाला। इनके सामने देवता-मुनि कोई भी नहीं ठहर सके। कुछको इन्होंने धराशायी कर दिया, कुछको अङ्ग-भङ्गकर छोड़ दिया और शेष अपने प्राण बचाकर भागे। दक्षका सिर इन्होंने धड़से अलग कर दिया और उसे महाकालीको सौंप दिया। महाकाली उसे हाथमें लेकर गेंदके समान उससे खेलने लगीं और पीछे उसे अग्निकुण्डमें डाल दिया। इसप्रकार सब कुछ नष्ट-भ्रष्टकर ये लोग वापस

शिवजीके पास चले आये। शिवजी इनके इस कार्यपर बड़े प्रसन्न हुए और इन्हें साधुवाद देकर विदा किया। पीछेसे देवतालोग शङ्करजीका क्रोध शान्त करने तथा उनसे अपने तथा दक्षके अपराधोंके लिये क्षमा माँगने, ब्रह्मा-विष्णुको साथ लेकर कैलासपर गये और शङ्करजीकी स्तुति करने लगे। शङ्करजीने उन सबका बड़ा आदर-सत्कार किया और आगमनका कारण पूछा। सारा हाल मालूम होनेपर वे बोले–'मैं किसीके अपराधका चिन्तन नहीं करता, केवल दक्षको शिक्षा देनेके हेतु मैंने यह सब लीला की है। अतः आपलोग जाइये और यज्ञको सम्पूर्ण कीजिये, मैं भी पीछे-पीछे आकर दक्षको जिलाता हूँ।'

देवतालोग उनके इन अनुग्रहपूर्ण वचनोंको सुनकर मनमें फूले न समाये और शङ्करकी अनेक प्रकार स्तुति करते हुए दक्षपुरी जा पहुँचे। पीछेसे शङ्करजीने आकर दक्षकी धड़में यज्ञीय पशु (बकरे) का सिर जोड़ दिया और उन्हें फिरसे जीवित कर दिया! दक्ष अत्यन्त कृतज्ञतापूर्ण शब्दोंमें उनकी स्तुति करने लगे और अन्य देवतालोग भी उनकी स्तुतिमें शामिल हो गये। शिवजी बोले—'मैं, ब्रह्मा और विष्णु—तीनों एक हैं। हममें जो भेदबुद्धि करता है वह निश्चय ही घोर नरकमें गिरता है। बिना ब्रह्माजीको प्रसन्न किये विष्णुकी भक्ति नहीं मिलती और विष्णुकी भक्ति किये बिना मेरी भक्ति किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकती। हरिभक्त होकर जो मेरी निन्दा करता है और शैव होकर जो विष्णुकी निन्दा करता है, उन दोनोंको ही हमारे शापके कारण तत्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती।' (शिवपुराण) यह कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये और अन्य सब देवतालोग भी उनका गुणगान करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। इसप्रकार शङ्करकी कृपासे दक्षका यज्ञ समाप्त हुआ।

शिव-सती-विवाह

सती-विरहमें शङ्करजीकी विचित्र दशा हो गयी। वे दिन-रात सतीका ही ध्यान करते और उसीकी चर्चा करते। सतीने भी देहत्याग करते समय यही सङ्कल्प किया था कि मैं पर्वतराज हिमालयके यहाँ जन्म ग्रहणकर फिरसे शङ्करजीकी अर्द्धाङ्गिनी बनूँ। भला जगदम्बाका सङ्कल्प कहीं अन्यथा हो सकता है? वे काल पाकर हिमालय-पत्नी मेनकाके गर्भमें प्रविष्ट हुईं और यथासमय उनकी कोखमेंसे प्रकट हुईं। पर्वतराजकी दुहिता होनेके कारण वे 'पार्वती' कहलायीं। जब वे कुछ सयानी हुईं तो उनके माता-पिताको उनके अनुरूप वर तलाश करनेकी फिक्र पड़ी। एक दिन अकस्मात् देवर्षि नारद पर्वतराजके भवनमें आ पहुँचे और कन्याको देखकर कहने लगे कि 'इसका विवाह शङ्करजीके साथ होना चाहिये, वही इसके योग्य वर हैं।' यह जानकर कि साक्षात् जगन्माता सती ही उनके यहाँ प्रकट हुई हैं, पार्वतीके माता-पिताके आनन्दका ठिकाना न रहा। वे मन-ही-मन अपने भाग्यकी सराहना करने लगे।

एक दिन अकस्मात् शङ्करजी सती-विरहमें व्याकुल, घूमते-घामते उसी प्रदेशमें जा पहुँचे और पास ही गङ्गावतरण-स्थानमें तपस्या करने लगे। हिमालयको जब इस बातका पता लगा तो वे अपनी पुत्रीको साथ लेकर शिवजीके पास पहुँचे और अनुनयपूर्वक अपनी पुत्रीको सेवामें ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। शिवजीने पहले तो उनकी सेवा स्वीकार करनेमें आनाकानी की, किन्तु पीछे पार्वतीकी अनुपम भक्ति देखकर उनका आग्रह न टाल सके। अब तो पार्वती प्रतिदिन अपनी सखियोंको साथ ले शङ्करजीकी सेवामें उपस्थित होने लगीं। वे उनके बैठनेका स्थान झाड़-बुहारकर साफ कर देतीं और उन्हें किसी प्रकारका कष्ट न हो, इस बातका सदा ध्यान रखतीं। वे नित्यप्रति उनके चरण धोकर चरणोदक ग्रहण करतीं और षोडशोपचारसे उनकी पूजा करतीं। इसप्रकार पार्वतीको लोकशङ्कर भगवान् शङ्करकी सेवा करते सुदीर्घ काल व्यतीत हो गया। किन्तु पार्वती-जैसी त्रिभुवनसुन्दरी पूर्णयौवना बालासे इसप्रकार एकान्तमें सेवा लेते रहनेपर भी शङ्करके मनमें कभी विकार नहीं हुआ। वे सदा आत्मरमण करते हुए समाधिमें निश्चल रहते।

इधर देवताओंको तारक नामका असुर बड़ा त्रास देने लगा। यह जानकर कि शिवके पुत्रसे ही उसकी मृत्यु हो सकती है, वे शिव-पार्वतीका विवाह करानेकी चेष्टा करने लगे। उन्होंने शिवको पार्वतीके प्रति अनुरक्त करनेके हेतु कामदेवको सिखा-पढ़ाकर उनके पास भेजा, किन्तु पुष्पा-

युधका पुष्पबाण भी शङ्करके मनको विक्षुब्ध न कर सका। उलटा वह उनकी क्रोधाग्निसे भस्म हो गया, शङ्कर भी वहाँ अधिक रहना अपनी तपश्चर्याके लिये अन्तरायरूप समझ कैलासकी ओर चल दिये। पार्वतीको शङ्करकी सेवासे वञ्चित होनेका बड़ा दुःख हुआ, किन्तु उन्होंने निराश न होकर अबकी बार तपके द्वारा शङ्करको सन्तुष्ट करनेकी मनमें ठानी। उनकी माताने उन्हें सुकुमार एवं तपके अयोग्य समझकर बहुत कुछ मना किया। इसीलिये उनका 'उमा'—उ+मा (तप न करो)—यह नाम प्रसिद्ध हुआ; किन्तु पार्वती अपने सङ्कल्पसे तनिक भी विचलित न हुईं। वे तपस्याके हेतु घरसे निकल ही पड़ीं और जहाँ शिवजीने तपस्या की थी उसी शिखरपर तपस्या करने लगीं। तभीसे उस शिखरको 'गौरी-शिखर' कहने लगे। वहाँ उन्होंने पहले वर्ष फलाहारसे जीवन व्यतीत किया, दूसरे वर्ष वे पर्ण (वृक्षोंके पत्ते) खाकर रहने लगीं और फिर तो उन्होंने पर्णका भी त्याग कर दिया, इसीलिये वे 'अपर्णा' कहलायीं। इसप्रकार उन्होंने तीन हजार वर्षतक घोर तपस्या की। उनकी कठोर तपश्चर्याको देखकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी दंग रह गये।

अन्तमें भगवान् आशुतोषका आसन हिला। उन्होंने पार्वतीको परीक्षाके लिये पहले सप्तर्षियोंको भेजा और पीछे स्वयं बटुवेश धारणकर पार्वतीकी परीक्षाके निमित्त प्रस्थान किया। जब इन्होंने सब प्रकारसे जाँच-परखकर देख लिया कि पार्वतीकी उनमें अविचल निष्ठा है, तब तो वे अपनेको अधिक देरतक न छिपा सके। वे तुरन्त अपने असली रूपमें पार्वतीके सामने प्रकट हो गये और उन्हें पाणिग्रहणका वरदान देकर अन्तर्धान हो गये। पार्वती अपने तपको पूर्ण होते देख अपने घर लौट आयीं और अपने माता-पितासे शङ्करजीके प्रकट होने तथा वरदान देनेका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अपनी एकमात्र दुलारी पुत्रीकी कठोर तपश्चर्याको फलोन्मुख देखकर माता-पिताके आनन्दका पार नहीं रहा। पीछेसे शङ्करजीने सप्तर्षियोंको विवाहका प्रस्ताव लेकर हिमालयके पास भेजा और इसप्रकार विवाहकी शुभ तिथि निश्चित हुई। शङ्करजीने नारदजीके द्वारा सारे देवताओंको विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये आदरपूर्वक निमन्त्रित किया और निश्चित तिथिको ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र प्रभृति सारे प्रमुख देवता अपने-अपने दल-बल-सहित कैलासपर आ पहुँचे। उधर हिमालयने विवाहके लिये बड़ी धूम-धामसे तैयारियाँ कीं और शुभलग्नमें शिवजीकी बारात हिमालयके द्वारपर आ लगी। पहले तो शिवजीका विकट रूप तथा उनकी भूत-प्रेतोंकी सेनाको देखकर मैना बहुत डर गयी और उन्हें अपनी कन्याका पाणिग्रहण करानेमें आनाकानी करने लगी। पीछेसे जब उसने शङ्करजीका करोड़ों कामदेवोंको लजानेवाला सोलह वर्षकी अवस्थाका परमलावण्यमय रूप देखा तो वह देह-गेहकी सुधि भूल गयी और उसने शङ्करपर अपनी कन्याके साथ-ही-साथ अपनी आत्माको भी न्योछावर कर दिया। हर-गौरीका शुभविवाह आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ, हिमाचलने बड़े चावसे कन्या दान दिया। विष्णुभगवान् तथा अन्यान्य देव और देवरमणियोंने नानाप्रकारके उपहार भेंट किये। ब्रह्माजीने वेदोक्त रीतिसे विवाह करवाया। सबलोग अमित उछाहसे भरे अपने-अपने स्थानोंको लौट गये।

बोलो शिवा और शिवकी जय!
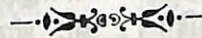
भगवान् शिव

(लेखक— श्रीरसूल अहमद 'अबोध')

'भगवान्‌के असंख्य स्वरूप हैं; परन्तु मनुष्यका असंख्यसे प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम एकसे होता है और वह अनेकको एक कर देता है। अनेकमें एकको यथार्थतः देखना और एकमें ही अनेकको कल्पित देखना, यही सत्य है, पूर्ण है और प्रेम है।'

भगवान् शिव इसी प्रकार अनेक होते हुए ही एक हैं, उनका व्यक्त स्वरूप बड़ा विचित्र है।

शिवका स्वरूप त्यागकी मूर्ति है, वे चिता-भस्म रमाते हैं; संसारके मोहकी भस्म, द्वैतकी भस्म ही, यह चिता-भस्म है। शिवजी मुण्डमाला धारण करते हैं, वास्तवमें यह संसारसे मोह त्यागनेका सूचक है। वे सर्पकी कौपीन लगाते हैं, यह उनके विश्वप्रेमका सूचक है।

इन बातोंको यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो शिवजीमें त्यागकी मनोहर झाँकी दिखायी पड़ेगी। हिन्दू-धर्मानुसार भगवान् शिव परमात्माके अवतार हैं। इससे

यह समझना चाहिये कि भगवान् किसप्रकार त्यागमय हैं तथा सांसारिक कर्मोंसे वस्तुतः दूर हैं। भगवान् शिवके स्वरूपसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि जब मनुष्य अपने शरीरमें अनासक्तिकी भस्म रमा ले और संसारका वास्तवमें त्याग कर दे तभी उसे भगवान्के दर्शन हो सकते हैं, 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का साक्षात्कार हो सकता है।

क्षमा-याचना

कल्याणका 'शिवाङ्क' प्रकाशित करनेकी कल्पना मनमें बहुत कालसे थी, परन्तु कई कारणोंसे वह पहले पूरी न हो सकी। भगवान्को जब जो कार्य करवाना होता है, तभी वह होता है। मनुष्यको परमेश्वरप्रीत्यर्थ शास्त्रसम्मत प्रयत्न करना चाहिये। फल तो उन जगन्नियन्ताकी इच्छानुसार होगा। वे अपना काम आप ही करवाते हैं, आप ही सँभालते हैं, आप ही शक्ति देते हैं, आप ही सामान जुटाते हैं और आप ही लोगोंको प्रेरणाकर सहायता करवाते हैं। यह बात इस बार ठीक सिद्ध हो गयी। पहले यह आशङ्का थी कि 'शिवाङ्क' के लिये सामग्री कहाँसे, कैसे एकत्र की जायगी। काम भी इस बार बहुत देरसे आरम्भ किया गया, परन्तु साश्चर्य आनन्दके साथ कहना पड़ता है कि भगवान् शिवने सब कुछ पहलेसे ही मानों कर रक्खा था, अपने-आप सामग्री एकत्र होती गयी और आज यह, शिवकी चीज, इस रूपमें शिवके चरणोंमें समर्पित है। इस बार जितने लेख आये, उतने इससे पहले कभी किसी विशेषाङ्कके लिये नहीं आये थे। कुछ मित्रोंका अनुरोध था और हमारा भी खयाल था कि 'शिवाङ्क' बहुत मोटा नहीं होना चाहिये। चार सौ पृष्ठकी सामग्री काफी होगी, परन्तु लेखोंकी संख्या और उत्तमता देखकर वह विचार छोड़ देना पड़ा। परिशिष्टाङ्कसमेत लगभग ६७५ पृष्ठकी बहुत ठोस सामग्री दी जानेपर भी प्रायः चार सौसे अधिक लेख और कविताएँ बच गयीं। लेख अबतक भी आ ही रहे हैं। चित्र-संख्या भी हमारी कल्पनासे बहुत अधिक बढ़ गयी। हमलोगोंकी अल्पज्ञता, क्षुद्रशक्ति और परिमित पुरुषार्थको देखते यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि हमारी किसी योग्यतासे यह कार्य सम्पन्न हुआ है। भगवान् शङ्करजीकी कृपासे ही सब कुछ होता है और हुआ है।

जिन सम्मान्य महानुभावोंने 'शिवाङ्क'के सम्पादनमें हमें सत्परामर्श देकर, लेखकोंके नाम-पते बतलाकर, लेखकोंसे लेखके लिये अनुरोधकर, लेख लिखवाकर, अन्य भाषाओंसे लेखोंका अनुवाद कर, चित्र बनाकर, चित्र प्रदानकर, ब्लॉक देकर, सामग्री-संग्रहमें सहयोग देकर तथा अन्य अनेक प्रकारसे हमारी सहायता की है, उनकी सूची इस बार बहुत लम्बी है, हम हृदयसे उन सब महानुभावोंके कृतज्ञ हैं। उन सज्जनोंमेंसे निम्नलिखित नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं—

पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए०, पं० श्रीजीवनशङ्करजी याज्ञिक, महाराजा बहादुर मैसूर, महाराजा बहादुर उदयपुर, जगद्गुरु श्री १०८ पञ्चाक्षर शिवाचार्यजी, श्रीरमण महर्षि, पं० श्रीवीरभद्रजी शास्त्री, पं० श्रीकाशीनाथजी शास्त्री, श्री ए० वेङ्कट सुब्बिया, श्रीशारदाप्रसादजी, श्रीपन्नालाल सिंहजी, महन्त श्रीशिवनारायणदासजी, श्रीमायाशङ्कर दयाराम, श्रीमुनिलालजी डुमराँव, पं० श्रीमगनलालजी शर्मा, श्रीरामयशजी गुप्त, श्रीबद्रीप्रसादजी सांकरिया, श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, श्रीसुनीतिकुमार चटर्जी एम० ए०, डी० लिट्, पं० श्रीरामेश्वर गौरीशङ्करजी ओझा एम० ए०, श्रीगौरीशङ्करजी गनेड़ीवाला, शिल्पसिद्धान्ती श्रीसिद्धलिङ्गस्वामीजी, श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एम० ए०, राय श्रीकृष्णदासजी, श्रीरणछोड़लालजी ज्ञानी एम० ए०, पं० श्रीविठ्ठलनाथजी दीक्षित शास्त्री, श्रीशिवशङ्करजी नागर, श्रीजदुराम रविशङ्करजी, श्री एस० आर० यू० सावूर एम० ए०, डी० एस० सी०, बार-एट-लॉ, श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी एम० ए०, डि० क०, एजेण्ट साउथ इण्डियन रेलवे, पं० श्रीलक्ष्मण नारायणजी गर्दे, ० श्रीगिरधरलालजी शास्त्री, श्रीशम्भुप्रसाद हरप्रसादजी देसाई बी० ए०, श्रीसत्येन्द्रनाथ बनर्जी चित्रकार, श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी, पं० श्रीदयाशङ्करजी दुबे एम० ए०, पं० श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी, प्रो० एन० डी० रॉयरिक, इ० भ० प० श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत, पं० श्रीपञ्चाननजी तर्करत्न, पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी, श्रीसोहनलालजी गोयलीय, मन्त्री सद्भक्तिप्रसारक मण्डली

जोगेश्वरी, पं० श्रीगणेशदत्तजी शर्मा विद्यावारिधि, पं० श्रीहनूमान्जी शर्मा, पं० श्रीगुरुप्रसादजी मिश्र, श्रीमथुराप्रसादजी, पं० श्रीविष्णु बालकृष्ण कन्नडकर, श्रीसुब्ब लक्ष्मी अम्मल बी० ए०, श्रीसावित्रीदेवीजी, श्रीमदनगोपालजी सिंहल, पं० श्रीविधुशेखर भट्टाचार्य एम० ए० शान्तिनिकेतन, पं० श्रीमधुसूदनजी कौल शास्त्री एम० ए०, पं० श्रीराधेश्यामजी झा, श्रीहीरालालजी, राजगुरु नेपाल, सेठ श्रीवल्लभदासजी तुलसीदास, श्रीचन्दूलाल बहेचरलाल पटेल बी० ए० गोंडल, सेठ श्रीश्रीधरजी पोद्दार, राजासाहेब टेकाली, श्रीरामदयाल मजूमदार एम० ए०, पं० श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी, पं० श्रीसूर्यनारायणजी व्यास, श्रीसनेहीरामजी डूँगरमल, श्रीतनसुखरायजी फूलचन्द, श्रीरामचन्द्रजी शिवदत्तराय आदि-आदि।

इनमें भी पं० श्रीविष्णु बालकृष्ण जोशी कन्नडकर, श्रीपन्नालालसिंह नेहालिया, श्रीसावित्रीदेवीजी, बाबू भगवतीप्रसादसिंहजी, एन० डी० रॉयरिक, शिल्पसिद्धान्ती श्रीसिद्धलिङ्गस्वामी, चीफ कमर्शियल सु० प० साउथ इण्डियन रेलवे, पं० श्रीकाशीनाथजी शास्त्री और पं० श्रीवीरभद्रजी शास्त्रीके तो हम बहुत ही ऋणी हैं। इन्होंने अपनी बहुमूल्य चित्र-सामग्री देकर और शेषोक्त सज्जनने तेलुगु, कनाडी आदि भाषाओंमें लिखे लेखोंका अनुवाद करके तो और भी बड़ी सहायता की है।

'शिवाङ्क' के लिये हिन्दीके अतिरिक्त संस्कृत, मराठी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, कनाडी, तेलुगु आदिमें अनेकों लेख आये थे, जिनका अनुवाद कराया गया। इस बार भी लेखकोंमें युक्तप्रान्त, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्णाटक आदि भारतीय प्रान्तोंके अतिरिक्त इङ्गलैण्ड और रूसके भी विद्वान् हैं। इनमें विविध सम्प्रदायोंके आचार्य, सनातनी, आर्य, ब्राह्म, शैव, वैष्णव, सिख, मुसल्मान, पारसी, ईसाई आदि सभी हैं। इसीसे कल्याणकी लोकप्रियता और उसपर सबके अकृत्रिम अनुरागका परिचय मिलता है।

हम अपने कृपालु लेखकों और कवियोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपनी अनेकों भूलोंके लिये उन सबसे हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करते हैं। बहुत अधिक लेखोंके आ जानेके कारण कई कम्पोज हुए लेख भी नहीं छापे जा सके हैं। लेखकोंने अपना बहुमूल्य समय और शक्ति लगाकर छपनेके लिये ही लेख लिखनेकी कृपा की थी। कुछ निःस्पृह महात्माओंको छोड़कर शेष किन्हीं भी लेखकका परिश्रमसे लिखा हुआ लेख न छपना उनके लिये दुःखका कारण हो सकता है। इस बातको हम भलीभाँति जानते हैं, तथापि हमें बाध्य होकर यह दुःखदायी कार्य करना पड़ा है। हम प्रार्थना करके माँगे हुए लेखोंमेंसे भी कई लेख नहीं छाप सके, यही हमारे लिये बड़ी लज्जाकी बात है; परन्तु आशा है, लेखक महानुभाव हमारी स्थिति देखकर कृपापूर्वक क्षमा करेंगे। स्थानाभाव और अन्यान्य कारणोंसे काँट-छाँट भी की गयी है, कई लेख अधूरे ही छपे हैं, कुछका केवल अंशमात्र ही छपा है। इन सब अपराधोंके लिये कृपालु लेखकोंसे हम पुनः करबद्ध क्षमा-याचना करते हैं।

इस अङ्कके लिये जितने विषय सोचे गये थे, उनमेंसे बहुत-से रह गये हैं। इच्छा न रहनेपर भी विषयकी गम्भीरताके कारण किसी-किसी लेखकी भाषामें कुछ कठिनता भी हो गयी है। विविध प्रकारके रंग-बिरंगे विचार-सुमनोंसे शिवकी पूजा करनेके लिये 'शिवाङ्क'में भगवान् श्रीशिवजीके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न विद्वानोंके भिन्न-भिन्न मतोंका सङ्ग्रह किया गया है। मतोंकी विभिन्नताके कारण कुछ लेखोंमें परस्पर भेद दिखलायी देगा, इससे बुरा न मानकर पाठकोंको अपने ही इष्टदेव एक ही परात्पर भगवान्की विभिन्न प्रकारसे की हुई स्तुति समझकर प्रसन्न होना चाहिये।

'शिवाङ्क'के प्रकाशित सभी मत न तो कल्याण-सम्पादकके हैं और न 'कल्याण' के ही हैं। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सबने शिव-महिमा गायी है।

शिव-महिमाको विविध भावोंसे व्यक्त कराना, भगवान् शिव, विष्णु आदिके भेदको दूर करनेकी चेष्टा करना, शिवपूजाकी प्राचीनता और वैदिकताको सिद्ध करना, शिवतत्त्वके व्याजसे एक ही परमात्मा परमशिव या परमविष्णुका गुणगान करना, भगवान्के प्रति लोगोंकी शिथिल होती हुई श्रद्धाको पुनः दृढ़ करना और भवदुःखसे दुखी, निरुपाय जीवोंको कल्याणका मार्ग दिखाना 'शिवाङ्क'के प्रकाशनका उद्देश्य था। पता नहीं, इसमें कहाँतक सफलता हुई है। 'शिवाङ्क' जैसा कुछ हुआ है, आपलोगोंके सामने है। इसके अच्छे-बुरेका और उपयोगी-अनुपयोगीका निर्णय आपलोग ही करें। अवश्य ही इस अङ्कका सम्पादन करनेमें हमलोगोंने, अपनी अयोग्यताका पता होनेपर भी,

अनधिकार चेष्टा की है, इसके लिये गुरुजन, महात्मा, सन्त, ज्ञानी, भगवत्-प्रेमी, तत्त्वज्ञ और विद्वज्जन कृपया क्षमा करें।

विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी, सर्वात्मा, आशुतोष भगवान् शिव आपको और हमको सदा अपनी महती कृपाका पात्र बनाये रक्खें।

विनीत—सम्पादक

रुद्राष्टक

अलख अनादि अज अविगत गुनातीत,
निर्मम निरहङ्कार परम आनन्द-कन्द।
आगम निगमहूँ अगम जाको गुन-ग्राम,
बरनति बानी, शेष सहस मुखारविन्द॥
'सूरज' अनन्य शुचि सुखद शरण्य वन्द्य,
पद-युग-कञ्ज मन्जु मानस मुनीश-वृन्द।
भगत चकोर चित पूरन अमन्द चन्द,
शङ्कर महेश्वर चन्द्रशेखर चिदानन्द॥

भ्राजति विभूति पूति शुक्ल शर्वरीश तन,
राजति गिरीश-सुता वाम अंग ललकी।
ललित ललाट विधु बिलसत दर्शनीय,
कमनीय कान्ति जटाजूट गङ्गजलकी॥
'सूरज' त्रिलोचन विमोचन त्रिविध ताप,
वदन सदन शोभा अम्बुज अमलकी।
हलकति माला उर उरग उमेशजूके,
झलकति रेख कम्बु-कण्ठ हलाहलकी॥

निर्गुण निराकार निरुपम अनीह अज,
पावन परम पुञ्ज पूरन प्रकाशके।
'सूरज' पुरातन परेश वन्दनीय विभु,
मर्दन मदनके कदन भव-पाशके॥
शिति-कण्ठ शूली वृष-वाहन वरिष्ट इष्ट,
साधन सुलभ जन आश अभिलाशके।
घट-घट-वासी सुख-रासी करुणायतन,
अघ-ओघ-नासी हैं निवासी कैलाशके॥

सकल विभूति देति मलिन मसान-भूति,
पन्नग विषम विष सुधा सुख मूल है।
'सूरज' भयावनि अपावनि कपाल-माल,
भव-भीति-दावनि पुनीत गंग तूल है॥
नाम वामदेव दिशि दाहिन रहत दीन,
भाव अनुकूल पै स्वभाव प्रतिकूल है।
मङ्गल करत वेष नगन अमङ्गलसों,
हरत त्रिशूल कर धरत त्रिशूल है॥

आशु वरदानि वर विरद बखानैं कौन,
'सूरज' निकाम होत नाम गुहरायेते।
ध्यान ही धरत कल्यानको निधान देत,
वन्दत अनन्द ज्यों परम पद पायेते॥
कर जुग जोरे जग-सम्पदा जुरत आइ
मृत्युहूँ पै विजय होति मंत्र-जप लायेते।
बेल तीन पात तीन लोक रिद्धि-सिद्धि देत,
चारि फल देत चारि चाउर चढ़ायेते॥

शिव शिव कहत दहत दुख-दारिद त्यों,
भव भव रटत कटत भव-मोह-जाल।
हर हर करत हरत तन त्रय ताप,
शम्भु शम्भु गावत भगावत विथा विशाल॥
महादेव भजत भजत कलि-मल-कोश,
रुद्रहिं उचारत प्रचारत कराल काल।
जपत महेश होत 'सूरज' अशेष सुख,
शङ्कर पुकारत सुधारत सुअङ्क-भाल॥

वेदके स्वरूप परिपूरन परमब्रह्म,
सुयश अनूप तन कान्ति निशि-कान्तकी।
आशुतोष अतुल विदारन दुरित दोष,
शान्ति-सुख-पुञ्ज प्रभा भव-शोक-भ्रान्तकी॥
विशद वरदानी न बखानी विरद जाति,
दूजे देव दानिनकी कथा उपरान्तकी।
'सूरज' अनाथ-नाथ दीनानाथ विश्वनाथ,
अशरन-शरन हरन भीर भ्रान्तकी॥

आरति-हरन भक्त-सङ्कट-शमन शिव,
सेवत सकल सुख सन्तत जुरत आय।
जोग करि जो गति न पावत जोगीश मुनि,
बसत पुरारि पुर आवति तुरत धाय॥
तीन पुर तीनि काल ताप अरि त्रिपुरारि,
दीन दुख मेटि धाम-धनसों भरत जाय।
लीजिये उबारि भवसागरसों मोहूँ प्रभु,
पाहि कहि, पाहि कहि 'सूरज' परत पाय॥

सोरठा

रुद्राष्टक मन लाय, जो नर नितप्रति गाइहैं।
सङ्कट शोक नसाय, मन-वाञ्छित फल पाइहैं॥

—रामभरोस पाण्डेय 'सूर्य'
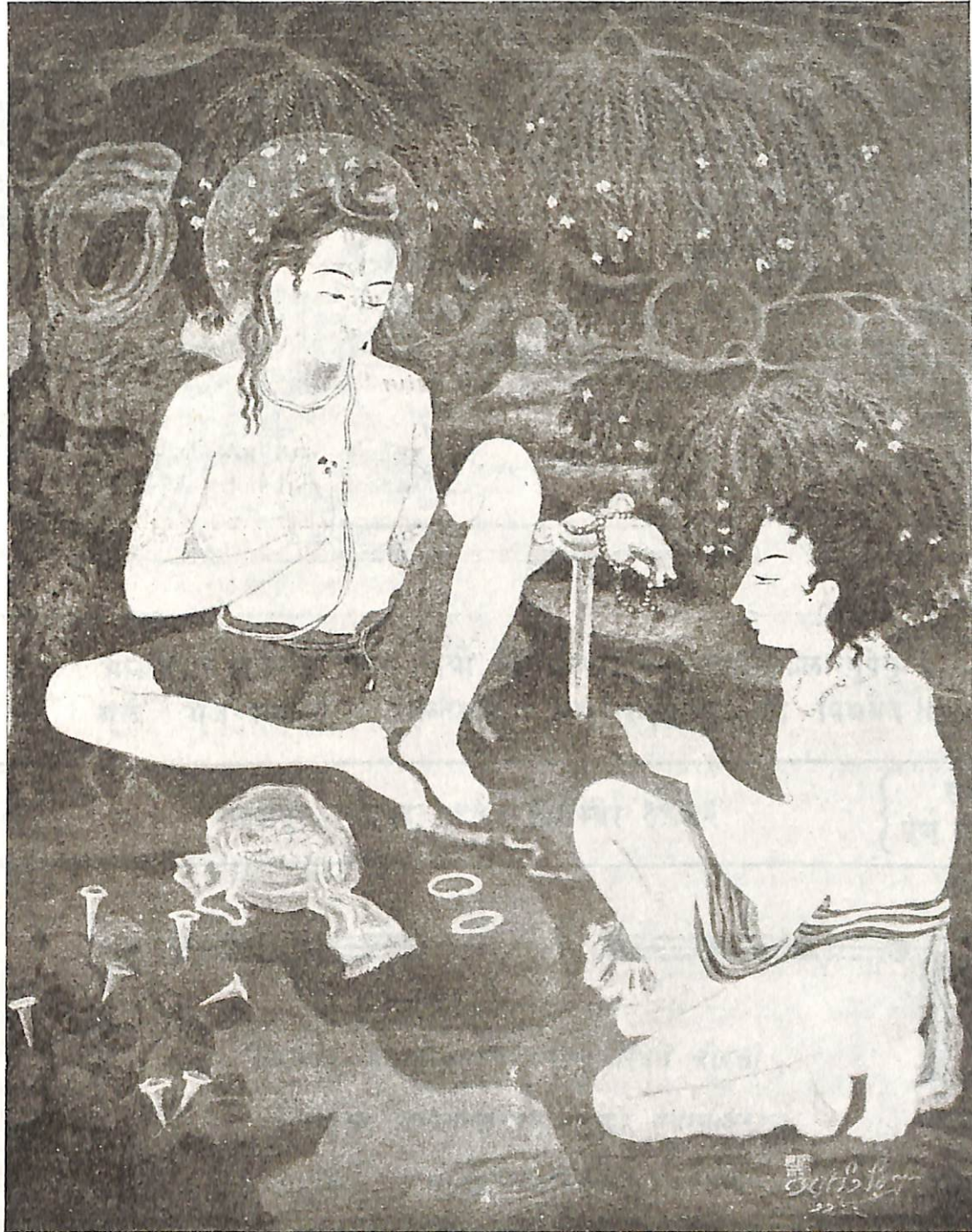
वर्ष ८ }
अंक २ }

भक्त माणिक वाशगर

{ भाद्रपद
{ १९९०
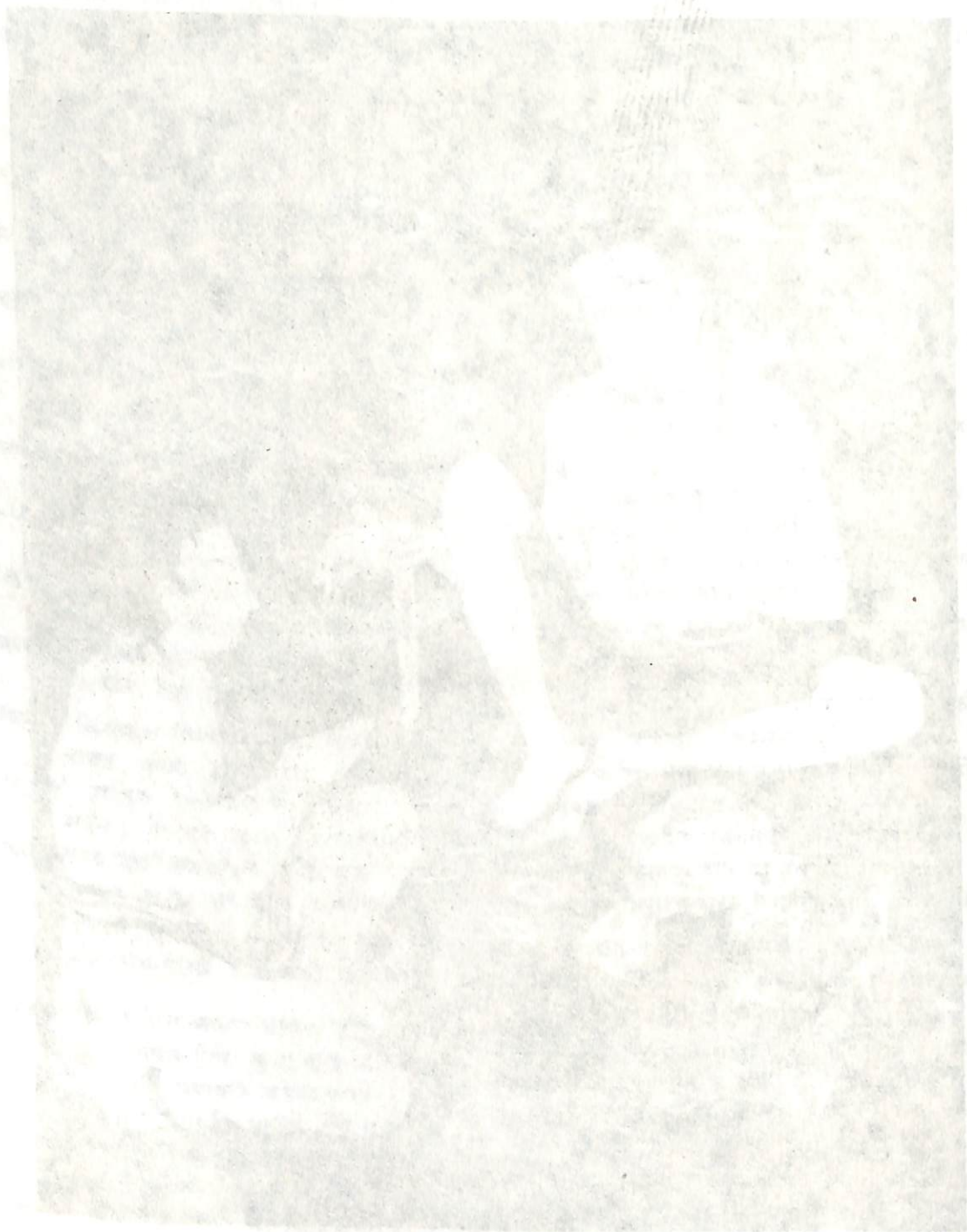
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
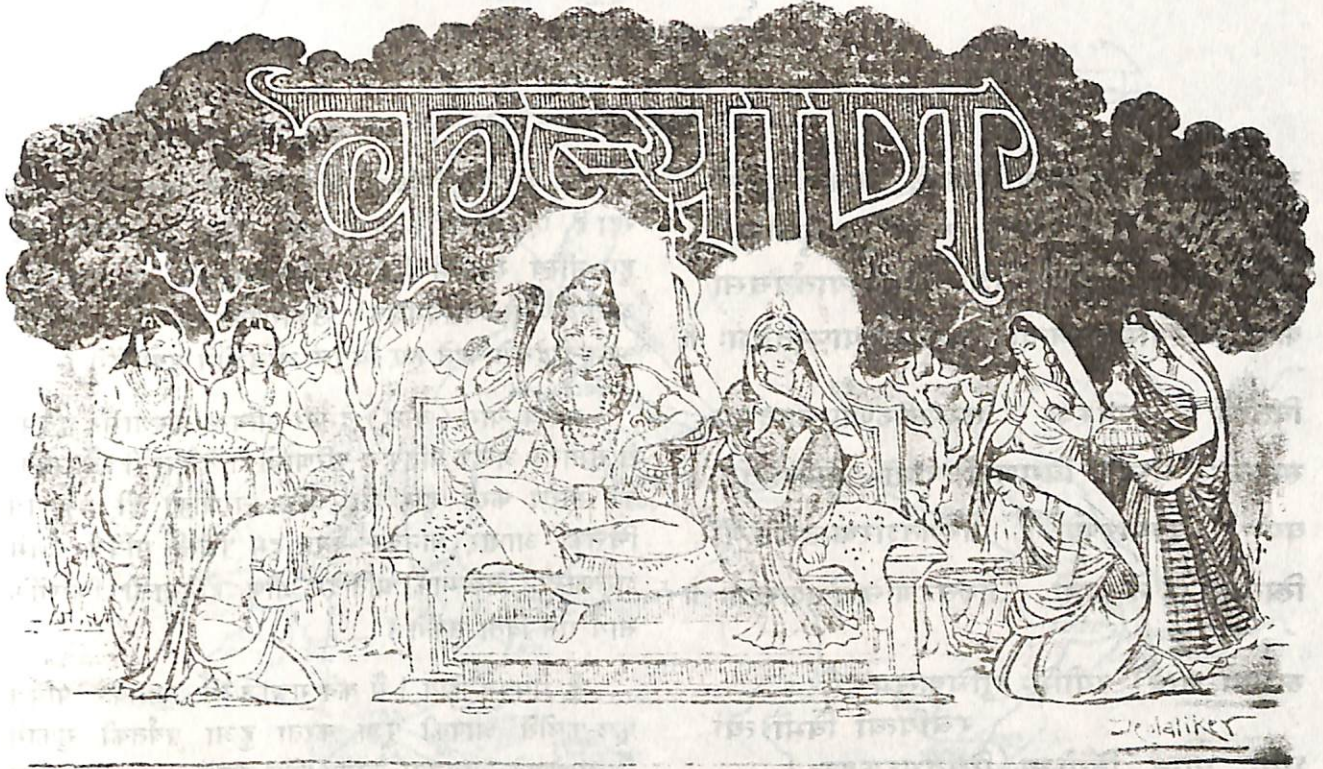
आराध्य यं सुमनसा पुरुषाः स्त्रियो वा कल्याणकल्पतरुमुक्तिफलान्युपेयुः ।
मूलं भजध्वमनिशं परमन्तमीशं ब्रह्मस्वरूपमुमया सह विघ्नयैव ॥

वर्ष ८ } गोरखपुर, भाद्रपद १९९० सितम्बर १९३३ { संख्या २
पूर्ण संख्या ८६

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः ।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः ॥

कामना

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः।
भवाभोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्यार्तवचसा
कदा स्यामाऽऽनन्दोद्गमबहुलबाष्पाप्लुतदृशः॥

जो फैलती हुई स्निग्ध चाँदनीसे अत्यन्त उज्ज्वल हो रहा है, ऐसे गङ्गाजीके किसी सुन्दर तटपर सुखपूर्वक बैठे हुए नीरव रजनीमें विश्व-प्रपञ्चसे व्याकुल हो कब हम आर्त-वाणीसे 'शिव-शिव' उच्चारणकर अपनी आँखोंको आनन्दोद्रेकसे बहते हुए विपुल आँसुओंमें डुबो लेंगे?

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामा विधिगतीः।
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणै-
स्त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैकशरणाः॥

सर्वस्व त्याग (बाँट) देनेपर अत्यन्त करुणाभरे हृदयसे संसारके अन्दर प्रतिकूल परिणामोंको देनेवाली दैवगतिका स्मरण करते हुए शङ्करजीके चरणोंको ही एकमात्र चित्तका आधार मानकर क्या हम किसी पवित्र वनमें शरत्कालीन चन्द्रमाकी प्रतिदिन क्षीण होनेवाली किरणोंके साथ रात बिता सकेंगे?

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलै-
र्र्चयित्वा विभो त्वां
ध्येये ध्यानं नियोज्य क्षितिधरकुहर-
ग्रावपर्यङ्कमूले।
आत्मारामोऽफलाशी गुरुवचनरत-
स्त्वत्प्रसादात्स्मरारे
दुःखान्मोक्ष्ये कदाऽहं तव चरणरतो
ध्यानमार्गैकनिष्ठः॥

हे भगवन् शिव! मैं कब गङ्गाजलमें स्नानकर पवित्र फूल-फलोंसे आपकी पूजा करता हुआ पर्वतकी गुफामें शिलाखण्डके आसनपर बैठकर ध्येय ब्रह्ममें ध्यान लगाऊँगा और फलकी कामनाओंको छोड़ अपने आपमें सन्तुष्ट रहकर गुरुके उपदेशोंमें तत्पर हो आपकी कृपासे एकमात्र ध्यान-मार्गमें आस्था रखकर आपके ही चरणोंमें लीन हो कब सांसारिक दुःखोंसे छुटकारा पा सकूँगा?

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः
सदा पुण्येऽरण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः॥

सर्प अथवा मालामें, बलवान शत्रु या मित्रमें, मणि अथवा मिट्टीके ढेलेमें, फूलोंकी शय्या या पत्थरमें और तृण अथवा तरुणीमें समान भाव रखते हुए मेरे दिन किसी पुनीत काननमें 'शिव! शिव!! शिव!!!' रटते हुए बीतें!

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारितैः
रे रे कोकिल! कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते॥

अरे कामदेव! धनुषकी टङ्कारोंसे अपने हाथको तू क्यों कष्ट दे रहा है? अरी कोयल! तू भी अपने मृदुल कलनादोंसे क्या व्यर्थ कोलाहल मचा रही है? हे भोलीभाली रमणी! तुम्हारे इन स्नेहयुक्त, चतुर, मोहन एवं मधुर चञ्चल कटाक्षोंसे भी अब कुछ नहीं हो सकता? मेरे चित्तने तो श्रीचन्द्रशेखरके चरणोंका ध्यानरूपी अमृत पान कर लिया है।

—भर्तृहरिः

भारतके
प्रधान शिवपीठ
नाम स्थान नाम स्थान
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग
१. सोमनाथ प्रभास (वेरावल)—काठियावाड़
२. मल्लिकार्जुन श्रीशैल (कृष्णानदीके तटपर)
३. महाकाल उज्जैन (ग्वालियर राज्य)
४. ओङ्कारेश्वर मोरटक्का (मालवा)—नर्मदा-तटपर
५. केदारनाथ हिमालय (टेहरी-गढ़वाल)
६. भीमशङ्कर भीमा नदीके उद्गमके पास
७. विश्वनाथ काशी
८. त्र्यम्बकेश्वर नासिक (गोदावरीतटपर)
९. वैद्यनाथ परली (निज़ाम राज्य) अथवा देवघर (बिहार)
१०. नागेश्वर गोमती द्वारका (काठियावाड़)
११. रामेश्वर सेतुबन्ध (रामेश्वरम्)
१२. घुश्मेश्वर अथवा घृष्णेश्वर इलौरा (देवगिरि)—निज़ाम राज्य
पञ्च तत्वलिङ्ग
१. पृथ्वी लिङ्ग (एकाम्रेश्वर) शिवकाञ्ची
२. अप् (जल) लिङ्ग) जम्बुकेश्वर (श्रीरङ्गम्)—कावेरी-तटपर
३. तेजोलिङ्ग तिरुवण्णमलै (अरुणाचलम्)
४. वायुलिङ्ग ४ कालहस्ती
५. आकाशलिङ्ग (चिदम्बरम् (कावेरीके मुहानेपर)
अन्य प्रसिद्ध शिवमन्दिर
१ पशुपतिनाथ काठमाण्डू (नेपाल)
२. मीनाक्षी-सुन्दरेश्वर मदुरा
३ कुम्भेश्वर कुम्भकोणम्
४ बृहदीश्वर तञ्जौर
५ पक्षी तीर्थ चिंगलपट
६ महाबलेश्वर पूनाके पास
७ अमरनाथ कश्मीर
८ वैद्यनाथ काँगड़ा
९. तारकेश्वर बंगाल (कलकत्तेके समीप)
१० भुवनेश्वर उड़ीसा (कटकके पास)
११. कँडारिया महादेव खजुराहो (बुन्देलखण्ड)
१२. एकलिङ्ग उदयपुर (मेवाड़), राजपूताना
१३. गौरीशङ्कर जबलपुर (मध्यप्रदेश)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग

['द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग' विषयपर हमारे पास आठ लेख आये हैं जिनमेंसे पं० श्रीदयाशङ्करजी दुबे एम० ए०, एल-एल० बी० (प्रो० प्रयाग विश्वविद्यालय *), श्रीपन्नालालसिंहजी (नेहालिया स्टेट), श्रीभगवती-प्रसादसिंहजी एम० ए०, डिप्टी कलेक्टर, फतेहगढ़ (यू० पी०), श्रीगौरीशङ्करजी गनेड़ीवाला (छपरा) तथा पं० श्रीरामचन्द्रजी शर्मा (उदयपुर, मेवाड़)–इन पाँच सज्जनोंके लेख तो बहुत ही सुन्दर हैं। प्रत्येक लेखमें कुछ-न-कुछ अपनी विशेषता है। खेद है, स्थानाभावके कारण इन सभी लेखोंको ज्यों-का-त्यों अलग-अलग प्रकाशित करनेमें हम असमर्थ हैं, इसलिये थोड़ा-सा अधिक परिश्रम करके उन सभी विशेषताओंको क्रमबद्धतापूर्वक, पुनरावृत्ति-दोषको यथासम्भव बचाते हुए, एक ही जगह संग्रथित किया जा रहा है। इस पद्धतिसे किसी लेखक महाशयके साथ अन्याय भी नहीं होता और पाठकोंको भी संक्षेपमें सारा मसाला एक जगहपर मिल जाता है। इसमें जो कुछ है सब उपर्युक्त लेखकोंकी ही कृति है।—सम्पादक]

शिवपुराणमें आया है कि भूतभावन भगवान् शङ्कर प्राणियोंके कल्याणार्थ तीर्थ-तीर्थमें लिङ्गरूपसे वास करते हैं। जिस-जिस पुण्य-स्थानमें भक्तजनोंने उनकी अर्चना की, उसी-उसी स्थानमें वे आविर्भूत हुए और ज्योति-र्लिङ्गके रूपमें सदाके लिये अवस्थित हो गये। यों तो ये शिवलिङ्ग असंख्य हैं, फिर भी इनमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग सर्वप्रधान हैं। शिवपुराणके अनुसार ये निम्नलिखित हैं—

सौराष्ट्रे सोमनाथञ्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारं परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
वाराणस्याञ्च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशञ्च शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥
यं यं काममपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः।
तस्य तस्य फलप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः॥
एतेषां दर्शनादेव पातकं नैव तिष्ठति।
कर्मक्षयो भवेत्तस्य यस्य तुष्टो महेश्वरः॥

(शि० पु० ज्ञा० सं० अ० ३८)

अर्थात् (१) सौराष्ट्र-प्रदेश (काठियावाड़) में श्रीसोमनाथ, (२) श्रीशैलपर श्रीमल्लिकार्जुन, (३) उज्जयिनी (उज्जैन) में श्रीमहाकाल, (४) श्रीओंकारेश्वर अथवा अमरेश्वर, (५) हिमाच्छादित केदारखण्डमें श्री-केदारनाथ, (६) डाकिनी नामक स्थानमें श्रीभीमशङ्कर, (७) वाराणसी (काशी) में श्रीविश्वनाथ, (८) गौतमी (गोदावरी) तटपर श्रीत्र्यम्बकेश्वर, (९) चिताभूमिमें श्रीवैद्यनाथ, (१०) दारुकावनमें श्रीनागेश्वर, (११) सेतुबन्धपर श्रीरामेश्वर और (१२) घुश्मेश्वर—ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं, जिनका बड़ा माहात्म्य है। जो कोई नित्य प्रातःकाल उठकर इन नामोंका पाठ करता है, उसके सात जन्मतकके पाप क्षय हो जाते हैं। जिस कामनाको लेकर वह पुरुषश्रेष्ठ पाठ करता है उसकी वह कामना फलीभूत होती है, इसमें कोई संशय नहीं। इनके दर्शनमात्रसे

---

* धर्मग्रन्थावली दारागंज, प्रयागने पं० श्रीदयाशङ्करजी दुबेके सम्पादकत्वमें धार्मिक पुस्तकोंके निकालनेका एक सुन्दर नवीन आयोजन किया है, जिसमें अनेक मालाओंके रूपमें ज्ञान, वैराग्य, सदाचार और धर्मभावको बढ़ानेवाली, जीवनको उन्नत और शान्तिमय बनानेवाली सचित्र, सस्ती पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं। ये पुस्तकें प्रत्येक स्त्री-पुरुषके लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। अभी तीर्थ-मालाकी १०, भक्तचरितमालाकी ३ और अवतारमालाकी ३ नीचे लिखी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जो बहुत ही सरस, सरल और भगवान्के प्रति हृदयमें श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न करनेवाली हैं—भगवान् रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, बुद्ध, भक्त मीरा, ध्रुव, प्रह्लाद, प्रयाग, काशी, मथुरा, हरिद्वार, अयोध्या, चित्रकूट, बदरीनाथ, केदारनाथ, उज्जैन, ओंकारेश्वर। तीर्थमालाकी सचित्र पुस्तकें तो प्रत्येक तीर्थयात्रीके लिये पथप्रदर्शक हैं, जो प्रत्येक यात्रीको अपने पास रखनी आवश्यक है। ऐसी बहुत-सी पुस्तकें और प्रकाशित होनेवाली हैं तथा भविष्यमें होती रहेंगी। हिन्दूमात्रको इन पुस्तकोंको मँगाना और पढ़ना चाहिये। विशेष विवरण जाननेके लिये ऊपर लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार करना चाहिये। —सम्पादक

पापोंका नाश हो जाता है। जिसपर भगवान् शङ्कर प्रसन्न होते हैं, उसके पाप क्षय हुए बिना नहीं रहते।

यह शिवपुराणका वर्णन है। अकेले शिवपुराणमें ही नहीं, रामायण, महाभारत तथा अन्य अनेक प्राचीन धर्म-ग्रन्थोंमें भी ज्योतिर्लिङ्ग-सम्बन्धी वर्णन भरा पड़ा है। स्कन्दपुराणान्तर्गत काशीखण्ड, सेतुबन्धखण्ड, रेवाखण्ड, अवन्तीखण्ड और केदारखण्डमें काशी, रामेश्वर, महाकाल एवं केदारनाथ तीर्थका विस्तृत वर्णन है। अस्तु, अब इस विषयका अधिक विस्तार न करके इन द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका संक्षिप्त परिचय देनेकी चेष्टा की जाती है।

(१) श्रीसोमनाथ

श्रीसोमनाथ महाराज काठियावाड़-प्रदेशान्तर्गत श्री-प्रभासक्षेत्रमें विराजमान हैं, जहाँ लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने यदुवंशका संहार कराकर जरा नामक व्याधके बाणसे अपना पाद-पद्म-वेधन कराकर अपनी नरलीला संवरण की थी। इस पुण्य प्रभासक्षेत्रसहित श्रीसोमनाथका पौराणिक परिचय संक्षेपमें यह है कि दक्षप्रजापतिने अपनी सत्ताईसों कन्याओंका विवाह चन्द्रदेवके साथ किया था परन्तु चन्द्रमाका अनुराग उनमेंसे एकमात्र रोहिणीके प्रति था। इस कारण अन्य छब्बीस दक्षकन्याओंको बड़ा कष्ट रहता था। उनके शिकायत करनेपर दक्षराजने चन्द्रमाको बहुत समझाया-बुझाया, पर उसपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। आखिर दक्षने उसे यह शाप दे दिया कि 'जा, तू क्षयी हो जा;' फलतः चन्द्रमा क्षयग्रस्त हो गया। सुधाकरका सुधावर्षण-कार्य रुक गया। चराचरमें त्राहि-त्राहिकी पुकार होने लगी। चन्द्रमाके प्रार्थनानुसार इन्द्र आदि देवता तथा वशिष्ठ आदि ऋषि-मुनि कोई उपाय न देख पितामह ब्रह्माकी सेवामें उपस्थित हुए। ब्रह्मदेवने यह आदेश किया कि चन्द्रमा देवादिके साथ प्रभासतीर्थमें मृत्युञ्जय भगवान्की आराधना करे, उनके प्रसन्न होनेसे अवश्य ही रोगमुक्ति हो सकती है। पितामहकी आज्ञाको सिर-माथे रख, चन्द्रमाने देवमण्डलीसहित प्रभासमें पहुँच मृत्युञ्जय भगवान्की अर्चनाका अनुष्ठान आरम्भ कर दिया। मृत्युञ्जय-मन्त्रसे पूजा और जप होने लगा। छः मासतक निरन्तर घोर तप किया। दस करोड़ मन्त्र-जप कर डाला; फलतः आशुतोष सन्तुष्ट हुए। प्रकट होकर, वरदान दे मृत्युञ्जय भगवान्ने मृततुल्य चन्द्रमाको अमरत्व प्रदान किया। कहा कि सोच मत करो। कृष्णपक्षमें प्रतिदिन तुम्हारी एक-एक कला क्षीण होगी; पर साथ ही शुक्लपक्षमें उसी क्रमसे तुम्हारी एक-एक कला बढ़ जाया करेगी और इसप्रकार प्रत्येक पूर्णिमाको तुम पूर्णचन्द्र हो जाया करोगे। इस प्रकार कलाहीन कलाधर पुनः कलायुक्त हो गये और सारे संसारमें सुधाकरकी सुधाकिरणोंसे प्राणसञ्चार होने लगा। पीछे चन्द्रादिकी प्रार्थना स्वीकारकर भवानीसहित भगवान् शंकर, भक्तोंके उद्धारार्थ, ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें सदाके लिये इस क्षेत्रमें वास करने लगे। महाभारत, श्रीमद्भागवत और स्कन्दपुराण आदि पुण्यग्रन्थोंमें इस प्रभासक्षेत्रकी बड़ी महिमा गायी गयी है। कहा है कि पावन प्रभासमें प्रवाहित पूतसलिला सरस्वतीके संगमके दर्शन एवं सागर-संगीत अर्थात् समुद्रकी हिल्लोलध्वनिके श्रवणमात्रसे पापपुञ्ज उसीप्रकार पलायन कर जाते हैं जिसप्रकार वनराज सिंहको देखते ही मृगसमुदाय।

प्राचीन सोमनाथ-मन्दिर, जिसे ई० स० १०२४ में महमूद गजनवीने भ्रष्ट किया था, आज समुद्रके तटपर भग्नावशेषके रूपमें विद्यमान है। कहते हैं कि जब शिवलिङ्ग नहीं टूटा तब उसके बगलमें भीषण अग्नि जलायी गयी। मन्दिरमें नीलममणिके ५६ खम्भे थे और उनमें अमूल्य हीरे-मोती और अन्यान्य रत्न जड़े हुए थे। बहुत-से तोड़कर लूट लिये गये। महमूदके बाद राजा भीमदेवने पुनः प्रतिष्ठा कराकर मन्दिरको पवित्र किया और सिद्धराज जयसिंहने (ई० स० १०९३ । ११४२) भी मन्दिरकी पुनःप्रतिष्ठामें बड़ी सहायता दी। ई० स० ११६८ में विजयेश्वर कुमारपालने प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र सूरिके साथ सोमनाथकी यात्रा करके मन्दिरका सुधार किया। सौराष्ट्रपति राजा खंगारने भी मन्दिरकी श्रीवृद्धिमें सहायता की। परन्तु मुसल्मानोंके अत्याचार इसके बाद भी बन्द नहीं हुए। ई० स० १२९७ में अलाउद्दीन खिलजीने पुनः सोमनाथका ध्वंस किया और उसके सेनापति नसरतखाँने उसे लूटा। ई० स० १३९५ में गुजरातका सुलतान मुजफ्फरशाह मन्दिर-ध्वंसके कार्यमें लगा और ई० स० १४१३ में सुल्तान अहमदशाहने अपने पितामहका अनुकरण कर पुनः सोमनाथका ध्वंस किया। आज उस मन्दिरमें शिवलिंग नहीं है। इमारतकी कुल चीजें टूटी-फूटी हैं, पर इस भग्नांशको ही देखकर स्थापत्य-कलाके जानकारोंको आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता है।
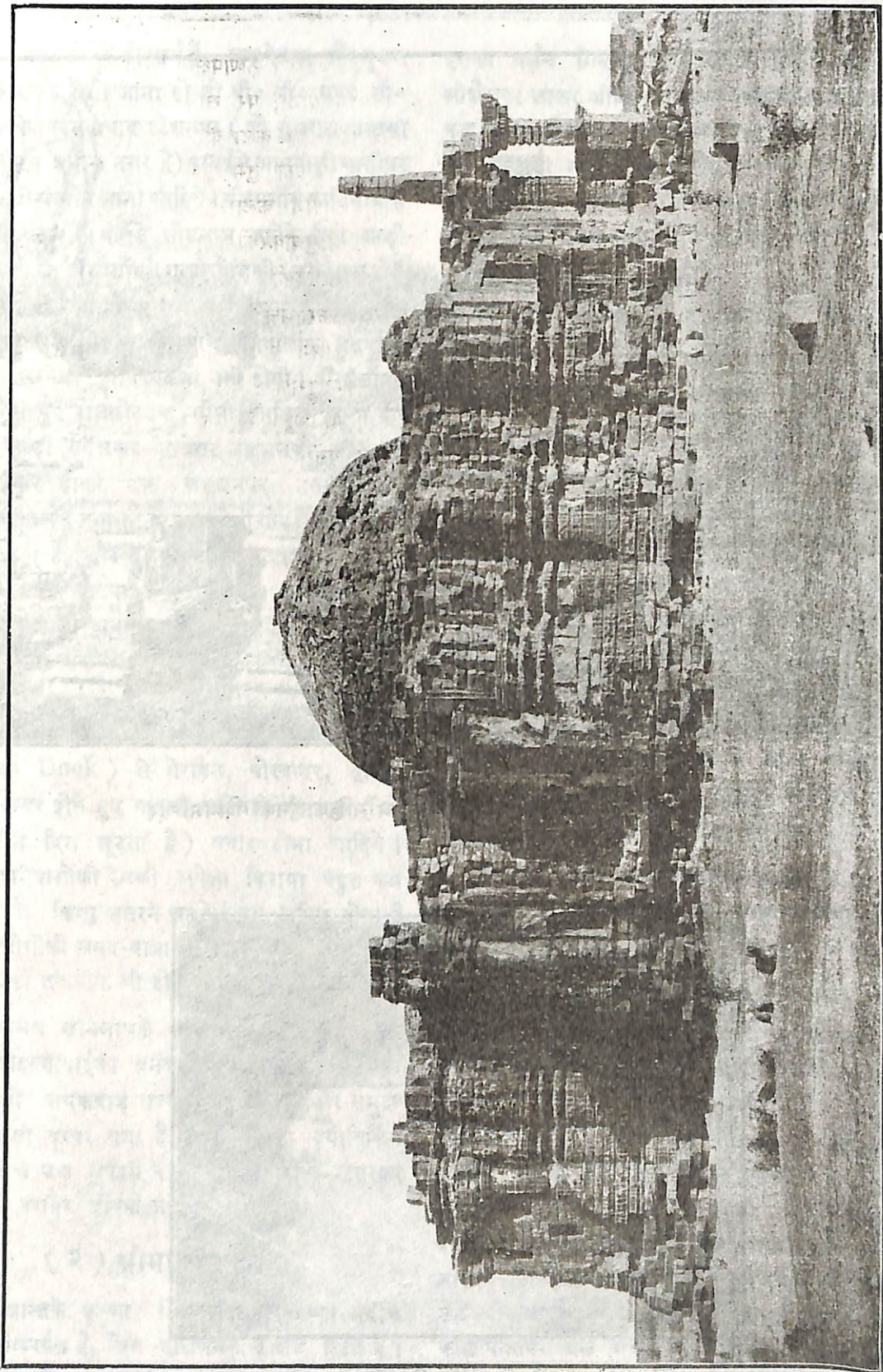
प्राचीन श्रीसोमनाथका भग्नमन्दिर
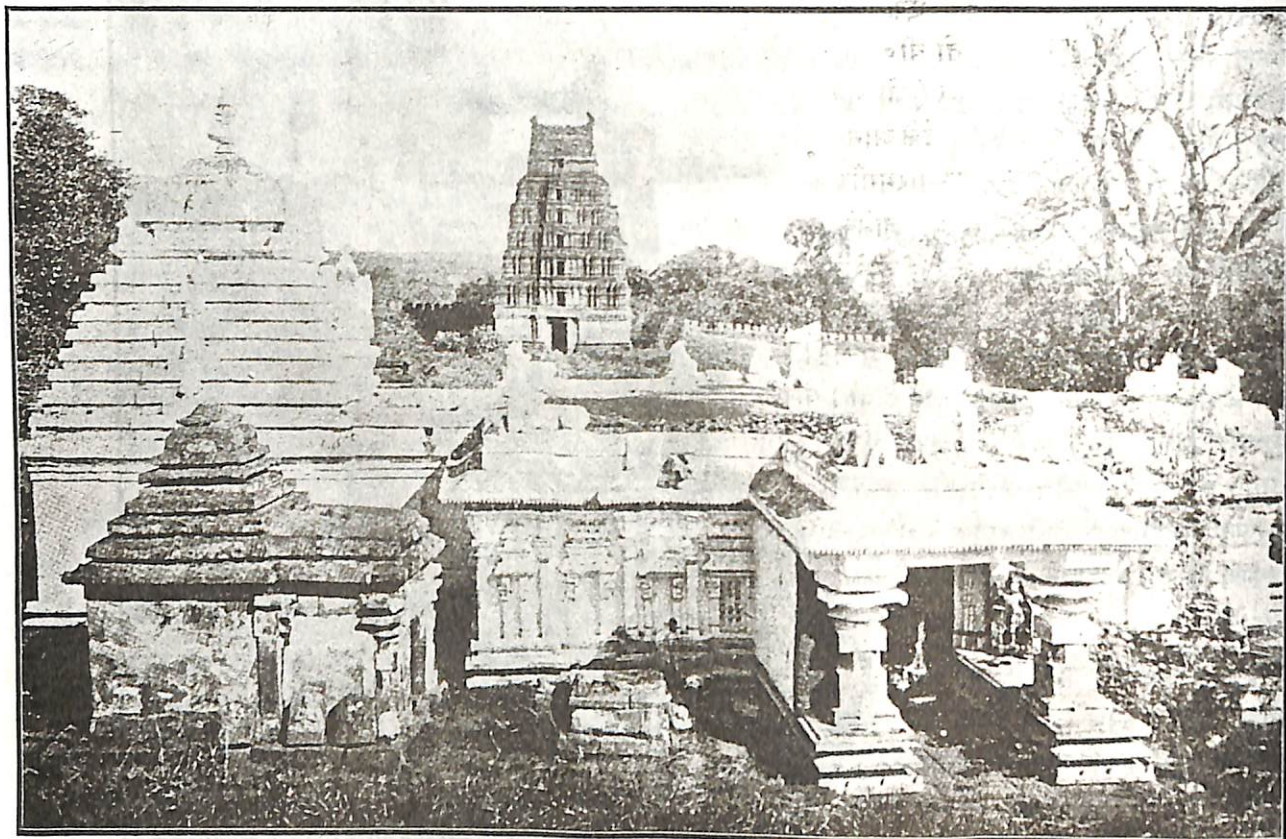
कृष्णानदीके तटपर श्रीशैलम् पर्वतके ऊपर श्रीमल्लिकार्जुनका शिवमन्दिर

श्रीमल्लिकार्जुन शिवलिङ्ग

इस स्थानको जानेके दो मार्ग हैं—एक रेलका और दूसरा जहाजका। रेलके रास्ते जाना हो तो बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवेके अहमदाबाद स्टेशनपर (जो गुजरात-प्रान्तका एक प्रसिद्ध एवं प्रधान नगर है) बम्बईसे आनेवाली गाड़ीपर सवार होकर वीरमगाँव जाना चाहिये। वीरमगाँव काठियावाड़ प्रदेशका द्वारस्वरूप है। वहाँसे सोमनाथ जानेके लिये गाड़ी बदलनी पड़ती है। वीरमगाँवसे गायकवाड़की रेल आरम्भ होती है जो वढवाणतक जाती है और वढवाणसे काठियावाड़-स्टेट-रेलवे शुरू होती है। किन्तु सोमनाथ जानेवालोंको वढवाण-पर गाड़ी बदलनेकी आवश्यकता नहीं होती। वीरमगाँवसे वढवाण होती हुई राजकोटतक सीधी गाड़ियाँ जाती हैं। राजकोटमें गाड़ी बदलकर जेतलसर जङ्क्शनको जानेवाली गाड़ीपर सवार होकर उक्त जङ्क्शनपर उतर पड़ना चाहिये। जेतलसरसे जूनागढ़-स्टेट-रेलवेकी गाड़ी सीधी वेरावल बन्दरतक जाती है और वेरावल स्टेशनसे प्रभास (जिसका पूरा नाम प्रभास-पाटण है) २-३ मील दूर 'प्राची' को जानेवाली सड़कपर अवस्थित है। सवारीके लिये घोड़ोंकी ट्राम तथा ताँगा-गाड़ीका एवं ठहरनेके लिये धर्मशालाका प्रबन्ध है।

जहाजके मार्गसे जानेके लिये बम्बईके प्रिन्सेज़ डॉक (Princes Dock) से वेरावल, पोरबन्दर, द्वारका एवं उखा बन्दर होते हुए कराची जानेवाले जहाजपर (जो सप्ताहमें तीन दिन छूटता है) सवार होना चाहिये। जहाजपर जानेवालोंको रेलकी अपेक्षा किराया बहुत कम देना पड़ता है, किन्तु उतरने-चढ़नेमें कष्ट अधिक होता है और जिन लोगोंको समुद्र-यात्राका अभ्यास नहीं है, उन्हें वमन आदिकी तकलीफ भी हो सकती है।

इस समय सोमनाथके नामसे संवत् १८३१ में महारानी अहल्याबाईका बनवाया हुआ एक अर्वाचीन मन्दिर है जो गायकवाड़-राज्यके प्रबन्धमें है और समुद्र-तटसे थोड़ी-सी दूरपर बना है। सोमनाथका ज्योतिर्लिंग गर्भगृहके नीचे एक गुफामें २२ सीढ़ियाँ नीचे उतरकर है और वहाँ बराबर दीपक जलता रहता है।

(२) श्रीमल्लिकार्जुन

मद्रास-प्रान्तके कृष्णा जिलेमें तथा कृष्णा नदीके तटपर श्रीशैलपर्वत है, जिसे दक्षिणका कैलास कहते हैं। महाभारत तथा शिवपुराण और पद्मपुराण आदि धर्मग्रन्थोंमें इसका वर्णन मिलता है। महाभारतमें लिखा है कि श्रीशैलपर जाकर श्रीशिवका पूजन करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है। यही नहीं, ग्रन्थोंमें तो इसकी महिमा यहाँ-तक बतलायी गयी है कि श्रीशैलशिखरके दर्शनमात्रसे सब कष्ट दूरसे ही भाग जाते हैं और अनन्त सुखकी प्राप्ति होकर आवागमनके चक्रसे मुक्ति मिल जाती है।

> श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा………………।
> ………………पुनर्जन्म न विद्यते ॥
> दुःखं हि दूरतो याति शुभमात्यन्तिकं लभेत्।
> जननीगर्भसम्भूतं कष्टं नाप्नोति वै पुनः ॥

इस स्थानके सम्बन्धमें एक यह पौराणिक इतिहास है कि शंकरसुवन श्रीगणेश और श्रीस्वामिकार्तिकेय—दोनों भाई विवाहके लिये लड़ने लगे। एक चाहते थे कि मेरा पहले विवाह हो और दूसरे चाहते थे कि मेरा। आखिर भवानी-शंकरने यह फैसला किया कि जो कोई पहले पृथिवी-परिक्रमा कर डालेगा, उसीका विवाह पहले होगा। सुनते ही स्वामिकार्तिकेय तो दौड़ पड़े; श्रीगणेशजी ठहरे स्थूलकाय, वे कैसे दौड़ते? पर कोई हर्ज नहीं, शरीरसे स्थूल थे तो क्या, बुद्धिसे तो स्थूल नहीं थे। झट एक तदबीर ढूँढ़ निकाली। आपने माता पार्वती और पिता महेश्वरको आसनपर बैठा उन्हींकी सात बार परिक्रमा कर डाली और पूजन किया और इसप्रकार—

> पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
> तस्य वै पृथिवीजन्यं फलं भवति निश्चितम् ॥
> (रु० सं० खं० ४ अ० १९)

—के अनुसार पृथिवी-प्रदक्षिणाके फलको पानेके अधिकारी बन गये। इधर जबतक स्वामिकार्तिकेय परिक्रमा करके वापस आये तबतक बुद्धिविनायक श्रीगणेशजीका विश्वरूप प्रजापतिकी सिद्धि और बुद्धि नामवाली दो कन्याओंके साथ विवाह भी हो चुका था। विवाह ही नहीं, बल्कि सिद्धिके गर्भसे 'क्षेम' और बुद्धिसे 'लाभ'—ये दो पुत्ररत्न भी उत्पन्न होकर उनकी गोदमें खेलने लगे थे। स्वाभाविक ही मंगलकामनासे इधर-की-उधर लगानेमें कुशल देवर्षि नारद महाराजसे यह संवाद पाकर स्वामिकार्त्तिकेय जल उठे और माता-पिताके पैर छूनेका दस्तूर करके, रूठकर, क्रौञ्च-पर्वतपर चले गये। माता-पिताने नारदको भेजकर उन्हें वापस बुलाया, पर वे नारदके मनाये न माने।

आखिर, माताका हृदय व्याकुल हो उठा और जगदम्बा पार्वती श्रीशिवजीको लेकर क्रौञ्च-पर्वतपर पहुँचीं, किन्तु ये उनके आनेकी खबर पाते ही वहाँसे भी भाग खड़े हुए और तीन योजन दूर जाकर डेरा डाला। कहते हैं, क्रौञ्च-पर्वतपर पहुँचकर श्रीशंकरजी ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रकट हुए और तबसे श्रीमल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंगके नामसे प्रख्यात हैं।

एक दूसरी कथा यह भी कही जाती है कि किसी समय इस पर्वतके निकट चन्द्रगुप्त नामक राजाकी राजधानी थी। उसकी कन्या किसी विशेष विपत्तिसे बचनेके लिये अपने पिताके महलसे भाग निकली और उसने पर्वतराजकी शरण ली। वह वहीं ग्वालोंके साथ कन्दमूल और दूधसे अपना जीवन-निर्वाह करने लगी। उसके पास एक सुन्दर श्यामा गौ थी। कहते हैं, कोई चुपचाप उस गायका दूध दुह लेता था। एक दिन संयोगसे चोरको दूध दुहते उसने देख लिया और क्रोधमें भर उसे मारने दौड़ी; पर गौके निकट पहुँचनेपर उसे शिवलिंगके अतिरिक्त और कोई न मिला। पीछे राजकुमारीने उक्त शिवलिंगपर एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया। यही शिवलिंग आजकल मल्लिकार्जुनके नामसे प्रसिद्ध है। मन्दिरकी बनावट तथा सुन्दरतासे पुरातत्त्ववेत्ता अनुमान करते हैं कि इसको बने हुए कम-से-कम डेढ़-दो हजार वर्ष हुए होंगे। कहते हैं, इस पवित्र स्थानपर बड़े-बड़े राजा-महाराजातक सदासे आते रहे हैं। अबसे चार सौ वर्ष पूर्व श्रीविजयानगरम् राज्यके अधीश्वर महाराज कृष्णराय यहाँ पधारे थे और स्वर्णशिखरसहित एक सुन्दर मण्डप बनवा गये थे। उनके डेढ़ सौ वर्ष बाद, कहते हैं, हिन्दूराज्यके उद्धारक श्रीशिवाजी महाराज भी पधारे थे और एक धर्मशाला बनवा गये थे। इस स्थानपर अनेक शिवलिंग मिला करते हैं। शिवरात्रिके अवसरपर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। एक गाँव-सा बस जाता है। मन्दिरके निकट जगदम्बाका भी एक अलग स्थान है। श्रीपार्वतीको यहाँ 'भ्रमराम्बा' कहते हैं।

इस स्थानको जानेके लिये यदि कलकत्तेसे जाना हो तो बंगाल-नागपुर-रेलवेसे प्रस्थान करके वाल्टेयर पहुँचे और वहाँसे मद्रास और दक्षिण मराठा रेलवेके द्वारा बेजवाड़ा जाय। इसप्रकार वाल्टेवरसे १३८ मीलकी यात्रा करनेके बाद वहाँसे गुण्टकल जानेवाली छोटी लाइन पकड़कर फिर १८८ मील चलकर नन्दयाल स्टेशनपर उतर पड़े और वहाँसे मोटरमें बैठकर २८ मील दूर आत्माकूर ग्राम जाय। वहाँसे बैलगाड़ीपर बैठकर नागाहुटी स्थानपर जा पहुँचे, जो आत्माकूरसे बारह मील है और वहाँपर महादेव और वीरभद्र स्वामीके तथा कई पवित्र झरनोंके दर्शन करे। यहाँसे मल्लिकार्जुनका स्थान इकतीस मील दूर है। मार्ग दुर्गम पहाड़ी है, किन्तु साथ ही मनोरम भी है और लूट-पाटका डर रहता है। बीच-बीचमें विश्राम-स्थान भी बने हुए हैं। रास्तेमें पानी कम मिलता है, इसलिये यात्रियोंको चाहिये कि आत्माकूरसे अपने साथ कुछ मीठा पानी ले लें। मल्लिकार्जुनसे नीचे पाँच मीलकी उतराई समाप्त करनेपर कृष्णा नदीके स्नानका भी आनन्द मिलता है। कृष्णा यहाँ पातालगङ्गाके नामसे प्रसिद्ध है और उसमें स्नान करनेका शास्त्रोंमें बड़ा माहात्म्य है। मेलेके दिनोंमें रास्तेमें पुलिस इत्यादिका प्रबन्ध भी रहता है। हैदराबादराज्यके निवासी निजाम-स्टेट-रेलवेके कुरनूल स्टेशनसे भी आत्माकूर जा सकते हैं।

(३) श्रीमहाकालेश्वर*

श्रीमहाकालेश्वर-ज्योतिर्लिंग मालव-प्रदेशान्तर्गत, क्षिप्रा नदीके तटपर उज्जयिनी (उज्जैन) नगरीमें है। यह उज्जयिनी, जिसका एक नाम अवन्तिकापुरी भी है, भारतकी सुप्रसिद्ध सप्तपुरियोंके अन्तर्गत है। स्कन्दपुराणके अवन्ति-खण्डमें इस नगरीके सम्बन्धमें विशद वर्णन है। महाभारत एवं शिवपुराणमें भी इसकी महिमा गायी गयी है। लिखा है कि—क्षिप्रा नदीमें स्नान करके ब्राह्मणभोजन करानेसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है, दरिद्रकी दरिद्रता जाती रहती है आदि। यहाँ महाराज विक्रमादित्यका चौबीस खम्भोंका दरबार-मण्डप, मंगल-ग्रहका जन्मस्थान मंगलेश्वर, भर्तृहरिकी गुफा और सान्दीपनि ऋषिका आश्रम है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीबलरामजीने विद्याभ्यास किया बतलाते हैं। यहाँ परमप्रतापी राजा विक्रमादित्यकी राजधानी थी, जिसके दरबारमें महाकवि कालिदास प्रभृति नवरत्न थे। यह स्थान ग्वालियर राज्यमें है और यहाँ बारह वर्ष पीछे सिंहराशिके बृहस्पति आनेपर कुम्भका मेला होता है। गत वैशाख मासमें ही यहाँपर कुम्भका मेला हुआ था।

इन महाकालेश्वरकी लिङ्गस्थापनाके सम्बन्धमें यह इतिहास है कि एक समय उज्जैन नगरीमें 'चन्द्रसेन' नामक एक राजा राज्य करता था। वह भगवान् शङ्करका बड़ा भक्त था।

* महाकालेश्वरका एक अति प्राचीन मन्दिर उदयपुर (मेवाड़) में भी है।
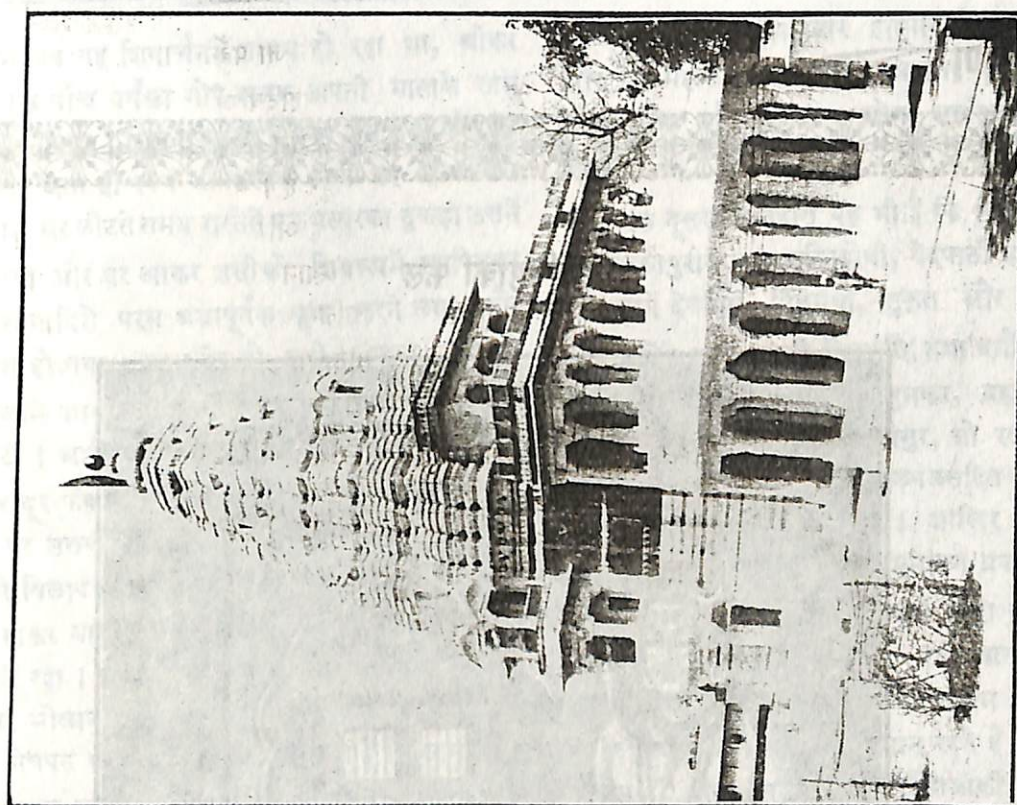
श्रीमहाकालेश्वरका एक दृश्य
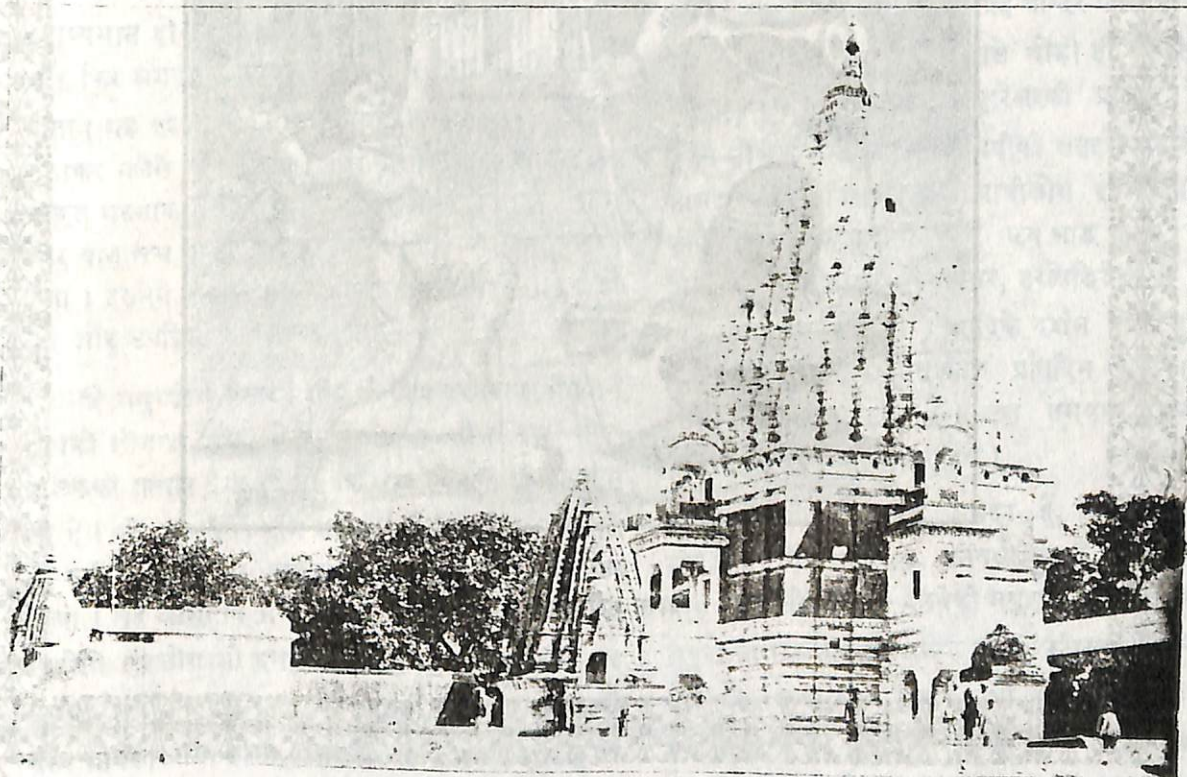
श्रीमहाकालेश्वरका दूसरा दृश्य

दृढ़निष्ठाका फल

भक्त श्रीकर गोप

एक दिन जब वह शिवार्चनमें तन्मय हो रहा था, श्रीकर नामक एक पाँच वर्षका गोप-बालक अपनी माताके साथ वहाँ आ निकला। शिव-पूजनको देखकर उसे बड़ा कौतूहल हुआ और ऐसा ही स्वयं भी करनेके लिये वह उत्कण्ठित हो उठा। घर लौटते समय रास्तेसे एक पत्थरका टुकड़ा उसने उठा लिया और घर आकर उसीको शिवरूपमें स्थापितकर पुष्प-चन्दनादिसे परम श्रद्धापूर्वक पूजा करने लगा और ध्यानमग्न हो गया। बहुत देर हो गयी। माता भोजनके लिये बुलाने आयी; पर टेरते-टेरते थक गयी, उसकी समाधि नहीं टूटी। आखिर झल्लाकर उसने पत्थरका टुकड़ा वहाँसे उठाकर दूर फेंक दिया और लड़केको जबरदस्ती घरको लाने लगी। पर उसकी जबरदस्ती चली नहीं। सरलचित्त भक्त-बालकने विलाप करते हुए शम्भुको पुकारना शुरू किया। हताश होकर माता घर चली गयी; पर बच्चेका विलाप फिर भी जारी रहा। क्रन्दन करते-करते उसे मूर्च्छा हो गयी। आखिर, भोलानाथ प्रसन्न हो गये और ज्यों ही वह होशमें आकर नेत्रपट खोलता है तो देखता क्या है कि सामने एक अति विशाल स्वर्णपटयुक्त रत्नजटित मन्दिर खड़ा हुआ है और उसके अन्दर एक अति प्रकाशयुक्त ज्योतिर्लिङ्ग देदीप्यमान हो रहा है। बच्चा आश्चर्यसागरमें डूब गया। और फिर भगवान् शिवकी स्तुति करने लगा! पीछे जब माताने यह दृश्य देखा तो आनन्दोल्लाससे अपने लालको उठाकर गलेसे लगा लिया। उधर राजा चन्द्रसेनको जब इस अद्भुत घटनाका संवाद मिला तो वह भी वहाँ दौड़ा आया और बात सच पाकर बच्चेका प्यार एवं सराहना करने लगा। इतनेमें अञ्जनिसुवन श्रीहनुमान्‌जी वहाँ प्रकट हो गये और उपस्थित जनोंसे कहने लगे—

'हे मनुष्यो! संसारमें शीघ्र कल्याण करनेवाला भगवान् शिवको छोड़कर और कोई नहीं है। तुमलोग इस गोप-बालकको प्रत्यक्ष देख रहे हो कि इसने कौन-सी तपस्या की है। जो फल ऋषि-मुनि सहस्रों वर्षकी कठिन तपस्यासे भी नहीं पाते वह इस बालकने अनायास ही प्राप्त कर लिया। यह आशुतोष भगवान्‌की दयाका ही फल है। इसलिये तुमलोग भी इनके दर्शनसे कृतार्थ होओ और यह स्मरण रक्खो कि इस बालककी आठवीं पीढ़ीमें महायशस्वी नन्द गोपका जन्म होगा, जिनके यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पुत्ररूपसे अनेक प्रकारकी अद्भुत लीलाएँ करेंगे!'

इतना कहकर महावीर हनुमान्‌जी अन्तर्धान हो गये और इन महाकाल भगवान्‌की अर्चना करते-करते अन्तमें श्रीकर गोप और राजा चन्द्रसेन सपरिवार शिवधामको चले गये।

एक दूसरा इतिहास यह भी है कि किसी समय इस अवन्तिकापुरीमें एक अग्निहोत्री, वेदपाठी ब्राह्मण रहता था जो अपने देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत और सुव्रत नामके चार पुत्रोंके साथ अपनी शिवभक्ति तथा धर्मनिष्ठाकी पताका फहरा रहा था। उसकी कीर्ति सुनकर, ब्रह्माजीसे वरप्राप्त एक महामदान्ध दूषण नामक असुर, जो रत्नमाल पर्वतपर निवास करता था, अपने दलबलसहित चढ़ आया। लोगोंमें त्राहि-त्राहि मच गयी। आखिर उस ब्राह्मणकी शिवभक्तिके प्रतापसे भगवान् भूतभावन प्रकट हो गये और एक हुङ्कारसे ही उसे इस दुनियासे बिदा कर दिया; और पीछे संसारके कल्याणार्थ सदा वहीं वास करनेका उस ब्राह्मणको वरदान देकर शिवजी अन्तर्धान हो गये। तबसे वे लिङ्गरूपमें वहाँ सदा विराजमान रहते हैं। ज्योतिर्लिङ्गके समीप ही माता पार्वती तथा गणेशजीकी भी मूर्तियाँ हैं। भगवान् वहाँ भयङ्कर 'हुङ्कार' सहित प्रकट हुए, इसलिये उनका नाम 'महाकाल' पड़ा। यह मन्दिर पँचमंजिला और बड़ा विशाल है और क्षिप्रा नदीसे थोड़ी ही दूर स्थित है। मन्दिरके ऊर्ध्वभागमें श्रीओङ्कारेश्वरकी प्रतिमा है और सबसे नीचेके मंजिलमें, जो पृथिवीकी सतहसे भी नीचा है, श्रीमहाकालेश्वर विराजते हैं। यात्रीलोग रामघाटपर तथा कोटितीर्थ नामक कुण्डमें स्नान एवं श्राद्ध करके पासहीमें अगस्त्येश्वर, कोटीश्वर, केदारेश्वर, हरसिद्धिदेवी (महाराज विक्रमादित्यकी कुलदेवी) आदिके दर्शन करते हुए महा-कालेश्वर पहुँचते हैं। प्रातःकाल प्रतिदिन महाकालेश्वरको चिताभस्म लगाया जाता है। उस समयका दर्शन प्रत्येक यात्रीको अवश्य करना चाहिये।

यहाँ और भी अनेक मन्दिर हैं, जिनमेंसे अधिकांश महाराजा विक्रमादित्यके बनवाये हुए हैं। यह स्थान बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवेकी मथुरासे बम्बईको जानेवाली मथुरा-नागदा लाइनके प्रसिद्ध नागदा स्टेशनके निकट है और बी० बी० एण्ड सी० आई० तथा जी० आई० पी० रेलवेका एक जङ्क्शन है। स्टेशनके पास ही क्षिप्रा नदीके तटपर एक सुन्दर धर्मशाला है।

(४) ओङ्कारेश्वर, अमलेश्वर अथवा ओङ्कारेश्वर* मान्धाता

यह स्थान मालवा-प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर अवस्थित है । उज्जैनसे खण्डवा जानेवाली बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवेकी छोटी लाइनपर मोरटक्का नामका स्टेशन है, यहाँसे यह स्थान ७ मील दूर है । उज्जैनसे मोरटक्का ८९ मील और खण्डवासे ३७ मील है । वहाँ नर्मदा नदीकी दो धाराएँ होकर बीचमें एक टापू-सा बन गया है, जिसे मान्धाता पर्वत या शिवपुरी कहते हैं । एक धारा पर्वतके उत्तरकी ओर बहती है और दूसरी दक्षिणकी ओर । दक्षिणकी ओर बहनेवाली प्रधान धारा समझी जाती है, इसे नावद्वारा पार करते हैं । किनारेपर पक्के घाट बने हुए हैं । नावपरसे दोनों ओरका दृश्य बहुत सुहावना मालूम होता है । इसी मान्धाता पर्वतपर ओङ्कारेश्वर अवस्थित हैं । प्रसिद्ध सूर्यवंशीय राजा मान्धाताने, जिनके पुत्र अम्बरीष और मुचुकुन्द दोनों प्रसिद्ध भगवद्भक्त हो गये हैं तथा जो स्वयं बड़े तपस्वी एवं यज्ञोंके कर्ता थे, इस स्थानपर घोर तपस्या करके शङ्करजीको प्रसन्न किया था । इसीसे इसका नाम मान्धाता पर्वत पड़ गया । इस पर्वतके अधिकांश मन्दिर पेशवाओंके बनवाये हुए हैं । ओङ्कारजीका मन्दिर भी इन्हींका बनवाया हुआ बतलाते हैं । मन्दिरमें दो कोठरियों-मेंसे होकर जाना पड़ता है । भीतर अँधेरा रहनेके कारण दीपक बराबर जलता रहता है ।

ओंकारेश्वरलिङ्ग गढ़ा हुआ नहीं है—प्राकृतिक रूपमें है । इसके चारों ओर हमेशा जल भरा रहता है । इस लिङ्गकी एक विशेषता यह भी है कि वह मन्दिरके गुम्बजके नीचे नहीं है और शिखरपर महाकालेश्वरकी मूर्ति है । कुछ लोग इस पर्वतको ओङ्काररूप मानते हैं और उसकी परिक्रमा करते हैं । प्राचीन मन्दिरोंमें सिद्धेश्वर महादेवका मन्दिर भी दर्शनीय है । परिक्रमामें और भी कई मन्दिर हैं, जिनके कारण इस पर्वतका दृश्य साक्षात् ओङ्कारस्वरूप ही दीखता है । ओङ्कारेश्वरका मन्दिर उस ओङ्कारमें चन्द्रस्थानीय मालूम होता है । मन्दिरमें शङ्करजीके समीप पार्वतीजीकी मूर्ति भी है । यहाँ लोग महादेवजीको चनेकी दाल चढ़ाते हैं । यात्रियोंको रात्रिकी शयन-आरतीके दर्शन अवश्य करने चाहिये । पैदल यात्रा करनेसे बीचमें एक खड़ी पहाड़ी मिलती है । कहते हैं कि पहले कुछ लोग सद्योमुक्ति-की अभिलाषासे इस पहाड़ीपरसे नदीमें कूदकर प्राण दे देते थे । सन् १८२४ ई० से अंग्रेज सरकारने सती-प्रथाकी भाँति इस प्राणनाशकी प्रथाको भी, जिसे 'भृगुपतन' कहते थे, बन्द करा दिया । पैदल यात्राका मार्ग पत्थर, कंकड़ और बालूमेंसे होकर गया है, जिससे यात्रियोंको कुछ कष्ट अवश्य होता है । कार्तिकी पूर्णिमाको इस स्थानपर बड़ा भारी मेला लगता है । शिवपुराणमें श्रीओङ्कारेश्वर और श्रीअमलेश्वरके दर्शन तथा नर्मदास्नानका बड़ा माहात्म्य वर्णित है । स्नान ही नहीं, नर्मदाके दर्शनमात्रसे पवित्रता मानी गयी है ।

मोरटक्कासे ओङ्कारेश्वर जानेके लिये मार्ग सघन वृक्षावली-से घिरा हुआ होनेसे बड़ा ठण्ढा रहता है । दोनों ओर सागवानके बड़े-बड़े पेड़ हैं, जो ठेठ नर्मदाके तीरतक चले गये हैं । किनारेपर दो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ अगल-बगलमें स्थित हैं, इन्हें 'विष्णुपुरी' और 'ब्रह्मपुरी' कहते हैं । इन दोनोंके बीचमें कपिलधारा नामक नदी बहती है जो नर्मदामें जा मिलती है । 'ब्रह्मपुरी' और 'विष्णुपुरी' में पक्के घाट बने हुए हैं और कई मन्दिर भी हैं । बहुत-से लोग ओंकारेश्वरकी परिक्रमा नावपर ही करते हैं ।

मालूम होता है, ओङ्कारजीकी जलहरीका सम्बन्ध नीचे नर्मदाजीसे किसी छिद्रके द्वारा है; क्योंकि भेंट-पूजाके समय पुजारीलोग अपना हाथ जलहरीमें लगाये रहते हैं और लोग जो कुछ चढ़ाते हैं उसे तुरन्त ले लेते हैं, अन्यथा वह कदाचित् सीधा नर्मदाजीमें जा पहुँचे ।

---

* द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें ओङ्कारेश्वर तो है ही, उसके साथ-साथ अमलेश्वरका नाम भी लिया जाता है । नाम ही नहीं, दोनोंका अस्तित्व भी पृथक्-पृथक् है; अमलेश्वरका मन्दिर नर्मदाजीके दक्षिण किनारेकी बस्तीमें है; पर दोनोंकी गणना एकहीमें की गयी है । इसका इतिहास यों है कि एक बार विन्ध्य पर्वतने पार्थिवार्चनसहित ओङ्कारनाथकी छः मासतक विकट आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी महाराज प्रकट हुए और उसे मनोवाञ्छित वर प्रदान किया । उसी समय वहाँ देवता और ऋषिगण भी पधारे, जिनकी प्रार्थनापर आपने ॐकार नामक लिङ्गके दो भाग किये । इनमेंसे एकमें आप प्रणवरूपसे विराजे, जिससे उसका नाम ओङ्कारेश्वर पड़ा और पार्थिवलिङ्गसे जो प्रकट हुए वे परमेश्वर (अमरेश्वर या अमलेश्वर) नामसे प्रख्यात हुए ।

श्रीओंकारेश्वर शिवपुरी
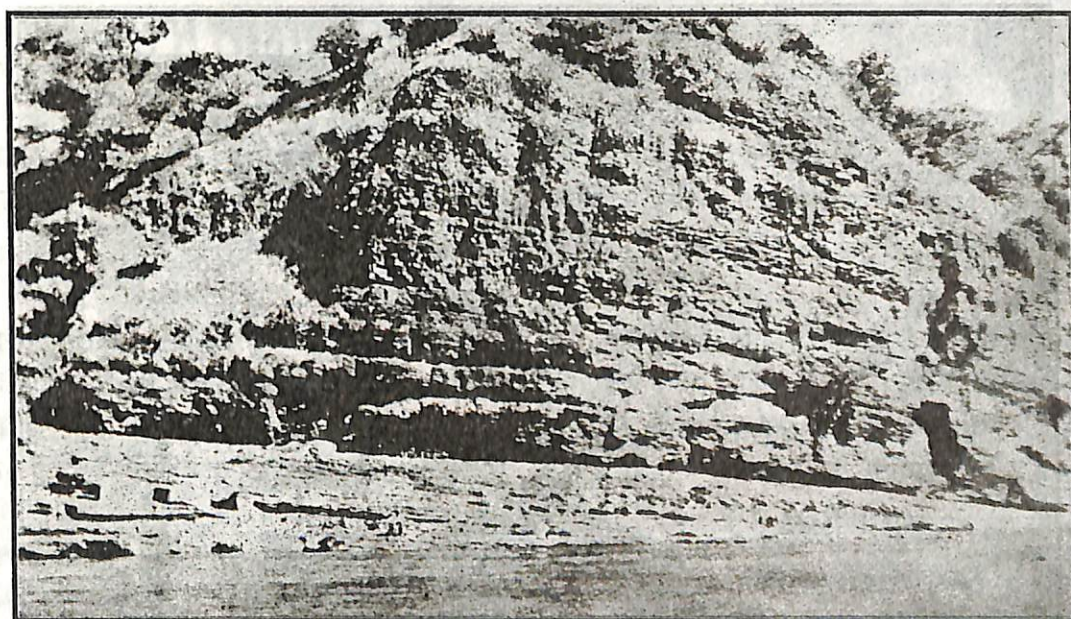
भृगुपतनवाली पहाड़ी
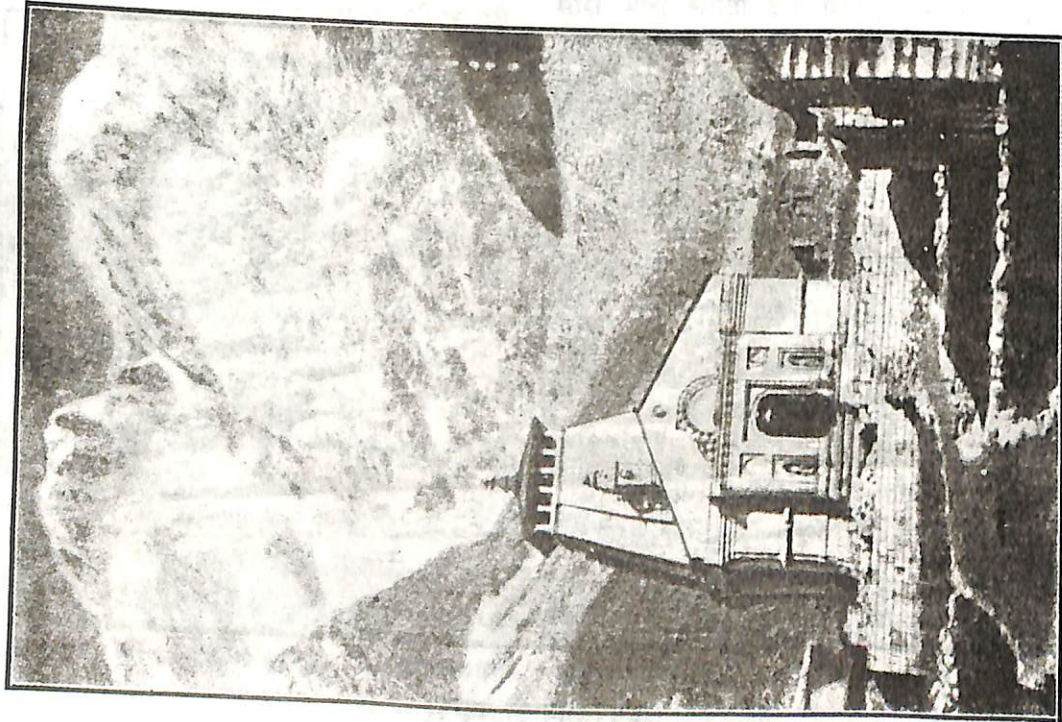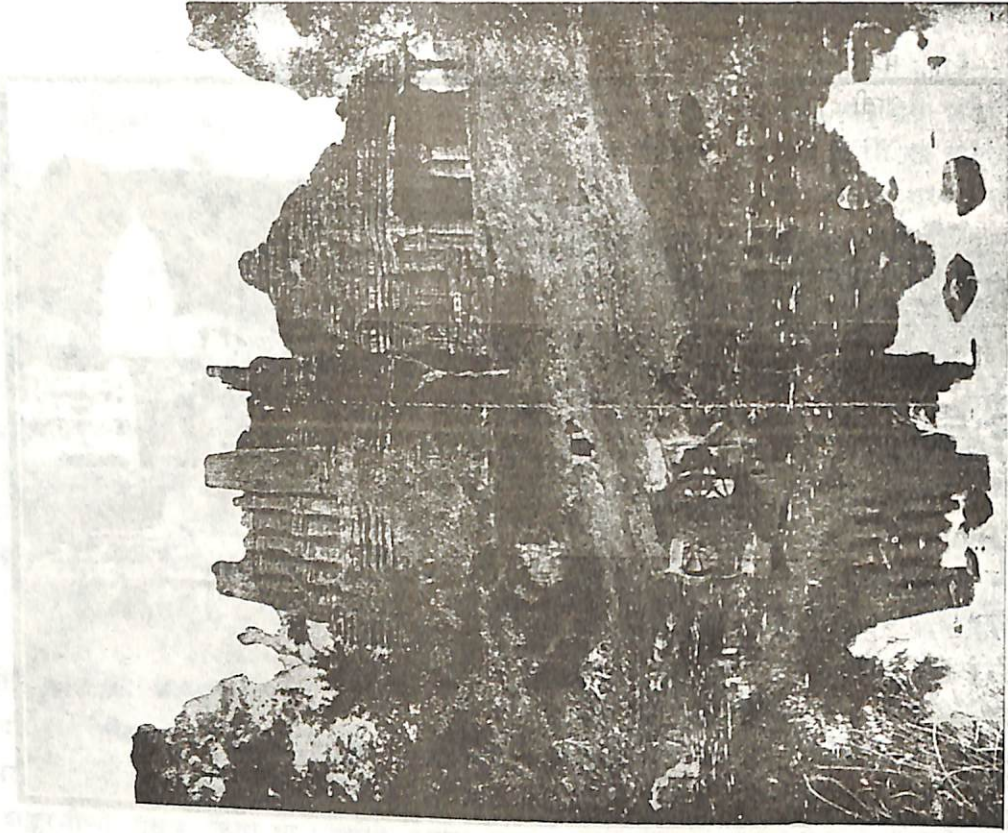
श्रीकेदारनाथ

भीमा नदीके निकासपर श्रीभीमशङ्करका मन्दिर

सोमवारके दिन ओङ्कारजीको पञ्चमुखी स्वर्ण-प्रतिमा जल-विहारके लिये नावपर घुमायी जाती है। यह स्थान स्वास्थ्य-के लिये भी बहुत हितकर बताया जाता है।

(५) श्रीकेदारनाथ

केदारेश्वरकी बड़ी महिमा है। उत्तराखण्डमें बदरीनाथ और केदारनाथ—ये दो प्रधान तीर्थ हैं, दोनोंके दर्शनोंका बड़ा माहात्म्य है। केदारनाथके सम्बन्धमें लिखा है कि जो व्यक्ति केदारेश्वरके दर्शन किये बिना बदरीनाथकी यात्रा करता है उसकी यात्रा निष्फल जाती है।

अकृत्वा दर्शनं वैश्य केदारस्याघनाशिनः।
यो गच्छेद् बदरीं तस्य यात्रा निष्फलतां व्रजेत्॥
(केदारखण्ड)

और केदारेश्वरसहित नर-नारायण-मूर्तिके दर्शनका फल समस्त पापोंके नाशपूर्वक जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति बतलाया गया है—

तस्यैव रूपं दृष्ट्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते।
जीवन्मुक्तो भवेत् सोऽपि यो गतो बदरीवने॥
दृष्ट्वा रूपं नरस्यैव तथा नारायणस्य च।
केदारेश्वरनाम्नश्च मुक्तिभागी न संशयः॥

इस ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापनाका इतिहास संक्षेपमें यह है कि हिमालयके केदार-शृङ्गपर विष्णुके अवतार महातपस्वी श्रीनर और नारायण तपस्या करते थे और उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर प्रकट हुए और उनकी प्रार्थनानुसार ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें वहाँ सदा वास करनेका वर प्रदान किया।

केदारनाथ पर्वतराज हिमालयके केदार नामक शृङ्गपर अवस्थित हैं। शिखरके पूर्वकी ओर अलकनन्दाके सुरम्य तटपर बदरीनारायण अवस्थित हैं और पश्चिममें मन्दाकिनी-के किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। अलकनन्दा और मन्दाकिनी—ये दोनों नदियाँ रुद्रप्रयागमें मिल जाती हैं और देवप्रयागमें इनकी संयुक्त धारा गंगोत्रीसे निकलकर आयी हुई भागीरथी गङ्गाका आलिङ्गन करती है। इसप्रकार जब हम गङ्गास्नान करते हैं तब हमारा सीधा सम्बन्ध श्रीबदरी और केदारके चरणोंसे हो जाता है। यह स्थान हरिद्वारसे लगभग १५० मील और ऋषिकेशसे १३२ मील दूर है। हरिद्वारसे ऋषिकेशतक रेल जाती है और मोटरलॉरियाँ भी चलती रहती हैं। ऋषिकेशजीसे केदारजीका मार्ग दुर्गम है। पैदल यात्राके अतिरिक्त कंडी या झप्पानसे, जिसे पहाड़ी कुली ढोते हैं, जा सकते हैं। बदरीनाथके यात्री प्रायः केदारनाथ होकर जाते हैं और जिस रास्तेसे आते हैं उसी रास्तेसे वापस न लौटकर रामनगरकी तरफसे लौटते हैं। झप्पानका किराया हरिद्वारसे रामनगरतक डेढ़ सौ रुपयेके लगभग है। यात्रामार्गमें यात्रियोंके सुविधार्थ बीच-बीचमें चट्टियाँ बनी हुई हैं। अन्तिम चट्टी—केदारनाथपर, जो तेईस हजार फुट ऊँची है, पहुँचनेके लिये मन्दाकिनीका एक लकड़ीका पुल पार करना पड़ता है, जो अति साधारण बना हुआ है। पैर फिसला कि बस, गये। यहाँ गरमीमें भी सर्दी बहुत पड़ती है। कहीं-कहीं तो नदीका जलतक जम जाता है। श्रीकेदारेश्वर तीन तरफसे बर्फसे ढके रहते हैं और शीतकालमें तो वहाँ रहना असम्भव-सा ही है। कार्तिकी पूर्णिमाके होते-होते पंडेलोग केदारजीकी पञ्चमुखी मूर्ति लेकर नीचे 'ऊखी मठ'में, जहाँ रावलजी * रहते हैं, चले आते हैं और फिर छः मासके बाद मेषसंक्रान्ति लगनेपर बर्फको काटकर रास्ता बनाकर पुनः जाकर मन्दिरके पट खोलते हैं।

मन्दिर मन्दाकिनीके घाटपर पहाड़ी ढंगका बना हुआ है। भीतर घोर अन्धकार रहता है और दीपकके सहारे ही शङ्करजीके दर्शन होते हैं। दीपकमें यात्रीलोग घी डालते रहते हैं। शिवलिङ्ग अनगढ़ टीलेके समान है। सम्मुखकी ओर यात्री जल-पुष्पादि चढ़ाते हैं और दूसरी ओर भगवान्-के शरीरमें घी लगाते हैं और उनसे बाँह भरकर मिलते हैं; मूर्ति चार हाथ लम्बी और डेढ़ हाथ मोटी है। मन्दिरके जगमोहनमें द्रौपदीसहित पञ्चपाण्डवोंकी विशाल मूर्तियाँ हैं। मन्दिरके पीछे कई कुण्ड हैं जिनमें आचमन तथा तर्पण किया जाता है।

केदारनाथके निकट 'भैरवझाँप' पर्वत है। पहले यहाँ कोई-कोई लोग बर्फमें गलकर अथवा ऊपरसे कूदकर शरीरपात करते थे; पर १८२९ से सती एवं भृगुपतनकी प्रथाओंकी भाँति सरकारने इस प्रथाको भी बन्द करा दिया।

(६) श्रीभीमशङ्कर

भीमशङ्कर-ज्योतिर्लिङ्ग बम्बईसे पूर्वकी ओर करीब ७० मीलके फासलेपर और पूनासे उत्तरकी ओर करीब ४३ मीलकी दूरीपर भीमा नदीके तटपर अवस्थित है। वहाँ

* महन्त।

जानेके लिये बम्बईसे पूनाकी ओर जानेवाली जी० आई० पी० रेलवेकी लाइनपर नेराल नामक स्टेशनपर (जो कल्याण-जङ्क्शनसे २१ मील और बम्बईसे ५४ मील है) उतरना चाहिये। वहाँसे भीमशङ्करका स्थान पूर्वकी ओर करीब १६ मील है, जिसमें १० मीलतक बैलगाड़ीका रास्ता है, बाकी पहाड़ी पैदल मार्ग है। पहाड़ी मार्गकी कठिनतासे बचनेके लिये नेरालसे ९ स्टेशन और ४४ मील आगे तलेगाँव स्टेशनपर उतरना चाहिये, जो पूनासे २१ मील इधर रह जाता है। वहाँसे भीमशङ्कर २४ मील है और रास्ता सीधा बैलगाड़ीका है।

यहाँ 'डाकिन्यां भीमशङ्करम्' इस वचनके अनुसार 'डाकिनी' ग्रामका तो कहीं पता नहीं लगता। शङ्करजी सह्याद्रि पर्वतपर अवस्थित हैं और भीमा नदी वहींसे निकलती है। खास मूर्तिमेंसे थोड़ा-थोड़ा जल झरता है। मन्दिरके पास ही दो कुण्ड हैं, जिन्हें प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ नाना फडनवीसने बनवाया था। मन्दिरके आसपास एक छोटी-सी बस्ती है। यहाँके लोग कहते हैं कि जिस समय भगवान् शङ्करने त्रिपुरासुरका वध करके इस स्थानपर विश्राम किया उस समय यहाँ अवधका भीमक नामक एक सूर्यवंशीय राजा तपस्या करता था। शङ्करजीने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया और तभीसे यह ज्योतिर्लिङ्ग भीमशङ्करके नामसे प्रख्यात हुआ।

शिवपुराणकी एक कथाके आधारपर भीमशङ्करका ज्योतिर्लिङ्ग आसाम-प्रान्तके कामरूप जिलेमें ए० बी० रेलवेपर गोहाटीके पास ब्रह्मपुर-पहाड़ीपर अवस्थित बतलाया जाता है।* संक्षेपमें इतिहास यों है कि कामरूप-देशमें 'कामरूपेश्वर' नामक एक महाप्रतापी शिव-भक्त राजा हो गये हैं। वे बराबर शिवजीके पार्थिव-पूजनमें तल्लीन रहते थे। उन्हीं दिनों वहाँ 'भीम' नामक एक महाराक्षस प्रकट हुआ और धर्मोपासकोंको त्रास देने लगा। कामरूपेश्वर-के शिव-भक्तिकी ख्याति सुनकर वह वहाँ आ धमका और ध्यानावस्थित राजाको ललकारकर, कराल कृपाण दिखलाते हुए बोला कि रे दुष्ट! शीघ्र बतला कि क्या कर रहा है, अन्यथा तेरी खैर नहीं। शिव-भक्त राजा ध्यानसे नहीं डिगा; उसने मन-ही-मन भगवान् शङ्करका स्मरण किया और निर्भीकतापूर्वक बोला--

भजामि शङ्करं देवं स्वभक्तपरिपालकम्।

अर्थात् हे राक्षसराज! मैं भक्तोंके प्रतिपालक भगवान् शङ्करका भजन कर रहा हूँ।

इसपर राक्षस शिवजीकी निन्दा करके राजाको उनकी पूजा करनेसे मना करने लगा और उनके किसी प्रकार न माननेपर उनपर अपनी लपलपाती हुई तीखी तलवारका वार किया; पर तलवार पार्थिव-लिङ्गपर पड़ी और तत्क्षण भगवान् शङ्करने उसमेंसे प्रकट होकर उसका प्राणान्त कर दिया। सर्वत्र आनन्द छा गया। देव तथा ऋषिगण शिवसे वहीं निवास करनेके लिये प्रार्थना करने लगे, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया।

इत्येवं प्रार्थितश्शम्भुर्लोकानां हितकारकः।
तत्रैव स्थितवान् प्रीत्या स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः॥
(शि० पु० अ० २१ श्लो० ५४)

बस, तभीसे इस ज्योतिर्लिङ्गका नाम भीमशङ्कर पड़ा।

(७) श्रीविश्वेश्वर

श्रीविश्वेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग वाराणसी (बनारस) या काशी-में विराजमान है। यह नगरी उत्तर भारतकी सुप्रसिद्ध रेलवे ई० आई० आर० की उस शाखापर अवस्थित है जो मुगलसरायसे सहारनपुरको गयी है। यह स्थान बी० एन० डब्लू० रेलवेका भी एक प्रधान स्टेशन है। ईस्ट इण्डियन रेलवेकी Main line से यात्रा करनेवालोंको काशी जानेके लिये मुगलसराय स्टेशनपर गाड़ी बदलना आवश्यक होता है। इस पवित्र नगरीकी बड़ी महिमा है। कहते हैं, प्रलयकालमें भी इसका लोप नहीं होता। उस समय भगवान् शङ्कर इसे अपने त्रिशूलपर धारण कर लेते हैं और सृष्टि-काल आनेपर इसे नीचे उतार देते हैं। यही नहीं, आदि-सृष्टि-स्थली भी यही भूमि बतलायी जाती है। इसी स्थानपर भगवान् विष्णुने सृष्टि उत्पन्न करनेकी कामनासे तपस्या करके आशुतोषको प्रसन्न किया था और फिर उनके शयन करनेपर उनके नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिन्होंने सारे संसारकी रचना की। अगस्त्यमुनिने भी विश्वेश्वरकी बड़ी आराधना की थी और इन्हींकी अर्चासे श्रीवशिष्ठजी तीनों लोकोंमें पूजित

* कुछ लोग कहते हैं कि नैनीताल जिलेके उज्जनक नामक स्थानमें एक विशाल शिव-मन्दिर है, वही भीमशङ्करका स्थान है। उसका वर्णन अलग छपा है। —सम्पादक

श्रीविश्वनाथजीका मन्दिर—काशी

श्रीत्र्यम्बकेश्वर

श्रीत्र्यम्बकेश्वरका मन्दिर
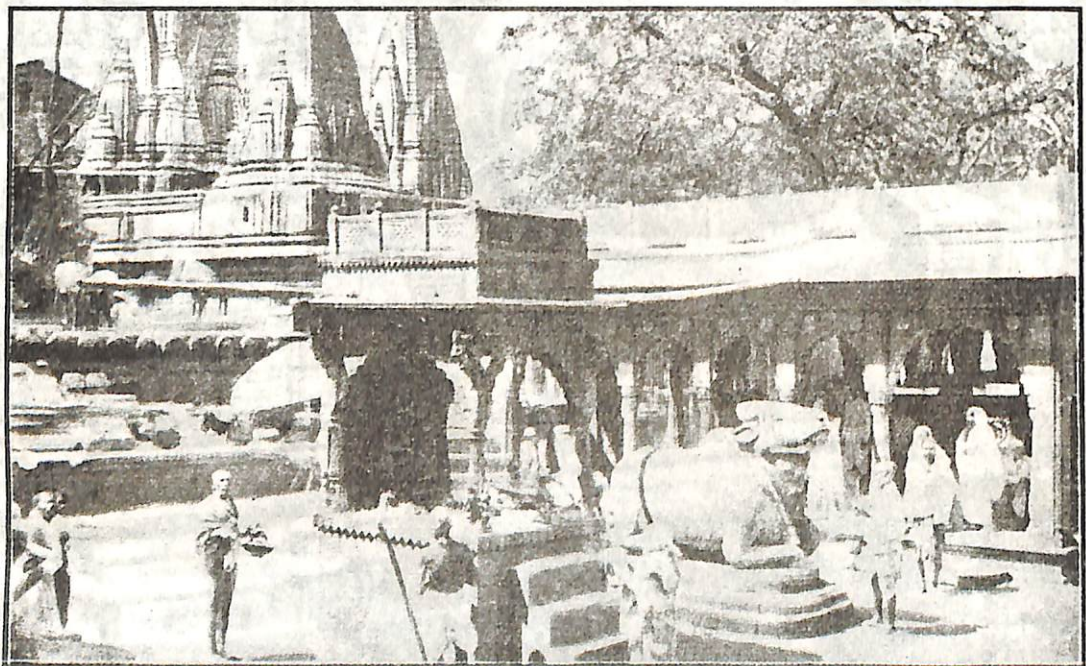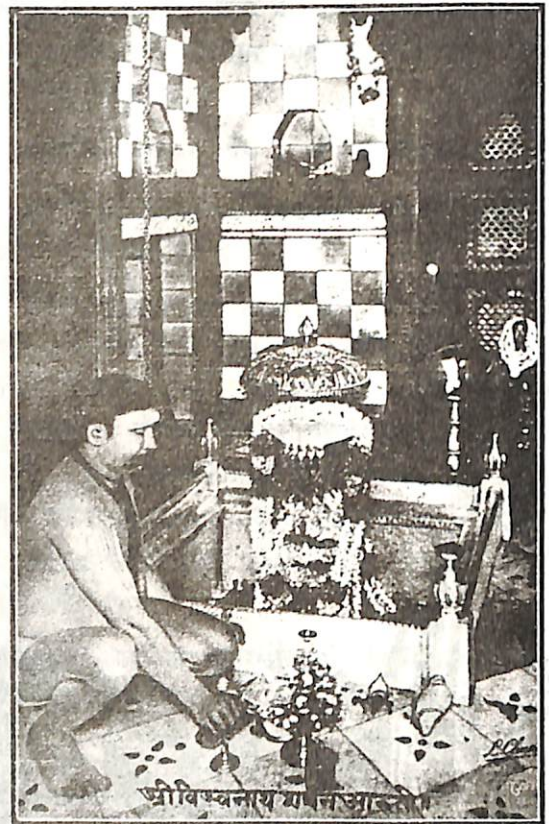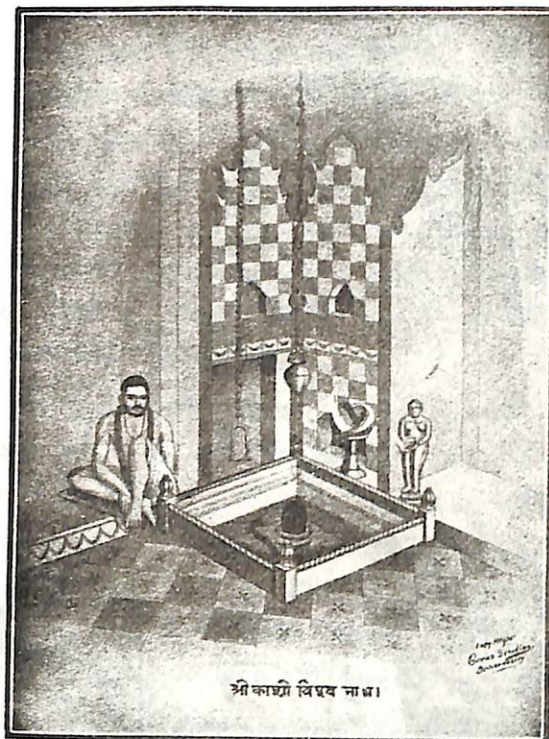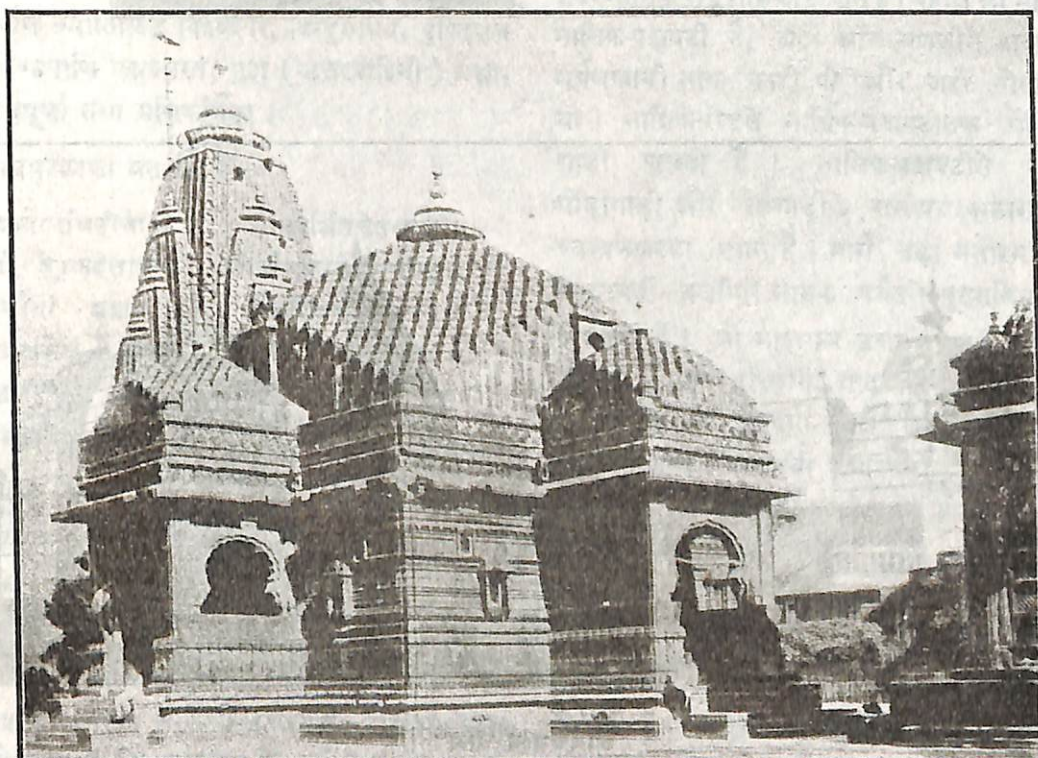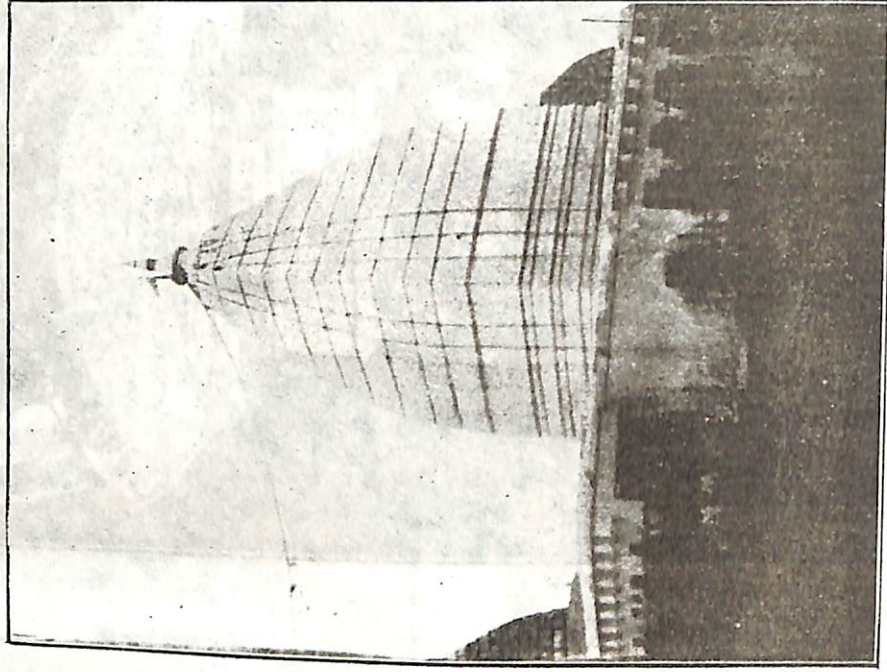
श्रीवैद्यनाथ मन्दिर
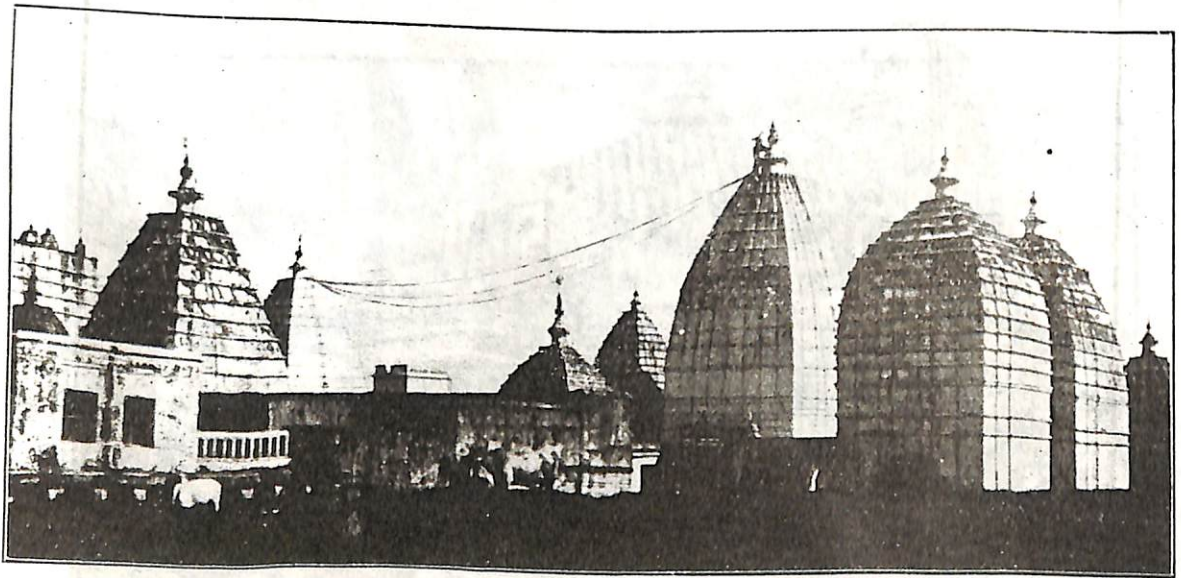
श्रीवैद्यनाथ धाम

हुए तथा राजर्षि विश्वामित्र ब्रह्मर्षि कहलाये। सर्वतीर्थमयी एवं सर्वसन्तापहारिणी मोक्षदायिनी काशीकी महिमा ऐसी है कि यहाँ प्राणत्याग करनेसे ही मुक्ति मिल जाती है। भगवान् भोलानाथ मरते हुए प्राणीके कानमें तारकमन्त्रका उपदेश करते हैं, जिससे वह आवागमनसे छूट जाता है। फिर मृत प्राणी कोई भी क्यों न हो—

विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः।
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारे न पुनर्भवेत्॥

अर्थात् विषयासक्त, अधर्मनिरत व्यक्ति भी यदि इस काशीक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त हो तो उसे भी पुनः संसार-बन्धनमें नहीं आना पड़ता। आवे कैसे? शिवजीके द्वारा दिये हुए तारकमन्त्रके उपदेशसे अन्तकालमें उसका अन्तः-करण शुद्ध हो जाता है और वह मोक्षका अधिकारी बन जाता है।

काशीमें अनेक तीर्थ हैं, जिनमेंसे प्रधान ये हैं—

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम्॥

अर्थात् ज्योतिर्लिङ्ग विश्वेश्वर, बिन्दुमाधव, ढुण्ढिराज गणेश, दण्डपाणि कालभैरव, गुहा (उत्तरवाहिनी) गङ्गा, माता अन्नपूर्णा तथा मणिकर्णिका।

मत्स्यपुराणका मत यह है—

जपध्यानविहीनानां ज्ञानवर्जितचेतसाम्।
ततो दुःखहतानाञ्च गतिर्वाराणसी नृणाम्॥
तीर्थानां पञ्चकं सारं विश्वेशानन्दकानने।
दशाश्वमेधं लोलार्कं केशवो बिन्दुमाधवः॥
पञ्चमी तु महाश्रेष्ठा प्रोच्यते मणिकर्णिका।
एभिस्तु तीर्थवर्यैश्च वर्ण्यते अविमुक्तकम्॥

अर्थात् जप, ध्यान और ज्ञानरहित एवं दुःखोंसे परिपीड़ित जनोंके लिये काशीपुरी ही एकमात्र गति है। विश्वेश्वरके आनन्द-काननमें दशाश्वमेध, लोलार्क, बिन्दु-माधव, केशव और मणिकर्णिका—ये पाँच मुख्य तीर्थ हैं और इसीसे इसे 'अविमुक्त क्षेत्र' कहते हैं।

काशीमें उत्तरकी ओर ॐकारखण्ड, दक्षिणमें केदार-खण्ड और बीचमें विश्वेश्वरखण्ड है, जहाँ बाबा विश्वनाथका प्रसिद्ध मन्दिर है। कहा जाता है कि इस मन्दिरकी स्थापना अथवा पुनःस्थापना शङ्करके अवतार भगवान् आद्य-शङ्कराचार्यने स्वयं अपने कर-कमलोंसे की थी। इस प्राचीन मन्दिरको प्रसिद्ध मूर्तिसंहारक बादशाह औरङ्गजेबने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और उसके स्थानमें एक मसजिद बनवा दी, जो अबतक विद्यमान है। प्राचीन मूर्ति ज्ञानवापीमें पड़ी हुई बतलायी जाती है। पीछेसे, उक्त मन्दिरसे थोड़ा हटकर परम-शिवभक्ता महारानी अहल्याबाईने सोमनाथ आदि मन्दिरों-की भाँति विश्वनाथका एक सुन्दर नया मन्दिर बनवा दिया और पंजाबकेशरी महाप्रतापी महाराजा रणजीतसिंहने इसपर स्वर्णकलश चढ़वा दिया।

काशीमें सुन्दर मन्दिरों और पुण्यसलिला जाह्नवीके तटवर्ती सुन्दर घाटोंके अतिरिक्त हिन्दू-विश्वविद्यालय, बौद्धोंका सारनाथ आदि और भी कई दर्शनीय स्थान हैं।

(८) श्रीत्र्यम्बकेश्वर

यह ज्योतिर्लिङ्ग बम्बई-प्रान्तके नासिक जिलेमें है। जी० आई० पी० रेलवेकी जो लाइन इलाहाबादसे बम्बईको गयी है, उसपर बम्बईसे एक सौ सतरह मील तथा सतरह स्टेशन इधर नासिक-रोड नामका स्टेशन है। वहाँसे छः मीलकी दूरीपर नासिक-पञ्चवटी है, जहाँ श्रीलक्ष्मणजीने रावणकी बहिन शूर्पणखाकी नाक काटी थी और जहाँ सीताहरण हुआ था। नासिक-रोडसे नासिक-पञ्चवटीतक घोड़ेकी ट्राम-गाड़ी चलती है। नासिक-पञ्चवटीसे मोटर तथा घोड़ागाड़ी और बैलगाड़ीके रास्तेपर अठारह मील दूर त्र्यम्बकेश्वरका स्थान है। मार्ग बड़ा मनोरम है। यहाँसे निकटवर्ती ब्रह्मगिरि नामक पर्वतसे पूतसलिला गोदावरी निकलती हैं। जो माहात्म्य उत्तर-भारतमें पाप-विमोचिनी गङ्गाका है वही दक्षिणमें गोदावरीका है। दक्षिणमें यह गङ्गानामसे ही प्रख्यात हैं। जैसे इस अवनीतलपर गङ्गावतरणका श्रेय तपस्वी भगीरथको है, वैसे ही गोदावरी-का प्रवाह ऋषिश्रेष्ठ गौतमकी घोर तपस्याका फल है, जो उन्हें भगवान् आशुतोषसे प्राप्त हुआ था।

भगीरथके प्रयत्नसे भूतलपर अवतरित हुई माता जाह्नवी जैसे भागीरथी कहलाती हैं वैसे ही गौतम ऋषिकी तपस्याके फलस्वरूप आयी हुई गोदावरीका दूसरा नाम गौतमी है। इनकी भी महिमा बहुत अधिक है। सिंहराशिके बृहस्पति होनेपर यहाँ बड़ा भारी कुम्भका मेला लगता है। इस कुम्भके अवसरपर गोदावरी-स्नानका बड़ा भारी माहात्म्य है। इन्हीं पुण्यतोया गोदावरीके उद्गम-स्थानके समीप

अवस्थित त्र्यम्बकेश्वर भगवान्‌की भी बड़ी महिमा है। गौतम ऋषि तथा गोदावरीके प्रार्थनानुसार भगवान् शिवने इस स्थानमें वास करनेकी कृपा की और त्र्यम्बकेश्वर नामसे विख्यात हुए। इनका दर्शन स्त्रियोंको नहीं करने दिया जाता। वे केवल इनके मुकुटका दर्शन कर सकती हैं और इसके अन्दर वही द्विज प्रवेश कर सकता है जो कम-से-कम गायत्री और सन्ध्योपासन जानता हो। अन्यथा उन्हें भी शूद्रादिकी भाँति बाहरसे ही दर्शन करके सन्तोष करना पड़ता है। मन्दिरके अन्दर एक छोटे-से गड्ढेमें तीन छोटे-छोटे लिङ्ग हैं जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवोंके प्रतीक माने जाते हैं। त्रिमूर्तिके ऊपर ब्रह्मगिरिसे निकली हुई गोदावरीकी धारा अविच्छिन्नरूपसे पड़ती है। शिवपुराणके अनुसार त्र्यम्बकेश्वरके दर्शन और पूजन करनेवालेको इस लोक और परलोकमें सदा आनन्द रहता है। ब्रह्मगिरि पर्वतके ऊपर जानेके लिये चौड़ी-चौड़ी सात सौ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इन सीढ़ियोंपर चढ़नेके बाद 'रामकुण्ड' और 'लक्ष्मणकुण्ड' मिलते हैं और शिखरके ऊपर पहुँचनेपर गोमुखीसे निकली हुई भगवती गोदावरीके दर्शन होते हैं।

(९) वैद्यनाथ*

यह स्थान सन्थाल-परगनेमें ई० आई० रेलवेके जसीडीह स्टेशनसे ३ मील एक ब्राञ्च-लाइनपर है। इस लिङ्गकी स्थापनाका इतिहास यह है कि एक बार राक्षसराज रावणने हिमालयपर जाकर शिवजीकी घोर तपस्या की और अपने सिर काट-काटकर शिवलिङ्गपर चढ़ाने शुरू कर दिये। एक-एक करके नौ सिर चढ़ानेके बाद दसवाँ सिर भी काटनेको ही था कि शिवजी प्रसन्न होकर प्रकट हो गये। उन्होंने उसके दसों सिर ज्यों-के-त्यों कर दिये और फिर वरदान माँगनेको कहा। रावणने लङ्कामें जाकर उस लिङ्गको स्थापित करनेके लिये उसे ले जानेकी आज्ञा माँगी। शिवजीने अनुमति तो दे दी, पर इस चेतावनीके साथ कि यदि मार्गमें कहीं तू इसे पृथिवीपर रख देगा तो यह वहीं अचल हो जायगा। आखिर वही हुआ। रावण शिवलिङ्ग लेकर चला; पर मार्गमें, यहाँ 'चिताभूमि' में आनेपर उसे लघुशङ्काकी शिकायत हुई और वह उस लिङ्गको एक अहीरको थमा लघुशङ्का-निवृत्तिके लिये चला गया। इधर उस अहीरने उसे बहुत अधिक भारी समझ भूमिपर रख दिया। बस, फिर क्या था, लौटनेपर रावण पूरी शक्ति लगाकर भी उसे न उखाड़ सका और निराश होकर मूर्तिपर अपना अँगूठा गड़ाकर लङ्काको चला गया। इधर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने आकर उस शिव-लिङ्गकी पूजा की और शिवजीका दर्शनकर उनकी वहीं प्रतिष्ठापूर्वक स्तुतिकर स्वर्गको चले गये। यह वैद्यनाथ-ज्योतिर्लिङ्ग महान् फलोंका देनेवाला है। इस स्थानकी जल-वायु बड़ी अच्छी है। अनेक रोगी रोग-मुक्ति-

---

* 'परल्यां वैद्यनाथं च' इस वचनके अनुसार कोई-कोई इसे असली वैद्यनाथ न मानकर निजाम हैदराबाद-राज्यके अन्तर्गत परली ग्रामके शिवलिङ्गको वैद्यनाथ-ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं; परन्तु द्वादश ज्योतिर्लिङ्गसम्बन्धी वर्णनमें शिवपुराणके अन्दर जो इनकी तालिका दी गयी है उसमें 'वैद्यनाथं चिताभूमौ' यह पद आता है, जिससे जैसीडीहके पासवाला वैद्यनाथ-शिवलिङ्ग ही वास्तविक वैद्यनाथ-ज्योतिर्लिङ्ग सिद्ध होता है; क्योंकि चिताभूमि इसी स्थलको कहते हैं। जब भगवान् शङ्कर सतीके शवको कन्धेपर रखकर उन्मत्तकी भाँति फिर रहे थे, तब इस स्थानपर सतीका हृत्पिण्ड गलकर गिर पड़ा था, जिसका उन्होंने यहीं दाह-संस्कार किया था। इसके सिवा शिवपुराणका निम्नलिखित श्लोक भी इसमें प्रमाण है—

प्रत्यक्षं तं तदा दृष्ट्वा प्रतिष्ठाप्य च ते सुराः।
वैद्यनाथेति सम्प्रोच्य नत्वा नत्वा दिवं ययुः॥

अर्थात् शिवके प्रत्यक्ष दर्शनकर, उनके लिङ्गकी प्रतिष्ठाकर और उसे वैद्यनाथ नाम देकर नमस्कार करते हुए देवतालोग स्वर्गको चले गये। फिर भी परली स्थानका भी कुछ परिचय दे देना उचित जान पड़ता है। बम्बईसे प्रयागकी ओर जानेवाली जी० आई० पी० रेलवे-लाइनपर बम्बईसे १६२ मील दूर प्रसिद्ध मनमाड स्टेशन है। वहाँसे निजाम-राज्यमेंसे होती हुई निजाम-राज्यकी रेलवे गयी है। उस लाइनपर हैदराबाद नगरसे इधर परभनी नामक एक जंकशन है, वहींसे परलीतक एक ब्राञ्च-लाइन गयी है। इस परली स्टेशनसे थोड़ी दूरपर परली ग्रामके निकट श्रीवैद्यनाथ-ज्योतिर्लिङ्ग है। मन्दिर बहुत पुराना है और इसका जीर्णोद्धार इन्दौरकी स्व० रानी अहल्याबाईका कराया हुआ है। मन्दिर एक पर्वतशिखरपर बना हुआ है जिसके नीचेसे एक छोटी-सी नदी बहती है और छोटा शिव-कुण्ड है। शिखरपर चढ़नेके लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। मन्दिरका प्रबन्ध निजाम-राज्यकी ओरसे है। बहुत-से लोगोंका यह निश्चित मत है कि परलीके वैद्यनाथ ही वास्तविक वैद्यनाथ-ज्योतिर्लिङ्ग है।

श्रीनागनाथ-मन्दिर
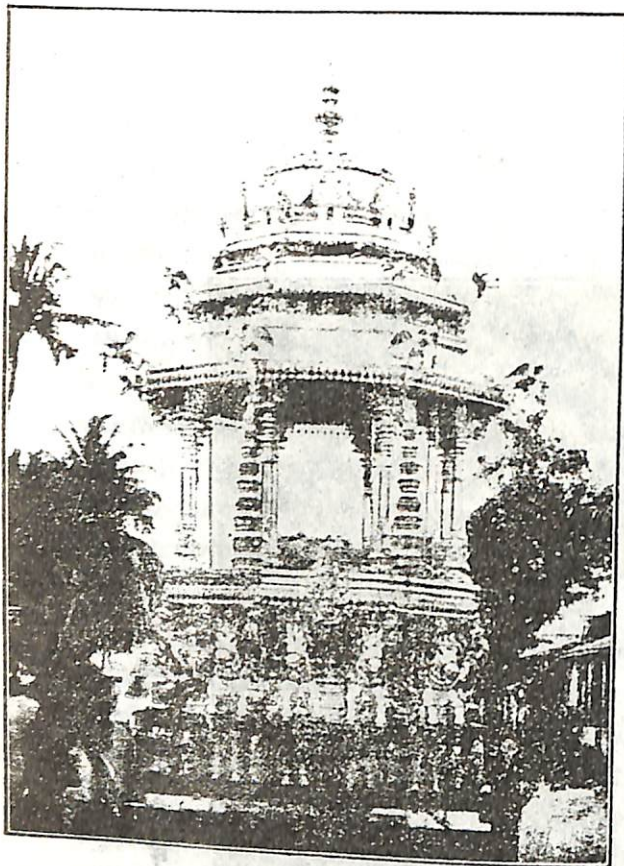
श्रीरामेश्वर-मन्दिरका प्रसिद्ध चाँदीका रथ
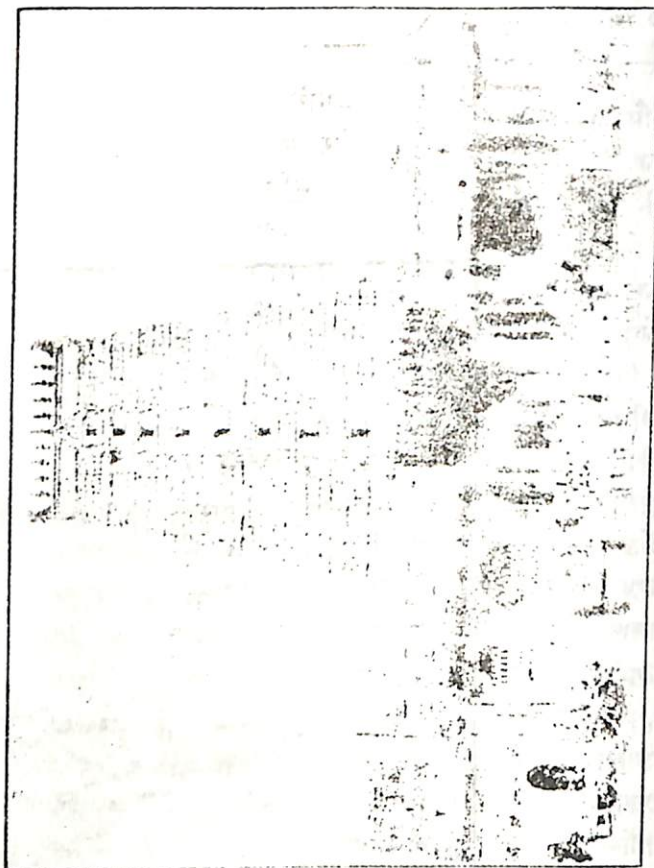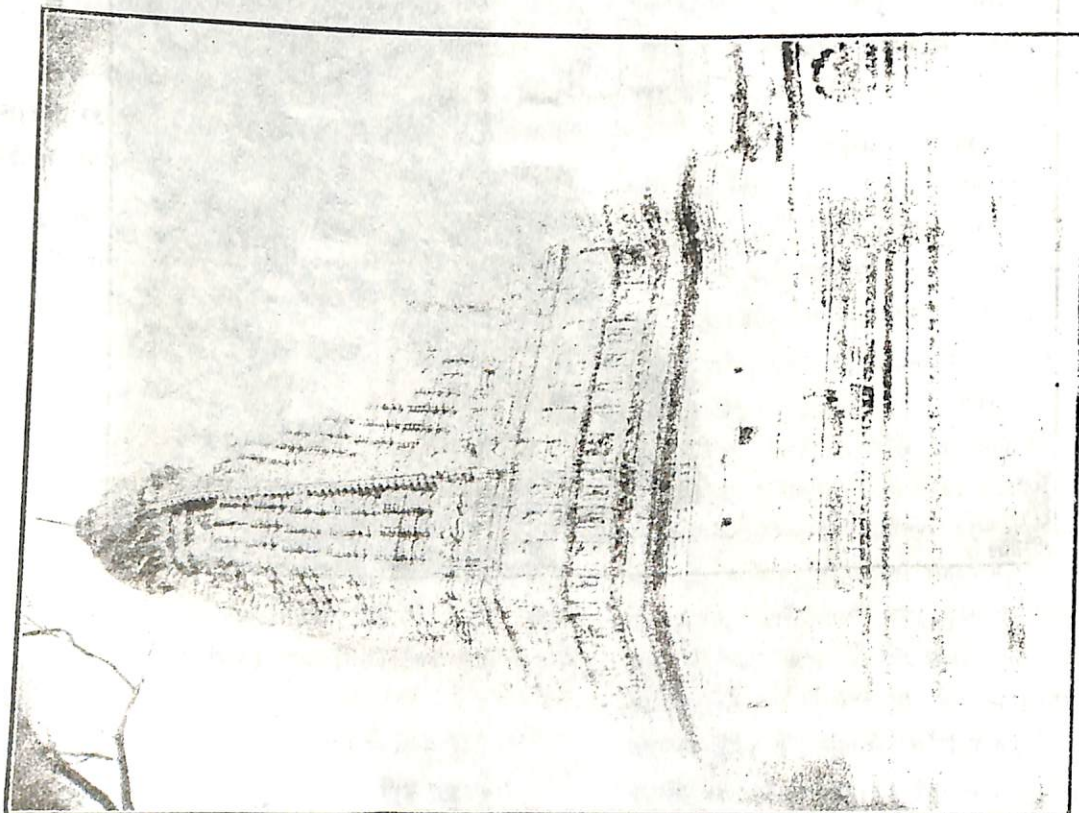
श्रीरामेश्वर-मन्दिरका पूर्वीय गोपुर

के लिये यहाँ आते हैं। स्टेशनसे थोड़ी ही दूरपर एक तालाब है, जिसके चारों ओर पक्के घाट बने हुए हैं। तालावके पास ही धर्मशाला है। मूर्ति ग्यारह अंगुल ऊँची है और अब भी उसपर जरा-सा गढ़ा है। यहाँ दूर-दूरसे लाकर जल चढ़ानेका बड़ा माहात्म्य बतलाते हैं। बहुत-से यात्री कन्धोंपर काँवर लिये वैद्यनाथजी जाते हुए देखे जाते हैं। कुष्ठरोगसे मुक्त होनेके लिये भी बहुत-से रोगी यहाँ आते हैं।

(१०) नागेश्वर*

नागेश्वर-भगवान्‌का स्थान गोमती† द्वारकासे बेठ-द्वारकाको जाते समय कोई बारह-तेरह मील पूर्वोत्तरकी ओर रास्तेमें मिलता है। द्वारकासे इस स्थानपर जानेके लिये मोटर तथा बैलगाड़ीका प्रबन्ध हो सकता है। द्वारकाको जानेके लिये राजकोटतक वही मार्ग है जो वेरावल (सोमनाथ) जानेके लिये ऊपर बताया जा चुका है।

* नागेश्वर-ज्योतिलिङ्ग भी दो और हैं। एक नागेश्वर-ज्योतिलिङ्ग निजाम हैदराबादके राज्यमें भी है; परन्तु शिवपुराणको देखनेसे उपरिलिखित द्वारका-मार्गके नागेश्वर ही प्रामाणिक मालूम होते हैं। तथापि इन दूसरे नागेश्वरका भी कुछ परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है। ये निजाम हैदराबादके अन्तर्गत औढ़ाग्राममें स्थित हैं। मनमाडसे द्रोणाचलम्‌तक जानेवाली निजाम-स्टेट-रेलवेपर परभनीसे थोड़ी ही दूर आगे पूर्णा जङ्कशन है। वहाँसे हिङ्गोलीतक एक ब्राञ्च लाइन जाती है, उसके चोंडी स्टेशनसे कोई १२ मीलपर औढ़ाग्राम है। वहाँ जानेके लिये बैलगाड़ी या मोटरकी व्यवस्था है।

—कुछ लोगोंके मतसे अल्मोड़ासे १७ मील उत्तर-पूर्वमें स्थित यागेश (जागेश्वर) शिवलिङ्ग ही नागेश-ज्योतिलिङ्ग है, इस विषयपर अलग लेख प्रकाशित है। —सम्पादक

†इस समय दो द्वारकाएँ हैं। एक द्वारका तो स्थलसे लगी हुई है। उसके समीपवर्ती एक खाड़ीमें, जिसे गोमती कहते हैं, ज्वारभाटा आता है। यहाँ गोमती-चक्र भी मिलते हैं। इसीसे इसे 'गोमती' द्वारका कहते हैं। दूसरी द्वारका जो बेठ-द्वारका कहलाती है 'गोमती' द्वारकासे २० मील हटकर एक द्वीपपर बसी हुई है। दोनों ही द्वारकाएँ महाराज बड़ौदाके राज्यमें हैं, किन्तु सन् १८५१ से गोमती-द्वारकाका प्रबन्ध अंग्रेजोंके हाथमें है।

राजकोटसे जामनगर पहुँचकर वहाँसे जामनगर-द्वारका-रेलवेके द्वारा द्वारका जाया जा सकता है।

लिङ्गकी स्थापनाके सम्बन्धमें यह इतिहास है कि एक सुप्रिय नामक वैश्य था, जो बड़ा धर्मात्मा, सदाचारी और शिवजीका अनन्य भक्त था। एक बार जब कि वह नौकापर सवार होकर कहीं जा रहा था, अकस्मात् दारुक नामके एक राक्षसने आकर उस नौकापर आक्रमण किया और उसमें बैठे हुए सभी यात्रियोंको अपनी पुरीमें ले जाकर कारागारमें बन्द कर दिया। पर सुप्रियकी शिवार्चना वहाँ भी बन्द नहीं हुई। वह तन्मय होकर शिवाराधन करता और अन्य साथियोंमें भी शिव-भक्ति जागृत करता रहा। संयोगसे इसकी खबर दारुकके कानोंतक पहुँची और वह उस स्थानपर आ धमका। सुप्रियको ध्यानावस्थित देखकर 'रे वैश्य! यह आँख मूँदकर तू कौन-सा षड्यन्त्र रच रहा है?' कहकर उसने एक जोरकी डाँट बतलायी और इतनेपर भी सुप्रियकी समाधि भङ्ग न होते देख उसने अपने अनुचरोंको उसकी हत्या करनेका आदेश दिया। परन्तु सुप्रिय इससे भी विचलित नहीं हुआ। वह भक्तभयहारी शिवजीको ही पुकारने लगा। फलतः उस कारागारमें ही भगवान् शिवने एक ऊँचे स्थानपर एक चमकते हुए सिंहासनमें स्थित ज्योतिर्लिङ्गरूपसे दर्शन दिया। दर्शन ही नहीं, उन्होंने उसे अपना पाशुपतास्त्र भी दिया और अन्तर्धान हो गये। इस पाशुपतास्त्रसे समस्त राक्षसोंका संहार करके सुप्रिय शिवधामको चला गया। भगवान् शिवके आदेशानुसार ही इस ज्योतिर्लिङ्गका नाम नागेश पड़ा। इसके दर्शनका बड़ा माहात्म्य है। कहा है कि जो आदरपूर्वक इसकी उत्पत्ति और माहात्म्यको सुनेगा वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर समस्त ऐहिक सुखोंको भोगता हुआ, अन्तमें परमपदको प्राप्त होगा।

एतद् यः शृणुयान्नित्यं नागेशोद्भवमादरात्।
सर्वान् कामानियाद् धीमान् महापातकनाशनान्॥

(शि० पु० श० को० स० सं० अ० ४)

(११) सेतुबन्ध-रामेश्वर

ग्यारहवाँ ज्योतिर्लिङ्ग सेतुबन्ध-रामेश्वर है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके कर-कमलोंद्वारा इसकी स्थापना हुई थी। लंकापर चढ़ायी करनेके लिये जाते हुए जब भगवान् रामचन्द्रजी यहाँ पहुँचे तो उन्होंने समुद्र-

तटपर बालुकासे शिवलिङ्ग बनाकर उसका पूजन किया। यह भी कहा जाता है कि भगवान् श्रीराम जल पी रहे थे कि एकाएक आकाशवाणी हुई कि 'मेरी पूजा किये बिना ही जल पीते हो ?' इस वाणीको सुनकर भगवान्ने बालुकाकी लिङ्गमूर्ति बनाकर शिवजीकी पूजा की और रावणपर विजय प्राप्त करनेका आशीर्वाद माँगा, जो भगवान् शङ्करने उन्हें सहर्ष प्रदान किया। उन्होंने लोकोपकारार्थ ज्योतिर्लिङ्ग-रूपसे सदाके लिये वहाँ वास करनेकी सबकी प्रार्थना भी स्वीकार कर ली। भगवान् श्रीरामने शङ्करजीकी स्थापना और पूजाकर उनकी बड़ी महिमा गायी—

जे रामेस्वर दरसन करिहहिं। ते तनु तजि हरिलोक सिधरिहहिं॥
जे गंगाजल आनि चढ़इहहिं। सो सायुज्य मुकुति नर पइहहिं॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहिं। भगति मोर तेहि संकर देइहिं॥
मम कृत सेतु जो दरसन करिहहिं। सो बिनु स्रम भवसागर तरिहहिं॥
(रामचरितमानस)

एक दूसरा इतिहास इस लिङ्गस्थापनके सम्बन्धमें यह है कि जब रावणका वधकर भगवान् श्रीराम श्रीसीताजीको ले, दलबलसहित वापस आने लगे तो समुद्रके इस पार गन्धमादन-पर्वतपर पहला पड़ाव डाल दिया। उसी समय मुनीश्वरगण आपके स्तुत्यर्थ वहाँ आ पहुँचे। पीछे श्रीरामजीने उनका सत्कार करते हुए कहा कि मुझे पुलस्त्यकुलका विनाश करनेके कारण ब्रह्महत्याका पातक लगा है, अतएव आपलोग कृपाकर बतलाइये कि इस पापसे मुक्ति पानेका क्या उपाय है ? मुनीश्वरोंने एक स्वरसे भगवद्गुणगान करते हुए यह व्यवस्था दी कि आप शिवलिङ्गकी स्थापना कीजिये, इससे यह सब पाप छूट जायगा।

भगवान्ने अञ्जनानन्दन महावीर हनूमान्को कैलास जाकर लिङ्ग लानेका आदेश दिया। वह क्षणमात्रमें कैलासपर जा पहुँचे, पर वहाँ शिवजीके दर्शन नहीं हुए, अतएव वहाँ शिवजीके दर्शनार्थ तप करने लगे और पीछे उनके दर्शन देनेपर उनसे लिङ्ग प्राप्तकर वापस लौटे। इधर जबतक वह आये तबतक ज्येष्ठ शुक्ला दशमी बुधवारको अत्यन्त शुभ-मुहूर्तमें शिवस्थापना हो भी चुकी थी। मुनियोंने हनूमान्के आनेमें विलम्ब समझकर कहीं पुण्यकाल निकल न जाय, इस आशङ्कासे तुरन्त लिङ्ग-स्थापन करनेकी प्रार्थना की और तदनुसार श्रीजानकीजीद्वारा बालुकानिर्मित लिङ्गकी ही स्थापना कर दी गयी। हनूमान्जीको यह सब देखकर बड़ा क्षोभ हुआ और वह अपने प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े। भक्तपरायण भगवान्ने उनकी पीठपर हाथ फेरते-फेरते उन्हें समझाया—उनके आनेके पूर्व ही लिङ्ग-स्थापनाका कारण बतलाया और अन्तमें उनके सन्तोषार्थ बोले कि अच्छा तुम इस स्थापित लिङ्गको उखाड़ डालो। मैं इसके स्थानपर तुम्हारेद्वारा लाये गये लिङ्गको स्थापित कर दूँगा। हनूमान्जी प्रसन्नतासे खिल उठे। स्थापित लिङ्ग उखाड़नेको झपटे, पर हाथ लगानेसे मालूम हुआ कि काम आसान नहीं है। बालूका लिङ्ग वज्र बन गया है। अपना समूचा बल लगाया, पर व्यर्थ ! आखिर, उसे अपनी लम्बी पूँछसे लपेटा और फिर किलकारी मारकर जोरसे खींचा। पृथिवी डोल गयी, पर लिङ्ग टस-से-मस नहीं हुआ। उलटे हनूमान्जी ही धक्का खाकर एक कोस दूर मूर्च्छित होकर जा गिरे। उनके मुख आदि देहछिद्रोंसे रुधिर बहने लगा ! श्रीरामचन्द्रजी आदि सभी व्याकुल हो गये। श्रीसीताजी भी उनके शरीरपर हाथ फेरती हुई रुदन करने लगीं। बहुत काल बाद उनकी मूर्च्छा दूर हुई। सम्मुखासीन भगवान्पर दृष्टि जानेपर साक्षात् परब्रह्मके रूपमें उनके दर्शन हुए। आत्मग्लानिपूर्वक वह झट उनके चरणोंपर पड़ स्तुति करने लगे। भगवान्ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि तुमने भूल की, जिससे इतना कष्ट मिला। मेरे स्थापित किये हुए इस लिङ्गको संसारकी समूची शक्ति भी नहीं उखाड़ सकती। महादेवके अपराधसे तुमको यह फल मिला। अब कभी ऐसा मत करना।

पीछे भगवान्ने हनूमान्द्वारा लाये हुए लिङ्गको भी पास ही स्थापित करा दिया और उसका नाम रक्खा 'हनुमदीश्वर।' रामेश्वर और हनुमदीश्वर—इन दोनों शिवलिङ्गोंकी महिमा भगवान्ने अपने श्रीमुखसे इसप्रकार वर्णन की है—

स्वयं हरेण दत्तं तु हनुमन्नामकं शिवम्।
सम्पश्यन् रामनाथं च कृतकृत्यो भवेन्नरः॥
योजनानां सहस्रेऽपि स्मृत्वा लिङ्गं हनूमतः।
रामनाथेश्वरं चापि स्मृत्वा सायुज्यमाप्नुयात्॥
तेनेष्टं सर्वयज्ञैश्च तपश्चाकारि कृत्स्नशः।
येन दृष्टौ महादेवौ हनूमद्राघवेश्वरौ॥
(स्क० पु० ब्र० खं० सं० मा० अ० ४५)

'अर्थात् स्वयं भगवान् शिवके दिये हुए हनुमन्नामक लिङ्गका तथा श्रीरामनाथेश्वरका दर्शनकर मनुष्य कृतार्थ हो

जाता है। हजार योजनकी दूरीपरसे भी श्रीहनुमदीश्वर तथा श्रीरामनाथेश्वरका स्मरणकर मनुष्य शिवसायुज्यको प्राप्त होता है। जिसने हनुमदीश्वर तथा राघवेश्वर महादेवका दर्शन कर लिया, उसने सारे यज्ञ और सारे तप कर लिये।'

श्रीरामेश्वरजीका मन्दिर प्रायः १००० फीट लम्बा, छः सौ पचास फीट चौड़ा और एक सौ पचीस फीट ऊँचा है। इस विशाल मन्दिरमें श्रीशिवजीकी प्रधान मूर्तिके अतिरिक्त जो लगभग एक हाथसे भी अधिक ऊँची है और भी अनेक सुन्दर शिवमूर्तियाँ तथा अन्य मूर्तियाँ हैं। नन्दीकी एक बहुत बड़ी अद्वितीय मूर्ति है। श्रीशङ्कर-पार्वतीकी चल मूर्तियाँ भी हैं, जिनकी वार्षिकोत्सवके अवसरपर सोने और चाँदीके वाहनोंपर सवारी निकाली जाती है। चाँदीके त्रिपुण्ड्र तथा श्वेत उत्तरीयके कारण लिङ्गकी शोभा और भी बढ़ जाती है। मन्दिरके अन्दर चौबीस कुएँ हैं, जो तीर्थ कहलाते हैं। इनके जलसे स्नान करनेका माहात्म्य है। इन सब कुओंका जल मीठा है; किन्तु मन्दिरके बाहरके सभी कुओंका जल खारा है। कहते हैं, भगवान्ने अपने अमोघ बाणोंद्वारा इन कूपोंका निर्माण किया था और उनमें भिन्न-भिन्न तीर्थोंका जल मँगवाकर डाला था। इनमेंसे कुछके नाम ये हैं—गङ्गा, यमुना, गया, शङ्ख, चक्र, कुमुद। इन कूपोंके अतिरिक्त श्रीरामेश्वरधामके अन्तर्गत करीब एक दर्शनतीर्थ और है। इनमें कुछके नाम हैं—रामतीर्थ, अमृतवाटिका, हनुमानकुण्ड, ब्रह्महत्यातीर्थ, विभीषणतीर्थ, माधवकुण्ड, सेतुमाधव, नन्दिकेश्वर और अष्टलक्ष्मीमण्डप।

गंगोत्रीके गंगाजलको श्रीरामेश्वरपर चढ़ानेका बड़ा माहात्म्य है और इसके लिये १।) कर लगता है। जिनके पास गंगाजल नहीं होता, उन्हें वहाँके पण्डे इत्रके मूल्यमें १०), २०), ५०) तक लेकर गंगाजलकी शीशी बेचते हैं। श्रीरामेश्वरसे पन्द्रह-बीस मील दूर धनुषकोडि नामक स्थान है जहाँ भारतमहासागर और बंगालकी खाड़ीका सम्मेलन होता है। यहाँ श्राद्ध होता है। धनुषकोडितक रेल गयी है। कहते हैं, यहींपर श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रसे कुपित होकर शर-सन्धान किया था। धनुषकोडि बड़ा भारी बन्दरगाह भी है, जहाँसे वर्तमान लङ्काको जहाज जाया-आया करते हैं। कहते हैं कि श्रीरामके पुलके भग्नावशेषके सहारे ही अब अंग्रेजोंने रेलमार्ग बना लिया है। रामेश्वर जानेके लिये बम्बई या कलकत्ते होते हुए मद्रास जाना चाहिये और मद्राससे साउथ इण्डियन रेलवेद्वारा त्रिचनापल्ली होते हुए रामेश्वर जाते हैं। यह स्थान मदुरा जिलेमें रामनाथके राजाकी जमींदारीमें है। यहाँ लक्ष्मणतीर्थमें मुण्डन और श्राद्ध, समुद्रमें स्नान तथा अर्घ्यदान और गन्धमादन-पर्वतपर स्थित 'रामझरोखे' से समुद्र एवं सेतु-दर्शनका बड़ा माहात्म्य बतलाया जाता है। सेतुके बीचमें बहुत-से तीर्थ हैं, जिनमेंसे मुख्य ये हैं—(१) चक्रतीर्थ, (२) बेतातवरद, (३) पापविनाशन, (४) सीतासर, (५) मङ्गलतीर्थ, (६) अमृतवापिका, (७) ब्रह्मकुण्ड, (८) अगस्त्यतीर्थ, (९) जयतीर्थ, (१०) लक्ष्मीतीर्थ, (११) अग्नितीर्थ, (१२) शुक्रतीर्थ, (१३) शिवतीर्थ, (१४) कोटितीर्थ, (१५) साध्यामृततीर्थ और (१६) मानसतीर्थ।

(१२) घुश्मेश्वर

अब अन्तिम ज्योतिर्लिङ्ग घुश्मेश्वर, घुसृणेश्वर या धृष्णेश्वरका वर्णन किया जाता है। निजाम-राज्यके अन्तर्गत निजाम-रेलवे-लाइनपर मनमाडसे ६६ मील दूर दौलताबाद-स्टेशन है। वहाँसे १२ मील दूर वेरुलगाँवके पास यह स्थान है। स्टेशनसे बैलगाड़ीकी सवारी मिलती है। मोटरसे जाना हो तो दौलताबाद न उतरकर औरङ्गाबाद-स्टेशनपर उतरना चाहिये, जो दौलताबादसे अगला स्टेशन है। दौलताबाद-स्टेशनसे गन्तव्य स्थानतक जानेका मार्ग पहाड़ी और बड़ा सुहावना है। मार्गमें दौलताबादका किला है। यह दौलताबादका किला धृष्णेश्वरसे दक्षिण पाँच मीलपर एक पहाड़की चोटीपर है। यहाँ धारेश्वर-शिवलिङ्ग और श्रीएकनाथ-जीके गुरु श्रीजनार्दन महाराजकी समाधि है। यहाँसे आगे इलोरा-की प्रसिद्ध गुहाएँ दर्शनीय हैं। इलोरा जानेके लिये दौलताबाद-से पूर्ववर्ती इलोरा-रोड-स्टेशनपर उतरना चाहिये। इलोरामें कैलास नामक गुहा सबसे श्रेष्ठ और सुन्दर है और पहाड़को काटकर बनायी हुई है। गुहा कारीगरीकी दृष्टिसे बहुत सुन्दर है। यह न केवल हिन्दुओंका ही ध्यान अपनी ओर खींचती है, बल्कि अन्य धर्मावलम्बी एवं अन्य देशवासी-जन भी इसकी अद्भुत रचनाको देखकर मुग्ध हो जाते हैं। एक श्यावेल नामक पाश्चात्य सज्जन तो दक्षिण-भारतके सभी मन्दिरोंको इस कैलासके नमूनेपर बना हुआ बतलाते हैं। इलोरा इतना सुन्दर स्थान है कि बौद्ध और जैन तथा विधर्मी मुसलमानतक इसकी ओर आकर्षित हो गये और उन्होंने इस सुरम्य पहाड़ीपर अपने-अपने स्थान बनाये हैं। कुछ लोग इलोराके कैलास-मन्दिरको ही घुश्मेश्वरका असली

स्थान मानते हैं। श्रीघृष्णेश्वर-शिव और देवगिरिदुर्गके बीच सहस्रलिङ्ग, पातालेश्वर, सूर्येश्वर हैं तथा सूर्यकुण्ड और शिवकुण्ड हैं। यह बहुत प्राचीन स्थान है। खैर, अब हमें संक्षेपमें घुश्मेश्वर-ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापनाका इतिहास बतला देना है, जो इसप्रकार है—

दक्षिण-देशमें देवगिरिपर्वतके निकट सुधर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पतिपरायणा पत्नीका नाम सुदेहा था। दोनोंमें परस्पर सद्भाव था और इसकारण वे बड़े सुखी थे। परन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे त्यों-त्यों उनके अन्दर एक चिन्ता जाग्रत होकर उस सुखमें बाधा पहुँचाने लगी। वह चिन्ता यह थी कि उनके पीछे कोई सन्तान नहीं थी। ब्राह्मणदेवताने ज्योतिषकी गणना करके देखा कि सुदेहाकी कोखसे सन्तान उत्पन्न होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। यह बात उसने अपनी पत्नीपर प्रकट भी कर दी, पर सुदेहा इसपर भी चुप नहीं बैठी। वह अपने पतिदेवसे दूसरा विवाह करनेका आग्रह करने लगी। सुधर्माने भरपूर समझाया कि इस झंझटमें मत पड़ो। परन्तु सुदेहा किसी प्रकार भी नहीं मानती थी। उसने कहा—'तुम मेरी बहिन घुश्माके साथ विवाह करो। वह मेरी सहोदरा भगिनी है। उसके साथ मेरा अत्यन्त स्नेहका सम्बन्ध है, उसके साथ किसी प्रकारका मनोमालिन्य होनेकी आशङ्का बिल्कुल न करनी चाहिये। हम दोनों परमप्रेमके साथ एक मन और दो तन होकर रहेंगी—आप निश्चिन्त रहें।'

अब और अधिक सुधर्मा अपनी पत्नीके आग्रहको न टाल सका। आखिर, वह इसके लिये राज़ी हो गया और एक निश्चित तिथिको घुश्माको व्याहकर घर ले आया। दोनों बहिनें प्रेमपूर्वक रहने लगीं। घुश्मा अतीव सुलक्षणा गृहिणी थी। वह अपने पतिकी सर्व प्रकारसे सेवा करती और अपनी ज्येष्ठा भगिनीको मातृवत् मानती। साथ ही वह शिवजीकी अनन्य भक्त भी थी। प्रतिदिन नियमपूर्वक १०१ पार्थिव-शिवलिङ्ग बनाकर उनका विधिवत् पूजन करती। भगवान् शङ्करजीके प्रसादसे अल्पकालमें ही उसे गर्भ रहा और निश्चित समयमें उसकी गोदमें पुत्ररत्नके दर्शन हुए। सुधर्माके साथ-साथ सुदेहाके आनन्दकी भी सीमा न रही। परन्तु पीछे चलकर उसपर न जाने कौन-सी राक्षसी वृत्तिने अधिकार किया। उसके अन्दर ईर्ष्याका अङ्कुर उत्पन्न हुआ। अब उसे न अपनी सहोदरा भगिनीकी सूरत सुहाती और न उस शिशुके प्रति ही कुछ अनुराग रहा। उलटा उसे देख-देख वह मन-ही-मन कुढ़ती। ज्यों-ज्यों बालककी उम्र बढ़ने लगी त्यों-ही-त्यों उसका ईर्ष्याङ्कुर भी वृद्धिंगत होता गया और जब समय पाकर वह बच्चा व्याहकर घरमें नववधूको लाया तबतक उसका ईर्ष्याङ्कुर भी फला-फूला वृक्ष बन गया। 'हाय! अब जो कुछ है, सब घुश्माका है। मेरा इस घरमें कुछ नहीं। यह पुत्र और पुत्रवधू हैं तो आखिर उसीके। मेरे ये कौन हैं—उलटे मेरी सम्पत्तिको हड़पनेवाले हैं।' इन सब कुविचारोंने उसके हृदयको मथ डाला। वह उनका क्षय चाहने लगी; यही नहीं, बच्चेके प्राणान्तकी तदबीर भी सोचने लगी और अन्ततोगत्वा एक दिन रात्रिको जब वह अपनी पत्नीके साथ शयन कर रहा था, इस कुमतिग्रस्ता मासीने उसकी हत्या कर डाली और उसके शवको ले जाकर उसी सरोवरमें छोड़ दिया, जिसमें घुश्मा जाकर पार्थिव शिव-लिङ्गोंको छोड़ती थी। प्रातःकाल उसकी पत्नीने उठकर देखा कि पति पलँगपर नहीं है और पलँगपर बिछाये हुए वस्त्र खूनसे लथपथ हैं। अभागी चीख मारकर रो पड़ी, फलतः बात-की-बातमें घरमें कुहराम मच गया। सुधर्माकी जो एक आँख थी वह भी फूट गयी। पर घुश्मा कहाँ है? वह अपने पूजा-घरमें शिवजीकी सेवामें निरत है, उसे इस ओर ध्यान देनेकी फ़ुरसत नहीं। उसने सदाकी भाँति नियमपूर्वक अपना नित्यकर्म समाप्त किया और फिर शिवलिङ्गोंको तालाबमें जाकर छोड़ा। भगवान्‌की लीला देखो, एकाएक सरोवरके अन्दरसे उसका लाल, जो मर चुका था, भला-चङ्गा निकल आया और मातासे प्रार्थना करने लगा—'माता, मैं मरकर पुनः जीवित हो उठा। ठहर, मैं भी चलता हूँ।' बच्चा आकर माताके चरणोंपर लोट गया, पर उसे ऐसा ही मालूम पड़ता था मानों उसका लाल उसी प्रकार आकर उसके चरणोंपर पड़ा है जिसप्रकार वह सदा बाहरके काम-काजसे लौटकर पड़ता था। उसने न उसके मरनेपर दुःख ही मनाया था और न अब उसके जी उठनेपर उसे खुशी ही हुई। अवश्य ही, सब कुछ शिवजीकी ही लीला समझकर वह आनन्दमें मग्न हो गयी। भगवान् भोलानाथ उसकी तन्मयता देख अब अधिक विलम्ब न कर सके। झट उसके सामने प्रकट हो गये और उससे वर माँगनेको कहने लगे। वह उसकी सौतकी काली करतूत भी नहीं सह सके और इसके लिये अपने त्रिशूलद्वारा उसका शिरश्छेद करनेको उद्यत हो गये।

परन्तु धर्मपरायणा घुश्मा उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी—

'प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपया मेरी बहिनको क्षमादान दें । अवश्य ही उसने घोर पाप किया है, पर अब आपके दर्शन करके वह उससे मुक्त हो गयी । भला ! आपके दर्शन करके भी पापी-से-पापीके भी पाप कहीं ठहर सकते हैं ? भगवन् ! उसे क्षमा करो । उसने जो किया सो किया; पर अब कृपया ऐसा करो कि उसके अकल्याणमें मैं किसी प्रकार निमित्त न बनूँ ।' शिवजी उसकी यह उदारता देखकर उसपर और भी अधिक प्रसन्न हुए और उससे और कोई वर माँगनेको कहने लगे । घुश्माने निवेदन किया—'हे महेश्वर ! आपसे मैं यह वरदान माँगती हूँ कि आप सदा ही इस स्थानपर वास करें, जिससे सारे संसारका कल्याण हो ।'

भगवान् शङ्कर 'एवमस्तु' कहकर ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें वहाँ वास करने लगे और घुश्मेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए । उस तालाबका नाम भी तबसे शिवालय हो गया । इन घुश्मेश्वर भगवान्की बड़ी महिमा गायी गयी है—

ईदृशं चैव लिङ्गं च दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।
सुखं संवर्धते पुंसां शुक्लपक्षे यथा शशी ॥
(शि० पु० ज्ञान० खं० ५२ अ० ८२)

अर्थात् घुश्मेश्वर महादेवके दर्शनसे सब पाप दूर हो जाते हैं और सुखकी वृद्धि उसी प्रकार होती है जिसप्रकार शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी वृद्धि होती है ।

भगवान् आद्यशङ्कराचार्यने घुश्मेश्वरकी निम्नलिखित शब्दोंमें स्तुति की है—

इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन्
समुल्लसन्तञ्च जगद्वरेण्यम् ।
वन्दे महोदारतरस्वभावं
घुश्मेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये ॥

श्रीशिवकी अष्टमूर्त्तियाँ

(लेखक—श्रीपन्नालालसिंहजी)

श्रीविष्णुपुराणमें लिखा है—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥

'एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, स्थिति और प्रलयके सम्बन्धको लेकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन विभिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं ।'

शिव परमात्मा वा ब्रह्मका ही नामान्तर है । वे शान्त शिव अद्वैत और चतुर्थ ('शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थम्'—माण्डूक्योपनिषद्) हैं, वे विश्वाद्य, विश्वबीज, विश्वदेव, विश्वरूप, विश्वाधिक और विश्वान्तर्यामी हैं । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'-यह सभी कुछ ब्रह्ममय है, तभी तो बृहदारण्यक उपनिषद्के अन्तर्यामीब्राह्मणमें कहा है कि—'जो सर्व भूतोंमें अवस्थित होते हुए भी सर्व भूतोंसे पृथक् हैं, सर्व भूत जिन्हें जानते नहीं, किन्तु सर्व भूत जिनके शरीर हैं और जो सर्व भूतोंके अन्दर रहकर सर्व भूतोंका नियन्त्रण करते हैं—वे ही (परम) आत्मा, वे ही अन्तर्यामी और वे ही अमृत हैं ।'

भगवान्ने गीतामें कहा है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

'अर्थात् मेरी इस अव्यक्त मूर्त्तिद्वारा सारा संसार व्याप्त है ।' शिवपुराणमें भी महादेव कहते हैं—

अहं शिवः शिवश्चायं त्वं चापि शिव एव हि ।
सर्वं शिवमयं ब्रह्म शिवात्परं न किञ्चन ॥

'मैं शिव, यह शिव, तुम शिव, सब कुछ शिवमय है । शिवके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।'

पञ्चभूतोंमें जगत् संगठित है । पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य और जीवात्मा इन्हीं अष्टमूर्त्तियोंद्वारा समस्त चराचरका बोध होता है । तभी महादेवका एक नाम 'अष्टमूर्त्ति' है ।

शिवपुराणमें आया है—

तस्यादिदेवदेवस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत् ।
तस्मिन् व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ॥
शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशुपतिः ।
ईशानश्च महादेवः मूर्त्तयश्चाष्ट विश्रुताः ॥

भूम्यम्भोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ।
अधिष्ठिता महेशस्य सर्वादेरष्टमूर्त्तिभिः ॥
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम् ।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ॥

'इन देवादिदेवकी अष्टमूर्त्तियोंसे यह अखिल जगत् इसप्रकार व्याप्त है जिसप्रकार सूतके धागेमें सूतकी ही मणियाँ। भगवान् शंकरकी इन अष्टमूर्त्तियोंके नाम ये हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान। ये ही शर्व आदि अष्टमूर्त्तियाँ क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमाको अधिष्ठित किये हुए हैं। इन अष्टमूर्त्तियोंद्वारा विश्वमें अधिष्ठित उन्हीं परमकारण भगवान्‌की सर्वतोभावेन आराधना करो।'

ॐ शर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः
ॐ भवाय जलमूर्त्तये नमः
ॐ रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः
ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः
ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः
ॐ पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः
ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः
ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः

सूर्य और चन्द्र प्रत्यक्ष देवता हैं।

पृथिवी, जल आदि पञ्चसूक्ष्मभूत हैं, जीवात्मा ही क्षेत्रज्ञ है। जीव ही यजमानरूपसे यज्ञ वा उपासना करनेवाला है, इसलिये उसे यजमान भी कहते हैं। पाश वा मायायुक्त जीव ही पाशु वा पशु है और जीवके उद्धारकर्त्ता होनेके कारण ही महादेव 'पशुपति' हैं। वे ही जीवका पाशमोचन करते हैं—

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः ।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्त्तिनः ॥
तेषां पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः ।
मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून् पतिः ॥
स एव मोचकस्तेषां भक्तानां समुपासितः ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणास्तथा ।
विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिबन्धनाः ॥
सर्वात्मनामधिष्ठात्री सर्वक्षेत्रनिवासिनी ।
मूर्त्तिः पशुपतिर्ज्ञेया पशुपाशनिकृन्तनी ॥

'ब्रह्मासे लेकर स्थावर (वृक्ष-पाषाणादि) पर्यन्त जितने भी संसारवशवर्ती जीव हैं, सभी देवाधिदेव महादेवके पशु कहे जाते हैं और उन सबके पति होनेके कारण महादेव 'पशुपति' कहे जाते हैं। वही पशुपति ब्रह्मा आदि सब पशुओंको मल, मायादि अविद्याके पाशमें जकड़कर रखते हैं और फिर भक्तोंद्वारा पूजे जाकर उन्हें उक्त पाशसे मुक्त करते हैं। चौबीस तत्त्व और मायाकृत कर्मके गुण 'विषय' कहलाते हैं। ये विषय ही जीवको बन्धनमें डालनेवाले हैं, इसीलिये इन्हें 'पाश' कहते हैं। महादेव सब जीवोंके अधिष्ठाता और सर्व क्षेत्रोंमें वास करनेवाले (क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।—गीता) तथा पशुपाशको काटनेवाले होनेके कारण पशुपति नामसे प्रख्यात हैं।'

शिवपुराणका कथन है कि परमात्मा शिवकी ये अष्टमूर्त्तियाँ समस्त संसारको व्याप्त किये हुए हैं, इस कारण जैसे मूलमें जल-सिञ्चन करनेसे वृक्षकी सभी शाखाएँ हरी-भरी रहती हैं वैसे ही विश्वात्मा शिवकी पूजा करनेसे उनका जगद्रूप शरीर पुष्टि-लाभ करता है। अब हमें यह देखना है कि शिवकी आराधना क्या है? सब प्राणियोंको अभयदान, सबके प्रति अनुग्रह, सबका उपकार करना—यही शिवकी वास्तविक आराधना है। जिसप्रकार पिता पुत्र-पौत्रादिके आनन्दसे आनन्दित होता है, उसी प्रकार अखिल विश्वकी प्रीतिसे शङ्करकी प्रीति होती है। किसी देहधारीको यदि कोई पीड़ा पहुँचाता है तो इससे अष्टमूर्त्तिधारी महादेवका ही अनिष्ट होता है। जो इसप्रकार अपनी अष्टमूर्त्तियोंके द्वारा अखिल विश्वको अधिष्ठित किये हुए हैं उन्हीं परमकारण महादेवका सर्वतोभावेन आराधन करना चाहिये।

आत्मनश्चाष्टमी मूर्त्तिः शिवस्य परमात्मनः ।
व्यापकेतरमूर्त्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् ॥
वृक्षमूलस्य सेकेन शाखाः पुष्यन्ति वै यथा ।
शिवस्य पूजया तद्वत् पुष्येत्तस्य वपुर्जगत् ॥
सर्वाभयप्रदानञ्च सर्वानुग्रहणं तथा ।
सर्वोपकारकरणं शिवस्याराधनं विदुः ॥
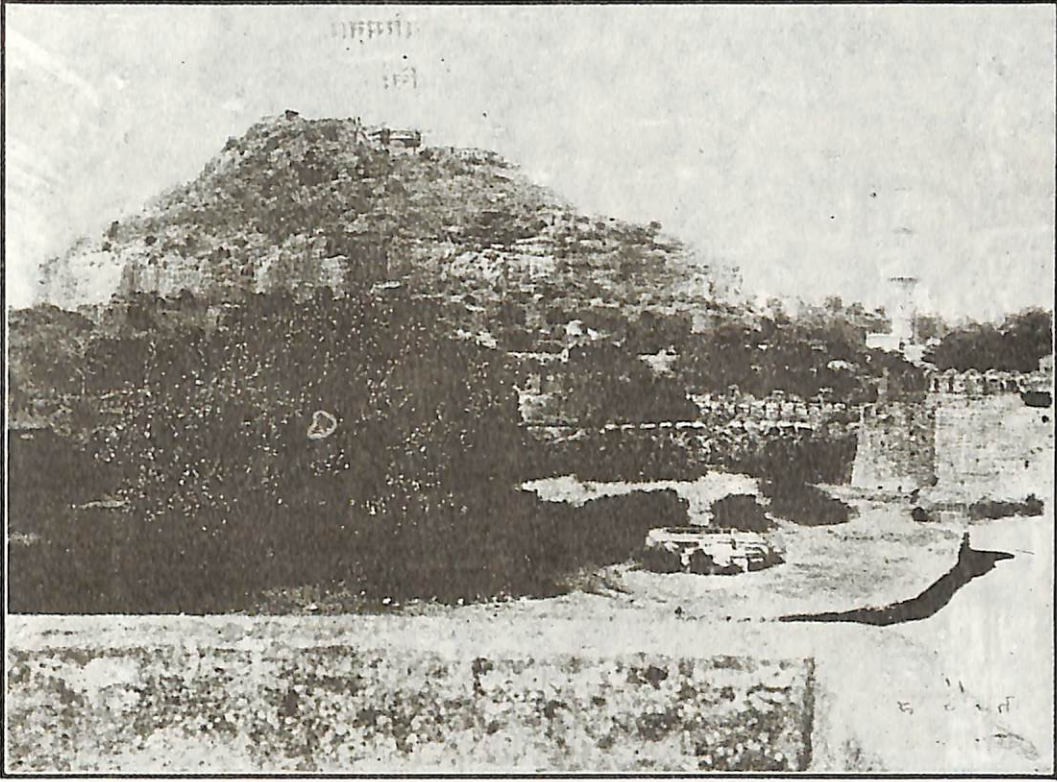
दौलताबाद किला देवगिरि
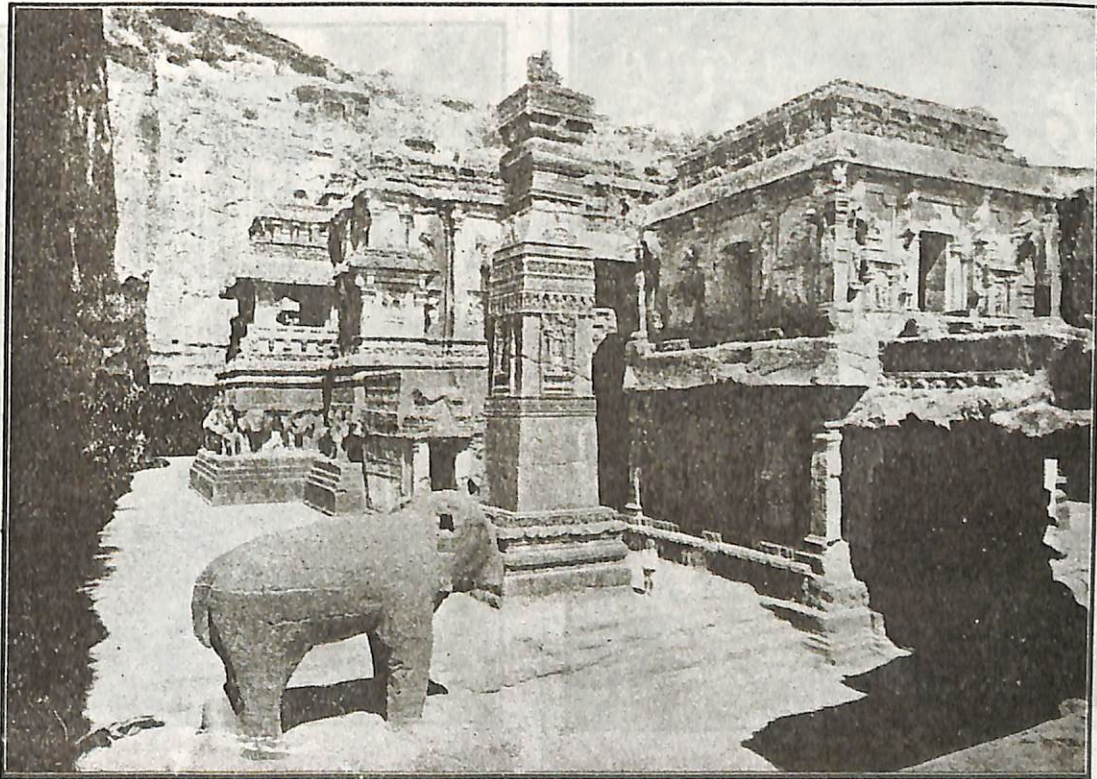
इलोरामें चट्टान काटकर बनाया हुआ कैलाशमन्दिर
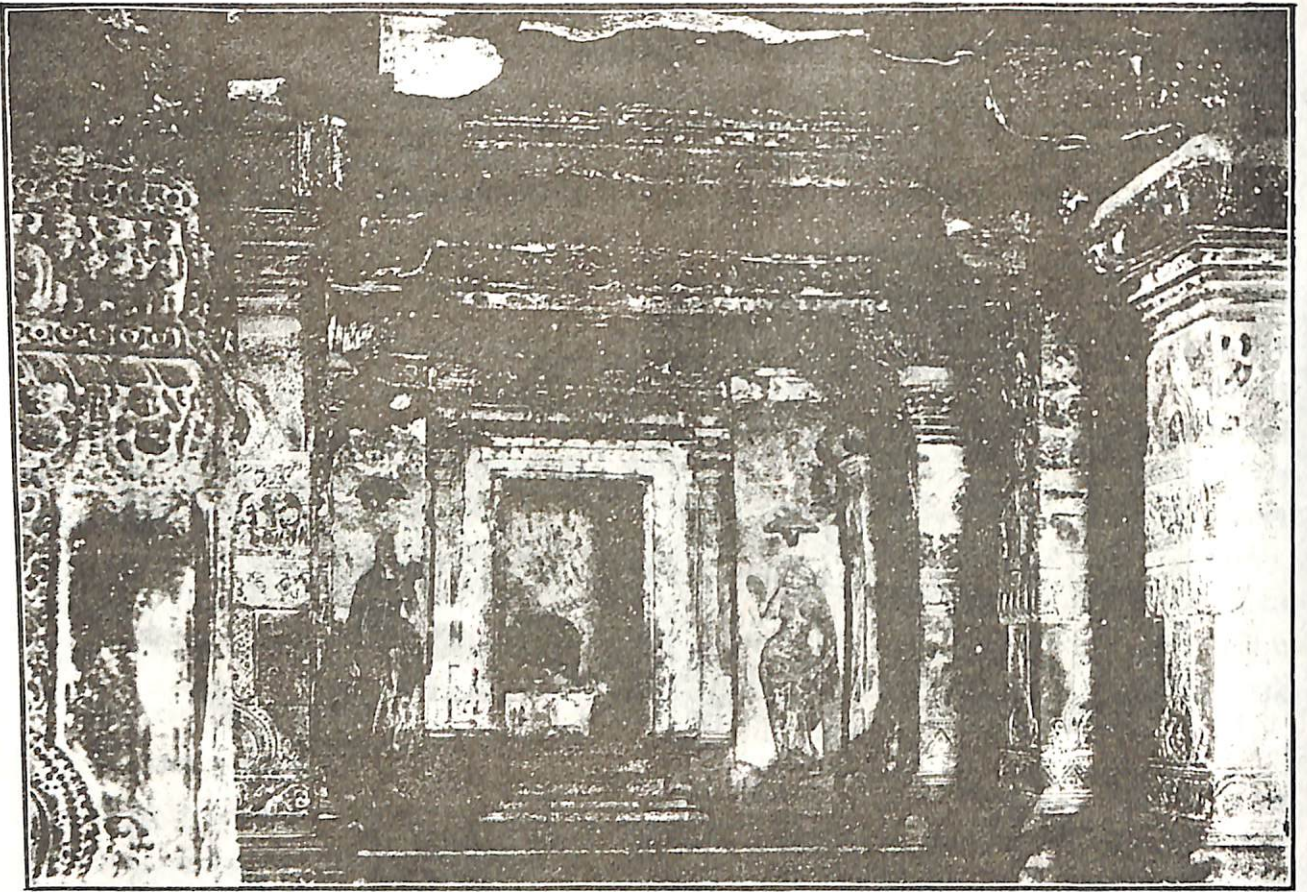
इलोरा-कैलाशके मध्य-मन्दिरका सभाभवन

इलोराके कैलाशमन्दिरमें रावणद्वारा उठाये हुए
कैलाश पर्वतका दृश्य

सूर्यकुण्ड

श्रीचन्द्रनाथ

श्रीचन्द्रनाथ—बडवानल
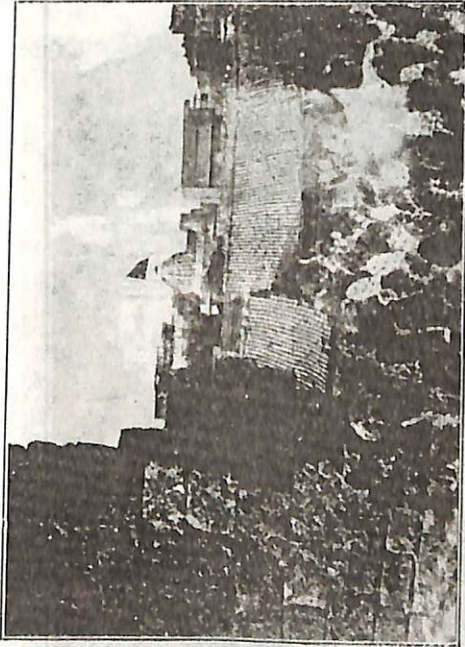
श्रीसोमनाथका नया मन्दिर (दूसरे)

श्रीअरुणाचल
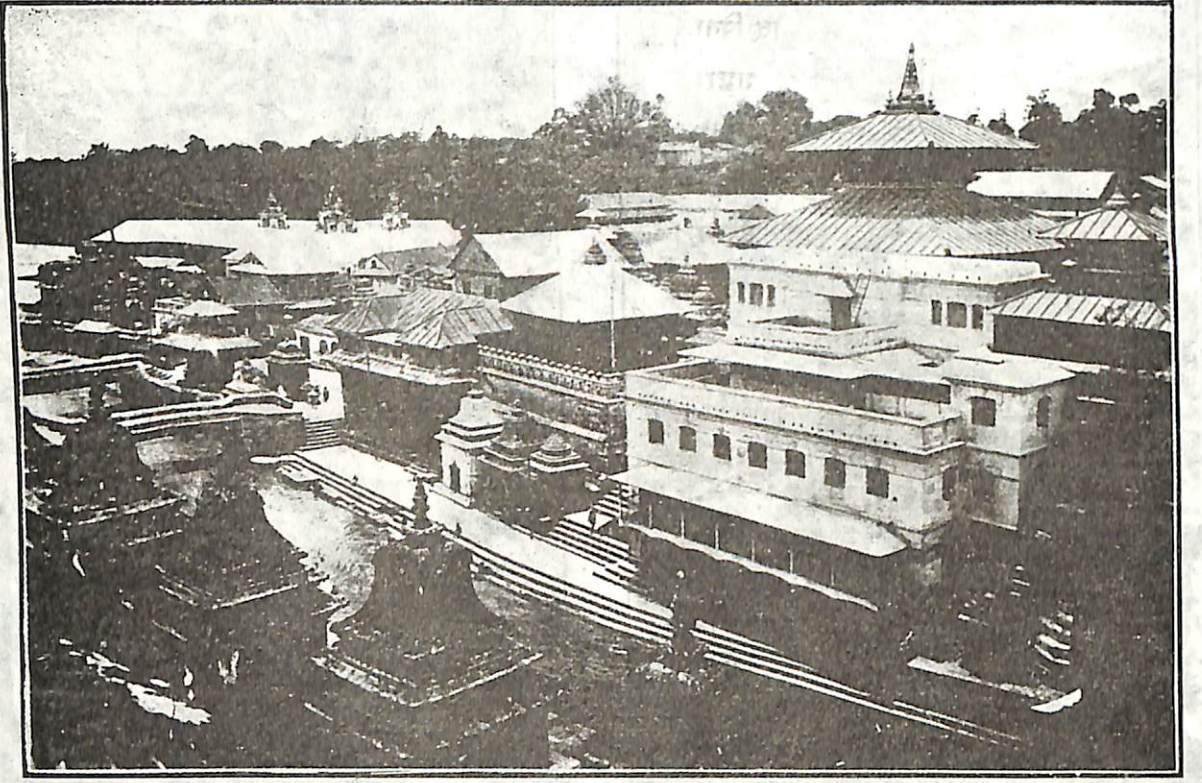
श्रीपशुपतिनाथ—नेपाल (बाहरी दृश्य)

श्रीपशुपतिनाथ—नेपाल (भीतरी दृश्य)

यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत् पिता ।
तथा सर्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शङ्करः॥
देहिनो यस्य कस्यापि क्रियते यदि निग्रहः ।
अनिष्टमष्टमूर्त्तेस्तत् कृतमेव न संशयः॥
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम् ।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम्॥

(शिवपुराण)

'सर्व भूतोंमें और आत्मामें ब्रह्म अथवा शिवका दर्शन अर्थात् 'सर्वं शिवमयञ्चैतत्'—इस भावकी अनुभूति किये विना जन्म-मरणसे मुक्ति नहीं होती। इस भावकी उत्पत्तिके लिये ही इन अष्टमूर्त्तियोंकी पूजा कही गयी है। वास्तवमें जीव-देह ही देवालय है। मायासे मुक्त होनेपर जीव ही सदाशिव है। अज्ञानरूप निर्माल्यका त्यागकर सोऽहं भावसे उन्हीं सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये—

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सदाशिवः।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत्॥

इसी भावको हृदयस्थ कर आओ, आज हम महादेवके असंख्य मन्दिरोंमें उनका पूजन करें। आओ, हम अपने हृदयकमलमें उन्हीं आत्मलिङ्गका अनुभव करके निर्मल-चित्तसे श्रद्धारूपी नदीके जलसे समाधिसुमनोंके द्वारा मोक्षप्राप्तिके लिये उनकी पूजा करें—

आराधयामि मणिसन्निभमात्मलिङ्गं
मायापुरीहृदयपङ्कजसन्निविष्टम् ।
श्रद्धानदीविमलचित्तजलावगाहं
नित्यं समाधिकुसुमैरपुनर्भवाय॥

अष्टमूर्त्तिके तीर्थ

(१) सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं—

आदित्यञ्च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम् ।
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

अर्थात् शिव और सूर्यमें कोई भेद नहीं है, इसलिये प्रत्येक सूर्यमन्दिर शिवमन्दिर ही है।

(२) चन्द्र—काठियावाड़का सोमनाथ-मन्दिर और बङ्गालका चन्द्रनाथ-क्षेत्र ये दोनों महादेवके सोममूर्तिके ही तीर्थ हैं।

सोमनाथका* मन्दिर प्रभासक्षेत्रमें है और चन्द्रनाथका बङ्गालके चटगाँव (Chittagong) नगरसे ३४ मील उत्तर-पूर्वमें एक पर्वतपर स्थित है। स्थानका नाम सीताकुण्ड है। श्रीचन्द्रनाथका मन्दिर पर्वतके सर्वोच्च शिखरपर है, जो समुद्रकी सतहसे चार सौ गज ऊँचा है। देवीपुराणके चैत्र-माहात्म्यके अनुसार यह त्रयोदश ज्योतिर्लिङ्ग है जो पहले गुप्त था और कलिमें लोकहितार्थ प्रकट हुआ है। काशी, प्रयाग, भुवनेश्वर, गङ्गासागर, गङ्गा और नैमिषारण्यके दर्शनसे जो फल प्राप्त होता है, वह श्रीचन्द्रनाथ-क्षेत्रमें जानेसे एक साथ प्राप्त हो जाता है।

श्रीचन्द्रनाथके निकट और भी अनेक तीर्थ हैं। उदाहरणार्थ—

(१) उत्तरमें लवणाक्षकुण्ड है जिसमेंसे अग्निकी ज्वाला निकलती है, (२) पर्वतके नीचे गुरुधूनी है जो पत्थरपर प्रज्वलित है, (३) वडवानलकुण्ड है जिसके जलपर सप्तजिह्वात्मक अग्नि सदा प्रज्वलित रहती है। इसके अतिरिक्त (४) तप्त जलयुक्त ब्रह्मकुण्ड, (५) सहस्रधारा-जलप्रपात, (६) कुमारीकुण्ड, (७) श्रीव्यासजीकी तपस्या-भूमि, व्यासकुण्ड, (८) सीताकुण्ड, (९) ज्योतिर्मय, जहाँ पाषाणके ऊपर ज्योति प्रज्वलित है, (१०) काली, (११) श्रीस्वयम्भूनाथ, (१२) मन्दाकिनी नामका स्रोत (१३) गयाक्षेत्र, जहाँ पितरोंको पिण्डदान दिया जाता है, (१४) श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर, (१५) क्षत्रशिला, जहाँ पत्थरकी गुहामें अनेक शिवलिङ्ग हैं, (१६) विरूपाक्ष-मन्दिर, (१७) हरगौरीका विहार-स्थल, जो एक सुरम्य नीरव स्थानमें है। यहाँ सघन वृक्षावलीके होते हुए भी पशु-पक्षीगण बिल्कुल शब्द नहीं करते तथा (१८) आदित्यनाथ।

(३) नेपालके पशुपतिनाथ महादेव यजमानमूर्तिके तीर्थ हैं—पशुपतिनाथ लिङ्गरूपमें नहीं, मानुषी विग्रहके रूपमें विराजमान हैं। विग्रह कटिप्रदेशसे ऊपरके भागका ही है। मन्दिर चीनी और जापानी ढंगका बना हुआ है और नेपालराज्यकी राजधानी काठमण्डूमें वागमती नदीके दक्षिण तीरपर आर्यघाटके समीप अवस्थित है। मूर्त्ति स्वर्णनिर्मित पञ्चमुखी है। इसके आसपास चाँदीका जँगला है, जिसमें पुजारीको छोड़कर और किसीकी तो बात ही

* इसका वर्णन 'द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग' शीर्षक लेखमें अलग दिया गया है।—सम्पादक

क्या, स्वयं नेपाल-सम्राट्का भी प्रवेश नहीं हो सकता। नेपालराज्यमें भी विना पासपोर्टके बाहरके लोगोंका प्रवेश बन्द है; पर महाशिवरात्रिके अवसरपर लोग पासके बिना भी जाकर पशुपतिनाथके दर्शन कर सकते हैं। नेपाल महाराज अपनेको श्रीपशुपतिनाथजीका दीवान कहते हैं।

(४) शिवकाञ्चीका क्षितिलिंग—पञ्चमहाभूतोंके नामसे जो पाँच लिङ्ग प्रसिद्ध हैं वे सभी दक्षिण भारतके मद्रास-प्रान्तमें हैं। इनमेंसे एकाम्रेश्वरका क्षितिलिङ्ग शिवकाञ्चीमें है। इस मूर्त्तिपर जल नहीं चढ़ाया जाता, चमेलीके तेलसे स्नान कराया जाता है। मन्दिर बहुत विशाल और सुन्दर है। अन्दर अनेक देवमूर्त्तियोंके साथ एक पाषाणमूर्ति भगवान् शङ्कराचार्य-की भी है। मन्दिरके 'गोपुरम्' पर हैदरअलीके गोलोंके चिह्न अबतक मौजूद हैं। अप्रैलमासमें यहाँका प्रधान वार्षिकोत्सव होता है जो पन्द्रह दिनतक रहता है। यहाँ ज्वरहरेश्वर, कैलासनाथ तथा कामाक्षीदेवी आदिके मन्दिर भी दर्शनीय हैं। काञ्चीमें मरनेसे काशीकी तरह सद्योमुक्ति मानी जाती है। इसकी सप्त मोक्षदा पुरियोंमें गणना है।

इस तीर्थका इतिहास यह है कि एक समय पार्वतीने कौतूहलवश चुपचाप पीछेसे आकर दोनों हाथोंसे भगवान् शङ्करके तीनों नेत्र बन्द कर लिये। श्रीमहेश्वरके लोचनत्रय आच्छादित हो जानेसे सारे संसारमें घोर अन्धकार छा गया। क्योंकि सूर्य, चन्द्र और अग्नि जो संसारको प्रकाशित करते हैं, वे शङ्कर (के नेत्रों) से ही प्रकाश पाते हैं—

> **तमेव भान्तमनुभाति सर्वं**
> **तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।**
> (कठोपनिषद्)

अतः ब्रह्माण्डलोपकी नौबत आ पहुँची। इसप्रकार श्रीशिवके अर्द्धनिमेषमात्रमें संसारके एक करोड़ वर्ष व्यतीत हो गये। असमय ही देवीके इस प्रलयङ्कर अन्याय-कार्यको देखकर श्रीशिवजीने इसके प्रायश्चित्तस्वरूप श्रीपार्वतीजीको तपस्या करनेका आदेश किया। अतएव वह महादेवजीकी आज्ञासे काञ्चीपुरीमें कम्पानदीके तटपर आकर एक आम्र-वृक्षकी छायामें जटावल्कलधारिणी एवं भस्म-विभूषिता तपस्विनीका वेश धारणकर कम्पाकी बालुकासे लिङ्ग बना, विधिपूर्वक पूजा और तपस्या करने लगीं। जब श्रीपार्वतीको कठिन तपस्या करते कुछ काल बीत गया तब शङ्कर-जीने गौरीकी भक्ति और एकनिष्ठाकी परीक्षाके लिये नदीमें बाढ़ ला दी, जिससे उनके चारों ओर जल-ही-जल हो गया। भगवतीने आँख खोलकर देखा तो उन्हें यह आशङ्का हुई कि नदीके वर्द्धमान प्रबल प्रवाहमें कहीं वह बालुका-लिङ्ग विलीन न हो जाय, जिससे उनकी तपस्यामें विघ्न उपस्थित हो, और इसी आशङ्कासे वे चिन्तित हो उठीं। समस्त कामनाओंके त्यागपूर्वक भगवान्को अपना मन समर्पण करके उनका भजन करनेसे कोई भी विघ्न भक्तका अनिष्ट नहीं कर सकता। भगवती शिवलिङ्गको छातीसे चिपटाकर ध्यानमग्न हो गयीं। उन्होंने जलप्रवाहके भँवरमें पड़कर भी उस लिङ्गका परित्याग नहीं किया। तब भगवान् शङ्कर प्रकट होकर बोले—

> **विमुञ्च बालिके लिङ्गं प्रवाहोऽयं गतो महान्।**
> **त्वयार्चितमिदं लिङ्गं सैकतं स्थिरवैभवम्॥**
> **भविष्यति महाभागे वरदं सुरपूजितम्।**
> **तपश्चर्यां तवालोक्य चरितं धर्मपालनम्।**
> **लिङ्गं एतन्नमस्कृत्य कृतार्थाः सन्तु मानवाः॥**

हे बालिके! नदीमें जो बाढ़ आयी थी वह अब चली गयी है। तुम लिङ्गको छोड़ दो। तुमने इस स्थिर वैभवयुक्त सैकत-लिङ्गकी पूजा की है, अतएव हे महाभागे! यह सुर-पूजित पार्थिव लिङ्ग वरदाता बन गया। अर्थात् जो कोई इसकी जिस कामनाके साथ उपासना करेगा उसकी वह कामना पूर्ण होगी। तुम्हारी तपश्चर्या और धर्मपालनका दर्शन और श्रवण एवं इस लिङ्गकी आराधना करके लोग कृतार्थ होंगे।

> **अनैषं तैजसं रूपमहं स्थावरलिङ्गताम्।**

यहाँ मैं अपने ज्योतिर्मय रूपको त्यागकर स्थावर लिङ्गमें परिणत हो गया हूँ। तुम गौतमाश्रम, अरुणाचल (तिरुवण्णमलै) तीर्थमें जाकर तपस्या करो। वहाँ मैं तेजोरूपमें तुमसे मिलूँगा।

शिवकाञ्चीका एकाम्रनाथक्षितिलिङ्ग ही महादेवीद्वारा प्रतिष्ठित स्थावर लिङ्ग है।

अम्बिकाने काञ्चीसे चलते समय तपस्याके लिये आये हुए देवताओं और ऋषियोंको वर प्रदान किया।

> **तिष्ठतात्रैव वै देवा मुनयश्च दृढव्रताः।**
> **नियमांश्चाधितिष्ठन्तः कम्पारोधसि पावने॥**
> **सर्वपापक्षयकरं सर्वसौभाग्यवर्द्धनम्।**
> **पूज्यतां सैकतं लिङ्गं कुचकङ्कणलाञ्छनम्॥**

अहञ्च निष्कलं रूपमास्थायैतद्दिवानिशम् ।
आराधयामि मन्त्रेण महेश्वरं वरप्रदम् ॥
मत्तपश्चरणाल्लोके मद्धर्मपरिपालनात् ।
मल्लिङ्गदर्शनाच्च तथा सिद्ध्यन्त्वष्टविभूतयः ॥
सर्वकामप्रदानेन कामाक्षीमिति कामतः ।
मां प्रणम्यात्र मद्भक्ता लभन्तां वाञ्छितं वरम् ॥

'हे दृढ़व्रत देवताओ और मुनियो ! नियमाधिष्ठित होकर आपलोग पवित्र कम्पातटपर निवास कीजिये और सर्वपापक्षयकर तथा सर्वसौभाग्यवर्द्धक मदीयकुचकङ्कण-लाञ्छित इस सैकतलिङ्गकी पूजा कीजिये । मैं भी निष्कल (अव्यक्त) रूपसे अवस्थित होकर अहर्निश इस स्थानपर वरद महेश्वरकी आराधना करूँगी । मेरे तपस्या-प्रभाव एवं धर्मपालनके फलस्वरूप इस लिङ्गका दर्शन और पूजन करके मनुष्य अभिलषित ऐश्वर्य और विभूति लाभ करेंगे । मैं सर्व काम प्रदान करती हूँ, मेरे भक्त मुझे कामदायिनी कामाक्षी मानकर कामनापूर्वक मेरी अर्चना करके अभिलषित वर लाभ करेंगे ।'

(५) जम्बुकेश्वर—मद्रास-प्रान्तके त्रिचिनापल्ली जिलेमें 'श्रीरङ्गनाथ' से एक मीलपर जम्बुकेश्वर—'अप्' लिङ्ग है। यहाँके शिवलिङ्गकी स्थिति एक जलके स्रोतपर है, अतः जलहरीके नीचेसे जल बराबर ऊपर उठता हुआ नजर आता है। स्थापत्य-शिल्पकी दृष्टिसे यह मन्दिर भी बहुत उत्तम बना है। मन्दिरके बाहर पाँच परकोटे हैं, तीसरे परकोटेमें एक जलाशय भी है, जहाँ स्नान किया जाता है। यहाँके जम्बु अर्थात् जामुनके पेड़का भी बड़ा माहात्म्य है। यह स्थान 'चिदम्बरम्' से पश्चिमकी ओर हरोद जानेवाली लाइनपर त्रिचिनापल्लीसे थोड़ी दूर आगे है।

(६) तिरुवण्णमल्ले वा अरुणाचल—यहाँ महादेवका तेजोलिङ्ग है। शिवकाञ्चीसे श्रीपार्वतीजीके तिरुवण्णमल्ले वा अरुणाचल-तीर्थ पहुँचकर कुछ काल और तपस्या करनेके पश्चात् अरुणाचल-पर्वतमें अग्निशिखाके रूपमें एक तेजोलिङ्गका आविर्भाव हुआ और उससे जगत्‌का वह अन्धकार दूर हुआ, जिसका वर्णन काञ्चीके क्षितिलिङ्गके इतिहासमें आया है। यही 'तेजोलिङ्ग' है। यहाँ हर और पार्वतीका मिलन हो गया। यह स्थान* चिदम्बरम्के उत्तर-पश्चिममें विल्लुपुरम्से आगे कटपडी जानेवाली लाइनपर स्थित है।

(७) कालहस्तीश्वर—तिरुपति-बालाजीसे कुछ ही दूर उत्तर आर्कट जिलेमें स्वर्णमुखी नदीके तटपर कालहस्तीश्वर—वायुलिङ्ग है। मन्दिर बहुत ऊँचा और सुन्दर है और स्टेशनसे एक मील दूर नदीके उस पार है। मन्दिरके गर्भगृहमें वायु और प्रकाशका सर्वथा अभाव है। दर्शन भी दीपकके सहारे होते हैं। यह स्थान वायुलिङ्गका माना जाता है। लोगोंका विश्वास है कि यहाँ एक विशेष वायुके झोंकेके रूपमें भगवान् सदाशिव विराजमान रहते हैं। यहाँकी शिव-मूर्ति गोल नहीं, चौकोर है। इस शिवमूर्तिके सामने एक मूर्ति कण्णप्प भीलकी है। कण्णप्प भील एक बहुत बड़ा शिवभक्त हो गया है। इसने भगवान् शङ्करको अपने दोनों नेत्र निकालकर अर्पण कर दिये थे। शिवजीने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा; जिसपर इसने यही माँगा कि मैं सेवार्थ सदा आपके सामने उपस्थित रहा करूँ।

स्वर्णमुखी नदीका सम्बन्ध शालग्रामकी मूर्तिसे बतलाया जाता है, अतः वे यात्री, जिनके पास शालग्रामकी मूर्ति होती है, इसमें एक रात्रिके लिये अवश्य निवास करते हैं। दाक्षिणात्यलोग इस तीर्थको 'दक्षिण काशी' कहते हैं। यहाँ एक मन्दिर मणिकुण्डेश्वर नामका है। लोग मरणासन्न व्यक्तियोंको इस मन्दिरके अन्दर सुला देते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि वाराणसीकी भाँति यहाँ भी शिवजी मरनेवालोंके कानमें तारकमन्त्र सुनाकर मुक्त

---

* यहाँका सबसे बड़ा उत्सव 'कीर्तिगाइ' नामक है। इस उत्सवके अवसरपर मन्दिरके पुजारी एक बड़े-से पात्रमें बहुत-सा कपूर जलाकर उस पात्रको ऊपरसे ढक देते हैं और प्रज्वलित अवस्थामें ही उसे बाहर मण्डपमें ले आते हैं, जहाँ दक्षिणकी प्रथाके अनुसार भगवान्‌का दूसरा मानुषी विग्रह घुमा-फिराकर रक्खा जाता है। वहाँ उस पात्रको खोल दिया जाता है और उसी समय मन्दिरके शिखरपर भी बहुत-सा कपूर जला दिया जाता है और घीकी मशाल भी जला दी जाती है। कहते हैं कि शिखरका यह प्रकाश दो दिन दो रात बराबर रक्खा जाता है। यही भगवान्‌का तेजोलिंग कहलाता है और इसीके दर्शनके लिये लगभग एक लाख दर्शकोंकी भीड़ उत्सवपर जमा होती है।

कर देते हैं। पास ही पहाड़ीपर, एक भगवती दुर्गाका मन्दिर भी है। महाशिवरात्रिके अवसरपर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है, जो सात दिनतक रहता है।

(८) चिदम्बरम्-आकाशलिङ्ग—यह मन्दिर समुद्रतटसे दो तीन मीलके अन्तरपर कावेरीनदीके तटपर बड़े सुरम्य स्थानमें बना हुआ है। मन्दिरके चारों ओर एकके बाद दूसरा, इस क्रमसे चार बड़े-बड़े घेरे हैं। यहाँ मूल-मन्दिरमें कोई मूर्ति ही नहीं है। एक दूसरे ही मन्दिरमें ताण्डवनृत्यकारी चिदम्बरेश्वर नटराजकी मनोरम मूर्ति विराजमान है। चिदम्बरम्का अर्थ है (चित्=ज्ञान+अम्बर=आकाश) चिदाकाश। बगलमें ही एक मन्दिरमें शेषशायी विष्णुभगवान्के दर्शन होते हैं। शङ्करजीके मन्दिरमें सोनेसे मढ़ा हुआ एक बड़ा-सा दक्षिणावर्त शंख रक्खा हुआ है, जो गजमुक्ता, सर्पमणि एवं एकमुखी रुद्राक्षकी भाँति अमूल्य और अलभ्य माना जाता है। मन्दिरमें एक ओर एक परदा-सा पड़ा हुआ है। परदा उठाकर दर्शन करनेपर स्वर्णनिर्मित कुछ मालाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ निरा आकाश-ही-आकाश है। यही भगवान्का आकाशलिङ्ग है। निज-मन्दिरसे निकलकर बाहरके घेरेमें आते ही कनकसभा मिलती है, जिसके पूर्वीय और पश्चिमीय द्वारोंपर नाट्यशास्त्रोक्त १०८ मुद्राएँ खुदी हुई हैं। मन्दिरके बाहरी घेरेमें रक्खी हुई श्रीगणेशजीकी मूर्ति इतनी विशाल है, जितनी भारतमें कहीं नहीं मिलेगी। इस मन्दिरका अनूठी कारीगरीसे तैयार किया हुआ प्रधानद्वार (गोपुर), सहस्र स्तम्भोंका मण्डप तथा शिवगङ्गा नामक सुन्दर सरोवर आदि द्राविड़ स्थापत्य वा भास्कर्य शिल्पके अद्भुत नमूने हैं। सहस्रस्तम्भ मण्डपमें केवल खम्भे-ही-खम्भे हैं, ऊपर छत नहीं है। उत्सवोंके अवसरपर इन खम्भोंपर चाँदनी डाल दी जाती है। गर्भ-मन्दिरके सामने ड्योढ़ीपर पीतलकी एक विशाल चौखट बनी हुई है। वहाँपर रात्रिमें सैकड़ों दीपक जलाये जाते हैं। यहाँ जून तथा दिसम्बरके महीनोंमें दो बड़े-बड़े उत्सव होते हैं। जिन्हें क्रमशः 'तिरुमञ्जनम्' और 'अरुद्रदर्शनम्' कहते हैं। इन अवसरोंपर बड़ी धूमधामसे भगवान्की सवारी निकलती है और कई दिनोंतक बड़ी भीड़-भाड़ रहती है।

दक्षिणमें ६३ शिवभक्त या 'आडियार' आविर्भूत हुए हैं जिन्होंने 'द्राविड़देव' के नामसे तामिल-प्रबन्ध लिखे हैं। ये सब तीर्थ इन भक्तोंके लीला-क्षेत्र हैं। इस स्थानमें अभी हालमें एक विश्वविद्यालय स्थापित हुआ है जो हिन्दू-विश्वविद्यालयके ढंगका है। यहाँका पुस्तकालय बड़ा प्रसिद्ध है, इसमें संसारभरकी भाषाओंकी पुस्तकें संग्रहीत हुई हैं।

अन्तमें, महाकवि कालिदासने अष्टमूर्तिकी जिस स्तुतिसे अपने विश्वविख्यात 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटकका मङ्गलाचरण किया है उसीके द्वारा हम भी सर्वान्तर्यामी श्रीमहादेवको प्रणाम कर लेखको मङ्गलके साथ समाप्त करें।

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं
या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा
या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया
प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु व-
स्ताभिरष्टाभिरीशः ॥

शिव-कृपा

भालमें जाके कलाधर है सोइ साहेब ताप हमारो हरैगो।
अंगमें जाके विभूति भरी रहै भौनमें सम्पति भूरि भरैगो॥
घातक है जो मनोभवको मनपातक वाहिके जारे जरैगो।
'दास जू' शीशपै गंग धरे रहै वाकी कृपा कहु को ना तरैगो?॥
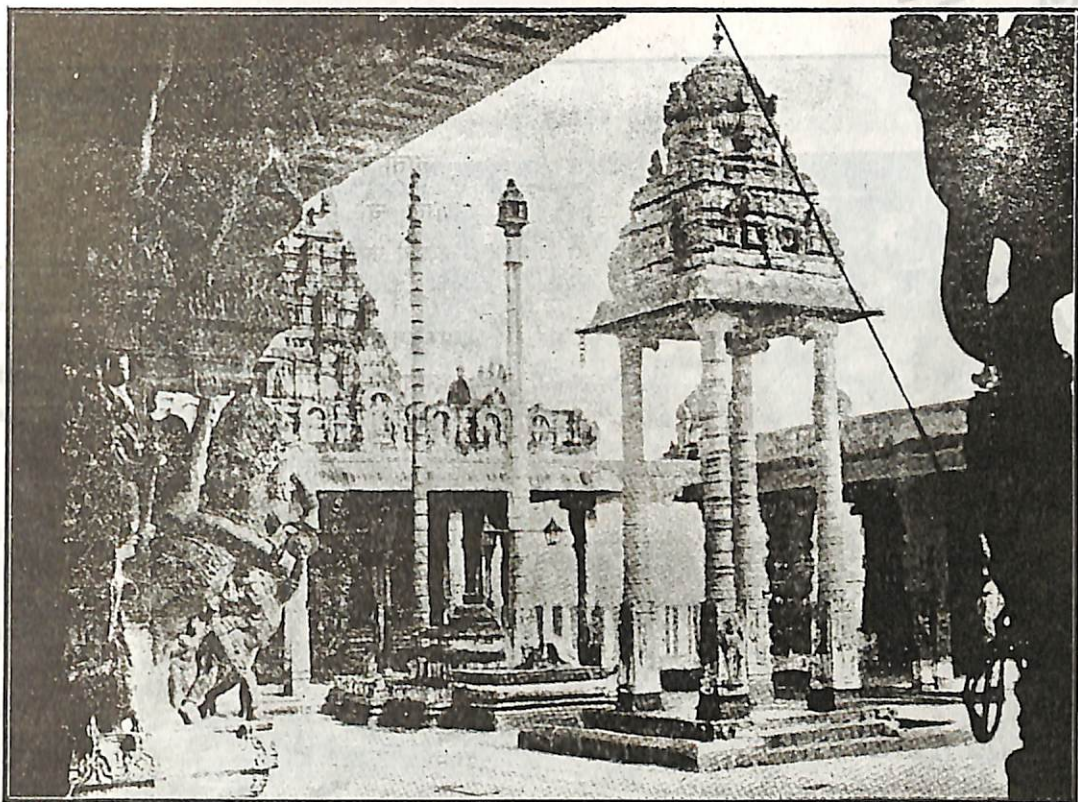
श्रीशिवकाञ्चीके मन्दिरका बाहरी दृश्य
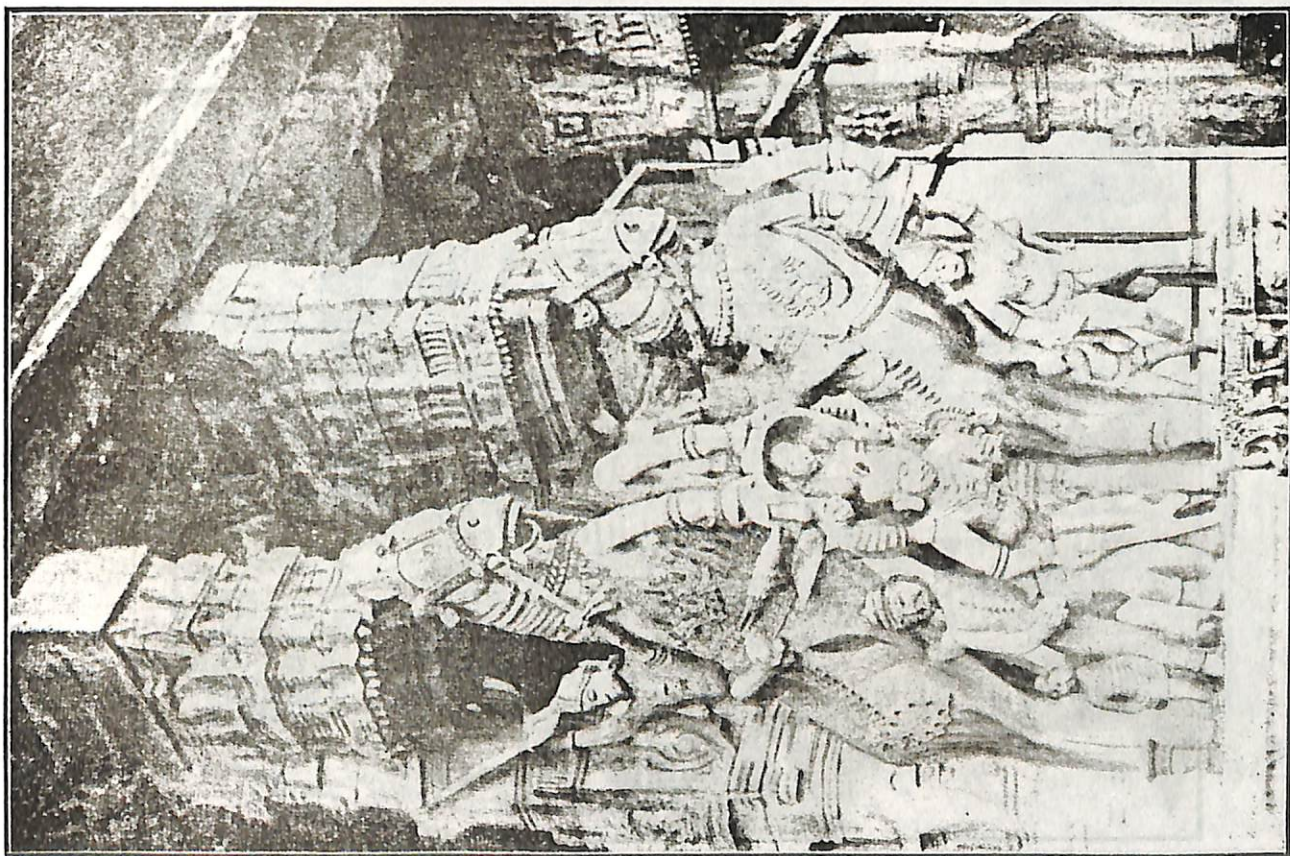
श्रीजम्बुकेश्वरके मन्दिरका बाहरी दृश्य
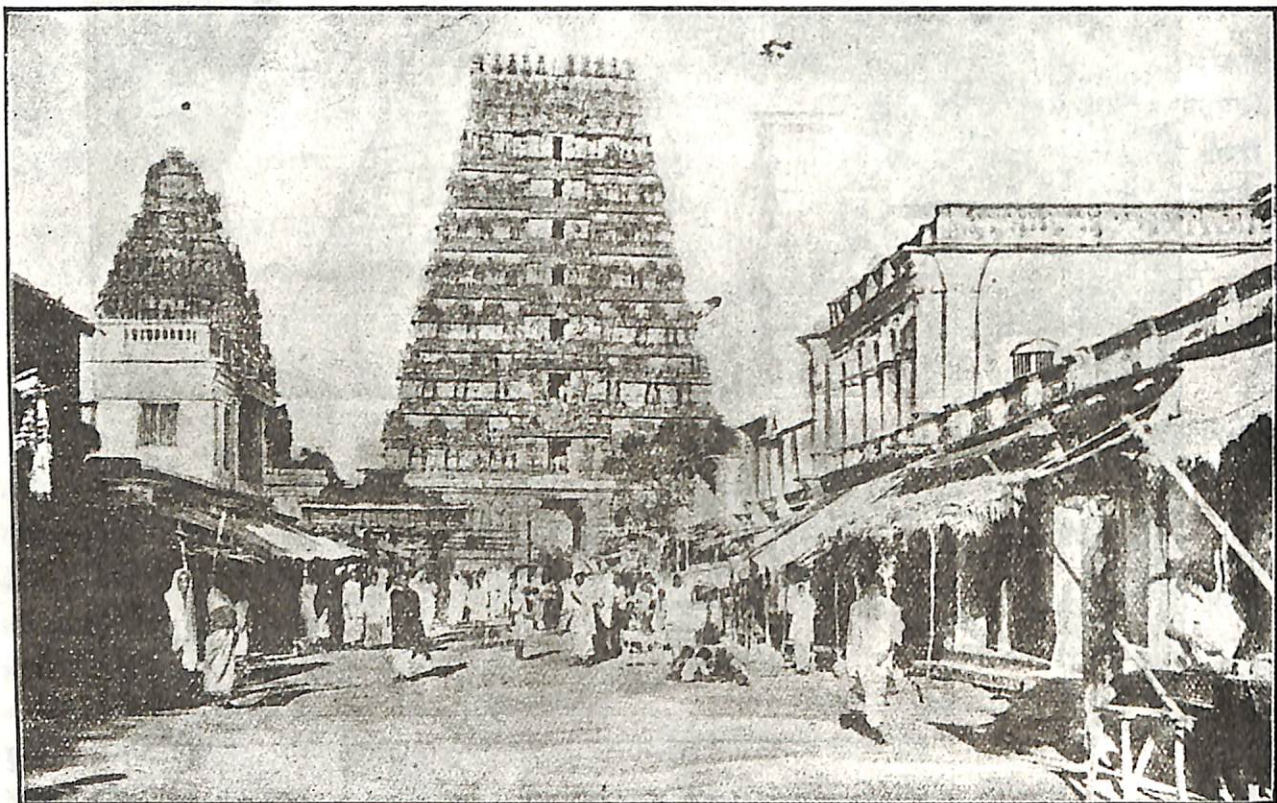
श्रीकालहस्तीश्वरका बाहरी दृश्य
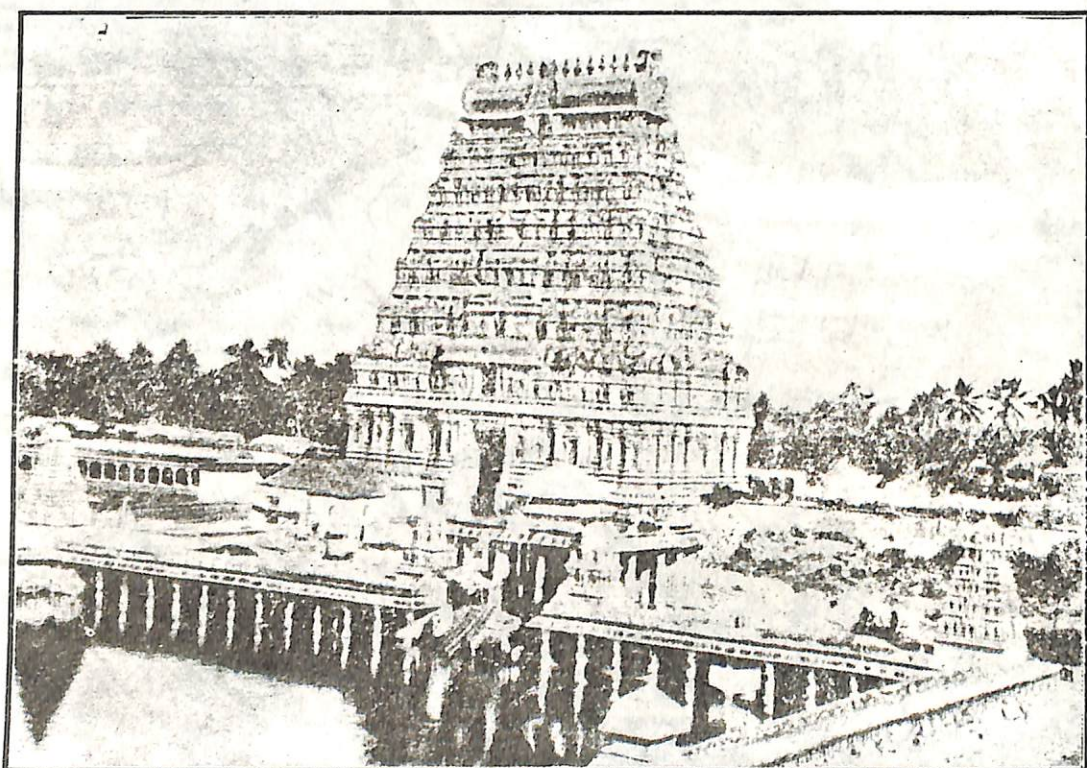
श्रीचिदम्बरम् मन्दिरका गोपुर एवं हेमपुष्करणी तीर्थ
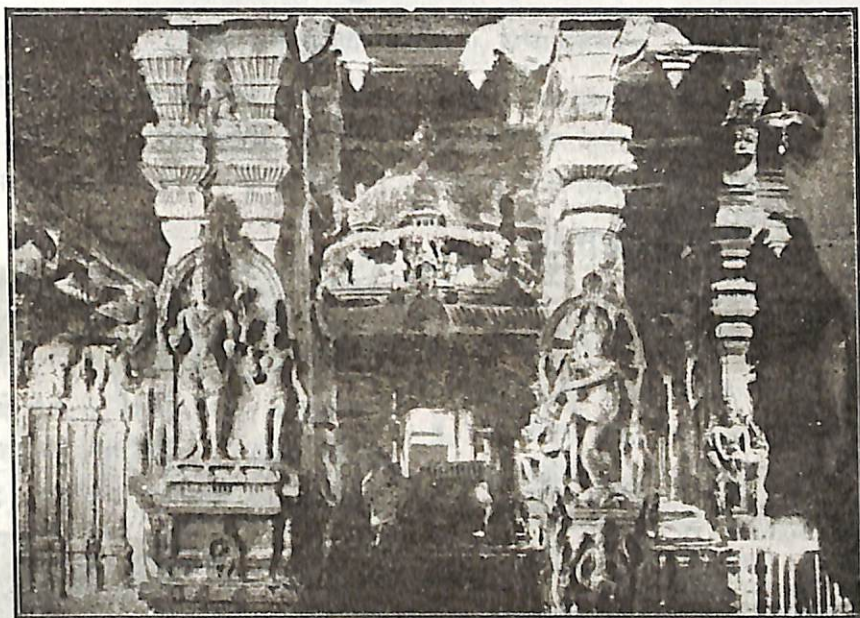
मदुरा-मन्दिरके द्वारस्तम्भ
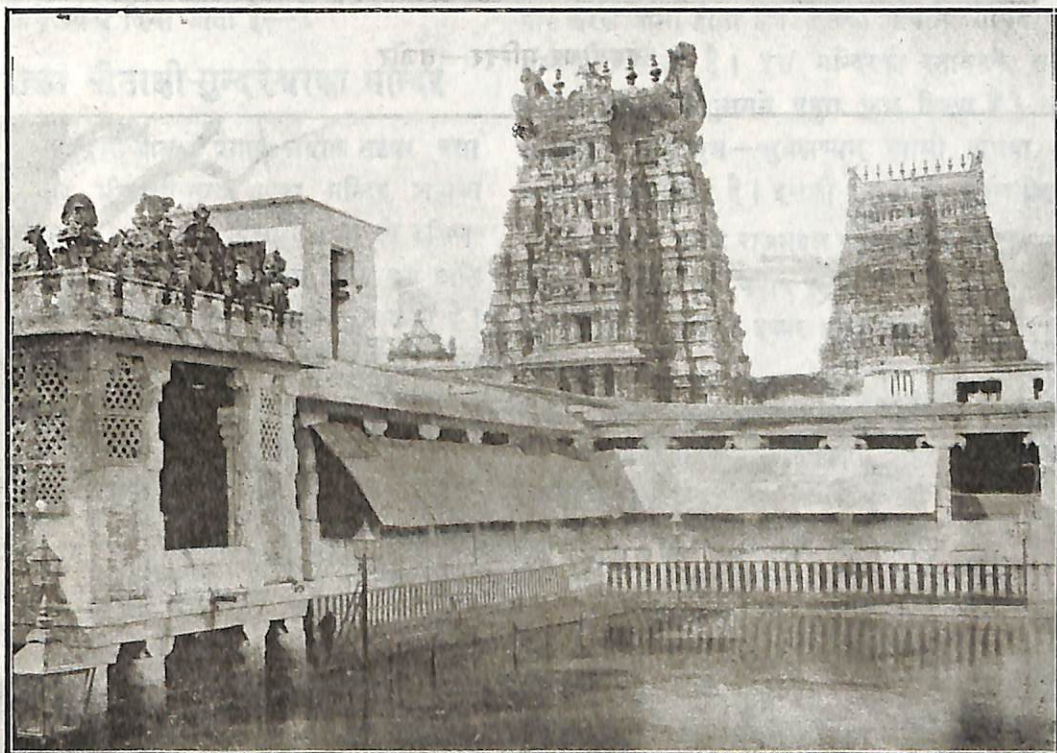
श्रीमीनाक्षी और श्रीसुन्दरेश्वर-मन्दिर मदुरा

बृहदीश्वर-मन्दिर—तंजोर

पक्षि-तीर्थमें दिव्य पक्षी पर्वतके ऊपर प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं।

शिवजीके कुछ प्रसिद्ध स्थान*

(लेखक—श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, डिप्टी कलेक्टर)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके अतिरिक्त शिवजीके कुछ अन्य प्रधान स्थान भी हैं, जो इन ज्योतिर्लिङ्गोंकी ही भाँति भारतवर्षके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें स्थित हैं। जिनमेंसे कुछके नाम ये हैं—

(१) मदुराका मीनाक्षीदेवी तथा सुन्दरेश्वर महादेवका मन्दिर, (२) तञ्जौरका बृहदीश्वर-मन्दिर, (३) मद्रासका समीपवर्ती पक्षि-तीर्थ, (४) इलोरा तथा एलिफेण्टाकी गुफाओंकी शिवमूर्तियाँ (५) बम्बई-प्रान्तका महाबलेश्वर-मन्दिर। (६) कश्मीरका अमरनाथमन्दिर, (७)काँगड़ाका वैद्यनाथ-मन्दिर, (८) बङ्गालका तारकेश्वर-मन्दिर, (९) उड़ीसा-प्रान्तका भुवनेश्वर-मन्दिर तथा (१०) खजुराहो (बुन्देलखण्ड) के शिव-मन्दिर—ये भी विशेषरूपसे उल्लेखयोग्य हैं।

अब इनमेंसे प्रत्येकका संक्षिप्त विवरण पाठकोंकी जानकारीके लिये नीचे दिया जाता है—

१—मदुराका मीनाक्षी-सुन्दरेश्वरका मन्दिर

मदुरा नगर मद्रास-प्रान्तमें वैगाई नदीके तटपर बसा हुआ है, यहाँका मीनाक्षी-सुन्दरेश्वरका मन्दिर अत्यन्त विशाल एवं लगभग २०० फीट ऊँचा है। यों तो दक्षिण-प्रान्तमें श्रीरामेश्वरम्, श्रीरङ्गम्, चिदम्बरम् आदि कई अति विशाल मन्दिर हैं; किन्तु यह सबसे बड़ा मालूम होता है। शिल्पकलाकी दृष्टिसे भी यह मन्दिर बहुत उत्तम गिना जाता है। भगवान् सुन्दरेश्वर मीनाक्षीदेवीके (जो भगवती दुर्गाका ही नाम है) पति माने जाते हैं। इनका लिङ्ग-विग्रह बड़ा तेजस्वी, चाँदीके त्रिपुण्ड्रसे मण्डित, श्वेतवर्णका दुपट्टा धारण किये बड़ा भव्य मालूम होता है एवं दर्शकोंके हृदयोंमें भक्तिभाव उत्पन्न करता है। मन्दिरमें मीनाक्षीदेवी तथा सुन्दरेश्वर महादेवके अतिरिक्त और भी कई सुन्दर मूर्तियाँ हैं। मन्दिरके प्राकारके भीतर एक सुन्दर सरोवर भी है तथा सहस्र स्तम्भका सभामण्डप एवं मन्दिरके विशाल गोपुर भी दर्शनीय हैं। इन सहस्र-स्तम्भ मण्डपोंमें वास्तवमें हजार खम्भे नहीं होते, किन्तु चार-पाँच सौके लगभग होते हैं।

२—तञ्जौरका बृहदीश्वर-मन्दिर

तञ्जौर भी दक्षिण-भारतका एक बहुत प्राचीन नगर है। यहाँका बृहदीश्वर-मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। मन्दिरके बाहर एक अत्यन्त विशाल नन्दीश्वरकी मूर्ति है, जो सोलह फुट लम्बी, सात फुट चौड़ी और बारह फुट ऊँची है। लोगोंका अनुमान है कि इस मूर्तिमें कोई २५ टन अथवा ७०० मन बोझ होगा। इसे देखनेके लिये लोग दूर-दूरसे आते हैं। मन्दिर करीब एक हजार वर्ष पुराना बतलाया जाता है। इसकी ऊँचाई लगभग दो सौ फुट होगी। मन्दिरके चारों ओर किलेकी-सी खाई बनी हुई है, मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिये उस खाईको पार करके जाना होता है। इसका प्रधान गोपुर लगभग नब्बे फुट ऊँचा है। इस मन्दिरकी बनावटके सम्बन्धमें अंग्रेज़ विद्वान् फरगुसनने बहुत कुछ लिखा है। पास ही शङ्करजीके ज्येष्ठ पुत्र—सुब्रह्मण्यम् स्वामी अथवा स्वामि-कार्तिकेयका मन्दिर है। इसकी शोभा भी अतुलनीय है।

तञ्जौरका सुन्दर राजमहल और पुस्तकालय भी दर्शनीय है। इस पुस्तकालयमें करीब १८ हजार संस्कृतकी हस्तलिखित पुस्तकें हैं, जिनमेंसे ८ हजार ग्रन्थ ताडपत्रपर लिखे हुए हैं।

३—पक्षितीर्थ

मद्रासके समीप ही चिंगलपट नामका एक स्टेशन है। यहाँसे दस मीलकी दूरीपर समुद्र-तटपर पक्षितीर्थ विराजमान है। मार्ग पर्वतमालाओं तथा सुरम्य जङ्गलोंके बीचमें होकर जाता है। पक्षितीर्थमें शङ्खतीर्थ नामक एक बहुत बड़ा सरोवर है। इसमें स्नान करनेके उपरान्त यात्रीलोग पाँच सौ सीढ़ियाँ चढ़कर पहाड़के शिखरपर जाते हैं, जहाँ पक्षितीर्थ विद्यमान है। वहाँ एक अति प्राचीन शिव-मन्दिर है।

---

* श्रीभगवतीप्रसादसिंहजीने कृपापूर्वक तीस शिव-मन्दिरों या स्थानोंका सचित्र वर्णन लिख भेजा था। परन्तु उनपर अन्यान्य लेखकोंके लेख प्रकाशित हो जानेके कारण वह सम्पूर्ण वर्णन नहीं छापा जा सका। बेबसीके लिये क्षमाप्रार्थी हैं। —सम्पादक

मध्याह्नके समय मीठा भात तथा घी हाथमें लेकर पुजारी पूर्वाभिमुख होकर घण्टा बजाता है। घण्टेका शब्द होते ही दो श्वेतवर्णके पक्षी उड़कर पुजारीजीके समीप आ बैठते हैं और प्रसाद तथा जल ग्रहणकर उड़ जाते हैं। आस्तिक लोगोंका विश्वास है कि साक्षात् शिव-पार्वती ही उन पक्षियों-के रूपमें वहाँ आते हैं और भक्तको कृतार्थ कर चले जाते हैं। कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि ये कोई ऋषि हैं, जो शापके कारण पक्षी हो गये हैं। यहाँका मन्दिर वहाँके शिलालेखोंके अनुसार दो हजार वर्षसे भी अधिक पुराना है।

४-इलोरा तथा एलिफेण्टाकी गुफाओंकी शिव-मूर्तियाँ

इलोराकी गुफाएँ निजाम-हैदराबादके राज्यमें दौलताबाद स्टेशनसे सात मीलकी दूरीपर स्थित हैं। स्टेशनसे गुफाओंतक पक्की सड़क बनी हुई है। एक पूरी-की-पूरी पहाड़ीको काटकर मन्दिरोंके रूपमें परिणत कर दिया गया मालूम होता है। मन्दिरोंकी बनावटमें चूना-मसाला अथवा किसी प्रकारके कील-काँटे नहीं लगे हैं। मन्दिरोंकी संख्या पचीस-तीससे अधिक है। हिन्दू-मन्दिरोंके अतिरिक्त बौद्ध एवं जैनमन्दिर भी हैं। हिन्दू-मन्दिरोंमें कैलास नामका मन्दिर सबसे बड़ा एवं सुन्दर है। इसे लोग संसारका 'अष्टम आश्चर्य' कहते हैं और इसे देखनेके लिये लोग दूर-दूरसे आते हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओंके अनुमानसे इस मन्दिरको बने लगभग हजार-ग्यारह सौ वर्ष हुए होंगे। इस जंगी दुमंजिले मन्दिरको बनवानेमें लगभग बीस-पचीस वर्ष लगे होंगे। यह मन्दिर भगवान् शंकरका है, जिनका मानुष-विग्रह पत्थरके अन्दर खुदा हुआ है। मन्दिरकी बाहरी तथा भीतरी दीवारोंपर रामायण एवं महाभारतकी प्रधान-प्रधान घटनाएँ मूर्तिरूपमें खुदी हुई हैं। एक स्थानपर यह दृश्य दिखलाया गया है कि रावण शिवजीके कैलासको उठानेकी चेष्टा कर रहा है। आततायी मुसलमानोंने यहाँकी अपूर्व कारीगरीको भी नष्ट-भ्रष्ट करनेमें कोई बात उठा न रक्खी। परन्तु मन्दिरोंकी वर्तमान दशाको देखकर भी दर्शकों-को दंग रह जाना पड़ता है। कहते हैं, सम्राट् दन्तिदुर्गने आठवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें इस मन्दिरको बनवाया था। कुछ लोगोंके मतमें इलोराका प्राचीन नाम शिवालय है। उन लोगोंके मतमें घुश्मेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्ग यहीं विराजमान है।

एलिफेण्टाके गुहा-मन्दिर बम्बईसे प्रायः छः मील दूर एक टापूपर अवस्थित हैं। यात्रीलोग इस स्थानको नावों अथवा स्टीमरोंपर बैठकर जाते हैं। इस टापूपर दो बड़े-बड़े पर्वत हैं जिनके ऊपरी भागको काट-काटकर करीब डेढ़ या दो हजार वर्ष पूर्व हिन्दू शिल्पकारोंने भगवान् शङ्करके कई मन्दिर बनाये थे। इन मन्दिरोंमें भगवान शङ्कर, देवी पार्वती, अर्द्धनारीश्वर, नटराज तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी त्रिमूर्ति विशेषरूपेण द्रष्टव्य हैं। लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व बम्बई तथा उसके आस-पासके टापू पुर्तगाल-वालोंके अधीन थे। उस समय इन धर्मान्ध ईसाइयोंने इस स्थानकी प्रायः सभी मूर्तियों तथा मन्दिरोंकी सुन्दरता-को बुरी तरहसे नष्ट-भ्रष्ट किया मालूम होता है। फिर भी इन भग्न मूर्तियोंकी तक्षणकलाको देखकर प्राचीन गौरवका स्मरण हो आता है। इन गुहा-मन्दिरोंमेंसे मुख्य मन्दिरमें भगवान् शङ्कर लिङ्गरूपमें विराजमान हैं। गुफाओंके ठीक नीचे एक सुन्दर स्वच्छ जलका कुण्ड बना हुआ है। समुद्र-तटसे गुफाओंतक पहुँचनेके लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। बम्बईवाले इस स्थानको धारापुरी कहते हैं।

५-महाबलेश्वर-मन्दिर

महाबलेश्वर बम्बई-प्रान्तका एक ठण्डा स्थान है। बम्बईकी प्रान्तीय सरकार तथा गवर्नरका मुकाम ग्रीष्मऋतु-में महाबलेश्वरमें ही रहता है। यह छोटा-सा नगर बम्बईसे दक्षिणकी ओर करीब दो सौ मीलके अन्तरपर पश्चिमीघाट नामक पर्वतश्रेणीके ऊपर बसा हुआ है। रास्ता पूना होकर जाता है। कुछ दूरतक रेलपर और पीछे मोटरपर जाना होता है। मार्ग अत्यन्त रमणीय है और कहीं-कहीं भयङ्कर पर्वतोंके बीचमेंसे होकर गया है। बम्बईसे पूनातक बिजली-की रेल चलती है। इस लाइनपर खण्डाला-घाटका दृश्य अत्यन्त रमणीय है।

महाबलेश्वर सुप्रसिद्ध कृष्णा-नदीका उद्गमस्थान है। जिस स्थानसे यह नदी निकलती है वहाँ एक प्राचीन मन्दिर बना हुआ है। प्रतापगढ़का किला, जहाँ शिवाजीकी इष्टदेवी भवानीका मन्दिर है, यहाँसे निकट ही है और सिंहगढ़का किला भी दूर नहीं है। कहते हैं, अफ़ज़लखाँ-की मृत्युके बाद शिवाजी अपनी माताके साथ इस स्थानपर आये थे और अपने उस दुर्दमनीय शत्रुको उखाड़ फेंकनेकी खुशीमें उन्होंने मन्दिरके शिखरको सोनेसे मँढ़वा दिया था।

६—कश्मीरका अमरनाथ-मन्दिर

कुछ लोग अमरेश्वर नामका ज्योतिर्लिङ्ग इसी स्थान-पर बतलाते हैं। इस स्थानके सम्बन्धमें खास बात यह है कि यहाँका शिवलिङ्ग तथा गुहा-मन्दिर दोनों ही मनुष्य-कृत न होकर प्रकृतिके हाथोंसे ही बने हुए हैं।

कश्मीरके पूर्वीय भागमें समुद्र-तलसे लगभग पन्द्रह हजार फुट ऊँचे पर्वतपर भगवान् अमरनाथकी गुहा स्थित है। इस पुण्य-स्थानकी यात्रा वर्षभरमें केवल एक ही दिन अर्थात् श्रावणकी पूर्णिमाको होती है। कश्मीरकी राजधानी श्रीनगरसे यह गुफा लगभग पचासी मीलके अन्तरपर है, जिसका दो-तिहाई हिस्सा मोटरपर आरामसे कट जाता है। बाकीका रास्ता, जो विकट पहाड़ी है और मोटरके द्वारा अगम्य है, पैदल ही काटना होता है। इस पैदल रास्तेमें चन्दनवाड़ी, शेषनाग तथा पंजतरणी—ये तीन मुकाम हैं, चतुर्दशीके दिन यात्रीलोग पंजतरणी पहुँच जाते हैं। यह स्थान अमरनाथ-पर्वतकी तलहटीमें उसके द्वाररूपमें स्थित है। पूर्णिमाके दिन यात्रीलोग पर्वत-शिखरपर चढ़कर गुफामें भगवान्‌का दर्शन कर उसी दिन पंजतरणीको वापस लौट आते हैं। पर्वतकी चढ़ाईमें लगभग एक मीलतक बर्फपर चलना पड़ता है। यह बर्फीला रास्ता गुफासे करीब एक मील पहले ही समाप्त हो लेता है। जिस स्थानपर बर्फीला रास्ता समाप्त होता है, वहाँ पानीका एक नाला बहता है। वहाँपर स्नान करनेकी एक खास विधि है—यात्रियोंको चाहिये कि वे लोग एक लँगोट बाँधकर नंगे बदन ही उसमें गोता लगावें और वहाँसे गीले बदन ही मन्दिरमें जाकर भगवान्‌का दर्शन करें और पुनः उसी नालेपर आकर वस्त्र पहनें। बहुत-से वृद्ध कश्मीरी पण्डित अब भी इसी विधिसे स्नान कर दर्शनके लिये जाते हैं। पाठकगण आश्चर्य करते होंगे कि वहाँ इसप्रकार स्नान करनेवाले सरदीके मारे अकड़ क्यों नहीं जाते। बात यह है कि उस जलमें कोई ऐसा पदार्थ मिला हुआ है जो उसके अन्दर स्नान करनेवालोंकी सरदीसे रक्षा करता है। इसका प्रमाण यह है कि स्नानके बाद जब स्नान करनेवालोंका शरीर वायुसे अपने आप सूखने लगता है तब ऐसा मालूम होता है मानों उन लोगोंने अपनी देहपर भस्म रमा ली हो।

गुफाके भीतर तीन हिमलिङ्ग-से दीख पड़ते हैं, जिन्हें लोग शिव, पार्वती और गणेशके लिङ्ग बतलाते हैं। कन्दराकी छतसे बूँद-बूँद जल टपकता रहता है और शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे पूर्णिमातक चन्द्रमाकी कलाओंके साथ ये लिङ्ग भी क्रमशः बढ़ते हैं। कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे इनका आकार धीरे-धीरे घटने लगता है और अमावास्याके दिन ये बिल्कुल गल जाते हैं।

इसी अवसरपर यात्रियोंको पक्षितीर्थके पक्षियोंके जोड़ेकी भाँति एक सफेद कबूतरका जोड़ा कन्दरामेंसे निकलकर बाहर उड़ता हुआ नजर आता है। यात्रीलोग बड़े श्रद्धापूर्वक इन्हें शङ्कर और पार्वतीके रूपमें प्रणाम करते हैं।

गुफामें एक ब्राह्मण देवता पुजारीके रूपमें पूजा इत्यादि ग्रहण करते हैं। ये सज्जन श्रीनगरसे यात्रियोंके अग्रणीरूपमें यहाँ आते हैं। इनके हाथमें चाँदीकी एक छड़ी रहती है, जो इनके पदको सूचित करती है। यात्रासे लौटनेपर यह छड़ी पुनः श्रीनगरके मन्दिरमें रख दी जाती है।

७—काँगड़ाका वैद्यनाथ-मन्दिर

काँगड़ेकी घाटी तथा वहाँके सुरम्य और स्वास्थ्यप्रद पार्वत्य प्रदेशको, वहाँके सीधे-सादे, भोले-भाले गद्दी जातिके लोगोंको और उस प्रदेशमें स्थित भगवती ज्वालामुखी, काँगड़ेकी देवी तथा काँगड़ेके वैद्यनाथ नामक शिव-मन्दिरको बहुत कम लोग जानते हैं। भारतका यह भाग अत्यन्त सुन्दर है और इसमें डलहौज़ी, धर्मशाला, शिमला, कूल्लू इत्यादि सुरम्य नगर स्थित हैं। अभी हालमें ही पठानकोटसे योगीन्द्रनगरतक रेलकी लाइन खुली है। सुप्रसिद्ध वैद्यनाथजीका मन्दिर इसी लाइनपर पड़ता है। बंगालका वैद्यनाथधाम इससे बिल्कुल भिन्न है। वैद्यनाथजीका मन्दिर कीरग्राम नामक गाँवमें बना हुआ है और पुरातत्त्ववेत्ताओंका अनुमान है कि यह मन्दिर कम-से-कम हजार, डेढ़ हजार वर्ष पुराना होगा।

मन्दिरकी बनावट निराली ही है और बड़ी सुन्दर है। इसके भीतर भगवान् शङ्करजी लिङ्गरूपमें विराजमान हैं। पंजाब-प्रान्तके लाखों हिन्दू यात्री प्रतिवर्ष ज्वालामुखी और वैद्यनाथजीके मन्दिरकी यात्रा करते हैं। पंजाबके शिवमन्दिरोंमें यदि इस मन्दिरको अग्रगण्य कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसीके पास सिद्धनाथ महादेवका मन्दिर है, जो इससे भी पुराना कहा जाता है और जिसमें अनगढ़ शिवलिङ्ग विराजमान है।

८—तारकेश्वर-मन्दिर

कलकत्तेके निकट ही रेलवेकी एक शाखापर तारकेश्वर भगवान्‌का प्रसिद्ध स्थान है। मन्दिरके समीप ही दूधगङ्गा नामका एक सरोवर है, इसीका जल यहाँके लोगोंके व्यवहारमें आता है। भगवान् तारकेश्वरकी महिमा दूर-दूरतक फैली हुई है। असाध्य रोगोंसे मुक्त होनेके लिये प्रायः बहुत-से यात्री यहाँ धरना दिये पड़े रहते हैं। यहाँ शिवरात्रि तथा चैत्रकी संक्रान्तिके दिन बहुत बड़ा मेला लगता है। शिवरात्रिके दिन भक्तलोग निराहार रहकर रातभर जागरण करते हैं। चैत्र-संक्रान्तिके दिन लोग इष्ट-प्राप्तिके लिये अपनी पीठमें बड़ी-बड़ी कीलें ठोंककर भगवान्‌के सामने लटक जाया करते थे, किन्तु सरकारकी ओरसे आजकल यह प्रथा बन्द कर दी गयी है।

९—भुवनेश्वर-मन्दिर

उड़ीसा-प्रान्तमें श्रीजगन्नाथधामके निकट, कटक-स्टेशनसे दो-तीन स्टेशन आगे भुवनेश्वर-स्टेशन है। यह स्थान कलकत्तेसे दो सौ बहत्तर मील दक्षिणकी ओर है। कलकत्तेसे भुवनेश्वर नौ घण्टेका रास्ता है। कलकत्तेसे पुरी एक्सप्रेस नामक गाड़ीपर सवार होनेसे, जो वहाँसे रातके आठ बजेके करीब छूटती है, प्रातःकाल पाँच बजेके करीब भुवनेश्वर पहुँच जाते हैं। मद्राससे भुवनेश्वर ४८ घण्टेका रास्ता है। स्टेशनसे भुवनेश्वरका स्थान करीब पाँच मील है। रास्ता बड़े ही सुन्दर जङ्गलमेंसे होकर गया है। भुवनेश्वरका प्राचीन नाम 'एकाम्रकानन' है।

भुवनेश्वर पहुँचते ही एक विस्तृत सरोवर दीख पड़ता है। इसे बिन्दुसरोवर कहते हैं। इसीके समीप भगवान् भुवनेश्वरका (जिन्हें 'लिङ्गराज' भी कहते हैं) विशाल एवं गगनचुम्बी मन्दिर है। भुवनेश्वर उड़ीसाके केसरी नामक प्रसिद्ध राजवंशकी राजधानी रह चुका है। कहा जाता है, किसी समय बिन्दुसरोवरके आस-पास कम-से-कम सात हजार मन्दिर थे। इस समय वहाँ केवल पाँच सौके करीब मन्दिर हैं। इन सबमें प्रधान मन्दिर भगवान् भुवनेश्वरका है जिनके दर्शनार्थ दूर-दूरसे अनेक यात्री प्रतिमास आते रहते हैं। भुवनेश्वरके दर्शन तथा बिन्दुसरोवरमें स्नान, तर्पण, पिण्डदान आदि करनेका ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, कपिलसंहिता आदि ग्रन्थोंमें बड़ा माहात्म्य लिखा है। सरोवरके बीच एक छोटा-सा मन्दिर है, जहाँ उत्सवके अवसरोंपर भगवान्‌की चल मूर्ति पधरायी जाती है।

बिन्दुसरोवरकी भारतवर्षके चार प्रधान सरोवरोंमें गणना है। शेष तीन सरोवरोंके नाम ये हैं—(१) मानसरोवर, (२) पम्पासरोवर, जो दक्षिणमें गुन्तकल नामक स्थानके निकट है और (३) नारायणसरोवर जो श्रीद्वारकापुरीके समीप है। यह सरोवर १३०० फुट लम्बा और ७०० फुट चौड़ा है और इसकी औसत गहराई आठ फुट है। कहते हैं, इसमें भारतवर्षके सारे तीर्थों एवं पुण्य-सरिताओंका जल डाला हुआ है। बिन्दुसरोवरके अतिरिक्त इस पुण्यक्षेत्रकी सीमामें अन्य कई सरोवर भी हैं, जिनके नाम ये हैं—पापनाशिनी, गङ्गा-यमुना, कोटितीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, मेघकुण्ड, अलाबुकुण्ड, रामकुण्ड, देवीपदहर, गौरीकुण्ड तथा केदारकुण्ड। इनमेंसे कोटितीर्थमें केवल वर्षाकालमें जल रहता है, बाकी समय यह सूखा रहता है। गौरीकुण्डमें पानीका एक सोता है जिसके कारण इसका जल बारहों मास बना रहता है। गौरीकुण्डका ही जल केदारकुण्डमें जाता है। इन दोनों कुण्डोंका जल स्वास्थ्यके लिये बड़ा हितकर एवं पाचक माना जाता है। देवीपदहरके सम्बन्धमें यह कथा प्रचलित है कि भगवती दुर्गाने इसी स्थानपर दो दैत्योंके साथ युद्ध कर उनका वध किया था। युद्धके समय भगवतीके पदाघातसे यहाँ एक गड्ढा हो गया और उसीमें जल भर जानेसे एक छोटी-सी झील बन गयी, जो देवीपदहरके नामसे प्रसिद्ध हो गयी।

भुवनेश्वरका मन्दिर बहुत प्राचीन है। केसरीवंशके आदिम राजा जजातिकेसरीने सन् ५८० ई० में इसे बनवाना प्रारम्भ किया था और उनके जीवनकालमें तथा उनके परवर्ती दो नरेशोंके राज्यकालमें यह काम बराबर जारी रहा। केसरीवंशके चतुर्थ नरेश ललाटेन्दुकेसरीको सन् ६५७ ई० में इस महान् कार्यको सम्पूर्ण करनेका श्रेय प्राप्त हुआ। इसप्रकार इस मन्दिरके बननेमें पौन शताब्दीसे ऊपर लगा और लगातार चार राजाओंके प्रयत्नसे यह कार्य सम्पन्न हुआ। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इसके निर्माणमें रुपया भी पानीकी तरह बहाया गया होगा।

नृपतिकेसरीने कटकको अपनी राजधानी बनाया।
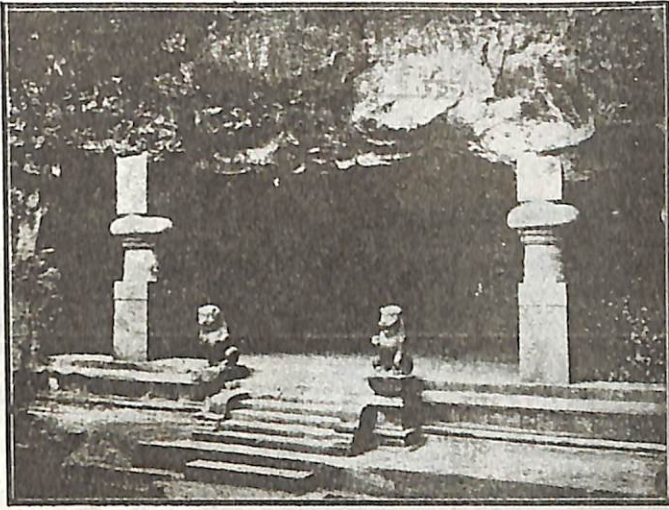
धारापुरी-गुफाका द्वार
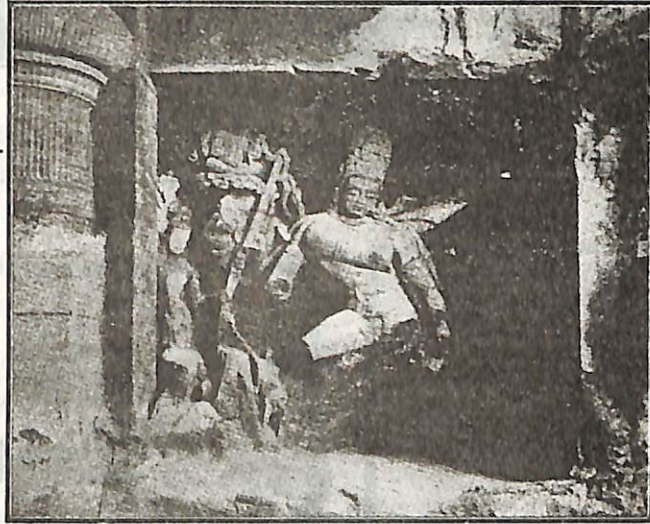
धारापुरीकी ताण्डवमूर्ति
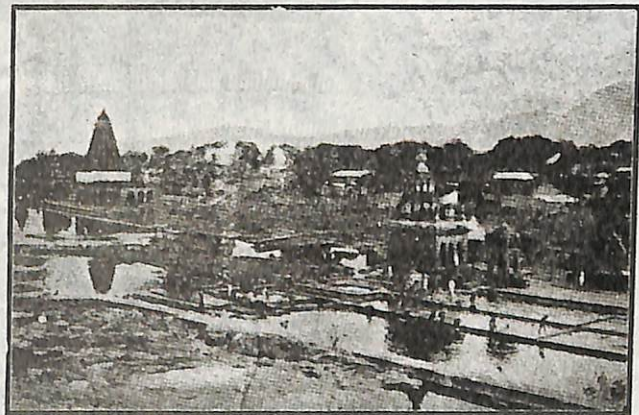
श्रीमहाबलेश्वर-शिव-मन्दिर
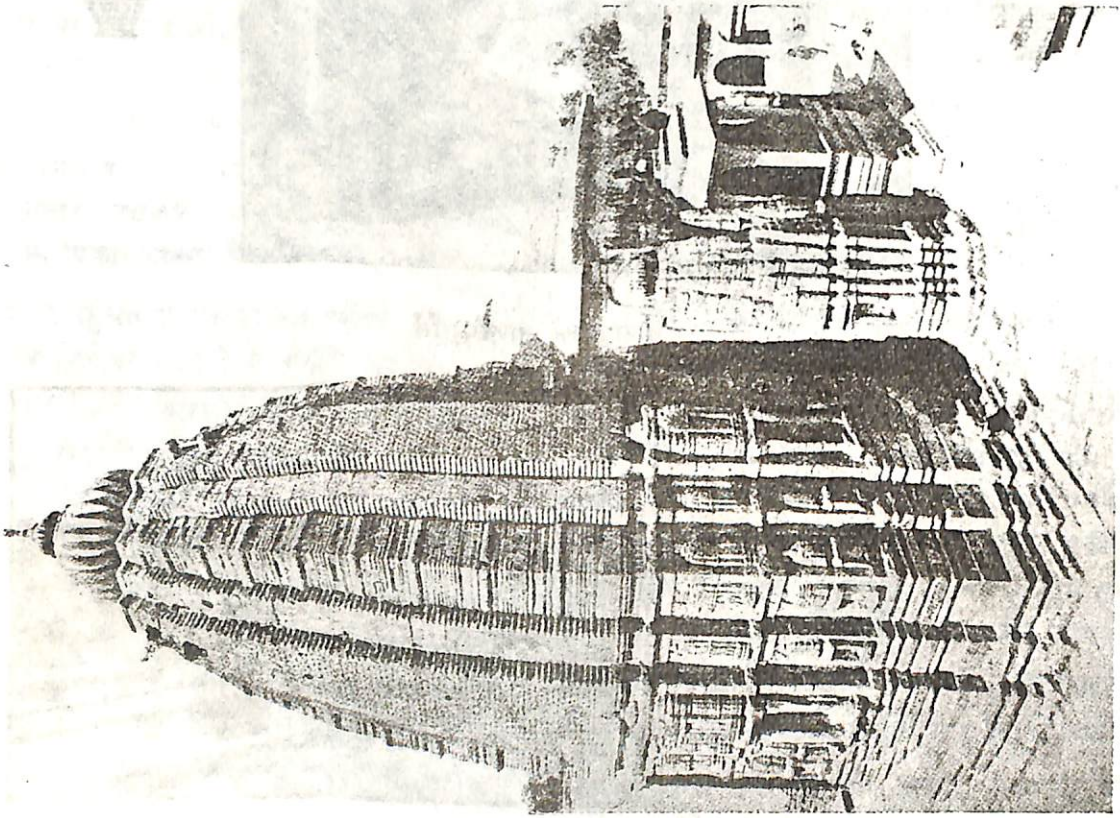
श्रीवैद्यनाथ-मन्दिर—कांगड़ा

श्रीअमरनाथजीकी बर्फसे बनी हुई मूर्ति

श्रीअमरनाथ-गुफा
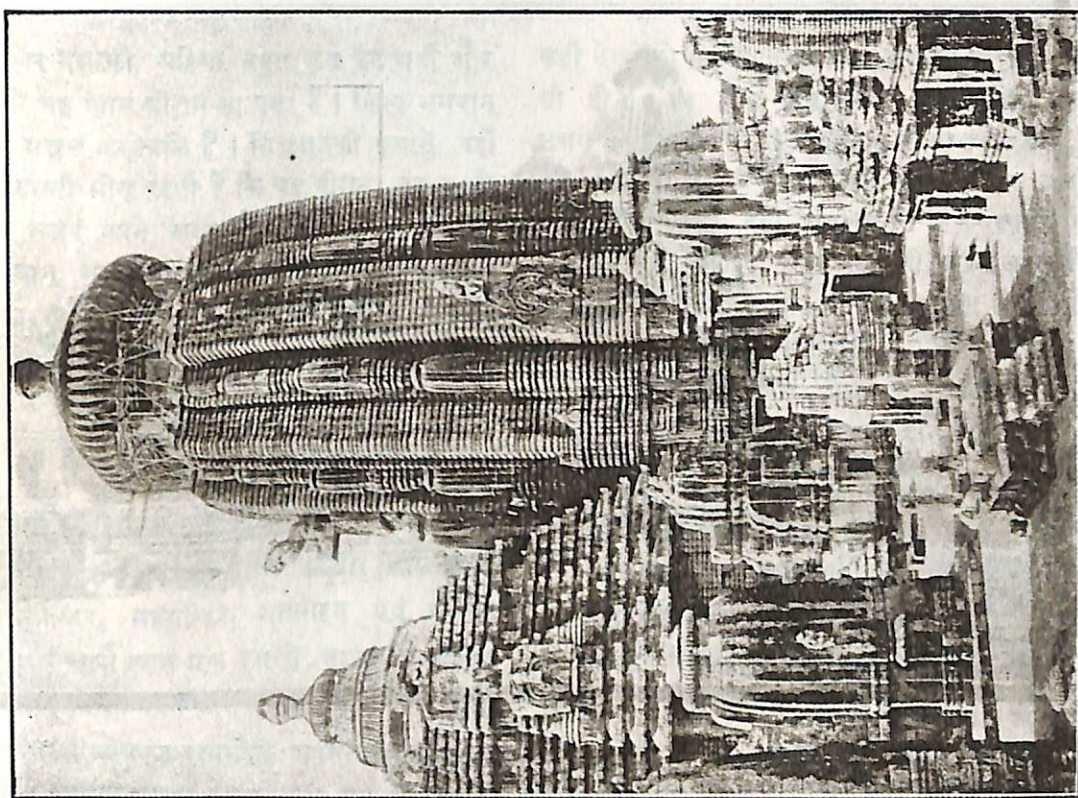
श्रीलिंगराज—भुवनेश्वर

श्रीतारकेश्वर-शिव
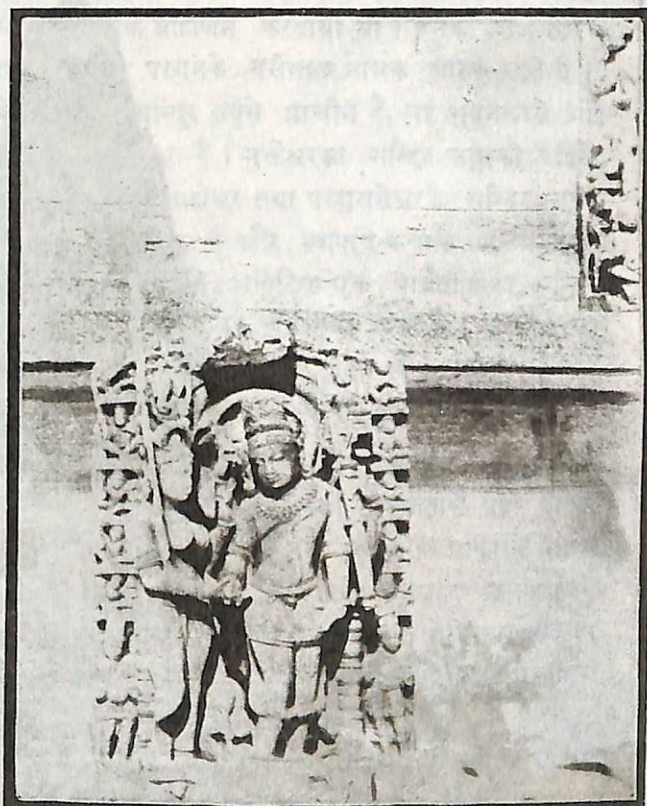
शिव-विवाह—खजुराहो
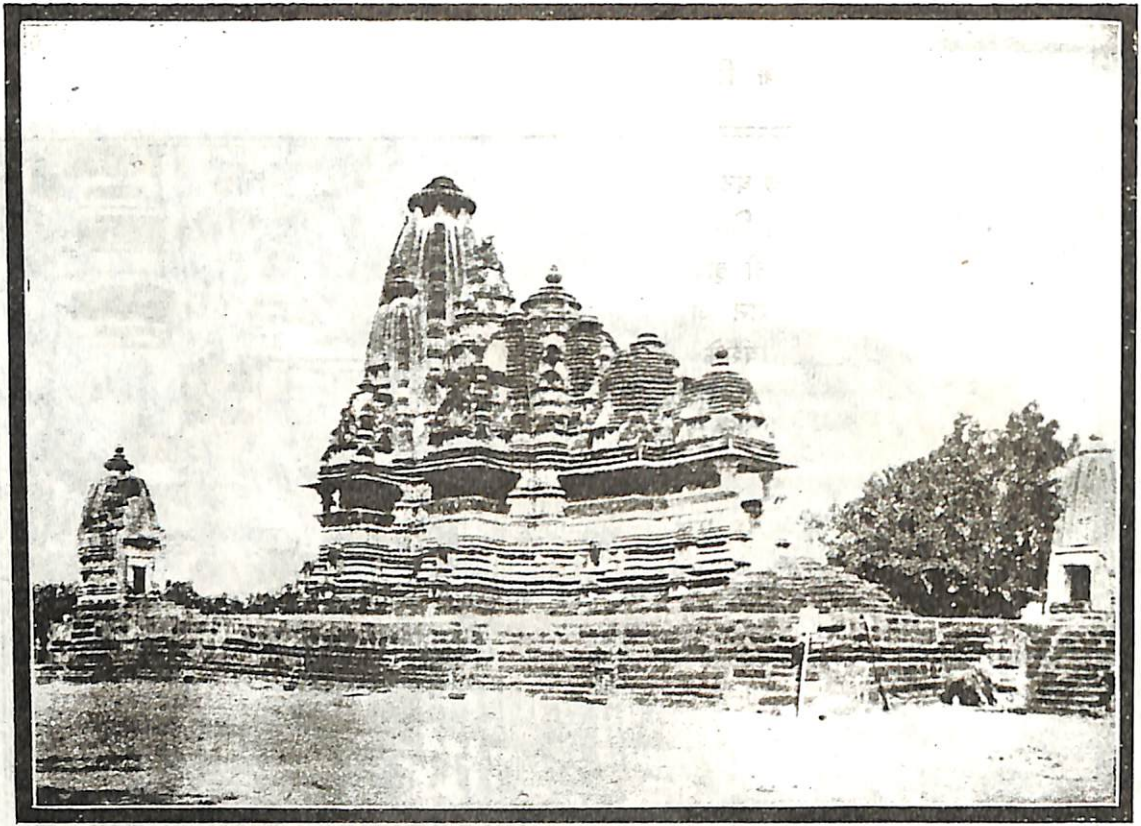
विश्वनाथ-मन्दिर—खजुराहो
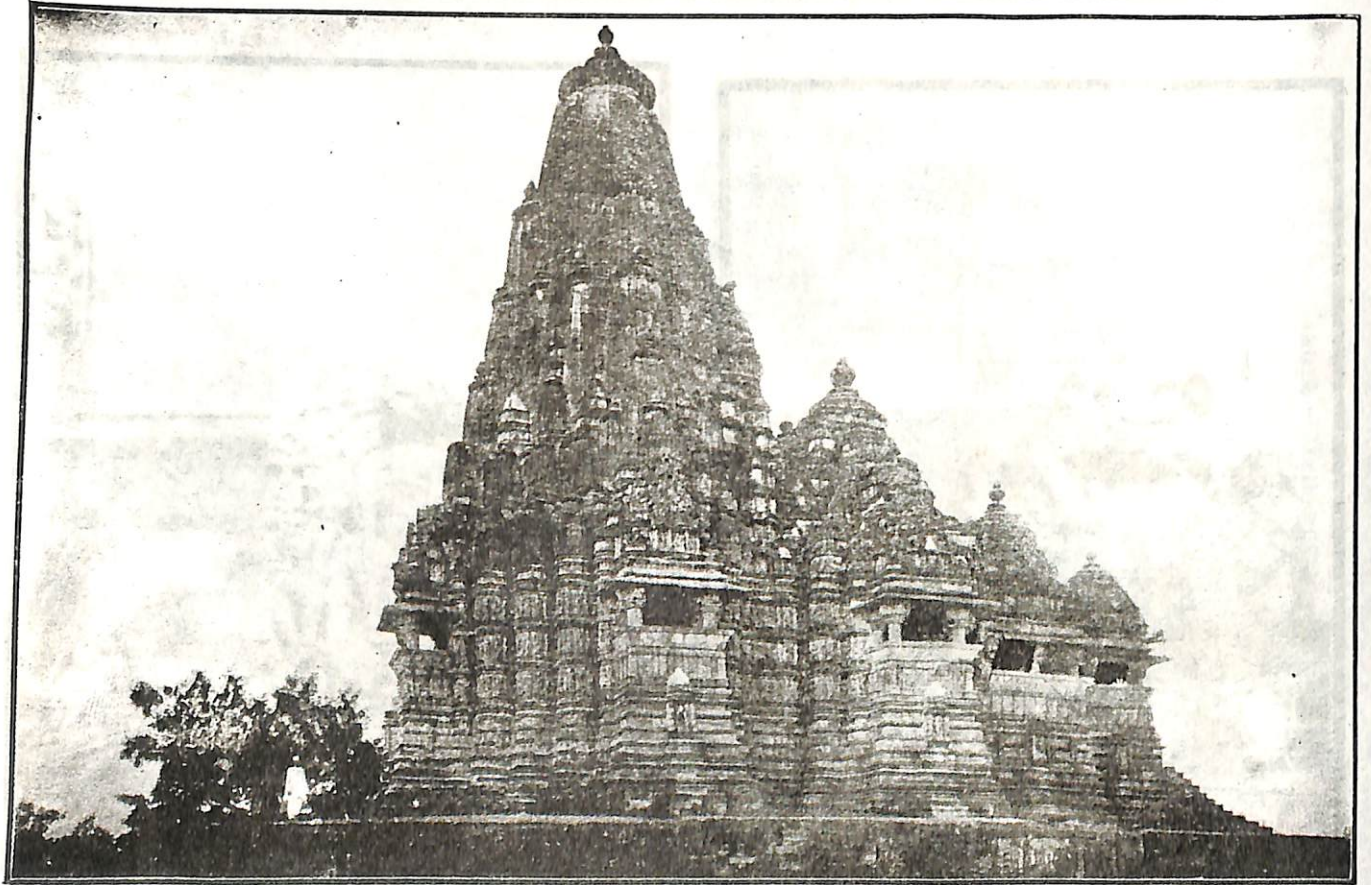
कण्डारिया-मन्दिर—खजुराहो

तबसे भुवनेश्वर नगरकी महिमा बहुत कुछ घट गयी और आजकल तो यह स्थान वीरान-सा पड़ा है। किन्तु भगवान् तो जङ्गलमें मङ्गल करनेवाले हैं। लिङ्गराजकी कृपासे वहाँ यात्रियोंकी इतनी भीड़ रहती है कि वह वीरान जङ्गल भी हरा-भरा-सा नज़र आने लगा है। केसरीवंशके अन्तिम राजाने भगवान् भुवनेश्वरका भोगमन्दिर तथा पुजारियोंके रहनेके स्थान इत्यादि बनवाये और मन्दिरके भोग-रागके लिये स्थायी प्रबन्ध कर दिया।

मन्दिरके चारों ओर सात फुट ऊँची एक मोटी पत्थरकी दीवार है जो ५२० फुट लम्बी और ५०० फुट चौड़ी है। इस दीवारके अन्दर भिन्न-भिन्न देवताओंके छोटे-मोटे सौ मन्दिर हैं और उनके बीचमें भगवान् भुवनेश्वरका मन्दिर है। इस मन्दिरके चार भाग हैं जो क्रमशः भोगमन्दिर, नटमन्दिर, जगमोहन एवं गर्भगृह कहलाते हैं। ये चारों स्थान एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं, अर्थात् एक मन्दिरसे दूसरे मन्दिरमें जानेके लिये मार्ग बना हुआ है। भोगमन्दिरमें अन्नकूट इत्यादिके अवसरपर, जब अधिक पैमानेमें भोग लगाया जाता है, भोगकी सामग्री सजायी जाती है और उसमेंका थोड़ा-सा अंश गर्भगृहके भीतर भगवान्के सामने पधराया जाता है। नटमन्दिरका उपयोग विशेष उत्सवोंके दिन होता है, जगमोहनमें दर्शकगण एकत्र होते हैं और वहींसे भगवान्का दर्शन-लाभ करते हैं और गर्भगृहमें भगवान्का श्रीविग्रह विराजमान रहता है। इस-प्रकार इन चारों स्थानोंका अलग-अलग नियमित रूपसे उपयोग होता है। मन्दिरके प्राकारके प्रधान द्वार—सिंहद्वारके ठीक सामने अरुणस्तम्भ नामका एक बड़ा सुन्दर स्तम्भ है।

गर्भगृहके ऊपर १९० फुट ऊँचा शिखर बना हुआ है जो एक ही पत्थरका गढ़ा हुआ मालूम होता है, क्योंकि उसमें कहींपर भी जोड़ अथवा चूने-मसालेका उपयोग किया हुआ नहीं दिखायी देता। मन्दिर भी एक विशेष कारीगरीका नमूना है। इसके अतिरिक्त मन्दिरके भीतर चारों ओर अनेक प्रकारके बेल-बूटे और मूर्तियाँ खुदी हुई हैं जो दर्शकोंके मनको मोह लेती हैं। इसप्रकार स्थापत्य-कलाकी दृष्टिसे मन्दिरका बड़ा महत्त्व समझा जाता है।

भगवान् भुवनेश्वरका लिङ्ग-विग्रह बड़ा विशाल है। उसका व्यास करीब ८ फुटका है और ऊँचाई भी करीब-करीब उतनी ही है। इतना ऊँचा शिवलिङ्ग शायद ही कहीं देखनेको मिलेगा। लिङ्गकी आकृति भी कुछ विचित्र-सी ही है। वह एक पाषाणस्तम्भ-सा दिखायी देता है। उसमें तीन विभाग-से नजर आते हैं जो सम्भवतः ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवके द्योतक हैं। लिङ्गके नीचे बराबर जल भरा रहता है और दूध, दही तथा जलसे उसे स्नान कराया जाता है। जगदीशकी तरह यहाँ भी लोग जाति-पाँतिका भेद छोड़कर कच्ची रसोईका प्रसाद पा लेते हैं। गर्भगृहकी बनावट अन्य बड़े शिवमन्दिरोंकी भाँति ऐसी है कि उसके अन्दर प्रकाश बहुत कम आता है, जिससे दिनमें भी दीपकके प्रकाशसे भगवान्के दर्शन होते हैं।

भुवनेश्वरके अतिरिक्त प्रधान मन्दिर ये हैं—कपिलेश्वर, अनन्त-वासुदेव, केदारेश्वर, मुक्तेश्वर, ब्रह्मेश्वर तथा परशुरामेश्वर। कपिलेश्वर महादेवका दर्शन करनेके लिये बहुत-से ऐसे यात्री आते हैं जो किसी असाध्य रोगसे पीड़ित होते हैं और उनमेंसे कई रोगमुक्त होते देखे जाते हैं। अनन्त-वासुदेवके मन्दिरमें श्रीकृष्ण एवं बलदाऊजीकी मूर्तियाँ हैं। लोग भुवनेश्वरका दर्शन करनेके पूर्व कृष्ण-बलदेवका दर्शन अवश्य करते हैं। यह मन्दिर बिन्दुसरोवरके तटपर है। इस मन्दिरका निर्माण सन् १०२५ ई० में बङ्गालके भट्ट महादेव नामक ब्राह्मणने करवाया था। इनके वंशज अब-तक चौबीस परगनेके बरीसाल नामक ग्राममें रहते हैं। केदारेश्वरका मन्दिर सबसे प्राचीन है, वह भुवनेश्वरसे भी पहलेका बना हुआ है। मुक्तेश्वरका मन्दिर कलाकी दृष्टिसे बहुत सुन्दर है। ब्रह्मेश्वर तथा परशुरामेश्वरके मन्दिर नवीं शताब्दीके बने हुए हैं और स्थापत्य-कलाके उत्तम नमूने माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त एक पार्वतीजीका मन्दिर भी है, जो बड़ा सुन्दर बतलाया जाता है। भुवनेश्वरका जल-वायु बड़ा अच्छा माना जाता है। समुद्रके निकट होनेके कारण वहाँ न तो सर्दी अधिक होती है, न गर्मी।

इस मन्दिरकी प्रसिद्धि सुनकर एक बार भारतके भूत-पूर्व वायसराय—लार्ड कर्जन बड़ी उत्सुकतासे यहाँ आये, किन्तु विधर्मी होनेके कारण उन्हें मन्दिरके प्राकारके भीतर नहीं जाने दिया गया। अतः प्राकारके बाहर उनके लिये एक बहुत ऊँचा चबूतरा-सा बनवाया गया, जिसपर चढ़कर उक्त वायसराय महोदयने मन्दिर देखनेकी अपनी हविश पूरी की।

भुवनेश्वरसे पाँच मीलकी दूरीपर उदयगिरि और खण्डगिरिकी प्रसिद्ध पहाड़ियाँ हैं, जिन्हें काट-काटकर

कई गुहा-मन्दिर तथा महल बनाये गये हैं। यहाँपर कुल मिलाकर पचास-साठ गुफाएँ होंगी। भुवनेश्वरसे इतनी ही दूर एक और सुविख्यात स्थान है। यह है धौलीका अश्वत्थामा-पर्वत, जिसे काट-काटकर अनगढ़ हाथीका रूप दिया गया है और इस हाथीपर सम्राट् अशोकके सुप्रसिद्ध आदेश (Edicts) खुदे हुए हैं। भुवनेश्वरसे बीस मील-की दूरीपर समुद्र-तटपर जगत्-प्रसिद्ध कोणार्कके विशाल सूर्य-मन्दिर हैं जो वास्तवमें दर्शनीय हैं।

१०—खजुराहोके शिव-मन्दिर

पाठकोंमेंसे अधिकांश ऐसे होंगे जिन्होंने खजुराहोका नामतक न सुना होगा, किन्तु यह स्थान लगभग एक हजार वर्ष पूर्वतक हजारों वर्षोंसे वीरभूमि बुन्देलखण्डकी राजधानी रह चुका है। यहाँके सुविशाल शिव और विष्णुके मन्दिर तथा जैन एवं बौद्ध मन्दिर भारतीय प्राचीन शिल्प-कलाके जीते-जागते नमूने हैं। यह एक संयोगकी बात है कि मार्गकी दुर्गमताके कारण ध्वंसकारी मुसलमान यहाँतक नहीं पहुँच सके, अन्यथा खजुराहोके मन्दिर आज इस अक्षुण्ण अवस्थामें नहीं मिलते।

प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्त्साङ्, महमूद गजनवीके साथ आया हुआ आबूरिहान और इनके बाद आया हुआ इब्न बतूता—इन सबोंके भ्रमण-ग्रन्थोंमें खजुराहोकी समृद्धि तथा महत्त्वका वृत्तान्त मिलता है। इब्न बतूता चौदहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें भारतवर्षमें आया था। उसने लिखा है कि खजुराहोमें बड़े बड़े जटाधारी कृशशरीर तपस्वी एवं योगी रहते हैं जिनसे जन्त्र-मन्त्र सीखनेके लिये मुसलमानतक जाते हैं। परन्तु खेदकी बात है कि इस समय यह स्थान उजाड़ पड़ा है और बन्दोबस्तके कागजोंमें 'गैर-आबाद' लिखा हुआ है।

इस समय भी खजुराहोमें तीस बड़े-बड़े मन्दिर विद्यमान हैं, इनमेंसे शङ्करजीके दो मन्दिर—कँडारिया महादेव और विश्वनाथ महादेव—विशेषरूपसे द्रष्टव्य हैं और उन्हींका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है। महाशिवरात्रिके अवसरपर यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें शामिल होनेके लिये दूर-दूरसे लाखों आदमी आते हैं और मीलोंतक पृथिवी जनाकीर्ण दीखती है।

कँडारिया महादेवका मन्दिर खजुराहोमें सबसे बड़ा है। इसका निर्माण शास्त्रविधिके अनुसार हुआ है। भुवनेश्वरकी तरह इसमें भी कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ पत्थरको काट-कर मूर्तियाँ न बनायी गयी हों। पुरातत्त्ववेत्ताओंके अनुसार इस एक मन्दिरमें ही लगभग नौ सौ मूर्तियाँ होंगी। भगवान्का लिङ्ग-विग्रह चार फुट मोटा है। मन्दिर दसवीं शताब्दीका बना हुआ बतलाया जाता है। विश्वनाथजीका मन्दिर भी इसी ढंगका बना हुआ है। अन्तर केवल इतना है कि यह मन्दिर कुछ छोटा है और इसके चारों कोनोंपर चार छोटे-छोटे मन्दिर बने हुए हैं। मन्दिरके भीतर तो भगवान् लिङ्गरूपमें विराजमान हैं ही, साथ ही गर्भगृहके द्वारपर नन्दीश्वरपर आरूढ़ भगवान्का मानुष-विग्रह भी है। भगवान्के एक ओर हंसपर आरूढ़ ब्रह्माजीकी तथा दूसरी ओर गरुड़पर सवार भगवान् विष्णुकी मूर्ति है। मन्दिरके बाहर छोटी-मोटी और भी अनेक मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिरकी मूर्तियोंकी संख्या भी सब मिलाकर छः सौसे दो-चार ऊपर ही है।

खजुराहो छतरपुर-राज्यके अन्तर्गत है। यहाँ जानेके लिये झाँसी-मानिकपुर लाइनके हरपालपुर-स्टेशनसे साठ मील पक्की सड़क गयी है। श्रीमान् छतरपुरनरेशकी कृपा-से यहाँ एक म्यूजियम भी बन गया है जिसमें अनेक प्राचीन मूर्तियाँ संगृहीत हैं। हरपालपुरसे खजुराहो जाते हुए बीचमें छतरपुर-राजधानी पड़ती है। खजुराहोके विषयमें सुप्रसिद्ध कवि चन्दबरदाईने अपने 'पृथ्वीराज रासो' में बहुत कुछ लिखा है।*

शिव-अर्द्धाङ्गिनीकी लीला

जय शिव-शंकर संकटहारी।
अज अनादि अखिलेश अगोचर अगुन सगुन त्रिपुरारी।
जो मैं सो तू, जो तू सो मैं, यह श्रुति-संत पुकारी॥
मुखते कहत 'शिवोहं' सब ही, पै हिय-भेद न टारी।
'नारायण' तव अर्द्धाङ्गिनिकी है लीला अति भारी॥

—नारायणदास चतुर्वेदी विन्ध्याचल

* खजुराहोके चित्र श्रीशारदाप्रसादजी, सतनाकी कृपासे प्राप्त हुए हैं।—सम्पादक
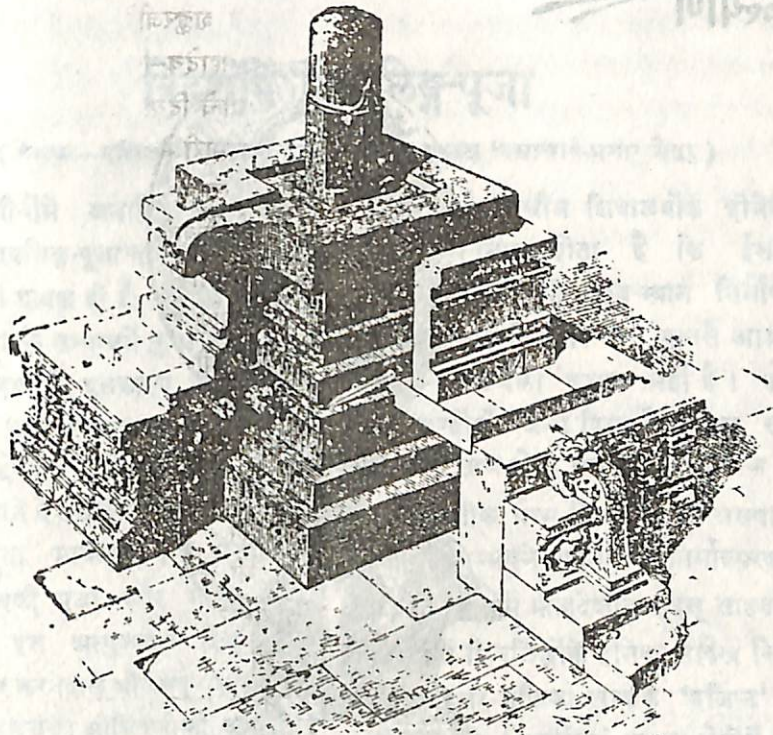
अनामके मी-सोन गाँवका शिवलिंग
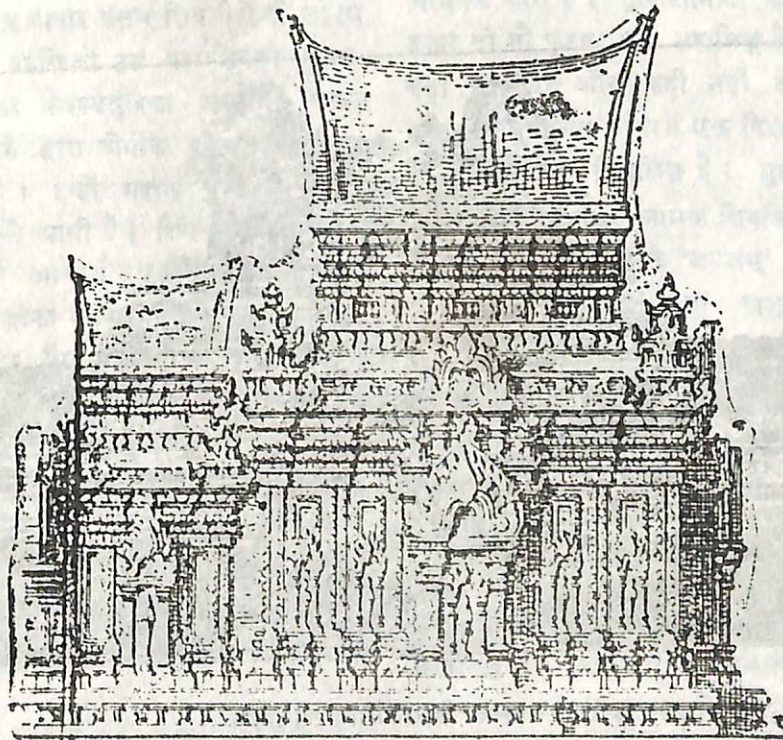
अनामदेशके मी-सोन गाँवका शिवालय

मी-सोनमें षण्मुख मयूरवाहन विग्रह
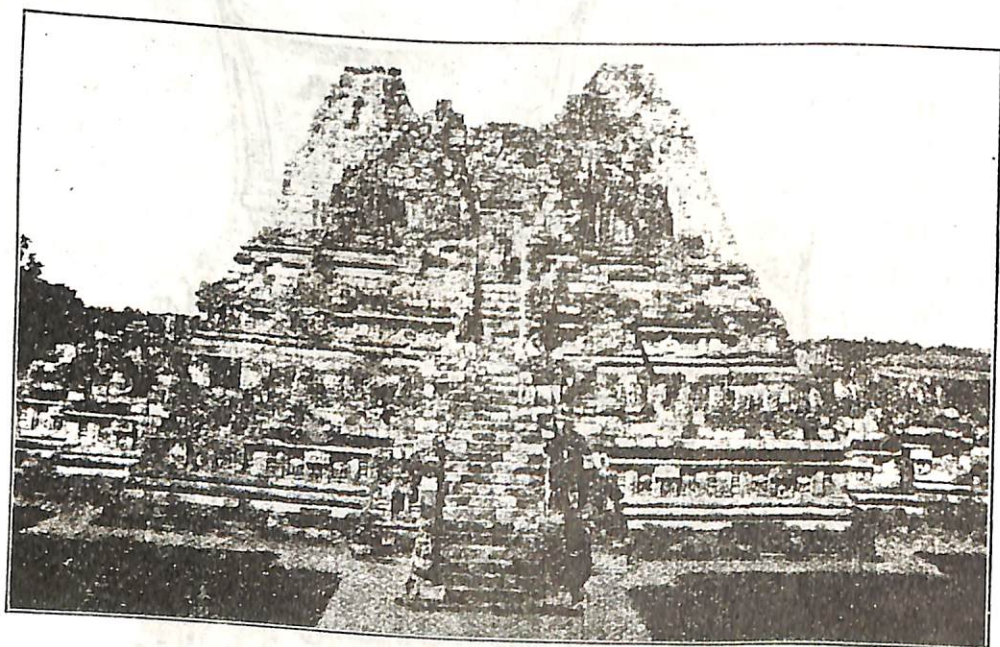
जावाका लाराजोंग्रांग शिवालय

विदेशोंमें शिवलिङ्ग-पूजा

(लेखक—पण्डितवर्य श्रीकाशीनाथजी शास्त्री, अध्यक्ष 'पञ्चाचार्य-प्रभा' मैसूर)

भारतीयोंमें अनादिकालसे अबतक शिवलिङ्ग-पूजा चली आती है—यह तो प्रत्यक्ष ही है; विदेशोंकी लिङ्ग-पूजाके सम्बन्धमें कुछ विवाद दीख पड़ता है, इसकारण उसीके विषयमें कुछ विचार करना इस लेखका उद्देश्य है। हाँ, तद्विषयक चर्चाके पूर्व पूर्व-पीठिकाके रूपमें अपने देशकी लिङ्ग-पूजाके सम्बन्धमें भी दो-चार शब्द लिख देना आवश्यक है। ऐसा जान पड़ता है कि भगवान् शिवकी पूजा और भक्ति अखिल जगत्में व्यापक रही है। इस अत्युज्ज्वल शिव-भक्तिका भूमण्डलमें सर्वप्रथम प्रचार करनेवाले श्रीजगद्‌गुरु पञ्चाचार्य ही हैं। ये महानुभाव पूज्यचरण श्रीशिवजीकी आज्ञासे ही दिव्य देह धारणकर शिवभक्तिस्थापनके लिये इस भूतलपर अवतरित हुए और समस्त दिशाओंमें विचरण करते हुए नास्तिक मतोंका खण्डन कर 'शिव ही सर्वोत्तम हैं, शिवसे बढ़कर कोई नहीं है, यह अपार संसार शिवजीसे ही उत्पन्न हुआ है, अतः प्रत्येक व्यक्तिको उस परमशिवकी ध्यान-धारणामें आसक्त होकर कैवल्यसुखका अनुभव करना चाहिये'—इस उपदेशके द्वारा लोगोंके हृदयक्षेत्रमें शिव-भक्तिका बीज बो गये। इन्हीं महान् पुरुषोंकी कृपासे अबतक शिव-भक्ति चली आयी है। शिव-भक्तिके प्रचारक आचार्योंमें प्रमुख ये ही आचार्य हुए हैं। इनके समयमें जहाँ देखो वहीं शिवलिङ्गोंका स्थापन, शिव-पूजाका वैभव, शिव-मन्त्रका प्रभाव और शिव-भक्तिका जय-जयकार होता नज़र आता था। भारतके किसी भी गाँव और खेड़ेमें जितनी संख्या शिवालयोंकी मिलेगी उतनी और किसी देवालयकी नहीं। गिरि-शिखरों, कन्दराओं, नदियों तथा वन्य प्रदेशोंमें जहाँ देखो वहाँ शिव-स्थान भरे पड़े हैं। काशी, रामेश्वर, श्रीशैल, केदार आदि महाक्षेत्रोंमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका वैभव अबतक बहुत कुछ देखनेमें आता है। क्यों न हो, जब कि हमारे ये आचार्यचरण प्राणिमात्रके हृदयमें—

धिग्भस्मरहितं फालं धिग्ग्राममशिवालयम्।

—इस दिव्यवाणीको अमर बना गये हैं। पाश्चात्य देशोंमें कई प्राचीन शिवालयोंके होनेका पता लगा है, जिससे अनुमान होता है कि ईसाई-मतके प्रचारके पूर्व उन देशोंमें भी शिव-स्थान निर्माण किये जाते रहे होंगे। किसी-किसीको इस बातसे आश्चर्य हो सकता है; परन्तु आश्चर्यका कारण नहीं है। कारण, जिन शिवने नव खण्डोंको जन्म दिया है उनका सम्बन्ध उन समस्त खण्डोंके साथ होना बिल्कुल स्वाभाविक है।

काशीके परम शिव-भक्त कैलासवासी बाबू श्रीबेचूसिंहजी शाम्भवने अपने 'शिवनिर्माल्यरत्नाकर' नामक ग्रन्थकी प्रस्तावनामें फ्रेञ्चदेशीय लुइस् साहबके ग्रन्थके आधारपर विदेशोंमें शिवलिङ्गोंके होनेका उल्लेख किया है। वह लिखते हैं कि उत्तर-अफ्रिका खण्डके 'इजिप्ट' प्रान्तमें, 'मेफिस' नामक और 'अशीरिस' नामक क्षेत्रोंमें नन्दीपर विराजमान, त्रिशूलहस्त एवं व्याघ्रचर्माम्बरधारी शिवकी अनेक मूर्तियाँ हैं, जिनका वहाँके लोग बेलपत्रसे पूजन और दूधसे अभिषेक करते हैं। तुर्किस्तानके 'बाबीलन' नगरमें एक हजार दो सौ फुटका एक महालिङ्ग है। पृथिवीभरमें इतना बड़ा शिवलिङ्ग और कहीं नहीं देखनेमें आया। इसी प्रकार 'हेड्रॉपोलिस' नगरमें एक विशाल शिवालय है, जिसमें तीन सौ फुटका शिवलिङ्ग है। मुसल्मानोंके तीर्थ मक्का-शरीफ़में भी 'मक्केश्वर' नामक शिवलिङ्गका होना शिवलीला ही कहनी पड़ेगी। वहाँके 'जमजम्' नामक कूएँमें भी एक शिवलिङ्ग है जिसकी पूजा खजूरकी पत्तियोंसे होती है। अमेरिकाखण्डके ब्रेजिल-देशमें बहुत-से शिवलिङ्ग मिलेंगे जो अत्यन्त प्राचीन हैं। यूरोपके 'कॉरिन्थ' नगरमें तो पार्वती-मन्दिर भी पाया जाता है। इटलीके कितने ही ईसाईलोग अबतक शिवलिङ्गोंकी पूजा करते आये हैं। स्कॉटलैण्ड (ग्लासगो) में एक सुवर्णाच्छादित शिवलिङ्ग है जिसकी पूजा वहाँके लोग बड़ी भक्तिसे करते हैं। 'फीजियन्' के 'एटिस' या 'निनिवा' नगरमें 'एषीर' नामक शिवलिङ्ग है। यहूदियोंके देशमें भी शिवलिङ्ग बहुत हैं, इसी प्रकार अफरीदिस्तान, चित्राल, काबुल, बलख-बुखारा आदि स्थलोंमें बहुत-से शिवलिङ्ग हैं, जिन्हें वहाँके लोग 'पञ्चशेर' और 'पञ्चवीर' नामोंसे पुकारते हैं। अस्तु।

अब हम 'अनाम' देशके शिवालयोंके विषयमें कुछ विस्तृत विवेचन करेंगे। फ्रेंच-राज्याधीन अनाम-देशमें अनेक शिव-मन्दिर मिलते हैं। यह अनाम (Annam) इण्डोचाइना (Indo-China) में है। इसे प्राचीनकालमें 'चम्पा' कहते थे। सुप्रसिद्ध फ्रेंच शोधकर्ता मि० ए० बर्गेन (A. Bergaingne) द्वारा शिवालयोंके शिलालेखके सम्बन्धमें लिखित एक बृहदाकार पुस्तक तथा श्री आर० सी० मजूमदारके 'Ancient Indian Colonies in the Far East' (सुदूर पूर्वके प्राचीन भारतीय उपनिवेश) आदि ग्रन्थोंसे यह पता चलता है कि यहाँके संस्कृत-शिलालेखोंमेंसे बानबे लेख शिव-विषयक, तीन विष्णुविषयक, पाँच ब्रह्माविषयक, दो शिव और विष्णुविषयक और सात लेख बुद्धविषयक हैं। इन सब लेखोंके चित्र उक्त ग्रन्थकर्ताओंकी बदौलत हमारी दृष्टिके सामने आये हैं। इनकी संस्कृतशैली बड़ी सुन्दर है। शिवविषयक अनेक लेखोंके आरम्भमें 'ॐ नमः शिवाय' महामन्त्र खुदा हुआ है और तत्पश्चात् वहाँके राजा और शिव-लिङ्गोंको गद्य-पद्योंमें प्रशंसा है। उस देशके सभी प्राचीन राजा शिवभक्त ही थे और यह कहनेमें अत्युक्ति न होगी कि भारत-के वीरशैवोंमें भी वैसे 'शिवभक्तशिखामणि' आजकल देखनेमें नहीं आते। किसी कालमें उस देशका 'मीसोन खेड़ा' इस सम्बन्धमें काशीकी समानता कर सकता था। वहाँके सुन्दर शिव-मन्दिर तथा उनके विशाल शिलालेख इस बातकी साक्षी देते हैं कि शिवभक्तिकी इतनी उन्नति भारतवर्षमें शायद ही कभी हुई हो।*

'मीसोन ग्रामके चौथे शिलालेखमें लिखा है कि भद्रवर्मा नामक महाराजाने 'भद्रेश्वर' शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसके भोग-रागके लिये महापर्वत और महानदियोंके बीचके 'सुलह' और 'कुचक' नामक स्थल भेंटमें चढ़ाये। यह लेख ई० स०की पाँचवीं शताब्दीका है! सातवें शिला-लेखसे पता चलता है कि कालान्तरमें 'भद्रेश्वर' का मन्दिर नष्ट हो जानेपर किसी रुद्रवर्माके पुत्र शम्भुभद्रवर्मा नामक राजाने 'शम्भुभद्रेश्वर' महादेवकी स्थापना की। उक्त शिव-लिङ्गका कुछ वर्णन नीचे दिया जाता है—

सृष्टं येन त्रितयमखिलं भूर्भुवः स्वः स्वशक्त्या
येनोत्खातं भुवनदुरितं वह्निनेवान्धकारम्।
यस्याचिन्त्यो जगति महिमा यस्य नादिर्न चान्त-
श्चम्पादेशे जनयतु सुखं शम्भुभद्रेश्वरोऽयम्॥

कितना भक्तिभावपूर्ण श्लोक है! इसीसे यह भी ज्ञात होता है कि उक्त 'मीसोन' ग्रामके प्रदेशका प्राचीन नाम 'चम्पा' है। इस राजाके बाद पट्टाभिषिक्त क्रमशः महाराजा प्रकाशधर्म और इन्द्रवर्मा तथा कुछ अन्य राजाओंने इस 'शम्भुभद्रेश्वर' महादेवके प्रति असाधारण भक्तिके प्रमाण-स्वरूप उनपर केवल अनेक बहुमूल्य रत्न ही नहीं चढ़ाये, बल्कि अपना 'भक्त' नाम अमर रखनेके लिये अनेक शिलालेख भी खुदवाये। उन शिलालेखोंमें अङ्कित शिवस्तुतियोंका कुछ अंश नमूनेके तौरपर नीचे दिया जाता है—

१६ वें लेखमें—

यं सर्वदेवाः ससुरेशमुख्या
ध्यायन्ति तत्त्वविदश्च सन्तः।
स्वस्थः सुशुद्धः परमो वरेण्यो
ईशाननाथः स जयत्यजस्रम्॥

स्मृतिरपि यस्य सकृदपि प्रणिपतितान् तारदत्यपायेभ्यः।
स श्रीभद्रेश्वरोऽस्तु प्रजाहितार्थं तथा प्रभासेशः॥

१७ वें लेखमें—

ऐश्वर्यातिशयप्रदो मखभुजां यस्तप्यमानस्तपः
कन्दर्पोत्तमविग्रहप्रदहनो हैमाद्रिजायाः पतिः।
लोकानां परमेश्वरस्त्वमसमं यातोऽनद्धद्वाहनो
याथातथ्यविशारदास्तु जगतामीशस्य नो सन्ति हि॥
इच्छातीतवरप्रदानवशिनं भक्त्या समाराध्य यं
त्रैलोक्यप्रभवप्रभावमहता वृत्रस्य हन्त्रा विना।
भुङ्क्तेऽद्याप्युपमन्युरिन्दुधवलं क्षीरार्णवं बान्धवैः
श्रीशानेश्वरनाथ एष भगवान् पायादपायास्स वः॥

इसी प्रकार वहाँके महाराजाओंने 'श्रीशानभद्रेश्वर' का अनेक लेखोंमें बखान कर अपनी परमशिवभक्तिका परिचय दिया है। उस शिवलिङ्ग-मूर्तिकी सेवाका खर्च चलानेके लिये एक कोशकी स्थापना की थी, जिसका पता १६ वें लेखसे लगता है—

श्रीशानेश्वरकोशं संस्थाप्य यथाविधि स्वभक्तिवशात्।
श्रीमान् प्रकाशधर्मा मुकुटं भद्रेश्वरायादात्॥

* काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाके वार्षिक अधिवेशन (१-५-३३) में डा० श्रीप्राणनाथ विद्यालङ्कारने अपने सिन्धुके सुप्रसिद्ध 'मोहन-जो-दड़ो' की ऐतिहासिक लिपिविषयक एक व्याख्यानमें यह सप्रमाण सिद्ध किया था कि 'पन्द्रह हजार वर्ष पूर्व भारतमें शिव-लिङ्ग-पूजा और शिव-भक्तिका खूब प्रचार था।'—अनुवादक

यह लेख ई० स० ६८७ का है। इतने प्राचीन कालमें भी 'बैंक' (कोश) की स्थापना करके महादेवके भोग-रागका प्रबन्ध राजाने किया, नहीं तो महादेवके 'मुकुट' आदि आभरण नित्य-नये कैसे बनते? यहाँ 'कोश' शब्दका अर्थ कुछ लोगोंने 'कवच' किया है। एक और परमभक्त नरवाहनवर्माने शिवलिङ्गकी वेदीको सोनेसे बनवाया था। यह बात २१ वें लेखसे जो ई० स० ७३० का है, प्रकट होती है—

नरवाहनवर्मश्रीरकरोत्तां शिलामयीम्।
रुक्मरौप्यबहिर्बद्धां मह्ना मेरुशिखामिव॥
स्वर्णरौप्यमयी लक्ष्मीं बिभ्रती वेदिका पुनः।
विद्युत××××भाति शिखा हिमगिरेरिव॥

ई० स० ८३५ के ३१ वें लेखमें शम्भुभद्रेश्वर-लिङ्गके विषयमें यह इतिहास भी लिखा है कि इस लिङ्गमूर्तिको शिवजीने आदिकालमें भृगुको दिया था, जिसे आगे चलकर भृगुने 'उरोज' नामक महाराजाको दिया। इस राजाने इस लिङ्गकी चम्पा-नगरीमें स्थापना की। इन महादेवका नाम उरोज महाराजने 'श्रीशानभद्रेश्वर' रक्खा था। आजकल यह लिङ्ग 'बुवन्' नामक पर्वतपर स्थापित है। तत्सम्बन्धी लेखके कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

श्रीशानभद्रेश्वरमन्दिरार्कं
परैः पुरोरोजकृतं विशीर्णम्।
पुनर्भवोऽहं सविनाशकांस्तान्
हत्वा रणे तस्य पुनः प्रचक्रे॥

श्रीमाञ्छ्रीशानभद्रेश्वरममितमुदं स्थापयित्वा ह्युरोजो नाकौकःस्थापनस्याक्षयमुत स बुवन्भूधरस्याङ्कमूर्धम्। कृत्वा चास्तं गतोऽभूत्पुनरहमपरो भावयित्वा विनष्टं स्थानं देवस्य तस्याभिमतरुचि बुवन्स्थापितेशः पुरेष्ट्या॥

'उरोज' महाराजके बाद उनके वंशधरोंने भी इन महादेवके वैभवको अक्षुण्ण रक्खा। इस मन्दिरकी अतुल सम्पत्तिको कम्बोडिया देशके लोगोंने अपहरण कर लेनेका बारम्बार प्रयत्न किया; परन्तु सफल नहीं हुए। प्रत्युत चम्पाधिपति उन्हें हराकर कम्बोडियासे बहुत-सा धन भी लूट लाये और उससे उन्होंने अपने इस प्रसिद्ध मन्दिरका जीर्णोद्धार किया। जयेन्द्रवर्मा महाराजने ई० स० १०८८ में इन महादेवके लिये अमूल्य रत्न-जटित एक स्वर्णकवच समर्पित किया था, जिसमें षण्मुखसहित एक सर्पाकृति बनी हुई थी। कुछ प्रामाणिक कागज-पत्रोंसे यह भी पता लगा है कि यह कवच तौलमें १७२० तोले था। अस्सी वर्षके बाद इसी 'जयेन्द्रवर्मा' नामक राजाने अत्यन्त भक्तिके साथ अनेक स्वर्णनिर्मित आभरण और पूजाका सामान पुनः समर्पित किया। इस मन्दिरका शिखर बनवानेमें तीन हजार तोले (७५ पौण्ड) सोना लगा था। इतना ही नहीं, मन्दिरकी सब दीवारें आदि भी चौदह लाख तोले चाँदी (३५०० पौण्ड) से बनवायी थीं। यह सब विवरण 'म्यास्परो' नामक फ्रेंच विद्वान्की पुस्तकसे मालूम हुआ है। इसी प्रकार उस देशके राजाओंने मन्दिर और महादेवके लिये सुवर्ण, रजत, रत्न और गायक, सेवक, नर्तक-नर्तकियोंकी भी बहुत बड़ी संख्याका प्रबन्ध किया था। २३ और २४ वें लेखोंमें लिखा है—

'अथ तस्य तदापि राज्ञेन्द्रवर्मणा पुनः स्थापितमेव सकलकोशकोष्ठागाररजतसुवर्णमुकुटरत्नहारादिपरिभोग-सान्तःपुरविलासिनीदासदासीगोमहिषक्षेत्रादिद्रव्यं तस्मै तेन दत्तं चित्तप्रसादेन'—'तस्मै भगवते सकल-लोकहितकारणाय श्रीन्द्रभद्रेश्वरायेदमिति स भगवान् श्रीमानिन्द्रवर्मा 'जञ्' कोष्ठागारं शिवयज्ञक्षेत्रद्वयं शिखि-शिखागिरिप्रदेशं भक्त्या शुद्धेन मनसैव दत्तवानिति।'

इन्द्रभद्रेश्वरश्चैव सर्वद्रव्यं महीतले।
ये रक्षन्ति रमन्त्येते स्वर्गे सुरगणैः सदा॥
ये हरन्ति पतन्त्येते नरके वा कुलैः सह।
यावत्सूर्योऽस्ति चन्द्रश्च तावन्नरकदुःखिताः॥

लुब्धेन मनसा द्रव्यं यो हरेत्परमेश्वरात्।
नरकाच्च पुनर्गच्छेत् नचिरं तु स जीवति॥

यहाँ 'जञ्' का अर्थ है धान्यगृह। इसमें पापी चोरोंके लिये फटकार तो है ही, साथ ही मुक्तिमार्गके पथिकोंके लिये अमूल्य उपदेश भी है। कैसी उच्च कोटिकी भक्ति है! धन्य हैं वे जो भगवान्को अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं।

चम्पादेश (अनाम) के शिवलिङ्गोंके अन्दर इस 'भद्रेश्वर' का एक मुख्य स्थान होनेपर भी वहाँ इससे भी अधिक प्राचीन शिवलिङ्ग विराजमान हैं। एक 'मुखलिङ्ग' महादेव अति प्राचीन हैं, जिनका विवरण २९ वें शिलालेखमें मिलता है। 'द्वापरयुगके ५९११ वर्ष बीतनेके बाद अर्थात् आजसे आठ लाख तिरसठ हजार एक सौ तेईस वर्ष पूर्व विचित्रसगर नामक महाराजाने इस लिङ्गकी स्थापना की

थी; और इन महादेवकी सेवामें उसने एक तरहसे अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया था । आगे चलकर, समय पाकर अन्य देशके जङ्गली आदमियोंने इस पवित्र मूर्तिको नष्ट-भ्रष्ट करके इसकी सारी सम्पत्तिको अपहरण कर लिया । पीछे उस सुनसान देवालयमें सत्यवर्माने 'सत्यमुखलिङ्ग' की स्थापना की ।' इन सब वार्ताओंसे चम्पादेशकी उज्ज्वल शिवभक्तिका ही नहीं, बल्कि इसका भी पता लगता है कि 'लिङ्गप्रतिष्ठा' की इतनी प्राचीनता भी और किसी देशमें नहीं पायी जायगी । वह लेख इसप्रकार है—

'पञ्चसहस्रनवशतैकादशे विगतकलिकलङ्कद्वापरवर्षे श्रीविचित्रसगरसंस्थापितः श्रीमुखलिङ्गः । तस्य सकलकोष्ठागाररजतरत्नहेमकद्वकलशभृङ्गाररुक्मदण्डसितातपत्रचामरहैमघटादिपरिभोगा वर्धमाना भवन्ति स्म । ततश्चिरकालकलियुगदोषाद्देशान्तरप्लवागतपापनरभुग्गणसंहृतेषु प्रतिमापरिभोगभूषणेषु शून्योऽभवत् । पुनरद्यापि तत्पुण्यकीर्त्यविनाशाय श्रीसत्यवर्मनरपतिर्विचित्रसगरमूर्तिरिव माधवसप्तशुक्लपक्षे यथा पुरा श्रीभगवतीश्वरमुखलिङ्गमतिष्ठिपत् ।'

इसप्रकार अनाम-देशके राजा कट्टर शिव-भक्त थे, ऐसा जान पड़ता है । शिवलिङ्गप्रतिष्ठापन और शिव-सेवाको वे अपना मुख्य कर्तव्य मानते थे । उनकी कीर्ति शिव-मन्दिरोंसे, उनका परमधर्म शिवालयोंकी रक्षासे, उनका अपार धन शिवके अर्पणसे, उनका क्षत्रियधर्म शिव-द्वेषियोंके साथ युद्धसे, जिह्वा शिवनामोच्चारणसे, हाथ पूजासे, नेत्र दर्शनसे, पैर तीर्थ-यात्रासे, देह प्रसाद-सेवनसे और आत्मा शिव-ध्यानसे पवित्र और सफल हो गये थे ।

चम्पा-देशके राजाओंमें शिव-भक्तिके साथ-साथ अपने नामको भी बनाये रखनेकी प्रवृत्ति थी । वे प्रायः अपने नामसे ही 'लिङ्ग' की स्थापना करते थे । उदाहरणार्थ—

लिङ्गके नाम	संस्थापक राजाओंके नाम
भद्रेश्वर	भद्रवर्मा महाराज
शम्भुभद्रेश्वर	शम्भुभद्रवर्मा ,,
इन्द्रभद्रेश्वर इन्द्रभोगेश्वर इन्द्रपरमेश्वर	इन्द्रवर्मा ,,
विक्रान्तरुद्र विक्रान्तरुद्रेश्वर विक्रान्तदेवाधिभवेश्वर	विक्रान्तवर्मा ,,
जयगुहेश्वर	जयसिंहवर्मदेव ,,
प्रकाशभद्रेश्वर	भद्रवर्मदेव महाराज
भद्रमलयेश्वर भद्रचम्पेश्वर भद्रमण्डलेश्वर भद्रपुरेश्वर	भद्रवर्मदेव ,,
इन्द्रकान्तेश्वर	इन्द्रवर्मा ,,
हरिवर्मेश्वर	हरिवर्मा ,,
जयहरिलिङ्गेश्वर	जयहरिवर्मा ,,
जयेन्द्रलोकेश्वर जयेन्द्रेश्वर	जयेन्द्रवर्मा ,,
इन्द्रवर्मलिङ्गेश्वर	इन्द्रवर्मा ,,
जयसिंहवर्मलिङ्गेश्वर	जयसिंहवर्मदेव ,,

ये सब बातें २, ७, २३, २४, ३०, ३९, ४४, ७४, ७५, ८१, १०८, ११२, ११६वें लेखोंमें विस्तारसे लिखी गयी हैं । इसके अतिरिक्त ४३, ३२, ३५, ३९, ४९वें लेखोंसे भी देवलिङ्गेश्वर, महालिङ्गेश्वर, शिवलिङ्गेश्वर, महाशिवलिङ्गेश्वर, धर्मलिङ्गेश्वर आदि लिङ्गोंकी स्थापना मालूम हो रही है । जैसे कि भारतवर्षमें भी, अगस्त्येश्वर, गौतमेश्वर, कपिलेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, व्यासेश्वर, कश्यपेश्वर, रामेश्वर, पृथ्वीदेवेश्वर, लोकेश्वर, त्रैलोक्येश्वर इत्यादि नामके जो लिङ्ग प्रसिद्ध हुए हैं वे सब-के-सब उन-उन नामवाले महर्षि-महापुरुषोंके ही स्थापित किये हुए हैं !

चम्पादेशके इतिहासको देखनेसे यह पता चलता है कि यह देश प्राचीनकालमें शिवलिङ्गमय था । वहाँकी कई मूर्तियोंसे ऐसा भी प्रतीत होता है कि वहाँके लोग शिवजीकी पूजा लिङ्गाकार और मनुष्याकारमें भी करते थे । अधिक संख्या लिङ्गाकारोंकी ही है । वहाँके लिङ्गपीठ चौकोर और गोल हैं । बाण (लिङ्ग) भी बहुत सुन्दर हैं । कुछ देवालयोंमें सात-सात लिङ्गतक स्थापित किये गये हैं । कुछ राजालोग अपने चेहरेकी आकृतिके भी लिङ्गोंके मुख बनवाकर 'मुखलिङ्ग'* नामसे स्थापित करते थे, यह बात भी शिलालेखोंसे मालूम होती है । 'ट्राक्य' ग्राममें शिवजीकी एक मनुष्याकार मूर्ति मिली है । यह सर्पावेष्टित और जटाजूटधारी खड़े हुए शिवकी है । इसके हाथ-पैरोंमें कहीं-कहीं चोट लगी है । 'मीसोन' ग्राममें भी इस तरहकी एक मूर्तिके हाथोंमें रुद्राक्षमाला एवं अमृतपात्र हैं । सिरपर सुन्दर जटा और ललाटमें अग्नि-नेत्र दीख

* भारतवर्षके कलिङ्ग-देशमें भी बहुत-से मुखलिङ्ग पाये जाते हैं ।

रहा है। 'यानमुम' ग्राममें एक मूर्ति त्रिनेत्र और त्रिशूलपाणि बैठे हुए शिवकी है। 'ड्रानलाय' ग्राममें नन्दीवाहनमूर्ति विराजती है। कुछ जगहोंमें ताण्डवेश्वर-मूर्तियाँ भी देखी गयी हैं। कुछ मूर्तियोंके २, ४, ६, १०, २४, २८ तक हाथ दिखायी पड़ते हैं। अपने देशकी भाँति वहाँ भी प्रत्येक शिवमन्दिरके सामने नन्दी स्थापित है। नन्दीकी पीठ बहुत सुन्दर बनी है, गलेमें आभरण-स्वरूप छोटी-छोटी घण्टियाँ भी हैं। वहाँ भी देवीकी मूर्तियाँ, अर्धाङ्गिनीके तौरपर, साथ ही स्थापित हैं। 'पोनगर' में कौठारेश्वरी स्थापित हैं, जो वहाँ बहुत समयसे पूजा-अर्चाके बाद जङ्गली लोगोंकी कृपासे गायब हो गयी थीं और बहुत दिनतक गायब ही रहीं। २६ वें लेखसे ज्ञात होता है कि हरिवर्मा महाराजने ई० स० ८१७ में इन देवीकी पुनः स्थापना करायी। पीछे ई० स० ९१८ में इन्द्रवर्माने भी इनकी स्वर्णमूर्ति बनवायी थी, जिसका ४५ वें लेखसे पता चलता है। शिलालेखका उक्त श्लोक इसप्रकार है—

व्योमाम्बुराशिरा(?)गेशकराजकाले
देवीमिमां भगवतीं कलधौतदेहाम्।
एकादशेऽहनि शुचेरसितेऽर्कवारे
सोऽतिष्ठिपद्भुवनमण्डलकीर्तिकाङ्क्षी॥

कुछ दिनों बाद इस देवीकी मूर्तिको कम्बोडियाके लोग चुरा ले गये। इसपर जयेन्द्रवर्मा महाराजने उसकी जगह शिलामूर्तिको स्थापित किया था, जिसका पता ४७ वें लेखसे चलता है। ई० स० १०५० में परमेश्वरवर्माने इस देवीको रत्नजटित किरीट, चाँदीकी प्रभावली और मोर-पंखेकी तरह छत्री आदि सुवर्णाभरण समर्पित किये, जिनका विवरण ५५ वें लेखमें है। इस लेखके पहले श्लोकमें देवीका और दूसरेमें महाराजका वर्णन बहुत सुन्दर, परन्तु कूट भाषा और भावोंके द्वारा व्यक्त किया गया है। वह इसप्रकार है—

भूता भूतेशभूता भुवि भवविभवोद्भावभावात्मभावा
भावाभावस्वभावा भवभवकभवा भावभावैकभावा।
भावाभावाग्रशक्तिः शशिमुकुटतनोरर्धकाया सुकाया
काये कायेशकाया भगवति नमतो नो जयेव स्वसिद्ध्या॥
सारासारविवेचनस्फुटमना मान्यो मनोनन्दनः
पापापापभयप्रियाप्रियकरः कीर्त्यर्जनैकोद्यमः
लोकालोकिकलौ कलौ सति सतस्त्रातुं भवद्भाविनो
भावोद्भावसुभावसद्गुणगणैर्धर्मं तनोत्येव यः॥

इन श्लोकोंको पढ़कर यह कहना पड़ता है कि चम्पा-देशमें संस्कृतके विद्वानोंकी कमी न थी और राजाओंके दरबार भी उनके सम्मानके लिये तैयार थे, नहीं तो संस्कृत-लेखोंकी इतनी भरमार कैसे होती? और भी कितने ही राजाओंके इस देवीके भक्त होनेकी बात ९७, ९८, ९९, १०५–१०९ वें लेखोंसे प्रकट होती है।

'डांगफुक' में एक अर्धनारीश्वर-मूर्ति है और कुछ प्रदेशोंमें विघ्नेश्वर और षण्मुख स्वामीके विग्रह भी पाये गये हैं। इसके अतिरिक्त गणपति-मूर्तियाँ भी बहुत हैं, जिनमेंसे अधिकांश शिवमन्दिरोंमें ही स्थापित हैं। २६ वें लेखसे 'पोनगर' में गणपतिके प्रत्येक मन्दिरके ई० स० ८१७ में बनाये जानेकी बात मालूम होती है और वहाँकी कुछ गणपति-मूर्तियोंपर शिवलिङ्ग धारण किया हुआ पाया जाता है, जैसे अपने देशमें व्यासकाशीके व्यासगुरु घण्टाकर्ण शिवाचार्यके हाथमें, काशीकी 'विशालाक्षी' देवी तथा पण्ढरपुरके 'विठोबा' के मस्तकमें, बार्शीके 'भगवन्त' के ललाटभागमें एवं अनन्त-शयनके 'अनन्तपद्मनाभ' मूर्तिके हाथमें देखा जाता है।

अब वहाँकी शिवभक्तिका नमूना परखनेके लिये कुछ उद्धरण देते हैं। २१ वें लेखमें—

जयति जितमनोजो ब्रह्मविष्णवादिदेव-
प्रणतपदयुगाब्जो निष्कलोऽप्यष्टमूर्तिः।
त्रिभुवनहितहेतुः सर्वसङ्कल्पकारी
परपुरुष इह श्रीशानदेवोऽयमाद्यः॥

४२ वें लेखमें—

यो भस्मराश्यां बहुसञ्चयायां
दिव्यः सुखासीन उरुप्रभावः।
देदीप्यते सूर्य इवांशुमाला-
प्रद्योतितः खे विगताम्बुदेये॥

उन्तालीसवें लेखमें तो ब्रह्मा, विष्णुके महालिङ्गस्वरूपी शिवजीके आद्यन्तको न देख सकनेपर उनका गर्व भङ्ग होनेकी बात विस्तारसे प्रतिपादित है, जो महिम्नःस्तोत्रके 'तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि' वाले श्लोकमें है।

पैंतीसवें लेखमें शा० सं० ८२० की ज्येष्ठ कृष्ण पञ्चमीमें स्थापित की गयी 'शिवलिङ्गेश्वर' मूर्तिके विषयमें विवरण करते हुए लिंगके संस्थापकके लिये 'शिवाचार्य' पदका प्रयोग किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है

कि उस समय वीरशैवोंके गुरु 'शिवाचार्य' लोग सभी देशोंमें भ्रमण करते हुए शिवभक्तिका डङ्का बजवाते थे। वह श्लोक इसप्रकार है—

शैवक्रियाविस्मुकृतप्रसक्तो
देवार्चनाज्ञानसमर्थबुद्धिः ।
पित्रोर्गुणान् भारतरान् स चित्ते
सञ्चिन्त्य पुण्यं स करोतु कोस्यैं ॥
शाके खद्वयष्टभिर्युक्ते पञ्चाहे शुक्लपाण्डरे ।
स्थापितः शिवलिङ्गेशः शिवाचार्येण धीमता ॥

पैंतालीसवें लेखके—

मीमांसषट्तर्कजिनेन्द्रसूर्मिः
सकाशिकाव्याकरणोदकौघः ।
आख्यानशैवोत्तरकल्पसीनः
पटिष्ठ एतेष्विति सत्कवीनाम् ॥

—इस श्लोकसे इन्द्रवर्माकी अद्भुत विद्वत्ताकी बात जानकर यह आश्चर्य होता है कि भारतसे इतनी दूर ये संस्कृतके महापण्डित कैसे होते थे। कुछ भी हो, अनाम-देशकी अच्छी तरह समालोचना करनेवाले इस लिङ्ग-पूजाकी व्यापकताको जानकर गर्व या आनन्दसे अवश्य मस्तक ऊँचा करेंगे।

फ्रेंचोंके अधीनस्थ 'कम्बोडिया' में भी शिवलिङ्ग विराजमान है। इस देशका प्राचीन नाम 'कम्बोज' मालूम पड़ता है। पहले इस देशके राजा राजेन्द्रवर्माने शा० सं० ८६६ में 'अंकोरतोम' नामक यशोधरपुरीके तालाबके बीच शिवलिङ्गको स्थापित किया था, जो वहींके 'सियाराप' जिलेके 'बातचोम' स्थानके खम्भोंके ऊपर खुदे हुए लेखसे मालूम होता है।

इतिहासप्रसिद्ध 'जावा' और 'सुमात्रा' द्वीपोंमें, जिनका प्राचीन नाम क्रमशः 'यव' और 'सुवर्णद्वीप' था, अनेक शिवलिङ्ग हैं। हॉलैण्डके लैडन् युनिवर्सिटीके प्रोफेसर डा० एन० जे० क्रोम् नामक महोदयने डच भाषाकी एक सचित्र पुस्तक प्रकाशित की है, जिसका नाम है 'यवद्वीपकी प्राचीन शिल्पकला'. (Het oude Javaen sijn kunst)। इस पुस्तकके शिव-मन्दिरके चित्रोंको देखकर हृदय आनन्दसे खिल उठता है। इस विषयके कितने ही विशेषज्ञोंका कहना है कि सुप्रसिद्ध अगस्त्य महर्षिके द्वारा ही इन द्वीपोंमें शिवभक्तिका खूब प्रचार हुआ; क्योंकि इन्होंने श्रीजगद्गुरु रेणुकाचार्यसे शिवदीक्षा ली थी। वहाँ अगस्त्यकी कई मूर्तियाँ मिली हैं, जो रुद्राक्ष आदि शिवचिह्नोंसे विभूषित हैं। अगस्त्यकी मूर्तिको वहाँके लोग 'शिवगुरु' के नामसे पुकारते हैं। वहाँ मुसलमानोंके आक्रमण होनेपर भी शिवभक्तिकी कमी नहीं हुई है। सभी लोग असाधारण भक्तिसे लिङ्गपूजा करते हैं। जावाद्वीपके बीच 'प्रांबानान' नगरके समीप 'लाराजोंग्रांग' नामक शिवमन्दिर है। वहाँ इसकी बड़ी प्रसिद्धि है। इस मन्दिरमें मनुष्याकार महादेवजी खड़े हैं। इनकी लम्बाई दस फुट है। मूर्तिके सामने नन्दी, दाहिनी ओर ब्रह्मा और बायीं ओर विष्णुकी मूर्ति स्थापित है। शिवमूर्ति छिन्न-भिन्न कर दी गयी थी, परन्तु अब डच सरकारने उसके अवयवोंको ठीक-ठीक मिलाकर रक्खा है। इसी मन्दिरमें 'शिवगुरु' 'गणपति' 'दुर्गा' आदिकी मूर्तियाँ भी हैं। यह मन्दिर दुमंजिला है। ऊपरके भागमें ही मूर्तियाँ स्थापित हैं। इतिहासज्ञोंका मत है कि यह मन्दिर ई० स० ९०५ से पूर्वका नहीं है। 'पनतरन्' नामक ग्राममें भी एक भारी शिवालय है। इसी प्रकार उस देशके अनेक भागोंमें बहुत-से शिवालय हैं, जो आजकल जीर्णावस्थामें पड़े हैं। भूमण्डलके सभी प्रान्तोंमें शिवालयोंको देखकर यह कहनेमें किसीको सङ्कोच न होगा कि शिवलिङ्ग-पूजा महाव्यापक और अत्यन्त प्राचीन है। कालचक्रकी महिमा विलक्षण है। जो हो, 'शिवाङ्क' की आयोजनासे, शिव-महिमाका स्रोत फिरसे एक बार इस विश्ववाटिकामें बह जाय, यही अभिलाषा है।

ॐ पीठं स्याद्धरित्री जलधरकलशं लिङ्गमाकाशमूर्तिः
नक्षत्रं पुष्पमाल्यं ग्रहगणकुसुमं नेत्रचन्द्रार्कवह्निम् ।
कुक्षिः सप्तसमुद्रं भुजगिरिशिखरं सप्तपातालपादं
वक्त्रं वेदं षडङ्गं दशदिशवसनं दिव्यलिङ्गं नमामि ॥
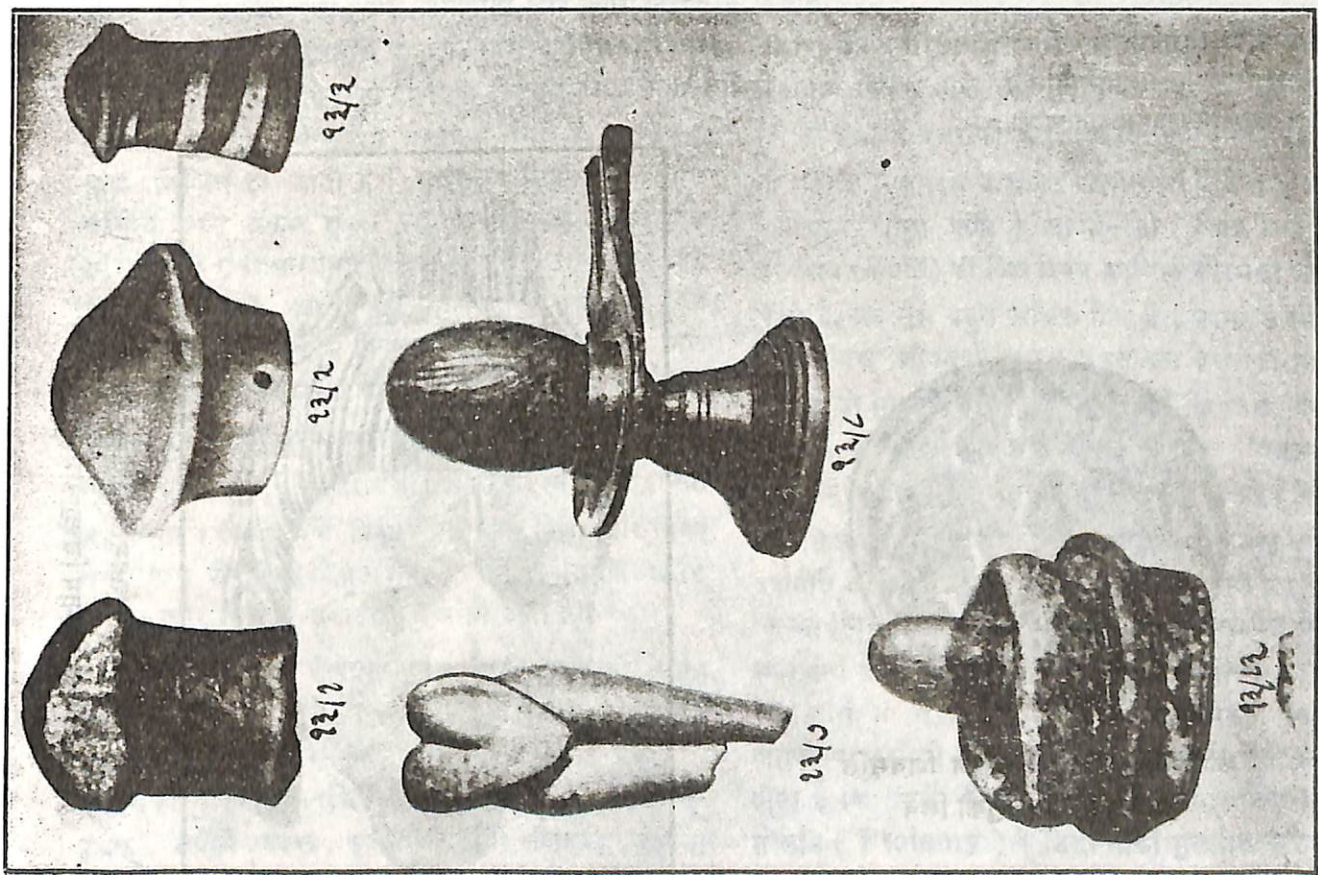
मोहन-जो-दड़ोमें प्राप्त शिवलिंग
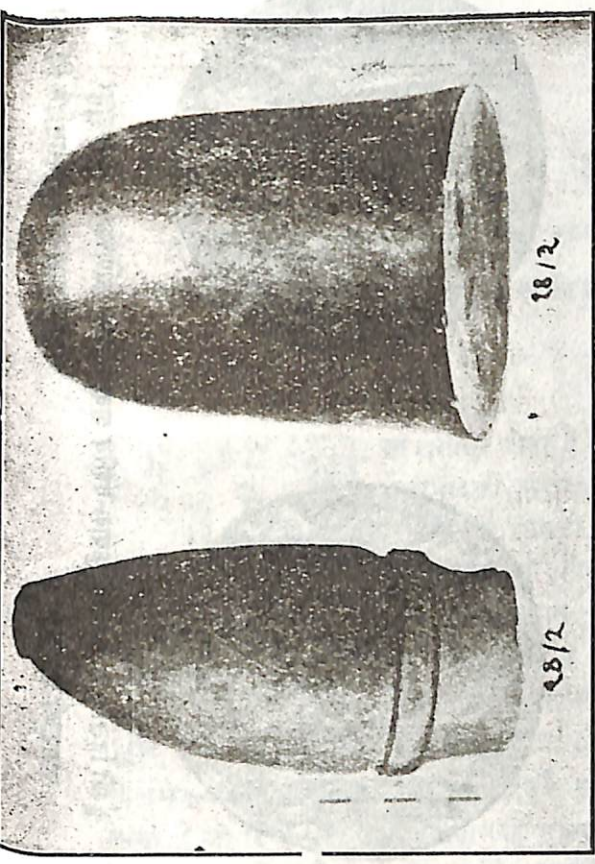
मोहन-जो-दड़ोमें प्राप्त विशाल शिवलिंग

मोहन-जो-दड़ोमें प्राप्त शिवलिंग

दक्षिण-भारत गुडिमल्लम्-मन्दिरकी शिवमूर्ति
(लिङ्गमय पशुपति-मूर्ति)
ईसाके पूर्व प्रथम शताब्दीकी

मथुराकी लिङ्गमय शिवमूर्ति
ईस्वी द्वितीय शताब्दीकी

ईस्वी द्वितीय शताब्दीके कुषाण-वंशीय शक-सम्राट् कणिष्ककी स्वर्ण-मुद्रा
सम्राट्की प्रतिकृति   पाश-त्रिशूल-धारी वृषभसहित शिवकी मूर्ति

कणिष्ककी मुद्रामें चतुर्भुज शिवमूर्ति
कूदते हुए मृगशिशुको लिये
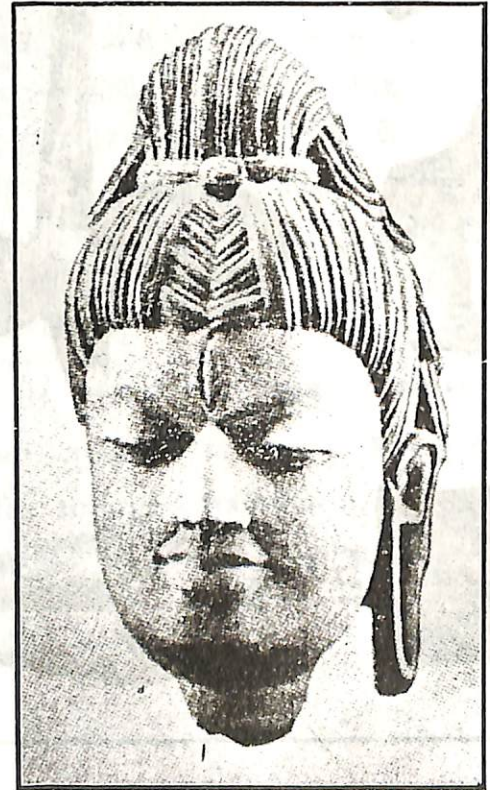
गुप्त-कालकी शिवमूर्ति लोकेश्वर (शिव)
काशी सारनाथ चित्रशालामें सुरक्षित

बृहत्तर भारतमें शिव

(लेखक—डा० श्रीसुनीतिकुमार चटर्जी, एम० ए०, डी० लिट् (लन्दन), प्रोफेसर, कलकत्ता-विश्वविद्यालय)

मूर्त्तिशून्यमपि सर्वमूर्त्तिकं मृत्युहीनमपि शाश्वतं शवम्। श्रौतशान्तमपि चोग्ररूपिणं नौमि चित्रचरितं महेश्वरम्॥

—महामहोपाध्याय श्रीहरिदाससिद्धान्तवागीशानाम्

[१]
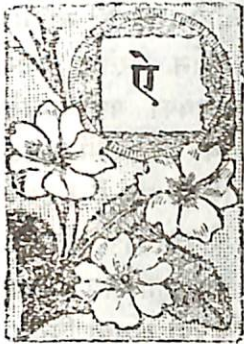
ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणोंके ईश्वरवादकी चरम तथा परिपूर्ण अभिव्यक्ति शिवकी कल्पनामें ही हुई है। शिव और विष्णु—ज्ञानमय ईश्वर और प्रेममय ईश्वर—ये दो कल्पनाएँ ईश्वरीय प्रकाशके दो मुख्य रूपोंको दिखलाती हैं। हिन्दू-जातिके चित्तकमलमें इन विराट् विश्वमय देवताओंके विकासमें एक अपूर्व समन्वय पाया जाता है जो हिन्दू-संस्कृतिके इतिहासकी मुख्य विशेषता है। ऐसा मालूम होता है कि भारतवर्षमें आर्योंके आगमनके बहुत पूर्व यहाँके अनार्यलोग जगत्पिता और जगन्माताको पूजते थे, और योगमार्गसे ईश्वरको प्राप्त करनेकी साधना भी करते थे। 'मोहेन-जो-दड़ो' के खँड़हरोंमें आर्ययुगके पूर्वकी भारतीय संस्कृतिके जो चिह्न मिले हैं, उनसे यह बात निश्चित हो जाती है। परमात्मा शिवरूपसे अनार्य-लोगोंमें प्रथम प्रकट हुए। भारतकी द्रविड़-जातिने इस सौभाग्यको सर्वप्रथम प्राप्त किया। और उसके बाद जब आर्यलोग यहाँ आये तब उनमें रुद्रदेवताका जो प्रकाश था वह द्रविड़ोंमें विद्यमान शिवके रूपके साथ मिल गया और इसप्रकार ब्राह्मण और ऋषियोंके दार्शनिक चिन्तन तथा आध्यात्मिक अनुभूति, विचार एवं अन्तर्दृष्टिकी ज्योतिने आर्यानार्य रुद्र-शिवकी मिश्रित कल्पनाको उद्भासित कर दिया। हिन्दूधर्मके विकासमें—शिव, देवी और विष्णु तथा अन्य पौराणिक देवताओंके रूपोंमें समन्वयके अनेक महान् और विचित्र उदाहरण देखनेमें आते हैं।

हमारे विचारमें ईश्वरकी उपलब्धिके प्रयासमें समग्र जगत्की मानव-जातिने अपनी अन्तर्दृष्टि और अनुभूतिके सहारे जितने देवचरित्रोंका उद्घाटन किया (अथवा यों कह सकते हैं कि मानवचित्तमें ईश्वरका प्रकाश जितने पृथक्-पृथक् रूपोंमें व्यक्त हुआ), उनमें शिवकी कल्पना जितनी उदार और विराट्, व्यापक और गम्भीर, अन्तर्वीक्षण और अनुभूतिके ऊँचे-से-ऊँचे और गहरे-से-गहरे प्रदेशतक पहुँची है, उतनी और कोई नहीं। 'खेलति अण्डे खेलति पिण्डे'—ब्रह्माण्ड एवं पिण्डमें, समष्टि तथा व्यष्टिमें अर्थात् समस्त चराचर जगत्में जो शक्ति लीला कर रही है उसकी उस लीलाको अचञ्चल दृष्टिसे देखने और अपने अन्तस्तलमें उपलब्ध करनेके लिये भारतवर्षमें शिवके प्रतीकसे जो सफलता मिली है वह अखिल विश्वके लिये नितान्त उपयोगी है। इस सम्बन्धमें विश्वविख्यात फ्रांसीसी लेखक श्रीरोमाँ रोलाँ (Romain Rolland) के विचार पढ़ने योग्य हैं। श्रीआनन्द कुमार स्वामीकी महत्त्वपूर्ण पुस्तक The Dance of Siva की भूमिकामें आप लिखते हैं—

"यूरोप तथा एशियाके सारे दार्शनिक सिद्धान्तोंमें भारतीय ब्राह्मणोंके विचार मुझे कहीं अधिक लुभावने प्रतीत होते हैं। तो क्या मैं दूसरोंकी अवज्ञा करता हूँ? नहीं, यह बात भी नहीं है। आदिम बौद्धोंका उल्लासपूर्ण बुद्धिवाद, अथवा [प्राचीन चीना ऋषि] लाओ–त्सी (Lao-Tse) के शून्यवाद (Void) की जिस दिव्य शान्तिके सौरभका अनुभव किया है, वह मुझे बहुत अधिक प्रिय है। परन्तु उनमें मुझे आध्यात्मिक जीवनकी झलक बहुत कम देखनेको मिलती है और जो मिलती है वह इतनी ऊँची कि उसे देखकर मनुष्य चौंधिया जाते हैं। एशियाके इतर सिद्धान्तोंकी अपेक्षा मुझे ब्राह्मणोंके विचारोंसे अधिक प्रेम इसलिये है कि मेरी समझसे उनमें सभी सिद्धान्तोंका समावेश है। वे समस्त यूरोपीय दर्शनोंसे तो उत्तम हैं ही; उनमें एक और विशेषता यह है कि आधुनिक विज्ञानके व्यापक सिद्धान्तोंके साथ भी उनका सामञ्जस्य हो सकता है। हमारे ईसाई सम्प्रदायोंको जब कोई और मार्ग न सूझा तो उन्होंने भी विज्ञानकी प्रगतिका अनुसरण करनेकी व्यर्थ चेष्टा की। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि उन्हें हिप्पार्खोस् (Hipparchos) और तोलेमि (Ptolemy) के सिद्धान्तोंको भुलानेमें कठिनता-

का अनुभव होता है, क्योंकि ये सिद्धान्त प्रारम्भमें ही उनके अन्दर घुस गये थे।

"ब्राह्मणोंके विचारोंमें जो अद्भुत और शक्तिसे भरी हुई छन्दोगति (rhythm) है उसके प्रवाहमें बहकर जीवनकी विषम धारामें डूबता-उतराता मैं वापिस इस नवीन युगमें आया तो क्या देखता हूँ कि आइन्स्टाइन् (Einstein) नामक वैज्ञानिककी प्रतिभाने सृष्टिकी उत्पत्तिका एक नया ही सिद्धान्त ढूँढ़ निकाला है, जिसका इस युगमें बहुत प्रभाव पड़ा है; किन्तु उसकी गवेषणाओंसे पूर्ण लाभ उठाते हुए भी मुझे ऐसा नहीं प्रतीत होता कि मैं किसी अपरिचित स्थानमें आ गया हूँ। क्योंकि जीव जब नक्षत्रमार्गसे होकर ग्रहोंके अन्तरालमें स्थित शून्यकी गहराईमें प्रवेश करता है अथवा ब्रह्माण्डरूपी द्वीपसमूहोंके बीच, असंख्य आकाश-गङ्गाओंमेंसे होकर तथा देश-कालमय प्रवाहमें बहते हुए अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका भेदन करता हुआ उस अनन्त एवं असीम मण्डलमें पहुँचता है, जहाँके सर्वदा गतिशील सूर्योंकी रश्मियाँ अवास्तविक पदार्थोंको भी आलोकित कर सकती हैं,—उस समय भी मैं इन सारे ग्रहोंके समन्वित स्वरकी प्रतिध्वनि सुन सकता हूँ, जो सदा एक दूसरेके पीछे चलते रहते हैं और जो सनातन सृष्टि-संसारके नियमानुसार अपने-अपने जीवों, मनुष्यों तथा देवताओंके साथ एक बार शान्त होकर पुनः प्रदीप्त हो जाते हैं। उस समय मैं जगत्के अन्तस्तलमें—अपने हृदयमन्दिरमें शिवके ताण्डवनृत्यकी ध्वनि सुनता हूँ।

"मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि यूरोपदेशवासी एशियाके किसी धर्मको अङ्गीकार करें। मेरी प्रार्थना तो केवल इतनी है कि वे लोग इस सामञ्जस्यपूर्ण अध्यात्मवाद—इस गम्भीर एवं मन्द चिन्ता-प्रवाहका रस चक्खें। इस अध्यात्मवादसे वे उन गुणोंको सीख सकेंगे जिनकी आज यूरोप (तथा अमेरिका*) की जनताको सबसे अधिक आवश्यकता है। वे गुण हैं—शान्ति, धैर्य, पुरुषोचित आशावाद एवं अविकृत आनन्द, जिन्हें 'निर्वात-प्रदेशमें स्थित अविचल दीप'' की उपमा दी गयी है। †"

शिव अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, अनधिगम्य परब्रह्मके स्वरूप हैं जो केवल ज्ञानगम्य हैं; साथ ही वे हमारे अभीष्टदाता प्रभु हैं, पिता हैं और ऐसे आत्मीयसे भी आत्मीय हैं, जिनके चरणपद्मोंपर हम सिर झुका सकते हैं, जिनके निकट हम आत्मनिवेदन कर सकते हैं और जो हमारे सुख-दुःखमें सदा हमारा साथ देते हैं। पशुपति शिव हमारे-जैसे पशुओंको भवपाशसे मुक्त करते हैं, नटराज शिव अपने नृत्य-विलाससे विश्व-ब्रह्माण्डको स्पन्दित करते हैं, यही नहीं, यह नृत्य तो हमारे श्वास-प्रश्वासमें प्रतिक्षण हो रहा है। योगिजन अपने ज्ञानचक्षुओंसे शिवकी महिमा अर्थात् इनकी ब्रह्मके साथ एकताका दर्शन करते हैं और भक्तजन अपने हृदयावेगसे उमासहित शिवका यथार्थरूपसे प्रत्यक्ष करते हैं। संस्कृत एवं प्रान्तीय भाषाओंमें रचित शिवस्तोत्रोंसे यह ज्ञात होगा कि शिव क्या हैं? इधर दक्षिण-भारतान्तर्गत द्रविड़-देशके शैव-भक्तोंके विनय-सूचक स्तोत्रोंमें, उदाहरणतः तामिल-भक्त माणिक्य-वाचक (माणिक्क वाशगार) तथा तयूमानवारके पदों अथवा विनय-विषयक कविताओंमें भक्तिकी ऐसी पराकाष्ठा मिलेगी जो वैष्णव भक्तिशास्त्रमें भी दुर्लभ है। रवीन्द्रनाथ-जैसे मार्मिक कवि भी ईश्वरके शिवरूपका वर्णन किये बिना नहीं रह सके। वे कहते हैं—

शोन् रे कविर काछे—
गभीरें जाँर अतल शान्ति ताँहार् खेला अधीर नाचे॥
सृजने जाँर असीम वित्त, प्रलये ताँर विलास नित्य,
त्यागे ताँर पूर्ण विकाश अन्तर जाँर पूर्ण आछे॥

अर्थात् "अरे, तू कविसे सुन—जिनकी अगाध शान्ति गम्भीरता है, उनकी लीला चञ्चल नृत्यमें उपलब्ध होती है; सृष्टिमें जिनका असीम ऐश्वर्य भरा हुआ है, उनका नित्य विलास प्रलयमें है; जिनका हृदय परिपूर्ण है उनका पूर्ण विकास त्यागमें होता है"—

देशे काले मुक्त जिनि—
जटाय ताँरि घुर्णी जड़ाय देश-कालेरि मन्दाकिनी॥
बाँधन निये करेन लीला, कखनो आँट कखन ढिला,
ग्रन्थि बेंधे ग्रन्थि खोलेन से रंग ताँर लओ रे चिनि॥

अर्थात् "जो देश और कालसे अतीत हैं, उन्हींकी जटाओंमें देश और कालकी मन्दाकिनी चक्कर काटती है; वे कभी कड़ा और कभी ढीला बन्धन ग्रहण करके लीला करते हैं; वे ग्रन्थि लगाते और फिर उस ग्रन्थिको खोलते हैं; उनका ऐसा रङ्ग है, इसे (तुम) पहचान लो।"

* क्योंकि यूरोपके सम्बन्धमें मैंने जो कुछ लिखा है, वह उन यूरोपीय जातियोंपर भी लागू होता है जो नयी दुनियाँमें जाकर बस गये हैं।

† यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता। [गीता]

शिव और भीता उमा
कैलासगुफा-मन्दिर, इलोरा (ईस्वी अष्टम शताब्दी)

शिव नटराज
द्रविड्देशकी धातुमूर्ति (द्वादश शतक)

योगी महेश्वर

(शिल्पी नन्दलाल बसुका बनाया हुआ चित्र)

मध्य-एशिया (चीना-तुर्किस्तान) के 'दन्दान-यूलिक'के खँडहरमें प्राप्त महेश्वरका चित्र

(त्रिमुख महेश्वर, उमा या शक्ति, शिव, उग्र या भैरव)

(ईस्वी अष्टम शताब्दी)

चम्पाकी शिवमूर्ति

काङ्ग-नामके मन्दिरसे प्राप्त

(सप्तम शताब्दी)

[२]

वेदोंसे लेकर समस्त शास्त्रोंमें शिवरूपके विकासका जो वर्णन है और उस विषयपर जे० म्यूअर (J. Muir) [Original Sanskrit Texts, Vol. IV—Comparison of the Vedic with the later representation of the principal Indian Deities, Second Edition, London, 1873], सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर [Vaisnavism, Saivism and Minor Religious Systems, Buehler's Grundriss, 1913: reprint published from Poona, 1928] और जे० एस्टलिन कार्पेण्टर (J. Estlin Carpenter) [Theism in Mediaeval India, London, 1921] आदि प्रमुख विद्वानोंने जो ऐतिहासिक प्रकाश डाला है, उसकी पुनरावृत्ति करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। अवश्य ही भास्कर्य (तक्षणकला) एवं चित्रकलामें शिवके रूपका जो क्रमिक इतिहास है वह आलोचनीय है।

मालूम होता है, वैदिक आर्यलोग देवताओंकी प्रतिकृतियाँ बहुत कम बनाते थे। ऋग्वेदादि संहिता-ग्रन्थोंमें देवताओंके असाधारण शब्द-चित्र पाये जाते हैं; परन्तु इन शब्द-चित्रोंकी रूपरेखाके, अर्थात् इन्हें स्थूलरूप देनेके, विशेष प्रमाण नहीं मिलते। ऋग्वेदके अन्दर एक स्थलमें रुद्रदेवताकी प्रतिकृति बनानेकी रीतिका उल्लेख है (ऋ० २ । ३३ । ६)।

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो
बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।

"स्थिर अर्थात् दृढ़ अङ्गोंवाले, बहुरूप अर्थात् अनेक आकारोंके, भयङ्कर, बभ्रुवर्ण (भूरे रङ्गके) रुद्रदेवको सुनहरे रङ्गसे रञ्जित किया है।"

आदिम युगके आर्यलोग अग्न्याधान करते और अग्नि-मुखसे ही देवताओंकी पूजा करते थे। इधर अनार्योंमें उपास्य देवताकी मूर्ति तैयार करनेका कार्य विशेषरूपसे प्रचलित था। 'मोहेन-जो-दड़ो' में बहुत-से गौरीपट्ट और लिङ्गमय शिव प्राप्त हुए हैं और कई मुहरोंमें खड़ी तथा बैठी हुई अनेक आकारोंकी तथा अनेक भुजाओंवाली शिवकी मूर्तियाँ देखनेमें आयी हैं। इन मूर्तियोंके चित्र तथा भारतमें आर्ययुगसे पूर्व आदिम शैव धर्मके अस्तित्वके सम्बन्धमें कुछ विचार सर जॉन मार्शल (Sir John Marshall) द्वारा सम्पादित 'मोहेन-जो-दड़ो' के अनुसन्धान-विषयक ग्रन्थमें मिलेंगे। जिस रूपमें आज हम शिवको पूजते हैं क़रीब-क़रीब उसी रूपमें वे अबसे लगभग पाँच हज़ार वर्ष पहलेके चित्रोंमें भी मिलते हैं।

ख़ास हिन्दू-ज़मानेकी जो प्राचीनतम शिवमूर्ति हमें मिली है वह है दक्षिण भारतके गुडिमल्लम्के मन्दिरकी। यह मूर्ति आजसे दो हज़ार वर्ष पूर्वकी अर्थात् ईसासे दो शताब्दी पूर्वकी है। स्वर्गीय टी० गोपीनाथ रावने अपने Elements of Hindu Iconography, Vol. II, Part I. नामक (त्रिवांकुरसे प्रकाशित) ग्रन्थमें इस मूर्तिका अच्छा सचित्र वर्णन किया है। इस मूर्तिका अबतक पूजन होता है। यह एक स्तम्भाकार लिङ्ग-मूर्ति है जो बहुत अंशोंमें वास्तवके अनुरूप ही है। लिङ्गदण्डके एक ओर द्विभुज पशुपति शिवजी खड़े हैं। उनके एक हाथमें मेष पशु है और दूसरेमें परशु। पादपीठमें अपस्मार-पुरुष है।

दक्षिण और उत्तर भारतमें आजसे दो हज़ार वर्ष पूर्वकी कई चतुर्मुख लिङ्ग-मूर्तियाँ भी मिली हैं। इसके सिवा कुषाण-युगके शक-सम्राट् कनिष्कके सिक्कोंपर (जो ईसवी सन्की द्वितीय शताब्दीके हैं) शिवकी मूर्तियाँ पायी जाती हैं। इन स्वर्णमुद्राओंमें नन्दीके सामने खड़े हुए त्रिशूल-धारी द्विभुज शिवके दर्शन होते हैं। नन्दीसे रहित, खड़े हुए शिवकी मूर्तियाँ भी मिलती हैं। ऐसी मुद्राओंके चित्र तो बहुत प्रकाशित हो चुके हैं। कुषाणयुगकी पत्थरकी दो अङ्गुलिमुद्राएँ मिली हैं जो कलकत्तेके अजायबघरमें रक्खी हुई हैं। इनमेंसे एकमें भूमिपर बैठे हुए वृषभकी पीठपर चतुर्भुज, त्रिशूलधर शिव विराजमान हैं—यह मूर्ति बड़ी ही सुन्दर है और इसके पूर्व कभी प्रकाशमें नहीं आयी थी। 'मोहेन-जो-दड़ो' की एक मुहरमें योगासनस्थ और पशुओंसे परिवेष्टित जो पशुपति शिवकी मूर्ति आविष्कृत हुई है वैसी ही मूर्ति कुषाणयुगकी इस मुहरके अन्दर ऊर्ध्वलिङ्गके रूप-में दिखलायी गयी है। कुषाणयुगकी दूसरी मुहरमें खड़े हुए अष्टभुज शिवकी मूर्ति है। इसके अतिरिक्त मथुरामें कुषाणयुगके एक शिवलिङ्गके साथ खड़ी हुई शिवमूर्ति पायी गयी है जो बिल्कुल गुडिमल्लम्की शिवमूर्ति-जैसी है। अन्तर इतना है कि यह चतुर्भुज है। यह मूर्ति भी ईसवी सन्की द्वितीय शताब्दीकी है।

कुषाणयुगके बाद गुप्तयुगका नम्बर आता है। इस युगमें शिवकी प्रतिकृतियोंकी प्रचुरता देखनेमें आती है। गुप्तयुगमें खड़े हुए शिवकी मूर्ति ऊर्ध्वलिङ्गके रूपमें होती

थी। इसप्रकारकी मूर्तिका एक नाम है 'लकुलेश' ('लकुल' अर्थात् 'लगुड' लिङ्गवाचक शब्द है)। इस लकुलेश मूर्तिका निर्माण बहुत कालतक जारी रहा। गुप्तयुगमें भारतीय रूप-शिल्प की खूब उन्नति हुई। उक्त कालमें शिव तथा अन्य देवताओंके कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण चित्र तथा मूर्तियाँ बनीं। प्रसिद्ध चीनी, बौद्ध परिव्राजक हिउएन्-त्साङ् (Hiuen Tsang) जब सप्तम शताब्दीके प्रथम पादमें भारतवर्ष आये तो वह काशी भी गये। काशीके एक हिन्दू-मन्दिरमें हिउएन्-त्साङ्ने एक विराट् शिवमूर्ति देखी। उस मूर्तिको देखकर इस बौद्धमतावलम्बी ज्ञानी और भक्त चीनीके चित्तपर जो प्रभाव पड़ा उसे वह इन शब्दोंमें व्यक्त करता है—

"यह मूर्ति विशाल एवं महिमासे परिपूर्ण है। मूर्तिको देखते ही दर्शक इसप्रकार सम्भ्रान्त और सन्त्रस्त हो जाता है, मानों वह साक्षात् शिवके समक्ष आ गया हो।"

धन्य है वह शिल्पी जो दर्शकके चित्तमें ऐसे दिव्य भावोंको प्रस्फुटित कर सका। खेद है, गुप्तयुगकी वह भव्य शिवमूर्ति कहीं विध्वस्त होकर हमारे नेत्रपथसे अन्तर्हित हो गयी; पर साथ ही, इस बातसे कुछ सन्तोष होता है कि उस मूर्तिके समान अन्य कुछ मूर्तियाँ हमारे भाग्यसे बच गयी हैं और हमारे समक्ष विद्यमान हैं। इनमेंसे मद्राससे कुछ मील दक्षिणमें महाबलिपुर नामक स्थानकी शिलाखण्ड-पर खोदी हुई अनेक मूर्तियाँ, इलोराके गिरिमन्दिरकी मूर्तियाँ और इन सबसे बढ़-चढ़कर बम्बईके निकट एलिफण्टा द्वीपके गिरिमन्दिरपर खोदे हुए कुछ शिलाचित्र, जिनमेंसे एक अति बृहत् महेश्वर-मूर्ति सारे संसारकी भास्कर्यकलामें एक प्रधान मूर्ति मानी जाती है, विशेष उल्लेखयोग्य हैं। इस महेश्वर-मूर्तिको कभी-कभी भूलसे 'त्रिमूर्ति' भी कहते हैं। इसमें तीन विशाल मुख दिखलायी देते हैं, जो शिवके विभिन्न स्वरूपोंके हैं। बायीं ओर उग्ररूप शिव हैं, जिनकी भौंहें कुटिल हैं, दाँत बाहर निकले हुए हैं और जिनके हाथमें सर्प है। यह शिवकी संहारमूर्तिका दर्शन है। मध्यमें शान्तस्वरूप, प्रसन्नवदन और ध्यानयोग-परायण शिवकी मूर्ति है; और दाहिनी ओर स्त्रीत्वकी आदर्श, जगन्माता, शिवशक्ति उमाकी मूर्ति है। जैसी शिवकी कल्पना, वैसी ही उनकी मूर्तिरचना। एलिफण्टा टापूमें और भी कई विशाल शैलचित्र हैं जिनमेंसे शिव और उमाका विवाह, ध्यानपरायण योगासनोपविष्ट योगी शिव तथा संहारमूर्ति भैरव शिव आदिके चित्र न केवल भारतकी, बल्कि अखिल विश्वकी शिल्पकलाका गौरव बढ़ानेवाले हैं।

शिवकी सर्वश्रेष्ठ मूर्तियोंके उल्लेखमें द्रविड़देशस्थ नटराजकी मूर्तिका स्थान सर्वप्रथम है। जितनी गम्भीरता और भाव-शुद्धि इसमें देखनेमें आती है उतनी और किसी भी स्थानकी मूर्तिमें दृष्टिगोचर नहीं होती। इसीके साथ-साथ यवद्वीपकी शिवमूर्तिका भी उल्लेख करना उचित होगा। आधुनिक शिल्पियोंमें सिद्धशिल्पी रूपकारश्रेष्ठ श्रीनन्दलाल वसु-ने शिव और उमाके कई उच्चकोटिके भावपूर्ण चित्र बनाये हैं, जो प्राचीन कालके अति उत्कृष्ट शिवचित्रोंकी बराबरी करते हैं।

शिव-महिमाके विवेचनमें शिव-मूर्तिकी ऐतिहासिक आलोचना विशेष उपयोगी होगी। इस विषयपर बड़े-से-बड़े ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं—दो-एक अच्छे ग्रन्थ मौजूद भी हैं। आशा है कि मूर्ति और भावोंके सम्बन्धमें अर्थात् भावोंके ऐतिहासिक विकासके साथ-साथ मूर्तिद्वारा उनके प्रकटीकरणके विषयमें और मुख्यतया शिवमूर्तिके प्रकटीकरण-के विषयमें कोई सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दर ग्रन्थ अथवा प्रबन्ध शीघ्र ही निकलेगा। भारतीय शिल्पकलाके अद्वितीय आचार्य और भारतीय भावोंके ज्ञाता श्रीआनन्द कुमार स्वामीके हाथोंसे, जो इस कार्यमें संलग्न हैं, शीघ्र ही ऐसा ग्रन्थ निकलनेकी हम राह देख रहे हैं।

[३]

ईसाके पूर्व प्रथम सहस्रकके उत्तरार्धमें हिन्दू सभ्यताने अपने स्वरूपको प्राप्त किया। उसी समयसे प्राचीन भारत-निवासी भारतकी सीमाके बाहर फैलने लगे। भारतके पूर्व और दक्षिण-पूर्व प्रदेशके वैश्य आदि व्यापारिक उद्देश्यसे बाहर निकले और बहुत-से लोग तो अन्यान्य देशोंमें जाकर बस ही गये। इन व्यापारियोंके साथ-साथ ब्राह्मण तथा श्रमण भी गये, और इसप्रकार धीरे-धीरे दक्षिण-पूर्व एशिया-खण्ड एक नया भारत बन गया जोकि 'बृहत्तर भारत' या 'बहिर्भारत'का एक अंश है। इसे दो प्रदेशोंमें विभक्त किया जाता है; प्रथम—इन्दोचीन या भारत-चीन (Indo-China) जिसमें श्रीक्षेत्र (मध्य-वर्मा), रामण्य-देश या हंसावती (दक्षिण-वर्मा), द्वारावती या लवपुरी (दक्षिण-श्याम), ताम्रलिङ्ग या नगर श्रीधर्मराज (उत्तर और मध्य क्रा-संयोजक), कम्बुजदेश (काम्बोज या फरासीसी काम्बोदिया), और चम्पा (कोचीन-चीन और दक्षिण-अनाम) मोन,

शिवमूर्ति
कम्बोज—अङ्कोर थोम्‌के वायोन् मन्दिर-शीर्षकी
(ईस्वी नवम शताब्दीके शेषभागमें निर्मित)

शिव या शैवराजा
कम्बोजकी मूर्ति, नवम या दशम शताब्दी
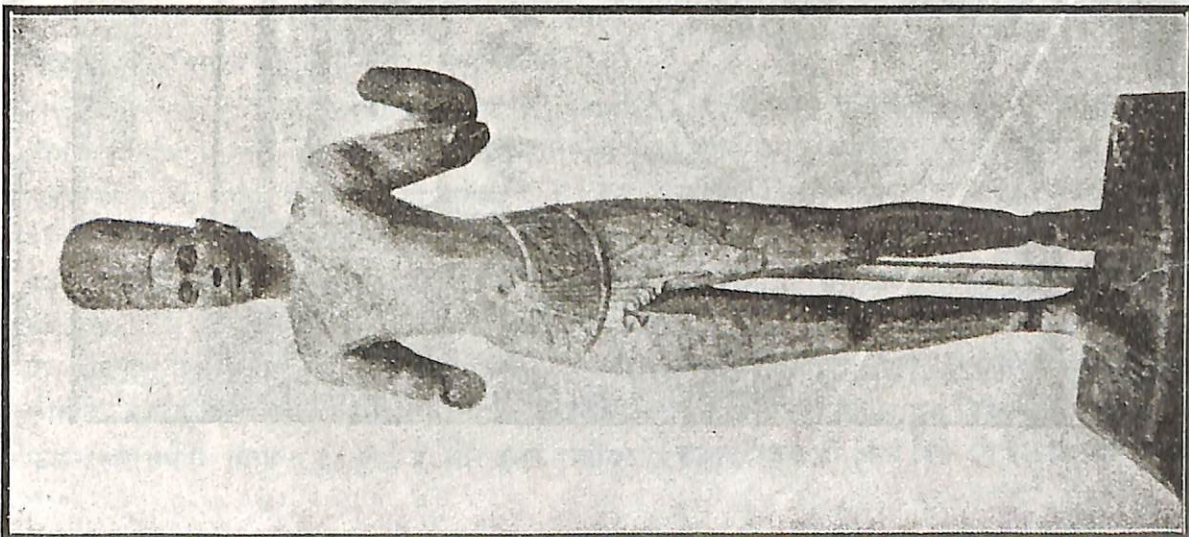
हरिहर
कम्बोजकी प्राचीन मूर्ति
(ईस्वी सप्तम शताब्दीके प्रारम्भमें बनी)
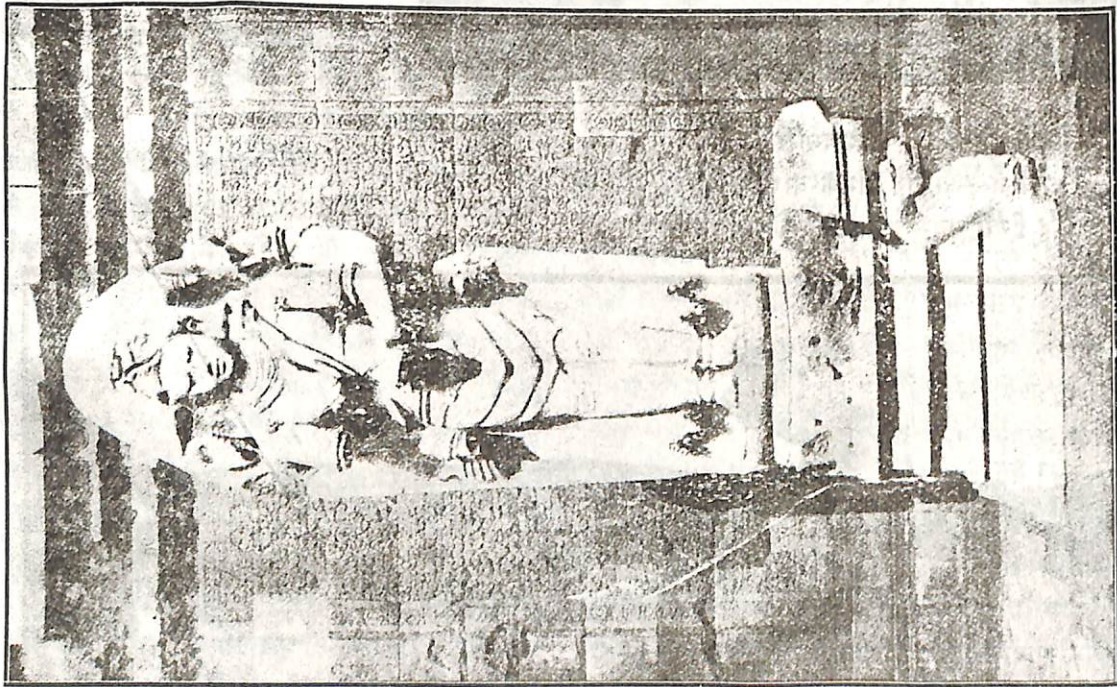
यवद्वीप प्राम्बानानूके प्राचीन शिवक्षेत्रके प्रधान मन्दिरके गर्भगृहकी शिवमूर्ति
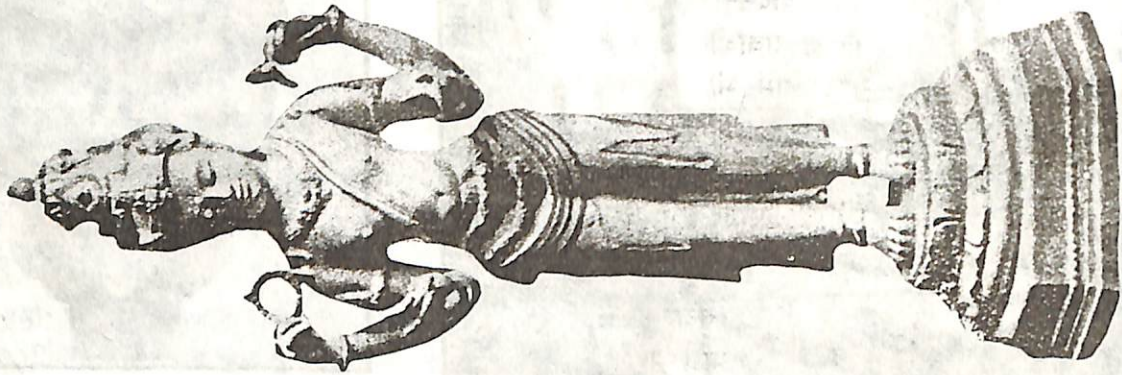
धातुमय शिवमूर्ति
(प्राचीन यवद्वीप)
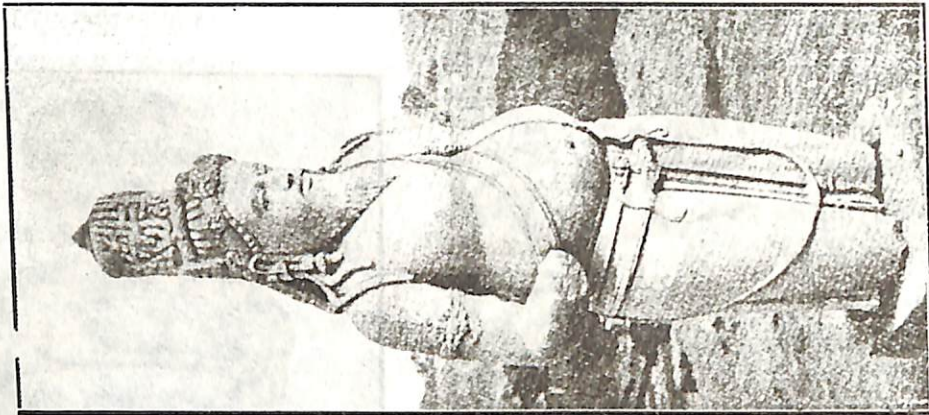
शिव-गुरु
(अगस्त्यरूपी शिव)
चण्डी-बानोन, यवद्वीप
(नवम शताब्दी)

ख्मेर और चाम-जातिके राज्य तथा उत्तरवर्माके बर्मी-लोगोंका राज्य और उत्तर तथा मध्य श्यामके श्यामीलोगोंके कई राज्य (जैसे सुखोदय, स्वर्गलोक, अयोध्या)—ये सब सम्मिलित हैं; और द्वितीय—Indonesia या Insulindia 'द्वीपमय भारत'—जिसमें मलय-उपद्वीप (कटाहदेश या केडाह (Kedah) तथा क्रा (Kra) संयोजक और सिंहपुर या सिंगापुर आदि प्रदेशोंको लेकर), सुवर्णद्वीप या श्रीविजय (सुमात्रा टापू), यवद्वीप, बलिद्वीप, लम्बकद्वीप और बोर्नियो, सेलेबेस, मोलुकास, फिलिपाइन-प्रभृति द्वीप शामिल हैं। द्वीपमय भारत तथा भारत-चीनके राष्ट्र पूरे तौरसे भारतीय बने। इन देशोंमें ब्राह्मणोंका उपनिवेश हुआ और हिन्दूधर्मके अन्यान्य अंगोंके साथ-साथ हिन्दू-देवतावाद—विशेष करके शिवकी पूजाका—प्रचार हुआ। यहाँके राजाओंने बड़े-बड़े मन्दिर बनवाये जो अपनी भग्नावस्थामें भी विश्वको विस्मयमें डालते हैं। यहाँके राजाओंने अपने लेखोंमें संस्कृतका प्रयोग किया है—चम्पा, कम्बोज, यवद्वीपके संस्कृत-अनुशासन अनेक पुस्तकों और प्रबन्धोंके आकारमें प्रकाशित हुए हैं।

प्राचीन चम्पाराज्य प्रशान्त-महासागरसे सटा हुआ दक्षिण-अनाम और कोचीन-चीनके अन्तर्गत था। यहाँके लोग, जो 'चाम' कहलाते थे, मालय-जातिके थे; इन्होंने हिन्दू-धर्म अङ्गीकार किया और इनका रहन-सहन इस ढंगका हो गया कि इनका वासप्रदेश अंशतः भारतका एक उपनिवेश ही जँचने लगा। ईसवी सन्‌की तृतीय शताब्दीके पूर्व ही इनके अन्दर हमारे धर्म और हमारी सभ्यताकी जड़ सुदृढ़ हो गयी थी। इनकी पहिली राजधानीका नाम था 'इन्द्रपुर' जो आजकल त्रा-क्यू (Tra-kieu) कहलाता है और तूरान (Tourane) प्रान्तके अन्तर्गत है। दूसरी राजधानी 'विजय' थी, जिसका आधुनिक नाम शा-बान (Cha-ban) है और जो बिन्‌-दिन्‌ (Binh-dinh) प्रान्तमें है। 'चाम' लोगोंमें प्राचीन भारतकी ही भाँति शैव, वैष्णव तथा बौद्ध-मत प्रचलित थे, जिनमें शैव मतका ही प्राबल्य था। इनके मन्दिर बनानेका एक खास ढंग था। ये लोग ईंटके मन्दिर बनाते थे। ईसवी सन्‌की सप्तम शताब्दीमें बना हुआ मी-सोन (Mi-son) का शिव-मन्दिर इनके वास्तुशिल्पका एक श्रेष्ठ नमूना है। अब यह 'चाम' जाति उत्तरसे अनामी लोगोंके और पूर्वसे ख्मेर या कम्बोजीय लोगोंके आक्रमणोंके फलस्वरूप सर्वथा विध्वस्त हो चुकी है और इनके मन्दिर खँडहरके रूपमें परिणत हो गये हैं। फिर भी इनके राजाओंके संस्कृत-लेखों और इनके मन्दिरोंके ध्वंसावशेषोंसे इनकी प्राचीन अवस्थाका यत्किञ्चित् परिचय हमें मिल सकता है। संस्कृत-लेखोंमें प्रायः शिवकी नमस्कृति रहती है और कहीं-कहीं पूरे शिवस्तोत्र भी मिलते हैं। ढाका-विश्वविद्यालयके ख्यातनामा अध्यापक डॉ० श्रीरमेशचन्द्र मजूमदारने देवनागराक्षरोंमें अंग्रेजी अनुवादके सहित इन लेखोंका एक अच्छा संग्रह प्रकाशित किया है। (Ancient Indian Colonies in the Far East, Vol. I, Champa, Greater India Society Publications, No I. published by the Punjab Sanskrit Book Depot, Lahore, 1927, Rs. 15) जिसमेंसे नमस्कार-श्लोक निकालकर अलग प्रकाशित करनेसे शिवस्तोत्रोंका एक अनोखा संग्रह हो सकता है। 'चाम' लोगोंकी शिल्पकला विशेष प्रकारकी थी। इसमें जितना ओज था उतनी सुकुमारता नहीं थी; भावव्यञ्जन कुछ आदिम कालकी भाँति सरल और अनलंकृतरूपमें हुआ करता था। शिव आदिकी मूर्तिकी आकृति 'चाम' लोगोंकी मुखाकृति-जैसी होती थी। हमारे भगवान् शिव भारतके बाहर जहाँ-जहाँ पधारे वहाँ-वहाँ वे स्थानीय जनताके द्वारा अपनाये गये। नाना स्थानोंके अधिवासियोंने अपने ही विशिष्ट आकार-प्रकारकी मूर्तियाँ प्रस्तुत कीं, जो शिवकी विश्वतोमुखी कल्पनाकी द्योतक हैं। मध्यएशियामें शिव शकसे ईरानी और तातार बन गये और इसी प्रकार कम्बोजमें कम्बोजीय, चम्पामें चाम और यवद्वीपमें यवद्वीपीय। शिवभक्तोंके लिये यह हर्षकी बात है। हम यहाँ चम्पा-देशकी एक शिवमूर्तिका और एक शिवलिङ्गका चित्र देते हैं। ये दोनों चीज़ें 'मी-सोन'के मन्दिरके खँडहरमें मिली हैं। इनके निर्माणका काल ईसवी सन्‌की सातवीं शताब्दी मालूम पड़ता है।

कम्बोजके प्राचीन नमूने संख्या तथा महत्त्वकी दृष्टिसे चम्पाके नमूनोंसे बढ़कर हैं। कम्बोजमें आजसे कम-से-कम अठारह सौ वर्ष पूर्व भारतीय ब्राह्मण-सभ्यता प्रतिष्ठित हुई। यहाँ भी संस्कृत-लेखोंकी प्रचुरता और अगणित मन्दिर हैं। कम्बोजके भास्कर्यकी शैली भारतकी शैलीसे विशेष मिलती-जुलती है। वहाँ भारतीय देवताओंकी बहुत-सी सुन्दर विशाल मूर्तियाँ हैं। इनके विषयमें कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। इस स्थलपर इस विषयमें हम कुछ विशेष न कहकर केवल दो चित्र दिये देते हैं, जिनमेंसे एक तो है

एक प्राचीन कम्बोजीय ढंगसे बनी हुई हरिहरकी मूर्तिका और दूसरा मन्दिरके शिखर-प्रदेशमें खोदे हुए शिवमुखका। कम्बोजकी तक्षण-शैलीकी यह एक विशेषता है कि वहाँ मन्दिर-शिखरपर चारों दिशाओंमें एक-एक शिवमुख बनाकर मन्दिर-चूड़ाको महिमान्वित करते हैं, जिससे मन्दिरमें प्रवेश किये बिना भी दूरसे मन्दिर-शिखरपर देवदर्शन हो सकता है। इसी प्रकारके शिखरस्थित शिवके चार मुखोंमेंसे एकका चित्र यह है।

अब द्वीपमय भारतकी चर्चा करनी है। यवद्वीपमें आजसे कोई दो हजार वर्ष पूर्व हिन्दू-सभ्यता फैली। शैव और बौद्ध—ये दो धर्म समानरूपसे यवद्वीपमें प्रचलित हुए। ईसवी सन्‌की आठवीं शताब्दीमें यवद्वीपमें सुमात्राके शैलेन्द्र-वंशीय राजा राज्य करते थे। ये बौद्ध थे। इन्होंने मध्य यवद्वीपके बोरो-बुदुर (Boro-Budur) का विख्यात चैत्य-मन्दिर बनवाया। यह चैत्य भारतीय शिल्पका एक श्रेष्ठ रत्न है। शैलेन्द्रवंशके प्रतापसूर्यके चमकनेके कुछ दिन बाद यवद्वीपीय राजा स्वाधीन हो गये। ये लोग शैव थे। इन्होंने मध्य यवद्वीपके प्राम्बानान (Prambanan) नामक स्थानमें एक शिव-क्षेत्र स्थापित किया, जिसमें पत्थरकी चहारदीवारीके अन्दर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों देवताओंके मन्दिर बनवाये। इन मन्दिरोंमेंसे शिवजीका मन्दिर सबसे विशाल और ऊँचा बनाया गया तथा बीचमें रक्खा गया। इन मन्दिरोंके सामने क्रमशः तीनों देवोंके वाहन—हंस, गरुड़ और नन्दीकी मूर्तियोंके साथ-साथ तीन और छोटे-छोटे मन्दिर बने। चहारदीवारीके चारों ओर सैकड़ों छोटे-छोटे शिवमन्दिर थे। प्राम्बानानमें इन तीनों विशाल मन्दिरोंके देवविग्रह अभीतक साबित हैं—ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवमूर्तियाँ अतीव सुन्दर हैं। प्राम्बानानके मन्दिरोंपर श्रीराम और श्रीकृष्णकी लीलाओंके चित्र भी खुदे हुए हैं, जो हिन्दू-शिल्पमें बे-जोड़ हैं। और तो और, भारतवर्षमें भी श्रीराम और श्रीकृष्ण-चरित्र-विषयक ऐसे मनोहर चित्र नहीं बने। यवद्वीपमें अन्यत्र भी शिव-मूर्तियाँ पायी जाती हैं। यहाँकी शिव-मूर्तियोंकी बनावट दो प्रकारकी है—एक तो प्राचीन भारतकी साधारण चालकी, जिसमें तरुण-वयस्क देवतास्वरूप शिवके दर्शन होते हैं और दूसरी वे जिनमें शिवजी ठीक प्रौढ़वयस्क ब्राह्मणके रूपमें अगस्त्यऋषि-जैसे मालूम पड़ते हैं—इनमें शिव दाढ़ी-मूछवाले तथा प्रौढ़वयस्क एवं लम्बोदर हैं। ऋषि अगस्त्यके आकारके शिव यवद्वीपमें 'भट्टारक शिवगुरु', (बटार शिवगुरु) कहलाते हैं। इतिहासज्ञोंकी धारणा है कि दक्षिण-भारतमें अगस्त्यऋषिने उत्तर-भारतकी ब्राह्मण-संस्कृतिका प्रचार किया था। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि द्वीपमय भारतमें भी अगस्त्य-ऋषि ही ब्राह्मण-धर्म और संस्कृति लेकर पधारे थे। यवद्वीपवासी ऋषि अगस्त्यको अपनी सभ्यताका संस्थापक या प्रतिष्ठाता समझते हैं और शिवसे इनका अभेद मानते हैं। यवद्वीपके शिल्पकी प्राचीन, मध्यकालीन और नवीन—ये तीन धाराएँ मिलती हैं। प्राचीन शिल्पमें भारतीयता अधिक मिलती है—यह प्राचीन शिल्प मानों भारतीय शिल्पका ही एक प्रकार है। इसके बाद यह शिल्पशैली बदलते-बदलते मध्यकालीन शिल्पशैलीमें परिणत हो गयी और अन्तमें इसने आधुनिक शिल्पका रूप ग्रहण कर लिया। इन तीनों धाराओंमें शिवमूर्तियोंकी रचना हुई। आज यवद्वीपके अधिवासी मुसलमान हो गये हैं; परन्तु वे प्राचीन हिन्दूकालके देवताओंको सर्वथा नहीं भूल सके। वर्तमान यवद्वीपी लोग बड़े चावसे रामायण और महाभारत-की लीलाएँ सुनते और देखते हैं। वहाँ मज़बूत चमड़ेसे बनी हुई रंगीन प्रतिकृतियोंके सहारे एक प्रकारका छायानाटक होता है, जिसमें रामायण और महाभारतके पात्रोंके साथ-साथ पौराणिक देवताओंके चित्र भी दिखाये जाते हैं। इसप्रकार-की प्रतिकृतियों या चित्रोंको जो छायानाटकमें काममें लाये जाते हैं 'वयंग' (Wayang) कहते हैं। हमारी दृष्टिमें 'वयंग' चित्र अत्यन्त अद्भुत और हास्यजनक प्रतीत होंगे; परन्तु ये यवद्वीपके हिन्दू-शिल्पका विकार या परिणाम हैं। हम यवद्वीपके भी कई शिवचित्र दे रहे हैं।

यवद्वीपके पूर्वमें बलिद्वीप है। यहाँके लोग अबतक हिन्दू ही हैं और इनमें शिवका पूजन बहुत कुछ प्रचलित है। यहाँकी शिल्पपद्धति भी यवद्वीप-जैसी ही है।

श्याम और बर्मामें ब्राह्मणधर्म विशेषरूपसे प्रचलित था। बर्मा और श्याममें कुछ शिवमूर्तियाँ भी मिली हैं।

द्वीपमय भारत (Indonesia) तथा भारतचीन या चीनमय भारत (Indo-China) को छोड़, उधर पश्चिमाञ्चलके बृहत्तर भारतपर यदि दृष्टि डाली जाय तो हम देखते हैं कि India-Minor अर्थात् लघुभारत (प्राचीन अफ़गानिस्तान और मध्य-एशिया) तक शिवकी पूजा प्रचलित हुई थी। कम-से-कम कुषाण-सम्राटोंके समयसे उधरके लोग शिवमूर्तिसे परिचित हुए। इसके साथ-ही-साथ उनमें सम्भवतः शिव-सम्बन्धी ज्ञान भी पहुँचा होगा। गणेशकी

शिव
(प्राम्बानान्—यवद्वीप)
ईस्वी नवम-दशम शताब्दीकी मूर्ति

शिव-पार्वती
(बर्मा थातोन्में प्राप्त)
ईस्वी नवम शताब्दीकी मूर्ति
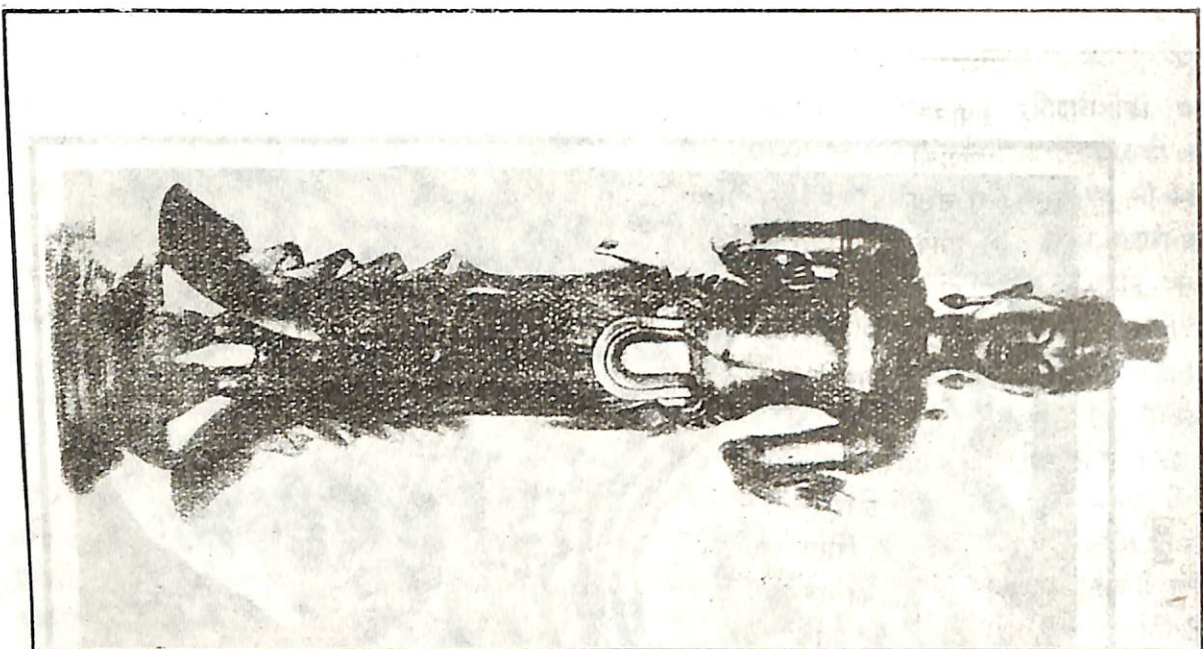
यवद्वीपके पूर्व बलिद्वीपके शिव
(षोडश शताब्दीका प्रस्तररूप चित्र)

ईरानके सासानी राजाओंके सिक्केमें शिवमूर्ति। त्रिशूल लिये हुए, ईरानी पोशाक पहने हुए वृषके साथ।

शिव—श्यामदेशकी धातुमूर्ति
बंकोक राजकीय चित्रशालामें रक्षित (द्वादश शतक)

मूर्तियाँ चीन और जापानतकमें पायी गयी हैं—जापानी लोग अभीतक गणेशको पूजते हैं। मध्य-एशियाका खोतान—प्रान्त (जिसका संस्कृत नाम 'कुस्तन' था और जो आजकलके चीनी तुर्किस्तानके दक्षिण-भागमें है) आजसे डेढ़ हजार वर्ष पहले एक विशिष्ट सभ्यताका केन्द्र था। वहाँके निवासी कुछ अंशमें ईरानी, कुछ अंशमें भारतीय और कुछ अंशमें तुर्की या तातार भी थे। ये मुख्यतया बौद्ध-धर्मके माननेवाले थे और एक प्रकारकी ईरानी भाषा बोलते थे और भारतीय प्राकृत भी बोल लेते थे। इनके अन्दर बौद्ध-धर्मके साथ-साथ शैवधर्म भी फैला। सर ऑरेल स्टाइन (Sir Aurel Stein) ने कोई तीस वर्ष पहले जब खोतानके आसपासके प्राचीन नगरोंके भग्नावशेषकी खुदाई की तब उन्हें वहाँ कुछ लकड़ियोंपर बने हुए महायान बौद्ध-मतके चित्र मिले। इनमेंसे एक चित्र निःसन्देह शिवका है। इसप्रकारके शिव बौद्धोंके लोकेश्वर नामक देवता भी हो सकते हैं। दन्दान यूलिक (Dandan Uiliq) से प्राप्त ईसवी सन्‌की आठवीं शताब्दीसे पहलेके एक चित्रकी प्रतिलिपि हम स्टाइनकी Ancient Khotan (Oxford, 1907, Vol. II, Plates) नामक पुस्तकसे लेकर दे रहे हैं। इसमें त्रिमुख, नीललोहित शिव विराजमान हैं और नीचे आमने-सामने दो वृषभमूर्तियाँ हैं। तीन मुखोंमेंसे बीचका मुख शान्तस्वरूप शिवका है और उसके एक ओर उग्ररूप भैरवका और दूसरी ओर शक्तिरूपा उमाका है जैसा कि पूर्वोल्लिखित एलिफण्टा टापूकी त्रिमुण्ड महेश्वर-मूर्तिमें है।*

यवद्वीपके एक आधुनिक पण्डितने यूरोप जाकर संस्कृत पढ़ी और द्वीपमय भारतमें अगस्त्यरूपी शिवके पूजनके विषयमें डच भाषामें एक अत्यन्त उपयोगी गवेषणात्मक पुस्तक लिखी है। वे एक मुसलमानके घरमें जन्म लेकर भी अपनी प्राचीन यवद्वीपीय संस्कृतका पूर्ण अभिमान रखते हैं तथा शिवके उदार आदर्शसे श्रद्धा और भक्तिभावका पोषण करते हैं। उनके रचे हुए कुछ हूर शिवस्तुतिमय श्लोक उद्धृत करके हम अपने लेखका उपसंहार करते हैं। श्रीयुक्त रादेन मास पूर्बचरक (Raden Mas Poerbatjaraka) ने अपने अगस्त्य-विषयक ग्रन्थके आरम्भमें मङ्गलाचरणरूपसे रोमन अक्षरोंमें जो संस्कृत-श्लोक दिये हैं, वे इसप्रकार हैं—

॥ ओम् अविघ्नमस्तु नमः शिवाय ॥

यः सर्वं सृजति प्रपालयति चाशेषं हरिष्यत्यपि
देवानां जगतोऽपि यः सुशरणो गौरीपतिर्यो हरः।
तं देवं प्रणमामि शूलिनमचिन्त्यं नीलकण्ठं शिवं
भो देवेश मम प्रशाम्यतु मलं पापं च सर्वं सदा॥
एवं नमामि भगवन्तमगस्त्यधेयं
द्वीपान्तरे निवसतां सुमुनिर्महान् यः।
तेषां महागुरुरपि प्रवरोऽधिनेता
काले पुरा स परिपूजित एक विप्रः॥

'स्दॉक काक थॉम' के स्तम्भका शिलालेख

(लेखक—श्रीयुत डॉ० वेङ्कट सुब्बिया, एम० ए०, पी-एच० डी०, मैसूर)

भारतीय इतिहासका अध्ययन करनेवाले सम्भवतः सभी इस बातको जानते हैं कि ईसवी सन्‌की पहिली शताब्दीके करीबसे ही भारतवासी आर्योंके दल-के-दल बङ्गालकी खाड़ीके रास्तेसे उन देशोंमें जाकर बसने लगे थे जो आजकल जावा (यवद्वीप), सुमात्रा (सुवर्णद्वीप), श्याम (Siam), लाओस (Laos), कम्बोडिया (कम्बोज) तथा 'भारतीय चीन' (Indo-china) के नामसे प्रसिद्ध हैं। उक्त सभी देशोंमें इन लोगोंने बड़े-बड़े साम्राज्योंकी स्थापना की, जिनकी शक्ति एवं समृद्धि सैकड़ों बरसोंतक अक्षुण्ण रही। ये लोग स्वाभाविकतया अपने धर्मको अर्थात् शिव, विष्णु प्रभृति देवताओं तथा देवियोंकी उपासनाको भी अपने साथ ले गये। यह बात उन विशाल मन्दिरोंसे, जो इस समय खँडहरोंके रूपमें उन देशोंमें विद्यमान हैं, तथा उन शिलालेखोंसे प्रमाणित होती है जिनमें उनके सञ्चालनार्थ अर्पण की हुई जागीरोंका उल्लेख मिलता है। इनमेंसे कई शिलालेख फरासीसी तथा डच-जातिके विद्वानोंद्वारा Journal-Asiatique तथा Bulletin de l'Eole Francaise de' Extreme Orient, आदि सामयिक पत्रोंमें प्रकाशित हो चुके हैं और उनमेंसे जिन शिलालेखोंका चम्पादेशके राजाओंके साथ सम्बन्ध है, उन्हें डॉ० आर० सी० मजूमदारने एक जगह संगृहीतकर अपने 'Ancient Indian Colonies in the Far East. Vol. I,

* एलिफण्टा (धारापुरी) की उक्त मूर्ति इसीमें अन्यत्र प्रकाशित है।—सम्पादक

Champa' नामक ग्रन्थमें अलग प्रकाशित किया है। इस पुस्तकमें संग्रह किये हुए शिलालेखोंमेंसे अधिकांशके प्रारम्भमें 'ओं नमः शिवाय' यह मन्त्र खुदा हुआ है, जिससे यह सिद्ध होता है कि चम्पाधिपति शिवभक्त थे। इसी प्रकार Barth तथा Bergaine नामक पाश्चात्य विद्वानोंद्वारा 'Inscriptions duf Cambodge et Campa' नामक संग्रहमें प्रकाशित शिलालेखोंमें भी कई शिलालेख ऐसे हैं जिनसे यह पता लगता है कि कम्बोजदेश (Cambodia) के अधिपति भी शिवोपासक थे। श्यामदेशमें 'स्दॉक काक थॉम' के स्तम्भपर एक शिलालेख मिला है, जिससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। Aymonier नामक पाश्चात्य विद्वान्ने सन् १९०१ के 'Journal' Asiatique (Nos 1-3-; p. ff.) में इस शिलालेखका विस्तृत वर्णन किया है। हम यहाँ 'कल्याण' के पाठकोंके लिये, जिनमेंसे अधिकांश फरासीसी भाषासे अपरिचित होंगे, उसी वृत्तान्तका सारांश संक्षेपमें देते हैं।

ईसवी सन्‌की आठवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें श्यामदेशके राजाओंने कम्बोजके शक्तिहीन राजाओंसे करीबकरीब वह सारा विशाल भू-भाग छीन लिया जो 'महाकासार' (Great lake) के पश्चिममें अवस्थित है और जो उस समय श्यामकी पूर्वीय सीमासे लगा हुआ था। पहले तो उन्होंने इस प्रान्तका शासन कम्बोजाधिपतिके एक स्वामिद्रोही सामन्त तथा उसके पुत्रोंके हाथमें सौंप दिया, जिन्होंने उनकी इस प्रान्तको हस्तगत करनेमें सहायता की थी। किन्तु सन् १८४६ के आसपास उन्होंने इस प्रान्तके एक बड़े हिस्सेको उनके शासनसे हटाकर उसका एक पृथक् सूबा बना दिया, जिसका नाम उन्होंने 'सीसफन' (Sisaphon) रक्खा और वे लोग अपनी राजधानी बैङ्कॉक (Bangkok) से ही उसका शासन करने लगे। इस सूबेकी उत्तरीय सीमापर एक छोटी-सी पर्वतश्रेणी है जो इस भू-भागको लाओसके उन्नत भू-भाग (platpean) से पृथक् करती है।

इस प्रान्तके बीचमेंसे होकर एक ऊँचा टीला या बाँध-सा पूर्वसे पश्चिमकी ओर गया है जिसपरसे लोग उस प्रान्तमें भ्रमण किया करते थे। यात्रियोंके सुभीतेके लिये बीच-बीचमें बड़े-बड़े तालाब खुदे हुए हैं। बाँधके एक छोरसे दूसरे छोरतक तथा सूबेके अन्य भागोंमें भी कम्बोजदेशवासियों (जो 'ख्मेर' कहलाते हैं) के बनवाये हुए बहुत-से मकानोंके ध्वंसावशेष उपलब्ध होते हैं। इनमेंसे सबसे अधिक उल्लेख-योग्य खँडहर 'स्दॉक काक थॉम' नामक एक मन्दिरका है जो इस सूबेके बीचमें उपर्युक्त बाँधसे लगभग ४४० गज दक्षिणकी ओर एक घने जंगलकी सीमापर अवस्थित है।

'स्दॉक काक थॉम' का अर्थ है महानल-हृद अर्थात् सरकण्डोंकी बड़ी झील। जिस मन्दिरका हम उल्लेख करते हैं उसके पूर्वकी ओर एक बड़ा तालाब है और मन्दिरसे तालाबपर जानेके लिये ३३० गज़ लम्बी एक पुलिया-सी बनी हुई है। इसीलिये मन्दिरको इस नामसे पुकारते हैं। मन्दिरकी लम्बाई १४० गज और चौड़ाई १३३ गज है और बाहरकी दीवार ९० इञ्च ऊँची है। मन्दिरमें एक ही 'गोपुर' है जो बाहरकी पूर्वी दीवारके मध्यमें है। इस 'गोपुर' में प्रवेश करते ही एक छोटी-सी खाई मिलती है जिसपर पुल बना हुआ है और पुलके उस पार परिक्रमाके आकारका एक दालान है जिससे घिरा हुआ ४४ गज लम्बा और ३३ गज चौड़ा एक चौक या आँगन है। आँगनके बीचोबीच मन्दिरका गर्भगृह है, जो बिल्कुल चौरस है। इस समय वह एक खुले हुए खँडहरके रूपमें है और उसकी ऊँचाई केवल ३३ फुट रह गयी है। गर्भगृहके द्वारकी छतमें इन्द्र देवताकी एक मूर्ति है जो हाथीपर सवार है और हाथी स्वयं 'राहु'के मस्तकपर खड़ा है। गुम्बजके समीप कई हिन्दू-देवी-देवताओंकी मूर्तियोंके टुकड़े पड़े हुए मिलते हैं।

दालानके उत्तर-पूर्वके बीचके कोनेमें वह स्तम्भ है जिसपर शिलालेख खुदा हुआ है, वह अपनी असली जगहपर तथा पुराने आधारपर कायम है। स्तम्भ बहुत सुडौल बना हुआ है। आधारको बाद देकर उसकी ऊँचाई ६० इञ्च है। उसके चार पहलू हैं और शिलालेख चारोंमें समाप्त हुआ है। दक्षिणके पहलूमें ६० पंक्तियाँ हैं, पूर्ववालेमें ७७, पश्चिमवालेमें ८४ और उत्तरवालेमें ११९। इसप्रकार कुल मिलाकर ३४० पंक्तियाँ हैं जो ऊपर बताये हुए क्रमके अनुसार खुदी हुई हैं। शिलालेखके अक्षर बहुत सुन्दर हैं और करीब-करीब वैसे ही हैं जैसे दक्षिण-भारतके दसवीं और ग्यारहवीं सदीके शिलालेखोंमें मिलते हैं। लेखकी भाषा मिश्रित है, पहिली १९४ पंक्तियाँ संस्कृतमें हैं और शेष वहाँके प्राचीन निवासियोंकी भाषा

'ख्मेर' में हैं। ख्मेर-भाषाका लेख संस्कृतके लेखका अनुवाद नहीं है, किन्तु उसमें वही बात अपने स्वतन्त्र ढंगपर लिखी हुई है। शिलालेखका सारांश इसप्रकार है—

श्लोक१ से ४ में शिव, ब्रह्मा और विष्णुकी स्तुति की गयी है।

श्लोक ५ से २२ में सम्राट् उदयादित्यकी महिमाका बखान है।

श्लोक २३ में लिखा है कि उदयादित्यके गुरुका नाम देवजयेन्द्रवर्मा था।

श्लोक २४ से ६१—राजा जयवर्मा (द्वितीय) के, जिन्होंने महेन्द्रपर्वतपर अपना प्रासाद बनवाया था, गुरुका नाम शिवकैवल्य था। शिवकैवल्य अपने कुलमें सबसे बड़े थे और उन्होंने अनेक यज्ञ करके जयवर्माकी शक्तिको परिपुष्ट किया और उसे 'शिक्षा', 'सम्मोहन' और 'नयोत्तर' की विद्याएँ सिखलायीं। वह अपने देवोपम गुणोंके कारण 'देवराज' कहलाते थे। राजाने उन्हें बहुत सम्मानित एवं पुरस्कृत किया और यह घोषणा कर दी कि शिवकैवल्य और उनके परिवारके लोग ही उसके याजकका काम करेंगे, उनके सिवा और कोई उसके कुलदेवताओंकी पूजा नहीं कर सकेगा। इसप्रकार वे सब शिवलिङ्ग, जो राजाने भावपुर, इन्द्रपुर तथा भद्रयोगिपुरमें स्थापित किये थे, शिवकैवल्यकी देख-रेखमें आ गये। उन्होंने राजासे प्रार्थना करके पूर्वके जिलेमें कुछ ज़मीन ली और वहाँ कुटीपुर नामक गाँव बसाकर एक मन्दिर बनवाया और परिवारसहित उसी गाँवमें रहने लगे। उन्होंने राजासे अमरेन्द्रपुरके पास थोड़ी ज़मीन और ली और भावलयपुर नामक ग्राम बसाकर वहाँ भी एक लिङ्गकी स्थापना की।

शिवकैवल्यका दौहित्र सूक्ष्मबिन्दुक राजा जयवर्मा (द्वितीय) के पुत्र जयवर्मा (तृतीय) का पुरोहित था। शिवकैवल्यके छोटे भाई रुद्राचार्यने भी एक पहाड़की तराईमें राजासे कुछ ज़मीन प्राप्त की और उसमें एक गाँव बसाकर वहाँ एक शिवलिङ्ग स्थापित किया और उस पर्वतका नाम 'भद्रगिरि' रक्खा।

सूक्ष्मबिन्दुका छोटा भाई वामशिव राजा यशोवर्धन-का गुरु और राजा इन्द्रवर्मा (प्रथम) का 'होता' (याजक) था तथा इन्द्रवर्माके गुरु शिवसोमका शिष्य था। इसने अपने गुरुकी सहायतासे 'शिवाश्रम' बनवाया और वहाँ एक शिवलिङ्गकी स्थापना की। ये गुरु-शिष्य दोनों 'शिवाश्रम' (के स्वामी) के नामसे पुकारे जाने लगे; किन्तु शिवसोमकी मृत्युके बाद शिवाश्रमपर उनके शिष्य वामदेवका एकाधिपत्य हो गया और 'शिवाश्रम' की उपाधि भी केवल उसीके नामके आगे लगायी जाने लगी। अब यह यशो-वर्धनका गुरु हो गया, जो राजा यशोवर्माके नामसे विख्यात हुआ। इस राजाकी आज्ञासे वामशिवने यशोधर-गिरिपर एक लिङ्गकी स्थापना की। इसे दक्षिणाके रूपमें भद्रगिरिसे लगती हुई कुछ भूमि प्राप्त हुई और वहाँ इसने 'भद्रपत्तन' नामकी बस्ती बसायी। इस नगरमें राजाने अपने गुरुके निमित्त एक लिङ्ग स्थापित किया और लिङ्गके पूजनके लिये नारियल, कमण्डलु इत्यादि, कई गौएँ तथा अन्य कई वस्तुएँ प्रदान कीं और दो सौ दास-दासियाँ भी दीं। राजाने इस मन्दिरके पीछे 'गणेश्वर' नामका जिला तथा उसके अधीनस्थ गाँव इत्यादि भी अर्पण किये। 'शिवाश्रम' वामशिवने भद्रपत्तनके इस मन्दिरमें, जो भद्रवासपुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ, वाग्देवता सरस्वतीकी भी एक प्रतिमा प्रतिष्ठित की।

वामशिवके छोटे भाई हिरण्यरुचिको भी राजाकी ओरसे 'वंशह्रद' नामकी भूमि प्राप्त हुई और वहाँ उसने अपने कुटुम्बके योग-क्षेमके लिये एक पुर (मन्दिर) बनवाया और उसमें शिवलिङ्गकी स्थापना की। 'शिवाश्रम' वामशिव और उसका भाई—दोनों कुटीग्रामसे अपनी बहिनकी दो लड़कियोंको लाये और उनमेंसे एकको भद्रपत्तनमें और दूसरीको वंशह्रदमें बसाया।

'शिवाश्रम' वामशिवके भानजेका नाम कुमारस्वामी था। वह राजा हर्षवर्मा (प्रथम) का और उसकी मृत्युके बाद उसके उत्तराधिकारी राजा ईशानवर्मा (द्वितीय) का 'होता' था। उसने वंशह्रदमें 'पराशरपुरी' का निर्माण करवाया।

'शिवाश्रम' वामशिवकी भानजीका पुत्र आत्मशिव राजा हर्षवर्मा (द्वितीय) का और उनकी मृत्युके बाद उनके उत्तराधिकारी राजेन्द्रवर्माका 'होता' था। इसने वंशह्रदमें शान्तिपुर, कूटकपुर और ब्रह्मपुर नामके तीन नगर बसाये और उनमें शिव, विष्णु और सरस्वतीकी प्रतिमाएँ स्थापित कीं।

आत्मशिवकी भानजीका लड़का शिवाचार्य था, जो राजा जयवर्मा (पञ्चम) का 'होता' था। सूर्यवर्मा (प्रथम)

के राज्यकालमें इसने भद्रपत्तनमें एक शिव-विष्णुकी प्रतिमा और एक सरस्वतीकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की।

इसप्रकार इन राजाओंसे सम्मानित ये श्रेष्ठ सूरि (विद्वान्) राजधानीमें प्रतिदिन देवाधिदेव शङ्करकी आराधना करते थे, अन्य किसीको यह गौरव प्राप्त नहीं था।

श्लोक ६२ तथा उससे आगेके श्लोकोंमें लिखा है कि शिवाचार्यका भानजा सदाशिव, जो देवाधिपति महादेवकी अर्चामें कुशल था, परम्परागत अधिकारसे सूर्यवर्मा (प्रथम) के पुरोहित-पदपर प्रतिष्ठित हो गया। इस राजाने ब्राह्मणों तथा अग्निको साक्षी बनाकर अपनी पट्टमहिषी श्रीवीर-लक्ष्मीकी छोटी बहिन अपने पुरोहितजीको ब्याह दी। साथ ही उसने इन्हें 'श्रीदेवजयेन्द्र पण्डित' की उपाधि, कर्माध्यक्ष-का पद, सोनेकी पालकीपर चढ़नेका अधिकार तथा और कई सम्मान प्रदान किये। सदाशिवने भद्रयोगिपुर, इन्द्रपुरी तथा अन्य स्थानोंमें कई तालाब खुदवाये और दूसरे कई पुण्यकार्य करवाये। इन्होंने भद्रपत्तनमें एक शिवलिङ्ग तथा दो मूर्तियाँ स्थापित कीं और उनके चारों ओर एक वलभी (दालान) तथा पत्थरकी चहारदीवारी बनवा दी और तीनों देवताओंके पीछे दास-दासी प्रभृति सारे उपस्करकी व्यवस्था कर दी। इन्होंने एक तालाब तथा नदीमें एक बाँध भी बनवाया। भद्रावासमें इन्होंने सरस्वतीदेवी (की प्रतिमा) को बहुत-सी सम्पत्ति अर्पण की, और उनके निमित्त उद्यानसहित एक आश्रम, गौओंसे पूर्ण एक गोशाला और एक बाँध बनवाया। भद्राद्रिके देवता (देवालय) के लिये इन्होंने गौओंसे पूर्ण एक गोशाला, एक आश्रम और एक बाँध बनवाकर प्रदान किया। शहदके देवताको भी इन्होंने बहुत-सी सम्पत्ति प्रदान की, जिनमें बाँधसहित पानीकी एक लम्बी नाली तथा एक तालाब भी है। अमोघपुरके जिलेमें इन्होंने राजा सूर्यवर्मासे 'चङ्का' नामका एक इलाका प्राप्त किया और एक दूसरी जमीनके बदले 'महारथ' नामके तालाबके पूर्वकी जमीन, जो नदीके किनारेतक चली गयी है, हस्तगत की और इन दोनों जमीनोंको इन्होंने वंशह्रदके शिवमन्दिरोंके पीछे जागीरके रूपमें लगा दिया। अमोघपुर, सान्तान और नागसुन्दर नामके इलाकोंमें इन्होंने एक सुन्दर पुर (मन्दिर) बनवाया और देवपत्तनके 'शम्भु' को अर्पण कर दिया। इन्होंने ब्रह्मपुरमें सरस्वतीकी एक प्रतिमा स्थापित की और उनको कई दास-दासी तथा एक बाँध और एक तालाब अर्पण किया। कुटीपुरमें इन्होंने एक मन्दिर बनवाया, उसमें लिङ्ग-स्थापना की और दास-दासी आदि प्रदान किये। उदयादित्यवर्माके सिंहासनारूढ़ होनेपर सदाशिव—जयेन्द्र पण्डित उनके गुरु हो गये और राजाकी ओरसे उन्हें 'धूलि जें व्रः कम्रतें अङ् श्रीजयेन्द्रवर्मा' की उपाधि तथा अन्य सम्मान प्राप्त हुए। उन्हें दक्षिणाके रूपमें राजासे कई रत्न और आभूषण, प्याले, पीकदानियाँ, सुराहियाँ, पालकियाँ, छत्ते, सुवर्णादि बहुमूल्य धातुओं तथा अन्य धातुओंके भार-के-भार, दास-दासियाँ, अन्न, फल, बड़े तथा छोटे पशु, हाथी-घोड़े, वस्त्र, रथ, वाद्य, कुल्हाड़ी आदि औजार तथा अस्त्र-शस्त्रादि अनगिनत वस्तुएँ प्राप्त हुईं। यह सारी सम्पत्ति उन्होंने या तो भद्रेश्वर तथा अन्य शिवलिङ्गोंको अर्पित कर दी या मन्दिरोंके बनवाने, तालाबोंके खुदवाने इत्यादि कार्योंमें तथा यात्रियोंको दूसरी प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान करनेमें खर्च कर दी।

राजा उदयादित्यवर्माने शाके ९७४ में अपने गुरुकी स्मृतिमें भद्रनिकेतन नामक देशमें तथा भद्रयोगिपुरमें भी उन्हींकी भूमिपर एक शिवलिङ्गकी स्थापना की और उसे जयेन्द्रवर्मेश्वरके नामसे पुजवाया। उन्होंने जयेन्द्रवर्मेश्वर महादेवके निमित्त अपने गुरुदेवकी भूमिके निकटकी भूमि भी अर्पित कर दी। जयेन्द्रवर्माने कृतज्ञतावश इस सारी सम्पत्तिके साथ एक बड़ा तालाब और बाँध अपनी तरफसे बनवाकर अर्पण कर दिया। इन्होंने शिवकैवल्य तथा शिवाश्रस (वामशिव) की मूर्तियाँ भी ब्रह्मा, विष्णु और शिवके नामसे स्थापित कीं।

श्लो० १२८—अन्तिम आशीर्वाद।

इसके अनन्तर 'ख्मेर' भाषाकी १४६ पंक्तियाँ हैं, जिनमें ये ही बातें अपने ढंगसे लिखी गयी हैं, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं।

इस जयेन्द्रवर्मेश्वर महादेवके मन्दिरको जिसे राजा उदयादित्यवर्माने अपने गुरुकी स्मृतिमें तथा स्वयं गुरुजीके द्वारा खुदवाये हुए तालाबको, जो मन्दिरसे संलग्न तथा मन्दिरकी ही सम्पत्ति है, स्दॉक काक थॉम (अर्थात् महानलह्रद) के नामसे निर्दिष्ट किया गया है। ऊपर कहा जा चुका है कि इस लिङ्गकी प्रतिष्ठा शाके ९७४ (ईस्वी सन् १०५२) में हुई थी और सम्भवतः उसी साल यह शिलालेख भी खोदा गया हो, ऐसा अनुमान होता है।

इसके अतिरिक्त यह भी बहुत सम्भव है कि आचार्य सदाशिव—जयेन्द्रवर्माकी आज्ञासे ही शिलालेख खोदा गया था।

राजा जयेन्द्रवर्मा (द्वितीय), जो शिवकैवल्यका शिष्य था और जिसका नाम शिलालेखमें दी हुई राजाओंकी नामावलीमें सबसे प्रथम आया है, शाके ७२४ (सन् ८०२) में राजगद्दीपर बैठा और करीब शाके ७८१ तक उसने राज्य किया और राजा उदयादित्यवर्मा, जिसका नाम शिलालेखमें सबके अन्तमें आता है, शाके ९७१ से राज्य करने लगा और शाके ९७४ में उसने जयेन्द्रवर्मेश्वर-लिङ्गको स्थापित किया। इसप्रकार शिलालेखमें २५० वर्ष अथवा नौ पीढ़ियोंकी घटनाओंका उल्लेख किया गया है और उसके अन्दर यह वर्णन किया गया है कि इस दीर्घ-कालमें शिवकैवल्यके वंशज ही अविच्छिन्नरूपसे कम्बोज-देशके राजाओंके कुल-देवताओं अर्थात् शिवलिङ्गों तथा अन्य देवी-देवताओंका पूजन करते रहे।

दूसरे शब्दोंमें, शिलालेखसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कम्बोज-देशमें जिन राजाओंने शाके ७२४ से ९७४ तक राज्य किया वे सब शिवभक्त थे और शिवकैवल्य तथा उनके वंशजोंका बहुत अधिक सम्मान करते थे। इनमेंसे एक राजा जयवर्मा (तृतीय) के लिये, जिन्होंने अनुमानतः शाके ७८१ से ७९९ तक राज्य किया 'ख्मेर' भाषाके शिलालेखमें 'विष्णुलोक' नामका प्रयोग किया गया है। यह सम्भवतः उनकी मृत्युके पीछे रक्खा गया मालूम होता है, जिससे यह अनुमान होता है कि वह वैष्णव था। इसी प्रकार सूर्यवर्मा (प्रथम) का, जिसने शाके ९२४ से ९७१ तक राज्य किया, उसकी मृत्युके पीछे 'निर्वाणपद' अथवा 'परमनिर्वाणपद' नाम उपलब्ध होता है, जिससे यह प्रतीत होता है कि वह बौद्ध था। यहाँ यह बात ध्यान देने-योग्य है कि शिलालेखके अनुसार जयवर्मा (तृतीय) ने रुद्राचार्यको एक शिवालय बनवानेके लिये भूमि प्रदान की और सूर्यवर्मा (प्रथम) ने अपने 'होता' सदाशिवको इसी प्रकारके कार्यके लिये भूमि ही प्रदान नहीं की, अपितु 'ख्मेर' भाषाके लेखमें तो यहाँतक लिखा है कि उसने भद्रपत्तन तथा वंशह्रदके शिवलिङ्गोंको उखाड़ फेंकनेवाले विद्रोहियोंको दमन करनेके लिये सेना लेकर चढ़ायी की। इसके अतिरिक्त ये दोनों राजा भी अपने पूर्वजोंकी भाँति शिवकैवल्यके वंशजोंको ही अपना गुरु और पुरोहित मानते रहे।

यहाँ यह बात ध्यान देनेयोग्य है कि ये सब पुरोहित अपने-अपने पूर्वजोंके पुत्र अथवा पौत्र नहीं थे किन्तु भानजे अथवा भानजियोंके लड़के थे, अर्थात् उनकी वंश-परम्परा पितृक्रमागत न होकर मातृक्रमागत है। इस विचित्र व्यवस्थाका कारण 'ख्मेर' भाषाके लेखके निम्नलिखित वाक्य-के पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है, वह यह है कि राजा सूर्यवर्माने 'सदाशिवको उनका आश्रम छुड़वाकर अपनी अग्रमहिषी श्रीवीरलक्ष्मीकी छोटी बहिन ब्याह दी।' यहाँ जिस आश्रमके छुड़वानेकी बात कही गयी है वह ब्रह्मचर्याश्रम ही प्रतीत होता है, क्योंकि हिन्दू-धर्मशास्त्रके अनुसार संन्यास-आश्रम-को छोड़कर पुनः गृहस्थी बनना उगले हुए ग्रासको फिरसे खानेके समान जघन्य कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सदाशिव तथा उनके परवर्ती सभी पुरोहित, जिनका शिलालेखमें उल्लेख मिलता है, नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। इस-प्रकार जब उनके न तो गृहिणी थी और न बाल-बच्चे, तब उनके भानजे अथवा भानजियोंके पुत्र उनके उत्तराधिकारी हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है? यहाँ यह बात ध्यान देने-योग्य है कि 'कन्नड' देशके शिलालेखोंमें भी कहीं-कहीं 'कालामुख' सम्प्रदायके शैवाचार्योंके (जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी होते थे) मठों या देवालयोंका वर्णन आता है [देखिये Epigraphia Carnatica में प्रकाशित 'मावितम्मन-मुच्चडि', 'हुलियार' और 'असगोड' के शिलालेख ७, २५५; १२, १४२ और ११, १४१ और उसी तरहके दूसरे शिलालेख]।

अंकोर-झील (Angkor shom) पर एक बेयन (Bayon) नामका मन्दिर है और Aymonier का मत यह है कि शिवसोम और वामशिवके द्वारा स्थापित किया हुआ शिवाश्रम यही है। यह सम्भव नहीं मालूम होता, क्योंकि प्रथम तो शिलालेखमें इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा है कि यह आश्रम किस जिलेमें स्थापित किया गया था। इसके अतिरिक्त अंकोर-झीलके किनारेपर अङ्कोर नामकी राजधानी राजा यशोवर्माने बनवायी थी और यशोवर्मा उस राजाका उत्तराधिकारी था, जिसके राज्यकालमें उक्त शिवाश्रमकी स्थापना हुई। इसलिये मेरा मत तो यह है कि 'बेयन' नाम 'यशोधरगिरि' का है और यहींपर वाम-शिवने राजाकी आज्ञासे शिवलिङ्गकी स्थापना की थी। जो

कुछ भी हो, इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि 'बेयन' के मन्दिरमें जो लिङ्ग है यह उन्हींमेंसे एक है, जिनका प्रस्तुत शिलालेखमें शिवकैवल्य तथा उनके वंशजोंके द्वारा स्थापित किये जानेका वर्णन है। यह मन्दिर इस समय एक खँडहरके रूपमें है; परन्तु इसके अन्दर अब भी बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनसे यह पता चलता है कि जिस समय यह अच्छी हालतमें था उस समय यह कलाकी दृष्टिसे संसारभरके मन्दिरोंमें प्रथम श्रेणीका रहा होगा।
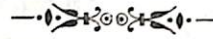
शिव-तत्त्व-सम्बन्धी कुछ चित्र और मथुराका शैव-स्तम्भ

(लेखक—श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०)

इस लेखमें हम कुछ चुनी हुई उन मूर्तियोंका परिचय देना चाहते हैं जो शैवधर्मसे सम्बन्ध रखती हैं और मथुराके सङ्ग्रहालयमें सुरक्षित हैं। इस लेखके साथ १५ चित्र हैं। इनमें चित्र-संख्या १ और २ के शिवलिङ्ग न तो मथुराके हैं और न वहाँके सङ्ग्रहालयमें ही हैं। परन्तु ये दोनों भारतवर्षके अत्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध शिवलिङ्ग हैं, इसकारण यहाँ इनका भी समावेश कर लिया गया है। शैव-स्तम्भका चित्र इनसे अलग है।

शिव-तत्त्वका आदिमूल वेदोंमें है। वहींसे विकसित होकर वह इस समय नाना रूपोंमें फैल गया है। शिवका स्वरूप प्राचीन योगविद्याका व्याख्यान है, यह हमने अन्यत्र दिखानेकी चेष्टा की है। यहाँ केवल कलाकी दृष्टिसे चित्रोंमें दी हुई मूर्तियोंका परिचय कराया जाता है। मथुराके प्राचीन इतिहासमें एक युग ऐसा आया जब वहाँ भक्तिधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली मूर्तियाँ प्रधानतासे बनने लगीं। ईस्वी सन्‌की प्रथम, द्वितीय और तृतीय शताब्दियाँ इस कार्यके लिये बहुत उपयुक्त सिद्ध हुईं। इस समय बौद्ध-धर्मकी बढ़ती हुई भक्ति-भावनाको तृप्त करनेके लिये मथुराके शिल्पियोंने ही सर्वप्रथम बुद्धभगवान्‌की पत्थरकी मूर्ति बनायी। इसी समय वहाँ भागवतधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली वैष्णवमूर्तियाँ और शैवधर्मकी भक्ति-भावनाओंको मूर्त करनेवाली शैव-मूर्तियोंका बहुत अधिक निर्माण हुआ। विष्णु, सूर्य, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सप्तमातृका, ब्रह्मा, इन्द्र, लोकपाल, गणपतिकी सबसे पहली मूर्तियाँ मथुरामें ही बनायी गयीं। इस बातके यथेष्ट प्रमाण मथुराकी कलामें मौजूद हैं। शिवलिङ्गकी सर्वप्रथम कल्पना मथुरासे अन्यत्र ही हुई; परन्तु कुषाणकालमें उसका अत्यधिक विकास मथुरामें हुआ, यह असन्दिग्ध है। अब चित्रोंका वर्णन पढ़िये।

चित्र १ *—इस चित्रमें जिस शिवलिङ्गका उदाहरण है वह भारतवर्षके शिवलिङ्गोंमें सबसे प्राचीन माना जाता है। इसका ऐतिहासिक काल ईसासे दो शताब्दी पूर्वका है। मद्रास-साउथ-मराठा-लाइनपर एक स्टेशन 'रेणिगुण्ट' है। उस स्टेशनसे छः मील दूर गुडिमल्लम् नामक गाँवमें यह शिवलिङ्ग है, इसीसे यह गुडिमल्लम् लिङ्गके नामसे ऐतिहासिकोंको ज्ञात है। पर इसका असली नाम 'परशुरामेश्वर' है। रेणिगुण्ट (रेणुकाकण्ठ) नाममें भी 'रेणुका' शब्द आता है। अवश्य ही प्राचीन समयमें परशुराम और रेणुकाकी कथासे इस स्थानका कोई सम्बन्ध कल्पित किया गया था। आकृतिमें भी यह शिवलिङ्ग और सबोंसे विलक्षण है। कायपरिमाणवाले, खड़े हुए पुरुषके बायें हाथमें परशु भी है, सम्भवतः इससे खण्डपरशु भृगुपतिका ही तात्पर्य है। उनके दाहिने हाथमें एक मेष है जो नीचेकी ओर लटका हुआ है। बाएँ हाथमें परशुके साथ ही एक कमण्डलु भी है जो ब्राह्मधर्मका द्योतक है। भृगुपति परशुराम ब्राह्म और क्षात्र आदर्शोंके समन्वय हैं। उन्होंने कहा था—

अग्रतश्चतुरो वेदान् पृष्ठतः सशरं धनुः।
उभाभ्यां च समर्थोऽस्मि शापापि शरादपि॥

अर्थात् आगे चार वेदों (शास्त्र) को और पीछे धनुर्बाण (शस्त्र) लिये हुए मैं शाप और शर दोनों (से शासन करने) में समर्थ हूँ। यह लिङ्ग पाँच फुट ऊँचा है। नीचेकी चौकोर पिण्डिका इसके अतिरिक्त है। आगमोंमें स्वायम्भुव, दैवत, गाणपत्य, आसुर, सुर, आर्ष, राक्षस, मानुष, बाणलिङ्ग—ये लिङ्गोंके भेद हैं। यह मानुष-लिङ्ग है। मानुष-लिङ्गका भी एक

* यह चित्र 'बृहत्तर भारतमें शिव' शीर्षक लेखके साथ अन्यत्र प्रकाशित है। इसीसे इस लेखके साथ नहीं छापा गया।—सम्पादक

२ गुप्तकालीन भव्य शिवलिंग

३ हरिहर-मूर्तिका सिर
४ हरिहर

५ एकमुखी शिवलिंग
६ गुप्तकालीन सुन्दर एकमुखी लिंग

७ इसवी द्वितीय शताब्दीकी महिषासुरमर्दिनी दुर्गा

८ गुप्तकालीन नृत्यरत गणपति-मूर्ति

९ पञ्चमुखी शिवलिंग

१० उमा-महेश्वर-मूर्ति

११ चतुर्भुजी चन्द्रशेखर-मूर्ति

१२ सेनानी स्कन्द कार्तिकेय, गुप्तकाल

भेद 'मुखलिङ्ग' होता है, जिसमें शिवलिङ्गके ऊपर मुखकी आकृति चित्रित रहती है (देखिये चित्र २, ५, ६-९)। इस लिङ्गमें मुखाकृतिकी जगह पूरी मानुषाकृति है, अतएव यह सबसे विलक्षण है। मानुष-लिङ्गोंके शास्त्रोंमें तीन भाग माने गये हैं। अर्थात् सबसे नीचेकी पिण्डिका 'ब्रह्मभाग', बीचका स्तम्भ 'विष्णुभाग' और ऊपरकी मणि 'रुद्रभाग' कहलाता है। सम्पूर्ण लिङ्ग ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रकी समष्टि है। लिङ्ग एक सङ्केत (Symbol) है। उसके पहले अनन्त अव्यक्त है, जिसका पता ब्रह्माजीको भी नहीं लगा जो सृष्टिके आदिकर्ता हैं। उसके बाद भी अनन्त अव्यक्त है, जिसका पता विष्णुको भी नहीं लगा, जो प्रलय होनेपर शेषशायीरूपमें रहते हैं। इन दो अनन्त अव्यक्तोंके बीचमें व्यक्तकी एक झाँकी है। यही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र नामक त्रैगुण्यकी समष्टि है। यही एकमात्र सङ्केत या लिङ्ग (symbol, pointer) है, जिससे अनन्तकी ख्याति होती है।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

इस अव्यक्त-व्यक्त-अव्यक्त नियमका मूर्त चित्रण शिवलिङ्ग है। शिवके इस मूर्तरूपकी, जिसका नाम ब्रह्माण्ड है, इयत्ता आजतक किसीने नहीं जानी और न आगे कोई जान सकेगा। अण्डाकार शिवलिङ्ग ब्रह्माण्डकी पिण्डी (miniature) है। यह शान्त है, पर वृत्तकी तरह अनन्त है। इस पिण्डाकृतिमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—तीनोंका ही खेल है। इस व्यष्टि-त्रैगुण्यका आधार शक्ति (Cosmic Force) या प्राण है, जो प्राण स्वयं ब्रह्मरूप है। हमारे पूर्वोल्लिखित सर्वप्राचीन शिवलिङ्गमें ब्रह्मभाग, विष्णुभाग, रुद्रभाग—तीनोंका पृथक् निर्देश अत्यन्त स्पष्ट है। इसके आधारपर मनुष्य स्थित है। उसका वाहन एक अपस्मार यक्ष है, जिसपर विजय पाकर मनुष्य देवत्व प्राप्त करता है और जिससे पराजित होनेपर वह स्वयं वामन, खर्व, पतित हो जाता है। अनन्तका जो पिण्डगत रूप है उसीसे मनुष्यका कार्य-निर्वाह हो रहा है। मनुष्यने जितने भागको आत्मसात् कर लिया है, उसीसे उसका सम्बन्ध है। अनन्त ज्ञान, बल, प्राण, अन्न—सबमें मनुष्यको अपने कायपरिमाणतक ही भाग मिला है। जितना उसकी देहमें समा गया वह उसका, अन्य सब शेष है।

चित्र २—लगभग पञ्चम शताब्दीका यह शिवलिङ्ग कलाकी दृष्टिसे पूर्णतम माना गया है। यह 'खोह' नामक स्थानमें वाकाटक सम्राटोंकी अध्यक्षतामें बना था। चतुरस्र पिण्डिकाके ऊपर मुखात्मक लिङ्गकी स्थापना है। त्रिनेत्रत्व स्पष्ट है। मस्तकपर जटाजूटको उद्भासित करनेवाली चन्द्रकला है। गुप्तकालकी सर्वश्रेष्ठ बुद्ध-मूर्तियोंसे इस शिवलिङ्गकी तुलना की जा सकती है। इसमें 'नवद्वारनिषिद्धवृत्ति मन' की समाधिमत्ता देखते ही बनती है। अखण्ड योगका अपूर्व चित्रण है।

चित्र ३ और ४—ये दोनों गुप्त-समयके हैं। इनमें हरि-हरकी एकता दिखायी गयी है। आधा भाग शिवका और आधा भाग विष्णुका है। समस्त हिन्दू-संस्कृतिका मूलमन्त्र शिव-विष्णुकी एकता है, उसीकी अभिव्यक्ति इन मूर्तियोंमें है। कालिदासने 'कुमारसम्भव' के दूसरे सर्गमें ब्रह्माकी स्तुतिके समय जो श्लोक कहे हैं उनमें इन उपल-मूर्तियोंके समान ही शिव-विष्णुकी एकता घटित हुई है। देवता ब्रह्माजीसे कहते हैं—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे॥

अर्थात् अव्यक्त दशामें जो तत्त्व एक है, वही व्यक्त दशामें 'त्रिमूर्ति' होता है। इन त्रिदेवोंमें छोटा-बड़ा कोई नहीं है। मधुसूदनसरस्वतीने 'महिम्न' की टीकामें लिखा है—

भूतिभूषितदेहाय द्विजराजेन राजते।
एकात्मने नमस्तुभ्यं हरये च हराय च॥

यही एकात्मक हरि-हरमूर्ति इस चित्रमें दर्शित है। सृष्टि और प्रलयको मिलानेसे ही चित्र पूरा बनता है। अकेली सृष्टि या अकेले प्रलयको कल्पना अवैदिक है। सृष्टि और प्रलयकी संयुक्त मूर्ति हरि-हरमूर्ति है। एक-एक परमाणुमें यह मूर्ति विराजमान है। इसके बिना चित्र अधूरा रहता है। संगठन और विघटन एक साथ ही चलते रहते हैं। हममेंसे कोई भी ऐसा नहीं है, जिसके भीतर यह संश्लिष्ट हरि-हर विराजमान न हों। इस शरीरमें प्राण और अपान ही हरि-हर हैं। वस्तुतः वैदिक प्राणापानका पौराणिक नाम 'हरि-हर' है। वेदोंमें कहा है—

नमस्तेऽस्तु प्राणते नमस्तेऽस्त्वपानते।

इसीको पौराणिक भाषामें इसप्रकार कहा गया है—

एकात्मने नमस्तुभ्यं हरये च हराय च॥

त्रयी विद्या, याज्ञिक कर्मकाण्ड, समस्त ब्राह्मण और उपनिषदोंमें प्राणापानके युगपत्कार्यका दिग्दर्शन है। भारतीय संस्कृतिका यह एक सूत्र है-'प्राणापान।' योगस्थ पुरुषोंकी यही विशेषता है कि वे जिन्दगीके साथ मौतको भी देखते रहते हैं, प्राणके कार्यमें अपानको तिरोहित नहीं होने देते, हरिके वैभवमें हरके दिगम्बरत्वका भी स्मरण रखते हैं।

जिन लोगोंने यथार्थ नहीं समझा वे शिव और विष्णुके अलग दल बनाकर युद्ध करने लगे। असलियत यह है कि शिव और विष्णु एक ही तत्त्व द्विधाभिन्न हैं। 'विद्वन्मोद-तरङ्गिणी' के कर्ताने शैव-वैष्णवोंके भीषण मतभेदका दिग्दर्शन कराके अन्तमें यही निर्णय दिया है कि मैंने समस्त शास्त्र, पुराणोपपुराण और स्मृतियोंका अवलोकन किया है, पर कहीं भी शिव और विष्णुका भेद मुझे नहीं मिला। उत्तरी भारतमें कालिदास और तुलसीदासने इसी शिव-विष्णुकी एकताको दिखानेका जितना कार्य किया, उतना अन्य किसीने नहीं। उनके आदर्शोंका मूर्तिमन्त रूप इन्हीं हरि-हर-मूर्तियोंमें प्रकट है।

चित्र ५ और ६-ये दोनों भी एकमुखी शिवलिङ्ग हैं। नम्बर ६ कलाका उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ शक्तिकी 'एकैव मूर्ति' दिखायी गयी है।

चित्र ७-इस चित्रमें कुषाणकालकी महिषासुरमर्दिनी दुर्गा दिखायी गयी है। इसप्रकारकी अगणित मूर्तियाँ मथुरामें पायी गयी हैं।

वेदोंमें प्राणके उग्र और शान्त, उष्ण और शीत—दो रूप माने हैं। अशान्तको शान्त बनाना ही योग है। इन्हींका नाम 'प्राणापान' या 'अग्नीषोम' है। अपान उग्रका रूप है। इस सिद्धान्तकी बातको पौराणिक भाषामें 'वृष' और 'महिष' का नाम दिया गया। लोकमें देखनेसे वृष सफेद और शान्त है, उसे धूपकी बर्दाश्त होती है।

महिष (भैंसा) कृष्ण और उष्ण है, वह गर्मीको नहीं सह सकता। इसीकारण शिव, जो योगीश्वर हैं, जिन्होंने कामको जीत लिया है, 'वृष-वाहन' कहे गये हैं। योगी सदा वृषवाहन होता है। महिष यमराजका वाहन है। यम उष्ण या प्राणकी अशान्त शक्ति हैं। उनका अनुरूप वाहन महिष है। शतपथब्राह्मणमें कहा गया है—

प्राणा वै महिषाः (६।७।४।५)

अर्थात् प्राणोंकी ही एक संज्ञा 'महिष' है। ये उग्र, अशान्त, घोर प्राण हैं। इनको शान्त करना, इनपर अधिकार पाना—पौराणिक भाषामें इस असुरका मर्दन आवश्यक है। प्राण ही सुर-असुर है। आसुरी प्राणका संयम शान्ति, आयु और वर्चस्को देता है। असुर-संहारकी अनेक कथाओंमें इन आसुरी प्राणोंकी घोरताको शान्त-दान्त करनेका ही रूपक है। इस महिषासुरपर देवी विजय प्राप्त करती है। उसका वध करके उसे नवीन जन्म देती है, इस नये देहमें महिष दिव्यरूप होकर संग्राम बन्द करके देवीकी स्तुति करता है। महिषासुर नाशके स्थानमें जीवनका संवर्धन करने लग जाता है। काम-शक्ति, जब वह अशान्त होती है, शरीर-कोषोंका विघटन करती है और वही शान्त होकर मस्तिष्कमें अमृतवर्षा करती है। यह देवी त्रिशूलकी स्वामिनी है। त्रिककी ही संज्ञा 'त्रिशूल' है।

चित्र ८—यह गुप्तकालीन मूर्ति नृत्तगणपतिकी है। गणपति कमलपर ताण्डव कर रहे हैं। यह मूर्ति बहुत सुन्दर और दुर्लभ है।

चित्र ९—पञ्चमुखी शिवलिङ्ग। यह मथुराके सङ्ग्रहालय-में सुरक्षित है। इसका ऊर्ध्वस्थित पाँचवाँ सिर खण्डित हो गया है। हम यह कह चुके हैं कि शिवतत्त्व और योग-विद्या समानार्थक हैं। योगमें मूर्त-शक्तिको मेरुदण्डके पाँच चक्रोंमें स्थापित, पञ्चात्मिका माना है। एक-एक चक्रमें एक-एक तत्त्वका अधिष्ठान है। पञ्चतत्त्व, पञ्चचक्र और पञ्चेन्द्रियाँ—ये परस्पर सम्बद्ध हैं। मूलाधार (पृथिवी), स्वाधिष्ठान (जल), मणिपूर (तेज), अनाहत (वायु) और विशुद्धि (आकाश)—ये पञ्चभौतिक शक्तिके केन्द्र हैं। इनसे परे छठा आज्ञाचक्र अभौतिक है। इन्हींका पञ्चधा विकास मनुष्यकी पाँच इन्द्रियोंके द्वारा होता है। अन्तर्निहित समस्त शक्तियाँ पञ्चप्राणोंके रूपमें प्रकट हो रही हैं। एक ही शक्ति त्रैगुण्यरूपमें त्रिधा और पञ्चप्राणरूपमें पञ्चधा कल्पित है। ये पाँचों पृथक् होते हुए भी संयुक्त हैं। सुषुम्णा और मस्तिष्कके द्वारा सब संस्थानोंकी एकता है। कलामें इसका उदाहरण पञ्चमुखी शिवलिङ्ग है। कामदेवको पञ्चबाणवाला इसीलिये कहा है, क्योंकि पञ्चविषयोंके द्वारा वह इन्द्रियों-को भोगासक्त करता है। कामको भस्म करनेवाले शिव भी पञ्चात्मक हैं। अतएव शिवकी एक संज्ञा 'पञ्चानन' है। सबसे ऊपरका मुखलिङ्ग पूर्वाभिमुख रहता है। उसे आगमोंमें 'ईशान' कहते हैं। पूर्वके मुखलिङ्गको तत्पुरुष,

दक्षिणाभिमुखको अघोर, पश्चिमाभिमुखको सद्योजात और उत्तराभिमुखको 'वामदेव' कहा गया है। सन्ध्याके मनसापरिक्रमाके मन्त्रोंमें प्राची, दक्षिणा, प्रतीची, उदीची, ऊर्ध्वा—इन दिशाओंका सम्बन्ध पञ्चप्राणोंसे है, जिनके नाम आगमोंके समान ही कुछ विचित्र हैं, यथा—असित, तिरश्चिराजि, पृदाकु, स्वज और कल्माषग्रीव कहे गये हैं। ये सर्पोंके नाम समझे जाते हैं। वस्तुतः वैदिक परिभाषामें प्राण ही सर्प हैं तथा पञ्चइन्द्रियलोक ही पञ्चसर्प हैं, जिनमें निरन्तर प्राण प्रवेश या सर्पण करते हैं।

यह पञ्चमुखी शिवलिङ्ग कुषाणकालीन है। इस युगमें पञ्चमुखी नागियोंके भी अनेक चित्र बनाये गये। शरीरस्थ शक्तिकी एक संज्ञा 'नागी' या 'कुण्डलिनी' मानी गयी, इसी कारण पञ्चात्मिका शक्तिका कलात्मकरूप पञ्चमुखी नागी माना गया। इसप्रकारकी अनेक नागियाँ कुषाणकालमें बनायी गयीं।

चित्र १०—शिव-पार्वती नन्दीवृषके सहारेसे खड़े हुए हैं। यह मूर्ति दोनों ओरसे एक ही तरह खुदी हुई है। जो दृश्य मूर्तिके सम्मुख भागमें है, वही पृष्ठभागमें है। इस चित्रमें शिव ऊर्ध्वरेत दिखाये गये हैं और उनके हाथमें नीलोत्पल है। विवाहके अनन्तर कौतुकागारस्थ शिव-पार्वतीकी कल्पनाको इस चित्रमें मूर्त किया गया है। विघूर्णित नन्दी पहरा दे रहा है।

चित्र ११—चतुर्भुजी शिवमूर्ति, जिसमें सब उपकरण स्फुट दिखाये गये हैं। डमरू, रुद्राण्ड, सर्प, त्रिशूल, कपालमाला, चन्द्रमा—सब स्फुट हैं। मूर्ति नयी है।

चित्र १२—मयूर-वाहनपर स्वामिकार्तिकेय सवार हैं, जिनको कृत्तिकाएँ स्नान करा रही हैं। स्कन्दकी बायीं ओर मेष है। छः कृत्तिकाएँ स्कन्दकी माता थीं, इसीकारण स्कन्दको 'षाण्मातुर' कहते हैं। पुराणोंमें लिखा है कि स्कन्दके जन्मके समय कृत्तिका नक्षत्र था, कृत्तिकामें जन्म होनेके कारण उन्हें 'कृत्तिकापुत्र' कहा गया। कृत्तिकाकी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे अग्नि-पुत्र हुए। कृत्तिकाका अधिपति भी अग्निदेवता है। अग्निका वाहन मेष है, जिसका चित्रण स्कन्दके बायीं ओर है। स्नान करानेवाली माताओंको तीन-तीन सिरवाली बनाया गया है, जिससे षट्माताओंका बोध हो सके। वस्तुतः स्वामिकार्तिकेयके स्वरूपका इतना पूर्ण परिज्ञान करानेवाली और कोई दूसरी मूर्ति इस देशमें नहीं मिली है। इस मूर्तिको कालिदासके कुमारसम्भवकी संक्षिप्त व्याख्या कहना चाहिये। स्कन्द शिवके मूर्त्यन्तर तेज अर्थात् उनके पुत्र हैं। षट्चक्रोंमें समुदित या सम्भृत शिवके तेजसे स्कन्दका जन्म हुआ। इनको अग्रणी या सेनापति बनाकर देवोंने तारकासुरपर विजय पायी। कालिदासने लिखा है—

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः।

अर्थात् देव-सेनाओंकी रक्षाके लिये सुषुम्णामें अपने तेजका सञ्चय करके शिवने उसे स्कन्दरूपमें प्रकट किया है।

चित्र १३—यह मूर्ति द्वितीय शताब्दीकी है। भारतवर्षमें उपलब्ध सप्तमातृकाओंकी मूर्तिमें यह सबसे प्राचीन है। सप्तमाताएँ सात स्त्रियोंके रूपमें दाहिने हाथमें कमलपुष्प लिये खड़ी हैं। उनके दोनों ओर दो आयुधधारी अङ्गरक्षक या आयुधपुरुष थे। खेद है कि बायीं ओरका आयुधपुरुष खण्डित हो गया है और वह चित्रमें नहीं है। सप्तचक्रोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ सप्तमातृकाएँ हैं।

चित्र १४—इस चित्रमें भी सप्तमातृकाएँ दिखायी गयी हैं। उनके एक ओर वीरभद्र और दूसरी ओर गणपति हैं, जो उनके आयुधपुरुष हैं। यह चित्र ११ वीं शताब्दीके लगभगका है। इसमें सप्तमातृकाओंके स्वरूपका बहुत विकास हो गया है और उनके भिन्न-भिन्न वाहन भी दिखाये गये हैं। सप्तमातृकाओंके नाम और वाहन ये हैं—

[१] ब्रह्माणी (हंस), [२] माहेश्वरी (वृष), [३] कौमारी (मयूर), [४] वैष्णवी (गरुड़), [५] वाराही (वराह), [६] इन्द्राणी (ऐरावत), [७] चामुण्डा (प्रेत)। चामुण्डाके सिवा और सबकी गोदमें बालक भी हैं।

चित्र १५-यह मथुरामें प्राप्त यूपका चित्र है। यूप यज्ञीय स्तम्भको कहते हैं। इसका सम्बन्ध शैव-मूर्तियोंसे नहीं है, फिर भी एक विशेष उद्देश्यसे हमने इसे यहाँ दिखाया है। वैदिक यूप मेरुदण्डकी आकृतिवाला है। इस यूपके तीन भाग हैं—पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक। यूपमें एक रशना लिपटी हुई है जिसमें साढ़े तीन लपेट हैं। रशनासे पशुबन्ध होता था। यज्ञके पुण्यसे यजमान यूपपर चढ़ता हुआ स्वर्गमें पहुँच जाता था। रशनासे नीचेका भाग और उससे ऊपरका भाग पृथिवीलोक है। सिरके

पास जो चौकोर निकला हुआ पत्थर है वह अन्तरिक्ष है, उससे ऊपर स्वर्ग है। यज्ञकी सिद्धिसे यजमान यूपके स्वर्ग-भागपर जा विराजता है। (स्वर्गको 'नाक' भी कहते हैं) अर्थात् नाकपृष्ठपर विराजमान होता है या नाकसद् बन जाता है। देवता भी 'नाकसद्' या 'दिवौकस्' कहलाते हैं। योगकी भाषामें यूपका पृथिवी-भाग मेरुदण्ड (Spinal column) है, अन्तरिक्ष मध्यभाग या Spinal bulb है, स्वर्ग मस्तिष्क (Brain) है। रशना कुण्डलिनी है। यही शिवके शरीरपर लिपटी रहती है। इसीमें पशु (Base, uncontrolled instincts) बाँधे जाते हैं। इसीसे शिव 'पशुपति' हैं। या जैसा ब्राह्मणोंमें कहा है—

रुद्रः पशूनामीष्टे

'रुद्र पशुओंका ईश है, वह पशुओंपर शासन करता है।' 'पश्यतीति पशुः'—मनोभाव पशु हैं जो स्वाभाविक संस्कारोंसे काम करते हैं, जिनके कार्य बुद्धिपूर्वक नहीं होते। अंग्रेजीमें इन्हें Instincts कहते हैं जो Intelligence से भिन्न हैं। वैदिक परिभाषामें Instincts अग्नि और Intelligence इन्द्र है। यज्ञमें अग्नि और इन्द्रका समन्वय है। यही पूर्णता है। ध्यानयोगमें इसी तत्त्वको शिव और कुण्डलिनी-जागरणकी कल्पनासे व्यक्त किया जाता है। कुण्डलिनी या शक्तिका क्षेत्र भी मेरुदण्डगत सुषुम्णा नाडी है। इसकी आकृति ठीक यूपके आकार-जैसी ही होती है। सुषुम्णा मस्तिष्कमें जहाँ प्रवेश करती है वहाँ वह किञ्चित् वक्र या कुटिल हो जाती है। यही बात वैदिक यूपके अग्रभागमें दिखायी गयी है। इस यूपकी विशेष विवेचनासे यह बात स्थिर हो जायगी कि यूपके चारों ओर जो याज्ञिक कर्मकाण्ड है उसका उद्देश्य वही था जो योगके द्वारा कुण्डलिनीको जाग्रत करनेका था, अर्थात् मन और उसकी निहित शक्तियोंपर पूर्ण संयम और शासन प्राप्त करना, जिससे महनीय इस लोकमें और कुछ भी नहीं है।

मेरुदण्ड एक यूप है, जिसमें सब मनुष्य वध किये जानेके लिये बँधे हुए हैं। एक-न-एक दिन अवश्य ही काल हमारा हनन या विशसन करेगा। वस्तुतः नित्यप्रति ही हम मृत्युकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। इस यूपके बन्धनोंसे कोई भी बचकर नहीं निकल सकता। गर्भमें बच्चेकी सृष्टिके लिये जो निर्माण-क्रिया प्रारम्भ होती है, उसमें सबसे पूर्व मेरुदण्डका ही सूत्रपात होता है। उस यूपपर ही पीछेका सब भवन बनता है। वृक्षोंमें, पत्तियोंमें, वनस्पतियोंमें भी इसी प्रकारका केन्द्र या यूप पाया जाता है। इसी यूपमें शुनःशेप बाँधा गया था। उसका वध निश्चित था। स्वयं उसका पिता अजीगर्त ही उसके हननके लिये कटिबद्ध हो गया। यह देखकर शुनःशेपने सोचा, 'हाय! पशुकी भाँति आज ये लोग मेरा वध कर डालेंगे। मैं अपने बचनेके लिये क्या करूँ?' अन्तमें वह उस वरुणकी शरणमें गया जिसके नियमोंकी पूर्तिके लिये शुनःशेपकी बलि हो रही थी। जन्मसे लगाकर प्रतिपल वरुणका उग्र 'ऋत' बराबर इस बातकी पुकार करता है कि 'हे मनुष्यो! तुम इस गूढ़ पहेलीको समझकर इन पाशोंसे अपने आपको मुक्त करनेका प्रयत्न करो। अन्यथा इस महान् पाशमय जालसे छोटा-बड़ा कोई जल-जन्तु आजतक बचकर नहीं निकल सका। शुनःशेपके ज्ञानसे वरुण प्रसन्न होता है। शुनःशेप इस यूपके वध्य-बन्धनोंसे मुक्ति पा जाता है। ऐतरेयब्राह्मणके इस वैदिक उपाख्यानमें जो बन्ध-मोक्षका रहस्य है, वही योगसाधनासे प्राप्त किया जाता है। यमने नचिकेताको इसी पुरातनी योग-विद्याका उपदेश किया था। यही योग शिवतत्त्वमें पाया जाता है।

मथुराका शैव-स्तम्भ

मथुराके सङ्ग्रहालयमें साढ़े पन्द्रह सौ वर्ष पुराना एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण शैव-स्तम्भ है। इसपर ३८० ईस्वीका एक लेख है, जिससे शैव-सम्प्रदायके प्राचीन इतिहासपर बहुत प्रकाश पड़ता है। डाक्टर देवदत्त रामकृष्ण भाण्डारकरने जनवरी १९३१ की 'एपिग्राफिआ इण्डिका' में इस लेखका विस्तृत सम्पादन किया है। लेख इसप्रकार है—

पंक्ति १—सिद्धम्। भट्टारक-महाराज-राजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्तस-
,, २—त्पुत्रस्य भट्टारक-महाराज-राजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त-
,, ३—स्य विज [य] राज्य संवत्सरे ··· [गुप्त] कालानुवर्तमानसं-
,, ४—वत्सरे एकषष्ठे ६०१ [आषाढमासे] प्रथमे शुक्रदिवसे पं-
,, ५—चम्यां। अस्यां पूर्वायां भगवत्कुशिकाद्दशमेन भगव-
,, ६—त्पराशराच्चतुर्थेन [भगवत्कपि] पि [ल]-विमल-शि-
,, ७—ष्यशिष्येण भगवदु [पमित]-विमल-शिष्येण
,, ८—आर्योदिताचार्येण स्वपुण्याप्यायननिमित्तं
,, ९—गुरूणां च कीर्त्य [मुपमितेश्व] र-कपिलेश्वरौ
,, १०—गुर्व्वायतने गुरु··प्रतिष्ठापितौ नै-
,, ११—तत्ख्यात्यर्थमभिलिख्यते [अथ] माहेश्वराणां वि-

१३ इसवी द्वितीय शताब्दीकी सप्तमातृकाएँ
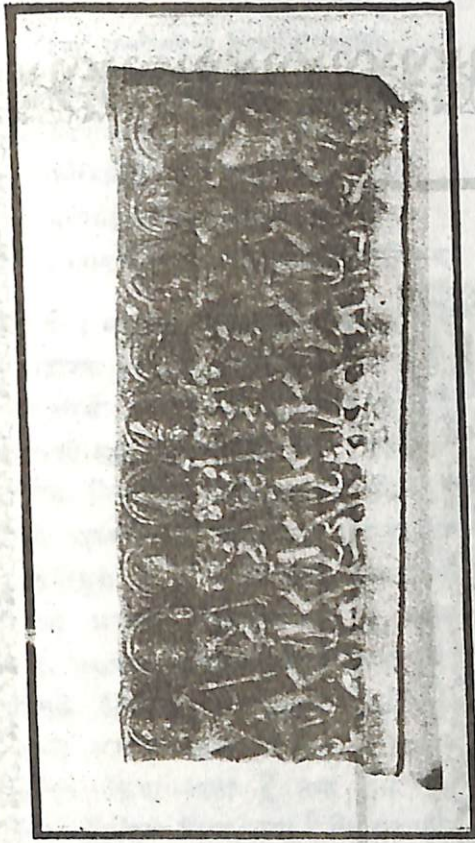
१४ मध्यकालीन सप्तमातृकाएँ, वीरभद्र गणपतिसमेत
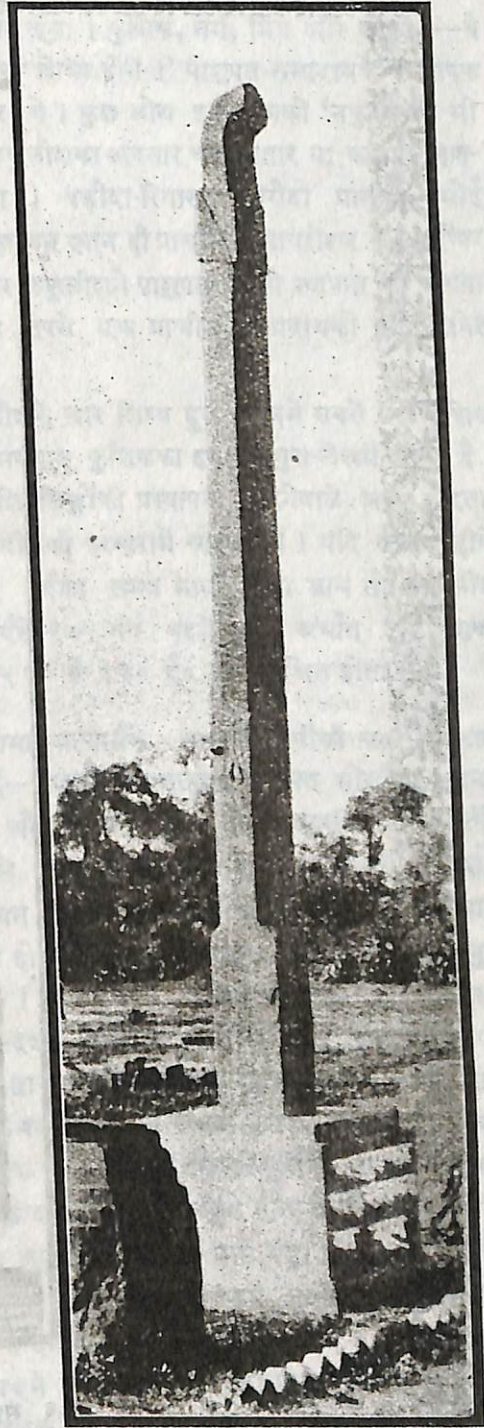
१५ मथुराका यज्ञीय यूप
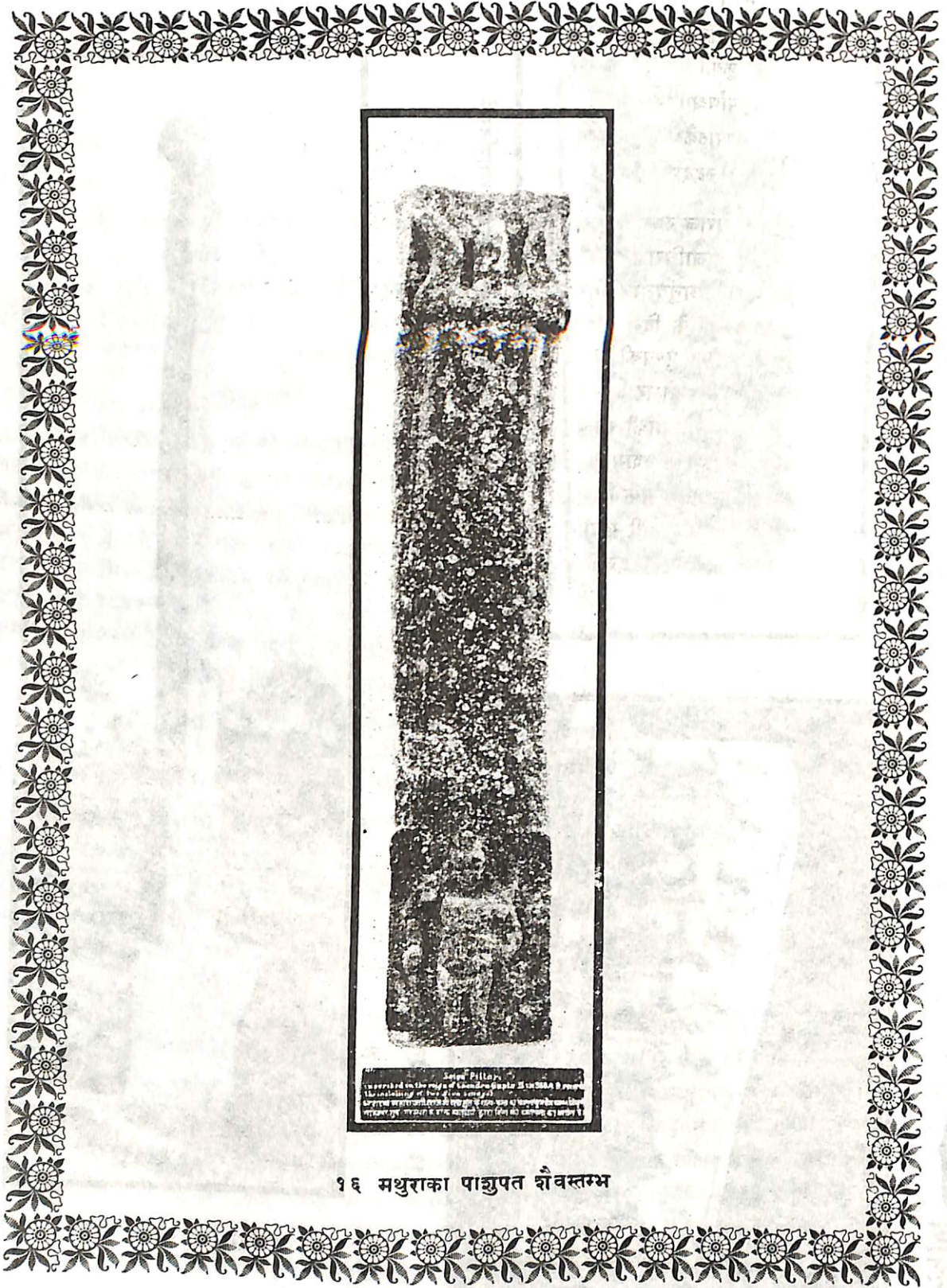
१६ मथुराका पाशुपत शैवस्तम्भ

,, १२—ज्ञप्तिः क्रियते सम्बोधनं च यथाकालीनाचार्या-
,, १३—णां परिग्रहमिति मत्वाविशङ्कं पूजा-पुर-
,, १४—स्कारपरिग्रहपरिपाल्यं कुर्यादिति विज्ञप्तिरिति ।
,, १५—यश्च कीर्त्यभिद्रोहं कुर्याद्यश्चाभिलिखितमुपर्यधो
,, १६—वा स पञ्चभिर्महापातकैरुपपातकैश्च संयुक्तस्स्यात् ।
,, १७—जयति च भगवाण [भैरवः] रुद्रदण्डोग्रनायको नित्यम् ।

अर्थ—'सिद्धि हो । भट्टारक महाराज राजाधिराज श्रीसमुद्र गुप्तके सत्पुत्र भट्टारक महाराज राजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तके विजयी राज्य-संवत्सरमें ····'गुप्तकालानुवर्तमान ६१ वें वर्षके प्रथम आषाढ़मासकी शुक्ल पञ्चमीतिथिके दिन । इस तिथिमें गुरुओंकी कीर्तिके लिये और अपने पुण्यकी वृद्धिके लिये आर्योदिताचार्यने गुरुमन्दिरमें उपमितेश्वर और कपिलेश्वर नामक (गुरुप्रतिमायुक्त दो) शिवलिङ्गोंकी स्थापना की । आर्य उदिताचार्य भगवान् कुशिकसे दशम हैं, भगवान् पराशरसे चौथे हैं, भगवान् कपिलके शिष्यके शिष्य हैं और भगवान् उपमितके शिष्य हैं । कुछ अपनी ख्यातिके लिये यह विज्ञप्ति हमने नहीं लिखायी, बल्कि इसके द्वारा सब माहेश्वरोंको सूचित किया जाता है तथा इस समयके आचार्योंकी सेवामें निवेदन किया जाता है कि इस परिग्रह-को अपना मानकर निःशङ्कभावसे इसकी पूजा, सम्मान और रक्षा करें, यह प्रार्थना है । जो इस कीर्तिके कामको नष्ट-भ्रष्ट करेगा या लेखमें कोई अक्षर घटावेगा-बढ़ावेगा वह पञ्चमहापातक और पञ्चउपपातकोंके पापका भागी होगा ।

रुद्र-दण्डवाले उग्रनेता भगवान् भैरवकी जय हो ।'

इस लेखके सम्बन्धमें इतिहाससम्बन्धी विवेचन बहुत विस्तृत है, परन्तु कल्याणके पाठकोंका उस नीरस विवादसे कुछ प्रयोजन नहीं है । निष्कर्षरूपमें पुराण और इतिहास तथा शिलालेखोंसे जो कुछ मथकर निकाला गया है, वह इसप्रकार जान लेना चाहिये ।

शैवोंमें पाशुपत-सम्प्रदाय बहुत प्राचीन है । इसमें शिवकी उपासना पशुपतिरूपमें की जाती थी । महाभारतमें शैवोंकी केवल पाशुपत-शाखा ही पायी जाती है । वायुपुराण (अध्याय २३, श्लोक २१७–२२५) और लिङ्गपुराण (अध्याय २४, श्लोक १२४–१३३) में पाशुपत-सम्प्रदाय और उसके संस्थापक शिवजीके अवतारका वर्णन है । लिङ्ग-पुराणके अनुसार शिवजीका कथन है—

'जब कृष्ण और व्यास भूतलपर होंगे तभी मैं लकुली नामसे कायावतार नामके सिद्ध-क्षेत्रमें ऊर्ध्वरेत ब्रह्मचारीके रूपमें अवतार लूँगा । कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य—ये मेरे चार योगी शिष्य होंगे ।' पाशुपत-सम्प्रदायके संस्थापक श्रीलकुलीश्वर थे । कुछ लोग इस नामको 'नकुलीश्वर' भी मानते हैं । लकुलीशका अवतार कायावतार या कायावरोहण-क्षेत्रमें हुआ । बड़ौदा-रियासतके बरौदा प्रान्तमें डभोई तालुकका कारवन स्थान ही प्राचीन कायावरोहण है । यहींपर उत्पन्न होकर लकुलीशने पाशुपत-मतकी स्थापना की अथवा अपने उग्र तपसे एक प्राचीन सम्प्रदायको पुनरुज्जीवित किया ।

लकुलीशके चार शिष्य हुए । इनमें सबसे बड़े कुशिक थे, इन्हीं भगवान् कुशिकका हमारे मथुरा-लेखमें वर्णन है । इसप्रकार शिवलिङ्गोंकी प्रस्थापना करनेवाले आर्य उदिता-चार्य लकुलीशकी परम्परामें ग्यारहवें थे । यदि एक पीढ़ीके लिये २५ वर्षका समय मान लिया जाय तो लकुलीश उदिताचार्यसे २७५ वर्ष पहले हुए । अर्थात् लकुलीशका काल १०५ ई० से १३० ई० तक निश्चित होता है ।

श्रीरामानुजाचार्यके समयमें शैवोंकी चार शाखाएँ मिलती हैं—कापाल, कालामुख, पाशुपत और शैव । इनमें पाशुपत और कालामुख—ये दोनों लकुलीशके सिद्धान्तोंके माननेवाले थे । सर्वदर्शनसंग्रहमें नकुलीश-पाशुपत-दर्शन-का विवेचन है और वहाँ उसकी तुलना शैव-दर्शनसे की गयी है । ज्ञात होता है कि शिव-सिद्धान्त लकुल-सिद्धान्तोंसे कुछ भिन्न थे । सर्वप्राचीन पाशुपत-दर्शनका ही अपर नाम लकुलीश-दर्शन समझना चाहिए । इन लकुलीशने उग्र तपस्याके द्वारा पाशुपत-व्रतका पुनरुद्धार किया । उनके शिष्य महाराष्ट्रके बड़ौदा स्थानसे फैलकर सुराष्ट्र, दक्षिण और उत्तर-में मथुरातक बस गये । लकुलीशकी मूर्तियाँ भी बहुत मिलती हैं । उनके दाहिने हाथमें लकुट होता है, जिसके कारण ही सम्भवतः लकुटी (ली) श नाम पड़ा होगा । बायें हाथमें बीजपूरक फल रहता है । मस्तकमें तृतीय नेत्र पाया जाता है, जिससे इनका त्र्यम्बकरूप सिद्ध होता है । चीनी यात्री हुएन्त्साङ्ने भी पाशुपत-सम्प्रदायका उल्लेख किया है । बाणके 'हर्षचरित' में पाशुपतोंका कई बार वर्णन आया है । हर्षके पुष्पभूतिवंशमें शिवकी भक्ति विशेषरूपसे प्रचलित थी । पाशुपतलोग अपने व्रतोंका बहुत उग्रताके साथ पालन करते थे, अतएव उनमें कुछ घोर प्रथाओंका भी

समावेश हो गया । परन्तु प्राचीन पाशुपत-मत विशुद्ध योग-सिद्धान्तका प्रतिपादक था । पाशुपतलोग जीवको 'पशु' और शिवको 'पशुपति' कहते हैं । सब पशु पाशबद्ध माने गये हैं । पशुपतिकी साधनासे पाशोंपर विजय प्राप्त की जाती है ।

संक्षेपमें मथुराके शिलालेखसे पाशुपत-सम्प्रदायके इतिहासपर जो प्रकाश पड़ता है उसका वर्णन डाक्टर भाण्डार-करके लेखके आधारपर यहाँ किया गया है । इस लेखके साथ दिये गये चित्रमें स्तम्भका जो भाग दृष्टिगोचर होता है उसपर एक त्रिशूल और एक लकुलीशकी दण्डहस्त-मूर्ति अङ्कित है ।

बम्बईकी कुछ विलक्षण शैवमूर्तियाँ

(लेखक—श्रीरणछोड़लालजी ज्ञानी, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०)

यद्यपि पौराणिक-मतानुसार ब्रह्मा सृष्टिके उत्पादक, विष्णु पोषक और शिव संहारक माने गये हैं, तथापि इन देवताओंमें विशिष्ट प्रसङ्गानुसार कहीं-कहीं उक्त तीनों गुणों-की भावना भी की गयी है।

शिवालयोंमें बहुधा हमें शिवलिङ्गके ही दर्शन होते हैं, परन्तु शिवकी भिन्न-भिन्न भावनायुक्त मनुष्याकार मूर्तियाँ बहुत ही कम स्थानोंमें स्थापित दीख पड़ती हैं । मनुष्याकार मूर्तियोंमें भी वे मूर्तियाँ दुर्लभ हैं जो शिवपुराणमें वर्णित घटनाओंको प्रदर्शित करती हैं । शिवलिङ्गको तो प्रत्येक हिन्दू पहचान सकता है; परन्तु उमा-महेश्वर-मूर्ति, चन्द्रशेखर-मूर्ति, आलिङ्गन-मूर्ति, अनुग्रह-मूर्ति और पुराणवर्णित अर्धनारीश्वर-मूर्ति, कालहर-मूर्ति, हरिहर-मूर्ति, अन्धकासुरवध-मूर्ति और गजासुरसंहार-मूर्ति आदि शैव-प्रतिमाओंको पहचाननेके लिये मूर्तिशास्त्र एवं शिवपुराणादिकी कथाओं-के ज्ञानकी आवश्यकता होती है ।

उपर्युक्त तीनों प्रकारकी कई मूर्तियाँ बम्बईके सङ्ग्रहालय-में संगृहीत हैं । यदि उनका सम्पूर्ण वर्णन और तुलनात्मक दृष्टिसे विवेचन किया जाय तो शायद एक पुस्तक तैयार हो जाय । अतः स्थलसङ्कोच और समयाभावके कारण कल्याणके पाठकोंके लिये केवल दो ही घटनात्मक मूर्तियों-का इस लेखमें उल्लेख किया जाता है और इसीके साथ एक अद्वितीय शैव-प्रतिमाका भी संक्षिप्त विवरण लिखा जाता है ।

अन्धकासुर-वध-मूर्ति

वराहपुराणमें लिखा है कि हिरण्याक्ष और हिरण्य-कशिपुके क्रमशः वराह और नृसिंह-अवतारद्वारा नाश होनेके पश्चात् कुछ दिनोंतक प्रह्लादादि भक्तोंके समयमें देवताओंको शान्ति मिली, परन्तु कुछ कालके अनन्तर उसी वंशमें अन्धकासुर नामक एक राक्षस उत्पन्न हुआ । वह बहुत ही शक्तिशाली था । उसने घोर तपश्चर्याके द्वारा ब्रह्माको प्रसन्न कर उनकी कृपासे इस लोकमें अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया और कुछ समय बाद वह देवलोकमें पहुँचकर देवताओंको कष्ट देने लगा । उसके डरसे स्वर्गके सारे देवता इधर-उधर भाग चले । तदनन्तर वह अपनी शक्ति और विजयसे मदोन्मत्त होकर एक बार कैलास पर्वत-पर जा पहुँचा और वहाँ भगवती पार्वतीका हरण करनेको तैयार हो गया । उसकी इस नीचता और धृष्टताको देखकर शिवजी कुपित होकर उसे दण्ड देने चले । विष्णु, इन्द्रादि देवता भी साथ हो लिये । शिवजीने वासुकि, तक्षक और धनञ्जय नामक तीन महासर्पोंको उत्पन्न कर उन्हें अपने कमरबन्द और बाजूबन्दोंके रूपमें सजाया और त्रिशूल लिये आगे बढ़े । युद्धके घमसानमें अन्यान्य देवता तो अन्धकासुरके सामने नहीं टिक सके । केवल शिवजी ही उससे लड़ते रहे । अन्धकासुरपर शिवजीने कई आक्रमण किये और उसे घायल किया, परन्तु पृथिवीपर पड़नेवाले उसके रक्तके प्रत्येक बिन्दुसे एक-एक नया अन्धकासुर उत्पन्न होने लगा । बहुत देरतक मुकाबला करनेके बाद आखिर शिवजीने असली अन्धकासुरके पेटमें त्रिशूल चुभाकर उसे वैसे ही उठा लिया । इसप्रकार त्रिशूलपर अन्धकासुरको उठाकर शिवजी नृत्य करने लगे, परन्तु फिर भी उसके रक्त-बिन्दुओंसे नये-नये अन्धकासुरोंकी उत्पत्ति जारी ही रही । इस बलासे बचनेके लिये विष्णुने अपना सुदर्शन छोड़ा, जो नवजात सभी राक्षसोंको काटने लगा; परन्तु ज्यों-ज्यों रक्त अधिक बहने लगा त्यों-ही-त्यों राक्षसोंकी संख्या भी बढ़ने लगी । आखिर, शिवजीने अपनी क्रोधाग्निकी ज्वालासे एक शक्ति उत्पन्न की और इसी प्रकार ब्रह्मा, महेश्वर, कुमार

परेलकी अद्वितीय शैव-मूर्ति

अन्धकासुरवध-मूर्ति
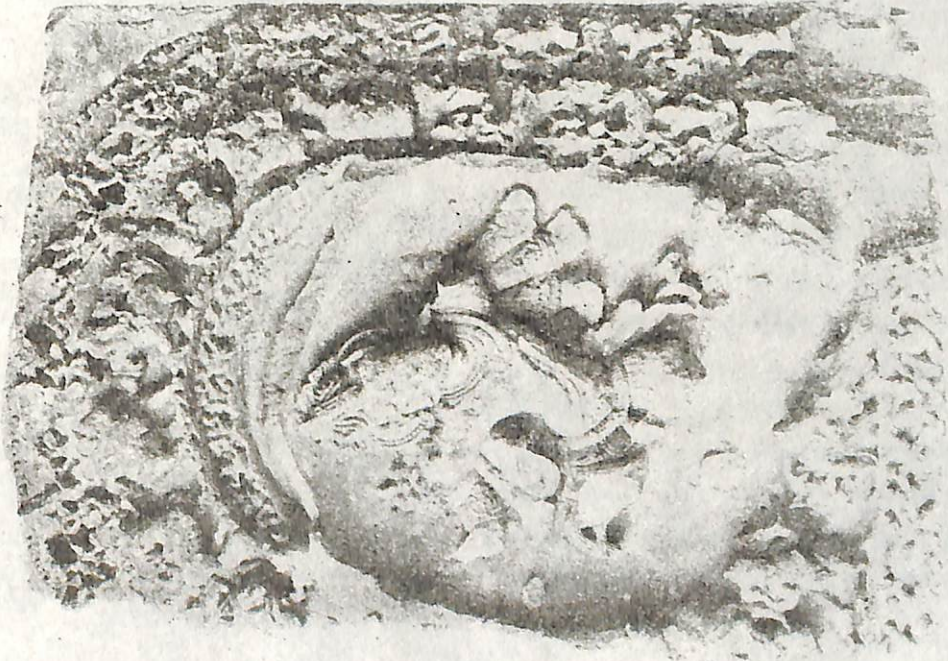
गजासुरसंहार-मूर्ति

विष्णु, वराह, इन्द्र और यमने भी अपनी-अपनी शक्तियों-को प्रेषित किया, जिनके वाहन और आयुध क्रमशः उपर्युक्त देवताओंके सदृश ही थे (इन देवियोंकी सप्तमातृकाके नामसे पूजा होती है, जिनके नाम ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा हैं) । इन देवियों और डाकिनियों आदिने मिलकर समस्त राक्षसोंका रक्त-शोषण कर लिया, जिससे पृथिवीपर खूनकी बूँदोंका गिरना बन्द हो जानेके कारण अन्धकासुरकी विस्तारलीलाका अन्त हो गया ।

इसप्रकार अन्धकासुर-वधकी कथाका ज्ञान होनेपर ही शिवजीकी उक्त घटना-प्रदर्शक मूर्तिको पहचाना जा सकता है।

इस लेखके साथ प्रकाशित अन्धकासुर-वध-मूर्तिके चित्रको देखनेसे पता चलता है कि शिवजी विकराल स्वरूप धारण किये खड़े हैं । एक पैरके नीचे अपस्मार दैत्य (जिसका शिवकी प्रत्येक नृत्यमूर्तिमें शिवके पैरोंके नीचे होना मूर्तिशास्त्रानुसार आवश्यक है ।) दबा है । दूसरा पैर पृथिवीपर तना हुआ है । दाहिने तरफके एक हाथमें परशु और एक बाँयें हाथमें नाग है । बाकीके दो हाथोंमें आप त्रिशूल थामे हैं, जिसपर अन्धकासुरको उठाये हुए हैं । उसके रक्तकी बूँदोंको झेलकर पी जानेके लिये (या शायद दानवके मांसकी लालसासे) डाकिनी* अपना मुँह ऊपरको किये अपस्मार दैत्यके बगलमें खड़ी है । अन्धकासुरकी ओर देखनेसे मालूम होता है कि अब उसका अभिमान और मद नष्ट हो चुका है और वह हाथ जोड़े शिवजीसे क्षमा-याचना कर रहा है ।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि हिन्दुओंकी प्रत्येक मूर्तिमें कुछ-न-कुछ गूढार्थ समाया हुआ होता है और उनके वर्णन प्रायः सब रूपक-अलङ्कारयुक्त हैं । ब्रह्मा, सरस्वती, शेषशायी विष्णु और गणपति आदिकी मूर्तियोंका रहस्य तो शायद कई पाठकोंको ज्ञात होगा । उन्हींकी भाँति अन्धकासुर-वधकी शिव-प्रतिमा भी अपना रहस्य रखती है । वराहपुराणमें उपर्युक्त कथाके वर्णनके अन्तमें लिखा है—

'एतत्ते सर्वमाख्यातं आत्मविद्यामृतम्'

* अन्धकासुर-वधकी किसी-किसी मूर्तिमें सप्तमातृकाएँ भी बगलमें खड़ी दृष्टिगोचर होती हैं, परन्तु इस मूर्तिमें तो अर्धनारी और अर्धपक्षिणीकी देहवाली डाकिनी ही दीख पड़ती है ।

अर्थात् 'इस कथासे आत्मविद्याका बोध होता है ।' शिवको विद्याका स्वरूप समझकर अविद्यान्धकाररूपी राक्षसके नाशकी कल्पना इस कथामें की गयी है । अनुभव-की बात है कि ऐसे कार्यमें पहले-पहल एकसे अनेक आपत्तियोंका सामना होता है और जबतक मनोवृत्तियोंके निरोधसे पूरा काम नहीं लिया जाता, सफलता प्राप्त नहीं हो सकती । वराहपुराणमें उपर्युक्त सप्तमातृकाओंके साथ एक योगेश्वरीका भी उल्लेख है। इन अष्टमातृकाओंके वास्तविक अर्थ इसप्रकार हैं ।

(१) योगेश्वरी = काम (५) कौमारी = मोह
(२) माहेश्वरी = क्रोध (६) इन्द्राणी = मत्सर
(३) वैष्णवी = लोभ (७) चामुण्डा = पैशुन्य
(४) ब्राह्मी = मद (८) वाराही = असूया

इसप्रकार इन आठों मानसिक दोषोंपर स्वामित्व प्राप्त करनेसे विद्वान्लोग अविद्यान्धकारपर विजय प्राप्तकर आत्मविद्याद्वारा अपना कल्याण कर सकते हैं । यही इस कथाका रहस्य है ।

गजासुर-संहार-मूर्ति

एक दूसरी मूर्ति, जो प्रायः दक्षिण-भारतमें ही अबतक पायी गयी है और अब दुर्लभ है, वह है शिवकी गजासुर-संहार-मूर्ति । इस नामसे ही ज्ञात हो सकता है कि यह मूर्ति गजासुरके वधकी है । परन्तु इसकी कथाके ज्ञानके बिना मूर्तिकी पहचान नहीं की जा सकती । कथा इसप्रकार है कि काशीनगरीके कृत्तिवासेश्वर महादेवके मन्दिरमें एक बार जब ब्राह्मणलोग पाठ-पूजा, जप-तपादिमें प्रवृत्त थे, एक हाथीके शरीरवाला राक्षस-गजासुर वहाँ आया और ब्राह्मणों-को कष्ट देने लगा । तपश्चर्याके भङ्गके कारण दुखी हुए भक्त ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये शिवजी मन्दिरके पाषाणनिर्मित शिवलिङ्गसे प्रकट हुए और उन्होंने उस राक्षसका वध किया और उसके शरीरकी खाल उतारकर ओढ़ ली । शिवके इस स्वरूपकी प्रतिमाको गजासुर-संहार-मूर्ति कहते हैं । यह कथा कूर्मपुराणकी है; परन्तु वराहपुराणमें लिखा है कि जिस समय शिवजी अन्धकासुरके साथ युद्ध कर रहे थे, नील नामक राक्षस हाथीका स्वरूप धारणकर शिवजीपर आक्रमण करनेके लिये आगे बढ़ा । शिवजीने तो उसे नहीं देखा; परन्तु नन्दीकी दृष्टि उसपर पड़ गयी, जिसने फौरन वीरभद्रको इशारा कर दिया । वीरभद्रने इस भयङ्कर हाथीका

मुकाबला करनेके लिये अविलम्ब सिंहका स्वरूप धारण कर लिया और उसे मार डाला। तत्पश्चात् उसकी खाल उतारकर उसे शिवजीकी भेट कर दिया। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे उस हस्तिचर्मको लेकर ओढ़ लिया। अतएव इस स्वरूपके शिवकी मूर्ति उपर्युक्त नामसे पहचानी जाती है।

अंशुमभेदागम, शिल्परत्न और अन्य शिवागमोंमें गजासुर-संहार-मूर्तिका वर्णन पाया जाता है। प्रथम कथित पुस्तकके अनुसार इस स्वरूपमें शिवके आठ हाथ होने चाहियें। कभी-कभी चार हाथवाली मूर्तियाँ भी देखी गयी हैं। इस लेखके साथ दिये हुए चित्रमें मूर्तिके हाथके आयुध तो नजर नहीं आते; परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उसके आठ हाथ हैं, जो आधे-आधे खण्डित हो गये हैं। मूर्तिशास्त्रके अनुसार ऐसी मूर्तियोंके दाहिने चार हाथोंमें त्रिशूल, डमरू, पाश और हाथीकी खाल और बायें हाथोंमेंसे तीनमें क्रमशः कपाल, हाथीका दाँत, हाथीकी खाल होनी चाहिये और चौथा हाथ विस्मयमुद्रायुक्त होना चाहिये। कुछ और ग्रन्थोंके अनुसार आयुधोंमें फरक भी होता है; हमारी मूर्तिके हाथोंमें कौन-कौन-से आयुध होंगे यह तो कहा नहीं जा सकता। हाँ, दो हाथोंमें हाथीकी खाल, जो आवश्यक है, अवश्य होगी। दुर्भाग्यवश पैर भी खण्डित हैं। मूर्तिशास्त्रके अनुसार कल्पना हो सकती है कि इसका एक पैर (बायाँ) हाथीके सिरपर (जोकि नीचेकी तरफ दीखता है) होगा और दूसरा पैर (दाहिना) जङ्घातक उठा हुआ नृत्यकी अवस्थामें होगा। इस मूर्तिको गजासुर-संहारमूर्ति कह सकनेके लिये प्रमाणरूप हाथीके सिरके अतिरिक्त उसकी खाल भी है, जो मूर्तिके पीछे प्रभामण्डलकी तरह फैली हुई है। हाथीके सिरके पीछे बायीं तरफ दो छोटी मूर्तियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। वे क्रमशः पार्वती और स्वामिकार्तिकेयकी हैं, जो इस घटना (गजासुर-संहार) को आश्चर्यके साथ देख रहे हैं। इस मूर्तिमें अलङ्कारादि बड़ी खूबीके साथ खोदे गये हैं और चारों ओरके हासियेमें भी कई मनुष्याकार और पशुओंकी प्रतिमाएँ खुदी हुई हैं, जो सम्भवतः शिवके उक्त राक्षसके साथ सङ्ग्रामके घटनात्मक क्रमवार दृश्य होंगे; परन्तु मूर्तिके पुरानी होनेके कारण पत्थर बहुत घिस गया है। यह मूर्ति धारवार जिलेके लखुंदी नामक स्थलसे प्राप्त हुई है और सम्भवतः तेरहवीं शताब्दीको है।

परेल (बम्बई) की अद्वितीय शैव-प्रतिमा

यह एक शैव-प्रतिमा है, जो बम्बईके परेल नामक भागमें सन् १९३१ के अक्टूबरमें म्यूनिसिपैलिटीके मजदूरोंको एक नयी सड़क बनाते वक्त खुदाईमें मिली थी। यह मूर्ति पुरातत्त्वान्वेषणकी दृष्टिसे बहुत ही विचित्र है, क्योंकि मूर्तिशास्त्रमें वर्णित किसी भी मूर्तिसे इसका सर्वथा साम्य नहीं है। हाँ, जटा-मुकुट और चन्द्रमा आदिके होनेके कारण इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह शैव-मूर्ति है। इसके विषयमें विभिन्न विद्वानोंने भाँति-भाँतिकी कल्पनाएँ की हैं। महेश-मूर्ति, सदाशिव-मूर्ति, विद्याधर, सङ्गीतेश्वर, सम्राज्ञी शिव आदि अनेक अनुमान अभीतक लगाये गये हैं, जिनका उल्लेख 'गङ्गा'के पुरातत्त्वाङ्कमें किया जा चुका है। अतः इस लेखमें उसका वर्णन और उक्त लेखके प्रकाशित होनेके पश्चात् की हुई खोजका फलमात्र ही दिया जायगा।

यह अनेक मूर्तियोंवाली शिला कुछ सुर्खी लिये हुए पीले रंगकी है। इसकी लम्बाई बारह फुट और चौड़ाई करीब छः फुट है। शिलाके मध्य-भागमें जटा-मुकुट-धारी एक मूर्ति बायें हाथमें कमण्डलु और दाहिनेमें सुमिरनी लिये खड़ी है। उसके भालपट्टमें ज्ञानशक्तिरूपी तीसरा नेत्र और जटामें ज्ञानचिह्न चन्द्रमा है। कमरमें कमरबन्द (कटिमेखला) हाथोंमें कङ्कण, भुजाओंपर बाजूबन्द और गलेमें माला है। इस मूर्तिके पृष्ठभागसे एक दूसरी मूर्ति निकलती हुई दीख पड़ती है, जिसका कमरसे ऊपरका भाग ही दृष्टिगोचर होता है। इस मूर्तिके आयुध और अलङ्कार पहली मूर्तिके सदृश ही हैं। फरक केवल यही है कि पहलीका हाथ विस्मय-मुद्रामें है और दूसरीका हाथ ज्ञानमुद्रामें है और बायें हाथमें कमण्डलु लटक रहा है। इस दूसरी मूर्तिके पृष्ठभागसे भी एक तीसरी मूर्ति निकली है। इसका भी कमरसे ऊपरका अङ्ग ही दृष्टिगोचर होता है। इसके भी जटा-मुकुट और अलङ्कारादि उक्त मूर्तियोंके-से ही हैं, परन्तु हाथोंकी संख्या और आयुध अधिक हैं। उक्त दोनोंके दो-दो हाथ हैं परन्तु इसके दस हाथ हैं। दाहिनी तरफको पहले हाथमें रणसिंगा, दूसरेमें खड्ग, तीसरेमें शूल, चौथेमें डफ और पाँचवेंमें अक्षमाला है, बायीं ओरके पहले हाथमें पाश, दूसरेमें खेटक (ढाल), तीसरेमें धनुष, चौथेमें डमरू और पाँचवेंमें जलकमण्डलु विराजमान है।

उक्त दोनों मूर्तियोंके कन्धोंके नीचे पीठकी ओरसे

नचना पार्वती मन्दिरका द्वार गंगा-यमुना अंकित चौखटसहित

खजुराहोका विशाल नन्दी
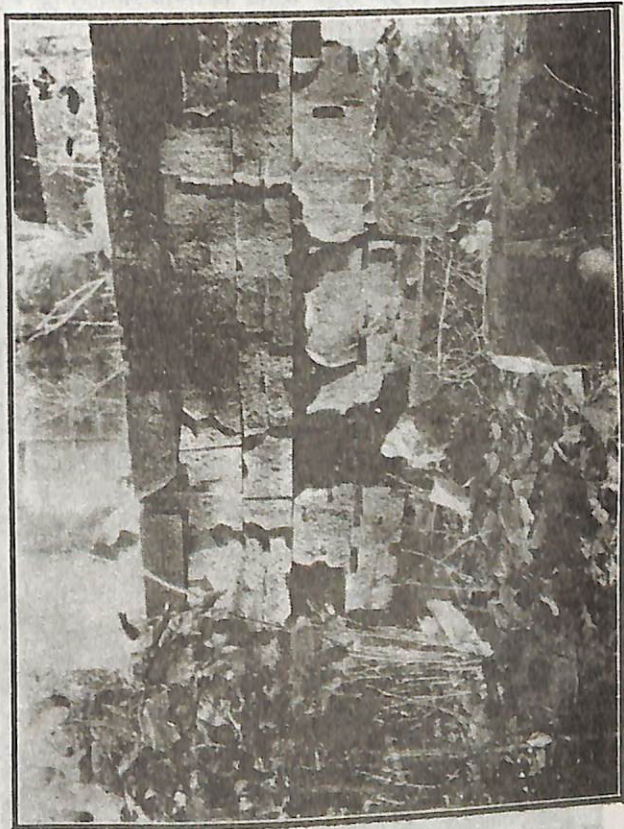
नचना पार्वती-मन्दिरकी पर्वतरूप दीवालका अंश

वाकाटक हरगौरी (कैलासपर)
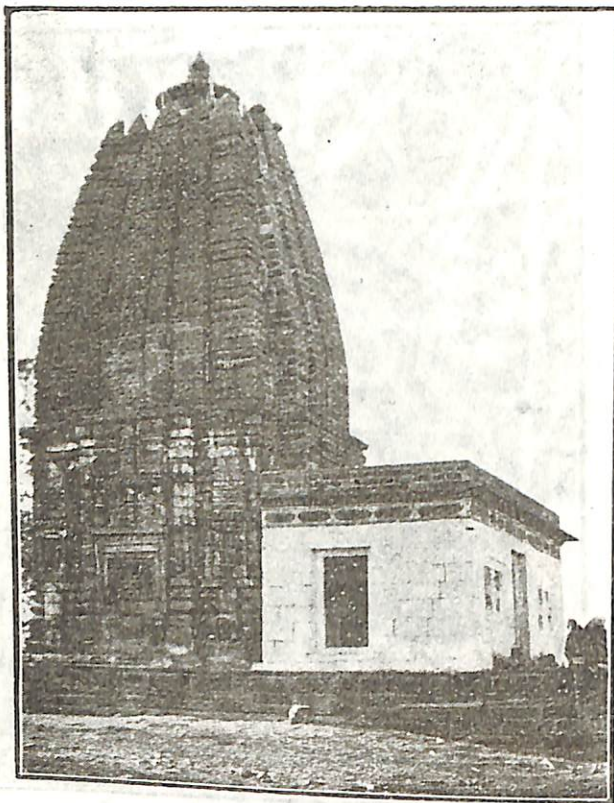
नचनाका शिवमन्दिर

नचनाके वाकाटक महाभैरव (चतुर्मुख लिंग)

नचनाके वाकाटक महाभैरव

पूर्व स्मितमुख

उत्तर गंभीरमुख

नचनाके वाकाटक महाभैरव

पश्चिम शान्तमुख

दक्षिण महाभैरवमुख

दाहिनी और बायीं तरफ दो-दो मूर्तियाँ निकली हुई दीख पड़ती हैं। इन चारों मूर्तियोंका एक-एक पैर ऊपरकी ओर खिंचा हुआ है, मानो अभी निकलकर उड़ा ही चाहती हैं। इन चारोंकी मुखाकृति, जटामुकुट और अन्य आयुध तथा अलङ्कारादि सब पहली दो खड़ी हुई बीचकी मूर्तियोंके समान ही हैं। हाथकी मुद्राओंमें कुछ अन्तर अवश्य है।

इस मूर्तिसप्तकके दाहिने और बायें भी कुछ मूर्तियाँ खुदी हैं जो सम्भवतः शिवके गण हैं और गान-तानमें मस्त हैं। दाहिनी ओर तीन मूर्तियाँ हैं जिनके हाथमें क्रमशः (१) सारंगी (२) तम्बूरा, करताल और (३) बाँसुरी हैं। बायीं ओरके दो गवैये एकतारा और करताल लिये दीख पड़ते हैं।

मालूम होता है कि यह मूर्ति महेश्वर और सदाशिवकी पञ्चमूर्तिवाले स्वरूपोंका एकीकरण है, जो अवश्य इसके बनानेवालेकी अनोखी सूझका परिचायक है। महेश्वरमूर्तिमें शिवके त्रिगुणात्मक स्वरूपकी भावना होती है। पुराणोंमें कहा गया है कि शिव सात्त्विकगुणमें विष्णुस्वरूप, राजसमें ब्रह्मास्वरूप और तामसगुणमें कालरुद्रका स्वरूप धारण करते हैं। इन तीनोंकी संयुक्त भावनावाली मूर्ति महेश्वर-मूर्ति कहलाती है, जो खड़ी हुई एक-पर-एक तीन मूर्तियोंसे इस परेलकी मूर्तिमें प्रदर्शित की गयी है। पहली मूर्ति शिवके सात्त्विक स्वरूपकी है, उसपरकी दूसरी राजस-स्वरूप-को व्यक्त करती है और सबसे ऊपरकी तीसरी तामसगुण-युक्त कालरुद्र-स्वरूपकी है, जो संहारक आयुधोंसे व्यक्त की गयी है।

अब बगलकी चार मूर्तियोंको बीचकी खड़ी हुई पहली मूर्तिके साथ लेकर पञ्चमूर्तिका स्वरूप व्यक्त किया गया है। इस पञ्चमूर्तिमें शिवके पाँच स्वरूपोंकी भावना मूर्तिशास्त्रमें की गयी है। मध्यकी मूर्ति शिवके 'ईशान' स्वरूपकी है। बाजूकी चारों शिवके चार स्वरूपों—(१) सद्योजात (२) वामदेव (३) तत्पुरुष और (४) अघोरको व्यक्त करती हैं। यह भावना सम्भवतः तैत्तिरीय आरण्यक और लिङ्गपुराणसे ली गयी है।

इसप्रकार महेश्वरमूर्ति और पञ्चमूर्तिका संयुक्त भावना-वाली मूर्ति बनाकर कारीगरने कमाल किया है। मूर्तिशास्त्रमें कहीं भी ऐसी मूर्तिका उल्लेख नहीं है, अतः यह अनोखी मूर्ति मूर्तिशास्त्रवेत्ताओंकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वकी है।

भारशिव और वाकाटक राजवंशके इष्टदेव शिव

(लेखक— श्रीशारदाप्रसादजी, सतना)

त्रिदेवोंमें महेश संहारकर्ता हैं। परन्तु वे नाश किसका करते हैं? दुष्टोंका, धर्मके विरुद्ध आचरण करनेवालोंका। वे शिव हैं, कल्याणकर्ता हैं। संहारके द्वारा वे सृष्टिका कल्याण करते हैं। भारतवर्षके इतिहासमें, उनके द्वारा किये गये देशके महत् कल्याणके विवरणको संसार भूल गया था। अभी हालहीमें इसका पता चला है। यह इतिहास मैं अति संक्षेपमें पाठकोंके सम्मुख रखना चाहता हूँ।

ईस्वी सन्‌की प्रथम शताब्दीमें शक अथवा कुषाण-जातिने भारतपर आक्रमण किया। इस वंशमें सबसे प्रतापी सम्राट् कनिष्क हुआ। यह सन् ७८ ई० में सिंहासनपर बैठा। इसके राज्यमें कश्मीर, बुखारा, अफगानिस्तान, फारसका कुछ अंश तथा पाटलिपुत्रपर्यन्त समस्त उत्तरी भारत सम्मिलित था। इसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। सिंहासनारूढ़ होनेके बाद यह बौद्ध हो गया था। कनिष्कका उत्तराधिकारी हुविष्क हुआ और हुविष्कके बाद सन् १३८ ई० में वासुदेव गद्दीपर बैठा। वासुदेवकी मृत्युसे लेकर गुप्त-साम्राज्यकी स्थापनातक लगभग १५० वर्षका वृत्तान्त वर्तमान इतिहास-ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। यही वह समय है जब भगवान् शिवकी कृपासे उनके अनुयायी भारशिव (नाग) तथा वाकाटकवंशके राजाओंने देशमें धर्म स्थापन किया। इस खोजका श्रेय पटनाके श्रीकाशीप्रसाद जायसवालको है।

शक अथवा कुषाण सम्राट् हिन्दू-धर्मके घोर विरोधी थे। इन्होंने ढूँढ़-ढूँढ़कर मन्दिर तोड़वाये, ब्राह्मण-क्षत्रियोंको दबाया और नीचोंको ऊँचे पद दिये। इन्होंने कर (टैक्स) का भार प्रजापर बहुत बढ़ाया। वास्तवमें ये हिन्दुओंके सैनिक बलसे नहीं डरते थे। इन्हें भय था हिन्दू-

समाजके संगठनसे। इसी कारण वे उसे तोड़नेके लिये अत्याचार-पर-अत्याचार कर रहे थे। पृथिवी इनके भारसे धँसी जा रही थी। ऐसे ही विकट समयमें भगवान् शिवने अपने भक्त नागवंशको वह शक्ति प्रदान की जिसके द्वारा उन्होंने शकोंको देशसे निकाल बाहर किया।

नाग यादवक्षत्रिय थे और इनका प्रथम राजवंश विदिशा नगरीमें राज्य करता था। वहाँ शेषनाग, भोगनाग, रामचन्द्रनाग, भूतनन्दी, शिशुनन्दी आदि शासक हुए। कहते हैं कि देशके दुर्दिनोंमें इनके समयने भी पलटा खाया और इन्हें लगभग ६० वर्षका दीर्घकाल (सन् ८० से सन् १४० ई० तक) मध्यभारतके जङ्गलोंमें छिपकर बिताना पड़ा। यहाँ इन्होंने छोटा-मोटा जंगली राज्य स्थापित कर लिया और भगवान् शिवकी प्रेरणासे यहाँसे निकल रीवाँ बघेलखण्ड होते हुए गङ्गातटपर पहुँचकर शकोंके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। उनकी कृपासे इन्हें सफलता प्राप्त हुई। इन्होंने शकोंको देशसे बाहर निकालकर समस्त आर्यावर्तपर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। इन नव नागोंका राजवंश भारशिवके नामसे प्रख्यात हुआ और इनमें वीरसेन, हयनाग, त्रयनाग, चरजनाग और भवनाग प्रसिद्ध सम्राट् हुए। इन्होंने लगभग १५० ई० से २८४ ई० तक राज्य किया। इनके वंशका नाम 'भारशिव' पड़नेका कारण ताम्रपत्रके निम्नलिखित वाक्यसे स्पष्ट हो जाता है—

अंसभारसन्निवेशितशिवलिङ्गोद्वहनशिवपरितुष्टसमुत्पादितराजवंशानां पराक्रमाधिगतभागीरथ्यमलजलमूर्द्धाभिषिक्तानां दशाश्वमेधावभृथस्नातानां भारशिवानाम्।

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि इन्होंने शिवलिङ्गके भारको अपने कन्धेपर वहन करके भगवान् शिवको प्रसन्न किया, अपने पराक्रमसे भागीरथी गङ्गाको प्राप्त किया (अर्थात् गङ्गा-तटवर्त्ती देशपर अधिकार किया)। गङ्गाजलसे इनका अभिषेक हुआ, इन्होंने दस अश्वमेध-यज्ञ * किये और इनका वंशनाम 'भारशिव' पड़ा। ये तो भगवान् शिवका भार वहन करनेवाले नन्दी थे। देशोद्धारके निमित्त ही पृथिवीपर इनका अवतार हुआ था। हिन्दू-धर्मशास्त्रके अनुसार ये किसी राज्यका अपहरण नहीं करते थे। राजासे अपना स्वामित्व स्वीकार कराकर उसे अपने देशपर राज्य करने देते थे। ऐसा ही एक प्रतापी शैव वाकाटकराजवंश इनका पड़ोसी था। अन्तिम भारशिव महाराज भवनागके दौहित्र रुद्रसेन वाकाटक महाराज प्रवरसेनके पौत्र थे और यही दोनों राज्योंके उत्तराधिकारी हुए। इसप्रकार भारशिव-वंश वाकाटकवंशमें लीन हो गया।

वाकाटक-साम्राज्य भारशिवसे भी समृद्धिशाली हुआ। वाकाटकराज्य विन्ध्यशक्तिने स्थापित किया था और उनके पुत्र प्रवरसेन (प्रथम) बड़े प्रतापी हुए। इन्होंने सम्राट्पद ग्रहण किया और चार अश्वमेध-यज्ञ किये। इन्होंने दीर्घ कालपर्यन्त राज्य किया, यहाँतक कि इनके पुत्र, जिनका नाम गौतमीपुत्र था, इनके उत्तराधिकारी नहीं हुए, वरं ऊपर लिखे अनुसार इनके पौत्र रुद्रसेन (प्रथम) इनके पीछे गद्दीपर बैठे। इस वंशके अन्य नरेश पृथिवीसेन (प्रथम), रुद्रसेन (द्वितीय), दामोदरसेन, प्रवरसेन आदि हुए। इसी वंशकी एक शाखाने दक्षिणका पल्लववंश स्थापित किया। वाकाटकोंके ही समयमें हिन्दू-संस्कृतिका प्रचार दक्षिणमें हुआ और दक्षिणापथ भी इनके प्रभावसे शैव हो गया। आर्य तथा द्रविड़-सभ्यताका विभेद दूरकर, आर्यावर्त्त और दक्षिणापथकी संस्कृति एक करके, भारत शब्दके अन्तर्गत समस्त देशको लानेका श्रेय इसी शैव-वाकाटकवंशको प्राप्त है।

भारशिव और वाकाटक—दोनों ही वंश शैव थे। इस बातके प्रमाणस्वरूप इन वंशोंके राज्यकालमें बने हुए मन्दिर अबतक विद्यमान हैं। भारशिव-वंशका उत्थान किस प्रकार भगवान् शिवकी कृपासे हुआ, यह ऊपर लिखा जा चुका है। जिस मूर्त्तिविशेषका भार वहन करके उन्होंने शिव-कृपा उपलब्ध की थी, उसका पता भी अब लग गया है। यह नागोद-राज्यान्तर्गत परसमनिया पहाड़ीपर, भुमरा-गाँवके निकट, घोर वनमें एक भग्न मन्दिरमें स्थित है। अबतक वहाँके जङ्गली आदमी इस मूर्त्तिको 'भाकुलबाबा' कहते हैं। मालूम होता है, यह 'भाकुल' शब्द 'भारकुल'का ही अपभ्रंश है। इस मन्दिरके चारों ओर बहुत-सी ईंटें पड़ी हैं और उनमेंसे अनेकपर कुछ अक्षर लिखे हैं। ऐसी दो ईंटोंकी जाँच श्रीकाशीप्रसाद जायसवालने की है और इन्हें सन् १५० से २०० ई० तकके अक्षरोंसे अङ्कित पाया है। यही समय भारशिव वंशकी समृद्धिका था। भारशिवोंने शकोंसे गङ्गा-यमुनाकी मर्यादाकी रक्षा की थी, इस कारण उन्होंने इनकी मूर्त्तियोंको अपना राज्यचिह्न बनाया। इसप्रकारकी सुन्दर मूर्त्तियाँ इस मन्दिरको चौखटपर भी

* सम्भवतः काशीका दशाश्वमेधघाट ही वह यज्ञस्थली है।

भुमराका भारशिव मन्दिर

भुमराके भारकुलदेव—एकमुखी

भारशिव स्तम्भ

भारशिव हरगौरी

शिव ताण्डव स्तोत्र।

अङ्कित हैं। इन सब बातोंपर विचार करनेसे यह सिद्ध होता है कि अपने विपत्तिकालमें नागोंने अपने कुलदेवकी मूर्त्तिको इन्हीं जङ्गलोंमें छिपाकर रक्खा और उनकी भक्ति-पूर्वक सेवा की। उनके प्रसादसे राज्यप्राप्ति होनेपर यह सुन्दर मन्दिर निर्माण कराया और इसकी चौखटको गङ्गा-यमुनाकी मूर्त्तिसे सुशोभित किया। यह चौखट उठकर उचेहरा पहुँच गयी है, इस कारण इसका चित्र प्रकाशित नहीं किया जा सकता। भगवान् भारकुलदेवका चित्र प्रकाशित किया जा रहा है। यह एकमुख लिङ्ग है और मुखका भाव शान्त, परम शिव है। इस प्रान्तके जङ्गलोंमें अनेक भारशिव-एकमुख लिङ्ग पाये जाते हैं।

भुमरासे लगभग १३ मीलपर गंज है, जिसके निकट नचनामें दो वाकाटक-मन्दिर हैं। एकमें भगवान् शिवका चतुर्मुख लिङ्ग स्थापित है और दूसरा पार्वतीजीके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है। इसकी मूर्त्तिका अब पता नहीं है। शिवजीके मन्दिरका आगेका भाग गिर गया था, यह हालमें शिव-भक्त स्व० पं० रामसहाय पाँड़ेद्वारा बनवा दिया गया है और इसप्रकार शेष भागकी रक्षा हो गयी है। पार्वतीजीका मन्दिर बिल्कुल भग्न दशामें है। इन मन्दिरोंके चित्र प्रकाशित किये जाते हैं। अवश्य ही ये मन्दिर भुमराके भारशिव-मन्दिरके बादके हैं; परन्तु कलाकी दृष्टिसे इनकी मूर्त्तियोंमें विशेष भेद नहीं है। भारशिववंश भगवान्‌की सौम्य मूर्त्ति—शिवका उपासक था और वाकाटकवंश उनके रुद्ररूप-महाभैरवका। भारकुलदेवकी मूर्त्ति सौम्य है और वाकाटक प्रभु महाभैरव हैं। इनका वर्त्तमान नाम 'चम्बुकनाथ' है। 'चम्बुक' चतुर्मुखका अपभ्रंश है।

इन मन्दिरोंके निर्माणमें एक बड़ी विलक्षणता देखनेमें आयी। भुमराके मन्दिरमें दीवालके बाहरी भागमें अनेक शिवगणोंकी मूर्त्तियाँ बनी मिलीं, जिन्हें देखकर गोस्वामी तुलसीदासके शिव-बरातके गणोंका स्मरण हो आता है। इनमेंसे अब कुछ कलकत्तेके अजायबघरमें और कुछ उचेहरामें हैं। नचनाके पार्वती-मन्दिरका बाहरी दृश्य बिल्कुल पर्वतके अनुरूप बना हुआ था और उसमें अनेक गुहाएँ, ऊँचे-नीचे स्थान तथा जानवर दिखलाये गये थे। महाभैरव-मन्दिरके बाहरी भागमें शिल्पशास्त्रके नियमोंके अनुसार अङ्कित गन्धर्व-मिथुन आदिके दृश्योंके अतिरिक्त अनेक शिवगणोंकी मूर्त्तियाँ भी अङ्कित हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि यह मन्दिर शिवगणोंके सहित कैलासके भावको लेकर बनाया गया था और पार्वती-मन्दिरमें पर्वतका भाव दरसाया गया था। भारशिवकी गङ्गा-यमुना-मूर्त्तिसे अङ्कित चौखटका अनुकरण वाकाटकोंने किया और उनका गुप्तोंने। ये चौखटें बड़ी सुन्दर बनती थीं, जो आज भारतीय स्थापत्य-कलाकी उत्तम उदाहरण मानी जाती हैं। चौखट ही क्या, ये मन्दिर ही भारतीय स्थापत्य-आकाशके देदीप्यमान तारे हैं।

श्रीमहादेव-कामरूपराजवंशके इष्टदेव

(लेखक-अध्यापक पं० श्रीपद्मनाथजी भट्टाचार्य, विद्याविनोद, एम० ए०)

भारतवर्षके ईशानकोणमें बहनेवाली करतोया-नदीके पूर्वमें जो भूभाग दीख पड़ता है, वही कामरूप नामसे प्रसिद्ध था।* इस नामके साथ ही हम श्रीमहादेवका सम्बन्ध पाते हैं, क्योंकि कालिकापुराणमें लिखा है—

शम्भुनेत्राग्निनिर्दग्धः कामः शम्भोरनुग्रहात्।
तत्र रूपं यतः प्राप कामरूपं ततोऽभवत्॥
(५१। ६७)

'महादेवकी नेत्राग्निके द्वारा भस्मीभूत काम महादेवके ही अनुग्रहसे यहाँ 'रूप' को प्राप्त हुआ, इसी कारण इस स्थानका नाम 'कामरूप' पड़ा।'

दक्ष-यज्ञमें सतीके देहत्याग करनेपर महादेव सतीके मृत शरीरको कन्धेपर रख भ्रमण करने लगे। विष्णुके चक्रसे छिन्न-भिन्न हुआ उसका अंश अनेकों स्थलोंपर गिरा। उसीसे ५१ पीठोंकी सृष्टि हुई। प्रत्येक पीठमें देवीके साथ महादेव भैरवरूपमें अवस्थान करते हैं। कामरूपमें सतीका स्त्री-अङ्ग गिरा, इसी कारण यहाँ देवी कामाख्या-

* इसका दूसरा नाम था 'प्राग्ज्योतिष।' महाभारतमें यही नाम पाया जाता है, 'कामरूप' नाम नहीं मिलता। (आजकल 'कामरूप' नाम एक जिलेमें सीमित हो गया है।)

रूपमें अधिष्ठित हैं। महादेव भी यहाँ भैरवरूपसे * अवस्थान कर रहे हैं। तभी कालिकापुराणमें आता है कि—

कामरूपं महापीठं गुह्याद्गुह्यतरं परम्।
सदा सन्निहितस्तत्र पार्वत्या सह शङ्करः॥
(५१। ६८)

'कामरूप गुह्यसे भी गुह्यतर श्रेष्ठ महापीठ है। यहाँ महादेव पार्वतीके साथ सर्वदा वास करते हैं।'

यह कामरूप पूर्वकालमें किरातोंका निवासस्थान था। ये लोग महादेवके अथवा देवीके उपासक थे या नहीं, यह मालूम नहीं। कालिकापुराणके मतमें† नारायणके वराहावतारमें पृथिवीमें उनका वीर्य निषिक्त होनेसे बहुत समयके उपरान्त त्रेतायुगमें नरक नामका बालक उत्पन्न हुआ। वह विदेहराज जनकके गृहमें पालित-पोषित हुआ और युवावस्थामें उसे नारायणने कामरूपका राज्य दे दिया। और तभीसे उस राज्य में ब्राह्मणादिकी बस्ती हुई। किरातलोग उनके द्वारा सताये जानेपर पूर्वकी ओर समुद्रपार चले गये। इसके पश्चात् नारायणने 'नरक' को उपदेश दिया, कि वह ब्राह्मणोंके साथ विरोध न करे और कामाख्यादेवीके प्रति अचल भक्ति रक्खे। नरक कुछ दिनोंतक पिताके उपदेशके अनुसार आचरण करता रहा, पश्चात् बाणासुरकी सङ्गतिसे वह द्विज और देवताओंका द्वेषी बन गया और असुर-संज्ञाको प्राप्त हुआ। नारायणने श्रीकृष्ण-अवतारमें 'नरक' का संहार करके उसके पुत्र भगदत्तको कामरूपका आधिपत्य प्रदान किया।

महाभारतमें भगदत्त और उसके पुत्र वज्रदत्तकी कथा है। वे असुर नहीं थे; परन्तु शिव-शक्तिके उपासक थे या नहीं यह बात महाभारतमें नहीं मिलती। परन्तु मध्ययुगवर्ती कामरूपके राजाओंने, जिन्होंने अपनेको नरक, वज्रदत्त तथा भगदत्तकी सन्तति बतलाया है, अपने ताम्रपत्रोंमें भगदत्त और वज्रदत्तकी शिवभक्तिके विषयमें उल्लेख किया है, यह बात आगे कही जायगी। हमें कामरूपके मध्यकालीन सात राजाओंके ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं, जिनके नाम और समयका विवरण नीचे दिया जाता है—

(१) भास्करवर्मा—सप्तम शताब्दीका पूर्वार्द्ध।

(२) हर्जरवर्मा—नवम शताब्दीका मध्यभाग।

(३) वनमाल—हर्जरका पुत्र—नवम शताब्दीका मध्यभाग।

(४) बलवर्मा—वनमालका पौत्र, दशम शताब्दीका प्रथमांश।

(५) रत्नपाल—एकादश शताब्दीका प्रथमांश।

(६) इन्द्रपाल—रत्नपालका पौत्र, एकादश शताब्दीका मध्यभाग।

(७) धर्मपाल—इन्द्रपालका प्रपौत्र, द्वादश शताब्दीका प्रथमांश।

वनमालके ताम्रपत्रमें भगदत्तके सम्बन्धमें लिखा है—

सम्प्राप्तो भगदत्तः श्रीमत्प्राग्ज्योतिषाधिनाथत्वम्।
विनयभरेण तदेत्य प्राराधयदीश्वरं तपसा॥*

भगदत्तने श्रीसम्पन्न प्राग्ज्योतिषका आधिपत्य प्राप्तकर वहाँसे आकर अत्यन्त विनयपूर्वक तपश्चरणके द्वारा भगवान् महादेवकी आराधना की थी। वज्रदत्तके सम्बन्धमें वनमालके पौत्र बलवर्माके ताम्रपत्रमें आता है—

उपगतवति सुरलोकं तस्मिंस्तस्यानुजोऽभवद्भूमेः।
पतिरमलभक्तिरीशे यं प्राहुर्वज्रदत्त इति कवयः॥†

'उनके (भगदत्तके) सुरलोक चले जानेपर उनका अनुज महादेवमें विमलभक्ति रखनेवाला राजा हुआ है, कविलोग उसे वज्रदत्तके नामसे पुकारते हैं।'

---

* आजकल भैरवका नाम 'उमानन्द' है, किन्तु पहले 'रावानन्द' नाम था। 'पीठमाला' में यही नाम मिलता है।

† कालिकापुराणमें ३६ वें अध्यायसे लेकर ४० वें अध्यायतक 'नरक' का वर्णन हुआ है। विस्तारभयसे उन सब श्लोकोंको यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है।

* यह वनमालवर्माके ताम्रपत्रका ५वाँ श्लोक है। देखिये कामरूपशासनावली, पृष्ठ ५९। (श्लोकका अनुवाद भी शासनावलीसे लिया गया है, आगे भी ऐसा ही किया जायगा।) [इस श्लोकका पाठ शुद्ध होनेमें सन्देह है। अतएव इसप्रकारकी शिवाराधना भगदत्तने की थी, यह बात अनिश्चित नहीं है। एतद्विषयक विचार शासनावलीकी 'संयोजनी' पृ० २०२-२०३ में देखना चाहिये।]

† यह बलवर्माके ताम्रपत्रमें ८ वाँ श्लोक है। देखिये कामरूपशासनावली, पृष्ठ १७४। [इस स्थानमें वज्रदत्तको भगदत्तका अनुज बतलाया है। वनमाल और रत्नपालके ताम्रपत्रमें भी इसी प्रकारका

काशीके श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें श्रीशिव-पार्वतीकी मूर्ति

काशीके श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें गंगावतरण

अष्टभुजा-वीरभद्रमूर्ति, अवघारकोयल
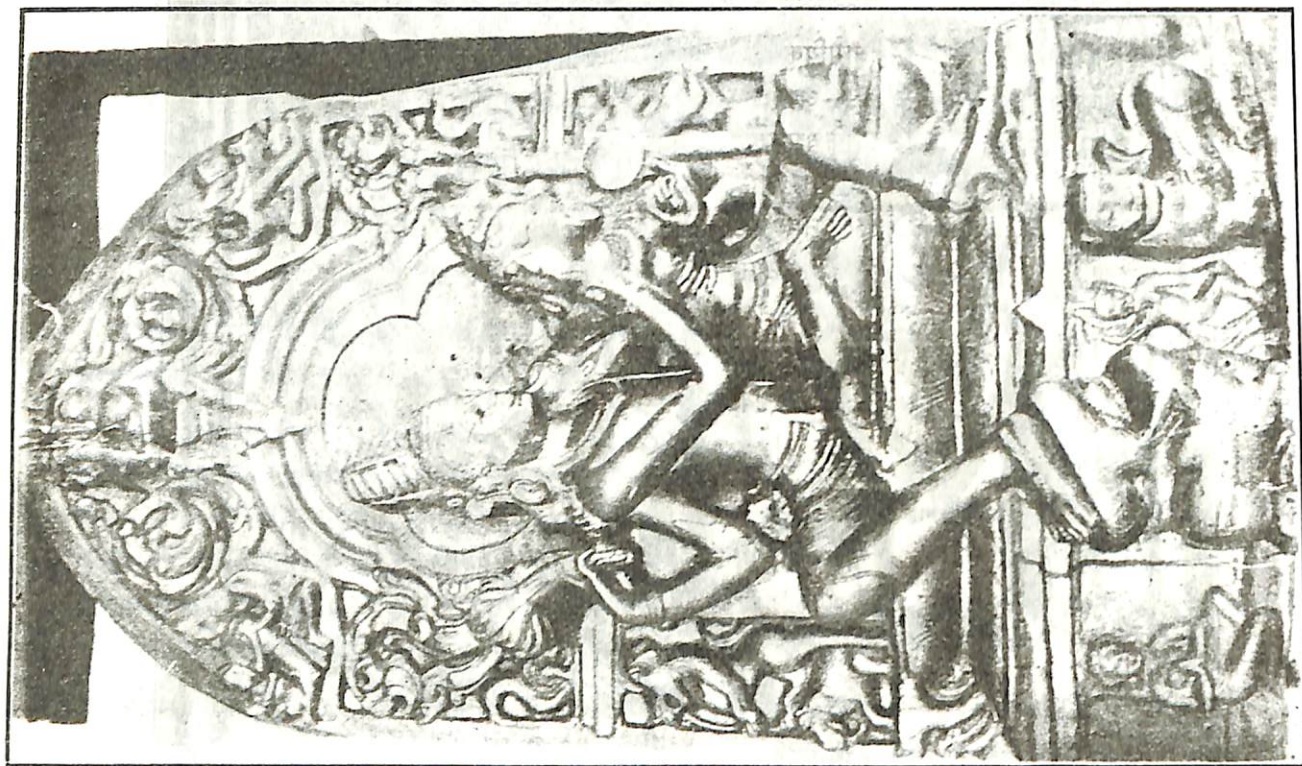
यह शिव-पार्वतीकी सुन्दर मूर्ति सं० १९८१ में दरभंगा जिलेके बसुआड़ा स्थानसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर बूढ़ानाथ महादेवके पास जमीनसे निकली और वहां प्रतिष्ठित की गयी ।
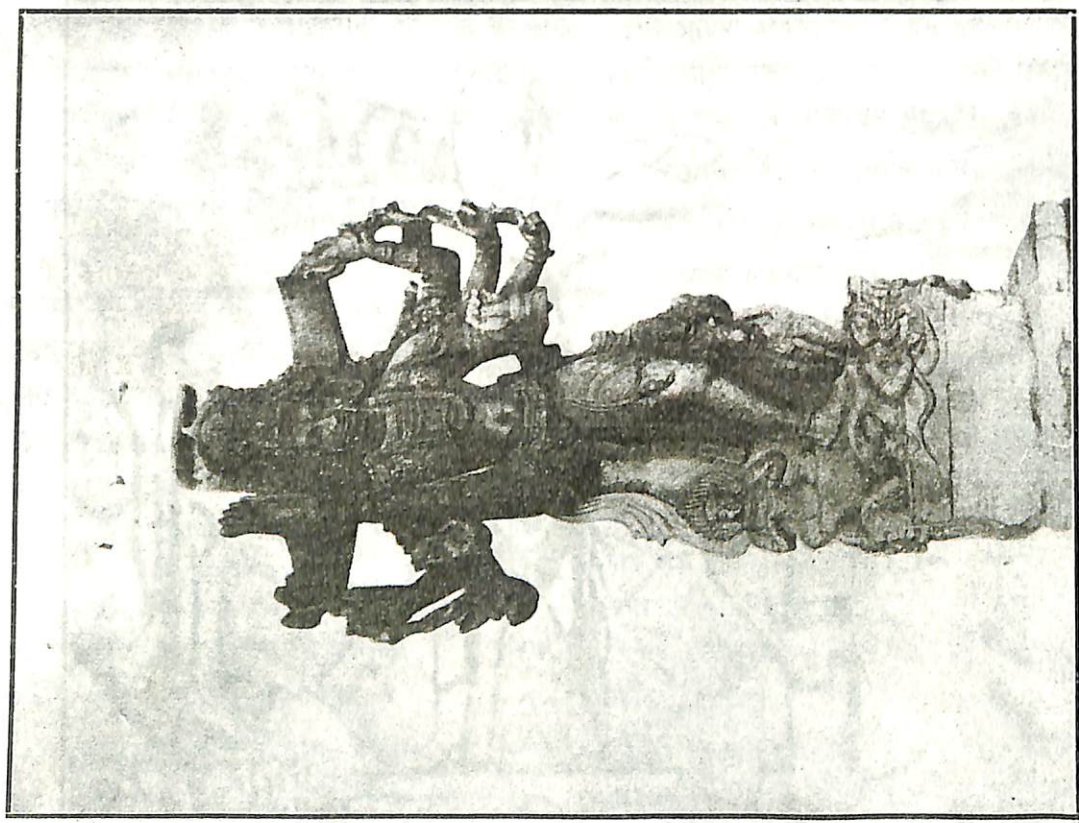
भगदत्त और व्रजदत्त युधिष्ठिरके सम-सामयिक थे। प्रायः ४००० वर्षतक उनकी वंश-परम्परा अव्याहत गतिसे चली और इतने दीर्घकालके पश्चात् उनके वंशधरोंने भगदत्त और वज्रदत्तके उपास्य देवताके सम्बन्धमें जो बात कही है वह कहाँतक विश्वसनीय है, यह प्रश्न यहाँ उठ सकता है; परन्तु इस विषयका उटाना यहाँ अनावश्यक है। चन्द्र एवं सूर्यवंशके राजा तथा कश्यप, वशिष्ठ प्रभृति ऋषियोंके गोत्रज ब्राह्मण आज भी विद्यमान हैं। उपास्य देवता भी वंशानुक्रमसे ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं, क्योंकि इष्टमन्त्रके त्यागको पाप कहा है।*

अस्तु, हम पौराणिक युगके राजाओंके प्रसङ्गको छोड़कर ताम्रपत्रोंमें उल्लिखित कामरूपके राजाओंके विषयमें विचार करेंगे। ताम्रपत्रोंका प्रमाण अवश्य ही मान्य समझा जायगा।

(१) भास्करवर्माके ताम्रपत्रके प्रथम श्लोकार्द्धमें इस-प्रकारसे इष्टवन्दना की गयी है—

प्रणम्य देवं शशिशेखरं प्रियं
पिनाकिनं भस्मकणैर्विभूषितम् ।†

'भस्मकणसे विभूषित इष्टदेव शशिशेखर, पिनाकपाणि महादेवको प्रणाम करके—इत्यादि ।' इसके आगे भी महादेवकी स्तुति है—

भोगीश्वरकृतपरिकरमीक्षणजितकामरूपमविमुक्तम् ।
परमेश्वरस्य रूपं निजभूतिविभूषितं जयति ॥‡

उल्लेख है; किन्तु भास्करवर्मा और इन्द्रपालके ताम्रपत्रोंमें एवं महाभारतके अश्वमेधपर्वमें वज्रदत्तको भगदत्तका पुत्र ही बतलाया गया है।]

* उदाहरणार्थ इस लेखकके अपने वंशकी बात कही जा सकती है। हमारे गोत्रप्रवर्तक महर्षि कात्यायनकी तपस्यासे प्रसन्न हो श्रीश्रीजगन्माता उनके आश्रममें आविर्भूत हुई एवं महर्षिके गौरव वृद्धिके लिये अवश्य उन्होंने कात्यायनी नाम धारण किया। आजतक हमलोग उन्हीं देवीके उपासक हैं। तथापि देवताका त्याग नहीं होता है, यह बात भी नहीं कही जा सकती। परन्तु ऐसा होता किसी महान् कारणसे ही है, इसलिये इसे अपवाद मानना चाहिये।

† कामरूप-शासनावली पृष्ठ ११।

‡ ,, ,, ,,

'जिनकी कटि सर्पराजसे आवेष्टित है, दृष्टिमात्रसे जिन्होंने कामदेवको निर्जित किया है, उन अविमुक्त महेश्वरकी निज-ऐश्वर्यविभूषित मूर्ति जययुक्त हो।'

ताम्रपत्रके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे भी हमें भास्कर-वर्माकी एकनिष्ठ शिव-भक्तिका परिचय मिलता है। विख्यात सम्राट् हर्षवर्धनके समीप भेजा गया भास्करवर्माका दूत उनके सम्बन्धमें कहता है—

अयमस्य च शैशवादारभ्य सङ्कल्पः स्थेयान्
स्थाणुपादारविन्दद्वन्द्वादृते नाहमन्यं नमस्कुर्यामिति ॥

(हर्षचरित्र, प्रथमोच्छ्वास)

अर्थात् बाल्यकालसे ही श्रीभास्करका यह दृढ सङ्कल्प है कि वह महादेवके पादपद्मयुगलके अतिरिक्त दूसरेके आगे सिर न झुकावेंगे।

(२) हर्जरवर्माके ताम्रपत्रमें हमें एक चद्दर मिली है, उसमें उनके विशेषणोंमें 'परममाहेश्वर' (अर्थात् महादेवका परमभक्त) शब्द आया है।

(३) हर्जरवर्माके पुत्र वनमालके ताम्रपत्रमें स्वस्ति-वाचनके पूर्व ही '९' यह चिह्न है और मुहरपर पत्रमें भी यही चिह्न है।§ इस चिह्नका नाम आञ्जी × है और यह राजाओंके ताम्रपत्रोंमें भी किसी-न-किसी जगह (स्वस्ति-वाचनके पूर्व अथवा मुहरपर) देखनेमें आता है। यह सुषुम्णामें रहनेवाली सर्पाकृति कुलकुण्डलिनीके चित्रकी प्रतिकृति है। कुलकुण्डलिनी शिवकी शक्ति है जो मूलाधारमें स्वयम्भूलिङ्गको वेष्टन किये रहती है। साधक तन्त्रोक्त प्रक्रियाके बलसे कुलकुण्डलिनीको जगाकर मूलाधारसे आरम्भकर क्रमशः अधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा-पर्यन्त षट्चक्रोंको भेदकर सहस्रारमें ले जाकर शिवसे संयुक्त कर कृतार्थ होते हैं। इस चिह्नसे ही कामरूपके

§ कामरूप-शासनावली पृष्ठ ५८ (शासनलिपिका प्रथमांश-एवं इस मुहरकी प्रतिकृति ५६ वें पृष्ठके सामनेवाले चित्रमें देखनी चाहिये।)

× इस शब्दका अर्थ कामरूप-शासनावलीके पृष्ठ ५५-५६ में खोला गया है। वहाँ आञ्जीके तीन रूप देखनेमें आते हैं, उनमें कामरूपके शासनमें '९', गौड-लेखमालामें '?' और '९' ये दो रूप देखे जाते हैं। हमारे देशमें '?' यही चिह्न विद्यारम्भमें वर्णमालाके पूर्व लिखा जाता है।

राजाओंके इष्टदेवताका परिचय मिल जाता है। तत्पश्चात् शासनलिपिके दूसरे श्लोकमें है—

स पुनातु पिनाकी वो यच्छीर्षे स्वर्धुनीजलम्।
कीर्णं रेचकवातेन तारकाप्रकरायितम्॥*

'जिनके मस्तकपर स्थित गङ्गाका जल रेचकवायुके द्वारा विकीर्ण होकर तारकराशिके समान सुशोभित होता है, वही पिनाकधारी महादेव तुम्हें पवित्र करें।'

इसी राजाकी शासन-लिपिमें उसके कीर्तिस्वरूप एक शिव-मन्दिरके संस्कारकी कथाका विस्तारपूर्ण उल्लेख पाया जाता है—

धूरूहे नहुषस्य येन पतितं कालान्तरादालयं
सौधं भक्तिनताखिलामरवरव्रातार्चिताङ्घ्रेः पुनः।
प्रालेयाचलश्रृङ्गतुङ्गमतुलग्रामेभवेश्याजनै-
र्युक्तं हाटकशूलिनः क्षितिभुजा भक्त्या नवं चक्रुषा॥†

'सभी श्रेष्ठ देवगण जिनके चरणोंमें भक्तिभावसे प्रणाम करते हैं, उन्हीं हाटकेश्वर महादेवका कालक्रमसे गिरा हुआ हिमालयसदृश उच्च एवं अतुल, ग्राम, प्रजा, हाथी एवं वेश्या प्रभृतिसे समन्वित सौधगृहको भक्तिपूर्वक नये ढंगसे पुनर्निर्मित कर वह नहुषकी कीर्तिका भार वहन कर रहे हैं।'

इससे प्रमाणित होता है कि यह शिव-मन्दिर वनमालके पूर्व-पुरुषोंके समयसे ही विद्यमान था। अतएव पुरुष-परम्परासे ये लोग शिव-भक्त थे।

राजधानी हारुप्पेश्वरके‡ वर्णनमें आता है कि इस नगरके निकटवर्ती कामकूट-पर्वतके शिखरपर श्रीकामेश्वर-महागौरीका अधिष्ठान था—

श्रीकामेश्वरमहागौरीभट्टारिकाभ्यामधिष्ठितशिरसः कामकूटगिरेः§। इत्यादि।

* कामरूप-शासनावली पृष्ठ ५९।

† ,, ,, पृष्ठ ६२।

‡ यह नाम भी किसी शिवलिङ्गके नामानुसार लिखा जान पड़ता है। (कामरूप-राजावली-भूमिका, पृष्ठ २२ की पादटीका २ देखिये)

§ कामरूप-शासनावली पृष्ठ ६३। कामेश्वर-महागौरी कामरूपराजाओंके इष्ट-देवता थे, इस विषयकी किञ्चित् आलोचना कामरूप-राजावलीकी भूमिका पृष्ठ ३२, पादटीका २ में देखनी चाहिये।

इसकी विशेषणावलीमें भी 'परममाहेश्वर' शब्द था।*

(४) वनमालके पौत्र बलवर्माके ताम्रपत्रमें प्रथम श्लोक पूरा-पूरा नहीं मिलता। प्रथमार्ध इसप्रकार है—

भवतु भवतिमिरभिदुरं तेजो रौद्रं प्रशान्तये जगतः।†

'भवान्धकारका नाश करनेवाला रुद्रदेवका तेज जगत्की शान्तिका कारण बने।'

यह भी बलवर्माकी शिव-भक्तिका परिचायक है। यही नहीं, उसके इस ताम्रपत्रमें उसके पितामह (पूर्वोलिखित) वनमालदेवके सम्बन्धमें जो कुछ वर्णन है, उससे केवल वनमालकी शिवभक्तिपरायणता ही नहीं सूचित होती; बल्कि उसके पौत्र बलवर्माके द्वारा अपने पूर्व-पुरुषोंकी इष्ट-देवताविषयक भक्तिका समर्थन भी प्रतिपादित होता है, इसीलिये यहाँपर उसे उद्धृत किया गया है।

तस्यात्मजः श्रीवनमालदेवो
राजा चिरं भक्तिपरो भवेऽभूत्॥‡

'उसका (हर्जरका) पुत्र, महादेवमें भक्ति रखनेवाला श्रीवनमालवर्मा दीर्घकालतक राज्य करता रहा।'

तथा अपने अन्तिम जीवनमें पुत्रके ऊपर राज्यभार अर्पणकर—

अनशनविधिना वीरस्तेजसि माहेश्वरे लीनः।§

'अनशनद्वारा वह वीर महादेवके तेजमें लीन हो गया।'

रत्नपालके ताम्रपत्रमें प्रथम ही महादेवकी स्तुति मिलती है—

द्रष्टेव प्रतिबिम्बकैर्नखगतैः स्वैर्नृत्यसम्पद्विधेः
सौवश्वीव गतिं शुभां प्रकटयन् दृश्योऽनिशं ताण्डवीम्।
एवं यः परमात्मवत्पृथुगुणो ह्येकोऽप्यनेकीभवन्
प्राकाम्यं दधदेव भाति भुवने स स्तात् श्रिये शङ्करः॥×

'जो (अपने) नखोंमें प्रतिफलित अपने प्रतिबिम्बोंमें (अपने ही) नृत्यविलासकी परिपाटीके द्रष्टाके समान (विराजमान) हैं, बढ़ियाँ घोड़ेपर सवार पुरुषकी भाँति अविरत शुभ ताण्डवगतिप्रदर्शन करते हुए दीख पड़ते हैं,

* कामरूप-शासनावली पृष्ठ ६४।

† ,, ,, ७३।

‡ ,, ,, ७५।

§ ,, ,, ७६।

× ,, ,, ९१।
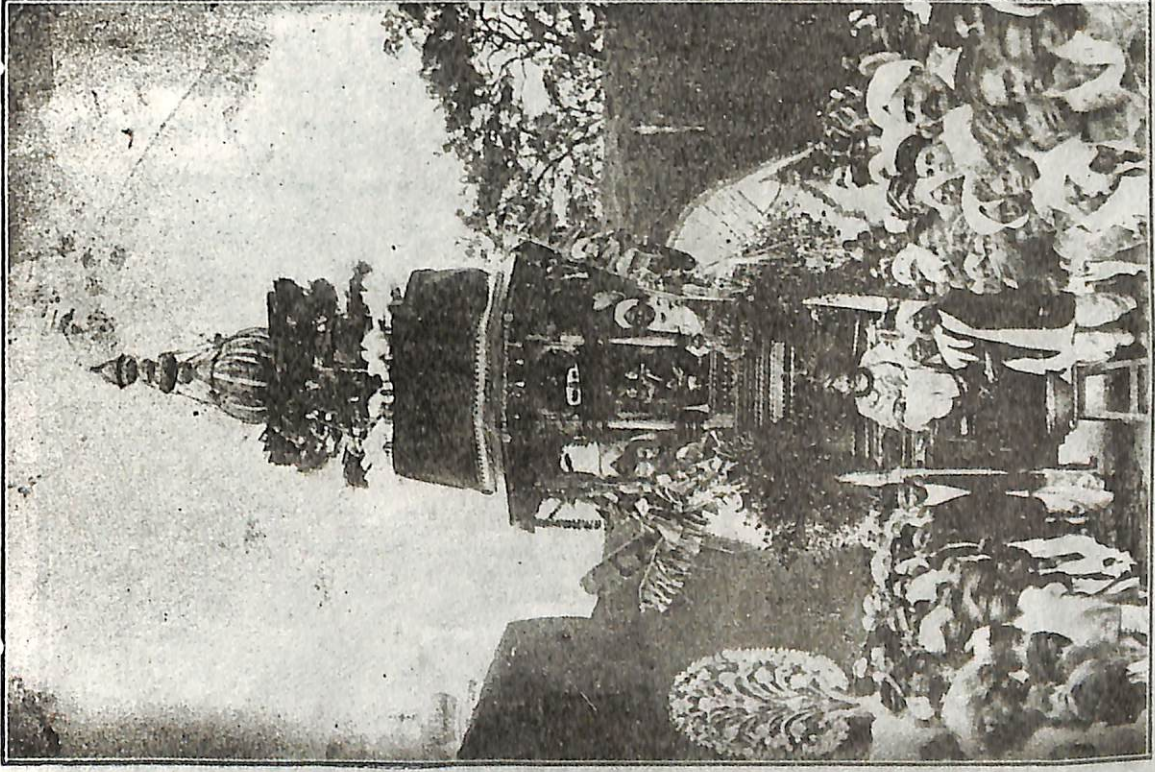
श्रीचिदम्बरम्‌की यात्रा (पृष्ठ ४६०)
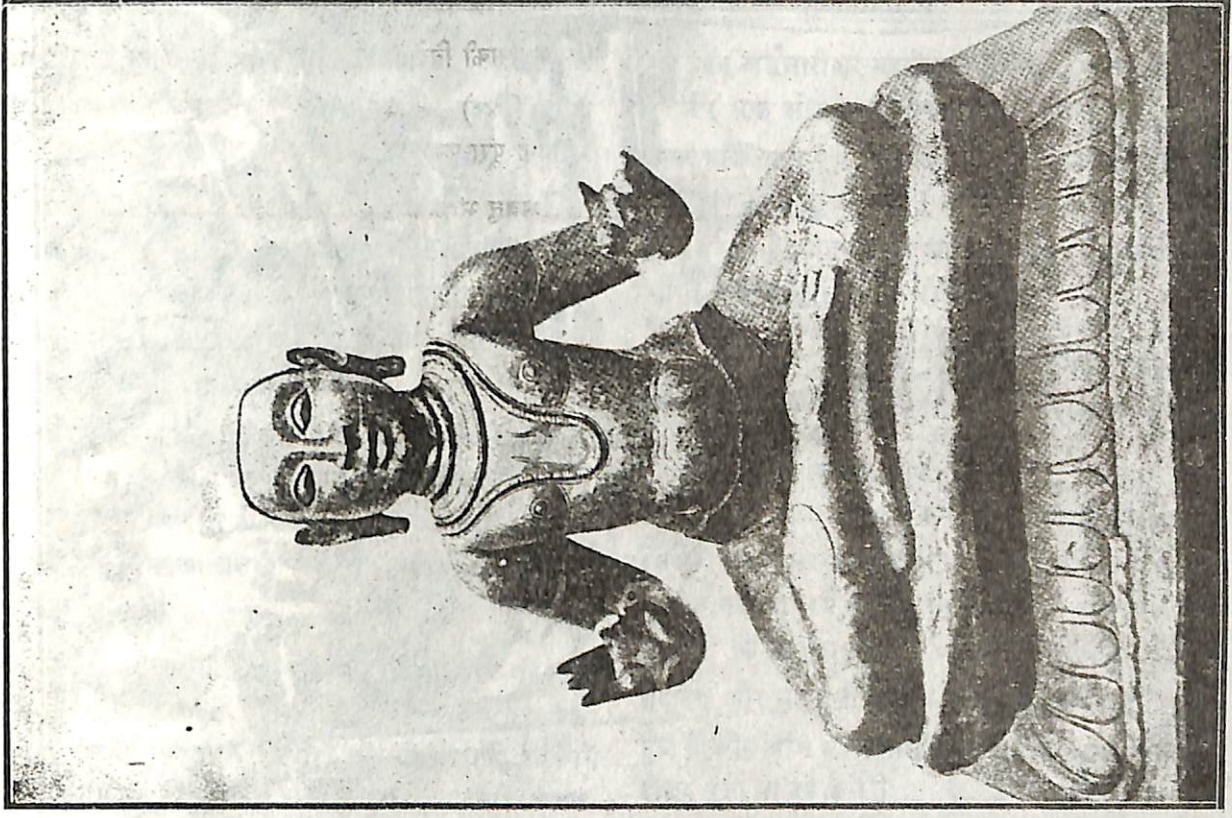
कांचीमें भगवान् श्रीशंकराचार्यजीकी मूर्ति
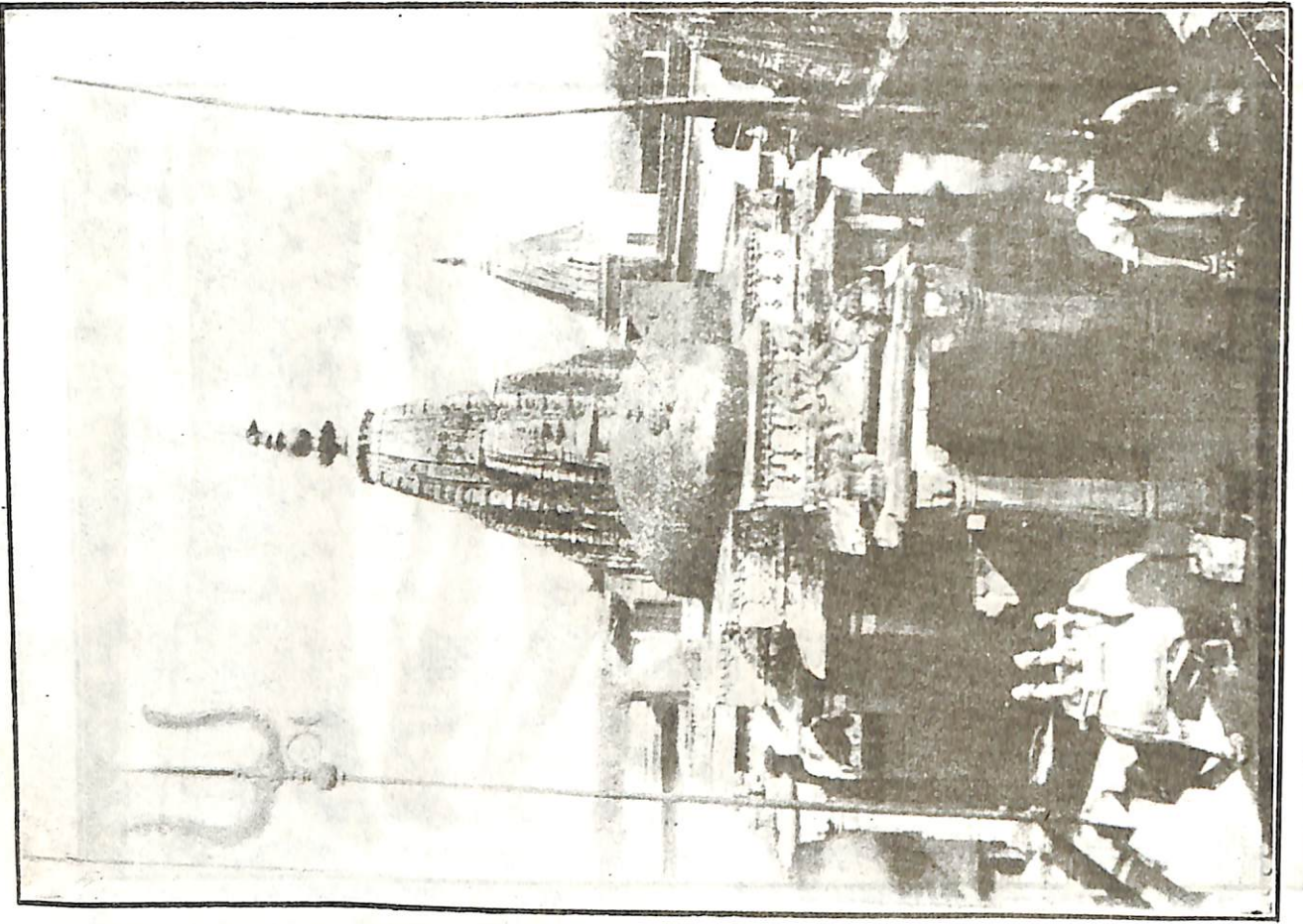
श्रीपञ्चवक्त्रेश्वर मंन्दिर हरिद्वार
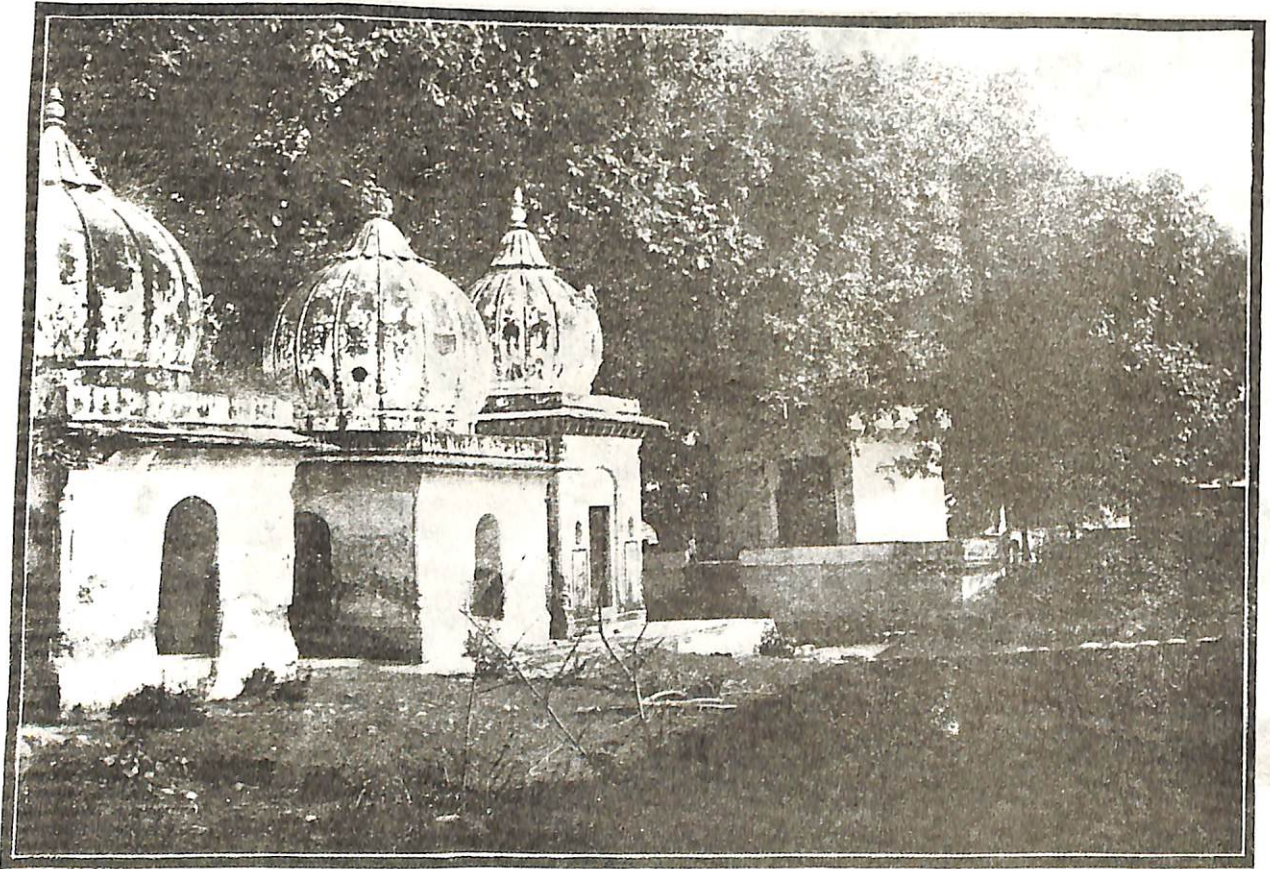
श्रीदक्षेश्वरका प्राचीन मन्दिर—कनखल

इसप्रकार जो प्राकाम्यरूप सिद्धिको धारणकर परमात्माके समान एक होते हुए भी अनन्त गुणोंके वश हो अनेक रूपोंसे भुवनमें प्रतिभात होते हैं, वे ही (नटेश्वर) शङ्कर (सबकी) समृद्धिके कारण बनें।'

(५) रत्नपालके पौत्र इन्द्रपालके ताम्रपत्रके प्रथम श्लोकमें महादेव एवं महादेवीका सरसतापूर्ण वर्णन मिलता है—भक्त अपने आराध्य देवताके साथ कभी-कभी इस-प्रकारकी रसिकता किया करते हैं।

खट्वाङ्गं परशुर्वृषः शशिकलेत्यादि त्वदीयं मया
सर्वस्वं जितमद्य नाम कितव प्रत्यर्पितं ते पुनः।
प्रेष्या केवलमस्तु मे जलवहा गङ्गेति गौरीगिरा
शम्भोर्द्यूतकलाजितस्य जयति व्रीडाविनम्रं शिरः॥

'हे कितव ! आज मैंने तुम्हारे सर्वस्व खट्वाङ्ग, परशु, वृष, शशिकला प्रभृतिको जीत लिया; किन्तु वे सब पुनः तुम्हें प्रत्यर्पित करती हूँ; केवल गङ्गा हमारा जल वहन करनेके लिये किङ्करी (दासी) बने–गौरीके इस वाक्यमें उनके द्यूतकौशलसे पराजित महादेवके लज्जावनत मस्तक-की जय हो।'

इससे यदि यह सन्देह हो कि इन्द्रपाल हर-गौरीका वैसा भक्त न था, तो उसके दूसरे † ताम्रपत्रके शेषांशमें उसके जो बत्तीस उपनाम आये हैं, उनमेंसे इस अन्तिम उपनामके द्वारा यह सन्देह दूर हो जायगा—

हरगिरिजाचरणपङ्कजरजोरञ्जितोत्तमाङ्ग।‡

(६) अन्तिम राजा (इन्द्रपालके प्रपौत्र) धर्मपाल-के दो ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं। उनमेंसे एकके प्रथम श्लोकमें अर्द्धनारीश्वर महादेवकी वन्दना हुई है—

वन्दे तमर्धयुवतीश्वरमादिदेव-
मिन्दीवरोरगफणामणिकण्ठबन्धम्।
उत्तुङ्गपीनकुचकुङ्कुमभस्मभिन्नं
श्रृङ्गाररौद्ररसयोरिव सर्गमेकम्॥§

'उन अर्द्धनारीश्वर महादेवकी मैं वन्दना करता हूँ जिनके कण्ठमें (एक ओर) नीलोत्पल तथा (दूसरी ओर) सर्प-फणकी मणि आवद्ध है, जिसके (एक ओर) उत्तुङ्ग परिणाही स्तनमण्डलमें कुङ्कुम और (दूसरी ओर) भस्मका लेप किया हुआ है, अतएव जो आदिरस और रौद्ररसकी एक मिश्रित सृष्टिके रूपमें प्रतीत होते हैं।'

परन्तु उसके द्वितीय ताम्रपत्रमें महादेवकी कोई वन्दना नहीं है, स्वस्तिवाचनमें वह '९' (आञ्जी) है। *

प्राचीन कामरूपके राजाओंकी बात समाप्त हुई। उनके परवर्ती राजा भी महादेव—शिव-शक्तिके उपासक थे। इसके पूर्व कामेश्वर-महागौरीका उल्लेख किया जा चुका है। प्राचीन कामतापुरमें, जिसके सम्बन्धमें यह अनुमान किया जाता है कि वह कामरूपकी अन्तिम राजधानी थी,† ये महादेव और महादेवी 'कामतेश्वर-कामतेश्वरी' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं और आज भी कामतापुरके भग्नावशेषमें विराजमान होकर पूजा पा रहे हैं।‡

कालक्रमसे जब कामरूपका पूर्वभाग आहोम-राजाओंके अधिकारमें आया और पश्चिम भागमें कोच-राजाओंका राज्य हुआ तब भी उन दोनों § राज्योंके इष्टदेवता शिव और शक्ति ही थे, यह बात आहोम और कोच-राजाओंके सिक्कोंसे प्रमाणित होती है। दोनों प्रकारके सिक्कोंमें 'हरगौरीसेवक'+ के नामसे राजालोग निर्दिष्ट हुए हैं। कोचराज 'शिव-

---

* कामरूप-शासनावली पृष्ठ ११७।

† इन्द्रपालके दो ताम्रपत्र पाये गये हैं, दोनोंके प्रथमांश-में एक ही श्लोकावली है। रत्नपालके भी इसी प्रकार दो ताम्र-पत्र मिले हैं।

‡ कामरूप-शासनावली पृष्ठ १४०।

§ कामरूप-शासनावली पृष्ठ १५०-१५१।

* कामरूप-शासनावली पृ० १३१। [इसी शासनके आलोचना-भागमें अनुमान किया गया है कि सम्भवतः धर्मपाल अन्तिम अवस्थामें प्रायः वैष्णव-मतका पक्षपाती हो गया था (कामरूप-शासनावली पृष्ठ १३०); परन्तु वह पूर्ण वैष्णव हो गया था, यह बात ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा होनेसे स्वस्तिका '९' चिह्न नहीं पाया जाता।]

† देखिये कामरूपकी राजावली-भूमिका, पृष्ठ ३०।

‡ कामरूपकी राजावली-भूमिका, पृष्ठ ३०।

§ देखिये उक्त पुस्तकके पृष्ठ ३२ की पादटीका २।

+ आहोमराजके सिक्कोंमें राजाके नामके आगे 'श्रीश्रीहरगौरी-चरणपरस्य' एवं कोचराजके सिक्कोंमें 'श्रीश्रीहरगौरीचरणकमल-मधुकरस्य'—ये विशेषण मिलते हैं।

वंशीय' के नामसे विख्यात हैं। क्योंकि उस वंशके प्रवर्तक विश्वसिंह शिवके ही पुत्र थे, यह योगिनीतन्त्र (प्रथम खण्ड, १३ पटल) में उल्लिखित हुआ है। वर्तमान कामाख्या-मन्दिर पहले विश्वसिंहके द्वारा ही निर्मित हुआ था, पीछे उसके भग्न हो जानेपर उनके पुत्र नरनारायणके द्वारा पुनर्निर्मित हुआ। आहोमराज गदाधरसिंहने कामाख्याके भैरव—उमानन्दके मन्दिरका निर्माण कराया तथा शिवसिंह प्रभृति उसके पुत्रोंने शक्तिमन्त्रमें दीक्षित हो अपने गुरुको तथा उमानन्द-कामाख्या प्रभृति देवालयोंमें प्रभूत धन प्रदानकर अपनी कीर्तिको चिरस्थायी बना दिया। *

राजपूतानेमें शिव-मूर्तियाँ

(लेखक—महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० श्रीगौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझा)

एकेश्वरवादी होनेके कारण वैदिक धर्मावलम्बी भारतवासी अत्यन्त प्राचीन कालसे एक ही ईश्वरको सृष्टिका उत्पादक, पालक एवं संहारक मानते आ रहे हैं। ईश्वरके भिन्न-भिन्न कार्योंके अनुसार उसके भिन्न-भिन्न नामोंकी कल्पना की गयी; परन्तु ये सब नाम एक ही ईश्वरके द्योतक हैं। ईश्वर-द्वारा जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार होनेसे उसके क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (शिव) नाम रक्खे गये। पहले ईश्वरके निर्गुण स्वरूपकी उपासना होती थी; पीछेसे उसकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी मूर्तियाँ बनने लगीं। मूर्तियोंकी कल्पनामें मनुष्यकी बुद्धि अपनेसे अधिक सुन्दर वस्तु उत्पन्न नहीं कर सकती थी, तो भी देव-मूर्तियोंकी कल्पना करते समय मनुष्यको अपनी अपेक्षा कुछ विशेषता प्रदर्शित करनेकी आवश्यकता जान पड़ी। देव-प्रतिमाओंकी कल्पनामें शरीरकी आकृति तो मनुष्य-जैसी ही मानी गयी, परन्तु कहीं-कहीं हाथों और मुखोंकी संख्या बढ़ाकर उनमें विशेषता उत्पन्न की गयी।

भारतवर्षके जलवायुमें हजारों वर्ष पूर्वके मन्दिरों अथवा मूर्तियोंका अक्षुण्ण रहना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि यहाँ अत्यन्त प्राचीन कालकी मूर्तियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। ऐसी दशामें यह स्पष्टरूपसे नहीं जान पड़ता कि प्रारम्भमें मूर्तियाँ द्विभुज बनायी जाती थीं अथवा चतुर्भुज। अबतक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य आदि देवताओंकी जो मूर्तियाँ मिली हैं उनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव चतुर्भुज हैं। सूर्यकी सबसे प्राचीन मूर्तियाँ द्विभुज हैं। अजमेरके 'राजपूताना-म्यूजियम' में सूर्यकी दससे अधिक प्राचीन मूर्तियाँ हैं। उनमें केवल एक चार भुजाओंसे युक्त एवं सात घोड़ोंके रथमें विराजमान है, परन्तु यह दो सौ वर्षसे अधिक पुरानी नहीं है। शेष सभी द्विभुज हैं। इसी प्रकार आरम्भमें शिव-प्रतिमा द्विभुज और एकमुखी बनायी जाती रही हो, यह असम्भव नहीं है। ईस्वी सन्की दूसरी शताब्दीके आसपासके कई सिक्कोंपर स्कन्द, विशाख और महासेनकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जो द्विभुज और एक सिरवाली हैं। उसी शताब्दीके कुषाणवंशी राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेवके कतिपय सिक्कोंपर शिवकी द्विभुज और एक सिरवाली मूर्ति अङ्कित है। उनमें शिव अपने वाहन नन्दीके समीप हाथमें त्रिशूल लिये खड़े हैं। मूर्तिके नीचे प्राचीन यावनी (ग्रीक) लिपिमें 'ओइशो' (Oesho) अर्थात् ईशो—ईश=शिव लिखा है। इन मूर्तियोंसे हम यह मान सकते हैं कि पहले शिवकी मूर्ति द्विभुज और एक सिरवाली रही हो; परन्तु उसी समयके कुछ सिक्कोंपर शिवकी ऐसी भी मूर्तियाँ हैं, जिनके एक मुख है और चार हाथ हैं और हाथोंमें माला, वज्र, त्रिशूल और पात्र दीख पड़ते हैं। इससे जान पड़ता है कि शिवके चार हाथोंकी कल्पना भी नवीन नहीं, किन्तु उतनी ही प्राचीन है। भारतवर्षमें ईस्वी सन्की पाँचवीं शताब्दीके पूर्वकी कोई हाथ-पैरवाली पाषाण-निर्मित शिव-प्रतिमा अबतक देखनेमें नहीं आयी।

राजपूतानेमें शिव-पूजा बहुत प्राचीन कालसे चली आती है और वहाँ कई प्रकारकी शिव-मूर्तियाँ मिलती हैं। इनमेंसे बहुत-सी मूर्तियाँ तो गोलाकार लिङ्गके रूपमें जलहरी (जलाधारी) के मध्यमें स्थापित हैं। सम्भवतः वे शिवके

* विश्वसिंह—नरनारायण एवं गदाध—रुद्रसिंह प्रभृतिके दानकी कथा मत्प्रणीत प्रबन्धके अन्तर्गत 'पूर्णानन्दगिरि और कामाख्या महापीठ' शीर्षक प्रबन्धमें देखिये।

वालकेश्वर बम्बई
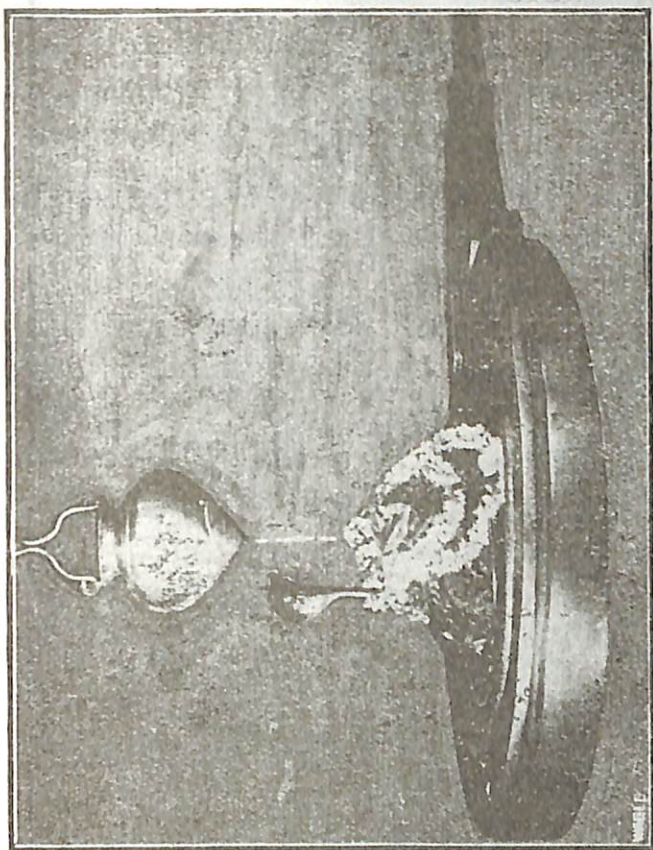
बाणगंगा बम्बई
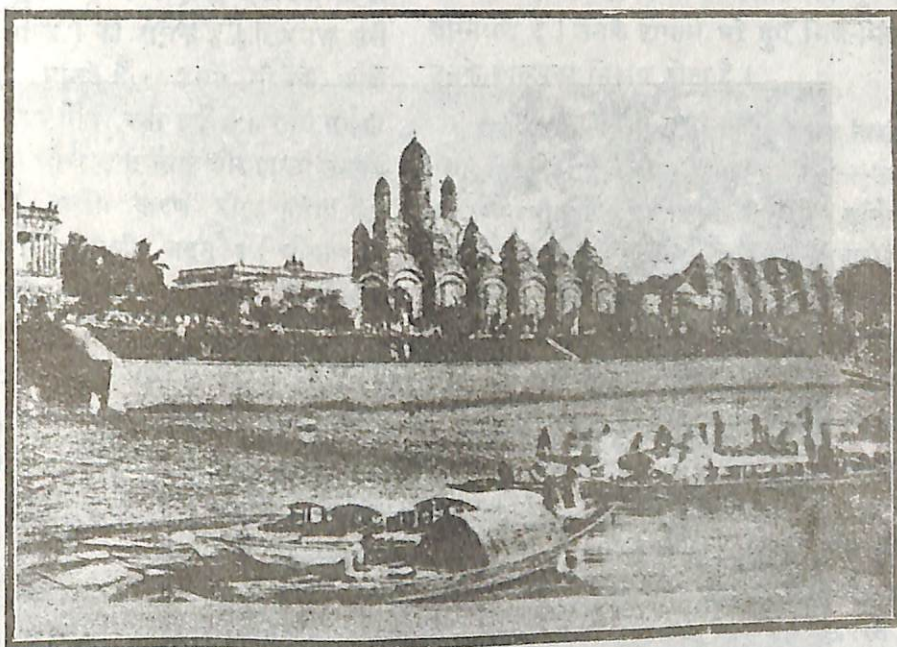
श्रीदक्षिणेश्वर-मन्दिर

पञ्चमुखी परमेश्वर
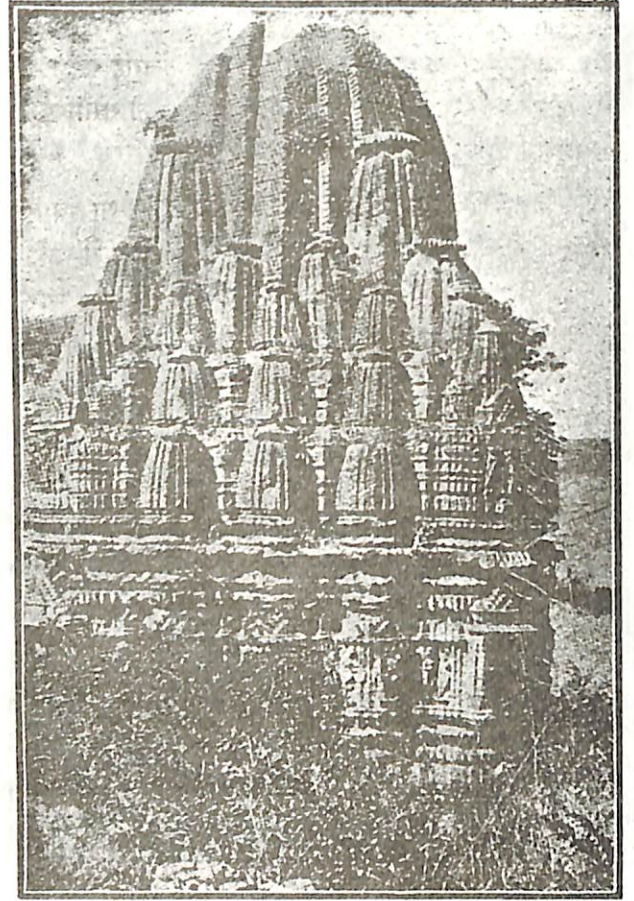
समिद्धेश्वर मन्दिर, चित्तौड़
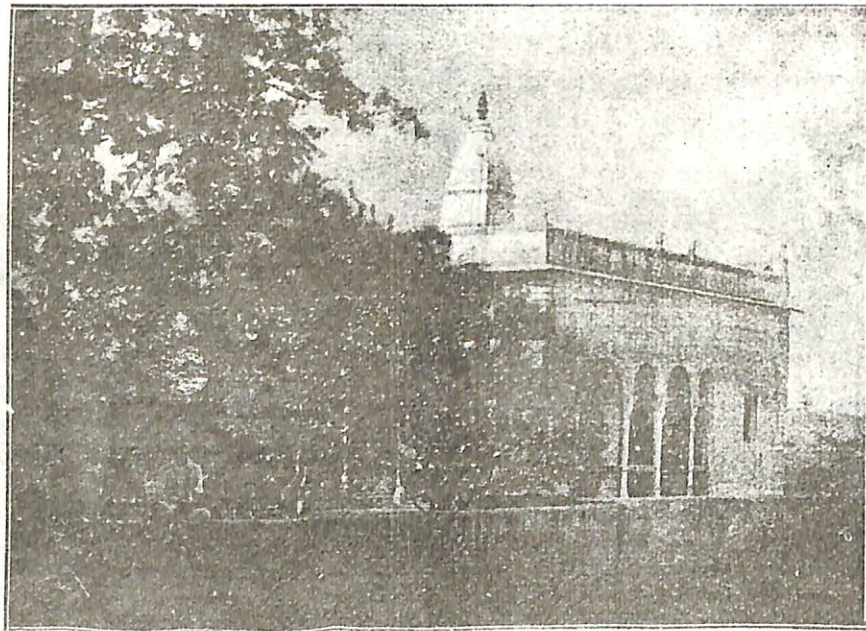
शिवालय, रतनगढ़

'स्थाणु' नामकी सूचक हों। राजपूतानेमें कई जगह राजाओं, सरदारों आदिकी स्मारक छतरियों तथा साधुओंकी समाधियों-के मध्यमें भी ऐसे लिङ्ग स्थापित किये जाते हैं।

बहुत-सी मूर्तियोंमें ऊपरके भागमें थोड़ा-सा बाहर निकला हुआ वृत्ताकार शिवलिङ्ग और उसके चारों ओर जटाजूटसहित चार सिर होते हैं। कोटाराज्यान्तर्गत चार-चोमाके प्राचीन शिवालयमें, मेवाड़में एकलिङ्गजीके प्रसिद्ध मन्दिरमें तथा अन्यत्र भी ऐसी अनेक प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।

उपर्युक्त लिङ्गका वृत्ताकार ऊर्ध्वभाग ब्रह्माण्डका द्योतक माना जाता है और चार मुखोंमेंसे पूर्व-मुख सूर्यका, उत्तर-मुख ब्रह्माजीका, पश्चिम-मुख श्रीविष्णुका और दक्षिण-मुख रुद्र (शिव) का सूचक होता है। जिन मन्दिरोंमें प्राचीन पद्धतिके अनुसार शिवार्चन होता है, वहाँ उन मुखोंमें उन्हीं देवताओंकी कल्पना करके उनका पूजन किया जाता है और विष्णु-सूचक मुखकी पूजाके समय उसपर तुलसी भी चढ़ायी जाती है।

भरतपुर-राज्यके कामाँ (कामवन) नामक ग्रामसे मिला हुआ एक चतुरस्र शिवलिङ्ग राजपूताना-म्यूजियम (अजमेर) में सुरक्षित है। उसके ऊपरका एक इञ्च ऊँचा गोल भाग लिङ्ग (ब्रह्माण्ड) का सूचक है। शिवभक्त उसे शिवका पाँचवाँ मुख मानते हैं। उसमें नीचेके चारों भागोंमें मुखोंके स्थानपर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। पूर्वमें सूर्यकी आसीन मूर्ति है, जिसके नीचे सात घोड़े और हाथमें उनकी रास लिये हुए सूर्यका सारथि अरुण दीख पड़ता है। उत्तरकी ओर दाढ़ीवाले ब्रह्माकी चतुर्मुख (चौथा मुख अदृश्य है) मूर्ति है, पश्चिमकी ओर गरुडासीन विष्णु और दक्षिणकी ओर नन्दीसहित शिवकी मूर्ति है। पञ्चमुखी शिवकी मूर्तियोंमें चारों दिशाओंके मुख इन्हीं चार देवताओंके सूचक होनेसे यही जान पड़ता है कि ये चारों देवता एक ही ईश्वरके ब्रह्माण्डस्थित रूप हैं। कामाँसे एक और बड़ा शिवलिङ्ग मिला है, जिसके ऊपरका एक इञ्च बाहर निकला हुआ वृत्ताकार भाग शिवके पाँचवें मुख (ब्रह्माण्ड) का प्रदर्शक है। उसके नीचे चारों ओर साधारण शिवलिङ्गोंके समान जटाजूटसहित चार मुख हैं। पूर्वके मुखके नीचे घुटनोंतक लम्बे बूट पहने हुए सूर्यकी द्विभुज मूर्ति और उत्तरकी ओर दाढ़ीवाले ब्रह्माजीकी चतुर्मुख, पश्चिममें विष्णुकी चतुर्भुज एवं दक्षिणमें नन्दी-सहित रुद्रकी चतुर्भुज मूर्तियाँ हैं। ये चारों मूर्तियाँ ढाई-ढाई फीट ऊँची और खड़ी हुई हैं। इस शिवलिङ्गको देखने-से यह निश्चय होता है कि इसके चारों दिशाओंके चारों मुख क्रमशः सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके द्योतक हैं।

ईस्वी सन्‌की दूसरी शताब्दीके कुषाणवंशी राजाओंके कुछ सिक्कोंपर नन्दीके पास खड़ी हुई द्विभुज, परन्तु चार मुखवाली (चौथा मुख अदृश्य है) शिवकी मूर्ति बनी है, जो ऊपरकी कल्पनाको पुष्ट करती है। इसप्रकार शिवके पाँच मुख माने जानेके कारण वे 'पञ्चानन,' 'पञ्चमुख' 'पञ्चास्य' अथवा 'पञ्चवक्त्र' आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

जोधपुर-राज्यके गोड़वाड़-प्रान्तमें सादड़ी गाँवसे कुछ दूर राणपुरका सुप्रसिद्ध जैन-मन्दिर है। उसके निकट ही एक प्राचीन सूर्य-मन्दिर है, जिसके गर्भगृहमें सूर्यकी मूर्ति है और उसके बाहरकी ओर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी ऐसी मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जिनमें कमरसे नीचेका भाग सूर्यका और ऊपरका ब्रह्मा आदि देवताओंका है। ये सारी मूर्तियाँ ७ घोड़ोंवाले रथमें बैठी हुई हैं। इन्हें देखकर यही अनुमान हो सकता है कि ये सब देवता एक ही ईश्वरके पृथक्-पृथक् नामोंके सूचक हैं। कुछ ऐसी भी मूर्तियाँ देखनेमें आयी हैं, जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यका सम्मिश्रण है। उनके हाथोंमें धरे हुए भिन्न-भिन्न आयुधोंसे उनके स्वरूपका निश्चय होता है।

राजपूताना-म्यूजियममें रक्खी हुई एक विशाल शिलापर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी सुन्दर मूर्तियाँ—उनके वाहन-सहित—बनी हुई हैं। ब्रह्माजीकी प्राचीन मूर्तियोंके ऊपरके एक किनारेपर विष्णु और दूसरेपर शिवकी छोटी-छोटी मूर्तियाँ रहती हैं। इसी तरह विष्णुकी मूर्तिके किनारोंपर ब्रह्मा और शिवकी, तथा शिवकी मूर्तिके दोनों ऊपरी पार्श्वोंपर ब्रह्मा और विष्णुकी मूर्तियाँ होती हैं। ये सब एक ही ईश्वरके इन तीन रूपोंको सूचित करती हैं। उनके रूप भी अलग-अलग माने गये हैं। राजपूताना-म्यूजियममें एक सुविशाल प्राचीन शिवलिङ्ग है, जिसपर ब्रह्मा नीचे (पाताल) से ऊपर (ब्रह्माण्डमें) जाते हुए प्रदर्शित किये गये हैं और एक-एकके ऊपर दो-दो मूर्तियाँ दीख पड़ती हैं। दूसरी तरफ विष्णु नीचा मुख किये हुए ऊपरसे नीचे आ रहे हैं। विष्णुकी भी एक-एकके नीचे दो-दो मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ये मूर्तियाँ अनन्त ब्रह्माण्डरूप शिवलिङ्गकी थाह लेनेके लिये ब्रह्माका ऊपरकी तरफ और विष्णुका नीचेकी

ओर जाना सूचित करती हैं। इससे हम यह मान सकते हैं कि शिवलिङ्गकी कल्पना वस्तुतः अनन्त ब्रह्माण्डकी सूचक है।

जिस समय इन देवताओंकी मूर्तियोंकी कल्पना हुई, उस समय इनकी पत्नियोंकी कल्पनाका होना भी स्वाभाविक ही था। शिवकी पत्नी शिवा, उमा, पार्वती, गौरी, दुर्गा, काली आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुई। राजपूतानेमें ऐसी बहुत-सी मूर्तियाँ मिलती हैं, जिनमें शिव नन्दीके ऊपर बैठे हुए हैं और उनकी बायीं जङ्घापर पार्वतीजी बैठी हैं। इसप्रकारकी तीन मूर्तियाँ राजपूताना-म्यूजियममें विद्यमान हैं। कहीं-कहीं शिव और पार्वतीकी नन्दीके निकट खड़ी हुई मूर्तियाँ भी मिलती हैं। शिव-पार्वतीके विवाहके दृश्य भी प्रस्तराङ्कित हुए हैं। इनमें आमने-सामने खड़े हुए शिव-पार्वती ऊपरी भागमें विवाहमें सम्मिलित होनेको आये हुए इन्द्र आदि देवता और मध्यमें अग्निके सामने विवाह-कार्य सम्पादित करते हुए चतुर्मुख ब्रह्मा प्रदर्शित हैं। ऐसे दो नमूने राजपूताना-म्यूजियममें सुरक्षित हैं।

जब शिव-पत्नीकी कल्पना हुई, तब शिव और पार्वती दोनोंका मिलकर एक शरीर भी माना जाने लगा—दाहिना भाग शिवका और बायाँ एक स्तनसहित पार्वतीका। ऐसी मूर्तियाँ 'अर्द्धनारीश्वर' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें शिवके साथ नन्दी और पार्वतीके साथ उनका वाहन सिंह दिखलाया जाता है। यह कल्पना भी प्राचीन है। क्योंकि संस्कृतके सुप्रसिद्ध महाकवि बाणभट्टके पुत्र पुलिनभट्टने 'कादम्बरी' के उत्तरार्द्धके प्रारम्भमें अर्द्धनारीश्वरकी स्तुति की है।* कहीं-कहीं शिवकी विशालकाय तीन मुखवाली मूर्ति (त्रिमूर्ति, महेश्वर) भी पायी जाती है। उसके छः हाथ, जटायुक्त तीन सिर और तीन मुख होते हैं, जिनमेंसे रोता हुआ एक मुख शिवके रुद्र-नामको चरितार्थ करता है। मध्यके दो हाथोंमेंसे एकमें बिजौरा और दूसरेमें माला, दाहिनी ओरके दो हाथोंमेंसे एकमें सर्प और दूसरेमें खप्पर और बायीं ओरके हाथोंमेंसे एकमें पतले दण्ड-सी कोई वस्तु और दूसरेमें ढाल या काचकी आकृतिका कोई छोटा-सा गोल पदार्थ होता है। त्रिमूर्ति वेदीके ऊपर दीवारसे सटी रहती है और उसमें वक्षःस्थलसे कुछ नीचेतकका ही भाग होता है। त्रिमूर्तिके सामने भूमिपर बहुधा शिवलिङ्ग होता है। ऐसी त्रिमूर्तियाँ चित्तौड़के किले तथा सिरोही-राज्यके कई स्थानोंमें देखनेमें आयी हैं। शिव 'नटराज' कहलाते हैं और उनकी ताण्डव-नृत्य करती हुई मूर्तियाँ भी राजपूतानेके कई स्थानोंमें देखनेमें आयी हैं।

इसप्रकार शिवकी भिन्न-भिन्न मूर्तियाँ राजपूतानेमें मिलती हैं। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार शिवभक्त किसी-न-किसी रूपमें अपने उपास्यकी पूजा करते हैं।

जिसप्रकार बौद्धोंने २४ अतीत बुद्ध, २४ वर्तमान बुद्ध एवं २४ भावी बुद्धकी और जैनोंने २४ तीर्थङ्करोंकी तथा वैष्णवोंने २४ अवतारोंकी कल्पना की, उसी तरह शिवके उपासकोंने भी शिवके कई अवतारोंकी कल्पना की; परन्तु उन सब अवतारोंकी मूर्तियाँ नहीं मिलतीं। राजपूतानेमें शिवके लकुलीश (नकुलीश, लकुटीश) अवतारकी मूर्तियाँ बहुत मिलती हैं। 'विश्वकर्मावतारवास्तुशास्त्रम्' नामक ग्रन्थमें लकुलीश-मूर्तिके वर्णनमें लिखा है—

न (ल) कुलीशमूर्ध्वमेढ्ं पद्मासनसुसंस्थितम्।
दक्षिणे मातुलिङ्गं च वामे दण्डं प्रकीर्तितम्॥

'लकुलीशकी मूर्ति ऊर्ध्वमेढ्र (ऊर्ध्वलिङ्गी) पद्मासनस्थित, दाहिने हाथमें बिजौरा और बायें हाथमें दण्ड (लकुट) लिये होती है। लकुलीशके मन्दिर कई जगह मिलते हैं। लकुलीश-सम्बन्धी देवालयोंमें उदयपुर-राज्यमें एकलिङ्गजीके मन्दिरके पास वि० सं० १०२८ का बना हुआ और कोटा-राज्यके प्रसिद्ध कयालजी (कपालेश्वर-मन्दिर) से अनुमान एक मीलपर जयपुरकी सीमामें आधा गिरा हुआ एक सुविशाल मन्दिर मेरे देखनेमें आया। इस सम्प्रदायके माननेवाले पाशुपत शैव कनफड़े साधु होते थे। लकुलीशका अवतार कब हुआ, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता; परन्तु मथुरासे मिले हुए गुप्त संवत् ६१ (वि० सं० ४३७=ई० स० ३८०) के लेखसे पाया जाता है कि लकुलीशके शिष्य कुशिकको परम्परामें ११ वाँ आचार्य उदिताचार्य उक्त संवत्में विद्यमान था, अतः लकुलीशका प्रादुर्भाव ई० स० की दूसरी सदीके अन्तके आस-पास होना अनुमान किया जा सकता है।

लकुलीशका प्राकट्यस्थान कायावरोहण (कायारोहण, कारवान, बड़ौदा-राज्यमें) माना गया है। उनके चार

---

* देहद्वयार्धघटनारचितं शरीर-
मेकं ययोरनुपलक्षितसन्धिभेदम्।
वन्दे सुदुर्घटकथापरिशेषसिद्ध्यै
सृष्टेर्गुरू गिरिसुतापरमेश्वरौ तौ॥

शिष्योंके नाम कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य (लिङ्गपुराण २४ । १३१) मिलते हैं। एकलिङ्गजी तथा राजपूतानेके अन्य मन्दिरोंके मठाधीश कुशिककी शिष्य-परम्परामें थे। ये साधु कान फड़वाते, सिरपर जटाजूट रखते और शरीरपर भस्म लगाते थे। ये विवाह नहीं करते थे; किन्तु चेले मूँड़ते थे।

राजपूतानेके शिवभक्त राजा अपने इष्टदेव शिवके बड़े-बड़े मन्दिर बनवाते थे और उनके साथ मठ भी होते थे। ये मठ बहुधा लकुलीश-सम्प्रदायके कनफड़े साधुओंके अधिकारमें होते थे। वे लोग राजाओंके गुरु माने जाते थे। एकलिङ्गजी तथा मैनाल (मेवाड़) आदिके मठाधीश भी यही लोग थे। इन मन्दिरोंके द्वारपर लकुलीशमूर्ति रहती है। इन मन्दिरों और मठोंके निर्वाहके लिये बड़ी-बड़ी जागीरें दी जाती थीं। वर्तमानकालके 'नाथ' लोग विशेषतः उसी सम्प्रदायसे निकले हुए हैं; परन्तु अब वे लोग लकुलीश-का नामतक नहीं जानते।

नर्मदा-तटके कुछ शिव-मन्दिर

(लेखक—पं० श्रीप्रबोधचन्द्रजी मिश्र)

भारतमें धार्मिक दृष्टिसे सात नदियोंका बड़ा महत्त्व है। धार्मिकजन स्नान करते समय अपनी पवित्रताके निमित्त इन सात नदियोंके जलका आवाहन करते हैं। श्लोक इसप्रकार है—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी—ये नदियाँ अति पवित्र मानी जाती हैं। उत्तर-भारतमें जो सम्मान गङ्गा और यमुनाका है, मध्य-भारतमें वही सम्मान नर्मदाका है।

भारतमें नर्मदाके दक्षिण और उत्तर-तटमें जितने शिव-मन्दिर बने हुए हैं उतने सम्भवतः किसी भी नदीके तटपर नहीं हैं। नर्मदाके सुन्दर और पावन तटपर शिव-मन्दिरों-का बाहुल्य क्यों है? नर्मदाका इतना माहात्म्य क्यों है? शिवका नर्मदासे क्या सम्बन्ध है? इन सब बातोंकी संक्षिप्त चर्चा इस लेखमें की जाती है।

नर्मदाकी उत्पत्तिका माहात्म्य अनेक पुराणोंमें बड़ी सुन्दरताके साथ वर्णन किया गया है। मत्स्यपुराणके १८५ वें अध्यायमें एक स्थानपर यह वर्णन है कि कलिङ्ग-देशके अमरकण्टकवनमें नर्मदा नामकी एक मनोहर और रमणीय नदी है। वह भगवान् शङ्करके साक्षात् तेज-अंशसे आविर्भूत हुई है। उस नदीमें स्नान कर जो शङ्करका विधिवत् पूजन करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। कूर्मपुराणके अन्तर्गत ब्राह्मीसंहिता—उत्तरार्द्धके ३८ वें अध्यायमें वर्णन किया गया है कि नर्मदा नदी रुद्रकी देहसे निकली है। शिवपुराणके ३८ वें अध्यायमें भी यही वर्णन है कि नर्मदा नदी शिवका रूप है, इसके तटपर असंख्य शिवलिङ्ग स्थित हैं। नर्मदाका इन पुराणोंके अतिरिक्त अन्य पुराणोंमें भी वर्णन है। इसके माहात्म्यसे प्रभावित होकर प्राचीन ऋषियोंने एक स्वतन्त्र नर्मदा-पुराणकी रचना कर डाली, जिसमें इस नदीका अतीव विस्तृत एवं मनोहारी वर्णन है। नर्मदाके विषयमें स्कन्द-पुराणान्तर्गत एक स्वतन्त्र रेवाखण्ड है, उसमें इसकी अपूर्व महिमाका वर्णन है।

अपने प्रिय पुत्र स्कन्दके प्रार्थनानुसार शङ्करजीने प्रेमपूर्वक नर्मदाके माहात्म्यका वर्णन किया, जिसे पीछे स्कन्दने मार्कण्डेय ऋषिको बतलाया।

एक समय मार्कण्डेय ऋषि समस्त तीर्थोंका भ्रमण करके नर्मदाके पावन तटपर विराजमान थे। उनके चारों ओर अनेक देवगण बैठे थे। उसी समय महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों और अनेक ब्राह्मणोंसहित मार्कण्डेय मुनिके आश्रममें आ पहुँचे और मुनिको प्रणाम कर यथास्थान बैठ गये और फिर पीछे समय पाकर उन्होंने ऋषिवरसे पूछा कि—'कृपया आप हमें यह बताइये कि गङ्गा, यमुना आदि पवित्र नदियोंके तटोंको छोड़कर आप नर्मदा नदीका सेवन क्यों करते हैं?' मार्कण्डेयजीने कहा—'राजन्! इस मर्त्यलोकमें नर्मदासे बढ़कर पापोंका शीघ्र नाश करनेवाली कोई दूसरी नदी नहीं है। ये भगवान् शङ्करकी

पुत्री हैं और भगवान् शङ्करके प्रसादसे इस लोकको तारनेके लिये इस अवनीतलपर अवतीर्ण हुई हैं। एक समय भगवान् शङ्कर ऋष्यपर्वतपर तप कर रहे थे। एकाएक उनके शरीरसे श्वेत घर्म (पसीना) निकला, जिसके प्रवाहमें समस्त पर्वत बहने लगे। पीछे उसकी एक कन्या बन गयी और यही नर्मदा हो गयी।' नर्मदाने शिवजीसे यह वरदान प्राप्त किया कि 'मैं अमर हो जाऊँ, मेरे जलमें स्नान करनेवाला जीव पापरहित हो जाय। उत्तरमें जैसा भागीरथीका सम्मान है, वैसा ही दक्षिणमें आपके प्रसादसे मेरा सम्मान हो।'

भगवती नर्मदा अमरकण्टक पहाड़पर प्रकट हुई। यही नर्मदाजीका उद्गम-स्थान है। अमरकण्टकका प्रधान तीर्थ नर्मदाकुण्ड है और उसके पासकी एक सड़कपर नर्मदाजीका मन्दिर है। मन्दिरके सामने एक और भी प्रसिद्ध मन्दिर है, जो शिवजीका है। उद्गम-स्थानसे निकलनेके बाद नर्मदाका जल इसी कुण्डमें गिरता है।

अमरकण्टक पहुँचनेके लिये रेलवेकी एक शाखा कटनीसे बिलासपुरको गयी है। इसपर पेंडरा-रोड नामक एक स्टेशन है। उत्तर भारतसे जानेवाले लोग यहींपर उतरते हैं। यहाँसे अमरकण्टक चौदह मील है। स्टेशनसे अमरकण्टकतकका मार्ग पहाड़ी है, जिसके बीचमें सुहावना जंगल पड़ता है। अमरकण्टकसे तीन मील दूर कपिलधारा नामक एक प्रसिद्ध स्थान है। कपिलधारासे डेढ़ मीलकी दूरीपर दूधधारा है। यहाँपर नर्मदाजी एक ऊँची पहाड़ीसे नीचे गिरती हैं। इसी अमरकण्टकसे एक सोनभद्रा नदी और निकलती है।

नर्मदाका अपूर्व माहात्म्य है। हजारों मनुष्य प्रतिवर्ष इसकी परिक्रमा करते हैं। नर्मदाके विषयमें कहावत है कि—

'नर्मदाके कंकर, सोई शिवशंकर।'

इस तरह नर्मदाका एक-एक पत्थर और कंकर शिवका रूप है। नर्मदाके सम्बन्धमें कहा है—

स्मरणाज्जन्मजं पापं दर्शनेन त्रिजन्मजम्।
स्नानाज्जन्मसहस्राणां हन्ति रेवा कलौ युगे॥

अर्थात् कलियुगमें नर्मदाका इतना माहात्म्य है कि उनके स्मरणमात्रसे जन्मभरके, दर्शनसे तीन जन्मोंके और स्नानसे सहस्र जन्मोंके पापोंका नाश होता है।

अब इस सम्बन्धमें अधिक विस्तार न कर हम नर्मदा-तटके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शिव-मन्दिरोंका वर्णन करते हैं। इन मन्दिरोंका न केवल धार्मिक दृष्टिसे ही महत्त्व है, अपितु ऐतिहासिक दृष्टिसे भी इनका बहुत अधिक मूल्य है। कोई-कोई मन्दिर तो पाँच सौ और छः सौ वर्षोंसे भी अधिक प्राचीन हैं। इसलिये स्थापत्य-शिल्पकी दृष्टिसे भी दर्शनीय हैं।

मुख्य-मुख्य स्थान ये हैं—

शूलपाणीश्वर—श्रीनर्मदाजीके किनारे मालवा और गुजरातके बीचमें शूलपाणिकी प्रसिद्ध झाड़ी है। इसी झाड़ीमें सिन्दूरी नदीका संगम श्रीनर्मदाजीसे हुआ है। इस सिन्दूरी-सङ्गमसे ग्यारह मीलकी दूरीपर शूलपाणीश्वर-तीर्थ है। मन्दिर अति प्राचीन एवं पश्चिमाभिमुख बना हुआ है। उत्तर-दिशामें कमलेश्वर तथा दक्षिणमें राजराजेश्वरके मन्दिर हैं। मन्दिरके पृष्ठ-भागमें छोटे-छोटे पञ्चपाण्डवोंके मन्दिर हैं, परन्तु उनमें द्रौपदी नहीं हैं। कमलेश्वरसे दक्षिण-दिशामें सप्तर्षियोंके सात छोटे-छोटे मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंमें भी अरुन्धती नहीं हैं। इस मन्दिरका जीर्णोद्धार विन्ध्याचलके महाराज श्रीमान् राजसिंहजीने १६९५ ई० में कराया था।

इस तीर्थकी कथा रेवाखण्डमें इसप्रकार वर्णित है—ब्रह्माका नाती, दैत्याधिपति अन्धकासुर बड़ा भयङ्कर था। इसने समस्त लोकोंको जीतनेके लिये घोर तपस्या की। एक सहस्र वर्षतक यह गङ्गाजीके तटपर केवल धूम्रपान करके तपस्या करता रहा, हजारों वर्षतक पञ्चाग्नि-तप आदि और भी अनेक प्रकारके तप किये। इस घोर तपके प्रभावसे उसके मस्तकसे धुआँ निकलने लगा। दैत्यके सिरसे निकला हुआ धूम सर्वत्र छा गया। संसार व्याकुल हो उठा। आखिर भगवान् भोलानाथकी भी समाधि टूटी। वे भवानीसहित भृगु-पर्वतपर, जहाँ अन्धकासुर तपस्या कर रहा था, आये और उसे दर्शन देकर बोले—'हे वत्स! वर माँगो। हम तुम्हारे तपसे सन्तुष्ट हैं।'

उसने कहा 'भगवन्! यदि आप दासपर प्रसन्न हैं तो कृपया यह वरदान दीजिये कि मेरे सम्मुख आनेवालेका पराभव हुआ करे।' 'अच्छा, तुम विष्णुभगवान्को छोड़कर अपने सामने आनेवाले और सबका पराभव कर सकोगे'—कहकर भगवान् शङ्कर उमासहित अन्तर्धान हो गये और इधर वह दैत्य भी अपने नगरको चल दिया।

अन्धकासुर अपनी राजधानीमें पहुँचकर वरदानके बलसे प्राणिमात्रको पीड़ित करने लगा। चारों ओर त्राहि-

श्रीनर्मदेश्वर

अमरकण्टक

शूलपाणेश्वर

कुम्भेश्वर

दशाश्वमेध तीर्थ

कुबेरेश्वर

आदित्येश्वर
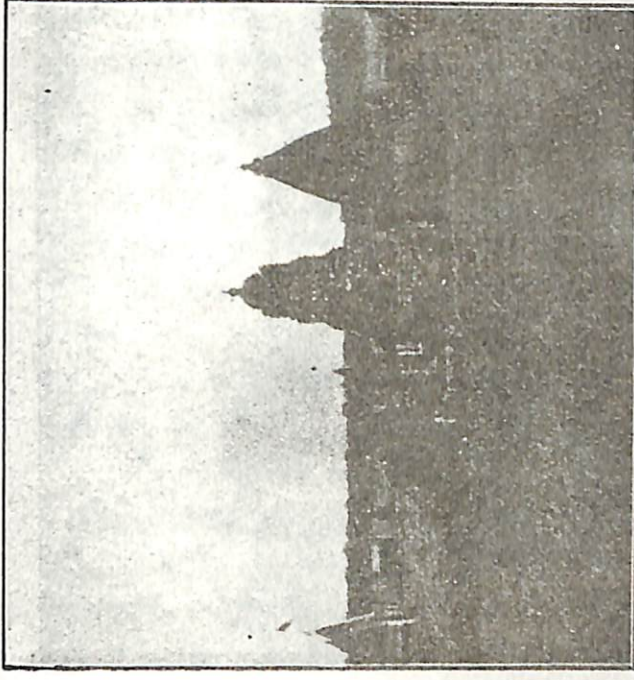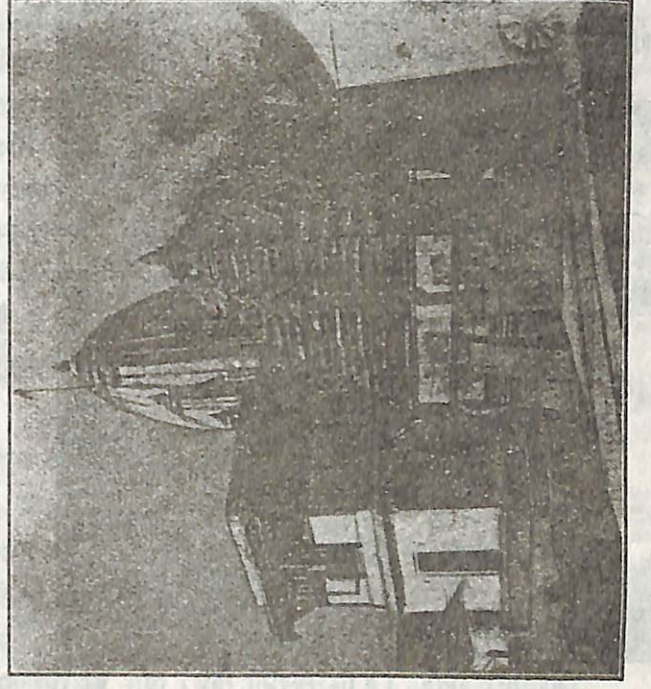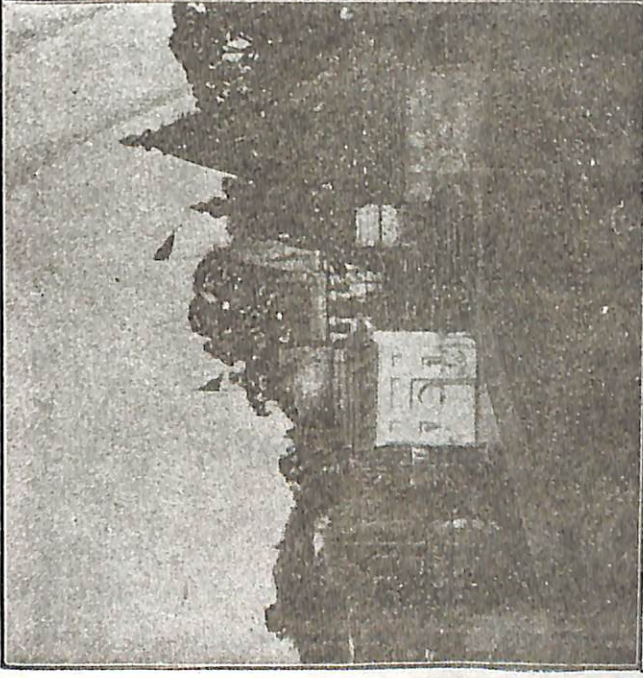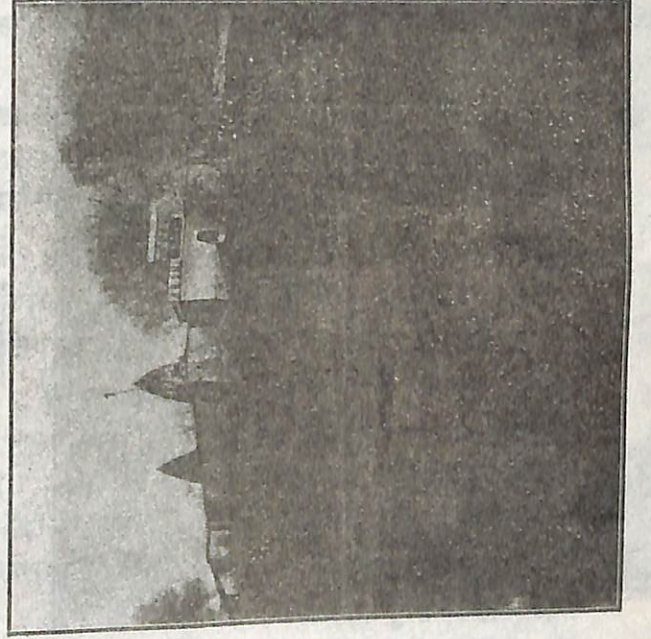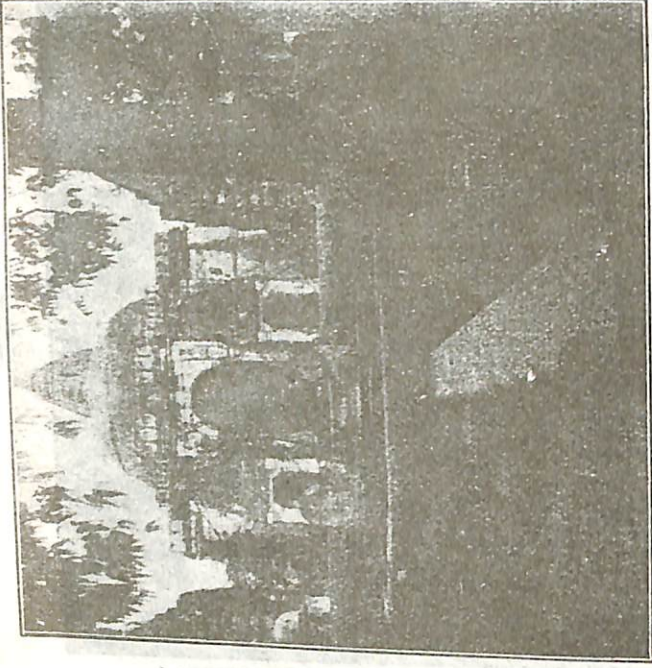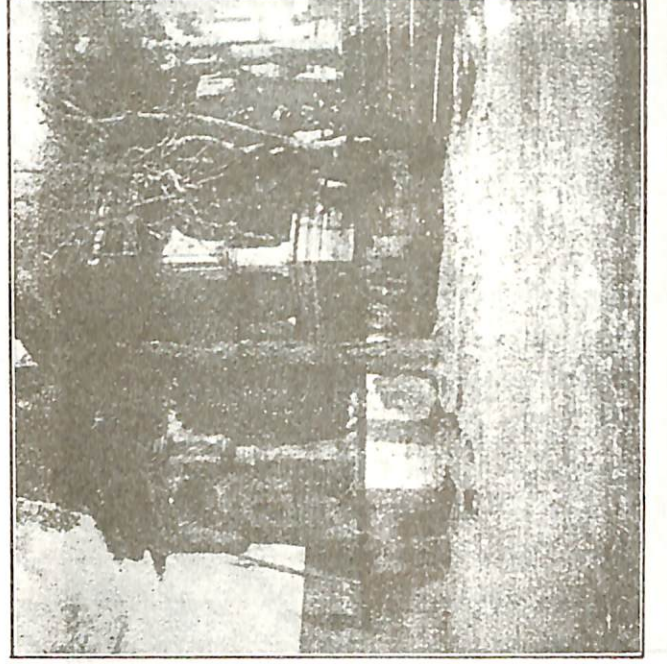
हायेश्वर

त्राहि मच गयी। देवतातक व्याकुल हो उठे। देवराज इन्द्रका भी आसन डोल गया।

विष्णुभगवान्‌की प्रेरणासे दैत्यने शङ्करको भी युद्धके लिये निमन्त्रण भेज दिया। शङ्करजीको उसे वर देनेपर पश्चात्ताप हुआ और वे उससे युद्ध करनेके लिये चल दिये। घोर संग्राम हुआ। अन्तमें क्रुद्ध होकर भगवान् शङ्करने अपने त्रिशूलसे आहत कर उसे भूमिशायी बना दिया। प्राणान्त निकट देख, उसने भगवान् शङ्करकी स्तुति की। आशुतोष पुनः प्रसन्न हो गये और उसे अपना रूप देकर अपने गणोंमें भर्ती कर लिया।

दैत्यके पराजयसे सर्वत्र आनन्द मनाया जाने लगा। सारे देवता भगवान् शङ्करके दर्शनके लिये आये और उनकी स्तुति करने लगे। पीछे भगवान् शङ्करने सब देवोंसे कहा कि मेरा त्रिशूल ब्राह्मणके रक्तसे अपवित्र हो गया है, इससे मुझे ब्रह्महत्याका घोर पातक लगा है। आपलोग कोई ऐसा उपाय बतलायें कि मैं इस पापसे शीघ्र मुक्त हो जाऊँ और मेरा यह त्रिशूल धुलकर साफ हो जाय। शङ्करजीने समस्त देवोंकी सम्मतिसे उनके साथ सारे तीर्थोंमें जाकर त्रिशूलके रक्तको धोया, परन्तु रक्तके दाग नहीं मिटे। आख़िर, वे भृगुपर्वतपर गये और क्रोधमें भरकर त्रिशूलको पर्वतपर दे मारा। त्रिशूलके भयङ्कर आघातसे पर्वत धसककर पातालको चला गया और त्रिशूलके रक्तके चिह्न मिट गये। जिस स्थलपर त्रिशूल लगा वहाँसे सरस्वती-गङ्गा प्रकट हुई, जो नर्मदामें जाकर मिल गयीं। उसी स्थानपर एक शिवलिङ्गकी स्थापना हुई, वह शिवलिङ्ग शूलपाणीश्वरके नामसे विख्यात हो गया। यह अति पवित्र स्थान समझा जाता है। यहाँ जो पाताल-गङ्गा निकली है उसे भोगावती कहते हैं। यहाँ एक निर्वाणशिला है, जिसकी अतुल महिमा है।

कुम्भेश्वर-शूलपाणीश्वरसे कुछ मील आगे, वानरेश्वरसे एक मील, कुम्भीवनमें जिओर (जीमूतपुर) ग्रामके समीप कुम्भेश्वर महादेवका विशाल मन्दिर है। इसकी कथा इसप्रकार है—

एक समय शनिने देवगुरु बृहस्पतिसे अपना क्रोध शान्त करनेकी युक्ति पूछी। उन्होंने कहा कि यदि तुम कुम्भेश्वर जाकर तप करो, तो तुम्हारा क्रोध शान्त हो सकता है। शनिके पूछनेपर देवगुरुने कुम्भेश्वरकी कथा सुनायी। उन्होंने कहा—भृगुजीके नाती मार्कण्डेयजीने एक समय घोर तपस्या की। नौ दिनमें चारों वेदोंका पारायण किया। पारायण विधिवत् करनेके उपरान्त कलसका पूजन किया और उसका उद्धार किया, उसी समय कलससे एक लिङ्ग उत्पन्न हुआ। शङ्करजी प्रकट होकर बोले कि वरदान माँग। मार्कण्डेयजीने हाथ जोड़कर कहा कि 'भगवन्! आप यहींपर निवास करें, मैं यही वरदान आपसे माँगता हूँ।' शङ्करने प्रसन्न होकर 'तथास्तु' कहा। तबसे भगवान् शङ्कर वहाँ बराबर निवास करते हैं।

देवगुरुके बतलानेसे शनिने कुम्भेश्वर महादेवपर आकर एक सहस्र वर्षतक घोर तप किया और शान्ति प्राप्त की।

इस स्थानका बड़ा माहात्म्य है। यहाँ स्नान करनेका बड़ा पुण्य है। यह तीर्थ आदि-कल्पमें ब्रह्माजीने स्थापित किया, दूसरे कल्पमें विष्णुभगवान्‌ने। तीसरे कल्पमें इन्द्रने यहाँ तपस्या करके सिद्धि पायी, इसलिये इसका नाम शक्रेश्वर पड़ गया। यही मेघेश्वर भी हैं। यहींपर वृत्रासुरकी लड़ाई हुई थी। चौथे कल्पमें यम-धर्मने यहाँ तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की, इसलिये इसका नाम 'धर्मेश्वर' तीर्थ हुआ। पाँचवें कल्पमें वरुणने सिद्धि पायी, इसलिये यह 'वरुणेश्वर' तीर्थ हुआ। छठे कल्पमें कुबेरने तप करके सिद्धि प्राप्त की, इसलिये इसे 'धनदेश्वर' कहते हैं। सातवें कल्पमें मार्कण्डेयजीने तप किया और वेद-पारायण करके सिद्धि प्राप्त की, तबसे यह स्थान 'कुम्भेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

यहाँ कुम्भराशिके शनिका बड़ा माहात्म्य है। गोदावरीका स्नान करके जबतक यहाँका स्नान नहीं किया जाता, तबतक गोदावरीके स्नानका फल नहीं होता। यहाँका मन्दिर दर्शनीय और सुन्दर है। स्थान भी अत्यन्त रमणीय है।

हनुमन्तेश्वर-कुम्भेश्वरसे कुछ मील आगे नर्मदाके तटपर यह मन्दिर है। स्थान अति सुन्दर है। मन्दिरमें हनुमान्‌जीकी मूर्ति है। मन्दिर गुम्बज़दार है।

शुकेश्वर-नागेश्वरघाटसे लगभग एक मीलकी दूरीपर शुकेश्वरघाट है। घाटके ऊपर, शुकेश्वर महादेवका मन्दिर है। नर्मदासे लेकर मन्दिरतक सुन्दर पत्थरकी चौड़ी-चौड़ी सीढ़ियाँ लगी हैं, सीढ़ियोंके ऊपर दुमंजिला बड़ा दरवाजा है। भीतर मण्डपयुक्त मन्दिर है।

यह मन्दिर प्राचीन है, पत्थरका बना हुआ है। स्थान अति रमणीय है। इस स्थानपर शुकदेवजीने बाल्यावस्थामें, जब वे

आठ वर्षके थे, तपस्या की थी। उनके सौ वर्ष तपस्या करनेके पश्चात् भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए। शुकदेवजीने अपनी मुक्तिके साथ-साथ यह भी वरदान माँगा कि भगवान् तीर्थमें रहकर भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करते रहें। तबसे तीनों देव यहाँ रहते हैं। यहाँ तीन मूर्तियाँ ये हैं—व्यास, शुकेश्वर और मार्कण्डेयेश्वर।

माण्डव्येश्वर—यह नौगवा ग्रामसे छः मीलकी दूरीपर है। यहाँ पोस्टआफिस है। यह बी० बी० एण्ड० सी० आई० आर० का स्टेशन भी है। इस स्थानका माण्डव्येश्वर-नाम माण्डव्य ऋषिके नामसे पड़ा है। इस स्थानका इतिहास इसप्रकार है—

प्राचीन समयमें एक देवराज नामका राजा था। उसकी एक अति रूपवती कन्या थी। कन्याका नाम कुमुदिनी था। एक दिन वह सरोवरमें स्नान कर रही थी। इतनेमें एक दैत्यने पक्षीका रूप धारण कर उसका अपहरण कर लिया। मार्गमें जाते समय कन्याने अपने कुछ आभूषण माण्डव्य ऋषिके आश्रममें गिरा दिये। जब राजाके आदमी लड़कीको ढूँढ़ते हुए ऋषिके आश्रममें आये तो वहाँ पड़े हुए लड़कीके आभूषणोंको देखा। माण्डव्य ऋषि समाधिमें बैठे थे। राजपुरुषोंने ऋषिसे पूछा—हे मुने! क्या आपने राजा देवराजकी कन्या कुमुदिनीको देखा है? आपके आश्रममें उसके कुछ अलङ्कार मिले हैं। क्या आप उसके विषयमें कुछ जानते हैं? ऋषिको कन्याके विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं था। वे राजपुरुषोंके प्रश्नोंका यथोचित उत्तर न दे सके। राजपुरुषोंने जाकर सब हाल राजासे कहा। राजाने ऋषिको छद्मवेषधारी समझ उसे सूलीपर चढ़ानेकी आज्ञा दे दी। राजाज्ञानुसार ऋषि सूलीपर चढ़ा दिये गये। परन्तु इस घटनासे ऋषिके छोटे भाईको बड़ा क्षोभ हुआ। उसने राजाका सर्वनाश करनेके लिये हाथमें जल लेकर मन्त्र पढ़ा और वह उस जलको छोड़ना ही चाहता था कि सूलीपर स्थित माण्डव्य ऋषिको यह मालूम हो गया और उन्होंने अपने भाईको ऐसा करनेसे मना किया। वे बोले—'हे भाई! तुम ऐसा अनिष्ट मत करो, राजाने अज्ञान अथवा मोहके वशीभूत होकर यह राजाज्ञा जारी की है। सत्यका पता लगनेपर उसे स्वयं अपने कियेपर पश्चात्ताप होगा।'

इसी बीचमें सप्तर्षियोंसहित अनेक ऋषि वहाँ आ उपस्थित हुए और माण्डव्य ऋषिको सूलीसे उतारने लगे। परन्तु माण्डव्य ऋषि उन ऋषियोंसे बोले—'आपलोग मुझे सूलीपरसे न उतारें। यह मेरे पूर्व कर्मोंका फल है जो मुझे भोगना ही पड़ेगा।' आखिर, ऋषिगण लाचार हो अपने-अपने स्थानको चले गये।

रातके समय एक शाण्डिली नामक ब्राह्मणी अपने कुष्ठी पति शौनकको माथेपर लिये हुए सूलीके पाससे निकली। उसका स्पर्श माण्डव्यके पैरको हुआ। क्लेशके कारण माण्डव्य चिल्लाने लगे। माण्डव्य ऋषिके चिल्लानेको सुनकर सब लोग एकत्र हो गये। माण्डव्य ऋषिके भाईने क्रोधित होकर शाण्डिलीको यह शाप दे दिया कि 'सूर्योदय होते ही तेरा पति मर जायगा।' शाण्डिलीने सब ऋषियोंसे शापकी कथा कही, पर किसीने उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया। उसने कहा—आपलोगोंने मुझ ब्राह्मणीको अबला समझकर इसकी करुण-कथापर ध्यान नहीं दिया। अब आपलोग भी पतिव्रताके धर्मका प्रभाव प्रत्यक्ष देख लीजिये। यह कहकर उसने छः मासके लिये सूर्यभगवान्का उदय होना ही रोक दिया। संसारके सारे काम बन्द हो गये। देवतागण व्याकुल होकर ब्रह्माके सहित राजाको लेकर शाण्डिलीके पास आये और यह वचन दिया कि तेरा पति नहीं मरेगा। इतनेमें राजकन्यापहारक दैत्य भी उस कन्याको लिये हुए आया और उसे वहाँ छोड़ चुपचाप भाग गया। राजकन्याके मिलनेपर सब ऋषियोंने माण्डव्य ऋषिको सूलीपरसे उतार लिया। राजाने भी माण्डव्य ऋषिसे क्षमा माँगी और उन्हींको अपनी कन्या समर्पित कर दी। माण्डव्यके भाईने जो जल राजाका नाश करनेके लिये हाथमें ले रक्खा था, उसे समुद्रमें छोड़ दिया, उसीसे कालकूट विष बन गया।

दशाश्वमेधतीर्थ—श्रीनर्मदाजीके किनारे गुजरात-प्रान्तमें भड़ौंच नामक एक प्रसिद्ध नगर है। उसी नगरके पास नर्मदाके तटपर दशाश्वमेधतीर्थ भी एक अति उत्तम और प्रसिद्ध स्थान है। यह अति प्राचीन है। यहाँपर प्रियव्रत राजाने दश अश्वमेधयज्ञ किये थे। यहींपर एक ब्राह्मणने वेदोंके अनेक पारायण करके अपूर्व सिद्धि प्राप्त की थी। लोगोंकी धारणा है कि यहाँ सरस्वतीदेवी साक्षात्‌रूपसे निवास करती हैं और भक्तोंको विद्यादान देती हैं। आजकल भी लोग यहाँ आकर संन्यास ग्रहण करते हैं। स्थान रमणीक और दर्शनीय है।

कुबेरेश्वरतीर्थ—यह एक विशाल मन्दिर है। मन्दिरके मध्यमें एक बड़ा गुम्बज है। मन्दिरका प्रवेशद्वार बड़ा है, प्रवेशद्वारके दोनों ओर शिखरदार दो छोटे मन्दिर हैं। यहाँ

वरुणेश्वर, वायव्येश्वर, याम्येश्वर और कुबेरेश्वर—ये चार तीर्थ हैं। यहाँ चारों लोकपालोंको तपसे सिद्धि प्राप्त हुई थी। वरुणको जलाधिपति बनाया गया। वायुको त्रैलोक्यका स्वामित्व मिला। यमराजको जीवोंके पाप-पुण्यके अनुसार दण्ड देनेका अधिकार प्राप्त हुआ और कुबेरजीको समस्त लोकोंके धनका स्वामित्व मिला। यहाँपर भूमिदानका बड़ा पुण्य है। यह स्थान कोरलसे एक मीलकी दूरीपर है और दर्शनीय है।

व्यासेश्वर—व्यासजीने यहाँ बहुत समयतक तप किया, इसलिये यह स्थान व्यासेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्वयं व्यासभगवान्ने यहाँ शङ्करकी स्थापना की थी। व्यासजीने भगवान् शङ्करसे तपस्या करके यह वरदान माँग लिया था कि मैं भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण कर सकूँ।

एक समय दस सहस्र ऋषि व्यासजीके समीप आये। व्यासजीने उनकी यथावत् पूजा की। इसके बाद उन्होंने ऋषियोंसे भोजन करनेका अनुरोध किया। उन्होंने यह कहकर कि 'हमलोग दक्षिण-तटमें स्नान और सन्ध्या नहीं करते,' उनके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। इसपर व्यासजीने नर्मदासे प्रार्थना की—'हे देवि! तुम सङ्कट निवारण करनेवाली हो, तुम मुझे इस सङ्कटसे पार करो। धर्मशास्त्रमें कहा है कि—

'जिसके घरसे अतिथि बिना अन्न ग्रहण किये लौट जाता है उसके पुण्योंको वह ले जाता है और अपने पापोंको उसके लिये छोड़ जाता है। अतः ये ऋषिगण यदि मेरे स्थानसे यों ही लौट जायँगे तो मुझे बड़ा पातक लगेगा। हे देवि! मेरा कल्याण तुम्हारे ही हाथमें है।'

व्यासजीकी प्रेममयी और करुणापूर्ण स्तुति सुनकर भगवती नर्मदा प्रसन्न हो गयीं और वे उनके आश्रमके दक्षिण-तटमें बहने लगीं। व्यासजीका आश्रम नर्मदाके उत्तर-तटमें हो गया। ऋषियोंने उनके इस अतुल प्रभावको देखकर उनका आतिथ्य स्वीकार किया।

इस स्थानकी अत्यन्त महिमा है। लोग अबतक यहाँपर बड़े-बड़े अनुष्ठान और पुरश्चरण करते हैं।

आदित्येश्वर—यह मन्दिर भी अति प्राचीन है। लोगोंका विश्वास है कि भगवान् सूर्यने यहाँ कठिन तप किया था, जिससे इस स्थानका नाम 'आदित्येश्वर' पड़ा। मन्दिर मण्डपाकार है। उसके समीप तीन छोटे-छोटे और मन्दिर हैं। इसके अन्दर सूर्यभगवान्की मूर्ति और शिवजीका लिङ्ग है।

हायेश्वर—इस नामका पर्वतशिखरपर एक अत्यन्त सुन्दर मन्दिर है। यह बाईस खम्भोंपर बड़ी कारीगरीसे बनाया गया है। इस स्थानको प्राचीनकालमें वरुणने स्थापित किया था। यहींपर वरुणासङ्गम तीर्थ भी है। स्थान दर्शनीय है, साधु और महात्माओंके निवासके योग्य है।

धायड़ीकुण्ड—नेमाड़ प्रान्तमें श्रीनर्मदाजीका एक सुन्दर जलप्रपात है। यहाँ बड़े वेगसे जल पर्वतशिखरसे चालीस फुट नीचे एक कुण्डमें गिरता है। स्थान अति सुन्दर है। जलप्रपातके दक्षिणतटपर 'धारेश्वर' महादेवका मन्दिर है। प्राचीन समयमें बाणासुर एक करोड़ शिवलिङ्ग बनाकर यहाँ पूजन करने बैठा। उसी समय शङ्करजीने उसका स्मरण किया। बाणासुर सभी शिवलिङ्गोंको छोड़कर शिवजीसे मिलने चल दिया। वे सारे शिवलिङ्ग नर्मदाकुण्डमें डाल दिये गये। वे ही शिवलिङ्ग, लोग कहते हैं, अबतक बराबर निकलते जाते हैं। गोता लगानेवाले लोग कुछ द्रव्य लेकर शिवलिङ्ग निकाल देते हैं। भारतके अधिकांश शिवलिङ्ग यहींसे गये हैं।

ज्योत्स्नासों सित थल तहाँ, मुदित आँसुयुत नैन।
कब रटिहौं तट गंगके, 'शिव शिव' आरत बैन॥
देव ईश, सुरसरि सरित, दिशा वसन, गिरि गेह।
सुहृत्काल, घट कामिनी, व्रत अदैन्य सुख एह॥

काशी-केदार-माहात्म्य

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका । पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, उज्जैन और द्वारका—ये सात 'मोक्षदा' नगरी कहलाती हैं। इन सबमें काशीका अधिक माहात्म्य है। शेष छः पुरियोंमेंसे किसी एकमें देहत्याग करनेसे अगले जन्ममें काशी-लाभ होता है और काशीमें प्राणोत्क्रमणके समय करुणामय भगवान् शङ्कर मुमूर्षुके कानमें तारकमन्त्रका उपदेश करते हैं, जिससे उसे ज्ञान-प्राप्ति होकर मुक्ति-लाभ हो जाता है। स्कन्दपुराणमें लिखा है—

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि हि ।
काशीं प्राप्य विमुच्यन्ते नान्यथा तीर्थकोटिभिः ॥

इसीसे काशीका सबसे अधिक माहात्म्य है।

काशी अनादि तीर्थ है। विश्वेश्वर-लिङ्गके प्रादुर्भावसे इसकी महिमा और भी बढ़ गयी। विश्वेश्वर-लिङ्ग कलियुगमें अन्तर्हित हो जाता है और सत्य, त्रेता और द्वापरमें प्रकट रहता है। कलियुगमें विश्वेश्वरकी पुरी अन्नपूर्णाकी पुरी हो जाती है। यही क्रम अनादिकालसे चला आता है। इस पुरीमें अन्नपूर्णा-विश्वनाथकी ओरसे मुक्तिका सदावर्त चलता है।

इस पुरीमें सातों पुरियाँ और चारों धाम निवास करते हैं। इसकी यात्रासे सारे तीर्थोंकी यात्राका फल मिल जाता है। यावत् लिङ्ग, देव-मूर्त्तियाँ, पुण्यक्षेत्र और पुण्य-सर, नदी-नद हैं, वे सब पन्द्रह कलाओंसे काशीमें निवास करते हैं और एक-एक कलासे अपने-अपने स्थानमें रहते हैं। अतः काशीको छोड़कर अन्य तीर्थोंकी यात्रा करनेकी आवश्यकता नहीं है।

काशी-यात्राके लिये मुहूर्तका विचार नहीं करना चाहिये, दिक्शूलादि दोष देखनेकी भी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य जिस किसी मुहूर्तमें भी काशीके लिये चल पड़े, वही शुभ है। वहाँ मरणमें भी कालका दोष नहीं है; उत्तरायण, दक्षिणायन, रात, दिन आदिका विचार भी नहीं है। न यहाँ स्थलका दोष है, न अपमृत्युका।

काशीमें क्षणमात्रके निवासका, उसके दर्शनका भी विशेष फल है। पूर्वजन्मके तथा इस जन्ममें भी काशीसे बाहर किये हुए जितने भी पातक तथा महापातक हैं वे सब काशीमें शरीर छोड़नेसे भस्म हो जाते हैं। मृत जीवके ऋणका भार अपने ऊपर लेकर विश्वेश्वर उसे उऋण करके आवागमनसे मुक्त कर देते हैं।

काशीमें शरीर छोड़नेवालेको श्राद्धादि करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है, यद्यपि विश्वेश्वरकी यह आज्ञा है कि हमारे क्षेत्रमें वैदिक कर्मका लोप न हो, सम्पूर्ण कर्म-काण्ड मेरी प्रीतिके लिये हो। इसीलिये श्राद्धादि प्रेत-क्रिया मृत पुरुषके मुक्त होनेपर भी शास्त्र-मर्यादाकी रक्षाके लिये अवश्य करनी चाहिये। किसी ब्राह्मणका काशीवास करा देनेसे भी काशीवासका फल मिलता है।

जहाँ काशीमें मरनेवाले प्राणीके उद्धारके लिये इतना सुभीता है, वहाँ काशीमें किये हुए पापोंके लिये दण्ड-विधान भी बहुत कड़ा है। वहाँ शरीर छोड़नेवालेपर यमराजका शासन नहीं है, काशी उनके अधिकार-क्षेत्र (Jurisdiction) से बाहर है। वहाँके शासक दण्डपाणि भैरव हैं, किन्तु उनका दण्ड यम-यातनासे भी कठोर होता है। यद्यपि वह यातना प्राणोत्क्रमणके समय तारकमन्त्र-दानसे पूर्व ही हो जाती है, तथापि उसका एक क्षण भी दण्डनीयके लिये कल्पके समान दुखदायी हो जाता है।

काशीका परिमाण

काशीमें 'मध्यमेश्वर' नामका एक लिङ्ग है। जिस मुहल्लेमें वह लिङ्ग है उस मुहल्लेको भी 'मध्यमेश्वर' कहते हैं। मध्यमेश्वरसे पाँच कोसके घेरेमें काशी-क्षेत्र है, केवल गङ्गाजी-के उस पारका काशीका अंश शापके कारण लुप्त हो गया है। काशीके भीतर वाराणसी है, वाराणसीके भीतर 'विश्वेश्वर', 'केदारेश्वर' और 'ओङ्कारेश्वर' नामके तीन अन्तर्गृह हैं और अन्तर्गृहके भीतर अविमुक्त-क्षेत्र है। वाराणसीकी उत्तर-सीमापर वरुणा नदी और दक्षिण-सीमापर असीघाट, पूर्व-सीमापर गङ्गाजी और पश्चिम-सीमापर पाशपाणि विनायक हैं। अन्तर्गृहोंमें 'ओङ्कारेश्वर' नामक अन्तर्गृहकी

काशी-केदारखण्ड का मानचित्र ।
प्रमाण
पूर्वस्यां दिशि गङ्गार्धभागं तीर्थसमन्वितम् ।
अर्धक्रोशं चाग्निदिशि लोलार्केशान्तदक्षिणम् ॥
सर्वपापप्रशमनं शङ्खोद्धारान्तनैर्ऋतम् ।
पश्चिमे वैद्यनाथान्तं रमातीर्थन्तु वायुदिक् ॥
उत्तरे शूलटङ्कान्तमीशान्यां क्रोशमर्धकम् ।
अ० ३ का० के० मा० ॥
नैऋत कोण
पश्चिम
वायुकोण
वैजनाथजी
इलाहाबाद रोड
गोरखपुर रोड
शंखोद्धार तीर्थ
हिन्दूकालेज
रेवड़ी तालाब
पानीकल
गोईवाई मन्दिर
लक्ष्मीकुण्ड
दक्खिन
दुर्गाकुण्ड
दुर्गाकुण्ड रोड
उत्तर
लक्सा रोड
चेतगंज रोड
लोलार्क
अस्सी रोड
सोनारपुरा
अस्सी
अस्सीघाट
तुलसीघाट
श्रीगङ्गाजी
शिवालाघाट
हरिश्चन्द्रघाट
केदारघाट
केदारजी मन्दिर
राजाघाट
दशाश्वमेध रोड
चौक रोड
राणाघाट
मुन्शीघाट
दशाश्वमेधघाट
शूलटङ्क
मानमन्दिर
मीरघाट
विश्वनाथजी
मणिकर्णिकाघाट
काशीकेदार-क्षेत्र की सीमा
प्रचलित श्रीकेदारान्तर्गृही की सीमा
अग्निकोण
पूर्व
ईशानकोण
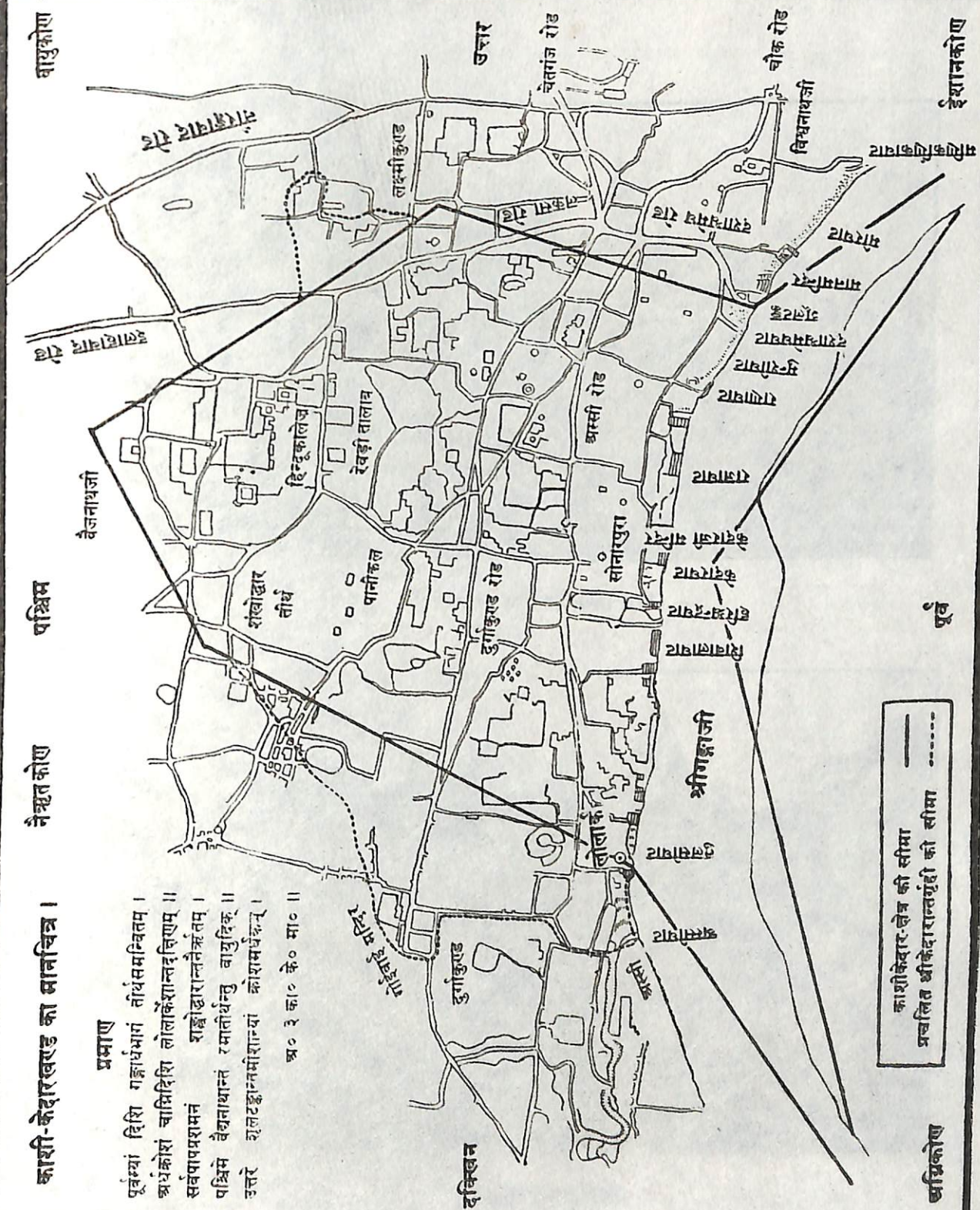
श्रीकाशी—मणिकर्णिका-घाट
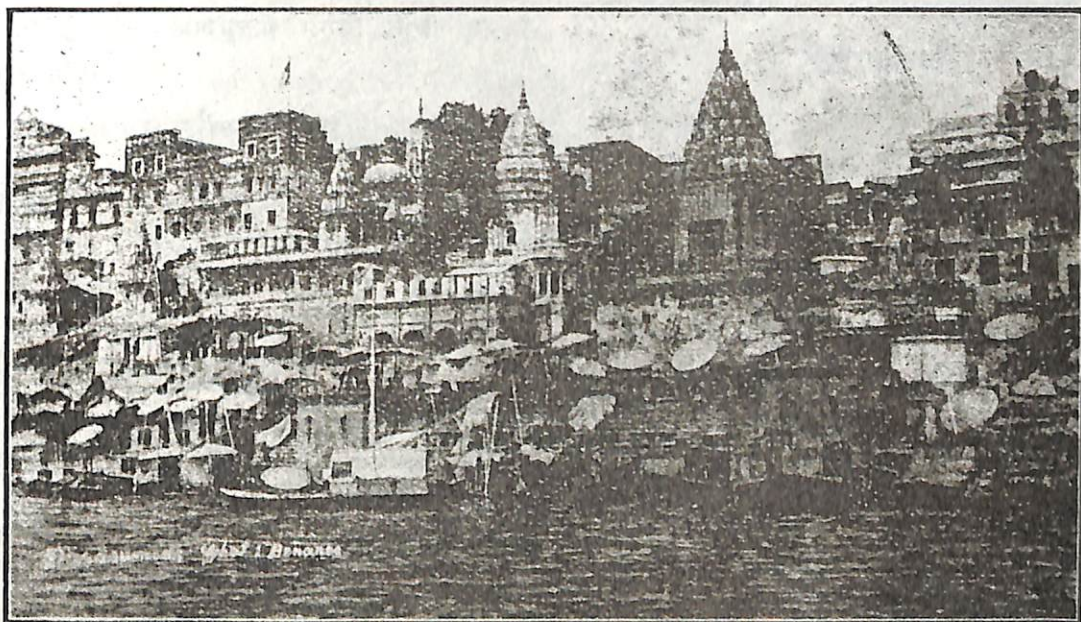
श्रीकाशी—दशाश्वमेध-घाट
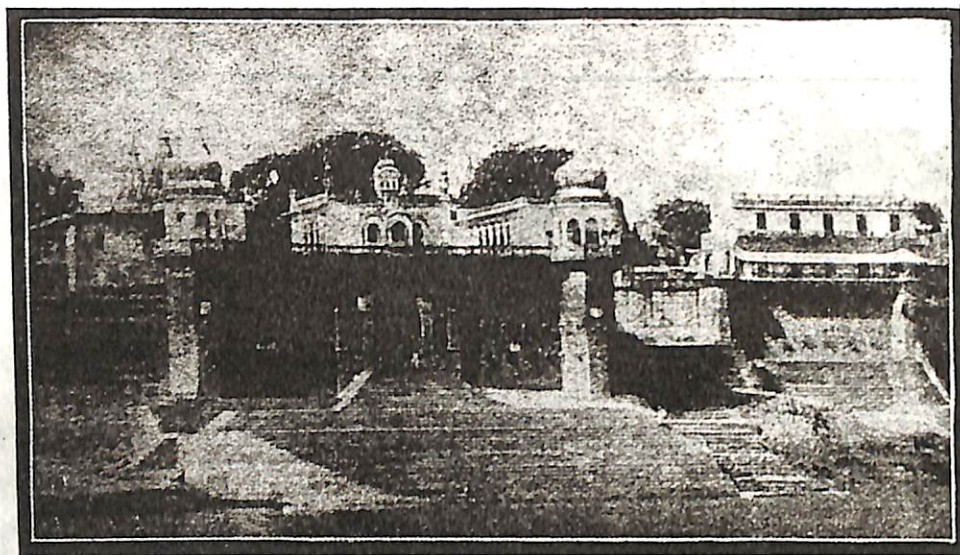
श्रीकाशी—शिवाला-घाट
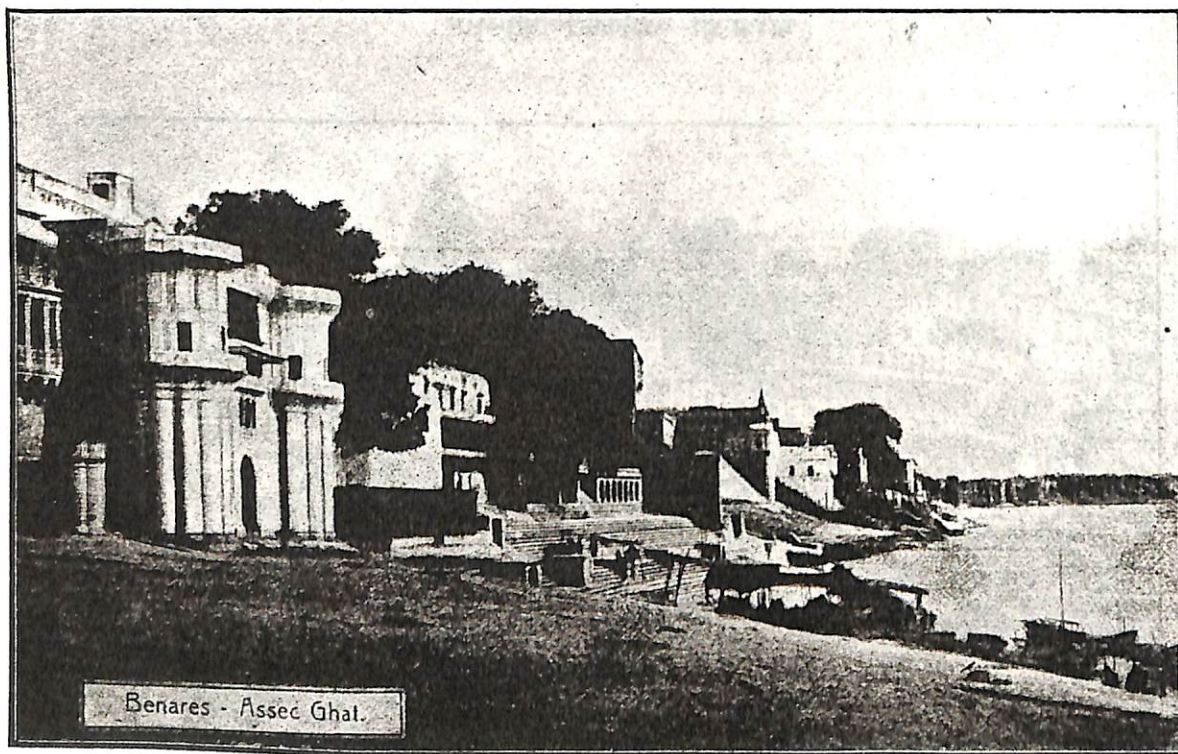
श्रीकाशी—अस्सी-घाट

सीमाका तो पता नहीं चलता। 'विश्वेश्वर' नामक अन्तर्गृह-के पूर्वमें मणिकर्णिकेश्वर, पश्चिममें गोकर्णेश्वर, उत्तरमें भारभूतेश्वर तथा दक्षिणमें ब्रह्मेश्वर हैं। केदारखण्डके पूर्वमें गङ्गाजी, पश्चिममें वैद्यनाथ (सेण्ट्रल हिन्दू-कॉलेजके पीछे), दक्षिणमें लोलार्क (भदैनी) और उत्तरमें शूलटङ्केश्वर (दशाश्वमेध) हैं, जैसा कि नकशा देखनेसे स्पष्ट होगा। इस खण्डकी प्रचलित यात्राके अनुसार असीसङ्गम, महामायाका सिद्धपीठ, जो दुर्गाजीके ठीक सामने है, तथा दुर्गाजीके दक्षिणमें शुष्केश्वरी (असी) देवीकी मूर्तियाँ इस क्षेत्रके अन्तर्गत हैं। अविमुक्त-क्षेत्रके पूर्वमें अट्टहासेश्वर, पश्चिममें गोकर्णेश्वर, उत्तरमें घण्टाकर्णेश्वर तथा दक्षिणमें भूतधात्रीश्वर हैं। यह क्षेत्र विश्वेश्वरके चारों ओर दो सौ धनुषतक फैला हुआ है। काशीमें शरीर छोड़नेवालेको साक्षात् सालोक्य-मुक्ति मिलती है, फिर एक कल्पके बाद सारूप्य, पुनः एक कल्पके बाद सामीप्य और तत्पश्चात् सायुज्य-मुक्ति प्राप्त होती है। काशीमें मरा हुआ फिर संसारमें नहीं आता। वाराणसीमें देहत्याग करनेवालेको सारूप्य-मुक्ति मिलती है, फिर सान्निध्य पाकर वह सायुज्यका अधिकारी हो जाता है। अन्तर्गृहोंमेंसे किसी एकमें मरनेवालेको सामीप्य-मुक्ति प्राप्त होकर फिर सायुज्य-लाभ होता है और अविमुक्तमें मरनेसे सीधी सायुज्य-प्राप्ति होती है।

काशीका स्वरूप

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भगवान् विष्णुका वचन है कि 'जब मैंने लोकरक्षाके निमित्त सदाशिवका स्मरण किया तो वे प्रादेशमात्र लिङ्गरूप धारणकर मेरे हृदयसे बाहर निकल आये और बढ़ते-बढ़ते पाँच कोसके हो गये। वे छत्राकार परंज्योतिके रूपमें आकाशमें छा गये, उसी परमज्योतिको वेदोंमें 'काशी' कहा गया है। वह कभी छत्राकार दीख पड़ती है, कभी दण्डाकार, कभी लिङ्गाकार, कभी पिण्डाकार और कभी त्रिकोणके आकारकी नजर आती है। शिवपुराण-में लिखा है कि करुणामय शिवजीने यह विचारकर कि कर्म-पाशमें बँधे हुए जीव मुझे नहीं देख सकेंगे, काशीको अपने त्रिशूलपरसे उतारकर मृत्युलोकमें रख दिया। चन्द्रवंशी राजाओंमें पुरूरवासे पाँचवीं पीढ़ीमें 'काश' नामके एक राजा हो गये हैं। यह भूमि उन्हींके अधिकारमें होनेसे 'काशी' कहलायी और उनके वंशज 'काशिराज' कहलाये। काशकी छठी पीढ़ीमें राजा दिवोदास हुए, जिन्होंने वाराणसी बसायी।

भगवान् शङ्कर पर्वतराज हिमालयकी कन्याके रूपमें अवतरित साक्षात् जगदम्बा पार्वतीका परिणय कर कैलासमें रहने लगे, किन्तु माता पार्वतीको उनका ससुरालमें रहना खटकने लगा। इसलिये उन्होंने शङ्करजीसे कहा कि मुझे अपने घर ले चलो। तब शङ्करजी उन्हें अपने सनातन गृह 'अविमुक्त महाश्मशान' (काशी) में ले आये। भगवान् इसे कभी नहीं छोड़ते, इसीसे इसे अविमुक्त-क्षेत्र कहते हैं। वे कभी यहाँ लिङ्गरूपसे प्रकट होकर रहते हैं और कभी अन्तर्हित होकर, किन्तु इसका त्याग कभी नहीं करते। अन्नपूर्णाको यह उजाड़ श्मशान पसन्द न आया। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि तीन युगोंमें काशी श्मशान रहे और कलियुगमें अन्नपूर्णाकी पुरी होकर बसे। इसीलिये कलियुगमें विश्वनाथ-की मूर्ति तिरोहित हो जाती है। इस बार इसके तिरोहित होनेका बाह्य कारण बादशाह औरङ्गजेब हुआ। इस घटना-के बाद कुछ कालतक काशी बिना विश्वनाथकी रही। अन्ततः इन्दौरकी धर्मप्राणा महारानी अहल्याबाईने लखनऊके नवाबसे अनुमति प्राप्तकर पुनर्वार विश्वेश्वरकी स्थापना करवायी।

केदारलिङ्ग

करुणामय भगवान् भवानीपति भक्तजनोंके उद्धारके निमित्त बदरिकाश्रममें ज्योतिर्लिङ्गरूपसे प्रकट हुए और 'केदारेश्वर' कहलाये। ब्रह्मदेवके अपराधसे वह लिङ्गमूर्ति तिरोहित हो गयी और वहाँ केवल पृष्ठ-भागका चिह्न शेष रह गया। पद्मकल्पमें नन्दिकेश्वरकी प्रार्थनासे केदारेश्वर काशी आये; परन्तु वहाँ भी लिङ्ग-मूर्ति गुप्त रहती थी। कभी किसी भक्तको बड़ी तपस्या करनेके बाद कदाचित् दर्शन हो जाया करता था। अन्तमें अयोध्याके महाराज मान्धाताने बहुत बड़ी तपस्या करके श्रीकेदारलिङ्गका दर्शन काशीमें सब लोगोंके लिये सुलभ कर दिया। उस लिङ्गमें केदारजी पन्द्रह कलासे निवास करने लगे और महाराज मान्धाताने उनसे यह वरदान ले लिया कि काशी-केदार-क्षेत्रमें शरीर छोड़ने-वालोंको भैरवी यातना भी न हो। उस समयसे केदार-खण्डमें भैरवी यातना बन्द हो गयी और केदारखण्डकी विश्वेश्वरखण्डसे भी अधिक प्रतिष्ठा हो गयी। वाराणसेय विद्वत्समाजके मुकुटमणि कैलासवासी महामहोपाध्याय पण्डित

शिवकुमारजी शास्त्री तथा ज्योतिर्विदग्रगण्य महामहोपाध्याय पण्डित अयोध्यानाथजीका मकान केदारखण्डकी सीमाके बाहर होनेपर भी उक्त दोनों महानुभाव देहत्यागके समय केदारखण्डमें चले आये थे।

औरङ्गजेबके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि विश्वनाथजीका मन्दिर तोड़नेके बाद उसकी दृष्टि स्वभावतः केदारलिङ्गकी ओर गयी। सुनते हैं, उस समय केदारेश्वर-मन्दिरके समीप ही एक मुसल्मान औलिया रहता था, उसने बादशाहको वहाँ जानेसे मना किया; किन्तु औरङ्गजेबने उसकी एक न सुनी। वह नन्दीके समीप गया और उसपर कटारका वार किया। सुना जाता है कि नन्दीके शरीरसे रुधिरकी धारा बह निकली। जो कुछ भी हो, यह आगे न बढ़ा; नहीं तो केदारेश्वरके मन्दिरकी भी वही दशा होती, जो आज विश्वनाथजीके प्राचीन मन्दिरकी है।

केदारलिङ्गकी विचित्रता

श्रीकेदारेश्वरजीके नादियेके बाएँ पुठ्ठेपर अब भी कटारका निशान बना हुआ है। लिङ्गके सम्बन्धमें काशी-केदारमाहात्म्यमें लिखा है कि महाराज मान्धाताने मूँगकी खिचड़ी पकायी थी, वही पाषाणरूपमें परिणत हो गयी। उस खिचड़ीमें रेखा करके राजर्षिने अतिथिका भाग अलग कर दिया था। वह रेखा आज भी उक्त लिङ्गमें वर्तमान है और कपूर आदिके तीव्र प्रकाशमें लिङ्गमें मूँगकी दालकी आभा प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ती है।*

भगवान् श्रीएकलिङ्ग

(लेखक—ठाकुर श्रीचन्द्रनाथजी माथुर)

प्रारम्भिक परिचय

एकलिङ्गजीका स्थान मेवाड़की वर्तमान राजधानी उदयपुरसे करीब साढ़े तेरह मील उत्तर-दिशामें है। इस बस्तीको 'कैलासपुरी' भी कहते हैं। यह स्थान बहुत प्राचीन है और भारतवर्षमें द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गोंकी भाँति सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस मूर्तिकी स्थापना मेवाड़के महाराणाओंके पूर्वज, गुहिलवंशावतंस महारावल कालभोज † (बाप्पा) ने अपने इष्टदेवके रूपमें वि० सं० ७९१ से ८१० के बीच किसी समय की थी। वे उस समय उसके अति समीप ही नागदामें राज्य करते थे। नागदाके पास ही पहाड़ोंके बीच एक बाँसोंके थूहे (समूह) में यह स्वयम्भू-मूर्ति प्रच्छन्न थी। उसी जंगलमें हारीतराशि नामक एक तपस्वी ऋषि रहते थे। इस मूर्तिका पहले-पहल इन्हींको दर्शन हुआ और ये उस मूर्तिकी पूजा करने लगे। ये हारीतराशि बाप्पाके गुरु थे। इन्हींकी कृपासे बाप्पाको भी मूर्तिके दर्शन हुए और उन्होंने उस स्थानपर एक मन्दिर बनवा दिया। हारीतराशिके द्वारा श्रीएकलिङ्गजीका वर पाकर बाप्पाने चित्तौरपर चढ़ाई कर दी और वहाँके मौर्य-

* यह लेख श्रीअच्युत-ग्रन्थमाला, काशीसे प्रकाशित 'काशी-केदार-माहात्म्यम्' नामक भाषानुवादयुक्त ग्रन्थकी भूमिकासे सङ्कलित है। प्राचीन अमुद्रित संस्कृत-ग्रन्थोंको और ज्ञान, भक्ति, सदाचार, कर्मकाण्ड आदि विषयोंके उत्तमोत्तम संस्कृत-ग्रन्थोंको हिन्दी-भाषानुवाद-सहित प्रकाशित कर सस्ते मूल्यमें प्रचार करनेके उद्देश्यसे आदर्श सद्गुणसम्पन्न सेठ श्रीगौरीशङ्करजी गोयनकाके धन और उत्साहसे पूज्यपाद श्रीअच्युतमुनिजी महाराजके नामपर ग्रन्थमालाका कार्य सम्पादित हो रहा है। अबतक ग्रन्थमालासे १० संस्कृतके और ४ हिन्दी-अनुवादसहित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। भक्तिरसायन, ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्य और रत्नप्रभाटीकाका अनुवाद शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। प्रकाशित ग्रन्थोंके नाम-दाम इसप्रकार हैं। संस्कृत—भगवन्नामकौमुदी ॥=), भक्तिरसामृतसिन्धु ३), भक्तिरसायन ॥।), प्रेमपत्तन १), परमार्थसार ।=), प्रत्यक्तत्त्वचिन्तामणि प्रथम भाग २), दूसरा भाग २।), कात्यायन-श्रौतसूत्र ६), शुल्वसूत्र ।), तिथ्यर्क १॥), हिन्दी-भाषानुवादसहित—खण्डनखण्डखाद्य २॥।), प्रकरण-पंचक ॥), सिद्धान्तबिन्दु १।=), काशीकेदारमाहात्म्य २॥)। विद्वान् और शास्त्रप्रेमी सज्जनोंको पुस्तकें मँगवाकर पढ़नी चाहिये। पुस्तकें गीताप्रेस, गोरखपुरसे या अच्युतग्रन्थमाला, ललिताघाट, काशीसे मिल सकती हैं। —सम्पादक

† इस विषयमें प्राचीन जनश्रुति यह है कि बाप्पा वलभीके प्रसिद्ध क्षत्रिय-वंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिता लड़ाईमें शत्रुओंके हाथसे मारे गये। इनकी माता पुष्पावती, जो उस समय गर्भवती थीं और अम्बा भवानीके दर्शनार्थ इस लड़ाईके पहले ही आयी हुई
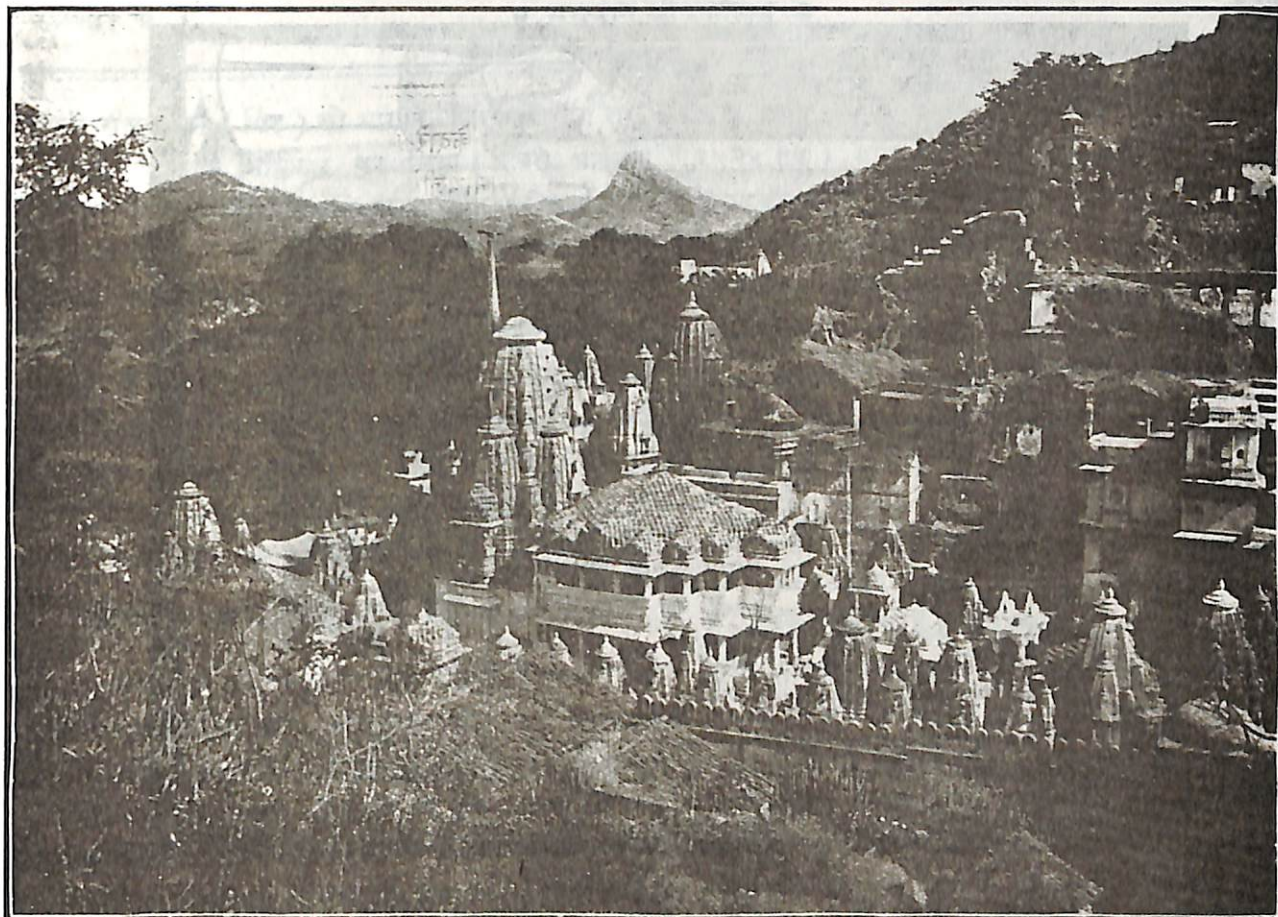
श्रीएकलिंग-मन्दिर कैलासपुरी
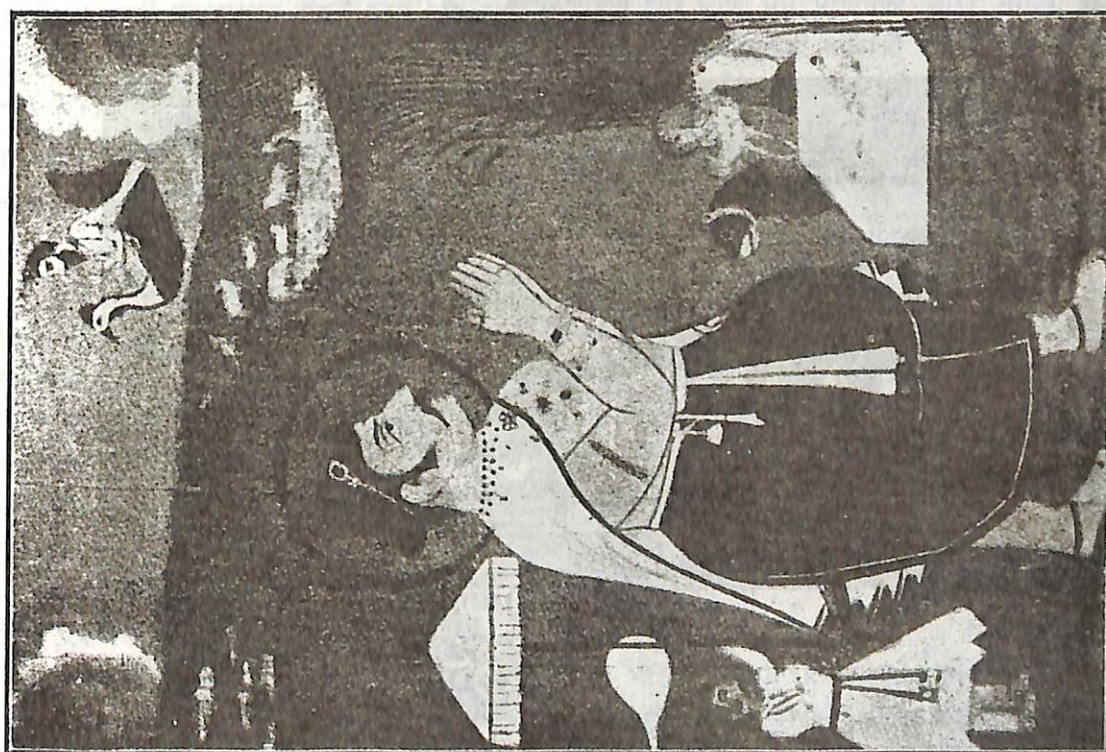
बाप्पा रावलकी शिवोपासना
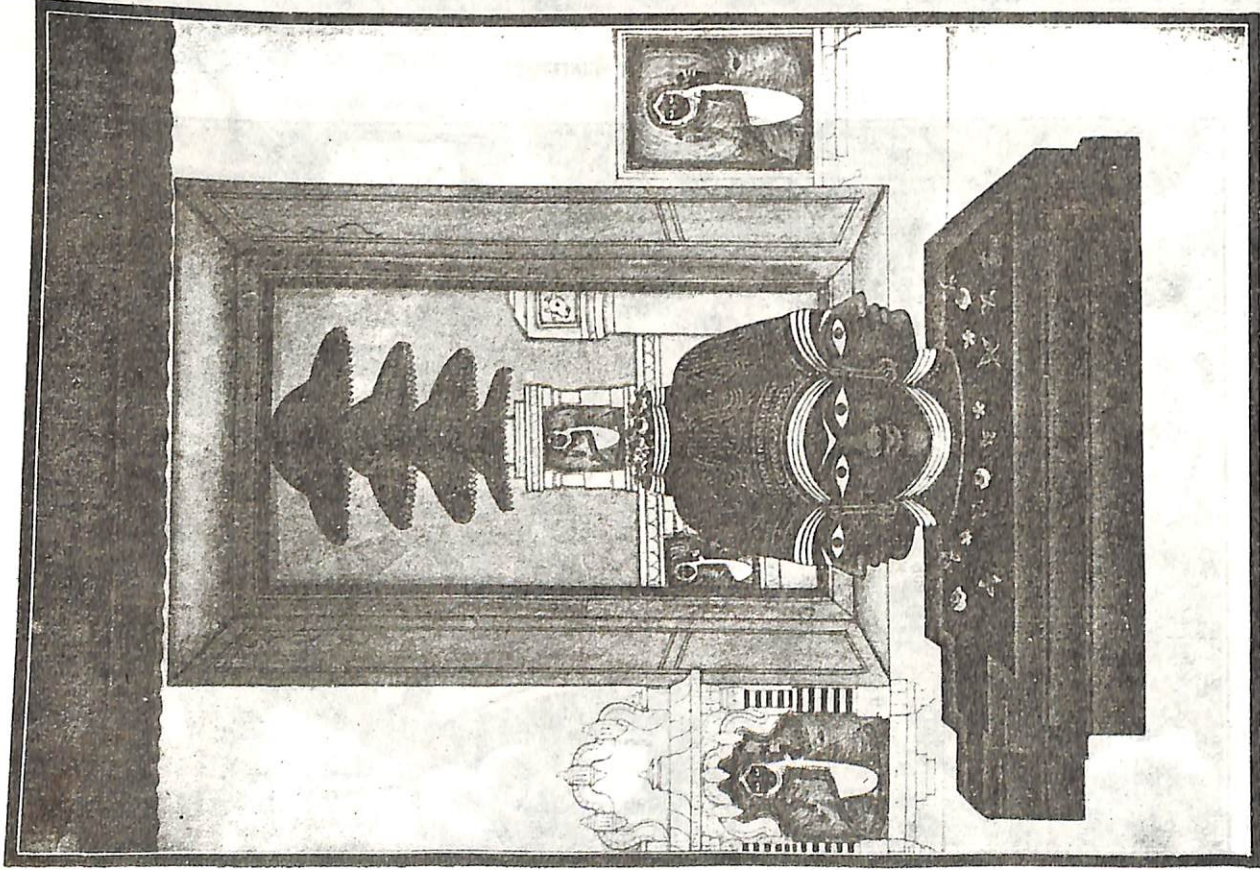
श्रीएकलिंगजीका भस्मधारण
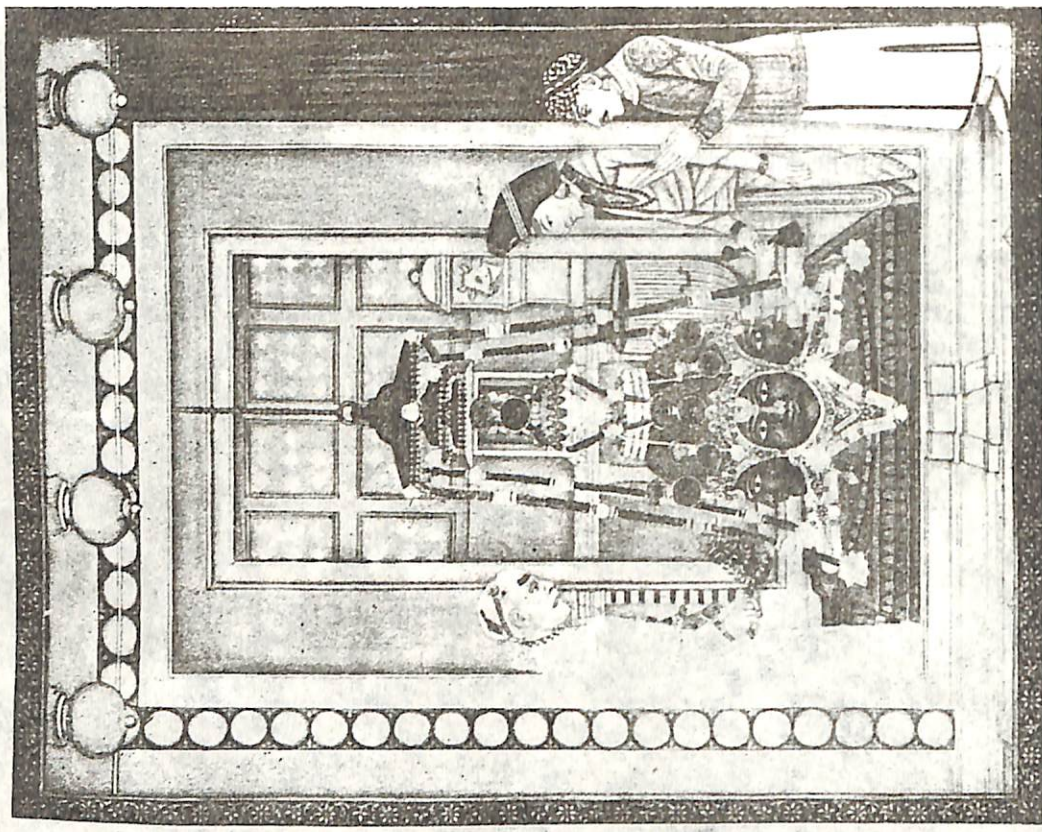
श्रीएकलिंगजीका शृंगार

स्व० महाराणासाहेब आरती कर रहे हैं, वर्तमान महाराणा महोदय हाथ जोड़े खड़े हैं।

वंशी राजा मान (सिंह) को मारकर चित्तौरके दुर्ग तथा राज्यपर अपना अधिकार कर लिया। तबसे आजतक करीब बारह सौ वर्षसे उन्हींके वंशज मेवाड़पर राज्य करते आ रहे हैं। ये लोग अबतक श्रीएकलिङ्गजीको अपना इष्टदेव तथा मेवाड़का अधिपति मानते हैं और अपनेको उनका 'दीवान' प्रसिद्ध करनेमें गौरव समझते हैं। यही कारण है कि महाराणा जब श्रीएकलिङ्गजीका दर्शन करने पधारते हैं तब वे मन्दिरके अहातेसे ही शासनके चिह्नस्वरूप राजवेत्र (सोनेकी छड़ी) को स्वयं कन्धेपर धारण कर लेते हैं। राजकीय ताम्रपत्रों तथा पट्टों—परवानोंपर भी श्रीएकलिङ्गजीका ही नाम दिया जाता है।

मन्दिरपर आपत्तियाँ तथा उसका जीर्णोद्धार

मुसल्मानी शासनकालमें अन्य अनेकों हिन्दू-मन्दिरोंकी भाँति श्रीएकलिङ्गजीके मन्दिरपर भी कई आक्रमण हुए और मेवाड़के महाराणाओंके द्वारा उसकी रक्षा एवं समय-समयपर उसका जीर्णोद्धार भी होता रहा। महाराणा मोकलके राज्यकालमें (वि० सं० १४५४ से १४९० तक) गुजरातका बादशाह अहमदशाह एक विपुल सेना लेकर मेवाड़पर चढ़ आया। उसने जातीय द्वेषके वशीभूत होकर श्रीएकलिङ्गजीके मन्दिरपर भी प्रहार किया। पीछेसे इसका जीर्णोद्धार इन्हीं महाराणाके हाथसे हुआ। इन्होंने मन्दिरको भावी आक्रमणोंसे सुरक्षित रखनेके लिये उसके चारों ओर एक सुदृढ़ कोट भी बनवा दिया।

महाराणा कुम्भाके समयमें भी (वि० सं० १४९० से १५२५ तक) मालवाके बादशाह महमूदशाहने अपनी मेवाड़की चढ़ाईके समय इस मन्दिरको तोड़ा और उक्त महाराणाने इसकी मरम्मत करवायी।

महाराणा कुम्भाके पुत्र उदयकर्णके समयमें (वि० सं० १५२५ से १५३० तक) किसी कारणसे यह मन्दिर गिर गया और महाराणा रायमलने (वि० सं० १५३० से १५६५ तक) इसे दुबारा बनवाया। तबसे यह उसी रूपमें अबतक विद्यमान है।

मन्दिरका भीतरी एवं बाहरी दृश्य

मन्दिर करीब ५० फुट ऊँचा है और इसका व्यास ६० फुटके लगभग है। यह शिखरबन्द, उत्तम, सुदृढ़, सफेद पत्थरका बना हुआ है। श्रीएकलिङ्गजीकी मूर्ति श्याम-पाषाण-निर्मित एवं चतुर्मुख है। इसका एक मुख ब्रह्माका, दूसरा विष्णुका, तीसरा रुद्रका और चौथा सूर्यका है। जलहरीसहित इसकी ऊँचाई लगभग ढ़ाई-तीन फुट होगी। मन्दिरके दो प्रधान द्वार हैं। पश्चिमीय द्वार सर्वसाधारणके लिये दर्शनार्थ खुला रहता है, तथा दक्षिण-द्वारमेंसे अंग्रेज तथा मुसल्मान आदि अन्यधर्मावलम्बी लोग भी मन्दिरका दर्शन कर सकते हैं; पूर्वीय द्वारके अगल-बगल भीतरकी ओर काली एवं पार्वतीकी छोटी मूर्तियाँ हैं और वायुकोणमें भीतर ही गणेशजी तथा स्वामिकार्तिकेयकी भी छोटी मूर्तियाँ हैं। परिक्रमामें पूर्वकी तरफ गङ्गाजीकी मूर्ति है और

थीं, अपने पतिके खेत रहनेका समाचार सुनकर पहाड़ोंमें नागदा-स्थानपर चली आयीं और वहीं उनके उदरसे तेजस्वी बाप्पाने जन्म लिया। माता उस होनहार बालकको नागदाके सुशर्मा रावल नामक ब्राह्मणको सौंप अपने पतिके पीछे सती हो गयीं। इसप्रकार बाप्पा उस ब्राह्मणके यहाँ संवर्द्धित हुए। जब वे कुछ बड़े हुए तो उनको उस ब्राह्मणकी गाएँ चरानेका काम सौंपा गया। उन गायोंमेंसे एक गाय सदा श्रीएकलिङ्गजीकी स्वयम्भू-मूर्तिपर, जो पहाड़ोंके बीच बाँसोंके थूहेमें प्रच्छन्नरूपसे स्थित थी, अपना दूध छोड़ आती और इसप्रकार वह ब्राह्मण उसके दूधसे वञ्चित रह जाता। सुशर्माने जब यह देखा तो उसे स्वाभाविक ही यह सन्देह हुआ कि हो-न-हो बाप्पा ही उसका दूध दुहकर पी जाता है। बाप्पाको जब यह बात मालूम हुई तो उसे अपने सिरपर व्यर्थका दोष मढ़ा जानेका बड़ा दुःख हुआ और वह सारी बातका पता लगानेके लिये उस गायके पीछे-पीछे रहकर उसपर कड़ी दृष्टि रखने लगा। फलतः दूसरे ही दिन सारा भेद खुल गया। निश्चित समयपर सदाकी भाँति गाय उस बाँसके थूहेमें घुस गयी और वहाँके स्वयम्भू-लिङ्गके समीप ही बैठे हुए एक साधुने (जो उस लिङ्गका ही अवतार था) अपने खप्परमें उसका दूध दुहकर पी लिया। बाप्पाने सारी घटना अपनी आँखसे देखी और मूर्तिके समीप ही एक तपस्वीको सिद्धासन लगाये ध्यानावस्थामें बैठे देखा। तपस्वीका ध्यान भी उधर गया और उन्होंने साधुवेषधारी लोकपावन भगवान् भूतभावनका दर्शन कर अपना जन्म एवं नेत्र दोनों सफल किये। तपस्वीका नाम हारीतराशि था। बाप्पा उसी दिनसे इन तपस्वीको अपना गुरु मानने लगा और उनकी बड़ी भक्तिके साथ सेवा करने लगा। हारीतराशिने भी इस लोकसे प्रयाण करते समय उसकी सेवासे प्रसन्न हो बाप्पाको यह वर दिया कि तू मेवाड़का राजा होगा। कहते हैं, इसी वरदानके प्रभावसे बाप्पाको मेवाड़का राज्य प्राप्त हुआ।

दीवारोंमें पत्थरकी जालियाँ लगी हुई हैं, जिनमेंसे भीतरकी ओर काफी प्रकाश आता है। मन्दिरके बाहर पश्चिम तथा दक्षिण-द्वारकी तरफ कठघरे लगे हुए हैं, जिनके भीतर खास-खास लोग जा सकते हैं। कठघरेके आगे पश्चिमकी तरफ सभा-मण्डप है, जिसमें यात्री स्त्री-पुरुष बैठकर स्वतन्त्रतासे भगवान्‌का दर्शन करते हैं। मण्डपके बीचमें चाँदीका नन्दिकेश्वर बना हुआ है और मन्दिरके बाहर भी पश्चिम तरफ एक पाषाणका तथा छतरीमें एक पीतलका बड़ा नन्दिकेश्वर बना हुआ है। मन्दिरके दक्षिण-द्वारके बाहर अम्बा-माता, कालिका-माता तथा गणेशजीके अलग-अलग मन्दिर हैं। निज-मन्दिरके बाहर पीछेकी तरफ परकोटेमें ही पार्वतीजीकी बावड़ी तथा तुलसीकुण्ड नामके दो सुन्दर पक्के जलाशय हैं और मीराबाईका मन्दिर, सोमनाथ, चारभुजा एवं गणपतिका छोटा मन्दिर आदि कई शिखरबन्द छोटे-बड़े मन्दिर तथा देवलियाँ बनी हुई हैं। इसके सिवा कोटके भीतर कई मकान, बुर्जे तथा जलाशय आदि हैं। मन्दिरके पास ही इन्द्रसागर (भोडेला) नामका तालाब है, जिसके किनारे कई शिखरबन्द मन्दिर बने हुए हैं। मन्दिरके पीछे ईशान-कोणमें देलवाड़ेके रास्तेपर हारीतराशिकी गुफा एवं विन्ध्यवासिनीदेवी तथा भैरवके प्राचीन मन्दिर एवं राज्यकी ओरसे यात्रियोंके लिये बनवायी हुई सराय है। सरायसे थोड़ी दूरपर एक झरना है और उसपर धारेश्वर-महादेवका मन्दिर तथा तक्षककुण्ड है। कहते हैं कि राजा जनमेजयके सर्पयज्ञसे भागकर तक्षकने यहीं आकर अपने प्राण बचाये थे। इस कुण्डके जलका यह प्रभाव है कि सर्पद्वारा काटे जानेपर इसका अञ्जलिभर पानी पी लेनेसे सर्पके विषका प्रभाव जाता रहता है। पास ही बाघेला नामका तालाब है। थोड़ी दूर चलनेपर प्राचीन नागदाकी बस्ती शुरू हो जाती है। यहाँ बाप्पा रावलका समाधिस्थान तथा अनेक प्राचीन मन्दिर हैं जो स्थापत्य-कलाकी दृष्टिसे बहुत सुन्दर हैं। यहाँ अद्भुतजी (शायद जैनमतके शान्तिनाथ) की बहुत बड़ी मूर्ति एवं स्थान है, जो वास्तवमें दर्शनीय है।

पूजा एवं उत्सव

भगवान्‌की दैनिक पूजा वेदविहित एवं तान्त्रिक विधिसे दिनमें तीन बार अर्थात् प्रातःकाल, मध्याह्न एवं सायङ्कालके समय होती है। श्रीएकलिङ्गजीकी सेवा-सामग्री एवं भोग-रागके लिये राज्यकी ओरसे करीब एक लाख रुपयेका बजट बना हुआ है, जिससे मन्दिरका सारा खर्च चलता है। इसके अतिरिक्त हर सोमवार तथा प्रदोषको भगवान्‌की विशेष रूपसे सेवा होती है और खास-खास उत्सवोंपर—जैसे श्रावण-शुक्ला १४ को, दीपमालिका तथा अन्नकूटके अवसरपर, मकर-संक्रान्ति, वसन्तपञ्चमी, महाशिवरात्रि एवं चैत्र कृष्ण १३ को (इस दिन भगवान् फाग खेलते हैं) तथा वैशाख-कृष्ण १ को (जिस दिन श्रीएकलिङ्गजीकी स्थापना हुई थी)—विशेष उत्सव मनाया जाता है। इनमेंसे अधिकांश उत्सवोंपर महाराणा साहब स्वयं भगवान्‌के दर्शनोंके लिये पधारते हैं। पाटोत्सवके दिन उदयपुरमें ही विशेष दरबार होता है और बड़ा उत्सव मनाया जाता है।

सदावर्त

श्रीएकलिङ्गजीके स्थानमें दो सदावर्त बारहों महीने जारी रहते हैं, जिनमें एक देवस्थानके भण्डारकी तरफसे है। इसमें आगन्तुक साधु-संन्यासी एवं ब्राह्मणोंको पेटिये (सीधा) दिये जाते हैं। दूसरा सदावर्त उदयपुर-राज्यके भूतपूर्व प्रधान कोठारी केसरीसिंहजीकी तरफसे है। इसमें भी कई पेटिये अभ्यागतोंको सदा दिये जाते हैं।

कुछ और खास बातें

उदयपुरसे श्रीएकलिङ्गजीके स्थानतक पक्की सड़क बनी हुई है, जो नाथद्वारेतक चली गयी है; इसपर मोटर, गाड़ी, ताँगे बखूबी जाते हैं। रास्तेमें यात्रियोंके विश्रामके लिये अम्बेरीकी बावड़ीके पास ही एक धर्मशाला महाराणा शम्भुसिंहजीकी महारानी झालीजीकी बनवायी हुई है।

भगवान्‌को धारण करानेके लिये लाखों रुपयोंकी लागतके रत्नजटित आभूषण हैं, जो विशेष अवसरोंपर धारण कराये जाते हैं।

उदयपुर-राजधानीसे पश्चिम दिशामें पाँच मीलपर एक नान्देश्वर महादेवका स्थान है। निकट ही एक कुण्ड है, जिसका जल सदा एकरस बना रहता है। इसके अतिरिक्त एक और चमत्कारपूर्ण बात यह है कि इस कुण्डमें महादेव-जीका लिङ्ग अपने आप ही चारों ओर घूमता रहता है।

ईरानमें शिवमन्दिर

(लेखक—श्रीमहेशप्रसादजी मौलवी, आलिम-फाज़िल)

ईरानका नाम ही फ़ारस या पर्शिया है। यह वह देश है जहाँका अधिकारी मुसलमान है और जहाँकी अधिकांश प्रजा भी मुसलमान ही है। केवल थोड़े-से अन्य मतावलम्बी ईसाई, पारसी और यहूदी हैं। अपनी यात्राके अवसरपर मुझे इन लोगोंके देवालय दिखायी पड़े। पर जिन लोगोंके देवालयोंने मेरा ध्यान सबसे अधिक अपनी ओर खींचा, वे उन हिन्दुओं तथा सिक्खोंके देवालय थे, जो बहुत ही थोड़ी संख्यामें ईरानके अनेक स्थानोंमें हैं। अस्तु, इस अवसरपर केवल एक हिन्दू-मन्दिरका वर्णन दिया जायगा।

ईरानके दक्षिणी भागमें बन्दर अब्बास नामक एक प्राचीन नगर फारसकी खाड़ीके तटपर है। ऐतिहासिक दृष्टिसे इस स्थानकी कुछ कम महत्ता नहीं है, क्योंकि यहीं (अथवा इसके पास ही) वह स्थान है जहाँसे ईरानके प्राचीन और असल निवासी पारसियोंने सातवीं शताब्दीमें अरबके मुसलमानोंके आक्रमणोंसे पीड़ित होकर अपने प्यारे देशको त्यागा और भारतमें शरण ली थी। वर्तमानकालमें भी इस स्थानकी महत्ता बहुत कुछ है। यहाँ ईरानी राज्यके कई बड़े कर्मचारी रहते हैं और इसकी गणना ईरानके प्रधान नगरोंमें है। इसी स्थानमें एक विशाल मन्दिर है।

जब मैं जहाजमें ही था तो मुझे कुछ हिन्दू मिले थे, जो फ़ारसकी खाड़ीमें दुबाई नामक स्थानमें मोतीके व्यापारार्थ जा रहे थे। उन्होंने ही मुझे सबसे पहले इस मन्दिरकी बाबत बतलाया था। उस समय मैंने समझा था कि कोई छोटा-सा मन्दिर नाममात्रके लिये होगा; पर जब मैं उस मन्दिरकी ओर जा रहा था तो दूरसे ही उसकी विशालताने मुझपर अच्छा प्रभाव डाला और जब मैं मन्दिरमें पहुँचा तो जो बातें मेरे हृदयमें उत्पन्न हुईं, उनके सम्बन्धमें तो कहा ही क्या जाय?

यह मन्दिर बस्तीके बीचमें है। मन्दिर और साथमें लगे हुए गुरुद्वारेकी कुल भूमि लगभग ६ बीघेके है। इसके चारों ओर मुसलमानोंके ही घर हैं। मन्दिर या गुरुद्वारामें अनेक अवसरोंपर ढोल, शंख और झाँझ आदि बजते हैं; पर वहाँके मुसलमानोंकी ओरसे किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं होती, यद्यपि मुसलमानोंकी संख्या बन्दर अब्बासमें आठ हजारके लगभग है और हिन्दू केवल ६०-७० के ही लगभग हैं।

यह मन्दिर कब बना था? किसने बनवाया था? और क्योंकर इसके बननेकी नौबत आयी थी? इसप्रकारकी बातोंका पता मुझे ठीक-ठीक कुछ नहीं लगा। हाँ, इतना अवश्य सुननेमें आया कि वहाँ किसी समयमें हिन्दुओं और सिक्खोंकी पलटनें थीं, उन्हींकी बदौलत मन्दिर और गुरुद्वारा-दोनोंकी स्थापना हुई थी। यह मन्दिर कुछ पुराना अवश्य है और केवल मन्दिर ही लगभग १५ हजार रुपयोंकी लागतका जरूर होगा।

मन्दिरका जो चित्र मैंने शुक्रवार १७ मई सन् १९२९ को खींचा था, वही यहाँ दिया जा रहा है। इससे स्पष्ट है कि इसकी बनावट भारतीय शिवालयोंके ढंगकी है। भारतसे ही गयी हुई इसमें शिवजीकी मूर्ति है; पर साथ-ही-साथ कृष्ण-

भगवान्, महावीरस्वामी और जोगमायादेवी आदिकी मूर्तियाँ भी हैं। पास ही गुरुद्वारेमें श्रीगुरुग्रन्थसाहब भी विराजमान हैं। इनमेंसे जब किसी एककी पूजा होती है, तो सभीकी आरती की जाती है। भारतमें इसप्रकार अनेक उपास्यदेवोंका एकत्र होना अच्छा समझा जाय या न समझा जाय; पर वहाँ तो सारे उपास्यदेवोंमें मानों एकता हो गयी है, परस्पर किसी प्रकारका वैर-विरोध नहीं है।
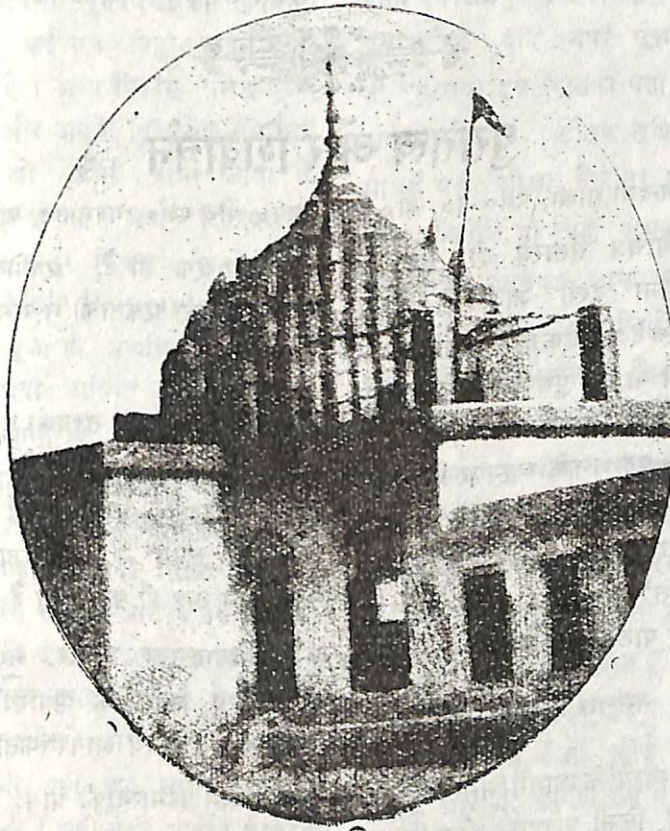
मन्दिर और गुरुद्वारा—सब-का-सब—वहाँ 'हिन्दूबाग' के नामसे अधिक प्रसिद्ध है। सारा खर्चा वे हिन्दू चलाते हैं जो वहाँ थोड़ी-सी संख्यामें व्यापारार्थ पहुँचे हैं। जिन दिनों मैं वहाँ ठहरा था, वहाँ एक सिन्धी महाशय पुजारी थे और एक मुसलमान नौकरानी मन्दिर और गुरुद्वारेके बाहरी भागकी सफाई आदिके लिये थी। हाँ, मैंने अपने कई दिनोंके ठहरनेके समयमें यह भी देखा कि अनेक हिन्दू वहाँ नित्यप्रति आते थे और बड़ी श्रद्धापूर्वक दर्शन करके चले जाते थे। एक दिन एक सज्जनने वहाँ 'कड़ाह-प्रसाद' कराया था। उसमें बन्दर अब्बासके प्रायः सभी हिन्दू सम्मिलित हुए थे और अनेक लोग जिस श्रद्धाके साथ उसमें शरीक हुए थे, उसको मैं कदापि भूल नहीं सकता।

पुरातत्त्व और शिवार्चन

(लेखक—डा० श्रीहीरानन्दजी शास्त्री, एम० ए०, डी० लिट्, एम० ओ० एल०, गवर्नमेण्ट एपिग्राफिस्ट फार इण्डिया)

इस विचित्र संसारमें दो प्रकारकी उपासना देखी जाती है, यद्यपि उपास्य देवता एक ही है। उपासक अपने इष्टको या तो पुरुषरूपमें पूजेगा या स्त्रीरूपमें। उपास्य-तत्त्व स्त्री है या पुरुष—यह भक्तके ध्यानपर निर्भर है। परमात्माको चाहे हम 'माँ' कहकर पुकारें अथवा 'पिता' कहकर, वास्तविक तत्त्व एक ही है—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'। कहते हैं कोई शक्तिका उपासक श्रीदुर्गा-सप्तशतीका पाठ करता हुआ—

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

—इस श्लोकार्धमें 'नमस्तस्यै' के स्थानमें 'नमस्तस्मै' पढ़ा करता था। उसकी भूलको किसी पण्डितने ठीक किया। इसपर उसे बहुत दुःख हुआ कि मेरी इतने सालकी पूजा नष्ट हुई। भगवतीने उसे दर्शन दिये और पण्डितको फटकारा कि क्या मैं पुरुष-वेषमें नहीं आ सकती, इत्यादि। इसप्रकारकी कथाओंका भाव यही है जो ऊपर कहा गया है। जिस तत्त्वका परमहंस रामकृष्णने कालीके रूपमें साक्षात्कार किया उसी तत्त्वका श्रीचैतन्य महाप्रभु वृन्दावन-विहारी श्रीश्यामसुन्दरके रूपमें चिन्तन करते थे और उसी तत्त्वको मार्कण्डेयने श्रीशिवरूपमें देखा था। इसी तत्त्वकी उपासना इस विविधतापूर्ण संसारमें विविध रूपमें पायी जाती है। तत्त्व एक ही है, 'एकमेवाद्वितीयम्', 'नेह नानास्ति किञ्चन।' इस एकताको न समझना ही बखेड़ोंका कारण होता है।

प्रायः लोग उस तत्त्वको पुरुषरूपमें ही पूजते हैं, जिससे यही अनुमान होता है कि संसारमें पुरुष-जातिका ही प्राधान्य रहा है, अन्यथा कोई कारण नहीं कि परमात्माको 'माँ' के रूपमें न पूजा जाय। श्रीमद्भगवद्गीतामें तो भगवान्‌ने स्पष्ट ही कर दिया है—

'पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।'

अन्य जातियोंके उपास्यदेवताओंके विषयमें विचार करनेकी इस समय आवश्यकता ही नहीं है।

वेदोंमें परमात्माकी प्रायः पुरुषरूपमें ही उपासना की गयी है। इन्द्र, वरुण, वायु, विष्णु, रुद्र इत्यादि सब-के-सब नाम पुँल्लिङ्ग-वाचक ही हैं; स्त्री-वाचक उपास्यदेवके नाम थोड़े ही हैं—जोकि 'वागाम्भृणीय' जैसे सूक्तोंमें पाये जाते हैं। इससे यही अनुमान किया जाता है कि प्राचीन आर्य-जाति ईश्वरको प्रायः पुरुषरूपमें ही पूजती थी।

ऋग्वेदमें प्रायः 'देवतानां पत्नीः' इन पदोंका प्रयोग पाया जाता है, परन्तु उस रूपमें नहीं जिस रूपमें ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें पाया जाता है। वरुणानी, इन्द्राणी तथा अग्नायी वरुण, इन्द्र एवं अग्निकी पत्नियाँ ही हैं; तन्त्र अथवा अन्य ग्रन्थोंमें वर्णित शक्तिका स्थान इन्हें प्राप्त नहीं।

प्राणिमात्रमें केवल दो ही शक्तियाँ देखनेमें आती हैं। इनमेंसे एकको 'पुरुषशक्ति' तथा दूसरीको 'स्त्रीशक्ति' कह सकते हैं। इन्हीं दो शक्तियोंसे संसारकी उत्पत्ति तथा वृद्धि होती है। संसारके ह्रास अथवा नाशका कारण भी यही दो शक्तियाँ कही जा सकती हैं। स्थूलरूपमें इन दो शक्तियोंको साधारण मनुष्य जननेन्द्रियके रूपमें व्यक्त कर सकता है। उसकी दृष्टिमें यही दोनों इन्द्रियाँ सृष्टिमें प्रधान हैं, अतः इन्हींको वह पूजार्ह अथवा उपास्य समझ लेता है। जिसने जिसे उपास्य समझा उसने उसीकी उपासना पकड़ ली। स्त्री-चिह्न अथवा पुरुष-चिह्नकी उपासना इन्हीं विचारोंपर निर्भर है। कई एक विद्वान् कहते हैं कि 'योनि-पूजा' सबसे प्राचीन है। अन्य विद्वान् 'लिङ्ग-पूजा' को ही सर्वप्रथम मानते हैं और अपने विचारोंके समर्थनमें 'शिश्नदेवाः'-जैसे शब्दको, जो वेदोंमें पाया जाता है, उपन्यस्त करते हैं, चाहे इसका अर्थ शिश्नपरायण अर्थात् विषयलम्पट ही हो। हमारे विचारमें सबसे पहले पुंस्त्व अर्थात् पुरुषत्व (Male Principle) अथवा पुँल्लिङ्गकी अर्थात् 'शिश्न'-पूजा ही प्रचलित हुई होगी। उपास्यदेवकी मूर्ति अथवा प्रतिमा प्रायः स्थिरता अथवा दृढ़ताकी दृष्टिसे पाषाणकी ही बनायी जाती है। जिस प्रतिमामें कोई विशिष्ट आकार नहीं दीख पड़ता, पूजनेवाले अब भले ही उसे 'पुरुष'-शक्तिका चिह्न न समझें—परन्तु इस उपासनाका मूल यही प्रतीत होता है। पीछे स्त्रैणशक्तिका भी प्राधान्य समझमें आनेपर उस शक्तिका पूजन भी चल पड़ा। जिन्होंने दोनोंकी प्रधानताका अनुभव किया उन्होंने दोनोंको उपास्य समझा। यह देखकर कि 'पुरुष' अर्थात् 'ईश्वर' विना शक्तिके अथवा स्थूल शब्दोंमें, स्त्री अर्थात् भार्याके कुछ भी नहीं कर सकता, उन्होंने दोनोंकी अर्चना प्रारम्भ कर दी। यही नहीं, उन्होंने यहाँतक कह डाला कि शिवरूप शवका 'इ' अर्थात् शक्तिके साथ संयोग होनेपर ही उसकी 'शिव' संज्ञा होती है, इन्हीं विचारोंसे 'देवी' की पूजा प्रधानरूपसे की जाने लगी। अर्धनारीश्वरका ध्यान भी, जिसमें इन दो शक्तियोंका पूर्णरूपसे योग पाया जाता है, इन्हीं विचारोंका परिणाम है। यह ध्यान हमारे यहाँ शिवकी आराधनामें पाया जाता है। प्राचीन मिश्र-देशमें भी इस रूपकी पूजा होती थी।

जहाँतक हमारा अनुमान है देवी अथवा शक्तिकी पूजा पीछेसे ही चली होगी। अतएव प्राचीनतम मन्दिरोंमें 'देवी' की प्रतिमा मन्दिर-निर्माण-कालकी नहीं मिलेगी। हिन्दू अथवा संस्कृत आर्य-जातिके मन्दिरोंको छोड़ अन्य जातियोंके पूजागारोंमें यही बात देखनेमें आती है। मोहन-जो-दड़ोमें जो भग्नावशेष मिले हैं, उनमें पुंस्त्व-पूजनके चिह्न बहुत मिले हैं।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि जननात्मक शक्तिकी अर्चना अति प्राचीनकालसे चली आती है। इसी अर्चनाका कहीं-कहीं गँवारू-ढंगसे वर्णन किया गया है, जिसे पढ़-सुनकर कभी-कभी जुगुप्सा उत्पन्न होती है। शिवपुराण एवं लिङ्गपुराणकी कई एक कथाएँ इसी प्रकारकी हैं। यदि इनपर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय तो स्फुटतया इस बातका पता लगेगा कि उनके अश्लील अंशको छोड़कर, जहाँतक सृष्टि-रचनाका सम्बन्ध है, प्राणि-मात्रमें यही लीला निरन्तर हो रही है। साधारणतया शिव-मन्दिरोंमें जो चिह्न अथवा मूर्तियाँ स्थापित होती हैं, उनसे इसी भावका व्यक्त करना अभीष्ट है। कोई भी हिन्दू इन मूर्तियों अथवा चिह्नोंको उपासना करते समय बुरी दृष्टिसे नहीं देखता। जिनका इस वास्तविक तत्त्वकी ओर ध्यान होगा वे उपहास कर भी कैसे सकते हैं? वे तो उनके अन्दर ईश्वरीय लीलाका दर्शन करेंगे। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पूजोपहार करना ही अपना एकमात्र धर्म समझते हैं। शेष जन तो छिद्रान्वेषी होते ही हैं, जो प्रत्येक उपासनामें दिल्लगी और हँसी-ठट्ठेकी सामग्री पाते हैं।

हम ऊपर लिख आये हैं कि हमें तो शिव-मन्दिर ही प्राचीनतम दृष्टिगोचर हुए हैं। जननात्मक शक्तिका ही नाम यदि 'शिव' रख लें तो कोई हानि नहीं होती। यद्यपि शिवके और भी अनेक रूप हैं, तथापि उनका जननात्मक कर्म ही मुख्य है। उत्पत्ति होगी तभी तो पालन-पोषण होगा और तत्पश्चात् मरण। जननमें ही कल्याण है—शिव है। जनन, भरण और मरण—इन त्रिविध अवस्थाओंसे युक्त ईश्वरको ही 'सदाशिव' कहते हैं। इसी एक शक्तिके त्रिविध रूपको 'त्रिमूर्त्ति' (Trinity) भी कहते हैं और इसी एक तत्त्वमें 'एकोऽहं बहु स्याम्' की उक्ति भी चरितार्थ होती है। जब मनुष्य एक तत्त्वका ध्यान करता है तब वह एकमुखलिङ्गकी अर्चना करता है अथवा अर्ध-नारीश्वरका ध्यान करता है। द्विधारूपमें वह शिव-पार्वतीकी उपासना करता है, त्रिधारूपमें सदाशिवका और

बहुरूपमें पञ्चमुखका ध्यान करता है। शिवकी प्राचीनतम मूर्त्ति जिसका निर्माण-काल हम निश्चितरूपसे कह सकते हैं, लखनऊके संग्रहालयमें रक्खी हुई है, इसकी प्रतिकृति हम अलग यहाँ छापते हैं। इससे प्राचीन देव-प्रतिमा जिसका निर्माणकाल हम ऐसे ही दृढ़ निश्चयके साथ बतला सकें, हमें ज्ञात नहीं है। साधारण बिम्बोंको छोड़कर यह प्रतिमा प्रायः साढ़े चार हाथ ऊँची है और इलाहाबाद-प्रान्तके भीटा-ग्राममें कई वर्ष हुए मिली थी। इसका ऊर्ध्व-भाग पुरुष-शरीरके ऊपरी भाग (bust) का-सा है, बायें हाथमें एक बर्तन या भृङ्गार (सुराही) है, दक्षिण हस्त अभय-मुद्रामें उठा हुआ है। इस ऊर्ध्वकाय (bust) के नीचे प्रत्येक कोणमें एक मनुष्यके सिरकी-सी प्रतिमा है जो स्यात् स्त्रीके ऊर्ध्व-कायकी द्योतक है। केशोंका परिष्कार और कर्ण-कुण्डल यही सूचित करते हैं। इनके ऊपरकी प्रतिमा पुरुष-प्रतिमा है और नीचेका भाग पुंस्त्व-चिह्न (Phallus) का द्योतक है। चार स्त्रियोंके ऊर्ध्व-कायकी प्रतिमा चारों

भीटामें प्राप्त पञ्चमुखी शिव-प्रतिमा
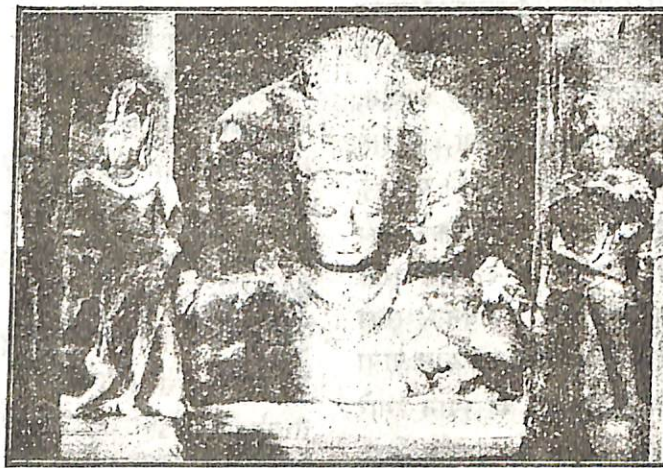
एलिफेण्टात्रिमूर्ति-सदाशिव

दिशाओंकी स्त्रीत्व-शक्ति (Female Energy) की द्योतक हो, ऐसी कल्पना की जा सकती है और ऊपरका भाग एवं नीचेका खण्ड मिलकर जननशक्ति (Male Principle) का सूचक है, ऐसा माना जा सकता है।

इसकी बायीं ओर दो पंक्तियोंमें विक्रमकी पहिली शताब्दीकी लिपिमें लिखा हुआ एक लेख है जो हमें यह बतलाता है कि यह लिङ्ग वासिष्ठीके बेटे नागश्रीने स्थापित किया था। सदाशिवकी एक प्रायः अद्वितीय प्रतिमा बम्बईके समीप एलिफेण्टा-द्वीपमें विद्यमान है जिसकी प्रत्येक विद्वान्ने मुक्तकण्ठसे स्तुति की है। इसकी भी प्रतिकृति यहीं छपी हुई है। अहा, कैसी अद्भुत छटा है! बीचवाला शीर्ष ब्रह्मा अथवा सृष्टिकर्ताका आकार समझिये। दक्षिणका विष्णु और बायें हाथका संहारकर्ता रुद्रका द्योतक है। इस विचित्र मूर्तिको देखते हुए उस त्रिविध शक्तिमय ईश्वरका ध्यान करनेसे कल्याण-ही-कल्याण होगा।
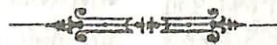
काशीमें अत्यन्त प्राचीन शिव-मठ

(लेखक—पं० श्रीवागीश शिवाचार्यजी)

यस्य स्मरणमात्रेण नृणां मुक्तिः करस्थिता। तं वन्दे जगदाधारं विश्वाराध्यं जगद्गुरुम्॥

यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है कि भारतके सुप्रसिद्ध क्षेत्र श्रीकाशीजीमें आर्यजातिके* प्राचीन (शिलालेख आदि) चिह्न नहींके बराबर हैं। दक्षिणके किसी भी क्षेत्रमें देखिये तो आपको ऐसे अनेकों चिह्न मिलेंगे जिनसे ऐतिहासिक खोजमें काफी सहायता मिल सकती है। हो सकता है कि शत्रुओंके आक्रमणसे काशीके बहुत-से प्राचीन चिह्न लुप्त हो गये हों, फिर भी यदि खोज की जाय तो इस प्राचीन नगरीमें कुछ-न-कुछ महत्त्वपूर्ण प्राचीन चिह्न अवश्य प्राप्त होंगे। हमें आश्चर्य है कि 'सारनाथके इतिहास' की भाँति अभीतक 'काशीके इतिहास' की ओर अन्वेषकोंकी दृष्टि क्यों नहीं गयी। अस्तु! यहाँ हम 'कल्याण' के पाठकोंको काशीके एक अति प्राचीन मठका परिचय कराना चाहते हैं।

इस युगके आदिमें श्री १००८ जगद्गुरु विश्वाराध्य शिवाचार्य महाराजने संसारके कल्याणार्थ श्रीविश्वनाथलिङ्गके गर्भसे आविर्भूत होकर काशीमें एक ज्ञानसिंहासन नामक स्कन्दगोत्रीय गद्दीकी स्थापना की, जिससे कलिमलसन्तप्त-जनोंके दुःख दूर होते हैं। श्रीविश्वाराध्यजी त्रिकालदर्शी और सकलविद्याधिपति थे। तभी तो आपके कार्य अभीतक अविच्छिन्नरूपसे चले आ रहे हैं। हमारे दुर्दैवसे आपके 'प्रस्थानत्रयभाष्य' अभीतक उपलब्ध नहीं हुए हैं, फिर भी—

विश्वाराध्यादयस्तु अस्यामुपनिषदि दहरोपासनाविषये नारायणोपासकत्वशिवोपास्यत्वनिर्णये सहस्रशीर्षानुवाकगतनारायणं परं ब्रह्मतत्त्वं नारायणः पर इत्यादि वचनानि विरुध्येरन्निति मा शङ्किष्टाः।

—इस उद्धरणसे श्रीविश्वाराध्यकृत 'महानारायणोपनिषच्छैवभाष्य' † का पता अवश्य लगता है। पीठस्थ वंशावलीसे पता चलता है कि आप कलिके आदिमें ग्यारह सौ वर्षतक गद्दीपर विराजते रहे। आपके बाद श्रीजगद्गुरु मल्लिकार्जुन शिवाचार्य भी तीन सौ ग्यारह वर्षतक जीवित रहे। इन्हींके समयमें यह प्रसिद्ध और विशाल मठ (जंगमबाड़ी) जिसका परिचय हम दे रहे हैं, बना है। जहाँ श्रीविश्वाराध्यके अनुग्रहसे आपका पट्टाभिषेक हुआ था, वहीं 'कैलासमण्डप' नामक भव्य मण्डप बना, जो अबतक काशीमें अपने ढंगका अनोखा है। इतिहासके विद्वानोंका कहना है कि इस मण्डपका पत्थर दो हजार वर्षसे इधरका नहीं हो सकता। इस मण्डपके दक्षिणमें श्रीगुरुजीकी तपोभूमि है, जिसे 'गादीस्वामी' कहते हैं। इन दोनों स्थानोंका पत्थर बहुत ही जीर्ण-शीर्ण हो गया है, जिसे ऊपरसे जहाँ-तहाँ चूना-सिमेंट आदिका पलस्तर कराकर सुरक्षित रक्खा गया है। कैलासमण्डपके एक खम्भेमें श्रीमल्लिकार्जुन शिवाचार्यकी एक मूर्ति भी उसी समयकी खोदी हुई जान पड़ती है। श्रीमल्लिकार्जुन बड़े प्रभावशाली थे। श्रीविश्वाराध्यके प्रथम शिष्य होनेके कारण उन्हींकी व्यवस्था आजतक कायम है। अबतक उस कैलासमण्डपमें ही (ज्ञानसिंहासनपर) सब आचार्योंका पट्टाभिषेक होता है और सभी आचार्य 'मल्लिकार्जुन' नामवाले होते हैं। यद्यपि अंग्रेजी राज्यके प्रारम्भ होनेके बादसे व्यावहारिक नाम भी अब पाँच-छः आचार्योंके लिये रूढ़ हो गया है, तथापि समस्त व्यवहारोंमें 'मल्लिकार्जुन' उपनाम भी लगता ही है। इनके बादके अस्सी आचार्योंमें दूसरे आचार्य एक सौ चौदह वर्ष, चौथे एक सौ एक वर्ष, पाँचवें एक सौ पचीस वर्ष और इक्यावनवें एक सौ इक्कीस वर्ष गद्दीपर आसीन रहे। इन सभी आचार्यचरणोंका एकमात्र कार्य यही रहा है कि देश-देशान्तरोंका भ्रमण करते हुए भक्तोंको उपदेश दे उनका उद्धार करते रहें तभी तो इन आचार्योंमेंसे बहुतोंके शरीर काश्मीर, नेपाल, हिमालय, आसाम, मलयाचल, सौराष्ट्र आदि सुदूर स्थानों या जंगल और नदियोंमें छूटे हैं। ये सब-के-सब महातपस्वी और उदार हुए हैं। आधुनिक आचार्योंमेंसे उनासीवें जगद्गुरु श्रीहरीश्वर महाराज शापानुग्रहशक्तिसम्पन्न, महायोगी एवं परमदयालु थे। इनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें शान्तिका वास था। अस्सीवें आचार्य श्रीवीरभद्र महाराज बड़े समर्थ योगी थे, इन्होंने अपने समयमें भक्तोंसे आचार-विचारका बड़ी तत्परताके साथ पालन करवाया था। जंगमबाड़ीकी प्रजाके साथ-साथ काशी नगरके कितने ही अन्य

* बौद्धोंको छोड़कर। † सिकन्दराबादमें मुद्रित।
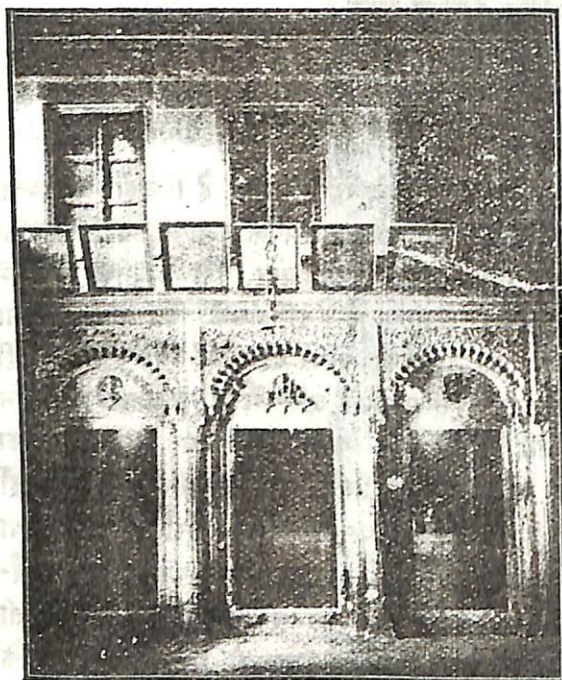
जङ्गमबाड़ी पूर्वाचार्योंकी समाधिस्थली
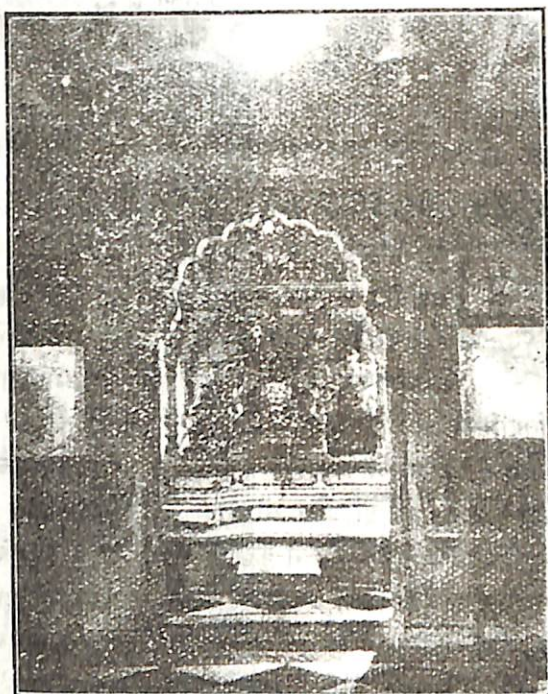
जङ्गमबाड़ी विश्वाराध्यकी तपोभूमि
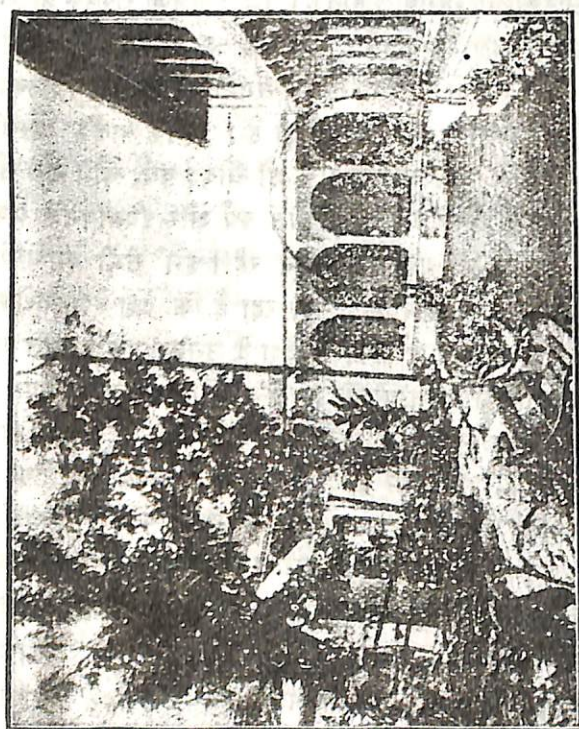
जङ्गमबाड़ीका प्रांगण
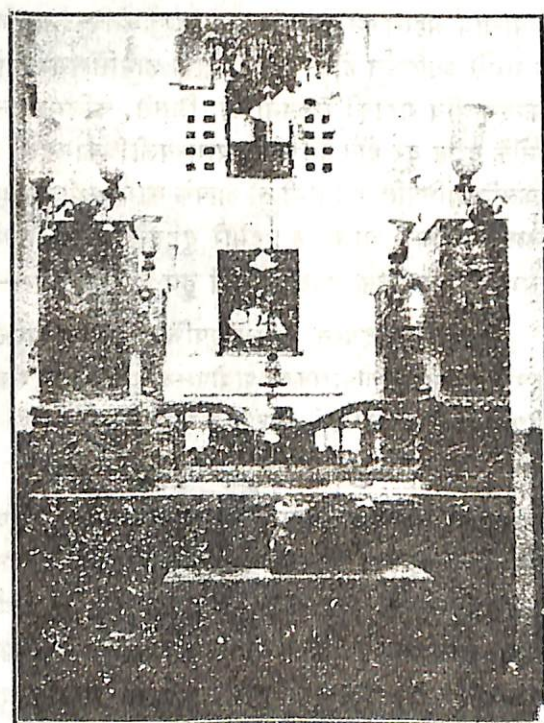
जङ्गमबाड़ी कैलासमण्डपमें ज्ञानसिंहासन

लोग भी इनके इशारेपर चलते थे। गद्दीकी बिखरी हुई सम्पत्तिकी भी इन्होंने समुचित व्यवस्था की। इक्यासीवें आचार्य श्रीराजेश्वर महाराज महादानी योगी थे। आपके पास आकर याचकलोग कभी विमुख नहीं लौटते थे। आप बड़े तपोनिष्ठ थे। अखिल भारतीय योगिमण्डलके 'योगी' नामक पत्रके आरम्भमें ही आपका चित्र दिया गया है। बयासीवें आचार्य श्रीशिवलिङ्ग शिवाचार्य महाराजका अभी डेढ़ वर्ष पूर्व देहावसान हो चुका है। आपके समयमें गद्दीकी व्यवस्था आदिके कार्योंमें अनेक अड़चनें आती रहीं, पर आप धैर्यपूर्वक सबको बड़ी आसानीसे पार करते रहे। आपका अधिकांश समय शिवपूजामें ही व्यतीत होता था। सन् १९११ के प्रसिद्ध दिल्लीदरबारमें सरकारकी ओरसे आपका बड़े ठाट-बाटके साथ जुलूस निकाला गया था। वर्तमान आचार्य श्रीजगद्गुरु पञ्चाक्षर शिवाचार्य महाराज तिरासीवें आचार्य हैं।

कहा जाता है कि काशीका श्रीविश्वनाथजीका मन्दिर पहले इस गद्दीके ही अधीन था; परन्तु पीछे औरङ्गजेब-द्वारा उसके भ्रष्ट किये जानेपर जब उसे महाराणी श्रीअहल्याबाईने फिरसे बनवाया तबसे वह सातोंके अधिकारमें चला गया है। विश्वनाथजीके बगलमें अन्नपूर्णाजीके सामने भी इस गद्दीकी जमीन थी, जो हालहीमें दूसरोंको दे दी गयी है। साक्षीविनायक और मनकामेश्वर-मन्दिरपर गद्दीकी अब भी काफी जमीन है। 'जंगमबाड़ी' नामक करीब छःसौ पचास घरोंकी बस्तीका एक विशाल मुहल्ला और तीन सौ घरोंका 'मानससरोवर' नामक पवित्र स्थान इस मठके ही अधीन है। जंगमपुर नामक विशाल क्षेत्र हालहीमें हिन्दूविश्वविद्यालयके आधीन हुआ है। इसके अतिरिक्त बनारस जिलेके बारह ग्राम भी गद्दीकी ज़मींदारीमें हैं।

विक्रम सं० ६३१ में 'जयनन्द' नामक काशी-नरेशने इस गद्दीको एक 'गोचरभूमि' भेंट की थी और इसका दानपत्र (भोजपत्र) अत्यन्त जीर्ण हो जानेके कारण स्वर्गीय काशीनरेश श्रीमहाराजा प्रभुनारायणसिंहने इसे नये सिरेसे ताम्रपत्रपर अपने हस्ताक्षर और विज्ञप्तिके सहित लिखवाकर वि० सं० १९८२ में इसका उद्धार कर दिया है। इस गद्दीका एक शाखामठ जंगमबाड़ीके नामसे नेपाल-राज्यके भातगाँवमें भी है, जिसकी मर्यादा दरबारकी ओरसे सुरक्षित है; और यहाँ भी विक्रम सं० ६९२ का एक शिलालेख है, जिसमें लिखा है कि 'काशीके शिव श्रीजङ्गममल्लिकार्जुन गुरुजीने यहाँकी नष्टप्राय शिवभक्तिको पुनरुज्जीवित किया था, जिसके उपलक्ष्यमें नेपालके विश्वमल्ल नृपतिने एक मठ और विपुल भूमि भेंट की।' अत्यन्त आश्चर्यकी बात तो यह है कि बाबर, हुमायूँ, औरङ्गजेब (आलमगीर) आदि मुसलमान बादशाहोंके भी दानपत्र या सनदें इस स्थानमें हैं। जिन्हें इस बातपर विश्वास न हो वे 'वीरशैवेन्दुशेखर' नामक सचित्र पुस्तकको पढ़ें, जो हालहीमें संस्थानकी ओरसे प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त मैहर और मैसूर-महाराजाओंके भी दानपत्र मौजूद हैं। मैसूर-राज्यकी ओरसे प्रतिमास पचास रुपयेकी पूजा मिलती है। प्रयागके गङ्गातीरपर भी गद्दीका एक शाखामठ है और दक्षिणमें इस गोत्रके उपाचार्य तथा शिष्योंके बहुत-से मठ हैं, जिनकी स्थापनाका उद्देश्य सनातनवर्णाश्रमधर्मकी रक्षा ही है।

यहाँके विश्वाराध्य-गुरुकुलमें दक्षिणदेशके वीरशैव विद्यार्थी सदा अध्ययन करते और सहायता पाते आ रहे हैं। शिवपुरी काशीके इस प्राचीन और पवित्र मठका परिचय प्राप्तकर किसको आनन्द नहीं होगा? इस मठके कुछ मुख्य-मुख्य चित्र भी प्रकाशित किये जा रहे हैं।

'शिवं भूयात्'

मोह नहीं होगा

अरे काम बेकाम! धनुष टंकारत तरजत।
तू हू कोकिल! व्यर्थ बोल काहेको गरजत॥
तैसे ही तू नारि वृथा ही करत कटाछै।
मोहिं न उपजै मोह छोह सब रहिगे पाछै॥
चित चन्द्रचूड़के चरनको, ध्यान-अमृत बरसत हिते।
आनन्द अखण्डानन्दको ताहि अमृत-सुख? क्यों हिते॥

मैसूरराज्यके शिव-मन्दिर

(लेखक—श्रीयुत डा० एम० एच० कृष्ण, एम० ए०, डी० लिट् (लन्दन), अध्यक्ष, पुरातत्त्वविभाग, मैसूर श्रीमान् महाराजा साहब मैसूरकी आज्ञासे)

सूरराज्य स्थापत्य-कलाके सुन्दर नमूनोंके लिये प्रसिद्ध है। शिवमन्दिरोंकी संख्या तथा सौन्दर्यमें भी यह भारतके किसी अन्य प्रान्तसे कम नहीं है। ये मन्दिर विगत १५०० वर्षोंके अन्दर इतिहासके भिन्न-भिन्न युगोंमें बने हुए हैं। इनकी रचनाशैली दो प्रकारकी है, एक तो द्रविडदेशकी और दूसरी चालुक्यकालकी। विशेषकर हॉयसल (Hoysala) वंशके राजाओंके कालमें बहुत-से मन्दिरोंका निर्माण हुआ। उस समय बहुत-से लोग अपने-अपने नामसे मन्दिर बनवाकर उनमें शिवजीकी प्रतिमा स्थापित कर देते थे, जिससे उनका नाम अमर एवं पवित्र हो जाय। उदाहरणतः कोरवङ्गल (Koravangala) नामके स्थानके बूचेश्वर, गोविन्देश्वर एवं नागेश्वर महादेवके मन्दिर तथा असिंकेरे (Arsikere) का कत्तमेश्वरका मन्दिर इसी उद्देश्यसे बने हुए हैं।

किन्तु उस समय इन मन्दिरोंसे भगवान् विष्णुका बहिष्कार नहीं किया जाता था। सच पूछिये तो ऐसा नियम-सा हो गया था कि किसी भी शिवालयमें जबतक विष्णु-भगवान्का मन्दिर न हो तबतक वह अधूरा ही समझा जाता था। इसप्रकारका भाव उस देशमें बहुत प्राचीन-कालमें ही परिपक्व हो गया था। हरिहरकी युगल-मूर्तिके-जिसमें हरि और हरकी समानता प्रदर्शित की गयी है—विकासका मूल भी यही है। सन् १२२४ ई० के एक शिलालेखमें निम्नलिखित आशयके वाक्य खुदे हुए मिले हैं—गीतकीर्ति भगवान् शिवने श्रीविष्णुका विग्रह स्वीकार किया और भगवान् विष्णुने श्रीशिवकी महिमान्वित एवं प्रसिद्ध मूर्ति धारण की। इसप्रकार रूपविनिमयमें उनका हेतु यही था कि उनकी एकताके प्रतिपादक वेदवाक्य पूर्णतया चरितार्थ हों। शिमोगा (Shimoga) जिलेके तालगुण्ड (Talagunda) नामक स्थानमें एक प्रणवेश्वर महादेवका मन्दिर है, जो राज्यभरके विद्यमान शिवमन्दिरोंमें सबसे प्राचीन है। मन्दिरके सामने ईसासे लगभग ४०० वर्ष पीछेका कदम्बवंशके राजाओंका एक शिलालेख है, जिससे यह पता लगता है कि ईस्वी सन्की दूसरी शताब्दीमें भी शातकर्णि तथा दूसरे राजालोग इस प्रतिमाकी पूजा किया करते थे। ईस्वी सन्की पाँचवीं शताब्दीमें कदम्बवंशके राजाओंमें असली प्राचीन मन्दिरके सामने एक गोपुरका निर्माण करवाया और आगे चलकर मन्दिरके भवनका और भी विस्तार हुआ। मन्दिर बिल्कुल सादे ढंगका बना हुआ है। उसके अन्दर केवल एक गर्भगृह (निजमन्दिर) तथा सुखनासी (?) है और गर्भगृहके अन्दर एक भग्न शिवलिङ्ग है, जो शुरूमें लगभग ६ फीट ऊँचा रहा होगा।

नन्दी (Nandi) नामक स्थानमें एक भोगनन्दीश्वर महादेवका मन्दिर है। उसके अन्दर तथा समीपमें जो शिलालेख हैं उनसे यह पता चलता है कि इस मन्दिरका निर्माण चोल तथा हॉयसलवंशके राजत्वकालमें हुआ था। उसके दक्षिण ओर अरुणाचलेश्वर महादेवका मन्दिर है और इन दोनों मन्दिरोंके बीचमें एक छोटा-सा मन्दिर और है, जो इन दोनोंका माध्यम बना हुआ है। हालेबिद (Halebid) का हॉयसलेश्वर महादेवका मन्दिर भी ठीक इसी ढंगपर बना हुआ है और दोनोंके सामने दो नन्दीमण्डप भी हैं। हॉयसलकालके मन्दिरोंकी भाँति इसमें भी गर्भगृह, सुखनासी और नवरङ्ग—ये तीन स्थान बने हुए हैं और पत्थरकी जाली लगी हुई है। भोगनन्दीश्वरके मन्दिरमें चोलवंशके एक राजाकी उन्हींके समयकी गढ़ी हुई प्रतिमा भी स्थापित है, जो एक विशेषताको बतलाती है। चोलवंशके नरेशोंने दक्षिणमें शैवमतका प्रचार करनेकी बहुत कुछ चेष्टा की और आगमान्त (?) शैवग्रन्थोंमें राजेन्द्रचोलके सम्बन्धमें यह उल्लेख मिलता है कि उन्होंने तोण्डई (Tondai) तथा चोल-मण्डलों (जिलों) में गोदावरीतीरवासी अनेक शैवोंको लाकर बसाया। नवरङ्गकी छातके मध्यभागमें शिव-पार्वतीकी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। केवल उनके वाहन बदले हुए हैं अर्थात् शिवके वाहनपर पार्वतीजी विराजमान हैं और पार्वतीजीके वाहनपर शिवजी सवार हैं। शिव-पार्वतीकी धातुमयी प्रतिमाएँ, जो आजकल बीचवाले उमा-महेश्वरके
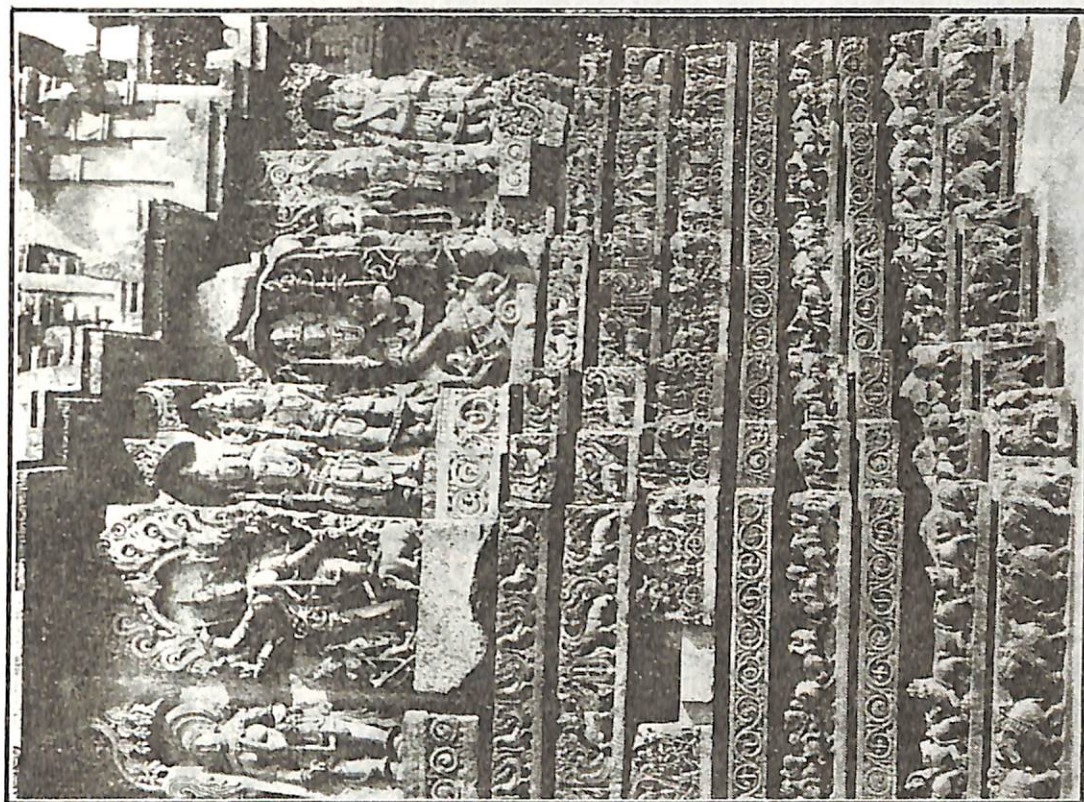
श्रीहायलेश्वर-मन्दिर—हलेबिद
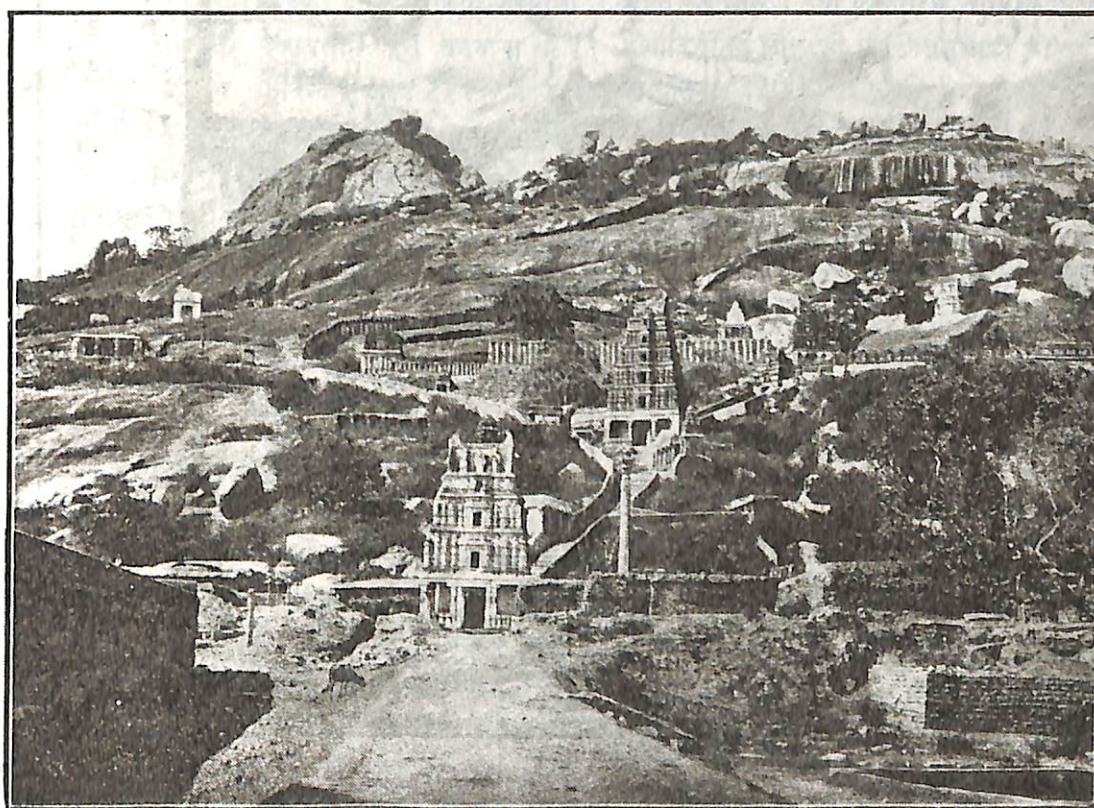
पुरातत्त्व-विभाग, मैसूरकी कृपासे

श्रीशिव-गंगा

पुरातत्त्व-विभाग, मैसूरकी कृपासे
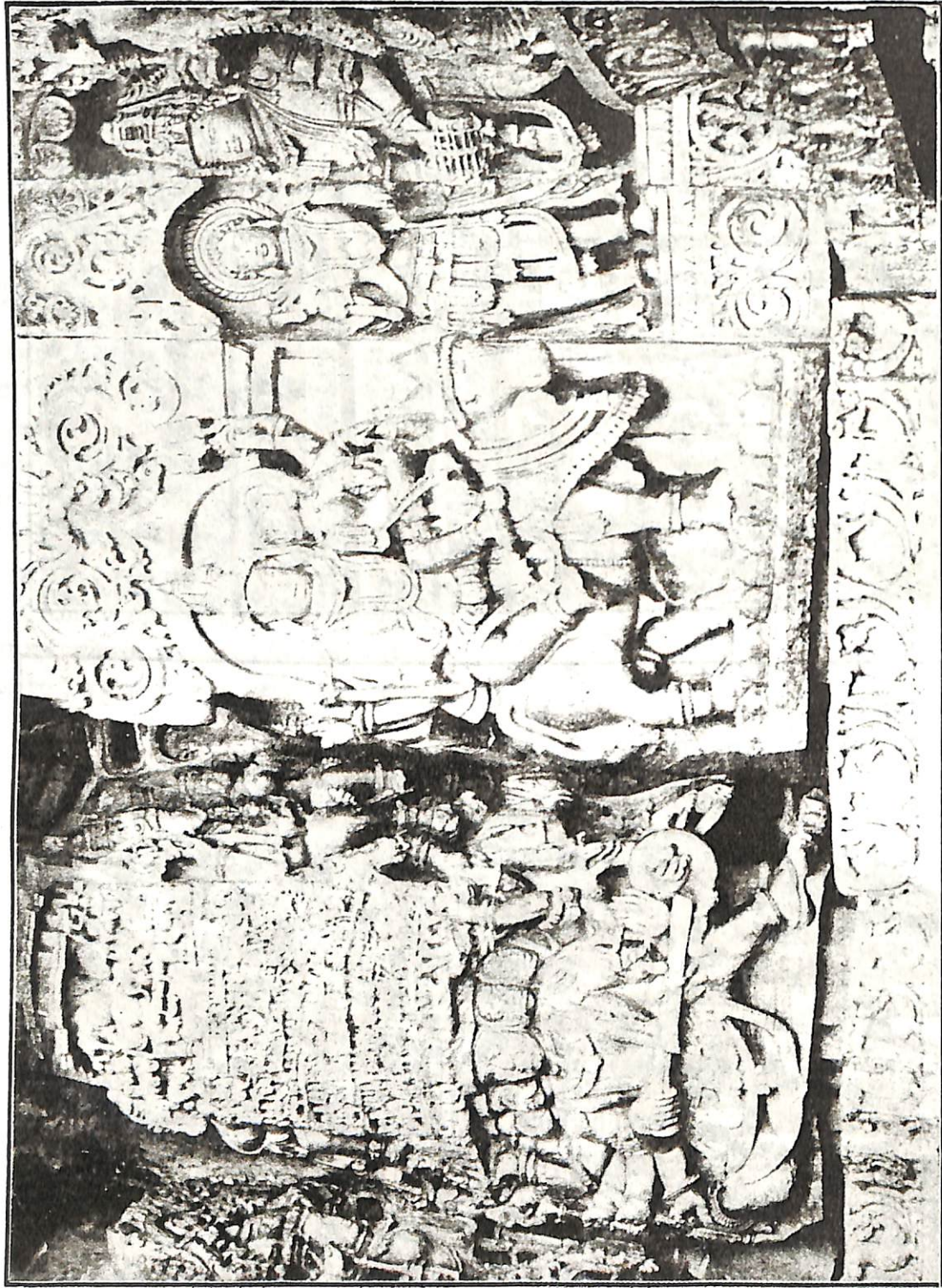
श्रीहायलेश्वर शिवगौरीमूर्ति

मन्दिरमें विद्यमान हैं, पहले इसी मन्दिरमें प्रतिष्ठित थीं। उमा-महेश्वरके मन्दिरके सामने एक विशाल कल्याणमण्डप है, जो काले रंगके पत्थर (संगमूसा) का बना हुआ है। उसके अन्दर चार विचित्र स्तम्भ हैं, जो हाथकी सफाई तथा कलाकी बारीकीके नमूने हैं। जिस कालकी यह कारीगरी है, उसमें ये सारी बातें विशेषरूपसे पायी जाती हैं। इतस्ततः दोनों मन्दिरोंके भीतर तथा उनकी बाहरी दीवारोंके चारों ओर ताण्डवेश्वर, भैरव, वीरभद्र, शिव-पार्वती-विवाह आदि शिवजीकी अनेक लीलाओंकी मूर्तियाँ हैं। इनमेंसे कई मूर्तियाँ बड़ी ओजपूर्ण हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि शिल्पकारने रूढ़ि तथा नियमोंकी परवा न कर प्राकृतिकताका ही अनुसरण किया है। प्राकार (परकोटे) में भी दो मन्दिर हैं। उनमेंसे एकके अन्दर 'प्रसन्न पार्वती' की पाँच फुट ऊँची एक भव्य मूर्ति है। नन्दीका मन्दिर द्राविड़ी नमूनेके मन्दिरोंमें सबसे सुन्दर है और उसकी गणना मैसूरराज्यके सबसे प्राचीन मन्दिरोंमें है। इस मन्दिरके सम्बन्धमें जो सबसे प्राचीन लेख मिलता है वह नोलम्ब-वंशके राजा नोलम्बाधिराजके समय (नवीं शताब्दी) का है। उसमें लिखा है कि बाणवंशके राजा बाणविद्याधरकी धर्मपत्नी रत्नावलीने इसे बनवाया था। राष्ट्रकूटके राजा तृतीय गोविन्द (७९४-८१४) ने इस मन्दिरके लिये सन् ८०६ ई० में जागीरें प्रदान की थीं। और नन्दीमण्डपमें कई चोलकालीन शिलालेख हैं, जो ग्यारहवीं शताब्दीमें खोदे गये थे।

हॉयसलोंके बनवाये हुए शिवमन्दिरोंमें हालेबिदका हॉयसलेश्वर महादेवका मन्दिर सबसे अधिक प्रसिद्ध है और अनेकों प्रकाशित ग्रन्थोंमें विशेषज्ञोंने इस मन्दिरका वर्णन किया है। इसका आदिम भवन सन् ११२१ में बना था, जैसा कि पहले कहा जा चुका है; इसकी बनावट भोग-नन्दीश्वरके मन्दिरकी-सी है और भोगनन्दीश्वरकी तरह इसके सामने भी दो नन्दीमण्डप हैं। मन्दिरके चार द्वार हैं, उनमेंसे प्रत्येकके ऊपरी भागमें ताण्डवेश्वरकी सुन्दर मूर्तियाँ बनी हुई हैं और उनके दोनों ओर मकरतोरण हैं जिनपर बहुत मेहनत की हुई है। मन्दिरका दक्षिण-द्वार कलाकी दृष्टिसे सबसे उत्तम है। हॉयसलराज अपने महलसे आकर जो मन्दिरसे कुछ दूर दक्षिण-पश्चिमकी ओर था, इसी द्वारसे प्रवेश किया करते थे। खम्भोंके ऊपर हाथी, शेर तथा पौराणिक घटनाओंकी बहुत-सी सुन्दर मूर्तियाँ बनी हुई हैं और उनके अतिरिक्त बाहरी दीवारोंपर चारों ओर अनेकों मूर्तियाँ बनी हैं, जिनमें शिवजीके भी अनेकों स्वरूप हैं। इस मन्दिरको हॉयसल-कालकी तक्षण-कलाका सङ्ग्रहालय (Museum) कहा गया है, जो बिल्कुल ठीक है। शृङ्गेरीका विद्याशङ्कर महादेवका मन्दिर, जो सन् १३५६ ई० के कुछ समय बाद बना था, कदाचित् राज्यभरके द्राविड़ी नमूनेके मन्दिरोंमें सबसे अधिक सुन्दर है। उसकी बनावट अपने ढंगकी निराली है। उसके दोनों किनारे उभरे हुए हैं; जिन्हें देखकर मौर्यकालीन बौद्धचैत्यों तथा कार्ले, अजन्ता, कन्हेड़ी आदिकी गुफाओंका स्मरण हो आता है। दक्षिण-भारतके कई मन्दिरोंकी भाँति उसका मुख भी पूर्वकी ओर है तथा उसके अन्दर गर्भगृह, सुखनासी, परिक्रमा तथा नवरङ्ग—ये चार स्थान बने हुए हैं। नवरङ्गमें तीन द्वार हैं जो पूर्व, उत्तर और दक्षिणकी ओर खुलते हैं। इस मन्दिरकी बाहरी दीवारों खम्भोंपर भी सुन्दर बेलबूटे तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके दृश्य खुदे हुए हैं, जिनमेंसे कुछ शिव-सम्बन्धी पुराणोंके आधारपर बनाये गये हैं। बड़ी मूर्तियोंमें शिवजीके भैरव, उमामहेश्वर, ताण्डवेश्वर आदि कई स्वरूपों तथा कालसंहार, सोमस्कन्द, त्रिपुरासंहार इत्यादि अनेक लीलाओं एवं लिङ्गपूजाकी भी कई मूर्तियाँ हैं। शैवप्रतिमा विज्ञानके अध्ययनके लिये विद्याशङ्करके मन्दिरमें जितनी मूर्तियोंका सङ्ग्रह है उतना राज्यके किसी दूसरे मन्दिरमें नहीं है। सुन्दर गगनचुम्बी मीनारके मुखभागके ऊपर शिवजीकी एक कोरी हुई मूर्ति है। मन्दिरके भीतरी भागमें, जो बाहरी भाग जैसा ही सुन्दर है, एक ताण्डवेश्वर-की मूर्ति है। उसके चारों ओर एक तेजोमण्डल है और दाहिनी ओर गङ्गाजी हाथ जोड़े जटाओंपर विराजमान हैं। यह मूर्ति मद्रास तथा सीलोन (लङ्का) के नटराज-विग्रहोंसे कारीगरीकी सुन्दरता अथवा भाव-भङ्गीमें उन्नीस नहीं है। (देखिये M. A. S. 1916 Plate)। अरल-गुधी नामक स्थानके ईश्वर-मन्दिरकी छातमें बनी हुई नट-राजकी मूर्ति भी बहुत सुन्दर है। यह गङ्गपल्लवकालमें बनी थी। गर्भगृहमें स्थापित शिवलिङ्गको शृंगेरी-पीठके सबसे बड़े आचार्य स्वामी विद्यातीर्थके नामपर 'विद्याशङ्कर' कहते हैं। विजयनगरके आदिम राजा इन महात्माका बहुत अधिक मान करते थे।

शिवगङ्गा नामक सुरम्य पर्वतशिखरको, जिसे स्थल-पुराणमें 'ककुद्गिरि' कहा गया है, दक्षिणकी काशी कहते हैं।

पर्वतके उत्तरी ढालपर गङ्गाधरेश्वर और होन्नादेवीके मन्दिर हैं। ये मन्दिर बड़ी-बड़ी गुफाओंको काटकर बनाये गये हैं। गङ्गाधरेश्वरका मन्दिर तो एक बहुत बड़ी गुफा है। इसके ऊपर एक बड़ी चट्टान रक्खी हुई है, जो छतका काम देती है, तथा मन्दिरके चारों ओर छोटी-छोटी गुफाएँ हैं। गुफाके भीतर और द्वारके ठीक सामने हरि-हर, भैरव, गुणातीत, महिषमर्दिनी, ताण्डवेश्वर एवं शिव-पार्वती आदि कई शिवमूर्तियाँ हैं। मन्दिरकी चल मूर्ति, जो यात्रा आदिमें बाहर निकाली जाती है, धातुकी बनी हुई है। इसके एक तरफ गङ्गाजी हैं और दूसरी तरफ पार्वतीजी। नन्दीमण्डपके एक खम्भेपर खुदे हुए लेखसे ज्ञात होता है कि विष्णुवर्धनके सामन्त विष्णुसामन्तने इस मन्दिरका निर्माण बारहवीं शताब्दीमें कराया था। चामराजनगरमें द्राविड़ी ढंगका बना हुआ चामराजेश्वरका एक विशाल मन्दिर है। उसे सन् १८२६ ई० में तृतीय कृष्णराज वोडियरने अपने पिता चामराज वोडियरकी स्मृतिमें बनवाया था। उत्तरकी ओरके मन्दिरोंमें शिवजीकी पचीस लीलाओंकी मूर्तियाँ हैं, जिनमेंसे कई तो बहुत ही सुन्दर बनी हुई हैं।

मैसूरराज्यमें शिवमन्दिरोंका बनवाना बन्द नहीं हो गया है। वर्तमान शताब्दीमें भी अगणित छोटे-छोटे मन्दिर बने हैं, यद्यपि स्थापत्य-कलाकी दृष्टिसे उनमेंसे कोई भी अधिक महत्त्वका नहीं है।

दक्षिण-भारतके प्रधान शिव-मन्दिर

(लेखक—श्रीयुत जी० आर० जोशियर, एम० ए०, एफ० आर०, ई०, एस०, मैसूर)

शैवोंमें एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

धिग्भस्मरहितं फालं धिग् ग्राममशिवालयम्।

अर्थात् लानत है उस मस्तकको, जो भस्मसे सुशोभित न हो, वह गाँव किस कामका जहाँ शिवालय न हो!

यों तो दक्षिण-भारतके प्रायः प्रत्येक हैसियतदार गाँवमें कोई-न-कोई शिवालय अवश्य है, जिसके भोग-रागका प्रबन्ध गाँवके भक्तलोग ही करते हैं किन्तु थोड़े-से स्थान उस प्रान्तमें ऐसे हैं जिनके द्वारपर सैकड़ों वर्षोंसे सारा शैव-जगत् मस्तक टेकता चला आ रहा है। इन स्थानोंमें, जहाँके प्राकृतिक सौन्दर्यको मानवीय स्थापत्य-कलाने द्विगुणित कर दिया है, विश्वान्तर्यामी शिवकी भक्तिरूप दिव्य ज्योति सदा जगमगाती रहती है। यही कारण है कि दूर-दूरके यात्री वहाँ प्रतिवर्ष खिंचे हुए चले आते हैं। इन स्थानोंमेंसे कुछके नाम ये हैं—कुम्भकोणम्, तञ्जोर, मदुरा, चिदम्बरम्, पालनी, श्रीशैलम्, और रामेश्वरम्। यों तो दक्षिण-भारतके प्रत्येक भागमें देवालय प्रचुर संख्यामें पाये जाते हैं, किन्तु मद्रास-प्रान्तके तञ्जोर जिलेमें जितने देवालय हैं उतने और किसी भागमें नहीं पाये जाते। प्रान्तभरके मन्दिरोंमेंसे करीब-करीब आधे मन्दिर अकेले इस जिलेमें हैं और नगरोंमें इस दृष्टिसे कुम्भकोणम्का स्थान सर्वप्रथम है। प्राचीन चोलवंशीय राजाओंकी राजधानी काञ्जीवरम् (काञ्ची) में भी इतने देव-मन्दिर नहीं हैं, जितने कुम्भकोणम्में हैं।

कुम्भकोणम्में १२ शिव-मन्दिर हैं, जिनमें विश्वनाथ, कुम्भेश्वर, सोमेश्वर, नागेश्वर, गौतमेश्वर और बाणेश्वरके मन्दिर प्रधान माने जाते हैं। विश्वनाथजीके मन्दिरके समीप ही 'महामखम्' नामका जलाशय है, जिसे लोग भगवती भागीरथीका प्रतिनिधि मानते हैं और इसीलिये वहाँ 'महामखम्' नामक पर्वके दिन, जो प्रति बारहवें वर्ष आता है, दस लाखसे ऊपर यात्री इकट्ठे होते हैं। कुम्भेश्वरका मन्दिर सबसे विशाल है। उसके अन्दर ३३० फुट लम्बा एक शिवजीका नटमन्दिर है और १२८ फुट ऊँचा एक गुम्बज है। दूसरा प्रधान मन्दिर नागेश्वरका है, जिसका गर्भगृह गुम्बजके आकारका बना हुआ है। उसके अन्दर भगवान् भुवनभास्करकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

कुम्भकोणम्से थोड़ी ही दूरपर तिरुवडमरुथर, दारेश्वरम्, तिरुनागेश्वरम्, तथा स्वामि-मलेके मन्दिर हैं जहाँ बहुत यात्री जाते हैं। ये सब मन्दिर उत्तम स्थापत्य-कलाके नमूने हैं। स्वामि-मलेके मन्दिरमें देवताओंके सेनानी, शिवजीके पराक्रमी पुत्र, श्रीसुब्रह्मण्यदेवकी प्रतिमा है। कुम्भकोणम्से उत्तरकी ओर श्रीशैलपर्वत है जहाँ मल्लिकार्जुन नामका ज्योतिर्लिङ्ग प्रतिष्ठित है। 'वीरशैव' मतके पञ्चाचार्योंमेंसे एक जगद्गुरु पण्डिताराध्यकी उत्पत्ति इसी लिङ्गसे मानी जाती है।
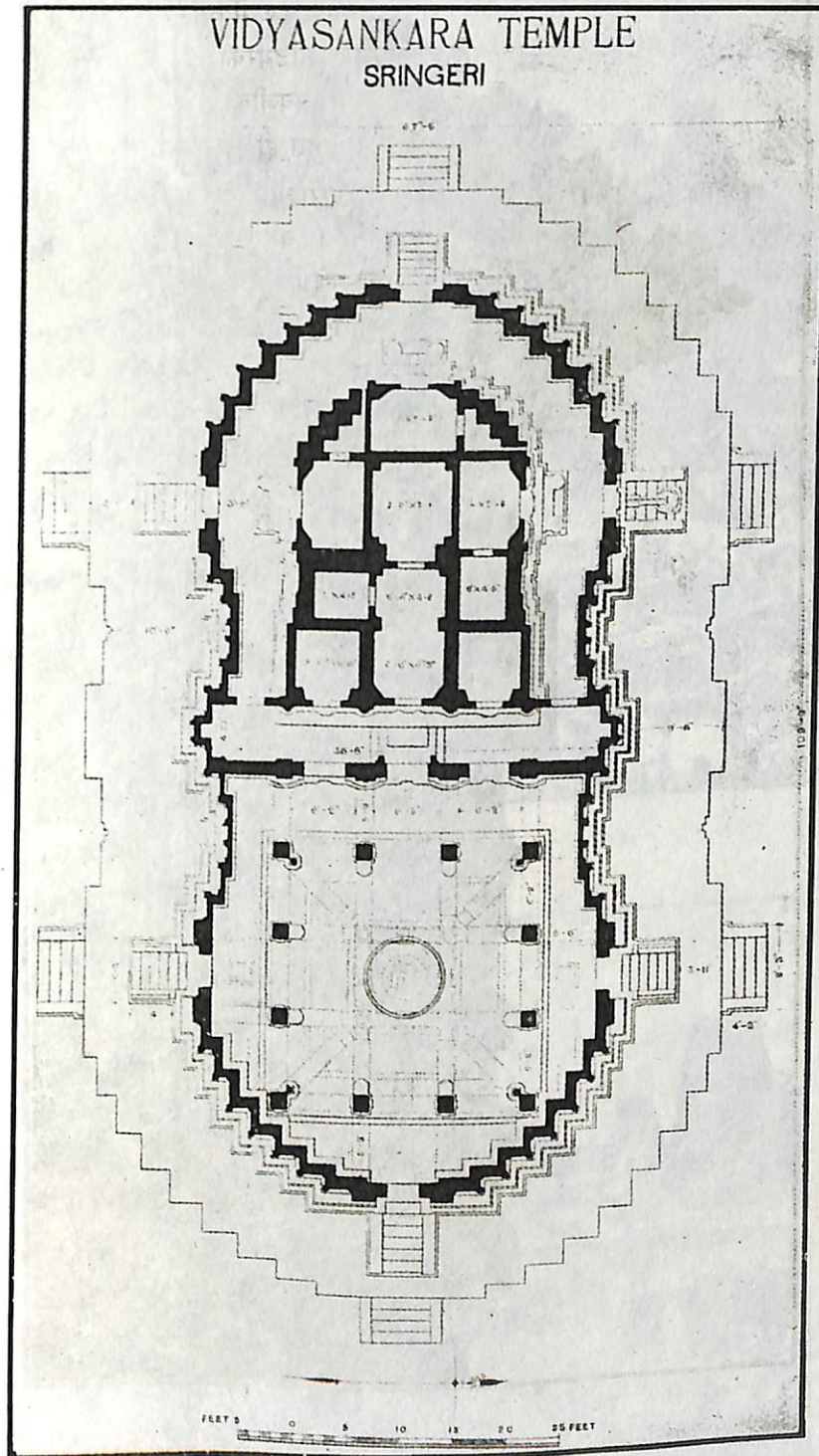
विद्याशंकर-मन्दिर

पुरातत्त्व-विभाग, मैसूरकी कृपासे
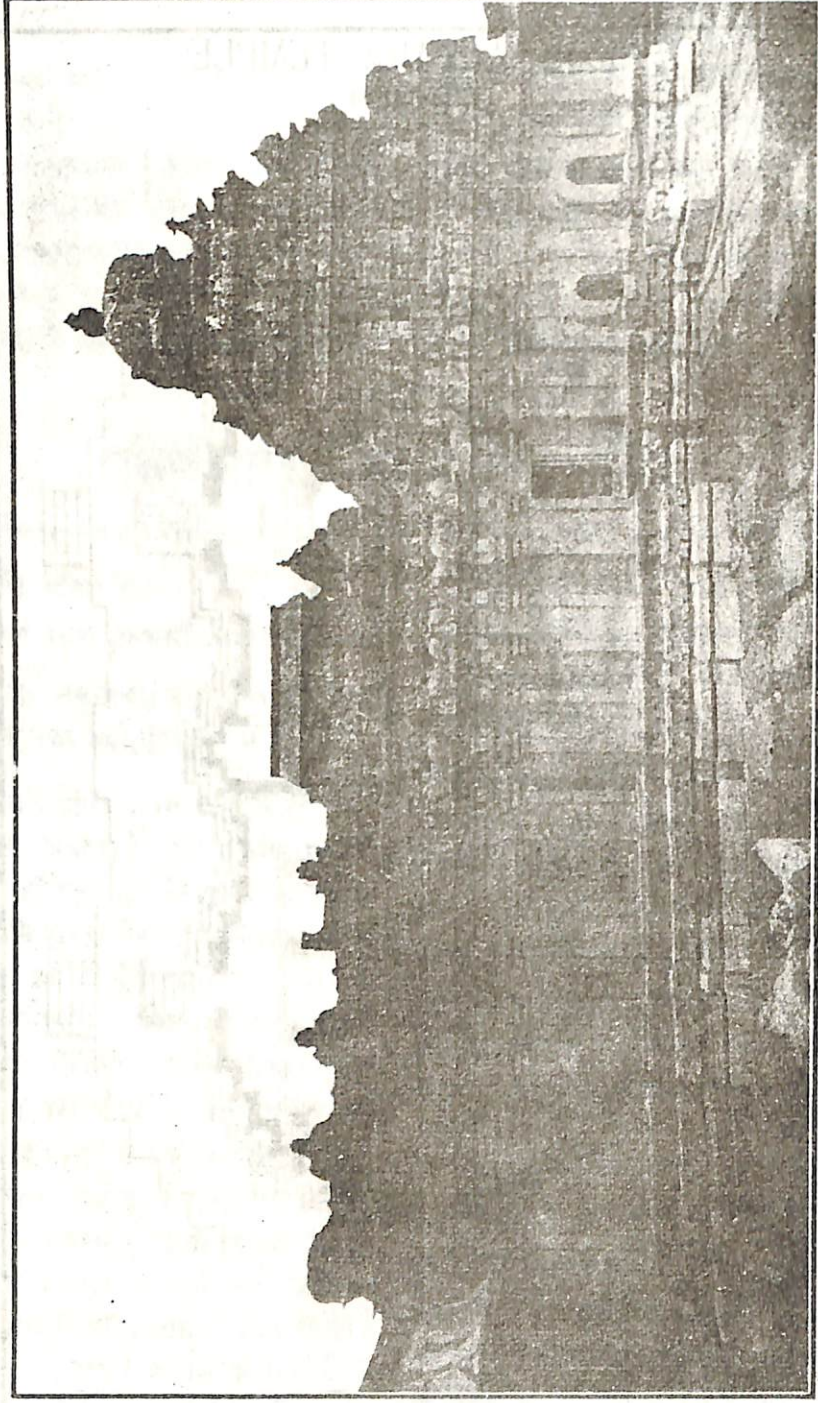
श्रीभोगनन्दीश्वरका मन्दिर

पुरातत्त्व-विभाग, मैसूरकी कृपासे

महामखम्-मेला
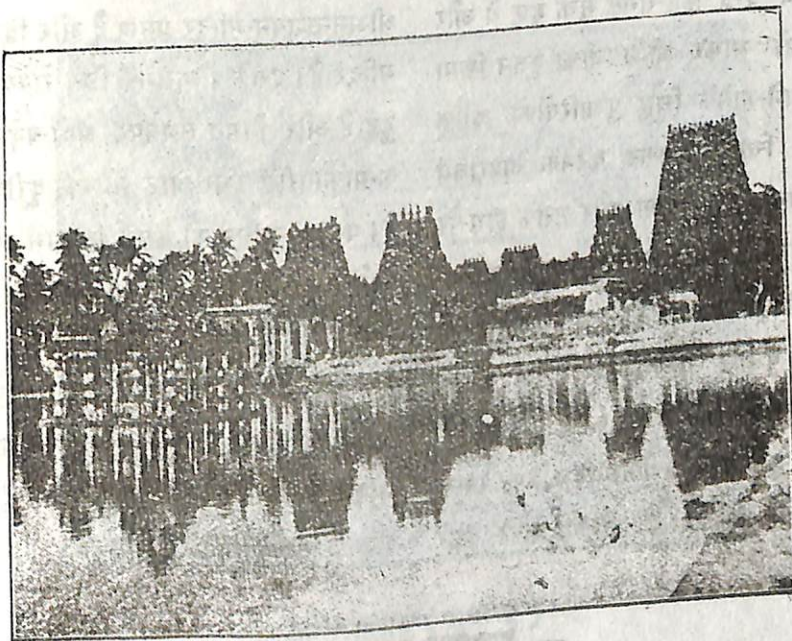
पोत्रामराइ कुम्भकोणम्

शैव एवं वीरशैवमतके दूसरे प्रधान केन्द्र चिदम्बरम्, तञ्जोर, धर्मपुरी, पालनी, मदुरा एवं रामेश्वरम् हैं।

चिदम्बरम्में नटराज शिवका एक विशाल मन्दिर है। उसमें सहस्र स्तम्भका एक मण्डप है, जिसमें सुन्दर पच्चीकारी की हुई है और जिसकी छात सोनेकी है।

तञ्जोरमें भी, जो किसी समय दक्षिणके महाराष्ट्र राजाओंकी राजधानी रह चुका है, बृहदीश्वर महादेवका मन्दिर है। उसमें नन्दीकी एक विशाल पाषाणमयी प्रतिमा है। पालनीमें भी सुब्रह्मण्यका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। मदुराका मीनाक्षीदेवीका मन्दिर दक्षिण-भारतके मन्दिरोंमें (अथवा यों कहिये कि संसारभरके मन्दिरोंमें, क्योंकि दक्षिण-भारतके-से विशाल मन्दिर संसारभरमें कहीं नहीं हैं) सबसे बड़ा है। मन्दिरके पास ही एक सुन्दर तालाब और तिरुमल्ले नायकका प्रासाद है। 'मीनाक्षी' शिवपत्नी भगवती दुर्गाका नाम है।

लोकविख्यात रामेश्वरधाम तो प्रसिद्ध ही है, यहीं भगवान् श्रीरामने शिव-लिङ्गकी स्थापना की थी।

अन्तमें हम यह लिखकर अपने वक्तव्यको समाप्त करते हैं कि तिरुपतिके प्रसिद्ध मन्दिरके सम्बन्धमें लोगोंकी यह धारणा है कि प्रारम्भमें यह भी शैवोंका ही स्थान था, पीछेसे वैष्णवोंके महान् आचार्य श्रीरामानुजने वहाँकी प्राचीन वीरभद्र-मूर्तिको हटाकर उसे वैष्णव-मन्दिरका रूप दे दिया।
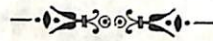
'श्रीशुचीन्द्र' शिवक्षेत्र

(लेखक—ह० भ० प० श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत)

दक्षिणके त्रावणकोर-राज्यमें 'शुचीन्द्र' नामक एक विशाल शिवक्षेत्र है। इसके विषयमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि यहाँपर देवराज इन्द्र कुष्ठ-रोगसे मुक्त हुए थे और तबसे वे नित्यप्रति यहाँ आकर श्रीशिवजीका पूजन किया करते हैं। इन्द्रके आने-जानेके चिह्न पुजारियोंको अनेक बार मिले हैं। उन चिह्नोंको प्रकट करनेके अपराधमें एक पुजारीपर देवताका प्रकोप हुआ और उसके हाथ-पैर चेतनाहीन हो गये तथा वह मूक हो गया। तबसे यहाँपर प्रातः और सायङ्कालकी पूजाके लिये दो व्यक्तियोंका प्रबन्ध किया गया है। एक पुजारी रात्रिमें मन्दिर बन्द करनेके समय इन्द्रके लिये पूजासामग्री तैयार करके रख देता है और प्रातःकालमें दूसरे पुजारीकी बारी होनेसे रात्रिकी रक्खी हुई सामग्रीमें कुछ हेर-फेर हुआ हो तो उसकी खबर दूसरे पुजारीको नहीं लगती। इस मन्दिरकी परिधि तथा ऐश्वर्य श्रीरामेश्वर-मन्दिरसे कुछ ही कम है। त्रावणकोर-राज्यमें श्रीअनन्तशयन-मन्दिर प्रमुख है और द्वितीय श्रेणीमें शुचीन्द्र-मन्दिर है। इसके भोगरागके लिये राज्यकी ओरसे रकम बँधी हुई है और नियत समयपर यहाँ बड़े-बड़े उत्सव होते हैं। कन्याकुमारीसे इधर आठ मीलकी दूरीपर यह मन्दिर स्थित है। परन्तु यात्रियोंको इसके विषयमें जानकारी न होनेसे वे दर्शनसे वञ्चित रह जाते हैं। कन्याकुमारी जानेवाले यात्रीगण इसके दर्शनसे अवश्य लाभ उठावें।

यह भी दन्तकथा है कि सत्ययुगमें श्रीदत्तात्रेयका जन्म इसी 'शुचीन्द्रक्षेत्र' में हुआ था। यहाँपर 'अत्रि-आश्रम' नामक छोटा-सा परन्तु सुन्दर स्थान है। उसका कार्य भी राज्यके खर्चेसे चलता है।

कन्याकुमारीके निकट सुप्रसिद्ध शिवक्षेत्र
शुचीन्द्र—प्रज्ञातीर्थ-सरोवर
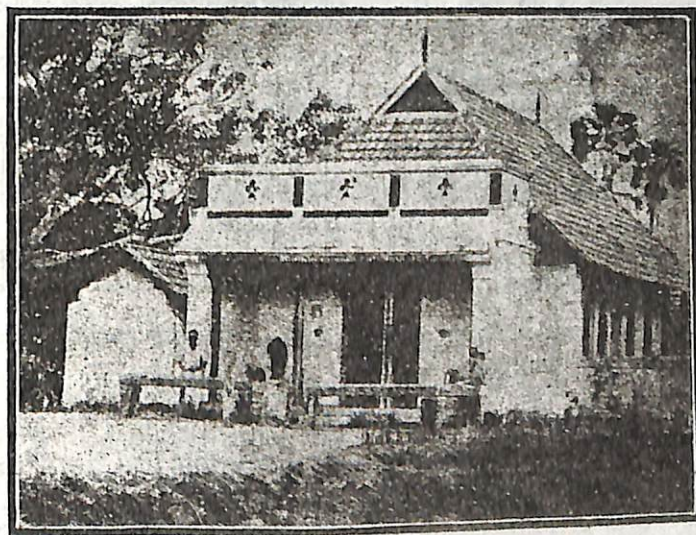
अत्रि-आश्रम (शुचीन्द्र)

कलिङ्गदेशके प्रसिद्ध शिव-मन्दिर

(लेखक—श्री ३ लक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव राजाबहादुर, एम० आर० ए० एस०, एम० बी० डी० एम०, पुरातत्त्वविशारद, विद्यावाचस्पति, राजासाहब टेकाली)

(१)

महेन्द्रगिरिका गोकर्णेश्वर-मन्दिर

गोकर्णेश्वर-महादेवका मन्दिर महेन्द्रपर्वतके शिखरपर कोई ५००० फुटकी ऊँचाईपर अवस्थित है। महेन्द्रगिरि प्राकृतिक उड़ीसाके भूभागमें, जिसे प्राचीनकालमें कलिङ्गदेश कहते थे, सबसे ऊँचा पहाड़ है। आजकल यह मद्रास-

महेन्द्रगिरिके मन्दिरमें गोकर्णेश्वर-महादेवका आसन
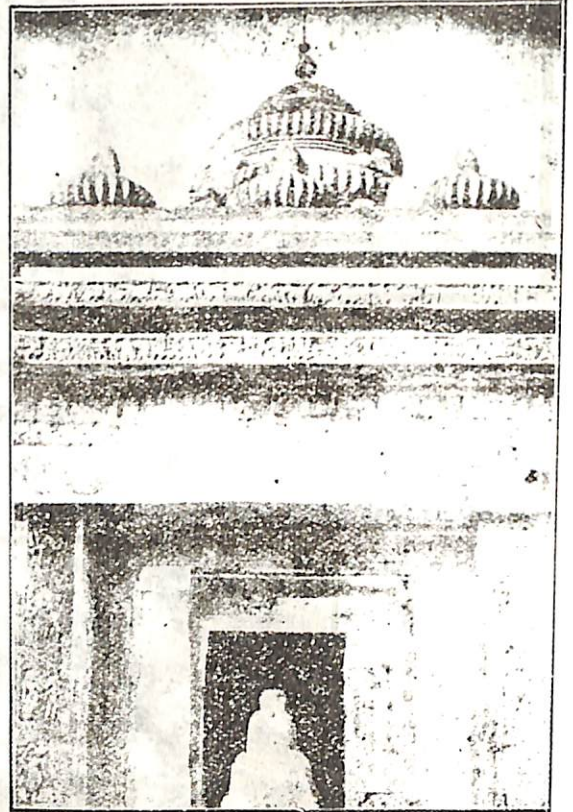
आहातेके गंजाम जिलेमें है। मन्दिर बहुत प्राचीन है। यह मठारवंशके राजाओंके प्रतापसूर्यके अस्त होने तथा गंग-वंशके राजाओंके हाथमें शासनकी बागडोर आनेके पूर्व ही बन चुका था। निम्नलिखित शिलालेखोंसे इस बातकी पुष्टि होती है—

चतुर्भिरनुजैर्भिन्दन्नाहवे समरोत्सुकान्।
दन्तैर्दैत्यानिवेन्द्रेभः स प्रायाद्वासवीं दिशम्॥
अथ वन्येभदन्तौघद्विगुणीकृतनिर्झरम्।
विलिखन्तं नभः शृङ्गैर्महेन्द्रं प्रुरोह सः॥

तत्र च सकलसुरासुरसिद्धसाध्यपरार्द्ध्यकिरीटनिघृष्ट-मसृणचरणपीठमाराध्य गोकर्णस्वामिनम्।

मुखलिङ्गम्का मधुकेश्वर-मन्दिर

गंगवंशावतंस कामार्णव तथा उनके चार भाई प्रथम गोकर्णेश्वरके दर्शनके लिये गये और उनके आशीर्वादसे ये मठारवंशके अन्तिम राजा शबरादित्यका वध करके कलिङ्ग-देशके* स्वामी बन बैठे। यह घटना ईस्वी सन्‌की आठवीं शताब्दीके आरम्भमें हुई; तबसे लगातार आठ सौ वर्षतक

* शबरादित्यं निहत्य कलिङ्गानग्रहीत् (Copper plate Grants of the Ancient Ganga-Dynasty of Kalinga.)

गंगवंशके राजा उस देशमें राज्य करते रहे और भगवान् गोकर्णेश्वरको कुलदेवताके† रूपमें पूजते रहे। यही कारण है कि उनके प्रत्येक शिलालेख एवं ताम्रलेखमें महेन्द्रगिरिके गोकर्णेश्वरका उल्लेख अवश्य मिलता है। इसीलिये यह मन्दिर प्राचीनकालसे ही शिवोपासनाका एक प्रधान केन्द्र बन गया। प्रतिवर्ष शिवरात्रिके अवसरपर हजारों यात्री इस पर्वत-शिखरपर चढ़कर भगवान् शिवकी पूजा करते हैं। मन्दिरमें कुछ प्राचीन शिलालेख मौजूद हैं। इनमेंसे एक शिलालेख बड़े महत्त्वका है; उसमें चोलवंशके एक प्रसिद्ध नरेश कुलोत्तुङ्ग राजेन्द्रकी विजयका वर्णन है।

(२)

मुखलिङ्गम्का मधुकेश्वर-मन्दिर

यह मन्दिर मुखलिङ्गम् नामक स्थानमें वंशधारा नदीके तटपर स्थित है। इस मन्दिरमें प्रधानरूपसे भगवान् मधुकेश्वरकी पूजा होती है। इस लिङ्गके सम्बन्धमें लोगोंकी यह धारणा है कि यह पहली बार मधुकवनमें प्रकट हुआ था। प्रसिद्ध गंगवंशीय महाराज कामार्णव (द्वितीय) ने यह मन्दिर बनवाया था। इसीलिये इन्हें 'मधुकेश्वर' कहते हैं।

तस्य तिरस्कृतत्रिविष्टपं नगरनामपुरमासीत्।

तस्मिन् सोऽपि मधूकवृक्षजननादीशस्य लिङ्गाकृतेः

कृत्वाख्यां मधुकेश इत्यरचयत् प्रासादमभ्रंलिहम्।

यद्द्वारोर्ध्वविचित्रपत्रलतिकाश्चित्राणि वा पश्यतां

सौधान्यम्बरवर्त्तिनां हृदि भवेन्नूनं विमानारुचिः॥'

कामार्णव (द्वितीय) ने ईस्वी सन् ७५६ से ८०६ तक कलिङ्गदेशमें राज्य किया। भगवान् मधुकेश्वरकी महिमा पुराणोंमें वर्णित है। ये काशीके भगवान् विश्वेश्वरकी भाँति प्रसिद्ध हैं। मन्दिरमें अत्तागढ़नरेशकी पुत्री तथा कपिलेश्वरदेवकी पटरानी रत्नमणिदेवीका खुदवाया हुआ एक शिलालेख है, जिससे हमें पता लगता है कि इस मन्दिरकी सम्पत्तिपर कलिङ्गकी प्रधान रानीका ही अधिकार था। मन्दिरमें और भी अनेक उपयोगी तथा ऐतिहासिक शिलालेख पाये जाते हैं। वंशधारा नदीके तटपर अवस्थित होनेके कारण इस स्थानको 'दक्षिण-काशी' कहते हैं।

श्रीवैद्यनाथ

(लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी)

वैद्यनाथजीका पूरा नाम रावणेश्वर वैद्यनाथ है; क्योंकि ये रावणद्वारा स्थापित हैं। ये द्वादश लिङ्गोंमें हैं। 'वैद्यनाथं चिताभूमौ' तथा 'सुरासुराराधितपादपद्मं श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि' आदि इसके प्रमाण हैं। यह स्थान विहारप्रदेशान्तर्गत संथाल-परगनेके दुमका जिलेका एक सब-डिवीजन है। इसका वर्तमान नाम देवघर है, जो ई० आई० रेलवेका एक स्टेशन है। जसीडीहसे देवघरतक चार मीलकी एक ब्राञ्च लाइन गयी है।

पद्मपुराणके पातालखण्डमें इसकी कथा इसप्रकार है—

एक बार लङ्कापति रावणने कैलासवासी देवोंके देव महादेवजीसे प्रार्थना की कि 'यहाँ रोज-रोज पूजनके लिये आनेमें कठिनता होती है, अतएव कृपाकर आप लङ्का चलें।' शिवजीने प्रसन्न होकर कहा—'चलो, चलता हूँ; पर शर्त यह है कि मुझे रास्तेमें कहीं भूमिपर न रखना। अगर रख दोगे तो फिर मैं वहाँसे न टलूँगा।' रावण साभिमान शर्त मंजूरकर शिवजीको उठाकर चला। अब तो देवताओंमें हलचल मच गयी। वे सोचने लगे कि 'अगर भोलेबाबा लङ्का पहुँच गये तो रावणका कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा।' वे लोग कोई उपाय न देख विष्णुभगवान्के पास पहुँचे। उन्होंने सहायता देना स्वीकार कर लिया। इधर देवमायासे रावणको जोरकी लघुशङ्का लगी। उसे एक कदम आगे बढ़ना भी पहाड़ हो गया। बेचैन हो सोचने लगा, अब क्या करूँ। भूमिपर शिवजीको रखता हूँ तो वे हाथसे जाते हैं, नहीं रखता हूँ तो जान जाती है। जब वह इसप्रकार सोच रहा था तब विष्णुभगवान् वृद्ध ब्राह्मण बन वहाँ आ पहुँचे। ब्राह्मणको देख रावणकी जानमें जान आ गयी। वह बोला—'महाराज! इन्हें जरा सम्हालिये

---

† महेन्द्राचलामलप्रतिष्ठितस्य गोकर्णस्वामिनश्चरणारविन्दप्रसादादित्यादि। (Copper plate Grants of the Ancient Ganga-Dynasty of Kalinga.)

तो मैं पेशाब कर लूँ।' ब्राह्मणने पहले तो हीला-हवाला किया, पर पीछे रावणके बहुत कहने-सुननेपर वह राजी हो गये। बोले-'मैं एक दण्डसे अधिक नहीं ठहर सकता।' रावणने कहा—'मैं आधे दण्डमें ही निबट लूँगा।' बस, ब्राह्मणने शिवजीको ले लिया और रावण पेशाब करने बैठ गया। आधे दण्डतक तो ब्राह्मण देवता चुपचाप खड़े रहे। उसके बाद बोले 'उठो, समय हो गया;' पर रावण न उठ सका, उसे और देर लगी। आधे दण्डकी जगह एक दण्ड हो गया। अब ब्राह्मण देवता और अधिक न रुक सके। उन्होंने शिवजीको भूमिपर रख अपनी राह ली। इतनेमें रावण भी वापस आया और शिवजीको उठाने लगा, पर अब वे क्यों उठने लगे! उसने बहुत जोर लगाया, पर शिवशङ्कर टस-से-मस न हुए। निराश हो रावण चला गया और भोलानाथ वहीं जम गये। यही 'वैद्यनाथ' नामसे विख्यात हुए।

यह भी कहा जाता है कि जब रावण शिवजीको न उठा सका तो क्रुद्ध हो अँगूठेसे दबाकर बोला-'अच्छा, अब यहीं रहो।' इसीसे शिवलिङ्गपर गढ़ा-सा हो गया, जो अबतक बना है। रावणने जहाँ पेशाब किया था वहाँ एक नाला-सा है, जिसका नाम रावणखार है।

श्रीवैद्यनाथजीका बड़ा माहात्म्य है। और शिवलिङ्गोंका प्रसाद या चरणामृत नहीं लिया जाता, पर वैद्यनाथजीके प्रसाद और चरणामृत दोनों ग्राह्य हैं। लोगोंका विश्वास है कि वैद्यनाथजीमें धरना देनेसे कार्यसिद्धि होती है। अब भी मन्दिरके पीछे दस-बीस भक्त अन्न-जल छोड़ पड़े रहते हैं। बहुतोंकी कामना पूरी हो जाती है। मेरे चाचाने भी बीमार होनेपर देवघर जा धरना दिया था। कई दिन बाद उन्हें स्वप्न हुआ कि काशी चला जा। चाचाजी काशी गये और वहीं उनका देहावसान हुआ।

देवघर सिद्धपीठ भी है। दक्षयज्ञविध्वंसके बाद शोकाकुल शङ्करभगवान् सतीजीका शव कन्धेपर रख पृथिवी-परिक्रमा कर रहे थे और विष्णुभगवान् सुदर्शनचक्रसे शवको काटते जा रहे थे, जिससे शिवजीका मोह-त्याग हो। जहाँ-जहाँ सतीका अङ्ग कट-कटकर गिरा वह सिद्धपीठ हो गया। देवघरमें अङ्गराज (हृदय) गिरा, इससे यह 'हार्दपीठ' कहलाया। शङ्करको यह स्थान बड़ा प्रिय है। काशीमें मरनेसे जैसे मुक्ति होती है वैसे ही देवघरमें भी मरनेसे होती है। काशीमें विश्वनाथजी तारकमन्त्र देते हैं और यहाँ श्रीरामचन्द्रजी देते हैं। सारांश यह कि यह स्थान भी मुक्तिदायक है। शिवरात्रिके समय यहाँ भारतके सब प्रान्तोंसे यात्री आते हैं। बड़ी भीड़ होती है। देवघरके आस-पास बहुत-से दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ कलकत्तेके सर हरीराम गोइनका, के०टी०, सी० आई० ई० की एक बड़ी धर्मशाला है।

श्रीमहाकालेश्वर

(लेखक—श्रीसूर्यनारायणजी व्यास, उज्जैन)
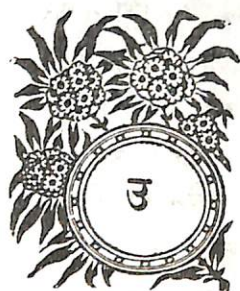
उज्जयिनीके दर्शनीय स्थानोंमें महाकालेश्वरका स्थान सर्वप्रमुख है। महाकालेश्वरकी गणना द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें भी है और मृत्युलोकेश होनेके कारण त्रिलिङ्गोंमें भी। महाकालेश्वरका स्थान अत्यन्त प्राचीन एवं नयनाभिराम है। मानवी सृष्टिका आरम्भ भी यहींसे होना बतलाया जाता है। यही कारण है कि महाकालेश्वरजीको मानवलोकेशकी संज्ञा मिली है। इतिहासज्ञोंका मन्तव्य है कि ई० स० १०६० में परमारवंशीय राजा उदयादित्यने इस मन्दिरका उद्धार किया था।* बुद्धके समकालीन प्रद्योत राजाके समयमें भी इस मन्दिरका उल्लेख पाया जाता है।

महाभारत-वनपर्व (अ० ८२ श्लोक ४९), स्कन्दपुराण, मत्स्यपुराण, शिवपुराण, भागवत और शिवलीलामृत आदि ग्रन्थोंमें तथा कथासरित्सागर, मेघदूत†, राजतरङ्गिणी आदि काव्योंमें भी महाकाल, कालनाथ, कालप्रियनाथ आदि नामोंसे इनका वर्णन मिलता है। अल्बेरूनी और फरिश्ताने भी यहाँकी विपुल वैभवसम्पन्न अवस्थाका उल्लेख किया है।

यह मानी हुई बात है कि मुस्लिम-आक्रमणके पूर्व उज्जैनकी भूमि सुवर्णमयी थी, भारतवर्षपर गजनीके

* कुछ लोगोंका मत है कि इस मन्दिरका उद्धार ११ वीं शताब्दीमें भोजने किया था।

† मेघदूतका 'अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य कालं' श्लोक तो प्रसिद्ध है।
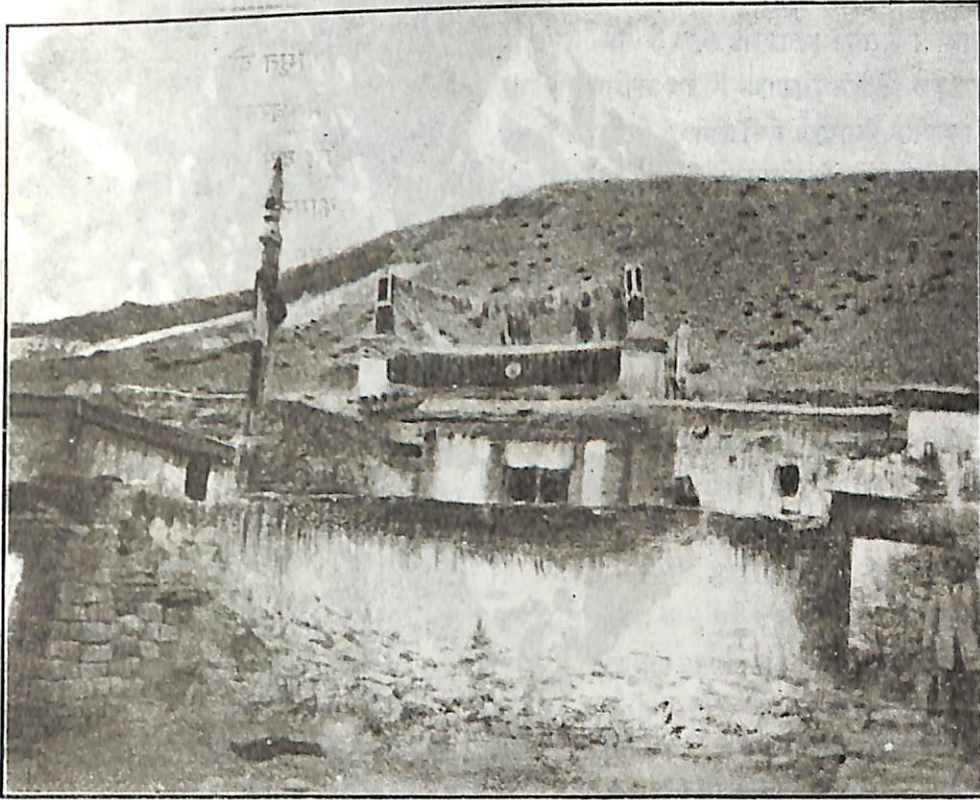
तीर्थपुरी गुफा

मानसरोवर
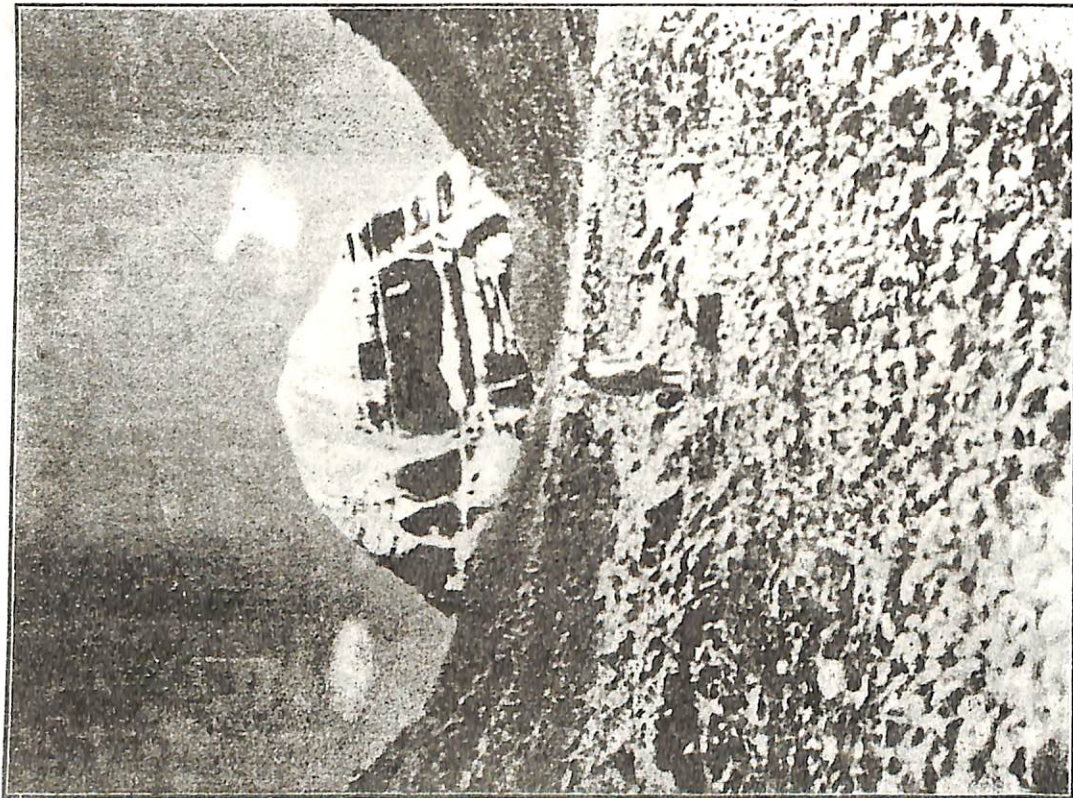
कैलाश (डेरफू-गुफासे)
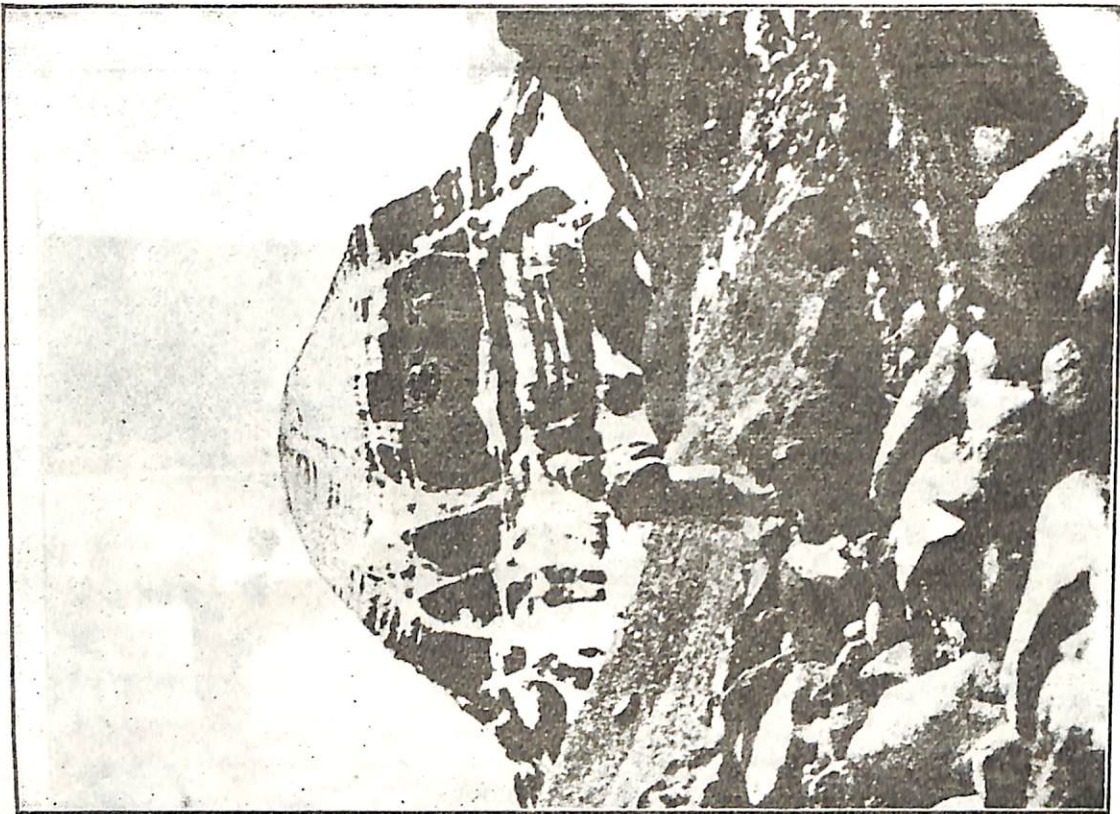
कैलाश (समुद्रतलसे २१००० फीट ऊँचेपर लिया हुआ फोटो)

मुहम्मदकी आक्रमणकारी दूषित मनोवृत्तिका असर बहुत कालतक यहाँ बना रहा, इसके पूर्व महाकालेश्वरका स्थान 'स्वर्णप्राकारमण्डित' भारतभरमें अपने ढंगका अद्वितीय था। सदा सहस्रों यात्रिगण यहाँ आते रहे थे, भूतभावन भगवान्पर पुण्यसलिला भगवती शिप्राके जलसे सर्वदा मन्त्राभिषेक होता रहता था। सैकड़ों वेदध्वनि करनेवाले ब्रह्मवृन्दोंसे यह स्थान आवृत रहता था।

देहलीके गुलाम-वंशमें उत्पन्न सुल्तान अल्तमशने ई० स० १२३५ में यहाँ चढ़ाईकर उज्जैनके सौभाग्यको लूट लिया तथा देवालयोंको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। इसके पूर्व भी एक बार सिन्धके अमीर और अल्तमशके ससुरने यहाँ लूट की थी। परन्तु अल्तमशने तो अपनी नीच मनोवृत्तिकी पराकाष्ठा दिखला दी। मन्दिरकी शोभापर वह वैभवकी भावनासे प्रथम ही लट्टू था। मन्दिर काफी ऊँचा था। कहते हैं, वह सौ गज ऊँचा था। गगनस्पर्शी सुन्दर शिखर मन्दिरकी विशालताको प्रकट कर रहा था। सभामण्डप स्थापत्य कलाका एक बहुत सुन्दर नमूना था। दीवारोंपर प्राचीन चित्र अङ्कित थे। प्रवेशद्वारके सामने सोनेकी जंजीरोंमें बँधी हुई घण्टाएँ तथा मोती और रत्नोंसे खचित तोरण और झालरें लटक रही थीं। मन्दिरके एक कोनेमें सम्राट् विक्रमादित्यकी एक सुवर्ण-मयी प्रतिमा स्थापित थी। सहस्रों वर्षोंसे यात्रिसमूहके आते रहनेके कारण मन्दिरके भण्डारमें अपार धनराशि सुरक्षित थी, जो सारी-की-सारी इस आक्रमणके कारण नष्ट हो गयी। मन्दिरकी ऊँचाई नाम-शेष रह गयी। यह वैभव विलीन हो गया। ई० स० १७३४ में पुनः राणोजी शिन्देके दीवान रामचन्द्र बाबाने इस मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाया। कहते हैं कि इन्होंने ही महाकालेश्वरके लिङ्गको, उस समय जो, कोटितीर्थमें था, निकलवाकर पुनः स्थापित किया, तबसे बराबर पूजन-अर्चनकी व्यवस्था ठीक चलती है। शिन्दे, होल्कर, पवाँर—तीनों राज्योंसे मिलाकर चार हजार रुपये वार्षिक व्ययका प्रबन्ध है।

प्रातःकाल चार बजे चिता-भस्मसे पूजन होता है, फिर आठ बजे तथा दिनके बारह बजे और तीसरा पूजन सन्ध्याको होता है, खासकर प्रातःकालीन चिता-भस्म-पूजन और सान्ध्य-पूजनके समय मन्दिरमें कैलासकी-सी छटा दिखायी जाती है। पूजनके पश्चात् नैवेद्यग्रहण तथा चिता-भस्मके छाननेका अधिकार गुसाईं साधुओंको है। यहाँ परम्परासे यह गद्दी चली आ रही है, जिसके अधिकारीकी महन्त संज्ञा है।

महाशिवरात्रिके नौ रोज पूर्व ही मन्दिरके ऊपरके आँगनमें नौ रोजतक हरिकीर्तन होता है। श्रावणमासके चार सोमवारोंपर शहरमें महाकालेश्वरजीकी सवारी निकलती है। इस दृश्यको देखनेके लिये दर्शनार्थी यात्रिगण हजारोंकी संख्यामें जुटते हैं। कार्तिकमासमें भी चार सवारियाँ निकलती हैं। इसके अतिरिक्त वैकुण्ठचतुर्दशीके दिन श्रीमहाकालकी सवारी श्रीद्वारकाधीशके मन्दिरमें जाकर श्रीद्वारकाधीशका बिल्वपत्रसे पूजन करती है, और द्वारकाधीश भस्मपूजनके समय महाकालेश्वरके स्थानपर पधारते हैं, वहाँ महाकालेश्वर-पर तुलसीपत्र चढ़ाया जाता है। यह हरि-हरके मिलापका दिन है। एक सवारी महाकालेश्वरजीकी दशहरेके दिन भी निकलती है, 'सीमोल्लङ्घन' के लिये सारा लवाजमा और राज्याधिकारी साथमें रहते हैं।

महाकालेश्वरकी मूर्ति (लिङ्ग) विशाल है, चाँदीकी सुन्दर जलाधारी बनी हुई है तथा एक ओर गणेश, दूसरी ओर गिरिराजसुता पार्वती और पास ही कार्तिकेयकी मूर्ति विराजमान है। सामने अखण्ड दीपक जलते रहते हैं। मन्दिरका फर्श सफेद पत्थरका बना हुआ है, जलाधारीके आस-पास चौखटे खड़े हैं। द्वारके सामने विशाल नन्दीकी प्रतिमा है। पहले एक ही द्वार था, अब दो द्वार हो गये हैं। मन्दिरके अन्दर सोलह पुजारियोंका अधिकार है, परन्तु पूजा वगैरहका कार्य राज्यके निरीक्षणमें होता है। मन्दिरके ऊपर आँगनके पास पुरातत्त्वविभागकी ओरसे प्राचीन मूर्तियोंका संग्रह किया हुआ है। महाकालेश्वर-मन्दिरसे दक्षिणकी ओर भी कई भव्य मन्दिर हैं। एक मन्दिर अनादिकालेश्वर और वृद्धकालेश्वरका है, जिन्हें लोग 'जूने' महाकालके नामसे पुकारते हैं।

मध्ययुगमें महाकालेश्वरजीके मन्दिरके चारों ओर एक कोट (परकोटा) बना हुआ था, अन्दर कई राजप्रासाद और भवन तथा उपवन थे। उस कोटके ध्वंसावशेष अब भी उसकी स्मृति दिलाते हैं, इसी कारण इस मुहल्लेका नाम ही 'कोट' हो गया है। यह स्थान महाकालवन सघन वनमें होनेके कारण इसे महाकालवन कहते थे। सङ्कल्पोंमें आज भी 'महाकालवने' कहा जाता है। मन्दिरके सभामण्डपके पास ही कोटितीर्थ नामक एक सुन्दर कुण्ड है, इसमें सर्वदा जल भरा रहता है। आस-पास छोटे-छोटे मन्दिरोंमें बहुत-से शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित हैं, कुण्डके दक्षिणमें देवासराज्यकी धर्मशाला है, पश्चिममें सरदार कीबेकी धर्मशाला है, उत्तरमें कुण्डके तटपर ही लेखकका भारतीभवन नामक स्थान और पुस्तकालय है।

गोवा-प्रान्तके श्रीमंगेश महादेव

(लेखक—श्रीरामचन्द्र शङ्कर टकी महाराज)

आर्या

देवा ! मंगेशा ! तूं अससी केवळ अनादि चैतन्य । दुर्गे संगे षड्गुण पावसि म्हणुनी असों बहू धन्य ॥ १ ॥
गज-आननादिकां सह राहुनि देईं सदा सुखारोग्य । मग तव प्रसादलेशें होऊं परमार्थसाधना योग्य ॥ २ ॥
जाळुनि सर्व हि कामा करिं तूं बापा ! आम्हांसि निष्काम । ज्ञानोत्तर भक्तीतें देउनि नेईं तुझ्याच श्रीधाम ॥ ३ ॥

'हे मंगेशदेव ! आप केवल,अनादि और चैतन्यरूप हैं, (तथापि)श्रीदुर्गाके सङ्गसेआप षड्गुण-सम्पन्न हो जाते हैं, इसलिये आप धन्य हैं। आप गजानन आदिके साथ निवास कर हमें सदा सुख और आरोग्य देते रहें, आपके प्रसादलेशसे हम परमार्थ-साधनाके योग्य हो जायँ। हे बाप ! हमारी सर्व-कामनाओंको भस्म करके हमें निष्काम बना दीजिये तथा ज्ञानोत्तर-भक्ति प्रदानकर अपने श्री-धामको ले चलिये।'

श्रीमांगिरीश अथवा श्रीमंगेश

श्रीमंगेशदेव, (जिनकी स्तुति उपर्युक्त आर्यामें की गयी है) महाराष्ट्रमें बसे हुए पञ्चगौड ब्राह्मणोंमेंसे वत्स और कौण्डिन्य गोत्रके सारस्वत ब्राह्मणोंके कुलदेवता हैं। इनकी स्थापना त्रेतायुगमें हुई थी और पुराणोंसे यह विदित होता है कि इनका सम्बन्ध परशुरामावतारसे है ।

भगवान् परशुरामने सह्याद्रि-पर्वतकी तलहटीतक पश्चिम समुद्रको पीछे हटाकर यज्ञके लिये जो पवित्र भूमि निर्माण की थी, उसीमें गोमान्तक अर्थात् गोवा-प्रान्त है । यज्ञकार्यको यथाविधि पूर्ण करनेके लिये उत्तर-भारतके त्रिहोत्रपुर (वर्तमान तिरहुत) से ब्राह्मणोंके दस पवित्र कुलोंको परशुरामजी यहाँ लाये थे । उन ब्राह्मणोंद्वारा यथा-वधि यज्ञकार्य हो जानेपर यह भूमि उन्हें दानमें दे दी गयी । उनमेंसे लोमशर्मा और शिवशर्मा नामक वत्स और कौण्डिन्य-गोत्रके दो ब्राह्मण कुशावती नदीके तीरपर स्थित कुशस्थल नामक गाँवमें (जो इस समय कुडथाल किंवा कुट्ठालके नामसे प्रसिद्ध है) बस गये थे। दोनों बड़े तपस्वी और शिवभक्त थे; इनमें शिवशर्माकी दुधार गाय

प्रतिदिन अपने थनोंके दूधसे उस पवित्र स्थानके शिवलिङ्गका अभिषेक किया करती थी। विना बछड़ेकी गायका स्वयं ही पन्हाकर नियमितरूपसे पाषाण-लिङ्गपर दूधकी धार छोड़नेकी अद्भुत लीला देखकर ग्वालेको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने शिवशर्मासे सब बातें कह दीं। शिवशर्माको भगवान् शिवने पहले ही स्वप्नमें सूचना दे दी थी कि तेरे भक्तिभावसे प्रसन्न होकर मैं समीप ही कहीं प्रकट होऊँगा। अब ग्वालेसे गायकी बात सुनकर शिवशर्माको निश्चय हो गया। वह बड़े प्रेम और उत्साहके साथ उस शिवलिङ्गकी आराधनामें लग गया। कुशस्थलीके पासमें ही केलोशी (वर्तमान केलशी) ग्राममें लोमशर्माके भानजे देवशर्मा रहा करते थे, ये भी बड़े तपोनिष्ठ थे। इनकी उपास्या जगदम्बा दुर्गादेवी थीं। एक समय कुशस्थलीकी घाटीमें प्रकट हुए शिवलिङ्गरूप परमेश्वरके दर्शनार्थ श्रीदुर्गादेवी वहाँ गयी थीं। भगवान् शङ्करने लीलासे एक अद्भुत और भयङ्कर पशुका रूप धारण किया; उस विकराल रूपको देखते ही भयभीत होकर जगदम्बाने अपने बचावके लिये 'मां गिरीश पाहि' कहकर बड़े जोरसे पुकारना चाहा, परन्तु भयके कारण उनके मुँहसे केवल 'मांगीश' शब्द ही निकला। भगवान् शङ्करने शीघ्र ही अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर जगदम्बाको आश्वासन दिया। इसी लीलाके स्मरणार्थ श्रीदुर्गाजीकी प्रार्थनाके अनुसार भगवान् शिवजी 'मांगीश' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

कुशस्थलीमें मांगीशजीका मन्दिर बहुत विशाल था। परन्तु पोर्चुगीज लोगोंने गोवा-प्रान्तमें घुसकर जब उपद्रव शुरू किया, तब कुछ भावुक भक्त श्रीमंगेशको पालकीमें विराजित कराकर प्रियोल नामक ग्राममें ले आये और वहाँ विदेशियोंके उपद्रवसे रहित सुरक्षित स्थानमें लिङ्गकी पूजा-अर्चा होने लगी। कुछ दिनों बाद वहीं मन्दिर बन गया। उस समय (सन् १५६० ई०) से आजतक मंगेशजी उसी मन्दिरमें विराजमान हैं। वर्तमान समयमें भी इस मन्दिरके जैसा प्रबन्ध अन्यत्र शायद ही देखनेको मिलेगा।

श्रीक्षेत्र गोकर्णमहाबलेश्वरमें गौड सारस्वत ब्राह्मण-वृन्दद्वारा एक और शिवलिङ्गकी स्थापना हो चुकी है, उसके चमत्कारपूर्ण वृत्तान्तको भी पाठकोंके सामने रखना अनुचित न होगा।

श्रीमद् आद्यशङ्कराचार्यजीके गुरु (श्रीगोविन्दपादाचार्य) के गुरु श्रीमद्गौडपादाचार्यकी परम्पराके श्रीकैवल्यपूरमठके अधिपति श्रीमत्पूर्णानन्द सरस्वती स्वामीजीने गोकर्णक्षेत्रमें गौडपादाचार्यका नया मठ स्थापन किया है; उस मठमें फाल्गुन शुक्ल १० (ता० २९ फरवरी सन् १९२० ई०) के दिन श्रीचक्रवर्तीश्वर नामक शिवलिङ्गकी स्थापना की गयी। इस लिङ्गको भारतके उत्तम कारीगरोंद्वारा तैयार करवाकर अमेरिकाके प्रसिद्ध फिलाडेल्फिया-प्रदर्शनीमें भेजा गया था, वहाँसे वह लिङ्ग इंगलैण्डमें गया और इंगलैण्डमें हिन्दुस्तानके आर्यधर्मके अभिमानी सर जार्ज बर्डवुडसाहबके हाथमें चला गया; उन्होंने उसे बम्बईके सुप्रसिद्ध वकील कै० रा० ब० घनश्याम नीलकण्ठ नादकर्णीके मार्फत ब्रह्मीभूत श्रीगुरुमहाराज श्रीमदात्मानन्द सरस्वती स्वामीजीके पास भेज दिया। अमेरिका आदि स्थानोंमें घूमकर पुनः भारतमें लौट आनेके कारण श्री सर जार्ज बर्डवुडसाहबकी प्रेरणासे इसका नाम 'चक्रवर्तीश्वर' रक्खा गया।
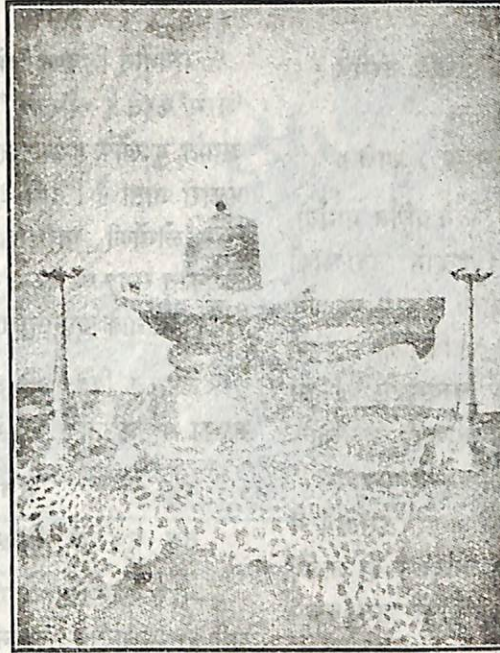
श्रीचक्रवर्तीश्वर शिवलिङ्ग

सृष्टि-उत्पत्तिके पूर्वमें स्थित ॐकारमेंसे 'अ' कार अर्थात् शून्याकार या पिण्ड्याकार और ऋग्वेदके 'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्' ऋचामें वर्णित प्रलयशेष श्रीमंगेश ही हैं। इसलिये श्रीनारायण महाराज जालवणकरकृत बोधसागरमें सद्गुरुद्वारा प्राप्त हुए 'मैं निराकार हूँ' इस अनुभवको शिवसाक्षात्कार कहा गया है, यही चैतन्यसागर है। इस

चैतन्यसागरमें 'ब्रह्माहमस्मीति—मैं ब्रह्म हूँ' की शुद्ध सत्त्वगुणी लहर अथवा वृत्ति इसप्रकार उत्पन्न होती है, जैसे आकाशमें वायुकी लहर। इस वृत्तिके आकारको मूलमाया, पराप्रकृति, चिच्छक्ति, श्री आदि नामोंसे पुकारा जाता है और उसमें व्यापक चैतन्यको सर्वेश्वर, सगुण ब्रह्म, विष्णु अर्थात् विश्वव्यापक चैतन्य और नारायण आदि नामोंसे व्यक्त किया जाता है। यही सगुण ईश्वर ॐकारके अन्तर्गत 'उ' कार अर्थात् शुण्डाकार हैं और इन्हींने ब्रह्माको उत्पन्न कर उसे वेद प्रदान किये थे; मुमुक्षुको इसीकी शरण लेनी चाहिये, यह बात—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

—इस श्रुतिमें कही गयी है। यजुर्वेदमें वर्णित भार्गवी-वारुणी-विद्या इन्हींसे उत्पन्न हुई है। इन्हींने चतुःश्लोकी भागवतमें वर्णित आत्मज्ञान ब्रह्माजीको दिया था और ये ही अनेक गुरुओंके रूपमें संसारको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया करते हैं। परा अर्थात् शुद्ध सत्त्वगुणी प्रकृतिमें बीजरूपसे स्थित रजोगुण और तमोगुणकी प्रबलताके कारण इसमें 'एकाकी न रमते, एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय।' अकेले रमण नहीं करता—सुखी नहीं होता, इसलिये मैं एक ही अनेक रूपमें हो जाऊँ अर्थात् जगद्रूप हो जाऊँ, यह संकल्प उत्पन्न हुआ। यह सङ्कल्प ही उस एकमें द्वितीय रूप माया है। इसीको गुणमयी माया अथवा अपरा-प्रकृति कहते हैं। परा-प्रकृतिरूपी दर्पणपर अपरा-प्रकृतिका लेप हो जानेसे, उसमें व्यापक सर्वेश्वरका, दर्पणमें जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसे 'ब्रह्मदेव' अथवा 'जीवेश्वर' कहते हैं। परा और अपरा-प्रकृतिका स्पष्टीकरण भगवद्गीतामें इस-प्रकार है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

देवीभागवतमें प्रकृति-शब्दमें ही परा और अपरा दोनोंका समावेश किया गया है। 'प्रकृति' शब्दमें 'प्र' पद 'प्रकृष्ट' का बोधक है और 'कृति' सृष्टिका बोधक है; इसलिये सृष्टिके प्रारम्भमें जो देवी प्रमुख है वही प्रकृति है, ऐसा कहा गया है। सत्त्वगुणका दर्शक 'प्र' अक्षर, रजोगुणका दर्शक 'कृ' अक्षर और तमोगुणका दर्शक 'ति' अक्षर है। सारांश, 'प्र' 'कृ' 'ति'—इन तीनों अक्षरोंसे युक्त नाममें सत्त्वादि तीनों गुणोंके अर्थ व्यक्त होते हैं।

ब्रह्माजी ॐकारमेंसे 'मकार' अर्थात् विश्वाकार हैं और सामवेदमें इसीका वर्णन—

यथा खलु सौम्येकेनैव मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात्। वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्॥

—इस ऋचासे किया गया है।

भगवान् शिवको 'शं' अर्थात् कल्याणकर्ता देव 'शङ्कर'—'शम्भु' कहते हैं और 'हृ' (हरण करना) धातुसे बने हुए 'हर' अर्थात् दुःखोंके हरण करनेवाले देवके नामसे भी उनको पुकारा जाता है। देवी-देवताओंके अवतार कुछ अनुभव-रहित लोगोंकी धारणाके अनुसार केवल रूपक ही नहीं हैं, किन्तु रामकृष्ण परमहंसादि सन्त तथा लोकमान्य तिलक आदि विद्वानोंके कथनानुसार वे प्रत्यक्ष ऐतिहासिक व्यक्ति हैं।

उपर्युक्त विवेचनके अनुसार श्रीमंगेशके त्रिविध बोध-रूपका भगवद्गीताके १३ वें अध्यायके—

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा॥

—इस श्लोककी व्याख्या करते हुए वामन पण्डितने श्रुतिके आधारपर अपनी निम्नलिखित ओवियोंमें पूर्ण ब्रह्मानुभव बतलाया है—

ब्रह्म निर्गुण। ब्रह्मची ईश्वर सगुण। ब्रह्मची विश्व त्रिगुण। ऐसे कळेल, तरीच ब्रह्म कळलें॥ श्रुतिही बोलती निर्गुण ब्रह्म। कीं 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।' आणि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।' हेंही श्रुति बोलती॥

अर्थात् ब्रह्म ही निर्गुण है, ब्रह्म ही सगुण ईश्वर है और ब्रह्म ही त्रिगुणात्मक विश्वरूप हुआ है, इसप्रकारकी प्रतीतिका नाम ही ब्रह्मज्ञान है। इसके लिये श्रुति भी कहती है कि ब्रह्म निर्गुण है (केवलो निर्गुणश्च), सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, (ईश्वर सगुण है) और 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' (त्रिगुणात्मक सारा संसार ही ब्रह्म है)।

ब्रह्मके इस त्रिविध रूपकी आराधना (Trinity

स्थाणु महादेवका मन्दिर, थानेसर

नन्दलाल बिगहा (गया) का विशाल शिवमन्दिर, श्रीहरमन्दिर

भग्नसिद्धेश्वरमन्दिर ओंकार

उज्जनकके भीमाशंकरमन्दिरका पूर्वद्वार (बाहरी दृश्य)
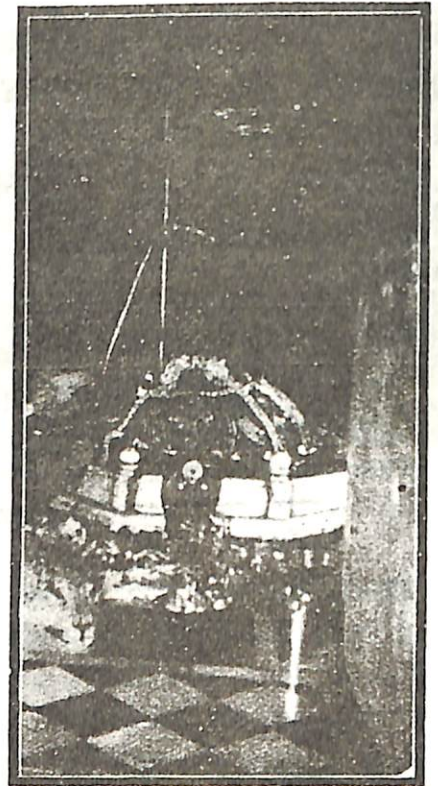
भीमाशंकर दक्षिणद्वारसे
उज्जनक (नैनीताल)

श्रीधर्मेश्वर-शृंगारमूर्ति—मेरठ
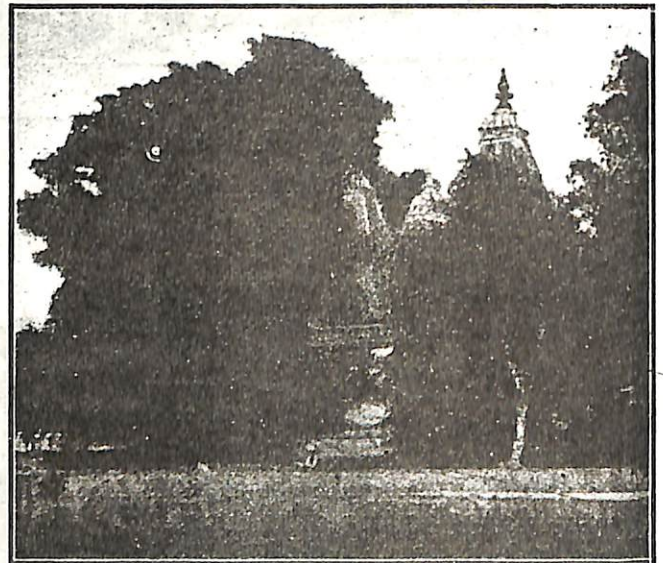
श्रीसर्वेश्वर महादेव श्रवणनाथ—कुरुक्षेत्र

worship) सभी धर्मोंमें किसी-न-किसी रूपमें प्रचलित है। उदाहरणार्थ हिन्दूधर्ममें ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा अकार, उकार, मकार; बौद्धधर्ममें धर्म, बुद्ध और संघ; ईसाई-धर्ममें पिता, पुत्र, पवित्र आभास अथवा जगदाभास; पारसीधर्ममें वायु, सूर्य, उदक; और इस्लामधर्ममें रहमान, रहीम, मालिक। इसीलिये पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णने जिस भगवद्गीतामें इस आराधनाका शास्त्रयुक्त प्रतिपादन किया है उसका समस्त संसारका धर्म-ग्रन्थ होना सर्वथा उचित और अत्यन्त आवश्यक है। भगवद्गीताको सारे वर्णाश्रमधर्म मान्य हैं और जो कोई भी अपने धर्मोंका यथाविधि पालन करता हुआ षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न भगवान्का भजन करेगा उसे चित्त-शुद्धिद्वारा इसप्रकार ज्ञानकी प्राप्ति होगी, ऐसा अठारहवें अध्यायके—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

—इस श्लोकमें भगवान्के द्वारा आश्वासन दिया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवद्गीताको विश्वधर्म-ग्रन्थके रूपमें स्वीकार करनेमें किसी भी धर्मको कुछ भी अड़चन नहीं होनी चाहिये।

सम्भवतः मताभिमानी लोग यह कह सकते हैं कि भगवद्गीता केवल हिन्दुस्तान और हिन्दू-जातिके लिये ही है, दूसरोंके लिये नहीं। परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है; थोड़ा-सा विचार करनेपर यह बात ध्यानमें आ जायगी कि भगवद्गीताका निर्माण समस्त संसारके लिये ही हुआ है, न कि केवल हिन्दुओंके लिये।

श्रीयुत एफ० टी० ब्रूक्स साहबने कहा है—

'श्रीमद्भगवद्गीता भारतवर्षमें यत्र-तत्र बिखरे हुए अनेक पन्थोंको जोड़नेवाली एक अप्रतिम शृङ्खला है और भविष्यके राष्ट्रीय जीवनकी एक अमूल्य निधि है; भारतवर्ष-का राष्ट्रीय धर्मग्रन्थ होनेके लिये आवश्यक समस्त गुण इसमें एकत्र किये गये हैं, इतना ही नहीं; भविष्यमें समस्त संसारका धर्मग्रन्थ होनेकी अनुपम योग्यता इसमें है। समस्त मानवजातिके भविष्यको अत्यन्त उज्ज्वल बनानेके लिये भारतके वैभवशाली भूतकालकी यह एक अपूर्व निधि है।'*

उज्जनकके भीमाशङ्कर

(लेखक—श्रीशिवशंकरजी नागर, काशीपुर)

यं डाकिनीशाकिनिकासमाजे
निषेव्यमाणं पिशिताशनैश्च।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं
तं शङ्करं भक्तहितं नमामि॥

नैनीताल-जिलेमें काशीपुर या गोविष्ण नामक नगर प्रख्यात है। इसके ठीक पूर्व-दिशामें एक मीलके अन्तरपर एक उजनक नामक स्थान है। इसी उजनकमें भगवान् शङ्कर अपने पूर्णांशसे एक विशाल मन्दिरमें विराजमान हैं। यही भीमाशङ्कर-ज्योतिर्लिङ्ग है।

यद्यपि शिवपुराणमें भीमाशङ्कर-ज्योतिर्लिङ्गका स्थान कामरूप-देशमें बतलाया गया है, तथापि अनेक प्राचीन ग्रन्थोंको देखनेसे इसी स्थानको भीमाशङ्कर मानना पड़ता है। कारण, प्राचीन ग्रन्थोंसे ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन कालमें इसी देशको कामरूप-देश कहते थे। पीछे महाभारतके समयसे यह देश डाकिनी-देश कहलाने लगा। इसी कारण भगवान् आद्यशङ्कराचार्यने 'डाकिन्यां भीम-शङ्करम्' कहकर इस पुण्यस्थानका उल्लेख किया है। कालिदासने भी अपने 'रघुवंश'में उत्तर-दिशामें ही इसका अस्तित्व बतलाया है। अतः यह बात सिद्ध होती है कि यही देश कामरूप-देश है। यह देश डाकिनी-देश क्यों कहलाया, इसका कारण यह है कि यह जो सहारनपुरसे लेकर नेपाल-तक वन-ही-वन चला गया है, उसमें डाकिनीयोनिमें उत्पन्न हिडिम्बा नामक राक्षसी रहती थी, जिसका विवाह महावीर, पाण्डवकुलभूषण भीमसेनसे हुआ था। वास्तवमें

* श्रद्धेय श्रीटक्की महाराजका लेख बड़ा था, पूरा प्रकाशित करनेका विचार भी था; परन्तु स्थानाभावसे उसका केवल एक अंशमात्र ही प्रकाशित किया जा सका। इसके लिये श्रीमहाराजसे हम क्षमाप्रार्थी हैं। —सम्पादक

वह डाकिनी थी, किन्तु राक्षसीरूपमें रहनेके कारण उसे राक्षसी कहते हैं। (देखिये महाभारत-वनपर्व)।

इस मन्दिरमें मूर्ति इतनी स्थूल है कि एक मनुष्यके आलिङ्गनमें नहीं आ सकती। इस प्रान्तमें ऐसा स्थूल शिवलिङ्ग तथा इस शैलीका मन्दिर दूसरा नहीं है। यह मूर्ति बढ़ते-बढ़ते दूसरी मंजिलतक पहुँच गयी है। इस मन्दिरपर शिवरात्रिके दिन बड़ा भारी मेला लगता है। मन्दिरके अन्दरके पश्चिमी भागमें खुदे हुए दो प्राचीन लेखोंसे पता चलता है कि यह मन्दिर सन् ३०२ का बना हुआ है। इसका गुम्बज बताशेके समान मालूम पड़ता है। मन्दिरके पूर्वभागमें भैरवनाथका भी मन्दिर विद्यमान है तथा मन्दिरके बाहर सामने ही एक कुण्ड है जो शिवगङ्गाके नामसे पुकारा जाता है। कुण्डके सामने कोसी-नदीकी एक नहर और उसके भी पूर्वमें बहुला नामक नदी है। मन्दिरके पश्चिम-दिशामें श्रीजगदम्बा भगवती बालसुन्दरीका मन्दिर है। यहाँ प्रतिवर्ष चैत्रशुक्ल अष्टमीको बड़ा भारी मेला लगता है। देवीजीके मन्दिरसे पश्चिममें एक स्थान है जो इस शिवमन्दिरकी प्राचीनता प्रकट करता है। वह 'किला' नामसे विख्यात है। इस किलेपर द्रोणाचार्यने कौरव-पाण्डवोंको धनुर्विद्या सिखायी थी। यद्यपि भीम नामक दैत्यके भस्म होनेसे और देवताओंके प्रार्थना करनेसे शङ्करभगवान् यहाँ स्थापित हो चुके थे तथापि इसका जीर्णोद्धार आवश्यक समझ द्रोणाचार्यने गुरुदक्षिणास्वरूप इस मूर्तिके चारों तरफसे झाड़ी कटाकर इसकी प्रतिष्ठा भीमसेनद्वारा करायी थी। इस किलेके पश्चिम-तटपर एक स्थान श्रवणकुमारका है, जहाँ श्रवणकुमारने अपने माता-पिताकी काँवर लाकर रक्खी थी और कुछ काल वास किया था। किलेके पश्चिममें एक बहुत बड़ा द्रोणसागर नामक ताल है, जिसे कौरव-पाण्डवोंने अपने गुरु द्रोणाचार्यके लिये बनाया था। मन्दिरके चारों तरफ एक सौ आठ रुद्र हैं, जो इसके चारों तरफके बहुत-से टीलोंको खुदवानेसे मिले हैं। इन एक सौ आठ रुद्रोंमें हरिशङ्कर और जागेश्वर प्रसिद्ध हैं, जोकि इस मन्दिरके क्रमशः आग्नेय और दक्षिण-दिशामें विद्यमान हैं। इस मन्दिरकी मूर्ति अति मोटी होनेके कारण आधुनिक लोग इसे 'मोटेश्वरनाथ' भी कहते हैं।

नागेशं दारुकावने

(लेखक—पं० श्रीमथुरादत्तजी त्रिवेदी)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें एक दारुकावनका नागेश (नागेशं दारुकावने) है। यह ज्योतिर्लिङ्ग कहाँ है? हमारा यह मत है कि अल्मोड़ासे १७ मील उत्तर-पूर्वदिशामें अवस्थित यागेश (जागेश्वर) को ही नागेश-ज्योतिर्लिङ्ग बतलाया गया है। परन्तु यागेशको नागेश सिद्ध करनेके पहले निम्नलिखित प्रश्नोंका विचार करना आवश्यक है—

(१) कुमाऊँके आदि निवासी कौन थे?

(२) नाग-जातिकी कुमाऊँमें मौजूदगीका ऐतिहासिक प्रमाण क्या है?

(३) कुमाऊँमें शिव (रुद्र) पूजाका चलन कबसे है?

(४) पुरातत्त्वकी दृष्टिसे जागेश्वरका मन्दिर कितने वर्ष पूर्वका बना सिद्ध हो सकता है?

(५) शिलालेख तथा इतिहासज्ञ क्या कहते हैं?

(६) मन्दिरकी ख्याति कबसे है और क्योंकर कुमाऊँ-राज्यकी सीमासे सीमित हो गयी?

कुमाऊँके आदि निवासी कौन थे, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। पहाड़ी दर्रोंकी राह कश्मीर-प्रदेशसे तथा नदियोंकी घाटियोंकी राह मैदानसे आकर जो जातियाँ कुमाऊँकी पहाड़ियोंमें बस गयीं, वे बृहपल, गौण्ड्रक, द्रविड, कम्बोज, यमन, शक, पारद, पल्लव, चीनी, किरात, दरद, नाग तथा खस नामकी थीं और महाभारतमें इस बातका प्रमाण है कि ये जातियाँ सभ्य तथा शक्तिशालिनी थीं। पाण्डवोंको इन पहाड़ी जातियोंसे लड़ना पड़ा था और उन्होंने इनको सोलहों आने क्षात्रगुणसम्पन्न पाया था। भारतवर्षकी तमाम अनार्य जातियोंके मध्य कुमाउँनी अनार्योंको इस बातका श्रेय दिया जाता है कि इन्होंने ब्राह्मण-धर्ममें प्रवेश पानेका भरसक प्रयत्न किया। वशिष्ठ-विश्वामित्रका

हजारों वर्षोंका युद्ध क्षात्रगुणसम्पन्न अनार्य तथा ब्राह्मण-धर्म-प्रतिपोषक आर्यलोगोंके बीचका झगड़ा था।

पादरी ओकले साहब अपनी पुस्तक 'पवित्र हिमालय' में लिखते हैं कि कश्मीर और गढ़वालमें नागलोगोंकी

जागेश्वर

बागेश्वर

एक जाति रहती है। कोई नाग लोगोंको वास्तविक सर्पके आकारका भी बतलाते हैं। आपका यह मत है कि सर्प-पूजक होनेके कारण लोग उन्हें ऐसा कह देते हैं। बौद्ध-ग्रन्थोंके प्रसिद्ध लेखक राई डेविडस्का मत है कि पुराने बौद्ध-कालके चित्रों तथा मूर्त्तियोंमें मनुष्य और साँपकी जुड़ी हुई शक्लमें नाग-पूजाको अङ्कित किया गया है और यह चलन कुमाऊँ और गढ़वालमें अब भी चालू है। Himalayan Districts के लेखक एटकिंशन-का भी यही कहना है। गढ़वालके प्रायः पचास-साठ मन्दिरोंमें आजकल भी नागपूजा होती है।

जागेश्वरके समीपवर्त्ती प्रदेशमें वेरीनाग, धौलेनाग, कालियनाग इत्यादि 'नाग' शब्दकी यादगारकी जगहें मौजूद

हैं। इसीसे यह कल्पना की जाती है कि इन नाग-मन्दिरोंके मध्य नागेश-नामका कोई बड़ा मन्दिर कुमाऊँमें आदि-कालसे ही मौजूद है।

बौद्ध-धर्मकी भाँति शैव-धर्म भी राष्ट्रीय धर्म है। इसके अन्दर आर्य-अनार्योंका मेल हुआ है। संक्षेपमें वैदिक-पौराणिक धर्म तथा भूत-प्रेत-पूजाका ही एक नाम शिवोपासना है। शङ्कराचार्यके मतके प्रसार और प्रचारके पहले पशुपति या पाशुपतेश्वरका नाम कुमाऊँके लोगोंको अविदित था। पशुपतिनाथ बलिभोगी थे या नहीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, पर इतनी बात दावेके साथ कही जा सकती है कि काठमाण्डूके पशुपति महादेव तथा यागेश्वरके पाशुपतेश्वर वैदिककालके पूज्य देवस्थल हैं। वैसे तो हिमालय पहाड़की सारी चोटियाँ तापस-वेशधारी शिवकी प्रतिमूर्त्तियाँ हैं तथापि कैलासपर्वत आदिकालसे ही प्रकृतिरचित शिव-मन्दिर घोषित किया गया है। इन सब बातोंसे सिद्ध है कि कुमाऊँ-प्रान्तमें शिव-पूजाका प्रचलन अति प्राचीनकालसे चला आ रहा है।

अस्तु, अब यह देखना है कि यह यागेश्वर-मन्दिर कब बना और इसको किसने बनवाया? दूसरे प्रश्नका उत्तर निश्चित-रूपसे नहीं दिया जा सकता, किन्तु एक किंवदन्ती-के अनुसार इसका जीर्णोद्धार शालिवाहनद्वारा हुआ सिद्ध होता है।

प्राचीनकालमें भी मन्दिर-निर्माण-कला (Temple Engineering Sceince) तो भारतवर्षमें थी ही। हम मौण्ट आबूके एक ब्राह्मण शिल्पीको, जिसके पास मन्दिर-निर्माण-कलापर संस्कृत-भाषामें लिखी हुई एक हस्त-लिखित पुस्तक मौजूद थी, लेकर जागेश्वर गये थे। लेखकने इस पुस्तकको उस देव-मन्दिरके समर्पित किया था जो हिमालयके उत्तर-पश्चिम-प्रदेशमें देवदारुके सघन वनके बीच अवस्थित है और जिसकी बनावट कुछ तिब्बतीय शैलीकी और कुछ आर्य-शैलीकी है। मन्दिरका नाम पुस्तकमें दिया हुआ नहीं था, किन्तु इस मन्दिरको देखकर और उक्त पुस्तकमें दिये हुए चित्रोंसे मन्दिर तथा उसकी मूर्तियोंका मिलान करनेके बाद शिल्पीको पूर्ण निश्चय हो गया कि उल्लिखित देव-मन्दिर यही है। शिल्पीके मतानुसार जागेश्वर-का मन्दिर कम-से-कम ढाई हजार वर्षका पुराना और उसके निकटवर्ती मृत्युञ्जय और डिण्डेश्वरके मन्दिर दो-डेढ़ हजार वर्ष पहलेके बने हुए हैं। शिव-शक्तिकी प्रतिमाओं तथा जागेश्वर-मन्दिरके दरवाजेके द्वारपालोंकी मूर्त्तियोंको छोड़कर शेष मूर्त्तियाँ आठ सौ या हजार वर्ष पूर्वकी बनी मालूम हुईं। कलाकी दृष्टिसे पीछेकी बनी हुई मूर्त्तियाँ सुन्दर हैं। डिण्डेश्वरमें डिण्डिया राजाकी अष्टधातुकी सुन्दर मूर्त्ति रक्खी है। यहाँ शिव-शक्तिके दर्शन नहीं होते, प्रसिद्ध केदार-तीर्थकी तरह चट्टानका एक हिस्सा ही शिव-शक्तिका काम देता है। जागेश्वरमें दीपचन्द राजाकी चाँदीकी मूर्त्ति है। कलाकी दृष्टिसे यह मूर्त्ति सुन्दर नहीं है। अब ऐतिहासिक वर्णनों तथा शिलालेखों आदिके आधारपर इस सम्बन्धमें कुछ विचार किया जाता है।

वैदिक कालके पीछे इतिहासज्ञ उस कालकी गणना करते हैं जिसमें सप्तसिन्धु, ब्रह्मावर्त्त, मध्यदेश, प्राकी इत्यादि नामोंसे भारतके विभिन्न भाग कहे जाते थे। स्कन्द-पुराणान्तर्गत मानसखण्ड तथा रेवाखण्ड उन अध्यायोंका नाम है जिनमें कुमाऊँ तथा गढ़वालके पुण्य-तीर्थोंका विशद वर्णन है।

पौराणिक कालमें भारतमें कोसल, मिथिला, कुरु, पाञ्चाल, मत्स्य, मगध, अङ्ग, बङ्ग, चेदी इत्यादि अनेक राज्य थे। कुमाऊँ कोसल-राज्यका ही एक हिस्सा था। हुएन्साङ् बौद्धधर्मकी खोजके निमित्त कुमाऊँकी ओर आया था। उस समय कुमाऊँमें वैदिक एवं बौद्धधर्म साथ-साथ चलते थे। रामनगरके पास ढिकुली नामक स्थानमें अहिछत्र नामका एक बौद्धोंका विहार था। इसी समयमें मल्ल-जाति कोसल-देशके उत्तरी भागमें निवास करती थी। मृत्युञ्जयके मन्दिरका शिलालेख मल्ल-राजाओंद्वारा तब अङ्कित हुआ था जब वे पशुपतिनाथ होते हुए पाशुपतेश्वर या जागेश्वरके दर्शनके निमित्त यहाँ आये थे। वे जागेश्वरको कुछ गाँव दे गये थे। कहा जाता है कि पाशुपतेश्वर और पशुपतिनाथका अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध है, बिना एकके दूसरेका दर्शन अधूरा है।

मल्ल लिच्छवियोंके मामा थे। लिच्छवी-वंशके राजपूत नेपालकी राह, जहाँ अब भी हिन्दू-देवी-देवताओंकी मूर्त्तियोंके साथ-साथ बुद्धदेवकी मूर्त्तियाँ भी मिलती हैं, कुमाऊँ तथा गढ़वालमें शाक्य मुनिके धर्मके विरोधके लिये आये थे। गढ़वालके गोपेश्वर-मन्दिरके त्रिशूलमें लिच्छवियोंका एक लेख अङ्कित है। कुमाऊँके बालेश्वर-मन्दिरके एक लेखसे प्रकट होता है कि नेपालके राजा कच्छपदेवको कत्यूरी-राजा देशनदेवने, जो ब्राह्मण-धर्मका माननेवाला था, शिकस्त दी।

नेपालके पशुपतिनाथ-मन्दिरके त्रिशूलमें लिच्छवियोंद्वारा अङ्कित लेख अब भी पढ़ा जा सकता है। देवनामके पालवंशी राजाओंका कुमाऊँसे सम्बन्ध रहा। देव राजा बौद्ध-धर्मको मानते थे। माधवसेन नामका सेनवंशी राजा देवोंके राजत्वकालमें जागेश्वर आया था। इन बातोंसे स्पष्ट है कि बिहार, बंगाल, नेपाल, कुमाऊँ तथा गढ़वालका आपसमें घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। कत्यूरियोंसे भी जागेश्वरको गाँव मिले।

अफ़गान तथा मुगल-सल्तनतके समयमें यहाँकी यात्रा करना कठिन हो गया। सोलह सौ मील लम्बा हिमालयका पर्वतीय प्रान्त कई छोटे-छोटे राज्योंमें बँट गया। हरिद्वारके सन्निकट होनेसे बदरी-केदारकी यात्रा तो जारी रही, पर जागेश्वर मैदानवासियोंको विस्मरण हो चला। कैलासकी यात्रा, जिसके कि मध्यमें जागेश्वर पड़ता है, बिल्कुल बन्द हो गयी। स्वामी शङ्कराचार्यने जागेश्वर तथा गङ्गोली-हाटकी राहसे कैलास जानेका प्रयत्न किया था, किन्तु लामालोग उनकी राहमें बाधक सिद्ध हुए और वे कैलास न जा सके। उन्हें लाचार हो द्वाराहाटकी राह लौट जाना पड़ा। गढ़वालमें जोशी-मठको संस्थापित करके वे केदारनाथ गये, वहीं उनका शरीरान्त हुआ।

चन्द-राजाओंकी जागेश्वरके प्रति अटल श्रद्धा थी। चन्दोंका राज्य कुमाऊँकी पहाड़ियों तथा तराई-भावरके बीच सीमित था, इसलिये जागेश्वरके मन्दिरकी ख्याति भी कुमाऊँ-राज्यके भीतर सीमित हो गयी। देवीचन्द, कल्याणचन्द, रतनचन्द, रुद्रचन्द, लक्ष्मीचन्द, बाजबहादुरचन्द इत्यादि राजाओंने जागेश्वरके पीछे गाँव लगा दिये तथा धन दान किया। सन् १७४० के लगभग अली-महम्मदखाँने अपने रुहेला-सैनिकोंके साथ कुमाऊँपर आक्रमण किया। डोटीवाला राजा कल्याणचन्द मन्दिरके आभूषण लेकर पहले गढ़वाल भाग गया और फिर वहाँसे आगे रुहेलोंके विरुद्ध फरियाद करने मुगल-बादशाह तथा अवधके नवाबके दरबारमें गया। रुहेले पहाड़ोंमें पंक्ति बाँधकर बढ़े थे। उन्होंने अल्मोड़ा-शहरतकके सारे मन्दिरोंको भ्रष्ट कर दिया और मूर्त्तियोंको तोड़ दिया। इन्होंने जागेश्वरपर भी आक्रमण किया था। लेकिन दैवेच्छाने सहायता की। देवदारुके सघन वनसे लाखों बर्रें निकलकर रुहेलोंपर टूट पड़े और उन्हें भगा दिया। रुहेले इससे आगे न बढ़े। लौटती बार या तो कुमाउँनियोंके आक्रमणसे या पर्वतोंकी ठण्डकसे पीड़ित होकर डेढ़-दो लाख रुहेले समाप्त हो गये।

बौद्धकालमें बदरीनारायणकी मूर्त्ति गौरीकुण्डमें तथा जागेश्वरकी देव-मूर्त्तियाँ ब्रह्म या सूर्यकुण्डमें कुछ दिन पड़ी रहीं। भगवान् शङ्कराचार्यने अपने दिग्विजयके समय बौद्धकालमें विश्राम दी गयी मूर्त्तियोंको पुनः संस्थापित किया। शङ्कराचार्य जागेश्वर-मन्दिरकी पूजा कुमारस्वामीको, जोकि दक्षिणी-जङ्गम थे, सौंप गये थे। उनके साथ एक दक्षिणी भट्ट भी था। उसने एक पहाड़ी ब्राह्मणकी लड़कीसे शादी की। उसके वंशज 'बड़वे' कहलाते हैं। पुराने पट्टे (Royal charters) नष्ट हो चुके हैं। मौजूदा पट्टा जगचन्ददेवके समयका है।

यह जागेश्वरके सम्बन्धमें वर्णन हुआ। यह मन्दिर आजका नहीं, बहुत पुराना सिद्ध होता है और सभी समयोंमें इसकी अच्छी प्रतिष्ठा रही है। अनेक प्रकारके प्रमाणोंके आधारपर नागेश ज्योतिर्लिङ्ग भी यही सिद्ध होता है।

अब भी शिवकी शरण जाओ

मनके मनहीं माहिं, मनोरथ वृद्ध भये सब।
निज अंगनमें नाश भयो, वह यौवनहू अब।
विद्या ह्वै गई बाँझ, बूझवारे नहिं दीसत।
दौर्यौ आवत काल, कोप कर दसनन पीसत॥
कबहूँ नहिं पूजे प्रीति सों, शूल-पाणि प्रभुके चरण।
भवबन्धन काटे कौन अब, अजहुँ गहो हरकी शरण॥

रुद्रमाल

(प्रेषक—श्रीचन्दूलाल बहेचरलाल पटेल, बी० ए०)

मूलराज सोलंकीने बाल्यकालमें ही अपने मामाकी हत्या कर उसकी गद्दीपर अधिकार जमा लिया। साथ ही, अपनी माताके अन्य सम्बन्धियोंका भी अन्त कर दिया। परन्तु पीछे उसे इन सब पापोंके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ। तब उन पापोंसे निष्कृति पानेके लिये उसने उनके प्रायश्चित्तस्वरूप सिद्धपुरमें 'रुद्रमाल' नामसे श्रीशिवजीका एक भव्य मन्दिर बनवाना आरम्भ किया और गद्दीपर अपने पुत्र चखुंडको बैठा स्वयं साधु हो गया।

सिद्धपुर बड़ौदा-राज्यके अन्तर्गत कड़ी-प्रान्तमें है। यह क्षेत्र प्राचीन कालसे ही अति पवित्र माना जाता है। यहीं कपिलभगवान्ने अपनी माता देवहूतिको आत्मज्ञान देकर उसे परमपदकी प्राप्ति करायी थी, इसीसे यह स्थान मातृ-श्राद्धका तीर्थ माना जाता है। सिद्धपुरपर उन दिनों शत्रुओंके आक्रमण-पर-आक्रमण होते थे, इस कारण रुद्रमाल-मन्दिरका निर्माणकार्य अधूरा ही रह गया।

दो सौ वर्ष बाद पाटणके अधिपति सिद्धराजने उसे नये सिरेसे फिर बनवाकर पूरा किया। इस समय तो वह भव्य रुद्रमाल-मन्दिर खँडहरके रूपमें है। फिर भी इसे देखनेसे यह पता चलता है कि इसकी रचना-शैली बिल्कुल अनोखी है। एकके ऊपर एक, इसप्रकार ग्यारह रुद्र-मूर्तियाँ कैसी मनोहर प्रतीत होती होंगी, मन्दिरकी वर्तमान अवस्था देखकर हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते; फिर भी खँडहरको देखनेसे मालूम होता है कि मन्दिर तीन सौ कदम लम्बा और दो सौ तीस कदम चौड़ा, साथ ही दो-तीन मंजिल ऊँचा रहा होगा। जान पड़ता है कि इसके अन्दर पचास कदम लम्बा-चौड़ा मण्डप था और इस मण्डपके उत्तर, पूर्व और दक्षिणमें भी एक-एक मण्डप था। इसके पश्चिममें देहरा था। बीचमें श्रीरुद्रके ग्यारह देहरे थे। मन्दिरकी पूर्व दिशामें दरवाजा और सरस्वती-नदीमें उतरनेके लिये सीढ़ीदार घाट बना था। 'गङ्गासिन्धुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा' आदि पापनिवारिणी सरिताओंमें सरस्वती-का भी नाम है।

रुद्रमालकी जो वर्तमान दशा है उसे देखकर खून उबलने लगता है और सिद्धराजने इसके सम्बन्धमें जो भविष्यद्वाणी की थी उसकी स्मृति हो आती है। उन्होंने अपने अन्त-समयमें समयकी प्रतिकूलता देखकर श्रीहनूमान्को इसका रक्षक बनाते हुए कहा था—

'हे दुखियोंके आधार वायुपुत्र महावीर हनुमान्! मैं रुद्रमालकी रक्षाका भार तुम्हें सौंपता हूँ। संसारने मुझे सिंहकी पदवी दी है; परन्तु मैं तो एक तिनकेके समान सर्वथा अकिञ्चन हूँ। मनुष्य चीज ही क्या है? कुल चालीस-पचास वर्षकी उसकी अवस्था, इसमें वह क्या पराक्रम दिखलाये? जब शत्रुकी रणदुन्दुभि आकर यहाँ गूँजेगी, तब मेरी भस्म भी कहीं ढूँढ़े नहीं मिलेगी। मैं कौन जाने कहाँ भटकता होऊँगा? तब इसकी कौन रक्षा करेगा? अरे, जब बड़े-बड़े देवता भी कालके वश हो जाते हैं, तब हम पामरोंका राजपाट और यह देवालय किस गिनतीमें है? एक दिन ऐसा आयेगा कि जहाँ आज ये राजमहल शोभायमान हो रहे हैं, वहाँ हल चलेंगे। जहाँ आज हम बैठे हैं, इस देवालयके टूटे-फूटे पत्थरोंको लोग खोद निकालकर पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिये बेचने निकलेंगे। अधिक क्या कहूँ, पाटणके रुद्रमालका नाम सुनकर वे तुम्हारी ओर टुक-टुक देखा करेंगे।
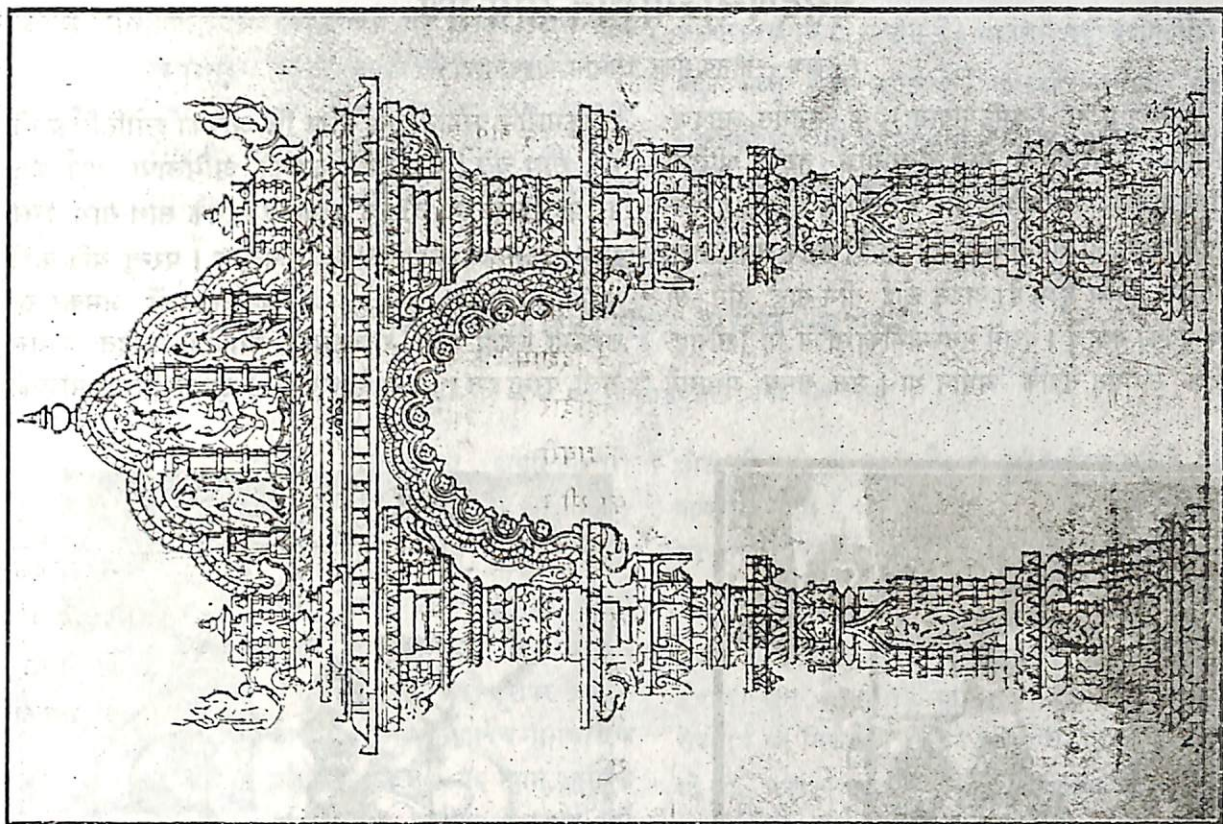
रुद्रमालका तोरणबन्द

रुद्रमाल
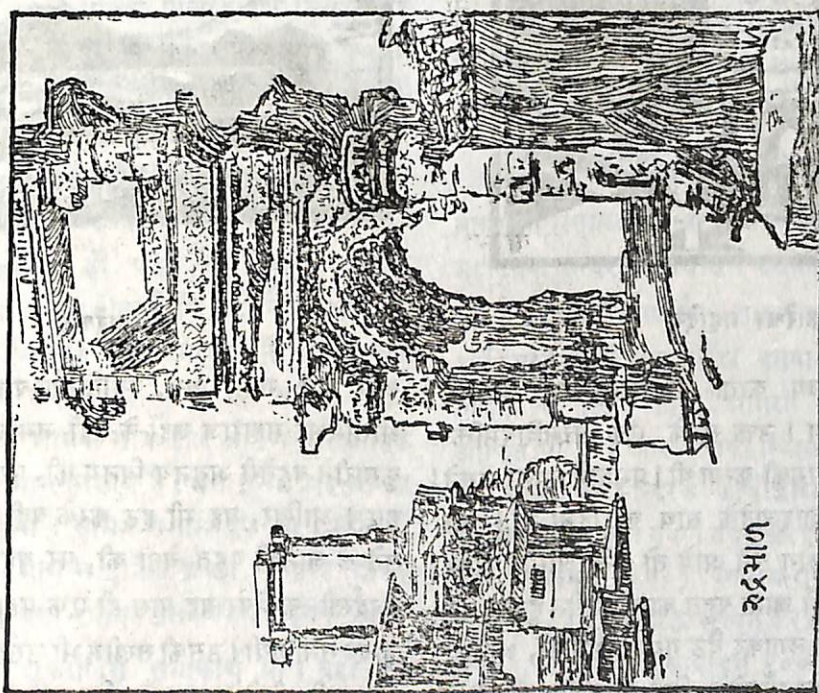
जसदण-राज्यस्थित सोमनाथ

(लेखक—श्रीमयाशंकर दयाराम मोढ़कावाला)

सौराष्ट्र-प्रदेश (काठियावाड़) के अन्तर्गत, जसदण-राज्यमें, शैलशिखरोंके मध्य छेलगंगाके तटपर श्रीछेला सोमनाथजीका एक पवित्र धाम है। सौराष्ट्र-प्रदेशमें प्रभास-क्षेत्रके अन्दर जो सोमनाथ-ज्योतिर्लिङ्ग है, उसके साथ इसका इतिहास मिला हुआ है। अबसे कोई तीन-साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्वकी बात है। देशमें मुसल्मानोंका राज्य था। सौराष्ट्र-प्रदेश खम्भात सूबाके अधीन था। उस समय प्रभासमें एक राजपूत राव राज्य करता था, परन्तु वह खम्भात सूबाका करद राजा था। उक्त रावके एक परमशिवभक्ति-परायणा मीणलदेवी नामकी कन्या थी। प्रभावमें आकर उसने उसका विवाह एक शाहजादेके साथ कर दिया था। जब बादशाहकी ओरसे लोग लेने आये तो उसे श्रीसोमेश्वरकी सेवासे वञ्चित होकर वहाँ जाना बहुत कष्टकर प्रतीत हुआ। वह मन्दिरमें जाकर ध्यान लगाकर बैठ गयी। आखिर, श्रीशिव प्रसन्न हुए और वरदान माँगनेके लिये आकाशवाणी की। राजकुमारीने वरदानमें यह माँगा कि आपका ज्योतिर्लिङ्ग भी मेरे साथ चले। शङ्करजीने उसकी अभिलाषा पूर्ण की; पर यह शर्त लगा दी कि तू अपने रथके साथ-साथ दूसरे रथमें बिठलाकर मुझे ले चल, मैं चलूँगा। परन्तु यदि कहीं तूने पीछे फिरकर देखा, तो मैं जहाँ-का-तहाँ जमकर रह जाऊँगा। वही हुआ, राजकुमारी ज्योतिर्बाणसहित प्रभास चली, परन्तु इस स्थानपर आकर भूलसे उसकी निगाह पीछेकी ओर पड़ गयी। बस, ज्योतिर्बाणवाला रथ फटा और श्रीसोमेश्वर महाराज जहाँ-के-तहाँ जमकर बैठ गये। फिर तो कुमारीने बहुतेरी अनुनय-विनय की, पर वह टस-से-मस नहीं हुए। आखिर, वह भी हठ करके वहीं बैठ गयी। यवनोंने उसे ले जानेकी बहुत चेष्टा की, पर वह नहीं उठी। अन्तमें जबर्दस्ती करनेपर वह पास ही एक पहाड़ीपर जाकर उसके अन्दर समा गयी। उसकी सखीने भी उसीका अनुसरण किया। बस, वही श्रीसोमेश्वर वहाँ विराजमान हैं और जहाँ वह

ॐकारेश्वर महादेव

ॐकारेश्वर

कुमारी समायी थी वहाँ उसके चरणचिह्न स्थापित हैं। इसके साथ जो चित्र छप रहा है वह मीणलदेवीके साथ लाये हुए स्वयम्भूदेव श्रीसोमनाथजीकी पूजाका है। इसे महन्तजीने भेजा है। दूसरा ॐकारेश्वरजीका चित्र जसदण-दरबारकी दौहित्री कुमारी श्रीभगवानबाईने भेजा है। भावनगर तथा जसदण-राज्य आदिकी ओरसे इनकी सेवा आदिके लिये जागीर भी लगी हुई है, जिसका प्रबन्ध जसदण-राज्यके ही अधीन है। श्रावणमें यहाँ दर्शनार्थियोंका बड़ा भारी मेला लगता है। मन्दिरमें दसनामी गुसाईं महन्तकी गद्दी भी कई पीढ़ीसे चली आ रही है। वर्तमान महन्त श्रीवीरगिरिजी जीवराजगिरिजी हैं।

श्रीबैजनाथ महादेव (आगर--मालवा)

(लेखक—वि० वा० पं० श्रीगणेशदत्तजी शर्मा गौड़ 'इन्द्र')

प्रसिद्ध मोक्षदायिनी अवन्तिकापुरी (उज्जैन) से उत्तरकी ओर आगर नामक एक अति प्राचीन कस्बा है। यह कस्बा विक्रमकी दसवीं शताब्दीके अन्तमें बसा था। आगरसे लगभग डेढ़ मीलकी दूरीपर ईशान-कोणमें 'बैजनाथ' महादेव नामका एक प्रसिद्ध स्थान है। यह स्थान आगरके बसनेसे भी पहलेका है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस जगह किसने और कब शिवलिङ्ग-की स्थापना की। परन्तु इतना अवश्य सिद्ध है कि यह प्रतिमा एक हजार वर्षसे अधिक प्राचीन है। जिस जगह बैजनाथ महादेव हैं, वहाँ पहले अर्थात् आजसे लगभग पचास वर्ष पूर्व बड़ा भयानक जंगल था। घनी झाड़ियों-के अन्दर महादेवका एक छोटा-सा मठ था। लोगोंको मन्दिरतक जानेके लिये वृक्षोंके समूहमेंसे निहुरकर जाना-आना पड़ता था। शिवलिङ्ग कब और किसने प्रतिष्ठित किया, इसका तो पता नहीं चलता; किन्तु पुराने कागज-पत्रसे मालूम होता है कि बेट बैजनाथखेड़ामें महादेवजीके इस मन्दिरको मोड़ महाजनोंने आजसे चार सौ वर्ष पूर्व, सं० १५९३ में बनवाया था। आज न तो 'बेट बैजनाथ' नामक गाँव ही है और न मोड़जातिके बनियोंका ही यहाँ नाम-निशान है। उस समय यह मन्दिर एक मढ़ैयाके रूपमें था। सामने सभामण्डप था। मन्दिरमें प्रकाशके आनेका मार्ग न होनेके कारण अखण्ड दीपक जलता रहता था। यह स्थान उस समय हिंसक वन्य-पशु सिंह, व्याघ्र, शूकरादिसे समाकीर्ण था। यहाँ एक छोटी-सी नदी भी बहती है, जो यहींसे निकलती है। इसे बाणगंगा कहते हैं। यह स्थान दो पहाड़ियोंके बीच नदीके तटपर स्थित होनेके कारण बड़ा ही सुहावना मालूम होता है।

यह स्थान बहुत दूर जंगलमें होनेपर भी दर्शकों और पूजा करनेवालोंसे सदैव परिपूर्ण रहता था। सन् १८८० ई० की बात है; मिसेज मार्टिन एक दिन उधर वायु-सेवनार्थ जा निकलीं। उन्होंने ब्राह्मणोंसे, जो वहाँ पूजा कर रहे थे, कहा—'इस मन्दिरका यह कोना गिर गया है; तुमलोग इसे ठीक बनवा लो, वर्ना मन्दिर गिर जायगा।' पं० शिवचरणलालजी अवस्थीने उत्तर दिया—'हमलोगोंके पास इतना द्रव्य नहीं है। यदि आप चाहें तो बनवा सकती हैं।' मिसेज मार्टिन बोलीं—'हमारा साहब लड़ाईपर गया है, उसके आनेपर हम कुछ कर सकता है।' ब्राह्मणोंने उस अंग्रेज महिलाको धन्यवाद दिया। वह लौट गयी।

यथासमय सेना काबुल-युद्धसे सकुशल लौट आयी। ब्राह्मणोंने रिसालदार मेजर गोपालसिंहजीसे यह बात कहकर महादेवके मन्दिरका जीर्णोद्धार करानेके लिये कहा। रिसाल-दार साहबने मिसेज मार्टिनके सामने कर्नल मार्टिन, कमांडिंग ऑफिसरसे महादेवका मन्दिर बनवानेमें सहायता देनेकी प्रार्थना की। उन दिनों आगरमें पोलिटिकल एजेण्टका ऑफिस था और आस-पासकी रियासतोंके वकील यहाँ रहते थे। वकीलोंको मन्दिरके जीर्णोद्धारमें राज्यद्वारा सहायता पहुँचानेके लिये कहा गया। तदनुसार इन्दौर-राज्यने १०००), सैलाना-राज्यने १०००), रतलाम-राज्यने ६००), देवास-राज्यने ७००), सीतामऊ-राज्यने ३२०), रियासत पिपलोदाने ४२१), रियासत झालावाड़ने २००), ठाकुर सा० भाट-

बैजनाथ महादेव, आगर, पीछेके कमलकुण्डसहित
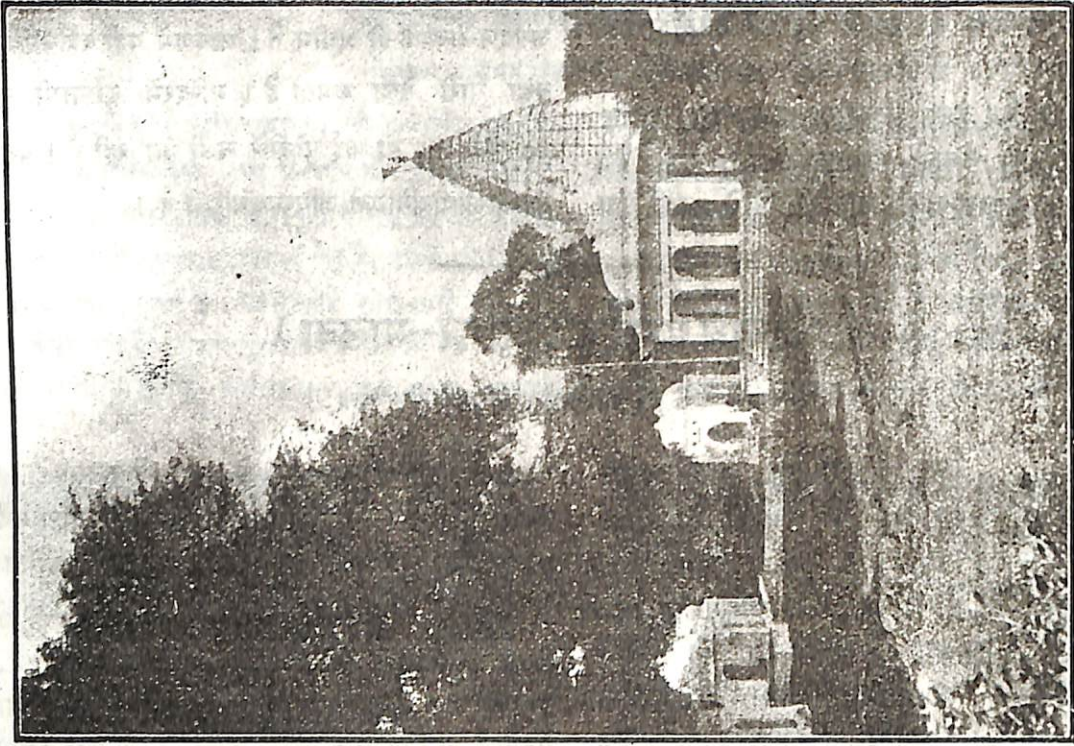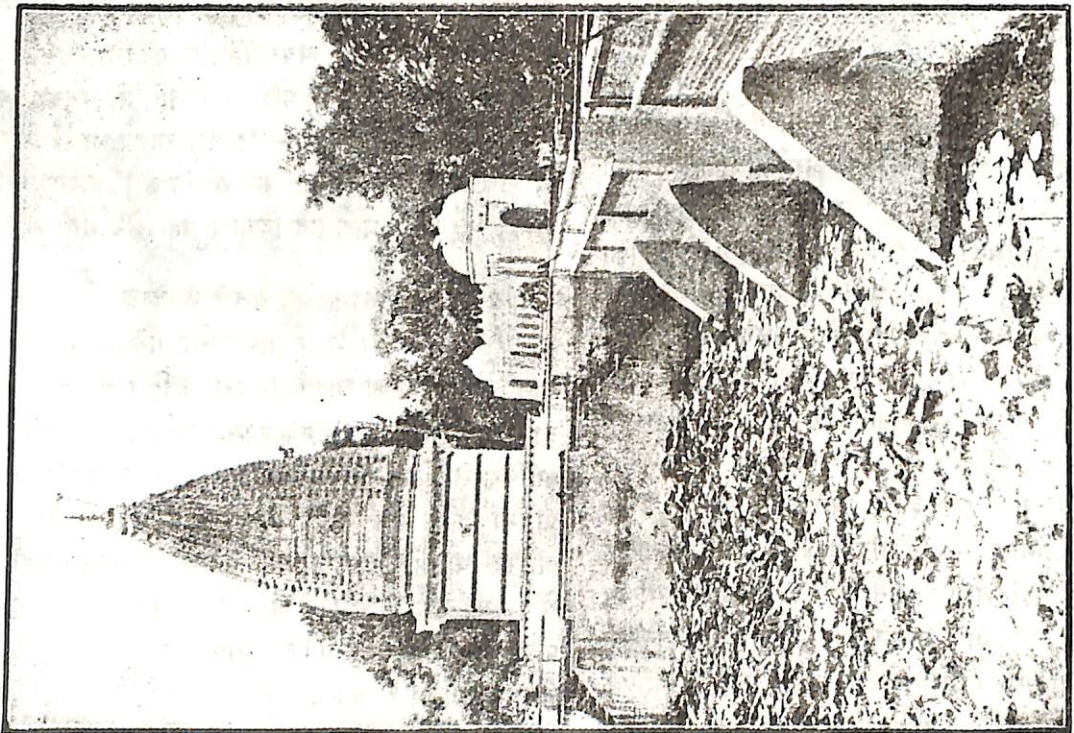
बैजनाथ महादेव, आगर

खेड़ीने १६०), नवाब साहब जावराने २०), रावजी बरड़या-ने ५०), दीवान सा० लालगढ़ने २५), रावजी कालूखेड़ीने २५) रावजी नरवरने २५), ठा० शिवगढ़ने २०) दिये; इसप्रकार ४५६६) रु० राजाओं, जागीरदारों और ठाकुरोंसे लिये। बाकी रुपयोंका पब्लिकसे चन्दा किया गया।

सन् १८८१ में बैजनाथ महादेवके मन्दिरका जीर्णोद्धार आरम्भ हुआ। काम पचीस महीनेतक चला। अगस्त सन् १८८३ ई० में पूरा हुआ। ११३२२।-) खर्च हुए। बैजनाथ महादेवका यह विशाल मन्दिर, जिसे आप चित्रमें देख रहे हैं, सन् १८८३ में बनकर तैयार हुआ। मूर्ति जिस स्थानपर प्रतिष्ठित थी वहीं है। सामने सभा-मण्डपमें नन्दीगणकी एक विशाल प्रतिमा है। अन्दर एक ताकमें शिव-पार्वती और दूसरेमें केवल पार्वतीकी प्रतिमा है। मन्दिर बननेके बाद उसी सालसे वैशाख शुक्ल तृतीया(अक्षय तृतीया)के दिन यहाँ एक मेला भरने लगा। मन्दिरतक सड़क बनवा दी गयी। इसप्रकार यह स्थान एक नये रूपमें परिवर्तित हो गया। कुछ वर्ष चलकर मेला बन्द हो गया था, किन्तु आठ-दस वर्षसे फिर चैत्र शुक्ल १ से १५ दिनके लिये भरने लगा है।

यहाँके प्रसिद्ध शैव श्रीबाबू रामनारायणजी वर्मा बैजनाथके परमभक्त हैं। उनके परिश्रमसे यह स्थान और भी मनोरम हो गया है। सं० १९८२ में आपने लगभग हजार-बारह सौ रुपये खर्च करके मन्दिरकी दीवारोंमें टाइल्स और संगमरमरका फर्श लगवा दिया है। अभी २०००) डिस्ट्रिक्टबोर्डने देकर कमलकुण्डकी मरम्मत करवा दी है। सारांश यह कि यह स्थान जिला शाजापुरका एक दर्शनीय स्थान बन गया है। इस प्रान्तमें यह एक तीर्थ माना जाता है। हजारों नर-नारी यहाँ यात्राको आते हैं। यहाँ अनेक पापोंका प्रायश्चित्त होकर उनकी शुद्धि होती है। पर्वोंपर, शिवरात्रि तथा कार्तिकी पूर्णिमा एवं श्रावणके सोमवारोंपर यहाँ अपार भीड़ रहती है। खूब आनन्दोत्सव मनाया जाता है।

यहाँपर एक किंवदन्ती है कि जब कर्नल मार्टिन काबुल-युद्धमें गये तब उनका पत्र कई दिनोंसे नहीं आया, इस कारण मिसेज मार्टिन उदास-मन होकर हवाखोरीके लिये निकलीं। बैजनाथ महादेवकी पूजा करते देख मिसेज मार्टिनने भी अपने पतिके कुशल-समाचार प्राप्त होनेपर तथा आगर लौट आनेपर महादेवका मन्दिर बनवानेकी मानता की। शिव-कृपासे ग्यारहवें दिन पत्र भी आ गया और उसमें यह लिखा था कि 'मुझे एक अदृष्ट शक्ति सहायता देती है। जटा-दाढ़ी-वाला, बैलपर सवार एक अज्ञात पुरुष त्रिशूल हाथमें लिये रात-दिन मेरी रक्षा करता है, इत्यादि।' जब कर्नल मार्टिन युद्धक्षेत्रसे वापस लौटे तब मिसेज मार्टिनने उन्हें अपनी बात कह सुनायी और प्रतिज्ञानुसार यह मन्दिर बनवा दिया। यह बात कहाँतक ठीक है, इसके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ भी हो, यह बैजनाथ महादेवका स्थान एक अत्यन्त चमत्कारी स्थान है।

जबलपुरके श्रीगौरीशङ्कर तथा गुप्तेश्वर महादेवके मन्दिर

(लेखक—पं० श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी)

मध्यप्रान्तान्तर्गत जबलपुरसे तेरह मीलके अन्तरपर नर्मदा और सरस्वतीका सङ्गम होता है। यह स्थान भेड़ाघाटके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ पञ्चवटी, भृगु-आश्रमादि कई तीर्थ हैं। थोड़ी ही दूरपर नर्मदाका प्रसिद्ध जलप्रपात है। आसपास कोई मीलभरतक सफ़ेद संगमरमरकी ऊँची-ऊँची चट्टानें, रजतमयी पर्वतमालिकाकी भाँति चमकती हुई खड़ी हैं। इसी स्थानपर सघन सुन्दर हरियालीसे घिरे हुए एक मनोरम मन्दिरमें श्रीगौरीशङ्कर विराजमान हैं। दृश्य इतना मनोरम एवं चित्ताकर्षक है कि देश-विदेशके यात्री बड़ी उत्सुकतासे इसे देखनेके लिये आते हैं, यहाँकी शुभ्र मृत्तिका, जो कालान्तरमें कतिपय प्राकृतिक नियमोंके अनुसार संगमरमरके रूपमें परिणत हो जाती है, लद-लदकर पाउडर बनानेके लिये देश-विदेशतक जाया करती है। मन्दिर प्रसिद्ध शकवंशीय राजा शालिवाहनका बनवाया हुआ बतलाया जाता है। यद्यपि आततायी मुसलमानोंकी ध्वंसलीलाके चिह्न यहाँ भी मौजूद हैं, तथापि इसमें देखनेकी बहुत कुछ सामग्री अब भी मौजूद है। मन्दिरके गर्भगृह और जगमोहनकी बनावट अतीव सुन्दर है। विशाल नन्दीपर मानुष-विग्रहमें विराजमान गौरीसहित शङ्करकी मूर्तिको देखकर नेत्र ठगे-से रह जाते हैं। शङ्करजीके
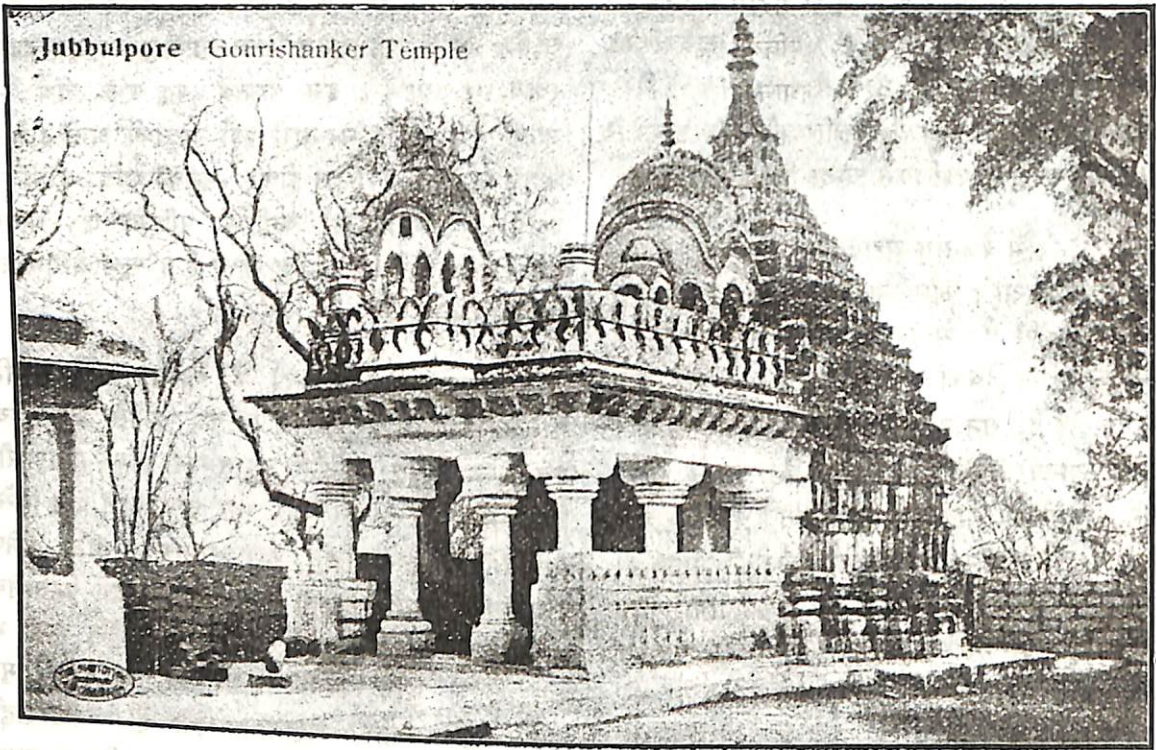
श्रीगौरीशङ्कर-मन्दिर, जबलपुर
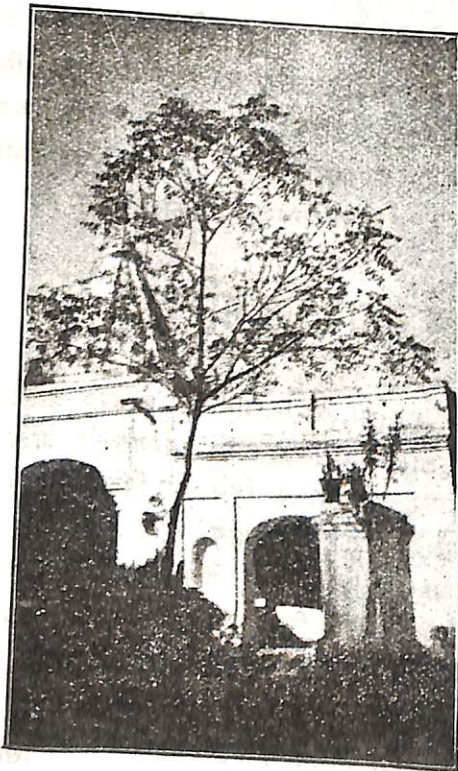
पार्वती-मन्दिर (जबलपुर)
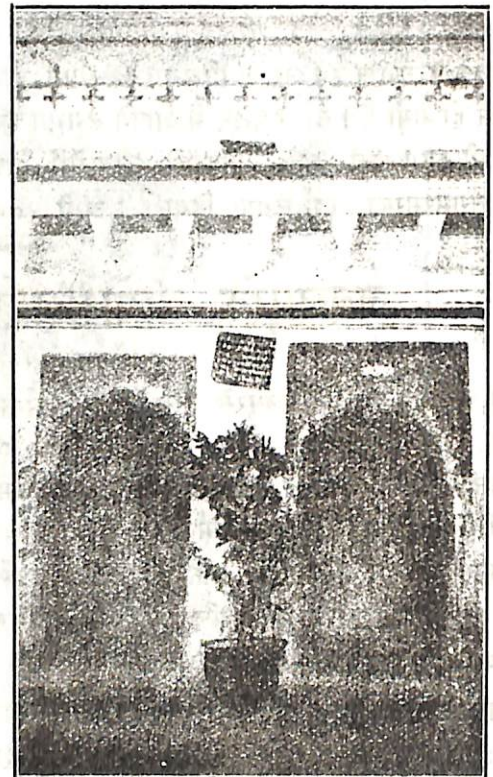
गुप्तेश्वरका भीतरी दृश्य (जबलपुर)

एक चरणका अँगूठा मुहम्मद गोरीकी गदासे खण्डित हो गया था। कहते हैं, अन्य अनेक देवमूर्तियोंको अंगभंग करनेके पश्चात् जब आक्रमणकारी इस प्रधान मूर्तिके निकट आया तो उसके प्रथम आघातके होते ही—जिससे यह अँगूठा भग्न हुआ—सामनेके कुण्डसे भयङ्कर भौंरोंका दल उसपर टूट पड़ा, जिससे उलटे पैर भागकर ही उसने अपनी जान बचायी। मन्दिरके नीचे गुहाएँ हैं जिनका सम्बन्ध मूर्तिके सामनेवाले कुण्डसे बतलाया जाता है। अनुमान किया जाता है कि इन गुहाओंमें कई वृद्ध योगी अब भी मौजूद हैं। कहते हैं, कुछ लोग इनका पता लगानेके अभिप्रायसे इनके अन्दर घुसे भी; पर वापस नहीं लौटे। कुण्डमें यदा-कदा एक नागराजके दर्शनकी बात कही जाती है; पर आजकल वह एक शिलासे बन्द कर दिया गया है। कहते हैं, किसी पुजारीने भयभीत होकर ऐसा किया है। मन्दिरके घेरेके एक दालानमें अंगभंग की हुई चौसठ योगिनियों तथा अन्य देवताओंकी प्रतिमाएँ हैं। तान्त्रिक उपासकोंद्वारा निर्माण करायी हुई इन मूर्तियोंकी कला, इनके आभूषण और अस्त्र-शस्त्रादिके भेद इस विषयके पण्डितोंके लिये विशेषरूपसे द्रष्टव्य हैं।

जबलपुरसे दो मील दक्षिणकी ओर नर्मदाजी तथा शहरके बीच एक पर्वत-कन्दरामें श्रीगुप्तेश्वर महादेवका स्थान है। यह स्थान अत्यन्त सुरम्य, दर्शनीय तथा स्वास्थ्यप्रद है। यहाँ अनेक वर्षों पूर्व भगवान् शङ्कर स्वयं प्रकट हुए थे। मन्दिरके भीतरी दृश्यका चित्र दिया जाता है। सामने खोहमें शिवलिङ्ग विराजित है।

श्रीगुप्तेश्वरजीके मन्दिरसे उत्तरकी ओर ठीक सामने महारानी पार्वतीजीका एक बड़ा सुन्दर मन्दिर है। मन्दिरके सामनेसे लिया हुआ एक चित्र पाठकोंकी जानकारीके लिये दिया जाता है।

श्रीगुप्तेश्वरजीके स्थानसे पश्चिमकी ओर पहाड़ीका दृश्य बड़ा मनोमोहक है। यहाँ प्रायः शहरके लोग तथा अन्य यात्री भी नित्यप्रति दर्शनार्थ एवं वायुसेवनार्थ आया करते हैं।

क्षीरपुरके प्राचीन मन्दिर

(लेखक—श्रीबद्रीप्रसादजी साकरिया)

यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है जो अब 'खेड़' के नामसे प्रसिद्ध है। लोगोंमें ऐसी किंवदन्ती है और पुरानी ख्यातोंसे भी ऐसा ही प्रकट है कि तिलवाड़ा (तेलीवाड़ा), कल्लावास, वांहरावास, वज्जावास, तेमावास (ताम्रवास), थान और बरिया आदि दो-दो, चार-चार कोसके इधर-उधरके ग्राम इस बृहत् नगरके मोहल्ले थे। कुछ भी हो, ध्वंसावशेषोंके देखनेसे भी यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि किसी समय यह एक विशाल नगर ही नहीं था, किन्तु इस निर्जन और निर्जल मरुस्थलकी पुण्यसलिला पावन-कारिणी एवं पालनकारिणी लूनी नदीके किनारे यह एक बड़ा तीर्थ-स्थान था, बीसियों खँडहरोंके बड़े-बड़े ऊँचे-ऊँचे टीबे, जिनके खोदनेसे अनेक प्रकारकी मूर्तियों और मन्दिरोंके पत्थर निकलते हैं, इस बातको साक्षी देते हैं। इस समय भी इस तीर्थ-क्षेत्रमें पाँच जीर्ण मन्दिर विद्यमान हैं जो उस समयके कला-वैचित्र्यसे आश्चर्य उत्पन्न करते हैं। चित्रकला तो चित्रकला ही, पर बड़े-बड़े वैज्ञानिक तो सबसे ज्यादा इसीपर हैरान हैं कि एक कच्चे लाल पत्थरपर दर्पणके समान बिना किसी मसालेके वह चमकदार पॉलिस की गयी है जिसको छेनीसे छुटा लेनेपर ऐसा भुरभुरा पत्थर निकलता है जो अँगुलियोंके रगड़नेसे मिट्टीकी तरह क्षरण हो जाता है। मन्दिरों और मूर्तियोंकी बनावट अलौकिक-सी जान पड़ती है। भगवान् श्रीरणछोड़रायकी पाँच फुट ऊँची श्वेत चतुर्भुज मूर्तिकी चित्रकारी और शोभा अकथनीय है। इसी मन्दिरके भीतर भगवान् शङ्कर, जगत्पिता ब्रह्मा, श्रीगणेशजी और हनूमान्‌जीके मन्दिर हैं। भगवान् शङ्करके मन्दिरमें एक विशालकाय क्षीरसागरमें शेषके ऊपर शयन करती हुई विष्णु-भगवानकी चतुर्भुज मूर्ति भगवान् शङ्करके दर्शन कर रही है। चरणोंमें जगज्जननी लक्ष्मीजी विराज रही हैं। नीचे पाताललोकका एक अद्भुत दृश्य देखते ही बनता है। रेलवे-लाइनके पास पञ्चमुखी महादेवका एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है जो प्रायः शिखरके सिवा सब टूटा-फूटा है।
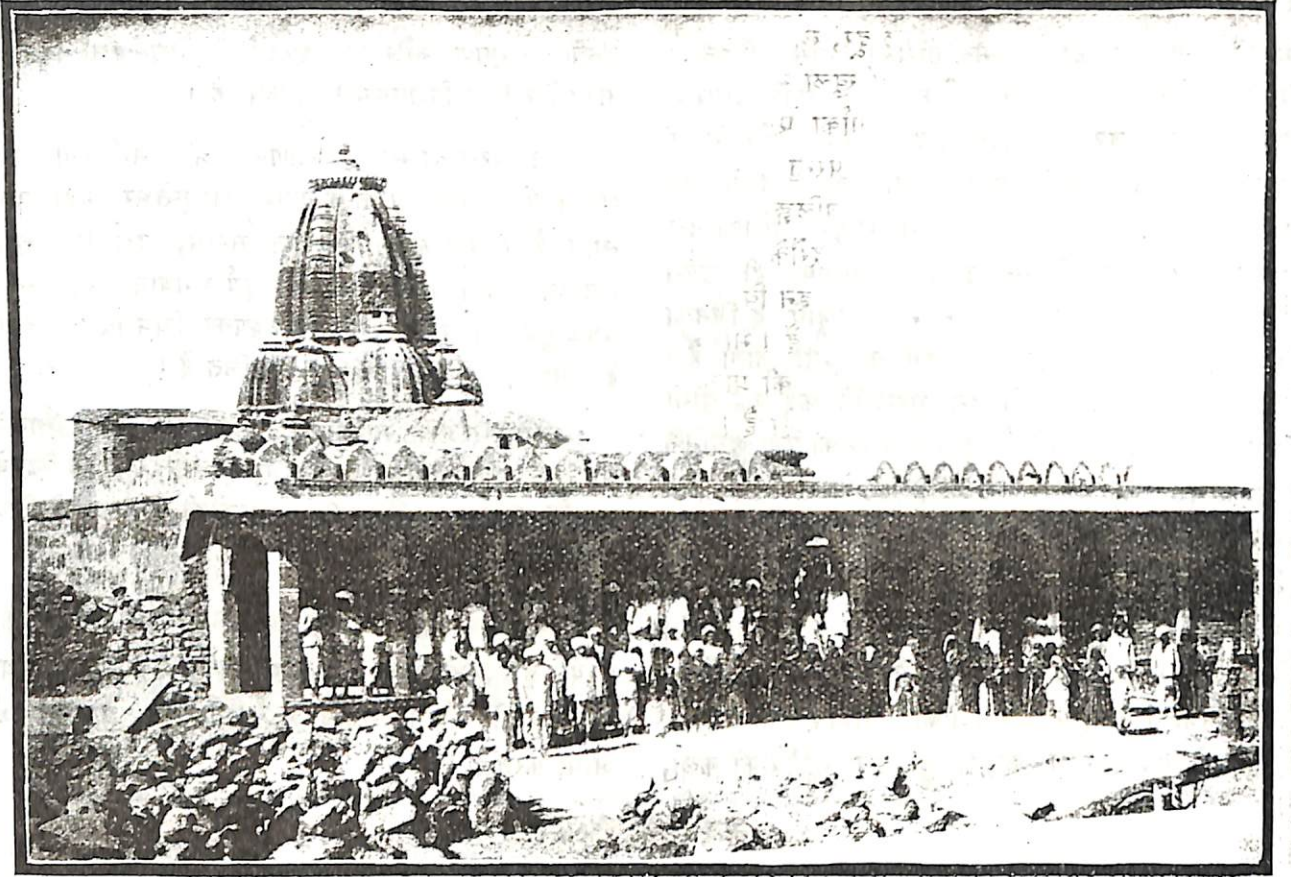
१–रणछोड़रायजीका मन्दिर, २–ब्रह्माजीका मन्दिर, ३–भगवान् शिवका मन्दिर, ४–गणेशजीका मन्दिर, ५–हनूमान्‌जीका मन्दिर
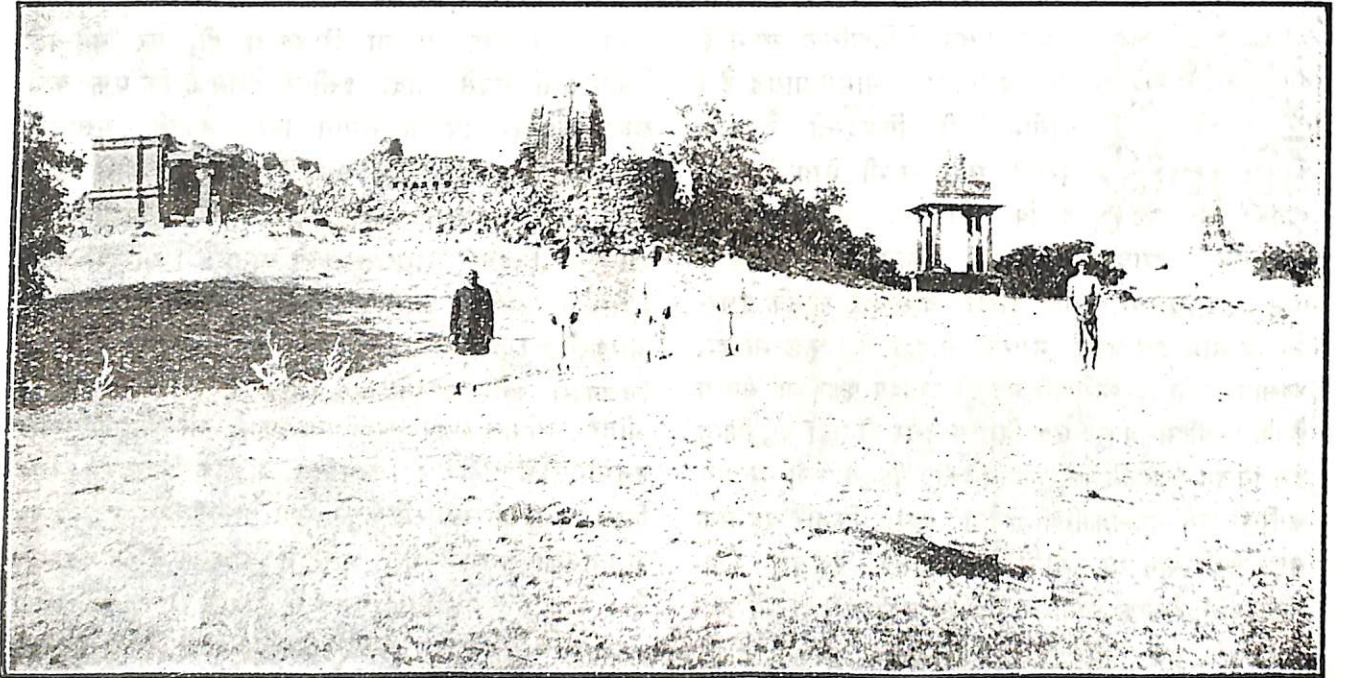
१–महामाया दुर्गाजी औरअन्नपूर्णाका मन्दिर, २–पञ्चमुखी महादेवजीका मन्दिर, ३–शिवजीकी छत्री, ४–भगवान् रणछोड़रायजीका मन्दिर

मन्दिरके बाहर दरवाजेके सामने कुछ दूर, लाइनके पास भगवान् शङ्करकी एक सुन्दर छत्री (खुला मन्दिर) है और इन्हींके पीछेकी ओर महामाया दुर्गाका एक मन्दिर है। इसी प्रकार उत्तरकी ओर एक बड़ा, परन्तु टूटा-फूटा शिव मन्दिर है जिसमें एक विशाल शिवलिङ्ग स्थापित है। इन मन्दिरोंके सिवा और बहुत-से मन्दिरोंके खँडहर भगवती पृथिवी माताकी गोदमें सोये पड़े हैं जो इन विद्यमान मन्दिरोंके साथ ऐतिहासिकोंकी अमूल्य सामग्री हैं। भारतके एक सबसे पिछड़े देश मरुस्थल (मारवाड़) की प्राचीन सभ्यताका यह तीर्थ-क्षेत्र एक जीता-जागता नमूना है।

जोधपुर रेलवेके लूनी जंकशन स्टेशनसे सिन्धकी ओर जानेवाली रेलवे-लाइनपर बालोतरासे पाँच मील पश्चिम यह तीर्थ-क्षेत्र है। रेलवे-लाइन तीर्थ-क्षेत्रके बीच पञ्चमुखी-महादेवके मन्दिरके पाससे होकर निकलती है। पर यहाँ स्टेशन नहीं है। मेलोंपर बालोतरासे स्पेशल गाड़ियों, मोटरों, बैलगाड़ियों तथा ऊँट आदिसे जानेका प्रबन्ध है।

अभी दो-तीन वर्षसे यात्रियोंके ठहरनेके लिये कोटरियाँ, सालें, पानीका एक बहुत बड़ा टाँका बननेका और मन्दिरोंकी मरम्मत आदिका काम चल रहा है। टाँका और यात्रियोंके ठहरनेके लिये तो पर्याप्त स्थान बन चुके हैं। मरम्मत, रंगसाजी आदिका काम चल रहा है। पहलेकी अपेक्षा अब यह क्षेत्र अधिक रमणीय हो गया है। दानीलोग इस क्षेत्रके जीर्णोद्धारमें हाथ बँटाकर पुण्य और यशके भागी बनें और तीर्थ-यात्रा करते समय इधर भी पधारकर भगवान् और प्राचीन कलाके दर्शनका लाभ उठावें।

आसामके दो शिव-मन्दिर

(लेखक—पं० श्रीवंशीधरजी शर्मा काव्यतीर्थ)

श्रीमुक्तिनाथ महादेवका मन्दिर आसाम प्रान्तके शिवसागर स्थानमें है। इसका इतिहास यह है कि यहाँका आहोमवंशीय राजा शिवसिंह बड़ा शिव-भक्त था। उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर एक बार शङ्करजीने उसे स्वप्नमें यह आदेश दिया कि तू एक मेरे ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापना कर, इससे तेरी मनःकामनाकी पूर्ति तथा ख्याति होगी। राजाने इस आदेशको शिरोधार्य कर सन् १७२० ई० में एक अष्टदलकमलाकार सुन्दर-विशाल प्रस्तर-मन्दिर बनवाया और उसके शिखरपर सवा मनका स्वर्णकलश रखवाया और

मुक्तिनाथ

उसके अन्दर श्रीमुक्तिनाथकी स्थापना करायी। कहते हैं, जब इस प्रान्तकी स्वाधीनता अपहृत हुई तब इस मन्दिरके शिखर-स्थित स्वर्णकलशको लूटनेकी चेष्टामें गोली-वर्षा हुई, जिसके चिह्न कलशपर अबतक मौजूद हैं। भगवान् शङ्करने मन्दिरकी शोभाकी रक्षा की। कहते हैं, एक-एक कलशपर सर्प-ही-सर्प दिखलायी पड़ने लगे, जिससे उसकी लूट होनेसे बच गयी।

राजा शिवसिंहने इस मन्दिरके अतिरिक्त और भी दो मन्दिर बनवाये—एक शिव-मन्दिरकी बायीं ओर श्रीविष्णुका और दूसरा इसकी दाहिनी ओर

श्रीदेवीजीका। इसके पीछे उत्तर-दिशामें एक बृहत् सरोवर भी बना है, जिसका घेरा तीन मील है। संवत् १९६१ में महाशिवरात्रिके दिन प्रातःकाल इस सरोवरमें जलके स्थान-

तिनसुकिया-शिव-मन्दिर

में दूध-ही-दूध हो गया। श्रीमुक्तिनाथकी बड़ी महिमा है। फा० शु० चतुर्दशीको महाशिवरात्रिके अवसरपर यहाँ मेला होता है। शिवसागर ए० बी० रेलवेके सिमलुगुडी जंकशनसे जानेवाली एक ब्राञ्च लाइनपर स्थित है।

दूसरा मन्दिर तिनसुकिया (आसाम) का है। यहाँ प्राचीन तालाबपर वहाँके व्यापारियोंने सुन्दर शिवालय बनवा दिया है, स्थान दर्शनीय है। पूजा आदिकी सुन्दर व्यवस्था है। लोग बड़े भक्तिभावसे भगवान् शिवका दर्शन-पूजन किया करते हैं।

ईडर-राज्यके कुछ खास शिव-मन्दिर

(लेखक—पं० श्रीजदुराम रविशङ्करजी त्रिवेदी)

१ श्रीवीरेश्वर महादेव–यह मन्दिर विजयनगर महीकाँठा-के हदपर है। बहुत प्राचीन स्थान है। पहाड़ियोंसे घिरे हुए भयङ्कर जंगलमें है। बाणलिङ्ग स्वयम्भू और बड़ा चमत्कारी है। मन्दिरके पश्चिम पहाड़पर लगभग हजार-वर्षका पुराना एक विशाल गूलरका पेड़ है। इस पेड़की जड़से रात-दिन (गंगा) जल बहा करता है और श्रीमहादेवजीके थोड़ी ही दूरपर एक तालाबमें जाकर गिरता है, जो आसपासके कई गाँवोंके हजारों मनुष्यों और पशुओंके उपयोगमें आता है। जल कभी शेष नहीं होता। जब तालाब भर जाता है तो जल जमीनपर बहने लगता है, परन्तु आश्चर्य यह है कि वह दो-तीन खेतोंसे आगे नहीं जाता। श्रीवीरेश्वर महादेवकी जय बोलनेसे जल बढ़ता हुआ प्रत्यक्ष नजर आता है। छप्पनके प्रसिद्ध अकालमें भी यहाँ जल भरपूर था।

यह स्थान बहुत ही निर्जन है, रातको सिंह-बाघ आदि भी आ जाते हैं, परन्तु वे किसीकी हिंसा नहीं करते। हर साल शिवरात्रिपर यहाँ बड़ा मेला लगता है।

२ श्रीनीलकण्ठ महादेव–यह मन्दिर ईडर-स्टेटके मुटेडी नामक ग्रामके समीप ईडर-स्टेशनसे १० मीलकी दूरीपर है। भयानक जंगल पहाड़ोंसे घिरा है। यह शिवलिङ्ग भी स्वयम्भू है। लिङ्गकी ऊँचाई पाँच फुट है। यह मूर्ति पहले जमीनके अन्दर थी। कहते हैं कि लगभग ७५ वर्ष पूर्व एक ब्राह्मणको स्वप्नादेश हुआ था, तब यह मन्दिर बनाया गया था। यहाँ एक सुन्दर जलाशय है। हजारों आदमी दर्शनार्थ आते हैं। श्रावणमें तो सारे महीने ब्राह्मण यहाँ रहते हैं। मन्दिरके आसपास पुराने बड़ोंका जंगल है।
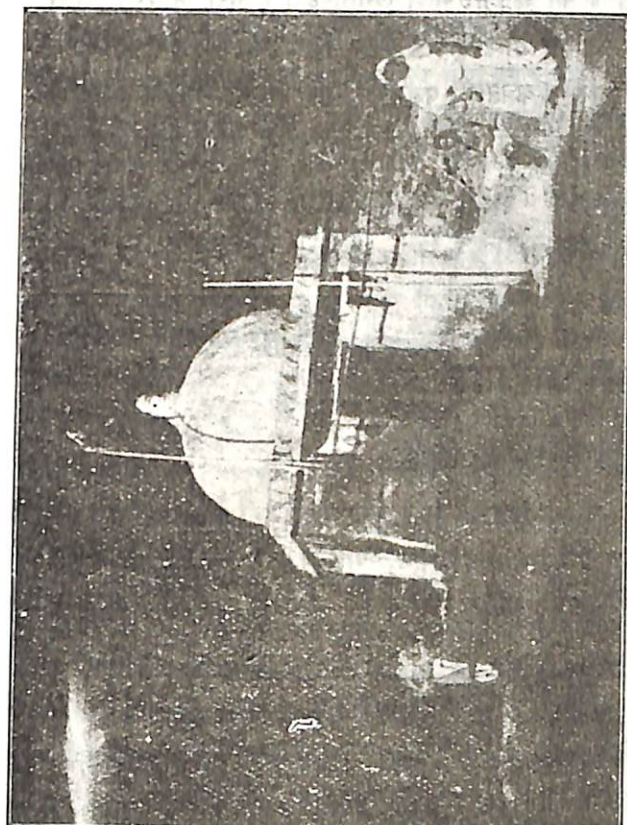
वीरेश्वर महादेव—ईडर

मुंधेणा महादेव—ईडर
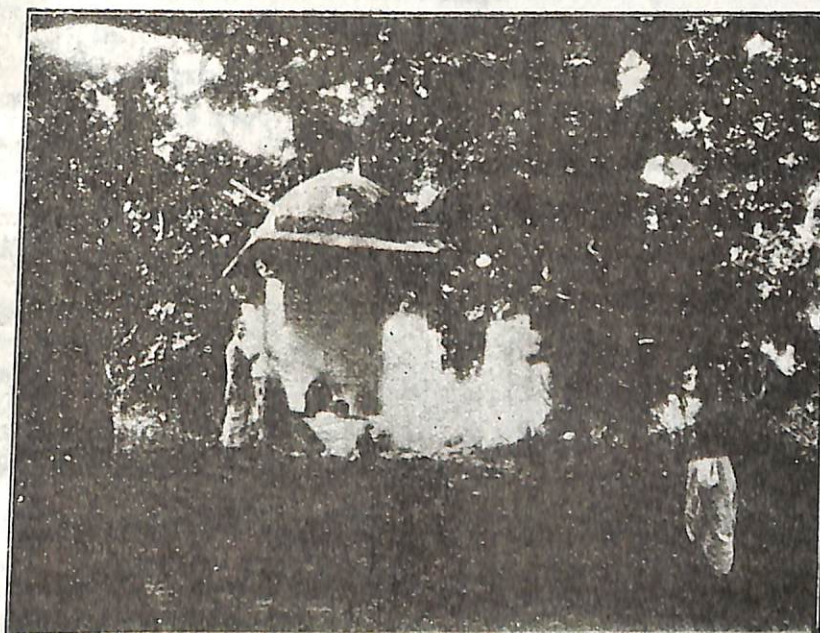
नीलकण्ठ महादेव—ईडर

३श्रीमुंधेणा महादेव–यह मन्दिर ईडर महीकाँठाके जादर ग्राममें है। ईडरसे जादर ग्रामका रेलका रास्ता है। रेलवे-स्टेशन गाँवसे एक मील दूर है। मोटर तथा गाड़ियाँ भी जाती हैं।

यह स्थान पुराना है, चारों तरफ किलेबन्दी-सी की हुई है। मन्दिर एक नीमके वृक्षके नीचे है। यहाँ भादों सुदी ४ को प्रतिवर्ष मेला लगता है। हजारों आदमी आते हैं। यह भी स्वयम्भूलिङ्ग है। मन्दिरके शिखरपर नीमके वृक्षकी एक डाली पड़ती है, उसके पत्ते मीठे हैं। इसके सिवा पेड़के सब पत्ते कड़वे हैं। लिङ्गके आस-पास एक भूरे रंगका नाग फिरता रहता है। नागपञ्चमीके दिन लोगोंको उसके दर्शन होते हैं।

बानपुरके श्रीकुण्डेश्वर महादेव

(लेखक—श्रीमथुराप्रसादजी)

बुन्देलखण्डके अग्रगण्य ओड़छा-राज्यमें उसकी टीकमगढ़ नामक वर्तमान राजधानीसे चार मील दक्षिण जमड़ार नदीके उत्तर-तटपर अति ऊँचे कँगारपर श्रीशिवजी-का एक प्राचीन मन्दिर है। स्थानकी रमणीयताके अतिरिक्त एक विचित्रता यह है कि ऊपर तो बहुत ही ऊँचा पहाड़ी तट है और नीचे नदी छोटी होते हुए भी एक कुण्ड ऐसा बन गया है जिसकी गहराईका थाह नहीं है। एक तटपर तो विशाल तथा सुन्दर घाट, मन्दिर, गृह और समीप ही दूसरे तटपर अति सघन वन है। मन्दिरसे चार मीलपर दूसरी नदी जामनेका सङ्गम है और सङ्गमसे दो मील हटा हुआ बानपुर ग्राम है। यह बानपुर अब भी साधारण ग्रामोंसे बड़ा तथा उन्नत है, परन्तु पहले यह भी एक छोटे-से

बानपुरके श्रीकुण्डेश्वर महादेव

राज्यकी राजधानी था। उस समयकी भग्नावशेष अटारियाँ अब भी विद्यमान हैं। उक्त राजधानीको तो दो तीन सौ वर्ष ही हुए; परन्तु यह शिव-मन्दिर तथा यह बानपुर स्थान बहुत ही प्राचीन कहा जाता है, और इस ओर विश्वास किया जाता है कि यह बानपुर वही स्थान है जो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पौत्र अनिरुद्धके श्वसुर बाणासुरकी राजधानी था और यह वही शिव-मन्दिर है जिसकी बाणासुर तथा उसकी कन्या उषा पूजा किया करते थे। इसके साथका चित्र इसी शिव-मन्दिर, घाट इत्यादिका है जो एक पर्व-स्नानके समयपर श्रीकुँवर मजबूतसिंह फोटोग्राफर टीकमगढ़ने नदीके दूसरे तटपरसे लिया था। स्वर्गवासी श्रीओड़छानरेशने श्रद्धा-भक्तिसे मन्दिर और नदीके बीचमें इतने भवनादि निर्माण करा दिये कि जिनमें मन्दिर मानों छिप-सा गया है। इस चित्रमें मन्दिरका शिखरमात्र बायें सिरेपर आ सका है। दाहिने सिरेपर एक जलप्रपात है। यहाँ शिवरात्रिको मेला लगता है और मकरसंक्रान्तिपर भी स्नान होता है। नदीके कुण्डपर स्थिति होनेके कारण अब इनका नाम कुण्डेश्वर महादेव हो गया है।

श्रीशिवजीके अष्टोत्तरशत दिव्य देश*

(लेखक—वैष्णव श्रीरामटहलदासजी, बड़ा स्थान, दारागंज, प्रयाग)

१ कैवल्यशैलमें श्रीकण्ठ शिव। २ हिमाचलपर केदारेश्वर। ३ काशीमें विश्वनाथ। ४ श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन। ५ प्रयागमें नीलकण्ठ। ६ गयामें महारुद्र। ७ कलिञ्जरमें नीलकण्ठेश्वर। ८ द्राक्षाराम-पर्वतपर भीमेश्वर। ९ मायूरपुरमें अम्बिकेश्वर। १० ब्रह्मावर्तमें देवलिङ्ग। ११ प्रभास-क्षेत्रमें शशिभूषण। १२ श्वेतहस्तिपुरमें वृषभध्वज। १३ गोकर्णमें गोकर्णनाथ। १४ सोमनाथमें सोमेश्वर। १५ श्रीरूपाख्य-पर्वतपर त्यागेश्वर (त्यागराज)। १६ वेदपुरमें वेदेश्वर। १७ भीमारामपुरमें भीमेश्वर। १८ मन्थनपुरमें कालिकेश्वर। १९ मानसरोवरमें माधवेश्वर। २० श्रीवाञ्छकपुरमें चम्पकेश्वर। २१ पञ्चवटीमें वटेश्वर। २२ गजारण्य (बैजनाथ) में वैद्यनाथ। २३ तीर्थाद्रिमें तीर्थकेश्वर। २४ कुम्भकोणम्‌में कुम्भेश्वर। २५ लेपाक्ष्यापुरीमें पापनाशनेश्वर। २६ कण्वपुरीमें कण्वेश्वर। २७ मध्यपर्वतपर मध्यार्जुनेश्वर। २८ हरिहरक्षेत्रमें श्रीशङ्कर-नारायणेश्वर। २९ विरिञ्चिपुरमें मार्गेश्वर। ३० पञ्चनदी-सङ्गममें गिरीश्वर। ३१ पम्पापुरीमें विरूपाक्षनाथ। ३२ सोमाद्रिमें मल्लिकार्जुनेश्वर ३३ त्रिमङ्गकूटमें अगस्त्येश्वर। ३४ सुब्रह्मण्यक्षेत्रमें अहिपेश्वर। ३५ महाबलशिलोच्चयमें महाबलेश्वर। ३६ दक्षिणावर्त-पर्वतपर अर्केश्वर। ३७ वेदारण्यपुरमें वेदारण्येश्वर। ३८ सोमपुरी (त्रिमुख) में सोमेश्वर। ३९ अवन्तीमें रामलिङ्गेश्वर। ४० काश्मीरमें विजयेश्वर। ४१ महानन्दीपुरमें महानन्दीपुरेश्वर। ४२ कोटि-तीर्थमें कोटीश्वरनाथ। ४३ वृद्धाचलपर अचलेश्वरनाथ। ४४ ककुद्गिरिपर गङ्गाधरेश्वर। ४५ चामराजनगरमें चामराजेश्वर। ४६ नन्दगिरिमें नन्देश्वर। ४७ वधिराचलमें चण्डेश्वर। ४८ श्रीनगरमें नंजुंडेश्वर। ४९ शतशृङ्गपर सर्वाधिपेश्वर। ५० घनानन्दाचलपर सोमनाथ। ५१ नल्लूरपुरमें विमेश्वर। ५२ नीडानाथपुरमें नीडानाथेश्वर। ५३ एकान्त स्थानमें रामलिङ्गेश्वर। ५४ श्रीनागपुरमें कुण्डलीश्वर। ५५ श्रीकन्या-क्षेत्रमें त्रिभङ्गीश्वर। ५६ श्रीउत्सङ्ग-क्षेत्रमें श्रीराघवेश्वर। ५७ मत्स्यतीर्थमें तीर्थेश्वर। ५८ त्रिकूटाचलपर ताण्डवेश्वर। ५९ प्रपन्नाख्यपुरमें मार्गसहायेश्वर। ६० गण्डकीमें शिव-नाभ। ६१ श्रीपतिपुरमें श्रीपतीश्वर। ६२ धर्मपुरीमें धर्म-लिङ्ग। ६३ कन्याकुब्जमें कलाधर। ६४ वाणीग्रामपुरमें विरञ्चीश्वर। ६५ नेपालमें नकुलेश्वर। ६६ जगन्नाथपुरीमें मार्कण्डेयेश्वर। ६७ नर्मदातटपर ओङ्कारेश्वर स्वयम्भू। ६८ धर्मस्थलमें मञ्जुनाथ। ६९ त्रिरूपपुरमें व्यासेश्वर। ७० स्वर्णवतीपुरीमें कलिगेश्वर। ७१ निर्मलाचलपर पन्नगेश्वर। ७२ पुण्डरीकपुर (पण्ढरपुर) में जैमिनीश्वर। ७३ अयोध्यामें मधुरेश्वर (नागेश्वर)। ७४ सिद्धवटीमें सिद्धेश्वर। ७५ श्रीकूर्माचलपर त्रिपुरान्तक। ७६ मणिकुण्डक-तीर्थमें मणिमुक्तानदीश्वर। ७७ वटाटवीमें कृत्तिवासनाथ। ७८ त्रिवेणीमें सङ्गमेश्वर। ७९ अस्तनितापुरमें मल्लेश्वर। ८० इन्द्रकीलमें अर्जुनेश्वर। ८१ शेषाद्रिपर कपिलेश्वर। ८२ पुष्पगिरि-पर्वतपर पुष्पगिरीश्वर। ८३ चित्रकूटमें भुवनेश्वर। ८४ उज्जैनपुरीमें महाकालिकेश्वर। ८५ ज्वाला-मुखीपर्वतपर शूलटङ्केश्वर। ८६ मङ्गलगिरिशिखरपर सङ्गमेश्वर। ८७ तञ्जापुरी (तञ्जावर) में बृहदीश्वर।

* ललितागम, ज्ञानपाद, शिवलिङ्गप्रादुर्भाव-पटलमें वर्णित।

८८ वह्नीपुष्करक्षेत्रमें रामेश्वर। ८९ लङ्काद्वीपमें मत्स्येश्वर। ९० गन्धमादनपर्वतपर कूर्मेश्वर। ९१ विन्ध्याचलपर वराहेश्वर। ९२ अहोबलमें नृसिंहेश्वर। ९३ कुरुक्षेत्रमें वामनेश्वर। ९४ कपिलतीर्थमें परशुरामेश। ९५ सेतुबन्धपर रामेश्वर। ९६ साकेतपुरमें बलरामेश। ९७ वारणावतपुरी (वाराणसी, दक्षिण-काशी) में बौद्धेश्वर। ९८ तत्त्वक्षेत्रमें कल्कीश्वर। ९९ महेन्द्राचलपर कृष्णेश। १०० कैलाशपर्वतपर परःशिव। १०१ सूर्यबिम्बमें सदाशिव। १०२ वैकुण्ठमें नारायणेश। १०३ पातालमें हाटकेश्वर। १०४ ब्रह्मलोकमें ब्रह्मेश्वर। १०५ इन्द्रप्रस्थमें लोकनाथ। १०६ अमरकण्टकमें अमरनाथ। १०७ लवपुरीमें पशुपतिनाथ। १०८ रुद्रप्रयागमें एकादशरुद्रेश्वर।

पञ्चतत्त्वमय पञ्चलिङ्गस्थापना। शिवकाञ्चीमें पृथिवी-तत्त्वका लिङ्ग है। जम्बुनाथमें जललिङ्ग है। अरुणाचलपर तेजोमयलिङ्ग है। कालहस्तिगिरिपर वायुलिङ्ग है। चिदम्बरम्‌में आकाशलिङ्ग है। छायवनमें छायवनेश्वर—छायालिङ्ग है। हिरण्यगर्भ-क्षेत्रमें स्वयं महादेवेश्वरलिङ्ग है। और आम्रातक-क्षेत्रमें सूक्ष्मेश्वरलिङ्ग है।

शिवके दिव्य देशोंके स्मरण-कीर्तनका बड़ा भारी माहात्म्य है। कहा है—

> पृथ्व्यादिपञ्चतत्त्वानां लिङ्गानि स्मरतां नृणाम्।
> मुक्तिः करस्था भवति नात्र कार्या विचारणा॥
> त्रयोदशोत्तरशतस्थानानि परमेशितुः।
> प्रातःकाले तु पूजान्ते स्मर्तव्यानि मनीषिभिः॥
> पुण्यकर्माणि सर्वाणि तैः कृतानीह जन्मनि।
> तेषां फलप्रवचने शक्तः शेषोऽपि न क्वचित्॥

अर्थात् पृथिवीपरके पृथिव्यादि-पञ्चतत्त्वमय लिङ्गोंका तथा ११३ शिवजीके दिव्य देश-स्थानोंका प्रातःकाल स्मरण करनेवालेकी मुक्ति हाथमें रक्खी है और समस्त पुण्यकर्म इसी जन्ममें कर लेनेका फल भी उसे मिलता है। अतः शिव-भक्तोंको नित्य ही उक्त स्थानोंका स्मरण-ध्यान करना चाहिये। (ऐसा करनेसे उन्हें) साक्षात् शिव-सायुज्य, मोक्ष प्राप्त होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

मथुराके रक्षक शिव

(लेखक—ज्योतिर्विद् पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी)

श्रीविष्णुके षोडशकलावतार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जन्मभूमि, व्रजमण्डलकी राजधानी श्रीमथुरापुरी वैष्णवोंकी एक प्रधान नगरी गिनी जाती है। 'हरि-भक्तोंकी मथुरा अरु हर-भक्तोंकी काशी' ऐसी कहावत प्रसिद्ध है। इतना ही नहीं, हरि-भक्तोंकी परमपुनीत इस पुरीकी रक्षा भी हरिके परमभक्त श्रीशङ्कर करते हैं। मथुराकी चारों दिशाओंमें दिक्पालरूपसे विराजते हुए भगवान् शङ्कर इस पुरीकी रक्षा करते हैं। पूर्वमें श्रीपिप्पलेश्वरनाथ, दक्षिणमें श्रीरङ्गेश्वरनाथ, पश्चिममें क्षेत्रपति श्रीभूतेश्वरनाथ और उत्तरमें श्रीगोकर्णेश्वरनाथ हैं। मथुराकी ही नहीं, सच पूछिये तो सारे व्रजमण्डलकी रक्षा श्रीशङ्कर करते हैं। आप मथुरामें भूतेश्वर, गोवर्धनमें चक्रेश्वर, कामवनमें कामेश्वर और वृन्दावनमें गोपेश्वररूपसे विराजमान हैं; पर स्थानाभावसे यहाँ केवल मथुराके चार शिवोंका संक्षेपमें कुछ विवरण दिया जाता है—

भूतेश्वर—पश्चिम-दिशाके संरक्षक मथुरापुरीके क्षेत्रपाल हैं। जबतक प्राणी भूतेश्वरका दर्शन नहीं करता तबतक उसकी मथुरा-यात्रा सफल नहीं होती। वराहपुराणान्तर्गत मथुरा-माहात्म्यके चतुर्थ अध्यायमें भूतेश्वर-माहात्म्य है। वहाँ लिखा है कि एक बार महादेवजीने एक सहस्र वर्ष-पर्यन्त घोर तप किया तब श्रीविष्णुने प्रसन्न होकर वरदान-का वचन दिया। श्रीशङ्करने यही वर माँगा कि 'आप अपनी मथुरापुरीमें रहनेके लिये मुझे जगह दीजिये।' श्रीविष्णुने सहर्ष वरदान देकर कहा कि 'आप वहाँ क्षेत्रपति होकर रहिये।' शिवमहापुराणमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके माहात्म्यके पश्चात् उपलिङ्गोंके वर्णनमें भी श्रीभूतेश्वरके सम्बन्धमें लिखा है कि—

> केदारेश्वरसञ्जातं भूतेशं यमुनातटे।

अतः श्रीभूतेश्वरकी उपज्योतिर्लिङ्गोंमें गणना की जाती है। श्रीभूतेश्वरकी प्राचीनताके सम्बन्धमें मथुराके प्रसिद्ध इतिहास (Mathura Memoirs) के लेखक एफ० एस० ग्राउस, एम० ए०, सी० आई० ई०, तत्कालीन मजिस्ट्रेट (१८८२ ई०) लिखते हैं कि 'मधु दानवके पराजयके

पश्चात् आर्योंकी नगरी मथुराका तथा भूतेश्वरके मन्दिरका निर्माण हुआ। साम्प्रतिक नगरी तीसरी बार निर्माण हुई है। इसका केन्द्र किला है, जिसप्रकार दूसरी बार बसी हुई मथुराका केन्द्र भूतेश्वर-मन्दिर था और पहली बस्तीका मधुवन (पृ० १२५)। आगे चलकर आप पुनः लिखते हैं कि 'वैष्णवधर्मके विस्तारके कहीं पहले ब्राह्मणकालके प्रारम्भिक समयमें भूतेश्वर ही लोगोंके प्रधान देवता माने जाते थे, ऐसी धारणा होती है' (पृ० १३१)।
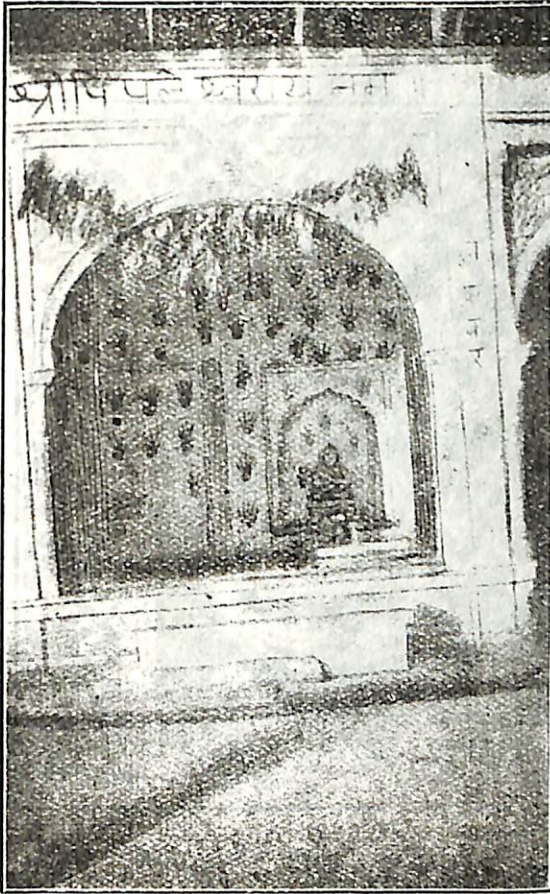
श्रीपिप्पलेश्वर (मथुरा)

श्रीगोकर्णेश्वर—दक्षिण-दिशाके संरक्षक श्रीगोकर्णेश्वरनाथ महादेव हैं। श्रीवराहपुराणमें कथा है कि वसुकर्ण नामक एक वैश्य थे। उनकी स्त्रीका नाम सुशीला था। पर सन्तान न होनेसे वह अत्यन्त दुखी होकर एक दिन उग्रतपा नामक मुनिके पास गयी। मुनि उसकी दीन दशा देखकर बोले—'हे सुन्दरि! तू गोकर्ण महादेवका नित्य पूजन कर, इससे तेरी मनःकामना पूर्ण होगी।' तदनन्तर दस वर्षतक उसने श्रीगोकर्ण महादेवकी आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर श्रीशिवजीने वरदान दिया और इसके फलस्वरूप उसको पुत्रकी प्राप्ति हुई। उसका नाम भी गोकर्ण रक्खा गया।

इसी प्रकार पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवत-माहात्म्यके चतुर्थ-पञ्चम अध्यायमें परमभागवत भक्त श्रीगोकर्णकी कथा प्रसिद्ध है, जिसकी भगवद्भक्तिसे प्रसन्न होकर श्रीहरिने उनको हृदयसे लगाकर अपने समान बनाया—

श्रीगोकर्णेश्वरनाथ महादेव (मथुरा)

गोकर्णं तु समालिङ्ग्याकरोत् स्वसदृशं हरिः॥

(श्रीमद्भागवतमाहात्म्य ५। ८०)

और जिनकी कृपासे उनके ग्रामके बसनेवाले अछूत, चाण्डालादितक भगवान् विष्णुके विमानोंमें बैठाकर विष्णुलोकको भेजे गये—

तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचाण्डालजातयः।
विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा॥

प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः॥

(श्रीमद्भागवतमाहात्म्य ५। ८३-८४)

मथुराके इतिहासलेखक मिस्टर एफ० एस० ग्राउस श्रीगोकर्णके विषयमें लिखते हैं कि 'गोकर्ण महादेवका मन्दिर बड़ा प्रधान और महत्त्वपूर्ण है। यह विशाल नेत्र, लम्बे-लम्बे बाल, दाढ़ी-मूँछोंसहित एक बृहत्काय मूर्ति है। एक हाथमें खप्पर और दूसरेमें पुष्प हैं। मूर्तिका पाषाण अत्यन्त शीर्ण हो गया है। मूर्ति निश्चय ही अत्यन्त प्राचीन कालकी प्रतीत होती है और सम्भव है,

श्रीभूतेश्वरनाथ (मथुरा)

किसी इण्डो-सिथियन राजाके द्वारा बनायी गयी हो। बौद्ध-धर्मानुसार गोकर्ण आठ वीतराग देवपुरुषोंमेंसे एक हैं। इनके पास ही श्रीगोकर्णकी पत्नी गार्गी और शार्गीकी प्रतिमाएँ हैं। इनके सम्बन्धमें यह श्लोक है—

शार्गि देवि नमस्तुभ्यमृषिपत्नि मनोरमे।
सुभगे वरदे गौरि सर्वदा सिद्धिदायिनि॥

(मथुरा-मैमोयर्स पृ० १३३-१३४)

श्रीपिप्पलेश्वरनाथ— मधुपुरीकी पूर्व-दिशाके संरक्षक कालिन्दीतटवर्ती शृङ्गार-घाटपर श्रीपिप्पलेश्वरनाथ विराजमान हैं, यह भी अति प्राचीन लिङ्ग हैं। वराहपुराणान्तर्गत मथुरा-माहात्म्यमें इनका भी वर्णन है। ये पिप्पलायतन ऋषिके स्थापित किये हुए हैं, ऐसी कथा प्रचलित है। उत्सवोंपर इस लिङ्गका शृङ्गार दर्शनीय होता है। छोटे लिङ्गको शृङ्गारद्वारा अति विशाल कर दिया जाता है।

श्रीरङ्गेश्वरनाथ महादेव (मथुरा)

श्रीरङ्गेश्वरनाथ—उत्तर-दिशाके रक्षक हैं। श्रीरङ्गेश्वरनाथ-का कंस-टीलेके पास ही शिवालय है। शिवपुराणमें श्रीरंगेश्वरनाथका भी उपज्योतिर्लिङ्गोंमें वर्णन आया है। किन्तु ग्राउससाहबके 'मथुरा-मैमोयर्स' में या अन्यत्र इनके सम्बन्धमें विशेष वृत्त नहीं मिलता।
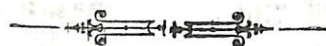
श्रीगोपेश्वर

(लेखक—आचार्य श्रीअनन्तलालजी गोस्वामी)

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः । पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

(श्रीमद्भागवत)

शरद्‌की स्वच्छ सुहावनी चाँदनीमें श्रीयमुनापुलिनके व्रजरजके कण, व्रजराजकुमारकी दिव्य-कान्तिकी झलकसे जगमगा रहे हैं। मोहनकी मुरलीकी मीठी तानसे तीनों लोकोंमें ब्रह्मानन्दसे भी अधिक अकथनीय, अपूर्व आनन्दका अखण्ड साम्राज्य है। आज योगेश्वरेश्वर श्रीश्यामसुन्दर गोपिकाओंके विशुद्ध प्रेममय माधुर्यभावमें भावुककी भाँति श्यामसुन्दररूपसे मध्यमें विराजमान हैं। आज महारासकी पूर्णिमा है। कैलासकी कन्दराओंमें श्यामसुन्दरकी मुरलीकी मधुर ध्वनि पहुँची और उसने समाधिस्थ शान्त शिवके हृदयमें रसकी लहरी उत्पन्न कर दी। भोलेनाथ अपनेको, प्रिया पार्वतीको और कैलासको भूलकर

श्रीगोपेश्वर महादेव (वृन्दावन)

चल पड़े बावले-से हुए व्रजकी ओर ! श्रीमहादेव आज मोहिनी-वेषमें मोहनकी रासस्थलीमें गोपियोंके यूथमें शामिल होकर अतृप्त नेत्रोंसे विश्वविमोहनकी रूपमाधुरीका पान कर रहे हैं। रासेश्वरी श्रीराधिकाके साथ नृत्य करते हुए श्रीरासविहारीने व्रजवनिताओं और लताओंके बीच, गोपी-रूपधारी गौरीनाथका हाथ पकड़ लिया और मन्द-मन्द मुसकराते हुए बड़े ही सत्कारसे आप बोले— आइये महाराज गोपीश्वर*! स्वागत! बस, तभीसे श्रीगोपीश्वरजी श्रीमदनमोहनके रासरसामृतका पान व्रजमें ही विराजकर आजपर्यन्त कर रहे हैं। श्रीशिवका सत्य और सुन्दर रूप तो यही है।

'सत्यं शिवं सुन्दरम्'

गोरखपुरके तीन प्रधान शिव-लिङ्ग

१—श्रीदुग्धेश्वरनाथ

यह शिव-लिङ्ग गोरखपुर-जिलान्तर्गत गौरीबाजार रेलवे-स्टेशनसे दस मील दक्षिण रुद्रपुर नामक ग्रामसे एक मील उत्तर स्थित है। शिवपुराणके अनुसार यह महाकालका उपज्योतिर्लिङ्ग है—

महाकालस्य यल्लिङ्गं दुग्धेशमिति विश्रुतम्

कहा जाता है कि इस शिव-लिङ्गकी पञ्चकोसी परिक्रमा थी, जिसमें बहुतसे तीर्थस्थान थे। अब भी उसके अनेकों चिह्न विद्यमान हैं। इस ग्रामका नाम रुद्रपुर रक्खे जानेका कारण भी यह शिव-लिंग ही मालूम होता है।

श्रीदुग्धेश्वरजीके मन्दिरके पश्चिमकी ओर सहनकोट नामक एक बहुत लम्बा-चौड़ा टीला है, जिसकी उँचाई कहीं-कहीं तीस फुटतक है। सम्भवतः यह किसी प्राचीन राजाका कोट था। इसके पश्चिमकी ओर नदी बहती है।

* श्रीवृन्दावनकी रासस्थलीमें पूज्यपाद श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीजीकी भजनकुटीसे थोड़ी ही दूरपर श्रीगोपेश्वरजीका मन्दिर है।
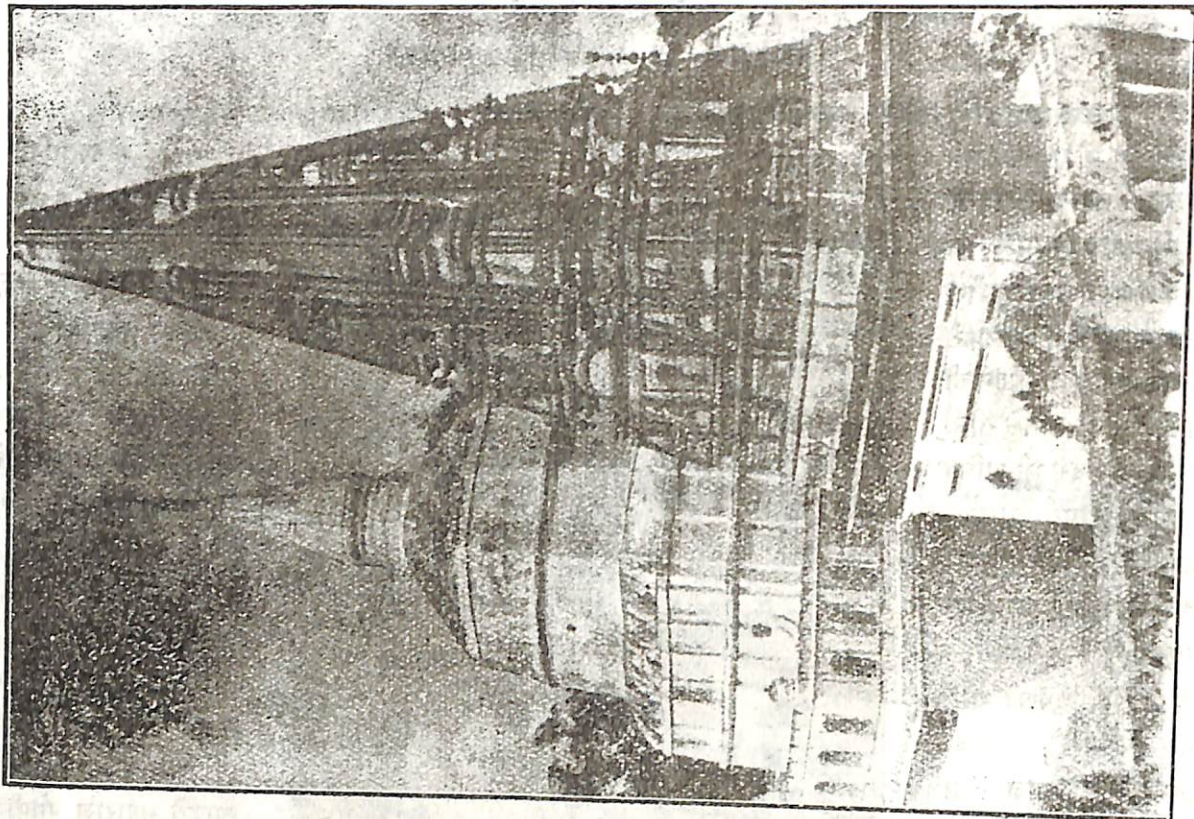
श्रीदुग्धेश्वरजीका मन्दिर
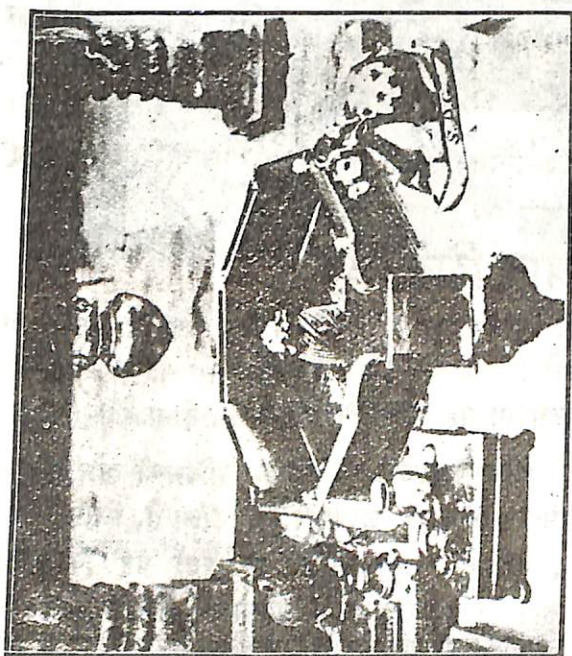
श्रीसुकेश्वरनाथ

श्रीमानसरोवरेश्वर
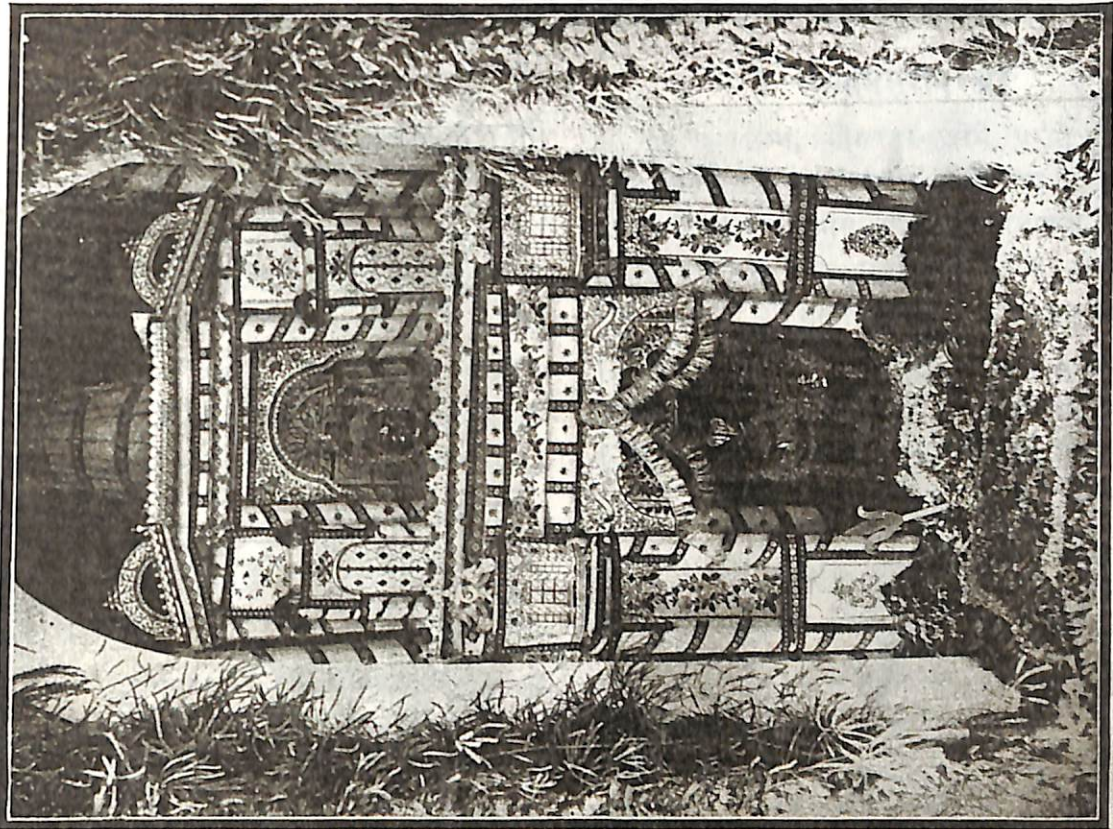
घुमेश्वर महादेव गुसारघाट, कानपुर
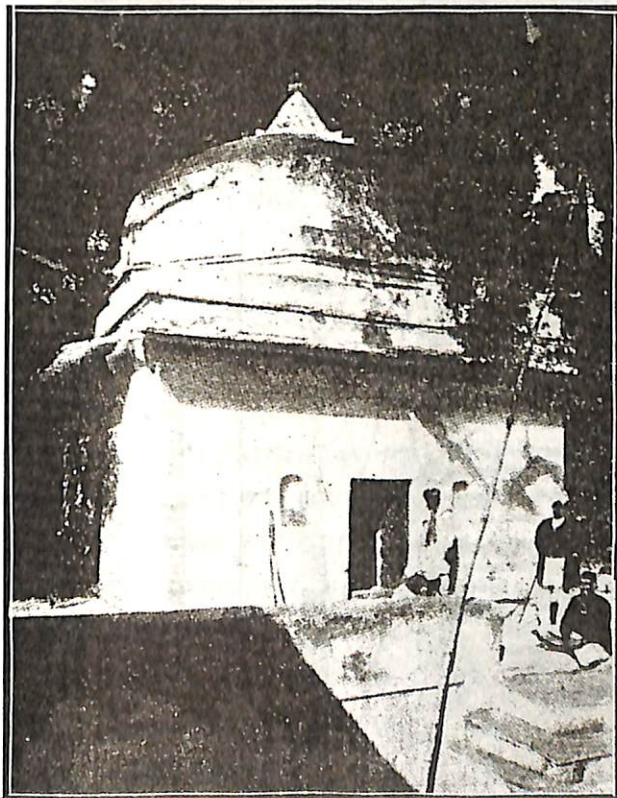
सोमेश्वर प्रयाग
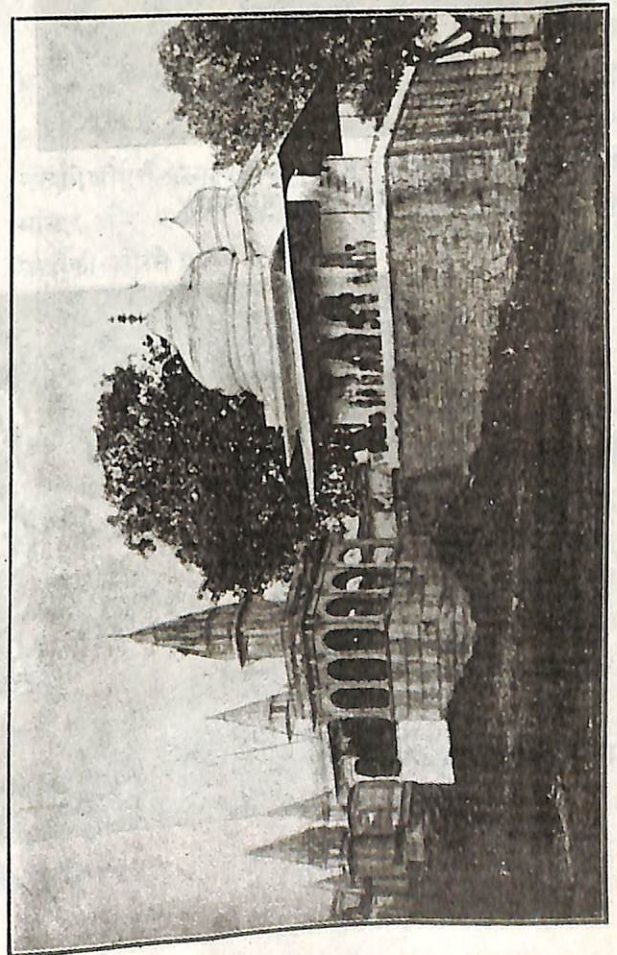
शिवकोटि मन्दिर, प्रयाग
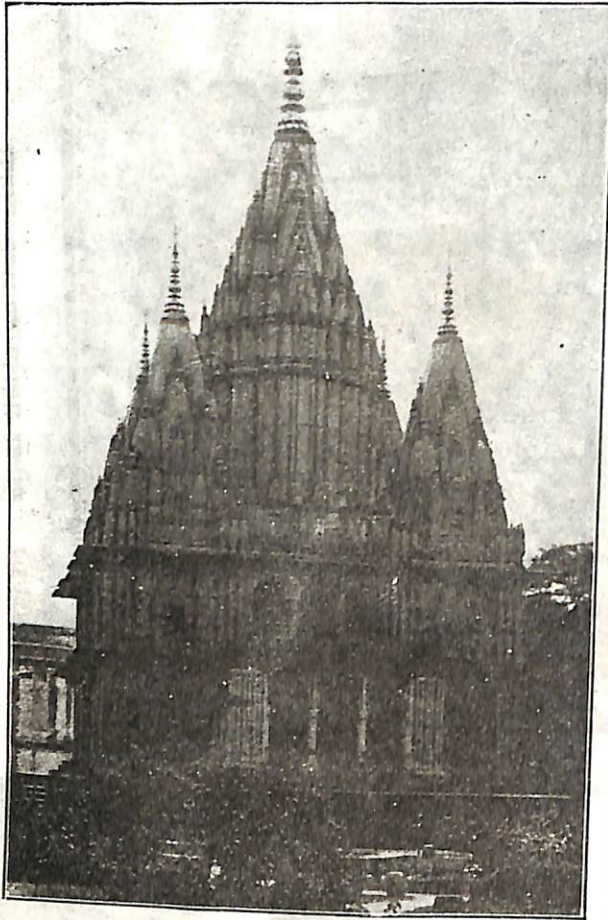
श्रीदर्शनेश्वर, अयोध्या
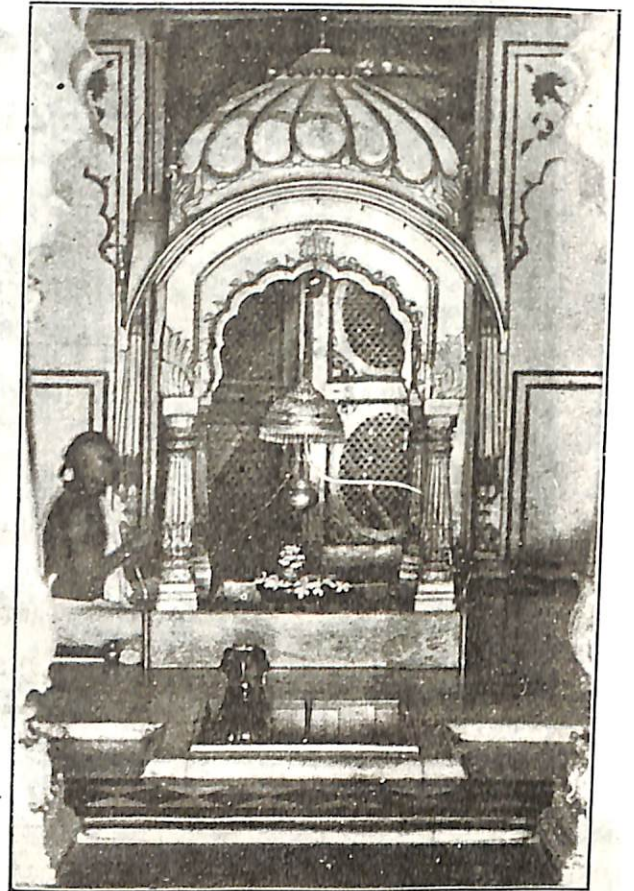
श्रीदर्शनेश्वरकी मूर्ति, अयोध्या
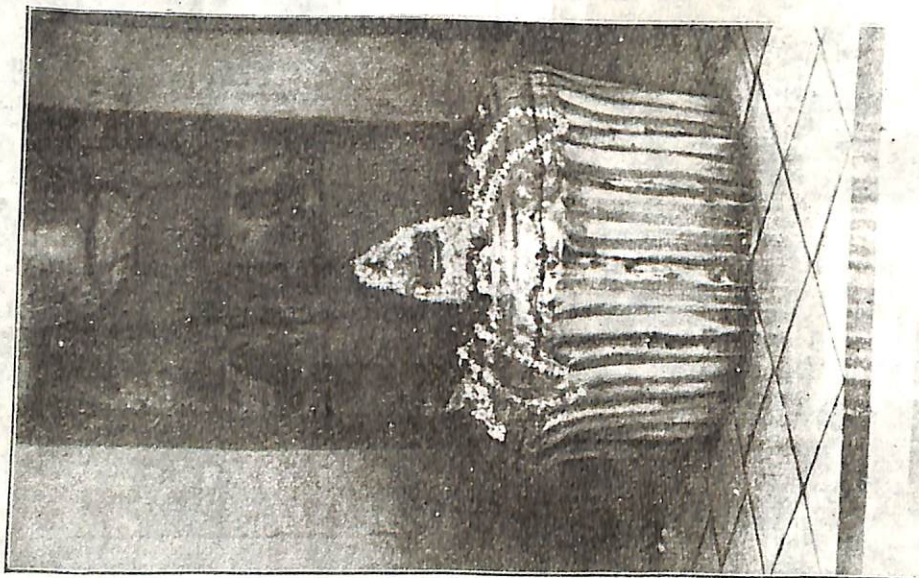
श्रीनागेश्वर, अयोध्या

मन्दिरका प्रवेशद्वार भी कोटके ठीक सामने पश्चिममुखी है। द्वारके चौखटपर प्राचीन लिपिमें कुछ खुदा हुआ है। यहाँ अधिक-मासके समय और शिवरात्रिपर बड़े-बड़े मेले लगते हैं। मन्दिरके आस-पास बहुत-से नवीन मन्दिर भी बन गये हैं। सुना जाता है कि मन्दिरके महन्तोंकी पारस्परिक वैमनस्यता तथा विलासिता आदिके कारण मन्दिरकी उन्नतिमें बाधा पहुँचती है। इधर एक जीर्णोद्धार और प्रबन्ध समिति बन गयी है। आशा है इससे अच्छा कार्य होगा। समिति दानी सज्जनोंकी सहायतासे जीर्णोद्धार करवा रही है। एक श्रीदुग्धेश्वर-संस्कृत-पाठशाला भी समितिकी ओरसे चल रही है।

यह शिव-लिंग जमीनसे करीब आठ फुट नीचे स्थित है और इसका सम्बन्ध सीधा जमीनसे ही है। वृद्धलोगोंसे पता चलता है कि एक समय मूर्तिकी गहराई जाननेके लिये जमीन खोदी गयी थी। कई फुट जमीन खोदनेपर भी मूर्तिका छोर नहीं मिला। इधर लोगोंको दुःस्वप्न होने लगे तथा अन्य प्रकारके दैवी विघ्न उपस्थित हो गये, इससे वह प्रयास छोड़ देना पड़ा।

कभी-कभी यह मूर्ति अपने आप हिलने लगती है और चौबीस घण्टेतक हिलती रहती है। चौबीस घण्टे पूरे हो जानेपर हिलनी बन्द हो जाती है और फिर मनुष्य अपनी सारी शक्ति लगाकर भी इसे नहीं हिला सकता। लोगोंमें श्रीदुग्धेश्वरजीके प्रति बहुत श्रद्धा है।

२—श्रीमानसरोवरेश्वर

यह शिव-लिंग, गोरखपुर-शहरमें पुराने गोरखपुरमें श्रीगोरखनाथजीके स्थानसे करीब दो-सौ बीघा दक्षिण, रेलवेकी गुमटीके निकट मानसरोवर नामक तालाबपर स्थित है। तालाब पक्का है और उसके दो तरफ जीर्णावस्थामें कुछ मन्दिर हैं और मुसाफिरोंके ठहरनेके लिये एक मकान है।

इस तालाबको राजा मानसिंहजीने बनवाया था। ये विशनवंशीय क्षत्रिय राजा थे। इस वंशके अवधमें तेरह राज्य हैं जो गोरखपुरके अन्तर्गत मझौली राज्यको अपना प्रधान मानते हैं। कहते हैं कि इस वंशकी तीसरी पीढ़ीमें मानसिंहजी हुए थे। इन्होंने गोरखपुरमें अपना किला बनवाया और उसके दरवाजेपर मानसरोवर नामक तालाब खुदवाया। कहते हैं कि किला बनाते समय भगवान् शिवजीका स्वप्नमें आदेश पानेपर वहीं जमीनमेंसे शिव-लिङ्गको निकालकर उसकी स्थापना की। हर साल शिवरात्रिपर यहाँसे श्रीशिवजीके चित्रको लेकर एक जुलूस निकलता है। दशहरेपर रामलीला होती है।

३—श्रीमुक्तेश्वरनाथ

यह शिव-लिङ्ग गोरखपुर-शहरसे दक्षिण रापती-नदीके तीरपर बरदघाटके निकट स्थापित है। इसकी स्थापना स्वामी कृष्णानन्द नामक एक महात्माने की थी। बाँसी-नरेशने श्रीमुक्तेश्वरनाथजीकी कृपासे पुत्र प्राप्तकर सन् १९१९में मन्दिर और बगीचा बनवा दिया। पूजादिके लिये भी उन्हींकी ओरसे प्रबन्ध है।

अयोध्याके शिवमन्दिर

१ नागेश्वर—कहते हैं कि भगवान् श्रीरघुनाथजीके साकेत पधारनेपर अयोध्या प्रायः शून्य-सी हो गयी। महाराजा कुशने अयोध्यामें आकर पुनः अयोध्याको बसाया। एक समय जलक्रीड़ा करते समय राजाका कङ्कण जलमें गिर पड़ा और उसे एक नागकन्या कुमुद्वती ले गयी। कुशको इस बातका पता लगा, तब उन्होंने नागोंके नाशका विचार किया। नाग डर गये और कुमुद्वतीको साथ ले कङ्कण लेकर आये तथा क्षमा चाहने लगे। कुशका कोप शान्त नहीं हुआ; नाग शिव-भक्त था, अतः भक्तभयहारी भगवान् शिवने प्रकट होकर कुशका कोप शान्त किया। कुशने भगवान् शिवकी विधिवत् पूजा की और सर्वदा अयोध्यामें निवास करनेकी उनसे प्रार्थना की। तबसे शिवजी वहाँ विराजने लगे। नागकी रक्षार्थ पधारे थे इसलिये नागनाथ या नागेश्वर नाम पड़ा। सरयूजीमें स्नान करके भगवान् शिव श्रीनागनाथजीकी पूजा करनेसे ही अयोध्याकी यात्रा पूर्ण होती है।

२ दर्शनेश्वर—यह मन्दिर राजा दर्शनसिंहजीका बनवाया हुआ है।

३ राजराजेश्वर—यह भी राजा दर्शनसिंहजीका बनवाया हुआ है।

उदयपुरका एक प्राचीन शिवचित्र

(लेखक—पं० श्रीगिरिधरलालजी शर्मा)

सूर्यवंशी राजा सदासे शिव-भक्त रहे हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रने लङ्का-यात्राके समय विजयकी अभिलाषासे भक्तिपूर्वक सेतुबन्ध रामेश्वरकी स्थापना की, जो आज चार धामोंमें एक प्रधान धाम माना जाता है। इसी वंशमें परमशैव महारावल बाप्पा उत्पन्न हुए, जिन्होंने भगवान् एकलिङ्ग शिवकी आराधनासे मेवाड़का राज्य प्राप्त किया। महाराजसाहब अर्जुनसिंहजी भी इन्हींके वंशज हैं। आप महाराणा संग्रामसिंहजी द्वितीय (वि० सं० १७६७–१७९०) के चतुर्थ पुत्र एवं शिवरतीके स्वामी थे। माधवराय सिन्धिया आदि महापुरुषोंकी लड़ाईमें इनकी वीरताका परिचय मिलता है। इनकी प्रशंसामें भीमविलास नामक डिङ्गलकाव्यमें कृष्ण कविने एक दोहा लिखा है—

लगिग अजन महाराजके, समर पंचदस घाय।
कहुँ तन देखिय सिरुह कटि, खतवट छाप सुहाय॥

ये जैसे वीर थे, वैसे ही परम शिवभक्त एवं पूर्णयोगी भी थे। इन्होंने अपनी हवेलीमें अपने इष्टदेव बाणनाथ (शिव) की प्रतिष्ठाकर पूजा आदिका विशेष प्रबन्ध कर दिया था। इनके संग्रहालयमें अनेक पुस्तकों तथा चित्रोंका अच्छा संग्रह है। यह चित्र इनके अनुभवका है। इनके प्रधान पाठ्य-ग्रन्थ 'सनत्कुमारसंहिता, ललितारहस्य, नारदपाञ्चरात्र, दक्षिणामूर्तिसंहिता, मतङ्गवृत्ति, कालिकागम, सांख्यायनतन्त्र, नारदीय संहिता' आदि थे।

इन्होंने अपना अन्तिम समय समीप समझ काशीवास कर लिया था और वहीं इनका कैलासवास भी हुआ।

असली चित्रके पीछे निम्नलिखित श्लोक लिखे मिलते हैं—

तदुक्तं स्वच्छन्दसंग्रहे—

सूर्यकोटिप्रतीकाशमतिदीप्तं महद्गणम्।
तन्मध्ये दशकोटीनां संख्यायोजनपङ्कजम्॥
तत्कर्णिकायामासीनः शान्त्यतीतेश्वरः प्रभुः।
पञ्चवक्त्रो दशभुजो विद्युत्पुञ्जनिभाकृतिः॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिरनुक्रमात्।
परिवार्य स्थिताश्चैताः शान्त्यतीतस्य सुन्दरि॥
वामभागे समासीना शान्त्यतीता मनोन्मनी।
पञ्चवक्त्रधराः सर्वा दशबाह्विन्दुभूषणाः॥
बिन्दुतत्त्वं समाख्यातं कोट्यर्बुदशतैर्वृतम्।
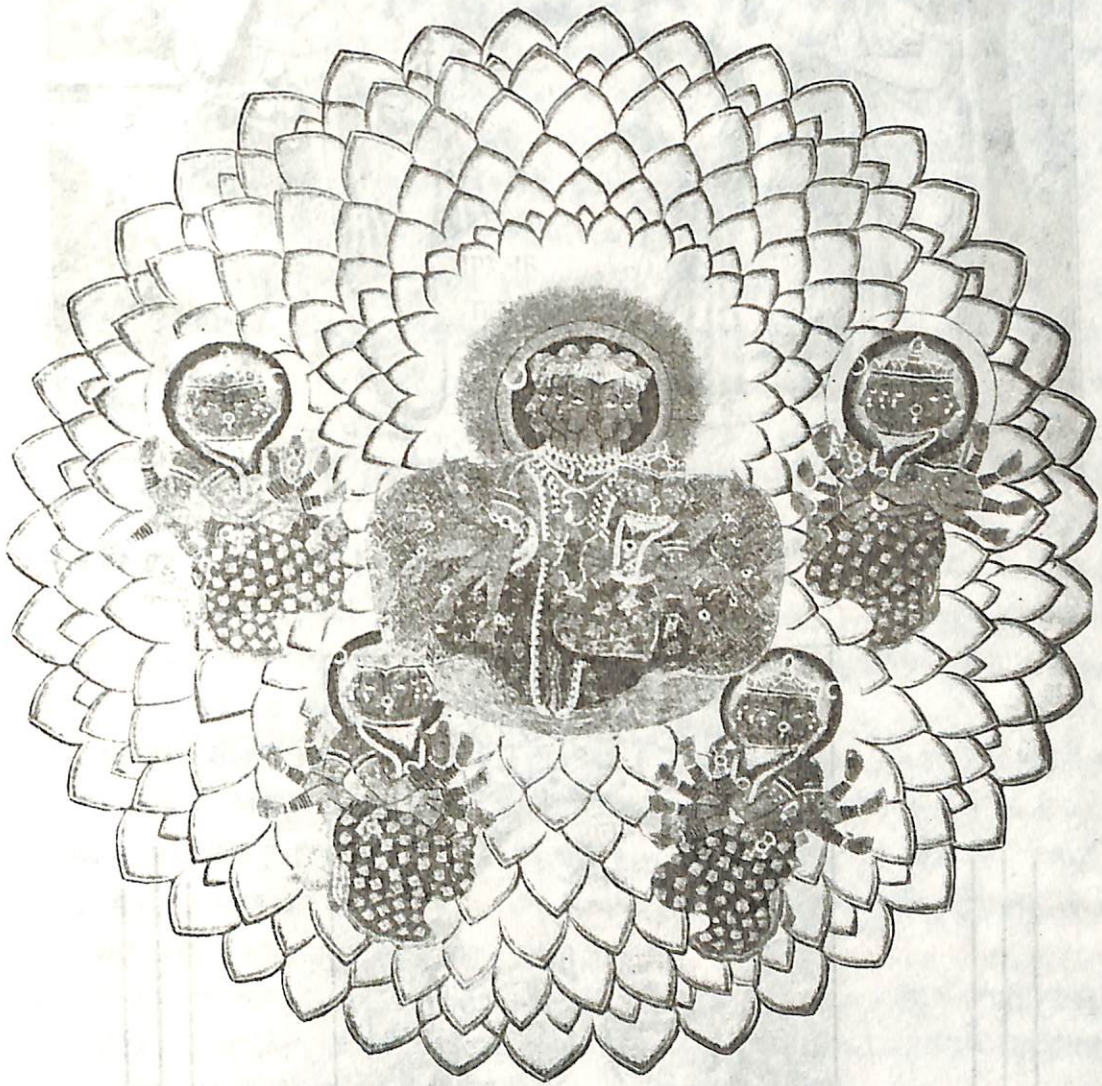
उदयपुरका प्राचीन शिव-चित्र
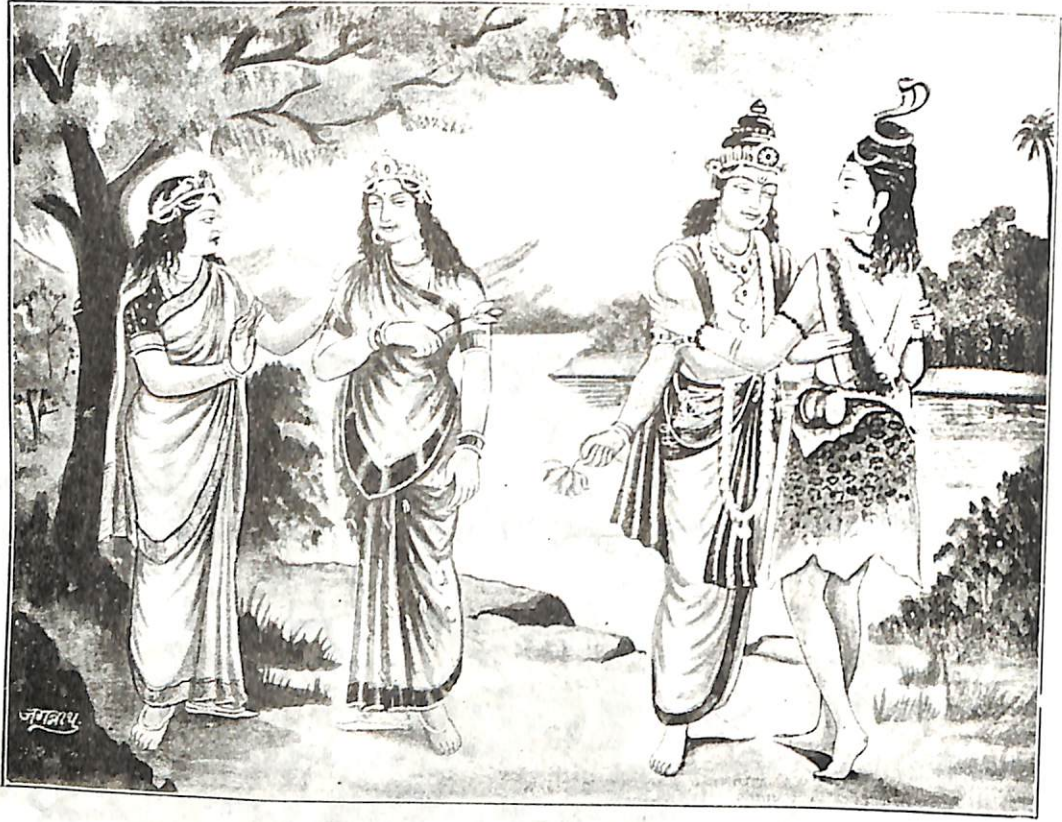
शिव-विष्णु और उमा-रमाका प्रेम-सम्मिलन (पृष्ठ १२३)

शिव-कृष्णमूर्ति

(नीचेसे शिव, ऊपरसे कृष्ण)

'कल्याण' के पुराने, लोकप्रिय पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

श्रीकृष्णाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ६, सन् १९३२ ई० (कोड नं० 1184)]—भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र इतना मधुर है कि बड़े-बड़े अमलात्मा परमहंस भी उसमें बार-बार अवगाहन करके अपने आपको धन्य करते रहते हैं। इस विशेषाङ्कमें भगवान् श्रीकृष्णके मधुर एवं ज्ञानपरक चरित्रपर अनेक सन्त-महात्मा, विद्वान् विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंका अद्भुत संग्रह है।

ईश्वराङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ७, सन् १९३३ ई० (कोड नं० 749)]—यह विशेषाङ्क ईश्वरके स्वरूप, अस्तित्व, विशेषता, महत्त्व आदिका सुन्दर परिचायक है। इसमें ईश्वर-विश्वासी भक्तों, विद्वानों, सन्त-विचारकोंके ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेवाले शोधपूर्ण लेखोंका अनुपम संग्रह है।

शिवाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ८, सन् १९३४ ई० (कोड नं० 635)]—यह शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवार्चन, पूजन, व्रत एवं उपासनापर तात्त्विक और ज्ञानप्रद मार्ग-दर्शन कराता है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र परिचय तथा भारतके सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थोंका प्रामाणिक वर्णन इसके अन्यान्य महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय हैं।

शक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ९, सन् १९३५ ई० (कोड नं० 41)]—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासनापद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है।

योगाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १०, सन् १९३६ ई० (कोड नं० 616)]—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। साथ ही अनेक योगसिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्र तथा साधना-पद्धतियोंपर रोचक, ज्ञानप्रद वर्णन हैं।

संत-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १२, सन् १९३८ ई० (कोड नं० 627)]—इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओंके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं, जो पारमार्थिक गतिविधियोंके लिये प्रेरित करनेके साथ-साथ उनके सार्वभौमिक सिद्धान्तों, त्याग-वैराग्यपूर्ण तपस्वी जीवन-शैलीको उजागर करके उच्चकोटिके पारमार्थिक आदर्श जीवन-मूल्योंको रेखाङ्कित करते हैं।

साधनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १५, सन् १९४१ ई० (कोड नं० 604)]—यह अङ्क साधनापरक बहुमूल्य मार्ग-दर्शनसे ओतप्रोत है। इसमें साधना-तत्त्व, साधनाके विभिन्न स्वरूप, ईश्वरोपासना, योगसाधना, प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनों और उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका शास्त्रीय विवेचन है।

भागवताङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १६, सन् १९४२ ई० (कोड नं० 1104)]—इस विशेषाङ्कमें भागवतकी महत्तापर विभिन्न विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंके साथ श्रीमद्भागवतकी सम्पूर्ण कथाओंका अनुपम संग्रह है।

सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १८, सन् १९४४ ई० (कोड नं० 1002)]—इस विशेषाङ्कमें श्रीमद्वाल्मीकि रामायणके विभिन्न पक्षोंपर विद्वान् सन्त-महात्माओं, विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंके साथ वाल्मीकीय रामायणकी सम्पूर्ण कथाओंका सुन्दर संग्रह किया गया है।

नारी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २२, सन् १९४८ ई० (कोड नं० 43)]—इसमें भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान है। नारीमात्रके लिये आत्मबोध करानेवाला यह अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी ग्रन्थ है।

उपनिषद्-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २३, सन् १९४९ ई० (कोड नं० 659)]—इसमें नौ प्रमुख उपनिषदों-(ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतर-) का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित वर्णन है और अन्य ४५ उपनिषदोंका हिन्दी-भाषान्तर, महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर टिप्पणीसहित प्राय: सभीका अनुवाद दिया गया है।

हिन्दू-संस्कृति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २४, सन् १९५० ई० (कोड नं० 518)]—यह भारतीय संस्कृतिके विभिन्न पक्षों—हिदू-धर्म दर्शन, आचार-विचार, संस्कार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, कला-संस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अनुसन्धानकर्ताओं और जिज्ञासुओंके लिये यह अवश्य पठनीय तथा उपयोगी दिशा-निर्देशक है।

संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २५, सन् १९५१ ई० (कोड नं० 279)]—इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कुमार कार्तिकेयके जन्मकी कथा तथा तारकासुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एवं बहुत-से रोचक, ज्ञानप्रद प्रसंग और आदर्श चरित्र भी इसमें वर्णित हैं। शिव-पूजनकी महिमाके साथ-साथ तीर्थ, व्रत, जप, दानादिका महत्त्व आदि भी इसके विशेषरूपसे पठनीय विषय हैं।

भक्त-चरिताङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २६, सन् १९५२ ई० (कोड नं० 40)]—इसमें भगवद्विश्वासको बढ़ानेवाले भगवद्भक्तों, ईश्वरोपासकों और महात्माओंके जीवन-चरित्र एवं विभिन्न भक्तिपूर्ण भावोंकी ऐसी पवित्र, सरस मधुर कथाएँ हैं जो मानव-मनको प्रेम-भक्ति-सुधारससे अनायास सराबोर कर देती हैं। रोचक, ज्ञानप्रद और निरन्तर अनुशीलनयोग्य ये भक्तगाथाएँ भगवद्विश्वास और प्रेमानन्द बढ़ानेवाली तथा शान्ति प्रदान करनेवाली होनेसे नित्य पठनीय हैं।

बालक-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २७, सन् १९५३ ई० (कोड नं० 573)]—यह अङ्क बालकोंसे सम्बन्धित सभी उपयोगी विषयोंका बृहत् संग्रह है। यह सर्वजनोपयोगी होनेके साथ बालकोंके लिये आदर्श मार्ग-दर्शक है। इसमें प्राचीन कालसे अबतकके भारतके महान बालकों एवं विश्वभरके सुविख्यात आदर्श बालकोंके अनुकरणीय जीवन-वृत्त एवं आदर्श चरित्र बार-बार पठनीय और प्रेरणाप्रद हैं।

संतवाणी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २९, सन् १९५५ ई० (कोड नं० 667)]—संत-महात्माओं और अध्यात्मचेता महापुरुषोंके लोककल्याणकारी उपदेश-उद्बोधनों-(वचन और सूक्तियों-) का यह बृहत् संग्रह प्रेरणाप्रद होनेसे नित्य पठनीय और सर्वथा संग्रहणीय है।

सत्कथा-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३०, सन् १९५६ ई० (कोड नं० 587)]—जीवनमें भगवत्प्रेम, सेवा, त्याग, वैराग्य, सत्य, अहिंसा, विनय, प्रेम, उदारता, दानशीलता, दया, धर्म, नीति, सदाचार और शान्तिका प्रकाश भर देनेवाली सरल, सुरुचिपूर्ण, सत्प्रेरणादायी छोटी-छोटी सत्कथाओंका यह बृहत् संग्रह सर्वदा अपने पास रखनेयोग्य है।

तीर्थाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३१, सन् १९५७ ई० (कोड नं० 636)]—इस अङ्कमें तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप, स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन-अध्ययनका विषय है। इसमें देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयोगी बातोंका भी उल्लेख है। भारतके प्रायः समस्त तीर्थोंका अनुसन्धानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा संकलन है जो तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय है। (सन् १९५७ के बाद तीर्थोंके मार्गों और यातायातके साधनोंमें हुए परिवर्तन इसमें सम्मिलित नहीं हैं।)

भक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३२, सन् १९५८ ई० (कोड नं० 660)]—इसमें ईश्वरोपासना, भगवद्भक्तिका स्वरूप तथा भक्तिके प्रकारों और विभिन्न पक्षोंपर शास्त्रीय दृष्टिसे व्यापक विचार किया गया है। साथ ही इसमें अनेक भगवद्भक्तोंके शिक्षाप्रद, अनुकरणीय जीवन-चरित्र भी बड़े ही मर्मस्पर्शी, प्रेरणाप्रद और सर्वदा पठनीय हैं।

संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३५, सन् १९६१ ई० (कोड नं० 574)]—योगवासिष्ठके इस संक्षिप्त रूपान्तरमें जगत्‌की असत्ता और परमात्मसत्ताका प्रतिपादन है। पुरुषार्थ एवं तत्त्व-ज्ञानके निरूपणके साथ-साथ इसमें शास्त्रोक्त सदाचार, त्याग-वैराग्युक्त सत्कर्म और आदर्श व्यवहार आदिपर भी सूक्ष्म विवेचन है।

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३७, सन् १९६३ ई० (कोड नं० 631)]—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति-ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका विशद वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें कुछ विशिष्ट ईश्वरकोटिके सर्वशक्तिमान् देवताओंकी एकरूपता, महिमा तथा उनकी साधना-उपासनाका भी सुन्दर प्रतिपादन है।

श्रीभगवन्नाम-महिमा-प्रार्थनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३९, सन् १९६५ ई० (कोड नं० 1135)]—यह विशेषाङ्क भगवन्नाम-महिमा एवं प्रार्थनाके अमोघ प्रभावका सुन्दर विश्लेषक है। इसमें विभिन्न सन्त-महात्माओं, विद्वान् विचारकोंके भगवन्नाम-महिमा एवं प्रार्थनाके चमत्कारोंके सन्दर्भमें शास्त्रीय लेखोंका सुन्दर संग्रह है। इसके अतिरिक्त कुछ भक्त-सन्तोंके नाम-जपसे होनेवाले सुन्दर अनुभवोंका भी संकलन किया गया है।

परलोक और पुनर्जन्माङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४३, सन् १९६९ ई० (कोड नं० 572)]—मनुष्यमात्रको मानव-चरित्रके पतनकारी आसुरी सम्पदाके दोषोंसे सदा दूर रहने तथा परम विशुद्ध उज्ज्वल चरित्र होकर सर्वदा सत्कर्म करते रहनेकी शुभ प्रेरणाके साथ इसमें परलोक तथा पुनर्जन्मके रहस्यों और सिद्धान्तोंपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। आत्मकल्याणकामी पुरुषों तथा साधकमात्रके लिये इसका अध्ययन-अनुशीलन अति उपयोगी है।

गर्ग-संहिता (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४४-४५, सन् १९७०-७१ ई० (कोड नं० 517)]—इसमें श्रीराधाकृष्णकी दिव्य, मधुर लीलाओंका बड़ा ही हृदयहारी वर्णन है। इसकी सरस कथाएँ भक्तिप्रद और भगवान् श्रीकृष्णमें अनुराग बढ़ानेवाली हैं।

श्रीगणेश-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४८, सन् १९७४ ई० (कोड नं० 657)]—भगवान् गणेश अनादि, सर्वपूज्य, आनन्दमय, ब्रह्ममय और सच्चिदानन्दरूप (परमात्मा) हैं। महामहिम गणेशकी इन्हीं सर्वमान्य विशेषाओं और सर्वसिद्धि-प्रदायक उपासना-पद्धतिका विस्तृत वर्णन इस विशेषाङ्कमें उपलब्ध है। इसमें श्रीगणेशकी लीला-कथाओंका भी बड़ा ही रोचक वर्णन और पूजा-अर्चना आदिपर उपयोगी दिग्दर्शन है।

श्रीहनुमान-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४९, सन् १९७५ ई० (कोड नं० 42)]—इसमें श्रीहनुमान्‌जीका आद्योपान्त जीवन-चरित्र और श्रीरामभक्तिके प्रतापसे सदा अमर बने रहकर उनके द्वारा किये गये क्रिया-कलापोंका तात्त्विक और प्रामाणिक चित्रण है। श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न करनेवाले विविध स्तोत्र, ध्यान एवं पूजन-विधियोंका भी इसमें उपयोगी संकलन है।

सूर्याङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ५३, सन् १९७९ ई० (कोड नं० 791)]—भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। इनमें समस्त देवताओंका निवास है। अतः सूर्य सभीके लिये उपास्य और आराध्य हैं। प्रस्तुत अङ्कमें विभिन्न संत-महात्माओंके सूर्यतत्त्वपर सुन्दर लेखोंके साथ वेदों, पुराणों, उपनिषदों तथा रामायण इत्यादिमें सूर्य-सन्दर्भ, भगवान् सूर्यके उपासनापरक विभिन्न स्तोत्र, देश-विदेशमें सूर्योपासनाके विविध रूप तथा सूर्य-लीलाका सरस वर्णन है।

सं० भविष्यपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ६६, सन् १९९२ ई० (कोड नं० 548)]—यह पुराण विषय-वस्तु, वर्णन-शैली एवं काव्य-रचनाकी दृष्टिसे अत्यन्त भव्य, आकर्षक तथा उच्चकोटिका है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, उपदेश, आख्यानसहित, व्रत, तीर्थ, दान तथा ज्योतिष एवं आयुर्वेदशास्त्रके विषयोंका अद्भुत संग्रह हुआ है। वेताल-विक्रम-संवादके रूपमें संगृहीत कथा-प्रबन्ध इसमें अत्यन्त रमणीय है। इसके अतिरिक्त इस पुराणमें नित्यकर्म, संस्कार, सामुद्रिक-लक्षण, शान्ति-पौष्टिक मन्त्र तथा आराधना और व्रतोंका भी वर्णन है।

शिवोपासनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ६७, सन् १९९३ ई० (कोड नं० 586)]—इस अङ्कमें शिवसे सम्बन्धित तात्त्विक निबन्धोंके साथ शास्त्रोंमें वर्णित शिवके विविध स्वरूप, शिव-उपासनाकी मुख्य विधाएँ, पञ्चमूर्ति, दक्षिणामूर्ति, ज्योतिर्लिङ्ग, नर्मदेश्वर, नटराज, हरिहर आदि विभिन्न स्वरूपोंके विवेचन, आर्ष ग्रन्थोंके आधारपर शिव-साधनाकी पद्धति, भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें अवस्थित शिवमन्दिर तथा शैव तीर्थोंका परिचय और विवरण आदि है।

श्रीरामभक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ६८, सन् १९९४ ई० (कोड नं० 628)]—भगवान् श्रीरामके चरित्रका श्रवण, मनन, आचरण तथा पठन-पाठन भवरोग-निवारणका सर्वोत्तम उपचार है। इस अङ्कमें भगवान् श्रीराम और उनकी अभिन्न शक्ति भगवती सीताके नाम, रूप, लीला-धाम, आदर्श गुण, प्रभाव आदिके तात्त्विक विवेचनके साथ श्रीरामजन्मभूमिकी महिमा आदिका विस्तृत दिग्दर्शन कराया गया है।

गो-सेवा-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ६९, सन् १९९५ ई० (कोड नं० 653)]—शास्त्रोंमें गौको सर्वदेवमयी और सर्वतीर्थमयी कहा गया है। गौके दर्शनसे समस्त देवताओंके दर्शन तथा समस्त तीर्थोंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है। इस विशेषाङ्कमें गौसे सम्बन्धित आध्यात्मिक और तात्त्विक निबन्धोंके साथ, गौका विश्वरूप, गोसेवाका स्वरूप, गोपालन एवं गो-संबर्धनकी मुख्य विधाएँ तथा गोदान आदि अनेक उपयोगी विषयोंका संग्रह हुआ है।

भगवल्लीला-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ७२, सन् १९९८ ई० (कोड नं० 448)]—इस विशेषाङ्कमें भगवान् श्रीराम-कृष्णकी लीलाओंके साथ पञ्चदेवोंके विभिन्न अवतारोंकी लीलाओं, भगद्भक्तोंके चरित्र तथा लीला-कथाके प्रत्येक पक्षपर पठनीय एवं प्रेरक सामग्रीका समायोजन किया गया है।

सं० गरुड़पुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ७४, सन् २००० ई० (कोड नं० 1189)]—इस पुराणके अधिष्ठातृदेव भगवान् विष्णु हैं। इसमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, निष्कामकर्मकी महिमाके साथ यज्ञ, दान, तप तीर्थ आदि शुभ कर्मोंमें सर्व साधारणको प्रवृत्त करनेके लिये अनेक लौकिक और पारलौकिक फलोंका वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, नीतिसार आदि विषयोंके वर्णनके साथ मृत जीवके अन्तिम समयमें किये जानेवाले कृत्योंका विस्तारसे निरूपण किया गया हे। आत्मज्ञानका विवेचन भी इसका मुख्य विषय है।